॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

गुरुमण्डलग्रन्थमालाया अष्टादशपुष्पम् :—

पद्मपुराणम्

श्रीमन्महर्षि कृष्णद्वैपायनव्यासविरचितम

तस्य सृष्टिखण्डात्मकः

प्रथमोभागः

"पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम"

मनसुखराय मोर

५, क्लाइव रो,

कलकत्ता-१

विक्रम सम्वत् २०१३]   [ईशावीय सन १९५७

❀ श्रीगणेशाय नमः ❀

गुरुमण्डलग्रन्थमालाया अष्टादशपुष्पम्

पद्मपुराणम्

श्रीमन्महर्षि कृष्णद्वैपायनव्यासविरचितम्

तस्य

सृष्टिखण्डात्मकः

प्रथमोभागः

श्रीनाथादिगुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयम्भैरवम् ।
सिद्धौघं वटुकत्रयम्पदयुगं दूतीक्रमं मण्डलम् (शाम्भवम्) ॥
वीरान्द्व्यष्टचतुष्कषष्टिनवकं वीरावलीपञ्चकम् ।
श्रीमन्मालिनिमन्त्रराजसहितं वन्दे गुरोर्मण्डलम् ॥

५, क्लाइव रो,

कलकत्ता-१

वैक्रमाब्दः	प्रथमं संस्करणम्	ख्रैस्ताब्दः
२०१३	५०००	१९५७

मूल संस्कृत ग्रन्थ के
मुद्रक—
गोपाल प्रिंटिंग वर्क्स,
८७ ए, राजा दिनेन्द्र स्ट्रीट,
कलकत्ता-६

अवशिष्ट विषय-सूची, भूमिका, शुद्धाशुद्धि, कवर और टाइटलपेज के
मुद्रक—
दि बङ्गाल प्रिंटिंग वर्क्स,
१, सिनागाग स्ट्रीट
कलकत्ता-१

GURUMANDAL SERIES No XVIII

PADMA PURANAM.

(*Contaning Srishti Khandam*)

By

Shriman Maharshi Krishna Dwaipayan

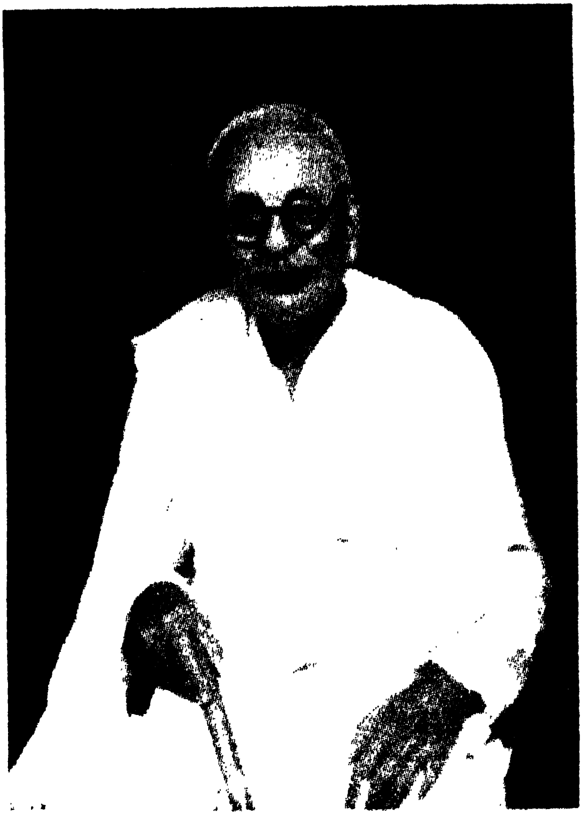
Vyasdeva.

Volume I

5, CLIVE ROW,
CALCATTA-1

Vikram Era	*First Edition*	*A. D.*
2013.	*5000*	*1957.*

"सरस्वती श्रुतमहतां महीयताम्"



श्रद्धेय शिवमूर्त्ति महामहोपाध्याय

पण्डित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी

वाचस्पतिः (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)

साहित्य वाचस्पतिः (हि० सा० स०, प्रयाग)

जयपुर ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

सादरं समर्पणम्

श्रीमतां विविधविद्यानिष्णातानां श्री ल श्री ६ पूज्यवर्याणां **महामहोपाध्याय-**
गिरिधरशर्म-चतुर्वेद-महाभागानां सर्वतन्त्रस्वतन्त्राणां राजस्थानविद्वन्मण्डल-
मण्डनानां जयपुरराजधानीवास्तव्यानां सम्प्रति विश्वनाथनगर्यां वसति-
कुर्वतां पण्डितमान्यानां करकमलेषु गुरुमण्डलग्रन्थमालाष्टादश-
पुष्पोपहारीभूतं "श्रीपाद्मम्महापुराणं" सादरं समर्प्यते
श्रीमद्भगवत्प्रबोधावसरे
भगवत्प्रीत्यर्थ-
मिति।

कालीक्षेत्रम्
कार्तिक शुक्ला प्रबोधिनी ११
बुधवासरः
२०१३ विक्रमाब्दः

श्रद्धाविनयान्वितो
मनसुखराय मोरः
५, क्लाइव रो
कलिकाता।

॥ श्रीः ॥

मङ्गलाशासनम्

लक्ष्मीनाथसमारम्भां नाथयामुनमध्यमाम् ।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

अनादिनिधन वेदों के द्वारा अनुप्राणित संस्कृत ही विकसित मानवता का वह दिव्य सौरभ है जिससे सुवासितात्मा चेतन अपने चरम लक्ष्य को अनायास प्राप्त कर सकता है। इसीलिये स्वयं भगवान् नारायण प्रभु ने व्यास रूप से अवतीर्ण होकर दुरूह वेदों का तात्पर्य सरस एवं सरल रीति से प्रकाशित किया है वही वेदों का उपबृंहण कहा जाता है। वे ही अष्टादश पुराण हैं। महाभारत आदि पर्व अध्याय १ श्लोक ३६७ में कहा गया है कि—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतरिष्यति ॥

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि पुराण विद्या के विना यथार्थ रूप में वेदों का समझना अशक्य है। ऐसी स्थिति में कहना न होगा कि पुराणों का प्रकाशन करना असाधारण महत्व का कार्य है। यह सेवा वैदिक संस्कृति के आदि रक्षक सर्वेश्वर भगवान् श्रीमन्नारायण की निर्हेतुक कृपा के विना किसी भी चेतन से बन नहीं सकती।

कलकत्ता निवासी श्रीमान् सेठ श्री मनसुखरायजी मोर महोदय पर प्रभु की असीम अनुकम्पा है जो कि वे स्मृति पुराणादि ग्रन्थों का धर्मार्थ प्रकाशन करते रहते हैं। आपके अनेकों ग्रन्थरत्न भारत के कोने-कोने में विद्वानों के पुस्तक भण्डार को पूरित कर रहे हैं। सम्प्रति यह पद्मपुराण का प्रथम भाग प्रकाशित होरहा है। इसकी भूमिका का अवलोकन करने से विदित होगा कि शेष तीन भाग और भी क्रमशः प्रकाशित होंगे; इस प्रकार सम्पूर्ण पुराण प्रकाश में आवेगा। लक्ष्मणगढ़-सीकर निवासी विद्वद्रत्न पं० श्री ब्रह्मदत्तजी त्रिवेदी एम०ए०, शास्त्री की विद्या भी इस प्रकाशन कार्य में विनियुक्त होकर सफल हो रही है।

भूमिका को देखकर इसकी महत्ता का भी परिचय प्राप्त होगा इस पुराण की महत्ता के सम्बन्ध में जितना भी कहा जाय थोड़ा है यह प्रकाशन बंबई के श्री वेंकटेश्वर मुद्रणालय के आदर्श पर होरहा है। विरल प्रचार महापुराणों के क्रमभेद, पाठभेद एवं श्लोक संख्या की विषमता के विषय में सामञ्जस्य करना कठिन समस्या है फिर भी यथोपलब्ध को सुरक्षित रखना विश्व की महानिधि का रक्षण करना है।

अतः श्रीमन्नारायणचरणारविन्दस्मृतिपूर्वक मङ्गलाशासन है कि यह सत्कार्य उत्तरोत्तर सर्वथा सफल हो एवं ऐसे शुभ भगवत्कैङ्कर्य में संलग्न पवित्रात्माओं का उत्तरोत्तर अभ्युदय हो एवं वे अधिकाधिक धर्म की सेवा करते हुए सब के प्रेमभाजन बनें।

श्री देवनायकआचार्य

पद्मपुराण की

भूमिका

श्रीमन्मुकुन्द सच्चिदानन्द परब्रह्म की असीम अनुकम्पा से पद्मपुराण का यह प्रथम भाग गुरुमण्डल ग्रन्थमाला के अष्टादश पुष्प के रूप से पुराण-परायण-प्रेमी सहृदय-धुरीण विद्वज्जन के करकमलों में समर्पित करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। इसका सम्पूर्ण प्रकाशन क्रमशः चार भागों में पूर्ण होगा जो इसी पुष्प के ही द्वितीय तृतीय चतुर्थ भाग से प्रकाशित होंगे।

आरम्भ में पुराण ग्रन्थों के प्रकाशन का उपक्रम करते हुए यही सोचा गया था कि इस अखण्ड ज्ञानराशि के प्रचार-प्रसार द्वारा भारतीय साहित्य के अमूल्य उपहार संस्कृत भाषा के प्रचार के हेतु वितरित किये जांय जिनमें कुल छै पुराण छांटे गये। पद्मपुराण उनमें से एक है इसके लिये अष्टादश महापुराणों की गणना में मत्स्यपुराण की ५३ वीं अध्याय में द्वितीय स्थान दिया गया है, जैसे :—

एतदेव यदा पद्ममभूद्धैरण्मयं जगत्।
तद्वृत्तान्ताश्रयं तद्वत्पाद्ममित्युच्यते बुधैः॥
पाद्मं यत्पञ्चपञ्चाशत्सहस्राणीह कथ्यते॥

ब्रह्मपुराण के आख्यान को ही जब विष्णु के नाभिकमल से उद्भूत सृष्टिरचना के वृत्तान्त का आश्रय लेकर विशदीकरण किया तो पाद्मसंज्ञा दी गई

इसमें श्लोक संख्या ५५००० पचपन हजार है। इसके प्रकाशन में श्री वेङ्कटेश्वर प्रेस बम्बई से प्रकाशित पद्मपुराण की प्रति ही आदर्शग्रन्थ के रूप में ली गई कारण यह था कि आनन्दाश्रम ग्रन्थमाला पूना के यहां से छपे पद्मपुराण में प्रायः ४८००० या पचपन हजार से कई हजार न्यून ही श्लोक थे। इसके विषय में जब कुछ सन्देहस्थान उपस्थित हुआ तो श्रीमत्परमहंस श्री १००८ नारायण स्वामीजी महाराज, देहरादून ने हमें बम्बई के वेङ्कटेश्वर प्रेस में छपे ग्रन्थ को ही ग्रन्थान्तर से तुलना कर पाठभेद के साथ समुचित सम्पादित किया हुआ उपर्युक्त श्लोक संख्या के साथ प्रामाणिक ग्रन्थ बतलाया।

नारदपुराण के अनुसार इस महापुराण में प्रथम सृष्टिखण्ड, द्वितीय भूमि खण्ड, तृतीय स्वर्गखण्ड, चतुर्थ पातालखण्ड और पञ्चम उत्तरखण्ड बताये गये हैं। परन्तु हमारे प्रकाशित ग्रन्थ में हमें ये सात खण्ड उपलब्ध हुए हैं १म सृष्टिखण्ड, २य भूमिखण्ड, ३य स्वर्गखण्ड, ४र्थ ब्रह्मखण्ड, ५म पातालखण्ड, ६ष्ठ उत्तरखण्ड और ७म क्रियायोगसार।

प्रवक्ष्यामि महापुण्यं पुराणं पद्मसंज्ञितम्।
सहस्रं पञ्चपञ्चाशत् सप्तखण्डैः समन्वितम्॥ २३॥
तत्रादौ सृष्टिखण्डं स्याद् भूमिखण्डं ततः परम्।
तृतीयं स्वर्गखण्डञ्च चतुर्थं ब्रह्मखण्डकम्॥ २४॥
पातालं पञ्चमं खण्डं षष्ठमुत्तरमेव च।
क्रियाखण्डं सप्तमं स्यादित्येवं खण्डसप्तकम्॥
एतदेव महापद्ममद्भुतं यन्मयं जगत्।
तद्वृत्तान्ताश्रयं तस्मात्पाद्ममित्युच्यते बुधैः॥ २६॥

(पद्मपुराण स्वर्गखण्ड प्रथम अध्याय)

नारदपुराण के अनुसार दी गई विषयानुक्रमणिका मेंहमारे विभाग क्रम के निर्दिष्ट ब्रह्म खण्ड का स्वर्गखण्ड में और कियायोगसार का उत्तरखण्ड में अन्त-र्भाव कर दिया है। संक्षेप में, सारे पद्मपुराण की विषयसूची नारदीय पुराण से उद्धृत कर पाठकों की सेवा में अवलोकनार्थ दी जाती है—

हे द्विज! पुलस्त्य ने भीष्म को सृष्ट्यादि के क्रम से नाना प्रकार के आख्यान और इतिहास आदि से युक्त धर्मविस्तार का वर्णन किया है, फिर पुष्कर तीर्थ का माहात्म्य विस्तार से ब्रह्मयज्ञ विधान, वेद-पाठादि का लक्षण, दोनों का विवरण, और नाना वृत्तों का प्रतिपादन, पार्वती का विवाह, तारक का आख्यान, जलधेनु, तिलधेनु आदि दशविध धेनु-दानों का सम्पूर्ण पुण्यों का देनेवाला आख्यान कीर्तित है। फिर कालकेय आदि दैत्यों का पृथक्-पृथक् वध वर्णित है। ग्रहों के उद्देश्य से पूजन और दान कथित है यह महात्मा व्यासदेव के द्वारा किया गया सृष्टिखण्ड का संक्षेप में वर्णन है।

२—माता-पिता एवं गुरुजन की पूज्यता अनन्यश्रद्धा से दिखलाने के लिये शिवशर्मा कथा से आरम्भ कर सुव्रत आदि की कथा कही गई है; फिर वृत्रासुर का वध, पृथुवेण का चरित्र, धर्माख्यान, पिता की शुश्रूषा (पितृभक्ति) का आख्यान, नहुष की कथा, ययाति चरित्र, गुरुतीर्थ-निरूपण, राजा और जैमिनि का बहुत आश्चर्यकारक कथाओं से युक्त सम्वाद, हुण्ड दैत्य के वध से युक्त अशोक सुन्दरी की कथा, कामदेव का आख्यान, साथ ही विहुण्ड का वध कुञ्जल तथा च्यवन महर्षि का सम्वाद, सिद्धों का आख्यान और द्वितीय खण्ड के पठन-श्रवण के फल का वर्णन, इस प्रकार सूत एवं शौनक के सम्वादवाले द्वितीय भूमिखण्ड का संक्षिप्त वर्णन है।

३—इसमें सौति द्वारा ऋषियों के प्रति कही गई ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, भूमि और लोकसंस्थानों से युक्त तीर्थाख्यान, नर्मदा की उत्पत्ति तथा पृथक्-पृथक् उसके

तीर्थों की कथा, कुरुक्षेत्र आदि तीर्थों की पुण्य कथा, कालिन्दी-पुण्य-कथन, काशी-माहात्म्य, गया-माहात्म्य और प्रयाग का पुण्यप्रद महत्त्व, वर्णाश्रम के अनुरोध से कर्मयोग का निरूपण, पुण्यकार्य कथाओं से युक्त व्यास एवं जैमिनि का सम्वाद, समुद्रमथनाख्यान, व्रताख्यान, ऊर्ज्ज (कार्त्तिक) पञ्चाह माहात्म्य व स्तोत्र जो सब अपराधों (पापों) को नष्ट करता है यह बताया है। हे विप्र! यह स्वर्गखण्ड नामक तृतीय खण्ड सम्पूर्ण पापों का नाश करनेवाला है इस प्रकार उसकी संक्षिप्त अनुक्रमणिका है।

४—रामाश्वमेध में प्रथम राम का राज्याभिषेक, अगस्त्य आदि का आगमन, पौलस्त्यवंश का वर्णन, अश्वमेध के लिये उपदेश, अश्वमेध के अश्व की चर्य्या का वर्णन, नाना राजाओं की पुण्य कथायें, जगन्नाथजी का वर्णन, सम्पूर्ण पापों का नाश करनेवाले वृन्दावन का माहात्म्य, कृष्णावतारी आनन्दमहिमामय सत्‌चित्‌आनन्दघन परमप्रभु की नित्य लीलाओं का वर्णन, माधव (वैशाख) मास के स्नान का माहात्म्य, स्नान, दान और पूजन (विष्णु के) का फल, पृथ्वी और वराह का सम्वाद, यम ब्राह्मण की कथा, राजदूतों का सम्वाद, कृष्ण-स्तोत्र-निरूपण, शिवशम्भु का समायोग, दधीचि का आख्यान, भस्म का विशेष माहात्म्य, शिवजी का पवित्र माहात्म्य, देवराज के पुत्र का आख्यान, पुराणों की प्रशंसा, गौतम का आख्यान, शिव गीता, दूसरे कल्प (कल्पान्तर) की राम कथा और भारद्वाज के आश्रम में उनकी स्थिति यह सब पातालखण्ड के विषयों की अनुक्रमणिका है जो ज्ञानियों के लिये सब पापों का नाश करनेवाली और सब इष्ट कामों का फल देनेवाली है।

५ भगवती पार्वती को शङ्करजी द्वारा कहा हुआ पर्वताख्यान जालन्धर की कथा श्री शैल आदि का अनुकीर्त्तन, सागर की कथा, गङ्गा, प्रयाग, काशी और गया की माहात्म्य कथा, आम्ल (आंवला) आदि के दान देने का माहात्म्य

उसकी महा द्वादशी का व्रत, २४ चौबीस एकादशी विष्णुतिथियों का माहात्म्य-वर्णन, विष्णुधर्म समाख्यान, विष्णु के हजार नामों का निरूपण, कार्त्तिक व्रत का माहात्म्य, माघ स्नान का फल, जम्बु द्वीप के तीर्थों का पापनाशक माहात्म्य, साधु भक्ति का माहात्म्य, नृसिंहोत्पत्ति-वर्णन, देवशर्मादि का गीता-माहात्म्य के वर्णन में आख्यान, भक्ताख्यान और श्रीमद्भागवत का माहात्म्यवर्णन, बहुतीर्थों की कथा से युक्त इन्द्रप्रस्थ का माहात्म्य, मन्त्र रत्न का अभिधान, त्रिपाद्भूति का वर्णन, मत्स्य आदि अवतारों की पुण्य कथा, सौ राम के नाम और उनके दिव्य माहात्म्य और श्री विष्णु के वैभव की भृगु द्वारा परीक्षा यह पञ्चम उत्तर खण्ड का सब पुण्यों को देनेवाला उसमें वर्णित विषयों के अनुक्रम का वर्णन है।

इसकी फल श्रुति। पांच खण्डों से युक्त इस पद्मपुराण को जो सुनता है वह इस लोक के ईप्सित भोगों को भोग कर वैष्णव पद को प्राप्त करता है। यह पचपन हजार श्लोकों का पद्म नामक महापुराण है। इसे ज्येष्ठ पूर्णिमा के दिन लिखाकर सुवर्ण और अन्नादि के साथ विद्वान् पुराणज्ञ को जो देता है, सब देवों से पूजित उसव्यक्ति को वैष्णवधाम मिलता है। इस पद्मपुराण के विषयों की अनुक्रमणिका को जो पढ़ता और सुनता है उसे भी पद्मपुराण के सुनने का पूर्ण फल मिलता है।

यह पुराण पुराणशरीरवाले पुराणावयव विराट् पुरुष भगवान् का हृदय स्थानीय है "ब्राह्मं मूर्धा हरेरेव हृदयं पद्मसञ्ज्ञितम्"।

(पद्मपुराण स्वर्ग खण्ड ६२ अध्याय २२ श्लोक)

इस विद्या की महत्ता का वर्णन शब्दातीत है फिर भी भगवान् बादरायण का पुण्यस्मरण हमारे लिये विशेष इष्ट है जिनकी अकारण करुणा से हमें आज तक यह महती पुराण विद्या अपने मार्ग प्रदर्शन के लिये मिली है। हम

भले ही इसे अपनी पैतृक सम्पत्ति कहें परन्तु यह तो सार्वभौम-सम्पत्ति है, इसे सब ही ज्ञानी (मानव) आत्मकल्याण की भावना से बिना पूछे लेकर अपने कर्त्तव्य एवं अधिकारों को समझ सर्वथा सद्गुण-धन का अथाह भण्डार सञ्चित कर प्राणीहित करते हैं। भगवान् बादरायण की प्रशस्ति का क्या कहना है। वे स्वयं ब्रह्मसूत्रों के प्रणेता, अखिल ज्ञान-विज्ञान के मूर्त शरीर, अशेष शास्त्राम्बुधि के अवगाहन में परमपटु रत्नपारखी, सम्पूर्ण ज्ञाननिधि को आर्षपरम्परानुसार क्रमबद्ध करने में स्वयं भगवदवतार एवं वाग्देवतारूप, धर्मचक्र-प्रवर्त्तक, प्रातः-स्मरणीय परमर्षिश्रेष्ठ अवधूतप्रधान वेदान्तशरीर शमदमादि षट् सम्पत्ति की महोदारमूर्त्ति ब्रह्मवित् श्रीशुकदेव मुनि के पितृचरण अन्वर्थनामा व्यास हैं। आपकी सूक्ष्म दृष्टि से प्रसूत उस ज्ञान का आविष्कार उस समय हुआ जब सभी की जीवनचर्या का मानदण्ड इतना ऊँचा था कि किसी से किसी नियम पालन का स्वधर्म-प्रवर्त्तन का उल्लङ्घन नहीं हो सकता था; सभी के आचरण शास्त्रमर्यादानुसार विश्वकल्याण में साधक थे; या यों कहिये कि आज की इस भौतिक विश्रृङ्खलता का कोई चिह्न दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। संक्षेप में; सम्पूर्ण प्राणियों के लिये विवेकी ज्ञानसम्पन्न मनुष्य 'सर्वतोभावेन सर्वभूतहिते रताः' थे। उनके त्रिकालाबाधित सत्य तत्त्व के साक्षात्कार में किसी को अणुमात्र भी सन्देह नहीं हो सकता; उन्हों ने शास्त्रपराम्परा लुप्त होने से प्राणिमात्र के अन्धकारपूर्ण भावी जीवन का सत्य चित्र दिव्य आंखों से देखकर ही परोपकार बुद्ध्या इन अष्टादश पुराणों एवं महाभारत जैसे महान् ज्ञान की निधि को हमारे लिये बनाकर विश्वसाहित्य को कभी लुप्त न होनेवाले पवित्र मार्ग को प्रदर्शित करनेवाले ऐसे विलक्षण ग्रन्थों की देन दी है, जो आज भी सम्पूर्ण मानवों को भय, आशंका, घृणा, जुगुप्सा, दुर्गुणादिपूर्ण वातावरण में सत्यमार्ग प्रदर्शित करने में अद्वितीय है। ये साहित्य के अमूल्य ग्रन्थ जागरुक प्रहरी का काम कर हमें अभय, सत्य, अहिंसा, प्रेम, भ्रातृभाव का अमूल्य उपदेश करते हुए सदाचरण की प्रेरणा

द्वारा रक्षा करते हैं। हम मानवों पर इस प्रकार अकारण कृपा कर किये गये उपकारों का बदला वे हमसे इन ग्रन्थों की ज्ञानसामग्री को खूब अध्ययन, मनन, आलोडन एवं अनुभव कर प्राणिहित के लिये स्वयं को उत्सर्ग कर पृथ्वी को स्वर्गमय बनाने में सम्पूर्ण मानव लगें, इस रूप में चाहते हैं। अपनी श्रद्धा सुमनोऽञ्जलि को इस पवित्र अवसर पर समर्पित करते हुए मैं ऐसे महाप्राण विश्ववन्द्यविभूति के प्रति कृतज्ञताज्ञापन करता हूं और उन्हीं से शुभाशीर्वाद की कामना करता हूं कि सर्वत्र उनकी ज्ञानराशि के प्रसार से हमलोगों का जीवन आलोकित होकर मनुष्यता के सद्गुणों से हम विश्व को लाभान्वित करें। वे तो साक्षात् त्रिमूर्त्ति के ही अवतार हैं।

अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः।
अभाललोचनः शम्भुर्भगवान्बादरायणः॥

इतने विशालकाय ग्रन्थ का सम्पादन जिस उत्साहातिरेक से हुआ है उसमें भ्रम, प्रमाद, आलस्य अपाटवादि दोष से युक्त अशुद्धियां अपेक्षित हैं कृपालु पाठकवृन्द इस दोष को प्रत्येक भाग के साथ दिये गये शुद्धिपत्रक से ठीक करने का कष्ट करें। इस भाग में विषयसूची का राष्ट्रभाषा हिन्दी में दिया जाना कुछ-कुछ सन्तोषाधायक है; कारण ग्रन्थमाला के और प्रकाशित पुराणों से इसमें विषयसार को सरलता व सन्दर्भ स्पष्टता से व्यक्त किया गया है। सदा की भांति अपने इस कार्य में मोर प्राच्यशोधसंधान के व्याकरणाचार्य श्री पं० ब्रह्मदत्त त्रिवेदी एम० ए० लक्ष्मणगढ़ (जयपुर) श्री पं० कजोड़ीलालजी मिश्र, श्री पं० रामनाथजी दाधीच शास्त्री (नवलगढ़ जयपुर) का विशेष सहयोग प्राप्त हुआ है। ये सब तो उस कार्य के लिये नियुक्त हैं उन्हें अपने कर्तव्यपालन के लिये धन्यवाद प्रकाशन केरूप में कुछ कहना अनुचित है।

आप सभी महानुभावों की अमित कृपा एवं शुभाशीर्वाद का नितान्त आकाङ्क्षी होता हुआ आप सभी उदाराशय सज्जनों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करता हूं और आशा करता हूं कि इस महापुराण के अविकल परायण द्वारा आपलोग सृष्टि के ज्ञान-विज्ञान के प्रसार में तन-मन से लगकर "सर्वभूत हितेरताः" बनेंगे।

कामये दुःखतप्तानाम्प्राणिनामार्त्तनाशनम्।

कृपाभिलाषी—

मनसुखराय मोर

५, क्लाइवरो,

कलकत्ता।

शुभ मिति भाद्रपद शुक्ला

गणेश चतुर्थी

२०१३

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

॥ श्रीपुराणपुरुषोत्तमायनमः ॥

पद्मपुराण के सृष्टिखण्ड

की

विषय-सूची

स्वच्छ चन्द्रमा के समान निर्मल, गजेन्द्र और ग्राह के तुमुल युद्ध से उत्पन्न फेन तुल्य नित्यव्रत-नियमपरायण ब्रह्म साक्षात्कार के लिये प्रसक्त विप्रमुख्यों द्वारा सेवित ओंकारसे अलंकृत त्रिभुवन गुरु ब्रह्मा द्वारा देखा गया अशुभ नाशकारी संभोगाभोगरम्य पुष्करराज का पवित्र जल हमें पवित्र करे ।

एकान्त में बैठे हुए व्यासजी के शिष्य महामति लोमहर्षण ने उग्रश्रवा नामक सूत से कहा कि हे पुत्र ! मैंने सम्पूर्ण पुराण वेदव्यासजी से प्राप्त किये वे तुम्हारे को

कहे उनको मुनियों के लिये विस्तार से कहो। प्रयागराज में धर्म की इच्छा करनेवाले मुनियों ने विष्णु से पुण्यस्थान के लिये पूछा तब भगवान् ने सुन्दर पराक्रमी जिसकी कोई उपमा नहीं ऐसा चक्र दिया और कहा कि इस चक्र की नेमि जहां नष्ट होगी वही पुण्य देश है तुम सब इसके पीछे जाओ यह कहकर विष्णु अन्तर्धान होगये। भगवान् के कथनानुसार जहां नेमि नष्ट हुई उसीको नैमिषारण्य कहते हैं वहां पर दीर्घ यज्ञ करते हुए ऋषियों के पास जाकर उनके धर्मसंशयों का समुचित उत्तर दो। तदुपरान्त ज्ञानी उग्रश्रवा ने मुनियों के पास जा हाथ जोड़ नमस्कार कर नम्रतापूर्वक उनको प्रसन्न किया। प्रसन्न होकर मुनियों ने यथाविधि सूतजी की पूजा की।

ऋषियों ने कहा—

हे सूत! देवताओं के समान कान्तिवाले! तुम किस स्थान से किस निमित्त यहां आये हो इसका कारण कहो।

सूतजी बोले—

मुझे बुद्धिमान् व्यास के शिष्य मेरे पिता की आज्ञा है कि नैमिषारण्य में मुनियों की सेवा करो एवं उनके संशयात्मक प्रश्नों का उत्तर दो। अब आप लोग कहिये आपको पुराण, इतिहास अथवा अन्य धर्मों में से क्या कहूं। ऋषियों ने सूतजी की मधुरवाणी सुनकर उनसे पुराण श्रवणार्थ जिज्ञासा की। विद्वन्मूर्धन्य सूतजी को अति विश्वस्त देखकर उस यज्ञ में गृहपति सब शास्त्रों में पण्डित विज्ञानरूपी आरण्यक में गुरु बुद्धिमान् शौनक ने धर्मों को सुनने की इच्छा से कहा।

हे सूत! महाबुद्धे! आपने ब्रह्म को जाननेवाले भगवान् वेदव्यास की इतिहास पुराणार्थ जानने के लिये सम्यक् उपासना की है आपने वेदव्यासजी की पुराणाश्रयवाली बुद्धि का दोहन किया है इन विप्रमुख्यों की जिस पुराण विषय में मति है वह सुनाइये ये सब नाना गोत्रोंवाले तथा नाना नामवाले महात्मा यहां इकट्ठे हुए हैं।

सम्पूर्ण दीर्घसत्र में मुनियों को पुराणोक्त अंशो को सुनाओ। हे महामते! पद्मपुराण का आख्यान कहिये पद्म कैसे उत्पन्न हुआ, उसमें ब्रह्मा की उत्पत्ति कैसे हुई, उत्पन्न हुए ब्रह्माने कैसे सृष्टि रचना की इसका वर्णन करो। इस प्रकार शौनक के पूछने पर रोमहर्षण के पुत्र ने सूक्ष्म एवं न्यायसंयुक्त कहा आपकी प्रेरणा से मैं प्रसन्न हूं। सब धर्मों में परायण पुराण को जाननेवालों से पुराणार्थ जैसे मैंने सुना है वह सम्पूर्ण कहता हूं। शिष्टों के द्वारा सूत के लिये यह सनातनधर्म कहा गया है कि देवता, ऋषि तथा अमित पराक्रमी राजाओं तथा महात्माओं की स्तुति तथा वंशकारण बतलाना। इतिहास एवं पुराणों में ब्रह्मवादी ऋषियों ने भी यही कहा है कि वेदों में कहीं भी सूत का अधिकार नहीं है। वेन पुत्र पृथु के यज्ञ में मागध एवं सूतों ने राजा की स्तुति की तब प्रसन्न हुए राजा ने उनको वरदान में सूतों को सूतविषय तथा मागधों को मगधविषय दिया वहां पर सूती के गर्भ से सूत की उत्पत्ति हुई। ("ऐन्द्रे सत्रे प्रवृत्ते तु तमिवेन्द्रं बृहस्पतिं" ३३ बार्हस्पत्य यज्ञ में शिष्य द्वारा छोड़ी हुई हवि की अधरोत्तर धार से सूत की उत्पत्ति हुई।) जहां पर क्षत्रिय पिता और माता ब्राह्मणी के योग से ही सूत की उत्पत्ति कही है उस क्षेत्र में आजीविका करनेवाले के लिये यह मध्यम धर्म कहा है इसलिये ब्राह्मणों के द्वारा मुझे पुराणों में अधिकार मिला है। आप ब्रह्मवादी महर्षियों द्वारा पूछा गया मैं यथाविधि ऋषिपूजित पुराण को कहता हूं। पितरों की मानसी कन्या वासव को प्राप्त हुई और पितरों के द्वारा ध्यान की गई मत्स्यगर्भ में उत्पन्न हुई उसी सत्यवती में अग्नि में अरणी की तरह पुण्यजन्मा महर्षि पराशर से व्यासदेव की उत्पत्ति हुई उन व्यासदेव ब्रह्मवाक्य के अनुवर्त्ती पुराणपुरुष के लिये नमस्कार है। भगवद्रूप व्यासदेव को उत्पन्न होते ही सम्पूर्ण वेद प्राप्त हो गये जिन व्यासजी ने मतिरूपी मंथन दण्ड से वेदरूपी सागर से महाभारतरूपी चन्द्रमा पैदा किया। भारत, सूर्य, चन्द्र यदि ये तीन नहीं होते तो अज्ञानरूपी

अन्धकार से युक्त संसार की क्या अवस्था होती !। कृष्णद्वैपायन व्यास को साक्षात् नारायण जानो उन वेदव्यास के विना महाभारत की कौन रचना कर सकता है। मैंने सर्वज्ञ सब लोकों में पूजित प्रकाशवान् तथा ब्रह्म जाननेवाले पुराणपुरुष वेदव्यास से पुराण श्रवण किया है जो पुराण सम्पूर्ण शास्त्रों से प्रथम ब्रह्माजीको स्मरण हुआ वही पुराण त्रिवर्ग का साधन तथा शतकोटि में विस्तृत एवं सब ज्ञान को उत्पन्न करनेवाला एवं सर्वोत्तम है। सम्पूर्ण लोकों के निःशेष होने पर वाजी (घोड़े) के रूप को धारणकर केशव ने ब्रह्माजी के आदेश से वेदों का उद्धार किया। जब असुर ने वेद वेदाङ्ग पुराण एवं विस्तृत न्यायशास्त्र का अपहरण कर अपने अधीन किया तब मत्स्यरूपी भगवान् ने कल्प के आदि में समुद्र में ही सम्पूर्ण वेदों को ब्रह्माजी से कह दिया और सुनकर ब्रह्मा ने प्रत्येक वेद को मुनियों से कहा उसी समय से पुराण शास्त्र की प्रवृत्ति हुई। समय परिवर्तित होने से पुराणों के प्रति अभाव देखकर उनके संग्रह के लिये युग-युग में ब्रह्माजी व्यासरूप से इन पुराणों को द्वापर में चतुर्लक्ष (चार लाख) पाठ कहा उसके बाद भूलोक में अठारह प्रकार से प्रकाशित किया। आज भी देवलोक में जो सौ करोड़ में विस्तृत ये पुराण हैं वे ही भूतल में संक्षेप में चार लाख हैं। अब महापुण्य को देनेवाला पद्म नामक पुराण कहता हूं जिसका विस्तार ५५००० श्लोको में पांच खण्डों से युक्त है उसके आदि में सृष्टि खण्ड फिर भूमिखण्ड, स्वर्गखण्ड,, पातालखण्ड और पञ्चम उत्तर-खण्ड है यही महापद्म है इसीसे संसार की उत्पत्ति है। (यद्यपि मूल पाठ में पांच खण्ड ही लिखे हैं परन्तु पुस्तक का पाठ सृष्टिखण्ड, भूमिखण्ड, स्वर्गखण्ड, ब्रह्मखण्ड, पातालखण्ड, उत्तरखण्ड और क्रियायोगसारखण्ड इस तरह सात खण्डों में विभाजित है) पद्म के वृत्तान्त से आश्रित होने से ही इसका नाम पद्मपुराण है यह पुराण स्वच्छ विष्णु-माहात्म्य से युक्त है। देवाधिदेव हरि ने प्रथम ब्रह्मा को और ब्रह्मा ने उतनाही मरीचि से कहा। सर्वप्राणियों के आश्रयभूत इस पुराण को संसार में ब्रह्मा ने पद्म नाम से कहा वही

पद्मपुराण यहां ५५००० में कहा गया है जिसमें संक्षेप से व्यासजी ने पांच पर्व कहे हैं प्रथम पौष्कर पर्व में भगवान् विष्णु की उत्पत्ति है दूसरा तीर्थ पर्व जिसमें ग्रहगणों का वर्णन है तीसरे पर्व में बहुत दक्षिणा देनेवाले राजाओं का वर्णन है चतुर्थ पर्व में वंशानुचरित है पांचवें पर्व में मोक्ष एवं सम्पूर्ण तत्त्वों का वर्णन है। पुष्कर पर्व में ब्रह्माजी द्वारा नवधा सृष्टि की रचना की गई है यथा प्रथम देव, मुनि एवं पितरों की रचना की द्वितीय में पर्वत, द्वीप एवं सात समुद्रों का वर्णन है तीसरे पर्व में रुद्रसृष्टि तथा दक्ष-शाप का वर्णन है चतुर्थ में राजाओं की उत्पत्ति एवं सम्पूर्ण वंशों का वर्णन है अन्तिम में मोक्ष का विस्तृत वर्णन है। हे ऋषियो! इस पद्म पुराण में ये सब बातें आपको कहूंगा यह पद्मपुराण अत्यन्त पवित्र यश का खजाना एवं पितरों को अत्यन्त प्रिय तथा देवाधिदेव विष्णु के प्रिय और सम्पूर्ण प्राणियों के महापापों को नाश करनेवाला है।

सूतजी द्वारा मङ्गलाचरण। सृष्टिखण्ड में आये हुए विषयों का वर्णन। सर्व प्रथम हिरण्मय अण्ड से ब्रह्मा की उत्पत्ति, जल से अण्ड का आवरण। तेज से जल का आवरण तथा तेज का वायु से एवं वायु का आकाश से आवरण कहा है। लोक, नदी एवं पर्वतों की उत्पत्ति। मन्वन्तरों का वर्णन। द्वीप एवं समुद्रों का वर्णन। सूर्य एवं चन्द्रमा का संचार तथा ग्रहों का वर्णन। ध्रुव और शिशुमार का वर्णन। वशिष्ठादिकों की उत्पत्ति। इस पुराण को ब्रह्मा ने पुलस्त्य को एवं पुलस्त्य ने भीष्म को कहा। जो चारों वेद एवं उपनिषद् तथा पुराणों को जानता है वही विद्वान् कहा गया है अल्पश्रुत

से वेद डरता है कि यह मुझे मारेगा "बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयम्प्रहरिष्यति" अतः मनुष्य को बहुश्रुत होने की आवश्यकता है। ऋषियों ने सूतजी से पूछा कि भीष्म एवं पुलस्त्यजी का सम्मिलन कैसे हुआ उनका दर्शन परम दुर्लभ बताया गया है अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि क्षत्रिय भीष्म ने पुलस्त्यजी की कैसे आराधना की तथा उन्होंने कैसे सम्पूर्ण पुराण सुनाया। जिस स्थान में जैसे पुलस्त्यजी का समागम हुआ वह सम्पूर्ण वर्णन कीजिये। सूतजी ने कहा गङ्गा द्वार पर पितृभक्त भीष्मजी रहते थे ब्रह्माजी के आदेश से पुलस्त्यजी का भीष्म के पास गमन। पुलस्त्यजी ने भीष्म से कहा हे भीष्म! तुम्हारे तप से प्रसन्न हूं तुम्हारी मनोकामना पूर्त्ति होगी मैं ब्रह्माजी के आदेश से तुम्हारे पास आया हूं। पुलस्त्यजी के वचन सुन भीष्मजी ने साष्टाङ्ग प्रणाम किया तथा पाद्यार्घादि से पूजन किया। पुलस्त्यजी ने कहा तुम सत्यवक्ता हो तथा दानशील हो—

सत्यवान् दानशीलोऽसि सत्यसन्धिर्नरेश्वरः।
ह्रीमान् मैत्रः क्षमाशीलो विक्रान्तः शत्रुशासने॥

मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं जो पूछना हो कहो—भीष्म ने कहा हे भगवन्! ब्रह्माजी ने कैसे देवादिकों की रचना की तथा कैसे विष्णु व रुद्र की स्थिति एवं पृथिवी, जल, तेज, आकाश, द्वीप, समुद्र तथा नदियां एवं कैसे सूर्यादि ग्रहों की रचना की। भीष्मजी के वचन सुनकर पुलस्त्यजी का परब्रह्म परमात्मा के विषय में समुचित उत्तर देना।

भीष्मजी ने पूछा कि निर्गुण व शुद्ध ब्रह्माजी के मनमें संसार रचने की भावना कैसे उत्पन्न हुई तब पुलस्त्यजी ने सर्व प्रथम काल के परिमाण का वर्णन किया। ६० घड़ी का एक दिन-रात होता है। २ पक्षों का एक मास और छः मासों से एक अयन दक्षिणायन देवताओं की रात्रि व उत्तरायण दिन कहा है। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि ये चार युग बताये हैं। ब्रह्माजी के एक दिन में चौदह मनु होते हैं। इसे वाराहकल्प कहते हैं। भीष्मजी ने पूछा ब्रह्माजी ने कल्प के आदि में कैसे सब प्राणियों की रचना की सो कहो पुलस्त्यजी बोले ब्रह्माजी ने कल्प के अन्त में शून्य स्थान को देखकर पृथ्वी देवी को जल में निमग्न जान विष्णु का ध्यान किया। भगवान् वाराह रूप धारण कर जल में निमग्न पृथ्वी के पास गये। पृथ्वी ने श्रीविष्णु की स्तुति की हे परमात्मन्! मेरा उद्धार करो आप सम्पूर्ण संसार के कर्त्ता हर्त्ता एवं पाता हैं इत्यादि अनेक वचन कहे। पृथ्वी के वचन सुनकर महावराह ने गर्जना की और पृथ्वी को समान कर द्वीप एवं पहाड़ों की रचना की तथा ब्रह्मा द्वारा प्राकृत वैकृतादि नौ तरह की सृष्टि की रचना करवाई। नवविध सृष्टि का विस्तार से वर्णन करने का भीष्मजी का आग्रह सुन पुलस्त्यजी ने कहा—ब्रह्माजी सर्व प्रथम मानसी सृष्टि रचना की पश्चात् देव, असुर, पितर एवं मनुष्यों की रचना की। ब्रह्मा के जघन प्रदेश से असुरों की उत्पत्ति हुई पुनः उस शरीर को छोड़ दिया तब वह रात्रि

हुई। यक्ष एवं राक्षसों की उत्पत्ति का वर्णन। गौ, महिषी, अश्व, मातङ्ग एवं रासभादिकों की उत्पत्ति का वर्णन। रोम से फलमूल औषधि आदि की उत्पत्ति।

भीष्मजी ने पूछा - हे ब्रह्मन्! विस्तारपूर्वक विप्रादि वर्णों के गुण तथा कर्मों का वर्णन कीजिये तब पुलस्त्यजी बोले—सृष्टि की रचना की इच्छावाले ब्रह्मा मुख से सत्त्वगुणयुक्त प्रजा की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा के वक्षःस्थल से रजोगुण युक्त प्रजा की उत्पत्ति हुई एवं रजोगुण, तमोगुणयुक्त जङ्घा से अन्य प्रजाओं की रचना हुई। ब्रह्माजी के मुख, वक्षस्थल, जङ्घा एवं पैरों से ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों की उत्पत्ति हुई। यह सब यज्ञ पूर्ति के लिये रचना हुई। ब्रह्मा ने चराचर प्राणियों के लिये अलग-अलग स्थान भी बताया। ब्राह्मणों का प्राजापत्य, क्षत्रियों का ऐन्द्रस्थान, वैश्यों का मारुत स्थान एवं शूद्र जातियों के लिये गान्धर्व स्थान कहा है। यज्ञ में विघ्न करनेवालों तथा वेदनिन्दकों के लिये तामिस्र, अन्धतामिस्र, असिपत्रवन, कालसूत्र और अवीचिमानस्थान बतलाये हैं। ब्रह्मा के अन्य मानसपुत्रों की उत्पत्ति। भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अङ्गिरस, मरीचि, दक्ष, अत्रि एवं वसिष्ठ ये नौ ब्रह्मा के मानस पुत्र पुराणों में निश्चित किये गये हैं। ब्रह्माजी ने सर्व प्रथम जो चार सनकादिकों की उत्पत्ति की वे संसार में आसक्त न हुए। ब्रह्मा के क्रोध से दीप्तिमान् रुद्र की उत्पत्ति हुई। स्वायम्भुव मनु एवं शतरूपा की उत्पत्ति का वर्णन। मनु के प्रियव्रत एवं उत्तानपाद नामक दो पुत्र एवं आकूति व प्रसूति नाम के दो पुत्रियां हुईं। आकूति का विवाह रुचि के साथ एवं प्रसूति का विवाह दक्ष के साथ हुआ। दक्ष के प्रसूति के गर्भ से चौबीस कन्याओं की उत्पत्ति हुई उनमें श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, पुष्टि, तुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, ऋद्धि एवं कीर्त्ति ये तेरह कन्या धर्म को देदी गईं। अवशिष्ट एकादश कन्याओं के विवाह का वर्णन भृगु का ख्यातिसे, भवका सती से, मरीचि का सम्भूति से, अङ्गिरा का स्मृति से, पुलस्त्य का प्रीति से, पुलह का क्षमा से, क्रतु का सन्नति से, अत्रि का अनसूया से, वशिष्ठ का ऊर्जा से, वह्नि का

स्वाहा से तथा स्वधा का पितरों के साथ हुआ। इनकी सन्तानों का सविस्तर वर्णन। रुद्रसर्ग का वर्णन। कल्प के आदि में नीललोहित नामक कुमार की उत्पत्ति हुई। होते ही वह बालक रोने लगा इससे उसका नाम रुद्र हुआ। ब्रह्माजी ने उस बालक के लिये और भी सात नाम बतलाये भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र और महादेव। इन नामों के अलग-अलग स्थानों का वर्णन। रुद्र को सती नामक स्त्री की प्राप्ति हुई यह पहले कह चुके हैं वह सती दक्ष के क्रोध से शरीर को त्यागकर हिमालय के घर मेना से उत्पन्न हुई। भृगुजी के ख्याति नामक स्त्री से धाता एवं विधाता दो पुत्र और श्री नाम की लड़की हुई जो भगवान् नारायण की पत्नी हुई।

भीष्मजी ने कहा मैंने सुना है कि लक्ष्मी क्षीरसमुद्र से उत्पन्न हुई है आपने भृगु के सकाश से ख्याति में उत्पत्ति बतलाई है यह कैसे हुआ व दक्ष-पुत्री सती ने क्यों शरीर छोड़ा और मेना के गर्भ से कैसे उत्पत्ति हुई? देवाधिदेव शङ्कर ने उसे पत्नीत्व से क्यों स्वीकार किया एवं दक्ष के साथ शङ्कर का विरोध क्यों हुआ सो कहिये। पुलस्त्यजी बोले—हे राजन्! भीष्म लक्ष्मी के विषय की वार्ता तुम्हें कहता हूं भ्रमण करते हुए अत्रि पुत्र दुर्वासा ने विद्याधरी के हाथ से सुगन्धित माला की याचना की विद्याधरी ने माला ऋषि को दे दी। माला को जटाजूट में धारण करने से ऋषि उन्मत्त हो गये तथा उनका मन भी चलायमान हो गया तथा मुनि मतवाले की तरह पृथ्वी पर भ्रमण करने लगे। ऋषि ने माला को अमरराज इन्द्र के लिये दे दिया इन्द्र ने उसे गजराज के मस्तक पर छोड़ दिया। माला की गन्ध से मत्त हाथी ने उसे पृथ्वी पर गिरा दिया।

माला को पृथ्वी पर गिरते देखकर ऋषि ने इन्द्र को शाप दिया कि मेरी दी हुई माला को तुमने धरणीतल पर गिरवाया है इसलिये तुम्हारी लक्ष्मी नष्ट हो जायगी। इन्द्र ने ऋषि से प्रार्थना की परन्तु क्रोधित मुनि ने क्षमा नहीं किया। उसी दिन से तीनों लोक निःश्रीक होगये यज्ञ दान एवं तप भी नष्टप्राय हो गये। दानवगण देवों को कष्ट देने लगे। दुःखित देवों का ब्रह्मा के पास गमन। ब्रह्माजी देवों के साथ विष्णु के पास गये एवं प्रार्थना की तब विष्णु बोले—हे देवो! दैत्यों के साथ सन्धि कर क्षीरसमुद्र में औषधियों को छोड़ मन्दराचल को मथनदण्ड एवं वासुकि को रज्जु बना मथन करो मैं तुम्हारी सहायता करूंगा। दैत्य केवल क्लेशभागी होंगे आपलोगों को अमृत मिलेगा उससे अमर होजाओगे। विष्णु के आदेश से देव दैत्यों द्वारा समुद्र-मथन। सर्वप्रथम समुद्र से कामधेनु पुनः वारुणी, कल्पवृक्ष, अप्सरा, चन्द्रमा, विष, अमृत, अश्व, ऐरावत, लक्ष्मी आदि चौदह रत्न प्रकट हुए ब्रह्माजी के आदेश से लक्ष्मी का विष्णु के पास गमन। अमृत के लिये देवदानवों का विवाद अन्त में विष्णु ने मोहिनी रूप धारणकर दैत्यों को वञ्चित रख देवों को अमृत पान करवाया। देव, दानवों का स्वस्थानगमन। फिर लक्ष्मी की ख्याति में भृगु के सकाश से उत्पत्ति। लक्ष्मी अपने नामवाले पुर का निर्माण कर पिता को दे पुनः स्वर्ग में आगई। कुछ दिन बाद पिता से अपने नगर की याचना की। क्रोधित भृगु ने नकारात्मक उत्तर दिया यह सुन लक्ष्मी ने वैकुण्ठ में जाकर अपने पति से कहा लक्ष्मी के वचन सुन विष्णु ने निर्भयपूर्वक भृगु से कहा लक्ष्मीको अपना पुर दे दीजिये इतना सुन भृगु बोले स्त्री के पक्षपात से मुझे बाधित करते हो अतः मनुष्यलोक में तुम्हारे दश जन्म होंगे तथा स्त्री वियोग से दुःखित होओगे तदनन्तर विष्णु ने भृगु को शाप दिया कि तुम्हें लक्ष्मी का सुख नहीं प्राप्त होगा। ब्रह्मा एवं विष्णु का वार्तालाप जिसमें विष्णु ने कहा आपके पुत्र ने मुझे शाप दिया है अतः मैं इस लोक को छोड़ समुद्र में शयन करूंगा इतना सुन ब्रह्मा ने विष्णु को सान्त्वना दी कि आपको कौन शाप दे

सकता है आपका जन्म संसार के हितार्थ मनुष्यलोक में होगा ब्राह्मणों का प्रति दिन सम्मान करना ही उत्तम है क्योंकि ब्राह्मण आपके ही अङ्ग हैं। ब्रह्मा के वचन सुन विष्णु का स्वस्थान गमन। ब्रह्मा द्वारा पुनः सृष्टि की रचना। नारदजी ने ब्रह्माजी की स्तुति की और कहा मेरी तपस्या का फल आज मिल गया जो कि आपके दर्शन प्राप्त हुए। ब्रह्मा ने नारद से कहा—जो इच्छा हो वर मांगो। नारद बोले मैं आप से क्या कहूं आप सब जानते ही हैं आपकी सृष्टि को देखकर मुझे बड़ा ही कौतुक है। ब्रह्मा ने कहा—हे नारद! मेरी कृपा से तुम कलियुग में मेरी कथा के प्रेमी एवं तुम्हारी अप्रतिहत गति होगी। यह छत्रिका एवं वीणा तुम्हारे अलङ्कार के लिये उत्तम है एवं सदैव विष्णु, रुद्र एवं शक्रके पास तुम्हारा सम्मान होगा।

भीष्मजी ने पूछा दक्षपुत्री सती ने शरीर क्यों छोड़ा एवं त्रिपुरारि शङ्कर के क्रोध कैसे पैदा हुआ तथा दक्ष यज्ञ को किस कारण से ध्वंस किया। तब पुलस्त्यजी ने कहा—हे भीष्म! दक्ष ने हरिद्वार में यज्ञारम्भ किया वहां देवता, असुर, पितर, महर्षि, नाग, यक्ष एवं सुपर्ण आदि आये। वेदी को समान बना वशिष्ठजी होता, अङ्गिरा अध्वर्यु, बृहस्पति उद्गाता एवं नारदजी ब्रह्मा हुए। इन्द्रादि सभी देवों को आये हुए देखकर सती ने विनयपूर्वक प्रजापति से कहा—इन्द्र प्रचेता, कुबेर, उनचास मरुद्गण, सूर्य, चन्द्रमा, विद्याधर, कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, पुलस्त्य, पुलह, एवं राजागण अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ यज्ञ में आये हैं तथा अधिक क्या कहूं सम्पूर्ण सृष्टि ही यहां आगई है एवं आये हुए सम्पूर्ण सज्जनों का सत्कार भी भलीभांति किया है परन्तु मेरे पति को निमन्त्रित नहीं

किया उसके बिना सम्पूर्ण शून्य की तरह मालूम हो रहा है इसका कारण कहो। सती के वचन सुनकर दक्ष ने अपनी प्यारी पुत्री से कहा हे पुत्री! जिस कारण से शङ्कर को निमन्त्रित नहीं किया है वह कहता हूं। शङ्कर नग्न व कपालों की माला धारण करते हैं, तथा अङ्ग में भस्म रमाते हैं, सर्पों का आभूषण एवं नग्न पिशाचों के साथ रहते हैं यह स्वरूप मुझे लज्जाकर मालूम हुआ अतः यज्ञ की समाप्ति के बाद तुम्हारे साथ शङ्कर की पूजा करूंगा इस विषय में तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिये पूर्व जन्म में किया हुआ शुभाशुभ कर्म इस जन्म में भोगना पड़ता है। दूसरे की लक्ष्मी को देखकर आत्मा की निन्दा नहीं करनी चाहिये। रूप, कान्ति, सौभाग्य, आभरण एवं अच्छे कुल में जन्म पूर्व भाग्य से मिलते हैं। इतना वचन सुनकर क्रोधित पार्वती ने पिता की निन्दा करते हुए कहा—सम्पूर्ण मनुष्य पुण्य के भागी हैं पुण्य से लक्ष्मी प्राप्ति होती है शङ्कर सम्पूर्ण जगत् के मालिक हैं उन्हीं के दिये हुए सब स्थान हैं शङ्कर के गुणों का वर्णन ब्रह्मा भी नहीं कर सकते शङ्कर सम्पूर्ण संसार के पालक-पोषक एवं हरण करनेवाले हैं यदि रुद्र में देवत्व है और मेरे तप का बल है तो शङ्कर तुम्हारे यज्ञ को नष्ट करेंगे तथा तुम्हारा गर्व भी नष्ट होगा इतना कहकर योगाग्नि से सती का शरीर त्यागना। जहां सती ने देह त्याग किया वह गङ्गा के पश्चिम तटपर शौनक तीर्थ नाम से विख्यात है। पत्नी वियोग से दुःखित शङ्कर ने यज्ञ नष्ट करने के लिये गणों को भेजा। गणों द्वारा दक्षयज्ञ का विध्वंस। दक्ष द्वारा शङ्कर की स्तुति। प्रसन्न हुए शङ्कर का दक्ष को वरदान कि तुम्हें यज्ञ का फल मिलेगा। दुःखित शङ्कर को नारद की सान्त्वना देना कि सती का जन्म हिमालय के घर होगा वह आप ही को वरण करेगी।

———

६ दक्षात्प्राक्संकल्पदर्शनस्पर्शजन्या सृष्टिः ३२

दक्षादूर्ध्व मैथुनतः सृष्टिः ३३

दानवगरुड़सर्पादीनां समुत्पत्तिः ३५

भीष्मजी ने पूछा कि हे गुरो! देव, दानव, गन्धर्व, सर्प, एवं राक्षसों की उत्पत्ति विस्तार से वर्णन कीजिये। पुलस्त्यजी ने सर्वप्रथम सङ्कल्प, दर्शन एवं स्पर्श से सृष्टिक्रम का वर्णन कर दक्ष के पश्चात् मैथुनी सृष्टि का प्रकरण वतलाया दक्ष के असिक्नी नामक स्त्री में हर्यश्व नामवाले पुत्र हुए उन्हें दक्ष ने आदेश दिया कि प्रजा की रचना करो नारदजी ने उन्हें प्रजा की रचना करने में उद्यत देखकर कहा सर्वप्रथम पृथ्वी एवं ऊर्ध्वलोक, अधोलोक का प्रमाण जानकर सृष्टि रचना करो नारदजी के वचन सुन हर्यश्वों का दिशाओं में प्रस्थान पुनः दक्ष ने वीरिणी स्त्री में शबलाश्व नामक हजार पुत्रों की उत्पत्ति की वे भी नारदजी के उपदेश से अपने ज्येष्ठ भाईयों के मार्ग में चले गये। पुत्रों के नष्ट होने से दक्ष ने साठ कन्याओं को उत्पन्न किया। उनमें से दस धर्मराज के लिये, तेरह कश्यपजी के लिये, सत्ताईस चन्द्र के लिये, चार अरिष्टनेमिके लिये, दो भृगुपुत्र के लिये, दो अङ्गिरा के लिये एवं दो कृशाश्व के लिये अर्पित की।

धर्म के अरुन्धती, वसु, जामि, लम्बा, भानु, मरुत्वती, सङ्कल्पा, मुहूर्त्ता, साध्या एवं विश्वा नाम की स्त्रियां थी तथा उनके पुत्रों का वर्णन इस तरह किया है कि विश्वाके विश्वेदेव, साध्या के साध्य, मरुत्वती के मरुत्वान्, वसु के वसुगण, भानु के भानव, मुहूर्त्ता के मुहूर्त्तज, लम्बा के घोष, जामि के नागवीथी सङ्कल्पा के सङ्कल्प और वसु के ज्योतिष्मान् आदि आठ वसु उत्पन्न हुये।

कश्यपजी के अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रु, खसा एवं मुनि नामक स्त्रियां थीं। अदिति के द्वादश आदित्य, दिति के हिरण्यकशिपु एवं हिरण्याक्ष, दनु के विप्रचित्ति आदि दानव,

ताम्रा के शुकी आदि छः कन्यायें, विनता के अरुण एवं पक्षिराज गरुड़ सुरसा के सर्प, कद्रू के नागराज शेष वासुकि आदि, क्रोधवशा के रक्षोगण, सुरभि के गोमायु सुरभि आदि, मुनि के मुनिगण एवं अप्सरोगण एवं खसा के यक्ष राक्षस आदि उत्पन्न हुए इस तरह कश्यपजी के पुत्र पौत्रादिकों का सविस्तर वर्णन। स्वारोचिष मन्वन्तर के बाद कश्यपजी के सकाश से दिति ने उनचास मरुद्गणों को पैदा किया उनकी देवों के साथ मित्रता हुई।

भीष्मजी ने पूछा कि दिति के पुत्र मरुद्गणों की देवों के साथ मित्रता कैसे हुई तब पुलस्त्यजी ने कहा -देवासुर युद्ध में दैत्यों के मारे जाने पर पुत्रों के वियोग से दुःखित हुई एवं पतिसेवा में तत्परा दिति ने पुष्कर में सरस्वती नदी के तटपर तपस्या की सौ वर्ष तप करने के बाद वशिष्ठादि ऋषियों से पूछा कि पुत्रशोक को नाश करनेवाला व सौभाग्य फल देनेवाला व्रत कहो उत्तर में उन्होंने ज्येष्ठ की पूर्णिमा का व्रत पुत्र दुःख को मिटानेवाला बतलाया।

भीष्मजी ने कहा—हे ब्रह्मन्! ज्येष्ठ पूर्णिमा का व्रत श्रवण करना चाहता हूं तब पुलस्त्यजी बोले—ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा को अच्छिद्र कलश की स्थापना कर नाना फल, पुष्प, वस्त्र पूजोपयुक्त सामग्री को संग्रह कर पद्म पर सुवर्णमयी ब्रह्मा की मूर्त्ति एवं शर्करायुक्त सावित्री की उसके अभाव में गुड़ की बनाकर षोड़शोपचार से पूजन करे। समाप्ति में हवन, गोदान, ब्राह्मणभोजन एवं दक्षिणादान करे। इस तरह करने से सुन्दर पुत्र और सौभाग्य की प्राप्ति होती है। दिति ने भी वैसा ही किया। व्रत के माहात्म्य से कश्यपजी ने दिति से कहा वर मांगो उत्तर में उसने इन्द्र को मारनेवाला पुत्र मांगा कश्यपजी ने कहा—आपस्तम्ब से

प्रणीत पुत्रेष्टि यज्ञ करो जिससे तुम्हारे शत्रु को मारनेवाला पुत्र होगा तदनन्तर कश्यप द्वारा दिति को गभ रहने का योग। कश्यपजी ने गर्भिणी दिति के लिये एक वर्ष के नियम बतलाये गर्भिणी को सन्ध्या समय भोजन नहीं करना चाहिये एवं वृक्षमूल में न ठहरना न जाना चाहिये। उलूखल एवं मुसल पर नहीं बैठे। शून्य स्थान का त्याग करे। अङ्गार, भस्म एवं भूमि पर नखों से न लिखे। उत्तर की तरफ शिर करके व नीचा शिर कर न सोवे। कलह न करे। अशुभ वाणी न बोले मिथ्या भाषण न करे। पति की कभी भी निन्दा न करे ऐसी बहुत-सी बातें कह कश्यपजी अन्तर्धान होगये। यह सब जान देवस्थान छोड़ इन्द्र का दिति के पास आगमन। दिति के कार्यों में छिद्र देखते हुए इन्द्र ने जब कि वर्ष के तीन दिन शेष रह गये थे दिति ने अपने पैरों को नहीं धोया वह खुले केशों से सो गई इस अन्तर को जान इन्द्र ने योगबल से उसके उदर में प्रवेश किया। इन्द्र ने गर्भ के सात खण्ड कर दिये तब वे सातों बालक रोने लगे पुनः एक एक के सात-सात टुकड़े किये किन्तु पूर्णिमा के व्रत के प्रभाव से वे मरे नहीं किन्तु उनचास मरुद्गण हो गये। इसके लिये इन्द्र ने दिति से प्रार्थना की एवं पुत्रों सहित दिति को विमान में बैठाकर स्वर्ग में ले गया एवं मरुद्गणों को यज्ञ का भागी बना दिया।

भीष्मजी ने कहा—आदि सर्ग का वर्णन तो आपने किया किन्तु प्रतिसर्ग का वर्णन कीजिये तब पुलस्त्यजी बोले—जब सम्पूर्ण पृथिवी का पति पृथु हुआ तब औषधि, यज्ञ, व्रत, तप, नक्षत्र, तारागण, द्विज, वृक्ष, एवं लताओं के मालिक चन्द्र, जलों के अधिपति वरुण, धन के मालिक कुबेर, पितरों के मालिक यम, गन्धर्वादिकों के चित्ररथ, दैत्य व दानवों के अधिष्ठाता प्रह्लाद तथा पिशाच, यक्ष एवं राक्षसों के प्रभु शूलपाणि शङ्कर, मृगों के सिंह एवं अन्यान्य प्राणियों के अन्यान्य देव, पशु, पक्षी राक्षस एवं मनुष्य स्वामी हुए। चतुर्दश मन्वन्तरों का वर्णन।

भीष्मजी ने पूछा कि हे ब्रह्मन्! पृथिवी को बहुत से राजाओं ने भोगा है अतः पार्थिव शब्द पृथिवी के योग से है परन्तु पृथिवी किस योग से नाम हुआ तथा उसकी यह गौ संज्ञा कैसे हुई? तब पुलस्त्यजी ने कहा कृतयुग में अङ्ग नामक राजा था उसने मृत्यु की पुत्री सुनीथा के साथ विवाह किया था उसके वेन नामक पुत्र हुआ वह अधर्मरत, कामी एवं परस्त्रीहरण करनेवाला हुआ। संसार के हितार्थ महर्षियों ने उसे शाप से मार दिया पुनः राजा के बिना दुःखित ब्राह्मणों ने उसके शरीर को मथन किया उस अङ्ग में माता का अंश होने से कृष्ण अर्जुन के समान म्लेच्छ जाति के पुरुष उत्पन्न हुए पुनः पिता के अंशवाले दक्षिण हस्त से महान् तेजस्वी कवच को धारण किये धार्मिक पृथु नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। विप्रों ने उसका अभिषेक किया तदनन्तर पृथु तपस्या कर विष्णु के वर से सब का प्रभु हो गया। पृथिवीतल को स्वाध्याय व धर्म से हीन देख वाण से मारने के लिये उद्यत हुआ तब पृथिवी गोरूप धारण कर भागने लगी पुनः पीछे लगे हुए पृथु को देख एक देश में पृथिवी ने कहा क्या करूं कहो। पृथु बोले सम्पूर्ण संसार का हितकर कार्य करो। पृथिवी ने कहा—मेरा दोहन करने से ईप्सित फल प्राप्त होगा तब पृथु ने स्वायम्भुव मनुको वत्स बना अपने हाथ में अन्नरूप दुग्ध का दोहन किया पुनः सब देव, दानव, पशु, पक्षी आदियों ने अलग-अलग वत्स बना पृथिवी को दूहा। पृथुराज्य में सम्पूर्ण प्रजा दीर्घायुवाली, धनी व सुखी थी भीष्मजी ने कहा—सूर्यवंश व सोमवंश का यथावत् वर्णन कीजिये

पुलस्त्यजी बोले –अदिति के कश्यप से विवस्वान् नामक पुत्र हुआ उसके तीन रानियां थी संज्ञा, राज्ञी एवं प्रभा। रैवतपुत्री राज्ञी के रेवत नामक पुत्र, प्रभा के प्रभात व संज्ञा के त्वाष्ट्र, मनु, यम नाम के पुत्र और यमुना नाम की पुत्री हुई। सूर्य के तेज को नहीं सहन करती हुई संज्ञा ने अपने शरीर से छाया को उत्पन्न कर कहा कि मेरे पति की सेवा करो तथा मेरे पुत्रों का माता की तरह पालन करो इतना कह संज्ञा का प्रस्थान। भगवान् सूर्य उसको संज्ञा ही मानते हुए उसके साथ रहने लगे तदनन्तर उसके गर्भ से सावर्णि मनु, तपती व त्वाष्ट्री नामक सन्तानें हुईं। छाया का अपने सन्तानों में अधिक प्रेम देख यमराज ने दक्षिण पैर से ताड़ना दी। छाया ने उसे शाप दिया कि तुम्हारा पैर क्रिमियुक्त हो जायेगा। यमराज ने पिता से कहा कि हे देव ! माता ने मुझे शाप दिया है कि तुम्हारा पैर क्रिमियुक्त होगा मैंने बालभाव से चरण उठा लिया था। तदनन्तर पिता ने कहा तुम्हारे पैर के कीड़ों को कृकवाकु (मुर्गा) भक्षण करेगा। संज्ञा के कर्म को जान क्रोधित विवस्वान् का त्वष्टा के पास गमन। त्वष्टा ने कहा हे विवस्वन्! संज्ञा तुम्हारे रूप को नही सहन करती हुई मेरे पास आई थी मैंने तुम्हारे भय से यहां से वापस भेज दिया वह इस समय वड़वा के रूप में मरुस्थल में है। अतः हे विवस्वन् मैं मन्त्र द्वारा तुम्हारे तेज को दूरकर संसार को आनन्द देनेवाला रूप बना दूंगा तदनन्तर सूर्य के अत्यधिक तेज से चक्र, त्रिशूल एवं इन्द्र का वज्र तैयार हुआ। रवि के चरण स्वरूप को कोई नहीं देख सकता। सूर्य की तरफ किसी को भी पैर नहीं करना चाहिये जो करता है वह कुष्ठ रोग को प्राप्त होता है। संज्ञा के वड़वा रूप में अश्वरूप सूर्य भगवान् से अश्विनीकुमारों की उत्पत्ति पुनः विमान में बैठकर दोनों का स्वर्गगमन। वैवस्वत मनु के दश पुत्रों का वर्णन। इळ को राज्य देकर वैवस्वत मनुका तपस्या के लिये प्रस्थान। एक समय रथारूढ़ इल घूमता हुआ शङ्कर के बगीचे में चला गया वहां उमा का यह नियम किया हुआ था कि पुंनामका कोई भी यहां आयेगा वह स्त्री हो जायेगा। इल इस

बात को नहीं जानता था। उस वन में जाते ही सम्पूर्ण पुरुष स्त्री होगये व घोड़े घोड़ी रूप म हो गये। इल का स्त्री रूप देख चन्द्र-पुत्र बुध का आगमन एवं परस्पर वार्तालाप। इक्ष्वाकु ने इनके विषय में वसिष्ठजी से पूछा—वसिष्ठजी ने सब बात यथावत् कह शङ्करजी की पूजा से इसका निराकरण बतलाया। पुनः शङ्करजी की सेवा, पूजा करने से और अश्वमेध यज्ञ करने से शङ्करजी ने वरदान दिया कि तुम एक महीने पुरुष और एक महीने स्त्री रूप में रहोगे। इल के स्त्री रूप में बुध से पुरूरवा की उत्पत्ति व पुरुष रूप में सुद्युम्न, गय और हरिताश्व नामक पुत्र हुए। इल के पुत्र पौत्रादिकों का वर्णन।

भीष्मजीने पितृवंश, रवि, श्राद्धदेव और सोम वंश के विषय में पूछा—उत्तर में पुलस्त्यजी ने कहा—स्वर्ग में सात पितृगण हैं तीन अमूर्त्तिक एवं चार मूर्त्तिवाले हैं अमूर्त्तिक पितरों की ही मानसी कन्या मेना हुई जिसका विवाह हिमालय के साथ हुआ उसके उमा, एकपर्णा एवं अपर्णा तीन कन्यायें हुईं हिमालय ने एक उनमें से रुद्र के लिये, दूसरी भृगु के लिये व तीसरी जैगीषव्य के लिये प्रदान की। जहांपर सोमपथ नामक लोक हैं तथा अग्निष्वात्ता नाम के यज्वा हैं उनके अच्छोदा नामक कन्या हुई। उसने दिव्य हजार वर्ष तक तपस्या की पितरेश्वर उसे वरदान देने के लिये आये तो उनमें से अमावसु नामक पितर को विवाहार्थ अपनी इच्छा प्रकट की। अमावसु ने उसकी इच्छा भी न की उसके धैर्य से उसका नाम अमावास्या हुआ। तपस्या क्षय होने से अच्छोदा ने पितरों से प्रार्थना की उन्होंने कहा देव-शरीर से जो कार्य किया जाता है वह मरने पर मनुष्यलोक में तत्काल फल देता है। अतः तुम यहां सुकृत करो जिससे द्वापर में पितरों के व्यतिक्रम

के कारण मत्स्य योनि से राजा वसु की पुत्री रूप में प्राप्त होओगी। वहां कन्यावस्था में दुर्लभ देवलोकों की प्राप्ति होगी तथा पराशरजी के अंश से व्यास की उत्पत्ति तुम्हारे से होगी एवं लोग तुम्हें संसार में सत्यवती नाम से पुकारेंगे।

श्राद्ध में रजत पात्र की विशेषता स्वधा शब्द का प्रयोग पितरों को तृप्त करनेवाला है। दक्षिण दिशा ही पितरों के लिये मुख्य स्थान है तथा दर्भा, शुक्लपुष्प एवं फल, गोक्षीर, मधु और घृत ही पितृकार्य में प्रशस्त बतलाये हैं।

मसूरशणनिष्पावा राजमाषाः कुलत्थकाः।
पद्मबिल्वार्कधत्तूरपारिभद्राटरूपकाः॥
न देयाः पितृकार्येषु पयश्चाजाविकं तथा।
कोद्रवोदारवटक कपित्थं मधुकातसी॥
एतान्यपि न देयानि पितृभ्यः श्रियमिच्छता॥

श्राद्ध में मसूर, शण, निष्पाव, राजमाष, कुलत्थ, पद्म, बिल्व आक धत्तूर, कोदो, कैथ, महुआ एवं बकरी, भेड़ का दूध आदि वर्जनीय हैं। जो पितरों को प्रसन्न करता है उसे पितर शरीरारोग्य एवं पुष्टि प्रदान करते है। देवकार्य से विशेष प्रधानता पितृकार्य की है। "देवकार्यादपि पुनः पितृकार्यं विशिष्यते।"

शीघ्रप्रसादास्त्वक्रोधाः निःसंगाः स्थिरसौहृदाः।
शान्तात्मानः शौचपराः सततम्प्रियवादिनः॥
भक्तानुरक्ताः सुखदाः पितरः पर्वदेवताः॥

पितर शीघ्र ही प्रसन्न होनेवाले, क्रोधरहित, निःसङ्ग, स्थायी सौहार्द (कृपा) वाले, शान्त, शुद्ध, प्रिय बोलनेवाले, भक्तों के प्रेमी, सुखदेनेवाले और पर्व में देवता स्वरूप हैं (पर्वों के अवसर पर उन्हें श्राद्ध सहित तर्पण श्राद्धादि से प्रीणन करने से सिद्धि होती है।)

भीष्मजी ने पूछा श्राद्धकाल, विधि एवं श्राद्ध में त्याज्य व ग्राह्य विप्र और श्राद्ध का समय वर्णन कीजिये तथा उन्हें श्राद्ध में दिया हुआ अन्न कैसे प्राप्त होता

है यह बताइये। पुलस्त्यजी ने कहा–श्राद्ध, नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य तीन तरह के बतलाये हैं। नित्यश्राद्ध अर्घ्य एवं आवाहन से वर्जित है। पर्व में होनेवाले को पार्वण कहते हैं पार्वण में पञ्चाग्नि तपनेवाला, स्नातक, त्रिसुपर्ण, वेद के छओं अङ्गों को जाननेवाला, श्रोत्रिय, श्रोत्रियपुत्र, विधिवाक्य को जाननेवाला, सर्वज्ञ, वेदवित, मन्त्रों को जाननेवाला पुराण जाननेवाला, ब्रह्मज्ञ, स्वाध्यायी, जप में तत्पर, ब्रह्मभक्त, पितृभक्त, सूर्यभक्त, वैष्णव, योगनिष्ठ और विजितात्मा विप्र को निमन्त्रित करना चाहिये। पतित, पतितपुत्र, क्लीव (नपुंसक), चुगल और न्यूनाधिक अङ्गवाला एवं रोगी को नहीं। विप्रों को पहले दिन अथवा श्राद्ध दिन निमन्त्रण करे वायुभूत हुए पितर बैठे हुए विप्रों की उपासना करते हैं। दक्षिणाभिमुख होकर मध्याह्न समय में श्राद्ध करे आशीर्वाद मांगे वैश्वदेव तर्पणादि करे। श्राद्ध करनेवाला व भोजन करनेवाला उस दिन दो बार भोजन, यात्रा, परिश्रम, मैथुन, स्वाध्याय, कलह, सवारी पर चढ़ना और दिन में शयन न करे। कृष्णपक्ष में कन्या, वृष और कुम्भ के सूर्य में इसी विधान से श्राद्ध करना चाहिये। अब साधारण श्राद्ध कहते हैं–साधारण भुक्ति व मुक्ति को देनेवाला है, अयन, विषुव, अमा, अर्क संक्रान्ति, अष्टका कृष्णपक्ष की पञ्चदशी, आर्द्रा, मघा, रोहिणी, गजच्छाया, व्यतीपात, विष्टि, वैधृति इस श्राश्र विशेष का विधान है और जब द्रव्य व योग्य ब्राह्मण मिले तब यह श्राद्ध सदा इष्ट है। वैशाख शुक्ला तृतीया, कार्त्तिक शुक्ला नवमी, माघ शुक्ला पूर्णिमा, भाद्र शुक्ला त्रयोदशी, आश्विन की नवमी, कार्त्तिक की द्वादशी, चैत्र व भाद्र की तृतीया, फाल्गुन की अमावास्या, पौष की एकादशी, आषाढ़ की दशमी, माघ की सप्तमी, श्रावण की अष्टमी, आषाढ़, कार्त्तिक और फाल्गुन की पूर्णिमा को श्राद्ध करना चाहिये इन दिनों दिया हुआ तिलयुक्त जल भी हजार बार श्राद्ध करने के समान फलदायक बतलाया है। श्राद्ध में पात्र-वनस्पति, पर्ण (पत्ता), चांदी सुवर्ण और ताम्र का होना चाहिये। चांदी के पात्र से दिया हुआ जल भी अक्षय होजाता है। महाभारत का अध्ययन पितरों

को तृप्ति कारक बतलाया है। पितरों की तुष्टिहेतु पृथिवी, गौ, हिरण्य और सुन्दर वस्त्र देवे। वित्त की शठता न करे यथाशक्ति द्रव्य का सङ्कोच नहीं हो।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिये यह कर्म बतलाया है। शूद्र भी मन्त्र-रहित श्राद्ध कर सकता है। भार्य्या रहित भी अमन्त्रक श्राद्ध करे। अभ्युदयिक श्राद्ध जिसे वृद्धि (नांदी) श्राद्ध कहते हैं वह उत्सव, यज्ञ और विवाहादि मङ्गल कार्य में किया जाता है। माताओं की पहले पूजा पीछे पिता आदि की होती है। युग्म द्विजातियों की पूजन करने का विधान बतलाया है। शूद्र के लिये दान ही प्रधान कहा है उससे सब कामों की फल प्राप्ति है।

एकोद्दिष्ट श्राद्ध का वर्णन—ब्राह्मण को जननाशौच एवं मरणाशौच दश दिन का, क्षत्रिय को बारह दिन का, वैश्य को पन्द्रह दिन का तथा शूद्र को एक मास का होता है। सपिण्डों में चूड़ासंस्कारपर्यन्त एक रात्रि का इसके बाद तीन रात्रि का अशौच होता है। अस्थिसंचय के बाद बारह दिन पिण्ड दिया जाता है वह उसे पाथेय (कलेवा) के रूप में मिलता है। प्रेतदाह की शान्ति के लिये व मार्ग के परिश्रम को दूर करने के लिये आकाश में दश रात्रि तक जल रखना चाहिये। एकादशाह के दिन ग्यारह विप्रों को भोजन करावे। दूसरे दिन एकोद्दिष्ट करे उसमें एक पवित्र, एक पिण्ड व एक ही अर्घ होता है। सूतक के अन्त में शय्या दान करे। नव श्राद्ध में कभी भोजन न करे करने से चान्द्रायण व्रत करने से शुद्धि बतलाई है। वृषोत्सर्ग करे। जलघट का दान करे। पूर्ण सम्वत्सर में श्राद्ध करने के बाद पार्वण का अधिकारी होता है। मृताह के दिन एकोद्दिष्ट ही करना चाहिये पार्वण नहीं। सात पुरुषों तक सपिण्ड संज्ञा कही है भीष्मजी ने पूछा – हव्य-कव्य पितरों को कैसे प्राप्त होते हैं। मर्त्यलोक में किया

हुआ पितृलोक में कैसे प्राप्त होता है ? पुलस्त्यजी बोले—पितर वसुस्वरूप, पितामह रुद्रस्वरूप एवं प्रपितामह आदित्यस्वरूप बतलाये हैं इनकी तृप्ति, नाम एवं गोत्र उच्चारण से ही हो जाती है एवं किया हुआ श्राद्ध प्राप्त हो जाता है। श्राद्धान्न पितर जिस रूप में होता है उसे उसी रूप से मिल जाता है जैसे पिता देवस्वरूप है तो उसे वह अन्न अमृतरूप में मिलता है दैत्यरूप में है तो दैत्यों के भोगरूप में पशु योनि में हो तो घास आदि के रूप में मिल जाता है। प्रसन्न हुए पितृगण राज्य, आयु, धन, पुत्र एवं विद्या देते हैं। इसी कारण से कौशिक पुत्रों की मोक्ष पांचवें जन्म में हुई। भीष्मजी ने पूछा कौशिक पुत्र पांच जन्मों से कैसे योग को प्राप्त हुए तब पुलस्त्यजी ने कहा—कुरुक्षेत्र में कौशिक नामक महान् ऋषि थे उनके स्वसृप, क्रोधन हिंस्र, पिशुन, कवि, वाग्दुष्ट एवं पितृवर्त्ती ये सात पुत्र हुए। पिता के मरने के बाद वर्षा न होने के कारण महान् अकाल पड़ा। ये सातों गर्ग के शिष्य थे गर्गजी की आज्ञा से वन में गौ की रक्षा करते थे। भूख से पीड़ित होकर उन्होंने यह विचार किया कि इस कपिला का भक्षण करें उनमें से छोटे ने कहा यदि ऐसा विचार है तो श्राद्धरूप में मारो तब उन्हों ने दो भाईयों को देवकार्य में तीन को पितृकार्य में एक को अतिथिरूप में तथा सातवें को श्राद्ध देनेवाले के रूप में समझ गौ को मार दिया और गुरुजी से झूठ ही कहा व्याघ्र ने गौ को मार दिया इस बछड़े को आप ग्रहण कीजिये। मरने के बाद वे सातों दशपुर में व्याध जन्म में तीर्थ स्थान में अनशन कर प्राणों को त्यागकर कालञ्जर पर्वत पर मृग हुए। वहां भी विज्ञान योग से मृत्यु को प्राप्त हो मानस सरोवर में चक्रवाक के रूप में प्रकट हो अन्त में सातों योगिराज हुए। सातों योगियों के आख्यान का वर्णन। अन्त में वे सब ब्रह्मरंध्र से परमपद को प्राप्त हुए।

एवमायुर्धनं विद्यां स्वर्गमोक्षसुखानि च।
प्रयच्छन्ति सुतं राज्यं नृणां तुष्टाः पितामहाः॥

इस आख्यान के पठन एवं श्रवण का फल।

भीष्मजी ने पूछा कि श्राद्ध करनेवाला श्राद्ध दिन के कौन से भाग में करे एवं कहां किया हुआ श्राद्ध बहुफल देता है पुलस्त्यजी बोले पुष्कर तीर्थ में किया हुआ श्राद्ध पितरों को अनन्त फल देता है ? नन्दा, ललिता, मायापुरी, गङ्गा-सागर, ब्रह्म सरोवर, शतद्रुतट, नैमिषारण्य, गङ्गोद्भेद वहीं वराह का दर्शन है इन स्थानों में किया हुआ श्राद्ध तृप्तिकारक है। इक्षुमती, कुरुक्षेत्र, नीलकण्ठ नामक पितृतीर्थ, भद्र सरोवर, मानससरोवर, मन्दाकिनी, अच्छोदा, विपाशा, सरस्वती, वैद्यनाथ, क्षिप्रा, कालञ्जरगिरि, तीर्थोद्भेद, गङ्गोद्भेद, हरोद्भेद, महालय, भद्रेश्वर, विष्णुपद एवं नर्मदाद्वार ये गया श्राद्ध के समान बतलाये हैं। इन पितृतीर्थों का स्मरण करने से ही सब पाप नष्ट हो जाते हैं जो यहां पर श्राद्ध करते हैं उनका तो कहना ही क्या। ओंकारेश्वर, कावेरी, कपिलोदक, शुक्लतीर्थ, सोमेश्वर, शूलतापी, पयोष्णी, पयोष्णीसंगम, गोमती, वरुणा, भैरव, भृगुतुङ्ग, महावेणा, गौरीतीर्थ' वैनायक तीर्थ, वेत्रवती, महारुद्र, महालिङ्ग, दशार्णा, शतरुद्रा, शताह्वा, अङ्गारवाहिका, शोण, घर्घर, कालिका और पितरा नदी ये पितृतीर्थ स्नान-दान में प्रशस्त हैं यहां पर श्राद्ध करने से अनन्त फलदायक है-

एतानि पितृतीर्थानि शस्यन्ते स्नानदानयोः।
श्राद्धमेतेषु यद्दत्तं तदनन्तफलं स्मृतम् ॥

शतावटा, द्वारका, मालवती, धूतपापेश्वर, गोकर्ण, गजकर्ण, श्रीशैल, तुङ्गभद्रा, कृष्णा, कावेरी, अञ्जना, गोदावरी, त्रिसन्ध्या, त्र्यम्बक, श्रीपर्णा, भवतीर्थ, रामेश्वर, गोवर्धन, सहस्राक्ष, कदली नदी, पञ्चतीर्थ, जामदग्न्य, सहस्रलिङ्ग, राघवेश्वर, लोहदण्ड, भाण्डेश्वर, बिल्वक, लोहार्गल, वसुधारा, विजया, रामतीर्थ आदि बहुतसे तीर्थ हैं उनकी गणना विस्तार से बृहस्पति भी वर्णन नहीं

कर सकते यहां पर किया हुआ श्राद्ध, जप, तप, सब अनन्त फल देनेवाला है। मनुष्यको बहुत-सी सन्तानों की इच्छा करनी चाहिये उनमें से यदि एक भी सन्तान गया श्राद्ध, वृषोत्सर्ग और अश्वमेध कर देवे तो पितर बहुत खुशी मनाते हैं। पितर कीर्त्तन करते हैं कि हमारे कुल में ऐसा पुत्ररत्न हो जो गया श्राद्ध करे तथा पुष्करारण्य, नैमिषारण्य, एवं धर्मारण्य में श्राद्ध करे। गया, धर्मपृष्ठ, ब्रह्मसरोवर और गयाशीर्षवट पर श्राद्ध करनेवाले के पितर भी स्वर्ग में चले जाते हैं। गया में पिण्डदान के समान और कोई दान नहीं है—

धान्यप्रदानं प्रवरं वदन्ति वसुप्रदानञ्च तथा मुनीन्द्राः।
गयासुतीर्थेषु नरैः प्रदत्तं तद्धर्महेतुम्प्रवरम्वदन्ति ॥

सत्यं तीर्थं दयातीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः।
वर्णाश्रमाणाङ्गेहेऽपि तीर्थं शम उदाहृतम् ॥
येषु तीर्थेषु यच्छ्राद्धं तत्कोटिगुणमिष्यते।
गयायां यत्तु वै श्राद्धं तच्छ्राद्धमपवर्गदम् ॥

इसलिये तीर्थश्राद्ध का ही माहात्म्य अत्यधिक फल देनेवाला कहा है। प्रातःकाल, मध्याह्नकाल एवं सायंकाल के तीन मुहूर्त्तों में श्राद्ध न करे क्योंकि इसे राक्षसी वेला बतलाई है। दिनके पन्द्रह मुहूर्त्त होते हैं उनमें अष्टम मुहूर्त्त को कुतपकाल कहते हैं इसमें श्राद्ध करना उत्तम है। मध्याह्न में सूर्यगति उसी वक्त मन्द होती है। श्राद्ध में गैंडा का पात्र कुतपकाल, नैपाल कम्बल, सुवर्ण, दर्भा, तिल, गौ एवं दौहित्र ये आंठ पवित्र वस्तु कही गई हैं। जो इस तीर्थश्राद्ध के माहात्म्य को पढ़े एवं पढ़ावे तो उसके सब पापों की शान्ति एवं कुलक्ष्मी का नाश हो जाता है।

भीष्मजी ने पूछा कि सोमवंश में कौन-कौन से राजा हुये उनका वर्णन कीजिये। पुलस्त्यजी ने कहा—अत्रि ने सृष्टि के लिये तपस्या की। अत्रि के नेत्रजल को दिशाओं ने ग्रहण किया वह जल उनके गर्भरूप हो गया उसे दिशाएँ सहन न कर सकी तब उन्होंने उसे त्याग दिया। ब्रह्माजी उसे रथ में बैठाकर ले गये। ब्रह्मर्षियों ने कहा यह हमारा स्वामी होना चाहिये तदनन्तर उसके तेज से दिव्य औषधिगण हुये रात्रि में चन्द्रमा के उदय होने से उसका तेज बढ़ता है अतः चन्द्रमा औषधियों के भी प्रभु हो गये। दक्ष ने चन्द्रमा को सत्ताईस कन्यायें अर्पण की। चन्द्रमा ने हजारों वर्षों तक विष्णु की आराधना (तपस्या) की। भगवान् नारायण उसे वर देने आये। वरदान में उसने शक्रलोक में राजसूय यज्ञ करूं और आप सब प्रत्यक्ष में भाग लें ऐसा वर मांगा। चन्द्रयज्ञ का वर्णन—यज्ञ में अत्रि होता, भृगु अध्वर्यु, ब्रह्मा उद्गाता एवं विष्णु स्वयं ब्रह्मा बने तथा शङ्कर रक्षपाल व अन्य देव सदस्य बने। चन्द्रमा ने ऋत्विजों को तीन लोक दक्षिणा में दिये पुनः चन्द्रमा सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को प्राप्त कर सात लोकों का मालिक बन गया। ऐश्वर्य से मदोन्मत्त चन्द्रमा द्वारा बृहस्पति की स्त्री तारा का अपहरण। बृहस्पति ने चन्द्रमा से तारा की याचना की परन्तु उसने नहीं दिया। तारा के निमित्त चन्द्रमा और शङ्कर का युद्ध अन्त में क्रोधित रुद्र ने ब्रह्मशिरास्त्र छोड़ा और चन्द्रमा ने अमोघ सोमास्त्र छोड़ा। उनसे समुद्र, भूमि एवं आकाश भी भयभीत हो गये। ब्रह्माजी ने चन्द्रमा से कहा तुमने परस्त्री हरण कर युद्ध किया है अतः तुम पापग्रह होओगे अब युद्ध शान्त करो और मेरे कहने से

तारा को गुरु के लिये अर्पण करो तदनन्तर तारा का बृहस्पति के पास गमन एवं रुद्र का स्वस्थान गमन। तारा के गर्भ से बुध की उत्पत्ति। पुत्रोत्सव में ब्रह्मादि देवताओं का गुरु गृह गमन। देवों ने पूछा यह किसका पुत्र है लज्जित तारा ने चन्द्रमा का है ऐसा उत्तर दिया। बुध का चन्द्र के पास गमन। बुध के इला के गर्भ से पुरूरवा नामक पुत्र की उत्पत्ति। पुरूरवा के आख्यान का वर्णन पुरूरवा के उर्वशी के गर्भ से आयु, दृढ़ायु, वश्यायु, बलायु, धृतिमान, वसु, दिव्यजायु और शतायु नामक आठ पुत्र हुये आयु के नहुष, वृद्धशर्मा, रजि, दण्ड और विशाख ये पांच पुत्र हुये। रजि के सौ पुत्र हुये वे राजेय कहलाये। रजि ने विष्णु की आराधना की वरदान में विष्णु ने देव, असुर और मनुष्यों में विजयी बनो ऐसा कहा। प्रह्लाद एवं इन्द्र का युद्ध। देवासुरों ने ब्रह्मा से पूछा कि इन दोनों में विजयी कौन होगा ब्रह्माजी ने कहा रजि जिस तरफ होगा उसकी विजय होगी। देवों ने रजि से प्रार्थना की रजिने इन्द्र के शत्रुओं को मार दिया इस कर्म से इन्द्र रजि का पुत्र हो गया। इन्द्र को राज्य दे रजि का तपस्या के लिये जाना। रजि पुत्रों द्वारा बलात्कार से इन्द्र राज्य का अपहरण। इन्द्र की बृहस्पति के साथ मन्त्रणा। बृहस्पति द्वारा रजि पुत्रों को जिन धर्म का उपदेश कर मोहित करना। इन्द्र द्वारा उनकी मृत्यु। नहुष के सात पुत्रों का वर्णन। नहुष पुत्र ययाति के दो रानियां थीं शुक्रपुत्री देवयानी एवं वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा। देवयानी के यदु एवं तुर्वसु और शर्मिष्ठा के द्रुह्यु, अनु और पूरु नामक पुत्र हुये। पूरु के वंश का वर्णन। कार्तवीर्य के आख्यान का वर्णन। कार्तवीर्य ने दत्तात्रेय की आराधना कर हजार भुजाओं को प्राप्त किया। उसने बहुत दक्षिणावाले बहुत यज्ञ किये। उसके यज्ञ में नारद द्वारा गाथा का गान। जिसने रावण को मोहित कर माहिष्मती में बांध दिया था तब मैंने (पुलस्त्य) उसे छुड़वाया। जिसको वशिष्ठजी ने शाप दिया था कि जैसे मेरे वन को तुमने नष्ट किया है वैसे ही तुम्हारा दुष्कृत कर्म को अन्य कोई नष्ट करेगा तथा तपस्वी

ब्राह्मण तुम्हें नष्ट करेगा। परशुरामजी द्वारा उसकी मृत्यु। कार्त्तवीर्य के सौ पुत्र थे परन्तु उनमें पांच ही महारथी थे। कार्तवीर्य का प्रातःकाल स्मरण करने से वित्त नाश नहीं होता एवं नष्ट हुआ धन प्राप्त हो जाता है।

पुलस्त्यजी ने कहा हे राजेन्द्र! क्रोष्टु के वंश का चरित्र श्रवण करो जिसमें साक्षात् विष्णु भगवान् अवतरित हुये हैं। क्रोष्टु के वृजिनीवान् नामक पुत्र हुआ उसके स्वाति उसके कुशंकु नामक पुत्र हुआ। कुशंकु के वंश का वर्णन। ज्यामघ के आख्यान का वर्णन। इसी वंश में वभ्रु (देवावृध) के आख्यान का कथन। देवावृध के महातेजा भोज उसके कुकुर, भजमान, श्याम एवं कम्बलवर्हिष नामक पुत्र हुये। कुकुर के वंश का वर्णन। राजा आहुक के उग्रसेन एवं देवक दो पुत्र हुये। देवक के देववान्, उपदेव, सुदेव, देवरक्षित नामक पुत्र एवं देवकी, श्रुतदेवा, यशोदा, श्रुतिश्रवा, श्रीदेवा, उपदेवा और सुरूपा ये सात कन्यायें हुईं।

उग्रसेन से कंस, सुनामा, न्यग्रोध, कङ्क, शङ्कु, सुभ्रू, राष्ट्रपाल, बद्धमुष्टि, समुष्टि ये नौ पुत्र एवं कंसा, कंसवती, सुरी, राष्ट्रपाली और कङ्का पांचपुत्रियां हुईं। भजमान के वंश का वर्णन। अन्धकों के वंश का कीर्त्तन करने से विपुल वंश की प्राप्ति होती है। क्रोष्टु के गान्धारी एवं माद्री दो स्त्रियां थीं। गान्धारी के सुमित्र एवं माद्री के युधाजित उसके देवमीढुष एवं अनमित्र, अनमित्र के निम्न पुत्र उसके प्रसेन एवं शक्तिसेन दो पुत्र हुये। प्रसेन के पास स्यमन्तक नामक मणिरत्न था। कृष्ण ने मणि रत्न को उग्रसेन के लिये मांगा उसने नहीं दिया। एक समय प्रसेन उस मणि को धारण कर शिकार खेलने गया। प्रसेन ने बिल में किसी प्राणी का शब्द सुना। प्रसेन एवं जाम्बवान् का युद्ध एवं जाम्बवान् द्वारा प्रसेन की मृत्यु। सत्राजित् ने यादवों से कहा मणि के कारण प्रसेन मारा गया है श्रीकृष्ण ने प्रसेन को मारकर मणि ग्रहण की है। बहुत दिन के बाद श्रीकृष्ण भी अपनी इच्छा से उसी वनमें गये वहां यथापूर्व शब्द सुनाई दिया। श्रीकृष्ण का जाम्बवान् के बिल में प्रवेश। क्रोधित कृष्ण का जाम्बवान् को पकड़ना। जाम्बवान् ने विष्णु को पहिचान विष्णुसूक्त से स्तुति की। जाम्बवान् ने कहा कि आपके हाथ से मेरी मृत्यु अति उत्तम है इस कन्या को मणि सहित ग्रहण करें यह मणि प्रसेन को मारकर मैंने हस्तगत की है। श्रीकृष्ण ने ऋक्षराजकी मुक्ति कर मणि सहित कन्या को ग्रहण कर सम्पूर्ण वार्ता यादवों से कही और मणि को सत्राजित के लिये अर्पण कर दिया। यादवों ने कहा हमारे मन में ऐसा था कि श्रीकृष्ण ने प्रसेन को मारकर मणि ली है। सत्राजित के सन्तानों का वर्णन। वृष्णिवंश में विख्यात अनमित्र के वंश का वर्णन। जो पुरुष श्रीकृष्ण के इस मिथ्या कलङ्क को जानता है वह मिथ्या कलङ्क का भागी नहीं होता है। मीढुष के वंश का वर्णन। मीढुष के सर्वप्रथम वसुदेव हुये तब आकाश में नगारे बजे इससे उसका नाम आनकदुन्दुभि हुआ। मीढुष के अन्य नौ पुत्र एवं श्रुतकीर्ति, पृथा, श्रुतदेवी, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी ये पांच पुत्रियां हुईं। श्रुतदेवी के कारूष, श्रुतिकीर्त्ति के

सन्तर्दन, श्रुतश्रवा के सुनीथ एवं राजाधिदेवी की शूरवीर पुत्र उत्पन्न हुआ। शूर एवं कुन्तीभोज की मित्रता थी अतः पृथा को कुन्तिभोज के लिये पुत्रीरूप में समर्पित किया। कुन्तिभोज ने कुन्ती को पाण्डु के लिये दिया। पाण्डु को शाप लगने के कारण कुन्ती के धर्म, वायु एवं इन्द्र के अंश से युधिष्ठिर, भीम वअर्जुन पुत्र हुये। माद्री के अश्विनीकुमारों के अंश से नकुल और सहदेव हुये। वसुदेव के देवकी के गर्भ से साक्षात् श्रीकृष्ण पैदा हुये। श्रीकृष्ण के चतुर्भुज रूप को देखकर वसुदेव ने कहा आप शिशु रूप को ही धारण कीजिये मैं कंस से डरता हूं मेरे छः पुत्र कंस ने मार दिये हैं इतना सुनकर श्रीकृष्ण ने चतुर्भुज रूप का संहार कर लिया। वसुदेव ने श्रीकृष्ण को नन्दगोप के लिये अर्पण कर कहा इसकी रक्षा करो इससे सम्पूर्ण यादवों का कल्याण होगा यह कंस को मारेगा तथा और भी दुष्ट राजाओं का नाश करेगा। अर्जुन का सारथी बनकर कौरवों का संहार करेगा अन्त में यदुकुल को देवलोक पहुंचायेगा।

भीष्मजी ने पूछा वसुदेव, देवकी, नन्द एवं यशोदा कौन थे? पुलस्त्यजी बोले वसुदेव कश्यप के अंश से एवं देवकी अदिति के अंश से तथा द्रोण के अंश से नन्द व धरा के अंश से यशोदा उत्पन्न हुई। देवकी ने पूर्वजन्म में जो-जो वरदान मांगे थे उनकी पूर्त्ति के लिये भगवान् श्रीकृष्ण ने अवतार लिया। श्रीकृष्ण के रुक्मिणी आदि आठ पट्टमहिषी (पटरानी) एवं १६ हजार रानियां थीं। श्रीकृष्ण के सन्तानों का वर्णन। सम्पूर्ण यादवों का देवों के अंशों से उत्पन्न होने का वर्णन।

भीष्मजी ने पूछा कि सप्तर्षि, कुबेर, सात्यकि, नारद, यक्ष, मणिधर, शिव एवं धन्वन्तरि के साथ आदि देव विष्णु का पृथ्वीतल में उत्पन्न होने का कारण बतलाइये तथा वृष्णिकुल में उत्पन्न होने का भी उद्देश्य क्या था वह भी वर्णन कीजिये।

पुलस्त्यजी ने कहा युगान्त में समय के शिथिल होनेपर विष्णु स्वयं देव, असुर एवं मनुष्यों में अवतरित होते हैं। हिरण्यकशिपु के बाद बलि त्रिलोकी का राज्य

करने लगा। वामन द्वारा बलि का बन्धन होने से देवासुरों का परस्पर युद्ध। देवासुरों के निमित्त विष्णु को भृगु का शाप। भीष्मजी ने देवासुरों के निमित्त भगवान् की उत्पत्ति का कारण पूछा तब पुलस्त्यजी बोले मन्वन्तर में द्वादश अवतारों का वर्णन संक्षेप में कहता हूं।

प्रथमो नारसिंहस्तु द्वितीश्चाऽपि वामनः।
तृतीयस्तु वराहश्च चतुर्थोऽमृतमन्थनः॥
संग्रामः पञ्चमश्चैव सुघोरस्तारकामयः।
षष्ठो ह्याडीबकाख्यश्च सप्तमस्त्रैपुरस्तथा॥
अष्टमश्चान्धकवधो नवमो वृत्रघातनः।
ध्वजश्च दशमस्तेषां हालाहलस्ततः परम्॥
प्रथितो द्वादशस्तेषां घोरः कोलाहलस्तथा।

देव एवं दानवों का भीषण संग्राम। दैत्यों को पराजित देख उनकी रक्षार्थ शुक्र की तपस्या करना। इसी बीच देवों ने दैत्यों के साथ बहुत युद्ध किया। दुःखित दैत्यों ने देवों से कहा हम न्यस्त शस्त्र हैं गुरु शुक्राचार्य जबतक नहीं आयेंगे तबतक नहीं लड़ेंगे अन्ततो गत्वा देवों ने स्वीकार नहीं किया तब दैत्यों ने काव्य की माता की शरण ली। माता ने उन्हें अभयदान दिया फिर भी देवों ने बलात्कार से युद्ध किया। काव्य-माता ने क्रोधपूवक कहा मैं तपोबल से सबको नष्ट कर दूंगी। तदनन्तर इन्द्र के आदेश से विष्णु द्वारा शुक्रमाता का बध। भृगु का विष्णु को शाप कि तुमने अवध्या स्त्री का वध किया है अतः सात जन्म तक मनुष्य योनि में जन्म लेना होगा। भृगु द्वारा माता को मन्त्र बल से जीवदान। तपस्या पूर्ण होनेपर शुक्र को महादेव का वरदान। शुक्र का जयन्ती के साथ सौ वर्ष तक अदृश्य रूप में सहवास। बृहस्पति का शुक्र वेष से दैत्यां को मोहित करना। अवधि समाप्ति के बाद शुकाचार्य का शिष्यों के पास आगमन। वहां शुक्ररूप गुरु को देखकर कहा हे ब्रह्मन्! यह कार्य उत्तम नहीं है जो आप

मेरे शिष्यों को मोहितकर उपदेश करते हो। गुरु ने कहा संसार में परद्रव्य हरनेवाले तो देखे गये हैं परन्तु शरीर को हरनेवाले नहीं। इस प्रकार दोनों का विवाद। शुक्र का दानवों को शाप। बहुत दिन के बाद दानवों ने गुरु से कहा कि यह संसार असार है कुछ ज्ञानोपदेश कीजिये जिससे मोक्ष मिले। शुक्ररूपी गुरु द्वारा दैत्यों को धर्म नष्ट करनेवाला उपदेश। मायामोहित दैत्यों ने कहा हे गुरो! हमें दीक्षा दीजिये इस संसार से हम विरक्त हो गये हैं आपही की शरण में हैं। तब गुरु ने विचार किया कि इन्हें किस तरह से नरक का मार्ग दिखाया जावे। गुरु ने विष्णु का ध्यान किया विष्णु ने कहा यह मायामोह अखिल दैत्यों को नष्ट करेगा इतना कहकर विष्णु का अन्तर्ध्यान। तपस्या में लगे हुये दैत्यों के पास मायामोह का आगमन। बृहस्पति ने कहा आपलोगों की भक्ति से प्रसन्न हो योगिराज दिगम्बर मुण्ड एवं मयूरपत्र को धारण करनेवाले आये हैं। मायामोह ने कहा तुम्हारी तपस्या ऐहिक फल प्राप्ति के लिये है अथवा पारलौकिक फल के लिये? दानवों ने कहा हमारी तपस्या पारलौकिक फल प्राप्ति के लिये है। दिगम्बर ने कहा यदि मुक्ति की इच्छा करते हो तो मेरे वचनों का पालन करो। बौद्धधर्म सबसे उत्तम है एवं मुक्ति का मार्ग है। इस प्रकार वेद बहिष्कृत कर्मों का उपदेश कर दैत्यों को मुक्तिमार्ग से वञ्चित करना। दिगम्बर ने कहा यही मार्ग दिगम्बरों एवं श्वेताम्बरों का है। मायामोह द्वारा दैत्यों को अन्य बहुत-से दिगम्बर जैन धर्मों का उपदेश। मायामोह ने दैत्यों से कहा यह गुरु आपलोगों को दीक्षा देंगे। दैत्यों ने गुरु से कहा हमें संसार से मोक्ष पानेवाली दीक्षा दीजिये। गुरुजी बोले नर्मदा तटपर वस्त्र त्यागकर ठहरो दीक्षा दूंगा। तदनन्तर दैत्यों को दिगम्बर एवं मुण्डित कर परम धर्म (जैनधर्म) का उपदेश कर कहा अन्य देव को प्रणाम नहीं करना चाहिये इस प्रकार उपदेश कर गुरु बृहस्पति का स्वर्गलोक में गमन। बृहस्पति ने सम्पूर्ण बात इन्द्र से कह सुनाई। इन्द्र ने प्रह्लाद से रहित नमुचि आदि दानवों को

देखकर कहा हे दानवो ! यह वेद को लोप करनेवाला व्रत कैसे आरम्भ किया है दानव बोले हमलोगों ने आसुर भाव त्याग दिया है एवं ऋषियों के धर्म को धारण किया है अतः हे इन्द्र ! त्रिलोकी के राज्य को भोगो इतना सुनकर इन्द्र का स्वर्गलोक गमन। शुक्राचार्य द्वारा दानवों को प्रबोधन। शुक्र के वचन सुनकर दानवों ने फिर त्रिलोकी के हरण करने की क्रूर बुद्धि की।

भीष्मजी ने पूछा कि तीन पुरुषों से अर्जुन की उत्पत्ति कैसे व कर्ण की उत्पत्ति कन्या से एवं दोनों का परस्पर वैर का कारण वर्णन कीजिये। पुलस्त्यजी ने कहा ब्रह्माजी के पञ्चम मुख नष्ट होने से ललाट द्वारा स्वेद की उत्पत्ति। ब्रह्मा ने उत्पन्न स्वेद को पृथ्वी पर छोड़ दिया उसी स्वेद से कुण्डलयुक्त एवं धनुषधारी व सहस्र कवचयुक्त पुरुष की उत्पत्ति। ब्रह्माने उसे रुद्र को मारने के लिये कहा तब वह पुरुष वाण हाथ में ले रुद्र को मारने के लिये दौड़ने लगा इस व्यथा से पीड़ित शङ्कर का विष्णु के पास गमन। विष्णु ने शङ्कर को शान्ति प्रदान कर उस पुरुष को हुङ्कार से मोहित कर दिया। विष्णु द्वारा शङ्कर को कपालपात्र में दक्षिण भुजारूपी भिक्षा दान। शङ्कर द्वारा त्रिशूल से भुजा का काटना भुजा से रक्त का प्रवाह। रक्त को कपाल में मथन करने से अग्नि के समान कान्तिवाले पुरुष की उत्पत्ति। विष्णु ने पूछा हे भव ! यह कपाल में कौन नर है इसपर शङ्कर बोले आपने नर शब्द का उच्चारण किया है अतः इसका नाम नर होगा

आप दोनों नर नारायण नाम से विख्यात होंगे। ब्रह्मा के दीप्त तेज, आपकी भुजा के रक्त तथा मेरी दृष्टि इन तीनों (तेजों) से यह उत्पन्न हुआ है अतः शत्रुओं को युद्ध में जीतेगा। नारायण के समक्ष ही नर द्वारा वाम पाद से स्वेदज को मारना। स्वेदज एवं रक्तज का परस्पर युद्ध। दोनों का युद्ध देख विष्णु ने ब्रह्मा से कहा हे ब्रह्मन्! रक्तज ने स्वेदज को मार दिया है। तब ब्रह्मा बोले इस जन्म में इसे जीवनदान दीजिये पुनः विष्णु ने तथाऽस्तु कह स्वेदज और रक्तज को कहा द्वापर की सन्धि में तुम दोनों का युद्ध होगा। विष्णु ने सूर्य एवं इन्द्र से कहा मेरी आज्ञा से इन दोनों का पालन करो। हे सूर्यदेव! यह स्वेदज तुम्हारे अंश से पृथा कुमारी के गर्भ से उत्पन्न होगा। पुनः हे इन्द्र! यह रक्तज तुम्हारे अंश से पाण्डु के शापित होने के कारण पाण्डुपत्नी कुन्ती के गर्भ से उत्पन्न होगा। इन्द्र ने विष्णु से कहा अतीत मन्वन्तर में सुग्रीव के निमित्त मेरे पुत्र बालि को आपने मारा था अतः मैं पुत्र को ग्रहण नहीं करूंगा विष्णु बोले हे इन्द्र! मैं मर्त्यलोक में सूर्यपुत्र को नष्ट करने के लिये एवं तुम्हारे पुत्र की विजय के लिये अवतार धारण करूंगा इतना सुन प्रसन्न हो इन्द्र का स्वस्थान-गमन। विष्णु ने ब्रह्मा से कहा आपके द्वारा सम्पूर्ण सृष्टि की रचना की गई है अतः आपके ही द्वारा नष्ट होना उचित नहीं जैसे कहा भी है कि "विषवृक्षोऽपि सम्वर्ध्य स्वयञ्छेत्तुमसाम्प्रतम्" इसलिये शम्भु को नष्ट करने के लिये जो पुरुष छोड़ा उस निमित्त वह्नित्रय को धारण करते हुये पुण्यतीर्थ में पत्नी सहित यज्ञ करो। विष्णु द्वारा यज्ञ विषयक उपदेश।

अग्निहोत्रात्परन्नान्यत्पवित्रमिह विद्यते।
विनाऽग्निना द्विजेनेह गार्हस्थ्यन्न तु लभ्यते॥

भीष्मजी ने पूछा जो धनुर्धारी पुरुष कपाल से उत्पन्न हुआ था उसकी उत्पत्ति विष्णु से अथवा अपने कम से वा रुद्र से हुई एवं ब्रह्मा के पञ्चम मुख कैसे उत्पन्न हुआ? सत्त्व में रज का एवं रज में सत्त्व का नहीं प्रवेश होता सत्त्वस्थ ब्रह्मा ने

महादेव को मारने के लिये पुरुष क्यों छोड़ा? तब पुलस्त्यजी बोले हरि एवं महेश्वर दोनों ही सत्पथ में स्थित हैं एवं उनसे कोई भी वस्तु छिपी हुई नहीं ब्रह्मा का पञ्चम मुख ऊपर की तरफ था उसी से ब्रह्मा में रजोगुण रूप अहंकार प्रवेश हुआ ब्रह्माजी समझने लगे कि मेरे समान अन्य कोई नहीं है मैंने ही सृष्टि की रचना की है। ब्रह्मा के पञ्चम मुख से सम्पूर्ण देवों का हततेज होना। तदनन्तर देवों का शङ्कर से प्रार्थना करना। देवों की प्रार्थना पर शङ्कर द्वारा ब्रह्मा के शिर का का छेदन। देवों द्वारा शङ्कर की स्तुति। शङ्कर ने ब्रह्मा की प्रार्थना कर कहा हे ब्रह्मन्! मुझे ब्रह्महत्या लगी है अतः आप मेरी रक्षा करो। ब्रह्मा बोले भगवान्नारायण आपको पवित्र करेंगे। ब्रह्मा की आज्ञा से शङ्कर द्वारा विष्णु की स्तुति। शङ्कर ने कहा हे विष्णो! ब्रह्महत्या से मेरा शरीर काला हो गया तथा शव की गन्ध मेरे शरीर में आती है मेरे आभरण लोहे के हो गये हैं मैं क्या करूं जिससे मेरा शरीर पूर्ववत् हो। विष्णु बोले ब्रह्महत्या अत्यन्त उग्र है एवं कष्टप्रद है ऐसे पाप की धारणा मनमें भी न करे। हे रुद्र! ब्रह्मा के कथनानुसार सम्पूर्ण शरीर में भस्म धारण कर शिखा, कर्ण (कान) एवं हाथ में हड्डियों को धारण करने से कष्ट नहीं होगा इतना कह विष्णु का अन्तर्हित होना। शङ्कर ने तीर्थों का भ्रमण कर पुष्कर में ब्रह्मा की आराधना की। ध्यान करते हुए शङ्कर के पास ब्रह्मा का आगमन एवं वरदान के लिये कहना। ब्रह्मा बोले हे रुद्र! तुम्हारा पुरातन स्थान अविमुक्त है वहां कपालमोचन तीर्थ होगा वहांपर ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव का दर्शन करने से महापातकी भी शुद्ध हो जाते हैं वरणा एवं असी के बीच क्षेत्र में ब्रह्महत्या प्रवेश नहीं कर सकती इतना कह ब्रह्मा द्वारा वाराणसी क्षेत्र का माहात्म्य कथन एवं पिण्डदान का माहात्म्य कह ब्रह्मा का अन्तर्धान करना व शङ्कर का पार्वती सहित काशीक्षेत्र में निवास।

भीष्मजी ने पूछा ब्रह्मा ने शङ्कर को वाराणसी में जाने की आज्ञा दे कैसे एवं कौनसे तीर्थ में यज्ञ किया तथा वहां ऋृत्विग् एवं सदस्य कौन थे व जनार्दन एवं शङ्कर ने नियुक्त होकर कौन कर्म किया सो वर्णन कीजिये। पुलस्त्यजी ने कहा–मेरु के शिखर पर रत्नों से चित्रित, अनेक आश्चर्यों के निवास, लतावितानों से युक्त एवं अनेक किन्नर समूहों की ध्वनि से निनादित वैराज नामक ब्रह्म भवन है। वहां पर कान्तिमती नामक देवसुखकरी सभा का वर्णन। उस सभा में बैठे हुए ब्रह्माजी को यह बुद्धि उत्पन्न हुई कहां यज्ञ करना चाहिये काशी आदि तीर्थ रुद्र से सेवित हैं अतः जैसे मैं सब देवों में आदिदेव माना गया हूं उसी तरह मैं जहांपर उत्पन्न हुआ हूं उस पुष्कर तीर्थ में यज्ञ कर उसे आदितीर्थ बनाऊँ ऐसा विचारकर ब्रह्माजी का पुष्कर तीर्थ में गमन। वहां पर नानाविध वृक्षों का वर्णन एवं वृक्षों द्वारा ब्रह्मा की सेवा। वृक्षों द्वारा पुष्प वर्षा करने से ब्रह्मा ने उन्हें वरदान मांगने को कहा। वृक्षों ने कहा हे देवेश! आप यहीं निवास कीजिये यही हमारी कामना है। ब्रह्मा ने कहा—

उत्तमं सर्वक्षेत्राणां पुण्यमेतद्भविष्यति ।
नित्यम्पुष्पफलोपेता नित्यं सुस्थिरयौवनाः ॥
कामगाः कामरूपाश्च कामरूपफलप्रदाः ।
कामसन्दर्शनाः पुंसां तपः सिद्ध्युज्ज्वला नृणाम् ॥
श्रिया परमया युक्ता मत्प्रसादाद्भविष्यथ ।

वृक्ष वरदान के बाद एक हजार वर्ष के अनन्तर कमल का गिरना उससे पृथ्वी का कम्पित होना एवं नानाविध उत्पातों का होना। उस महान् शब्द से सुर, असुर, मानव एवं त्रिलोकी के सम्पूर्ण प्राणी व्याकुल हो गये। विष्णु का देवों के पास गमन। देवों का विष्णु के साथ सम्वाद। विष्णु ने कहा ब्रह्मा भूप्रदेश में यज्ञ करने गये हैं वहां पर उनके हाथ से कमल गिर गया है उसका यह शब्द हुआ है अतः पुष्करक्षेत्र में मेरे साथ चलकर ब्रह्मा को प्रसन्न करो वह तुम्हें वरदान देंगे। विष्णु के साथ देवों का पुष्कर गमन। देवगण पुष्कर क्षेत्र में ब्रह्मा को खोजने लगे तब वायु ने कहा तप के बिना ब्रह्मा को नहीं देखसकते अतः कर्म, मन एवं वाणी से ब्रह्मा की आराधना करो एवं ब्राह्मी दीक्षा ग्रहण करो। वायु के कथनानुसार गुरु बृहस्पति द्वारा देवों का ब्राह्मी दीक्षा गहण एवं त्रिसुपर्ण, त्रिमधु, पावमानी एवं पावनी ऋचाओं का जप करने के लिये उपदेश। त्रिकाल स्नान कर देवों का ब्रह्मदर्शन निमित्तक ब्रह्मा की आराधना करना। देवों द्वारा ब्रह्मा की स्तुति। ब्रह्मा ने देवों को दर्शन दे वर मांगने को कहा तब देवता बोले आपके हाथ से कमल गिरने से भयङ्कर शब्द हुआ उससे भूमि एवं अन्यलोक चलायमान क्यों हुए यह सब निरर्थक नहीं इसका कारण कहिये। ब्रह्मा ने कहा रसातल के नीचे आश्रय किया हुआ बालकों के जीवों को अपहरण करनेवाला राज्य एवं ऐश्वर्य के मद से युक्त वज्रनाभ नामक दानव रहता है उसे मारने के लिये कमल गिरवाया है। संसार में वेदपाठी भक्त ब्राह्मण दुर्गति को प्राप्त न हों मैं देव,

दानव, मनुष्य, सर्प, राक्षस एवं सम्पूर्ण प्राणीमात्र के लिये समान हूं, मैंने आप लोगों के कल्याणार्थ उसे मारा है। मैंने यहांपर कमल छोड़ा है इसलिये इस तीर्थ का नाम पुष्करतीर्थ पावन एवं पुण्यद होगा। जो ज्ञानी विप्र के साथ द्वेष करता है वह कोटि जन्म पर्यन्त पापों से नहीं छूट सकता इसलिये ब्राह्मणों से कभी भी द्वेष न करे। वेदवेदान्त को जाननेवाले एक भी ब्राह्मण को भोजन कराने से कोटि ब्राह्मण भोजन के समान पुण्य होता है। जो सन्यासियों को पात्रपूरणी भिक्षा देता है उसका सब पापों से छुटकारा हो जाता है। जो अग्निहोत्र को धारण कर छोड़ देता है वह रौरव नरकगामी होता है। ब्रह्मा ने देवों के साथ चन्द्रनदी के उत्तर जहां प्राची सरस्वती हैं एवं नन्दन से पूर्व यज्ञ में वेदी बनाई। ज्येष्ठ पुष्कर ब्रह्मदैवत्य एवं मध्यम पुष्कर विष्णुदैवत्य व कनिष्ठ पुष्कर रुद्रदैवत्य कहा गया है। कर्म, मन, वचनों से शुद्ध आचरण को पालनेवाले एवं दम्भ और मोह से रहित तथा ब्रह्मभक्त स्त्री पुरुषों को वहां रहना चाहिये।

भीष्मजी ने पूछा कि क्या कर्म करने से ब्रह्मभक्त होता है तथा कौनसे पुरुष ब्रह्मभक्त कहे गये हैं तब पुलस्त्यजी बोले मन, वचन एवं शरीर से उत्पन्न हुई तथा लौकिकी वैदिकी और आध्यात्मिकी तीन प्रकार की भक्ति कही गई है। ध्यान एवं धारणा को जान वेदार्थ स्मरण करना यह ब्रह्म-प्रीति-करी मानसी भक्ति कही गई है। मन्त्र, वेद और नमस्कारों से, अग्नि श्राद्धादि के चिन्तन से और आवश्यकीय जाप करने से वाचिकी भक्ति बतलाई गई है।

व्रत, उपवास, इन्द्रिय निरोध, कृच्छ्र, सान्तपन, तथा अन्य चान्द्रायणादि करना कायिकी भक्ति का मुख्य उद्देश्य बतलाया है।

पुष्कर क्षेत्र में रहनेवाला ब्रह्मभक्त मनइच्छाविचरण करनेवाले देदीप्यमान विमान से ब्रह्मलोक जाता है। ब्रह्मलोक से च्युत होने से विष्णुलोक को तथा वहां से च्युत होने के बाद रुद्रलोक को जाता है। रुद्रलोक से च्युत होने से अन्य द्वीपों में जन्मग्रहण कर स्वर्ग के समान भोगों को भोगता है। वहां ऐश्वर्य

भोगकर फिर मृत्युलोक में राजा अथवा राजपुत्र, धनी, सुरूप एवं भाग्यवान् और कीर्त्तिमान् उत्पन्न होता है। जो पुष्कर क्षेत्र में जल में प्राणों को त्यागते हैं उन्हें अक्षय ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। पुष्कर क्षेत्र में रहनेवाले परमधार्मिक और जितेन्द्रिय एवं सदाचारी पुरुष तो ब्रह्मलोक को जाते ही हैं परन्तु स्त्री, म्लेच्छ, शूद्र, पशु, पक्षी एवं मृगादिक भी वहां मरने से ब्रह्मलोक को जाते हैं। महाघोर कलिकाल में पापी पुरुषों को पुष्कर क्षेत्र के बिना धर्म एवं स्वर्ग की प्राप्ति का साधन नहीं है। पुष्कर क्षेत्र में रहनेवाला मिष्टान्न एवं शुद्ध भोजन त्रिकाल में भी करने से वायुभक्ष के समान कहा है जैसे महोदधि के समान कोई जलाशय नहीं वैसे ही पुष्कर के समान कोई तीर्थ नहीं। जैसे देवों में सर्वोपरि ब्रह्मा हैं वैसे पुष्करारण्य गुणों में सब तीर्थों से अधिक है। इस पुष्कर क्षेत्र में विष्णु सहित इन्द्रादि देवता, गजवक्त्र, कुमार रेवन्त, शिवदूती और क्षेमङ्करी आदि ब्रह्मा के पास संसार के हित के लिये निवास करते हैं। जो फल सत्ययुग में १२ वर्ष से, त्रेता में एक वर्ष से और द्वापर में एक मास से वह फल कलियुग में एक दिनरात पुष्कर में रहनेवालों को मिल जाता है। इससे बढ़कर कोई क्षेत्र नहीं है इसलिये पुष्करारण्य में अवश्य ही जाना चाहिये। ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थ एवं सन्यासियों के धर्मों का वर्णन। ब्रह्मचारी को चाहिये कि गुरु की श्रद्धाभक्ति पूर्वक सेवा करे गुरुजी के सोने के पीछे सोये तथा उनके उठने के पहले उठे। गुरु के भोजन करने के पहले भोजन न करे। दिन के कृत्यों का वर्णन करे कि अमुक कार्य किया है अमुक करना है जो नियम शिष्य एवं भक्त के लिये विस्तार से वर्णन किये गये हैं उन सबको ग्रहण करे। आयु के द्वितीय भाग में गृहस्थाश्रम का सेवन करे गृहस्थों के लिये चार तरह की वृत्तियां बतलाई हैं जैसे—

कुशलधान्या प्रथमा कुम्भीधान्या द्वितीयका।
अश्वस्तनी तृतीयोक्ता कापोत्यथ चतुर्थिका॥

इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ मानी गई है। गृहस्थी केवल अपने लिये ही अन्न न

पकावे। हिंसा न करे दिन में न सोये रात्रि के पूर्व एवं अन्तप्रहर में न सोये। स्वदार-निरत ही रहे। ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य तथा अपने से बड़ों की सेवा करे। वृद्ध, बालक, आतुर, वैद्य, जाति, सम्बन्धी, बान्धव, माता, पिता, जवांई, भाई, पुत्र, स्त्री, पुत्री एवं दासवर्गों के साथ विवाद न करे। गृहस्थाश्रम के नियम पालनेवालों के लिये स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है।

जब गृहस्थ अपनेको वलीपलित (चेहरे और शरीर पर झुर्रियां) देखे तो उसे वानप्रस्थ का आश्रय लेना चाहिये। पुत्र के पुत्र होने से गृहस्थी वन का आश्रय ले। आयु के तृतीय भाग में वानप्रस्थ के नियमों का पालन करे। वानप्रस्थाश्रम में भी चारवृत्तियां बतलाई हैं जैसे—

सद्यः प्रभक्षकाः केचित् केचिन्मासिकसञ्चयान्।
वार्षिकान्सञ्चयान् केचित् केचिद् द्वादशवार्षिकान्॥
कुर्वन्त्यतिथिपूजार्थं यज्ञतन्त्रार्थमेव च।

जिनमें कई उसी क्षण भक्षण करनेवाले कई अतिथि पूजार्थ मासभर के लिये सञ्चय करनेवाले, कई एकवर्ष तक ही सञ्चय करनेवाले तथा कईएक बारह वर्ष सञ्चय करनेवाले वानप्रस्थी अतिथि पूजा एवं यज्ञ तन्त्र के लिये होते हैं। इन तीनों आश्रमों के नियमों का पालन कर सन्यासाश्रम का सेवन करे। सन्यास में काषाय वस्त्र का धारण करे। किसी का सहारा न ले केवल अकेला ही धर्म का आचरण करे। मान व अपमान से न प्रसन्न होवे, न दुःखी होवे। सम्पूर्ण प्राणियों के लिये अभय दान दे। जैसे हाथी के पैरों में सम्पूर्ण पैदल चलनेवालों के पैर समा जाते हैं वैसे ही सम्पूर्ण ज्ञान चित्त में लीन हो जाते हैं।

यथा नागपदेऽन्यानि पदानि पथगामिनाम्।
सर्वाण्येवाऽवलीयन्ते तथा ज्ञानानि चेतसि॥

इसी तरह सम्पूर्ण धर्म अहिंसा के अन्तर्गत है। सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति

रोष और मोह का त्याग करे, लोह एवं काञ्चन में समान दृष्टि रक्खे, शोकरहित, सन्धि व विग्रह का त्याग करे एवं निन्दा, स्तुति, प्रिय एवं अप्रिय से रहित हुआ भिक्षु सन्यासी ब्रह्मवेत्ता उदासीन की तरह रहे।

भीष्मजी ने महर्षि पुलस्त्यजी से कहा कि हे ब्रह्मन्! आपने कमल के गिरने से उत्पन्न हुये पुष्करतीर्थ का उत्तम माहात्म्य कहा। वहां पर स्थित भगवान् विष्णु और शङ्कर ने जो किया वह सम्पूर्ण बतलाइये। ब्रह्माजी ने कैसे यज्ञ किया उसमें कितने सदस्य, कितने ब्राह्मण, उस यज्ञ के कितने भाग, क्या द्रव्य, क्या दक्षिणा एवं कैसा तप, कितने प्रमाण की वेदी की रचना की गई। ब्रह्माजी ने किस कामना के उद्देश्य से यज्ञ आरम्भ किया। अग्निहोत्र के लिये ही वेद एवं औषधियों की उत्पत्ति हुई एवं अन्य पशु-पक्षी आदि की उत्पत्ति भी यज्ञ के कारण हुई। आपका कहा हुआ सुनकर मुझे कौतूहल है कि जिस पवित्र कामना एवं भावना को लेकर यह यज्ञ किया सो सबसे प्रशंसनीय है परञ्च ब्रह्माजी की पत्नी सावित्री कही है जो कि ऋषियों एवं पुलस्त्यादि सप्तमुनि दक्षादि प्रजापति और स्वायम्भुवादि मनुओं की जननी है ऐसी पतिव्रता सुन्दर धर्मपत्नी को त्यागकर अन्य भार्या को ब्रह्मा ने कैसे ग्रहण किया? वह (दूसरी स्त्री) किसकी लड़की थी क्या नाम था उसे किसने प्रदर्शित किया? उसको ब्रह्माजी के पार्श्व में देखकर सावित्री ने क्या कहा? वह सम्पूर्ण कहिये। इस प्रकार भीष्मजी के प्रश्नों को सुनकर पुलस्त्यजी ने कहा कि आपके प्रश्न महान् हैं फिर भी मैं यथाशक्ति कहूंगा। ब्रह्मदेवकृत उस यज्ञ में वेद को जाननेवाले ब्राह्मणों को निमन्त्रित किया गया क्योंकि यज्ञ ही शाश्वत प्रभु है। ब्रह्माजी ने देवताओं और

मनुष्यों के हित के लिये तथा लोक कल्याण के लिये यज्ञ किया। उस यज्ञ में कपिलजी, सप्तऋषि, त्र्यम्बक, सनत्कुमार आदि महानुभाव, प्रजापति मनु तथा पुराणपुरुषोत्तम भगवान् आये। श्रुतिमुख भगवान् वराह का सबकी सहायता के लिये ब्रह्माजी से प्रादुर्भूत हो वेदरूपी वृक्ष का यज्ञस्तम्भ बनाया। इस प्रकार आदिवराह ने यज्ञार्थ अपनी दंष्ट्रा से समुद्र में गयी हुई पृथ्वी का उद्धार किया। तत्पश्चात् ब्रह्माजी द्वारा भगवान् की स्तुति करना प्रभो! आप ही मेरे परमदेव, परमगुरु एवं परमधाम हैं अतः आप मेरे यज्ञ की दानवों से रक्षा कीजिये आपको नमस्कार है। तब भगवान् ने कहा—भद्र! निर्भय रहो मैं दानवों से यज्ञ विध्वंस नहीं होने दूंगा। विघ्न करनेवालों को नष्ट करदूंगा। इस प्रकार कह कर भगवान् सहायतार्थ वहीं स्थित हो गये। तदनन्तर कल्याणप्रद वायु बहने लगी एवं सम्पूर्ण दिशायें स्वच्छ हो गईं। महर्षिगण निर्भय हो वेदध्वनि करने लगे। सम्पूर्ण देव, दानव, भूत, प्रेत, पिशाच आदि एवं गन्धर्व, अप्सरोगण, नाग, विद्याधरगण, वनस्पति, औषध्यादिकों का वहां आना। उस यज्ञ को देखने पशु-पक्षी आदि भी आये। ब्रह्मकृत यज्ञार्थ वरुण ने रत्न, प्रजापति दक्ष ने अन्न दिया। इस प्रकार उस यज्ञ में नद-नदी, कूप, तालाव एवं लवणेक्षु सुरासर्पि आदि सप्तसमुद्र तथा वेद, भाष्य, सूत्र एवं धर्मशास्त्रादि मूर्तिरूप हो आये। ब्रह्माजी के दक्षिण पार्श्व में सनातन विष्णु, वाम पार्श्व में भगवान् शङ्कर स्थित हुये। वहां पर ब्रह्माजी ने ऋत्विजों का वरण किया जिसमें भृगुजी को होता, पुलस्त्यजी को अध्वर्यु, मरीचि को उद्गाता एवं नारदजी को ब्रह्मा का आसन दिया एवं सनत्कुमारादिकों को सदस्य बनाया। इस प्रकार उनकी कल्पना कर कुबेरजी ने उनको वस्त्राभरणादिकों से युक्त किया। पश्चात् ब्रह्माजी द्वारा सबकी नमस्कारपूर्वक पूजा। विश्वकर्मा को आवाहित कर क्षौर कर्म करवाया गया। उस यज्ञ की शोभा को देख ब्रह्माजी बहुत संतुष्ट हुए। क्षत्रिय रक्षार्थ, वैश्य विविध प्रकार के

रसबाहुल्ययुक्त भक्ष्य देनेवाले एवं शूद्र सेवाकर्म पर नियुक्त हुए। द्वार का अध्यक्ष इन्द्र, रस को देनेवाला वरुण, धन दाता कुबेर, गन्ध देनेवाला पवन, प्रकाश देनेवाला सूर्य एवं प्रभुत्व में भगवान् माधव स्थित हुए। वराङ्गनाओं सहित अच्छी प्रकार सजी हुई सावित्री को अध्वर्यु ने शीघ्र ही यज्ञ मण्डप में बुलाया। स्त्री स्वभाव से गृहकार्य में व्यग्र हुई सावित्री नहीं आई। उधर दीक्षाकाल आगया सावित्री ने कहा कि अभीतक तो भगवान् नारायण की पत्नी लक्ष्मी, अग्निपत्नी स्वाहा, वरुणानी, गौरी, अरुन्धती एवं अनसूयादि नहीं आई हैं मैं अकेली नहीं आऊँगी तबतक ठहरो। तब अध्वर्यु ने कहा कि अतिकाल हो रहा है जैसा आपको जचे करें। इस प्रकार कहने पर क्रोधयुक्त हो ब्रह्माजी ने इन्द्र से कहा कि मेरे लिये शीघ्र ही अन्य पत्नी की व्यवस्था करो जिससे यज्ञ में काललोप न हो। ब्रह्माजी के ऐसा कहने पर इन्द्र पृथिवी पर कन्या खोजने गया। वहां पर एक रूपलावण्य से युक्त आभीर कन्या को देख इन्द्र ने कहा कि इसके सदृश और कन्या नहीं है। यह स्त्रियों में रत्नरूप है ऐसा विचार कर इन्द्र ने उस कन्या से पूछा—तुम कौन हो कहां से आई हो एवं अकेली इस मार्ग में कैसे व क्यों फिर रही हो? तब उस आभीर कन्या ने कहा — मैं गोपकन्या हूं तथा रस बेचने को घूम रही हूं। यदि आप दूध, दही, अथवा मक्खन की इच्छा रखते हों तो यथेच्छ ग्रहण कर सकते हैं। ऐसा कहती हुई उस कन्या को हाथ से पकड़ इन्द्र जहां ब्रह्मयज्ञ होता था वहां ले गये। इन्द्र द्वारा लेजाती हुई वह कन्या मार्ग में अपने माता-पिता को पुकारती रही कि हे मातः-पितः! हे भाई! मुझे यह बलात् लेजारहा है तथा इन्द्र से कहती रही कि यदि मेरे से काम है तो आप मेरे माता-पिता से मांग सकते हैं वे मुझे आपको निश्चय देदेंगे मेरे पिता धर्मवत्सल हैं। इस प्रकार कहती हुई उस कन्या को शक्र ने ब्रह्माजी के सामने उपस्थित कर दिया। गोपकन्या ने भी देदीप्यमान गौरवर्ण ब्रह्माजी को देख अपनेको धन्य माना एवं ब्रह्माजी ने भी

उसका गायत्री नामकरण कर भगवान् विष्णु से यज्ञार्थ अनुमति मांगी। तब भगवान् विष्णु ने कहा कि अभी गान्धर्वविधि से इसके साथ पाणिग्रहण कीजिये तदनन्तर ब्रह्माजी का गायत्री से विवाह करना एवं अध्वर्यु से कहना कि मैंने इसको पत्नीरूप से स्वीकार कर लिया है मुझे यज्ञ सदन में ले चलो। तत्पश्चात् ब्रह्माजी औदुम्बरदण्ड और मृगचर्म से युक्त हो यज्ञ में शोभित हुए। वेदपारग ब्राह्मणों द्वारा यज्ञ का आरम्भ।

भीष्मजी ने पुलस्त्यजी से पूछा कि हे द्विजसत्तम ! उस यज्ञ में आशुतोष भगवान् शङ्कर एवं विष्णु की स्थिति क्यों हुई ? पत्नी रूप में स्थित गायत्री ने क्या किया तथा उन आभीरों ने उस रहस्य को जानकर क्या किया ? इन सब बातों को आप यथावृत्त कहिये मुझे बड़ा कौतूहल है। उत्तर में पुलस्त्यजी ने कहा हे नराधिप ! एकाग्र चित्त होकर सुनिये उस यज्ञ का सम्पूर्ण वृत्तान्त

कहता हूं। निन्द्यरूपधारी रुद्र ने सदन में जाकर बड़ा आश्चर्य दिखाया। गोपगण अपनी कन्या का नाश जान अपनी स्त्रियों सहित ब्रह्माजी के समीप आये वहां पर अपनी कन्या को यज्ञ में दीक्षित देख माता-पिता ने विलाप कर कहा हा पुत्रि! हा पुत्रि! तुमको यहां कौन लाया है एवं किसने इस कर्म में दीक्षित किया है इस बात को सुनकर इन्द्र ने कहा कि इसे मैंने लाकर पत्न्यर्थ नियुक्त किया है। आपलोग प्रलाप मत कीजिये। यह बड़ी भाग्यशालिनी है एवं बहुत पुण्यवती है अतः आप लोग कोई सोच न करें। तदनन्तर भगवान् विष्णु ने कहा हे गोप लोगो! तुम्हारी यह कन्या बड़ी भाग्यशालिनी है जो ब्रह्माजी को प्राप्त हुई है। जिसको वेद जाननेवाले योगी लोग प्रार्थना करने पर भी प्राप्त नहीं कर सकते उस गति को तुम्हारी दुहिता (पुत्री) ने प्राप्त किया है। आपलोगों को धार्मिक सदाचारी जान मैंने ही यह कन्या ब्रह्माजी को दी है। इसने आपके कुल को तार दिया है। मैं भी देवकार्य के लिये आपके कुल में अवतार ग्रहण करूंगा। ऐसा सुन गोपों ने कहा हे देव! आपका यह वर सत्य हो आप हमारे कुल में धर्मसाधन के लिये अवतार धारण करें। आपके दर्शनमात्र से हमलोग कृतार्थ हो जायेंगे। पश्चात् लज्जायुक्त गायत्री ने अपनी माता से कहा मुझे सबका आद्य जगत्पति पतिरूप में प्राप्त हुआ है आप किसी प्रकार का सोच मत कीजिये। ब्रह्मकृत उस यज्ञ में भिक्षार्थ कपर्दी शङ्कर का उपस्थित होना। बृहत्कपाल को लिये पांच मुण्डों की माला पहने शङ्कर को देख ऋत्विजों ने कहा दूर रहो। वेदवादियों से निन्दित तुम यहां क्यों आये हो? इस प्रकार ब्राह्मणों द्वारा झिड़कने पर किञ्चित् हास्ययुक्त भगवान् शङ्कर ने कहा—हे द्विजो! इस पितामह के यज्ञ में सबको सन्तुष्ट कियाजाता है अतः मुझे क्यों निकाल रहे हो? तब उन्होंने कहा अच्छा, भोजन कर चले जाओ। शङ्कर ने कहा ठीक है मैं भोजन कर चला जाऊँगा। ऐसा कह शिव अपने सामने कपाल रख उनकी कुटिलाई देख बोले कि मैं पुष्कर में स्नान के लिये जारहा हूं। पश्चात्

शङ्कर का सदन में कपाल रखकर जाना। अपवित्र कपाल को देख देवताओं ने कहा यज्ञ कैसे होगा ऐसा सुन एक सदस्य ने कपाल को फेंक दिया इतने में वहां दूसरा एक कपाल स्थित होगया। इस प्रकार फेंकते रहने पर भी निरन्तर कपाल स्थित होते रहे। इस महान् आश्चर्य को देख सम्पूर्ण देवादिकों ने पुष्करारण्य में जा भगवान् शङ्कर की स्तुति कर उन्हें प्रसन्न किया। तब भगवान् शङ्कर ने उनसे कहा—पुरोडाश की निष्पत्ति के विना कपाल के नहीं होती। मेरा स्विष्टकृत भाग करो ऐसा करने से मेरा शासन हो जायगा। तब ब्राह्मणों ने कहा ऐसा ही होगा। पश्चात् भगवान् कपालपाणि ने पितामह ब्रह्माजी से कहा जो तुम्हारी इच्छा हो वैसा (वही) वर मांगो। ब्रह्माजी ने कहा मैं यज्ञ में दीक्षित हूं अतः मैं आपका वर ग्रहण नहीं करूंगा। उसी समय में शिव का उन्मत्त रूप में सभा में आना। सभासदों द्वारा शिव का उपहास। शिवजी द्वारा उपहास करनेवाले ब्राह्मणों को शाप। यज्ञान्त नियमों का वर्णन। इसके बाद ब्रह्माजी के साथ सावित्री का विवाद। सावित्री के साथ सम्पूर्ण देवस्त्रियों का आगमन। सावित्री को आती हुई देख इन्द्र का भयभीत होना। ब्रह्माजी लज्जा से नतमस्तक हो सोचने लगे कि यह मुझे क्या कहेगी, इसी प्रकार विष्णु, रुद्र आदि देवों और ब्राह्मणों का भी भयभीत होना। सावित्री द्वारा ब्रह्माजी को झिड़कना। ब्रह्माजी ने सावित्री से कहा—दीक्षाकाल उपस्थित होने पर ऋत्विजों ने शीघ्रता की कि बिना पत्नी के यज्ञ नहीं होगा अतः शीघ्र ही पत्नी को लाओ। तब इन्द्र द्वारा यह लाई गई एवं विष्णु ने मुझे सौंप दी। हे सुव्रते! ऐसा कार्य फिर नहीं होगा। तदनन्तर कुपित सावित्री का ब्रह्माजी को शाप कि तुम्हारी कार्त्तिकी पूजा के सिवा अन्यत्र पूजा नहीं होगी। इसी प्रकार इन्द्रादि देवों को पृथक्-पृथक् शाप। विष्णुकृत सावित्री स्तुति एवं सावित्री का विष्णु को वरप्रदान। सावित्री का प्रस्थान। गायत्री द्वारा ब्रह्मा की पूजा की प्रशंसा। पुलस्त्यजी ने कहा कि कार्तिक की पूर्णिमा को

सावित्री सहित ब्रह्माजी की रथयात्रा का महोत्सव करनेवाले को धनधान्य की पुत्रादि की प्राप्ति होती है। गायत्री द्वारा ब्रह्मव्रत का विधान। सावित्री से शापित देवों एवं देवपत्नियां को गायत्री का वरदान। रुद्रकृतगायत्रीस्तोत्र का वर्णन।

भीष्मजी कहा हे ब्रह्मन्! सदस्यों द्वारा गायत्री काअभिषेक एवं सावित्री का विरोध व शाप दान। रुद्र द्वारा वरवर्णिनी गायत्री की स्तुति इन सब बातों को सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हूं अब उस यज्ञस्थल में जो कार्य हुआ उसको आद्योपान्त कहिये। इस पर पुलस्त्यजी ने कहा हे राजन्! पुष्कर में यज्ञ करते हुए ब्रह्माजी को मरीचि आदि ऋषियों एवं प्रजापति दक्ष ने नमस्कार किया। देदीप्यमान पुरुषों एवं अप्सरोगण द्वारा नृत्य तथा बहुत-से गन्धर्वों के साथ नारदजी का गायन। इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, त्वष्टा, पर्जन्य, अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, पराजित, भव, विश्वेश्वर, अश्विनीकुमार, अष्टवसु, विश्वेदेव, साध्यगण और वासुकि प्रमुख नागादिकों का अञ्जली बांधे हुए स्तुति करना।

उसी समय ब्रह्मा के यज्ञ में विघ्न करने के लिये दानवों का उपस्थित होना तथा विष्णु की सम्मति से ब्रह्मा द्वारा विघ्नकर्त्ता दानवों का सन्तोप करना और आगत यज्ञ के प्रेक्षकों के रूप में सभी का पाद्य, अर्घ्य, आचमन, आसनादि द्वारा नाना देवगण तथा ऋषियों द्वारा सत्कार उनके विकृत मुख और अङ्गों का तीर्थ के माहात्म्य से सुगठित शरीर हो जाना फिर ब्राह्मणों और सत्पात्रों को यथेच्छ दान। यज्ञ दर्शक ऋषियों के आगमन एवं प्रसन्नता से वहां सरस्वती का आह्वान फिर मंकणक नामक ब्राह्मण के कुशके अग्रभाग से क्षत होने पर उसके हाथ से शाक के रस का स्रवण होना जिससे उसका हर्ष से नाचना और और स्थावर जङ्गम प्राणियों का भी नाचना ब्रह्मा के द्वारा रुद्र को इसका पता लगाने भेजना रुद्र के पूछने पर ब्राह्मण ने कहा कि हे देव! क्या आप नहीं देखते हैं कि मेरे हाथ से शाकरस टपक रहा है जिसे देख मैं विस्मय एवं हर्ष से नाचता हूं। इस पर भगवान् शङ्कर ने हँसकर कहा मुझे आश्चर्य नहीं मेरी तरफ देखो। ऐसा कह अङ्गुली के अग्रभाग से अंगूठे का ताड़न किया जिससे हिमपाण्डुर गिरने लगा। उसे देख लज्जित हुआ ब्राह्मण भगवान् शङ्कर के पैरों में प्रणत होकर स्तुति करने लगा। प्रसन्न हुए शङ्कर का ब्राह्मण को वरदान। प्राची सरस्वती का माहात्म्य। सरस्वती का ब्रह्माजी की आज्ञा से बड़वाग्नि को समुद्र में फेंकना फिर पुष्कर में गुप्तरूप से प्रगट होना। इस कारण से सरस्वती में स्नान करनेवालों को सम्पूर्ण तीर्थों का फल प्राप्त होता है। यह प्रसिद्ध तीर्थ विश्व में विख्यात है यहां सब धर्म एवं अपवर्ग की लीलायें निधि रूप में हैं यह इसलिये प्रसिद्ध है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों का साधक है जो इसे छोड़ दूसरे तीर्थ को खोजता है वह हाथ में रक्खे हुए अमृत को छोड़ विष की इच्छा करता है, जैसे;

आदितीर्थमिदं तस्मात्तीर्थानां भुवि विश्रुतम।
धर्मापवर्गयोः क्रीडानिधिभूतमवस्थितम्॥

तत्तीर्थं सर्वतीर्थानां प्रवरम्विहितम्भुवि ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां चतुर्णामपि साधकम् ॥
प्राचीं सरस्वतीम्प्राप्य योऽन्यत्तीर्थं हि मार्गते ।
स करस्थं समुत्सृज्य ह्यमृतम्विषमिच्छति ॥

पुष्कर के निकट ही तीनों लोकों में श्रेष्ठ सरस्वती ही पुनः नन्दा नाम से प्रकट हुई। सूतजी ने आगे कहा—पुलस्त्यजी का ऐसा वचन सुनकर भीष्मजी ने पूछा कि हे ब्रह्मन्! नन्दा शब्द से सरस्वती ही है या अन्य कोई श्रेष्ठ नदी है। इस पर पुलस्त्यजी ने कहा कि क्षत्रियव्रतधारी प्रभञ्जन नामक एक राजा हुआ। वह शिकार के लिये वन में गया जहां बच्चे को स्तन पिलाती हुई एक हरिणी को देख तीक्ष्ण बाण से उसका वेधन किया। तब हरिणी ने राजा से विलाप करते हुए कहा कि तुमने मुझे वज्र सदृश बाण से मारा है अतः हे दुर्बुद्धे! तुम भी राक्षसत्व को प्राप्त होओगे। क्योंकि शास्त्र में ऐसा कहा है—

दूध पीते व पिलाते हुए, गर्भधारण किये हुए, मैथुन रत, दूर से भागकर आये हुए और थकित ऐसे मृग की हिंसा न करे हे राजन्! यह मैंने सुना है।

पिबन्तं गुप्तवत्सञ्च गूढ़मैथुनमागतम् ।
एवम्विधम्मृगं राजन्न हन्यात्प्राङ्मया श्रुतम् ॥

इस प्रकार मृगी से शापित राजा ने पश्चात्तापपूर्वक कहा—मैंने तो अज्ञान से तुम्हें बाण से वेधित किया है अब मेरा शाप से छुटकारा कैसे होगा? तब मृगी ने कहा कि सौ वर्ष बाद नन्दा धेनु से सम्वाद होने पर तुम्हारा छुटकारा होगा। तदनन्तर राजा का वन में व्याघ्ररूप होना एवं सौ वर्ष बीतने पर उसी वन में गोकुल से गायों के झुण्ड का

चरने के लिये आना। उन गायों में श्रेष्ठ नन्दा नाम की गाय जो सबसे आगे चर रही थी उसका गायों के यूथ से छूट कर चरते-चरते खर्जूरी वन में जाना जहां उसका व्याघ्र के सामने उपस्थित होना। उसे देख व्याघ्र ने कहा ठहर-ठहर आज मुझे स्वयं ही आहार मिला है। इस प्रकार उसका निष्ठुर वचन सुनकर व्याकुलता से अपने प्राणप्यारे वत्स का स्मरण कर गद्गद् रोती हुई उस गाय से वह बोला कि दैव से अनायास ही आई हुई तुम मेरा भक्षण हो। क्योंकि— .

विहितम्भुज्यते लोके स्वयम्प्राप्ताऽसि धेनुके!।
मृत्युस्ते विहितोऽद्यैव वृथा किमनुशोचसि ॥

अतः तुम वृथा शोच क्यों करती हो। पुनः व्याघ्र ने नन्दा से पूछा तुम क्यों रोती हो कहो। तब नन्दा ने कहा मुझे जीने-मरने की चिन्ता नहीं है। यथा—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न शोचामि मृगाधिप!॥
देवैरपि यथा सर्वैर्मर्त्तव्यमवशैर्ध्रुवम्।
तस्मात्तु नाऽहमेवैका व्याघ्र! शोचामि जीवितम्॥

किन्तु मैं तो वत्स के स्नेह से दुःखित हो रोती हूं क्योंकि मेरे नवजात शिशु है जो अभी मेरा स्तनपायी है वह क्षुधार्त्त (भूख से व्याकुल) हो मेरी बाट देखता होगा। मुझे उसीका सोच-दुःख है कि वह कैसे जीवित रहेगा। अतः उसको स्तन पिलाकर उसे मैं अपनी सखी को सम्हला कर आजाऊँगी फिर मुझे तुम भक्षण कर लेना। नन्दा के इन वचनों को सुन व्याघ्र ने कहा तुम वापिस जाकर देवलोक के भूषणरूप स्वर्गतुल्य उस गोकुल को छोड़कर कैसे आओगी। तब नन्दा ने कहा—

मैं सखी, सुत, गोप तथा पालनेवालों को देख उनसे सलाह लेकर आजाऊँगी। आप यदि मेरे वचनों को नहीं मानते हैं तो मैं शपथ खाकर कहती हूं—

यत्पापं ब्रह्महत्यायां मातृपितृवधेषु च। तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहन्नागमे पुनः॥

यत्पापं लुब्धकानान्तु म्लेच्छानाङ्गरदायिनाम्।

तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः॥

गोषु विघ्नांश्च ये कुर्युः स्वपन्तीन्ताडयन्ति च। तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहन्नागमे पुनः

सकृद्दत्वा तु यः कन्यां द्वितीये दातुमिच्छति। तस्य पापेन लिप्येऽहं यद्यहन्नागमे पुनः

यस्त्वनर्हान्बलीवर्दान्विषमे वाहयेत्पुमान्।

कथायाङ्कथ्यमानायां विघ्नङ्कारयते तु यः॥

तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहन्नागमे पुनः। गृहे यस्याऽऽगतं मित्रं निराशम्प्रतिगच्छति॥

तस्य पापेन लिप्येऽहं यद्यहन्नागमे पुनः। इत्येतैः पातकैर्घोरैरागमिष्याम्यहम्पुनः॥

जो पाप ब्रह्महत्या एवं माता-पिता के मारने में होता है मैं उस पाप से लिप्त होऊँ यदि फिर तुम्हारे पास न आऊँ। जो पाश लुब्धकों, म्लेच्छों, विष देनेवालों को, गौ के कार्य में विघ्न करने वालों को, सोई हुई गौ को मारनेवालों को, एक बार कन्यादान कर फिर उसी कन्याको दूसरे के लिये देनेवालों को, अयोग्य बैलों को जोतनेवालों को, कथा में विघ्न करनेवालों को तथा जिनके घर से मित्र निराश होकर जाते हों वह पाप मुझे लगे यदि फिर मै तुम्हारे पास नहीं आऊँ इत्यादि शपथों को सुन व्याघ्र ने कहा—ठीक है मुझे तुम्हारी शपथ पर विश्वास है परन्तु तुम यह मत मान लेना कि यह मूर्ख है मैंने इसे ठग लिया। क्योंकि इसपर भी कोई कहते हैं कि शपथ में पाप नहीं है, यथा—

कामिनीषु विवाहेषु गवां युक्तौ तथैव च। प्राणत्यागे समुत्पन्ने श्रद्धातव्यं न च त्वया

लोकेऽस्मिन्नास्तिकाः केचिन्मूर्खाः पण्डितमानिनः।

भ्रामयिष्यन्ति ते चित्रं चक्रारूढमिव क्षणात्॥

कुतर्कहेतुवृत्तान्तैरज्ञानावृतचेतसः । मोहयन्ति नराः क्षुद्रा आगमार्थविशारदाः ॥

अतथ्यान्यपि तथ्यानि दर्शयन्त्यतिपेशलाः ।
स मे निम्नोन्नतानीव चित्रकर्मविदो जनाः ॥
प्रायः कृतार्थो लोकोऽयं मन्यते नोपकारिणम् ।
वत्सः क्षीरक्षयं दृष्ट्वा परित्यजति मातरम् ॥

न तम्पश्यामि लोकेऽस्मिन्कृते प्रतिकरोति यः । सर्वस्य हि कृतार्थस्य मतिरन्या प्रवर्तते

स्त्रियों में विवाहों में प्राणिमात्र के रक्षार्थ प्राण त्याग का अवसर उपस्थित होनेपर किसी प्रकार से शपथ में श्रद्धा न करे ।

विद्वानों ने कहा है कि इन परिस्थितियों में शपथ का दोष नहीं है परन्तु हे मातः ! तुम्हारी बुद्धि इनसे न ठगी जाय । तब नन्दा ने कहा आपको ठगने में कौन समर्थ है । जो दूसरेको ठगता है वह स्वयं ही वञ्चित हो जाता है । इस प्रकार धेनु के वचन सुनकर व्याघ्र ने कहा हे पुत्रवत्सले ! जाओ पुत्र को देखो । वत्स को स्तन पिलाकर व मुख चूमकर सखी स्वजन बान्धवों को देखकर सत्य को ध्यान में रखती हुई शीघ्र आओ । इस प्रकार व्याघ्र से आज्ञा लेकर रोती, कांपती, दुःखित हिंकार से निःश्वास छोड़ती हुई शोकसागर में निमग्न हुई यमुना के तट पर स्थित गोकुल में पहुंची । उसके शब्द को सुनकर वत्स सामने दौड़कर आया । माता को उदास देख वत्स ने कहा मैं तुमको स्वस्थ नहीं देखता हूं तथा उद्विग्न एवं भीत देखता हूं । पुत्र के वचन सुन नन्दा ने कहा हे पुत्र ! स्तन पीओ कारण बताने में असमर्थ हूं अब दुबारा मेरा दर्शन दुर्लभ है क्योंकि मैं वचनों में (शपथ) बन्धकर आई हूं । भूखे व्याघ्र को आत्मजीवन दे दिया है । इसपर वत्स ने कहा मेरा भी मरण तुम्हारे जैसा श्लाघनीय होगा मैं भी साथ ही जाऊँगा । यदि व्याघ्र मांस के लिये मारेगा तो "या गतिर्मातृभक्तानां ध्रुवं सा मे भविष्यति" जो गति मातृभक्तों की होती है वह निश्चय ही मेरी भी होगी । बिना जननी के जीने का क्या प्रयोजन है । माता

के समान क्षीरपायी बालकों के कोई भी बन्धु नहीं है। न माता के समान नाथ है न गति है न स्नेह है न मातृ सम सुख है न देव है इस लोक एवं परलोक में माता के सदृश कोई भी नहीं है जो माता की सेवा में तत्पर हैं उन्हें परमगति की प्राप्ति होती है। प्रजापति (ब्रह्मा) ने ऐसा परम धर्म बनाया है—

नास्ति मातृसमो बन्धुर्बालानां क्षीरजीविनाम्।
नास्ति मातृसमो नाथो नास्ति मातृ समागतिः॥
नास्ति मातृसमः स्नेहो नास्तिमातृसमं सुखम्।
नास्तिमातृसमो देव इहलोके परत्र च॥

एवं वै परमो धर्मः प्रजापतिविनिर्मितः। ये तिष्ठन्ति सदा पुत्रास्ते यान्ति परमाङ्गतिम्

तदुपरान्त नन्दा ने कहा मेरी ही मृत्यु है तुम मत जाओ। तुम यहीं रहो जलस्थल में विचरण करो प्रमाद मत करो क्योंकि प्रमाद से ही सम्पूर्ण प्राणी विनाश को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार शोकयुक्त बारम्बार दीर्घ निःश्वास छोड़ती हुई पुत्र से हीन संसार को शून्य देखती हुई विलाप करती हुई नन्दिनी ने पुनः पुत्र से कहा पुत्र के समान कोई भी स्नेह, सुख, प्रीति व गति नहीं है। अपुत्र के लिये जगत् शून्य है एवं घर में भी सुख नहीं है। पुत्र से स्वर्ग प्राप्ति है तथा अपुत्र को नरकों की प्राप्ति है। इस प्रकार नन्दा ने अपनी माता, सखी, व गोपियों से शीघ्र ही सम्पूर्ण वृत्तान्त वर्णन कर कहा कि मैं वचनों में बन्धकर आई हूं अतः फिर जाऊँगी। तब उन लोगों ने नन्दा से कहा प्राण जाने की परि-स्थिति में शपथ का दोष नहीं है अब तुम्हें नहीं जाना चाहिये। नन्दा ने कहा "परेषाम्प्राणरक्षार्थं बदाम्येवाऽनृतम्वचः। नात्मार्थमुत्सहे वक्तुं जीवितार्थे कथ-ञ्चन" ऐसे अनृत वचन दूसरों की प्राणरक्षा के लिये कहे जाते हैं स्वयं के लिये नहीं। क्योंकि लोक एवं धर्म सत्य में ही प्रतिष्ठित है। समुद्र भी सत्यवाक्य से मर्यादा को उल्लङ्घन नहीं करता। देखो, भगवान् विष्णु ने राजा बलि को छलकपट से बांधा फिर भी बलि ने सत्य को नहीं छोड़ा। अभिप्राय यह है कि

जिसने वचनों का लोप कर दिया उसका सब कुछ लोप हो गया। ऐसा कहकर नन्दा गोपीजनों को देख गोकुल की परिक्रमा कर दिग् देवताओं को नमस्कार कर सम्पूर्ण वन के देवताओं को अपने पुत्र की रक्षा के लिये कह शोकाग्नि से जलती हुई पद-पद पर रुकती हुई जहां वह व्याघ्र था वहां पहुंची। इतने ही में पूछ को ऊपर की ओर किये हुए अतिवेगवान् वत्स माता के पहिले व्याघ्र के सामने आ पहुंचा। व्याघ्र को देख नन्दा ने कहा हे मृगेन्द्र! सत्यधर्म में स्थित मैं आई हूं मेरे मांस से यथेच्छ तृप्ति करो। मेरे बाद इस बालक को भक्षण करना। ऐसा कहने पर व्याघ्र ने कहा हे कल्याणि! तुम्हारा स्वागत है "न हि सत्यवतां किञ्चिदशुभम्भवति क्वचित्" सत्य कहनेवालों का कोई भी अशुभ नहीं होता है। मैंने तो सत्यान्वेषण के लिये ही तुम्हें भेजा था नहीं तो मेरे को प्राप्त होकर जीती हुई कैसे जा सकती थी। इस सत्य से मेरे द्वारा तुम मुक्त हो। तुम मेरी बहिन हो यह मेरा भानजा है। ऐसा कह व्याघ्र का पूर्वकृत कर्मों के लिये पश्चात्ताप करना। धेनु का व्याघ्र को सद्धर्मों का उपदेश। नन्दा नाम सुनने से व्याघ्र की शाप से मुक्ति। नन्दा की सत्यनिष्ठा से प्रसन्न धर्मराज का आगमन एवं नन्दा को वरप्रदान। नन्दा को अपने पुत्र सहित उत्तमलोक की प्राप्ति तथा उसके द्वारा सरस्वती की नन्दा नाम से ख्याति हो यह वरदान मांगना। उसी दिन से सरस्वती नन्दा नाम से विख्यात हो गई। नन्दा सरस्वती का माहात्म्य।

भीष्मजी ने कहा कि पुष्कर तथा नन्दा का माहात्म्य सुना। अब आप पूर्वकथित महर्षियों द्वारा विभाजित तीर्थों का माहात्म्य कहिये। उन महर्षियों ने यज्ञोपवीतों से कैसे तीर्थों का विभाग किया एवं पिण्डप्रदान के लिये वापी का पहिले किसने निरूपण किया तथा सरस्वती और गङ्गा उत्तरवाहिनी हो कैसे भूमिपर गई। त्रिपुष्कर यात्रा का फल कहिये।

भीष्मजी के प्रश्न को सुन महर्षि पुलस्त्यजी ने कहा आपके द्वारा किया हुआ प्रश्न महान् है आप एकाग्रमना हो तीर्थ के महाफल को सुनिये। जिसके हाथ, पैर, मन, विद्या, तप और यश सुसंयत हैं वह तीर्थफल को प्राप्त करता है। प्रतिग्रह से रहित स्वतः प्राप्त से सन्तुष्ट एवं अहंकार से निवृत्त को तीर्थ का फल मिलता है। हे राजेन्द्र! क्रोधरहित, सत्यशील, दृढ़व्रत तथा प्राणीमात्र में समत्व

देखनेवाले को तीर्थ का फल प्राप्त होता है। हे भरतसत्तम! यह ऋषियों से भी परम गोपनीय है। पितामह ब्रह्माजी के यज्ञ में उग्र तपवाले एक करोड़ यति आये जो ज्येष्ठ पुष्कर में मुख दर्शन से सुरूपता को प्राप्त हो प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने यज्ञोपवीतों से भूमि को मापकर तीर्थ का विभाग किया एवं वहां भक्तिपरायण हो स्थित हुए। उनको इस प्रकार स्थित देख ब्रह्माजी ने प्रसन्न हो कहा आज तुम्हारी धर्म में वृद्धि होगी। इस प्रकार उन महर्षियों ने तीर्थ का विभाग किया। हे राजेन्द्र! पुष्कर में गमन करने से ही राजसूय और अश्वमेध यज्ञों का फल मिलता है। महापुण्या सरस्वती का ज्येष्ठ पुष्कर में प्रवेश। वहां चैत्र शुक्ल चतुर्दशी को जो जाता है एवं पितृ-देवार्चन में रत रहता है उसको गोमेध यज्ञ का फल मिलता है। महापातकों को नाश करनेवाले पुष्कर का माहात्म्य। पुष्कर में नाना ऋषि मुनियों के आश्रमों का वर्णन।

अमित प्रभावशाली अगस्त्यजी के महत्त्व का वर्णन। इस कथा को संक्षेप से कहता हूं सावधान हो सुनिये। हे भीष्म! पहिले सत्ययुग में परम दारुण कालेय नाम के दानव हुए। उन्होंने वृत्रासुर का आश्रय ले देवताओं से युद्ध किया। युद्ध में देवताओं का पलायन व वृत्रवध के लिये ब्रह्माजी के पास जाना। ब्रह्माजी ने वृत्रवध के लिये उपाय बतलाया कि उदार हृदय महर्षि दधीचि के पास जाओ वह प्रसन्न होकर अपनी अस्थि देकर त्रिलोकी के रक्षार्थ शरीर त्याग कर देंगे जिनसे आपलोग दृढ़ महाघोर वज्र शत्रु के नाशार्थ बनाओ। ब्रह्माजी के ऐसा कहने पर देवराज इन्द्र को आगे कर देवता लोग महर्षि दधीचि के आश्रम में गये। वहां जाकर देवताओं ने ब्रह्माजी के कथनानुसार वर मांगा। तब दधीचि ने कहा मैं आपलोगों के हितार्थ शरीर छोड़ता हूं। ऐसा कह महर्षि दधीचि ने सहसा शरीर को त्याग दिया। तब देवताओं ने उनकी अस्थि लेकर त्वष्टा से कहा। त्वष्टा ने भयङ्कर वज्र बना देवताओं से कहा इस शस्त्र से शत्रु का नाश कीजिये। तत्पश्चात् देवदानवों का युद्ध तथा वज्र से वृत्रासुर का वध। वृत्रहत्या

के भय से इन्द्र का सरोवर में प्रवेशार्थ दौड़ना। दैत्यों का प्राणरक्षार्थ रत्नाकर (समुद्र) में प्रवेश तथा देवताओं को हराने के लिये मन्त्रणा जो विद्या एवं तपोबल से युक्त हैं उनका ही पहिले विनाशकरना चाहिये क्योंकि "लोकाश्च सर्वे तपसा ध्रियन्ते तस्मात्त्वरध्वन्तपसा क्षयाय" अर्थात् सम्पूर्ण लोकों की तपसे ही स्थिति है अतः तपस्वियों का तप नष्ट करना चाहिये। ऐसा विचार कर समुद्र को दुर्ग बना रात्रि में मुनियों के आश्रमों को नष्ट करना। पुनः दानवों से दुःखित हुए इन्द्रादि देवताओं का वैकुण्ठ में भगवान् नारायण के पास जाना। देवकृत विष्णुस्तोत्र सुन प्रसन्न हो विष्णु ने देवताओं से कहा कि आपलोगों के दुःख को मैं जानता हूं। आपलोग समुद्र के शोषण का उपाय चिन्तन कीजिये। तदनन्तर देवताओं का ब्रह्माजी को साथ ले अगस्त्यजी के आश्रम में जाना। विन्ध्याचल के आख्यान का वर्णन देवों के वचन सुन महर्षि ने उन्हें वर मांगने के लिये कहा तब देव बोले हे महर्षे! आप समुद्र का पान कीजिये। यही अद्भुत वर मांगते हैं। तब अगस्त्यजीने कहा लोककल्याणार्थ आपका कहना करूँगा। ऐसा कह समुद्र तट पर जाकर अगस्त्यजी का समुद्र पान करना। पुनः देवदानवों का युद्ध। शोषितसमुद्र में सुरक्षा न देख दानवों का पाताल में प्रवेश। देवताओं की अगस्त्यजी से प्रार्थना कि हे महाविप्र! जिस जल को आपने पान किया उसे छोड़ दीजिये। तब अगस्त्यजी ने कहा वह तो पाचन हो गया अन्य उपाय विचारिये। पश्चात् विष्णु को साथ लेकर देवताओं का ब्रह्माजी के पास जाना एवं समुद्र के पूरणार्थ कहना। देवताओं के ऐसा कहनेपर ब्रह्माजी ने कहा बहुत वर्षों के बाद राजा भगीरथ द्वारा गङ्गाजल से पुनः समुद्र पूर्ण होगा। प्रसन्न हुए भगवान् का अगस्त्यजी को वरदान। पुष्करक्षेत्र में श्राद्धादि का माहात्म्य। कुछ समय के बाद धर्मनिष्ठसदाचारपरायण और कामक्रोधादि से रहित महर्षियों के पुष्कर निवास में कालयोग से अनावृष्टि का योग हुआ। जिसमें सम्पूर्णलोक प्रायः क्षुधा तृषा से पीड़ित हो गये। महर्षियों को अत्यन्त दुःखित देखकर राजा ने कहा

कि हे मुनियो ! ब्राह्मणों के लिये प्रतिग्रह अति निन्दनीय है अतः आपलोग मेरे से ग्राम अन्नवस्त्रादि ग्रहण करें। तब ऋृषियों ने कहा हे राजन्! प्रतिग्रह महाघोर है स्वाद में तो मध है परन्तु वस्तुतः है विष ऐसा जाननेवाले हमको क्यों लोभ देरहे हैं। ऐसा कह मुनियों का वन में जाना। प्रतिग्रह और उसके प्रायश्चित्त के विषय में "अरुणस्मृति" में विस्तृत वर्णन किया गया है। पश्चात् राजा की आज्ञा से मन्त्रियों का हेमगर्भित उदुम्बरों का पृथ्वी पर फेंकना। क्षुधार्दित ऋृषियों का वहां अन्न की खोज में आना एवं पृथ्वी पर गिरे हुए उदुम्बरों को देख अत्रि ने कहा हम मूढ़ व मन्दबुद्धि नहीं जो इन सुवर्णों को नहीं पहिचानते हों इसलिये अनन्त सुख की इच्छावाले को यह ग्रहण नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार अन्य ऋृषियों ने भी प्रतिग्रह की निन्दा की। यथा—

प्रतिग्रहसमर्थोऽपि नादत्ते यः प्रतिग्रहम्।
ये लोका दानशीलानां स तानाप्नोति शाश्वतान्॥
प्रतिग्रहेण विप्राणां ब्राह्मं तेजः प्रशाम्यति।
प्रतिग्रहसमर्थानां निवृत्तानां प्रतिग्रहात्॥
य एवं ददतां लोकास्त एवाऽप्रतिगृह्णताम्॥

प्रतिग्रह लेने में समर्थ भी हो तो भी प्रतिग्रह न ले। प्रतिग्रह लेने से ब्रह्म तेज का ह्रास हो जाता है जो लोक दान देनेवालों को मिलते हैं वे ही न लेने वालों को मिलते हैं। ऋृषियों के पश्चात् अरुन्धती ने तृष्णा को प्राणान्तक रोग बतलाया। इतना कह हेमगर्भित फलों को त्याग ऋृषियों का मध्य पुष्कर में गमन। वहां सहसा शुनः सख की प्राप्ति। उसके साथ ऋृषियों का वनान्तर में जाना जहां पद्मयुक्त सरोवर को देख उसके तट पर चिन्ता करते हुए बैठना। शुनः सख का क्षुधा की वेदना के विषय में पूछना। ऋृषियों का उत्तर—जो दुःख, खड्ग, तोमर और गदा आदि से दूर हो जाते हैं वे भी क्षुधा से हार जाते हैं। श्वास, कुष्ठ, ज्वर, अपस्मार आदि रोगों से भी क्षुधा अधिक दुःखदायी है। जैसे

सूर्य भूमिगत जल को अपनी किरणों से खींचता है वैसे ही क्षुधा जठराग्नि से अन्न रस के पाक से बने सभी धातु आदि को सुखा देती है। भूख से पीड़ित प्राणी को दिशाओं का व ऊँचे-नीचे का भी ज्ञान नहीं रहता। क्षुधार्दित मनुष्य माता-पिता स्त्री-पुत्र स्वजन बान्धवादि को भी त्याग देता है। इस प्रकार अन्नविहीन की दुर्गति होती है। अतः अन्न ही संसार का मूल है अन्न से ही जगत् की स्थिति है। पहिले देवताओं ने जल, भूमि, गौ, अन्न आदि को तुला (तराजू) में रखकर तोला तो अन्न ही भारी हुआ। अन्न से ऊँचा तत्त्व न तो संसार में हुआ और न होगा सारे जगत् का अन्न ही मूल (आधार) है सम्पूर्ण अन्न में प्रतिष्ठित है। कुआ, बाग, वृषोत्सर्ग (साण्ड छोड़ना) बावड़ी बनाना, धर्मशाला आदि अन्न दान की १६ वीं कला की बराबरी नहीं कर सकते। अन्न प्राण है, अन्न बल है, अन्न तेज और पराक्रम है, अन्न से तेज की उत्पत्ति होती और अन्न से ही सम्पूर्ण प्राणिमात्र की वृद्धि होती है (अन्न के उत्पादन में शुद्धता रख ज्ञानपूर्वक पराशर महर्षि के वचनों के अनुसार इसकी प्राप्ति के लिये विधिवत् कार्य हो तो सात्त्विक भावों का प्रसार होकर वास्तव में शुद्ध अन्न के आहार से सच्चा सत्ययुग आ सकता है)। यथा—

अन्नात्परमतो लोके न भूतं न भविष्यति। अन्नमूलं जगत्सर्वमन्ने चैव प्रतिष्ठितम्॥
कूपारामवृषोत्सर्गवाप्यश्चायतनानिच। अन्नदानस्य चैतानि कलां नार्हन्ति षोड़शीम्
अन्नम्प्राणो बलन्तेजो ह्यन्नञ्चैव पराक्रमः। अन्नात्सम्वभते तेजो ह्यन्नेनैव विवर्धते॥

अर्थात् अन्न ही संसार का मूल है। अतः सर्व प्रयत्न से अन्न का दान करना परम कल्याणप्रद है। दम-महत्त्व-वर्णन। यथा—

दमस्तेजो वर्द्धयति पवित्रो दम उत्तमः। विपाप्मा चैव तेजस्वी पुरुषो दमतो भवेत्॥
ये केचिन्नियमा लोके ये च धर्माश्शुभान्वयाः।
सर्वयज्ञफलञ्चापि दमस्तेभ्यो विशिष्यते॥
तपो यज्ञस्तथादानं दमादेवप्रवर्त्तते। अकार्पण्यमपारुष्यं सन्तोषः सुविधानता॥

अनसूया गुरोः पूजा दया भूतेष्वपैशुनम् ।
षड्भिरेव दमः प्रोक्त ऋषिभिः शान्तबुद्धिभिः ॥
दमेन हीनं न पुनन्ति वेदा यद्यप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः ।
साङ्ख्यश्च योगाश्च कुलञ्च जन्म तीर्थाभिषेकश्च निरर्थकानि ॥

दम (इन्द्रियदमन) तेज को बढ़ाता है । दम से ही पापरहित एवं तेजस्वी होता है अतः दमन सबसे पवित्र है । तप, यज्ञ एवं दान सब दम से ही सिद्ध होते हैं । रागी पुरुष को वन में जाने से भी क्या लाभ तथा त्यागी पुरुष को गृहस्थाश्रम में रहते हुए सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं "वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति-रागिणो निवृत्तरागस्य गृहस्तपोवनम्" । सब आश्रमों में इन्द्रियदमन ही सबसे उत्तम व्रत है । तप, यज्ञ, एवं दान दम से होता है किसी प्रकार से हीन भावना का न होना, किसी को कटुवचन न कहना, सन्तोष, दक्षता, किसी के गुणों में दोष न देखना, गुरुजनों का सम्मान, प्राणियों में दया पिशुनता (नीच वृत्ति) न करना ये दम के अपरिहार्य है अङ्ग है । इन्द्रियदमनरहित पुरुष को साङ्गोपाङ्ग पढ़े हुए वेद, सांख्य, योग, सत्कुल में जन्म और तीर्थस्नान भी पवित्र नहीं करते हैं । इन्द्रियदमन के साथ मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह को भी अपने वश में करें दमाध्याय के पढ़ने का महत्त्व । सम्पूर्ण धर्मों का सार अपने लिये जो प्रतिकूल हों उन्हें दूसरे के लिये नहीं करना चाहिये परस्त्री को माता के समान, दूसरे के धन को लोष्ठ के समान और आत्मा के सनान ही सम्पूर्ण प्राणियों को देखनेवाला ही सत्पुरुष है जो व्यक्ति वलि वैश्वदेव के लिये भोजन बनाता है, परोपकार के लिये जीवन लगाता है और पुत्रोत्पत्ति के लिये स्त्रीसङ्गम करता है वह वास्तव में दिव्य जीवन बिताता है और वह जैसे धातुओं में सुवर्ण श्रेष्ठ है वैसे ही मनुष्यों में श्रेष्ठ है । ऐसी बातें करते हुए सभी ऋषिगण कमल के खिले हुए पुष्पों से पूर्ण तालाब के ऊपर अपनी क्रियायें सम्पादन करने के लिये आगये वहां पर कमलनालों को तीर के ऊपर रखकर दैनिक क्रिया में लग गये जौर जब बाहर निकले तो उन्होंने देखा

कि वे कमलनाल वहां नहीं है। ऋषियों ने उनकी चोरी करनेवाले के लिये बहुत बुरा-भला कहा और आशङ्का से ही अपने दल में एक दूसरे से पूछने लगे। कश्यप, वसिष्ठ, भारद्वाज, गौतम, विश्वामित्र और जमदग्नि ने नाना पापों को बतला कर उन कमलनालों की चोरी करनेवाले को उनके प्रायश्चित्त का अधिकारी बताया तब शुनःसख ने उनके लेनेवाले का पक्ष कर उसे सद्गृहस्थ वेदाधिकारी और सत्यवादी कहा, इस पर शुनःसख को ही कमलनाल के लिये चोरी का दोषी सबने ठहराया शुनःसख ने कहा कि धर्म की सूक्ष्म गति को जानने के लिये ही मैंने इन्हें छिपाया है मुझे आप लोग इन्द्र समझें हे मुनीन्द्रगण! आप लोभ त्याग कर अक्षयलोक के अधिकारी बने हैं आप विमान पर चढ़िये जिससे सुरपुर चला जाय। इस पर ऋषियों ने मध्य पुष्कर का माहात्म्य प्रगट करते हुए कहा कि जो यहां तीन रात तक आवास करेगा उसे आवश्यक फल प्राप्त होगा ऐसी व्यक्ति के लिये कोई भी इष्ट वस्तु दुर्लभ नहीं पुलस्त्यजी ने कहा ऋषिलोग अपने अलोभ द्वारा इन्द्र के साथ स्वर्ग चले गये इस माहात्म्य को जो ऋषियों के चरित्र के साथ सुनेगा वह पाप कर्मों से छूटकर स्वर्गलोक का अधिकारी वन्दनीय पुरुष होगा।

२० पुष्पवाहननृपाख्यानम् १९८
विभूतिद्वादश्यादिषष्टिव्रतकथनम् २००

भीष्म के पूछने पर पुलस्त्यजी ने पुष्पवाहन नामक तेजस्वी चक्रवर्त्ती राजा का वर्णन किया वह पुष्करवाहन भगवान् ब्रह्माजी द्वारा यान के पाजाने से अन्वर्थ नामवाला हुआ। उसीके अनुरूप सद्गुणशालिनी लावण्यवती नाम की रानी थी। उसके दस हजार सुपुत्र हुए उन्हें देख राजा को बहुत विस्मय हुआ। वह राजा इस सारी विभूति का कारण जानने के लिये प्रचेता ऋषि के पास गया और उनसे अपना आश्चर्य कह सुनाया तथा इन सबका कारण भी पूछने लगा।

राजा के अनुरोध पर ऋषि ने तत्काल योगनिष्ठ हो ध्यान लगा दिव्यदृष्टि से उसके पूर्व-जन्म की सारी बातें जानली और वह इस प्रकार बोले हे राजन् ! पूर्वजन्म में तुम हिंसक वृत्ति से जीवन बितानेवाले व्याघ्र के घर में पैदा हुए थे। अधम जीवन के साथ-साथ तुम्हारा शरीर दुर्गन्धि कालेकलूटे रंगवाला और केश तथा नख तुम्हारे बढ़े हुए थे परिवार कोई इतना बड़ा न था केवल पतिपरायण यह सुन्दरी नारी ही तुम्हारे साथ थी। एक बार भयङ्कर अनावृष्टि से पीड़ित होकर तुम इधर-उधर आहार की खोज में गये परन्तु किसी प्रकार का भी साधन न पाकर तुम्हें निराशा हुई। आगे जाकर देखने पर तुम्हें कमलों से भरापूरा कीचड़वाला सरोवर मिला उन्हें एकत्रित कर तुम वैदिश नगर में बेचने चले। दुर्भाग्य से संयोग ऐसा हुआ कि वह सौदा तुम्हारा बिका नहीं इसलिये भूख से थके अपनी स्त्री के साथ तुम एक भवन के आङ्गन में लौट गये रात्रि में तुम्हें निकट ही मङ्गलध्वनि सुनाई पड़ी। तुम उधर ही स्त्री को साथ लेकर चले गये। उस स्थान पर पहुंचकर तुमने मण्डल में स्थापित भगवान् विष्णु की पूजा का समारोह देखा। वहां कोई एक अनङ्गवती नाम की वेश्या माघ मास की द्वादशी का व्रत समाप्त कर अपने गुरु को उपकरण से युक्त शय्यादि देरही है यह देखा। वहां तुम्हें भी पत्नी सहित श्रद्धा उत्पन्न हुई कि ये कमल के पुष्प भगवान् विष्णु को ही समर्पित किये जांय और देखते-देखते सब पुष्प भगवान् विष्णु को वहीं अर्पित कर दिये। वेश्या ने उन्हें कई प्रकार के भोजन एवं सूखा अन्न देने का प्रस्ताव किया परन्तु उन्होंने दूसरे दिन ही सारा कार्य करने की बात कही। उस दिन में सारे चौबीस घण्टों तक वे दोनों निराहार रहे और रात्रि में जागरण किया। दूसरे दिन वेश्या ने खूब द्रव्य देकर अपने गुरु को प्रसन्न किया और वे भी वहां से चले गये। ऋषि ने कहा कि उस पुण्य के प्रताप से यह अखण्ड राज्य, आज्ञाकारिणी रानी तथा सब वैभव तुम्हें मिला है।

तब मुनि ने राजा को बारह द्वादशी के व्रतों का संक्षेप विवरण कर प्रभु के चरणों में स्वयं को अर्पित करने का उपदेश दिया जिससे प्राणिमात्र का अमर कल्याण हो। विभूति द्वादशी का माहात्म्य और देनेयोग्य सभी सामग्रियों का विवेचन तथा फल का सुन्दर निरूपण नक्तव्रत करनेवाला कुटुम्बी विप्र के लिये गो, सुवर्ण, चक्र, वस्त्र एवं त्रिशूल देवे ऐसा करने से शिवलोक में सुख भोगता है यह व्रत महापापों को नाश करनेवाला है इसी व्रत को महापातकनाशन व्रत कहते हैं। जो एक वक्त भोजन करता है वह वृष सहित गौ का दान करे गौ तिलमयी होनी चाहिये यह रुद्रव्रत है तथा भय, शोक का नाश करनेवाला है। नीलव्रत का विधान–इस व्रत में एक दिन उपवास एवं दूसरे दिन रात्रि में भोजन कर नीलकमल, सुवर्ण, शर्करापात्रयुक्त देवे। आषाढ़ आदि चतुर्मास में अभ्यङ्ग त्याग करनेवाला भोजन व वस्त्र देवे इसे प्रीतिव्रत कहते हैं। चैत्र में दही, क्षीर, घृत एवं इक्षुत्यागनेवाला इक्षु युक्त पायस एवं सूक्ष्म (उत्तम) वस्त्रों का दान करे तथा विप्र मिथुन (स्त्री-पुरुष) की पूजन करे यह भवानी-लोक को देनेवाला गौरी व्रत है। कामव्रत का विधान इसमें पुष्य नक्षत्र में त्रयोदशी के दिन रात्रि में भोजन करे तथा ब्राह्मण को प्रद्युम्न की प्रसन्नता के लिये अशोक, काञ्चन तथा दश अङ्गुल ईख व वस्त्र का दान करे। आषाढ़ादि चतुर्मास में फलत्यागनेवाला समाप्ति में घट, घृत, गुड़ एवं जिस फल का त्याग करे उस फल को सुवर्णयुक्त अथवा सुवर्ण बनाकर देवे ऐसा करने से रुद्र लोक की प्राप्ति होती है इसका नाम है शिवव्रत। हेमन्त एवं शिशिर ऋतु में पुष्प त्याग कर फाल्गुन पूर्णिमा को तीन पुष्प तथा शक्त्यनुसार काञ्चन सायं काल के समय शिव-केशव के प्रसन्नार्थ देवे इसे सौम्यव्रत कहते हैं। फाल्गुन की तृतीया से अन्य समस्त मासों की तृतीया में लवण त्यागने से विप्र-मिथुन का पूजन कर सम्पूर्ण सामग्री सहित गृहदान करे इससे गौरीलोक की प्राप्ति होती है इसे सौभाग्य-व्रत कहते हैं। सारस्वतव्रत का विधान– सन्ध्या समय मौन रहकर एक वर्ष

के अन्त में घृत कुम्भ, जोड़ा वस्त्र, तिल एवं घण्टा ब्राह्मण को देवे इससे सारस्वत लोकरूप विद्या की प्राप्ति होती है। पञ्चमी के दिन लक्ष्मी की पूजन कर उपवास रक्खे एक वर्ष के बाद गौ एवं सुवर्ण का कमल बनाकर देवे इसे लक्ष्मी-व्रत कहते हैं। इससे अन्त में विष्णुपद की प्राप्ति एवं जन्मजन्मान्तर पर्यन्त लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। आयुर्व्रत का वर्णन—केशव के सामने शम्भु का उपलेपन एक वर्ष पर्यन्त कर धेनु एवं जलघट का दान करने से १० हजार वर्ष तक राजा होता है तथा अन्त में शिवपुर में जाता है। एक वर्ष पर्यन्त एकाग्रचित्त हो पीपल, सूर्य एवं गङ्गा को प्रणाम कर एक वक्त भोजन करे व्रतान्त में तीन धेनु सहित विप्रमिथुन की पूजन कर सुवर्ण का वृक्ष बनाकर देवे उसे अश्वमेध यज्ञ के समान फल होता है। इसको कीर्त्तिव्रत कहते हैं। सामव्रत का विधान—पुष्पाक्षत युक्त गोमय से मण्डल बना विष्णु अथवा शङ्कर को घृत से स्नान करा सामवेद का गान कर एक वर्ष के बाद सुवर्ण का कमल, तिल, धेनु एवं अष्टाङ्गुल त्रिशूल देने से शिवलोक की प्राप्ति होती है। नवमी के दिन एक वक्त भोजन कर शक्त्यनुसार कुमारी कन्याओं को पूजन कर उन्हें भोजन करावे तथा सुवर्ण एवं कञ्चुकी वस्त्र व सुवर्ण का सिंह ब्राह्मण को देवे इससे अनेक जन्म पर्यन्त सुरूप की प्राप्ति व शत्रुओं पर विजय होती है इसे वीर-व्रत कहा है। चैत्र आदि चार मास पर्यन्त जल देनेवाला व्रतान्त में मणिक (बड़ा जलपात्र) अन्न, वस्त्र, तिलपात्र व सुवर्ण दान करे इसे आनन्दव्रत कहते हैं। धृतिव्रत का विधान—एक वर्ष तक भगवान् को पञ्चामृत से स्नान करा अन्त में पञ्चामृतयुक्त गौ तथा शङ्ख ब्राह्मण को देवे इससे शङ्करलोक की प्राप्ति तथा कल्पान्त में राजा होता है। मांस त्याग (नवान्न त्याग) करनेवाला व्रत समाप्ति में गोदान तथा सुवर्ण मृग का दान करे इससे अश्वमेध-यज्ञ के समान फल होता है इसको अहिंसाव्रत कहते हैं। सूर्यव्रत विधान में उषः काल में स्नान कर द्विजदम्पति की पूजन, भोजन, वस्त्र व आभूषणों से करने से सूर्य लोक की प्राप्ति होती है।

आषाढ़ आदि चतुर्मास में प्रातःकाल स्नानकर ब्राह्मण को भोजन करावे व्रतान्त में गोदान करे इसे विष्णुव्रत कहते हैं। शीलव्रत का वर्णन—अयन से अयन पर्यन्त पुष्प एवं घृत का त्याग करने से घृत धेनु सहित पुष्प एवं अन्न देने से शिवपद की प्राप्ति होती है। पूर्णिमा के दिन दूध पानकर अन्त में श्राद्ध कर पांच गौ, सुन्दर वस्त्र एवं जलकुम्भ का दान करे इसे पितृव्रत कहते हैं। एक वर्ष पर्यन्त सायंकाल घृत से दीपदान करनेवाला समाप्ति में दीपक, चक्र, त्रिशूल, एवं जोड़ा वस्त्र ब्राह्मण को दे इसे दीप्ति-व्रत कहते हैं ऐसा करने से रुद्रलोक की प्राप्ति होती है। रुद्रव्रत का विधान—इसमें कार्त्तिक की तृतीया से गोमूत्र से शुद्ध यव (जौ) का प्राशन रात्रि में करे अन्त में गोदान करे इस कल्याण-कारक व्रत करने से गौरीलोक की प्राप्ति होती है। चार मास पर्यन्त गन्धानु-लेपन त्याग करनेवाला समाप्ति में दो सफेद वस्त्र शुक्ति (सीप) व गन्धाक्षत ब्राह्मण को देवे इससे वरुणलोक की प्राप्ति होती है इसे दृढ़व्रत कहते हैं। शान्तिव्रत का वर्णन—इसमें वैशाख में पुष्प एवं लवण का त्याग कर अन्त में गोदान करे। ब्रह्मव्रत के विधान में बतलाया कि तिलराशियुक्त सुवर्ण का ब्रह्माण्ड बना ब्राह्मणों सहित घृत से अग्नि को तृप्त कर विप्रमिथुन की पूजन माल्यवस्त्र एवं आभूषणों से कर शक्त्यनुसार तीन पल से अधिक सुवर्ण पुण्य दिन में दान करे। उभयमुखी (प्रसवकालयुक्त) गौ का सम्पूर्ण आभूषणों सहित दान करे दिन भर दूध ही पीवे इसे सुव्रत कहा है। तीन दिन दूध पान कर एक पल से अधिक सुवर्ण का वृक्ष बना एक सेर चावलों सहित दान करे इसे भीमव्रत कहते हैं। जो एक मास उपवास कर ब्राह्मण के लिये सुन्दर गोदान दे उसे वैष्णवपद की प्राप्ति होती है इसे भी भीमव्रत ही बतलाया है। धनप्रद-व्रत का वर्णन—इसमें बीस पल से अधिक सुवर्ण की भूमि बना उस दिन केवल दुग्ध ही पान करे। माघ अथवा चैत्र मास में गुड़व्रत को धारण करता हुआ गुड़धेनु का दान करे यह परमानन्द देनेवाला महाव्रत बतलाया है। एक पक्ष (पन्द्रह दिन)

उपवास करनेवाला दो कपिलाओं का दान करे इसे प्रभाव्रत कहते हैं। एक वर्ष पर्यन्त एक समय भोजन करनेवाला अन्त में जलकुम्भ का दान करे इसे प्राप्ति व्रत कहा है। अष्टमी में रात्रि में भोजन करने से एक वर्ष बाद गोदान करे इसको सुगति व्रत बतलाया है इसको करने से पुरन्दरलोक की प्राप्ति होती है। वर्षा आदि चार ऋतुओं में इन्धन (लकड़ी) देने से वैश्वानर नामक व्रत कहा जाता है अन्त में घृत धेनु का दान करे। यह सम्पूर्ण पापों को नाश करनेवाला है। एकादशी में रात्रि में भोजन कर चक्र अर्पण कर समाप्ति में सुवर्णचक्र दान करे इसे कृष्णव्रत कहा है। देवीव्रत करनेवाला एक वर्ष दुग्धाहार करे अन्त में गोयुग (दो गाय अथवा दो बैल) का दान करे। इससे लक्ष्मीलोक की प्राप्ति कही है। सप्तमी में रात्रि में भोजन करने से दुग्धवती गौ का दान करे इसे भानुव्रत कहा है। चतुर्थी को रात्रि में भोजन करनेवाला हेमन्त ऋतु में गोयुग दे यह शिवलोक प्रदान करनेवाला वैनायक व्रत है। चातुर्मास्य में महाफलों को त्यागनेवाला कार्तिक में हवन कर सुवर्ण के फल व गोयुग प्रदान करे यह सौरव्रत कहा गया है। बारह द्वादशियों को उपवास कर शक्त्यनुसार गौ, वस्त्र एवं सुवर्ण से ब्राह्मणों की पूजन करे इसे विष्णुव्रत कहा है। चतुर्दशी को रात्रि में भोजन करने से समाप्ति में गोयुग प्रदान करे यह शिवपद को देनेवाला त्रैयम्बक व्रत है। सात रात्रि उपवास कर ब्राह्मण के लिये घृतकुम्भ प्रदान करे इसे वरव्रत कहते हैं वही (सात रात्रि उपवासी) काशी में जा पयस्विनी धेनु दान करे इस व्रत का नाम है मन्त्रव्रत इससे शक्रलोक की प्राप्ति होती है। मुखवास (पान-सुपारी) त्यागकर एक वर्ष बाद गोदान करे यह वारुण व्रत है। चान्द्रायण व्रत करनेवाला सुवर्ण का चन्द्र देवे यह चन्द्रलोक को देनेवाला चन्द्रव्रत है। ज्येष्ठ में अष्टमी व चतुर्दशी को पञ्चाग्नि तप करनेवाला अन्त में सुवर्ण धेनु का दान करे यह रुद्रव्रत है इससे स्वर्ग की प्राप्ति होती है। शिवालय में तृतीया के दिन सकृद्विधानक (एकाहार) करनेवाला

अन्त में धेनुदान करे इसे भवानी व्रत कहते हैं। माघ मास में रात्रि में गीले वस्त्र रहे और सप्तमी को गोप्रदान करे वह एक कल्प स्वर्ग में रह पृथ्वी पर राजा होता है यह पवन व्रत है। तीन रात्रि उपवास करनेवाला फाल्गुन पूर्णिमा को गृहदान करे यह आदित्यलोक को देनेवाला धामव्रत नाम से विख्यात है। मोक्षव्रत के वर्णन में बतलाया कि उपवासी रह त्रिकाल वस्त्र एवं आभरणों से द्विजदम्पती का पूजन करे इससे मोक्ष मिलता है। शुक्लपक्ष की द्वितीया को चन्द्रोदय के समय लवणपात्र दे समाप्ति पर गोदान करने से शिवलोक में जाता है तथा कांस्यपात्र दक्षिणा एवं वस्त्र सहित देनेवाला समाप्ति में गोदान करे वह कल्पान्त में राजराट् होता है इसे सोमव्रत कहा है। प्रतिपदा को एक समय भोजन करनेवाला समाप्ति में फलप्रदान करे वह वैश्वानर पद को प्राप्त होता है तथा इसका नाम शिखिव्रत है। उपवास करनेवाला अश्वयुग सहित दो पल से अधिक सुवर्णरथ का दान करे उसे अश्वव्रत कहते हैं तथा हाथियों से युक्त सुवर्णरथ का दान करने से करिव्रत होता है व्रत करनेवाले को सत्यलोक की प्राप्ति होती है। दशमी को एक समय भोजन करनेवाला समाप्ति में दश गौ, दीप तथा सुवर्ण दान करे यह विश्वव्रत है। जो कार्त्तिक पूर्णिमा को पुष्कर में कन्यादान करता है वह इक्कीस गुणों से युक्त हो ब्रह्मलोक को जाता है कन्यादान से अधिक कोई दान नहीं इसका पुष्कर में अधिकाधिक पुण्य है। जो तिलों के चूर्ण से युक्त तथा रत्नों सहित गजदान जल में स्थित हो करते हैं उन्हें अक्षय लोकों की प्राप्ति होती है इस षष्टिव्रत (६० व्रत) को सुननेवाला एक सौ मन्वन्तर पर्यन्त गन्धर्वों का पति होता है। स्नान एवं तर्पणादि की विधि का वर्णन। सूर्य को नमस्कार एवं तीन प्रदक्षिणा कर ब्राह्मण, गौ एवं सुवर्ण को देख तथा स्पर्श करे। इस तरह सम्पूर्ण ऋषि सिद्धि को प्राप्त हुए।

पुलस्त्यजी ने भीष्मजी से कहा पहिले बृहत्कल्प में धर्ममूर्त्ति नामक राजा हुआ जो इन्द्र का मित्र था जिसके तेज से सोमसूर्यादि भी कान्तिहीन हो गये। राजा धर्ममूर्त्ति के त्रैलोक्यसुन्दरी लक्ष्मी सदृशा भानुमती नाम की भार्या थी। किसी समय राजा ने वशिष्ठजी को नमस्कारकर उनसे पूछा कि हे ऋृषिसत्तम ? मेरे किन कर्मों से उत्तम लक्ष्मी प्राप्त हुई एवं किस कारण से मेरे शरीर में विपुल तेज हुआ। इसपर वशिष्ठजी ने कहा पहिले शिवभक्त लीलावती नाम की वेश्या हुई। जिसने पुष्कर में चतुर्दशी को विधिपूर्वक हेमवृक्ष के साथ लवणाचल का दान किया। उसी वेश्या के घर में आप भृत्य थे। आपने ही उसके यहां सुवर्ण का वृक्ष हेम पुष्पों से युक्त श्रद्धायुक्त हो बनाया एवं उसको धर्म कार्य जानकर उससे वेतन भी नहीं लिया तथा तुम्हारी पत्नी ने उस वृक्ष को उज्वालित किया। वह भी तुम्हारे साथ उस वेश्या की परिचर्या में नियुक्त थी। आपलोगों ने निःस्वार्थ भाव से द्विजों की सेवाशुश्रूषा की। कुछ काल बाद लीलावती वेश्या का सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो शिवपुर में जाना। आप निःस्वार्थ सेवा करने से राजराजेश्वर हुए एवं आपकी पत्नी उस सुवर्णवृक्ष को उज्वालित करने से यहां भानुमती हुई। इसी कारण से आपको यह सम्पूर्ण तेज एवं वैभव प्राप्त हुआ। अतः आप विधानपूर्वक धान्याचलादि का दान कीजिये। तदुपरान्त राजा का धान्याचल दान एवं वैकुण्ठ गमन।

पुनः भीष्मजी ने पुलस्त्यजी से प्रश्न किया कि वियोग और शोकरूपी अनल (अग्नि) को शान्त करनेवाला एवं स्थिर लक्ष्मीप्रद कौनसा व्रत वा उपवास है। तब पुलस्त्यजी ने कहा आपने संसार के कल्याणार्थ बहुत सुन्दर प्रश्न पूछा है आपकी भक्ति को देखकर इन्द्रादि देवएवं असुर मानवों में यह गुप्त है वे इसे नहीं जानते परन्तु आपके लिये कहता हूं। पवित्र आश्विन के महीने में विशोक द्वादशी व्रत करे। दशमी को लघु आहार कर विधिपूर्वक आरम्भ करे। एकादशी को निराहार रहकर अच्छी तरह श्री एवं केशव की पूजा करें। पश्चात् प्रातःकाल उठकर पञ्चगव्य और सर्वौषध से स्नान कर शुद्ध वस्त्र धारण कर भगवान् की लक्ष्मी सहित कमलों से अङ्ग पूजा करे। पश्चात् मिट्टी की वेदी बनाकर उसपर नदी की बालुका मयी लक्ष्मी की एवं सूर्य की मूर्ति स्थापित कर षोडशोपचार से पूजा करे। रात्रि में जागरण कर प्रातःकाल ब्राह्मणदम्पती की पूजा कर उनको वस्त्राभूषण से सज्जित करे एवं यथाशक्ति भोजन कराकर व्रतान्त में गुड़धेनु से युक्त शय्यादान करे। इस प्रकार विधानपूर्वक करने से लक्ष्मी स्थिर होकर घर में निवास करती है।

पुलस्त्यजी के ऐसा कहने पर भीष्मजी ने पुनः प्रश्न किया हे मुनीश्वर! गुड़ धेनु का विधान सम्यक् प्रकार से कहिये। पुलस्त्यजी ने कहा—सम्पूर्ण पापों को नाश करनेवाला गुड़ धेनु का विधान कहता हूं। चार हाथ मृगचर्मकी गौ का निर्माण कर उसे पूर्वाभिमुख स्थापित करे एवं छोटे मृग के चर्म का वत्स कल्पित करे। गोबर से लीपी भूमि पर दर्भा बिछाकर उन्हें स्थापित करे अथवा मिट्टी की सवत्सा गौ बनावे। वित्तवान् हो तो चार भार स्वर्ण की गौ और वत्स १ भार का बनावे। उन्हें स्वच्छ सूक्ष्म वस्त्रों से सुसज्जित करे सींप के कर्ण, ईख के पाद, मुक्ताफल के नेत्र, स्वच्छ कम्बल की गलकम्बल, ताम्बे की पीठ, सफेद चँवर के लोम, विद्रुममणि के भ्रू युगल(भौंहें), नवनीत के स्तन और क्षौम वस्त्र की पूंछ बनावे। सुन्दर कांस्यपात्र और सुन्दर दोहनपात्र, स्वर्ण के शृङ्ग, चान्दी के खुर इस प्रकार

रचना कर धूप, दीप से उनकी पूजा करे। पश्चात् भगवती धेनु की प्रार्थना कर ब्राह्मण को निवेदन करे। सम्पूर्ण धेनु दान का यही विधान है। जो पापों को विनाश करनेवाली दश धेनु कही गई हैं उनका स्वरूप कहता हूं। प्रथम गुड़धेनु, घृतधेनु, तिलधेनु, जलधेनु, क्षीरधेनु, मधुधेनु, शर्कराधेनु, दधिधेनु, रसधेनु और धेनु (कपिला) इस प्रकार दस धेनुओं का विधान बताया है। धेनु-दान का माहात्म्य। भीष्मजी से दान माहात्म्य पूछने पर पुलस्त्यजी द्वारा धान्यादि दशविध पर्वतों के दान का महत्त्व वर्णन। धान्यादि दशविध पर्वतों का वर्णन। धान्याचल, लवणाचल, गुड़ाचल, हेम पर्वत, तिल पर्वत, कार्पास(कपास)पर्वत, घृतशैल, रत्नाचल, रजताचल और दशम शर्कराचल है। इन पर्वतों का अयनों में, व्यतीपातादि पुण्यकालों में, अक्षयतृतीया, द्वादशी आदि पुण्य तिथियों में एवं शुक्लपक्ष की पूर्णिमा आदि तिथियों में विधानपूर्वक भूमि को गोबर से लीप कर कुशा बिछाकर अच्छी तरह पूजाकर दान करे। जो विधानपूर्वक इन शैलों का पूजन करता है वह सम्पूर्ण पापों से निवृत्त हो विमानारूढ़ हो ब्रह्ममन्दिर (लोक) को जाता है।

भीष्मजी ने फिर पुलस्त्यजी से कहा—संसाररूपी समुद्र से तारनेवाले एवं स्वर्गारोग्य फल देनेवाले कुछ व्रतों को और कहिये। तब भीष्मजी को पुलस्त्यजी बोले सुनिये सौर धर्म कहता हूं। कल्याण सप्तमी, विशोक सप्तमी, फल सप्तमी, शंकर सप्तमी, कमल सप्तमी, मन्दार सप्तमी, सूर्य षष्ठी, सूर्य सप्तमी और शुभ सप्तमी ये सम्पूर्ण शुभफल देनेवाली एवं देवियों से पूजित हैं। इनके विधान को यथावत् कहता हूं। जब शुक्लपक्ष की सप्तमी को रविवार हो तो उसे कल्याण सप्तमी या विजया सप्तमी कहते हैं। उस दिन प्रातःकाल गव्य और दूध से नदी में स्नान कर शुक्ल वस्त्र धारण कर पूर्वाभिमुख हो अष्टदल बना पुष्पाक्षत से पूर्वादि क्रम से तपन, मार्तण्ड, दिवाकर, विधात्र, वरुण, भास्कर, अनिल, विकर्तन आदिकों का पूजन करे। तिलपात्र और स्वर्ण ब्राह्मण को देवे। इस प्रकार प्रति मास करे। तेरहवें महीने में स्वर्णश्रृङ्ग से युक्त गोदान करे। इस प्रकार जो कल्याण

सप्तमी का व्रत करता है वह सम्पूर्ण पापों से छूटकर सूर्यलोक में जाता है। दूसरी विशोक सप्तमी जिसका उपवास करने से मनुष्य कभी भी शोक को प्राप्त नहीं होता। माघ शुक्लपक्ष की पञ्चमी को तिल से स्नान करे तथा खिचड़ी का आहार कर षष्ठी को उपवास करे एवं सप्तमी को स्वर्ण की सूर्य की मूर्त्ति बना पूजन कर गुड़पात्र से युक्त ब्राह्मण को दे तथा मौन रहकर बिना तैल लवण का भोजन करे। इसी प्रकार अन्य फल सप्तमी आदि का विधान वर्णन। इन व्रतों को विधानपूर्वक करनेवाले को विपुल लक्ष्मी की प्राप्ति होती है एवं जन्म-जन्म में अतुल कीर्त्ति मिलती है।

यावत्समास्सप्त नरः करोति यः सप्तमीं सप्तविधानयुक्ताम्।
स सप्तलोकाधिपतिः क्रमेण भूत्वा पदं याति परम्मुरारेः॥

अर्थात् जो इस प्रकार बराबर इन सप्तमियों को विधान से करता है वह क्रम से सप्तलोकाधिपति होकर भगवान् मुरारि के पद को प्राप्त होता है।

भीष्मजी ने पूछा भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक इन सब का आधिपत्य कैसे हो तथा इस संसार में रूप, आयु, आरोग्य एवं विपुल लक्ष्मी कैसे प्राप्त हो सो कहिये तब पुलस्त्यजी बोले—पहले इन्द्र ने अग्नि और वायु को सुरवैरी दानवों को मारने की आज्ञा दी। इन्द्र के

आज्ञानुसार दोनों ने दानवों का संहार किया। अशक्त अवशिष्ट दानवों ने समुद्र की शरण ली उस दिन से दानव रात्रि में समुद्र से निकल देव मनुष्यादिकों को भक्षण कर दिन में समुद्र में चले जाते इस प्रकार सहस्रों युगों तक यह कार्य चला जलदुर्ग से तीनों लोकों को पीड़ित करने रहे। फिर इन्द्र ने आज्ञा दी कि समुद्र को सुखाओ। तब अग्नि, मारुत बोले यह अन्याय है इसके सिवा अन्य उपाय सोचिये। इतना सुन क्रोधित इन्द्र ने दोनों को शाप दिया कि तुम्हारा मनुष्य योनि में जन्म होगा। जब मनुष्य योनि में गण्डूषों (कुल्लों) से समुद्र पान करोगे तब देवत्व को प्राप्त होओगे। इन्द्र से शापित दोनों देवों का मित्रावरुण द्वारा उर्वशी दर्शन से घट में वशिष्ठ एवं अगस्त्य नाम से उत्पन्न होना। मलयाचल के एक देश में अगस्त्यजी का तपस्या करना। क्रोधित अगस्त्यजी का वरुणालय (समुद्र) पान। अगस्त्यजी को वरदान देने के लिये ब्रह्मा, विष्णु एवं शङ्कर का आगमन। अगस्त्यजी ने वरदान में मांगा कि मेरा विमान दक्षिण दिशा में उदय हो उस समय जो कोई पूजन करेगा वह सप्तलोकों का मालिक होगा तथा पुष्कर में मेरे आश्रम के पास जो अपने पितरों के निमित्त पिण्ड दान करेंगे उनके पितरों को स्वर्गलोक की प्राप्ति होगी। इसलिये अगस्त्यजी को अर्घ्यदान देना चाहिये। अर्घ्यदान की विधि—अगस्त्योदय में प्रत्यूष समय शुक्ल तिलों से स्नान कर शुद्ध वस्त्र पहन अच्छिद्र कलश को माल्य वस्त्रों से युक्त तथा पञ्चरत्न एवं घृतपात्र से युक्त स्थापित करे। चार भुजा सहित अंगुष्ठ प्रमाणवाले सुवर्ण का मध्यभाग एवं भुजदण्डवाला पुरुष ब्राह्मण को दे तथा वस्त्रों से युक्त गौ का दान करे ऐसा उदय से सात रात्रि तक करे। इस तरह सात वर्ष अथवा दश वर्ष वा इससे भी अधिक विधान कई आचार्य बतलाते हैं। साथ-साथ एक वर्ष फल त्याग करे तथा हवन करें इस तरह सात रात्रि करने से सातों लोकों की प्राप्ति होती है।

भीष्मजी ने सौभाग्य एवं आरोग्यप्रद व्रत के विषय मे पूछा उत्तर में

पुलस्त्यजी ने महादेव पार्वती के सम्वादरूप व्रत को बतलाया पार्वती बोली हे महादेव ! सावित्री ने मुझको तथा लक्ष्मी को शाप दिया है अतः मैं लक्ष्मी के समान प्रधानता को प्राप्त होऊँ ऐसा व्रत कहिये। शङ्कर ने कहा—भाद्र, वैशाख वा मार्गशीर्ष के महीने में शुक्लपक्ष की तृतीया को सफेद सरसों सहित जल से स्नान कर गोरोचन, गोमूत्र, गोदुग्ध, गोघृत, एवं दधि चन्दनयुक्त ललाट में तिलक करे। प्रतिपक्ष तृतीया के दिन पुरुष अथवा सुवासिनी स्त्री रक्तवस्त्र एवं सफेद पुष्पों को धारण करे विधवा एक सफेद वस्त्र कुमारी सफेद सूक्ष्म दो वस्त्रों को धारण करे। तथा षोडशोपचार से देवी का पूजन कर गुरु का पूजन करे। गुरु की पूजा न करने से सम्पूर्ण क्रियायें असफल हो जाती हैं। सम्पूर्ण मासों में नाना पुष्पों से पूजा का विधान। प्रतिपक्ष तृतीया में विप्रमिथुन को भोजन दे वस्त्रानुलेपनों से पूजन कर पुरुष को पीताम्वर एवं स्त्री को रेशमी दो वस्त्र देवे। कुमुदा आदि नामों का उच्चारण कर व्रतान्त में शय्या दान करे तथा चौबीस स्त्री-पुरुषों को भोजन करावे अथवा बारह या आठ को करावे। पहले गुरु की पूजन कर पश्चात् अन्यों की पूजन करे यह अनन्त तृतीया का विधान है। रसकल्याणिनी तृतीया का विधान—माघ मास में शुक्लपक्ष की तृतीया को गन्ध, दुग्ध एवं तिलों से स्नान करे। देवी की पूजा मधु तथा ईख के रस से करे। विधान से पूजन कर विप्रदाम्पत्य को भोजन करावे दो शुक्ल वस्त्र एवं सुवर्ण कमल प्रदान कर लवण व्रत ग्रहण करे। माघ में लवण, फाल्गुन में गुड़, चैत्र में मक्खन, वैशाख में शहद, ज्येष्ठ में जल, आषाढ़ में जीरा, श्रावण में क्षीर, भाद्रपद में दही, आश्विन में घृत, कार्तिक में माक्षिक (मधु), मार्गशीर्ष में धनियां एवं पौष में शर्करा का त्याग करे। व्रतपूर्ति में करक (मिट्टी का पूर्णपात्र) प्रदान करे तथा दिन की द्वितीय बेला में भक्ष्यपात्र से युक्त लड्डू, सेव आदि क्रमशः सब मासों में प्रदान करे। नित्य उपवासी रहे अशक्त हो तो रात्रि में भोजन करे। फिर माघ में कलश के ऊपर शर्करा एवं सुवर्ण की गौरी की मूर्त्ति को प्रदान करे।

पाप नाशिनी तृतीया का वर्णन–इसका आरम्भ अषाढ़, ब्रह्म, (अभिजित) मघा, हस्त एवं मूल नक्षत्र से होता है इसमें भी देवी पूजा का ही विधान है। वृतान्त में सपत्नीक ब्राह्मण की वस्त्राभरणों से पूजन करे तथा शय्या-दान करे। इन व्रतों के सुनने तथा सुनानेवाला कल्प पर्यन्त शक्र(इन्द्र)लोक में पूजित होता है। शङ्करजी बोले हे पार्वति ! इस तरह व्रतपरायण स्त्री के लिये सावित्री का शाप क्या वस्तु है। विष्णु की स्त्री होने से लक्ष्मी वन्दनीय है उसके लिये क्षीरसमुद्र का मथन किया मैंने भी तुम्हारे लिये दक्षयज्ञ नष्ट किया तुम दोनों की हम आज्ञा करनेवाले हैं कोई तरह का भय मत करो। इतना कह शङ्कर का विष्णु के पास जाना। शङ्करजी ने वैष्णवधर्म सुनने के लिये कहा किन्तु विष्णु ने कहा कि मैं अपना धर्म अभी ख्यापित नहीं करूंगा। आपका बताया हुआ माहात्म्य सम्पूर्ण पापों को नष्ट करनेवाला है। भीष्मजी के द्वारा मधुरवाणी, जन सौभाग्य बुद्धि एवं विद्या में कुशलता, स्त्री-पुरुष में अभेद, बन्धुओं में सङ्ग (मेल) एवं विपुल आयु किस व्रत से प्राप्त होता है ऐसा पूछने पर पुलस्त्यजी ने सारस्वत व्रत का विधान बतलाया कि सरस्वती की पूजन कर स्तुति करे रविवार वा ग्रहतारा बल से इसे आरम्भ करे। लक्ष्मी, मेधा आदि नामों का उच्चारण कर प्रतिपक्ष पञ्चमी को गोदान करे। पुस्तक एवं कमण्डलुयुक्त सरस्वती का ध्यान कर मौनव्रत से सायं प्रातः भोजन करे। सारस्वतव्रत के पठन एवं श्रवण का माहात्म्य।

भीष्मजी ने पूछा हे विप्रेन्द्र ! शङ्करजी ने कौन-से वैष्णवधर्म बतलाये उनका क्या फल है वर्णन कीजिये। पुलस्त्यजी ने कहा पहले रथन्तर कल्प में ब्रह्मा ने

महादेवजी से पूछा कि अल्प तप से ही अनन्त ऐश्वर्य एवं आरोग्य व मोक्ष कैसे प्राप्त होता है। महादेवजी बोले—वाराह कल्प में द्वापर युग में विष्णु तीन रूप से अवतार धारण करेंगे। द्वैपायन ऋषि, बलराम और कृष्ण। भगवान् की आज्ञा से त्वष्टा द्वारकापुरी की रचना करेंगे। वहां वृष्णि, कुरु और देव गन्धर्वों के साथ बैठे हुए भगवान् से पाण्डुपुत्र भीमसेन इस विषय में प्रश्न करेगा उसके उदर में वृक नाम अग्नि का निवास है वह व्रत व उपवास करने में असमर्थ है। तब श्रीकृष्ण उसके प्रश्न का उत्तर देते हुए कहेंगे यदि तुम अष्टमी, चतुर्दशी, द्वादशी व अन्य दिन नक्षत्रों में उपवास करने में असमर्थ हो तो आगे आनेवाली तिथि का विधानपूर्वक उपवास करो जिससे तुम्हें परमपद की प्राप्ति हो सकती है। माघ शुक्ला दशमी को घृत से अभ्यञ्जन (उबटना) कर तिलयुक्त जल से स्नान करे विधान से विष्णु की पूजन करे। एकादशी को निराहार रहकर रात्रि में हवन करे। द्वादशी के दिन क्षीर भोजन करे। पृथ्वी पर शयन करे तथा इतिहास सत्कथा श्रवण करे। द्वादश विप्रों से हवन करावे वस्त्राभूषणों से उनकी पूजा करे प्रातःकाल तेरह सुवर्ण शृङ्गवाली, रौप्य खुर, कांस्य दोहनपात्र से युक्त बछड़ों सहित गायोंका दान करे तथा शय्या दान करे। भीमसेन के द्वारा करने से इसका नाम भीम द्वादशी हुआ। यह पूर्व कल्पों में कल्यानी नाम से विख्यात थी इस कल्प में तुमही सर्वप्रथम कर्त्ता बनो। इससे इसका नाम भीम-द्वादशी होगा। भीमसेन के बाद अन्य व्रतकर्त्ताओं का वर्णन।

ब्रह्माजी ने वेश्याओं के समाचार के विषय में पूछा उत्तर में शङ्कर बोले उसी द्वारिकापुरी में वासुदेव कृष्ण के सोलह हजार रानियां होंगी श्रीकृष्ण वसन्त समय में उनके साथ क्रीड़ा करेंगे। सम्पूर्ण आभूषणों से युक्त साक्षात् कामदेव के समान रूपवाला जाम्बवतीपुत्र साम्ब उनके पास से जायेगा वे स्त्रियाँ जब अभिलाषापूर्वक उसे देखेंगी तो श्रीकृष्ण शाप देंगे जो सामने ही तुमने ऐसा चित्त को दूसरी ओर लगाया है अतः तुम्हें चोर हरण करेंगे इतना सुन स्त्रियों द्वारा भगवान्

से प्रार्थना करना। प्रसन्न हुए श्रीकृष्ण ने कहा दाल्भ्य ऋषि तुम्हें व्रत कहेंगे इतना कह उनको छोड़ भगवान् का अन्तर्धान। बहुत वर्षों बाद वही कार्य हुआ जो भगवान् ने कहा था। चोरों से हरी जाने पर दाल्भ्य का उनके साथ संयोग। स्त्रियों ने वेश्याधर्म के विषय में ऋषि से प्रश्न किया तब दाल्भ्य ने कहा तुमलोग मानस सरोवर में स्नान कर रही थी उस वक्त नारदजी आये। गर्वित हो तुमलोगों ने उन्हें प्रणाम नहीं किया और पूछा कि हमारे पति नारायण कैसे हों ऐसा उपदेश कीजिये तब नारदजी बोले चैत्र एवं वैशाख शुक्लपक्ष में द्वादशी के दिन दो शय्या के देने से निश्चय ही तुम्हारे दूसरे जन्म में नारायण भर्ता (पति) होंगे और जो रूप एवं सौभाग्य के अभिमान से तुमलोगों ने प्रणाम नहीं किया अतः शीघ्र ही तुम्हारा उनसे वियोग हो जायगा तथा चोरों द्वारा हरी जाओगी और वेश्यात्व को प्राप्त होओगी। इस तरह नारद और केशव के शाप से सम्पूर्ण स्त्रियां वेश्यात्व को प्राप्त हुईं। दाल्भ्य ने कहा पहले देवासुर संग्राम में देवों द्वारा मारे गये हजारों दैत्यों की विवाहित स्त्रियों को तथा उनसे बलात्कारपूर्वक भोगी हुई स्त्रियों को देवेश ने कहा इस समय भक्तिमती होकर वेश्याधर्म से रहो तुम्हें राजा तथा स्वामी से वृत्ति मिलेगी। शक्त्यनुसार सबको सौभाग्य मिलेगा जो कोई शुल्क ले तुम्हारे पास आवे उसकी सेवा बिना छलकपट एवं प्रीतिभाव से करो तथा देव पितरों के दिन शक्त्यनुसार पृथ्वी सुवर्ण और धान्यादि देवो। अब तुम्हारे लिये जो व्रत कहता हूं उसे करो। जिसको वेदविदों ने संसार से पार उतरने के लिये पर्याप्त कहा है। रविवार के दिन जब हस्त, पुष्य अथवा पुनर्वसु नक्षत्र हो उस दिन स्त्री सर्वौषधी के जल से स्नान करें इससे पञ्चबाण हरि प्रसन्न होते हैं अनङ्ग के नामों से विष्णु की पूजा विधान से करे। तथा वेदपारङ्गत ब्राह्मण को पूजा कर घृतपात्र से युक्त एक सेर चावल देवे। इस तरह सम्पूर्ण रविवारों को करे। तेरह महीनों के बाद सुसज्जित शय्या सहित गोदान करे। उद्यापन कर विसर्जन करे। यदि व्रत में गर्भ, सूतक, राजकोप, दैवकोप, मानुषकोप

और ग्रहण से विघ्न हो जाय तो यथाशक्ति ५८ वार करे यही वेश्याओं के लिये धर्म है। इस व्रत के करने का फल-वर्णन।

ब्रह्माजी ने शङ्कर से पूछा इस संसार में स्त्री एवं पुरुष के शोक, व्याधि एवं भय को दूर करनेवाले व्रत का वर्णन कीजिये। शङ्कर बोले पत्नी सहित विष्णु क्षीरसमुद्र में सदा निवास करते हैं श्रावण की कृष्णपक्ष द्वितीया को विष्णु का पूजन करे एवं गौ, भूमि, हिरण्यादि का दान करे इसे अशून्यशयना द्वितीया कहते हैं। तैल, क्षार एवं लवण का त्याग कर रात्रि में भोजन करे प्रातःकाल लक्ष्मीपति सहित शय्या, पादुका, जूता, छत्र एवं चामर का दान करे। वित्त शाठ्य न करे। सपत्नीक विप्र को भोजन करा सुवर्ण का दान करे। अशून्य व्रत करनेवाले को विष्णुलोक की प्राप्ति होती है। ब्रह्माजी ने आरोग्य एवं ऐश्वर्यादि की अभिवृद्धि करनेवाले मङ्गल व्रत के फल के विषय में पूछा तब शङ्कर बोले इस विषय में विरोचन एवं शुक्र का सम्वाद कहता हूं। एक बार विरोचन के रूप को देख शुक्राचार्य हँसे विरोचन ने उनसे हँसने का कारण पूछा तब भृगु ने वीरभद्र की उत्पत्ति का वर्णन किया वही वीरभद्र शङ्करजी के वरदान से भूमिपुत्र अङ्गारक नाम से हुआ जिसकी गणना नवग्रहों में है उसीका व्रत करने से तुम्हारा सुन्दर रूप है। दूरदर्शिनी एवं नाना-नाना प्रकार की तुम्हारी रुचि है अतः तुम्हारा नाम विरोचन है। विरोचन ने इस व्रत के माहात्म्य को पूछा तब शुक्र बोले मङ्गल के दिन चतुर्थी को यह व्रत आरम्भ करे मङ्गल की विधानपूर्वक रक्त पुष्पों से पूजन कर अर्घ्य प्रदान करे व्रत समाप्ति में उद्यापन कर सुवर्ण की मङ्गल की मूर्त्ति एवं गोदान करे तथा ब्राह्मणों की भोजन वस्त्रादि से पूजा करे। मङ्गल व्रत का फल एवं माहात्म्य।

२५ आदित्यशयनव्रतविधानवर्णनम् २४८

भीष्मजी ने पूछा यदि कोई उपवास में असमर्थ हो ऐसे व्यक्ति को फल उपवास का ही मिले ऐसा व्रत वर्णन कीजिये। तब पुलस्त्यजी ने आदित्यशयन नामक व्रत का वर्णन किया। इसमें हस्त नक्षत्र युक्त सप्तमी तथा सूर्य सङ्क्रान्ति हो वह तिथि सम्पूर्ण कामों को देनेवाली है। उमा महेश्वर एवं सूर्य की पूजन करे इन दोनों में भेद नहीं है। रात्रि में भोजन करे। विधानपूर्वक पूजन कर व्रत समाप्ति में सुवर्ण का अष्टदल आठ अंगुल का तथा सुलक्षणा शय्या प्रदान करे। ब्राह्मणों की विधान से पूजनकर कपिला गौ का दान करे। यह व्रत आचारहीन दाम्भिक गौ, ब्राह्मण एवं ऋषियों की निन्दा करनेवाले को न कहे। इससे सुन्दर पुत्र एवं धनधान्यादि की प्राप्ति तथा रोगादिकों का नाश होता है। विशेष क्या कहूं यह व्रत करनेवाला नरक में गये हुए पितरों को भी स्वर्ग में पहुंचा देता है। वित्तशाठ्य करनेवाला दोषों को प्राप्त होता है।

२६ रोहिणीचन्द्रशयनव्रतविधानम् २५०

भीष्मजी ने पूछा कि चन्द्रमा के ऐसे व्रत का वर्णन करो जिससे दीर्घ आयु, आरोग्य एवं कुलवृद्धि हो। पुलस्त्यजी बोले इस विषय में रोहिणी चन्द्रशयन व्रत बतलाया है कि सोमवार को शुक्ल पञ्चदशी में अथवा पूर्णिमा को रोहिणी नक्षत्र में इन्दु के नामों से नारायण की पूजा करे तथा सोम के नामों का कीर्त्तन करे। इस तरह एक वर्ष पर्यन्त व्रत कर समाप्ति में शय्यादान एवं रोहिणी चन्द्रमा की सुवर्ण की मूर्त्ति जिसमें चन्द्र छः अङ्गुल प्रमाण रोहिणी चार अङ्गुल होनी चाहिये आठ मोतियों सहित तथा सफेद नेत्र होने चाहियें। शङ्ख एवं वस्त्र तथा पात्र सहित गौ देवे। सपत्नीक ब्राह्मण की पूजा करे उसमें रोहिणी एवं चन्द्रमा की भावना रक्खे। इस व्रत को करने की फलश्रुति का वर्णन।

२७ तटाकप्रतिष्ठाविधिवर्णनम् २५३

भीष्मजी ने पूछा हे ब्रह्मन्! तालाब, बगीचा, कूप, वापी, नलिनी एवं देव मन्दिर के प्रतिष्ठा का विधान वर्णन कीजिये पुलस्त्यजी बोले उत्तरायण सूर्य में शुक्लपक्ष में शुद्ध स्थान में ब्राह्मणों द्वारा प्रतिष्ठा करवावे। चारों तरफ से चार हाथ की वेदी तथा सोलह हाथ मण्डल बनावे वेदी के चारों तरफ गर्त्त रत्निमात्र तीन मेखला अथवा नौ, पांच, सात भी होती है। आठ होता एवं आठ जापक (जप करनेवाले) होने चाहिये। पचीस ऋत्विज तथा सबको सुवर्ण का आभूषण देवे। सबको समान एवं आचार्य को दुगुना देवे। यजमान सपत्नीक पश्चिम द्वार से यज्ञमण्डप में प्रवेश करे। कलश की स्थापना कर विनायक, ब्रह्मा, विष्णु, शङ्करादि सम्पूर्ण देवों की पूजन कर वेदमन्त्रों का उच्चारण एवं वलिदान करे। विधानपूर्वक वसन्त समय में करने से अश्वमेध यज्ञ के समान फल होता है। इसे करनेवाला ब्रह्मस्थान में जाता है तथा स्वरादि अनेक लोकों में भ्रमण करता हुआ विष्णुलोक में चला जाता है।

२८ पादपारोपणविधिवर्णनम् २५६

भीष्मजी ने वृक्षादि के आरोपण के विषय में पूछा तब पुलस्त्यजी बोले इसका विधान तालाब विधि के समान ही है। मण्डपादि की रचना कर ब्राह्मणों का वस्त्र एवं सुवर्णादि से पूजन करे। वृक्षों की वस्त्र एवं माल्य चन्दनादि से पूजन कर सुवर्ण की सूची (सूई) से कर्णवेधन करे। अञ्जन लगावे गुग्गुल का धूप देवे। उन्हें सप्तधान्य में स्थिर करे। कांस्य दोहवाली व सुवर्ण शृङ्गवाली पयस्विनी गौ को वृक्षों के मध्य से निकाले। ऋग्, यजु, साम मन्त्रों का गायन करे। जौ काले तिल एवं घृत से हवन करे लकड़ी (समिधा) पलास, (ढाक) की श्रेष्ठ बतलाई है। चौथे दिन यह उत्सव करे पुनः प्रतिष्ठा कर आचार्यादिकों को दक्षिणा दे उनसे क्षमा याचना करे। पीपल का वृक्ष धनदेनेवाला, अशोक शोक-

नाशक, प्लक्ष यज्ञ देनेवाला, क्षीरी आयु देनेवाला कहा है। जम्बुकी कन्यादेनेवाली, दाडिमी स्त्रीप्रद बतलाई है। इस तरह नाना वृक्षों के आरोपण करने से नाना तरह के फल बतलाये हैं।

२६ सौभाग्यशयनव्रतविधानम् २५८

पुलस्त्यजी ने कहा कि अन्य सम्पूर्ण कामनाओं को देनेवाले व्रत को कहता हूं। पहले तीनों लोकों के दग्ध होने पर सम्पूर्ण प्राणियों का सौभाग्य एक स्थान में स्थित हो गया। पश्चात् कितने ही (अज्ञात) काल बाद पुनः भगवान् विष्णु को संसार रचने की उत्कण्ठा बढ़ी। तब अग्नि की भीषण ज्वाला पिङ्गाकार रूप में उत्पन्न हुई। जिससे अभितप्त हुआ सौभाग्य जो विष्णु के वक्षःस्थल का आश्रय ले स्थित था रसरूप में पृथ्वी पर आया। उसको अन्तरिक्ष से गिरता देख प्रजापति दक्ष ने पान किया। जिससे दक्ष का बल एवं तेज वृद्धि को प्राप्त हुआ। शेष जो पृथ्वी पर गिरा उसके आठ भाग हो गये। फिर सौभाग्य को देनेवाली सप्त औषधियां हुई। पहिले योगज्ञानविद् दक्ष ने जो रस पिया उससे सती हुई। उसीका दूसरा नाम ललिता हुआ। उस त्रैलोक्यसुन्दरी से पिनाकपाणि शङ्कर ने विवाह किया। त्रिलोकी को सौभाग्य एवं भुक्तिमुक्ति देनेवाली ऐसी भगवती की आराधना कर मानव क्या प्राप्त नहीं कर सकता अर्थात् सबकुछ प्राप्त कर सकता है।

इस पर भीष्मजी ने पूछा हे मुने! उस ललिता की आराधना का विधान कहिये। पुलस्त्यजी ने कहा—वैशाख शुक्ल तृतीया को प्रातःकाल तिलककर ललिता के साथ विश्वेश भगवान् शङ्कर की षोडशोपचार से पूजा करे। क्योंकि उसी दिन भगवान् शङ्कर ने सती का पाणिग्रहण किया था। भगवान् शङ्कर की पूजा कर सौभाग्याष्टक अर्पण करे। व्रत की सफलता के लिये द्विजदाम्पत्य की वस्त्रालङ्कार से पूजन कर स्वर्ण की प्रतिमायुक्त सौभाग्याष्टक दे। इस प्रकार

हर वर्ष तृतीया का व्रत करे। पश्चात् व्रतान्त में शय्यादान तथा गाय के साथ बैल का दान करे। इस प्रकार जो सौभाग्यशयन व्रत करता है वह सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त कर शिवलोक को प्राप्त होता है।

भीष्मजी ने पूछा कि भगवान् विष्णु ने किस कारण से दैत्यराज बलि से तीन पद पृथ्वी की याचना की एवं वहां पर भगवान् ने कितने दैत्यों का दमन किया। इस वामनावतार का चरित्र विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

पुलस्त्यजी ने कहा आपने बहुत सुन्दर पूछा। हे भीष्म! पहिले कृतयुग में दैत्यों ने देवताओं को पराजित कर सम्पूर्ण भूमण्डल पर आधिपत्य कर लिया तब दुःखित हो इन्द्र देवताओं के साथ ब्रह्माजी की शरण में गया। वहां जाकर देवराज ने कहा हे देव! जगत् महान् आपत्ति में है आप क्या नहीं जानते हैं। आपके वरदान से दैत्यों ने सर्वस्व छीन लिया है। अतः आप जगत् के शान्त्यर्थ शीघ्र ही उपाय का चिन्तन करें। इस पर ब्रह्माजी ने कहा कि मैं वरदान से गर्वित उनको जानता हूं। ऐसा कह ब्रह्माजी ने भगवान् विष्णु का ध्यान किया। सबके देखते-देखते भगवान् का उपस्थित होना एवं ब्रह्माजी से कहना कि जिस के लिये आपने मुझे याद किया है सो मैं आ गया हूं। तब ब्रह्माजी ने कहा हे प्रभो! आपकी महती कृपा है। वाष्कलि ने सम्पूर्ण त्रिलोकी को जीत लिया है अतः आप इन्द्र की सहयता कीजिये। तदनन्तर भगवान् वासुदेव ने कहा वाष्कलि तो आपके वरदान से ही अवध्य

है इस कारण किसी युक्ति से उसका बन्धन करना चाहिये। मैं दानवों का विनाश करनेवाला वामन रूप धारण करूँगा। मेरे साथ इन्द्र भी वाष्कलि के घर में जाकर मेरे लिये याचना करे कि यह वामन ब्राह्मण है इसको तीन पद पृथ्वी दीजिये। इन्द्र के ऐसा कहने पर दानवेन्द्र अपना जीवन भी दे सकता है। दानवेन्द्र का प्रतिग्रह लेकर उसे वचनों में बान्धकर पाताल में बसा दूँगा। तत्पश्चात् भगवान् विष्णु का अन्तर्धान होना एवं कालान्तर में अदिति के गर्भ से वामन रूप में प्रगट होना। उस समय सब नदियां स्वच्छ जलवाहिनी हो गई शीतल मन्द सुगन्ध पवन बहने लगी। स्वर्गलोक में नगाड़े बजने लगे गन्धर्वलोग आनन्द से नाचने गाने लगे। देवगण स्तुति करने लगे एवं परस्पर कहने लगे यह वामनदेव कैसे देवकार्य करेंगे। उनके ऐसी चिन्ता करते-करते ही भगवान् वामन का शक्र के साथ बलि के घर में प्रवेश। युद्धदुर्मद दानवों ने ब्राह्मण वटु के साथ इन्द्र को देख दानवेन्द्र से जाकर कहा हे प्रभो! द्विजमुख्य ब्राह्मण के साथ इन्द्र अकेला ही आ रहा है कहिये क्या करें। तब दैत्यराज ने कहा देवराज को आने दो वह मेरे पूज्य हैं। इतने ही में भगवान् वामन का इन्द्र के साथ प्रवेश। राजा बलि द्वारा उनको नमस्कारपूर्वक कहना कि आज त्रिलोकी में मेरे से कोई भी धन्य नहीं है जो मैं इन्द्र को अपने घरपर आया देखता हूं। जो यह अर्थ की कामना से मेरी याचना करेगा तो मैं निश्चय ही परमार्थ के लिये प्राण भी दे दूँगा और दारा पुत्रादि की तो बात ही क्या है। ऐसा कह राजा बलि ने उनका स्वागत किया एवं अच्छी तरह पूजा की तथा कहा कि आज मेरा घर पवित्र हो गया है। आपका दर्शन कोई अल्प तप से नहीं होता है। आप मेरे घरपर जिस कार्य से आये हैं वह कहिये। इस पर इन्द्र ने कहा हे वाष्कले! मैं आपको अच्छी तरह जानता हूं आपने जो कहा यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। आपके द्वार पर आया हुआ कोई भी विमुख नहीं लौटता है। आप याचक के लिये कल्पवृक्ष हैं। कान्ति में आप सूर्य सदृश, गाम्भीर्य में सागरोपम, सहिष्णुता

में पृथ्वी सम और श्री में नारायण के समान हैं। यह वामन कश्यपजी के कुल में उत्पन्न हुआ है। यह तीन पद भूमि की याचना कर रहा है। हे वाष्कले! आपने पराक्रम से तीनों लोकों को जीत लिया है इस कारण मैं तो निर्धन हो गया हूं नहीं तो मैं ही दे देता। अतः परमार्थ के लिये आप से याचना करता हूं। यदि आपकी रुचि हो तो वामन के लिये शीघ्र दान दीजिये।

तब वाष्कलि ने कहा हे देवेन्द्र! आप का स्वागत हो आप जल्दी ही कल्याण को प्राप्त होइयेगा। आप का आगमन तो मेरे उद्धारार्थ ही हुआ है। आपने तीन पद भूमि की ही याचना क्यों की। मेरे स्त्रियां, पुत्र, गौ एवं त्रिलोकी इस ब्राह्मण के लिये लीजिये। आप किसी तरह का सङ्कोच मत कीजिये। मुझे इसमें बड़ी लज्जा होती है जो आप तीन पद भूमि ही मांगते हैं वह भी ब्राह्मण के लिये। ऐसा सुन दैत्याचार्य शुक्र ने कहा आप राजा हैं आप युक्तायुक्त को नहीं जानते हैं कि किसको क्या देना चाहिये। आप पहिले मन्त्रियों से घर में सलाह कर लीजिये। यह वामन नहीं है यह साक्षात् भगवान् विष्णु हैं। यह तुम्हारा मातृहा-पितृहा है एवं वंशच्छेदन करनेवाला है। आप इनको मक्षिका के पाद बराबर भी भूमि प्रतिग्रह में देंगे तो शीघ्र ही आप विनाश को प्राप्त हो जाइयेगा इसमें सन्देह नहीं है। गुरु के वचनों को सुनकर राजा बलि ने कहा -

प्रतिज्ञापालनं कार्यं सतां धर्मः सनातनः। यद्येष भगवान्विष्णुर्नास्तिधन्यतरो मया गृह्य प्रतिग्रहं मत्तो यदि देवान्बुभूषति। भूयोऽपि धन्यतान्नीतो देवेनानेन वै गुरो!

यं योगिनो ध्यानयुक्ता ध्यायमाना हि दर्शनम्।
न लभन्ते तथा विप्रास्सोऽयं दृष्टो मयाऽद्य वै॥
उपदिष्टोऽस्मि भवता बालत्वे चाऽवधारितम्।
शत्रावपि गृहायातो मास्त्वदेयन्तु किञ्चन॥

प्रतिज्ञा पालन करना सज्जनों का सनातनधर्म है। यदि यह भगवान्

विष्णु हैं तब तो मेरे से धन्यतर अन्य कोई नहीं है। यदि मेरे से प्रतिग्रह ग्रहण कर देवों का पालन करेगा तो फिर भी इस देव द्वारा मैं धन्यता को प्राप्त होऊँगा। जिसका ध्यानयुक्त हो योगीजन ध्यान करने पर भी दर्शन नहीं कर पाते वही आज विप्ररूप से मुझे दर्शन देने आया है। आपने ही तो मुझे बालपने में उपदेश दिया था कि शत्रु भी घर पर आ जाये तो ना मत कहना। इसी बातको सोचकर हे गुरो ! मैं अपने प्राणों को भी वामन को दे दूँगा। ऐसा सुन शुक्राचार्यजी लज्जा से नतमस्तक हो गये। पश्चात् बलि द्वारा वामन को तीन पद भूमि का दान। वामन का विराट्रूप धारण कर तीनों लोकों में परिक्रमण किया प्रथम चरण से सूर्य द्वितीय से ध्रुव एवं तृतीय से ब्रह्माण्ड को ताड़न किया। अङ्गुष्ठ के अग्रभाग से अण्ड के भिन्न होने पर बहुत जल निकला जो सम्पूर्ण लोकों का अतिक्रमण कर पुष्कर में प्रविष्ट हुआ हे भीष्म ! वही जलधारा विष्णुपदी गङ्गा हुई। फिर वामन भगवान् ने बलि से कहा मेरे तीसरे पद को पूर्ण करो। इसपर राजा बलि नतमस्तक हो मौन हो गया। तदनन्तर बलि ने कहा हे प्रभो ! आपने जितनी पृथ्वी पहिले रची है वह मैंने तो कहीं गुप्त नहीं की है। भूमि तो अल्प है आप दीर्घ हैं एवं मैं रचने में असमर्थ हूं। ऐसा सुन प्रसन्न हुए विष्णु ने कहा हे दानवेन्द्र ! मैं तुम्हारा क्या काम करूँ। तब बाष्कलि ने कहा हे देवेश ! मैं तो आपकी भक्ति मांगता हूं एवं आपके हाथ से मेरा मरण हो जिससे तपस्वियों को भी दुर्लभ श्वेतद्वीप को प्राप्त होऊँ।

दैत्यराज बलि के वचन सुन भगवान् ने कहा एक युगान्तर बाद में वाराह रूप धारण कर तुम्हें मारूँगा। तत्पश्चात् बलि का दैत्यों के साथ पाताल प्रवेश। यह भगवान् त्रिविक्रम का आख्यान गङ्गोत्पत्ति से युक्त सम्पूर्ण पापों का नाश करनेवाला एवं विष्णुपद को देनेवाला है।

भीष्मजी ने पुनः पूछा कि हे भगवन्! वाष्कलि का बन्धन जिस कारण हुआ तथा भगवान् त्रिविक्रम रूप धारण कर बलि का संयमन किया वह बड़ा आश्चर्यकर है। यह सब तो मैंने सुना अब नागतीर्थ और पिशाचों की उत्पत्ति कहिये तथा शिवदूती का चरित्र भी कहिये किसके द्वारा पुष्कर अन्तरिक्ष में ले जाया गया यह सम्पूर्ण मुझे कहिये।

पुलस्त्यजी ने भीष्म के प्रश्न को सुन कहा हे राजन्! आपका प्रश्न महान् है फिर भी जैसे हुआ वह सम्पूर्ण कहता हूं। वैवस्वत मन्वन्तर में जब तीनों लोक बलि से आक्रान्त हो गये तब भगवान् ने वामन रूप से बलि का संयमन किया। अब नागतीर्थ की उत्पत्ति सुनो। अनन्त, वासुकि, तक्षक, महाबल, कर्कोटक, नागेन्द्र, पद्म, महापद्म, शङ्ख कुलिक और अपराजित आदि सर्पों से संसार आपूरित हो गया। ये बड़े कुटिल, भीमकर्मा एवं विषधर हुए। इनसे प्राणियों का नित्यप्रति परम दारुण क्षय होने लगा जिसको देख दुःखित प्रजा अशरणशरण परमेश्वर ब्रह्माजी की शरण में गई।

प्रजा ने ब्रह्माजी से निवेदन किया कि हे परमेश्वर! तीक्ष्ण दातोंवाले सर्पों से हमारी रक्षा कीजिये। प्रति दिन इन सर्पों से मनुष्य, पशु-पक्षी आदि नाश को प्राप्त हो रहे हैं। आप द्वारा रचित सृष्टि इन भुजङ्गमों से क्षय हो रही है। इस बात को जानकर आप जैसा उचित हो कीजिये। तब ब्रह्माजी ने कहा मैं आपलोगों की रक्षा करूँगा। अब आपलोग स्वस्थ हो अपने-अपने घर जाइये। इस प्रकार कहनेपर सम्पूर्ण प्रजा ब्रह्माजी की स्तुति कर एवं परम प्रसन्न हो अपने-अपने घर आ गई। प्रजा के चले जाने पर ब्रह्माजी ने वासुकि आदि नाग प्रमुखों का आवाहन कर परमकुपित हो शाप दिया कि

तुमलोग प्रतिदिन मनुष्यादि प्राणियों का नाश करते हो अतः भावि वैवस्वत मन्वन्तर में तुम्हारा घोर क्षय होगा एवं सोमवंशीय राजा जनमेजय द्वारा सर्पयज्ञ में तुम्हारा विनाश होगा।

पुलस्त्यजी कहते हैं कि इस प्रकार ब्रह्माजी के कहने पर कम्पित सर्पों ने ब्रह्माजी के चरणों पर गिर यह कहा हे भूतभावन! हमारी जाति कुटिल है एवं विषोल्बणत्व, क्रूरत्व और दन्दशूकत्व आप द्वारा ही सम्पादित है फिर आप हमें शाप क्यों देते हैं। हे देवेश! हमारी मर्यादा, पृथक्-पृथक् स्थान एवं मनुष्यों का और हमारा समय निर्धारित कर दीजिये एवं जनमेजय के सर्पयज्ञ से रक्षा का उपाय कहिये। इसपर ब्रह्माजी ने कहा जरत्कारु नाम का एक ब्राह्मण होगा उसको तुम्हारी बहिन जरत्कन्या दे देना उससे जो सन्तान होगी वह तुम्हारी रक्षा करेगा एवं सुतल, वितल और तलातल इन तीन स्थानों में जाकर रहो। अष्टम वैवस्वत मन्वन्तर में सर्पभक्षक काश्यपेय गरुड़ होगा तब तुम्हारी सन्तानों का सूर्य के तेज से नाश होगा एवं तुम्हारा अपकार करनेवाले मनुष्यों का भक्षण करो तथा मन्त्रौपध से युक्त मानवों से डरते रहो। ब्रह्माजी के ऐसा कहने पर वे सब रसातल में चले गये। कालान्तर के पश्चात् उन्होंने सोचा कि हमारा क्षय करनेवाला जनमेजय होगा अतः जगद्वन्द्य ब्रह्माजी को छोड़ और कहां क्या सहारा है ऐसा विचार कर वे लोग पुष्कर में, जहां ब्रह्माजी यजन कर रहे थे, गये। यज्ञपर्वत पर पहुंचकर नागों ने शीतल जलधारा देख उत्तराभिमुख हो स्थित हो गये। हे भरतर्षभ! वही स्थान पृथ्वी पर नागतीर्थ से विख्यात हुआ। श्रावण की पञ्चमी को नागतीर्थ में स्नान करनेवालों के कुल को सर्प कभी भी पीड़ा नहीं देते एवं नागतीर्थ में श्राद्ध का महत्त्व तथा नागपञ्चमी का विधान कथन। पुनः भीष्मजी ने पूछा कि शिवदूती का चरित्र वर्णन कीजिये। तब पुलस्त्यजी ने उत्तर दिया हे नृप! भगवान् शङ्कर की जटा से उत्पन्न शिवदूती का नीलगिरि पर चिरकाल तक तप करना एवं अखिल जगत् को ग्रसन करने के उद्देश्य से पञ्चाग्नि

की साधना। उसके अनन्तर ब्रह्माजी से प्राप्त वर रुरु नाम का असुर समुद्र के मध्य में रत्नाख्यपुर में रहता था जो करोड़ों दैत्यों द्वारा पूजित हुआ। वह दैत्य देवताओं को जीतने की इच्छा से लोकपाल के पुर में गया। उस महा असुर के उठने पर समुद्र का जल वेग से बढ़ा एवं उसके सहचरों के सङ्घ भी सिन्धुजल में से निकले तथा काञ्चन सूत्रों से युक्त घोड़े असंख्य और सूर्य रथ के समान ध्वजायुक्त रथ भी उनके साथ थे। रुरु का देवताओं के साथ युद्ध तथा देवताओं का भयविह्वल हो दौड़ कर नीलगिरि पर जहां भगवती शिवदूती तप कर रही थी जाना। भगवती ने देवताओं को भयभीत देखकर उनसे पूछा तुमलोग इन्द्र सहित क्यों दौड़ रहे हो। तब देवताओं ने कहा हमारे पीछे भीम पराक्रमी रुरु दैत्य चतुरङ्गिणी सेना के साथ आरहा है उससे दुःखित होकर हम आपकी शरण में आये हैं। इस प्रकार देवताओं के वचन सुनकर भगवती उच्च स्वर से हँसी। हँसती हुई उस भगवती के वदन से पाश और अङ्कुश को धारण किये हुई सुन्दरियों का प्रगट होना। उनसे आवृत्त हुई भगवती का देवताओं से कहना कि भय मत करो। इतने ही में रुरु दैत्य कर सेना के साथ आगमन एवं उनके साथ युद्ध। युद्ध में दैत्यों का नाश देख रुरु का माया रचना जिससे देवियों व देवताओं का मोहित होना पश्चात् भगवती का महाशक्ति से दैत्य को ताड़ित कर माया का नाश करना। माया के नाश होने पर रुरु का पाताल में प्रवेश वहां भी परमेश्वरी को शक्तियों के साथ सामने देखना। भगवती शिवदूती द्वारा दैत्येन्द्र का नखाग्र से शिर छेदना एवं चर्म को साथ ले पाताल से पुष्कर तथा वहां पुनः. नीलगिरि पर पहुंचना। वहां पर उन देवियों द्वारा भोजन की याचना करने पर शिवदूती का शङ्कर को स्मरण करना। शिवदूती के कथनानुसार भगवान् शङ्कर का नाना प्रकार का भोजन प्रदान। देवियों के भोजन के विषय में हास्य करनेवाले को दरिद्रता एवं नाना प्रकार के कष्टों की प्राप्ति होती है। शङ्कर द्वारा शिवदूती की स्तुति। शिवदूती-स्तोत्र की महिमा।

भीष्मजी ने प्रश्न किया कि हे महामते ! मनुष्य किस कर्म विपाक से प्रेतत्व को प्राप्त करता है एवं किस कर्म से छूटता है। तब पुलस्त्यजी ने कहा हे नृपसत्तम ! मैं इस बात को तुम्हें सम्पूर्ण कहता हूं जिसको सुनकर मानव पुनः मोह को प्राप्त नहीं होता। सज्जनों से सम्भाषण करने से तथा पुण्यतीर्थों के अनुकीर्त्तन से मनुष्य प्रेतयोनि से छूटता है। इसी पर एक पृथु नामक ब्राह्मण की आख्यायिका कहता हूं। पहिले एक परम सन्तोषी ब्रह्मचर्य एवं तपोयोग से युक्त पृथु नामक ब्राह्मण हुआ। जो बड़ा सत्यवादी, मधुरभाषी एवं अतिथि का पूजक था। इस प्रकार संसार से पार उतरने के लिये कर्मों को करते हुए बहुत वर्ष बीतने पर उसकी तीर्थाटन की इच्छा हुई। तब वह पुष्कर तीर्थ में गया जहां स्नान कर भगवान् सूर्य को नमस्कार कर वहां से मार्ग में चला तो अपने आगे पांच भीषण पुरुषों को देखा जो बड़े घोर एवं विकृताकार थे। उनको देख उसने मधुर वचनों से पूछा कि तुम्हारा यह अमाङ्गलिकरूप किन कर्मों से हुआ है। ब्राह्मण के वचन सुन प्रेतों ने कहा हम भूख-प्यास से महा दुःखी हैं एवं हमारी संज्ञा नष्ट हो गई है। हमें दिशा-विदिशा अन्तरिक्ष मही आदिकों का भी ज्ञान नहीं है। हमारे पांचों के ये नाम हैं—पर्युषित, सूचीमुख, शीघ्रग, रोहक और लेखक। पुनः ब्राह्मण ने पूछा कर्म से उत्पन्न प्रेतत्व को प्राप्त हुए तुम्हारे नाम कैसे हुए इसका क्या कारण है जिससे तुम इस प्रकार के नामधारी हुए।

इसपर प्रेतों में से एक ने कहा मैं नित्य स्वादु भोजन करता था तथा बासी, ठंढा ब्राह्मण को दे देता था इस कारण मेरा पर्युषित नाम हुआ एवं इसने अन्नादि की इच्छावाले बहुत से ब्राह्मणों को ठगा इसलिये इसका नाम सूचीमुख हुआ। इसी प्रकार क्षुधित ब्राह्मण के याचना करने पर शीघ्र चले जाने से शीघ्रग नाम एवं बिना ब्राह्मण को दिये मधुर अन्न खाने से रोहक तथा याचना करने पर मौन होकर पृथ्वी को कुदेरने से इस पापिष्ठ का नाम लेखक हुआ। पुनः ब्राह्मण ने कहा—

ये जीवा भुवि तिष्ठन्ति सर्वेऽप्याहारमूलकाः।
युष्माकमपि चाऽऽहारं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥

जो जीव पृथ्वीपर रहते हैं उन सबका मूल आहार ही है। तुम्हारे आहार को सुनने की मेरी इच्छा है कहो। तब प्रेतों ने कहा हे विप्र! हमारे सत्त्वहीन आहार को सुनकर आप हमारी बारम्बार निन्दा करेंगे। प्रेतों का आहार श्लेष्म, मूत्र, पुरीष और स्त्रियों के अङ्गों का मल है। हे तात! अपने भोजन को कहने में मुझे लज्जा होती है। अब हे दृढ़व्रत! प्रेतभाव की निवृत्ति आपसे पूछता हूं जिससे प्रेतत्व न हो। इसपर पृथु ब्राह्मण ने प्रेतत्वनाशक उपाय बतलाइये :—

तुल्यो मानेऽपमाने च तुल्यः काञ्चनलोष्ठयोः।
तुल्यः शत्रौ च मित्रे च न प्रेतो जायते नरः॥

देवतातिथिपूजासु गुरुपूजासु नित्यशः। रतो वै पितृपूजासु न प्रेतो जायते नरः॥
जितक्रोधविमर्शो यस्तृष्णासङ्गविवर्जितः। क्षमावान्दानशीलश्च न प्रेतो जायते नरः

गोब्राह्मणांश्च तीर्थानि पर्वतांश्च नदीस्तथा।
देवांश्चैव तु यो वन्द्यान्न प्रेतो जायते नरः॥

अर्थात् जो मानव मान, अपमान, स्वर्ण, लोष्ठ, शत्रु और मित्र में समत्व रखता है वह प्रेतत्व को प्राप्त नहीं होता। देवता, अतिथि गुरु और पितृपूजा करनेवाले तथा क्रोध को जीतनेवाले, तृष्णा के सङ्ग से दूर रहनेवाले, क्षमावान् और दानशील को एवं गोब्राह्मण, तीर्थ, पर्वत, नदी और देवताओं को

नमस्कार करनेवाले को प्रेतत्व प्राप्त नहीं होता है। इनसे विपरीत कर्म करने से मानव प्रेतत्व को प्राप्त होता है। ब्राह्मण के इस प्रकार कहते-कहते ही देवताओं द्वारा आकाश से पुष्पवृष्टि होने लगी तथा उस सत्सङ्गति के कारण उन प्रेतों के लिये स्वर्ग से विमान आगये। अतः हे गङ्गासुत! यत्नपूर्वक "सतां सम्भाषणं कुरु" सज्जनों से सम्भाषण करो। भीष्मजी ने आकाशस्थित पुष्कर का महत्त्व पूछा तब पुलस्त्यजी ने कहा एक बार दक्षिणवासी करोड़ों ऋषि स्नानादि के लिये पुष्कर में आये। उन्होंने पुष्कर को आकाशस्थित मान बारह वर्ष तक प्राणायाम में स्थित हो तपस्या की। तब ब्रह्मादि देवों ने पुष्कर को बुलाने के नियम बताये। आपोहिष्ठेत्यादि वैदिक मन्त्रों से पुष्कर का सान्निध्य होगा। विशाखा में सूर्य और कृत्तिका में चन्द्रमा का योगविशेष दुर्लभ है इस योग में स्नान दानादि का बहुत महत्त्व है। उसी पुष्कर में उदुम्बर वन से सरस्वती नदी का आगमन। सरस्वती तीर पर धान्यादि दान का विशेष महत्त्व। गङ्गा एवं सरस्वती का परस्पर वार्त्तालाप। देवों द्वारा सरस्वती की स्तुति। शुद्धावट नामक तीर्थ का माहात्म्य। इसके दर्शन से महापापी भी पवित्र हो जाते हैं। इस स्थान पर मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र ने भी दशरथ को पिण्ड प्रदान किये थे। वहीं चतुष्कोण अवियोगवापी की स्थिति है। जहां पिण्डदान करने से मनुष्य हंसयुक्त विमान से स्वर्ग में जाते हैं। वहीं पर ब्रह्माजी द्वारा पितृयज्ञ करना।

भीष्मजी द्वारा पुलस्त्यजी से प्रश्न कि हे मुने! रामचन्द्रजी को मार्कण्डेयजी ने कहां ज्ञान दिया एवं किस काल में कब और कहां समागम हुआ। मार्कण्डेय किसका पुत्र हुआ एवं कैसे यह नाम हुआ इसका सम्पूर्ण वृत्तान्त कहिये। उत्तर में पुलस्त्यजी ने कहा कि पहिले कल्प में मृकण्डु नामक मुनि हुआ। भृगुपुत्र मृकण्डु अपनी स्त्री के साथ तपस्या कर रहा था। उसी काल वन में बसते हुए उसके पुत्र हुआ जो पांच वर्ष का ही महान् गुणी हुआ। मृकण्डु ने अपने पुत्र की भावी जानने के लिये एक ज्ञानी से उसकी आयु पूछी। तब ज्ञानी ने कहा विधाता ने इसकी छै महीने की आयु रची है तुम्हें सोच नहीं करना चाहिये मैंने तुम्हें सत्य कह दिया है। (अन्य पुराणों में मार्कण्डेयजी की आयु का प्रमाण पांच वर्ष भी मिलता है।) तदुपरान्त मार्कण्डेय का उपनयन एवं पिता द्वारा सब वर्णों को अभिवादन करने की आज्ञा। पांच महीने पच्चीस दिन बीतने पर मार्ग में आते हुए सप्तर्षियों को देख बालक ने प्रसन्न हो प्रणाम किया तब उन्होंने आयुष्मान्भव ऐसा कहा। पश्चात् सातों ऋषि उसकी आयु के पांच दिन अवशेष जान डरे एवं उस बालक को साथ ले ब्रह्माजी के पास गये। वहां जाते ही बालक ने ब्रह्माजी को प्रणाम किया। ब्रह्माजी ने उसको चिरंजीव कहा। ऋषिलोग ब्रह्माजी के वचन को सुन बड़े प्रसन्न हुए। ब्रह्माजी ने ऋषियों को विस्मयान्वित देख कहा आपलोग किस कार्य से आये हैं तथा

यह बालक कौन है। तब ऋषियों ने कहा यह मृकण्डु का पुत्र क्षीणायु है इसे दीर्घायु कीजिये। इसको अल्पायु देख मृकण्डु ने दण्डमेखलायुक्त कर उपनयन कर कहा जिस किसीको भी पृथ्वी पर भ्रमण करते देखो उसका अभिवादन करो। तब इसने तीर्थयात्रा प्रसङ्ग से घूमते हुए हमको देख प्रणाम किया हमने इसको "पुत्र चिरायु हो" ऐसा कह दिया। अब आपके साथ हमारा वचन कैसे सत्य हो। इस पर ब्रह्माजी ने कहा यह बालक मार्कण्डेय मेरे समान आयुवाला होगा तथा ऋषियों में मुख्य एवं मेरा सहायक होगा। इस प्रकार ब्रह्माजी के वचन सुन पुनः मार्कण्डेय को धरातल पर भेज दिया। मार्कण्डेय ने घर पर अपने पिता से कहा मुझे ब्रह्मवादी मुनि लोग ब्रह्मलोक में ले गये जहां ब्रह्माजी ने मुझे दीर्घायु होने का वरदान दिया। अब मैं तप करने के लिये पुष्कर में जाकर देवदेवेश पितामह की उपासना करूँगा। इस प्रकार पुत्र के वचन सुन मृकण्डु बहुत प्रसन्न हुआ एवं धैर्य धारण कर कहा आज मेरा जन्म सफल है मैं आज तुम्हारे द्वारा पुत्रवान् हूं। तुम जाओ तथा पुष्करस्थ पितामह को देखो जिन्हें देखने से मनुष्य जरामृत्यु से रहित हो जाता है एवं अक्षय सौख्य की प्राप्ति होती है। जिस पुष्कर में ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देव निरन्तर रहते हैं एवं जो ब्रह्मलोक का मार्ग है ऐसे पुष्कर को देखनेवाला धन्य है। तदनन्तर मार्कण्डेय द्वारा मार्कण्डेयाश्रम की स्थापना। जहां स्नान करने से वाजपेय यज्ञ के फल की प्राप्ति का वर्णन।

पुनः पुलस्त्यजी ने भीष्मजी से कहा कि अब आपको एक पुरातन इतिहास कहता हूं। पहिले भगवान् राम ने सीता और लक्ष्मण के साथ चित्रकूट से महर्षि अत्रि के आश्रम में आकर मुनि से पूछा कि हे महामुने! कौनसा ऐसा पुण्य तीर्थ या क्षेत्र है जहां जाने से मनुष्य का बन्धुवियोग न हो वह कहिये। तब अत्रि ऋषि ने ध्यान कर कहा कि आपने बहुत सुन्दर प्रश्न किया है। मेरे पिता द्वारा निर्मित पुष्कर तीर्थ है वहीं दो विख्यात पर्वत हैं

उनके बीच तीन कुण्ड हैं जो ज्येष्ठ, मध्य और कनिष्ठ पुष्कर कहलाते हैं। वहां जाकर आप अपने पिता दशरथ की पिण्डदान से तृप्ति कीजिये। वहींपर अवियोगा और सुरसा वापी तथा सौभाग्यकूप है जिनपर पिण्डदान करने से पितरेश्वर मोक्ष को प्राप्त होते हैं। तदनन्तर राम का पुष्कर गमन तथा वहां जाकर पितरों को तृप्त करना एवं स्नानावसान में शिष्यों सहित आये हुए मार्कण्डेय ऋषि को देख सादर प्रणाम कर पूछना कि हे प्रभो! अवियोगावापी कौन दिशा में है मैं राजा दशरथ का पुत्र राम हूं। भगवान् के एसा पूछनेपर मार्कण्डेयजी ने कहा हे राघव! आपका कल्याण हो आपने बहुत सुकृत किया है यहां आओ और उस अवियोगा वापी को देखो यहां पर सबका अवियोग होता है चाहे जीवित हो या मृतक। इस प्रकार मुनीन्द्र के वाक्य सुन रामचन्द्रजी ने राजा दशरथ का स्मरण किया एवं भरतादि भाईयों तथा अयोध्यावासियों का भी। इतने में सन्ध्याकाल हो गया तब मुनियों के साथ वह पश्चिमा सन्ध्या कर रात्रि में सो गये। स्वप्न में भगवान् रामचन्द्रजी ने माता-पिता, भाई बान्धव एवं अयोध्या को देखा इसी प्रकार लक्ष्मण तथा सीता ने भी। प्रातःकाल सम्पूर्ण वृत्तान्त मुनियों को कह सुनाया तब मुनियों ने कहा हे रघूत्तम! सत्य है "मृतस्य दर्शने श्राद्धं कार्यमावश्यकं स्मृतम्"।

वृद्धिकामास्तु पितरस्तथा चैवान्नकाङ्क्षिणः।
ददन्ति दर्शनं स्वप्ने भक्तियुक्तस्य राघव॥

अर्थात् मृतक का दर्शन करने पर श्राद्ध करना जरूरी है। पितर वृद्धि कामना से तथा अन्न की इच्छा से स्वप्न में दर्शन देते हैं। अतः हे वीर! राजा दशरथ का श्राद्ध करो हमलोग स्नानार्थ ज्येष्ठ पुष्कर को जाते हैं। तत्पश्चात् भगवान् राम का कुतपकाल में श्राद्धकरण। रामचन्द्रजी द्वारा निमन्त्रित ऋषियों को आये देखकर जनकात्मजा सीता का लज्जित होकर दूसरी तरफ चला जाना। भगवान् राम द्वारा श्रुतिस्मृत्युक्त विधि से ब्राह्मणों को भोजन

करवाना तथा दक्षिणा दे बिदा करना। विप्रमुख्यों के चले जाने पर राम का सीता से पूछना कि हे सुभ्रू! यहां आये हुए ऋषियों को देखकर तुम लज्जित क्यों हुई इसका कारण कहो देरी मत करो। इस प्रकार पति के पूछनेपर लज्जा से नतमस्तक हो अश्रुपात छोड़ती हुई भगवान् राघव से बोली हे नाथ! यहां जो आश्चर्य देखा सो सुनिये। आपके चिन्तन करने पर राजा दशरथ का तथा अन्य दो जनों का आगमन हुआ। मैंने ब्राह्मणों के अङ्गों में राजा दशरथ को देखा तब लज्जायुक्त हो अन्यत्र चली गई 'वल्कलाजिनसम्वीता कथं राज्ञः पुरःसरा" इस प्रकार के वल्कलाजिन के वस्त्र पहिने मैं कैसे अपने श्वशुर राजा के सामने जाती। सीता के ऐसे वचन सुन भगवान् रामचन्द्रजी बहुत प्रसन्न हुए। उस रात्रि वहां रहकर प्रातःकाल ज्येष्ठ पुष्कर में चले गये तथा वहां श्राद्ध तर्पण कर पितरों को तृप्त किया। वहां से पुनः मर्यादा पर्वत पर प्राप्त हो क्षेत्रसीमा में अजगन्ध शिव को अष्टाङ्ग प्रणिपात से नमस्कार कर कृताञ्जलि हो स्तवन किया। रामकृत अजगन्ध शिवस्तोत्र। स्तोत्र से प्रसन्न हुए शङ्कर का भगवान् राम को वर प्रदान। पश्चात् इन्द्रमार्ग नदी पर जाकर भगवान् का जटाजूट बनाना एवं रेखा नदीपर जाकर अपने पितर तथा देवताओं को जल से तृप्त कर वहीं सीता और लक्ष्मण के साथ अभिषिक्त हो निवास करना।

भीष्मजी ने प्रश्न किया कि ब्रह्माजी ने किसकाल में यज्ञ आरम्भ किया ब्रह्माजी के किस नाम के ऋत्विज थे एवं उनको क्या दक्षिणा दी गई यह सम्पूर्ण जैसे हुआ वैसे आप मुझे कहिये। पुलस्त्यजी ने कहा मैंने पहिले ही कहा कि स्वायम्भुव मनु आदि प्रजापतियों को रचकर ब्रह्माजी उन सब से सृष्टि रचने के लिये कह स्वयं पुष्कर में सम्पूर्ण यज्ञ सम्भारों से सुसज्जित हो यज्ञकुण्ड पर स्थित हो गये। ब्रह्मा, उद्गाता, होता और अध्वर्यु ये चार (यज्ञवाहक) यज्ञ को चलानेवाले होते हैं। एक-एक के तीन-तीन परिवार होते हैं। सबकी मिलाकर सोलह संख्या होनी चाहिये। तीन सौ साठ यज्ञ होते है उनके अलग-अलग होता, उद्गाता, ब्रह्मा और अध्वर्युओं का वर्णन। ब्रह्माजी के यज्ञ को सब ने मिलकर शक्तिभर अपना-अपना काम पूरा किया और यज्ञ की सफलता में पूर्ण योग दिया।

मन्वन्तर के अवसान में यज्ञ का अवभृथ स्नान हुआ। ब्रह्मा, उद्गाता, होता और अध्वर्यु को चारों दिशायें अर्थात् सम्पूर्ण त्रिलोकी दक्षिणा में दी एवं यज्ञ सिद्धि के लिये विद्वानों को सौ-सौ गौ दान में दी गईं। यज्ञान्त में ब्राह्मण भोजन। तदनन्तर ब्रह्माजी का भगवान् विष्णु से कहना कि हे माधव ! सावित्री को प्रसन्न कर यहां लाइये। आपके प्रसन्न करने पर वह तुष्ट होकर निश्चय

ही आजायेगी आप देरी मत करें शीघ्र ही जाइये। इस प्रकार ब्रह्माजी के कहने पर भगवान् विष्णु लक्ष्मी सहित शीघ्र ही सावित्री के घर पर गये। वहां जाकर विष्णु भगवान् ने सावित्री को नमस्कार कर कहा कि आप पतिव्रता हैं ब्रह्माजी के हृदय में आपका स्थान है वे आपको रात-दिन चिन्तन करते हैं। अतः इस प्रकार दुःख से द्रवित ब्रह्माजी को प्रसन्न कीजिये तथा आपकी प्रिय सखी लक्ष्मी से पूछ लीजिये। ऐसा कह भगवान् विष्णु का सावित्री के चरणों में नमस्कार करना। सावित्री का पैरों को सङ्कुचित कर अपने हाथ से भगवान् के हाथों को ग्रहण कर कहना कि हे अच्युत! मैंने सबको क्षमा कर दिया है। यह लक्ष्मी सदा आपके हृदय में निवास करेगी तथा आप जहां कहीं भी देव, मनुष्य आदि शरीरों में अवतरित होंगे वहां यह भी आपके साथ ही अवतार लेगी। अब हे प्रभो! मुझे कहां क्या करना है सो कहिये। तब भगवान् विष्णु ने कहा मुझे ब्रह्माजी ने आपको लाने के लिये भेजा है अतः देवताओं से युक्त अपने पति को चलकर देखो। तत्पश्चात् भगवती लक्ष्मी ने कहा हे आर्ये! उठो जहां ब्रह्माजी हैं वहां शीघ्र ही जाइये। मैं आपके चरण छूकर कहती हूं कि मैं आपके बिना नहीं जाऊँगी। ऐसा कह लक्ष्मी ने अपने दहिने हाथ से उसका हाथ पकड़कर उठा लिया। आती हुई सावित्री को देख ब्रह्माजी का समीपस्थ भगवान् महादेवजी को कहना हे सुरभूषण! आप पार्वती के साथ जाइये तथा सवित्री को समझाकर वह शीघ्र आवे ऐसा करिये। पार्वती सहित शङ्कर ने सावित्री के सामने जाकर अभिवादनपूर्वक कहा कि हे शोभने! आपकी ब्रह्माजी प्रतीक्षा करते हैं आप देरी मत कीजिये। तत्पश्चात् भगवती पार्वती द्वारा सावित्री का वाम हस्त ग्रहण कर ब्रह्माजी के पास ले आना। सर्वलोक पितामह ब्रह्माजी का सावित्री को सामने देख कहना यह गायत्री देवी तो कर्मकरी है तथा मैं तुम्हारे वश में हूं। इस प्रकार ब्रह्माजी के कहनेपर सावित्री का लज्जित हो

नतमस्तक होकर मौन होना एवं ब्रह्माजी से प्रेरित गायत्री का सावित्री के चरणों में गिरकर क्षमा याचना कर नमस्कार करना। गायत्री को सान्त्वना देकर सावित्री का स्त्रीधर्म कहना।

न च स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्। भर्ता यद्वदते वाक्यं तत्तुकुर्यादकुत्सया

भर्तृनिन्दां या कुरुते स्वसृनिन्दां तथैव च।

परिवादम्प्रलापं वा नरकं सा तु गच्छति॥

पत्यौ जीवति या नारी उपवासव्रतं चरेत्। आयुर्ष्यं हरते भर्तुर्मृता नरकमृच्छति॥

अर्थात् स्त्री के लिये न तो पृथक् यज्ञ ही है न व्रत तथा उपवास है, उसके लिये तो पति का वचन ही सर्वस्व है। जो स्त्री पतिनिन्दा, बहिन की निन्दा, विवाद और प्रलाप करती है वह नरक में जाती है। पति के जीवित रहते जो स्त्री उपवासव्रत करती है वह पति की आयु का हरण करती है तथा मरने पर नरक में जाती है। ऐसा जानकर तुम पति का कोई भी विप्रिय (बुरा) मत करो। अब तुम मेरे साथ सुख से रहो। तदनन्तर ब्रह्माजी का स्नानावसान में सम्पूर्ण देवताओं को वरदान एवं आदरपूर्वक विष्णु और शङ्कर को कहना कि पृथ्वी के सम्पूर्ण तीर्थों में आप पूजनीय हैं आपके विना कोई भी तीर्थ पवित्र नहीं है। जो मानव आपकी पूजा उपहारों से करेंगे उनको सब सिद्धियाँ प्राप्त होंगी। ब्रह्माजी के ऐसे वचन सुन भगवान् विष्णु ने ब्रह्माजी की स्तुति की। स्तुत्युपरान्त ब्रह्माजी ने कहा हे केशव! आप प्रज्ञाराशि तथा सर्वज्ञ हैं इसमें सन्देह नहीं है। अतः "देवानां प्रथमः पूज्यः सर्वदा त्वं भविष्यसि" आप देवों में सर्वदा प्रथम पूज्य होंगे। रुद्रकृत ब्रह्मस्तुति। इस स्तुति के बाद कहना कि हे नाथ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो यह बताइये कि आपकी किन-किन स्थानों में स्थिति है एवं किन२ नामों से आपके स्थान पृथ्वी पर शोभित होते हैं। तब ब्रह्माजी ने कहा—मैं पुष्कर में सुरश्रेष्ठ, गया में चतुर्मुख, कान्यकुब्ज में देवगर्भ, भृगुकक्ष में पितामह, कावेरी में सृष्टिकर्त्ता; नन्दिपुरी में बृहस्पति,

प्रभास में पद्मजन्मा आदि एक सौ आठ नामों से इन-इन स्थानों में रहता हूं। इन स्थानों में से एक को भी जो नर भक्तियुक्त होकर देखता है उसके कायिक, वाचिक, मानसिक सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं तथा निरन्तर ब्रह्मलोक का वास प्राप्त होता है। ब्रह्मस्थान का महत्त्व वर्णन। पुष्कर में सावित्री के सामने दम्पति भोजन का विशेष फल वर्णन। गुप्त श्राद्ध तथा गुप्त ज्ञान का महत्त्व। पुष्करादि तीर्थों में विविध दानों का महत्त्व वर्णन। तीर्थों में पुष्कर का विशेष महत्त्व—

कृतयुगे पुष्कराणि त्रेतायां नैमिषं स्मृतम्। द्वापरे च कुरुक्षेत्रं कलौ गङ्गां समाश्रयेत्॥
दुष्करः पुष्करे वासो दुष्करं पुष्करे तपः। दुष्करं पुष्करे दानं दुष्करः पुष्करे जपः॥

विशेष क्या पुष्कर ही दुष्कर क्षेत्र है तथा सम्पूर्ण पापों को नाश करनेवाला है। पुष्कर में अजगन्ध शङ्कर का दर्शन करने से मुक्ति प्राप्त होती है।

भीष्म के द्वारा क्षेमङ्करी जो पुष्कर पर्वत पर स्थित है उसके सम्बन्ध में पूछने पर पुलस्त्यजी ने बतलाया कि क्षेमङ्करी देवी ने सात्त्विकतापूर्वक तप किया दीर्घकाल के बाद उसका मन कुपित हो गया और उस क्रोध से सौम्यलोचनोंवाली सहस्रों कुमारियां उत्पन्न हुईं और देवी ने उन कुमारीगण के लिये सुन्दरपुर का निर्माण किया और अपने अधिकार में उन सबके द्वारा यथोचित कार्य का उपक्रम शान्तिपूर्वक चलाया। एक बार देवर्षि नारद उधर से आ निकले उनके आनेपर

देवी ने सबहुमान पाद्य, अर्घ्य आदि देकर समागमन का कारण पूछा और नारद ने ब्रह्मलोक, इन्द्रलोक, रौद्र और अचल से आकर आपके दर्शनों के लिये आया हुआ हूं ऐसा कहा और वहां से क्षेमङ्करी के रूप को देखते हुए आश्चर्य और विस्मित से होकर जानेको तैयार हुए। बिदा होकर नारदजी सीधे महिष दानव के पास जाकर उससे पुष्कर के वन में रहनेवाली कुमारियों के साथ क्षेमङ्करी के रूप, लावण्य और सौन्दर्य के सम्बन्ध में कह वहां से चले गये। महिष दिन-रात उसीके रूप में चिन्तित और व्यग्र रहने लगा एक बार अपने आठ मन्त्रियों को बुलाकर उसने अपने मनके भावों को कहा और उसे प्राप्त करने की बात कही। प्रघस ने उस वैष्णवी देवशक्ति को अधिकार में न करने की मन्त्रणा दी परन्तु अन्य मन्त्रियों ने महिष के भाव के अनुसार उस रूप लावण्य व सम्पत्तियुक्त क्षेमङ्करी को किसी प्रकार लाने का सर्व सम्मति से प्रयत्न करने का निश्चय किया इसके पूर्व विरूपाक्ष ने उसे देवों द्वारा अजेय होने का वर ब्रह्मा से प्राप्त हुआ है यह स्मरण कराकर देवसेना पर चढ़ाई करने की पूरी तैयारी की और दैत्येन्द्र महिष ने इन्द्रपुरी पर आक्रमण किया। देव और दैत्यों का तुमुल युद्ध हुआ देवगण पराजित हुए महिष ने अपना दूत क्षेमङ्करी के पास विवाह प्रस्ताव के साथ भेजा। दूत ने अभिवादनपूर्वक दैत्येन्द्र महिष के जन्म का विस्तार से वर्णन करते हुए कहा कि इसकी माता महिषी ने वन में तप करते हुए मुनि को अपनी सखियों के साथ भिन्न-भिन्न रूप में महानाद करते हुए डराने का उपक्रम किया। इसपर भयभीत मुनि ने महिषी (भैंस) का रूप धारण कर सब सखियों के साथ उसी रूप में सौ वर्ष तक विचरण करो ऐसा शाप दिया। महिषी ने कांपते हुए मुनि से शापान्त के लिये क्षमा याचना की। दयालु ऋषि ने उसे कहा कि इसी रूप से पुत्र को उत्पन्न करनेपर तुम्हारा शापान्त होगा यह मेरा वाक्य झूठ नहीं होगा वह महिषी नर्मदा के तीर पर चली गई जहां प्रतापी सिन्धुद्वीप तप करता था। दैत्यकन्या

वहां निर्वस्त्र होकर जल में स्नान करती हुई मुनि द्वारा देखी गई और उनका वीर्यस्खलित हो गया और दिव्यगन्धवाले उस वीर्य के जल को अपनी सखियों से परामर्श लेकर पी गई उसी से यह महिष नामक महापराक्रमी पुत्र हुआ उसके पराक्रम से देवसेना हतप्रभ हो गई है ऐसे पराक्रमी दैत्य के साथ आपका सम्बन्ध होने से सब आनन्द होगा। उसके वचन सुन देवी हँसी, हँसते रहने से सम्पूर्ण त्रैलोक्य प्रकाशित हुआ और उसकी प्रतिनिधिरूपा प्रतिहारी कुमारी जया ने कहा हे दैत्य दूत ! यह देवी तो क्या इनकी जो अनुचारिणी कुमारी हैं उन्हें भी वह नहीं पा सकता। उसे खुलकर क्षेमङ्करी की ओर से युद्ध की चुनौती देदी। इसी समय नारद आये और देवगण की दुर्दशा और युद्धपलायन के विषय में सानुरोध उससे कहा अब उस दैत्य महिष से युद्ध कर देवगण को अपनी पूर्व अवस्था के लिये समर्थ बनाइये। देवी के आदेश से कुमारिकाओं ने शस्त्रास्त्र हाथों में लेकर युद्ध की तैयारी की और युद्धक्षेत्र में युद्ध की प्रलयाग्नि के रूप में आ डटी। घोर युद्ध हुआ दैत्य सेना को क्षण में ही उन कुमारियों ने क्षत विक्षत कर दिया। क्रुद्ध होकर महिष ने सीधे देवी पर आक्रमण किया इस पर बीस भुजा धारण कर देवी ने अनेक अस्त्र-शस्त्रों से तैयारी कर रुद्र भगवान् का स्मरण किया स्मरण करते ही वह गणों समेत उपस्थित हो गये दैत्य ने माया से दीर्घकाल तक युद्ध किया अन्त में देवी ने उसे शस्त्र प्रहार से स्वर्गलोक भेज दिया। इस प्रकार शत्रु के मरण से प्रसन्न होकर देवगण ने क्षेमङ्करी की स्तुति की इस भगवती के स्तोत्र के पाठ का फल और माहात्म्य का वर्णन। भगवती क्षेमङ्करी सब गुणों के नाना आकार-प्रकार से संसार की उत्पत्ति, स्थिति और संहार कार्य में प्रमुख है उनकी स्तुति से सम्पूर्ण देवगण प्रसन्न होते हैं ऐसी महामहिमा सम्पन्ना भगवती सदैव आराध्य और भक्तों की सम्पूर्ण कामना पूर्ण करनेवाली है।

भीष्मजी के द्वारा ब्रह्माजी के शरीर से आविर्भूत गायत्री और अष्टभुजा तथा बीस भुजावाली देवी ने जो महिष का वध किया और वैष्णवी तथा चामुण्डा रुद्रशक्ति द्वारा कौन-सा दैत्य मारा गया यह पूछने पर पुलस्त्यजी ने कहा जन्मजन्मों में कल्पभेद से यही दैत्य वैष्णवी और चामुण्डा द्वारा मारा गया अथवा ज्ञानशक्ति देवी साक्षात् हैं और अज्ञान की मूर्त्ति यह महिष है ज्ञान से ही अज्ञान का नाश होता है फिर पञ्च महापातक नाशक ब्रह्माजी की पूजा का महत्त्व समझाते हुए पुलस्त्यजी ने कहा कि कार्त्तिक चतुर्दशी में ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर गुरु का ध्यान कर स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर इस पूजा को करने से पांच महापातकों से छुटकारा होजाता है। इसी के साथ नवग्रह पूजा, लोक-पाल पूजा, वरुण आदि देव पूजा का अङ्गभूत होने से प्रतिपादन और उनका विशेष माहात्म्य। अन्त में पुलस्त्यजी ने शङ्कर से ज्ञान प्राप्त करे अर्थात् ज्ञान प्राप्ति के लिये इष्टदेव शङ्कर की पूजा, आरोग्य के लिये सूर्य को, धन के लिये अग्नि, सुगति के लिये भगवान् विष्णु और ब्रह्मत्त्व प्राप्ति के लिये ब्रह्मा को पूजे। फिर बड़े-बड़े यज्ञों के सम्पादन में आयु की अल्पता (आयु छोटी होने) से कार्यसफलता शक्य नहीं अतः भीष्मजी ने थोड़े प्रयत्न से अधिक फल मिले इसके लिये प्रश्न किया पुलस्त्यजी ने प्राचीन समय में श्वेत राजा ने वशिष्ठजी को भूख से पीड़ित होकर जो विषय पूछा उसी आख्यान का विवरण किया। राजा श्वेत ने प्रतापी होकर भूमि, वस्त्र, अलङ्कार, ग्राम, नगरादि का दान बहुत किया परन्तु अन्न

और जल का दान नहीं किया इससे मरणोपरान्त वह स्वर्ग गया परन्तु भूख और प्यास से सदा ही पीड़ित रहा तो वहां से ऋक्ष पर्वत पर गया और वहां अपनी पड़ी हुई हड्डियों को राजा चाटने लगा और फिर दिव्यविमान से स्वर्ग चला गया। बहुत दिनों बाद एक दिन वशिष्ठजी ने राजा को इस प्रकार अपनी हड्डी चाटते देखा और इसके विषय में पूछा राजा ने कहा मैंने अन्न और जल का दान नहीं किया इसलिये भूख और प्यास से स्वर्ग में भी व्याकुल रहता हूं। अन्न न देने के कारण अब जो मार्ग मेरे लिये सुकर हो वह कृपाकर बतावें। वशिष्ठजी ने विनीताश्व राजा का आख्यान कहा कि उसने अश्वमेध कर तुम्हारे समान ही गाय, घोड़े आदि को दान में दिया परन्तु अन्न को छोटा समझ उसे नहीं दिया। मरण के बाद उसकी वही गति हुई जो तुम्हारी है उसने इसी प्रकार भूखा-प्यासा रह अपने पुरोहित ब्राह्मण से इन सबका कारण जाना तथा तिलधेनु के सम्बन्ध में पूछने पर पुरोहित ने तिलधेनु, जलधेनु, धेनु, घृतधेनु और रसधेनु सब का सविस्तर वर्णन किया जिससे उसे पूर्वजन्म में अन्न और जल के दान न करने से उत्पन्न दोष को दूर करने के मार्ग का पता लगा। इसी प्रकरण में ब्रह्माण्डदान की विधि बताई है। इसके करने से सम्पूर्ण कामों की प्राप्ति होकर मनुष्य अन्त में पुण्यभागी होकर स्वर्गगामी होता है। कार्त्तिक मास में पुष्करराज तीर्थ दान का फल और सुन्दर माहात्म्य निरूपण।

भीष्म ने पुलस्त्यजी को अपने ऊपर इस प्रकार अनुग्रह करने के लिये बहुत कृतज्ञता प्रगट की और अन्य अन्नदानसम्बन्धी माहात्म्य के प्रसङ्ग में प्राचीन इतिहास के लिये प्रश्न किया पुलस्त्यजी ने कहा राम के आविर्भाव और उसके द्वारा

रावण जैसे असुर का वध करने के अनन्तर अयोध्या आने पर अगस्त्य प्रभृति ऋषि-गण उनसे मिलने के लिये आये। तब राम ने प्रतिहारी को उन ऋषियों को अपने यहां लिवा लाने के लिये कहा। ऋषियों ने वर्द्धापन कर आशीर्वाद देते हुए शुभ-कामना प्रगट की और राम को वन में आकर फिर मिलने को कहा इसके बाद सब अन्तर्धान कर गये। राम ने ऋषियों के आदेश से धर्मराज्य की स्थापना की और सैकड़ों वर्षों तक राज्य किया। उसी दिन अपने मृत पुत्र को लेकर एक ब्राह्मण द्वार पर आया और अपना दुःख (पुत्रमृत्यु का) राम से कहा इस अकाल मृत्यु का कारण जानने के लिये राम ने वशिष्ठजी से पूछा। इसी बीच नारद ने कहा कि प्राचीनकाल में कोई भी ब्राह्मण से इतर वर्ण तपस्या नहीं करता था उस समय कभी अपमृत्यु, अकालमृत्यु नहीं होती थी सब चिरञ्जीवी-ही-चिरञ्जीवी होते थे धीरे-धीरे युग परिवर्त्तन के अनुसार धर्म के पाद का ह्रास और अधर्म के पादों की वृद्धि हुई। इसी प्रकार कोई शूद्र अवश्य ही तपस्या करता है इसीलिये ब्राह्मण के पुत्र की मृत्यु हुई है इसलिये शीघ्र जाकर उसके सम्बन्ध में पूरी जानकारी कर उसका निराकरण करो। रामने वन में शूद्र तापस का पता लगाकर उसके इस व्यवहार के लिये पूछा। राम ने उसके मुंह से शूद्र योनि में उत्पन्न जानकर और शम्बूक नाम से तप करते हुए देवत्व प्राप्ति का उद्देश्य बतलाया राम ने उस शम्बूक को अनधिकार के नाते दण्ड दिया इससे सर्वत्र साधुवाद की ध्वनियां हुई और इन्द्रादि देवगण ने राम से वर मांगने के लिये कहा राम ने कहा यदि देवगण प्रसन्न हैं तो यह ब्राह्मण का पुत्र जीवित हो जाय देवगण ने कहा कि वह ब्राह्मणपुत्र तो शूद्र के वध के साथ ही उठ खड़ा हो गया और अपने घर चला गया। फिर देवगण से आज्ञा लेकर रामभद्र अगस्त्य के आश्रम में विमान द्वारा चले गये।

शम्बूक के वध के बाद रामभद्र विमान पर आरूढ़ होकर अगस्त्यजी के आश्रम में आये और इन्हें इस बात की पूर्ण आशा थी कि उन ऋषिवर्य के यहां जाने पर सब प्रकार की आधिव्याधि के विषय में पूछकर अपना परमार्थ-साधन करना इष्ट होगा। ऐसा सोचते-सोचते उनका विमान महर्षि अगस्त्य के आश्रम के निकट आ पहुंचा और उससे उतरकर वे सीधे ऋषि अगस्त्य को साष्टाङ्ग दण्डवत् कर उनके आदेश से बैठकर कुशल प्रश्न करने लगे। अगस्त्यजी ने उसी समय सुन्दर आभरण रामभद्र को देते हुए उनका वर्धापन किया। राम ने ब्राह्मण से प्रतिग्रह क्षत्रिय के लिये आपत्काल में अधिक इष्ट है ऐसे प्रायश्चित्त का भागी होने का डर कहा इसपर अगस्त्यजी ने प्राचीनकाल में हुई घटनायें राजा के अक्षमत्व एवं लोकपालों के अंश से निर्मित शरीर में तप विशेषरूप से निहित रहता है इसे बताया और ऋषि के उपदेश से दिव्य आभरणों को ग्रहण किया। राम उन दिव्य आभूषणों को देखते-देखते विस्मित हो गये और इनकी प्राप्ति में विषय में प्रश्न करने लगे। अगस्त्यजी ने कहा "प्राचीनकाल में बड़े घने जगल में एकान्त में जब मैं तपस्या कर रहा था तो एक दिन एक सुन्दर सरोवर के किनारे मैंने रात्रि में आकर विश्राम किया। प्रभात के समय जैसे ही इधर-उधर घूमने लगा तो एक शव को देखा और उस एकान्त स्थान में इस विचित्रता से मैं कई प्रकार से सन्देह करने लगा मैंने इसी समय सुन्दर-सुन्दर विमानों चढ़कर गन्धर्व तथा अप्सरोगण के बीच में विमान से उतरते हुए दिव्य पुरुष को देखा और सरोवर में स्नान कर उसे उस शव को खाते हुए देखा। इस

दिव्यपुरुष की इतनी सुन्दर तेजोमयी आकृति और भोजन इतना गर्हित खराब तो मुझे इसे जानने की विशेष इच्छा हुई। मने उससे पूछा उस स्वर्गीय पुरुष ने हाथ जोड़कर अपनी पूर्वावस्था का सारा वर्णन किया" फिर बोले "वह वासुदेव नामक वैदर्भक राजा था उसके दो पत्नियां थीं और दो पुत्र दोनों पत्नियों से थे। श्वेत इस कथापुरुष नाम था और उसके भाई का नाम था सुरथ पिता के बाद श्वेत राज्यकार्य सम्हालने लगा विशेष निमित्त से कई वर्षों के बाद राज्य कर सुरथ को राजपाट सौंपकर श्वेत तपस्या के लिये इसी वन में आगया और कई हजार वर्षों तक तप करने के बाद ब्रह्मलोक की प्राप्ति हुई परन्तु भूख और प्यास किसी प्रकार नहीं मिटी। ब्रह्मा से इस सब का कारण पूछने पर योग से ध्यान लगाकर उन्होंने बतलाया कि अपने शरीर को पुष्ट बनाते हुए ही तपस्या करने से अब कोई भी भूख व प्यास मिटानेवाला साधन उसे यहां नहीं मिलने का। अब अपने शरीर को ही खाकर भूख-प्यास मिटा सकते हो। फिर ब्रह्मा ने कहा उसका शवरूपी देह अक्षय कर दिया गया है यह प्रतिदिन पुष्ट बनेगा और सौ वर्ष की अवधि तक वह अपने मांस को खावे जब इस वन में अगस्त्य महर्षि तपस्या करने आयेंगे तो वह इस कुत्सित आहार से रक्षाकर उद्धार कर देंगे। उन महर्षि का महिमा अगाध हैं"। अगस्त्य आगे बोले "इसी पर साक्षात्कार के अनन्तर अपना परिचय देते हुए मैंने उस श्वेत का कुत्सित आहार से उद्धार किया इसके लिये कृतज्ञता ज्ञापनार्थ श्वेत ने भी यह आभरण अनेक वस्त्र, धन तथा गायें प्रतिग्रह में दी उस स्वर्गीय राजा का मानुष देह नष्ट हो गया और वह दिव्य विमान पर चढ़कर स्वर्ग में चला गया"।

दण्डकारण्य की उत्पत्ति के विषय में राम के पूछनेपर अगस्त्यजी ने कहा कि मनु के इक्ष्वाकु और इक्ष्वाकु के कई पुत्र हुए जिनमें दण्ड नामक पुत्र कनिष्ठ था। भविष्य में दण्डपतन के विशेष चिन्ह उसके शरीर पर देखकर इक्ष्वाकु चिन्तित था अन्त में उसे विन्ध्य और नील पर्वत के मध्य की भूमि का राजा बना दिया और दण्ड को मधुमत्पुरी को बसाते विशेष विलम्ब नहीं हुआ और दण्ड ने विशेष शान्तिपूर्वक अपना राज्य किया। एक दिन वह दण्ड राजा महर्षि भगवान् शुक्रजी के आश्रम में अविकल और एकान्त में उनकी कन्या को देख काम व्याकुल हो उस अनिन्द्यसुन्दरी से अपने हृदय को प्रस्तुत करने लगा कन्या का नाम अरजा था। अरजा ने कहा कि (पिता) शुक्राचार्यजी की बिना आज्ञा के कोई काम करना दोष का कारण होता है फिर वह स्वयं राजा शुक्र का शिष्य है उसे तो भगवान् शुक्राचार्य से अनुमति लेकर ही इस ओर बढ़ना चाहिये। उस कामान्ध दण्डराजा ने उसी समय अरजा के साथ बलात्कारकर उसे वहीं छोड़ अपनी राजधानी को प्रस्थान किया। जब रोती हुई अरजा मुनि के आश्रम पर आई तो उसने अपने पिता से सारी बातें कही। क्रुद्ध शुक्राचार्य ने उस दण्डराज को जनपद सहित नष्ट होने का शाप दिया और अरजा को सौ वर्ष तक विरजा (बिना रजोधर्म के) रहने का वर देकर वहीं रहने को कहा मुनि शाप से आज भी दण्डकारण्य वैसा ही सघन वन है। इसके बाद मुनि ने राम को नित्यक्रिया के लिये कहा क्योंकि सन्ध्याकाल उपस्थित हो चुका था। राम ने जैसे ही अपना नित्यकृत्य सम्पादन किया तो दो पक्षी

जिनमें एक गीध और दूसरा उल्लू अपने स्थान की समस्या को लेकर विवाद करते हुए राम के पास आये और अपना-अपना पक्ष रक्खा। राम ने सभी मन्त्रियों को बुलाकर मन्त्रणा की। इसपर राम ने गीध और उल्लू दोनों को उनके निवास के विषय में पूछा। गीध ने कहा जब से उस पृथ्वीपर बड़े-बड़े राजा लोग शासन करते आ रहे हैं तब से ही उसका निवास है उल्लू ने कहा जब से पृथ्वी पर वृक्ष आदि वनस्पतियों की उत्पत्ति है तब से ही वह रहता है। राम ने सचिवों को फिर धर्म की व्याख्या कहते हुए वृद्धों की उपस्थिति और उनका धर्म प्रतिपादक होना और सत्ययुक्त धर्म का छल रहित होने का विवरण किया "न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्। नाऽसौ धर्मो यत्र न चास्ति सत्यं न तत्सत्यं यच्छलमभ्युपैति।" १०१॥ इसपर मन्त्रियों ने उलूक के ही प्रथम वास का निर्णय दिया और उसका अन्तिम निर्णय राजा को ही करने का अधिकार कहकर राजधर्म की प्रशंसा की राम ने पुराण सृष्टिवर्णन का क्रम बताया और कहा सूर्य, चन्द्र, अन्तरीक्ष, पृथ्वी, समुद्र जब प्रलय के अनन्तर भगवान् के जठर में समा गये और भगवान् योग-निद्रा में मग्न होगये तो हजारों वर्षों के बाद कल्प के आरम्भ में ब्रह्मा जठर में से निकले और सृष्टि करने की इच्छा से पृथ्वी, वायु, पर्वत, वृक्ष, सम्पूर्ण प्रजा, मनुष्य, सर्पजाति के जन्तु, जरायुज, अण्डज, इनको बनाया उन्हीं के साथ भगवान् विष्णु के शरीर से मधुकैटभ हुए इसके बाद मधुकैटभ कावध कर शान्ति स्थापित की और पृथ्वी के प्राणिमात्र के लिये शान्तिपूर्ण जीवनयापन करने का मार्ग प्रशस्त किया मधुकैटभ दोनों दैत्यों के मेद से पृथ्वीको भगवान् ने बढ़ाया तभी इसका नाम मेदिनी हुआ इसलिये उल्लू का ही घर है गीध का यह घर नहीं और गीध को दण्डनीय घोषित किया गया। उसी समय आकाशवाणी हुई हे राम! पूर्व तपोबल से जले हुए गीध को मत मारो यह गौतम द्वारा जलाया गया ब्रह्मदत्त नामक राजा है। इसके घर आकर गौतम ने भोजन

मांगा। ब्रह्मदत्त ने पाद्यअर्घ्यादि से सत्कार कर स्वयं ही आकर आहार किया और मुनि को गौण कर दिया क्रुद्ध मुनि ने उसे गीध होने का शाप दिया जब राजा ने अपनी भूल के लिये क्षमा मांगी तो दयालु ऋषि ने रामावतार में उसके उद्धार होने के लिये कहा। उसी समय गीध की योनि छूट गई और राम को साधुवाद देता हुआ दिव्य शरीर धारण कर वह देवलोक चला गया। राम ने उलूक को घर में रहने को कह कर सन्ध्योपासन कर अगस्त्यजी के आश्रम में जाने का प्रस्ताव कहा। जब रामभद्र अगस्त्यजी के आश्रम में गये तो नानाप्रकार के व्यञ्जनों से युक्त सुस्वादु मधुर अन्नों की पूरी सामग्री से उनका आतिथ्य किया गया। वह सब प्रकार के फलमूल, शाक आदि से तृप्त होकर रात्रि में वहीं विश्राम कर प्रातःकालिक क्रिया कर ऋषि से आज्ञा लेने को आये। आखों में आंसू लाते हुए प्रेम से गद्गद् हो महर्षि अगस्त्य ने राम को पतितपावन संज्ञा देते हुए न्याय, शान्ति, धर्म और प्रेम की प्रतिष्ठा कर दीर्घकाल तक राज्य करने का आशीर्वाद दिया। फिर उपस्थित ऋषियों को प्रणाम-अभिवादन कर राम ने पुष्पक पर आरूढ़ होकर अयोध्या को प्रस्थान किया। अयोध्या पहुंचकर उन्होंने प्रतिहारी को लक्ष्मण और भरत को बुलाने के लिये कहा। जब भरत और लक्ष्मण आये तो श्री रामभद्र ने राजसूय-यज्ञ का प्रस्ताव रक्खा और उन्हें सब व्यवस्था यथा विधि करने की आज्ञा दी। भरत ने कहा हे महाराज! आप से सब को निदर्शन मिलता है आपके वश में सब राजागण हैं। राजसूय यज्ञ से अधिक आवश्यकता है आपके द्वारा धर्मराज के प्रवर्त्तन की; कारण राजसूय यज्ञों में दिव्य और पार्थिव सभी देव समुदाय और मनुष्य समुदाय का नाश हमने पुराणवृत्तों से मालूम किया है। इसपर राम ने राजसूय यज्ञ न करने और धर्मपूर्वक शासन करने की भरत की बात का अनुमोदन किया और भगवान् वामन की कान्यकुब्ज में स्थापना करने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर धर्ममर्यादा से शासन स्थापित कर अपने यश विस्तार का उपक्रम किया।

भीष्मजी ने पूछा हे विप्रर्षे! भगवान् रामचन्द्रजी ने कान्यकुब्ज में वामन की स्थापना कैसे की तथा उससे क्या प्राप्त किया इसे विस्तारपूर्वक कहिये। जिस भगवान् राम को संसार स्नेह से देखता है तथा जिस राज्य में सम्पूर्ण प्रजा धर्मपूर्वक आचरण करनेवाली हुई उस भगवान् की कीर्त्ति, जो मन व कर्णों को सुखप्रद है, उसे विस्तार से कहिये।

भीष्मजी के प्रश्न को सुनकर महर्षि पुलस्त्यजी ने कहा कि हे नृप! धर्मपथ में स्थित भगवान् राघव ने जो किया उसे एकाग्र मन से सुनिये। किसी समय में राज्यासन पर स्थित हुए भगवान् ने विचार किया कि राजा विभीषण लङ्का में कैसे राज्य करता है। मैंने जो चन्द्रार्ककालिक (चन्द्रमा और सूर्य की अवधि पर्यन्त) राज्य विभीषण को दिया है वह देवताओं के प्रतिकूल तथा विनाश का लक्षण है। उस विभीषण के राज्य करते रहने से ही मेरी स्थिर कीर्त्ति शाश्वत रहेगी। उस पापिष्ठ रावण का वध मैंने देवकार्यार्थ ही किया था। अब मुझे स्वयं जाकर देखना चाहिये तथा उसे धर्मपूर्वक राज्य की शिक्षा देनी चाहिये जिससे वह शाश्वत स्थिर रहे। अमित पराक्रमी भगवान् राम के इस प्रकार चिन्तन करते हुए ही भरत का आगमन। भरत का भगवान् से पूछना कि हे देव! आप क्या चिन्तन करते हैं उसका रहस्य मुझे कहिये। आप

किसी देवकार्य से, अथवा धराकार्य से या स्वयं के लिये चिन्तन करते हैं क्या ? इस प्रकार भरत के पूछने पर भगवान् ने कहा तुम्हारे से कुछ छिपा नहीं है कारण तुम तथा लक्ष्मण तो मेरे प्राणरूप हो। जिसके लिये मैंने दशग्रीव रावण का वध किया वह विभीषण कैसे है इसकी मुझे महती चिन्ता है। इसलिये मैं लङ्का में जाऊँगा जहां वह शासन करता है। वहां जाकर विभीषण को तथा उस पुरी को देखकर उसको कार्य (धर्मशासन का) कहकर एवं वानरेश्वर सुग्रीव को तथा सम्पूर्ण वसुधा को देखकर आऊँगा। इस प्रकार भगवान् के कहनेपर भरतजी ने कहा मैं भी आपके साथ चलूँगा। हे महाबाहो ! आप ऐसा कीजिये कि सौमित्रि (लक्ष्मण) यहां रहें। भरतजी के ऐसा कहने पर रामचन्द्रजी ने लक्ष्मण से कहा हमलोग जबतक न आ जांय तबतक तुम सबकी रक्षा करो। इस प्रकार लक्ष्मण को आदेश दे पुष्पक विमान का ध्यान किया। तदनन्तर पुष्पक पर सवार हो भरत के पुत्रों के राज्य में जाकर उनकी नीति देखकर पूर्व दिशा में गये जहां लक्ष्मण के पुत्रों के राज्य को देखा इस प्रकार उनके पुरों में छः रात्रि तक भगवान् रघुनन्दन रहे। तत्पश्चात् उसी विमान से भगवान् का ऋषि सेवित प्रयाग में पहुंचना। वहां भरद्वाज को अभिवादन कर अत्रि के आश्रम में जाना वहां मुनि से बातचीत कर जनस्थान में जाना तथा भरतजी से कहना कि यहां ही सीता का हरण हुआ था एवं उस दुष्ट रावण ने जटायु को मारा था जो अपना पितृसखा था। यहीं पर हमारा कुबुद्धि कबन्ध के साथ युद्ध हुआ था उसीने कहा सीता तो रावणालय में है तथा आप ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव नामक वानर है वहां जाइये वह आपकी सहायता करेगा। यह वह तलाई है जहां लक्ष्मण ने मुझसे कहा था हे पुरुषव्याघ्र ! आप शोक मत कीजिये मैं आपका आज्ञाकारी भृत्य हूं मुझे पूज्या मैथिली सीता प्राप्त होगी। यहां पर मेरे वार्षिक मास शत वर्षों के समान बीते। यहीं पर सुग्रीवार्थ मैंने बालि का वध किया। यह जो आगे स्थान है वही बालि-पालित किष्किन्धा है

जहां धर्मात्मा वानरेश्वर सुग्रीव रहते हैं। ऐसा कहते हुए भगवान् राम का भरत के साथ किष्किन्धा में प्रवेश। वहां सुग्रीव ने भगवान् को पाद्यार्घ्य दे कुशलक्षेम व कार्य के लिये पूछा और उन्हें सुन्दर आसनों पर बिठाया। इस प्रकार धर्मिष्ठ रघुनन्दन के सभास्थित होनेपर अङ्गद, हनुमान्, ऋक्षराज, नल, नील, पाटल, गज और गवाक्षादि वानरों का सेनासहित आना। अन्तःपुर से रुमा और तारा आदि रानियों का दासियों के साथ आगमन। तारा आदि वानरियों का भगवान् राघव को प्रणाम कर कहना कि हे देव! वह देवी कहां हैं जिनके लिये आपने रावण का वध किया हम उनको आपके साथ नहीं देख रहे हैं। हे रघुनन्दन! आप उनके बिना शोभित नहीं होते हैं। आपके बिना साध्वी जानकी कैसे रह रही हैं क्योंकि आपके तो अन्य भार्या (स्त्री) भी नहीं है। इस प्रकार चन्द्रमुखी तारा के वचन सुन कहनेवालों में श्रेष्ठ राजीवलोचन भगवान् राम ने कहा हे विशालाक्षि! "कालो हि दुरतिक्रमः" काल की गति विचित्र है। तदनन्तर सामने आकर सुग्रीव का भगवान् से पूछना कि आपलोग किस कार्य से यहां आये हैं वह कहिये। इसपर भगवान् से प्रेरित भरतजी ने कहा कि राघव को लङ्का में जाना है। तब सुग्रीव ने कहा ठीक है हम भी चलेंगे। पश्चात् पुष्पक पर सवार हो सुग्रीव सहित भगवान् का समुद्र तट पर आना। वहां भगवान् ने भरत से कहा यहीं पर राक्षसेश्वर विभीषण चार मन्त्रियों के साथ जीवितार्थ प्राप्त हुआ था जिसे लक्ष्मण ने लङ्का के राज्य के लिये अभिषिक्त किया था। यहीं मैं समुद्र से पार जाने के लिये तीन दिन तक स्थित रहा पश्चात् चौथे दिन मुझे क्रोध हुआ तो मैंने धनुष चढ़ाया तब भयभीत समुद्र मेरी शरण में आया। शरण में आया देख सुग्रीव ने कहा हे राघव! इसे क्षमा कीजिये। विनयशील समुद्र द्वारा सेतुबन्ध का उपाय बताना। पश्चात् तीन दिन में वानरों द्वारा सेतु बान्धना। यह देखो स्वर्णप्राकारवाली लङ्का यहीं पर चैत्रशुक्ल चतुर्दशी को महायुद्ध हुआ था जो

अड़तालीस दिन तक चला यहीं रावण का वध हुआ। यहींपर सब देवताओं के समक्ष अग्निदेव में प्रविष्ट हो सीता का शुद्ध हो आना तथा पिता की आज्ञा से अयोध्या जाना। इस प्रकार विमान में बातें करते देख विभीषण के दूतों ने जाकर राम के आने की सूचना उसे देदी। रामागमन को सुन विभीषण ने लङ्कापुरी को सजवाया तथा मन्त्रियों के साथ वह राम के सम्मुख स्वागतार्थ आया। अष्टाङ्ग प्रणिपात से राघव को प्रणाम कर विभीषण ने कहा आज मेरा जन्म सफल है आज मेरे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हो गये हैं। तत्पश्चात् भगवान् का भरत सहित लङ्का में प्रवेश। पुरवासियों द्वारा राम को अनेक प्रकार की भेंट देना। वहां राक्षसालय में तीन दिन तक रहना। चतुर्थ दिन राम के सभास्थित होने पर केकसी ने विभीषण से कहा मैं भी राम को देखूँगी। तब विभीषण ने माता से कहा आप नवीन वस्त्र पहन लीजिये तथा चन्दनयुक्त अर्घ्यपात्र लेकर राजपुत्र का दर्शन कीजिये। ऐसा कहकर विभीषण का राम के पास जाना तथा अपनी माता को दर्शन देने के लिये कहना। तब रामचन्द्रजी ने कहा कि मैं ही मातृदर्शन की आकाङ्क्षा से उनके समीप जाऊँगा। श्री राघव का केकसी को प्रणाम करना तथा कहना जैसे मेरी माता कौशल्याजी हैं वैसे ही आप भी हैं। इसपर केकसी ने कहा चिरञ्जीवी रहो सुखी होवो। पश्चात् विभीषण की भार्या सरमा ने भगवान् से कहा कि आपकी प्रिया जानकी प्रसन्न तो हैं? मैं सीता के चरणों को नित्य स्मरण करती हूं उस देवी को कब देखूँगी। तब भगवान् ने कहा हे शोभने! तुम जाओ। तदनन्तर भगवान् राम का विभीषण को धर्मराज्य की शिक्षा देना। विभीषण ने कहा नरव्याघ्र! मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। इतने में ही बीच में वायु ने राम से कहा यहां वैष्णवी मूर्त्ति हैं जिससे पहिले बलि राजा बन्धन को प्राप्त हुआ था। आप उसे लेजाकर कान्यकुब्ज में स्थापित कीजिये। वायु के अभिप्राय को जानकर विभीषण ने उन्हें रत्नों से अलङ्कृत कर भगवान् राम को अर्पित किया।

राघवेन्द्र ने उस मूर्त्ति को पुष्पक विमान में रख लिया। पश्चात् भगवान् राम का विमान पर सवार होना। आकाशस्थित विमान पर चढ़े राम को विभीषण का विश्वास दिलाना कि हे विभो ! आपने जैसा कहा है वैसा ही होगा। परन्तु हे राजेन्द्र ! इस सेतु से सम्पूर्ण मानव यहां आकर बाधा करेंगे जिससे आपकी आज्ञा भङ्ग होगी। राक्षसेश्वर के वचन सुन भगवान् ने धनुष से सेतु के टुकड़े२ कर दिये। पश्चात् वेलावन में आकर आशुतोष भगवान् भूतभावन रामेश्वर की पूजा की। तब भगवान् रुद्र ने कहा हे राम ! आपका कल्याण हो। देवाधिदेव शङ्कर के अमृतोपम वचन सुनकर भगवान् रामचन्द्र ने रामेश्वर की स्तुति की। पश्चात् वहां से भगवान् का पुष्कर को गमन जहां गायत्री सहित ब्रह्माजी को नमस्कार कर स्तुति करना। स्तुति से प्रसन्न हुए ब्रह्माजी का भगवान् राम से कहना कि हे महाविभो ! आप विष्णु हैं आप तो देवकार्यार्थ मनुष्य शरीर धारण कर अवतरित हुए हैं। जाह्नवी के दक्षिण तट पर वामन देव को स्थापित कर अयोध्या में जाकर सुर-लोक में जाइये। पितामह ब्रह्माजी को प्रणाम कर राम पुष्पक पर सवार हो मथुरापुरी में पुत्र सहित शत्रुघ्न को देख प्रसन्न हुए। शत्रुघ्न ने पुत्रों सहित राघव को साष्टाङ्ग प्रणाम किया। वहां भगवान् पांच दिन रहे। वहां से भगवान् राम का मध्याह्नकाल में गङ्गा तीर पर पहुंचकर भगवान् वामन की स्थापना करना। ब्राह्मणों को भगवान् वामन की दैनन्दिनी पूजा करने की आज्ञा देना तथा लङ्का से प्राप्त हुए धन को विप्रों को दक्षिणा में देना एवं वहीं से सुग्रीव को किष्किन्धा भेजना तथा पुष्पक पर सवार हो पुनः अयोध्या आना। पुष्पक विमान को भगवान् का आदेश कि तुम अब धनेश्वर के पास ही रहो।

पुलस्त्यजी ने कहा कि हे भीष्म ! इस प्रकार तुम्हें भगवान् रामचन्द्रजी के कथायोग से वामन की उत्पत्ति कही अब क्या सुनने की इच्छा है।

भीष्मजी ने पुलस्त्य ऋषि से वामनावतार का माहात्म्य सुनकर भगवान् विष्णु के सम्बन्ध में और आवश्यक जिज्ञासायें की। भगवान् विष्णु के नाभि-कमल का रहस्य उसमें से चतुर्मुख ब्रह्मा की उत्पत्ति और उसका पाद्म महाकल्प में संसार के पद्ममय होने का प्रभाव तथा सोये हुए शेषशायी भगवान् का पुष्करक्षेत्र पर प्रभाव आदि के विषय में तथा सृष्टि के प्रलय के बाद भगवान् के नेत्र निमीलन का काल तथा सृष्टि की उत्पति और उसकी रचना के प्रकार के सम्बन्ध में पूछा। पुलस्त्यजी ने भीष्मजी के प्रश्न की भगवद्गुणानुवाद सुनने के लिये साधुवाद देते हुए प्रशंसा की भगवान् के सम्बन्ध में इयत्तया कुछ भी कह सकना सामर्थ्य के बाहर की बात बताते हुए जैसा भगवान् वेदव्यासजी ने अपनी योगनिष्ठा के द्वारा उस क्रम को बताया था वही कहना आरम्भ किया भगवान् सबके पूज्य हैं सम्पूर्ण संसार के रहस्यरूप, अध्यात्म से पिपासुओं के लिये अध्यात्म, विकर्मीजन के लिये नरक देनेवाले, अधिदैव, अधिभूत सब ही वह गुणातीत प्रभु हैं कर्त्ता, कारक, जहां से बुद्धि का उद्भव होता है जो क्षेत्रज्ञ, प्रणव, पुराणपुरुष, शास्ता पञ्चविधप्राण, अक्षरतत्त्व, काल, पाक, यज्ञ, यष्टा और अधीत सभी भावों द्वारा वही अभिव्यक्त होते हैं सम्पूर्ण विश्व जिससे अर्थभाव से विवर्त्त है वही विश्वपति नारायण तत्त्व है—

यत्सत्यं यदनृतमादिमध्यभूतं यच्चान्त्यं निरवधिकं च यद्भविष्यम्।
यत्किञ्चिच्चरमचरं यदस्ति चान्यत्सर्वं तत्पुरुषवरः प्रधानभूतः॥

जो सत्य अनृत आदि मध्य भूत है जो अन्त्य है निरवधिक तथा जो भविष्य है जोकुछ चर अचर मात्र और उससे अन्य हैं वह सब प्रधानभूत पुरुषवर ही है। सत्ययुग के समय में सत्य, प्राणिसत्त्व और धर्म जैसे सहज गुणों का आधान प्राणिमात्र में अधिकाधिक होता है यह चार हजार वर्षों का समय है सभी वर्ण अपने-अपने कार्यों में ईश्वर समर्पण बुद्धि से लगे रहते हैं यह युग सम्पूर्ण युगों के धार्मिक वातावरण के मानदण्ड की कसौटी है इसकी सन्ध्या २०० वर्ष की है इसमें धर्म चतुष्पाद होता है और अधर्म एक पाद रहता है। इसके बाद तीन हजार वर्षों का त्रेता युग है इसकी भी २०० वर्ष की सन्ध्या की अवधि है इस काल में धर्म के तीन पाद रहते हैं और अधर्म के दो पाद होते हैं। इस काल में लोभ से चतुर्वर्णों में विकृति आती है जिनमें सहनशीलता का अभाव और दौर्बल्य अधिक रूप में परिलक्षित होते हैं बाद में द्वापर की गति विचित्र रूप से ही देव निर्मित है। इसका काल दो हजार वर्षों का है इतने ही २०० वर्षों के काल का सन्ध्या-समय है। इस समय भी रजोगुण से पराभूत होकर प्राणीगण स्वार्थी अधिक होते हैं जो स्वभाव से ही दुष्ट, परवञ्चक और ओछे स्वभाव के पुरुष अधिक होते हैं इस काल में धर्म दो पाद से और अधर्म तीन पाद से रहता है। कलि धर्म के लिये भयावह है सैकड़ों धर्म के विपरीत कार्य हो जाने से यह उत्तरोत्तर ह्रसिमान होगा ब्रह्मण्यभाव को लोग तिलाञ्जलि दे देंगे और आस्तिकता सदा के लिये लुप्त हो जायगी यह काल एक हजार दो सौ वर्ष का सन्ध्याकाल को लेकर है। अब धर्म का एक पाद और अधर्म का चार पाद रह जाता है इसमें वर्ण धर्मों का विपर्यय हो जाता है तपस्वी के छद्म वेष में कामी पुरुष मिलते हैं सभी बिना श्रम किये लाभ उठानेवाले होजाते हैं न कोई साधु है और न कोई सत्यवक्ता; ब्राह्मण लोग नास्तिक और सभी वर्ण अहंकारी और स्नेह हीन बन जाते हैं सभी ब्राह्मण शूद्रों के समान आचरण करने लगते हैं। यह बारह हजार युगों की पूर्व निर्मित व्यवस्था है। हजार वर्षों का ब्रह्मा का एक दिन कहा जाता है। दिन के बीतने पर सम्पूर्ण

प्राणिवर्ग की निवृत्ति देखकर भगवान् संहारबुद्धि से काल सम्पूर्ण देव, दानव, मनुष्य यक्ष, राक्षस, पक्षी, गन्धर्व, अप्सराओं, सर्पों, पर्वतों, नदियों और पशु क्रिमि, कीट और पतङ्ग सबको संहार करने के लिये पञ्चभूतों में भारी वैशस (हिंसन) परिवर्त्तन करते हैं, सूर्य प्राणियों के ओज का और प्राणीमात्र के प्राणों का वायु संहरण करते हैं अग्नि अति प्रचण्डरूप में प्राणिमात्र को जला डालती है और मेघ अति उग्र रूप में वर्षता है सर्वमूर्त्ति नारायण अपनी प्रखर किरणों से समुद्रों को सोख लेता है। सम्पूर्ण नदी, नद समुद्रों का रस लेकर पृथ्वी को पार कर रसातल में ले जाता है सम्पूर्ण प्राणियों का सत्त्व भगवान् पुरुषोत्तम ले लेते हैं वायु सारे संसार को अपने झकझोर हड़कम्प मचादेनेवाले हिलोरों से हिला देते हैं सम्पूर्ण प्राणियों की सत्त्वावस्था को भगवान् मुहूर्त्तमात्र में ही संवरण कर लेते हैं। इस प्रकार सभी प्रकार से संवरण कर भूतभावन भगवान् युगान्त में उस विभूति को स्वयं धारण कर लेते हैं फिर हजारों प्रकार की वर्षा के रूप में भगवान् महाघन बनकर बरसते हैं इसके दिव्य जल से सारी पृथ्वी तृप्त हो जाती है सूर्य, वायु और आकाश के नष्ट होजाने पर सम्पूर्ण सूक्ष्म जगत् के कारण कलापों को अपने में सङ्कुचित (समेट) कर भगवान् सोते हैं। फिर अनन्त युगों के बाद नारायण भगवान् ने सृष्टि परिकल्पना के लिये 'एकोऽहं बहुस्याम्' का सङ्कल्प किया जिससे सात्त्विक व मानसिक सृष्टि से भिन्न-भिन्न अङ्गों से पुरुष यज्ञ के लिये ऋत्विक्, होता, अद्ध्वर्यु, ब्राह्मणाच्छंसि, स्तोता मैत्रावरुण, पोता, अग्नीध्र, याजुष, अच्छावाक्, सामग हुए। वेद और उपनिषत्क्रियाओं का आविर्भाव हुआ। उसी समय मार्कण्डेय जिन्हें पहले विराट् पुरुष ने अपने मुख में निगल लिया था धीरे से मुंह से बाहर निकले। उनने सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार देखा और उन्हें मन में भय की भावना उत्पन्न हुई। अपनी विचित्र स्थिति को देख उन्हें शंका हुई और उन्हें शोक हुआ उन्होंने पुराण पुरुष को सोते देखा और फिर उदरस्थ हो गये। वहां एक विचित्र ही बाहर के वातावरण

से दूसरी स्थिति देखी सर्वत्र पृथ्वी पुण्यतीर्थों के जल से युक्त है बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञों की क्रियापूर्ण की जा रही है चारों आश्रम पूर्ववत् ही हो रहे हैं फिर वे बाहर निकले और पीपल के पेड़ के पत्ते पर बालक को सोये हुए देखा और अपनेको अकेला देख वे बहुत विस्मय में पड़े और बालक को अभिवादन करते हुए अपना विस्मय कहा। फिर उस बालक ने मार्कण्डेय को अभय दान दिया मार्कण्डेय और बालमुकुन्द भगवान् के उत्तर-प्रत्युत्तर और मार्कण्डेय को पूर्वजन्म की सारी कथा विस्तार से समझाई जिससे श्रद्धा से उनका शिर नत हो गया और इस सारी योजना के सम्बन्ध में पूछताछ की। भगवान् ने सम्पूर्ण चर अचर सृष्टि में अपना ही ओज, सत्त्व और स्थिति बतलाई। फिर मार्कण्डेय भगवान् की कुक्षि में प्रवेश कर गये भगवान् ने बहुत समय तक कठिन तपस्या की और महाभूतों का विश्व के चिरनिर्माण के लिये चिन्तन किया साथ ही समुद्र को बड़े जोर से हिलाया जिससे सूक्ष्म छिद्र से वायु का निकास हुआ आन्तरिक हिलोरों से वह बढ़ता ही गया उसके हवा के साथ सङ्घर्ष होने से अग्नि की उत्पत्ति हुई उस अग्नि ने जल की मात्रा को बहुत बड़े विस्तार से सुखा दिया सारे जलीय स्तर के घट जाने से आकाश स्वतः निकल आया इस प्रकार समुद्र के छिद्र सम्भूत आकाश, आकाश से वायु और सङ्घर्ष से अग्नि हो गये फिर बहुरूप भगवान् ने ब्रह्मा के प्रादुर्भाव की चिन्ता की और वे जलक्रीड़ा करने लगे जिससे उनकी महती नाभि से कमल की उत्पत्ति हुई जो रङ्गविरङ्गे हजारों रङ्गोंवाला, रजोगुण से रहित सूर्य की आभा से युक्त हिरण्यमय रूप था।

उसमें से सम्पूर्ण लोकों को रचनेवाले ब्रह्मा का प्रादुर्भाव हुआ वही पद्म रसा या पृथ्वी के नाम से कहा जाता है जो पद्म केशर हैं वे सम्पूर्ण पर्वत हैं इनके बीच में जम्बूद्वीप है उससे बाहर की पत्तियों में म्लेच्छादि देश हैं नीचे के भाग के कमलदलों में दैत्य, असुर और नाग इनका वासस्थान है इन्हीं के बीच में रसातललोक है जहां महापातकी रहते हैं भगवान् की रचना के लिये पृथ्वी पुष्कर-सम्भवा हुई इसीलिये यह प्रादुर्भाव भी पुष्कर नाम से प्रसिद्ध है। तपस्या करते भगवान् ब्रह्मा को मधु और कैटभ नामक दैत्यों ने देखा उन दोनों ने ब्रह्मा को उनके उत्पत्ति करनेवाले के सम्बन्ध में पूछा और अपनी युद्धोन्माद की बात कहकर उनके साथ युद्ध की चुनौती दी। पद्मस्थित ब्रह्मा ने अपना परिचय अनन्त शक्तिधारी शेषशायी विष्णु से उत्पन्न सृष्टि का सर्जन करनेवाले ब्रह्मा के रूप में दिया और उनके और भी अधिक राजसी तथा तामसी भाव दिखाने पर ब्रह्मा ने वासुदेव भगवान् के द्वारा उनके नाश होने की बात कही। भगवान् विष्णु ने सोते-सोते अपना हाथ फैलाया और उन्हें अपने बलवान् हाथों में जकड़ लिया अब अपना वश न चलते देख भगवान् से वर देने को कहने लगे। भगवान् ने कहा आयु समाप्त होनेपर जीवित रहना चाहते हो इस समय कुछ भी शक्य नहीं फिर भी उनके अनुरोध पर कलि में भगवान्

के अंश से पुत्रता प्राप्ति की कामना पूर्ण होने का वर दे दिया और उन्हें पृथ्वीपर पछाड़ दिया। ब्रह्मा ने कठिन तपस्या की। सृष्टि रचना के लिये उसी समय योगाचार्य और साङ्ख्याचार्य के वेश में भगवान् आये और ब्रह्मा को बोधन किया। ब्रह्मा ने मानस सन्तान भूः भुवः स्वर्लोक पुत्र रूप से उत्पन्न किये उन्होंने कुछ करने की आज्ञा चाही तो उनने तीनों को भगवान् शम्भु के यहां भेज दिया। नारायण और यतीश्वर कपिल ऊर्जित गति (ऊर्ध्वगति) को प्राप्त हो गये फिर ब्रह्मा ने तप करने में अशक्तता समझ अपने आधे शरीर से सुन्दर भार्या निकाली। अपने सदृश धर्म, प्रजापति, दक्ष, मरीचि, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वशिष्ठ, गौतम, भृगु और अङ्गिरस उत्पन्न किये। दक्ष के कन्यायें अदिति आदि हुईं। मरीचि के कश्यप तपस्या से हुए उसे दक्ष ने अपनी बारहों कन्यायें ब्याह दी रोहिणी आदि को सोम के लिये दे दिया। दक्ष की कन्याओं के वंश का सविस्तर वर्णन इसी प्रकार सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति का क्रम संसार में प्रचलित होने लगा दक्षादि प्रजापति आदि की उत्पत्ति को जो सुनता है उसकी सब कामनायें पूर्ण होती है और अभ्युदय तथा निःश्रेयस् की प्राप्ति होती है।

कृतयुग में तारकामय संग्राम विशेष महत्व का है। जब दानवों ने बहुत अधिक देवगण को तंग करना आरम्भ किया तो उन्होंने भगवान् विष्णु का ध्यान किया तो बहुत ही विपरीत रूप से हवा और मेघों से आकाश आछन्न हो गया सभी किसी महान् आपत्काल का आगमन समझने लगे इसी समय विष्णु शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण कर सम्मुख उपस्थित हुए। भगवान् के सामने सब लोग हाथ जोड़ शिर झुकाकर विनय से खड़े हो गये और सब जय जयकार करने लगे भगवान् ने देवगण का कष्ट सुन असुरों को नष्ट करने का उन्हें वचन दिया। इसपर सभी देवगण निर्भय हो गये और सर्वत्र शान्ति का वातावरण हो गया। मय ने युद्ध की साज सज्जा के लिये सुन्दर रथ और भयङ्कर अस्त्रशस्त्रों का निर्माण किया उसके अन्य सेनापति हयग्रीव, बलिपुत्र, दुर्धरायुध

आदि सम्पूर्ण चतुरङ्गिणी सेना के साथ युद्ध के लिये पूर्ण सज्जित हो गये इसी समय ऐसा मालूम होता था कि देवगणरूपी सूर्य को उगते ही असुररूपी मेघमालायें अपनी घनघोर घटाओं से आच्छन्न कर उन्हें शक्तिहीन बना देंगी। दैत्य लोग पूरी तैयारी कर युद्ध में आ डटे अपने विरोधियों द्वारा इतनी अधिक सज्जा होने पर देवगण भी अपने-अपने आयुधों को तैयार कर युद्ध की चुनौती लेने के लिये पूरी तैयारियां करने लगे।

आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विनीकुमार, लोकपाल, गरुड़, देव, गन्धर्व और यक्षगणों आदि से युक्त इन्द्र अपने सुन्दर रथ पर मातलि सारथि के साथ युद्ध में उपस्थित हो गये इनके साथ अन्य देवगण भी अपनी-अपनी सम्पूर्ण शस्त्रसामग्री से सज्जित होकर आगये जब सब कोई देवगण आजुटे तो बृहस्पतिजी ने देवताओं को और शुक्राचार्यजी ने दैत्यों को आशीर्वाद दिया। दोनों ओर से युद्ध जीतने की इच्छा से तुमुल युद्ध हुआ। शनैः२ यह युद्ध भयंकररूप धारण करने लगा सम्पूर्ण दैत्य सेना के अच्छे-अच्छे योद्धागण काम आने लगे उधर मय ने अपनी तामसी महामाया के प्रभाव से और्व वह्नि से इन्द्र की विजय को मिट्टी में मिलाना आरम्भ किया और राक्षस लोग फिर से युद्ध करने के लिये उठ खड़े हुए सभी देवगण अग्नि के ताप से त्रस्त चन्द्र की शीतल किरणों के जलवाले तड़ाग में चले गये। इस जटिल समय में इन्द्र के पूछने पर वरुण ने उर्व ऋषि के सम्बन्ध में

बताते हुए कहा कि उन्हें सब दुःख कहने से वह बहुत अधिक सहायक हो सकते हैं उनके पास सब मुनिगण देवर्पि सहित देववृन्द गये और केवल उनसे पुत्रोत्पादन के लिये आग्रह किया उस समय उर्व ने अपने उरु को एक दर्भा से मन्थन कर प्रसवारणि को पैदा किया वह तत्काल उत्पन्न हो गया। वह बहुत बुरी तरह भूख से व्याकुल हो पिता से उसे सन्तुष्ट करने के लिये आज्ञा मांगने लगा उसी समय बड़ी तीक्ष्ण ज्वालायें निकलने लगी जिससे आशङ्कित होकर ब्रह्मा नें उर्व के पास आकर उसे सहायता करने का वचन देते हुए शान्त करने का अनुरोध किया। ऋृषि ने उसके रहने आदि के विषय में ब्रह्मा से पूछा जिसका उत्तर देते हुए ब्रह्मा ने कहा कि यह समुद्र में निवास करेगा और वारिरूप हवि का पान करता हुआ रहेगा इसके बाद उर्व की आज्ञा से वह वहां चला गया। हिरण्यकशिपु ने उर्व की यह प्रत्यक्ष लीला देखकर उन्हें अपना गुरु बनाने का प्रस्ताव किया इसे उर्व ने स्वीकार कर लिया। वरुण ने इन्द्र से कहा कि यह दानवों की माया शीघ्र ही वश में नहीं आसकती इसके लिये मुझे मेरा साथी चन्द्र दे दीजिये उसके साथ यादोगण जलजन्तुओं की सहायता से इस माया को समाप्त कर दूंगा। इन्द्र ने तथाऽस्तु कहकर चन्द्र को शिशिरायुध काम में लाने के लिये कहा जिससे आसुरी माया का शमन हो और जलते हुए देवगण बचा लिये जांय इसपर चन्द्र ने हिमवर्षा की और वरुण ने समुद्रों का जल उड़ेल दिया। पर मय ने पार्वती माया की रचना की इससे सर्वत्र पर्वत ही पर्वत हो गये और इन्द्र के आज्ञाकारी वरुग तथा चन्द्रमा की माया अन्तर्हित हो गई तब भगवान् विष्णु ने युद्ध देखने की कामना से अग्नि और वायु को आज्ञा दी कि तुम दोनों अपनी२ माया को फैलाओ। उनके वेग से पर्वतमयी माया अधिक न टिक सकी और जलकर कहीं की कहीं उड़ गई उन्होंने दैत्य सेना को जलाया तो उनका भी ठिकाना न रहा। इसपर सब देवगण जयजयकार करने लगे अब कालनेमि नामक दैत्य ने नई माया फैलाई और भयङ्कर हजारों शिर,

मुंह, हाथोंवाले रूप का विशाल देह धारण कर देवताओं को फिर चिन्तित बनाने लगा। उसने युद्ध में मृत सभी दैत्यों को उठो कहकर जिला दिया इसपर सब देवगण चिन्ता करने लगे। सभी दैत्यों को सङ्गठित कर वह फिर देवताओं को युद्ध के लिये ललकारने लगा। कालनेमि की इस माया से एक बार फिर दोनों ओर की चतुरङ्गिणी सेनाओं का घोर युद्ध हुआ कालनेमि ने देव सेना का बहुत अधिक ह्रास किया और अपने बढ़ते हुए प्रभाव से विष्णु भगवान् के साथ युद्ध करने की ठानी। उसने विष्णु भगवान् को युद्ध के लिये तैयार देख दैत्यों से मधुकैटभवध से लेकर अबतक की सारी घटनाओं में देवताओं के बड़े सहायक तथा दैत्यों के उग्र संहारक के रूप में विष्णु को भला-बुरा कहा और इस बार अपने द्वारा विष्णु का काम पूरा किये जाने की निश्चयात्मक बात कही विष्णु ने उसके इन अभिमानपूर्ण वचनों के उत्तर में मर्यादा का उलङ्घन करनेवाले इस दैत्य को अधिक-से-अधिक लोक मार्ग को बाधक बताते हुए उसे ठीक करने तथा उसके विनाशकरने की बात कही। उस कालनेमि ने अपने सभी सहायकों के साथ अपने सैकड़ों हाथों में अस्त्र-शस्त्र लेकर युद्ध में उपस्थित होकर विष्णु को चुनौती दी। युद्ध में उस दैत्य ने अपनी गदा का प्रहार विष्णु के वाहन गरुड़ पर किया जिससे वह अत्यधिक व्यथित हुआ इसपर विष्णु ने चक्र छोड़कर कालनेमि की सब भुजाओं का संहार कर दिया साथ ही उसके मुख भी काट दिये। गरुड़ ने अपने पङ्खों के प्रहार से उस कबन्ध (धड़) के राक्षस को नीचे गिरा दिया उस तारकामय संग्राम में बहुत अधिक असुरों का संहार हुआ और विष्णु की पूर्ण कृपा से देवगण विजयी हो गये ब्रह्माजी ने आकर विष्णु भगवान् से प्रार्थना की कि आपने देवताओं का कंटक (कांटा) निकाल बाहर किया है आपके इस अद्भुत कार्य से हम सब प्रसन्न हैं आप स्वयं संसार में वर स्वरूप हैं हम सब आपको क्या वर दें। इसपर भगवान् ने सब देवगण को बुलाकर कहा कि इस युद्ध में दो दानव निकल गये हैं विरोचन और स्वर्भानु। अब आपलोग अपने-अपने

स्थानपर जाकर यज्ञभाग ग्रहण करें तथा सभी ब्राह्मण ऋषिगण अपने वेदविहित यज्ञों द्वारा देवगण एवं पितरों को तृप्त करें अब सर्वत्र शान्ति का अखण्ड राज्य हो गया है अपने-अपने कार्यों में आप सब प्रवृत्त होवें। इन दैत्यों पर किसी भी समय आपलोग विश्वास न करें क्योंकि ये लोग समय देखकर आप जैसे सद्वृत्तों को बड़े कष्टों में डाल देते हैं ऐसा कहकर भगवान् विष्णु ब्रह्माजी के साथ ब्रह्मलोक को चले गये।

भीष्मजी ने पुलस्त्यजी से कमलोद्भव ब्रह्माजी के सम्बन्ध में उत्तर पाकर फिर भगवान् शङ्कर के माहात्म्य और कार्त्तिकेय की उत्पत्ति तथा तारकासुर के सम्बन्ध में कई प्रश्न पूछे इसपर पुलस्त्यजी ने कहा प्राचीन समय में दिति के गर्भ से कश्यपजी के वरदान द्वारा वज्र के सारभूत अङ्गों से सब शास्त्रों के वेत्ता वज्राङ्ग नामक पुत्र के उत्पन्न होने पर उसने माता से अपने लिये कुछ करने की आज्ञा मांगी। माता ने कहा कि इन्द्र ने तुम्हारे भाई दैत्यों का संहार किया है सो उसका बदला लो माता की कहने की देर थी कि वह देवलोक में गया और इन्द्र को अपने पास में बांधकर माता के सामने ले आया। इसी समय कश्यपजी और ब्रह्माजी दोनों माता और पुत्र के पास पहुंच गये और उन्हें इस प्रकार कहने लगे हे पुत्र! इस देवेन्द्र को छोड़ो इससे अपना क्या प्रयोजन है? सम्भावित का अपमान ही वध करने से कहीं बढ़कर है हमारे कहने से यह जो मुक्त हुआ है उसे तुम मृत ही समझो इसपर वज्राङ्ग ने माता की आज्ञापालन की बात कही और ब्रह्माजी की आज्ञानुसार

उस देवराज को छोड़ दिया और अपनी तपस्या करने की बात (का प्रस्ताव) उनके सामने कही। ब्रह्मा ने तप करने की अनुमति देते हुए चित्त शुद्धि उसका फल बताया और एक सुन्दर कन्या पैदाकर वराङ्गी नाम रखकर उसकी पत्नी के रूप में सहचरी करदी ब्रह्माजी चले गये और उस वज्राङ्ग ने अपनी स्त्री वराङ्गी के साथ एक हजार वर्ष तक तपस्या की उससे विचलित होकर इन्द्र ने उसकी स्त्री को नाना प्रकार से कष्ट देना आरम्भ किया। वज्राङ्ग की महिषी ने यह सब लीला शैलराज की जानकर उन्हें शाप देने की तैयारी की बेचारे पर्वत ने यह सारा रहस्य खोलकर इन्द्र की योजना बताई। इसी समय वज्राङ्ग को वर देने के लिये ब्रह्मा उपस्थित हुए वज्राङ्ग ने ब्रह्माजी से कहा कि मुझे कभी आसुर भाव न सतावे मेरे लोक अक्षय हों तपस्या में मेरा मन लगा रहे इसी में शरीर का वर्त्तन हो एवमस्तु कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान कर गये। वज्राङ्ग जब अपने आश्रम में अपनी स्त्री से मिलने गया भूखा होने से वह फल लाने के लिये पर्वत के ऊपर वन में घुसा वहां वराङ्गी को रोते देख उसका कारण पूछा। वराङ्गी ने इन सबके मूल में देवराज इन्द्र को कारण बताया और पति से अनुरोध पूर्वकक इस दुःख से छुटकारा पाने के लिये तारकपुत्र को उत्पन्न करने का आग्रह किया। वह इन्द्र को शिक्षा देने में समर्थ होने पर भी फिर तप ही करने लगा। ब्रह्माजी उसके स्थिर सङ्कल्प को देख फिर प्रगट हुए और उससे वर मांगने के लिये कहा उसने तेजस्वी पुत्र प्राप्ति के लिये कहा (वज्राङ्ग ने अपनी पत्नी के इच्छित फल की बाततारक पुत्र को प्राप्ति के लिये कही)। ब्रह्मा ने तथाऽस्तु कहकर अन्तर्धान किया। इसके बाद वराङ्गी ने गर्भ धारण किया। वराङ्गी ने एक हजार वर्ष के बाद ऐसे बलिष्ठ पुत्र को उत्पन्न किया जिसके गर्भ से बाहर आते ही चारों ओर भूकम्प; पर्वतों के कम्प आदि सङ्घर्ष सामने आये इसपर सब देवगण हतोत्साह हो गये। दैत्यों में उत्साह की लहर फैली और कुजम्भ महिष आदि ने उसे दैत्यराज के रूप में अभिषिक्त किया। तारक ने अपनी यह इच्छा प्रगट की कि देवों को वश में लाने के लिये तपस्या ही

बड़े से बड़ा साधन है और वह तब पारियात्र पर्वत पर तपस्या करने के लिये चला गया। बड़ी कठिन तपस्या के बाद ब्रह्माजी ने प्रगट होकर वर मांगने के लिये कहा। तारक ने कहा किसी भी प्राणियों से मेरी मृत्यु न हो इसपर ब्रह्मा ने कहा कि प्राणियों की मृत्यु तो निश्चित है। अब दूसरा वर मांगो इसपर सात दिन के बच्चे को छोड़कर किसी के द्वारा मेरी मृत्यु न हो यह मांगा तथाऽस्तु कहकर ब्रह्माजी अपने लोक में चले गये और दैत्यगण अपने२ घर। राजधानी में लौटकर तारक ने अपने इष्ट मन्त्रिगण को बुलाकर सब देवगण को वश में करने की बात कही इसपर ग्रसन नामक दानव सारी सेनाओं को एकत्रित कर युद्ध के लिये तैयारियां करने लगा। सम्पूर्ण दैत्य सेनायें एकत्र होने लगीं इन सब की पूर्ण सज्जा देखकर वायु ने अपनी ओर से इन्द्र को सूचना दी। उन्होंने बृहस्पतिजी से अपने कर्त्तव्य के विषय में पूछा। बृहस्पति ने साम, दान, दण्ड और भेद की नीति का उल्लेख करते शत्रु के साथ दण्ड के कार्य का विशेष जोर देकर प्रतिपादन किया। तब इन्द्र ने सब देवगण का युद्ध की तैयारी के लिये आह्वान किया फिर तो सबने अपने-अपने यानों पर चढ़-चढ़ कर अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित होकर युद्ध के लिये प्रस्थान किया। इसपर तारक ने अपने दैत्यों को कहा कि तुमलोग सब देवगण को बांध-बांधकर ले आओ मारो मत। तब दैत्यों ने लोकपालों और रुद्रों को बांध-बांध कर तारक के सामने प्रस्तुत किया।

जब एक द्वारपाल ने आकर तारक को कालनेमि द्वारा देवताओं को बांध कर लाने की बात कही और पूछा कि इन बन्दी देवगणों को कहां रक्खा जाय इस पर तारक बोला कि देवगण को उनकी जहां इच्छा हो वहां छोड़ दो केवल एक इन्द्र को मुण्डन कर और कुत्ते के पैर से चिन्हित सफेद वस्त्र पहनाकर छोड़दो ऐसा करने पर सभी देवगण दुःखित होकर भगवान् जगद्गुरु ब्रह्माजी के पास गये और उनसे प्रार्थना की। ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर सबके दुःखों को पूछा वायु ने

सबके प्रतिनिधि होकर बतलाया कि देवराज और देवगण को तारक के दैत्यों ने बहुत करारी हार दी है देवगण का यज्ञभाग वे सब हठात् ले लेते हैं। उनके विमानों को छीनकर दैत्यों ने अधिकार जमा लिया ये देवगण तारकासुर के भय से सुरपुर को छोड़कर कानन एवं पर्वतों की कन्दरा में शरणार्थी जीवन बिता रहे हैं आपने ही आदियुग में देवगण को मारनेवाले दैत्य वज्र की रचना की है इसके साथ-साथ इन देवगण के यक्ष सिद्ध और गन्धर्वों को उन सबने अपनी सेवा के लिये काम में लगा दिया है ये दैत्य सब आये दिन नई-नई योजनाओं से देवगण को त्रास दे रहे हैं उनके दुःखों की कथा आपसे अधिक और कौन जान सकता है। इन सभी पापी लोगों की अधिक वार्ता पाप बढ़ाने के लिये ही पर्याप्त समझिये। एक शब्द में, देवगण अशरण हो गये हैं उनके लिये आप मार्ग बताइये। ब्रह्मा ने उन्हें सन्तोष और धैर्य देते हुए कहा कि मैंने ही उसे किसी बहाने से अवध्य होने का वर दिया है परन्तु उसने सात दिन के शिशु को छोड़कर किसी से न मारे जाने का वर मांगा है सात दिन का ऐसा बली बालक भगवान् शङ्कर को छोड़ दूसरे से होना अशक्य है। अपत्नीक भगवान् शङ्कर के हिमालय की पुत्री पत्नी रूप से होगी और जैसे अग्नि उत्पन्न होती है वैसे यह उत्पन्न होकर आप सब का तारक होगा आपलोग कुछ समय प्रतीक्षा करें। ब्रह्मा ने देवगण के विदा होने पर रात्रि को याद किया और उसे सारी बातें कहीं कि कैसे दक्ष की पुत्री सती पिता से अनबन होने से यज्ञ में आत्मसात् हो गई और दूसरे जन्म में हिमालय के यहां कन्यारूप में उत्पन्न हुई है। भगवान् शङ्कर सती के विरह में एकान्त हिमालयमें उसके जन्म के प्रतीक्षा में तप करते हैं। उन दोनों के सम्बन्ध से जो सन्तान उत्पन्न होगी निश्चय ही वह तारकासुर का विनाश करेगी जब भगवान् चिर विरह से उत्कण्ठित होकर सङ्गम करेंगे और उनमें किसी विषय को लेकर आपस में वाक्कलह (बातों में कटुता) होगा तो तारक के लिये संशय होगा उस सुरत की आसक्ति में विघ्न करने के लिये तुम्हें मैं उपाय बताता हूं जिसे तुम्हें काम में लेना होगा वह सुनो।

तुम उस समय तक दैत्यों को नहीं मार सकोगी जबतक सुरेश्वरी अपने अन्दर पूर्ण शरीरोत्कर्षवाली न हो। अतः तुम अंशरूप से उसकी सहायिका बनोगी सर्वप्रथम उमा और फिर शैलजा होओगी तेरे अंश से उसका नाम भवानी होगा तुम्हें भिन्न भिन्न रूपों से देव, ऋषि और मनुष्यगण पूजा कर अभीष्टसिद्धि पावेंगे तुम गायत्री, भूमि, क्षान्ति, नीति, मुक्ति सभी रूप बनाकर संसार का हित साधन करोगी अब जाओ और हिमालय की पत्नी में प्रवेश करो। उसी समय रात्रि हिमालय की पत्नी मेनका के महल में चली गई दिन के बाद रात्रि आई और वह रतिसुख के साथ ही मुखमार्ग से मेनका के हृदय में प्रवेश कर गई और प्रसव की निश्चित अवधि पर मेना को पुत्रीरत्न की प्राप्ति हुई उस शुभ वेला में सर्वत्र मङ्गल-ही-मङ्गल हो गया हिमालय को बधाई देने के लिये सम्पूर्ण सागर और नदियां उमड़ पड़े और पुत्री के जन्मोपलक्ष्य में बहुत ही बधाइयां हिमालय द्वारा बांटी गई। चन्द्रकला के समान वह पुत्री बढ़ने लगी। इसी समय देवराज इन्द्र ने नारदजी को विशेष कार्य सम्पादन के लिये निमन्त्रित किया। जब नारदजी आये तो उन्होंने देवराज से कुशलक्षेम पूछा इन्द्र ने हिमालय के यहां कन्याजन्म का मङ्गलवृत्त सुनाकर नारदजी से अनुरोध किया कि यह शैलजा (हिमालयपुत्री) भगवान् शङ्करजी के साथ ब्याही जाय इसके लिये देवगण के द्वारा जो करणीय हो वह करना चाहिये। नारदजी शीघ्र ही इन्द्र से आज्ञा लेकर हिमालय के यहां आये और ऋषि प्रवर नारदजी को आते देख पूर्ण सत्कार से वह अपने यहां लिवा ले गये तथा अभिवादन किया आपस में कुशलक्षेम पूछने के बाद नारदजी ने हिमालय की प्रशस्ति की और उन्हें इसलिये धन्यवाद दिया कि इनकी कन्दराओं में ऋषि महर्षियों की साधना होती है भगवान् शङ्कर भी भगवान् राम का ध्यान करते हुए वहां विराजते हैं ऐसा वार्तालाप हो ही रहा था कि देवर्षि नारद को आया सुनकर मेना अपनी कन्या को लेकर उनके दर्शनों को आई। कन्या को देखकर देवर्षि

ने वर्द्धापन किया और उसे "आओ पुत्रि! बैठो" ऐसा कहा हिमालय कन्या पिता की गोद में बैठ गई जब माता ने उसे मुनि को प्रणाम के लिये कहा तो वह सङ्कोच और लज्जा से माता के घूंघट में अपना मुँह नीचा कर छिपाने लगी। दूसरी बार कहने से उसने वन्दन किया और माता ने अपनी सहेलियों के द्वारा सौभाग्यदर्शी भविष्य के सम्बन्ध में नारदजी से पूछने का अनुरोध किया। हिमालय के अनुरोध से नारदजी ने बालिका के सामुद्रिक चिन्ह देखे और बोले इसका पति लक्षणों से वर्जित उत्पन्न ही नहीं हुआ यह सदा उत्तानहस्त रहेगी और चरणों में व्यभिचारी रेखाएँ विद्यमान होने से सुच्छाया होगी और क्या कहना बाकी रह गया। अभिप्राय को न समझने से विकल हिमालय ने इसका विस्तृत विवरण जानना चाहा और आंखों में आंसू लाते हुए उसने भगवान् की रची मर्यादा द्वारा सृष्टि सञ्चालन की बात विस्तार से कही और यह भी कहा कि पुत्री का विवाह और आगे उसकी सम्यक् आवासादि की योजना पिता का दायित्व है जब आपने उसका भविष्यफल कह दिया है तो सचमुच मेरे लिये विचार और चिन्ता का विषय हो गया कृपया मुझे समझाइये क्या फल है? कारण आपके द्वारा बताये गये शरीर के सामुद्रिक चिन्ह और ही फलों का सङ्केत करते हैं। देवर्षि ने हिमालय की शंकाओं का निराकरण कर थोड़ा स्मित करते हुए कहा पर्वतराज आप महान् हर्ष के अवसर पर अपना दुःख प्रगट करते हैं सब बातों को जाननेवाले आपको भी मोह हो रहा है अब सुनिये इसका पति नहीं हुआ जो यह कहा है वह भगवान् देवाधिदेव साक्षात् शङ्कर अजन्मा हैं मुनीन्द्र, सुरादिगण उनका ध्यान करते हैं विष्णु नाना युगों में कल्पभेद से आविर्भूत और तिरोभूत होते हैं परन्तु उनका तो यह सब नहीं वह इनसे परे हैं और यह लक्षणों से वर्जित हैं उनका अभिप्राय यह है कि 'अनन्त सौभाग्य, आयु, धनादि की विशिष्ट अधिकारिणी इस तुम्हारी पुत्री का क्या सामुद्रिक लक्षण हो सकता है। उत्तानकरवाली यह साक्षात् देवी रहेगी सो सम्पूर्ण

सुरासुर, मुनि और अन्य सभी आपामर प्राणिमात्र को शुभ वर देनेवाली होगी; इसके पैर सुच्छाया से व्यभिचारी हैं जब पद्म के समान स्वच्छ इसके पैरों के उज्ज्वल नखों पर देवासुर सभी नतमस्तक होंगे तो उनके शिरोरत्न और मणियों की कान्ति की छाया से वे नख विचित्र माना रंगों से बिम्बित होने से सुच्छाया एवं व्यभिचरित होंगे। संक्षेप में, भगवान् भूतभावन अनादि निधान भूतपति शङ्कर की यह पत्नी होगी सम्पूर्ण लोक की जननी इस महाशक्ति का भगवान् से योग हो "रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन" के अनुसार शीघ्र ऐसी व्यवस्था कीजिये इससे देवगण का बहुत बड़ा कार्य सिद्ध होगा। हिमालय ने नारदजी की अद्भुत दृष्टि और सूक्ष्मविवेचनशक्ति से अपना समाधान पाकर बहुत कृतज्ञता प्रगट की और बाग् बाग् हो गये तब नारदजी ने अपनी शुभाशंसना कहते हुए सुरपुर को प्रस्थान किया वहां देवराज इन्द्र को सारी घटना कह सुनाई परन्तु कामदेव का इस कार्य में विशेष योग होने के लिये प्रस्ताव रक्खा। इन्द्र ने कामदेव का स्मरण किया उनके आते ही रति के साथ जाने को कहा परन्तु कामदेव ने अपना भय बताया कि इतना सब होने पर भी शङ्कर दुःसाध्य हैं कारण महान् पुरुषों का प्रसाद भी क्रोध का कारण होता है इन्द्र के समझाने-बुझाने से कामदेव राजी हो गये और उसने जाने की पूरी तैय्यारी की उसने महात्मा पुरुषों के मन को अविजित समझ उसीको केन्द्रबिन्दु बनाकर मन पर अधिकार करने की ठानी। काम ने वहां पहुंचकर वीरकगण और आश्रम का मृदु-शान्त वातावरण देखा इसे देखते ही उसने पहले बसन्त का विकाश किया और सर्वत्र पुष्पों पर भौंरे गुञ्जारने लगे स्वयं कान से मन पर अधिकार किया और शङ्कर दक्षतनया से कामपीड़ित हो सङ्गम करने की इच्छा से उसे याद करने लगे। परन्तु दूसरे ही क्षण उन्हे अपनी लक्ष्यसिद्धि में बाधक मदनात्मिका विकृति का भान हो गया और योग द्वारा धैर्य धारण कर योगमाया से मदन को बाहर निकाल दिया और वह कुछ क्रोधित भी हुए। उस माया से आविष्ट

बेचारा जलने लगा (व्यथित हुआ) केवल इच्छा शरीरवाला इसीलिये दुर्ज्ञेय दोषों का घर, उदाराशय वासना ही एकमात्र व्यसनवाला वह काम बाहर आ गया और वसन्त के साथ अपनी माया को विशेष रूप से फैलाने लगा बिना विचारे ही उसने अपना सम्मोहन अस्त्र शङ्करजी के हृदय पर छोड़ दिया व उसने कई जली-कटी भी सुनाई बस वही हुआ जो अकल्पित था। शङ्कर ने अपना तृतीय नेत्र जलती हुई अग्नि से खोला और कामदेव वहीं भस्म हो गया। मदन की स्त्री रति और वसन्त दोनों इस दुर्घट घटना से शोकाकुल हो शङ्कर की शरण में गये। अपने शरीर में कामदेव की भस्म को लगाकर रति घुटने टेक भगवान् से प्रार्थना करने लगी उन अविकारी भूतभावन ने रति पर कृपा कर अनङ्ग रूप में उसका पति शीघ्र विख्यात होगा यह वरदान दिया जब अपने सतीत्व का ध्यान रख वह मरने पर उतारू हुई परन्तु शिवजी ने उसे मना किया। नारदजी की प्रेरणा से हिमाचल जब दो सहेलियों के साथ अपनी कन्या को लेकर निकले तो अत्यन्त लावण्यमयी युवती को वन में विलाप करते रोते-कलपते देखा हिमवान् ने उसे सान्त्वना देते हुए उसके दुःख का कारण पूछा रति ने अपनी शोककथा आदि से अन्त तक सुनाई और कामदेव के भस्म होने के बाद कामोत्पत्ति के सम्बन्ध में शङ्करजी की धैर्यवाणी का विवरण किया हिमालय पर मानों सैकड़ों घड़े पानी गिर गये हों वह तो निराश होकर अपनी कन्या को हाथ से पकड़े फिर घर की ओर जाने लगे इस पर भाविनी गति होकर रहेगी शैलपुत्री ने अपनी सहेलियों के द्वारा अपने पिता को कहलवाया कि इस शरीर से क्या। जब ऐसी अवस्था है तो उन्हें तपस्या द्वारा प्राप्त करूंगी क्योंकि दुर्भगत्व होना साधन रहते संसार में व्यर्थ है। अतः मैं तपस्या करने जाऊँगी बेचारे हिमवान् ने गद्गद् स्वर में समझाया हे पुत्रि ! तेरा कोमल शरीर तपस्या के योग्य नहीं भाविनी वार्ता होकर ही रहेगी। अच्छा घर चलकर तुम्हारे लिये कुछ अवश्य सोचा जायगा तपस्या में क्या रक्खा है। इसपर भी

हिमशैलजा घर जाने को राजी नहीं हुई अब पिता चिन्ता कर फिर पुत्री की प्रशंसा करने लगे। इसी समय आकाशवाणी हुई पुत्रि उमा यह चापल तुम कर रही हो इसलिये इनका नाम उमा प्रसिद्ध होगा और साक्षात्सिद्धिरूपा संसार में सबके इच्छित कार्यों को साधेगी। आकाशवाणी से कुछ सान्त्वना पाकर अपनी पुत्री को तप करने की आज्ञा देकर शीघ्र ही वह घर चले आये। पार्वती ने घनघोर वन में जाकर तपस्वी वेष बना पहले पत्तों पर रहकर घोर तपस्या की फिर एक पत्ते पर सौ वर्ष तक रही और फिर निराहार रही उस कठिन तपस्या से सारा भूमण्डल उद्वेलित हो गया तब देवराज इन्द्र ने सप्त-ऋषियों को बुलाकर कहा कि आप हिमाचल कन्या के तप की सिद्धि के लिये अभिमतयोग की व्यवस्था करें। उन्होंने पर्वतपुत्री के पास आकर उसे इस बड़े कार्य के मूल में क्या कामना है यह पूछा मौनधारिणी हिमवान् की पुत्री ने उनको आसन पर विराजने का सङ्केत किया उनकी विधिवत्पूजा करने पर शैलजा ने भगवान् शङ्कर को अपना पति बनाने के लिये कामना से तपस्या करने की बात कही। मुनियों ने पर्वतराज पुत्री के मन की वात जानने के लिये भगवान् शङ्कर की विचित्रताओं की बातें, नग्न रहना, अपने शरीर पर भस्म रमाना, हड्डी का आभूषण पहनना आदि वतलाईं और पूछा कि क्या ऐसे विचित्र पुरुष से तुम्हारा गार्हस्थ्यजीवन निभेगा यह तुम्ही सोचो शङ्कर से तुलना में और और देवगण अधिक सुरूप और अच्छे हैं, उनसे विवाह कर अपना जीवन सुखी बना सकती हो इतने पर भी तुम्हारे भविष्य के शुभचिन्तक पिता हैं उनसे सब ठीक होगा। इसपर शैलजा ने कुछ क्रोधावेश में भगवान् शङ्कर के प्रति कहे गये उपयुक्त तिरस्कार भरे वाक्यों का खण्डन किया और आदि देव शङ्कर ही सर्वोत्कर्षेण विजयतेतराम् है उन्हें छोड़ मेरे लिये कोई भी वरणीय नहीं सप्तर्षि-गण सन्तुष्ट हो साधुवाद देते हुए हिमालय के पास आये और उससे जगदुद्धार के लिये अपनी कन्या शिव को देने के कार्य को शीघ्र करने की बात कही।

मेंना ने कहा कि बिना मांगे हुए कन्या देना ठीक नहीं, फिर मेरी पुत्री शङ्कर की कैसे उपासना करेगी। मुनियों ने कहा उनकी पुत्री के सम्पूर्ण व्रतों के फल की प्राप्ति उनके उपस्थिति में होनी चाहिये। इसके बाद हिमालय ऋृषियों के साथ उमा के तपोवन में पहुंचे उमा ने अपनी इष्ट कामना भगवान् शङ्कर को वरने की प्रगट की और उन्होंने भगवान् शङ्कर से इस प्रस्ताव का निवेदन कर कार्य सिद्धि प्राप्त करने का पूरा आश्वासन दिया। वे सीधे हिमवान् के प्रदेश में शङ्कर भगवान् की सेवा में उपस्थित हुए। वीरक को आगे देख उससे शङ्कर से विशेष रूप से दर्शन करने की आज्ञा लेने को कहा। उसने बताया कि दूसरी सन्ध्या करने वे गङ्गा पर गये हैं अभी आते होंगे। जब अपनी दैनिक क्रिया पूर्ण कर शङ्कर आगये तो वीरक ने सप्तर्षियों के आने की बात कही और दर्शन करने की आज्ञा मांगी। शङ्कर ने मुनियों को बुलाकर यथायोग्य करने को कहा। उन्हों ने शैलजा उमा से विवाह का प्रस्ताव किया और शुभ सूचना दी कि शङ्कर विवाह के लिये तैयार हो गये हैं उसे अपने पिता के साथ घर जाकर तैयारी करनी चाहिये। घर आने पर उमा को पल-पल भारी हो गया और शङ्कर को देखने की लालसा से वह व्यग्र हो गई। ब्राह्ममुहूर्त्त से ही उसके लिये मङ्गल क्रियायें की जाने लगीं और हिमालय के इष्टमित्र अपने दायित्व को पूर्ण करने के लियें आ पहुंचे। उधर शङ्करजी भी अपने साज-बाज से सज्जित होकर हिमाचल के यहां सम्पूर्ण देवगण एवं गणों के साथ बारात सजाकर पहुंचे। अग्निसाक्षी से अपनी पत्नी सहित उमा का पाणिग्रहण कर हिमालय कृतकृत्य हुए और प्रातःकाल होते ही वे हिमालय की आज्ञा लेकर मन्दर-गिरि पर सपत्नीक चले गये वहां पर आनन्दपूर्वक विहार करने लगे। एक बार अपनी सहेलियों के साथ भगवती पार्वती ने कृत्रिम पुत्रों के खिलौने बनाकर खेलना शुरू किया। एक दिन शैलजा उबटन कर अपने मैल को एक स्थान पर रख पुरुषाकृति बना दिया उसे खेलते देख जल में फेंक दिया। वह शिवा की सखी के

निरीक्षण में बढ़ने लगा दोनों ने अपने-अपने पुत्र की सञ्ज्ञा देकर गणेशजी को पुकारा तभी देवगण ने गाङ्गेय सञ्ज्ञा दी। इसके ऊपर ब्रह्माजी ने विनायकाधिपति बना दिया। फिर अशोक वृक्ष को बनाया मुनियों ने तरुरूपी पुत्रों के फल के विषय में पार्वतीजी से मर्यादा पूछी तो जहां जल का अभाव हो वहां एक कुआ बनवादे तो पानी की जितनी बून्दें उसमें हो उतने वर्षों तक स्वर्ग में उसे बनानेवाला रहता है वापी का माहात्म्य दश कुओं के समान है तालाब का माहात्म्य दश बावड़ियों के बराबर है और दश तालाबों का माहात्म्य एक कन्या के समान है दश कन्या के माहात्म्य के समान एक वृक्ष है यही लोकभाविनी शुभ मर्यादा है। शङ्करजी नें पार्वतीजी के साथ गृहस्थ के पूर्ण उत्तरदायित्व का लाभ लिया और अपने गणेशों के सम्बन्ध में उनसे नाना प्रकार की सुखद्वार्ता की। जब पार्वती ने गणेशों के सम्बन्ध में पूछा तो शङ्करजी ने अनन्त कोटियां बताई और कहा कि सिद्धक्षेत्रों में, गली में, जीर्ण उद्यानों में, टूटे घरों में, दानवों के शरीर में, बालबच्चों में और उन्मत्तों में ये सब निवास करते हैं; इनका आहार है गर्मी पीना, आग पीना, धुआं पीना, मधु पीना, मेदाहार, रुधिर पीनेवाले सर्वभक्षक और बिना भोजन के रहनेवाले साथ ही देवताओं को खानेवाले, तपस्वियों को खानेवाले और नाना प्रकार के वाद्य तथा रति में प्रेम करनेवाले हैं ये अनन्त हैं इनका वर्णन करना कठिन है। फिर पार्वतीजी ने गणेश के सम्बन्ध में पूछा। शङ्कर ने उनके लिये प्रशस्ति के शब्दों के साथ अपने हृदय में स्थान है यह बात कही इसपर पार्वतीजी ने अपने लिये पुत्र करने की बात कही शङ्करजी की स्वीकृति से विजया उन्हें बुलाने गई और पार्वतीजी ने स्नेह-पूर्वक उन्हें दुग्धपान करने को कहा। वीरक को अपना पुत्र बनाने के बाद वे सब विशेष आनन्दपूर्वक निवास करने लगे।

भगवान् शङ्कर ने पार्वती को हास्यपूर्वक कृष्ण होने की बात का परिहास किया इसपर पार्वती ने क्रोधित होकर कई प्रकार से जली-कटी सुनाई और बातों-बातों में अपना वर्ण गौर करने की ठानी। इसपर वीरक गणेश ने माता को रोका। इसका उत्तर देते हुए पार्वती ने अपना ध्येय बताया और कहा कि जबतक मेरा तप पूर्ण न हो तबतक किसी स्त्री को शङ्कर के पास न आने देना न मेरे यहां तपस्या के स्थान में कोई आने ही पावे और उसे द्वाररक्षक नियुक्त किया। आगे जाने पर पर्वत की देवता कुसुमामोदिनी मिली और पार्वती से कुशल पूछा और आने का उद्देश्य पूछा। पार्वती ने कहा कि तपस्या के लिये मैं जा रही हूं और जबतक न लौटूं तबतक आप इस प्रदेश में शंकरजी के पास आनेवाली स्त्री का ध्यान रक्खें। भगवती पार्वती ने वन देवता से आश्वासन पाकर अपने पिता के उद्यान में कठिन तपस्या की। पार्वती की तपस्या की बात सुनकर अन्धक का पुत्र बक का भाई रण में कुशल अद्रि नामक चन्द्रमौलि शंकर का अन्तरप्रेक्षी शंकर के यहां आया द्वार पर वीरक को देख तपस्या करने लगा और ब्रह्माजी को प्रसन्न कर उनसे निर्मृत्यु का वर मांगा। ब्रह्मा ने

कहा जन्म लेनेवाले की मृत्यु अवश्य है अतः अपनी असमर्थता प्रकट की। इसपर दैत्य ने कहा कि जबतक मेरा रूप न बदले तबतक मैं अमर रहूं। इसपर ब्रह्मा ने उसकी प्रार्थना स्वीकार की और रूप न बदले तबतक उसे अमर रहने का वर दिया। वह अपने वध का उपाय न स्मरण कर वीरक के जाने बिना सर्प बनकर छेद के द्वार से अन्दर चला गया अन्दर जाने पर उसने सर्प के आकार को छोड़कर भगवती उमा का नकली वेष बना लिया और अपने भग में वज्र के समान दृढ़ दांत बना दिया और बुद्धि के मोह से शंकर को मारने की चाल चलने लगा। शंकर ने उसे पर्वती जान प्रेम से आलिङ्गन पूर्वक कहा कि पहले जो बातें हुईं वे साधुभाव से पूछी गई थी मेरे लिये तो सब ही स्थान तुम्हारे बिना शून्य है। दैत्य ने कहा मैं तपस्या के लिये हिमाचल पर गई और उससे सन्तोष न होने से आपके पास आई हूं। यह सब देखकर और बाईं ओर बाजू में पद्म का चिन्ह न देखकर शङ्कर ने उसे मार डाला। उस दानवेश्वर की इस सारी लीला को वीरक न जान सका और वायु ने जाकर सीधे इस सब का वर्णन पार्वती को कर दिया। पार्वती ने क्रोध में आकर वीरक गणेश को शाप दिया कि तुमने मुझे स्नेहविक्लव जान शङ्कर के यहां स्त्री को आनेदेने का काम किया अब तेरी गणेश के आकारवाली शिला माता होगी इस प्रकार शाप देते ही देवी पार्वती के मुख से क्रोध का सिंह बनकर निकला वह देवीजी के सामने आ गया। भगवान् ब्रह्मा ने उसी समय भगवती पार्वती के पास आकर तपस्या से विराम करने को कहा और पूछा अब क्या इच्छा है पार्वती ने अपने शरीर के काले वर्ण को लेकर जो शङ्करजी से विवाद एवं कटुता उत्पन्न हो गई उसे कहकर अपना रंग काञ्चनवर्ण का करने को कहा और भगवान् भूतनाथ का एक ओर का रङ्ग निर्विष हो; ऐसा है तो आप शङ्कर भगवान् की देह में अर्द्धचारिणी बन जाइये। भगवती का रूप कृष्ण त्वचा के छूटने से सुन्दर गौरवर्ण हो गया और उस भीमकाली त्वचा से तीन नेत्रवाली घण्टा हाथ में लिये सम्पूर्ण

आभूषणों से युक्त निशा उपस्थित हो गई। ब्रह्मा ने उससे साधुवाद की उक्ति कहकर एक अंश से तुम स्थिर रहो और यह सिंह जो पार्वती के क्रोध से उत्पन्न हुआ है तुम्हारा वाहन बने विन्ध्याचल पर चली जाओ। पञ्चाल नाम का लाखों यक्षों का स्वामी तुम्हारा किङ्कर होगा वह पूर्ण मायावी है। वह कौशिकी देवी विन्ध्याचल पर गई अपना सङ्कल्प पूरा कर पार्वती भगवान् शङ्कर के यहां जाने लगी। उन्हें द्वार पर वीरक ने रोका कारण कि अब उनके शरीर की आकृति गौर वर्ण की थी। बीरक ने कहा कि आगे मत जाइये कारण भगवान् को ठगने के लिये एक दैत्य छद्मवेष में आया मैं उसे न देख सका उसको जब भगवान् ने मार दिया तो उन्होंने मुझे आज्ञा दी कि सावधानी नहीं बरतोगे तो मेरे द्वारपाल नहीं रह सकोगे अतः अन्दर जल्दी नहीं जाने दूंगा केवल एक स्नेहवत्सला मा पार्वती को ही जाने दूंगा और किसी स्त्रीमात्र को नहीं। उस वीरक की बातें सुनकर पार्वती ने सोचा कि वायु ने जिस स्त्री के लिये बतलाया था वह दैत्य था इस वीरक को व्यर्थ में ही शाप दिया गया क्रोध में मनुष्य अकार्य भी कर देता है क्रोध विनाश का कारण है अकारण ही इस बेचारे वीरक को शाप दे दिया विपरीत बुद्धिवालों को आपत्तियां सुलभ होती है। पार्वतीजी ने अपनी सारी भूल का परिमार्जन करते हुए कहा हे वत्स! मैं ही पार्वती हूं मेरा रंग काला था। अब ब्रह्माजी से वर पाकर मेरा गौर वर्ण हो गया है मैंने अपनी भूल से तुम्हें व्यर्थ ही शाप दिया है कि जो तुमने एकान्त में शङ्कर के यहां स्त्री का प्रवेश होने दिया और मुझे उसका ज्ञान हो गया। मेरा शाप तो लौटाया नहीं जासकता परन्तु मानुष्य से तूं शीघ्र ही ठीक होगा। वीरक ने स्तुतिपूर्वक भगवती को प्रसन्न किया और वह अन्दर चली गई। द्वारस्थित वीरक ने शङ्कर भगवान् के दर्शनार्थ आये हुए देवगण को शङ्कर की आज्ञा सुनाकर आदरपूर्वक लौटा दिया कि भगवान् उमा के साथ अन्तःपुर में हैं अब समय नहीं है। एक हजार वर्ष बीतने पर देवगण ने मन्त्रणा कर अग्नि से शङ्करजी के

विषय में जानने के लिये अनुरोध किया। अग्नि शुकरूप में छेद में से अन्दर गये। शङ्कर की दृष्टि पड़ते ही उन्होंने क्रोध से कहा कि तुम्हारे विघ्न से स्खलित वीर्य बाहर रह गया है इसे तुम पीओ हाथ जोड़कर अग्नि उसे पी गये और भृगु आदि ने माहेश्वर वीर्य को अग्नि के पेट से निकाल कर शङ्कर आश्रम में ही एक स्थान पर डाल दिया जो कई योजन में सरोवर के आकार का बन गया। इस रम्य सरोवर पर एक बार भगवती पार्वती आईं और पद्मपत्र में जल पीने की इच्छा से कृत्तिका पार्वती के लिये ले गई। कृत्तिकाओं ने कहा कि आपके गर्भ से जो पुत्र होगा वह हमारा भी पुत्र हो और भगवती ने पूछा कि यह मेरे से उत्पन्न पुत्र तुम्हारा कैसे होगा ? उसके उत्तम-उत्तम अङ्ग होंगे और हां कहते ही कृत्तिका ने कमल के पत्ते के पानी को पी लिया उसके पानी पीते ही दक्षिण कोख से अद्भुत बालक हुआ उसके हाथ में उदग्र शक्ति शूल, अङ्कुश और अग्नि थी इसीलिये उसकी कुमार सञ्ज्ञा हुई। फिर बाईं कुक्षि से शिशु हुआ और अग्नि के शरीर से षड्वदन उन दोनों बालकों को जोड़कर एक बनाकर उसका अभिषेक किया गया और देवसेना नामक अपनी कन्या इन्द्र ने उन्हें पत्नी के रूप में देदी। विष्णु ने उसे रथ और आयुध दिये, कुबेर ने दश लाख यक्ष दिये, अग्नि ने तेज दिया, वायु ने वाहन दिया, त्वष्टा ने कुक्कुट कामरूपी खिलौना दिया, उस प्रबल प्रतापी स्कन्द को सब देवों ने हृदय से स्तुति करते हुए साधुवाद दिया। कुमार कार्त्तिकेय ने देवगण से इस सम्बन्ध में क्या करना अपेक्षित है ऐसा पूछा और देवताओं ने तारक दैत्य के द्वारा की जानेवाली सभी विनाशलीलाओं का और अत्याचारों का संक्षेप में वर्णन कर कार्त्तिकेय से उसके निस्तार के लिये अनुरोध किया। आगे-आगे स्कन्द और पीछे-पीछे सब देवगण चले पहले इन्द्र ने अपने दूत को तारकासुर के पास युद्ध की चुनौती के लिये भेजा और तारक ने इसे स्वीकार करते हुए युद्ध के लिये ललकारा। उसे यह सन्देह हो गया कि अब शङ्कर के कार्त्तिकेय उत्पन्न हो गया है जिससे देवगण

को अधिकाधिक शक्ति मिल गई है उसने यह भी सोचा कि यह सब मेरे लिये कोई अशक्य नहीं है देखें क्या होता है। आगे उसने देवबन्दीगण द्वारा कार्त्तिकेय की प्रशंसा सुनी तो अब उसे अपना अन्त समय अत्यधिक सन्निकट मालूम पड़ा। अपने सेनापति को सारी सेना को एकत्र करने के लिये आज्ञा दी। युद्धक्षेत्र में आने पर तारक ने कुमार को युद्धक्षेत्र से लौटने का आग्रह किया परन्तु कुमार ने उसे कहा छोटा देखकर संकोच करने की बात छोड़ देनी चाहिये कारण "तेजसां हि न वयः समीक्षते" बाल सूर्य देखा नहीं जाता वैसे ही मुझे जानो। क्या मन्त्र अल्पाक्षर नहीं होता उसकी क्रिया और साधनायें कितनी विशिष्ट है ? आओ युद्ध करो। इसपर तारक ने मुद्गर से आक्रमण किया उसे कुमार ने बीच में ही काट दिया, इसी प्रकार कुमार पर जो-जो वार दैत्यों ने किया उसने सभी को काट दिया। इधर देवतागण पर असुर लोग अमानुषिक रूप से आक्रमण करने लगे इसी समय क्रुद्ध होकर कार्त्तिकेय ने गदा से तारक को मार दिया। इस असुर के नाश होने से सर्वत्र शान्ति स्थापित हो गई और सभी देवगण अपने-अपने शुभाभिशंसनों से कुमार का अभिवादन करने लगे। इस स्कन्दसम्बन्धी कथा का पाठ करनेवाला कीर्त्तियुक्त, दीर्घायु, श्रीमान् और जरा आदि से रहित होकर निर्भय बन जाता है सन्ध्योपासन के बाद इसे पढ़नेवाला अनन्त फल लाभ करता है।

पितामह भीष्म ने ऋषि पुलस्त्य से भगवान् नृसिंह की पुण्यकथा और माहात्म्य तथा हिरण्यकशिपु-वध के प्रसङ्ग को जानने की कामना की। पुलस्त्यजी ने विस्तार से बतलाया कि प्राचीन समय में दैत्यों का राजा हिरण्यकशिपु हुआ। उसने दीर्घकाल तक बड़ा भारी तप किया। शम दम के साथ पूर्ण ब्रह्मचारी वह तपस्या एवं नियमपूर्वक रहा। ब्रह्माजी उसपर प्रसन्न हो गये और उन्होंने स्वयं प्रगट होकर वर मांगने के लिये कहा। हिरण्यकशिपु ने कहा देवगण, गन्धर्व, यक्ष, सर्प, राक्षस और मनुष्य, पिशाच तथा ऋषिगणों में से कोई भी मुझे न मार सके इसके साथ ही न शस्त्र से, न अस्त्र से, न गिरि से, न वृक्ष से, न सूखे से, न गीले से, किसी प्रकार मेरा वध न हो। संक्षेप में, मैं ही सर्वाध्यक्ष सर्व प्रभु हो जाऊँ।

नदेवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः। न मानुषाः पिशाचाश्च हमन्युर्मां देवसत्तम! ऋषयो मानवाः शापैर्न शपेयुः पितामह!। यदि मे भगवान्प्रीतो वर एष वृतो मया

न शस्त्रेण नचास्त्रेण गिरिणा पादपेन वा।
न शुष्केण नचार्द्रेण नस्याच्चान्येन मे वधः॥ १२-१३॥

चतुमुख ब्रह्मा ने तथाऽस्तु कहकर वर दे दिया और वे ब्रह्मलोक को चले गये। इस वर से देवगण चिन्तित होकर ब्रह्माजी के पास उसकी ज्यादतियों, अत्याचारों के विषय में वार्तालाप कर इसके वध का उपाय पूछने गये। ब्रह्माजी ने आश्वासन देते हुए कहा कि इसने तपस्या की है उसका फल तो वह अवश्य

मांगेगा; परन्तु तपस्या क्षीण होने पर सर्वान्तर्यामी विष्णु इसका वध अवश्य करेंगे। इधर हिरण्यकशिपु ने ब्रह्मा से वर मांगकर हर्षित हो अपनी प्रजा को अत्याचारों से तंग करना आरम्भ किया। मुनिगण को वह दबाने लगा यहांतक कि देवगण को सुरपुर से निकालकर स्वयं वहां का अधिपति बन गया। सभी त्रस्त देवगण, साध्य, विश्वेदेव, वसु, रुद्र, ऋषि, महर्षि और समाज के गण्यमान लोग भगवान विष्णु के पास कायरता से अपनी राम कहानी कहने गये और प्रार्थना की कि महाराज ! इस दैत्येन्द्र से हम सब का छुटकारा कीजिये। विष्णु ने देवगण को अभय दान दिया; देवगण और अन्य सब के जाते ही भगवान् नारायण ने आधा पुरुष और आधा सिंह का अपना शरीर बनाकर हाथों में पाणि (अस्त्र) लेकर हिरण्यकशिपु के यहां सभा में प्रवेश किया और अपनी राजसभा में खूब साजसज्जा से उसे अपने नाना सभासदों के बीच में देखा। नृसिंह को आते देख प्रह्लाद ने सूचना दी कि हे दैत्यराज हिरण्यकशिपो ! अबतक ऐसा रूप न तो देखा है न सुना है; यह अव्यक्त परम दिव्य रूप क्या आ गया ? यह तो ऐसा रूप है जिसके शरीर में समस्त भूमण्डल के प्राणीमात्र और प्राकृतिक पर्वत नदी, सागर सभी समाये हुए हैं। प्रह्लाद की बातें सुनकर अभिमानी हिरण्यकशिपु ने अपने सेनापति गणाध्यक्षों को कहा कि इस अपूर्व नरसिंह वेषधारी प्राणी को पकड़लो। यदि कुछ सन्देह हो तो इसे वध कर दो इसपर सभी सेनापति दैत्य लोग एक साथ उस रूप पर झपटे नृसिंह भी पीछे हटनेवाले थोड़े ही थे उन्होंने सिंहनादकर सारी सभा को विध्वंस कर दिया। सभा भंग होते ही हिरण्यकशिपु ने अपने अस्त्रों से आक्रमण किया। उसने क्रमशः अपने अधिकार के सभी अस्त्र कालचक्र, विष्णुचक्र, पैतामहास्त्र, वज्र, संहारास्त्र, मारणास्त्र, आजकल के *Neuclear weapons* अणु और उद्रजन बम जैसे बल्कि उनसे भी भयङ्कर बड़े-बड़े अस्त्रों का प्रयोग किया और उनके प्रभाव से मानों सिंह को घेर लिया परन्तु सर्वान्तर्यामी ने उस माया का एक ही क्षण में संहार

कर दिया। उसने वायु के साथ अग्नि का प्रसार किया। नृसिंह द्वारा उसके नष्ट करने पर घोर अन्धकार फैल गया और उसे भी भगवान् ने परास्त कर दिया। अब तो सब ओर दैत्यों में हड़कम्प मचा और हिरण्यकशिपु ने प्रलयङ्कारी दृश्य उपस्थित किया, सर्वत्र भय का अखण्ड साम्राज्य छा गया एकाएक भगवती की माया से घोर भयङ्कर रूप और आकृतिवाले पुरुष उपस्थित हो गये और दैत्येन्द्र के विनाश के लिये बड़े-बड़े पर्वत कम्पायमान हो गये, चार, पांच और छै शिरों वाले महाविषैले सर्प वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, धनञ्जय एलामुख शेषनाग भयभीत हुए उस दैत्य ने क्रुद्ध होकर भीषण उत्पात आरम्भ किये इसी समय गदा, शूल हाथ में लेकर जैसे ही वह दैत्येन्द्र नृसिंह पर लपका कि भगवान् ने उसे अपने विशाल हाथों में पकड़ कर नखों के द्वारा ओङ्कार के उच्चारण करते हुए उसे चीर दिया। इस अकल्पित घटना से सर्वत्र शान्ति और सुख की लहर फैल गई सभी ओर से साधु-आधु की आवाजें आने लगी और पराक्रमशील नृसिंह के स्तवन के लिये देव, ऋषि, तपोधन हाथ जोड़कर वहां आ पहुंचे। ब्रह्माजी ने प्रभु सर्वान्तर्यामी की अपूर्व स्तुति की। भगवान् की स्तुति कर ब्रह्माजी लौट गये और नृसिंह भगवान् क्षीरसागर के उत्तर तट पर अपना नृसिंह रूप स्थापित कर अष्टचक्र यान पर पौराण रूप धारण कर स्वस्थान पधार गये; देवगण आदि प्रसन्न हो स्वधाम चले गये। प्रभु के अवतार की यही विलक्षणता है।

भीष्मपितामह ने नृसिंहमाहात्म्य के बाद भूतभावन शङ्कर भगवान् की ललित लीलाओं के सम्बन्ध में जिज्ञासा प्रगट की। पुलस्त्यजी ने कहा प्राचीनकाल में अन्धक नामक एक दैत्य था उसने तपस्या कर दैत्यों में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर लिया था और किसी देवता से मारा भी नहीं जासकता था एक बार शङ्कर भगवान् को भगवती पार्वतीजी के साथ बैठे देख हरकर ले जाने की सोचने लगा जिसके विरह में शङ्कर स्वयं मर जायेंगे। अस्तु, लोक सुन्दरी यही भार्या बने यह सङ्कल्प कर अपने मन्त्रियों से मन्त्रणा कर सेना जुटाने के लिये सेनापति को आदेश दिया जिससे देवगण को हराकर पार्वती हरी जाय इसपर मन्त्रियों ने कहा कि ऐसे ही कनककामी को देवताओं ने वध कर दिया था जो पर भार्या दूसरे की स्त्री से प्रेम करता था। इसे सुनकर अन्धक बहुत क्रोधित हुआ इन्द्र अन्धक के डर से शङ्करजी के पास आया और उसके पुत्र कनक के मार दिये जाने की सूचना देकर कहा कि स्त्रीलौल्य से यह दूसरे की स्त्री को हरनेवाला हो गया है। अतः इसे शीघ्र ही माड डालना उचित है। शङ्करजी ने इन्द्र को अभय दान देते हुए ईशगण को एकत्र होने के लिये आदेश दिया जिससे अन्धक को पाठ पढ़ाया जाय। भगवान् शङ्कर युद्ध की पूर्ण

तयारी कर स्वयं महाभीम रूप धारण क अपने ईशगणों का नेतृत्व करते हुए पृथ्वी पर आये। इधर अपने पुत्र का मारा जाना सुनकर अन्धक भी पूरी चतुरङ्गिणी सेना के साथ आ गया। बेचारे देवगण शङ्करजी की शरण में चले गये उन्हें शङ्कर ने अभय दान दिया। शंकरजी युद्ध की चुनौती स्वीकार करते हुए अपनी भुजाओं में त्रिशूल धारण कर आगे बढ़े; उन्होंने रथ में बैठे अन्धक के चारों ओर अग्निवाणों का जाल बिछा दिया। अब अन्धक ने शिथिल होकर दानवों को जोर-शोर से लड़ने के लिये उत्साहित किया। इधर देवसेना ने शंकरजी से प्रेरणा प्राप्तकर असुरों का जैसे-तैसे संहार करना आरम्भ किया और शंकरजी के बाणों से घायल अन्धकों ने धर्य धर कर शंकर के पिनाक को लेकर उनपर आक्रमण किया। इस वार से शंकरजी भूमि में आ गये उनके गिरते ही सब ओर भूकम्प हुआ और सर्वत्र हाहाकार मच गया। फिर नाग को मारा जो बेचारा डरकर भाग गया। जब मूर्च्छित शंकर चेतना पाकर उठे तो उन्होंने अन्धक को सामने नहीं पाया क्योंकि सर्वत्र माया से उसने अन्धकार-ही-अन्धकार फैला दिया और उसे डर हो गया कि अब न मालूम उसकी क्या गति होगी? इसी समय भगवान् सूर्य देवगण को व्याकुल देख तेजोरूप में प्रगट हुए। इस प्रकाश को देख सब देवगण हर्ष से गद्गद् होकर भगवान् सूर्य की स्तुति करने लगे। भगवान् शंकर ने सूर्य की अलौकिक महिमा-मयी स्तुति की। इस स्तुति को प्रातः सायं और मध्याह्न में पाठ करनेवाले मनुष्य के किसी भी प्रकार का अभाव नहीं रहता। भगवान् सूर्य ने शंकरजी को कहा कि आपकी जय हो आपकी जय हो आप इसे शीघ्र ही त्रिशूल से मार डालिये। इसपर शंकर ने अपने त्रिशूल से अन्धक के ऊपर आक्रमण किया फिर रुद्र के ऊपर अन्धक ने आक्रमण किया। जब शंकरजी ने बाण से अन्धक का भेदन किया तो वैसे ही सैकड़ों अन्धक वहां खड़े दीख पड़े। इस मायावी को समेटने के लिये शंकरजी ने मातृका, माहेश्वरी, ब्राह्मी, शौरी, वाडवी, सौवर्णी,

आदि शक्तियां बनाईं जो उसके शरीर से बने सब अन्धकों के रक्त को पी जांय जब इस प्रकार उसे बिना रक्त का कर दिया गया तो वह शम्भु के शूल में चुभा हुआ दिव्य वर्षों तक जीवित रहा और उसने शम्भु की स्तुति की। इसपर प्रसन्न होकर शंकरजी ने उसे भृङ्गीरिटी नामक गणेश बना दिया। फिर भीष्म ने मनुष्य द्वारा देवत्व और सर्व प्रकाश से दैहिक, दैविक उन्नति के विषय में पूछा। पुलस्त्यजी ने ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण को देवत्व का मूर्त्त प्रतीक बताया। वह साक्षात् धर्ममय है भुक्ति और मुक्ति देनेवाला है इसी सम्बन्ध में उन्होंने नारदजी द्वारा ब्रह्माजी से हुए वार्तालाप का अविकल वर्णन किया। ब्रह्माजी ने कहा जिसके द्वारा ब्राह्मण प्रसन्न होते हैं उससे भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं इसलिये ब्राह्मण की सेवा करनेवाला परब्रह्म को प्राप्त होता है दान, मान और उचित सेवाओं से ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणों की पूजा करनेवाले को सैकड़ों यज्ञों का फल मिलता है। ब्रह्मवेत्ता लोगों की चरणसेवा के लिये जिनका हाथ कष्ट करता है वह श्रीकर हाथ है और तो कर्मकर हाथ हैं विप्रपादरज से पवित्र और उनके जलबिन्दु से पवित्र मनुष्य विपत्ति से छूट जाते हैं और स्वर्ग के अधिकारी बनते हैं :—

पितृयज्ञ, विवाह, यज्ञसम्बन्धी कार्य और शान्ति कार्य तथा सभी माङ्गलिक कार्यों में ब्राह्मण प्रधान हैं; देवगण का हव्य, प्रेतादि असुर की बलि और पितरगण कव्य ब्राह्मण के मुख के द्वारा ही ग्रहण करते हैं। विप्र को अभिवादन करनेवाले व्यक्ति की आयु, कीर्त्ति, यश और धन सब बढ़ते हैं।

ब्राह्मण के पैरों के तीर्थजल का जहां कर्दम (कीचड़) नहीं हुआ, जहां वेदशास्त्रों की चर्चा का उद्घोष नहीं हुआ और स्वाहा, स्वधा और स्वस्ति जहां सर्वथा वर्जित हैं वे घर श्मशान के समान हैं।

न विप्रपादोदककर्दमानि न वेदशास्त्रप्रतिघोषितानि।
स्वाहास्वधास्वस्तिविवर्जितानि श्मशानतुल्यानि गृहाणि तानि॥

नारद के द्वारा पूज्य और अपूज्य ब्राह्मण के सम्बन्धमें पूछने पर ब्रह्माजी ने

श्रोत्रिय, सदाचारसम्पन्न, सद्वृत्त, पवित्र ब्राह्मण को ही उत्तम बतलाया। ब्रह्माजी ने श्रोत्रिय ब्राह्मण के लक्षण कहे जन्म से ब्राह्मणत्व, संस्कारों से द्विजत्व और विद्या से विप्रत्व प्राप्त होता है। इन तीन बातों से ही उसका श्रोत्रियत्व होता है।

जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते।
विद्यया याति विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रियलक्षणम्॥

विद्यापूत, मन्त्रपूत, वेदपूत और तीर्थस्थानों में भ्रमण कर आत्मशुद्ध ब्राह्मण श्रेष्ठ है। नारायणभक्त, शुद्ध अन्तःकरणवाला, जितेन्द्रिय, क्रोध को जीतनेवाला, सब प्राणिमात्र में समभाव रखनेवाला, गुरु, देवता और अतिथि का भक्त, माता-पिता की सेवा करनेवाला, दूसरी व अपनी मा बहनों में किसी प्रकार विकृत भावना न रखनेवाला और पुराण कथाओं का कहनेवाला ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं उनके दर्शनों से पाप कट जाते हैं बल्कि सैकड़ों अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त होता है। किसी की परायी वस्तु में तिनके को भी न ले कामक्रोधादि से रहित ब्राह्मण श्रेष्ठ है। नारदजी द्वारा गायत्री के गुणानुवाद सुनने की जिज्ञासा करने पर ब्रह्माजी ने गायत्री मन्त्र का छन्द गायत्री, सविता देवता, शुक्लवर्ण, अग्निमुख और विश्वामित्र ऋषि बतलाया वह ब्रह्मा के शिर पर आरूढ़ है और शिव तथा विष्णु के हृदय में स्थित है इसके २४ अक्षरों से शिर से लेकर पाद तक अक्षरों का न्यास करनेवाला व्यक्ति सर्वत्र ब्रह्मलोक का अधिकारी होता है। विप्र के लिये क्या द्विजाति के लिये गायत्री मन्त्र का जप श्रेष्ठत्व प्राप्ति का सोपान है प्राणायाम-युक्त गायत्री का जप करनेवाला व्यक्ति सब पापों से छूट जाता है ऐसा कहा। नारदजी द्वारा प्रणायाम का प्रकार और प्रत्येक अक्षर के देवतादि तथा अङ्ग-न्यास पूछने पर ब्रह्माजी ने अनुलोम विधि से षड़ङ्ग न्यास विधि का विधि विधान से उल्लेख किया तथा त्रिकाल गायत्री जप का विशेष महत्त्व बतलाया। गायत्रीजापी ब्राह्मण की प्रशस्ति का गुणगान कठिन है ऐसे ब्राह्मणों का आशीर्वाद लेना सर्वदा अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति का साधक होता है। इस पुण्याख्यान को

सुननेवाला व्यक्ति पापों से छुटकारा पाकर अक्षय स्वर्गलोक का अधिकारी हो जाता है। वह इस लोक में विद्या, धन, कीर्ति, पुत्रपौत्रादि से समृद्ध होकर स्वर्ग में देवगण के समान आनन्द उपभोग करता है।

फिर नारदजी के द्वारा अधम ब्राह्मण के सम्बन्ध में पूछने पर ब्रह्माजी ने बतलाया कि दश प्रकार के स्नानों को न करनेवाला, तर्पण आदि से रहित संध्या और संयम को जीवन का अङ्ग न बनानेवाला ब्राह्मण अधम है देवपूजा व्रतादि से मुक्त, वेदविद्या को ताक पर रखनेवाला, सत्य, शौच आदि और योग, ज्ञान, यज्ञों से विमुख मनुष्य ब्राह्मण अधम है। पांच प्रकार के स्नान आग्नेय, भस्म से स्नान, वारुण जल से स्नान, ब्राह्म आपोहिष्ठादि से मार्जन करना, वायव्य गोरज ग्रीष्म और वर्षा का स्नान दिव्य है। तुलसीपत्र मिला हुआ जल, शालग्राम की शिला का जल, गायों के सींग का जल, और विप्र के पादोदक ये सबसे मुख्य जल हैं इन सब पतितपावन जल से मनुष्य पवित्र हो जाता है जो उत्तम ब्राह्मण में गुण हैं उनसे रहित ब्राह्मण अधम है। नारदजी द्वारा अधम ब्राह्मण के लक्षण सुनने पर उन्होंने किस पुण्य द्वारा उनका उद्धार हो सकता है यह पूछा तब ब्रह्माजी बोले सब पाप करने के बाद उनके प्रायश्चित्त करने पर जो भविष्य में जितेन्द्रिय होकर शुभकर्म करता है वह फिर ब्रह्मत्व का अधिकारी हो जाता है इस विषय में प्राचीन कथानक कहते हुए उन्होंने अपने विवरण की पुष्टि की। प्राचीन समय में एक ब्राह्मण के युवा पुत्र था। धन के

मद में वह अपने नैष्ठिक कर्मों को छोड़कर एक चाण्डालिनी में प्रेमवश रमण करने लगा उसी से उसके वंश की परम्परा चली और पुत्र तथा दौहित्र हो गये। अपने पैतृक परिवार को छोड़ वह उसी परिवार का एक अभिन्न अङ्ग हो गया। परन्तु उसे मदिरा से सदा घृणा थी तथा अभक्ष्य भी वह नहीं लेता था। एक बार चाण्डालिनी ने उसे मदिरा के लिये आग्रह किया परन्तु ब्राह्मण कुमार ने कहा कि इससे मुझे घृणा है और मदिरा के नाम से ही उल्टी होने लगती है। एक दिन मृगों के अन्वेषण में थककर वह ब्राह्मणपुत्र दिन में चाण्डालिनी के यहां सो गया और उस दुष्टा ने सोये हुए ब्राह्मण के मुंह में हंसते हुए मदिरा छोड़दी। उस ब्राह्मण के मुख से अकस्मात् अग्नि प्रगट हुई और उससे सारा घर द्वार सम्पूर्ण बालबच्चों सहित नष्ट हो गया। हाहाकार करते हुए ब्राह्मण विलाप करने लगा उसे यह जानने की इच्छा हुई कि यह अग्नि कैसे उत्पन्न हुई और घर का दाह कैसे हुआ? तब आकाश से वाणी हुई कि यह ब्राह्मण का तेज था जिससे यह हुआ इस दुर्घटना पर विस्मय करने पर ब्राह्मण को उत्तर मिला कि उसका ब्रह्मतेज नष्ट हो गया है उसे धर्माचरण द्वारा संग्रह कर अपनी उन्नति करनी चाहिये। उस ब्राह्मण ने मुनिगण के पास जाकर अपने उद्धार के लिये प्रार्थना की। ऋषियों ने चान्द्रायण, कृच्छ्र चान्द्रायण आदि कड़े नियमों को कहते हुए उसे भगवद्भक्ति का आदेश दिया जिससे शीघ्र पाप नष्ट होकर वह ब्रह्मत्व को प्राप्त करेगा। इसी प्रसङ्ग में गरुड़ ने अपनी मा विनता के अण्डे से निकलते ही भूख से व्याकुल हो भोजन मांगा तब विनता ने उसे अपने पिता कश्यप महाराज के पास जो लौहित्य के उत्तर तटपर तपस्या कर रहे थे जाकर अपनी भूख को मिटाने का उपाय पूछने को कहा। अपने पिता कश्यप के पास जाकर गरुड़ ने उनसे भूख की तृप्ति के लिये भक्ष्य मांगा। कश्यपजी ने कहा इस समुद्र के किनारे हजारों निषाद पापयोनि के लोग रहते हैं, जाओ और उन्हें खाओ परन्तु कहीं भी ब्राह्मण को देखो तो उसे छोड़ देना। गरुड़ ने पिता की आज्ञा से निषादों को खाकर भूख मिटाई परन्तु भूल से एक

ब्राह्मण को भी निगल लिया परन्तु वह गले में ही अटक गया न तो गरुड़ उसे बाहर निकाल सका न उसे निगल सका। इस कष्ट में फिर गरुड़ कश्यप के पास आया और बोला कि कोई सत्त्व गले में अटक गया है। कश्यप बोले यह ब्राह्मण है तुम्हें मालूम न हुआ। फिर वे ब्राह्मण को पुकार कर अपने पास बुलाने लगे। इस पर ब्राह्मण ने कश्यप से कहा कि ये लोग मेरे मित्र सम्बन्धी, श्यालक, श्वसुर सब कुछ है इनकी गति ही मेरी गति है। इनके अच्छे या बुरे में मेरा भी स्वर्ग और नरक निहित है। कश्यपजी को आश्चर्य हुआ और वह बोले तुम चाण्डालों के संसर्ग से पतित हो गये हो तुम्हारे प्रायश्चित्त करने पर धर्मानुकूल आचरण द्वारा फिर ब्रह्मत्त्व की प्राप्ति हो सकती है। ये लोग तो नीच है इन्हें छोड़ दो। परन्तु ब्राह्मण अपने हठ पर अड़ा रहा और बार-बार ब्राह्मण द्वारा उन निषादों के छुटकारे की मांग की जानेलगी तथा अपने को भी निगलने के लिये दुराग्रह करने लगा। इस प्रकार ब्रह्मवध को आशंका से कश्यप ने गरुड़ से सारे निषादों को फिर बाहर निकालने को कहा। ये सब नीच कर्मों में प्रवृत्त म्लेच्छवृत्तिधारी नाना दिशाओं व नाना रूपों में फैल गये। इनके स्पर्श मात्र से सचैल स्नान करना इष्ट है। फिर गरुड़ने अपनी भूख को मिटाने के लिये उपाय पूछा। इसपर कश्यप ने कहा समुद्र के एक भाग में हाथी और कच्छप परस्पर लड़ रहे हैं जाओ उनसे अपनी भूख मिटाओ। गरुड़ अपने पिता की आज्ञा से वहां पहुंचा और अपने पैने पञ्जों से उनका भेदन कर उन दोनों को सुरक्षित स्थान पर खाने की इच्छा से लेकर आकाश में उड़ा। ऊपर आकर जैसे ही एक जामुन पर बैठकर खाने को तैयार हुआ तो बोझ को न सम्हालने के कारण शाखा टूट गई। कहीं किसी ब्राह्मण का नाश न हो जाय इस डर से वह अपने शरीर की शक्ति से उन्हें पञ्जों में दबाये आकाश में ही उड़ता रहा इसे देखकर विष्णु ने उसे इसका कारण पूछा। गरुड़ ने अपने सारे परिचय को देते हुए कहा कि ये दो प्राणी हाथी और कच्छप पिताजी की आज्ञा से समुद्र में लड़ते हुए मुझे मिले हैं; इन्हें लेकर

उड़ते हुए मुझे जामुन के पेड़पर बैठकर खाने की इच्छा हुई। वह शाखा, जहां मैं बैठा था टूट गई, अब कहीं ये मेरे से छुटकर ब्राह्मण का नाश न करदें इसलिये इन्हें लेकर मैं उड़ रहा हूं। मुझे शंका है कि इस मेरे वेग को मैं कहां बैठकर सन्तुलित करूं। विष्णु ने अपनी बांह पर बैठ कर इन्हें खाने की अनुमति दी। तब गरुड़ ने कहा नारायण के बिना मुझे कोई धारण नहीं कर सकता। विष्णु ने उसे आश्वासन देकर अपना काम सिद्ध करने को कहा। वहां बैठने की इच्छा करते ही अपने पङ्खों से जामुन की शाखा को नीचे डाल दिया और दोनों को खाने पर भी उसकी भूख न मिटी न तृप्ति ही हुई और वह विष्णु से बोला मेरी भूख अभी नहीं मिटी इस पर अपनो बांह बढ़ाते हुए वह (विष्णु) बोले लो इसे खाओ उसे आश्चर्य हुआ जैसे-जैसे वह नोचकर भुजा को खाता वहां किसी प्रकार घाव या चोंच से व्रण नहीं हुआ। फिर चतुर्भुज विष्णु से सारा परिचय पाकर गरुड़ ने कृतज्ञ होकर कुछ सेवा के लिये आज्ञा मांगी और विष्णु की आज्ञा से वह वाहन हो गया। गरुड़ ने विष्णु से अपने माता-पिता के दर्शनों की आज्ञा मांगी विष्णु ने प्रसन्न होकर अजर अमर होने और किसी भी प्राणी से न मारे जाने का वर दिया तथा शीघ्र ही विनता को कष्ट से छुड़ाने तथा पूर्ण भोजन से सदा तृप्ति होने का वर दिया। कश्यपजी के पास जाकर यह सारा वृत्तान्त कहते हुए गरुड़ ने अपने पिता से बहुत-वहुत आशीर्वाद प्राप्त किया और भगवान् विष्णु की अविचल भक्ति का उसे उपदेश किया तथा अपनी सौत के द्वारा जो विनता को कष्ट था उससे उद्धार करने का आदेश दिया। माता विनता के पास जाने पर उससे आज्ञा ले जाने से व विष्णु भगवान् के वाहन होने तक की सारी बातें गरुड़ ने कह सुनाई और कोई सेवा करने के लिये माता से आज्ञा मांगी। माता ने कद्रू के द्वारा खरीद कर दासी बनाने और कैसे सूर्य के सफेद घोड़ों के विषय में वाद विवाद में शर्त रखने तथा अपने सर्प पुत्रों के द्वारा छल से घोड़ों पर चिपट जाने से उनका काला रंग होने पर दासी होने का दुःखद वृत्तान्त कह सुनाया

और गरुड़ से इस कष्ट से जल्दी छुटकारा दिलाने को कहा। जिस समय तक उसका अभीष्टद्रव्य और यह बात उलटी नहीं होती तबतक मैं उसकी दासी हूं। गरुड़ ने उन नागों को खाने और माता के दुःखों का अन्त करने का वचन दिया। विनता फिर कद्रू के पास गई और इस दुःख से छूटने का मार्ग पूछा इसपर कद्रू ने अमृत लाने के लिये कहा। गरुड़ से अमृत के लिये कहने पर उसने हां भरी और वह शीघ्र ही कश्यप से इस सम्बन्ध पूछने गया। कश्यप ने अमृत की कठिन रक्षा और उसे प्राप्त करने की जटिल समस्या को बतलाया। गरुड़ ने सब सिद्ध होने का वचन देकर अमृत लाने के लिये प्रस्थान किया। स्वर्ग में गरुड़ ने बहुत कठिनाई से अमृत के रक्षकों को युद्ध में हराकर उसे प्राप्त किया और अमृतघट को लेकर उड़ा और माता को देकर कद्रू से उसकी दासी बनने से छुटकारा दिलाया। उस अमृत को अपने पुत्रों को देने के लिये कद्रू ने रक्खा जिसे इन्द्र चुरा ले गये और विष उस स्थान पर रख दिया उसे सर्पों को पिला कर माता ने अपना मन राजी किया। इधर गरुड़ ने सर्पों को खाना आरम्भ किया और तभी से सर्प सब छिपकर रहने लगे। गरुड़ अपने माता-पिता से आज्ञा लेकर विष्णुलोक में भगवान् विष्णु की सेवा के लिये चले गये।

इस गरुड़-चरित्र को पढ़ने व सुननेवाला सब पापों से मुक्त हो जाता है।

ब्रह्मा ने चाण्डाल-संसर्ग से पतित ब्राह्मण के सम्बन्ध में बतलाया कि वह नाना प्रकार से शोकाकुल होकर कश्यप ऋषि के पास गया और उनसे अपने लिये श्रेयोमूलक हितकारी मार्ग के लिये एवं पापों से छूटने के लिये प्रार्थना की। अब म्लेच्छों के संसर्ग से उपशान्त हो गये हो तो गायत्री के जप, होम और चान्द्रायण आदि व्रत को करते हुए भगवान् हरि का ध्यान करो तीर्थों में स्नान आदि को जीवन की चर्या बनाओ जिससे शीघ्र ही पापरूपी कीचड़ से छुटकारा हो जायगा और पापों के छूटते ही ब्राह्मण हो जाओगे। मुनि के कथनानुसार उसी प्रकार आचरण कर वह ब्राह्मण फिर अपने उच्च कर्मों का अधिकारी बना तथा तपस्या द्वारा स्वर्गलोक को प्राप्त हुआ। अनाचार से हत ब्राह्मण आचार से देवत्व की प्रतिष्ठा कर लेता है। "अनाचाराद्धतो विप्र! आचारात्सुरताम्व्रजेत्" नारद के पूछने पर जैसे द्विजोत्तम लोगों के पूजने से उत्तम गति प्राप्त होती है उसी प्रकार द्विजों को पीड़न करने से क्या गति प्राप्त होती है? ब्रह्मा बोले कि उनके अपमान से महारौरव नरक का भागी मनुष्य होता है भूख से व्याकुल को सन्तुष्ट न करने से रोगी और दरिद्र होता है। इसी प्रकार नाना परिस्थितियों में भिन्न तरह से यन्त्रणा व अपमान करनेवाले की सदा दुर्गति एवं उसे नीच योनियों में जाकर दुःख भोगना पड़ता है। ब्रह्मत्व हरनेवाले को सदा

नारकीय-गति मिलती है, इसी प्रकार ब्राह्मणी या गुरुपत्नी से सङ्गम करने से रौरव नरक मिलता है फिर नारद द्वारा ब्राह्मण के वध के सम्बन्ध में पूछने पर ब्रह्माजी ने घोर पातकी होने तथा विविध प्रकार के पापों का परिगणन किया। आततायी को मारने से कहीं भी पाप नहीं लगता छै प्रकार के आततायी हैं; — अग्नि लगानेवाला, विष देनेवाला, धन हरनेवाला, सोये हुए को मारनेवाला, स्वेत और स्त्री की चोरी करनेवाला ये छै प्रकार के आततायी हैं "आततायिन्मायान्तमपिवेदान्तगं रणे जिघांसन्तं जिघांसेच्च न तेन ब्रह्महाभवेत्।" ब्राह्मण अपनी वृत्ति को विना पाप किये किस प्रकार चलावे नारद के इस प्रश्न पर ब्रह्माजी ने कहा बिना मांगे जो वृत्ति मिलती है वह प्रशस्त है उञ्छ (खेतों में किसान के द्वारा खलिहान में से अन्न निकाल लेने पर बचे हुए दानों को चुनने की) वृत्ति, भद्रा और सबसे अच्छी है। पढ़ाकर, यज्ञ कराकर ब्राह्मण धन ले सकता है। उपर्युक्त वृत्ति में प्रभूत धनधान्यादि प्राप्त होने पर उन्हें पितर, देवता और द्विजाति के कल्याण में लगा दे। इस वृत्ति के न मिलने पर क्षत्रिय वृत्ति शास्त्र प्रक्रिया का अवलम्ब लेकर जीवन चलावे "अभावात्क्षत्रिया वृत्तिर्ब्राह्मणैरूपजीव्यते" और सदैव धर्मयुद्ध करे इसमें प्राण छूटने पर ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है सभी वर्णों को आपत्काल में इस वृत्ति से पर स्थान मिलता है। विपत्ति में वैश्य वृत्ति भी ब्राह्मण करे कृषि वाणिज्य करता हुआ भी अपना षट् कर्म न छोड़े "कारयेत्कृषिवाणिज्यं विप्रकर्म न च त्यजेत्"। तोलने जोखने में बेईमानी करने से ब्राह्मण नीचे गिरता है। अतः वणिग्वृत्ति में उसे कभी काम में न ले। सदा अपना शुद्ध व्यवहार रक्खे। सत्य की भारी महिमा गाई गई है एक ओर हजार अश्वमेध-यज्ञ और एक ओर सत्य रहे तो भी सत्य का पलड़ा भारी है। 'नास्ति सत्यात्परो धर्मो नानृतत्पातकम्परम्। अश्वमेधसहस्रं तु सत्यञ्च तुलया धृतम्। अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते'॥ जीवन में लोभ की मात्रा अधिक न बढ़ावे जब इस वृत्ति में धन प्राप्त हो तो उसे उसी प्रकार देव, पितर और

तीर्थस्थानों में लगा दे। कृषि में ब्राह्मण पुण्य कर्म द्वारा प्रवृत्त हो; जैसे, चार बैलों से हल खाली आधे दिन चलावें; उन्हें खूब चारा बिना कांटों का चरावे, उनके बांधने का गोष्ठ भली प्रकार साफ हो जैसे अपने रहने का स्थान उतना ही स्वच्छ और दुर्गन्धरहित बनावें। अपने आत्मा के समान गोपालन करनेवाला धनी होता है धन्य है गोपालन। दुर्बल रोगी और बहुत छोटी अवस्था के तथा बहुत बूढ़े बैल को हल में जोतनेवाले को गोहत्या का पाप होता है। उन्हें किसी भी प्रकार यातना कष्ट देनेवाल नरकगामी होता मुट्ठी भर घास गौ को खिलाने से पाप छूट जाता है और स्वर्ग का भागी होता है विप्र और गौ दोनों समान है इनकी पूजा का समान फल है मनुष्यों में ब्रह्मविद् रहस्य आध्यात्मचिन्तन में ब्राह्मण मुख्य हैं और पशुधन में गौ श्रेष्ठ है जो सर्वथा मानव का कल्याण कर अपना अस्तित्व स्थिर बनाती है। नारद को जब पशु गौ और मनुष्य ब्राह्मण को समान बताया गया तो उन्हें आश्चर्य हुआ और विशेष रूप से ब्राह्मण का ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न होने की बात से उत्सुकता बढ़ गई। ब्रह्मा ने ब्राह्मण और गौ की एक पिण्ड और एक क्रिया में उपयोगी होने की बात बताकर उत्पत्ति का क्रम बतलाया। सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा के मुख से महत्तेज का आविर्भाव हुआ; उसके चार भाग वेद, अग्नि, गौ और द्विज हुए पहले उपरोक्त क्रम से चारों हुए वेदों की ज्ञान प्रसार की विशेषता तथा सृष्टि की स्थिति के लिये सर्वत्र समान आवश्यकता है फिर आज्यरूपी हव्य को देवगण की तृप्ति के लिये अग्नि द्वारा पहुंचाने के लिये उसकी आवश्यक स्थिति है आज्य गाय से प्राप्त होता है और ब्राह्मण द्वारा उसे विधिपूर्वक "परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ" के अनुसार विनियोग होने से चारों उपयोगी हैं इन्हीं से सम्पूर्ण अण्ड ब्रह्माण्ड की धारणा है अतः गौ का महत्त्व किसी भी अंश में कम नहीं इनके शरीर से ही मृत्यु के बाद ब्रह्मलोक मिलता है गाय में किञ्चिन्मात्र भी दोष नहीं रहता गौ के मूत्र, गोबर, दूध, क्षीर, दही, घृत सभी पवित्र हैं इनके भक्षण से शरीर में पाप और

मल एक क्षण भी नहीं टिक सकते इसीलिये घृत, दधि और दुग्ध धार्मिकगण सदा काम में लेते हैं गव्य की भोजन में कमी से शरीर पूतियुत हो जाता है। शास्त्रनिर्मित हविष्य से बना भोजन सदा विधिवत् सेवन करने से अधिक गुणकारी है (यहां विशेषरूप से गौ का महत्त्व प्रतिपादन में पृथ्वी का विशेष विवरण समझना चाहिए क्योंकि उसी से सम्पूर्ण अन्न आदि यज्ञ द्रव्य प्राप्त होते हैं और जीवन की स्थिति इसी अमृततुल्य अन्न, फल, मेवा और अन्य आवश्यक उपकरण प्रस्तुत करने से स्थायी होती है।) फिर नारद ने किन-किन गायों का कब-कब विशिष्ट प्रयोग करने से क्या-क्या पुण्य होता है यह पूछा और ब्रह्मा ने कहा प्रातः सकृत्प्रदक्षिण कर गोधन का अभिवादन करनेवाले व्यक्ति को अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति होती है। सात प्रदक्षिणा से यश, मान, और आयुष्य एवं धन मिलता है गाय के सींग का पानी अभिषेक के बराबर है गाय के प्रत्येक लोम में देवगण का वास बताया गया। भगवान् विष्णु का निवास गौओं में है गाय के खुर से उठी रज को जो शिरपर धारण करता है वह सब पापों से छूट जाता है। दश प्रकार की गायों के दान के सम्बन्ध में पूछने पर ब्रह्मा ने कपिला गाय, धूम्रवर्ण की गाय, श्वेत गाय, पीली गाय, नीली गाय, इनके दान का अक्षय पुण्य बतलाया; जिस गर्भवती गाय को नौ मास के बाद आसन्न प्रसूता होने पर दान दिया जाय और वह सब प्रकार के आभूषण चुनड़ी आदि से आभूषित कर वेद पारग योग्य व्यक्ति को दी जाय तो विष्णु-लोक की प्राप्ति होती है; १० गायों के दान के समान एक वृष दान का महत्त्व है अतः साण्ड को छोड़ना इष्ट है इस प्रकार इस महती गाय और वृष के माहात्म्य को जो सुनता है वह सात जन्म के पापों से तत्काल मुक्ति पाजाता है।

नारद के यह पूछने पर कि ब्रह्मतेज किस आचरण से बढ़ता है और किस आचरण घटता है ? ब्रह्मा बोले प्रातः शय्या त्याग के बाद देवगण और पुण्यवान् महापुरुषों का नित्य स्मरण करे सात चिरजीवियों को और पुण्य श्लोक महानुभावों का स्मरण करने से ब्रह्महत्यादि जैसे पापों से मनुष्य छूट जाता है। फिर शुद्ध स्थान में जाकर मलमूत्र का त्याग करे उदुम्बर (गूलर) आदि दन्तकाष्ठ से दतौन करे फिर स्नान कर सन्ध्यावन्दन करे। स्नान में मृत्तिका का लेप प्रशस्त है प्रातःस्नान के माहात्म्य का वर्णन फिर सन्ध्या के समय पितृतर्पण का विधान, तर्पण प्रकरण में जल के देवता आदि का विधान पूछा ब्रह्मा ने कहा जल का देवता विष्णु है जलपूत से पवित्र मनुष्य विष्णुमय है जल से कुश का सम्पर्क है विशेष लाभदायक है यह भी सर्वदेवमय है, इसके मूल में ब्रह्मा, बीच में विष्णु और अग्रभाग में शङ्कर जानो कुशा हाथ में लेकर स्तोत्र मन्त्रादि का पाठ शतगुणा फल देते हैं सात प्रकार की कुश है। पितृतर्पण का विशेष महत्त्व पितृतर्पण युगादि और अमावास्या को करना इष्ट है। जल में गीले वस्त्रों से तर्पण करे बाहर निकलकर सूखे वस्त्र पहन कर करे। तर्पण की अनिवार्यता इसलिये है कि स्नानार्थी के पितर देवतागणों के साथ वायु होकर आते हैं पास से व्याकुल होकर यदि वस्त्र निष्पीड़न करे (धोती को नीचोड़ दे) विना तर्पण किये तो वे निराश होकर चले जाते हैं प्रति दिन स्नान तर्पण करनेवाला व्यक्ति श्रेष्ठ है। भिन्न-भिन्न कामनाओं को लेकर श्रीगणेश, सूर्य, विष्णु, शिव, और दुर्गा का पूजन करे देवताओं का पूजन कर वैश्वदेव बलि करे

और वह्नि कार्य कर ब्राह्मण तर्पण यज्ञ करे इस प्रकार करने से मनुष्य उन्नति को प्राप्त करता है। नारद के यह पूछने पर कि मनुष्यों के समान देवगण पितरों के साथ जल नहीं पाते इसपर ब्रह्मा बोले कि मैंने जल को सर्वदेवमय अमृतरूप में बनाया उसके रक्षण के लिये रक्ष और यक्ष धनुर्धारी छोड़े; वे मेरी आज्ञा से देव और पितरों को मार देते हैं मनुष्य को नहीं। इसलिये मनुष्यों के देने से ही उन्हें जल मिलता है; स्वयं नहीं। बिना स्नान के खानेवाला मल (अस्वस्थ का दोष नहीं) खाता है। स्नान कर बिना जप किये खानेवाला पूय शोणित (रक्त) खाता है नित्य तर्पण न करनेवाला पितृघाती है। देवपूजन न करने से ब्रह्महत्या के समान पाप होता है। सन्ध्याकृत्य न करने से पापी पुरुष सूर्य के तेज का नाश करता है। नारद के द्वारा ब्राह्मण और वर्णों के सदा पूछने पर ब्रह्मा ने आचारमय जीवन का सुख, आयु, स्वर्ग मोक्ष और सभी बुराई को समूल नाश करनेवाला बताया अनाचारी व्यक्ति का सर्वत्र ही पतन इष्ट है वह निन्दित, दुःखभागी, व्याधित और अल्पायु होता है; आचार से इस लोक और निःश्रेयस की सिद्धि बताई। घर में प्रलेपन कर बैठने के स्थान आदि को जल से शुद्ध कर ले नाना पात्रों की शुद्धि; कांस्य पात्र की भस्म से, ताम्र की अम्ल (खटाई) से, लोहे की अग्नि से, शिलापात्र तैल से और सोने-चान्दी के बर्त्तनों को जलमात्र से शुद्धि बताई।

शय्या भार्या शिशुर्वस्त्रमुपवीतं कमण्डलुः।
आत्मनः कथिताः शुद्धा न परेषां कदाचन ॥

सोने का पलङ्ग व सामग्री, स्त्री, बालक, वस्त्र, उपवीत (यज्ञोपवीत) व कमण्डलु ये स्वयं के ही शुद्ध हैं दूसरे के नहीं। एक वस्त्र पहने भोजन न करे, एक वस्त्र को लेकर स्नान न करे, दूसरे का वस्त्र कभी न पहने। केश और दांतों का संस्कार प्रातःकाल करे अपने से बड़ों का अभिवादन नित्य करे। हाथ-पैर और मुख धोकर ही भोजन करे ऐसा करनेवाला शतायु होता है। बड़ी वनस्पति, वृक्ष, गौ, देवता, घृत, मधु और चौराहे को प्रदक्षिण क्रम से पार करे। जूठे मुंह रख अग्नि

ब्राह्मण, देवता, गुरु, अपना शिर, पुष्प का पौधा, यज्ञ का वृक्ष, और पापी को न छूए। मलत्याग करने के समय किन-किन को न देखे उसका वर्णन, मलत्याग के निषिद्ध स्थानों का वर्णन। मंगल को क्षौर न करावे जिन लोगों को रास्ते में बाधा न दे उनका विवरण। राजा, विप्र, श्रोत्रिय, श्रेष्ठ और वैद्य से विवाद न करे। ब्राह्मणी और गुरुपत्नी से दूर रहे। ऐसी स्त्री जो प्रमत्त, अधिकाङ्क्षी, निर्लज्ज, बाह्याचारवाली, व्यय करनेवाली, अनाचारा हो उससे संसर्ग न करे मलिन गुरुपत्नी का अभिवादन न करे उससे देखा न करे उसकी वाणी का पालन अवश्य करे। अपनी पुत्र-वधू, भाई की स्त्री, अपनी युवती पुत्री और दूसरी की स्त्री तथा गुरुपत्नी को न देखे व न छूवे। उनके साथ बोलना भ्रूभङ्ग से देखना, कलह करना, निर्लज्जता से बातें करना, सदैव बन्द रक्खे। तुष, अङ्गार, अस्थि और भस्म में पैर न लगावे। दुष्ट के साथ न रहे, न भाषण करे, अपने से छोटे चाचा और मामा का अभिवादन न करे, केवल उठकर साञ्जलि आसन प्रदान करे। गीले पैर सोना, सूखे पैर से भोजन, अन्धकार में शयन और भोजन कभी न करे। किन-किन दिशाओं में बैठकर दन्तधावन और शयन करना यह कहा है। पूर्व और दक्षिण को शिर करके सोवे ऐसा न करने से आयुः क्षीण हो जाती है। चारों दिशाओं में भोजन करना प्रशस्त है। एक भोजी देवता, दो समय भोजी मनुष्य, प्रेत दैत्य आदि तीन बार और कौणप चार बार खाता है। धर्म बीज तथा पाप बीज से प्रसूत मनुष्य के लक्षण।

स्वर्गस्थितानामिह जीवलोके चत्वारि तेषां हृदये वसन्ति।
दानं प्रशस्तं मधुरा च वाणी देवार्चनं ब्राह्मणतर्पणञ्च॥
कार्पण्यवृत्तिः स्वजनेषु निन्दा कुचैलता नीचजनेषु भक्तिः।
अतीवरोषः कटुका च वाणी नरस्य चिन्हं नरकागतस्य॥

प्रशस्त दान, मधुर वाणी, देवार्चन और ब्राह्मणों का तर्पण जिस मनुष्य के यहां होता है वह श्रेष्ठ है। कृपणता, अपने परिवारवालों में निन्दा, मलिन वस्त्र,

नीच लोगों से प्रेम, अतीव रोष और कटु वचन ये नारकी एवं नरकगामी पुरुष के लक्षण हैं।

नवनीत के समान सुन्दरवाणी, करुणा से कोमल मन इससे समझो यह मनुष्य धर्मबीज प्रसूत है। दया जिसके हृदय में न हो तथा वाणी कर्कश, हो वह पापबीज प्रसूत का लक्षण है। सात्त्विक मनुष्य इन सदाचारों का सुनना और सुनाना बराबर रक्खे इससे अवश्य ही पापों से बचकर भगवत्सन्निधि प्राप्त करता है।

भीष्म द्वारा अधिकाधिक पुण्य देनेवाले पूर्वजों द्वारा किये हुए शुभ कर्मों के पूछने पर पुलस्त्य ने व्यासजी के द्वारा कहे हुए द्विजों को पित्रर्चाका सुन्दर आख्यान बताया। माता-पिता की भक्ति, पति की सेवा, सब जनों में समता, मित्रों से अद्रोह और विष्णु की भक्ति ये महायज्ञ हैं। माता-पिता की सेवा से बड़ा धर्म और तप कोई भी नहीं है उनके सन्तुष्ट होने से सब देवगण सन्तुष्ट होजाते हैं माता सब तीर्थमयी है पिता सर्व देवमय है उनकी सब यत्न से पूजा

करे माता-पिता की अभिवादनपूवक प्रदक्षिणा करनेवाला व्यक्ति सम्पूर्ण भूमण्डल की परिक्रमा का फल पा लेता है। उनका वन्दन करनेवाला व्यक्ति धन्य है। उनका तिरस्कार करनेवाला कल्प तक नरक में जाता है। माता-पिता की सेवा किसी भी रूप में न छोड़े। माता-पिता की सेवा किये बिना भले ही कितने ही तीर्थों का सेवन करनेवाला पुत्र हो, वह नरक भागी होता है। कोई नरोत्तम नाम का एक ब्राह्मण था उसके तीर्थ सेवन की इच्छा हुई, अपने माता-पिता को छोड़कर वह तीर्थव्रतचर्या में लगा उसकी तपस्या के प्रभाव से स्नान के वस्त्र आकाश में सूखते थे। उसे अभिमान हुआ उसने उड़ते हुए बगुले को जला दिया इससे तप क्षीण हुआ अब आकाश में वस्त्र नहीं सूखता था उसे मन में बड़ी ग्लानि हुई इसपर आकाशवाणी हुई कि हे विप्र! मूक नामक परम धार्मिक चाण्डाल के पास जाओ वहां तुम्हें धर्म का ज्ञान होगा। वहां से वह मूक चाण्डाल के पास गये। मूक अपने माता-पिता की सेवा में तन्मय था सर्दी में गरम जल से उनकी परिचर्या और यथाशक्ति उन्हें प्रसन्न करने में लगा उन्हें खिलाकर खाता उनको सब प्रकार के सुख पहुंचाने की चेष्टा करता इन पुण्यों से भगवान् विष्णु दीर्घकाल से उसके यहां निवास करते थे। उसका मन्दिर आधार स्तन्भ के बिना ही अधर में शोभित था। यह सब देख ब्राह्मण को बड़ा आश्चय हुआ और मूक से अपनी सब बातें बतलाकर वास्तविक बात कहने का अनुरोध करने लगा। मूक ने कहा मैं अपने माता-पिता की सेवा-भक्ति करता हूं उन्हें सन्तुष्ट कर आपका कार्य करूँगा कृपया द्वार पर बिराजिये। आप का आतिथ्य करूँगा। इसपर ब्राह्मण ने क्रुद्ध होकर मूक को भर्त्सना दी और कहा मुझ ब्राह्मण को छोड़ क्या अधिक कार्य है? मूकने कहा मैं वह बगुला नहीं हूं जिसे आपने जला दिया। न अब स्नान का वस्त्र आकाश में सूखता है और न रहता है। देववाणी होने से आप मेरे पास आये हैं अवकाश होते ही सारी बातें बताऊँगा, नहीं तो पतिव्रता के पास जाइये उससे आपका सब काम

सिद्ध होगा। उसके घर से उसी समय छद्म वेष में विष्णु ब्राह्मण बनकर आये और इस ब्राह्मण को पतिव्रता के घर लिवा ले गये। ब्राह्मण ने छिपे वेषधारी विष्णु से कहा हे विप्र! इस चाण्डाल के घर में क्यों रहते हो? भगवान् बोले अभी तेरा मन पवित्र नहीं हुआ पतिव्रतादि को देखने से तू मुझे जान जायगा। ब्राह्मण के पतिव्रता के परिचय के सम्बन्ध में पूछने पर भगवान् ने पतिव्रता स्त्री की असीम शक्तियों की प्रशंसा की। आगे पतिव्रता के लक्षण बताते हुए भगवान् ने कार्य में दासी, रति में मनमोहक भाव, अनुभाव आदि से वेश्या, भोजन में जननी समान व विपत्ति में पति की मन्त्रिणी जो हो वह पतिव्रता है। किसी भी आत्मीय या अन्य व्यक्ति को अच्छे वस्त्र पहने देख कर जिसे पर पुरुष की भावना होती है वह पतिव्रता है। उस पतिव्रता के आठ पत्नियां हैं उसका शुभा नाम है उसके पास धर्म के विषय में पूछो। भगवान् अन्तर्धान कर गये ब्राह्मण और भी आश्चर्य करने लगा। उसने साध्वी पतिव्रता के घर जाकर पतिव्रता के विषय में पूछा। द्वार पर आते ही ब्राह्मण ने अपने हित प्रियमार्ग के लिये प्रश्न किया। पतिव्रता ने कहा पति की सेवा के बाद आपका आतिथ्य करूँगी ब्राह्मण ने कहा कि मुझे न भूख है और न प्यास है। यदि मुझे अभीष्ट न बताओगी तो मैं तुम्हें शाप देदूंगा। इस पर पतिव्रता ने कहा मैं वह वक नहीं हूं जो भस्म हो जाऊँ। आपको यदि जल्दी है तो धर्म तुलाधार के पास जाइये और अपना हितमार्ग पूछिये। यह कह पतिव्रता घर में चली गई और ब्राह्मण ने चाण्डाल के घर से निकलते विप्र के समान वहां भी वैसा ही ब्राह्मण देखा। उसने (छद्मवेषी भगवान्) ब्राह्मण से पूछा यह पतिव्रता दूरस्थित मेरे सम्बन्ध में इतना कैसे जान गई? इसपर भगवान् ने कहा अतिपुण्य और सदाचार से सब शक्य है। उससे पूछा कि पतिव्रता ने क्या कहा तो ब्राह्मण बोला तुलाधार से पूछने को कहा है भगवान् ने कहा चलो मैं तुम्हें पहुंचा देता हूं उसके स्थान की सूचना देते हुए भगवान् ने कहा जहां पुरुषों की भीड़ है और क्रय-विक्रय होता है वही तुलाधार

वैश्य है, अपने सत्य व्यवहार से सब कुछ करता है प्राणों की बन आने पर भी वह उससे विचलित नहीं होता। चलते-चलते वे दोनों वैश्य के यहां पहुंचे उन्होंने मैले कपड़े और कुचेले दांतोंवाले तुलाधार को अपने आगत सभी ग्राहकों को जिनमें स्त्री और पुरुष दोनों थे, बड़े सद्व्यवहार से सब खरीदी जानेवाली चीजों के दाम बताते देखा उससे सब राजी थे। विप्र ने अपने धम के उद्देश्य के विषय में पूछा तुलाधार ने कहा इन सब ग्राहकों से सलटने के बाद मैं आपको बता सकता हूं जल्दी हो तो धर्माकर के पास जाइये उसके उपदेश देने से आपका हित शक्य है। उसने भी सब पूर्व बातें कहीं और ब्राह्मण सज्जनाद्रोहक के पास जाने को तैयार हुआ। भगवान् उसी छिपे वेष में उसके साथ धर्माकर के यहां गये विप्र के सन्देह करने पर हरि भगवान् ने कहा 'सत्य की साधना से तुलाधार को तीनों लोकों में विशिष्टता प्राप्त हुई है। सत्य से बड़ा धर्म नहीं, झूठ से बड़ा पाप नहीं "नास्तिसत्यात्परोधर्मो नानृतात्पातकम्परम्" सत्यवादी के यहां दिव्यगुणों का वास हो जाता है भगवान् सर्वान्तर्यामी का सत्य साधक के हृदय मन्दिर में वास होता है। अद्रोहक के विषय में भगवान् ने कहा कि एक बार अद्रोहक के पुर में राजा को विशेष कार्य से बाहर जाने का अवसर आया। अपनी सुलक्षणा स्त्री को कहां छोड़े जिससे उसका पातिव्रत्य पूर्ण रक्षित हो यह सोचकर वह अद्रोहक के पास आया और अपनी स्त्री को रखने के लिये बोला। अद्रोहक ने अपनी असमर्थता बतलाते हुए क्षमा मांगी। परन्तु राजा ने बहुत अनुरोधपूर्वक उसे रक्षार्थ छोड़ना आवश्यक है यह कहा। इसपर अद्रोहक ने कहा यदि आपको यह इष्ट हो कि मेरे तल्प (बिछौने) पर ही यह मेरी स्त्री के साथ सोये तो रख सकते हैं अन्यथा आप ले जावें। इसपर विचार कर राजा ने यथोचित करने की स्वीकृति देदी। अपनी स्त्री से भी उसने यह बात कह दी। रात्रि में दोनों स्त्रियों के बीच में वह सोता। अपनी स्त्री के साथ और कन्या समान राजा की स्त्री के साथ उसके व्यवहार पृथक्-पृथक् थे, अपने आपको राजरानी के

प्रति पुत्र बनाता और मानता और स्त्री के साथ धर्मपत्नी का व्यवहार करता छठे मास वह राजा लौटा। नगर के लोगों ने बड़ी बुराई की उनमें अच्छे भी थे भले भी थे। परन्तु अद्रोहक का मन नहीं माना और जलती अग्नि की लकड़ी के ढेर को सचन्दन कर अपने जनापवाद के भय से उसमें जलने की तैयारी में लगा। राजा अद्रोहक के पास आया और अपनी स्त्री को प्रसन्नवदन और विषादपूर्ण अद्रोहक को देखा और उससे कुशलता पूछी। अद्रोहक ने अग्नि की धधकती ज्वाला में राजा के हित से जो जनापवाद फैला उसे मार्जन करने के लिये अपने आपको अर्पण किया। आश्चर्य है कि अग्नि ठण्डी हो गई। ऊपर से देवगण आकर पुष्प वर्षा करने लगे। जिन्होंने उसकी बुराई की थी उनके मुखों में विविध कुष्ठ हो गये। देवगणों ने उसका नाम सज्जनाद्रोहक रक्खा। काम को जीतनेवाले अद्रोहक का आदर्श भी अपूर्व हुआ उसकी दिव्यदृष्टि हो गई और ब्राह्मग ने इस प्रकार अद्रोहक के विषय में जानकर उससे अपना मन्तव्य कहा। अद्रोहक ने धर्मज्ञ वैष्णव के पास जाने के लिये कहा और वह बगुले का भस्म होना तथा वस्त्र के आकाश में उड़ाने व सूखने का भी विशेष विवरण देकर उसके मन की बात बतलायेगा ऐसा कहा। फिर ब्राह्मण वेषधारी विष्णु उसे वैष्णव के यहां ले गये। उस परम भागवत को ध्यानस्थित देखकर विप्र ने अपना मन्तव्य पूरा करने का अनुरोध किया। अपने यहां आये हुए अतिथि का सत्कार कर वैष्णव ने कहा आप घर में भगवान् के दर्शन कीजिये तब आपका सब कल्याण होगा अन्यथा आकाश में वस्त्र नहीं सूखेंगे। इसपर उसके घर में जाते हुए विष्णु को देखकर पैर छूकर ब्राह्मण ने अपना हृदय रक्खा। भगवान् ने पुण्यवान् व्यक्तियों के दर्शन कराने और इनके दर्शनों से पाप कटने की बात कही और वर मांगने को उसे कहा। विप्र ने भगवत्सन्निधि प्राप्ति का वर मांगा। इसपर भगवान् ने उसकी भक्ति की प्रशंसा की परन्तु कहा सर्वप्रथम अपने माता-पिता की सेवा कर उन्हें प्रसन्न करो जिससे तुम्हारा यह लोक और परलोक सब सुधर जाय। उन माता-पिता के निःश्वास से

तुम्हारा किया कराया गुड़ गोबर हो गया उनके क्रोध को न शङ्कर, न मैं और न कोई अन्य देवता टाल सकते हैं। इसलिये प्रेम से माता-पिता की सेवा करो और फिर मेरी शरण आओ। इस पर विप्र ने भगवान् से अपने स्वरूप की प्रार्थना की और भक्त आधीन भगवान् ने अपना चतुभुज रूप दिखा दिया। अपनेको धन्य समझते हुए ब्राह्मण ने मूक, पतिव्रता, तुलाधार और अद्रोहक सब की प्रशस्ति करते हुए भगवान् की भक्ति श्रेष्ठ बतलाई। भगवान् ने कहा पितृभक्ति से मूक के यहां, पतिधर्म से शुभा के यहां, सत्यवादी होने से तुलाधार के यहां और लोभ काम को जीतने से अद्रोहक और अपनी भक्ति से वैष्णव के यहां सदा ही लक्ष्मी एवं सरस्वती के साथ रहता हूं। ब्राह्मण की यह शंका करने पर कि वेदादि शास्त्रों के अनुसार चाण्डाल योनि महापातकों के कारण मिलती है तो आप वहां कैसे विराजे ? इस पर भगवान् ने कहा कि सम्पूर्ण कल्याणों का कर्त्ता मूक भले ही चाण्डाल है परन्तु वृत्तस्थ होने से वह ब्राह्मणकोटि में आया है माता-पिता के सच्चे भक्त होने से उसके यहां ब्राह्मण रूप में मेरा सदा निवास रहता है और पूर्व प्रतिपादित दिव्यगुण सम्पन्न चारों पांचों व्यक्तियों की एक सत्य निष्ठा के कारण प्रशंसा की। फिर माता-पिता की सेवा का पुण्य लाभ करने का उपदेश देकर उस मूक के द्वारा जानी गई सम्पूर्ण वार्ता के प्रति विस्मय न करने को कहा क्योंकि ऐसा सत्यनिष्ठ माता-पिता की सेवा करनेवाला व्यक्ति त्रिलोकी की बातों को मेरे अन्तर्यामी के उपस्थित होने से देख सकता है। ब्राह्मण ने मोह अज्ञान से माता-पिता की भक्ति को छोड़ने के अपराध में अपना कर्तव्य अकर्तव्य पूछा। भगवान् बोले एक दिन, मास, पक्ष, या सात दिन भी प्रेम से माता-पिता की भक्ति करनेवाला मेरे लोक का अधिकारी होता है। यदि किसी प्रकार पूजा न कर सके तो उनके परलोक होने पर वृषोत्सर्ग करनेवाला पितृभक्ति का फल पा जाता है। माता-पिता के श्राद्ध की अगाध महिमा है उसे यथा समय अवश्य करे। ग्रहणादि के अवसर पर चूड़ामणि योग होने पर उसका विशेष विधान। श्राद्ध का

प्रतिपादन और श्राद्ध कर्त्ता को ब्रह्मचारी, सदाचारी और माता-पिता के श्राद्ध के दिन स्त्री संसर्ग से बचने का विधान बताया। श्राद्ध में तीन पवित्र है दौहित्र, कुतप (दिन को सात घड़ियों के बाद और नव घड़ियों के पहले का काल) और तिल। सत्य, अक्रोध और शीघ्रता न करना ये प्रशंसनीय है श्राद्धकर्ता सायं सन्ध्या, परान्न, फिर भोजन, मैथुन, दान, प्रतिग्रह सब न करे। नाना प्रकार के प्राचीन आख्यानों द्वारा श्राद्ध के विधान का वर्णन। सप्तव्याधों की कथा का संक्षेप से शिष्य और वशिष्ठ के सम्वाद के रूप में वर्णन। श्राद्ध में असमर्थ व्यक्ति के कर्त्तव्य का निर्णय। भगवान् ने कहा जो कोई किसी भी रूप में असमर्थ होने पर तृण, काष्ठ को बेचकर पैसा लेकर पितृकार्य करता है उसके पितर तृप्त होते हैं और लक्ष गुणा फल मिलता है। सब के अभाव में गौ को घास खिलाने से श्राद्ध का फल मिल जाता है। विराट के पुत्र ने धनहीन होने से द्विज को पूछा तो उपर्युक्त उपाय बताया जिससे वह पितरों को तृप्त कर दूसरे जन्म में भाग्यशाली बना। पितृयज्ञ से महान् कोई यज्ञ नहीं इसे बिना मत्सर के लोग करे इस सारे प्रकरण के सुनने और सुनाने से भी पितरों की तृप्ति एवं श्रोता तथा वक्ता को अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है।

नरोत्तम के द्वारा पतिव्रता स्त्री से बीती हुई बात जानने की शक्ति के सम्बन्ध में आवश्यक प्रश्न पूछने पर भगवान् बोले पतिव्रता का माहात्म्य अकथनीय है सभी ऋषि, मुनि एवं ब्रह्मवादी सब के लिये वह पतिव्रता पूज्य है इसी प्रसङ्ग में भगवान् ने सैव्या ब्राह्मणी के पातिव्रतधर्म का विस्तार से वर्णन किया। उसके गलित्कुष्ठवाला पति था उसकी सेवा तन, मन और धन से

करती थी। एक बार जैसे ही उसके मार्ग से परम सुन्दरी वेश्या जाने लगी तो कुष्ठी पति का मन उसके रूप सौन्दर्य को देखकर लुभ गया और वह उन्मना होकर लम्बी श्वांसे खींचने लगा। पति को दुःखित देख पत्नी सैव्या ने उसके उन्मना होने का कारण पूछा इसपर निराश हो अपनी इच्छा की पूर्ति न होते देख उसने कहने से ना कर दिया परन्तु स्त्री के बहुत समझाने पर वेश्या पर आसक्त होने की बात कहकर उसे सङ्गम करा देने से अपने जन्म सफल होने की बात बोला उसके न आने से मृत्यु ही केवल शरण होगी। पतिव्रता ने उसे धैर्य दिलाते हुए अपनी ओर से यथाशक्ति बचन देने और कार्य करने को कहा। तीन दिन तक वह प्रातःकाल वेला में वेश्या के चौक को झाड़ बुहार और चौक पूरकर घर लौट आती। वेश्या ने इसका पता लगाया। वह एक दिन पतिव्रता को इस प्रकार घर को बुहारते देख पैरों पर गिर पड़ी और गिड़गिड़ाकर क्षमा मांगने लगी और अपने योग्य कोई सेवा के लिये पूछा। इसपर पतिव्रता ने अपने कुष्ठी पति को सन्तुष्ट करने का वर मांगा। वेश्या ने आधी रात के बाद पति को उसी के यहां लाने पर सन्तुष्ट करने को कहा। अपने पति के पास आकर उसने सारी बातें कही और आधीरात में जाने का निश्चित कार्यक्रम बना लिया। उसी दिन राजाने विशेष आदेश से नगर में की जानेवाली चोरियों की रोकथाम के लिये चोरों को पकड़ने के लिये विशिष्ट रक्षक राजपुरुषों को नियुक्त किया। उन्होंने माण्डव्य नामक ऋषि को नगर के बाहर तप करते देखा वह असम्प्रज्ञात समाधि की भूमिका में था। उसे राजपुरुषों ने लाकर राजा के सामने प्रस्तुत किया। राजा ने शरीर में कीली ठोककर नगर के चौराहे पर गाड़ने का आदेश दिया। राजपुरुषों ने उसके गुदभाग से सिर के आरपार कीली ठोक उसे गाड़ दिया। माण्डव्य को समाधि के प्रभाव से इस दुःख का कुछ भी पता न लगा और वह लटका ही रहा। वेश्या के घर पतिव्रता की पीठ पर जाते हुए उस कुष्ठी का शरीर दण्डित ऋषि से लगा और उसके संसर्ग से उसकी समाधि भग्न हो गई। माण्डव्य ने

शाप दिया कि जिस व्यक्ति ने अभी मेरी शरीर में यह असह्य वेदना की है वह सूर्योदय होते-होते भस्म हो जाय। वह कुष्ठी धरती पर गिरपड़ा और पतिव्रता ने पतिसेवा के प्रभाव से कहा सूर्य उगे ही नहीं। तीन दिन तक सूर्य न उगा। पति को वह तत्काल घर लेगई। इस घटना से सर्वत्र हलचल मची और ब्रह्माजी के पास इन्द्र को लेकर देवगण गये। ब्रह्मा ने सब कारण बताया सब देवगण अपने-अपने विमानों पर चढ़कर उस पतिव्रता के पास आये और पतिव्रता को ब्रह्माजी ने समझाया कि क्रोध छोड़कर प्राणीमात्र का उद्धार करना चाहिये। पतिव्रता ने कहा सम्पूर्ण संसार में श्रेष्ठ मेरे पति को मुनि ने सूर्योदय होनेपर भस्म होने का जो श्राप दिया है उसीको बचाने का लक्ष्य कर मैंने सूर्य को शाप दिया है न क्रोध, न मोह, न लोभ, न काम और न द्वेष से ऐसा कुछ किया गया है। ब्रह्मा ने कहा पति की मृत्यु होने से सर्वत्र त्रिलोकी का हित है इसलिये तुम्हें अधिक पुण्य होगा परन्तु निश्चय पर अटल उसे वे न मना सके। परन्तु ब्रह्मा ने कहा भस्म पुरुष कामदेव के समान होगा उसमें सौन्दर्य लावण्य सब गुण रहेंगे। परन्तु पतिव्रता ने कहा मेरे विधवा होनेपर मेरी गति तो विपरीत होगी परन्तु ब्रह्मा ने कहा अभी मरा तो नहीं हमारे वचन से ही वह कामदेव के समान सुन्दर होगा। पतिव्रता ने अपना शाप वापिस लेलिया और सूर्योदय होते ही पति मुनि के शाप से भस्म हो गया उसी समय भस्म से कामदेव के समान मनुष्य उत्पन्न हुआ। सबको आश्चर्य हुआ पति को लेने के लिये स्वर्ग से जो विमान आया था उसमें बैठकर दोनों पति और साध्वी स्वर्ग को चले गये। इसलिये पतिव्रता साक्षात् विष्णुरूपा है उसे भूत भविष्यत् सभी का ज्ञान होता है इस पुण्याख्यान को पढ़ने और सुननेवाले को अनन्त पुण्य फल मिलता है।

माण्डव्य के शूल का आघात तथा पतिव्रता के पति को कुष्ठ क्यों हुआ इस द्विज के प्रश्न पर भगवान् बोले बाल भाव से माण्डव्य ने वस्ति देश में तृण देकर वहीं छोड़ दिया उसी अपवाद दोष से दिन-रात उसने कठिन व्यथा को भोगा किन्तु योगाभ्यास में समाधियुक्त माण्डव्य को उसका ज्ञान नहीं हुआ। कुष्ठी और ब्रह्म के घात से तथा इन्द्रियों को वश में न रखने से उस पतिव्रता के पति को कुष्ठ हो गया पहले इसी मे तीन कन्याओं को ब्राह्मण को दिया इससे इसके पतिव्रता स्त्री आई और केवल इसी के कारण वह मेरे समान हो गया। ब्राह्मण के द्वारा कृत्या स्त्री के विषय में पूछने पर भगवान् बोले कि अपने सर्वस्व देनेवाले पुरुष के कृत्या स्त्री होती है ऐसी स्त्रियां गुणवर्जित, कुचहीन, विरूप, निर्धन भृत्य से भी अपना अनुचित सम्बन्ध कर लेती हैं और अपने योग्य पति को छोड़कर नीच कुल के साथ प्रेम रति करती हैं। उमा और नारद का सम्वाद इसके लिये प्रयोजनीय होने से भगवान् ने उसे कहा। नारद ने पूछा हे उमे ! सम्पूर्ण स्त्रियों का अन्तःकरण आप जानती हैं कृपया सब मुझे बतलाइये। उमा बोली युवती जन का चित्त सदा पुरुषों में लगा रहता है अच्छे पुरुष को सुन्दर वस्त्र धारण किये देख वे व्याकुल एवं अधीर हो जाती हैं। स्थान न मिलने से समयाभाव से और उन्हें चाहनेवाले उपयुक्त पुरुष न मिलने से स्त्रियों का सतीत्व रहता हैं। घृत के घड़े के समान स्त्री है, जलते हुए अङ्गारे के समान मनुष्य है इसलिये घी रूपी स्त्री और अग्निरूपी पुरुष को एक स्थान पर

न छोड़े। स्त्री के सत्व की रक्षा बालपन में पिता, युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्रगण करते हैं उसकी शक्ति की सदैव रक्षा करनी चाहिये क्योंकि सम्पूर्ण सृष्टि की रक्षिका वही मातृशक्ति की मूर्त्तिमती स्त्री है। स्त्री को संरक्षण किये बिना रहने देने से वर्णसङ्कर सृष्टि उत्पन्न होने की सम्भावना से भूमिदोष तथा बीज दोष से सृष्टि अवनति की ओर जाने का भय बना रहता है। स्त्री के आधीन दोनों कुल पुत्र, दौहित्र, पुत्री आदि है इसलिये उसकी शक्ति की रक्षा सर्वत्र इष्ट है। रजस्वला स्त्री के पास जो पुरुष नहीं जाता है वह ब्रह्महत्या और भ्रूण (गर्भपात) हत्या का पापी होता है। स्त्रियों को अनुचितरूप से लुभा कर जो पापाचार करते हैं ऐसे पापी घोर नरकों की यन्त्रणा भोगते हैं अगम्यागमन के विभिन्न पापों का गिनाना। उनसे छुटकारा पाने के लिये ब्राह्मण द्वारा प्रश्न करने पर भगवान् बोले अगम्यागमन करनेवाला पुरुष लोहे की तप्त पुतली से आलिङ्गन कर मरे तो उस पाप से छुटकारा पा जाता है। भगवन्नाम के प्रभाव से भी घोर पापों से छुटकारा होता है। गृहस्थ के लिये विष्णु की भक्ति का विशेष प्रयोजन और साध्वी स्त्री द्वारा समस्त ऐश्वर्य, कीर्त्ति, आयु और सम्पूर्ण कुल की उन्नति होती है। उनके विषय में विशेष कहना सूर्य को दीपक दिखाना है। विधवा ब्राह्मणी से सदैव दूर रहे यदि ब्राह्मणी कुलटा होती है तो उसका भावी जीवन सदा के लिये पतित हो जाता है और जन्म-जन्म में नीच योनि में जाकर उसका कहीं त्राण नहीं होता। द्विज ने भगवान् से कन्यादान का फल पूछा। सम्पूर्ण गुणों से युक्त कन्या को आभूषण आदि से सज्जित कर योग्य वर को देने से सम्पूर्ण पृथ्वी के दान का फल मिलता है। जो कन्या विक्रय करते हैं उन्हें नरक की प्राप्ति होती है अनमेल अवस्था, जैसे गुण, कुल, शील, और वयस मेंबहुत अपेक्षाकृत भेद होने से कन्या देनेवाले को रौरव नरक और चाण्डाल योनि की प्राप्ति होती है। अपनी कन्या को पाणिग्रहण के समय दिया गया सब कुछ अक्षय होता है। छै प्रकार के पुरुषों को कन्या न दे।

अत्यासन्नेऽतिदूरस्थे चात्याढ्ये चातिदुर्गते ।
कुलहीने च मूर्खे च षट्सु कन्या न दीयते ॥
अतिवृद्धे चातिदीने रोगिष्ठे देशवासिनि ।
अतिक्रुद्धेऽप्यसन्तुष्टे षट्सु कन्या न दीयते ॥

बिलकुल निकट रहनेवाले, बहुत दूर रहनेवाले, अत्यन्त धनी, अत्यन्त दुर्गति में पड़े हुए, कुलहीन और मूर्ख को कन्या न दे। अति वृद्ध, अति दीन, रोगी, और परदेशवासी, अति कोधी और असन्तुष्ट पुरुष को कन्या न दे। कन्यादान की महिमा अनन्त है। धन्य हैं वे व्यक्ति जो कन्यादान कर जीवन सफल करते हैं इस पुण्य आख्यान के सुननेवाले को अनन्त पुण्य फलों की प्राप्ति होती है।

५५ तुलाधारचरितम्, सत्यस्य प्रशंसा च ५५४

निर्लोभत्वप्रशंसायां शूद्रकथानकम् ५५५

तुलाधार के चरित्र के सम्बन्ध में द्विज के पूछने पर भगवान् ने कहा सत्य की सर्वोच्च प्रतिष्ठा से मर्यादा का उल्लङ्घन संसार में कहीं नहीं होता है; सत्य के द्वारा मनुष्य प्रभु का साक्षात्कार करता है; सत्य में प्रभु का साक्षात् वास है; सत्य से युधिष्ठिर अपने मानवीय शरीर से स्वर्ग चले गये: सत्य से बलि को भविष्यत्कल्प में इन्द्र पदवी प्राप्त होगी और हरिश्चन्द्र ने अपनी प्रजा सहित सशरीर स्वर्ग को सत्य से ही सुशोभित किया अतः सत्य की महिमा अगाध है। तुलाधार भी इसी सत्य के कारण महात्मा है। यह तुलाधार सत्य के कारण ही शुद्ध व्यवहार से व्यापार कर जनमन को मोहनेवाला है। इस विषय में शूद्र का आख्यान देते हुए भगवान् ने कहा एक बार परीक्षा के लिये मेरे द्वारा रक्खे गये दुशालों को उसने दूसरे का समझ छोड़ दिया। मैंने सोचा थोड़ा लाभ देखकर न उठाया हो तो उसके मार्ग में सोने को उदुम्बर में रखकर वहां रक्खा। परन्तु उसने लोभ

नहीं किया उसने लोभ से लाभ और लाभ से लोभ होनेवाले मोह, मद, क्रोध का सारा परिणाम सोच विपत्ति का कारण समझ उसे टाल दिया। घर आते ही वहां भगवान् ने उसकी क्षपणक के रूप में परीक्षा की और उसकी घरवाली को बहकाते हुए कहा कि उसने अपना सोना छोड़ दिया है। स्त्री ने आकर पति को सब कहा और दोनों स्त्री-पुरुष बाहर आये। क्षपणक वेषधारी भगवान् ने उसे ललचाया परन्तु वह अपने विचार से न डिगा और अधिक दबाने से शूद्र ने जो आशय कहा वह सोने के अक्षरों में वर्णन करने योग्य है सन्तोष मेरे लिये बड़ा उपयोगी साधन है माता के समान परायी स्त्रियों को और पर द्रव्य को लोष्ठ (पत्थर) के समान और पर स्त्री को सर्प के समान मानकर मैं यज्ञ का ही फल भोगता हूं। इसलिये मेरा यह सोना नहीं है कीचड़ के पास जाकर छूने पर उसे धोने से न छूना ही अच्छा है। इतना कहते ही पुष्प वर्षा हुई। देवगण ने उसे अपने विमानों पर जाने के लिये निमन्त्रित किया। शूद्र ने आश्चर्य से उस निर्ग्रन्थिक (भिक्षु) के विषय में सत्य-सत्य बातें जाननी चाहीं। इसपर भगवान् ने उसके धर्म की परीक्षा लेने इस वेष में आने और उसे उत्तीर्ण पाकर सशरीर परिवार समेत विमान में स्वर्ग जाने की बात कही। ऐसे ही लोभ को छोड़ने से तुलाधारादि स्वर्ग गये यह पवित्र कथा पुण्यकारिणी है।

५६ कामस्य दुर्जयत्वकथनेऽहल्येन्द्रचरित्रम् ५५९

भगवान् ने एक पत्नी का व्रत लेकर चलनेवाले व्यक्तियों की प्रशंसा की परन्तु इसमें कष्ट बहुत है अनुचित करने से इन्द्र को हजार भगों(योनिछिद्र)का चिन्ह हुआ और भगवती को प्रसन्न करने से उसका नाम हजार आंखवाला हुआ। विप्र ने इन्द्र के भगाङ्क की बातें पूछी और अहल्या के हरने के विषय में जिज्ञासा की इसपर भगवान् ने ब्रह्माजी द्वारा अपनी पुत्री अहल्या को गौतम ऋषि के साथ ब्याह देने पर माया के द्वारा एकान्त में गौतमजी के स्नानार्थ जानेपर इन्द्र ने गौतम का छद्म वेष बनाकर अनुचित रूप से बलात्कार किया। जब योग द्वारा इन्द्र की ये

दुश्चेष्टायें गौतम को मालूम हुईं तो वे तुरन्त आये और इन्द्र ने अपना विड़ाल का रूप बना लिया। जब मुनि श्राप देने को तैयार हुए तो इन्द्र हाथ जोड़कर खड़ा हुआ मुनिको बहुत क्रोध आया और शरीर पर हजार भग होने और उसके लिङ्ग के गिरने का शाप दिया। अहल्या ने अज्ञान से किये गये इस दुष्कर्म के लिये क्षमा प्रार्थना की परन्तु मुनि ने उसे अस्थि चर्म युक्त निर्मांस नख रहित होने का शाप दिया। जिससे आने-जानेवाले स्त्री और पुरुप शिक्षा लेसकें। जब अहल्या ने बहुत अनुनय-विनय की तो दयालु गौतम ने विश्वामित्र के साथ त्रेता में राम लक्ष्मण द्वारा आने पर राम से उद्धार पाने की बात कही। इन्द्र ने लज्जा से जल में प्रवेश कर इन्द्राक्षी भगवती की आराधना की। देवी ने प्रसन्न होकर उसे वर दिया कि मुनि शाप को बदलना शक्य नहीं किन्तु बुद्धि ऐसी कर देती हूं कि लोग योनि के मध्य में आखें देखेंगे और सहस्राक्ष तुम्हारा नाम होगा व मेढ़े के अण्ड और लिङ्ग होगा। काम से मोहित इन्द्र की दशा भी नीच गतिवाली होती है साधारण पुरुषों की तो बात ही क्या।

५७ कामस्य दुर्जयत्वे परमहंसचरित्रम् ५६३

लौहित्योत्पत्तिवर्णनम् ५६५

काम के वश में हुए किसी दूसरे भागीरथी गङ्गा के तीर निवासी एक परमहंस द्विज का आख्यान भगवान् ने कहा। एक बार उसने एक लावण्यमयी युवती को अपने घर से दूसरे के घर जाते देखा और रास्ते में उसे मिला। उस समय काम से पीड़ित उसने देवागार के कपाट बन्द कर गाढ़ी अर्गला लगाकर रातभर उसका चिन्तन किया और उठकर उसके घर आकर दरवाजा खोलने को कहा। इसपर स्त्री ने सारी बातें कहकर उसके आने को अनुपयुक्त कहा। परमहंस ने कई लोभ दिये परन्तु स्त्री ने कपाट नहीं खोला इसपर स्वयं जैसे ही दरवाजा खोलकर हठात् जाने लगा तो शिर किवाड़ों के बीच में आ जाने से वह न अन्दर

जा सका, न बाहर निकल सका और वहीं मर गया। प्रातः जब रक्षकगण आये तो उस स्त्री से सारी बातें पूछी और सत्य बात जानकर वह स्वस्थ हो गई। अमोघा को देखकर ब्रह्माजी के स्खलद् वीर्य होने पर शन्तनु द्वारा अपनी स्त्री को वीर्य पान करने को कहने पर लौहित्य की उत्पति और तीर्थराज प्रयाग का प्रादुर्भाव जहां त्रिवेणी सङ्गम पर राम द्वारा रावणादि वध से लगे ब्रह्महत्या के पाप से छुटकारा हुआ इस विषय में विशिष्ट विवरण।

काम के आख्यान में गन्धर्वादि स्त्रियों के साथ भगवान् शङ्कर का क्रीड़ा करना और पार्वतीजी द्वारा योग से उनके इस अनुचित कार्य को देखकर क्षेमङ्करी रूप में प्रवेश और क्रीड़ारत गन्धर्व स्त्रियों को पादाहत कर भूतल पर डाल देना। उनका पृथ्वी पर आकर म्लेच्छों के वश में होना ऐसी स्त्रियां आज भी चाण्डाल स्त्री नाम से स्थित हैं। उमा ने शतधा रूप कर ईश से सङ्गम किया। अजेय काम की शक्ति विचित्र है। क्षेमङ्करी की पूजा करने से अनन्त पुण्य फल प्राप्त होता है। फिर भगवान् ने अपनी आपबीती गोपी सम्बन्धिनी वधू के प्रेमपाश का वर्णन किया। इनके हरण दोष से रण में पराजय, दैन्य, शोक, पुत्र विनाश, सारथी होना कल्प-कल्प में मुझे मिला। मूकादि की शुभगति का वर्णन। विप्र ने भगवान् से अपने लिये इष्ट समझ पूछा तो भगवान् ने माता-पिता की सेवा उसके लिये परम धर्म बताया और उनको प्रसन्न करने के बाद उसे स्वयं की भक्ति की आज्ञा दी। उन पांचों पवित्र पुरुषों के साथ देवगण भगवान् के गुणानुवाद गाते हुए भगवान् के मन्दिर में गये और वहां से उन्हें स्वर्गलोक में ले गये। यह पञ्चाख्यान पवित्र है तथा बुरे स्वप्नों का नाश करनेवाला है।

५९ जलदानमाहात्म्यवर्णनम् ५७०

जलदानविषये धनिसुतकथानकम् ५७१

जलदान का विशेष महत्त्व वापी, कूप और तड़ाग आदि को बनानेवाले व्यक्ति को अनन्त कोटि पुण्यों का फल मिलता है। इसके साथ-साथ देश, काल और पात्र के अनुसार जलदान का विशेष माहात्म्य प्रतिपादित किया गया। प्राचीनकाल में धनिसुत ने सुन्दर जलाशय बनाया परन्तु कुछ समय बाद उसका धन क्षीण हो गया किसी धनी ने उसके जलाशय का मूल्य देकर लेने का प्रस्ताव किया इसपर धनिसुत ने कहा अयुत मुद्रा के बाद खरीदकर लेने पर भी इसका फल निर्माणकर्त्ता को अवश्य मिलेगा। धनी व्यक्ति के पास में बैठे सभी इस पर हँसे। धनी ने धनिसुत से कहा कि दीनारायुत देकर पत्थर लाकर इस सरोवर में जल के भीतर डालूंगा यदि डूब जायगा तो फल बनानेवाले को नहीं मिलेगा अन्यथा ठीक है ही। ऐसा ही किया गया और पत्थर तैरता रहा यह देखकर वे विस्मित हुए। वह धनिसुत स्वर्ग का भागी हुआ जलदान का भागी हुआ जलदान का माहात्म्य विशेष है।

६० अश्वत्थादिवृक्षारोपणविधानफलवर्णनम् ५७३

प्रपादानविधिः धर्मघटदानविधिश्च ५७५

बड़े पेड़ जैसे बड़, पीपल, आम, इमली और शाल्मली आदि को लगाने से अनन्त कोटि गुण फल होता है। उष्णकाल में पशु, पक्षी, गौ, देव और ब्राह्मण मनुष्य छाया में विश्राम करते हैं इससे उनके लगानेवालों को स्वर्गादि की प्राप्ति होती है। विशेष रूप से जल के स्थानों के पास इनका लगाना विशेष फलदायक है। स्नान कर अश्वत्थ (पीपल) को छूनेवाला सब पापों से छूट जाता है। बिना स्नान किये छूनेवाला स्नान करने का फल पाता है इसको देखने से पाप नाश और स्पर्श करने से लक्ष्मी की प्राप्ति तथा प्रदक्षिणा करने से आयु बढ़ती है। इसलिये सभी

बड़ी छायावाले वृक्षों का रोपण विधान (लगाना) श्रेयस्कर है। जीवन में मनुष्य जल-स्थान बनाने में असमर्थ भी हो तो बावड़ी या और-और छोटेमोटे जल सरोवर बनावे उसका फल भी बहुत पुण्यदायक है इनके करने में असमर्थ व्यक्ति धर्म घट का दान करे और उसे प्रार्थनापूर्वक योग्य ब्राह्मण को चार मासा सोने की दक्षिणा के साथ देदे। ऐसा तीनवर्ष तक करते रहने से बावड़ी के दान का पुण्य फल मिलता है। इस आख्यान का श्रवण और श्रावण करनेवाला पुण्य लाभ प्राप्त करता है।

सेतुबन्धन का माहात्म्य और कीचड़वाली भूमि पर जाने के लिये पत्थर काष्ठ आदि से सुन्दर प्रशस्त मार्ग बनाने का विशेष महत्त्व है। प्राचीनकाल में एक विशेष चोर का आख्यान जो जङ्गल में ह्रद पर गो शिर बनाकर चोरी के लिये गया और चोरी कर अपने यहां चला आया। सभी आने वाले उसको सुख से लांघते थे। जब चोर मरा तो चित्रगुप्त ने उसके लिये लम्बी अभियोग सूची दी। परन्तु गोशिर का एक पुण्य इसका अविशिष्ट है और धर्मराज ने उसे भोगने के लिये मर्त्यलोक में जन्म लेकर बारह वर्ष तक राजा बना दिया। उसका जन्म अति वणिक् के यहां हुआ और सारी आयु उसने दुःख भोगा और उस राष्ट्र के राजा के मरने पर मन्त्रियों ने उस वणिक् पुत्र को लाकर राजा बना दिया। राजा

होते न होते उसने यथाशक्ति सम्पूर्ण जल के पार करने के स्थानों पर पुष्ट दृढ़ पुल और आनेजाने का मार्ग प्रशस्त किया और बावड़ी, कुआ, तालाब, आराम वृक्षों को लगाकर अपने पूर्व कर्मों को यादकर स्वपाप का क्षय कर दिया साथ ही देव, ब्राह्मणों का और गुरुजन का तर्पण करने लगा। इस प्रकार पाप से शुद्ध होकर वह जब मरा तो विमान पर आरूढ़ होकर धर्मराज के यहां गया और चित्रगुप्त के आदेश से उसे विष्णुलोक की प्राप्ति हुई। इसी प्रकार सभी पुण्य कार्यों की विधि देवस्थान आदि से नाना सुन्दर लोकों की प्राप्ति और उनका विशेष महत्त्व बताया है। रुद्राक्ष के माहात्म्य और उसके दर्शन करने, धारण करने तथा उससे जप के फल का माहात्म्य। रुद्राक्ष को धारण करनेवाला व्यक्ति साक्षात् शङ्कर है सम्पूर्ण संसार में नाना मुखों वाले रुद्राक्षों का विभिन्न फल और उनके धारण व जप से चतुर्वर्ग फल की प्राप्ति। नाना मुखों वाले रुद्राक्ष की माला में मन्त्र जप कर धारण करने की विधि। इस सम्पूर्ण आख्यान के सुनने से अनन्त पुण्य फलों की प्राप्ति।

स्कन्द ने सम्पूर्ण लोकों के हितार्थ अन्य पवित्र फल के विषय में पूछा उत्तर में महादेव ने आँवले के फल को परम पवित्र बताया। उसके रोपने से नरनारी जन्मबन्धन से छूट जाते हैं। यह फल भगवान् वासुदेव को भी परम प्रिय है इसके भक्षण से आयु वृद्धि, पान से धर्म सञ्चय और स्नान से अलक्ष्मी नष्ट होती है। जिस घर में यह रहता है वहां प्रेत, दैत्य एवं राक्षस नहीं आते। जितना फल दोनों पक्षों की एकादशी में इसके फल से स्नान करने से होता है उतना गङ्गा, गया, काशी, व पुष्कर स्नान से भी नहीं। इसका भक्षण कर कृष्ण एवं शुक्लपक्ष की एकादशी को उपवासकरने से सात जन्मों के पाप नष्ट

हो जाते हैं। अतः धात्री व्रत का आचरण करना श्रेयस्कर है। जिसके केश आँवले के रस से रञ्जित हैं वह फिर माता का स्तन नहीं पीता अर्थात् गर्भवास में नहीं आता। धात्री रस से स्नान कर विष्णु पूजन करने का महत्त्व। सम्पूर्ण यज्ञ एवं देवपूजा में भी इसकी प्रशस्ति है केवल रवि दिन व सप्तमी को धात्री फल काम में न ले। जो रविवार को धात्रीफल से स्नान करता है वा भक्षण करता है उसके आयु, वित्त, एवं कलत्र (स्त्री) नष्ट हो जाते हैं। संक्रान्ति, भृगुवार, षष्ठी, पड़वा, नवमी, अमावास्या को इसे त्याग दे। इन दिनों ग्रहण करने में नाना अरिष्टों की प्राप्ति। इसके दर्शन मात्र से ही पापी प्राणी एवं दुष्ट ग्रह भाग जाते हैं। इस विषय में प्रेताख्यायिका का वर्णन—एक पुल्कस (चाण्डाल) शिकार खेलने के लिये वन में गया। मृग पक्षिगणों को मार भूख एवं प्यास से व्याकुल हो आँवले के वृक्ष पर चढ़ उसने उत्तम फल खाया तो उसी क्षण वह वृक्ष के नीचे गिर कर मर गया। यमराज के सेवक प्रेतगण एवं राक्षसगण उसे लेने आये परन्तु उसे ले जाने में समर्थ न हुए। प्रेतों ने मुनियों से चाण्डाल के विषय में पूछा कि हम इसे ले जाने में समर्थ क्यों नहीं हैं क्योंकि युद्ध पराङ्मुख, सिंह, व्याघ्र, पशु-पक्षियों द्वारा मारे हुए जलजन्तुओं से नष्ट हुए तथा वृक्ष पर्वतादि से गिरे हुए, आत्मघात करनेवाले व श्राद्ध न करनेवाले, गुरु, माता-पिता आदि से द्वेष करनेवाले और आशौचान्न भक्षण करनेवाले मनुष्य प्रेतों के भोग्य होते हैं इसे तो हम सूर्य की तरह देखने में भी असमर्थ हैं। तब मुनि बोले इसने आमलकी फल का भक्षण किया है इसी कारण से यह दुर्दर्श है व स्वर्ग में जाने योग्य है। प्रेतों ने पूछा कि जबतक विष्णुलोक से विमान नहीं आता है तबतक प्रेतयोनि किस कारण से प्राप्त होती है कहिये क्योंकि हम वेद, पुराण, स्मृति व यज्ञादि स्थानों में नहीं रह सकते। मुनियों ने छिद्रान्वेषी कूटसाक्षी, देनेवाले को रोकनेवाले, सत्य वचन, प्रतिज्ञा व व्रत को भङ्ग करनेवाले, स्त्री व पुत्री आदि को बेचनेवाले को प्रेत योनि की प्राप्ति होती है ऐसा बतलाया। तीर्थ में स्नान कर शिव एवं

विष्णु की मूर्त्ति को देखने से प्रेत योनि नहीं मिलती। एकादशी आदि व्रत व वेदपुराणादि पठन से भी प्रेतत्व से छुटकारा नहीं किन्तु धात्री फल की पूजा एवं भक्षण करने से प्रेतत्व नष्ट होता है। तदनन्तर मुनियों के आदेश से धात्री फल का भक्षण कर प्रेतों सहित चाण्डाल का स्वर्ग गमन। स्कन्द ने पूछा कि धात्री भक्षण का इतना फल है तो उसे भक्षण करनेवाले स्वर्ग को क्यों नहीं जाते तब शङ्कर बोले कि ज्ञानलोप से वे हिताहित कर्मों को नहीं जानते जिसके घर में दुष्टा, शुद्धता संयम रहिता व क्रूर स्वभाव की स्त्री है वहां प्रेत रहते हैं। माता-पिता आदि की निन्दा करनेवाले देवनिन्दा करनेवाले, ध्यान वअध्ययन से रहित, शौर्य व उत्साह रहित, म्लेच्छ भाषा भाषण करनेवाले, जात कर्मादि संस्कारों से रहित, पतिवञ्चक स्त्री और अतिथियों का अपमान करनेवाले प्रेत-योनि को प्राप्त होते हैं। इस आख्यान के श्रवण एवं कथन का फल। स्कन्द ने पत्र एवं पुष्पों की पवित्रता के विषय में पूछा तो शङ्करजी ने तुलसी को सबसे उत्तम बतलाया जैसे विष्णु को लक्ष्मी तथा मैं प्रिय हूं उसी तरह तीसरे तुलसी प्रिय है चौथा कोई नहीं। तुलसी का पूजन, ध्यान, रोपण व धारण करने से सम्पूर्ण पाप नष्ट होते हैं। शिखा में तुलसी रख जो प्राणों का त्याग करता है वह सम्पूर्ण पापों से निर्मुक्त हो स्वर्ग में जाता है। जहां यह तुलसी का लेख विराज-मान है वहां आधिव्याधि और प्रेत आदि नहीं रहने पाते।

६३ तुलसी-स्तोत्रवर्णनम् ५६८

तुलसीस्तोत्रमाहात्म्यवर्णनम् ५६६

तुलसी स्तोत्र के विषय में शतानन्दजी के शिष्यों ने गुरुजी से पूछा गुरुजी ने बतलाया कि तुलसी के नामोच्चारण से ही सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं नित्य ही शालग्राम की पूजन तुलसीपत्रों से करनी चाहिये। आगे लिखे मन्त्र पढ़कर तुलसीपत्रों को एकत्रित करे—

तुलस्यमृतजन्माऽसि सदा त्वं केशवप्रिये ! । केशवार्थे चिनोमि त्वां वरदा भव शोभने !
त्वदङ्गसम्भवैर्नित्यं पूजयामि यथा हरिम् ।
तथा कुरु पवित्राङ्गि ! कलौ मलविनाशिनी ॥

स्वयं कृष्ण ने कंस को मारने के लिये तुलसी का रोपण किया । रामचन्द्र के वियोग में सीता ने, शङ्करार्थ पार्वती ने, राम व लक्ष्मण ने इष्टसिद्धार्थ, ऋष्यमूक पर बालि वधार्थ सुग्रीव ने, दुःस्वप्ननाशार्थ सम्पूर्ण देव पत्नियों ने और समुद्र लांघते समय हनुमान् ने तुलसी का ध्यान किया । तुलसी का ध्यान करने से सब की कार्य सिद्ध हुई । तुलसीस्तोत्रपठन का महत्व ।

द्विजों ने पूछा कि जिसमें मज्जन करने से अखिल पाप व महापाप नष्ट हो जाते हैं तथा लोग पवित्र हो स्वर्ग में जाते हैं और सुर योनि की भी हानि नहीं होती है ऐसा उपदेश वर्णन कीजिये तब व्यासजी बोले देहधारियों के पाप गङ्गा के दर्शन करने से ही नष्ट हो जाते हैं । गङ्गा के स्मरण करने से पाप, कीर्तन से अति पाप और दर्शन से गुरु पाप नष्ट होते हैं । इसमें स्नान, पान एवं पितृतर्पण से महापाप नष्ट होते हैं । गङ्गातटपर पिण्डदान का महत्त्व । जो एक पुरुष गङ्गा स्नान के लिये जाता है उसके सब पुरुष पवित्र हो जाते हैं । जारज "अमृते जारजः कुण्डोमृते भर्तरि गोलकः" पतित, दुष्ट, चाण्डाल, गुरुघाती, सर्वद्रोह से युक्त और सर्व पापों से युक्त पिता को पुत्र त्याग देते हैं तथा पत्नी, सुहृद् व बान्धवगण भी त्याग देते हैं परन्तु गङ्गा स्नान करनेवाले को गङ्गा नहीं त्यागती । जैसे माता अपने सन्तान को गोद में बैठा मल की शुद्धि करती है उसी तरह गङ्गा मल की शुद्धि करती है । गङ्गा दोनों कुलों का उद्धार करती है । सङ्क्रान्ति, व्यतीपात, चन्द्र एवं सूर्य के ग्रहण और पुष्य नक्षत्र में गङ्गा स्नान करने से कोटि कुल का उद्धार

होता है। सूर्यग्रहण के अवसर पर प्रभासक्षेत्र में हजार गोदान करने से जो फल मिलता है वह प्रति दिन गङ्गा-स्नान से मिलता है। यज्ञ, दान, तप, जप, श्राद्ध और देवपूजन गङ्गा तट पर करने से कोटिगुणा फल मिलता है। अन्य स्थान पर पाप किया हुआ गङ्गातटपर नष्ट हो जाता है तथा गङ्गातटपर किया हुआ गङ्गास्नान से नष्ट हो जाता है। जैसे लोग धनवान् की आदरपूर्वक स्तुति करते हैं वैसे ही गङ्गा की स्तुति करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। यह पृथ्वी पर मनुष्यों को, पाताल में नागों को और स्वर्ग में देवों को पवित्र करती है अतः इसका नाम त्रिपथगा कहा गया है।

विष्णुपादाब्जसम्भूते गङ्गे त्रिपथगामिनि!। धर्मद्रवेति विख्याते पापम्मे हर जाह्नवि!

विष्णुपादप्रसूताऽसि वैष्णवी विष्णुपूजिता।
त्राहि मामेनसस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात्॥

श्रद्धया धर्मसम्पूर्णे श्रीमता रजसा च ते। अमृतेन महादेवि भागीरथि! पुनीहि माम्

इन तीनों श्लोकों को पढ़कर गङ्गाजल में स्नान करने से कोटि जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं। गङ्गा का मूल मन्त्र एक वार भी जपने से मनुष्य पवित्र हो जाता है। मूल मन्त्र "ॐ नमो गङ्गायै विश्वरूपिण्यै नारायण्यै नमोनमः"। गङ्गा में पितरों का अस्थि प्रवाह करने से पद-पद पर अश्वमेध यज्ञ के समान फल मिलता है जबतक मनुष्य की हड्डी गङ्गाजल में रहती है उतने हजार वर्ष तक वह स्वर्ग में रहता है। जो सैकड़ों योजन से भी गङ्गा-गङ्गा यह नाम उच्चारण करता है उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं तथा उसे विष्णुलोक की प्राप्ति होती है। जो गङ्गा जानेवालों को शक्त्यनुसार धन व अन्नादि देता है (जाने आने का खर्च देता है) उसे जो पुण्य होता है वही पुण्य वहां स्नान करनेवाले को होता है। स्नान करनेवाले को जो फल मिलता है उससे दुगुना प्रेरणा करनेवाले को मिलता है। इच्छा से, अनिच्छा से, प्रेरणा से और दूसरे की सेवा निमित्त जो जाता है उसे भी देवलोक की प्राप्ति होती है।

ब्राह्मणों ने गङ्गा का कीर्तन सुन यह क्या आकारवाली है तथा कैसे अत्यन्त पवित्र हुई इस विषय में पूछा तब व्यासजी ने गङ्गा के सात नामों की पृथक्-पृथक् व्याख्या की। इसका विस्तार देख ब्रह्माजी ने उसे कमण्डलु में रक्खा। जब वामनावतार के समय बलि से तीन पैर पृथ्वी की याचना की थी उस समय पृथ्वी, आकाशादि मापने के बाद कमण्डलु जल से ब्रह्मा ने इसकी पूजा की। वह जल हेमकूट में गिरा उसे शङ्कर ने जटा में धारण किया शङ्कर को प्रसन्न कर राजा भगीरथ द्वारा यह पृथ्वी पर लाई गई। भगीरथ ने गजपुङ्गव की आराधना की उसने तीन दांतों से हिमालय के तीन बिल किये इससे इसका नाम त्रिबलिगा और त्रिस्रोता हुआ। गङ्गाजल से सगर के पुत्रों का उद्धार हुआ नारदजी ने ब्रह्मा के मुख से गङ्गा माहात्म्य सुन हरिद्वार में तप किया जिससे वे ब्रह्मा के समान हो गये। गङ्गा सर्वत्र सुलभ है परन्तु हरिद्वार, प्रयाग और गङ्गासागर के सङ्गम में मनुष्यों को दुर्लभ अवसर मिलता है वहां तीन रात अथवा एक रात्रि भी स्नान करने से परमगति की प्राप्ति होता है। व्यास के मुख से वचन सुन ब्राह्मण गङ्गा तट पर तप करने चले गये और वहां उनकी मोक्ष हो गई। गङ्गा-माहात्म्य का फल वर्णन।

६५ गणपतेरग्रपूज्यतावर्णनम् ६०८

पार्वतीप्रेमकथावर्णनम् ६०९

पुलस्त्यजी ने कहा हे भीष्म! संजय ने गुरु से देवपूजा के विषय में पूछा कि किसकी पूजा आदि मध्य एवअन्त में होनी चाहिये और उसका क्या प्रभाव और क्या फल है? व्यासजी ने कहा विघ्नविनाशार्थ गणेश की पूजा सर्वप्रथम होनी चाहिये। पावती से स्कन्द एवं गणेश की उत्पत्ति। दोनों बालकों को देख देवों ने पार्वती को अमृत से बना हुआ दिव्य लड्डू दिया। लड्डू को देख दोनों ने लेने की इच्छा प्रकट की। माता ने कहा यह देवों से प्राप्त हुआ है इसकी सुगन्धि मात्र से ही व्यक्ति अमर हो जाता ह तथा सम्पूर्ण शास्त्रार्थों को जाननेवाला, लेखक

कलाकार और विद्वान् होता है जिसपर तुम्हारे पिता की अनुमति होगी उसे यह दिया जायगा। माता का वचन सुन मयूरारूढ़ हो स्कन्द तीर्थयात्रार्थ गये। गणेश अपने माता व पिता की ही प्रदक्षिणा कर वहीं बैठ गये। पश्चात् स्कन्द भी यात्रा कर आगये। माता ने दोनों को देख कहा सम्पूर्ण तीर्थों के अभिषेक से, सम्पूर्ण देवों को नमस्कार करने से और सम्पूर्ण यज्ञ व्रतादि करने से भी माता-पिता की पूजा का फल विशिष्ट है अतः गणेश को ही मोदक मिलेगा और इसी की पूजा सर्वप्रथम होगी। महादेवजी ने कहा इसकी अग्र पूजा करने से देव प्रसन्न होंगे। महादेवजी ने इसे गणों का अधिपति बना दिया। चतुर्थी के दिन रात्रि में भोजन करे तथा उपवासी रह पूजन करे "ॐ नमो गणपतये" इस मन्त्र का जाप करे। गणपति आदि १२ नामों का प्रातःकाल स्मरण करने से सम्पूर्ण पापों से विमुक्ति व अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

६६ गणपतेरन्यत्स्तोत्रवर्णनम् ६११

व्यासजी ने गणपति का सर्वसिद्धिदेनेवाला व सम्पूर्ण अभीष्टफल को देनेवाला स्तोत्र वर्णन किया। यह स्तोत्र परम पवित्र है व महापुण्य को देनेवाला है तथा सात जन्मों तक पाठ करनेवाला निर्धन नहीं होता। सर्वसिद्धि को प्राप्त कर अन्त में रुद्रलोक में वह पूजा को प्राप्त होता है।

६७ नान्दीमुखादिषु प्रथमं गणेशपूजनवर्णनम् ६१२

देवेभ्यो गणेशेन वरदानम् ६१५

विष्ण्वाज्ञया देवानामसुरैः सह सङ्ग्रामवर्णनम् ६१७

चित्ररथकृतकालकेयवधवर्णनम् ६१९

व्यासजी ने कहा नान्दीमुखादि श्राद्धों में गणेश का पूजन करने से अक्षय पुण्य की प्राति होती है। मिट्टी की, पत्थर की वा चित्र की मूर्त्ति में गणेश का पूजन करे द्वारकाष्ठ में और पात्र में मूर्त्ति को लिखे। अन्य देश में भी जहां निरन्तर

दृष्टिगोचर हो ऐसी जगह स्थापित कर जो पूजन करता है उसके प्रियकार्य सिद्ध होते हैं। इससे विद्यार्थी को वेदशास्त्रों से उत्पन्न हुई विद्या व अन्य शिल्पादि विद्या की प्राप्ति होती है। धनार्थी को विपुल धन सुन्दर स्त्री पुत्रादि मिलते हैं। गणेश की पूजन करनेवालों को रोग, ग्रह और महामारी आदि पीड़ित नहीं करते हैं। गणेशजी के मूल मन्त्र "ॐ नमो गणपतये" का जाप करे; दधि, दुग्ध, पुष्प, मोदक और धूपदीपादि से पूजन करे। इनकी पूजा न करने से अभीष्टकार्य नष्ट हो जाते हैं। इन्द्र ने मोह एवं भ्रान्ति से पूजा नहीं की अतः उनके कार्य में विघ्न हो गया। देवासुर-संग्राम में हिरण्याक्ष आदि दानवों ने इन्द्र को परास्त कर दिया। देवनिर्वीर्य हो गये। देवों ने शङ्कर से कहा कि असुरों ने हमारे राज्य व यज्ञादि नष्ट कर दिये तब शङ्कर बोले आप लोगों ने गणेश पूजन नहीं किया पार्वती का उसे वरदान है कि तुम्हारी पूजन करने से ही देवों को सिद्धि प्राप्ति होगी। शङ्कर की आज्ञा से देवों ने गणेश की स्तुति की। गणेश ने कहा आपका हितकार्य करूँगा जल्दी कहिये। बृहस्पति ने कहा हे देव! इन्द्र ने पहले आपकी पूजा नहीं की उसे क्षमा करो। इतना वचन सुन गणेशजी बोले हे देवगण! जो इच्छा हो सो वर मांगो। देवों ने कहा हमारी विजय होनी चाहिये गणेशजी बोले अवश्यमेव आपलोगों की विजय होगी। प्रसन्न हुए देवों ने गणेश की पूजा की। गणेशजी ने कहा विष्णु के पास जाओ वे आपका कार्य करेंगे। गणेश की आज्ञा से देवों का विष्णु के पास जाना। विष्णु ने देवों को असुरों को मारने के लिये वचन दिया। मधु आदि दानवों का लड़ने के लिये सुसज्जित होना। नारदजी ने हिरण्याक्ष से कहा मैं विष्णु-दूत हूं यदि अपना हित चाहते हो तो राज्य त्याग दो नहीं तो युद्ध करो। इतना सुन दैत्यराज ने कहा हे ब्राह्मण! तुम मारने योग्य नहीं हो अतः मेरे आगे से चले जाओ देवों का निधन क्षणभर में हो जायेगा। देवदानवों का परस्पर युद्ध। बृहस्पति ने देवों के लिये मृत सञ्जीवनी विद्या का जाप किया। धन्वन्तरि औषधादि सहित

रण में भ्रमण करने लगे। औषधादि प्रयोगों से मृत देव जीवित व व्रणरहित होने लगे। क्रोधित कालकेय दानव का आगमन उसके बाणों से घायल हुए देवगण इन्द्र के पास गये। ब्रह्मास्त्रधारियों में श्रेष्ठ चित्ररथ का देवयुद्धार्थ आगमन। चित्ररथ और कालकेय का परस्पर युद्ध। चित्ररथ द्वारा कालकेय की मृत्यु। दैत्यगण युद्ध से विमुख हो भाग गये।

६८ जयन्तेन कालेयवधः ६२१

व्यासजी ने कहा भाई को मृत देख कालेय दानव चित्ररथ से लड़ने के लिये दौड़ा। असुर को आते देख जयन्त ने कहा शस्त्रों की चोट से दुःखित और प्रभग्नादि (क्षत व घायल) को मारनेवाला मूर्ख होता है तथा सुचिरकाल तक रौरव नरक भोग उसीका दास होता है। कालेय ने कहा मैं अपने भाई को मारनेवाले को मार तुझे नष्ट करूंगा। जयन्त और कालेय का युद्ध। जयन्त द्वारा उसकी मृत्यु। प्रसन्न हुए देवों ने जयध्वनि की।

६९ इन्द्रेण बलनमुचिवधः ६२३

व्यासजी ने कहा कालेय की मृत्यु सुन हिरण्याक्ष ने असुरों से कहा कि मैं स्वयं देवों से लड़ने के लिये जाऊँगा इतनी सुन दैत्यों का युद्धार्थ गमन। देव-दानवों का परस्पर युद्ध। युद्ध में दुःखित दानवों का इधर-उधर भागना कईएक दानव युद्ध में मारे भी गये। दैत्य सेना के नष्ट होने पर बलका इन्द्र के साथ युद्ध तथा इन्द्र से उसकी मृत्यु फिर क्रोधित नमुचि का युद्ध में आगमन। नमुचि ने गदा से ऐरावत पर प्रहार किया जिससे वह विह्वल हो गया। नमुचि का इन्द्र के साथ युद्ध और इन्द्र से उसकी मृत्यु। देवों द्वारा इन्द्र पर पुष्प-वर्षा।

७० इन्द्रेण मुचिवधः ६२६

व्यासजी ने कहा बल और नमुचि के मरने से मुचि का युद्धस्थल में आगमन इन्द्र और मुचि का परस्पर युद्ध तथा इन्द्र ने वज्र से उसे नष्ट कर दिया।

७१ षडाननेन तारेयवधः ६२७

व्यासजी बोले स्वामी कार्त्तिकेय का तारेय नामक दानव के साथ युद्ध। तारेय ने स्कन्द पर नाना शस्त्रास्त्रों से प्रहार किया। उसके अस्त्रों को कार्त्तिकेय ने अन्य अस्त्रों से नष्ट कर दिया। कार्त्तिकेय द्वारा तारेय के सारथि की मृत्यु। तारेय ने मयूर व कार्त्तिकेय पर मुसल प्रहार किया उससे मयूर विह्वल हो गया। कार्त्तिकेय ने अमोघ शक्ति से तारेय का वध किया।

७२ यमेन देवान्तक दुर्धर्षदुर्मुखवधः ६२९

व्यासजी ने कहा देवान्तक दैत्य का धर्मराज के साथ युद्ध। देवान्तक ने कहा तुम धर्म को नहीं जानते हो मैं तुम्हें दण्ड दूंगा इतना कह यमराज पर बाणों का प्रहार किया। यमराज ने उसके अस्त्रों को अपने अस्त्रों से नष्ट कर अपने महातेजवाले दण्ड का प्रयोग किया उससे उसकी मृत्यु हो गई। दुर्धर्ष दानव का यमराज के साथ युद्ध। यमराज ने शक्ति प्रयोग से उसकी मृत्यु की। खड्ग व चर्मधारी दुर्मुख का युद्ध में आगमन। यमराज द्वारा उसकी मृत्यु।

७३ इन्द्रेणाऽन्यनमुचिवधः ६३०

व्यासजी बोले अन्यनमुचि नाम का दानव रथ में बैठ स्वर्गस्थ देवों को अस्त्रों से पीड़ित करने लगा। उच्चैःश्रवा अश्व से युक्त रथ में बैठ इन्द्र का युद्ध में आगमन। नमुचि ने कहा प्राकृत देव को मारने से यश और प्रियकार्य नहीं होता तुम्हें मार मैं देवराज्य प्राप्त करूंगा। इन्द्र ने कहा वाक्यमात्र से शूरता सब जगह सुलभ है यदि तुम्हारे में पराक्रम है तो दिखाओ। तदनन्तर अन्यनमुचि व इन्द्र का परस्पर युद्ध। नमुचि द्वारा मायास्त्र का प्रयोग करना। इन्द्र ने मायास्त्र को दूर करने के लिये सौम्यास्त्र छोड़ा। इन्द्र द्वारा तलवार से अन्य नमुचि का शिरश्छेदन और वध। इससे देव एवं मुनिगण बहुत प्रसन्न हुए।

७४ विष्णुना मधुदैत्यवधः ६३२

व्यासजी ने कहा महान् क्रोधी मधु दानव रथ में बैठ देवासुरों के सामने विष्णु से बोला कि तुम युद्धधर्म को नहीं जानते हो और कटुवचन कह अस्त्रों का प्रहार करने लगा। श्री विष्णु ने भी उस पर बाण छोड़े। मधु माया-युद्ध करने लगा जिसमें देवगण नष्ट हुए। विष्णु ने चक्र से देव व दानवों को मारना शुरू किया यह देख देवमुनि कहने लगे कि विष्णु सदा देवों की रक्षा करते आये हैं आज कैसे उन्हें नष्ट कर रहे हैं। मधु दानव माया से हर रूप धारण कर विष्णु से कहने लगा हे पापिन्! दैत्यों के सामने देवों को नष्ट करता है उन्मत्त हुआ स्वकीय व परकीयों को भी नहीं जानता है अतः मैं तुम्हें यमलोक पहुंचाऊँगा। इतना कह मधु द्वारा विष्णु पर शस्त्र-प्रहार। विष्णु ने उसके अस्त्रों को नष्ट कर दिया। मायावी मधु ने सिंहपर आरूढ़ हो देवी का रूप धारण किया। मधु व विष्णु का परस्पर युद्ध। बीच में ही धुन्धु एवं सुन्धु को भी भगवान् ने नष्ट कर दिया। भगवान् विष्णु ने चक्र से मधु का शिर काट दिया जिससे उनका नाम मधुसूदन हुआ।

७५ इन्द्रेण वृत्रासुरवधः ६३५

व्यासजी बोले दैत्यों में श्रेष्ठ महातेजस्वी वृत्रासुर इन्द्र के साथ लड़ने आया। इन्द्र ने आते हुए वृत्रासुर के सम्पूर्ण शरीर पर शस्त्र चलाया। वृत्रासुर ने इन्द्र पर बाण छोड़े इस तरह दोनों में रात-दिन युद्ध हुआ। फिर इन्द्र ने उसके हाथी को शूल से मार दिया। दैत्य ने भी ऐरावत को शक्ति से व्यथित कर दिया। इन्द्र ने वृत्रासुर पर शक्ति का प्रहार किया उससे क्षण भर के बाद चेतना प्राप्त कर वृत्र ने इन्द्र पर बाणों की वर्षा की। फिर वृत्र ने महाशूल का प्रयोग किया। इन्द्र ने उसपर वैष्णवास्त्र छोड़ा दोनों अस्त्रों के स्पर्श से जलते पतिङ्गे उछ-लने लगे उनसे दोनों सेनाओं के कोई भी योद्धा क्षणभर न ठहर सके। जय पराजय

का विचार कर दोनों का घनघोर संग्राम हुआ जिसकी कोई समता नहीं। जैसे महर्षि वाल्मीकि ने अपने आदि काव्य में "रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव" कहा है उसी तरह यहां भी "वृत्रवासवयोर्युद्धं वृत्रवासवयोरिव" सार्थक किया अन्त में, वृत्रासुर के केशों को पकड़ तलवार से शिर काट दिया गया। उसके लिये दूसरे पुराणों में वज्र से भी शिर काटने का वर्णन आता है। वृत्रासुर के मरने से देवों ने जयध्वनि की।

७६ गणेशेन त्रैपुरिवधः ६३८

व्यासजी ने कहा त्रैपुरि (त्रिपुर का पुत्र) चार घोड़ों से युक्त रथ पर बैठ गणेश से कहने लगा कि तुम्हारे पिता ने मेरे पिता की मृत्यु की है अतः तुम्हें बाणों से यमराज के स्थान को पहुंचाऊंगा। गणेश जी ने कहा तुम्हारे पिता ने देवों का अहित कार्य किया था इसलिये हमारे पिताजी ने ज्ञान व बलपूर्वक एक ही बाण से उसे नष्ट कर दिया और मैं तुम्हें उसी मार्ग में एक क्षण में भेजता हूं इतना कह दोनों का परस्पर युद्ध। शास्त्रास्त्रों से घायल हो त्रैपुरि रथ में गिर गया। सारथि उसे रणस्थल से अलग ले गया। गणेशजी ने विमुख पर प्रहार न किया। बहुत समय के बाद चेतना प्राप्त होने से त्रैपुरि ने सारथि से कहा डरपोक विनायक के पास चलो तब सारथि बोला कि हर-पुत्र के बाणों को कौन सहन कर सकता है इसलिये आप मोहित हो गये थे और मैं आपको यहां ले आया हूं अब जो युक्त हो सो करिये। इसके बाद हाथी व मूषक का परस्पर युद्ध। हाथी एवं त्रैपुरि की मृत्यु। मुनियों ने इस कार्य की बहुत प्रशंसा की। देवता साधु-साधु करने लगे और पुष्प एवं गन्धादि से पूजा करने लगे और डर के मारे दानव भागने लगे।

व्यासजी ने कहा महेश्वर के वचन सुन देवगण दौड़ने लगे। कुम्भ नामक दानव यक्षराज कुबेर से लड़ने आया। राक्षस ने कुबेर को गदा मारी कुबेर ने उसके गदा मारी। दोनों का परस्पर गदा-युद्ध हुआ। अन्त में, धनेश्वर ने कुम्भ के वक्षःस्थल में गदा मारी जिससे वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। जम्भासुर ने ऐरावत के ऊपर बाण मारे। इन्द्र ने असुर पर वज्र छोड़ा उससे वह गतप्राण हो पृथ्वी पर गिर पड़ा। स्वामी कार्त्तिकेय ने अरण्य, सुघोर, अघोर और घोर गणमुख्यों को शक्ति से नष्ट किया। जयन्त ने सौरभ दानव को नष्ट किया। काल ने त्राभ्रव को और मृत्यु ने शक्ति से अश्व तथा निघृ णक को नष्ट किया। अग्नि ने भद्रबाहु, महाबाहु, सुगन्ध, गन्धभौरिक, वह्लिक और भीम को भस्म किया। वरुण ने पाशों से दैत्यों को नष्ट किया। इस तरह नाना देवों का नाना दानवों से युद्ध। सूर्यरथ के समान रथ में बैठ हिरण्याक्ष का युद्धार्थ का आगमन उससे देवों पर बाणों की वर्षा की। हिरण्याक्ष ने जयन्त के तीक्ष्ण दश बाण, रेमन्तक के पांच; इन्द्र के पन्द्रह, चित्ररथ के बीस, स्वामी कार्त्तिक के पच्चीस, गणेश के तीन, यमराज के चालीस, काल व मृत्यु के द्विगुण पाणि से, गुह्यकेश कुबेर, वसु और रुद्रादिकों के भी बहुत बाण मारे इससे उसके सामने देवगण न ठहर सके। त्रासित देवों का विष्णु के पास जाना। विष्णु और हिरण्याक्ष का परस्पर युद्ध। हिरण्याक्ष ने सैकड़ों बाण विष्णु पर छोड़े। विष्णु ने उन्हें काट दिया। फिर उसने हजारों बाण छोड़े उन्हें भी विष्णु ने नष्ट कर उसपर बाण मारे। युद्ध में क्रोधित हिरण्याक्ष ने विष्णु पर पर्वत का प्रहार किया और भगवान् ने गदा से पर्वत का चूर्ण कर दिया। इस तरह हजारों पर्वतों का चूर्ण विष्णु ने किया। मायावी

दानव हजार भुजा धारण कर लड़ने लगा। भगवान् ने उसके सम्पूर्ण शरीर पर बाण मारे जिससे दुःखित और क्रुद्ध हो अष्टघण्टा युक्त कालजिह्वा के समान अनुपम सर्वशक्ति से उसने विष्णु पर प्रहार किया इसपर विष्णु ने चक्र छोड़ा। चक्र ने अन्य दानवों को नष्ट कर हिरण्याक्ष को भी पृथ्वीपर गिराया फिर चेतना प्राप्त कर दैत्य ने विष्णु पर बह्नि बाण छोड़ा। विष्णु ने कौबेर बाण का प्रयोग किया फिर माया युद्ध होने लगा। दैत्य वामन की तरह बढ़ने लगा तथा त्रिलोक को मुख में रखने लगा और पृथ्वी को पाताल में ले गया। प्रसन्न हुए शेष दानव भी उसके साथ ही पाताल में चले गये। दैत्य के बल को जान विष्णु ने वराह का रूप धारण कर पाताल में प्रवेश किया। रसातल को अपने दाढ़ों पर धारण कर चलने लगे। तब दैत्य सामने आया विष्णु ने पृथ्वी को जल पर रख उसमें अपना तेज स्थापित कर अचला बना दिया। दैत्य ने भगवान् पर गदा छोड़ी उस गदा को बचा भगवान् ने उसपर गदा छोड़ी तब ब्रह्मादि देवों ने कहा इससे बालक की तरह क्रीड़ा मत कीजिये इसे नष्ट ही कर दीजिये। तब भगवान् वाराह ने सहस्र सूर्य के तेजवाले चक्र से उसे भस्म कर दिया। प्रसन्न हुए देवों ने भगवान् वाराह की स्तुति की। स्तुति से प्रसन्न हो भगवान् ने कहा मैं तुम्हारे स्तोत्र से प्रसन्न हूं। इस स्तोत्र के पठन श्रवण का फल वर्णन।

सञ्जय ने पूछा जो दानव युद्ध में सम्मुख अथवा विमुख मरे उनकी गति मैं सुनना चाहता हूं व्यासजी ने कहा सम्मुख मरनेवालों को देवत्व प्राप्ति होने से वे

निरन्तर भोग भोगते हैं। जो मायावी देव, ब्राह्मणों की निन्दा करनेवाले, कायर युद्ध से भाग जाते हैं उन्हें नरक की प्राप्ति होती है। गिरे हुए मूर्च्छित, भग्न और दूसरे से युद्ध करनेवाले को मारनेवाले नरक में जाते हैं। रण में विमुख होनेवाले सभी म्लेच्छ, कुवाचक, दूसरे की धरोहर हरनेवाले, चोर, साहसकारी, सब वस्तु भक्षण करनेवाले और गो ब्राह्मण घातक होते हैं तथा इनकी पैशाची भाषा होती है इनके आचार विचार नहीं रहते। माता, बहिन और अन्य स्त्री की ये कामना करते हैं इनकेसदाचार विपरीत रहते हैं। अन्य रूप से भी मनुष्यगत दैत्यों के स्वभाव से दैत्यत्व वर्णन। सञ्जय ने पूछा तात्त्विक लोग मर्त्यभाव में इन्हें कैसे पहचानते हैं इस संदेह को दूर कीजिये व्यासजी ने कहा पाप के अनुकूल ही द्विजाति व अन्य जातियों में असुर, राक्षस व प्रेत अपने स्वभाव को नहीं त्यागते हैं। मर्त्यलोक में उत्पन्न हुए असुर सदा ही कलह करनेवाले होते हैं। इस तरह पृथ्वी, आकाश, नागलोक और यमालय में भी उग्र तप करनेवाला कोई पुरुष सुरत्व की प्राप्ति कर सकता है जैसे वासुदेव की आराधना कर प्रह्लाद और शङ्कर की आराधना कर अन्धक और अन्य बलि आदि को सुरत्व प्राप्ति हुई। एक भी सुपुत्र से कुल का उद्धार हो सकता है। पतिव्रता एक भी स्त्री कोटि कुलों का उद्धार कर सकती है। धर्म नष्ट होनेपर कलियुग में धर्मात्मा एक भी पुर, ग्राम, जन, और कुल की रक्षा करता है। इस विषय में एक वैष्णवपुत्र के कथानक का वर्णन। एक विज्ञातृमेदुर नामका ब्राह्मणों का महान् नगर था। वहां के लोग षट् कर्म करनेवाले, यज्ञव्रत व सन्ध्योपासन कर्म करनेवाले थे। दैव योग से एक गृहस्थी अग्नि में घृताहुति दे रहा था उसी समय उसे भयङ्कर मूत्र-कृच्छ्र हुआ। विप्र अपने यज्ञ के रक्षार्थ चेटी को बैठा मूत्र त्यागने गया। चेटी की असावधानता से घृत को कुत्ते ने खा लिया। चेटी ने डर से घृतपात्र को अपने मूत्र से पूरित कर दिया। विप्र ने जल्दी में उस घृतपात्र को बिना देखे ही आहुति देदी। उससे सुवर्ण की उत्पत्ति हुई। सुवर्ण को ले वह पाप कर्म करने लगा। इस विषय में दासी से पूछा गया

दासी ने जैसा हुआ कह दिया। इस भयङ्कर पाप से सम्पूर्ण नगर जलने लगा। ज्ञाता वृद्ध ब्राह्मण ने इस कार्य में बुद्धि न लगाई। नगर के दुःख से दुःखित ब्राह्मणी ने पति से कहा आपको दुःखी देखकर मुझे दुःख है यदि यह ग्रामाचार है तो दूसरा धर्म आचरण करो। दोष को जाननेवाले ब्राह्मण ने हँसकर कहा जो अपने धर्म को त्याग दूसरा आचरण करता है वह अपुनर्भव नरक में जाता है। ये ब्राह्मण दुराचारी हैं इस पाप से रसातल में जाकर अन्त में अपुनर्भव में जायेंगे वहां अपराध का अन्त नहीं है। मैं अकेला ही पुण्य की रक्षा से ठहरता हूं। ब्राह्मणी ने लोकहास्य वचन सुना और कहा ऐसा दूसरे के सामने नहीं कहना। ब्राह्मण ने कहा यहां से दूसरी जगह जाने से धन और परिवार के साथ पुरी अधोगति को जायेगी। व्यासजी ने कहा प्रसन्न हुआ ब्राह्मण अपना धन ले ब्राह्मणी के साथ दूसरी सीमा में चला गया। ब्राह्मणी ने कहा नगरी तो पूर्व की तरह ही विराजमान है तो ब्राह्मग बोला कोई वस्तु वहां रह गई है। ब्राह्मणी ने विचार कर कहा मैंने भ्रान्ति से जूते छोड़ दिये हैं इतना कह जूता ले पति के पास आई अब नगर नष्ट हो गया। ब्राह्मणादि वर्ण अपुनर्भव नरक में गिर गये। कष्टपूर्वक नरक में जाने लगे अतः पूतिगन्ध अमेध्य वस्तु सर्वथा त्याज्य है। मनुष्यों में जन्म लेनेवाले देव व दैत्यों के लक्षणों का वर्णन।

वैशम्पायनजी ने पूछा कि हे प्रभो! जो नित्य आकाश में उदय होता है यह कौन है इसका क्या प्रभाव है कहां से इसकी उत्पत्ति है तथा वह क्या कार्य करता है? व्यासजी ने कहा यह ब्रह्मदेह से निकला हुआ परब्रह्म तेज है तथा धर्म, काम, अर्थ और मोक्ष को देनेवाला है इसकी तीक्ष्ण किरणों से लोक दौड़ने लगे; समुद्र,

नद और नदियां सूखने लगे व आतुर प्राणी मरने लगे यह देख इन्द्रादि देव ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा ने देवों से कहा यह सत्त्वगुण युक्त आदि देव है तथा चन्द्रमा रजोगुण युक्त इन दोनों से ही संसार पालित है इसके समान कोई रक्षक नहीं है। इसी का ध्यानकर विप्र मोक्ष साधन करते हैं। ऊषाकाल में दर्शन करने से सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। इसी के मण्डल में सन्ध्यास्वरूपिणी देवी गायत्री विराजमान है जिसकी उपासना करनेवालों को स्वर्ग व मोक्ष मिलता है। इसकी उपासना करने से सर्व रोग, दरिद्रता दुःख व अन्धत्व नष्ट हो जाते हैं। सूर्य की आराधना के विषय में देवों ने पूछा तब ब्रह्मा ने सर्व प्रथम स्तुति की स्तुति से प्रसन्न हो सूर्य ने ब्रह्मा से वर मांगने को कहा ब्रह्माजी ने कहा आपकी किरणें अत्यन्त प्रचण्ड हैं इन्हें कोमल कीजिये। आदित्य ने कहा मेरी कोटि कोटि किरण संसार को नाश करनेवाली हैं अतः इनका छेदन कर दीजिये। सूर्य के वचन सुन ब्रह्मा ने विश्वकर्मा को बुला वज्रमयी भ्रमि (चक्र) से सूर्य-किरणों को छेदन करवाया। उन किरणों से विष्णुचक्र, यमदण्ड, त्रिशूल, काल का खड्ग, शक्ति और चण्डिका का परम अस्त्र बनाये गये। केवल सहस्र किरण ही बचाई गई और सब का छेदन कर दिया। अदिति के गर्भ से होने से इसका आदित्य नाम हुआ। इसके द्वारा राशियों को सङ्क्रमण करने को सङ्क्रान्ति कहा जाता है। सङ्क्रान्ति में दानादि करने का पुण्य। माघ पूर्णिमा में पितृतर्पण एवं गोदानादि का महत्त्व। माघ शुक्ल सप्तमी का व्रत उस दिन रविवार हो तो वह महा जया कहलाती है अन्यथा जया नाम से प्रसिद्ध है। जो सूर्य के प्रसन्नार्थ अश्व, सुवर्ण, रक्तवस्त्र और धान्य देता है वह स्वर्ग एवं मर्त्यलोक का पति होता है। सूर्य की प्रसन्नता के लिये अन्यान्य दानादिकों का वर्णन। सूर्य का व्रत रविवार उत्तरायण शुक्लपक्ष और पुंनाम नक्षत्रों में करना चाहिये। पुंनाम नक्षत्र ये हैं—

हस्तो मैत्रं तथा पुष्यः श्रवो मृग पुनर्वसू।
पुंनामधेयनक्षत्राण्येतान्याहुर्मनीषिणः॥

पंचमी को एक वक्त भोजन, षष्ठी को नक्त भोजन और सप्तमी को उपवास कर अष्टमी को पारण करना चाहिये। यहां पर नक्त भोजन का वर्णन यह है कि–

आत्मनो द्विगुणां छायां यदा कुर्वीत भास्करः।
तदा नक्तं विजानीयान्न नक्तं निशि भोजनम्॥

जब अस्त होते सूर्य के प्रकाश में अपनी परछाया दुगुनी होवे वह नक्तकाल है वही वक्त काम में लें प्रथम फलपुष्पों से पूजन करे फिर अन्नदान करे। सूर्य का ध्यान करे व मन्त्र जपे। पारण अष्टमी को ही करना चाहिये नवमी को नहीं। क्षीर आदि पदार्थों से ब्राह्मणों को तृप्त कर दक्षिणा दे। इस अनन्त फल देनेवाली सूर्यसप्तमी का माहात्म्य व फलकथन।

८० सूर्यस्याऽनेकव्रतवर्णनम् ६६४

सूर्यशान्तिविधानवर्णनम् ६६७

वैशम्पायनजी बोले आपकी कृपा से पावनव्रत मैंने सुना और भी सूर्य का प्रियकरव्रत वर्णन कीजिये। व्यासजी ने कहा कैलास पर्वत पर सुखासीन महादेव को स्कन्द ने इस विषय में पूछा तब महादेव बोले रविवार के दिन लाल पुष्प से अर्घ्य देवे व नक्ताहार हविष्यान्न से करे। सप्तमी रविवार को सङ्क्रान्ति का योग होने से उस दिन व्रत दानादि करने से अक्षय फल प्राप्त होते हैं। रविवार के दिन सूर्य की पूजन विधि विधान से कर जप, स्तुति व मुद्रा प्रदर्शित करे। मेरे हाथ में ब्रह्मवध से कपाल लग गया था वह इन्हीं की कृपा से वाराणसी में गङ्गा-तट पर मुक्त हुआ। इतना सुन स्कन्द ने आश्चर्य प्रगट किया तब महादेवजी बोले संसार के हितार्थ युग-युग में पृथक्रूर ब्रह्मा, विष्णु और महेश कार्य करते हैं हमारा बन्धन नहीं है। सूर्यदेव बारहमहीनों में बारह नामों से तपते हैं। सूर्यमहामन्त्र का वर्णन। सूर्य के आदित्य आदि बारह नामों को जपने से मनुष्य सम्पूर्ण पाप व रोग से मुक्त हो जाता है। आदित्य उच्चारण करने से सम्पूर्ण रोग 'लूता विस्फोटकादि' कामलरोग (पीलिया) ज्वर, कुष्ठरोग, कुक्षिरोग

अश्मरी (पथरी), मूत्रकृच्छ्र, वातरोग, चर्मरोग और अन्य वेदना रोग नष्ट हो जाते हैं। सन्ध्या समय हवन के समय मूलमन्त्र जप करने से क्रूर ग्रह शान्त हो जाते हैं। यह व्रत नास्तिक और देव ब्राह्मणों के निन्दक को नहीं कहना चाहिये; केवल गुरुभक्त को बतलाना चाहिये। इसे करने से पुत्रार्थी को पुत्र, कन्यार्थी को कन्या, विद्यार्थी को विद्या और धनार्थी को धन प्राप्त होता है। ब्राह्मण भोजन के समय, पुण्य स्थान व तीर्थों में जपने से कोटिगुणा फल होता है।

८१ सूर्यमाहात्म्यप्रसङ्गाद्भद्रेश्वरनामकमध्यदेशनृपतिकथानकम् ६६८

व्यासजी ने कहा मध्यदेश में भद्रेश्वर नामक राजा हुआ। वह नाना व्रतादि व तपस्याओं से पवित्र और देवों की पूजन करता था। उसके बांयें हाथ में कुष्ठ रोग हो गया। उसने मुख्य मन्त्री व ब्राह्मणों से कहा कि मेरे हाथ में कुष्ठ हो गया है अतः वंशहीन मेरे शरीर त्यागने के लिये पुण्यक्षेत्र बतलाओ। ब्राह्मणों ने कहा आपके जाने से सम्पूर्ण संसार ही नष्ट हो जायगा अतः यहीं इसका प्रतिकार है कि आप सूर्य की उपासना कीजिये। ब्राह्मणों की आज्ञा से राजा ने विधिविधान से अर्घ्यदान व जपापुष्पादि से सूर्य की पूजन की इसपर प्रसन्न हुए सूर्य ने उसे वर मांगने को कहा। राजा ने सम्पूर्ण पुरवासियों को स्वर्ग में रहने के लिये वर मांगा। सूर्य ने राजा के मन्त्री व विप्रों को परिवार सहित सूर्यलोक में रहने का आदेश दे राजा के लिये पांच कल्प के बाद मन्वादि में राजा होने को कहा। सूर्य का अन्तर्धान करना। राजा का पुरवासियों सहित स्वर्ग में रहना। वहां के कीटादि भी परिवार सहित स्वर्ग में देववृक्ष में भोग भोगते हैं। सूर्यव्रत करने का फल वर्णन।

वैशम्पायनजी के सूर्यादिग्रहों के शुभाशुभ, साधन, और प्रसन्नता के विषय में पूछने पर व्यासजी ने कहा ग्रह संसार में पुण्य, पाप को भोगते हैं सूर्य काल के समान ही दण्ड देता है इसकी शान्ति के लिये 'आकृष्णेन रजसा' मन्त्र से उदुम्बर व पलाश के पत्रों से हवन करना चाहिये। इससे सम्पूर्ण रोगों की शान्ति होती है मासकी समाप्ति में ब्राह्मणभोजन सुदि सप्तमी व पूर्णिमा में करावे। चन्द्रमा का शीतल स्वभाव है इन दोनों की ही आराधना करने से पुष्टि होती है। जो मोह से चन्द्रमा की पूजा नहीं करता है उसकी आयु नष्ट होती है और वह नरक में जाता है। जो चन्द्र को पूजन कर अर्घ्यदान दे व सहस्रनामों से स्तुति करे उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है। चन्द्र-निमित्त दान व जपादि का वर्णन। इसके करने से रूप व सौभाग्य की प्राप्ति होती है।

वैशम्पायनजी ने भौम की उत्पत्ति व तेज (प्रभाव) के विषय में पूछा तब व्यासजी बोले कि भौम की उत्पत्ति शङ्कर से है। वैशम्पायनजी ने पूछा यह शम्भुपुत्र कैसे, कैसे महीपुत्र और कैसे क्रूरग्रह हुआ व इसकी शान्ति का उपाय कैसे हो सो बतलाइये। व्यासजी ने कहा हिरण्याक्षकुल में विष्णु के वरदान से अन्धक दैत्य उत्पन्न हुआ। उसने देवों के राज्य, सुख और यज्ञादि का हरण कर लिया। देवों ने ब्रह्माजी से सब समाचार कहे। ब्रह्माजी ने देवों को उसके पराजय की बात सुनाई। ब्रह्माजी ने श्रद्धायुक्त कामदेव और विचिकित्सा माया को उसे मोहित करने के लिये भेजा। उनसे मोहित हो वह स्त्री की खोज में

फिरने लगा। काममोहित हो पावती को लाने के लिये चेष्टा करने लगा। उमा ने कोटवी रूप धारण किया। दैत्य अपनी सेना ले शङ्कर से लड़ने चला। नन्दी की आज्ञा से देवों ने दैत्यों से युद्ध किया। युद्ध में मरे हुए दैत्यों को शुक्राचार्य जीवित करने लगे। यह वृत्त जान शङ्कर ने नन्दी को आज्ञा दी कि शुक्राचार्य को केश पकड़ यहां ले आओ। नन्दी उसे पकड़ लाये। महादेवजी उसे निगल गये फिर देवदानवों का परस्पर युद्ध हुआ। स्वयं महादेवजी के लड़ते हुए भी देवों का बल क्षीण हो गया और वह दैत्य त्रिशूल से भी नष्ट न हुआ तो शङ्कर ने उसे अपना भृङ्गीरिटि नाम का गण बना लिया। देवों से बातचीत कर शुक्र को बाहर निकाला वह गर्भ पृथ्वी पर गिरा इसलिये भौम का शङ्कर पुत्र नाम हुआ। इसका व्रत भौमवार व चतुर्थी के दिन करे जिससे अरिष्ट नष्ट होते है। त्रिकोण मण्डल बना पूजन करे इससे पुत्र, सुख व यश की प्राप्ति होती है। इस धर्माख्यान को सुनने से जन्म-मरण नहीं होता इतना कह व्यासजी का शम्याप्रास क्षेत्र में गमन। नारदजी भी नारायण के दर्शन के लिये बदरिकाश्रम चले गये।

भीष्मजी ने पूछा चण्डिका के अनुग्रह से अवशिष्ट दैत्य रसातल में चले गये अतः चण्डिका-पूजन का फल वर्णन कीजिये। पुलस्त्यजी ने कहा कि चण्डिका पूजन से स्वर्ग के भोग भोगने पर मोक्ष मिलती है। जो चण्डिका का पूजन प्रति दिन करता है उसका फल साक्षात् ब्रह्मा भी वर्णन नहीं कर सकते। जो देवी पूजन प्रति दिन नाना पुष्प धूपदीपादि से करता है वही, योगी, मुनि व

लक्ष्मीवान् है उसके हाथ में ही मुक्ति है। जो भगवती को पूर्णिमा व नवमी को क्षीर से स्नान करवाता है उसे वाजपेययज्ञ के समान फल मिलता है। सम्पूर्ण पर्वकालों में पूजन करनेवाला विमान में बैठ ब्रह्मलोक में जाता है। जो फल चार मास दुर्गापूजन से मिलता है वही कार्त्तिक की नवमी को पूजन करने से मिलता है तथा आश्विन शुक्ला नवमी को देवी पूजन करने से मिलता है। आश्विन शुक्ला नवमी को देवी पूजन करने से हजार अश्वमेध व सौ राजसूय यज्ञ के समान फल मिलता है। प्रत्येक मास में नवमी के दिन पूजन करने से छः मास का फल मिलता है। जो आश्विन मास में एक दिनरात ताम्र पात्र की सूक्ष्मधारा से घृत से देवी का अभिषेक करता है उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं। कार्त्तिक पूर्णिमा युक्त सोमवार को देवीपूजन करने से अग्निष्टोम यज्ञ के समान फल प्राप्त कर सूर्यलोक की प्राप्ति होती है। आषाढ़ी पूर्णिमा को उपवासी रह देवीपूजन करने से परमगति की प्राप्ति होती है। माघ पूर्णिमा को देवी को पूजने से अश्वमेध यज्ञ के समान फल होता है। बिल्वपत्रों की माला तथा गुग्गुलु की माला से देवी पूजन करने से अथवा बिल्ववृक्ष के पत्रों से पूजा करने से राजसूय यज्ञ के समान फल मिलता है। देवी पूजन में सब पुष्पों से उत्तम नीलकमल बतलाया गया है। नाना प्रकार के पुष्पोंसे चण्डी पूजा करनेसे नानालोकों की प्राप्ति का वर्णन। देवी मन्दिर में पुष्पों का मण्डल करने का वर्णन। घृतपिष्ट दीपक जलाने का विधान। देवी मन्दिर में नृत्य, गीत और वादित्र करने से देवीलोक की प्राप्ति। जो एक दिन भी देवी को पञ्चगव्य से स्नान कराता है उसे सुरभीलोक की प्राप्ति होती है। नाना रत्नादिकों से अभिषेक करने से नाना लोकों की प्राप्ति का वर्णन। उत्तरायण में उपवासी रह देवी पूजा करनेसे बहु पुत्र व बहु धन की प्राप्ति। विषुव (तुला-मेष सङ्क्रान्ति) में उपवास कर देवीपूजन करने से मनुष्य शक्तिमान् व बहुपुत्रोंवाला एवं बलवान् होता है। चन्द्र-सूर्य ग्रहण में उपवास कर दुर्गापूजन करने से पुत्र की प्राप्ति। शान्ति कामना के लिये सूर्यग्रहण में उपवासी रह पूजन करने से विशेष फल कहा है।

दुर्गा का दर्शन पवित्र है दर्शन से प्रणाम, वन्दन से स्पर्श, स्पर्श से पूजन, पूजन से लेपन,लेपन से तर्पण और तर्पण से मांसदान पवित्र है मांस में महिष व अज का ही विधान है परन्तु मार्कण्डेयपुराण में बतलाया है कि सभी में अहिंसा की भावना रख देवी की पूजा करना श्रेष्ठ है "बलिमांसादि पूजेयं विप्रवर्ज्या मयेरिता" विशेष क्या चण्डीपूजन करके ही भोजन करना चाहिये।

पुलस्त्यजी ने कहा देवों ने ब्रह्मा से दुर्गापूजन के विषय में पूछा तब ब्रह्माजी कहने लगे कि शम्भु, विष्णु, कुबेर, विश्वेदेव, वायु, वसु, अश्विनीकुमार, वरुण, अग्नि, सूर्य, सोम, ग्रह, वारिज, पितर, पिशाच, गुह्यक और भूतयोनि क्रम से, मन्त्रशक्तिमयी, इन्द्रनीलमयी, हेममयी, रौप्या, पित्तल से बनी हुई, कांस्य की, पार्थिवी, स्फाटिकी, रत्नमयी, ताम्रा, मुक्ताफलमयी, प्रवालमयी, वारिजा, त्रपुसीसमयी, लोहमयी, त्रिलोहिनी और वज्रलोहमयी देवी का पूजन करते हैं तुम परमगति को चाहते हो तो मणिमयी देवी का पूजन करो जिससे मनोऽभिलषित सिद्धि प्राप्त होगी। उस भगवती प्रतिमा को नाना वाद्यादिकों से स्नान करावे नाना पुष्प चढ़ावे व पुष्पगृह बनावे। जो मनुष्य नवमी व पर्वकाल में पूजन करता है वह पुष्पयुक्त विमान में बैठ चण्डीलोक में अक्षयकाल पर्यन्त सुखी रहता है। देवी के लिये सफेद अगरु देने से गोसहस्र दान करने के समान फल कहा है। आम्र, नारिकेल, खजूर और बिजौरा चढ़ाने का फल। दुर्गा के प्रसन्नार्थ नाना वस्तुओं के दान देने का महत्त्व। कार्त्तिक में देवी के समीप दीप-मालिका करने का फल वर्णन। शुक्ल नवमी को विशेष विधान बतलाया है। चण्डिका की विधान से पूजनकर "दुर्गां शिवां शान्तिकरीं" आदि स्तोत्र का पठन करे इसे जो सुनता है वा पढ़ता है वह सम्पूर्ण पापों से छुटकारा पाकर दुर्गा भगवती महामाया के लोक में पूजित होता है।

भीष्मजी ने पूछा सूर्य, चन्द्रमा और भौम का पूजा-विधान सुना अब बुध आदि का पूजा विधान वर्णन कीजिये पुलस्त्यजी बोले बुध तारा के गर्भ से तथा चन्द्रांश से उत्पन्न हुआ है मनुष्यों को शुभाशुभ फल देता है। उसका बाणाकार मण्डल है रंग के लिये हरित मणियों के समान उसका चूर्ण से मण्डल बनावे, पुष्प धूपादि से पूजन करे, अरिष्ट होनेपर दानादि करे; दान में कर्पूर, मूंग, हरावस्त्र, हरिन्मणि यथाशक्ति देवे और स्तुति करे। गुरुपूजा में पीतवर्ण का विधान है पुष्प, वस्त्र और सुवर्णादि से पूजन करे। अरिष्ट होनेपर चने की दाल, पीला वस्त्र, सुवर्ण व पुष्पराग दान में देवे। शुक्र की पूजा का वर्णन जिसके करने से सम्पूर्ण कामों की प्राप्ति होती है। इसकी पूजन में पञ्चकोण मण्डल बनावे श्वेतगन्ध, श्वेतपुष्प, वस्त्र और रौप्यक दक्षिणा देवे। अरिष्ट होनेपर सफेद घोड़ा, तण्डुल, श्वेतवस्त्र, रौप्यक, चन्दन और सुगन्धित कर्पूर का दान दे तथा भार्गव की स्तुति करे इससे शुक्र प्रसन्न होते हैं। शनैश्चर का नराकार मण्डल होना चाहिये इसकी पूजन में कृष्णगन्ध, कृष्णवस्त्र, पुष्प, तिलकूटा तथा लोहा और दक्षिणा देवे अरिष्टहोनेपर दानादि करे। राहु का मण्डल भी शनि की तरह है तथा पूजाविधान भी उसी तरह है। गोमेद (बहुमूल्य पाषाण), सरसों, तिल, उड़द, भैंस और बकरा का दान करे तथा उसकी स्तुति करे। केतु का मण्डल ध्वजाकार होना चाहिये इसकी पूजा का विधान शनि की तरह ही है केतु के दान में सप्तधान्य और स्वर्णादि देवे। ग्रहों के मन्त्रों का वर्णन। इस चरित्र के सुनने का फल वणन। सत्ययुग में तप, त्रेता में ज्ञान, द्वापर में यज्ञ और कलि में दान की प्रधानता बतलाई है। सब दानों में उत्तम अभय दान बतलाया है। सृष्टिखण्ड के पठन एवं श्रवण का फल। ॐ शम्भूयसे मङ्गलाय।

विद्वज्जनचरणानुरागिणः—

लक्ष्मणगढ़ वास्तव्य ब्रह्मदत्त त्रिवेदि नव॰ दुर्गाभिजन कजोड़ीलाल मिश्र

रामनाथदाधीचाः

ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु

* श्री गणेशाय नमः *

श्री महामुनि वेदव्यास प्रणीतम्

पद्मपुराणम् ।

तत्रादौ प्रथमं सृष्टिखण्डं प्रारभ्यते

प्रथमोऽध्यायः ।

श्रीपुराणपुरुषोत्तमाय नमः ।

तत्रादौ मङ्गलाचरणम्

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

ॐ स्वच्छं चन्द्रावदातं करिकरमकरक्षोभसञ्जातफेनं,
ब्रह्मोद्भूतिप्रसक्तैर्व्रतनियमपरैः सेवितं विप्रमुख्यैः ।
ओङ्कारालंकृतेन त्रिभुवनगुरुणा ब्रह्मणा दृष्टिपूतं,
सम्भोगाभोगरम्यं जलमशुभहरं पौष्करं वः पुनातु ॥ १ ॥

सूतमेकान्तमासीनं व्यासशिष्यो महामतिः । लोमहर्षणनामा वा उग्रश्रवसमाह तत् ॥२
ऋषीणामाश्रमांस्तात गत्वा धर्मान् समासतः। पृच्छतां विस्तराद् ब्रूहि यन्मत्तःश्रुतवानसि

वेदव्यासान्मया पुत्र पुराणान्यखिलानि च। तवाख्यातानि प्राप्तानि मुनिभ्योवदविस्तरात्
प्रयागे मुनिवर्य्यैश्च यथा पृष्टः स्वयं प्रभुः। पृष्टेन चानुशिष्टास्ते मुनयो धर्मकाङ्क्षिणः॥
देशं पुण्यमभीप्सन्तो विभुना च हितैषिणा। सुनाभं दिव्यरूपञ्च सत्यगं शुभविक्रमम्॥
अनौपम्यमिदं चक्रं वर्त्तमानमतन्द्रिताः। पृष्ठतो यात नियमात् पदं प्राप्स्यथ यद्धितम्॥
गच्छतो धर्मचक्रस्य यत्र नेमिर्विशीर्यते। पुण्यः स देशो मन्तव्य इत्युवाच स्वयम्प्रभुः॥
उक्त्वा चैवमृषीन् सर्वानदृश्यत्वमगात् पुनः। गङ्गावर्तसमाहारो नेमिर्यत्र व्यशीर्यत॥
ईजिरे दीर्घसत्रेण ऋषयो नैमिषे तदा। तत्र गत्वा तु तान् ब्रूहि पृच्छतो धर्मसंशयान्॥
उग्रश्रवास्ततो गत्वा ज्ञानविन्मुनिपुङ्गवान्। अभिगम्योपसंगृह्य नमस्कृत्वा कृताञ्जलिः॥
तोषयामास मेधावी प्रणिपातेन तानृषीन्। ते चापि सत्रिणः प्रीताः ससदस्या महात्मने
तस्मै समेत्य पूजाञ्च यथावत् प्रतिपेदिरे॥ १३॥

ऋषय ऊचुः।

कुतस्त्वमागतः सूत कस्माद्देशादिहागतः। कारणञ्चागमे ब्रूहि वृन्दारकसमद्युते॥ १४॥

सूत उवाच।

पित्राऽहन्तु समादिष्टो व्यासशिष्येण धीमता। शुश्रूषस्व मुनीन् गत्वा यत्ते पृच्छन्ति तद्वद
वदन्तु भगवन्तो मां कथयामि कथान्तु याम्। पुराणञ्चेतिहासं वा धर्मानथ पृथग्विधान्
तां गिरं मधुरां तस्य शुश्रुवुर्ऋषिसत्तमाः। अथ तेषां पुराणस्य शुश्रूषा समपद्यत॥१७॥
दृष्ट्वा तमतिविश्वस्तं विद्वांसं लौमहर्षणिम्। तस्मिन् सत्रे कुलपतिः सर्वशास्त्रविशारदः
शौनको नाम मेधावी विज्ञानारण्यके गुरुः। इत्थं तद्भावमालंब्य धर्मान् शुश्रूषुराह तम्॥
त्वया सूत महाबुद्धे भगवान् ब्रह्मवित्तमः। इतिहासपुराणार्थं व्यासः सम्यगुपासितः॥
दुदोहिथ मतिं तस्य त्वं पुराणाश्रयां शुभाम्। अमीषां विप्रमुख्याणां पुराणं प्रतिसम्प्रति
शुश्रूषास्ते महाबुद्धे तच्छ्रावयितुमर्हसि। सर्वे हीमे महात्मानो नानागोत्राः समागताः
स्वान् स्वानंशान् पुराणोक्तान् शृण्वन्तु ब्रह्मवादिनः।
सम्पूर्णे दीर्घसत्रेऽस्मिंस्तांस्त्वं श्रावय वै मुनीन्॥ २३॥
पाद्मं पुराणं सर्वेषां कथयस्व महामते। कथं पद्मं समुद्भूतं ब्रह्मा तत्र कथंन्वभूत्।

प्रोद्भूतेन कथं सृष्टिः कृता तान्तु तथा वद। एवं पृष्टस्ततस्तांस्तु प्रत्युवाच शुभांगिरम्
सूक्ष्मञ्च न्यायसंयुक्तं प्राब्रवीद्रौमहर्षणिः। प्रीतोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवद्भिरिहचोदनात्
पुराणार्थपुराणज्ञैः सर्वधर्मपरायणैः। यथा श्रुतं सुविख्यातं तत्सर्वं कथयामि वः॥
धर्म एष तु सूतस्य सद्भिर्दृष्टः सनातनः। देवतानामृषीणाञ्च राज्ञां चामिततेजसाम्।
वंशानां धारणं कार्यं स्तुतीनाञ्च महात्मनाम्। इतिहासपुराणेषु दृष्टा ये ब्रह्मवादिनः॥
न हि वेदेष्वधिकारः कश्चित् सूतस्य दृश्यते। वैन्यस्य हि पृथोर्यज्ञे वर्त्तमाने महात्मनः।
मागधश्चैव सूतश्च तमस्तौतां नरेश्वरम्। तुष्टेनाथ तयोर्दत्तो वरो राज्ञा महात्मना।
सूताय सूतविषयो मगधो मागधाय च। तत्र सूत्यां समुत्पन्नः सूतो नामेह जायते।
ऐन्द्रे सत्रे प्रवृत्ते तु ग्रहयुक्ते बृहस्पतौ। तमेवेन्द्रं बार्हस्पत्ये तत्र सूतो व्यजायत। ३२॥
शिष्यहस्तेन यत् पृक्तमभिभूतं गुरोर्हविः। अधरोत्तरधारेण जज्ञे तद्वर्णसङ्करम्। ३३॥
येऽत्र क्षत्रात् समभवन् ब्राह्मण्याश्चैव योनितः। पूर्वेणैव तु साधर्म्याद्वैधर्मास्ते प्रकीर्तिताः
मध्यमो ह्येष सूतस्य धर्मः क्षेत्रोपजीविनः। पुराणेष्वधिकारो मे विहितो ब्राह्मणैरिह।
दृष्ट्वा धर्ममहं पृष्टो भवद्भिर्ब्रह्मवादिभिः। तस्मात् सम्यग् भुवि ब्रूयां पुराणमृषिपूजितम्
पितॄणां मानसी कन्या वासवं समपद्यत। अपध्याता च पितृभिर्मत्स्यगर्भे बभूव सा।
अरणीव हुताशस्य निमित्तं पुण्यजन्मनः। तस्यां बभूव पूतात्मा महर्षिस्तु पराशरात्।
तस्मै भगवते कृत्वा नमः सत्याय वेधसे। पुरुषाय पुराणाय ब्रह्मवाक्यानुवर्त्तिने।
मानवच्छन्नरूपाय विष्णवे शंसितात्मने। जातमात्रञ्च यं वेद उपतस्थे ससंग्रहः॥४०॥
मतिमन्थानमाविध्य येनासौ श्रुतिसागरात्। प्रकाशो जनितो लोके महाभारतचन्द्रमाः
भारतं भानुमान् विष्णुर्यदि न स्युरमी त्रयः। ततोऽज्ञानतमोन्धस्य कावस्था जगतोभवेत्
कृष्णद्वैपायनं व्यासं विद्धि नारायणं प्रभुम्। को ह्यन्यः पुण्डरीकाक्षान्महाभारतकृद्भवेत्
तस्मादहमुपाश्रौषं पुराणं ब्रह्मवादिनः। सर्वज्ञात् सर्वलोकेषु पूजिताद्दीप्ततेजसः॥४४॥
पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणास्मृतम्। उत्तमं सर्वलोकानां सर्वज्ञानोपपादकम्।
त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्। निःशेषेषु च लोकेषु वाजिरूपेण केशवः।
ब्रह्मणस्तु समादेशाद्वेदानाहृतवानसौ। अङ्गानि चतुरो वेदान् पुराणन्यायविस्तरम्।

असुरेणाखिलं शास्त्रमपहृत्यात्मसात्कृतम्। मत्स्यरूपेणाजहार कल्पादावुदकार्णवे ॥
अशेषमेतदवददुदकान्तर्गतो विभुः। श्रुत्वा जगाद च मुनीन् प्रति वेदांश्चतुर्मुखः।
प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणस्याभवत्तदा। कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य तदा विभुः
व्यासरूपस्तदा ब्रह्मा संग्रहार्थं युगे युगे। चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे जगौ।
तदाष्टादशधा कृत्वा भूलोकेऽस्मिन् प्रकाशितम्। अद्यापि देवलोकेषु शतकोटिप्रविस्तरम्
तदेवात्र चतुर्लक्षं संक्षेपेण निवेशितम्। प्रवक्ष्यामि महापुण्यं पुराणं पाद्मसंज्ञितम्।
सहस्रं पञ्चपञ्चाशत् पञ्चखण्डैः समन्वितम्। तत्रादौ सृष्टिखण्डं स्याद्भूमिखण्डंततःपरम्
स्वर्गखण्डं ततः पश्चात्ततः पातालखण्डकम्। पञ्चमञ्च ततः ख्यातमुत्तरंखण्डमुत्तमम्।
एतदेव महापद्ममुद्भूतं यन्मयं जगत्। तद्वृत्तान्ताश्रयं यस्मात् पाद्ममित्युच्यते ततः।
एतत् पुराणममलं विष्णुमाहात्म्यनिर्मलम्। देवदेवो हरिर्यद्वै ब्रह्मणे प्रोक्तवान् पुरा।
ब्रह्मणाभिहितं पूर्वं यावन्मात्रं मरीचये। एतदेव च वै ब्रह्मा पाद्मं लोके जगाद वै।
सर्वभूताश्रयं तच्च पाद्ममित्युच्यते बुधैः। पाद्मं तत्पञ्चपञ्चाशत् सहस्राणीह पठ्यते।
पञ्चभिःपर्वभिःप्रोक्तं संक्षेपाद्व्यासकारितात्। पौष्करं प्रथमं पर्व यत्रोत्पन्नः स्वयं विराट्
द्वितीयं तीर्थपर्व स्यात् सर्वग्रहगणाश्रयम्। तृतीयपर्वग्रहणा राजानो भूरिदक्षिणाः।
वंशानुचरितञ्चैव चतुर्थे परिकीर्तितम्। पञ्चमे मोक्षतत्वञ्च सर्वतत्वं निगद्यते।
पौष्करे नवधा सृष्टिः सर्वेषां ब्रह्मकारिता। देवतानां मुनीनाञ्च पितृसर्गस्तथापरः।
द्वितीये पर्वताश्चैव द्वीपाः सप्त ससागराः। तृतीये रुद्रसर्गस्तु दक्षशापस्तथैव च।
चतुर्थे सम्भवो राज्ञां सर्ववंशानुकीर्त्तनम्। अन्त्येऽपवर्गसंस्थानं मोक्षशास्त्रानुकीर्त्तनम्

सर्वमेतत् पुराणेऽस्मिन् कथयिष्यामि वो द्विजाः ॥ ६६ ॥

इदं पवित्रं यशसो निधानमिदं पितॄणामतिवल्लभं स्यात्।
इदञ्च देवस्य सुखाय नित्यमिदं महापातकभिच्च पुंसाम् ॥ ६७ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे पुराणावतारे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः।

सूतकृत मङ्गलाचरणम् सृष्टिखण्डस्थ विषयवर्णनञ्च

सूत उवाच।

नमस्ये सर्वलोकानां विश्वस्य जगतः पतिम्। य इमं कुरुते भावं सृष्टिरूपं प्रधानवित्॥
लोककृल्लोकतत्वज्ञो योगमास्थाय योगवित्। असृजत् सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च
तमजं विश्वकर्माणं चित्पतिं लोकसाक्षिणम्। पुराणाख्यानजिज्ञासुर्व्रजामि शरणंविभुम्
ब्रह्मविष्णुगिरीशेभ्यो नमस्कृत्वा समाहितः। इन्द्राय लोकपालेभ्यः सवित्रे च समाधिना
मुनीनाञ्च वरिष्ठाय वसिष्ठाय महात्मने। तद्वक्त्रे भाततपसे जातूकर्ण्याय चाक्षुषे॥
तस्मै भगवते नत्वा वेदव्यासाय वेधसे। पुरुषाय पुराणाय भृगुवाक्यानुवर्त्तिने॥ ६॥
तस्मादहमुपाश्रौषं पुराणं ब्रह्मवादिनः। सर्वज्ञात् सर्वलोकेषु पूजिताद्दीप्ततेजसः॥ ७॥
अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम्। महदादि विशेषान्तं सृजतीति विनिश्चयः॥
अण्डे हिरण्मये पूर्वं ब्रह्मणः सूतिरुत्तमा। अण्डस्यावरणञ्चाद्भिरपामपि च तेजसा॥ ९

वायुना तस्य वायोः खात्तद्भूतादित आवृतम्।
भूतादिर्महता चापि अव्यक्तेनावृतो महान्॥ १०॥

प्रादुर्भावश्च लोकानामण्ड एवोपवर्णितः। नदीनां पर्वतानाञ्च प्रादुर्भावोऽनुवर्ण्यते॥
मन्वन्तराणां संक्षेपात् कल्पानाञ्चोपवर्णनम्। ब्रह्मवृक्षलयब्रह्म-प्रजासर्गोपवर्णनम्॥
कल्पानां सञ्चरश्चैव जगतः स्थापनं तथा। शयनञ्च हरेरप्सु पृथिव्युद्धरणं पुनः॥१३॥
दशधा जन्मसञ्चारो भृगुशापेन केशवे। सन्निवेशो युगादीनां सर्वाश्रमविभाजनम्॥
स्वर्गस्थानविभागश्च मर्त्यानां स्वर्गचारिणाम्। पशूनांपक्षिणाञ्चैवसम्भवःपरिकीर्तितः॥
तथा निर्वचनं कल्पं स्वाध्यायस्य परिग्रहः। प्रतिसर्गा पुनः प्रोक्ताब्रह्मणोबुद्धिपूर्वकाः॥
त्रयोऽन्येऽबुद्धिपूर्वास्तेतथालोकानकल्पयत्। ब्रह्मणो वदनेभ्यश्चभृग्वादीनांसमुद्भवः॥
कल्पयोरन्तरं प्रोक्तं प्रतिसन्धिश्च सर्गयोः। भृग्वादीनामृषीणाञ्च प्रजासर्गोपवर्णनम्॥
वसिष्ठस्य च ब्रह्मर्षेर्ब्रह्मत्वं परिकीर्त्तितम्। स्वायम्भुवस्य च मनोस्ततश्चाप्यनुकीर्तनम्॥

उक्तोनाभेर्विसर्गश्च रजसश्च महात्मनः । द्वीपानाञ्च समुद्राणां पर्वतानाञ्च कीर्तनम् ॥
द्वीपभेदसमुद्राणामन्तर्भावश्च सप्तसु । कीर्त्यन्ते योजनाग्रेण ये च तत्र निवासिनः ॥
तदीयानिव वर्षाणि नदीभिः पर्वतैः सह । जम्बूद्वीपादयो द्वीपाः समुद्रैः सप्तभिर्वृताः ॥

अण्डस्यान्तस्त्विमे लोकाः सप्तद्वीपा च मेदिनी ।
सूर्य्याचन्द्रमसोश्चारो ग्रहाणां ज्योतिषां तथा ॥ २३ ॥
कीर्त्यते ध्रुवसामर्थ्यात् प्रजानाञ्च शुभाशुभम् ।
ब्रह्मणा निर्मितः सौरः स्यन्दनोऽर्थवशात् स्वयम् ॥ २४ ॥

कल्पितो भगवांस्तेन प्रसर्पति दिवाकरः । सूर्य्यादीनां स्यन्दनानां ध्रुवादेव प्रवर्तनम् ॥
कल्पितःशिशुमारश्च यस्यपुच्छेध्रुवः स्थितः । सम्भवान्ते च संहारःसंहारान्ते च सम्भवः
देवतानामृषीणाञ्च मनोः पितृगणस्य च । न शक्यं विस्तराद्वक्तुमित्युक्तञ्च समासतः ॥२७
अतीतानागतानां वै समं स्वायम्भुवेन तु । मन्वन्तरेषु देवानां प्रजेशानाञ्च कीर्तनम् ॥
नैमित्तिकः प्राकृतिकस्तथैवात्यन्तिकः स्मृतः । त्रिविधः सर्वभूतानां कल्पितः प्रतिसञ्चरः ॥
अनावृष्टिर्भास्कराच्च घोरः संवर्तकानलः । मेघाश्चैकार्णवा ये तु तथारात्रिर्महात्मनः ॥
सन्ध्यालक्षणमुद्दिष्टं तथा ब्राह्मं विशेषतः । भूतानाञ्चापि लोकानां सप्तानामनुवर्णनम् ॥
सङ्कीर्त्यन्ते मया चात्र पापानां रौरवादयः । सर्वेषामेव सत्वानां परिणामविनिर्णयः ॥
ब्रह्मणः प्रतिसर्गश्च सर्वसंहारवर्णनम् । कल्पे कल्पे च भूतानां महतामपि संक्षयः ॥
सुसंख्याय च बुद्ध्वावै ब्रह्मणश्चाप्यनित्यताम् । दौरात्म्यञ्चैवभोगानांसंसारस्यचकष्टताम्
दुर्लभत्वञ्चमोक्षस्य वैराग्याद्दोषदर्शनम् । व्यक्ताव्यक्तं परित्यज्यसत्वंब्रह्मणिसंस्थितम्
नानात्वदर्शनात् सुखस्ततस्तदभिवर्तते । ततस्तापत्रयातीतो विरूपाख्यो निरञ्जनः ॥
आनन्दं ब्रह्मणः प्राप्तो न बिभेति कुतश्चन । इतिकृत्यसमुद्देशः प्रमाणस्योपवर्णितः ॥३६॥
कीर्त्यन्ते जगतो यत्र सर्गप्रलयविक्रियाः । प्रवृत्तिश्चापि भूतानां निवृत्तीनांफलानिच ॥
प्रादुर्भावो वसिष्ठस्य शक्तेर्जन्म तथैव च । सौदासान्निग्रहस्तस्य विश्वामित्रकृतेन च ॥

पराशरस्यचोत्पत्तिरदृश्यन्त्यां यथा विभोः ।
जज्ञे पितॄणां कन्यायां व्यासश्चापि यथा मुनिः ॥ ३९ ॥

शुकस्य च यथा जन्म पुत्रस्य सह धीमतः । पराशरस्य विद्वेषो विश्वामित्रकृतोयथा ॥
वसिष्ठसंभूतश्चाग्निर्विश्वामित्रजिघांसया । सन्धानहेतोर्विभुना जीर्णःकण्वेन धीमता ॥
देवेन विप्रा विप्राणां विश्वामित्रहितैषिणा । एकं वेदं चतुष्पादं चतुर्धा पुनरीश्वरः ॥
यथाविभेद भगवान् व्यासः सर्वेष्वनुग्रहात् । तस्यशिष्यप्रशिष्यैश्च शाखाभेदाःपुनःकृताः
प्रयागे मुनिवर्यैश्च यथापृष्टः स्वयम्प्रभुः । कृष्णेन चानुशिष्टास्ते मुनयो धर्मकाङ्क्षिणः
एतत्सर्वं यथातत्वमाख्यातं द्विजसत्तमाः । मुनीनां धर्मनित्यानां लोकतन्त्रमनुत्तमम् ॥
ब्रह्मणा यत्पुराप्रोक्तं पुलस्त्याय महात्मने । पुलस्त्येनाथ भीष्माय गङ्गाद्वारे प्रभाषितम् ॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वपापप्रणाशनम् । कीर्तनं श्रवणञ्चास्य धारणञ्च विशेषतः ॥
सूतेनानुक्रमेणेदं पुराणं सम्प्रकाशितम् । ब्राह्मणेषु पुरा यच्च ब्रह्मणोक्तं सविस्तरम् ॥

पादमस्य विदन् सम्यग्योऽधीयीत जितेन्द्रियः ।
तेनाधीतं पुराणं स्यात् सर्वं नास्त्यत्र संशयः ॥ ५० ॥

यो विद्याच्चतुरोवेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः । पुराणञ्चविजानाति यः स तस्माद्विचक्षणः
इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् । बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रह (त) रिष्यति ॥
अधीत्यचैकमध्यायंस्वयंप्रोक्तं स्वयम्भुवा । आपदः प्राप्य मुच्येत यथेष्टां प्राप्नुयाद्गतिम्
पुरा परम्परांवक्ति पुराणं तेन वै स्मृतम् । निरुक्तिमस्य यो वेद सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥५४
ऋषयोह्यब्रुवन् सूतं कथं भीष्मेण सङ्गतः । ब्रह्मणो मानसःपुत्रः पुलस्त्यो भगवानृषिः ॥
दुर्लभं दर्शनं यस्य नरैः पापसमन्वितैः । अत्याश्चर्यमिदं सूत क्षत्रियेन कथं मुनिः ॥
आराधितो बृहद्भूतस्तन्नोवद महामते । कीदृशं वा तपस्तेन कोवान्यो नियमः कृतः ॥
येन तुष्टो मुनिर्ब्राह्मस्तथा तेन प्रभाषितः । पर्व वाप्यथ पर्वार्द्धं समग्रं वा प्रभाषितम् ॥

यस्मिन् स्थाने यथादृष्टः पुलस्त्यो भगवान् ऋषिः ॥
तन्नो वद महाभाग कल्याः स्म श्रवणे वयम् ॥ ५६ ॥

सूत उवाच

यत्र गङ्गा महाभागा साधूनां हितकारिणी । विभिद्य पर्वतं वेगान्निःसृता लोकपावनी ॥
गङ्गाद्वारे महातीर्थे भीष्मःपितृपरायणः । शुश्रूषुः सुचिरं कालं महतां नियमे स्थितः ॥

यावद्वर्षशतं साग्रं परमेण समाधिना । ध्यायमानः परं ब्रह्म त्रिकालं स्नानमाचरत् ॥
पितॄन् देवांस्तर्पयतः स्वाध्यायेन महात्मनः । आत्मानंकर्षतश्चास्यतुष्टोदेवःपितामहः ॥
उवाच तनयं ब्रह्मा पुलस्त्यमृषिसत्तमम् । सत्वं देवव्रतं भीष्मं वीरं कुरुकुलोद्भवम् ॥
तपसः सन्निवर्तस्व कारणंचास्यकीर्तय । पितॄन्भक्त्यामहाभागोध्यायमानःसमास्थितः
यो ह्यस्य मनसः कामस्तंसम्पादय मा चिरम् । पितामहवचःश्रुत्वापुलस्त्योमुनिसत्तमः
गङ्गाद्वारमथागत्य भीष्मं वचनमब्रवीत् । वरं वरय भद्रन्ते यत्ते मनसि वर्त्तते ॥
तुष्टस्ते तपसावीर साक्षाद्देवःपितामहः । ब्रह्मणा प्रेषितस्तेऽहंवरान्दास्यामिकांक्षितान् ॥

भीष्मोऽपि तद्वचः श्रुत्वा मनःश्रोत्रसुखावहम् ।
उन्मील्य नयने दृष्ट्वा पुलस्त्यं पुरतः स्थितम् ॥ ६६ ॥

अष्टाङ्गप्रणिपातेन नत्वा तं मुनिसत्तमम् । उवाच प्रणतोभूत्वा सर्वाङ्गालिङ्गितावनिः ॥
अद्य मे सफलं जन्म दिनञ्चेदं सुशोभनम् । भवतश्चरणौ दृष्टौ जगद्वन्द्यौ मया त्विह ॥
तपसश्च फलं प्राप्तं यद्दृष्टो भगवान्मया । वरप्रदोविशेषेण सम्प्राप्तश्च नदीतटे ॥
इयं वृषी मया क्लृप्ता आस्यतां सुखदा कृता । अर्घ्यपात्रे तु पालाशे दूर्वाक्षतसुमैःकुशैः
सर्सपैश्च दधिक्षौद्रैर्यवैश्च पयसा सह । अष्टाङ्गो ह्येष निर्दिष्टोह्यर्घोहिमुनिभिःपुरा ॥
श्रुत्वैतद्वचनं तस्य भीष्मस्यामिततेजसः । उपविष्टो ब्रह्मसुतः पुलस्त्यो भगवानृषिः ॥
विष्टरं सहपाद्येन अर्घ्यपात्रं मुदान्वितः । जुजोष भगवन् प्रीतः सदाचारेण तेन तु ॥

पुलस्त्य उवाच ।

सत्यवान् दानशीलोऽसि सत्यसन्धिर्नरेश्वरः ।
ह्रीमान् मैत्रः क्षमाशीलो विक्रान्तः शत्रुशासने ॥ ७७ ॥

धर्मज्ञस्त्वं कृतज्ञस्त्वं दयावान् प्रियभाषिता । मान्यमानयिता विज्ञो ब्रह्मण्यःसाधुवत्सलः
तुष्टस्तेऽहं सदा वत्स प्रणिपातपरस्य वै । प्रब्रूहि त्वं महाभाग कथनं ते वदाम्यहम् ॥

भीष्म उवाच ।

भगवन् भगवान् ब्रह्मा कस्मिन्काले स्थितो विभुः ।
सृष्टिं चकार वै पूर्वं देवादीनां वदस्व मे ॥ ८० ॥

स्थितिं वा भगवान् विष्णुःकथंरुद्रस्तु निर्मितः । कथंवा ऋषयोदेवास्सृष्टास्तेनमहात्मना
कथं पृथ्वी कथं व्योम कथंचेमे तु सागराः । कथंद्वीपा पर्वताश्चग्रामारण्यपुराणि च ॥
मुनीन् प्रजापतींश्चैव सप्तर्षीन् प्रवरानपि । वर्णान् वायुं पुरास्थानं गन्धर्वान्यक्षराक्षसान्
तीर्थानि सरितोवाथ सूर्य्यादीन् ग्रहतारकान् । यथा ससर्जभगवांस्तथा मे त्वं वदस्व ह

पुलस्त्य उवाच ।

परः पुराणां परमः परमात्मा पितामहः । रूपवर्णादिरहितो विषयेन विवर्जितः ॥
अपक्षयविनाशाभ्यां परिणामर्द्धिजन्मभिः । गुणैर्विवर्जितः सर्वैःस भातीतिहि केवलम् ॥
सर्वत्रासौ समश्चापि वसन्ननुपमो मतः । भावयन् ब्रह्मरूपेण विद्वद्भिः परिपठ्यते ॥
तं गुह्यं परमं नित्यमजमक्षयमव्ययम् । तथा पुरुषरूपेण कालरूपेण संस्थितम् ॥ ८८ ॥
तं नत्वाहं प्रवक्ष्यामि यथा सृष्टिं चकारह । पूर्वंतु पद्मशयनादुत्थाय जगतः प्रभुः ॥
गुणव्यञ्जन सम्भूतः सर्गकाले नराधिप । सात्विको राजसश्चैवतामसश्च त्रिधा महान् ॥
प्रधानतत्वेन समं तथा बीजादिभिर्वृतः । वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः ॥
त्रिविधोयमहंकारो महत्तत्वादजायत । भूतेन्द्रियाणां पञ्चानां तथाकर्मेन्द्रियैः सह ॥
पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च । एकैकशः स्वरूपेण कथयामि यथोत्तरम् ॥
शब्दमात्रमथाकाशं भूतादिः खंसमावृणोत् । अथाकाशं विकुर्वाणं स्पर्शमात्रं ससर्जह ॥
बलवानेषवै वायुस्तस्य स्पर्शोगुणोमतः । आकाशं शब्दमात्रंतु स्पर्शमात्रं समावृणोत् ॥
ततो वायुर्विकुर्वाणो रूपमात्रं ससर्जह । ज्योतीरूपन्तु तद्वायुस्तद्रूपगुणमुच्यते ॥
स्पर्शरूपस्तु वै वायू रूपमात्रं समावृणोत् । ज्योतिश्चापि विकुर्वाणं रसमात्रं ससर्जह
सम्भवन्तिततोऽम्भसिरूपमात्रंसमावृणोत् । विकुर्वाणानिचाम्भांसि गन्धमात्रं ससर्जिरे
सङ्घातो जायते तस्मात्तस्यगन्धोमतोगुणः । तैजसानीन्द्रियाण्याहुर्देवावैकारिकादश ॥
एकादशं मनश्चात्रदेवावैकारिकाःस्मृताः । त्वक् चक्षुर्नासिका जिह्वा श्रोत्रमत्रचपंचमम् ॥
एतेषान्तु मतंकृत्यं शब्दादिग्रहणं पुनः । वाक् पाणिपादपायूनि चोपस्थं तत्र पञ्चमम्
विसर्गशिल्पगत्युक्तिर्गुणा एषांविपर्ययात् । आकाशवायुतेजांसि सलिलं पृथिवीतथा
शब्दादिभिर्गुणैर्वीर युक्तानीत्युत्तरोत्तरैः । शान्ताघोराश्चमूढाश्च विशेषास्तेनतेस्मृताः ॥

नानावीर्य्याः पृथक्भूतास्ततस्ते संहतिं विना । नाशक्नुवन् प्रजाः स्रष्टुमसमागम्य कृत्स्नशः
समेत्यान्योन्यसंयोगात् परस्परसमाश्रयात् । एकसङ्घातलक्षाश्च सम्प्राप्यैक्यमशेषतः ॥
पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च व्यक्तानुग्रहणे तथा । महदादयो विशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्तिवै ।
तत्क्रमेण विवृत्तं तु जलबुद्बुदवत् समम् । तत्राव्यक्तस्वरूपोऽसौ व्यक्तरूपी जनार्दनः ॥
ब्रह्मा ब्रह्मस्वरूपेण स्वयमेव व्यवस्थितः । मेरुरुल्वमभूत्तस्य जरायुश्च महीधराः ॥ १०८
गर्भोदकं समुद्राश्च तस्यासंश्च महात्मनः । तत्र द्वीपाः समुद्राश्च सज्योतिर्लोकसंग्रहः ॥
तस्मिन्नण्डेऽभवन् वीर सदेवासुरमानुषाः । वारिवह्न्यनिलाकाशैर्वृ तैर्भूतादिना बहिः ॥
वृतं दशगुणैरण्डं भूतादिर्महता तथा । अव्यक्तेनावृतो राजंस्तैः सर्वैः सहितो महान् ॥
एभिरावरणैः सर्वैः सर्वभूतैश्च संयुतम् । नारिकेलफलं यद्वद्बीजं बाह्यदलैरिव ॥ ११२॥
ब्रह्मास्वयञ्च जगतो विसृष्टौ सम्प्रवर्तते । सृष्टिश्च पात्यनुयुगं यावत्कल्पविकल्पना ॥
स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः । सत्वभुग् गुणवान् देवो ह्यप्रमेयपराक्रमः ॥
तमोद्रेकश्च कल्पान्ते रूपं रौद्रं करोति च । राजेन्द्राखिलभूतानि भक्षयत्यतिभीषणः ॥
भक्षयित्वा च भूतानि जगत्येकार्णवीकृते । नागपर्यङ्कशयने शेते सर्वस्वरूपधृक् ॥ ११६
प्रबुद्धश्च पुनः सृष्टिं प्रकरोति च रूपधृक् । सृष्टिस्थित्यन्तकरणाद् ब्रह्माविष्णुशिवात्मकः

स्रष्टा सृजति चात्मानं विष्णुः पाल्यश्च पाति च ।
उपसंह्रियते चापि संहर्त्ता च स्वयं प्रभुः ॥ ११८ ॥

पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च । स एव सर्वभूतेशो विश्वरूपो यतोऽव्ययः

सर्गादिकं ततोऽस्यैव भूतस्थमुपकारकम् ॥ ११९ ॥
स एव सृज्यः स च सर्गकर्त्ता स एव पाल्यं प्रतिपाल्यते यतः ।
ब्रह्माद्यवस्थाभिरशेषमूर्त्तिर्ब्रह्मा वरिष्ठो वरदो वरेण्यः ॥ १२० ॥

इति श्रीपद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे पुराणावतारे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ।

कालपरिमाणवर्णनम्

भीष्म उवाच ।

निर्गुणस्याप्रमेयस्य शुद्धस्याथ महात्मनः । कथं सर्गादिकर्तृत्वं ब्रह्मणो ह्युपपद्यते ॥ १

पुलस्त्य उवाच ।

शक्तयः सर्वभावानामचिन्त्याज्ञानगोचराः । यत्ततो ब्रह्मणस्तास्तु सर्गाद्या भावशक्तयः
उत्पन्नः प्रोच्यते विद्वान्नित्य एवोपचारतः । निजेन तस्य मानेन आयुर्वर्षशतं स्मृतम् ॥
तत्पराख्यं परार्द्धञ्च तदर्द्धं परिकीर्तितम् । काष्ठा पञ्चदशाख्याता निमेषो नृपसत्तम ॥४
काष्ठास्त्रिंशत्कलास्त्रिंशत्कला मौहूर्तिको विधिः । तावत्संख्यैरहोरात्रं मुहूर्तैर्मानुषंस्मृतम्
अहोरात्राणि तावन्ति मासः पक्षद्वयात्मकः । तैः षड्भिरयनं वर्षमयने दक्षिणोत्तरे ॥६
अयनं दक्षिणं रात्रिर्देवानामुत्तरं दिनम् । दिव्यैर्वर्षसहस्रैस्तु कृतत्रेतादिसंज्ञितम् ॥ ७ ॥
चतुर्युगं द्वादशभिस्तद्विभागं निबोध मे । चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं कृतादिषु यथाक्रमम्
दिव्याब्दानां सहस्राणि युगेष्वाहुः पुराविदः । तत्प्रमाणैः शतैः सन्ध्या पूर्वातत्राभिधीयते

सन्ध्यांशकश्च तत्तुल्यो युगस्यानन्तरो हि यः ।

सन्ध्या सन्ध्यांशयोरन्तः कालो यो नृपसत्तम ॥ १० ॥

युगाख्यः स तु विज्ञेयः कृतत्रेतादिसंज्ञितः । कृतं त्रेता द्वापरञ्च कलिश्चैव चतुर्युगम् ॥
प्रोच्यते तत्सहस्रन्तु ब्रह्मणो दिवसं नृप । ब्रह्मणो दिवसे राजन् मनवश्च चतुर्दश ॥
भवन्ति परिमाणञ्च तेषां कालकृतं शृणु । सप्तर्षयः सुराः शक्रो मनुस्तत्सूनवोनृप ॥
एककाले हि सृज्यन्ते संह्रियन्ते स्वपूर्ववत् । चतुर्युगानांसंख्यातासाधिकाह्येकसप्ततिः
मन्वन्तरं मनोः कालः सुरादीनाञ्च पार्थिव । अष्टौ शतसहस्राणिदिव्यया संख्ययास्मृतः

द्विपञ्चाशत्तथान्यानिसहस्राण्यधिकानि च ।

त्रिंशत्कोट्यस्तुसम्पूर्णाः संख्याताःसंख्यया नृप ॥ १६ ॥

सप्तषष्टिस्तथान्यानि नियुतानि महामते । विंशतिश्च सहस्राणि कालोऽयमधिकं विना

मन्वंतरस्य संख्येयं मानुषैरिह वत्सरैः । चतुर्दश गुणो ह्येषः कालो ब्राह्ममहःस्मृतम् ॥
ब्राह्मो नैमित्तिको नाम तस्यान्ते प्रतिसञ्चरः ।
तदा हि दह्यते सर्वं त्रैलोक्यं भूर्भुवादिकम् ॥ १६ ॥
जनंप्रयान्ति तापार्त्ता महर्लोकनिवासिनः । एकार्णवे तु त्रैलोक्ये ब्रह्मा ब्रह्मविदांवर ॥
भोगिशय्यागतःशेतेत्रैलोक्यग्रासबृंहितः । जनस्थैर्योगिभिर्देवश्चिन्त्यमानो जगद्विभुः ॥
तत्प्रमाणां हि तां रात्रिं तदन्ते सृजते पुनः । एवन्तु ब्रह्मणो वर्षमेवं वर्षशतं च तत् ॥
शतं हि तस्य वर्षाणां परमायुर्महात्मनः । एकमस्य व्यतीतं तु परार्द्धं ब्रह्मणोऽनघ ॥
तस्यान्तेऽभून्महाकल्पः पाद्म इत्यभिविश्रुतः । द्वितीयस्य परार्द्धस्य वर्तमानस्य वै नृप ।
वाराहइति कल्पोऽयं प्रथमः परिकल्पितः ॥

भीष्मउवाच ।

ब्रह्मा नारायणाख्योऽसौ कल्पादौ भगवान् यथा ।
ससर्ज सर्वभूतानि तदाचक्ष्व महामुने ॥२४ ॥

पुलस्त्यउवाच ।

प्रजा ससर्ज भगवाननादिः सर्वसम्भवः । अतीतकल्पावसाने निशासुप्तोत्थितः प्रभुः
सत्वोद्रिक्तस्तथा ब्रह्मा शून्यं लोकमवैक्षत । तोयान्तःसमहींज्ञात्वा निमग्नां वारिसंप्लवे
प्रविचिन्त्य तदुद्धारं कर्तुकामः प्रजापतिः ॥ २८ ॥
विष्णुरूपंतदाज्ञात्वापृथ्वीं वोढुं स्वतेजसा । मत्स्यकूर्मादिकाश्चान्यांवाराहींतनुमाविशत्
वेदयज्ञमयं रूपमाश्रित्य जगतः स्थितौ । स्थितःस्थिरात्मा सर्वात्मा परमात्मा प्रजापतिः
प्रविवेश तदा तोयं तोयाधारे धराधरः ॥ ३१ ॥
निरीक्ष्य तं तदा देवी पातालतलमागतम् । तुष्टाव प्रणता भूत्वा भक्तिनम्रा वसुन्धरा ॥

पृथिव्युवाच ।

नमस्ते सर्वभूताय नमस्ते परमात्मने ॥ ३२ ॥
मामुद्धरास्मादद्यत्वं त्वत्तोऽहं पूर्वमुत्थिता । परमात्मन् नमस्तेऽस्तु पुरुषात्मन्नमोस्तुते
प्रधानव्यक्तरूपाय कालभूताय ते नमः । त्वं कर्त्तासर्वभूतानां त्वं पाता त्वं विनाशकृत्

सर्गादौ यः परो ब्रह्मा विष्णुरुद्रात्मरूपधृक्। भक्षयित्वा च सकलं जगत्येकार्णवीकृते
शेषे त्वमेव गोविन्द चिन्त्यमानो मनीषिभिः। भवतो यत्परं रूपं तन्नजानाति कश्चन
अवतारेषु यद्रूपं तदर्चन्ति दिवौकसः। त्वामाराध्य परं ब्रह्म यातामुक्तिं मुमुक्षवः॥
वासुदेवमनाराध्य को हि मोक्षमवाप्स्यति। यद्रूपं मनसा ग्राह्यं यद्ग्राह्यं चक्षुरादिभिः
बुद्ध्या च यत्परिच्छेद्यं तद्रूपमखिलं तव। त्वन्मय्यहंत्वदाधारात्वत्सृष्टा त्वामुपाश्रिता
माधवीमिति लोकोऽयमभिधत्तेततोहिमाम्। एवं संस्तूयमानस्तु पृथिव्या पृथिवीधरः

सामस्वरध्वनिः श्रीमान् जगर्ज परिघर्घरम्।

ततः समुत्क्षिप्य धरां स्वदंष्ट्रया महावराहः स्फुटपद्मलोचनः।
रसातलादुत्पलपत्रसन्निभः समुत्थितो नील इवाचलो महान्॥ ४१ ॥
उत्तिष्ठता तेन मुखानिलाहतं तत्संप्लवाम्भो जनलोकसंश्रयान्।
सनन्दनादीनपकल्मषान्मुनींश्चकार भूयोऽपिपवित्रतास्पदम्॥ ४२ ॥
प्रयान्ति तोयानि खुराग्रवीक्षते रसातलेऽधः कृतशब्दसन्ततिः।
बलाहकानाञ्च ततिस्तुतस्य श्वासानिलास्तेपरितः प्रयान्ति ॥ ४३ ॥
उत्तिष्ठतस्तस्य जलार्द्रकुक्षेर्महावराहस्य महीं विदार्य।
विधुन्वतो वेदमयं शरीरं रोमान्तरस्था मुनयो जुषन्ति॥ ४४ ॥
जनेश्वराणांपरमेश केशव प्रभुर्गदासङ्खदरासिचक्रधृक्।
प्रभूतिनाशस्थितिहेतुरीश्वरस्त्वमेव नान्यत् परमं च यत्पदम्॥ ४५ ॥
पादेषु वेदास्तव यूपदंष्ट्रादन्तेषुयज्ञाः श्रुतयश्चवक्त्रे।
हुताशजिह्वोऽसितनूरुहाणि दर्भाः प्रभोयज्ञपुमांस्त्वमेव ॥ ४६ ॥
द्यावापृथिव्योरतुलप्रभाव यदन्तरं तद्वपुषा तवैव।
व्याप्तंजगद्व्यापिसमस्तमेतद्धितायविश्वस्यविभोभवत्वम्॥ ४७ ॥

परमात्मात्वमेवैकोनान्योऽस्तिजगतःपते। तवैषमहिमायेनव्याप्तमेतच्चराचरम्॥
ज्ञानस्वरूपमखिलंजगदेतदबुद्धयः॥ ४८ ॥
अर्थस्वरूपंपश्यन्तोभ्राम्यन्तेतमसः प्लवे। येतुज्ञानविदः शुद्धचेतसस्तेऽखिलंजगत्॥

ज्ञानात्मकंप्रपश्यन्तित्वद्रूपंपरमेश्वर। प्रसीद सर्व भूतात्मन् भवायजगतस्त्विमाम्॥
उद्धरोर्वीममेयात्मन्निमग्नामब्जलोचन। सत्वोद्रक्तोऽसिभगवन्गोविन्दपृथिवीमिमाम्
समुद्धर भवायेश कुरु सर्वजगद्धितम्। एवं संस्तूयमानश्च परमात्मा महीधरः॥५३॥
उज्जहार क्षितिंक्षिप्रं न्यस्तवान्समहार्णवे। तस्योपरिजलौघेऽस्य महति नौरिवस्थिता॥
ततः क्षितिं समाकृत्वा पृथिव्यामचिनोद्गिरीन्। यथाविभागंभगवाननादिःपुरुषोत्तमः॥
भूविभागं ततः कृत्वा सप्तद्वीपांयथातथम्। भूराद्यांश्चतुरोलोकानपूर्ववत् समकल्पयत्॥
ब्रह्मणे विष्णुना पूर्वमेतदेव प्रदर्शितम्। तुष्टेन देवदेवेन त्वं देवः पुरुषोत्तमः॥५७॥
त्वयामयाजगच्चेदं धार्य्यंपाल्यञ्चयत्नतः। येषान्त्वसुरमुख्यानांवरोदत्तोमयाधुना॥
देवानां हितकामेन हन्तव्यास्तेत्वयाविभो। अहंसृष्टिं करिष्यामिसाचपाल्यात्वयाविभो
एवमुक्तोगतोविष्णुर्देवादीनसृजद्विभुः। अबुद्धिपूर्वकस्तस्य प्रादुर्भूतस्तमोमयः॥६०॥
तमोमोहोमहामोहस्तामिस्रोह्यन्धसंज्ञकः। पञ्चधावस्थितःसर्गोध्यायतस्तुमहात्मनः॥
बहिरन्तश्चाप्रकाशः संवृतात्मानगात्मकः। मुख्यानागायतश्चोक्ता मुख्यसर्गस्ततस्त्वयम्
तं दृष्ट्वासाधकं सर्गममन्यदपरंप्रभुः। तस्याभिध्यायतः सर्गस्तिर्य्यक्स्रोतोऽभ्यवर्तत

यस्मात्तिर्य्यक् प्रवृत्तिःस्यात्तिर्य्यक्स्रोतस्ततःस्मृतः।
पश्वादयस्तेविख्यातास्तमःप्राया ह्यवेदिनः॥६४॥
उत्पथग्राहिणश्चैव तेऽज्ञाने ज्ञानमानिनः।

अहंकृतास्त्वहंमाना अष्टाविंशतिधात्मकाः। अन्तःप्रकाशास्ते सर्वे आवृतास्ते परस्परम्
तमप्यसाधकंमत्वाध्यायतोऽन्यस्ततोऽभवत्।ऊर्द्ध्वस्रोतस्तृतीयस्तु सात्विकोर्द्ध्वमवर्तत
ते सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तरनावृताः। प्रकाशा बहिरन्तश्च ऊर्द्ध्वस्रोतास्ततः स्मृताः॥६७
तुष्टात्मनस्तृतीयस्तु देवसर्गस्तु संस्मृतः। तस्मिन् सर्गेऽभवत् प्रीतिर्निष्पन्ने ब्रह्मणस्तदा

ततोऽन्यं स तदा दध्यौ साधकं सर्गमुत्तमम्।
असाधकांस्तु तान् ज्ञात्वा मुख्यसर्गादिसम्भवान्॥६९॥

तथाभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्ततः। प्रादुर्भूतस्तदाव्यक्तादर्वाक्स्रोतस्तुसाधकः
यस्मादर्वाक् प्रवर्तन्ते ततोऽर्वाक्स्रोतसस्तु ते। ते च प्रकाशबहुलास्तमोद्रिक्तारजोधिकाः

तस्मात्ते दुःखबहुला भूयोभूयश्चकारिणः । प्रकाशा बहिरन्तश्च मनुष्याः साधकाश्च ते
पञ्चमोऽनुग्रहः सर्गः स चतुर्धा व्यवस्थितः ।
विपर्य्ययेण सिद्धया च शक्त्या तुष्ट्या तथैव च ॥ ७३ ॥
विवृत्तं वर्तमानञ्च ते न जानन्ति वै पुनः । भूतादिकानां भूतानां षष्ठः सर्गः स उच्यते
ते परिग्राहिणः सर्वे सविभागतरास्तु ते । चोदनाजाप्यशीलाश्च ज्ञेया भूतादिकास्तु ते
इत्येते कथिताः सर्गाः षडत्र नृपसत्तम । प्रथमो महतः सर्गो द्वितीयो ब्रह्मणस्तु यः ॥
तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गो हि स स्मृतः । वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्गश्चैन्द्रियकःस्मृतः
इत्येष प्राकृतः सर्गः सम्भूतो बुद्धिपूर्वकः । मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराःस्मृताः
तिर्यक्स्रोतश्च यः प्रोक्तस्तिर्यग्योऽन्यः स उच्यते ।
ततोर्द्ध्वस्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः ॥ ७६ ॥
ततोऽर्वाक्स्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः ।
अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः सात्विकस्तामसस्तु सः ॥८०
पञ्चैते वैकृताः सर्गाः प्राकृतास्तु त्रयः स्मृताः । प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमः स्मृतः
एते तव समाख्याता नव सर्गाः प्रजापतेः । प्राकृता वैकृताश्चैव जगतो मूलहेतवः ॥
सृजतो जगदीशस्य किमन्यच्छ्रोतुमर्हसि ॥ ८२ ॥

भीष्म उवाच ।

संक्षेपात् कथिताः सर्गा देवादीनां गुरो त्वया ।
विस्तरात् श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो मुनिवरोत्तम ॥ ८३ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

कर्मभिर्भाविताः सर्वे कुशलाकुशलैस्तु ते ॥ ८४ ॥
ख्यात्या तया ह्यनिर्मुक्ताः संहारे ह्युपसंहृताः । स्थावरान्ताः सुराद्यास्तु प्रजा राजंश्चतुर्विधाः
ब्रह्मणः कुर्वतः सृष्टिं जज्ञिरे मानसाः स्मृताः । ततो देवासुरपितॄन् मानुषांस्तु चतुष्टयम्
सिसृक्षुरम्भांस्येतानि स्वमात्मानमयूयुजत् । मुक्तात्मनस्ततो जाता दुरात्मानः प्रजापतेः
सिसृक्षोर्जघनात् पूर्वं जज्ञिरे त्वसुरास्ततः । तत्याज तां ततो दुष्टान्तमोमात्रात्मिकांतनुम्

सा तु त्यक्ता तनुस्तेन राजेन्द्राभूद्विभावरी । सिसृक्षुरन्यदेहस्थः प्रीतिमाप ततः सुराः ॥
सत्वोद्रिक्ताः समुद्भूता मुखतो ब्रह्मणो नृप । त्यक्ता सापि तनुस्तेन सत्वप्रायमभूद्दिनम्
ततो हि बलिनो रात्रावसुरा देवता दिवा । सत्वमात्रात्मिकां चैव ततोऽन्यांजगृहेतनुम्
पितृवन्मन्यमानस्य पितरस्तस्य जज्ञिरे । उत्ससर्ज पितॄन् कृत्वा ततस्तामपि स प्रभुः ॥
सा चोत्सृष्टाभवत् सन्ध्या दिननक्तान्तरास्थितिः । रजोमात्रात्मिकामन्यां जगृहेसतनुन्ततः
रजोमात्रोत्कटा जाता मनुष्याः कुरुसत्तम । तामप्याशु स तत्याज तनुमाद्यां प्रजापतिः

ज्योत्स्ना समभवच्चापि प्राक्सन्ध्या याभिधीयते ।
ज्योत्स्नागमे तु बलिनो मनुष्याः पितरस्तथा ॥ ९५ ॥
राजेन्द्र सन्ध्यासमये तस्मात्ते प्रभवन्ति वै ।
ज्योत्स्ना राज्यहनी सन्ध्या चत्वार्येतानि वै विभोः ॥ ९६ ॥

ब्रह्मणस्तु शरीराणि त्रिगुणोपाश्रयाणि च । रजोमात्रात्मिकामेव ततोऽन्यां जगृहेतनुम्
ततः क्षुद्ब्रह्मणो जाता जज्ञे कोपस्तया कृतः। क्षुत्क्षामो ह्यन्धकारे तु सोऽसृजद्भगवांस्ततः
विरूपा अत्तुकामास्ते समधावन्त तं प्रभुम् । रक्षतामेष यैरुक्तं राक्षसास्ते ततोऽभवन्

ऊचुर्यक्षाम (खादाम) इत्यन्ये ये च यक्षास्तु तेऽभवन् ।
अतिभीतस्य तान् दृष्ट्वा केशाः शीर्यन्ति वेधसः ॥ १०० ॥

हीनाश्च शिरसो भूयः समारोहन्ति ते शिरः । सर्पणात्तेऽभवन् सर्पा हीनत्वादहयःस्मृतः

ततः क्रुद्धेन वै स्रष्ट्रा क्रोधात्मानो विनिर्मिताः ।
वर्णेन कपिशेनोग्रा भूतास्ते पिशिताशिनः ॥ १०२ ॥
धयतो गां समुद्भूता गन्धर्वास्तस्य तत्क्षणात् ।
पिबन्तो जज्ञिरे वाचंगन्धर्वास्तेनतेऽभवन् ॥ १०३ ॥
एतानि सृष्ट्वा भगवान् ब्रह्मा तच्छक्तिचोदितः ।
ततःस्वच्छन्दतोऽन्यानि वयांसि वयसोऽसृजत् ॥ १०४ ॥

अवयो वक्षसश्चक्रे मुखतोयांश्च सृष्टवान् । सृष्टवानुदराद्गाश्च महिषांश्च प्रजापतिः ॥

पद्भ्याञ्चाश्वान् स मातङ्गान् रासभान् गवयान् मृगान् ।
ऊष्ट्रानश्वतरांश्चैव न्यङ्कूनन्याश्च जातयः ॥ १०६ ॥

औषध्यः फलमूलिन्यो रोमभ्यस्तस्य जज्ञिरे । त्रेतायुगमुखे ब्रह्मा कल्पस्यादौ नृपोत्तम
सृष्ट्वा पश्वोषधीः सम्यक् युयोज स तदाध्वरे । गामजं महिषं मेषमश्वाश्वतरगर्दभान्
एतान् ग्राम्यपशूनाहुरारण्यांश्च निबोध मे । श्वापदो द्विखुरो हस्ती वानरः पञ्चमः खगः
ऊष्ट्रकाः पशवः षष्ठाः सप्तमास्तु सरीसृपाः । गायत्रञ्च ऋचश्चैव त्रिवृत्सोमं रथन्तरम् ॥
अग्निष्टोमञ्च यज्ञानां निर्ममे प्रथमान्मुखात् । यजूंषि त्रैष्टुभं छन्दः स्तोमं पञ्चदशं तथा
बृहत्साम तथोक्थञ्च दक्षिणादसृजन्मुखात् । सामानि जगतीच्छन्दःस्तोमंसप्तदशं तथा
वैरूपमतिरात्रञ्च पश्चिमादसृजन्मुखात् । एकविंशमथर्वाणमप्तोर्यामाणमेव च ॥ ११३॥
आनुष्टुभं स वैराजमुत्तरादसृजन्मुखात् । उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे ॥
सुरासुरपितॄन् सृष्ट्वा मनुष्यांश्च प्रजापतिः । ततः पुनः ससर्जासौ स कल्पादौपितामहः

यक्षान् पिशाचान् गन्धर्वांस्तथैवाप्सरसां गणान् ।
सिद्धकिन्नररक्षांसि सिंहान् पक्षिमृगोरगान् ॥ ११६ ॥

अव्ययञ्चव्ययञ्चैव यदिदं स्थाणु जङ्गमम् । तत् ससर्ज तदा ब्रह्मा भगवानादिकृद्विभुः ॥
तेषां ये यानि कर्माणि प्राक्सृष्ट्यां प्रतिपेदिरे । तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृज्यमाना पुनःपुनः
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते । तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥११६
इन्द्रियार्थेषु भूतेषु शरीरेषु च स प्रभुः । नानात्वं विनियोगञ्च धातैव व्यसृजत्स्वयम्
नाम रूपञ्च भूतानां कृत्यानाञ्च प्रपञ्चनम् । वेदशब्देभ्य एवादौ देवादीनां चकार सः ॥
ऋषीणांनामधेयानियथावेदश्रुतानिवै । यथानियोगं योग्यानिअन्येषामपिसोऽकरोत् ॥
यथर्त्तावृतुलिङ्गानिनानारूपाणिपर्य्यये । दृश्यन्ते तानितान्येव तथा भावा युगादिषु ॥
करोत्येवंविधांसृष्टिं कल्पादौसपुनःपुनः । सिसृक्षुश्शक्तियुक्तोऽसौसृज्यशक्तिप्रचोदितः

भीष्मउवाच ।

अर्वाक्स्रोतास्तुकथितो भवतायस्तु मानुषः । ब्रह्मन्विस्तरतोब्रूहि ब्रह्मातमसृजद्यथा ॥
यथा सवर्णानसृजद् गुणांश्च स महामुने । यच्चतेषांस्मृतंकर्म विप्रादीनां तदुच्यताम् ॥

पुलस्त्यउवाच ।

सत्वाभिध्यायिनः पूर्वं सिसृक्षोर्ब्रह्मणः प्रजाः । अजायन्तकुरुश्रेष्ठसत्वोद्रिक्तामुखात्प्रजाः

वक्षसो रजसोद्रिक्तास्तथान्याब्रह्मणोऽभवन् । रजसस्तमसश्चैव समुद्रिक्तास्तथोरुतः ॥
पद्भ्यामन्याः प्रजा ब्रह्मा ससर्ज कुरुसत्तम । तमःप्रधानास्ताः सर्वाश्चातुर्वण्यमिदं ततः
ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च नृपसत्तम । पादोरुवक्षस्थलतो मुखतश्च समुद्गताः ॥
यज्ञनिष्पत्तये सर्वमेतद् ब्रह्मा चकारह । चातुर्वर्ण्यं महाराज यज्ञसाधनमुत्तमम् ॥
यज्ञेनाप्यायिता देवा वृष्ट्युत्सर्गेण मानवा । आप्यायन्ते धर्मयज्ञा यतः कल्याणहेतवः
निष्पद्यन्ते नरैस्ते तु सुकर्मनिरतैः सदा । विरुद्धाचरणापेतैः सद्भिः सन्मार्गगामिभिः ॥
स्वर्गापवर्गमानुष्यात् प्राप्नुवन्ति नरा नृप । यच्चाभिरुचितंस्थानंतद्यान्ति मनुजाविभो
प्रजास्ता ब्रह्मणासृष्टाश्चातुर्वर्ण्यव्यवस्थितौ । सम्यक् शुद्धाः समाचाराचरणा नृपसत्तम
यथेच्छावासनिरताः सर्वबाधाविवर्जिताः । शुद्धान्तकरणाः शुद्धाधर्मानुष्ठाननिर्मलाः
शुद्धे च तासां मनसि शुद्धान्तः संस्थिते हरौ । शुद्धज्ञानं प्रपश्यन्ति ब्रह्माख्यंयेनतत्पदम्
ततःकालात्मकोयोऽसौ विरिञ्चावास उच्यते । संसारपातमत्यर्थं घोरमल्पालपसारवत्
अधर्मबीजभूतं तत्तमोलोभसमुद्गतम् । प्रजासु तासु राजेन्द्र रागादिक्रमसाधनम् ॥

ततः सा सहजा सिद्धिस्तेषां नातीव जायते ।
राजन् वश्यादयश्चान्याः सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति याः ॥ १४० ॥

तासु क्षीणास्वशेषासु वर्द्धमाने च पातके । द्वन्द्वाभिभवदुःखार्त्तास्ता भवन्ति ततःप्रजाः
ततोदुर्गाणि ताश्चक्रुर्वार्क्षं पार्वतमौदकम् । धान्वनंच तथा दुर्गं पुरंखार्वटकादियत् ॥
गृहाणि च यथान्यायं तेषुचक्रुः पुरादिषु । शीततापादिबाधानां प्रशमाय महामते ॥
प्रतिहारमिमंकृत्वा शीतादेस्ताः प्रजाः पुनः । वार्त्तोपायंततःश्चक्रुर्हस्तसिद्धिंचकर्मजाम्
व्रीहयश्च यवाश्चैव गोधूमा अणवस्तिलाः । प्रियंगूकोविदाराश्च कोरदूषाः सचीनकाः

माषा मुद्गा मसूराश्च निष्पावाः सकुलुत्थकाः ।
अढकाश्चणकाश्चैव शणाः सप्तदश स्मृताः ॥ १४६ ॥

इत्येता ओषधीनान्तु ग्राम्याणां जातयो नृप । ओषध्यो यज्ञियाश्चैवग्राम्यावन्याश्चतुर्दश
व्रीहयः सयवा माषा गोधूमा अणवस्तिलाः । प्रियंगू सप्तमाह्येता अष्टमास्तुकुलुत्थकाः
श्यामाकस्त्वथ नीवारो वर्तुलः सगवेधुकः । अथ वेणुयवा प्रोक्ता स्तद्वन्मर्कटकानृप ॥

ग्राम्या वन्याः स्मृता ह्येता ओषध्यश्च चतुर्दश । यज्ञनिष्पत्तये तद्वत्तथासां हेतुरुत्तमः ।
एताश्च सहयज्ञेन प्रजानां कारणं परम् । परापरविदः प्राज्ञास्ततो यज्ञान् वितन्वते ॥
अहन्यहन्यनुष्ठानं यज्ञानां पार्थिवोत्तम । उपकारकरं पुंसां क्रियमाणं फलार्थिनाम् ॥
येषाञ्च कालसृष्टौऽसौपपाविन्दुर्महामते । मर्यादां स्थापयामास यथास्थानं यथागुणम्
वर्णानामाश्रमानाञ्च धर्मान् धर्मभृतांवर । लोकांश्चसर्ववर्णानां सम्यग्धर्मानुपालिनाम्
प्राजापत्यं ब्राह्मणानां स्मृतंस्थानन्तु पार्थिव । स्थानमैन्द्रं क्षत्रियाणांसंग्रामेष्वनिवर्त्तिनाम्
वैश्यानां मारुतंस्थानं स्वधर्ममनुवर्त्तिनाम् । गान्धर्वं शूद्रजातीनां परिचर्यासु वर्त्तिनाम्
अष्टाशीति सहस्राणां यतीनामूर्ध्वरेतसाम् । स्मृतं तेषान्तु यत्स्थानंतदेव गुरुवासिनाम्
सप्तर्षीणाञ्चयत्स्थानंस्मृतंतद्वै वनौकसाम् । प्राजापत्यंगृहस्थानांन्यासिनां ब्राह्मसंज्ञितम्
योगिनाममृतस्थानं ब्रह्मणः परमं पदम् । एकान्तिनःसदोयुक्ता ध्यायिनो योगिनोहिये
तेषां तत्परमं स्थानं यत्तत् पश्यन्ति सूरयः । गतागता निवर्तन्ते चन्द्रादित्यादयोग्रहाः ॥
अद्यापि न निवर्त्तन्ते नारायणपरायणाः । तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवम् ॥
असिपत्रवनं घोरं कालसूत्रमवीचिमत् । विनिन्दकानां वेदस्य यज्ञव्याघातकारिणाम्
स्थानमेतत् समाख्यातंस्वधर्मत्यागिनश्चये । ततोऽभिध्यायतस्तस्य जज्ञिरेमानसाः प्रजाः
तच्छरीरसमुत्पन्नैः कायस्थैः करणैः सह । क्षेत्रज्ञाः समवर्त्तन्त गात्रेभ्यस्तस्य धीमतः
ते सर्वे समवर्त्तन्त ये मया प्रागुदाहृताः । देवाद्याःस्थावरान्ताश्च त्रैगुण्यविषयेस्थिताः
एवम्भूतानि सृष्टानि स्थावराणि चराणि च । यदास्य ताः प्रजाःसर्वानव्यवर्द्धन्तधीमतः
अथान्यान्मानसान् पुत्रान् सदृशानात्मनोऽसृजत् । भृगुंमांपुलहञ्चैवक्रतुमङ्गिरसं तथा
मरीचिं दक्षमत्रिञ्च वसिष्ठञ्चैव मानसान् । नव ब्रह्माण इत्येते पुराणेनिश्चयं गताः ॥
सनन्दनादयो ये च पूर्वं सृष्टास्तु वेधसा । न ते लोकेष्वसज्जन्त निरपेक्षाः प्रजासु ते
सर्वे ह्यागतविज्ञाना वीतरागा विमत्सराः । तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकसृष्टौ महात्मनः ॥
ब्रह्मणोऽभून्महान् क्रोधस्त्रैलोक्यदहनक्षमः । तस्य क्रोधात् समुद्भूतंजालामालावदीपितं
ब्रह्मणस्तु तदा ज्योति त्रैलोक्यमखिलंदहत् । भ्रुकुटीकुटिलातस्यललाटात्क्रोधदीपितात्
समुत्पन्नस्तदा रुद्रो मध्याह्नार्कसमप्रभः । अर्द्धनारीनरवपुः प्रचण्डोऽति शरीरवान् ॥

विभजात्मानमित्युक्त्वातंब्रह्मान्तर्दधेततः । तथोक्तोऽसौद्विधास्त्रीत्वंपुरुषत्वंतथाकरोत्
बिभेद पुरुषत्वञ्च दशधा चैकधा च सा । सौम्यासौम्यैस्तथारूपैःशान्तैःस्त्रीत्वंचसप्रभुः
बिभेद बहुधा चैव स्वरूपैरसितैः सितैः । ततो ब्रह्मा स्वयम्भूतं पूर्वं स्वायम्भुवंप्रभुम् ॥
आत्मानमेव कृतवान् प्राजापत्येमनुं नृप । शतरूपाञ्च तां नारींतपोनिर्धूतकल्मषाम् ॥
स्वायम्भुवो मनुर्नाम पत्नीत्वे जगृहे प्रभुः । तस्माच्च पुरुषाद् देवी शतरूपा व्यजायत ॥
प्रियव्रतोत्तानपादप्रसूत्याकूतिसंज्ञितम् । ददौ प्रसूतिं दक्षाय आकूतिं रुचयेपुरा ॥
प्रजापतिः स जग्राह तयोर्जज्ञे स दक्षिणः । पुत्रो यज्ञो महाभाग दम्पत्योर्मिथुनं ततः ॥
यज्ञस्य दक्षिणायान्तु पुत्रा द्वादश जज्ञिरे । यामाइतिसमाख्यातादेवाःस्वायम्भुवेमनौ
प्रसूत्याञ्च तथा दक्षश्चतस्रोविंशतिं तथा । ससर्ज कन्यास्तासान्तु सम्यङ्नामानिमेशृणु

श्रद्धा लक्ष्मी धृतिः पुष्टिस्तुष्टि र्मेधा क्रिया तथा ।
बुद्धि र्लज्जा वपुः शान्ति र्ऋद्धिः कीर्त्तिस्त्रयोदशी ॥ १८३ ॥

पत्न्यर्थं प्रतिजग्राह धर्म्मो दाक्षायणी प्रभुः । ताभ्यःशिष्टायवीयस्यएकादश सुलोचनाः
ख्यातिःसत्यथसम्भूतिःस्मृतिःप्रीतिःक्षमातथा । सन्नतिश्चानसूयाचऊर्जास्वाहास्वधातथा
भृगुर्भवोमरीचिश्चतथाचैवांगिरामुनिः । अहंचपुलहश्चैवक्रतुर्मुनिवरस्तथा ॥ १८६ ॥
अत्रिर्वसिष्ठोवह्निश्चपितरश्चयथाक्रमम् । ख्यात्याद्याजगृहुःकन्या मुनयोराजसत्तम ॥१८७
श्रद्धाकामंबलंलक्ष्मीर्नियमंधृतिरात्मजम् । संतोषंचतथातुष्टिर्लोभंपुष्टिरसूयत ॥ १८८ ॥
मेधाश्रुतंक्रियादण्डंनयंविनयमेवच । बोधंबुद्धिस्तथालज्जाविनयंवपुरात्मजम् ॥१८९॥
व्यवसायंप्रजज्ञेवैक्षेमंशान्तिरसूयत । सुखमृद्धिर्यशःकीर्तिरित्येतेधर्मसूनवः ॥ १९० ॥
कामान्नंदींसुतंहर्षंधर्मपौत्रमसूयत । हिंसाभार्यात्वधर्मस्यतस्यजज्ञेतदानृतम् ॥ १९१ ॥
कन्याचनिकृतिस्ताभ्यांभयंनरकएवच । मायाचवेदनाचैवमिथुनंद्वंद्वमेवच ॥ १९२ ॥
तयोर्जज्ञेऽथवैमायामृत्युंभूतापहारिणम् । वेदनायास्ततश्चापिदुःखंजज्ञेऽथरौरवात् ॥ १९३
मृत्योर्व्याधिजराशोकतृष्णाक्रोधाश्चजज्ञिरे । दुःखोत्तराः स्मृताह्येतेसर्वेचाधर्मलक्षणाः
नैषांभार्यास्तिपुत्रोवातेसर्वेह्यूर्ध्वरेतसः । रौद्राण्येतानिरूपाणिब्रह्मणोनृवरात्मज ॥१९५॥
नित्यंप्रलयहेतुत्वंजगतोऽस्यप्रयांतिवै । रुद्रसर्गंप्रवक्ष्यामियथाब्रह्माचकारह ॥ १९६ ॥

कल्पादावात्मनस्तुल्यंसुतंप्रध्यायतस्ततः । प्रादुरासीत्प्रभोरंकेकुमारोनीललोहितः ॥१९७
रुदन्वैसुस्वरंसोऽथद्रवंश्चनृपसत्तम । किं रोदिषीति तं देवोरुदंतं प्रत्युवाचह ॥ १९८ ॥
नामधेहीतितंसोऽथप्रत्युवाचप्रजापतिम् । रोदनाद्रुद्रनामासिमारोदीर्धैर्यमावह ॥ १९९ ॥
एवमुक्तःपुनस्सोऽथसप्तकृत्वो रुरोदह । ततोऽन्यानिददौतस्मैसप्तनामानिवैप्रभुः ॥२००॥
मूर्तीनांचैवमष्टानांस्थानान्यष्टौचकारह । भवंशर्वमथेशानंतथापशुपतिंनृप ॥ २०१ ॥
भीममुग्रंमहादेवमुवाचसपितामहः । सूर्यंजलंमहीवह्निर्वायुराकाशमेवच ॥ १०२ ॥
दीक्षितोब्राह्मणः सोमइत्येतातनवः क्रमात् । एवंप्रकारोरुद्रोऽसौसतींभार्यामविंदत ।२०३
दक्षकोपाच्चतत्याजसासतीस्वंकलेवरम् । हिमवद्दुहितासाभून्मेनायांनृपसत्तम ॥२०४॥
उपयेमेपुनश्चैवयाचित्वाभगवान्भवः । दाक्षीधातृविधातारौभृगोःख्यातिरसूयत ॥२०५॥
श्रियं च देवदेवस्य पत्नी नारायणस्य या ॥ २०६ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

समुद्र मन्थन प्रस्तावे दुर्वासस इन्द्राय शापदान वर्णनम् ।

भीष्म उवाच ॥

क्षीराब्धौ तु तथा लक्ष्मीः किलोत्पन्ना मया श्रुता ।
ख्यात्यां भृगोः समुत्पन्ना एतदाह कथं भवान् ॥ १ ।
कथंचदक्षदुहितादेहंत्यक्त्वर्ताशुभा । मेनायांगर्भसंभूतिमुमायाजन्मएवच ॥ २ ॥
किमर्थंदेवदेवेनपत्नीहैमवतीकृता । विरोधंचाथदक्षेणभगवांस्तुब्रवीतुमे ॥ ३ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इदं च शृणुभूपालयत्पृष्टोऽहमिहत्वया । श्रीसंबंधोमयाप्येषश्रुतआसीत्पितामहात् ॥४॥
अत्रिपुत्रस्तुदुर्वासाःपरिभ्राम्यन्महीमिमाम् । विद्याधरीकरेमालांदृष्ट्वासागन्धकींशुभाम् ॥
याचयामासमेदेहिजटाजूटेकरोम्यहम् । इतिविद्याधरीतेनपृष्टासाऋषिणातथा ॥ ६ ॥

ददौतस्मैमुदायुक्ता तां मालांसतदानृप । गृहीत्वासुचिरंकालंशिरोमालांबबंधह ॥ ७ ॥
उन्मत्तप्रेतवद्विप्रः शोभमानोऽब्रवीदिदम् । इयंविद्याधरीकन्या पीनोन्नतपयोधरा ॥ ८ ॥
शोभालंकारसौभाग्यैर्युक्ताद्दृष्टाततोमनः । क्षोभमायातिमेचाद्यनाहंकामेविचक्षणः ॥ ९ ॥
व्रजामितावदन्यत्रसौभाग्यं स्वंप्रदर्शयन् । एवमुक्त्वासराजेंद्रपरिबभ्राममेदिनीम् ॥ १०
ऐरावतंसमारूढंराजानंत्रिदिवौकसाम् । त्रैलोक्याधिपतिशक्रंभ्राजमानंशचीपतिम् ॥ ११
तामात्मशिरसोमालांभ्रमदुन्मत्तषट्पदाम् । आदायामरराजायचिक्षेपोन्मत्तवन्मुनिः ॥१२
गृहीत्वादेवराजेनमालासागजमूर्द्धनि । मुक्ताररराजसामालाकैलासेजाह्नवीयथा ॥ १३ ॥
मदांधकारिताक्षोऽसौगंधाघ्राणेनवारणः । करेणादायचिक्षेपतांमालांपृथिवीतले ॥ १४ ॥
ततस्तुक्रोधभगवान् दुर्वासामुनिपुङ्गवः । राजेन्द्र देवराजानं क्रुद्धश्चेदमुवाचह ॥ १५ ॥
ऐश्वर्यमददुष्टात्मन्नतिस्तब्धोऽसिवासव । श्रियोधामस्रजंयस्मान्मद्दत्तान्नाभिनंदसि ॥
त्रैलोक्यश्रीरतोमूढविनाशमुपयास्यति । मद्दत्ताभवतामालाक्षिप्तायस्मान्महीतले ॥ १७॥
तस्मात्प्रणष्टलक्ष्मीकं त्रैलोक्यंतेभविष्यति । यस्यसंजातकोपस्यभयमेतिचराचरम् ॥१८
तंमांत्वमतिगर्वेणदेवराजावमन्यसे । महेंद्रोवारणस्कंधादवतीर्यत्वरान्वितः ॥ १९ ॥
प्रसादयामासमुनिंदुर्वाससमकल्मषम् । प्रसाद्यमानः सतदाप्रणिपातपुरःसरम् ॥ २० ॥
नाहंक्षमिष्येबहुनाकिमुक्तेनशतक्रतो । इत्युक्त्वाप्रययौविप्रोदेवराजोऽपितंपुनः ॥ २१ ॥
आरुह्यैरावतंनागंप्रययावमरावतीम् । ततः प्रभृतिनिश्रीकंसशक्रंभुवनत्रयम् ॥ २२ ॥
नयज्ञाः संप्रवर्ततेनतपस्यंतितापसाः । नचदादानानिदीयंतेनष्टप्रायमभूज्जगत् ॥ २३ ॥
एवमत्यंतनिश्रीकेत्रैलोक्येसत्त्ववर्जिते । देवान्प्रतिबलोद्योगंचक्रुर्दैतेयदानवाः ॥ २४ ॥
विजितास्त्रिदशादैत्यैरिंद्राद्याः शरणंययुः । पितामहंमहाभागंहुताशनपुरोगमाः ॥२५ ॥
यथावत्कथितेदेवैर्ब्रह्माप्राहतथासुरान् । क्षीरोदस्योत्तरंकूलंजगामसहितःसुरैः ॥ २६ ॥
गत्वाजगादभगवान्वासुदेवंपितामहः । उत्तिष्ठविष्णोशीघ्रंत्वंदेवतानांहितंकुरु ॥ २७ ॥
त्वयाविनादानवैस्तुजिताःसर्वेपुनःपुनः । इत्युक्तःपुंडरीकाक्षःपुरुषःपुरुषोत्तमः ॥ २८ ॥
अपूर्वरूपसंस्थानान्दृष्ट्वादेवानुवाचह । तेजसोभवतांदेवाः करिष्याम्युपबृंहणम् ॥ २९ ॥
वदाम्यहंयत्क्रियतांभवद्भिस्तदिदंसुराः । आनीयसहितादैत्यैः क्षीराब्धौसकलौषधीः ॥

मंथानंमंदरंकृत्वानेत्रंकृत्वाचवासुकिम् । मथ्यताममृतंदेवाः सहाये मय्यवस्थिते ॥३१॥
सामपूर्वंचदैतेयांस्तत्रसम्भाष्यकर्मणि । समानफलभोक्तारोयूयंचात्रभविष्यथ ॥ ३२ ॥
मथ्यमानेचतत्राब्धौयत्समुत्पद्यतेऽमृतम् । तत्पानाद्बलिनोयूयममराः संभविष्यथ ॥
तथैवाहंकरिष्यामियथात्रिदशविद्विषः । नप्राप्स्यंत्यमृतंदेवाः केवलंक्लेशभागिनः ॥ ३४
इत्युक्तादेवदेवेनसर्वएवततःसुराः । संधानमसुरैः कृत्वायत्नवन्तोऽमृतेभवन् ॥ ३५ ॥
सर्वौषधीः समानीयदेवदैतेयदानवाः । क्षिप्त्वाक्षीराब्धिपयसिशरदभ्रामलत्विषि ॥ ३६
मंथानंमंदरंकृत्वानेत्रंकृत्वाचवासुकिम् । ततो मथितुमारब्धाराजेंद्रतरसामृतम् ॥ ३७ ॥
विबुधाःसहिताःसर्वेयतःपुच्छंततः स्थिताः । विष्णुनावासुकेर्दैत्याःपूर्वकायनिवेशिताः ॥
तेतस्यप्राणवातेनवह्निनाचहतत्विषः । निस्तेजसोऽसुराःसर्वेबभूवुरमरद्युते ॥ ३९ ॥
तेनैवमुखनिःश्वासवायुनाथबलाहकैः । पुच्छप्रदेशेवर्षद्भिस्तदाचाप्ययिताःसुराः ॥ ४० ॥
क्षीरोदमध्येभगवान्ब्रह्माब्रह्मविदांवरः । महादेवोमहातेजाविष्णुपृष्ठनिवासिनौ ॥ ४१ ॥
बाहुभ्यांमंदरंगृह्यपद्मवत्सपरंतपः । शृंखलेचतदाकृत्वागृहीत्वामंदराचलम् ॥ ४२ ॥
देवानांदानवानांचबलमध्येव्यवस्थितः । क्षीरोदमध्येभगवान्कूर्मरूपीस्वयंहरिः ॥ ४३ ॥
अन्येनतेजसादेवानुपबृंहितवान्हरिः । मथ्यमानेततस्तस्मिन्क्षीराब्धौदेवदानवैः ॥४४ ॥
हविर्धान्यभवत्पूर्वंसुरभिःसुरपूजिता । जग्मुर्मुदंतदादेवादानवाश्चमहामते ॥ ४५ ॥
व्याक्षिप्तचेतसःसर्वेबभूवुस्तिमितेक्षणाः । किमेतदितिसिद्धानांदिविचिंतयतांतदा ॥४६॥
बभूववारुणीदेवीमदाघूर्णितलोचना । कृतावर्त्तात्ततस्तस्मात्प्रस्खलंतीपदेपदे ॥ ४७ ॥
एकवस्त्रामुक्तकेशीरक्तांतस्तब्धलोचना । अहंबलप्रदादेवीमांवागृह्णन्तुदानवाः ॥ ४८ ॥
अशुचिंवारुणींमत्वात्यक्तवंतस्तदासुराः । जगृहुस्तांतदादैत्याग्रहणान्तेसुराभवन् ॥४९॥
मंथनेपारिजातोऽभूद्देवश्रीनन्दनोद्रुमः । रूपौदार्य्यगुणोपेतास्ततश्चाप्सरसांगणाः ॥५०॥
षष्टिकोट्यस्तदाजातास्सामान्यादेवदानवैः । सर्वास्ताःकृतपूर्वास्तुसामान्याःपुण्यकर्मणा
ततः शीतांशुरभवद्देवानांप्रीतिदायकः । ययाचेशंकरोदेवोजटाभूषणकृन्मम ॥ ५२ ॥
भविष्यतिनसंदेहोगृहीतोऽयंमयाशशी । अनुमेनेचतंब्रह्माभूषणायहरस्यतु ॥ ५३ ॥
ततोविषंसमुत्पन्नंकालकूटंभयावहम् । तेनचेवार्दितास्सर्वेदानवाःसहदैवतैः ॥ ५४ ॥

महादेवेनतत्पीतंविषंगृह्ययदृच्छया । तस्यपानान्नीलकंठस्तदाजातोमहेश्वरः ॥ ५५ ॥
पीतावशेषंनागास्तुक्षीराब्धेस्तुसमुत्थितम् । ततोधन्वंतरिर्जातःश्वेतांबरधरःस्वयम् ॥५६
बिभ्रत्कमंडलुंपूर्णममृतस्यसमुत्थितः । ततःस्वस्थमनस्कास्तेवैद्यराजस्यदर्शनात् ॥५७॥
ततश्चाश्वःसमुत्पन्नोनागश्चैरावतस्तथा । ततःस्फुरत्कांतमतिविकासिकमलेस्थिता ॥
श्रीर्देवीपयसस्तस्मादुत्थिताधृतपंकजा । तांतुष्टुवुर्मुदायुक्ताःश्रीसूक्तेनमहर्षयः ॥ ५९ ॥
विश्वावसुमुखास्तस्यगंधर्वाःपुरतोजगुः । घृताचीप्रमुखास्तत्रननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥६०
गंगाद्याः सरितस्तोयैः स्नानार्थमुपतस्थिरे । दिग्गजाहेमपात्रस्थमादाय विमलंजलम् ॥
स्नापयांचक्रिरेदेवीं सर्वलोकमहेश्वरीम् । क्षीरोदस्तु स्वयंतस्यै मालामम्लानपंकजाम् ॥
ददौविभूषणान्यंगे विश्वकर्माचकारह । दिव्यमाल्यांबरधरां स्नातां भूषणभूषिताम् ॥
इन्द्राद्याश्चामरगणा विद्याधरमहोरगाः । दानवाश्चमहादैत्याराक्षसाः सह गुह्यकैः ॥
कन्याममभिलषन्तिस्म ततो ब्रह्माउवाचह । वासुदेव त्वमेवैनांमयादत्तां गृहाणवै ॥ ६५ ॥
देवाश्च दानवाश्चैवप्रतिषिद्धामयात्विह । तुष्टोऽहंभवतस्तावदलौल्येनेहकर्मणा ॥ ६६ ॥
सातुश्रीर्ब्रह्मणाप्रोक्तादेविगच्छस्व केशवम् । मयादत्तंपतिंप्राप्यमोदस्वशाश्वतीःसमा ॥
पश्यतांसर्वदेवानां गता वक्षस्थलं हरेः । ततोवक्षस्थलंप्राप्यदेवंवचनमब्रवीत् ॥ ६८ ॥
नाहंत्याज्यासदादेव सदैवादेश कारिणी । वक्षस्थलेनिवत्स्यामि सर्वस्य जगतःप्रिय ॥
ततोऽवलोकितादेवा विष्णुवक्षस्थलस्थया । लक्ष्म्याराजेन्द्रसहसापरांनिर्वृतिमागताः ॥
उद्वेगंचपरंजग्मुर्दैत्याविष्णुपराङ्मुखाः । त्यक्तास्तुदानवालक्ष्म्याविप्रचित्तिपुरोगमाः॥
ततस्तेजगृहुर्दैत्याधन्वन्तरिकरस्थितम् । अमृतंतन्महावीर्य्यादैत्याः पापसमन्विताः ॥
माययालोभयित्वातुविष्णुःस्त्रीरूपसंश्रयः । आगत्यदानवान्प्राह दीयतांमेकमंडलुः ॥
युष्माकंवशगाभूत्वास्थास्यामिभवतांगृहे । तांदृष्ट्वारूपसम्पन्नांनारींत्रैलोक्यसुन्दरीम् ॥
प्रार्थयानास्तुवपुषंलोभोपहतचेतसः । दत्त्वाऽमृतंतदातस्यैततोऽपश्यन्ततेऽग्रतः ॥ ७५ ॥
दानवेभ्यस्तदादायदेवेभ्यःप्रददेऽमृतम् । ततःपपुःसुरगणाः शक्राद्यास्तत्तदामृतम् ॥७६॥
उद्यतायुधनिस्त्रिंशादैत्यांस्तांस्तेसमभ्ययुः । पीतेऽमृते च बलिभिर्जितादैत्यचमूस्ततः ॥
वध्यमानादिशोभेजुः पातालंविविशुश्च ते । ततोदेवामुदायुक्ताः शंखचक्रगदाधरम् ॥७८॥

प्रणिपत्ययथापूर्वंप्रययुस्तेत्रिविष्टपम् । ततः प्रभृतितेभीष्म स्त्रीलोलादानवाभवन् ॥७९
अपध्यातास्तुकृष्णेनगतास्तेतुरसातलम् । ततः सूर्यःप्रसन्नाभःप्रययौस्वेनवर्त्मना ॥८०॥
जज्वालभगवाञ्छोच्चैश्चारुदीप्तिर्हुताशनः । धर्मेचसर्वभूतानांतदामतिरजायत ॥ ८१ ॥
श्रियायुक्तं च त्रैलोक्यंविष्णुनाप्रतिपालितं । देवास्तुतेतदाप्रोक्ताब्रह्मणालोकधारिणा ॥
भवतांरक्षणार्थायमयाविष्णुर्नियोजितः । उमापतिश्चदेवेशोयोगक्षेमं करिष्यतः ॥ ८३ ॥
उपास्यमानौसततंयुष्मत्क्षेमकरौयतः । ततःक्षेम्यौसदाचैतौ भविष्येतेवरप्रदौ ॥ ८४ ॥
एवमुक्त्वातुभगवाञ्जगामगतिमात्मनः । अदर्शनंगतेदेवे सर्वलोकपितामहे ॥ ८५ ॥
देवलोकंगतेशक्रेस्वंलोकंहरिशंकरौ । प्राप्तौतुतत्क्षणाद्देवौस्थानंकैलासमेवच ॥ ८६ ॥
ततस्तुदेवराजेनपालितंभुवनत्रयम् । एवंलक्ष्मीर्महाभागाउत्पन्नाक्षीरसागरात् ॥ ८७ ॥
पुनः ख्यात्यांसमुत्पन्नाभृगोरेषासनातनी । श्रियासहसमुत्पन्नाभृगुणाचमहर्षिणा ॥
स्वनाम्नानगरीचैवकृतापूर्वंसरित्तटे । नर्मदायांमहाराज ब्राह्मणाचानुमोदिता ॥ ८९ ॥
लक्ष्मीःपुरंस्वपित्रेस्वंसहकुञ्चिकयाऽर्प्यच । आगतादेवलोकंसाऽयाचतागत्यवैपुनः ।९०।
लोभान्नदत्तांतुपरंप्रार्थनायांयदापुनः । भृगोःसकाशान्नावापतदाचैवाहकेशवम् ॥ ९१ ॥
परिभूतातुमित्राहंगृहीतंनगरंमम । तस्यहस्तात्त्वमाक्षिप्यपुरंतच्चानयस्वयम् ॥ ९२ ॥
तंगत्वापुण्डरीकाक्षोदेवश्चक्रगदाधरः । भृगुंसानुनयंप्राहकन्यायैपुरमर्पय ॥ ९३ ॥
कुञ्चिकातालिकेचोभेदीयेतां च प्रसादतः । भृगुस्तंकुपितःप्राहनार्पयिष्याम्यहंपुरम् ।९४।
नलक्ष्म्यास्तत्पुरंदेवमयाचेदंस्वयंकृतम् । भगवन्नैवदास्यामित्यजाक्षेपंतुकेशव ॥ ९५ ॥
तंप्राहदेवोभूयोऽपिलक्ष्म्यास्तत्पुरमर्पय । सर्वथातुत्वयात्याज्यंवचनान्मेमहामुने ॥९६॥
ततःकोपसमाविष्टोभृगुरप्याहकेशवम् । पक्षपातेनमांसाध्वोभार्यायाबाधसेऽधुना ॥९७॥
नृलोकेदशजन्मानिलप्स्यसेमधुसूदन । भार्यायास्तेवियोगेनदुःखान्यनुभविष्यसि ॥९८॥
एवंशापंददौतस्मैभृगुःपरमकोपनः । विष्णुनाचपुनस्तस्यदत्तःशापोमहात्मना ॥ ९९ ॥
नचापत्यकृतांप्रीतिंप्राप्स्यसेमुनिपुंगव । शापंदत्त्वाऋषेस्तस्यब्रह्मलोकंजगामह ॥१००॥
पद्मजन्मानमाहेदंदृष्ट्वादेवस्तुकेशवः । भगवंस्तवपुत्रोसौभृगुःपरमकोपनः ॥ १०१ ॥
निष्कारणंचतेनाहंशप्तोजन्मानिमानुषे । लप्स्यसेदशधात्वंहिततोदुःखान्यनेकशः ।१०२।

भार्यानियोगजापीडाबलपौरुषनाशिनी । त्यक्त्वाचाहमिमंलोकंशयिष्ये च महोदधौ ॥
देवकार्येषुसर्वेषुपुनश्चावाहनंक्रियाः । तथाब्रुवंतंतंदेवंब्रह्मालोकगुरुस्तदा ॥ १०४ ॥
प्रसादनार्थं विष्णोस्तुस्तुतिमेतांचकारह । त्वयासृष्टंजगदिदंपद्मं नाभौविनिःसृतम् ॥
तत्र चाहं समुत्पन्नस्तव वश्यश्च केशव ॥ १०५ ॥
त्वंत्रातासर्वलोकानांस्रष्टात्वंजगतःप्रभो । त्रैलोक्यंनत्वयात्याज्यमेषएववरोमम ।१०६।
दशजन्ममनुष्येषुलोकानांहितकाम्यया । स्वयंकर्त्तानतेशक्तःशापदानायकोपिवा ।१०७।
कोऽयंभृगुःकथंतेनशक्यंशप्तुंजनार्दन । मानयस्वसदाविप्रान्ब्राह्मणास्तेतनुस्स्वयम् ॥
योगनिद्रामुपास्वत्वंक्षीराब्धौस्वपिहीश्वर । कार्यकालेपुनस्त्वांतुबोधयिष्यामिमाधव ॥
भगवन्नेषतावत्तुत्वच्छक्त्याचोपबृंहितः । सर्वकार्यकरःशक्रस्तवैवांशेनशत्रुहा ॥ ११० ॥
त्रैलोक्यंपालयन्नेवत्वदाज्ञांसकरिष्यति । एवंस्तुतस्तदाविष्णुर्ब्रह्माणमिदमुक्तवान् ॥
सर्वमेतत्करिष्यामियन्मांज्ञापयसेप्रभो । अदर्शनंगतोदेवोब्रह्मातंनाभिजज्ञिवान् ॥११२॥
गतेदेवेतदाविष्णौब्रह्मालोकपितामहः । भूयश्चकारवैसृष्टिंलोकानांप्रभवःप्रभुः॥ ११३ ॥
तंदृष्ट्वानारदःप्राहवाक्यंवाक्यविदांवरः । सहस्रशीर्षापुरुषःसहस्राक्षःसहस्रपात् ॥
सर्वव्यापी भुवःस्पर्शादध्यतिष्ठद्दशांगुलम् ॥ ११४ ॥
यद्भूतंयच्चवैभाव्यंसर्वमेवभवान्यतः । ततोविश्वमिदंतातत्वत्तोभूतं भविष्यति ॥११५॥
त्वत्तोयज्ञःसर्वहुतः पृषदाज्यंपशुर्द्विधा । ऋचस्त्वत्तोऽथसामानित्वत्तएवाभिजज्ञिरे ॥
त्वत्तोयज्ञास्त्वजायंतत्वत्तोऽश्वाश्चैवदंतिनः, गावस्त्वत्तःसमुद्भूताःत्वत्तोजातावयोमृगाः
त्वन्मुखाद्ब्राह्मणाजातास्त्वत्तःक्षत्रमजायत । वैश्यास्तवोरुजाःशूद्रास्तवपद्भ्यांसमुद्गताः
अक्ष्णोःसूर्योऽनिलःश्रोत्राच्चंद्रमामनसस्तव । प्राणोंतःसुषिराज्जातोमुखादग्निरजायत ॥
नाभितोगगनंद्यौश्चशिरसःसमवर्त्तत । दिशःश्रोत्रात्क्षितिःपद्भ्यांत्वत्तःसर्वमभूदिदम् ॥
न्यग्रोधःसुमहानल्पे यथाबीजेव्यवस्थितः । ससर्ज्जविश्वमखिलंबीजभूतेतथात्वयि ॥
बीजांकुरसमुद्भूतोन्यग्रोधः समुपस्थितः । विस्तारंचयथायातित्वत्तः सृष्टौतथाजगत्
यथाहिकदलीनान्यांत्वक्पत्रेभ्योऽभिदृश्यते । एवंविश्वमिदंनान्यत्त्वत्स्थमीश्वरदृश्यते ॥
ह्लादिनीत्वयिशक्तिस्साल्वय्येकासहभाविनी । ह्लादतापकरीमिश्रात्वयिनोगुणवर्जिते ॥

पृथग्भूतैकभूतायसर्वभूतायतेनमः । व्यक्तंप्रधानपुरुषोविराट्सम्राट्तथाभवान् ॥१२५॥
सर्वस्मिन्सर्वभूतस्त्वंसर्वःसर्वस्वरूपधृक् । सर्वंत्वत्तःसमुद्भूतंनमः सर्वात्मनेततः ॥१२६
सर्वात्मकोऽसिसर्वेशसर्वभूतस्थितोयतः । कथयामिततः किंतेसर्वंवेत्सिहृदिस्थितम् ॥
यो मे मनोरथो देव सफलः स त्वया कृतः । ततंसुतमंसफलंयद्दृष्टोऽसिजगत्पते ॥१२८॥

ब्रह्मोवाच

तपसस्तत्फलंपुत्रयद्दृष्टोहंत्वयाधुना । मद्दर्शनं हि विफलं नारदेह न जायते ॥ १२९ ॥
वरंवरयतस्मात्त्वंयथाभिमतमात्मनः । सर्वं संपद्यते तात मयि दृष्टिपथंगते ॥ १३० ॥

नारद उवाच

भगवन्सर्वभूतेशसर्वस्यास्तेभवान्हृदि । किमज्ञातंतवस्वामिन्मनसायन्मयेप्सितम् ॥
कृतात्वयायथासृष्टिर्मयादृष्टातथाविभो । तेनमेकौतुकंजातंदृष्टादेवर्षिदानवान् ॥ १३२ ॥

पुलस्त्य उवाच

नारदस्यपितातुष्टोब्रह्मादेवोदिवस्पतिः । नारदायवरंप्रादादृषीणामुत्तमोभवान् ॥ १३३ ॥
भवितामत्प्रसादेनकलिकेलिकथाप्रियः । गतिश्चतेऽप्रतिहतादिविभूमौरसातले ॥ १३४ ॥
यज्ञोपवीतसूत्रेणयोगपट्टावलंबिका । छत्रिकाचतथावीणाअलंकारायतेऽनघ ॥ १३५ ॥
विष्णोः समीपे रुद्रस्यतथाशक्रस्यनारद । द्वीपेषुपार्थिवानांतुसदाप्रीतिंचलप्स्यसे ॥
वर्णानांतुभवान्शास्तावरोदत्तोमयातव । तिष्ठपुत्रयथाकामंसेव्यमानःसुरैर्दिवि ॥ १३७

इतिश्रीपाद्मपुराणेप्रथमेसृष्टिखण्डे लक्ष्म्युत्पत्तिर्नामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ।

दक्षयज्ञविध्वंसकथानकम् ।

भीष्म उवाच ।

कथंसतीदक्षसुतादेहंत्यक्तवतीशुभा । दक्षयज्ञस्तुरुद्रेणविध्वस्तःकेनहेतुना ॥ १ ॥
एतन्मेकौतुकंब्रह्मन्कथंदेवोमहेश्वरः । जगामाथक्रोधवशंत्रिपुरारिर्महायशाः ॥ २ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

गंगाद्वारेपुराभीष्मदक्षोयज्ञमथारभत् । तत्रदेवासुरगणाःपितरोऽथमहर्षयः ॥ ३ ॥

समाजग्मुर्मुदायुक्ताः सर्वेदेवाःसवासवाः । नागायक्षाःसुपर्णाश्चवीरुदोषधयस्तथा ॥ ४

कश्यपोभगवानत्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः । प्रचेतसोंगिराश्चैववसिष्ठश्चमहातपाः ॥ ५

तत्रवेदींसमांकृत्वाचातुर्होत्रंन्यवेशयत् । होतावसिष्ठस्तत्रासीदंगिराध्वर्युसत्तमः ॥ ६ ॥

बृहस्पतिरथोद्गाताब्रह्मावैनारदस्तथा । यज्ञकर्मप्रवृत्तौ तु हूयमानेषु चाग्निषु ॥ ७ ॥

आगतावसवः सर्वं आदित्याद्वादशैवतु । अश्विनौमरुतश्चैवमनवश्चचतुर्दश ॥ ८ ॥

एवंयज्ञेप्रवृत्तेतुहूयमानेषुचाग्निषु । विभूतितांपरांतत्रभक्ष्यभोज्यकृतांशुभाम् ॥ ६ ॥

आलोक्यसर्वतोभूमिंसमंताद्दशयोजनम् । महावेदीकृतातत्रसर्वैस्तत्रसमन्वितैः ॥ १० ॥

सर्वान्देवान्शक्रमुख्यान्यज्ञेदृष्ट्वासतीशुभा । तदासानुनयंवाक्यंप्रजापतिमभाषत ॥ ११ ॥

सत्युवाच ।

ऐरावतंसमारूढो देवराजः शतक्रतुः । पत्न्याशच्यासहायातः कृतावासःशतक्रतुः ॥१२॥

पापानांयोयमयिताधर्मेणाधर्मिणांप्रभुः । पत्न्याधूमोर्णया सार्द्धमिहायातःसदृश्यते ॥१३

यादसाञ्चपतिर्देवोवरुणोलोकभावनः । गौर्य्यापत्न्यासहायातः प्रचेतामंडपेत्विह ॥ १४

सर्वयक्षाधिपोदेवः पुत्रोविश्रवसोमुनेः । पत्न्यात्विहसमायातः सहदेव्याधनाधिपः ॥१५

मुखं यः सर्वदेवानांजंतूनामुदरेस्थितः । वेदायदर्थमुत्पन्नास्सोयंयज्ञमुपागतः ॥ १६ ॥

निर्ऋतीराक्षसेन्द्रोऽसौदिक्पतित्वेनियोजितः । सचत्विहागतस्तातपत्न्यासार्द्धंकृताविह

आयुःप्रदोजगत्यस्मिन्ब्रह्मणानिर्मितःपुरा । प्राणोऽपानोव्यानउदानस्समानाह्वयस्तथा ॥

एकोनपंचाशत्केनगणेनपरिधारितः । यज्ञेप्रजापतिश्चासौवायुर्देवः समागतः ॥ १६ ॥

द्वादशात्माग्रहाध्यक्षः चक्षुषी जगतस्त्विह । पातिवैभुवनंसर्वंदेवानां यः परायणः ॥२०

आयुषश्चवनानांचदिवसानांपतिर्हियः । संज्ञापतिरिहायातो भास्करोलोकपावनः ॥२१

अत्रिवंशसमुद्भूतोद्विजराजोमहायशाः । नयनानंदजननोलोकनाथोधरातले ॥ २२ ॥

ओषधीनांपतिश्चापिवीरुधामपिसर्वशः । उडुनाथः सपत्नीकइहायातः शशीत्वच ॥ २३ ॥

वसवोऽष्टौसमायाताअश्विनौचसमागतौ । वृक्षोवनस्पतिश्चापिगंधर्वाप्सरसांगणाः ॥

विद्याधराभूतसंघावेताला यक्षराक्षसाः । पिशाचाश्चोग्रकर्माणस्तथान्येजीवहारकाः ॥
नद्योनदाः समुद्राश्च द्वीपाश्चसहपर्वतैः । ग्राम्यारण्याश्चपशवोयदिङ्गंयच्चनेङ्गति ॥ २६ ॥
कश्यपोभगवानत्रिर्वसिष्ठश्चापरैःसह । पुलस्त्यःपुलहश्चैवसनकाद्यामहर्षयः ॥ २७ ॥
पुण्याराजर्षयश्चैवपृथिव्यांयेचपार्थिवाः । वर्णाश्चाश्रमिणश्चैवसर्वेयेकर्मकारिणः ॥ २८
किमत्रबहुनोक्तेनब्राह्मीसृष्टिरिहागता । भगिन्योभागिनेयाश्चभगिनीपतयस्त्विमे ॥ २९॥
स्वभार्यासहिताःसर्वेसपुत्रास्सहबांधवाः । त्वयासमर्चिताःसर्वेदानमानपरिग्रहैः॥ ३० ॥
आमंत्रणामंत्रितानांसर्वेषांमाननाकृता । एकएवात्रभगवान्पतिर्मे न समागतः ॥ ३१ ॥
विनातेनत्विदंसर्वंशून्यवत्प्रतिभातिमे । मन्येचाहंतुभवता पतिर्मे न निमंत्रितः ॥ ३२ ॥
विस्मृतस्ते भवेन्नूनं सर्वं शंसतु मे भवान् ।

पुलस्त्य उवाच ।

तस्यास्तदुक्तं वचनं श्रुत्वा दक्षः प्रजापतिः ॥ ३३ ॥
पतिस्नेहसमायुक्तांप्राणेभ्योऽपिगरीयसीम् । अंकमारोप्यतांबालांसाध्वींपतिपरायणाम्
पतिव्रतांमहाभागांपतिप्रियहितैषिणीम् । प्राहगंभीरभावेनशृणुवत्से यथातथम् ॥ ३५ ॥
येनाद्यकारणेनेहपतिस्ते न निमंत्रितः । कपालपात्रधृक्चर्मीभस्मावृततनुस्तथा ॥ ३६ ॥
शूलीमुण्डीचनग्नश्चश्मशानेरमतेसदा । विभूत्याङ्गानिसर्वाणिपरिमार्ष्टिचनित्यशः ॥ ३७
व्याघ्रचर्मपरीधानोहस्तिचर्मपरिच्छदः । कपालमालांशिरसिखट्वांगंचकरेस्थितम् ॥३८
कक्ष्यांवैगोनसंबध्वालिंगेऽस्थ्नांवलयंतथा । पन्नगानांतुराजानमुपवीतंचवासुकिम् ॥
कृत्वाभ्रमतिचानेनरूपेणसततंक्षितौ । नग्नागणाःपिशाचाश्चभूतसंहाह्यनेकशः ॥ ४० ॥
त्रिनेत्रश्चत्रिशूलीचगीतनृत्यरतस्सदा । कुत्सितानि तथान्यानिसदातेकुरुतेपतिः ॥ ४१ ॥
त्रपाकरोभवेन्मह्यं देवानांसंनिधिःकथम् । कीदृक्चवसनंतस्यकेतनंप्रतिनार्हति ॥ ४२ ॥
एतैर्दोषैर्मयावत्सेलोकानांचैवलज्जया । नाह्वानंतुकृतंतस्यकारणेनमयासुते ॥ ४३ ॥
यज्ञस्यास्यसमाप्तौतुपूजांकृत्वात्वयासह । आनीयतवभर्तारंत्वयासहत्रिलोचनम् ॥४४॥
त्रैलोक्यस्याधिकांपूजांकरिष्यामिचसत्कृतैः । एतत्तेसर्वमाख्यातंत्रपायाःकारणंमहत् ॥
नात्रमन्युस्त्वयाकार्यः सर्वस्वं भागमर्हति । अन्यजन्मनियैर्यादृक्कृतंकर्मशुभाशुभम् ॥४६

इहजन्मनितेतादृक्पुत्रिकेभुञ्जते फलम् । परितापंमाकृथास्त्वंफलंभुंक्ष्वपुराकृतम् ॥४७॥
श्रियंपरगतां दृष्ट्वारूपसौभाग्यशोभनाम् । रूपंचकांतिसौभाग्यंरम्याण्याभरणानिच ॥४८
कुलेमहतिवैजन्मवपुश्चातीवसुन्दरम् । पूर्वभाग्यैस्तुलभ्यंते नरैरेतानिसुव्रते ॥ ४६ ॥
मात्मानंपरिनिंदेथामाचभाग्यानिसुव्रते । फलंचैवंविधिकृतंदातुंकस्यतुकःक्षमः ॥ ५० ॥
नास्तित्रैबलवान्कश्चिन्नमूढो न च पण्डितः । पांडित्यंचबलंचैवजायतेपूर्वकर्मणा ॥५१
एतेदेवादिवंप्राप्ताः शोभमानाःस्थिताश्चिरम् । पुण्येनतपसाचैवक्षेत्रेषुविविधेषु च ॥५२॥
यदेभिरर्जितंपुण्यंतस्यैतेफलभागिनः । एवमुक्ता ततः सा तु सती भीष्म रुषान्विता ॥
विनिंदमानापितरंकोपेनारुणितेक्षणा । एवमेतद्यथातात त्वयाचोक्तंममाग्रतः ॥ ५४ ॥
सर्वोजनः पुण्यभागी पुण्येनलभतेश्रियम् । पुण्येनलभतेजन्मपुण्येभोगाः प्रतिष्ठिताः ॥५५
तदयंजगतामीशःसर्वेषामुत्तमोत्तमः । स्थानान्येतानिसर्वेषांदत्तान्येतेनधीमता ॥ ५६ ॥
येगुणास्तस्यदेवस्यवक्तुंजिह्वापिवेधसः । नशक्ता व्यापनेतस्यदेवस्यपरमेष्ठिनः ॥ ५७ ॥
भस्मास्थिचकपालानिश्मशानेवसतिस्तथा । गोनसाद्याश्चयेसर्पाः सर्वेतेभूषणीकृताः ॥
भूतप्रेतागणास्तस्यपिशाचागुह्यकास्तथा । एषधाताविधाताचएषपालयितादिशः ॥५६॥
प्रसादेनचरुद्रस्यप्राप्तःस्वर्गः पुरंदरः । यदिरुद्रेऽस्तिदेवत्वंयदिसर्वगतः शिवः ॥ ६० ॥
सत्येनतेनतेयज्ञंविध्वंसयतुशंकरः । यद्यस्तिमेतपःकिंचित्कश्चिद्धर्मोऽथवाकृतः ॥ ६१ ॥
फलेनतस्यधर्मस्ययज्ञस्तेनाशमर्हति । प्रियाहंयदिदेवस्ययदिमांतारयिष्यति ॥ ६२ ॥
तेनसत्येनतेगर्वःसमाप्तिमभिगच्छतु । इत्युक्त्वायोगमास्थायस्वदेहस्थेनतेजसा ॥ ६३ ॥
निर्ददाहतदात्मानंसदेवासुरपन्नगैः । किंकिमेतदितिप्रोक्तेगंधर्वगणगुह्यकैः ॥ ६४ ॥
गंगाकूलेतदामुक्तोदेहोवैक्रुद्धयातया । शौनकंनामतत्तीर्थंगंगायाः पश्चिमेतटे ॥ ६५ ॥
श्रुत्वारुद्रस्तुतद्वार्तां पत्न्यानाशसुदुःखितः । हंतुंयज्ञंधीरभवत्देवानामिहपश्यताम् ॥ ६६
गणकोटिःसमादिष्टाग्रहावैनायकास्तथा । भूतप्रेतपिशाचाश्चदक्षयज्ञविनाशने ॥ ६७ ॥
तैर्गत्वाविबुधास्सर्वेयज्ञेनिर्जित्यनाशिताः । हतेयज्ञेतदादक्षोनिरुत्साहोनिरुद्यमः ॥ ६८ ॥
उपगम्याब्रवीत्त्रस्तोदेवदेवंपिनाकिनम् । नज्ञातोऽसिमयादेवदेवानांप्रभुरीश्वरः ॥६६॥
त्वमस्यजगतोऽधीशःसुरास्सर्वेत्वयाजिताः । कृपांकुरुमहेशानगणान्सर्वान्निवर्त्तय ॥

गणैर्नानाविधैर्घोरैर्नानाभूषणभूषितैः । नानावदनदंतौष्ठैर्नानाप्रहरणोद्यतैः ॥ ७१ ॥
नानानागेंद्रसंदष्टजटाभारोपशोभितैः । सुदृढोद्धतदर्पाढ्यैर्घोरैर्घोरनिघातिभिः ॥ ७२ ॥
कामरूपैरकान्तैश्चसर्वकामसमन्वितैः । अनिवार्यबलैश्चोग्रैर्योगिभिर्योगगामिभिः ॥७३॥
व्यालोलकेसरजटैर्दंष्ट्रोत्कटहसन्मुखैः । करींद्रकरटाटोपपाटवैःसिंहदेहिभिः ॥ ७४ ॥
केचित्परमदाघ्राणघूर्णद्वीपसमप्रभैः । विचित्रचित्रवसनैर्घोरैर्घोरखरादिभिः ॥ ७५ ॥
मृगव्याघ्रसिंहरुरुस्तरक्ष्वजिनधारिभिः । भुजंगहारवलयकृतयज्ञोपवीतकैः ॥ ७६ ॥
शूलासिपट्टिशधरैःपरशुप्रासहस्तकैः । वज्रककचकोदंडकालदंडास्त्रपाणिभिः ॥ ७७ ॥
गणेश्वरैःसुदुर्द्धर्षैवृतःसूर्योग्रहैरिव । देवदेवमहादेवनष्टोयज्ञोदिवंगतः ॥ ७८ ॥
मृगरूपधरोभूत्वाभयभीतस्तुशंकर । नमः शङ्कभदेवाय सगणाय सनंदिने ॥ ७९ ॥
वृषासनायसोमायक्रतुकालांतकायच । नमोदिक्चर्मवस्त्रायनमस्तेतीव्रतेजसे ॥ ८० ॥
ब्रह्मणेब्रह्मदेहायब्रह्मण्यायामितायच । गिरिशायसुरेशायईशानायनमोनमः ॥ ८१ ॥
रुद्राय प्रतिवज्राय शिवाय क्रथनायच । सुरासुराधिपतये यतीनां पतये नमः ।
धूम्रोग्राय विरूपाय यज्वने घोररूपिणे ॥ ८२ ॥
विरूपाक्षशुभाक्षायसहस्राक्षायवैनमः । मुण्डाय चंडमुण्डाय वरखट्वाङ्गधारिणे ॥
कव्यरूपाय हव्याय सर्वसंहारिणे नमः ॥ ८३ ॥
भक्तानुकंपिनेऽत्यर्थं रुद्रजाप्यस्तुतायच । विरूपायसुरूपायरूपाणांशतकारिणे ॥ ८४ ॥
पंचास्यायशुभास्यायचन्द्रास्यायनमोनमः । वरदायवराहायकूर्मायचमृगायच ॥ ८५
लीलालकशिखंडायकमंडलुधरायच । विश्वनाम्नेऽथविश्वायविश्वेशायनमोनमः ॥८६॥
त्रिनेत्रत्राणमस्माकंत्रिपुघ्नविधीयताम् । वाङ्मनःकायभावैस्तुप्रपन्नस्यमहेश्वर ॥८७॥
एवंस्तुतस्तदादेवोदक्षेणापन्नदेहिना । दिव्येनानेनस्तोत्रेणभृशमाराधितस्तदा ॥ ८८ ॥
समग्रंतेयज्ञफलंमयादत्तंप्रजापते । सर्वकामप्रसिद्ध्यर्थंफलंप्राप्स्यस्यनुत्तमम् ॥ ८९ ॥
एवमुक्तोभगवताप्रणम्याथसुरेश्वरम् । जगामस्वनिकेतंतुगणानामेवपश्यताम् ॥ ९० ॥
पत्न्याःशोकेनवैदेवोगंगाद्वारेतदास्थितः । तांसतींचिंतयानस्तुकनुसामेक्रियागता ॥९१॥
तस्यशोकाभिभूतस्यनारदोभवसन्निधौ । सातेसतीयादेवेशभार्याप्राणसमामृता ॥९२॥

हिमवद्दुहितासाचमेनागर्भसमुद्भवा । जग्राह देहमन्यं सा वेदवेदार्थवेदिनी ॥ ६३ ॥
श्रुत्वादेवस्तदाध्यानमवतीर्णामपश्यत । कृतकृत्यमथात्मानंकृत्वादेवस्तदास्थितः ॥६४॥
संप्राप्तयौवनादेवीपुनरेवविवाहिता । एवंहिकथितंभीष्मयथायज्ञोहतःपुरा ॥ ६५ ॥
इतिश्रीपाद्मपुराणेप्रथमेसृष्टिखंडेदक्षयज्ञविध्वंसोनाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ।

दक्षात्प्राक्संकल्पदर्शनस्पर्शजन्या सृष्टिः ।

भीष्मउवाच

देवानांदानवानांचगंधर्वोरगरक्षसाम् । उत्पत्तिंविस्तरेणेमांगुरोब्रूहियथाविधि ॥ १ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

संकल्पाद्दर्शनात्स्पर्शात्पूर्वेषांसृष्टिरुच्यते । दक्षात्प्राचेतसादूर्ध्वंसृष्टिर्मैथुनसंभवा ॥ २ ॥
यथाससर्जचैवासौतथैवश्रृणुकौरव । यदातुसृजतस्तस्यदेवर्षिगणपन्नान् ॥ ३ ॥
नवृद्धिमगमल्लोकस्तदामैथुनयोगतः । दक्षःपुत्रसहस्राणितदासिक्न्यामजीजनत् ॥ ४ ॥
तांस्तुदृष्ट्वामहाभागान्सिसृक्षून्विविधाःप्रजाः । नारदःप्राहहर्यश्वान्दक्षपुत्रान्समागतान्
भुवःप्रमाणंसर्वंतुज्ञात्वोदूर्ध्वमधएववा । ततःसृष्टिंविशेषेणकुरुध्वमृषिसत्तमाः ॥ ६ ॥
तेतुतद्वचनंश्रुत्वाप्रयाताःसर्वतोदिशम् । अद्यापिननिवर्तंतेसमुद्रादिवसिंधवः ॥ ७ ॥
हर्यश्वेषुप्रणष्टेषुपुनर्दक्षःप्रजापतिः । वीरिण्यामेवपुत्राणांसहस्रमसृजत्प्रभुः ॥ ८ ॥
शबलाश्वानामतेचसमेताःसृष्टिकर्मणि । नारदोऽनुगतान्प्राहपुनस्तान्पूर्ववन्मुनिः ॥ ९ ॥
भुवःप्रमाणंसर्वंतुज्ञात्वाभ्रातॄनथोपुनः । आगत्यचपुनःसृष्टिंकरिष्यथविशेषतः ॥ १० ॥
तेऽपितेनैवमार्गेणजग्मुर्भ्रात्रनुगास्तदा । ततःप्रभृतिनभ्रातुःकनीयान्मार्गमिच्छति ॥११॥
अन्वेष्टादुःखमाप्नोतितेनतत्परिवर्जयेत् । ततस्तेष्वपिनष्टेषुषष्टिंकन्याःप्रजापतिः ॥ १२ ॥
वीरिण्यांजनयामसदक्षःप्राचेतसस्तदा । प्रादात्सदशधर्मायकश्यपायत्रयोदश ॥ १३ ॥

विंशतिसप्तसोमायचतस्रोऽरिष्टनेमिने । द्वेचैवभृगुपुत्रायद्वे कृशाश्वायधीमते ॥ १४ ॥
द्वे चैवांगिरसेप्रादात्तासांनामानिविस्तरात् । शृणुत्वंदेवमातॄणांप्रजाविस्तारमादितः ॥
अरुंधतीवसुर्जामिर्लम्बाभानुर्मरुत्वती । संकल्पाचमुहूर्ताचसाध्याविश्वाचभामिनी ॥
धर्मपत्न्यः समाख्यातास्तासां पुत्रान्निबोध मे
विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्या साध्यानजीजनत् ॥ १७ ॥
मरुत्वत्यांमरुत्वंतोवसोस्तुवसवस्तथा । भानोस्तुभानवोजातामुहूर्त्तायामुहूर्तजाः ॥१८
लंबायांघोषनामानोनागवीथीतुजामिजा । पृथिवीतलसंभूतमरुंधत्यामजायत ॥ १९ ॥
संकल्पायास्तुसंकल्पावसुसृष्टिनिधारय । ज्योतिष्मंतश्चयेदेवाव्यापकाःसर्वतोदिशम् ॥
वसवस्तेसमाख्यातास्तेषांनामानिमेशृणु । आपोध्रुवश्चसोमश्चधरश्चैवानिलोऽनलः ॥
प्रत्यूषश्चप्रभासश्चवसवोष्टौप्रकीर्तिताः । आपस्यपुत्राश्चत्वारःशांतोवैतण्डएवच ॥ २२ ॥
अपिशांतोमुनिर्बभ्रुर्यज्ञरक्षाधिकारिणः । ध्रुवस्यकालःपुत्रस्तुवर्चाः सोमादजायत ॥ २३
द्रविणोहव्यवाहश्चधरपुत्राविमौस्मृतौ । कल्पांतस्थस्ततःप्राणोरमणःशिशिरोऽपिच ॥
मनोहरोधवश्चाथशिवोवाथहरेःसुताः । शिवोमनोजवंपुत्रमविज्ञातगतिप्रदम् ॥ २५ ॥
अवापचानलःपुत्रानग्निप्रायगुणांस्ततः । तत्रशाखोविशाखश्च निगमेषुस्वयंभुवः ॥ २६ ॥
अपत्यंकृत्तिकानांचकार्तिकेयस्ततःस्मृतः । प्रत्यूषस्यऋभुःपुत्रोमुनिनामाथदेवलः ॥ २७ ॥
विश्वकर्माप्रभासस्यपुत्रःशिल्पीप्रजापतिः । प्रासादभवनोद्यानप्रतिमाभूषणादिषु ॥ २८ ॥
तटाकारामकूपेषुत्रिदशानांचवर्द्धकिः । अजैकपादहिर्बुध्न्योविरूपाक्षोऽथरैवतः ॥ २९ ॥
हरश्चबहुरूपश्चत्र्यंबकश्चसुरेश्वरः । सावित्रश्चजयंतश्चपिनाकीचापराजितः ॥ ३० ॥
एतेरुद्रास्समाख्याताएकादशगणेश्वराः । एतेषांमानसानांतुत्रिशूलवरधारिणाम् ॥ ३१ ॥
कोट्यश्चतुरशीतिस्तुतत्पुत्राश्चाक्षयामताः । दिक्षुसर्वासुयेरक्षांप्रकुर्वंतिगणेश्वराः ॥ ३२ ॥
एतेवैपुत्रपौत्राश्चसुरभीगर्भसंभवाः । कश्यपस्यप्रवक्ष्यामिपुत्रपौत्रादिपत्निषु ॥ ३३ ॥
अदितिर्दितिर्दनुश्चैवअरिष्टासुरसातथा । सुरभिर्विनताचैव ताम्राक्रोधवशाइरा ॥ ३४ ॥
कद्रुखसामुनिस्तद्वत्तासुपुत्रान्निबोधमे । तुषितानामयेदेवाश्चाक्षुषस्यांतरेमनोः ॥ ३५ ॥
वैवस्वतेऽतरेचैवआदित्याद्वादशस्मृताः । इन्द्रोधाताभगस्त्वष्टामित्रोऽथवरुणोऽर्यमा ॥

विवस्वान्सवितापूषाअंशुमान्विष्णुरेवच । एतेसहस्रकिरणाआदित्याद्वादशस्मृताः ॥३७॥
मारीचात्कश्यपाज्जाताः पुत्रास्तेऽदितिनंदनाः । कृशाश्वस्यऋषेःपुत्रादेवप्रहरणाःस्मृताः
एते देवगणास्तात प्रतिमन्वंतरेषु च । उत्पद्यंतेविलीयंतेकल्पेकल्पेतथैवच ॥ ३९ ॥
दितिः पुत्रद्वयं लेभेकश्यपादितिनःश्रुतम् । हिरण्यकशिपुंचैवहिरण्याक्षंतथैवच ॥ ४० ॥
हिरण्यकशिपोस्तद्वज्जातंपुत्रचतुष्टयम् । प्रह्लादश्चानुह्लादश्चसंह्लादोह्लादएवच ॥ ४१ ॥
प्रह्लादपुत्राआयुष्मान्शिबिर्बाष्कलिरेवच । विरोचनश्चतुर्थस्तुसबलिपुत्रमाप्तवान् ॥४२॥
बलेःपुत्रशतंत्वासीद्बाणज्येष्ठंततोनृप । धृतराष्ट्रस्तथासूर्य्योविवस्वानंशुतापनः ॥ ४३ ॥
निकुम्भनामागुर्वक्षःकुक्षिर्भीमोऽथभीषणः । एवमन्येतुबहवोबाणोज्येष्ठोगुणाधिकः ॥४४॥
बाणस्सहस्रबाहुस्तु सर्वास्त्रगुणसंयुतः । तपसातोषितोयस्यपुरेवसतिशूलधृत् ॥ ४५ ॥
महाकालत्वमगमत्साथ्र्यंयस्यपिनाकिनः । हिरण्याक्षस्यपुत्रोऽभूदंधकोनामनामतः ॥४६
भूतसंतापनश्चैवमहानागस्तथैवच । एतेभ्यःपुत्रपौत्राणांकोटयः सप्तसप्ततिः ॥ ४७॥
महाबलामहाकायानानारूपामहौजसः । दनुः पुत्रशतंलेभेकश्यपाद्वरदर्पितम् ॥ ४८ ॥
विप्रचित्तिःप्रधानोऽभूदेषांमध्येमहाबलः । द्विरष्टमूर्द्धाशकुनिस्तथाशंकुशिरोधरः ॥ ४९ ॥
अयोमुखःशंबरश्चकपिलोवामनस्तथा । मरीचिर्मागधश्चैवहरिर्गजशिरास्तथा ॥ ५० ॥
निद्राधरश्च केतुश्च केतुर्वीर्यः शतक्रतुः । इन्द्रमित्रग्रहश्चैव वज्रनाभस्तथैवच ॥ ५१ ॥
एकवक्त्रोमहाबाहुर्वज्राक्षस्तारकस्तथा । असिलोमापुलोमाचविकुर्वाणोमहासुरः ॥५२॥
स्वर्भानुर्वृषपर्वाचएवमाद्यादनोःसुताः । स्वर्भानोःसुप्रभाकन्याशचीचैवपुलोमजा ॥५३॥
उपदानवीमयस्यासीत्तथामन्दोदरीकुहूः । शर्मिष्ठासुन्दरीचैवचंडाचवृषपर्वणः ॥ ५४ ॥
पुलोमाकालकाचैववैश्वानरसुतेउभे । बह्वपत्योमहासत्वोमारीचस्यपरिग्रहः ॥ ५५ ॥
तयोःषष्टिसहस्राणिदानवानांपुराभवन् । पौलोमान्कालखंजांश्चमारीचोऽजनयत्पुरा ॥ ५६
अवध्यायेनराणांवैहिरण्यपुरवासिनः । चतुर्मुखाल्लब्धवरा ये हता विजयेन तु ॥ ५७ ॥
विप्रचित्तिः सिंहिकायांनवपुत्रानजीजनत् । हिरण्यकशिपोर्येवैभागिनेयास्त्रयोदश ॥५८
कंसःशंखश्चराजेंद्रनलोवातापिरेवच । इल्वलोनमुचिश्चैवखसृमश्चांजनस्तथा ॥ ५९ ॥
नरकःकालनाभश्चपरमाणुस्तथैवच । कल्पवीर्यश्चविख्यातोदनुवंशविवर्द्धनः ॥ ६० ॥

संह्रादस्यतुदैत्यस्यनिवातकवचाःकुले । अवध्याःसर्वदेवानांगंधर्वोरगरक्षसाम् ॥ ६१ ॥
येहताबलमाश्रित्यअर्जुनेनरणाजिरे । षट्कन्याजनयामासताम्रामारीचवीर्यतः ॥ ६२ ॥
शुकींश्येनींचभासींचसुगृध्रींगृध्रिकांशुचिम् । शुकीशुकानुलूकांश्चजनयामासधर्मतः ॥६३
श्येनीश्येनांश्चभासीचकुररानप्यजीजनत् । गृध्रीगृध्रान्सुगृध्रीचपारावतविहंगमान् ॥६४॥
हंससारसकारंडप्लवान्शुचिरजीजनत् । एतेताम्रासुताःप्रोक्ताविनतायानिशामय ॥६५॥
गरुडः पतगश्रेष्ठोऽरुणश्चेशःपतत्रिणाम् । सौदामिनीतथाकन्यायेयंनभसिविश्रुता ॥६६॥
संपातिश्चजटायुश्चअरुणस्यसुतावुभौ । संपातिपुत्रोबभ्रुश्चशीघ्रगश्चातिविश्रुतः ॥ ६७ ॥
जटायोः कर्णिकारश्चशतगामीचविश्रुतौ । तेषामसंख्यमभवत्पक्षिणांपुत्रपौत्रकम् ॥६८
सुरसायांसहस्रंतुसपार्णामभवत्पुरा । सहस्रशिरसांकद्रूःसहस्रं प्राप सुव्रता ॥ ६९ ॥
प्रधानास्तेषुविख्याताष्षड्विंशतिररिंदम । शेषवासुकिकर्कोटशंखैरावतकंबलाः ॥ ७० ॥
धनंजयमहानीलपद्माश्वतरतक्षकाः । एलापत्रमहापद्मधृतराष्ट्रबलाहकाः ॥ ७१ ॥
शंखपालमहाशंखपुष्पदंष्ट्रशुभाननाः । शंखरोमाचनहुषोरमणः पणिनस्तथा ॥ ७२ ॥
कपिलोदुर्मुखश्चापिपतंजलिमुखास्तथा । एषामनंतमभवत्सर्वेषांपुत्रपौत्रकम् ॥ ७३ ॥
प्रायशोयत्पुरादग्धंजनमेजयमंदिरे । रक्षोगणंक्रोधवशासुनामानमजीजनत् ॥ ७४ ॥
दंष्ट्रिणांनियुतंतेषांभीमसेनादगात्क्षयम् । दंष्ट्रिगोमायुकाकादीन्महिषीर्गोवराङ्गनाः ॥
सुरभिर्जनयामासकश्यापात्त्रितयंपुरा । मुनिर्मुनीनांचगणंगणमप्सरसांतथा ॥ ७६ ॥
तथाकिन्नरगंधर्वानरिष्टाजनयद्बहून् । तृणवृक्षलतागुल्ममिरासर्वमजीजनत् ॥ ७७ ॥
खसातुयक्षरक्षांसिजनयामासकोटिशः । एतेकश्यपदायादाःशतशोऽथसहस्रशः ॥ ७८॥
एष मन्वंतरे भीष्म सर्गःस्वारोचिषेस्मृतः । ततस्त्वेकोनपंचाशन्मरुतःकश्यपाद्दितिः ॥
जनयामास धर्मज्ञ सर्वानमरवल्लभान् ॥ ७९ ॥

इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

मरुदुत्पत्तिकथानकवर्णनम् ।

भीष्म उवाच ।

दितेःपुत्राःकथंजातामरुतोदेववल्लभाः । देवैर्जग्मुश्चसापत्नैः कस्मात्सख्यमनुत्तमम् ॥१॥

पुलस्त्य उवाच ।

पुरादैवासुरेयुद्धेहतेषुहरिणासुरैः । पुत्रपौत्रेषुशोकार्तागताभूलोकमुत्तमम् ॥ २ ॥

पुष्करेषुमहातीर्थेसरस्वत्यास्तटेशुभे । भर्तुराराधनपरा तप उग्रं चचारह ॥ ३ ॥

दितिर्वैदैत्यमातातुऋषिकार्येणसुव्रता । फलाहारा तपस्तेपे कृच्छ्रचांद्रायणादिभिः ॥

यावद्वर्षशतंसाग्रंजराशोकसमाकुला । ततःसातपसातप्तावसिष्ठादीनपृच्छत ॥ ५ ॥

कथयंतुभवन्तोमेपुत्रशोकविनाशनम् । व्रतंसौभाग्यफलदमिहलोकेपरत्रच ॥ ६ ॥

ऊचुर्वसिष्ठप्रमुखाज्येष्ठस्यपूर्णिमाव्रतम् । यस्यप्रसादादभवत्सुतशोकविवर्जिता ॥ ७ ॥

भीष्म उवाच ।

श्रोतुमिच्छाम्यहंब्रह्मन्ज्येष्ठस्यपूर्णिमाव्रतम् । सुतानेकोनपंचाशद्येनलेभेपुनर्दितिः ॥ ८ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

यद्वसिष्ठादिभिःपूर्वंदित्यै संकथितंव्रतम् । विस्तरेणतदेवेदंमत्सकाशान्निशामय ॥ ९ ॥

ज्येष्ठेमासिसितेपक्षेपौर्णमास्यांयतव्रता । स्थापयेदव्रणंकुंभंसिततण्डुलपूरितम् ॥ १० ॥

नानाफलयुतंतद्वदिक्षुदंडसमन्वितम् । सितवस्त्रयुगच्छन्नंसितचंदनचर्चितम् ॥ ११ ॥

नानाभक्ष्यसमोपेतंसहिरण्यंतुशक्तितः । ताम्रपात्रंगुडोपेतंतस्योपरिनिवेशयेत् ॥ १२ ॥

तस्मादुपरिब्रह्माणंसौवर्णंपद्मकोटरे । कुर्याच्छर्करयोपेतांसावित्रींतस्यवामतः ॥ १३ ॥

गंधं धूपं तयो दद्याद्गीतं वाद्यं च कारयेत् । तदभावे कथं कुर्याद्यथा पद्मेपितामहः ॥

ब्रह्माह्वयां च प्रतिमां कृत्वा गुडमयीं शुभाम् । शुक्लपुष्पाक्षततिलैरर्चयेत्पद्मसंभवम् ॥

ब्रह्मायपादौसंपूज्यजंघेसौभाग्यदायच । विरिंचायोरुयुग्मं च मन्मथायेति वैकटिम् ॥
स्वच्छोदरायेत्युदरमतन्द्रायेत्युरोविधेः । मुखं पद्ममुखायेति बाहूवैवेदपाणये ॥ १७ ॥
नमःसर्वात्मनेमौलिमर्च्चयेच्चापिपंकजम् । ततःप्रभातेतत्कुंभंब्राह्मणायनिवेदयेत् ॥ १८ ॥
ब्राह्मणं भोजयेद्भक्त्या स्वयं तु लवणं विना । भक्त्या प्रदक्षिणं दद्यादिमंमन्त्रमुदीरयेत् ॥
प्रीयतामत्रभगवान्सर्वलोकपितामहः । हृदयेसर्वलोकानांयस्त्वानंदोऽभिधीयते ॥ २०
अनेनविधिनासर्वंमासिमासिसमाचरेत् । उपवासीपौर्णमास्यामर्चयेद्ब्राह्मणमव्ययम् ॥
फलमेकं च संप्राश्य शर्वर्यां भूतले स्वपेत् । ततस्त्रयोदशे मासि घृतधेनुसमन्विताम् ॥
शय्यांदद्याद्विरिंचायसर्वोपस्करसंयुताम् । ब्रह्माणंकांचनंकृत्वासावित्रींरजतैस्तथा ॥
पद्मात्मकः सृष्टिकर्त्तासावित्रीमुपलभ्यतु । वस्त्रैर्द्विजंसपत्नीकंपूज्यभक्त्याविभूषणैः ॥
शक्त्यागवादिकंदद्यात्प्रीयतामित्युदीरयेत् । होमंशुक्लैस्तिलैःकुर्याद्ब्रह्मनामानिकीर्तयेत्
गव्येन सर्पिषा तद्वत्पायसेन च धर्मवित् । विप्रेभ्योऽथ धनं दद्यात्पुष्पमालांचशक्तितः ॥
यःकुर्याद्विधिनानेनपौर्णमास्यांस्त्रियोपिवा । सर्वपापविनिर्मुक्तःप्राप्नोतिब्रह्मसात्म्यताम् ॥
इहलोकेवरान्पुत्रान्सौभाग्यंध्रुवमश्नुते । योब्रह्मासस्मृतोविष्णुरानंदात्मामहेश्वरः ॥
सुखार्थी कामरूपेण स्मरेद्देवं पितामहम् । एवं श्रुत्वा चकारासौ दितिः सर्वमशेषतः ॥
कश्यपोव्रतमाहात्म्यादागत्यपरयामुदा । चकारकर्कशांभूयोरूपलावण्यसंयुताम् ॥
वरैराच्छंदयामास सा तु वव्रे वरंवरम् । पुत्रं शक्रवधार्थाय समर्थं च महौजसम् ॥
वरयामि महात्मानं सर्वामरनिषूदनम् । उवाच कश्यपो वाक्यमिंद्रहंतारमूर्जितम् ॥
प्रदास्याम्यहमेतेनकिन्त्वेतत्क्रियतांशुभे । आपस्तंबींतुकृत्वेष्टिंपुत्रीयामद्यसुस्तनि ॥
विधास्यामिततोगर्भंस्पृष्ट्वाहंतेस्तनौशुभे । भविष्यतिशुभोगर्भोदेविशक्रनिषूदनः ॥
आपस्तंबींततश्चक्रेपुत्रेष्टिंद्रविणाधिकाम् । इन्द्रशत्रोभवस्वेतिजुहावचहविस्त्वरन् ॥
देवाश्चमुमुहुर्दैत्याविमुखाश्चैवदानवाः । दित्यां गर्भमथाधत्त कश्यपः प्राह ताम्पुनः ॥
मुखं ते चंद्रप्रतिमं स्तनौ बिल्वफलोपमौ । अधरौ विद्रुमाकारौ वर्णश्चातीव शोभनः ॥
त्वांदृष्ट्वाहंविशालाक्षिविस्मरामिस्विकांतनुम् । तदेवंगर्भःसुश्रोणिहस्तेनोसस्तनौतव ॥
त्वया यत्नो विधातव्यो ह्यस्मिन्गर्भे वरानने । संवत्सरशतं त्वेकमस्मिन्नेव तपोवने ॥

संध्यायां नैव भोक्तव्यं गर्भिण्या वरवर्णिनि । नस्नातव्यं नगंतव्यं वृक्षमूलेषु सर्वदा ॥
नोपस्करेषु निविशेन्मुसलोलूखलादिषु । जलं च नावगाहेत शून्यागारं च वर्जयेत् ॥
वल्मीकेषु न तिष्ठेतनचोद्विग्नमनाभवेत् । न नखेन लिखेद्भूमौनांगारेनचभस्मनि ॥
नशयालुःसदातिष्ठेद्व्यायामंचविवर्जयेत् । नतुषांगारभस्मास्थिकपालेषुसमाविशेत् ॥
वर्जयेत्कलहंलोके गात्राभ्यंगंतथैवच । नमुक्तकेशीतिष्ठेत नाशुचिःस्यात्कथंचन ॥
नशयीतोत्तरशिरानचैवाधःशिराःक्वचित् । नवस्त्रहीनानोद्विग्नानचार्द्रचरणासती ॥
नामंगल्यांवदेद्वाचंनचहास्याधिकाभवेत् । कुर्याच्चगुरुभिर्नित्यंपूजांमांगल्यतत्परा ॥
सर्वौषधीभिःसृष्टेनवारिणास्नानमाचरेत् । कृतरक्षा तु शुश्रूषा वाचापूजनतत्परा ॥
तिष्ठेत्प्रसन्नवदना भर्तृप्रियहिते रता । न गर्हयेच्च भर्तारं सर्वावस्थमपि क्वचित् ॥
कृशाहंदुर्बलाचैववार्द्धक्यंममचागतम् । स्तनौ मे वलितौ स्थानान्मुखंचवलिभंगुरम् ॥
एवंविधात्वयाचाहंकृतेतिनवदेत्कचित् । स्वस्त्यस्तुतेगमिष्यामितथेत्युक्तस्तयापुनः ॥
पश्यतांसर्वभूतानांतत्रैवांतरधीयत । ततःसाभर्तृवाचोक्तविधिनासमतिष्ठत ॥ ५१ ॥
अथज्ञात्वातथेंद्रोऽपिदितेःपार्श्वमुपागतः । विहायदेवसदनंतांशुश्रूषुरवस्थितः ॥ ५२ ॥
दितेश्छिद्रांतरप्रेप्सुरभवत्पाकशासनः । विपरीतोंऽतरव्यग्रःप्रसन्नवदनोबहिः ॥ ५३ ॥
अजानन्निवतत्कार्यमात्मनश्शुभमाचरन् । ततोवर्षशतांतेसान्यूनेतुदिवसैस्त्रिभिः ॥५४॥
मेनेकृतार्थमात्मानंप्रीत्याविस्मितमानसा । अकृत्वापादयोः शौचंशयानामुक्तमूर्धजा ॥
निद्राभरसमाक्रांतादिवापरशिराःक्वचित् । ततस्तदन्तरंलब्ध्वाप्रविश्यांतः शचीपतिः ॥
वज्रेणसप्तधाचक्रेतंगर्भंत्रिदशाधिपः । ततःसप्त च ते जाताः कुमाराःसूर्यवर्चसः॥ ५७ ॥
रुदंतःसप्ततेबालानिषिद्धादानवारिणा । भूयोऽपिरुदमानांस्तानेकैकान्सप्तधाहरिः ॥५८॥
चिच्छेदवज्रहस्तोवैपुनस्तूदरसंस्थितान् । एवमेकोनपंचाशद्भूत्वातेरुरुदुर्भृशम् ॥५९॥
इंद्रो निवारयामास मा रुदध्वंपुनःपुनः । ततःसचिंतयामासवितर्कमिति वृत्रहा ॥ ६० ॥
कर्मणःकस्यमाहात्म्यात्पुनःसंजीवितास्त्वमी । विदित्वापुण्ययोगेनपौर्णमासीफलंत्विदम्
नूनमेतत्परिणतमथवाब्रह्मपूजनात् । वज्रेणाभिहताः संतो न विनाशमुपाययुः ॥ ६२ ॥
एकोऽप्यनेकतामापयस्मादुदरगोपनम् । अवध्यानूनमेतेवैतस्माद्देवाभवंत्विति ॥ ६३ ॥

यस्मान्मारुदइत्युक्तारुदंतो गर्भसंभवाः । मरुतोनामतेनाम्नाभवंतुसुखभागिनः ॥ ६४ ॥
ततःप्रसाद्यदेवेशःक्षमस्वेतिदितिंपुनः । अर्थशास्त्रंसमास्थायमयैतद्दुष्कृतंकृतम् ॥ ६५ ॥
कृत्वामरुद्गणंदेवैः समानममराधिपः । दितिंविमानमारोप्यससुतामगमद्दिवम् ॥ ६६ ॥
यज्ञभागभुजःसर्वे मरुतस्तेततोऽभवन् । न जग्मुरैक्यमसुरै रतस्ते सुरवल्लभाः ॥ ६७ ॥

भीष्म उवाच ।

आदिसर्गस्त्वयाब्रह्मन्कथितोविस्तरेणमे । प्रतिसर्गश्चयोयेषामधिपांस्तान्वदस्वमे ॥६८॥

पुलस्त्य उवाच ।

यदाभिषिक्तः सकलेऽपि राज्ये पृथुर्द्धरित्र्यामधिपो बभूव ।
तथौषधीनामधिपश्चकार यज्ञव्रतानां तपसां च सोमम् ॥ ६९ ॥
नक्षत्रताराद्विजवृक्ष गुल्मलतावितानस्य चरुक्मगर्भम् ।
अपामधीशं वरुणं धनानां राज्ञां प्रभुं वैश्रवणंचतद्वत् ॥ ७० ॥
विष्णुं रवीणामधिपंवसूनामग्निंचलोकाधिपतिं चकार ।
प्रजापतीनामधिपं च दक्षं चकार शक्रं मरुतामधीशम् ॥ ७१ ॥
दैत्याधिपानामथ दानवानां प्रह्लादमीशं च यमं पितॄणाम् ।
पिशाचरक्षःपशुभूतयक्षवेतालराजं ह्यथशूलपाणिम् ॥ ७२ ॥
प्रालेयशैलं च पतिं गिरीणामीशं समुद्रं सरितामधीशम् ।
गंधर्वविद्याधरकिन्नराणामीशंपुनश्चित्ररथं चकार ॥ ७३ ॥
नागाधिपं वासुकिमुग्रवीर्यं सर्पाधिपं तक्षकमादिदेश ।
दिग्वारणानामधिपं चकार गजेंद्रमैरावण नामधेयम् ॥ ७४ ॥
सुपर्णमीशं पततामथार्वतांराजानमुच्चैःश्रवसं चकार ।
सिंहं मृगाणां वृषभं गवां च प्लक्षं पुनःसर्ववनस्पतीनाम् ॥ ७५ ॥
पितामहःपूर्वमथाभ्यषिंचद्देतान्पुनः सर्वदिशाधिनाथान् ।
पूर्वेशदिक्पालमथाभ्यषिंचन्नाम्ना सुवर्माणमरातिकेतुम् ॥ ७६ ॥

ततोऽधिपं दक्षिणतश्चकार सर्वेश्वरं शंखपदाभिधानम् ।
सकेतुमंतं दिगधीशमीशं चकार पश्चाद्भुवनांडगर्भः ॥ ७७ ॥
हिरण्यरोमाणमुदग्दिगीशं प्रजापतिं मेघसुतं चकार ।
अद्यापि कुर्वंति दिशामधीशाः सदा वहंतस्तु भुवोऽभिरक्षाम् ॥ ७८ ॥
चतुर्भिरेतैःपृथुनामधेयो नृपोऽभिषिक्तः प्रथमः पृथिव्याम् ।
गतेऽन्तरे चाक्षुषनामधेये वैवस्वतं चक्रुरिमं पृथिव्याम् ॥ ७६ ॥
गतेऽन्तरे चाक्षुषनामधेये वैवस्वताख्ये च पुनःप्रवृत्ते ।
प्रजापतिःसोऽस्यचराचरस्य बभूव सूर्यान्वयजःसचिह्नः ॥ ८० ॥

पुलस्त्य उवाच ।

मन्वंतराणिसर्वाणिमनूनांचरितानियत् । प्रमाणंचैवकल्पस्यतत्सृष्टिंचसमासतः ॥८१॥
एकचित्तः प्रसन्नात्मा शृणुकौरवनंदन । यामानामपुरादेवाआसन्स्वायंभुवांतरे ॥८२॥
सप्तैवऋषयःपूर्वं येमरीच्यादयःस्मृताः । आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्चविभुःसवनएव च ॥ ८३ ॥
ज्योतिष्मान्द्युतिमान्भव्योमेधामेधातिथिर्वसुः । स्वायंभुवस्यास्यमनोर्दशैते वंशवर्द्धनाः
प्रतिसर्गममीकृत्वाजग्मुस्तेपरमंपदम् । एवं स्वायंभुवंप्रोक्तं स्वारोचिषमतःपरम् ॥८५॥
स्वारोचिषस्यतनयाश्चत्वारोदेववर्चसः । नभोनभस्यप्रभृतिर्भावनः कीर्तिवर्द्धनः ॥८६॥
दत्तोऽग्निश्च्यवनस्तंभःप्राणःकश्यपएव च । अर्वाबृहस्पतिश्चैवसप्तसप्तर्षयोऽभवन् ॥
तदादेवाश्चतुषिताःस्मृताःस्वारोचिषेऽतरे । हवींद्रःसुकृतोमूर्तिरापोज्योतिरथः स्मृतः ॥
वसिष्ठस्य सुताः सप्त येप्रजापतयस्तदा । द्वितीयमेतत्कथितं मन्वंतरमतःपरम् ॥ ८६ ॥
अन्यच्चैव प्रवक्ष्यामि तथा मन्वंतरंशुभम् । मनुनामौत्तमिस्तत्रदशपुत्रानजीजनत् ।६०।
इषऊर्जस्तनूजश्च शुचिःशुक्रस्तथैव च । मधुश्चमाधवश्चैवनभस्योऽथनभस्तथा ॥ ६१ ॥
सहः सहस्यएतेषामुत्तमः कीर्तिवर्द्धनः ।भानवस्तत्रदेवाःस्युरूर्जास्सप्तर्षयःस्मृताः ॥६२॥
कौकभिण्डिःकुतुण्डश्चदाल्भ्यःशङ्खः प्रवाहितः । मितिश्चसंमितिश्चैव सप्तैतेयोगवर्द्धनाः
मन्वन्तरंचतुर्थं तु तामसं नामविश्रुतम् । कपिपृस्थुः तथैवाग्निरकपिः कविरेव च ।६४।
तथैवजन्यधामानौमुनयः सप्तनामतः । साध्यादेवगणाये च कथितास्तामसेंऽतरे ।६५।

अकल्मषतपोधन्वी तपोमूलस्तपोधनः । तपोराशिस्तपस्यश्चसुतपस्यः परंतपः ॥९६॥
तामसस्यसुताः सर्वे दशवंशविवर्द्धनाः । पञ्चमस्यमनोस्तद्वद्रैवतस्यांतरंशृणु ॥ ९७ ॥
देवबाहुःसुबाहुश्च पर्ज्यन्यःसमयोमुनिः । हिरण्यरोमासप्ताश्वः सप्तैतेऋषयः स्मृताः ॥
देवाश्चभूतरजसस्तथाप्रकृतयः स्मृताः । अवशस्तत्वदर्शी च वीतिमान्हव्यपःकपिः ॥९९॥
मुक्तोनिरुत्सुकःसत्वोनिर्मोहोथऽप्रकाशकः । धर्मवीर्यबलोपेतादशैतेरैवतात्मजाः ।१००।
भृगुःसुधामाविरजस्सहिष्णुर्नारदस्तथा । विवस्वान्कृतिनामा च सप्तसप्तर्षयोऽपरे ॥
चाक्षुषस्यांतरेदेवा लेखानाम परिश्रुताः । विभवोऽथपृथक्चानुकीर्तितास्त्रिदिवौकसः ॥
चाक्षषस्यांतरेप्राप्ते देवानांपंचमोजनः । रुरुप्रभृतयस्तद्वच्चाक्षुषस्य सुता दश ॥ १०३ ॥
प्रोक्ताःस्वायम्भुवे वंशे ये मयापूर्वमेवते । अन्तरंचाक्षुषंचैव मयातेपरिकीर्तितम् ॥१०४॥
सप्तमं च प्रवक्ष्यामियद्वैवस्वतमुच्यते । अत्रिश्चैववसिष्ठश्च कश्यपो गौतमस्तथा ॥
भारद्वाजस्तथायोगी विश्वामित्रःप्रतापवान् । जमदग्निश्च सप्तैतेसांप्रतंते महर्षयः ।१०६।
कृत्वा धर्मव्यवस्थानं प्रयान्ति परमं पदम् । सावर्ण्यस्यप्रवक्ष्यामिमनोर्भावितथांतरम् ॥
अश्वत्थामाशरद्वांश्च कौशिको गालवस्तथा । शतानन्दः काश्यपश्चरामश्च ऋषयःस्मृताः
धृतिर्वरीयान्यवसुःसुवर्णो धृतिरेव च । वरिष्णुर्वार्यः सुमतिर्वसुश्शुक्रश्चवीर्यवान् ॥
भविष्यस्यार्कसावर्णेर्मनोःपुत्राःप्रकीर्तिताः । रौच्यादयस्तथान्येपिमनवःसंप्रकीर्तिताः ॥
रुचेः प्रजापतेः पुत्रो रौच्योनाम भविष्यति । मनुर्भूतिसुतस्तद्वद्भौत्योनामभविष्यति ॥
ततस्तुमेरुसावर्णिर्ब्रह्मसूनुर्मनुःस्मृतः । ऋभुश्चऋतुधामा च विष्वक्सेनोमनुस्तथा ॥
अतीतानागताश्चैव मनवःपरिकीर्तिताः । वर्षाणांयुगसाहस्रमेभिर्व्याप्तंनराधिप ॥ ११३ ॥
स्वेस्वेऽन्तरेसर्वमिदंसमुत्पाद्य चराचरम् । कल्पक्षयेनिवृत्तेतुमुच्यंतेब्रह्मणासह ॥
अमीयुगसहस्रान्ते विनश्यन्तिपुनःपुनः । ब्रह्माद्याविष्णुसायुज्यंततोयास्यंतिवैनृप ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे मन्वंन्तरवर्णनं नाम

सप्तमोऽध्यायः ।

अष्टमोऽध्यायः ।

पृथुराज्ञः कथानकम् ।

भीष्म उवाच ।

बहुभिर्द्धरणीभुक्ता भूपालैः श्रूयतेपुरा । पार्थिवाःपृथिवीयोगात्पृथिवीकस्ययोगतः ।१।
किमर्थं च कृतासंज्ञाभूमेस्सापारिभाषिकी । गौरितीयञ्चसंज्ञा वा भुवः कस्माद्ब्रवीहिमे

पुलस्त्य उवाच ।

पुराकृतयुगस्यासीदंगोनाम प्रजापतिः । मृत्योस्तुदुहितातेनपरिणीतातिदुर्मुखी ॥ ३ ॥
सुनीथानामतस्यास्तुवेनोनामसुतःपुरा । अधर्मनिरतःकामीबलवान्वसुधाधिपः ॥ ४ ॥
लोकस्याधर्मकृच्चापिपरभार्यापहारकः । अथतस्यप्रसिद्ध्यर्थं जगदर्थंमहर्षिभिः ॥ ५ ॥
अनुनीतोऽपिनददावशुद्धात्माऽभयंततः । शापेनमारयित्वैनमराजकभयार्दिता ॥ ६ ॥
ममंथुर्ब्राह्मणास्तस्य बलाद्देहमकल्मषाः । तत्कायान्मथ्यमानात्तुजनिता म्लेच्छजातयः ॥
शरीरेमातुरंशेन कृष्णांजनसमप्रभाः । पितुरंशस्यसंगेन धार्मिकोधर्मकारकः ॥ ८ ॥
उत्पन्नोदक्षिणाद्धस्तात्सधनुःसशरोगदी । दिव्यतेजोमयःपुत्रस्सरत्नकवचांगदः ॥६॥
पृथुरेवाभवन्नाम्नासचविष्णुरजायत । सविप्रैरभिषिक्तः संस्तपःकृत्वासुदुष्करम् ।१०।
विष्णोर्वरेणसर्वस्य प्रभुत्वमगमत्प्रभुः । निःस्वाध्यायवषट्कारंनिर्द्धर्मंवीक्ष्यभूतलम् ॥
वेद्धुमेवोद्यतःकोपाच्छरेणामितविक्रमः । ततोगोरूपमास्थाय भूःपलायितुमुद्यता ।१२।
पृष्ठेत्वन्वगमत्तस्याःपृथुःसेषुशरासनः । ततः स्थित्वैकदेशेतुकिंकरोमीतिचाब्रवीत् ॥
पृथुरप्यवदद्वाक्यमीप्सितंदेहिसुव्रते । सर्वस्यजगतःशीघ्रंस्थावरस्य चरस्य च ॥ १४ ॥
तथेतिचाब्रवीद्भूमिर्दु दोहसनराधिपः । स्वकेपाणौपृथुर्वत्सं कृत्वास्वायंभुवंमनुम् ॥
तदन्नमभवद्दुग्धंप्रजाजीवंतियेनतु । ततस्तुऋषिभिर्दुग्धावत्सःसोमस्तदाभवत् ॥१६॥
दोग्धावाचस्पतिरभूत्पात्रंवेदस्तपोरसः । देवैश्चवसुधादुग्धा मरुद्दोग्धातदाभवत् ॥१७॥

इन्द्रोवत्सःसमभवत्क्षीरमूर्ज्जस्वलंबलम् । देवानांकाञ्चनंपात्रं पितॄणांराजतंतथा ॥१८॥
अंतकश्चाभवद्दोग्धायमोवत्सःस्वधारसः । बिलंचपात्रंनागानांतक्षकोवत्सकोऽभवत् ॥
विषंक्षीरंततोदोग्धाधृतराष्ट्रोऽभवत्पुनः । असुरैरपिदुग्धेयं आयसे शत्रुपीडनम् ॥ २० ॥
पात्रेमायामभूद्वत्सःप्राल्हादिस्तुविरोचनः । दोग्धात्रिमूर्द्धा तत्रासीन्मायायेनप्रवर्तिता ॥
यक्षैश्चवसुधादुग्धा पुरांतर्धानमीप्सुभिः । कृत्वाविश्वावसुंवत्सं मणिमंतंमहीपते ।२२।
प्रेतरक्षोगणैर्दुग्धावसारुधिरमुल्वणम् । रौप्यनाभोऽभवद्दोग्धासुमालीवत्सएवच ॥
गंधर्वैश्चपुनर्दुग्धावसुधासाप्सरोगणैः । वत्संचित्ररथंकृत्वागन्धान्पद्मदले तथा ॥२४॥
दोग्धावसुरुचिर्नामाथर्ववेदस्यपारगः । गिरिभिर्वसुधादुग्धारत्नानिविविधानिच ॥
औषधानिचदिव्यानिदोग्धामेरुमहीधरः । वत्सोऽभूद्धिमवांस्तत्र पात्रंशैलमयंपुनः ।२६।
वृक्षैश्चवसुधादुग्धाक्षीरंछिन्नप्ररोहणम् । पालाशपात्रेदोग्धातुसालः पुष्पवनाकुलः ॥
प्लक्षोऽभवत्ततोवत्सः सर्ववृक्षवनाधिपः । एवमन्यैश्चवसुधातथादुग्धायथेच्छतः ॥
आयुर्धनानिसौख्यंचपृथौराज्यंप्रशासति । नदारिद्र्यं तथारोगी नाधनोनचपापकृत् ॥२९॥
नोपसर्गानचाघातः पृथौराज्यंप्रशासति । नित्यंप्रमुदितालोकादुःखशोकविवर्जिताः ॥
धनुष्कोट्या च शैलेंद्रानानुत्सार्य समहाबलः । भूमंडलंसमंचक्रे लोकानांहितकाम्यया ॥
नपुरग्रामदुर्गाणिनचायुधधरानराः । म्रियन्तेयत्रदुःखंचनार्थशास्त्रस्यचादरः ॥ ३२ ॥
धर्मैकतानाःपुरुषाःपृथौराज्यंप्रशासति । कथितानि च पात्राणि यत्क्षीरं च यथा तव ॥
येषांयेनरुचिस्तत्रतेभ्योदत्तं विजानता । यज्ञश्राद्धेषु सर्वेषु मया तुभ्यं निवेदितम् ॥
दुहितृत्वं गतायस्मात्पृथोःपृथ्वीमहामते । तस्यानुसारयोगाच्चपृथिवीविश्रुताबुधैः ॥

भीष्म उवाच ।

आदित्यवंशमखिलंवदब्रह्मन्यथाक्रमम् । सोमवंशंचतत्वज्ञयथावद्वक्तुमर्हसि ॥

पुलस्त्य उवाच ।

विवस्वान्कश्यपात्पूर्वमदित्यामभवत्पुरा । तस्यपत्नीत्रयंतद्वत्संज्ञाराज्ञीप्रभातथा ॥
रेवतस्यसुताराज्ञीरेवतंसुषुवेसुतम् । प्रभाप्रभातंसुषुवेत्वाष्ट्री संज्ञातथामनुम् ॥ ३८ ॥
यमश्च यमुनाचैवयमलौवबभूवतुः । ततस्तेजोमयंरूपमसहंतीविवस्वतः ॥ ३९ ॥

नारीमुत्पादयामासस्वशरीरादनिंदिताम् । त्वाष्ट्रीस्वरूपरूपेणनाम्ना छायेति भामिनी
किंकरोमीतिपुरतःसंस्थितांतामभाषत । छाये त्वं भज भर्तारंमदीयंतंवरानने ॥ ४१ ॥
अपत्यानि मदीयानि मातृस्नेहेन पालय । तथेत्युक्त्वा च सा देवमगात्कामाय सुव्रता ॥
कामयामासदेवोऽपिसंज्ञेयमितिचादरात् । जनयामाससावर्णिमनुंमनुस्वरूपिणम् ॥
सवर्णत्वाच्च सावर्णे मनोर्वैवस्वतस्य तु । ततःसुतांचतपतीं त्वाष्ट्रीं चैवक्रमेणतु ॥
छायायांजनयामाससंज्ञेयमितिभास्करः । छायास्वपुत्रेत्वधिकंस्नेहंचक्रेमनौतदा ॥
नचक्षमेमनुःपूर्वस्तद्यमःक्रोधमूर्छितः । संतर्जयामासतदापादमुत्क्षिप्यदक्षिणम् ॥
शशापचयमंछायाभवतुक्रिमिसंयुतः । पादोऽयमेकोभवितापूयशोणितविस्रवः ॥
निवेदयामासपितुर्यमःशापेनधर्षितः । निष्कारणमहंशप्तोमात्रादेवसकोपया ॥ ४८ ॥
बालभावान्मयाकिंचिदुद्यतश्चरणःसकृत् । मनुनावार्यमाणापिममशापमदाद्विभो ॥
प्रायोनमातासास्माकमसमास्नेहतोयतः । देवोप्याहयमंभूयःकिंकरोमिमहामते ॥
सौख्यात्कस्यनदुःखंस्यादथवाकर्मसंततिः । अनिवार्याभवस्यापिकाकथान्येषुजंतुषु ॥
कृकवाकुस्तवपदेसक्रिमिभक्षयिष्यति । खंजं च रुचिरं चैवपादमेतद्भविष्यति ॥
एवमुक्तःसमाश्वस्तस्तपस्तीव्रंचकारह । वैराग्यात्पुष्करेतीर्थेफलफेनानिलाशनः ॥
पितामहंसमाराध्ययावद्वर्षायुतंपुनः । तपःप्रभावाद्देवेशःसंतुष्टःपद्मसंभवः ॥ ५४ ॥
वव्रेसलोकपालत्वंपितृलोकंतथाक्षयम् । धर्माधर्मात्मकस्यास्यजगतस्तुपरीक्षणम् ॥
एवंसलोकपालत्वमगमत्पद्मसंभवात् । पितृणामाधिपत्यंचधर्माधर्मस्यचानघ ॥
विवस्वानथतज्ज्ञात्वासंज्ञायाःकर्मचेष्टितम् । त्वष्टुःसमीपमगमदाचचक्षेसरोषवान् ॥
तमुवाचततस्त्वष्टासांत्वपूर्वमिदंवचः । तवासहंती भगवंस्तेजस्तीव्रं तमोनुद ॥
वडवारूपमास्थायमत्सकाशमिहागता । निवारितामयासाचत्वद्भयेनदिवस्पते ॥
यस्मादविज्ञातमनामत्सकाशमिहागता । तस्मान्मदीयंभवनंप्रवेष्टुंनतवार्हति ॥
एवमुक्ताजगामाशुमरुदेशमनिंदिता । वडवारूपमास्थायभूतलेसंप्रतिष्ठिता ॥ ६१ ॥
तस्मात्प्रसादंकुरुमेयद्यनुग्रहभागहम् । अपनेष्यामितेतेजःकृत्वायन्त्रेदिवाकरम् ॥ ६२ ॥
रूपंतवकरिष्यामिलोकानंदकरप्रभो । तथेत्युक्तःसरविणाभ्रमेकृत्वादिवाकरम् ॥ ६३ ॥

पृथक्चकारतेजश्चचक्रंविष्णोःप्रकल्पयत् । त्रिशूलंचापिरुद्रस्यवज्रमिंद्रस्यचापरम् ॥ ६४
दैत्यदानवसंहर्तु सहस्रकिरणात्मकम् । रूपंचाप्रतिमंचक्रेत्वष्टापद्भ्यामृतेमहत् ॥ ६५ ॥
नशशाकचतद्द्रष्टुंपादरूपं रवेः पुनः । अद्यापिच ततः पादौनकश्चित्कारयेत्क्वचित् ॥६६
यः करोति स पापिष्ठोगतिमाप्नोतिनिंदिताम् । कुष्ठरोगमवाप्नोतिलोकेस्मिन्दुःखसंज्ञितम्
तस्मान्नधर्मकामार्थीचित्रेष्वायतनेषुच । नक्वचित्कारयेत्पादौदेवदेवस्यधीमतः ॥ ६८ ॥
ततःसभगवान्गत्वाभूर्लोकममराधिपः । कामयामासकामार्तोमुखएवदिवाकरः ॥ ६९ ॥
अश्वरूपेणमहतातेजसाचसमन्वितः । संज्ञाचमनसाक्षोभमगमद्भयविह्वला ॥ ७० ॥
नासापुटाभ्यामुत्सृष्टंपरोऽयमितिशंकया । तस्याथरेतसोजातावश्विनावितिनःश्रुतम् ॥
दस्रौश्रुतित्वात्संजातौनासत्यौनासिकाग्रतः । ज्ञात्वाचिराच्चतंदेवंसंतोषमगमत्परम् ॥
विमानेनागमत्स्वर्गंपत्न्यासहमुदान्वितः । सावर्ण्योऽपिमनुर्मेरावद्यापितपतेतपः ॥ ७३ ॥
शनिस्तपोबलाच्चापिग्रहाणांसमतांगतः । यमुनातपतीचैवपुनर्नद्यौबभूवतुः ॥ ७४ ॥
विष्टिर्घोरात्मिकातद्वत्कालत्वेनव्यवस्थिता । मनोर्वैवस्वतस्यापिदशपुत्रामहाबलाः ॥७५
इलस्तुप्रथमस्तेषांपुत्रेष्ट्यासमकल्पि यः । इक्ष्वाकुःकुशनाभश्चअरिष्टोधृष्टएवच ॥ ७६ ॥
नरिष्यंतःकरूषश्चशर्यातिश्चमहाबलः । पृषध्रश्चाथनाभागः सर्वेतेदिव्यमानुषाः ॥ ७७ ॥
अभिषिच्यमनुःपूर्वमिलंपुत्रंसधार्मिकम् । जगामतपसेभूयःपुष्करंसतपोवनम् ॥ ७८ ॥
अथाजगामसिध्यर्थंतस्यब्रह्मावरप्रदः । वरंवरयभद्रंतेमानवेयंयथेप्सितं ॥ ७९ ॥
उवाचसतदादेवंपद्माक्षंपद्मजंविभुम् । वशेमेधर्मसंयुक्ताः पृथिव्यांसर्वपार्थिवाः ॥ ८० ॥
भवेयुरीश्वराःस्वामिन्प्रसादात्तवकंजज । तथेत्युक्त्वातुदेवेशस्तत्रैवांतरधीयत ॥ ८१ ॥
ततोऽयोध्यांसमागत्यसमतिष्ठद्यथापुरा । अथैकदा रथारूढ इलोनिजसुतोमनोः ॥ ८२ ॥
निर्जगामार्थसिध्यर्थमिनप्रायांमहीमिमाम् । भ्रमन्द्वीपानिसर्वाणिक्ष्माभृतःसंप्रसाधयन्
जगामोपवनंशंभोरथाकृष्टःप्रतापवान् । कल्पद्रुमलताकीर्णंनाम्नाशरवणंमहत् ॥ ८४ ॥
रमतेयत्रदेवेशःसोमःसोमार्द्धशेखरः । उमया समयस्तत्र पुरा शरवणेकृतः ॥ ८५ ॥
पुंनामसंज्ञंयत्किंचिदागमिष्यतिनोवनम् । स्त्रीत्वमेष्यतितत्सर्वंदशयोजनमंडले ॥ ८६ ॥
अज्ञातसमयोराजाइलःशरवणंगतः । स्त्रीत्वंजगामसहसावडवाश्वोऽभवत्क्षणात् ॥ ८७

पुरुषत्वेकृतंसर्वंस्त्रीकायेविस्मृतंततः । इलेतिसभवन्नारीपीनोन्नतघनस्तनी ॥ ८८ ॥
उन्नतश्रोणिजघनापद्मपत्रायतेक्षणा । पूर्णेन्दुवदनातन्वीविलासिन्यासितेक्षणा ॥ ८९ ॥
पीनोन्नतायतभुजानीलकुञ्चितमूर्द्धजा । तनुलोमासुवदनामृदुगद्गदभाषिणी ॥ ९० ॥
श्यामागौरेणवर्णेनतनुताम्रनखांकुरा । कामुकभ्रूयुगोपेताहंसावरणगामिनी ॥ ९१ ॥
भ्रममाणावने तस्मिन्चिंतयामासभामिनी । कोमेपितावाभ्रातावाकोमेत्राताभवेदिह ॥९२
कस्यभर्त्तुरहंदत्ताकियद्वर्षास्मिभूतले । चिंतयन्तीचदद्दशेसोमपुत्रेणसाङ्गना ॥ ९३ ॥
इलारूपसमाक्षिप्तमनसावरवर्णिनी । बुधस्तदाप्तयेयत्नमकरोत्कामपीडितः ॥ ९४ ॥
विशिष्टाकारवान्मुंडीसकमंडलुपुस्तकः । वेणुदंडकृतावेशः पवित्रकखनित्रकः ॥ ९५ ॥
द्विजरूपःशिखीब्रह्मानिगदन्कर्णकुंडली । बटुभिश्चार्थिभिर्युक्तःसमित्पुष्पकुशोदकैः ॥९६
कालेन्विष्यांततस्तस्मिन्नाजुहावसतामिलाम् । बहिर्मनस्यांतरितःकिलपादपमंडपे ॥ ९७
ससंभ्रममकस्माच्चसोपालंभमिवाभवत् । त्यक्त्वाग्निहोत्रशुश्रूषांक्वगतामंदिरान्मम ॥९८॥
इयंविहारवेलातेअतिक्रामतिसांप्रतम् । एह्येहिपृथुसुश्रोणिसंभ्रांताकेनहेतुना ॥ ९९ ॥
इयं सायंतनी वेलाविहारस्येहवर्तते । कृत्वोपलेपनं पुष्पैरलंकुरु गृहं मम ॥ १०० ॥
साब्रवीद्विस्मृताहंचसर्वमेवतपोधन । आत्मानंत्वांचभर्त्तारं कुलं चवदमेऽनघ ॥१०१॥
बुधःप्रोवाचतांतन्वीमिलात्वंवरवर्णिनि । अहंचकामुकोनामबहुविद्योबुधःस्मृतः ॥१०२॥
तेजस्विनःकुलेजातःपितामेब्राह्मणाधिपः । इतिसातस्यवचनात्प्रविष्टाबुधमंदिरम् ॥१०३॥
रत्नस्तंभसमाकीर्णंदिव्यमायाविनिर्मितम् । इलाकृतार्थमात्मनंमेनेतद्भवनेस्थिता ॥१०४॥
अहोवृत्तमहोरूपमहोधनमहोकुलम् । ममचास्यचभर्त्तुर्वाअहोलावण्यमुत्तमम् ॥ १०५ ॥
रेमे च सा तेन सममतिकालमिलावने । सर्वभोगमयेगेहेयथेंद्रभवने तथा ॥ १०६ ॥
अथान्विष्यंतोराजानंभ्रातरस्तस्यमानवाः । इक्ष्वाकुप्रमुखाजग्मुस्तदाशरवणांतिकम् ॥
ततस्तेददृशुःशर्वेवडवामग्रतःस्थिताम् । रत्नपर्यंतकिरणदीप्यमानामनुत्तमाम् ॥ १०८ ॥
संप्राप्यप्रत्यभिज्ञानात्सर्वेविस्मयमागताः। अयंचंद्रप्रभोनामवाजीतस्य महात्मनः ॥१०९॥
अगमद्वडवारूपमुत्तमंकेनहेतुनाः । ततस्तुमैत्रावरुणिंपप्रच्छुःस्वपुरोहितम् ॥ ११० ॥
किमेतदित्यभूच्चित्रंवदयोगविदांवर । वसिष्ठोप्यब्रवीत्सर्वन्दृष्ट्वातंध्यानचक्षुषा ॥ १११ ॥

समयःशंभुदयिताकृतःशरवणेपुरा । यःपुमान्प्रविशेद्धात्रसनारीत्वमवाप्स्यति ॥ ११२ ॥
अयमश्वोऽपिनारीत्वमगाद्राज्ञासहैवतु ।इलःपुरुषतामेतियथासौधनदोपमः ॥ ११३ ॥
तथैवयत्नःकर्त्तव्यआराध्यचपिनाकिनम् । ततस्तेमानवाजग्मुर्यत्रदेवोमहेश्वरः ॥ ११४ ॥
तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैःपार्वतीपरमेश्वरौ । तावूचतुरलंचैष समयः किंनुसाम्प्रतम् ॥११५॥
इक्ष्वाकोरश्वमेधेनयत्फलंस्यात्तदावयोः । दत्वाकिंपुरुषोवीरःसभविष्यत्यसंशयम् ॥
तथेत्युक्त्वातुतेसर्वेजग्मुर्वैवस्वतात्मजाः । इष्ट्वाश्वमेधेनततइलाकिंपुरुषोऽभवत् ११७ ॥
मासमेकंपुमान्वीरःस्त्रीत्वंमासमभूत्पुनः । बुधस्यभवनेतिष्ठन्निलोगर्भधरोऽभवत् ॥११८
अजीजनत्पुत्रमेकमनेकगुणसंयुतम् । बुध उत्पाद्य तं पूर्वंसस्वर्गमगमत्पुनः ॥ ११६ ॥
इलस्यनाम्नातद्वर्षमिलावृतमभूत्तदा । सोमार्कवंशजोराजाइलोऽभूद्वंशवर्द्धनः ॥ १२० ॥
एवंपुरूरवाःपूरोरभवद्वंशवर्द्धनः । इक्ष्वाकुरर्कवंशस्यतथैवोक्तोनरेश्वरः ॥ १२१ ॥
इलःकिंपुरुषत्वेचसुद्युम्नइतिचोच्यते । पुनःपुत्रत्रयमभूत्सुद्युम्नस्यापराजितम् ॥ १२२ ॥
उत्कलोऽथगयस्तद्वद्धरिताश्वश्चवीर्यवान् । उत्कलस्योत्कलानामगयस्यतुगयापुरी ।१२३
हरिताश्वस्यदिग्याम्यासंज्ञाताकुरुभिःसह । प्रतिष्ठानोऽभिषिच्याथसपुरूरवसंसुतम् ॥
जगामेलावृतंभोक्तुंदिव्यंवर्षफलाशनः । इक्ष्वाकुर्ज्येष्ठदायादोमध्यदेशमवाप्तवान् ॥ १२५
नरिष्यंतस्यपुत्रोऽभूच्छुकोनामहाबलः नाभागादंबरीषस्तुधृष्टस्यतुसुतत्रयम् ॥ १२६ ॥
धृष्टकेतुःस्वधर्माथोरणधृष्टश्चवीर्यवान् । आनर्तोनामशर्यातेःसुकन्याचैवदारिका ॥१२७॥
आनर्तस्याभवत्पुत्रोरोचमानःप्रतापवान् । आनर्तोनामदेशोऽभून्नगरीचकुशस्थली ॥१२८
रोचमानस्यरैवोऽभूद्रेवाद्रैवतएवच । ककुद्मीचापरंनामज्येष्ठःपुत्रशतस्यच ॥ १२६ ॥
रैवतीतस्यसाकन्याभार्यारामस्यविश्रुता । करूषाच्चैवकारूषाबहवःप्रथिताभुवि ॥ १३०॥
पृषध्रोगोवधाच्छूद्रोगुरुशापादजायत । इक्ष्वाकुपुत्रानाम्नाथविकुक्षिनिमिदंडकाः ।१३१।
श्रेष्ठाःपुत्रशतस्यासन्पंचाशच्चाथतत्सुताः । मेरोरुत्तरतस्तेतुजाताःपार्थिवसत्तमाः ॥१३२
चत्वारिंशत्तथाष्टान्येशतमध्येचयेऽभवन् । मेरोर्दक्षिणतश्चैवराजानस्तेप्रकीर्तिताः ।१३३।
ज्येष्ठात्ककुत्स्थनामाभूत्सुतस्तस्यसुयोधनः । तस्यपुत्रःपृथुर्नामविश्वस्तस्यपृथोःसुतः ॥
आर्द्रस्तस्यचपुत्रोऽभूद्युवनाश्वस्ततोऽभवत् । युवनाश्वस्यपुत्रोऽभूच्छावस्तोनामवीर्यवान्

निर्मितायेनशावस्तीह्यंगदेशेनराधिप । शावस्ताद्बृहदश्वोऽभूत्कुवलाश्वस्ततोऽभवत् ॥
धुंधुमारत्वमगमद्धुंधुंहत्वाऽसुरंपुरा । तस्यपुत्रास्त्रयोजाताद्दृढाश्वोघृणिरेवच ॥ १३७ ॥
कपिलाश्वश्च विख्यातोधौंधुमारिःप्रतापवान् । दृढाश्वस्यप्रमोदस्तुहर्यश्वस्तस्यचात्मजः
हर्यश्वस्यनिकुंभोऽभूत्संहताश्वस्ततोभवत् । अकृताश्वोरणाश्वश्चसंहताश्वसुतावुभौ ॥
युवनाश्वोरणाश्वस्यमांधाताचततोऽभवत् । मांधातुःपुरुकुत्सोभूद्धर्मसेतुश्चपार्थिवः ॥
मुचुकुन्दश्च विख्यातश्शक्रमित्रःप्रतापवान् । पुरुकुत्सस्यपुत्रोऽभूद्दुःसहोनर्मदापतिः ॥
सभूतिस्तस्यपुत्रोऽभूत्त्रिधन्वाचततोऽभवत् ।त्रिधन्वनःसुतोजातस्त्रय्यारुणइतिस्मृतः ॥
तस्यसत्यव्रतोनामतस्मात्सत्यरथःस्मृतः । तस्यपुत्रोहरिश्चन्द्रोहरिश्चंद्राच्चरोहितः ॥
रोहिताच्चवृकोजातोवृकाद्बाहुरजायत । सगरस्तस्यपुत्रोऽभूद्राजापरमधार्मिकः ॥ १४४॥
द्वेभार्येसगरस्यापिप्रभाभानुमतीतथा । ताभ्यामाराधितःपूर्वमौर्वाग्निःपुत्रकाम्यया ।१४५।
और्वस्तुष्टस्तयोःप्रादाद्यथेष्टंवरमुत्तमम् । एकाषष्टिसहस्राणिसुतमेकंतथापरा ॥ १४६ ॥
अगृह्णाद्वंशकर्तारंप्रभाऽगृह्णाद्बहून्सुतान् । एकंभानुमतीपुत्रमगृह्णादसमंजसम् ॥ १४७ ॥
ततःषष्टिसहस्राणिसुषुवेयादवीप्रभा । खनंतःपृथिवींदग्धाविष्णुनायेश्वगार्गणे ॥ १४८॥
असमंजस्तुतनयोह्यंशुमान्नामविश्रुतः । तस्यपुत्रोदिलीपस्तुदिलीपात्तुभगीरथः ॥ १४९॥
येनभागीरथीगङ्गातपःकृत्वावतारिता । भगीरथस्यतनयोनाभागइतिविश्रुतः ॥ १५० ॥
नाभागस्यांबरीषोऽभूत्सिंधुद्वीपस्ततोऽभवत् । तस्यायुतायुःपुत्रोऽभूदृतुपर्णस्ततोऽभवत्
तस्यकल्माषपादस्तुसर्वकर्माततःस्मृतः । तस्यानरण्यःपुत्रोऽभून्निघ्नस्तस्यसुतोभवत् ॥
निघ्नपुत्रावुभौजातावनमित्ररघूत्तमौ । अनमित्रोवनमगादरिनाशकृतेनृप ॥ १५३ ॥
रघोरभूद्दिलीपस्तुदिलीपाच्चाप्यजस्तथा । दीर्घबाहुरजाज्जातःप्रजापालस्ततोऽभवत् ॥
ततोदशरथोजातस्तस्यपुत्रचतुष्टयम् । नारायणात्मकाः सर्वेरामस्तस्याग्रजोऽभवत् ॥
रावणांतकरस्तद्वद्रघूणांवंशवर्द्धनः । वाल्मीकिर्यस्यचरितंचक्रेभार्गवसत्तमः ॥ १५६ ॥
तस्यपुत्रःकुशोनामइक्ष्वाकुकुलवर्द्धनः । अतिथिस्तुकुशाज्जातोनिषधस्तस्यचात्मजः ॥
नलस्तुनिषधाज्जातोनभास्तस्मादजायत । नभसःपुंडरीकोऽभूत्क्षेमधन्वाततःपरम् ॥
तस्यपुत्रोऽभवद्वीरोदेवानीकःप्रतापवान् । अहीनगुस्तस्यसुतःसहस्राश्वस्ततःपरः ॥

ततश्चंद्रावलोकस्तुतारापीडस्ततोऽभवत् । तस्यात्मजश्चन्द्रगिरिश्चंद्रस्तस्यसुतोऽभवत्
श्रुतायुरभवत्तस्माद्भारतेयोनिपातितः । नलौद्वावेवविख्यातौवंशेयस्यविशेषतः ॥ १६१ ॥
वीरसेनसुतस्तद्वन्नैषधश्चनराधिपः । एते विवस्वतो वंशे राजानोभूरिदक्षिणाः १६२ ॥
इक्ष्वाकुवंशप्रभवाःप्राधान्येन प्रकीर्तिताः ॥ १६३ ॥
इतिश्रीपाद्मपुराणेप्रथमेखण्डेआदित्यवंशकथनंनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

पितृवंशानुचरितम् ।

भीष्म उवाच ।

भगवन्श्रोतुमिच्छामिपितॄणांवंशमुत्तमम् । रवेश्चश्राद्धदेवस्यसोमस्यचविशेषतः ॥ १ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

हंततेकथयिष्यामिपितॄणांवंशमुत्तमम् । स्वर्गेपितृगणाःसप्तत्रयस्तेषाममूर्तयः ॥ २ ॥
मूर्तिमंतोऽथचत्वारःसर्वेषाममितौजसाम् । अमूर्त्तयःपितृगणावैराजस्यप्रजापतेः ॥ ३ ॥
यजन्तियान्देवगणावैराजाइतिविश्रुताः । येवैतेयोगविभ्रष्टाः प्रापुर्लोकान्सनातनान् ॥ ४
पुनर्ब्रह्मदिनांते तु जायंतेब्रह्मवादिनः । संप्राप्य तां स्मृतिं भूयोयोगंसांख्यमनुत्तमम् ॥५॥
सिद्धिंप्रयांतियोगेनपुनरावृत्तिदुर्लभाम् । योगिनामेवदेयानितस्माच्छ्राद्धानिदातृभिः ॥
एतेषांमानसीकन्यापत्नीहिमवतोमता । मैनाकस्तस्यदायादःक्रौंचस्तस्यसुतोऽभवत् ॥
क्रौंचद्वीपः स्मृतो येन चतुर्थो घृतसंयुतः । मेना तु सुषुवेतिस्रःकन्यायोगवतीस्ततः॥८॥
उमैकपर्णा पर्णा च तीव्रव्रतपरायणाः। रुद्रस्यैकाभृगोश्चैकाजैगीषव्यस्यचापरा ॥ ९ ॥
दत्ता हिमवता बालाःसर्वलोकतपोऽधिकाः। पितॄणांलोकसंगीतंकथयामिशृणुष्वतत् ॥
लोकाःसोमपथा नाम यत्र मारीचनंदनाः । वर्त्ततेयेनपतिरोयान्देवाभावयन्त्यलम् ॥
अग्निष्वात्ताइतिख्यातायज्वानोयत्रसंस्थिताः। अच्छोदानामतेषांतुकन्याभूद्वरवर्णिनी।१२।

अच्छोदं च सरस्तत्र पितृभिर्निर्मितं पुरा । अच्छोदा थ तपश्चक्रे दिव्यं वर्षसहस्रकम् ॥ १३ ॥
आजग्मुः पितरस्तुष्टा दास्यन्तः किल ते वरम् । दिव्यरूपधराः सर्वे दिव्यमाल्यानुलेपनाः ॥१४॥
सर्वे प्रधाना बलिनः कुसुमायुधसन्निभाः । तन्मध्येऽमावसुं नाम पितरं वीक्ष्य सांगना ॥१५॥
वव्रे वरार्थिनी संगं कुसुमायुधपीडिता । योगाद्भ्रष्टा तु सा तेन व्यभिचारेण भामिनी ॥१६॥
धरां न स्पृशते पूर्वं प्रयाताथ भुवस्तले । तथैवामावसुर्योऽयमिच्छां चक्रे न तां प्रति ॥ १७ ॥
धैर्येण तस्य सा लोके अमावास्येति विश्रुता । पितृणां वल्लभा यस्मात्तस्याक्षयकारिका ॥१८॥
अच्छोदाधोमुखी दीना लज्जिता तपसः क्षयात् । सा पितॄन्प्रार्थयामास पुनरात्मसमृद्धये ॥१९॥
विलज्जमाना पितृभिरिदमुक्ता तपस्विनी । भविष्यमथ चालोक्य देवकार्यं च ते तदा ॥ २० ॥
इदमूचुर्महाभागाः प्रसादशुभया गिरा । दिवि दिव्यशरीरेण यत्किंचित्क्रियते बुधैः ॥२१॥
तेनैव तत्कर्मफलं भुज्यते वरवर्णिनि ॥ सद्यः फलंति कर्माणि देवत्वे प्रेत्य मानुषे ॥२२॥
तस्मात्त्वं सुकृतं कृत्वा प्राप्स्यसे प्रेत्य यत्फलम् । अष्टाविंशे भवित्री त्वं द्वापरे मत्स्ययोनिजा ॥
व्यतिक्रमात्पितॄणां तु कष्टं कुलमवाप्स्यसि । तस्माद्राज्ञो वसोः कन्या त्वमवश्यं भविष्यसि ॥
कन्यात्वे देवलोकांस्तान्पुनः प्राप्स्यसि दुर्लभान् । पराशरस्य वीर्येण पुत्रमेकमवाप्स्यसि ॥
द्वीपे तु बदरीप्राये बादरायणमच्युत । स वेदमेकं बहुधा विभजिष्यति ते सुतः ॥ २६ ॥
पौरवस्यात्मजौ द्वौ तु समुद्रांशस्य शंतनोः । विचित्रवीर्यस्तनयस्तथा चित्रांगदो नृपः ॥२७॥
इमावुत्पाद्य तनयौ क्षेत्रजौ तस्य धीमतः । प्रोष्ठपद्यष्टका भूयः पितृलोके भविष्यसि ॥ २८ ॥
नाम्ना सत्यवती लोके पितृलोके तथाष्टका । आयुरारोग्यदा नित्यं सर्वकामफलप्रदा ॥ २९ ॥
भविष्यसि परे लोके नदी त्वं च गमिष्यसि । पुण्यतोया सरिच्छ्रेष्ठा लोकेष्वच्छोदनामिका ॥
इत्युक्ता सा गणैस्तैस्तु तत्रैवांतरधीयत । साप्याप चारित्रफलं मया यदुदितं पुरा ॥ ३१ ॥
विभ्राजो नाम ये चान्ये दिवि संति सुवर्चसः । लोका बर्हिषदो यत्र पितरः संति सुव्रताः ॥३२॥
यत्र बर्हिषियुक्तानि विमानानि सहस्रशः । संकल्पपादपा यत्र तिष्ठन्ति फलदायिनः ॥ ३३ ॥
यदभ्युदयशालासु मोदंते श्राद्धदायिनः । ये दानवासुरगणा गंधर्वाप्सरसां गणाः ॥ ३४ ॥
यक्षरक्षोगणास्ते च यजंति दिवि देवताः । पुलस्त्यपुत्राः शतशस्तपोयोगबलान्विताः ॥३५॥
महात्मानो महाभागा भक्तानामभयंकराः । एतेषां पीवरी कन्या मानसी दिवि विश्रुता ॥३६॥

योगिनीयोगमाताचतपश्चक्रेसुदारुणम् । प्रसन्नोभगवांस्तस्यावरंवव्रेतुसाततः ॥ ३७ ॥
योगवंतं सुरूपंचभर्तारंविजितेंद्रियम् । देहि देव प्रसन्नस्त्वं यदि ते वदतांवर ॥ ३८ ॥
उवाचदेवोभविताव्यासपुत्रोयदाशुकः । भवित्रीतस्यभार्यात्वंयोगाचार्यस्यसुव्रता ॥३९॥
भविष्यतिचतेकन्याकृत्वीनामाथयोगिनी । पांचालपतयेदेयासात्वतायतुसातदा ॥ ४० ॥
जननीब्रह्मदत्तस्ययोगसिद्धांतगास्मृता । कृष्णगौरश्चशंभुश्चभविष्यंतिचतेसुताः ॥ ४१ ॥
सर्वकामसमृद्धेषुविमानेष्वपिपावनाः । किंपुनः श्राद्धदाविप्राभक्तिमंतः क्रियान्विताः ॥
गौर्नामकन्यायेषांतुमानसीदिविराजते । सुकन्यादयितापत्नीसाध्यानांकीर्तिवर्द्धिनी ।४३।
मरीचिगर्भनामानोलोकेमार्तण्डमंडले । पितरोयत्रतिष्ठंतिहविष्मंतोऽगिरःसुताः ॥ ४४ ॥
तीर्थश्राद्धप्रदायांतियत्रक्षत्रियसत्तमाः । राज्ञां तु पितरस्ते वै स्वर्गभोगफलप्रदाः ॥४५॥
एतेषांमानसीकन्यायशोदानामविश्रुता । पत्नीयांशुमतःश्रेष्ठास्नुषापंचजनस्यच ॥ ४६ ॥
जनन्यथदिलीपस्यभगीरथपितामही । लोकाः कामदुघानामकामभोगफलप्रदाः ॥ ४७॥
सुस्वधानाम पितरोयत्रतिष्ठन्तितेसुताः । आज्यपानामलोकेषुकर्दमस्यप्रजापतेः ॥ ४८॥
पुलहाग्रजदायादावैश्यास्तान्भावयंतिह । यत्रश्राद्धकृतः सर्वेपश्यन्तियुगपद्गताः ॥ ४९ ॥
मातृभ्रातृपितृष्वसृःसखिसंबंधिबान्धवान् । अपिजन्मायुतैर्दृष्टाननुभूतान्सहस्रशः ॥५०॥
एतेषांमानसीकन्याविरजानामविश्रुता । सापत्नीनहुषस्यासीद्ययातेर्जननीतथा ॥ ५१ ॥
एषाष्टकाभवत्पश्चाद्ब्रह्मलोकगतासती । त्रयएतेगणाःप्रोक्ताश्चतुर्थंतुवदाम्यहम् ॥ ५२ ॥
लोकाःसुमनसोनामब्रह्मलोकोपरिस्थिताः । सोमपानामपितरोयत्रतिष्ठंतिशाश्वतम् ।५३।
धर्ममूर्तिधराःसर्वेपरतोब्रह्मणःस्मृताः । उत्पन्नाःप्रलयातेतुब्रह्मत्वंप्राप्ययोगिनः ॥ ५४ ॥
कृत्वासृष्ट्यादिकंसर्वेमानसेसांप्रतंस्थिताः । नर्मदानामतेषांतुकन्यातोयवहासरित् ।५५।
भूतानिपुनती(पूयते)यातु(ति)पश्चिमोदधिगामिनी । तेभ्यःसर्वत्रमनुजाःप्रजासर्गंचनिर्मितम्
ज्ञात्वाश्राद्धानिकुर्वंतिधर्मभावेनसर्वदा । सर्वदातेभ्यएवास्यप्रसादाद्योगसंततिः ॥५७॥
पितॄणामादिसर्गेतुश्राद्धमेवंविनिर्मितम् । सर्वेषांराजतंपात्रमथवाराजतान्वितम् ॥ ५८ ॥
दत्तंस्वधांपुरोधायपितॄन्प्रीणातिसर्वदा । आग्नीध्रसोमापाभ्यांतुकार्यमाप्यायनंबुधैः॥५९॥
अग्न्यभावेतुविप्रस्यपाणौवाथजलेपिवा । अजाकर्णेश्वकर्णेवागोष्ठेवाथशिवांतिके ॥६०॥

पितृणामलंस्थानंदक्षिणादिक्प्रशस्यते । प्राचीनावीतमुदकंतिलसंत्यागमेवच ॥ ६१ ॥
खड्गिनामामिषंचैवमन्नंश्यामाकशालयः । यवनीवारमुद्गेक्षुशुक्लपुष्पफलानिच ॥ ६२ ॥
वल्लभानिप्रशस्तानिपितृणामिहसर्वदा । दर्भामाषाष्षष्टिकान्नंगोक्षीरंमधुसर्पिषी ॥ ६३ ॥
शस्त्राणिचप्रवक्ष्यामिश्राद्धे वर्ज्यानियानिच । मसूरशणनिष्पावाराजमाषाःकुलुत्थकाः॥
पद्मबिल्वार्कदु(ध)त्तूरपारिभद्राटरूषकाः । न देयाःपितृकार्येषुपयश्चाजाविकंतथा ॥६५॥
कोद्रवोदारवरटकपित्थंमधुकातसी । एतान्यपिनदेयानिपितृभ्यः श्रियमिच्छता ॥ ६६॥
पितॄन्प्रीणातियोभक्त्यातेपुनःप्रीणयंतितम् । यच्छंतिपितरः पुष्टिंस्वांगारोग्यंप्रजाफलम्॥
देवकार्यादपिपुनःपितृकार्यंविशिष्यते । देवताभ्यःपितृणांतुपूर्वमाप्यायनंस्मृतम् ॥ ६८॥
शीघ्रप्रसादास्त्वक्रोधानिःसंगाःस्थिरसौहृदाः । शांतात्मानःशौचपराःसततंप्रियवादिनः
भक्तानुरक्ताःसुखदाःपितरःपर्वदेवताः । हविष्मतामाधिपत्येश्राद्धदेवस्मृतोरविः ॥ ७० ॥
एतद्धिसर्वमाख्यातंपितृवंशानुकीर्त्तनम् । पुण्यंपवित्रमारोग्यंकीर्त्तनायनृभिःसदा ॥७१॥

भीष्म उवाच ।

श्रुत्वैतदखिलंभूयःपराभक्तिरुपस्थिता । श्राद्धकालंविधिंचैवश्राद्धमेवतथैवच ॥ ७२ ॥
श्राद्धेषुभोजनीयायेश्राद्धवर्ज्याद्विजातयः । कस्मिन्वासरभागेतुपितृभ्यःश्राद्धमारभेत् ॥
अन्नंदत्तंकथंयातिश्राद्धेवैब्रह्मवित्तमः । विधिनाकेनकर्त्तव्यंकथंप्रीणातितान्पितॄन् ॥ ७४ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

कुर्यादहरहःश्राद्धमन्नाद्येनोदकेनच । पयोमूलफलैर्वापिपितृभ्यःप्रीतिमावहन् ॥ ७५ ॥
नित्यंनैमित्तिकंकाम्यंत्रिविधंश्राद्धमुच्यते । नित्यंतावत्प्रवक्ष्यामिअर्घ्यावाहनवर्जितम् ॥
अदैवतंविजानीयात्पार्वणंपर्वसुस्मृतम् । पार्वणंत्रिविधंप्रोक्तंशृणुयत्नान्महीपते ॥ ७७ ॥
पार्वणेयेनियोज्यास्तुतान्शृणुष्वनराधिप । पंचाग्निःस्नातकश्चैवत्रिसौपर्णःषडंगवित् ॥
श्रोत्रियःश्रोत्रियसुतोविधिवाक्यविशारदः । सर्वज्ञोवेदवान्मंत्रीज्ञानवंशकुलान्वितः ।७६।
त्रिणाचिकेतस्त्रिमधुःश्रुतेष्वन्येषुसंस्थितः । पुराणवेत्ताब्रह्मज्ञःस्वाध्यायीजपतत्परः ।८०।
ब्रह्मभक्तःपितृपरःसूर्यभक्तोऽथवैष्णवः । ब्राह्मणोयोगनिष्णातमाविजितात्मासुशीलवान् ॥
एतेतोष्याःप्रयत्नेनवर्जनीयानिमाच्छृणु । पतितस्तत्सुतःक्लीबःपिशुनोव्यंगरोगितः ॥८२॥

सर्वेतेश्राद्धकालेतुल्याज्ज्यावैधर्मदर्शिभिः । पूर्वेद्युरपरेद्युर्वाविनीतांश्चनिमंत्रयेत् ॥ ८३ ॥
निमंत्रितांश्चपितरउपतिष्ठंतितान्द्विजान् । वायुभूतानिगच्छंतितथासीनानुपासते ॥८४॥
दक्षिणंजानुचालभ्यवामंपात्यनिमंत्रयेत् । अक्रोधनैःशौचपरैःसुस्नातैर्ब्रह्मवादिभिः ॥८५॥
भवितव्यंभवद्भिस्तुमयाचश्राद्धकर्मणि । पितृयज्ञंविनिर्वर्त्यतर्पणाख्यंतुयोऽग्निमान् ॥८६
पिंडान्वाहार्यकंकुर्याच्छ्राद्धमिंदुक्षयेतथा । गोमयेनानुलिप्तेतुदक्षिणाप्लवनस्थले ॥ ८७ ॥
श्राद्धंसमारभेद्गत्यागोष्ठेवाजलसन्निधौ । अग्निमान्निर्वपेत्पित्र्यं चरुंवासक्तुमुष्टिभिः ।८८।
पितृभ्योनिर्वपामीतिसर्वंदक्षिणतोन्यसेत् । अभिघार्यततःकुर्यान्निर्वापत्रयमग्रतः ॥ ८९ ॥
तेवितस्त्यायताःकार्याश्चतुरङ्गुलविस्तृताः । दर्वीत्रयंत्रकुर्वीतखादिरंरजतान्वितम् ॥ ९०॥
रत्निमात्रंपरिश्लक्ष्णंहस्ताकाराग्रमुत्तमम् । उदपात्राणिकांस्यस्यमेक्षणंचसमित्कुशम् ॥
तिलपात्राणि सद्वासो गंधधूपानुलेपनम् । आहरेदपसव्यं च सर्वंदक्षिणतःशनैः ॥ ९२ ॥
एवमासाद्यतत्सर्वंभवनस्योत्तरेऽतरे । गोमयेनानुलिप्तायां गोमूत्रेण च मंडलम् ॥ ९३ ॥
साक्षताभिःसपुष्पाभिरद्भिःसव्यापसव्यवत् । विप्राणांक्षालयेत्पादावभिवंद्यपुनःपुनः ॥
आसनेषूपविष्टेषु दर्भवत्सु विधानतः । उपस्पृष्टोदकान्विप्रानुपवेश्यानुमं त्रयेत् ॥ ९५ ॥
द्वौदैवे पितृकृत्येत्रीनेकैकंचोभयत्रवा । भोजयेदीश्वरोऽपीहनकुर्याद्विस्तरंबुधः ॥ ९६ ॥
दैवपूर्वंनिवेद्याथविप्रानर्घादिनाबुधैः । अग्नौ कुर्यादनुज्ञातोविप्रैर्विप्रोयथा विधि ॥ ९७ ॥
स्वगृह्योक्तेनविधिनाकालेकृत्वासमंततः । अग्नीषोमयमाभ्यांतुकुर्यादाप्यायनंबुधः ॥९८॥
दक्षिणाग्नौप्रणीतेनसएवाग्निर्द्विजोत्तमः । यज्ञोपवीतान्निर्वर्त्यततःपर्युक्षणादिकम् ॥ ९९॥
प्राचीनावीतिनाकार्यमेतत्सर्वंविजानता । लब्ध्वातस्माद्विशेषेणपिंडान्कुर्वीतचोदकम् ॥
दद्यादुदकपात्रैस्तुसलिलंसव्यपाणिना । दद्यात्सर्वप्रयत्नेनदमयुक्तोविमत्सरः ॥ १०१ ॥
विधायरेखांयत्नेननिर्वपेद्वनेजनम् । दक्षिणाभिमुखःकुर्यात्ततोदर्भान्निधायवै ॥ १०२ ॥
निधायपिंडमेकैकंसर्वंदर्भोपरि क्रमात् । निर्वपेदथदर्भेषुनामगोत्रानुकीर्तनैः ॥ १०३ ॥
तेषुदर्भेषुतंहस्तंविमृज्यालेपभागिनाम् । तथैवचजपंकुर्यात्पुनःप्रत्यवनेजनम् ॥ १०४ ॥
जलयुक्तंनमस्कृत्यगंधधूपार्चनादिभिः । एवमावाह्यतत्सर्वंवेदमंत्रैर्यथोदितैः ॥ १०५ ॥
एकाग्निरेकएवाद्भिर्निर्वपेद्दर्विकांतथा । ततःकृत्वानरोदद्यात्पितृभ्यस्तुकुशान्बुधः ॥१०६॥

ततःपिंडादिकंकुर्याद्वाचोऽर्घ्यविसर्जनम् । ततोगृहीत्वा पिंडेभ्योमात्राःसर्वाःक्रमेणतु ॥
तानेवविप्रान्प्रथममाशयित्वा च मानवः । वर्णयन्भोजयेदन्नमिष्टंपूतं च सर्वदा ॥१०८ ॥
वर्जयेत्क्रोधपरतांस्मरन्नारायणंहरिम् । तृप्तान्यात्वा पुनः कुर्याद्विकिरंसार्ववर्णिकम् ॥
विधृत्यसोदकंत्वन्नंसतिलंप्रक्षिपेद्भुवि । आचांतेषुपुनर्दद्याज्जलंपुष्पाक्षतोदकम् ॥ ११० ॥
स्वधावाचनकंसर्वंपिंडोपरिसमाचरेत् । देवाद्यंतंप्रकुर्वीतश्राद्धनाशोऽन्यथाभवेत् ॥१११॥
विसृज्यविप्रान्प्रणतस्तेषांकृत्वाप्रदक्षिणम् । दक्षिणांदिशमाकांक्षन्पितॄनुद्दिश्यमानवः ॥
दातारो नोभिवर्द्धन्तांवेदाःसंततिरेवच । श्रद्धाचनोमाव्यगमद्बहुदेयंचनोऽस्त्विति ॥
अन्नंचनोबहुभवेदतिथींश्चलभेमहि । याचितारश्चनःसंतु माच याचिष्म कंचन ॥ ११४ ॥
एतदग्निमतःप्रोक्तमन्वाहार्यंतुपार्वणम् । यथेंदुसंक्षये तद्वदन्यत्रापिनिगद्यते ॥ ११५ ॥
पिंडांस्तुगोजविप्रेभ्योदद्यादग्नौजलेऽपिवा । वप्रांतेवाथविकिरेद्वापोभिरथवापयेत् ।११६।
पत्नीतुमध्यमंपिंडंप्राशयेद्विनयान्विताम् । आधत्तपितरोगर्भंपुत्रसंतानवर्द्धनम् ॥ ११७ ॥
तावन्निर्वापणं तिष्ठेद्यावद्विप्रा विसर्जिताः । वैश्वदेवं ततः कुर्यान्निवृत्तः पितृकर्मणः ॥
इष्टैःसहततःशान्तोभुञ्जीतपितृसेवितम् । पुनर्भोजनमध्वानं यानमायासमैथुनम् ॥११९॥
श्राद्धकृच्छ्राद्धभुग्योवासर्वमेतद्विवर्जयेत् । स्वाध्यायंकलहंचैवदिवास्वप्नंच सर्वदा ॥
अनेनविधिना श्राद्धंत्रिवर्गस्येहनिर्वपेत् । कन्याकुंभवृषस्थेऽर्केकृष्णपक्षेषुसर्वदा ॥
यत्रयत्रप्रदातव्यंसपिंडीकरणात्मकम् । तत्रानेनविधानेनदेयमग्निमतासदा ॥ १२२ ॥
अतःपरंप्रवक्ष्यामि ब्रह्मणाय दुदीरितम् । श्राद्धं साधारणंनाम भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥
अयनेविषुवेचैवअमावस्यार्कसंक्रमे । अमावस्याष्टकाकृष्णपक्षपञ्चदशीषु च ॥ १२४ ॥
आर्द्रामघारोहिणीषु द्रव्यब्राह्मणसंगमे । गजच्छायाव्यतीपाते विष्टिवैधृतिवासरे ॥
वैशाखस्य तृतीयाया नवमीकार्तिकस्य च । पञ्चदशीतुमाघस्य नभस्येच त्रयोदशी ॥
युगादयःस्मृता ह्येताःपितृपक्षोपकारिकाः । तथामन्वंतरादौ च देयंश्राद्धंविजानता ॥
अश्वयुङ्नवमी चैव द्वादशी कार्तिके तथा । तृतीया चैत्रमासस्य तथाभाद्रपदस्य च ॥
फाल्गुनस्यत्वमावास्यापौषस्यैकादशीतथा । आषाढस्यापिदशमीमाघमासस्यसप्तमी ॥
श्रावणेचाष्टमीकृष्णातथाषाढीचपूर्णिमा । कार्तिकीफाल्गुनीचैवज्येष्ठेपञ्चदशीसिता ॥

मन्वंतरादयस्त्वेता दत्तस्याक्षयकारिकाः । १३० ॥

पानीयमप्यत्रतिलैर्विमिश्रं दद्यात्पितृभ्यः प्रयतोमनुष्यः

श्राद्धं कृतं तेन समास्सहस्रं रहस्यमेतत्पितरो वदंति ॥ १३१ ॥

वैशाख्यामुपवासेषु तथोत्सवमहालये ॥ १३२ ॥

तीर्थायतनगोष्ठेषु द्वीपोद्यानगृहेषु च । विविक्तेषूपलिप्तेषु श्राद्धं देयं विजानता ॥
विप्रान्पूर्वेपरेवाह्नि विनीतात्मा निमंत्रयेत् । शीलवृत्तगुणोपेतान्वयोरूपसमन्वितान् ॥
द्वौदैवेपितृकृत्ये त्रीनेकैकमुभयत्रवा । भोजयेत्सुसमृद्धोऽपिनप्रकुर्वीतविस्तरम् ॥
विश्वेदेवान्यवैःपुष्पैरभ्यर्च्यासनपूर्वकम् । पूरयेत्पात्रयुग्मं तु स्थाप्यं दर्भपवित्रके ॥
शन्नोदेवीत्यपःकुर्याद्यवोऽसीतियवानपि । गन्धपुष्पैस्तुसंपूज्य विश्वान्देवान्प्रतिन्यसेत्
विश्वेदेवासइत्याभ्यामावाह्य विकिरेद्यवान् । यवोऽसिधान्यराजस्त्वंवारुणोमधुमिश्रितः
निर्णु(र्णो)दःसर्वपापानाम्पवित्रऋषिसंस्तुतः । गंधपुष्पैरलंकृत्ययादिव्येत्यर्घमुत्सृजेत् ॥
अभ्यर्च्यगंधाद्युत्सृज्य पितृयज्ञंसमारभेत् । दर्भासनादिकृत्वादौत्रीणिपात्राणिचार्चयेत् ॥
सपवित्राणिकृत्वादौशन्नोदेवीत्यपःक्षिपेत् । तिलोऽसीतितिलान्कुर्याद्गन्धपुष्पादिकंपुनः।
पात्रं वनस्पतिमयं तथा पर्णमयं पुनः । राजतं वा प्रकुर्वीत तथा सागर संभवम् ।१४२।
सौवर्णं राजतं ताम्रं पितॄणां पात्रमुच्यते । रजतस्य कथावापि दर्शनं दानमेव च ॥
राजतैर्भाजनैरेषां पितॄणां रजतान्वितैः । वार्यपि श्रद्धया दत्तमक्षयायोपकल्पते ॥१४४॥
अद्यापि पितृपात्रेषु पितॄणांराजतान्वितम् । शिवनेत्रोद्भवं यस्मादुत्तमं पितृवल्लभम् ॥
एवं पात्राणिसंकल्प्ययथालाभंविमत्सरः । यादिव्येतिपितुर्नामगोत्रेदर्भान्करेन्यसेत् ॥
पितॄनावाहयिष्यामितथेत्युक्तःस तैःपुनः । उशंतस्त्वातथायन्तुऋग्भ्यामावाहयेत्पितॄन् ॥
यादिव्येत्यर्घमुत्सृज्यदद्याद्गंधादिकंततः । वस्त्रोत्तरं दर्भपूर्वं दत्वा संश्रयमादितः ॥
पितृपात्रेनिधायाथन्युब्जमुत्तरतोन्यसेत् । पितृभ्यःस्थानमसीतिनिधायपरिवेषयेत् ॥
तत्रापिपूर्वतः कुर्यादग्निकार्यंविमत्सरः । उभाभ्यामपिहस्ताभ्यामाहृत्यपरिवेषयेत् ।१५०
उशन्तस्त्वेतितंदर्भं पाणिभक्तंविशेषतः । गुणान्वितैश्चशाकाद्यैर्नानाभक्ष्यैस्तथैव च ॥
अन्नं च सदधिक्षीरं गोघृतंशर्करान्वितम् । मासंप्रीणातिवैसर्वान्पितॄनित्याह पद्मजः ॥

द्वौमासौमत्स्यमांसेनत्रीन्मासान्हारिणेनतु । औरभ्रेणाथचतुरः शाकुनेनाथपंचवै ॥
वाराहस्यतुमांसेनषण्मासंतृप्तिरुत्तमा । सप्तलोहस्यमांसेनतथाष्टावाजकेनतु ॥ १५४ ॥
पृषतस्य तु मांसेन तृप्तिमासान्नवैव तु । दशमासांश्च तृप्यंते वराहमहिषामिषैः ॥१५५॥
शशकूर्मयोस्तुमांसेनमासानेकादशैवतु । संवत्सरंतुगव्येनपयसापायसेन वा ॥ १५६ ॥
सौकरेण तु तृप्यंतेमासान्पंचदशैवतु । वार्ध्रीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥१५७॥
कालशाकेनचानंत्यंखड्गमांसेन चैव हि । यत्किंचिन्मधुनामिश्रंगोक्षीरंदधिपायसम् ॥
दत्तमक्षयमित्याहुःपितरःपूर्वदेवताः । स्वाध्यायंश्रावयेत्पित्र्यंपुराणान्यखिलानिच ।१५९।
ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्राणांस्तवानिविविधानिच । इंद्रेशसोमसूक्तानिपावमानीश्चशक्तितः ।१६०।
बृहद्रथंतरंतत्रज्येष्ठसामाथरौरवम् । तथैव शांतिकाध्यायं मधुब्राह्मणमेवच ॥ १६१ ॥
मण्डलब्राह्मणंतद्वत्प्रीतिकारिचयत्पुनः । विप्राणामात्मनश्चापितत्सर्वंसमुदीरयेत् ॥१६२॥
भारताध्ययनंकार्यं पितॄणांपरमप्रियम् । भुक्तवत्सुचविप्रेषुभोज्यतोयादिकंनृप ॥ १६३ ॥
सार्ववर्णिकमन्नाद्यमानयेत्सावधारणम् । समुत्सृजेद्भुक्तवतामग्रतोविकिरान्भुवि ।१६४।
अग्निदग्धाश्चयेजीवायेऽप्यदग्धाःकुलेमम । भूमौदत्तेनतृप्यंतुतृप्तायांतुपरांगतिम् ॥१६५ ॥

येषां न माता न पिता न बंधुर्नचापि मित्रं न तथान्नमस्ति ।
तत्तृप्तयेऽन्नं भुवि दत्तमेतत्प्रयातु योगाय यतो यतस्ते ॥ १६६ ॥

असंस्कृतप्रमीतानांत्यागिनांकुलभागिनाम् । उच्छिष्टभागधेयानांदर्भेषुविकिरासनम् ॥
तृप्तान् ज्ञात्वोदकंदद्यात्सकृद्विकिरणेतथा । विप्रलिप्तमहीपृष्ठेगोशकृन्मूत्रवारिणा ।१६८।
निधायदर्भान्विधिवद्दक्षिणाग्रान्प्रयत्नतः । सर्ववर्णविधानेनपिंडांश्चपितृयज्ञवत् ॥ १६९ ॥
अवनेजनपूर्वंतुनामगोत्रंतुमानवः । उक्त्वापुष्पादिकंदत्वाकृत्वाप्रत्यवनेजनम् ॥ १७० ॥
ज्ञात्वाऽपसव्यंसव्येनपाणिनात्रिःप्रदक्षिणम् । पितृवन्मातृकंकार्यंविधिवद्दर्भपाणिना ।१७१।
दीपप्रज्वालनंतद्वत्कुर्यात्पुष्पार्चनंबुधः । तथाचांतेषुचाचम्यदद्याच्चापःसकृत्सकृत् । १७२ ।
तथापुष्पाक्षतान्पश्चादक्षय्योदकमेवच । सतिलंनामगोत्रेणदद्याच्छक्त्याचदक्षिणाम् ॥
गोभूहिरण्यवासांसिभव्यानिशयनानिच । दद्याद्यदिष्टंविप्राणामात्मनःपितुरेवच ॥ १७४
वित्तशाठ्येनरहितःपितृभ्यःप्रीतिमावहेत् । इतःस्वधावाचनकंविश्वेदेवेषुचोदकम् ।१७५।

दत्वाशीःप्रतिगृह्णीयाद्द्विजेभ्योऽपियथाबुधः । अघोराःपितरःसंतुसंत्वित्युक्तः पुनर्द्विजैः ॥
गोत्रंतथावर्द्धतांतुतथेत्युक्तश्चतैःपुनः । स्वस्तिवाचनकंकुर्यात्पिंडानुद्धृत्यभक्तितः । १७७।
उच्छेषणंतुतत्तिष्ठेद्यावद्विप्रविसर्जनम् । ततोगृहबलिंकुर्यादितिधर्मोव्यवस्थितः ॥ १७८ ॥
उच्छेषणंभूमिगतमजिह्मस्याशठस्यच । दासवर्गस्य तत्पिंडं भागधेयंप्रचक्षते ॥ १७९ ॥
पितृभिर्निर्मितंपूर्वमेतदाप्यायनंसदा । अव्रतानामपुत्राणांस्त्रीणामपिनराधिप ॥ १८० ॥
ततःस्थानाग्रतःस्थित्वाप्रतिगृह्यांबुपात्रिकाम् । वाजेवाजेतिचजपन्कुशाग्रेणविसर्जयेत् ॥
बहिःप्रदक्षिणं कुर्यात्पदान्यष्टावनुव्रजेत् । बन्धुवर्गेण सहितः पुत्रभार्यासमन्वितः ।१८२।
निवृत्य प्रणिपत्याथ प्रयुज्याग्निंसमंत्रवित् । वैश्वदेवं प्रकुर्वीत नैत्यिकं बलिमेवच ॥१८३॥
ततस्तुवैश्वदेवांतेसभृत्यसुतबांधवः । भुंजीतातिथिसंयुक्तःसर्वंपितृनिषेवितम् ॥ १८४ ॥

एतच्चानुपनीतोऽपि कुर्यात्सर्वेषु पर्वसु ।
श्राद्धंसाधारणंनामसर्वकामफलप्रदम् । भार्याविरहितोप्येतत्प्रवासस्थोऽपिभक्तिमान् ॥
शूद्रोऽप्यमंत्रकंकुर्यादनेनविधिनानृप । तृतीयमाभ्युदयिकंवृद्धिश्राद्धंविधीयते ॥ १८६ ॥
उत्सवानंदसंस्कारे यज्ञोद्वाहादिमंगले । मातरः प्रथमं पूज्याः पितरस्तदनंतरम् ॥१८७॥
ततोमातामहाराजन्विश्वेदेवास्तथैवच । प्रदक्षिणोपचारेणदध्यक्षतफलोदकैः ॥ १८८ ॥
प्राङ्मुखोनिर्वपेत्पिण्डान्पूर्वांश्चैवपुरातनान् । सम्पन्नमित्यभ्युदयेदद्यादर्घद्वयोर्द्वयोः ॥
युग्माद्विजातयः पूज्यावस्त्राकल्पांबरादिभिः । तिलकार्थंयवैःकार्यंतच्चसर्वानुपूर्वकम् ॥
मांगल्यानिचसर्वाणिवाचयेद्द्विजपुंगवान् । एवंशूद्रोऽपिसामान्यंवृद्धिश्राद्धंचसर्वदा ॥

नमस्कारेण मंत्रेण कुर्याद्दानानि वै बुधः ।
दानम्प्रधानंशूद्रस्य इत्याहभगवान्प्रभुः । दानेनसर्वकामाप्तिस्तस्यसंजायतेयतः ॥१९२॥

इति श्रीपाद्मपुराणेप्रथमेसृष्टिखण्डेसाधारणाभ्युदयकीर्तनंनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः ।

एकोद्दिष्ट श्राद्धविधिः ।

पुलस्त्य उवाच ।

एकोद्दिष्टंततोवक्ष्येयदुक्तम्ब्रह्मणापुरा । मृतेपुत्रैर्यथाकार्यमाशौचंचपितुर्यदि ॥ १ ॥
दशाहंशावमाशौचंब्राह्मणस्यविधीयते । क्षत्रियेषुदशद्वे च पक्षंवैश्येषुचैवहि ॥ २ ॥
शूद्रेषुमासमाशौचंसपिंडेषुविधीयते । नैशमाचूडमाशौचंत्रिरात्रंपरतःस्मृतम् ॥ ३ ॥
जननेऽप्येवमेवस्यात्सर्ववर्णेषुसर्वदा । अस्थिसंचयनादूर्ध्वमङ्गस्पर्शोविधीयते ॥ ४ ॥
प्रेताय पिंडदानं तु द्वादशाहं समाचरेत् । पाथेयं तस्य तत्प्रोक्तंयतःप्रीतिकरंमहत् ॥ ५ ॥
यस्मात्प्रेतपुरंप्रेतोद्वादशाहेननीयते । गृहे पुत्रकलत्रंच द्वाशाहं प्रपश्यति ॥ ६ ॥
तस्मान्निधेयमाकाशेदशरात्रंपयस्तथा । सर्वदाहोपशांत्यर्थमध्वश्रमविनाशनम् ॥ ७ ॥
ततस्त्वेकादशाहेऽपिद्विजानेकादशैवतु । गोत्रादिसूतकांतेचभोजयेन्मनुजोद्विजान् ॥८॥
द्वितीयेऽह्निपुनस्तद्वदेकोद्दिष्टंसमाचरेत् । नावाहनाग्नौकरणंदैवहीनंविधानतः ॥ ६ ॥
एकंपवित्रमेकोर्घ्यएकःपिंडोविधीयते । उपतिष्ठतामिति वदेद्देयं पश्चात्तिलोदकम् ॥ १०॥
स्वस्तिब्रूयाद्विप्रकरैविसर्गेचाभिरम्यताम् । शेषंपूर्ववदत्रापिकार्यं वेदविदोविदुः ॥११॥
अनेनविधिनासर्वमनुमासंसमाचरेत् । सूतकांतेद्वितीयेऽह्निशय्यांदद्याद्विलक्षणाम् ॥१२॥
काञ्चनं पुरुषं तद्वत्फलवस्त्रसमन्वितम् । प्रपूज्य द्विजदांपत्यं नानाभरणभूषितम् ॥१३॥
उपवेश्यतु शय्यायां मधुपर्कं ततोददेत् । रजतस्य तु पात्रेणदधिदुग्धसमन्वितम् ॥१४॥
अस्थिललाटिकंगृह्यसूक्ष्मंकृत्वाविमिश्रयेत् । पाययेद्विजदांपत्यंपितृभक्त्यासमन्वितः ॥
एषएवविधिर्दृष्टःपार्वतीयैर्द्विजोत्तमैः । तेन दुष्टातु सा शय्या नग्राह्याद्विजसत्तमैः॥१६॥
गृहीतायांतु तस्यां हि पुनः संस्कारमर्हति । वेदे चैव पुराणेच शय्या सर्वत्रगर्हिता ॥
ग्रहीतारस्तुजायन्तेसर्वेनरकगामिनः । ग्रथितांवसुजालेनशय्यांदांपत्यसेविताम् ॥ १८ ॥
येस्पृशंतिनजानंतःसर्वेनरकगामिनः । नवश्राद्धेनभोक्तव्यंभुक्त्वाचांद्रायणंचरेत् ॥ १६ ॥

पितृभक्त्यातुपुत्राणांकार्यमेवसदाभवेत् । वृषोत्सर्गंचकुर्वीतदेयाचकपिलाशुभा ॥ २० ॥
उदकुंभश्चदातव्योभक्ष्यभोज्यफलान्वितः । यावदब्दंनरश्रेष्ठसतिलोदकपूर्वकम् ॥ २१ ॥
ततःसंवत्सरेपूर्णेसपिण्डीकरणंभवेत् । सपिंडीकरणादूर्द्ध्वंप्रेतःपार्वणभुग्यतः ॥ २२ ॥
वृद्धिपूर्वेषु कार्येषु गृहस्थस्यभवेत्ततः । सपिंडीकरणंश्राद्धं देवपूर्वंनियोजयेत् ॥ २३ ॥
पितॄनावाहयेत्तत्रपृथक्प्रेतं विनिर्दिशेत् । गंधोदकतिलैर्युक्तं कुर्यात्पात्रचतुष्टयम् ॥२४॥
अर्घ्यार्थं पितृपात्रेषुप्रेतपात्रंप्रसेचयेत् । तद्वत्संकल्प्यचतुरः पिण्डान्पितृपरस्तदा ।२५।
येसमानाइतिद्वाभ्यामन्नन्तुविभजेत्त्रिधा । अनेन विधिनाचार्घ्यं पूर्वमेवप्रदापयेत् ॥
ततःपितृत्वमापन्नस्सचतुर्थस्तदात्वनु । अग्निष्वात्तादिमध्येतु प्राप्नोत्यमृतमुत्तमम् ।२७।
सपिण्डीकरणादूर्ध्वं पृथक्तस्मैनदीयते । पितृष्वेवचदातव्यंतत्पिण्डंयेषुसंस्थितम् ॥ २८॥
ततः प्रभृतिसंक्रान्तावुपरागादिपर्वसु । त्रिपिण्डमाचरेच्छ्राद्धमेकोद्दिष्टंमृतेऽहनि ॥२९॥
एकोद्दिष्टं परित्यज्यमृताहेयः समाचरेत् । सदैवंपितृहासस्यात्तथाभ्रातृविनाशकः ।३०।
मृताहेपार्वणंकुर्वन्नधोयातिसमानवः । संपृक्तेस्वर्गतीभावेप्रेतमोक्षोयतोभवेत् ॥ ३१ ॥
आमश्राद्धंतदाकुर्याद्विधिज्ञः श्राद्धदस्ततः । तेनाग्नौकरणंकुर्यात्पिंडांस्तेनैवनिर्वपेत् ॥
त्रिभिःसपिंडीकरणंमासैक्येत्रियथेतथा । यदाप्राप्स्यतिकालेनतदामुच्येत बंधनात् ॥
मुक्तोपिलेपभागित्वंप्राप्नोतिकुशमार्जनात् । लेपभाजश्चतुर्थाद्यास्त्रयःस्युःपिण्डभागिनः ।
पिण्डदःसप्तमस्तेषांसपिण्डाःसप्तपूरुषाः ॥

भीष्म उवाच ।

कथं हव्यानि देयानि कव्यानि च जनैरिह ॥ ३५ ॥
गृह्णन्तिपितृलोकेवाप्रायःकेकैर्निगद्यते । यदिमर्त्येद्विजोभुंक्तेहूयते यदिवानले ॥ ३६ ॥
शुभाशुभात्मकाः प्रेतास्तदन्नं भुंजते कथम् ॥

पुलस्त्य उवाच ।

वसुस्वरूपाः पितरो रुद्राश्चैव पितामहाः ॥ ३७ ॥
प्रपितामहास्तथादित्या इत्येषावैदिकीश्रुतिः । नामगोत्रंपितॄणांतुप्रापकंहव्यकव्ययोः ॥
श्राद्धस्यमन्त्रतस्तत्त्वमुपलभ्येतभक्तितः । अग्निष्वात्तादयास्तेषामाधिपत्येव्यवस्थिताः ॥

नामगोत्रास्तदादेशाभवंत्युद्भवतामपि । प्राणिनः प्रीणयत्येतदर्हणंसमुपागतम् ॥ ४० ॥
दिव्योयदिपितामातागुरुःकर्मानुयोगतः । तस्यान्नममृतंभूत्वादिव्यत्वेऽप्यनुगच्छति ॥
दैत्यत्वेभोगरूपेण पशुत्वे पितॄणांभवेत् । श्राद्धान्नंवायुरूपेण नागत्वेऽप्युपतिष्ठति ।४२।
पानंभवति यक्षत्वेराक्षसत्वेतथामिषम् । दानवत्वेतथापानं प्रेतत्वेरुधिरोदकम् ॥ ४३ ॥
मनुष्यत्वेन्नपानादि नानाभोगवतांभवेत् । रतिशक्तिस्त्रियःकान्तेऽन्येषांभोजनशक्तिता ॥
दानशक्तिःसविभवारूपमारोग्यमेव च । श्राद्धंपुष्पमिदंप्रोक्तं फलं ब्रह्म समागमः ॥४५॥
आयुःपुत्रान्धनंविद्यां स्वर्गं मोक्षंसुखानिच । प्रयच्छन्तितथाराज्यं प्रीताःपितृगणानृप ॥
श्रूयतेचपुरामोक्षंप्राप्ताः कौशिकसूनवः । पंचभिर्जन्मसंबंधैः प्राप्ता ब्रह्मपरंपदम् ॥ ४७ ॥

भीष्म उवाच ।

कथंकौशिकदायादाः प्राप्ता योगमनुत्तमम् । पंचभिर्जन्मसंबन्धैः कथंकर्मक्षयोभवेत् ॥

पुलस्त्य उवाच ।

कौशिकोनामधर्मात्माकुरुक्षेत्रेमहानृषिः । नामतःकर्मतस्तस्यपुत्राणांतान्निबोधमे ॥४६॥
स्वसृपःक्रोधनोहिंस्रः पिशुनः कविरेवच । वाग्दुष्टःपितृवर्तीचगर्गशिष्यास्तदाभवन्॥५०॥
पितर्युपरतेतेषामभूद्दुर्भिक्षमुल्बणम् । अनावृष्टिश्च महती सर्वलोकभयंकरी ॥ ५१ ॥
गर्गादेशाद्वनेदोग्ध्रींरक्षंति च तपोधनाः । खादामःकपिलामेतांवयंक्षुत्पीडिताभृशम् ।५२।
इतिचिंतयतांपापं लघुःप्राहतदानुजः । यद्यवश्यमियंवध्या श्राद्धरूपेणयोज्यताम् ॥५३ ॥
श्राद्धेनियोज्यमानायां पापंनश्यतिनोध्रुवम् । एवंकुर्वित्यनुज्ञातः पितृवर्तीतदानुजैः ॥
चक्रेसमाहितःश्राद्धमुपयुज्याथतांपुनः । द्वौदैवेभ्रातरौकृत्वा पित्र्येत्रींश्चापरान्क्रमात् ॥
तथैकमतिथिंकृत्वा श्राद्धदःस्वयमेवतु । चकारमंत्रवच्छ्राद्धंस्मरन्पितृपरायणः ॥ ५६ ॥
तदागत्वाविशंकास्तेगुरवे च निवेदयन् । व्याघ्रेणनिहताधेनुर्वत्सोऽयंप्रतिगृह्यताम् ॥
एवं सा भक्षिताधेनुःसप्तभिस्तैस्तपोधनैः । वैदिकंबलमाश्रित्यक्रूरैकर्मणि निर्भयाः ॥
ततःकालेप्रणष्टास्ते व्याधा दशपुरेऽभवन् । जातिस्मरत्वंप्राप्तास्तेपितृभावेनभाविताः ॥
तत्रविज्ञायवैराग्यं प्राणानुत्सृज्यधर्मतः । लोकैरवीक्ष्यमाणास्तेतीर्था तेऽनशनेनतु ।६०।
संजाताम्गृगरूपास्ते सप्तकालंजरेगिरौ । प्राप्तविज्ञानयोगास्तेतत्यजुस्तांनिजांतनुम् ॥

मग्नुः प्रपतनेनाथ जातवैराग्यमानसाः । मानसेचक्रवाकास्ते संजाताःसप्तयोगिनः॥६२॥
नामतः कर्मतःसर्वे सुमनाः कुसुमोवसुः । चित्तदर्शीसुदर्शी च ज्ञाता ज्ञानस्य पारगः ॥
ज्येष्ठानुरक्ताः श्रेष्ठास्तेसप्तैतेयोगपावनाः । योगभ्रष्टास्त्रयस्तेषां बभूवुश्चलचेतसः ।६४।
दृष्ट्वाविभ्राजमानंतमणुहंस्त्रीभिरन्वितम् । क्रीडतंविविधैर्भोगैर्महाबलपराक्रमम् ॥ ६५ ॥
पञ्चालान्वयसंभूतम्प्रभूतबलवाहनम् । राज्यकामोभवत्त्वेकस्तेषांमध्येजलौकसाम् ॥
पितृवर्तीचयोविप्रः श्राद्धकृत्पितृवत्सलः । अपरौमन्त्रिणौदृष्ट्वा प्रभूतबलवाहनौ ॥ ६७ ॥

मंत्रित्वे च कृतुश्चेच्छामस्मिन्मर्त्यौ द्विजोत्तमौ ।
विभ्राजपुत्रस्त्वेकोऽभूद्ब्रह्मदत्त इति स्मृतः ॥ ६८ ॥

मंत्रिपुत्रौतथाचैव पुण्डरीकसुबालकौ । ब्रह्मदत्तोऽभिषिक्तस्तु कांपिल्येनगरोत्तमे ।६९।
पंचालराजो विक्रांतः श्राद्धकृत्पितृवत्सलः । योगवित्सर्वजंतूनांचित्तवेत्ताभवत्तदा ॥
तस्यराज्ञोऽभवद्भार्यासुदेवस्यात्मजातदा । सन्नतिर्नामविख्याताकपिलायाभवत्पुरा ॥
पितृकार्येनियुक्तत्वादभवद्ब्रह्मवादिनी । तयाचकारसहितः सराज्यं राजनन्दनः ॥ ७२ ॥
कदाचिद्गतउद्यानं तयासह सपार्थिवः । ददर्श कीटमिथुनमनंगकलहान्वितम् ॥ ७३ ॥
पिपीलिकामधोवक्त्रां पुरतः कीटकामुकः । पञ्चबाणाभितप्तांगः सगद्गदमुवाचह ॥
नत्वयासदृशीलोके कामिनीविद्यते क्वचित् । मध्येक्षीणातिजघनावृहद्वक्त्रातिगामिनी ॥
सुवर्णवर्णसदृशीसद्वक्त्राचारुहासिनी । आलक्ष्यते च वदनं गुडशर्करवत्सलम् ॥७६॥
भोक्ष्यसेमयिभुंक्ते त्वंस्नासिस्नातेतथामयि । प्रोषितेमयिदीनात्वं क्रुद्धे च भयचञ्चला ॥
किमर्थं वदकल्याणि सदाऽधोवदनास्थिता । सातमाहज्वलत्कोपात्किमालपसिरेशठ ॥
त्वयामोदकचूर्णं तुमांविहायापिभक्षितम् । प्रादास्त्वंतदतिक्रम्यमामन्यस्यैसमन्मथः ॥

पिपीलक उवाच ।

त्वत्सादृश्यान्मयादत्तमन्यस्यैवरर्णिनि । तदेकमपराधंमे क्षन्तुमर्हसिभामिनि ॥ ८० ॥
नैवंपुनःकरिष्यामित्यजकोपं च सुस्तनि । स्पृशामिनादौसत्येनप्रणतस्यप्रसीदमे ॥८१॥
रुष्टायांत्वयि सुश्रोणिमृत्युर्मेपुरतोभवेत् । तुष्टायांत्वयिवामोरुपूर्णाःसर्वमनोरथाः॥८२॥
पूर्णचंद्रोपमंवक्त्रंस्वादेऽमृतरसोपमम् । निर्भरंपिबसुश्रोणिकामासक्तस्यमेसदा ॥ ८३ ॥

एतन्मत्वाशुभे कार्यासर्वदातुकृपामयि । इति सा वचनं श्रुत्वाप्रसन्नाचाभवत्ततः ॥८४॥
आत्मानमर्पयामासमोहनायपिपीलिका । ब्रह्मदत्तोऽपितत्सर्वंज्ञात्वासस्मयमाहसत् ॥
सर्वसत्वरुतज्ञानीप्रभावात्पूर्वकर्मणः । कथंसर्वरुतज्ञोभूद्ब्रह्मदत्तोनराधिपः ॥ ८६ ॥

भीष्म उवाच ।

तच्चापिचाभवत्कुत्रचक्रवाकचतुष्टयम् । तन्मेकथयसर्वज्ञकुलेकस्यचसुव्रतम् ॥ ८७ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

तस्मिन्नेव पुरे जाता चक्रवाका अथो नृप ॥ ८८ ॥

वृद्धद्विजस्यदायादाविप्राजातिस्मराबुधाः । धृतिमांस्तत्वदर्शीचविद्यावर्णस्तपोऽधिकाः ॥
नामतःकर्मतश्चैवसुदरिद्रस्यतेसुताः । तपसेबुद्धिरभवत्तेषांवैद्विजजन्मनाम् ॥ ९० ॥
यास्यामः परमांसिद्धिमूचुस्तेद्विजसत्तमाः । तत्तेषांवचनंश्रुत्वासुदरिद्रोमहातपाः ॥९१॥
उवाचदीनयावाचाकिमेतदितिपुत्रकाः । अधर्मएषवः पुत्राः पितातानित्युवाचह ॥ ९२॥
वृद्धंपितरमुत्सृज्यदरिद्रंवनवासिनम् । कनुधर्मात्रभविता मांत्यक्त्वागतिमेवच ॥ ९३ ॥
ऊचुस्तेकल्पितावृत्तिस्तवतातवचश्शृणु । व्रतमेत्पुराराज्ञःसतेदास्यतिपुष्कलम् ॥ ९४ ॥
धनंग्रामसहस्राणिप्रभातेपठतस्तव ।कुरुक्षेत्रेतुयेविप्राव्याधादशपुरेतुये ॥ ९५ ॥
कालंजरेमृगाभूताश्चक्रवाकास्तुमानसे । इत्युक्त्वापितरंजग्मुस्तेवनंतपसेपुनः ॥ ९६ ॥
वृद्धोऽपिसद्विजोराजञ्जगामस्वार्थसिद्धये । अणुहोनामवैभ्राजः पञ्चालाधिपतिः पुरा ॥
पुत्रार्थीदेवदेवेशंपद्मयोनिंपितामहम् । आराधमामासविभुंतीव्रव्रतपरायणः ॥ ९८ ॥
ततःकालेनमहतातुष्टस्तस्यपितामहः । वरं वरय भद्रंते हृदयेऽभीप्सितं नृप ॥ ९९ ॥

अणुह उवाच ।

पुत्रंमेदेहिदेवेशमहाबलपराक्रमम् । पारगंसर्वविद्यानांधार्मिकंयोगिनांवरम् ॥ १०० ॥
सर्वसत्वरुतज्ञंमेदेहियोगिनमात्मजम् । एवमस्त्वितिविश्वात्मातमाहपरमेश्वरः ॥१०१॥
पश्यतांसर्वभूतानांतत्रैवांतरधीयत । ततः सतस्यपुत्रोभूद्ब्रह्मदत्तःप्रतापवान् ॥ १०२ ॥
सर्वसत्वानुकंपीचसर्वसत्वबलाधिकः । सर्वसत्वरुतज्ञश्चसर्वसत्वेश्वरेश्वरः ॥ १०३ ॥
अथसत्वेनयोगात्मासपिपीलकमागतः । यत्रतत्कीटमिथुनंरममाणमवस्थितम् ॥१०४॥

ततःसासन्नतिर्दृष्ट्वाप्रहसंतंसुविस्मितम् । किमप्याशंकमानासातमपृच्छन्नरेश्वरम् ॥

सन्नतिरुवाच ।

अकस्मादतिहासोयंकिमर्थमभवन्नृप । हास्यहेतुंनजानामियदकालेकृतंत्वया ॥ १०६ ॥

अवदद्राजपुत्रोऽसौ तं पिपीलिकभाषितम् । रागवद्धिरसोत्पन्नमेतद्धास्यंवरानने ॥१०७॥

नचान्यत्कारणंकिंचिद्धास्यहेतुःशुचिस्मिते । नसाऽमन्यततंदेवीप्राहालीकमिदंतव ।१०८।

अहमेवेह हसिता नर्जाविष्येत्वयाधुना । कथं पिपीलिकलापंमर्त्योवेत्तिसुराद्दृते ।१०६।

तस्मात्त्वयाहमेवाद्यहसिताकिमतः परम् । ततोनिरुत्तरोराजाजिज्ञासुस्तद्वचोहरः ॥११०॥

आस्थायनियमंतस्थौसप्तरात्रमकल्मषः । स्वप्नान्तेप्राहतंब्रह्माप्रभातेपर्यटन्पुरम् ॥ १११ ॥

वृद्धद्विजोत्तमाद्वाक्यं सर्वं ज्ञास्यति तेप्रिया । इत्युक्त्वांतर्दधेब्रह्माप्रभातेचनृपः पुरात् ॥

निर्गच्छन्मन्त्रिसहितः सभार्योवृद्धमग्रतः । गदंतं विप्रमायांतं वृद्धं च स ददर्शह ॥११३॥

ब्राह्मण उवाच ।

ये विप्रमुख्याः कुरुजांगलेषु दाशास्तथा दाशपुरे मृगाश्च ।

कालंजरे सप्त च चक्रवाका ये मानसे तेऽत्र वसंति सिद्धाः ॥ ११४ ॥

इत्याकर्ण्यवचस्तस्यसपपातशुचान्वितः । जातिस्मरत्वमगमत्तौचमंत्रिवरात्मजौ ॥

कामशास्त्रप्रणेतातु बाभ्रव्यः सतुबालकः । पंचालइति लोकेषुविश्रुतः सर्वशास्त्रवित् ॥

पुंडरीकोऽपि धर्मात्मा वेदशास्त्रप्रवर्तकः । भूत्वा जातिस्मरैशोकात्पतितावग्रतस्तथा ॥

हा वयंकर्मविभ्रष्टाः कामतः कर्मबंधनात् । एवं विलप्य बहुशस्त्रयस्ते योगपारगाः ॥

विस्मयाच्छ्राद्धमाहात्म्यमभिनंद्य पुनःपुनः । सतुतस्मैधनंदत्वाप्रभूतग्रामसंयुतम् ११६ ॥

विसृज्यब्राह्मणंतंचवृद्धंधनमदान्वितम् । आत्मीयंनृपतिःपुत्रंनृपलक्षणसंयुतम् ॥ १२० ॥

विष्वक्सेनाभिधानंचराजाराज्येऽभ्यषेचयत् । मानसेसलिलेसर्वेततस्तेयोगिनांवराः ॥

ब्रह्मदत्तादयस्तस्मिन्पितृभक्ताविमत्सराः । सन्नतिश्चाभवद्धृष्टा मयैव तवदर्शितम् ॥

राजन्योगफलं सर्वंयदेतदभिलक्ष्यते । तथेतिप्राहराजापिपुरस्तादभिनंदयन् ॥ १२३ ॥

त्वत्प्रसादादिदं सर्वं मयैवं प्राप्यते फलम् ॥ १२४ ॥

ततस्ते योगमास्थाय सर्वं एव वनौकसः । ब्रह्मरंध्रेण परमं पदमापुस्तपोबलात् ॥१२५॥

एवमायुर्धनंविद्यांस्वर्गमोक्षसुखानिच । प्रयच्छंति सुतं राज्यं नृणांतुष्टाःपितामहाः ॥
इदं च पितृमाहात्म्यं ब्रह्मदत्तस्य वै नृप ॥ १२६ ॥
द्विजेभ्यःश्रावयेद्विद्वान्श्रृणोतिपठतेऽपिवा । कल्पकोटिशतंसाग्रंब्रह्मलोकेमहीयते ॥
इति श्रीपाद्मपुराणेप्रथमेसृष्टिखण्डेपितृमाहात्म्यकथनंनाम दशमोऽध्यायः ।

एकादशोऽध्यायः ।

श्राद्धयोग्यप्रशस्तदेशवर्णनम् ।

भीष्म उवाच ।

कस्मिन्वासरभागेतुश्राद्धीश्राद्धंसमाचरेत् । तीर्थेषुकेषुवैश्राद्धंकृतंबहुफलंद्विज ॥ १ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

तीर्थंतुपुष्करंनामयत्तुश्रेष्ठतमंस्मृतम् । सर्वेषांद्विजमुख्यानांमनोरथमिवस्थितम् ॥ २ ॥
तत्र दत्तं हुतं जप्तमनन्तं भवति ध्रुवम् । पितृणां वल्लभं नित्यमृषीणांपरमंमतम् ॥ ३ ॥
नंदाथललितातद्वत्तीर्थंमायापुरीशुभा । तथामित्रपदंराजंस्ततःकेदारमुत्तमम् ॥ ४ ॥
गंगासागरमित्याहुःसर्वतीर्थमयंशुभम् । तीर्थंब्रह्मसरस्तद्वच्छतद्रुसलिलंशुभम् ॥ ५ ॥
तीर्थंतुनैमिषंनामसर्वतीर्थफलप्रदम् । गंगोद्भेदस्तुगोमत्यांयत्रोद्भूतःसनातनः ॥ ६ ॥
तथा यज्ञवराहस्तु देवदेवश्च शूलधृक् । यत्र तत्कांचनन्दानमष्टादशभुजोहरः ॥ ७ ॥
नेमिस्तुधर्मचक्रस्य शीर्णायत्राभवत्पुरा । तदेतन्नैमिषारण्यंसर्वतीर्थनिषेवितम् ॥ ८ ॥
देवदेवस्यतत्रापिवराहस्यचदर्शनम् । यःप्रयातिसपूतात्मानारायणपुरंव्रजेत् ॥ ९ ॥
कोकामुखंपरंतीर्थमिन्द्रमार्गोऽपिलक्ष्यते । अथापिपितृतीर्थंतुब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥१०॥
पुष्करारण्यसंस्थोऽसौ यत्र देवःपितामहः । विरिंचिदर्शनं श्रेष्ठमपवर्गफलप्रदम् ॥ ११ ॥
कृतं नाम महापुण्यं सर्वपापनिषूदनम् । यत्राद्योनारसिंहस्तु स्वयमेव जनार्दनः ॥ १२ ॥

तीर्थमिक्षुमती नाम पितॄणां च शुभावहा । तुष्यन्ति पितरो नित्यं गंगायमुनसंगमे ॥
कुरुक्षेत्रंमहापुण्यंयत्रमार्गोऽपिलक्ष्यते । अद्यापिपितृतीर्थंतु सर्वकामफलप्रदम् ॥ १४ ॥
नीलकण्ठमितिख्यातंपितृतीर्थंनराधिप । तथा भद्रसरः पुण्यं सरोमानसमेव च ॥
मंदाकिनी तथाऽच्छोदाविपाशा चसरस्वती । सर्वमित्रपदं तद्वद्वैद्यनाथं महाफलम् ॥
क्षिप्रा नदीतथापुण्या तथा कालंजरंशुभम् । तीर्थोद्भेदं हरोद्भेदं गर्भभेदं महालयम् ॥
भद्रेश्वरं विष्णुपदं नर्मदाद्वारमेव च । गयापिंडप्रदानेन समान्याहुर्महर्षयः ॥ १८ ॥
एतानिपितृतीर्थानि सर्वपापहराणि च । स्मरणादपिलोकानांकिमुश्राद्धप्रदायिनाम् ॥
ॐकारंपितृतीर्थंतु कावेरीकपिलोदकम् । संभेदश्चण्डवेगायांतथैवामरकंटकम् ॥ २० ॥
कुरुक्षेत्राच्चद्विगुणंतस्मिन्स्नानादिकंभवेत् । शुक्रतीर्थंतुविख्यातं तीर्थं सोमेश्वरं परम् ॥
सर्वव्याधिहरंपुण्यंफलंकोटिगुणाधिकम् । श्राद्धेदानेतथाहोमेस्वाध्यायेचापिसन्निधौ ॥
कायावारोहणं नाम देवदेवस्य शूलिनः । अवतारं रोचमानं ब्राह्मणावसथे शुभे ॥ २३ ॥
जातं तत्सुमहापुण्यं तथा चर्मण्वती नदी । शूलतापीपयोष्णी च पयोष्णीसंगमस्तथा ॥
महौषधीचारणाचनागतीर्थप्रवर्त्तिनी । महावेणा नदी पुण्या महाशालस्तथैव च ॥२५॥
गोमती वरुणा तद्वत्तीर्थंहौताशनं परम् । भैरवं भृगुतुंगं च गौरीतीर्थमनुत्तमम् ॥ २६ ॥
तीर्थंवैनायकंनाम वस्त्रेश्वरमनुत्तमम् । तथा पापहरं नामपुण्या वेत्रवती नदी ॥ २७ ॥
महारुद्रं महालिंगं दशार्णा च महानदी । शतरुद्रा शताह्वाचतथापितृपदंपुरम् ॥ २८ ॥
अंगारवाहिका तद्वन्नदौद्वौशोणघर्घरौ । कालिका च नदीपुण्या पितराचनदीशुभा ॥
एतानिपितृतीर्थानिशस्यंतेस्नानदानयोः । श्राद्धमेतेषुयद्दत्तं तदनंतफलं स्मृतम् ॥ ३० ॥
शतावटा नदी ज्वालाशरद्वी च नदीतथा । द्वारका कृष्णतीर्थं च तथा ह्युदक्सरस्वती ॥
नदीमालवतीनामतथाचगिरिकर्णिका । धूतपापं तथा तीर्थं समुद्रे दक्षिणे तथा ॥ ३२ ॥
गोकर्णोगजकर्णश्चतथा चक्रनदी शुभा । श्रीशैलं शाकतीर्थं च नारसिंहमतःपरम् ॥३३॥
महेंद्रं चतथा पुण्या पुण्याचापिमहानदी । एतेष्वपिसदाश्राद्धमनंतफलदंस्मृतम् ॥ ३४ ॥
दर्शनादपिपुण्यानिसद्यः पापहराणिवै । तुंगभद्रा नदी पुण्या तथा चक्ररथीति च ॥
भीमेश्वरं कृष्णवेणाकावेरी चांजना नदी । नदी गोदावरीपुण्या त्रिसंध्यापूर्णमुत्तमम् ॥

तीर्थंत्रैयम्बकंनामसर्वतीर्थनमस्कृतम् । यत्रास्तेभगवान्भीमःस्वयमेवत्रिलोचनः ॥ ३७॥
श्राद्धमेतेषुसर्वेषुदत्तंकोटिगुणंभवेत् ॥ स्मरणादपि पापानि व्रजंतिशतधानृप ॥ ३८ ॥
श्रीपर्णाचनदीपुण्याव्यासतीर्थमनुत्तमम् । तथामत्स्यनदीकाराशिवधारातथैव च ॥
भवतीर्थंचविख्यातंपुण्यतीर्थंचशाश्वतम् । पुण्यंरामेश्वरंतद्वद्वेणापुरमलंपुरम् ॥ ४० ॥
अंगारकं च विख्यातमात्मदर्शमलंबुषम् । वत्सव्रातेश्वरंतद्वत्तथागोकामुखंपरम् ॥ ४१ ॥
गोवर्द्धनंहरिश्चन्द्रंपुरश्चंद्रंपृथूदकम् । सहस्राक्षंहिरण्याक्षंतथाच कदली नदी ॥ ४२ ॥
नामधेयानिचतथातथासौमित्रिसंगतम् । इन्द्रनीलंमहानादंतथाचप्रियमेलकम् ॥ ४३ ॥
एतान्यपिसदाश्राद्धेप्रशस्तान्यधिकानिच । एतेषुसर्वदेवानांसांनिध्यंपठ्यतेयतः ॥ ४४ ॥
दानमेतेषुसर्वेषुभवेत्कोटिशताधिकम् । बाहुदाचनदीपुण्यातथासिद्धवटंशुभम् ॥ ४५ ॥
तीर्थं पाशुपतं चैव नदीपर्यटिकातथा । श्राद्धमेतेषुसर्वेषुदत्तंकोटिशतोत्तरम् ॥ ४६ ॥
तथैव पंचतीर्थं च यत्र गोदावरी नदी । युता लिंगसहस्रेण सव्येतरजलावहा ॥ ४७ ॥
जामदग्न्यस्य तत्तीर्थं मोदायतनमुत्तमम् । प्रतीकस्य भयात्सिद्धा यत्र गोदावरीनदी ॥
तीर्थंतद्धव्यकव्यानामप्सरोगणसंयुतम् । श्राद्धाग्निदानकार्यंचतत्रकोटिशताधिकम् ॥
तथा सहस्रलिंगंच राघवेश्वरमुत्तमम् । सेंद्रकालानदीपुण्यातत्रशक्रोगतःपुरा ॥ ५० ॥
निहत्य नमुचिं मित्रं तपसा स्वर्गमाप्तवान् । तत्र दत्तं नरैः श्राद्धमनंतफलदं भवेत् ॥
पुष्करं नाम वै तीर्थंशालग्रामं तथैव च । शोणपातश्च विख्यातो यत्र वैश्वानराशयः ॥
तीर्थंसारस्वतंचैवस्वामितीर्थंतथैवच । मलंदरानदीपुण्याकौशिकीचंद्रकातथा ॥ ५३ ॥
विदर्भाचाथवेगाचपयोष्णीप्राङ्मुखापरा । कावेरीचोत्तरागाचतथाजालंधरोगिरिः ॥
एतेषु श्राद्धतीर्थेषु श्राद्धमानंत्यमश्नुते । लोहदंडं तथा तीर्थंचित्रकूटस्तथैव च ॥ ५५ ॥
विंध्यंसर्वत्रगंगायास्तथानद्यास्तटंशुभम् । कुब्जाम्रकंतथातीर्थमुर्वशीपुलिनंतथा ॥
संसारमोचनंतीर्थंतथैवऋणमोचनम् । एतेषुपितृतीर्थेषुश्राद्धमानंत्यमश्नुते ॥ ५७ ॥
अट्टहासंतथातीर्थंगौतमेश्वरमेवच । तथावासिष्ठतीर्थंचभारतं चततःपरम् ॥ ५८ ॥
ब्रह्मावर्तंकुशावर्तंहंसतीर्थंतथैवच । पिंडारकंचविख्यातंशंखोद्धारंतथैवच ॥ ५९ ॥
भांडेश्वरंविल्वकंचनीलपर्वतमेवच । तथाचबदरीतीर्थंसर्वतीर्थेश्वरेश्वरम् ॥ ६० ॥

वसुधाराह्वयंतीर्थरामतीर्थंतथैवच । जयंती विजया चैव शुक्रतीर्थंतथैवच ॥ ६१ ॥
एषुश्राद्धप्रदातारः प्रयांतिपरमंपदम् । तीर्थं मातृगृहंनाम करवीरपुरं तथा ॥ ६२ ॥
सप्तगोदावरीनामसर्वतीर्थेश्वरेश्वरम् । तत्रश्राद्धंप्रदातव्यमनंतफलमीप्सुभिः ॥ ६३ ॥
कीकटेषुगयापुण्यापुण्यंराजगृहंवनम् । च्यवनस्याश्रमंपुण्यंनदीपुण्यापुनःपुना ॥ ६४ ॥
विषयाराधनंपुण्यंनदीयातुपुनःपुना । यत्रगाथाविचरतिब्रह्मणापरिकीर्तिता ॥ ६५ ॥
एष्टव्यांबहवःपुत्रायद्येकोऽपिगयांव्रजेत् । यजेतवाश्वमेधेननीलंवावृषमुत्सृजेत् ॥ ६६ ॥
एषागाथाविचरतितीर्थेष्वायतनेषुच । सर्वेमनुष्याराजेंद्रकीर्त्तयंतःसमागताः ॥ ६७ ॥
किमस्माकंकुलेकश्चिद्गयांयास्यतियः सुतः । प्रीणयिष्यतितान्गत्वासप्तपूर्वांस्तथापरान्
मातामहानामप्येवंश्रुतिरेषाचिरंतनी । गंगायामस्थिनिचयंगत्वाक्षेपस्यतियःसुतः ॥
तिलैःसप्ताष्टभिर्वापिदास्यतेचजलांजलिम् । अरण्यत्रितये वापि पिंडदानंकरिष्यति ॥
प्रथमंपुष्करारण्येनैमिषेतदनंतरम् । धर्मारण्यंपुनःप्राप्यश्राद्धंभक्त्याप्रदास्यति ॥ ७१ ॥
गयायां धर्मपृष्ठे वा सरसि ब्रह्मणस्तथा । गयाशीर्षवटे चैव पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥ ७२
व्रजन्कृत्वा निवापंयस्त्वच्चानंपरिसर्पति । नरकस्थान्पितॄन्सोऽपिस्वर्गंनयतिसत्वरम् ॥
कुले तस्य न राजेंद्र प्रेतोभवतिकश्चन । प्रेतत्वंमोक्षभावं च पिंडदानाच्चगच्छति ॥ ७४॥

एको मुनिस्ताम्रकराग्रहस्तो ह्याम्रेषु मूले सलिलं ददाति ।
आम्राश्च सिक्ताः पितरश्च तृप्ता एका क्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा ॥७५॥

गयायांपिंडदानस्यनान्यद्दानंविशिष्यते । एकेनपिंडदानेन तृप्तास्ते मोक्षगामिनः ॥ ७६॥

धान्यप्रदानं प्रवरं वदंति वसुप्रदानं च तथा मुनींद्राः ।
गयासु तीर्थेषु नरैः प्रदत्तं तद्धर्महेतुं प्रवरं वदंति ॥ ७७ ॥

सर्वात्मना सुरुचिना महाचलमहानदी । येतु पश्यंति तां गत्वामानसंदक्षिणोत्तरे ॥
प्रणम्य द्विजमुख्येभ्यः प्राप्तंतैर्जन्मनःफलम् । यद्यदिच्छतिवैमर्त्यस्तत्तदाप्नोत्यसंशयम् ॥
एषतूद्देशतःप्रोक्तस्तीर्थानांसंग्रहोमया । वागीशोऽपि नशक्नोतिविस्तरात्किमुमानुषः ॥
सत्यंतीर्थंदयातीर्थंतीर्थमिन्द्रियनिग्रहः । वर्णाश्रमाणां गेहेऽपि तीर्थं शम उदाहृतम् ॥
येषुतीर्थेषुयच्छ्राद्धंतत्कोटिगुणमिष्यते । गयायां यत्तु वै श्राद्धं तच्छ्राद्धमपवर्गदम् ॥

यस्मात्तस्मात्प्रयत्नेनतीर्थश्राद्धंविधीयते । प्रातःकालोमुहूर्तां स्त्रीन्संगवस्तावदेवतु ॥
मध्याह्नस्त्रिमूहूर्तःस्यादपराह्णस्ततःपरम् । सायाह्नस्त्रिमूहूर्तःस्याच्छ्राद्धंतत्र न कारयेत् ॥
राक्षसी नाम सा वेला गर्हिता सर्वकर्मसु । अह्नो मुहूर्ता व्याख्याता दशपंचच सर्वदा ॥
तत्राष्टमोमुहूर्तोयःसकालःकुतपःस्मृतः । मध्याह्नात्सर्वदायस्मान्मंदीभवतिभास्करः ॥
तस्मादनंतफलदस्तत्रारंभोविशिष्यते । खड्गपात्रं च कुतपस्तथा नैपालकंबलः ॥ ८७ ॥
रूक्मंदर्भास्तिलागावोदौहित्रश्चाष्टमःस्मृतः । पापंकुत्सितमित्याहुस्तस्यतत्तापकारिणः
अष्टावेतेयतस्तस्मात्कुतपाइतिविश्रुताः । ऊर्ध्वंमुहूर्तात्कुतपान्मुहूर्त्तं च चतुष्टयम् ॥ ८६ ॥
मुहूर्त्तपंचकंचैवस्वधावाचनमिष्यते । विष्णुदेहसमुद्भूताः कुशाः कृष्णतिलास्तथा ॥
श्राद्धस्य लक्षणंकालमितिप्राहुर्मनीषिणः । तिलोदकांजलिर्देयोजलांते तीर्थवासिभिः ॥
सदर्भहस्तेनैकेनगृहेश्राद्धंगमिष्यति । पुण्यंपवित्रमायुष्यं सर्वपापविनाशनम् ॥ ६२ ॥
ब्रह्मणाचैवकथितंतीर्थश्राद्धानुकीर्तनम् । शृणोतियः पठेद्वापि श्रीमान्संजायते नरः ॥
श्राद्धकालेचवक्तव्यं तथा तीर्थनिवासिभिः । सर्वपापोपशांत्यर्थमलक्ष्मीनाशनंमतम् ॥

इदं पवित्रं यशसो निधानमिदं महापातकनाशनं च ।
ब्रह्मार्करुद्रैरभिपूजितंच श्राद्धस्य माहात्म्यमुशंति तज्ज्ञाः ॥ ६५ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणेप्रथमेसृष्टिखंडे श्राद्धप्रकरणंनामएकादशोऽध्यायः ।

द्वादशोऽध्यायः ।

सोमवंशवर्णनम् ।

भीष्म उवाच ।

सोमवंशः कथंजातः कथयात्र विशारद । तद्वंशे के तु राजानोबभूवुः कीर्तिवर्धनाः ॥१॥

पुलस्त्य उवाच ।

आदिष्टोब्रह्मणापूर्वमत्रिःसर्गविधौपुरा । अनंतरंनामतपः सृष्ट्यर्थं तप्तवान्विभुः ॥ २ ॥

यदानंदकरं ब्रह्म भगवन्क्लेशनाशनम् । ब्रह्मरुद्रेन्द्रसूर्याणामभ्यंतरमतीन्द्रियम् ॥ ३ ॥
शान्तिकृत्वात्ममनसातदत्रिः संयमेस्थितः । माहात्म्यंतपसोवापिपरमानंदकारकम् ॥
यस्माद्वंशपतिः सार्द्धं समये तदधिष्ठितः । तंदृष्ट्वाचप्रसोमेनतस्मात्सोमोऽभवद्विभुः ॥५॥
अथसुस्रावनेत्राभ्यां जलंतत्रात्रिसंभवम् । द्योतयद्विश्वमखिलंज्योत्स्नयासचराचरम् ॥
तद्दिशोजगृहुस्तत्रस्त्रीरूपेणासहृच्छयाः । गर्भोभूत्वोदरेतासांस्थितः सोऽप्यत्रिसंभवः ।
आशाश्च मुमुचुर्गर्भमशक्ता धारणे ततः । समादायाथ तं गर्भमेकीकृत्य चतुर्मुखः ॥ ८ ॥
युवानमकरोद् ब्रह्मा सर्वायुधधरं नरम् । स्यंदनेऽथ सहस्तेन वेदशक्तिमये प्रभुः ॥ ९ ॥
आरोप्यलोकमनयदात्मीयंसपितामहः । ततोब्रह्मर्षिभिः प्रोक्तंह्यस्मत्स्वामीभवत्वयम् ॥
ऋषिभिर्देवगंधर्वैरप्सरोभिस्तथैवच । स्तूयमानस्य तस्याभूदधिकं महदंतरम् ॥११॥
तेजोवितानादभवद्भुविदिव्यौषधीगणः । तद्दीप्तिरधिकातस्माद्रात्रौभवतिसर्वदा ॥ १२ ॥
तेनौषधीशः सोमोऽभूद् द्विजेष्वपि हि गण्यते । वेदधामा रसश्चायं यदिदं मंडलंशुभम् ॥
क्षीयते वर्धते चैव शुक्लेकृष्णेचसर्वदा । विंशतिं च तथा सप्त दक्षः प्राचेतसो ददौ ॥
रूपलावण्यसंयुक्तास्तस्मैकन्याःसुवर्चसः । ततः शक्तिसहस्राणांसहस्राणिदशैवतु ।१५॥
तपश्चकारशीतांशुर्विष्णुध्यानैकतत्परः । ततस्तुष्टश्चभगवांस्तस्मै नारायणोहरिः ॥१६॥
वरंवृणीष्वचोवाच परमात्मा जनार्दनः । ततो वव्रे वरं सोमः शक्रलोके यजाम्यहम् ॥
प्रत्यक्षमेव भोक्तारो भवन्तु ममममन्दिरे । राजसूये सुरगणा ब्रह्माद्यायेचतुर्विधाः ॥१८॥
रक्षपालःसुरोऽस्माकमास्तांशूलधरोहरः । तथेत्युक्तः समाजह्रेराजसूयंतुविष्णुना ॥१९॥
होतात्रिर्भृगुरध्वर्युरुद्गाताचचतुर्मुखः । ब्रह्मत्वमगमत्तस्य उपद्रष्टा हरिः स्वयम् ॥ २० ॥
सदस्याःसर्वदेवास्तुराजसूयविधिस्मृतः । वसवोऽध्वर्यवस्तद्वद्विश्वेदेवास्तथैवच ॥२१॥
त्रैलोक्यंदक्षिणातेनऋत्विग्भ्यःप्रतिपादिता । सोमःप्राप्याथदुष्प्राप्यमैश्वर्यंसृष्टिसत्कृतम् ।

सप्तलोकैकनाथत्वं प्राप्तस्स्वतपसा तदा ॥ २३ ॥
कदाचिदुद्यानगतामपश्यदनेकपुष्पाभरणोपशोभाम् ।
बृहन्नितंबस्तनभारखेदां पुष्पावभंगेऽप्यतिदुर्बलांगीम् ।
भार्यां च तां देवगुरोरनंगबाणाभिरामायतचारुनेत्राम् ॥ २४ ॥

तारां स ताराधिपतिःस्मरार्तःकेशेषु जग्राह विविक्तभूमौ ।
सापि स्मरार्ता सहते न रेमे तद्रूपकांत्या हृतमानसैव॥ २५ ॥
चिरं विहृत्याथ जगाम तारां विधुर्गृहीत्वा स्वगृहं ततोऽपि ।
न तृप्तिरासीत्स्वगृहेऽपि तस्य तारानुरक्तस्य सुखागमेषु ॥ २६ ॥
बृहस्पतिस्तद्विरहाग्निदग्धस्तद्ध्याननिष्ठैकमना बभूव ।
शशाक शापं न च दातुमस्मै न मंत्रशस्त्राग्निविषैरनेकैः ॥ २७ ॥
तस्यापकर्तुं विविधै रुपायैर्नैवाभिचारैरपि वागधीशः ।
स याचयामास ततस्तु देवं सोमं स्वभार्यार्थमनंगतप्तः ॥ २८ ॥
सयाच्यमानोऽपि ददौ न भार्यां बृहस्पतेः कामवशेनमोहितः ।
महेश्वरेणाथ चतुर्मुखेन साध्यैर्मरुद्भिःसह लोकपालैः ॥ २९ ॥
ददौ यदा तां न कथंचिदिंदुस्तदा शिवःक्रोधपरो बभूव ।
यो वामदेवः प्रथितःपृथिव्यामनेकरुद्रार्चितपादपद्मः ॥ ३० ॥
ततःसशिष्यो गिरिशः पिनाकी बृहस्पतेः स्नेहवशानुबद्धः ।
धनुर्गृहित्वाजगवंपुरारिर्जगाम भूतेश्वरसिद्धजुष्टः ॥ ३१ ॥
युद्धाय सोमेन विशेषदीप्ततृतीयनेत्रानलभीमवक्त्रः ।
सहैव जग्मुश्च गणेश्वराणां विंशाधिका षष्टिरथोग्रमूर्तिः ॥ ३२ ॥
यक्षेश्वराणां सगणैरनेकैर्युतोऽन्वगात्स्यंदनसंस्थितानाम् ।
वेतालयक्षोरगकिन्नराणां पद्मेन चैकेन तथार्बुदानाम् ॥ ३३ ॥
लक्षैस्त्रिभिर्द्वादशभी रथानांसोमोऽप्यगात्तत्र विवृद्धमन्युः ।
शनैश्चरांगारकवृद्धतेजा नक्षत्रदैत्यासुरसैन्ययुक्तः ॥ ३४ ॥
जग्मुर्भयं सप्त तथैवलोकाधरावनद्वीपसमुद्रगर्भाः ।
ससोममेवाभ्यगमत्पिनाकी गृहीतदीप्तास्त्रविशालवह्निः ॥ ३५ ॥
अथाभवद्भीषणभीमसोमसैन्यद्वयस्याथमहाहवोऽसौ ।
अशेषसत्वक्षयकृत्प्रवृद्धस्तीक्ष्णप्रधानोज्वलनैकरूपः ॥ ३६ ॥

शस्त्रैरथान्योन्यमशेषसैन्यंद्वयोर्जगामक्षयमुग्रतीक्ष्णैः ।
पतन्ति शस्त्राणि तथोज्ज्वलानि स्वर्भूमिपातालमलं दहंति ॥ ३७ ॥
रुद्रःक्रोधाद्ब्रह्मशिरोमुमोचसोमोऽपिसोमास्त्रममोघवीर्यम् ।
तयोर्निपातेन समुद्रभूम्योरथांतरिक्षस्य च भीतिरासीत् ॥ ३८ ॥
तदा सुयुद्धं जगतां क्षयाय प्रवृद्धमालोक्यपितामहोऽपि ।
ततः प्रविश्याथ कथंचिदेव निवारयामास सुरैःसहैव ॥ ३९ ॥
अकारणंकिंक्षयकृज्जनानां सोम त्वयापीदमकार्यकार्यम् ।
यस्मात्परस्त्रीहरणाय सोम त्वया कृतं युद्धमतीवभीमम् ॥ ४० ॥
पापग्रहस्त्वं भविता जनेषु पापोऽस्यलंवह्निमुखाशिनां त्वम् ।
भार्यामिमामर्पयवाक्पतेस्त्वं प्रमाणयन्नेव मदीयवाचम् ॥ ४१ ॥
तथेति चोवाच हिमांशुमाली युद्धादपाक्रामदतःप्रशांतः ।
वृहस्पतिस्तामथ गृह्य तारां हृष्टो जगाम स्वगृहंच रुद्रः ॥ ४२ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

ततः संवत्सरस्यांतेद्वादशादित्यसन्निभः । दिव्यपीताम्बरधरोदिव्याभरणभूषितः ॥४३॥
तारोदरविनिष्क्रान्तःकुमारस्सूर्यसन्निभः । सर्वार्थशास्त्रविद्विद्वान्हस्तिशास्त्रप्रवर्तकः ॥
नामयद्राजपुत्रोऽर्थविश्रुतोराजवैद्यकः । राज्ञःसोमस्यपुत्रत्वाद्राज पुत्रोबुधःस्मृतः ॥४५॥
जनानांतुसतेजांसिसर्वाण्येवाक्षिपद्बली । ब्रह्माद्यास्तत्रचाजग्मुर्देवादेवर्षिभिःसह ॥४६॥
बृहस्पतिगृहेसर्वेजातकर्मोत्सवेतदा । पप्रच्छुस्ते सुरास्तारां केन जातःकुमारकः ॥४७ ॥
ततः सा लज्जिता तेषां न किंचिदवदत्तदा । पुनःपुनस्तदा पृष्टा लज्जयन्तीवरांगना॥४८॥
सोमस्येतिचिरादाहततोगृह्याद्विभुःसुतम् । बुधइत्यकरोन्नामप्रादाद्राज्यंचभूतले ॥ ४९॥
अभिषेकं ततःकृत्वा प्रदानमकरोद्विभुः । ग्रहमध्यं प्रदायाथ ब्रह्मा ब्रह्मर्षिभिर्युतः ॥ ५० ॥
पश्यतां सर्वभूतानां तत्रैवांतरधीयत । इलोदरे च धर्मिष्ठं बुधः पुत्रमजीजनत् ॥ ५१ ॥
अश्वमेधशतंसाग्रमकरोद्यस्स्वतेजसा । पुरूरवाइतिख्यातःसर्वलोकनमस्कृतः ॥ ५२ ॥
हिमवच्छिखरेरम्येसमाराध्यपितामहम् । लोकैश्वर्यमगाद्राजन्सप्तद्वीपपतिस्तदा ॥ ५३ ॥

केशिप्रभृतयोदैत्यास्तद्भृत्यत्वंसमागताः । उर्वशीयस्यपत्नीत्वमगमद्रूपमोहिता ॥ ५४॥
सप्तद्वीपा वसुमती सशैलवनकानना । धर्मेण पालिता तेन सर्वलोकहितैषिणा ॥ ५५ ॥
चामरग्रहणाकीर्तिःस्वयंचैवांगवाहिका । ब्रह्मप्रसादाद्देवेंद्रोददावर्धासनंतदा ॥ ५६ ॥
धर्मार्थकामान्धर्मेणसमवेतोऽभ्यपालयत् । धर्मार्थकामास्तंद्रष्टुमाजग्मुःकौतुकान्विताः।
जिज्ञासवस्तच्चरितंकथंपश्यतिनःसमम् । भक्त्याचक्रेततस्तेषामर्घ्यपाद्यादिकंततः ॥५८॥
आसनत्रयमानीयदिव्यंकनकभूषणम् । निवेश्याथाकरोत्पूजामीषद्धर्मेऽधिकांपुनः ॥५९॥
जग्मतुस्तौचकामार्थावतिकोपंनृपंप्रति । अर्थःशापमदात्तस्मैलोभात्वन्नाशमेष्यसि ॥६०
कामोऽप्याहतवोन्मादोभवितागंधमादने । कुमारवनमाश्रित्यवियोगाच्चोर्वशीभवात् ॥
धर्मोप्याहचिरायुस्त्वंधार्मिकश्चभविष्यसि । संततिस्तवराजेंद्रयावदाचंद्रतारकम् ॥६२॥
शतशोवृद्धिमायातिननाशंभुवियास्यति । षष्टिंवर्षाणिचोन्मादऊर्वशीकामसंभवः ॥६३॥
अचिरादेवभार्यापिवशमेष्यतिचाप्सराः । इत्युक्त्वांतर्दधुःसर्वेराजाराज्यंतदान्वभूत् ॥
अहन्यहनिदेवेंद्रं द्रष्टुं याति पुरूरवाः । कदाचिदारुह्य रथं दक्षिणांबरचारिणा ॥ ६५ ॥
सार्धंशक्रेणसोऽपश्यन्नीयमानामथांबरे । केशिनादानवेंद्रेणचित्रलेखामथोर्वशीम् ॥६६॥
तंविनिर्जित्यसमरे विविधायुधपातनैः । पुरा शक्रोऽपिसमरेयेनवज्रीविनिर्जितः ॥ ६७ ॥
मित्रत्वमगमत्तेनप्रादादिंद्रायचोर्वशीम् । ततःप्रभृतिमित्रत्वमगमत्पाकशासनः ॥ ६८ ॥
सर्वलोकेऽतिशयितं पुरूरवसमेव तम् । प्राह वज्री तु संतुष्टो नीयतामियमेवच ॥ ६९ ॥
सापुरूरवसःप्रीत्यै चागायच्चरितं महत् । लक्ष्मी स्वयंवरं नाम भरतेन प्रवर्तितम् ॥७०॥
मेनकांचोर्वशींरंभांनृत्यध्वमितिचादिशत् । ननर्तसलयंतत्रलक्ष्मीरूपेणचोर्वशी ॥ ७१ ॥
सापुरूरवसंदृष्ट्वानृत्यंतीकामपीडिता । विस्मृताभिनयंसर्वंयत्पुरातनचोदितम् ॥ ७२ ॥
शशापभरतःक्रोधाद्वियोगात्तस्यभूतले । पंचपंचाशदब्दानिलताभूताभविष्यसि ॥ ७३ ॥
ततस्तमुर्वशीगत्वाभर्त्तारमकरोच्चिरम् । शापानुभवनांते च उर्वशी बुधसूनुना ॥ ७४ ॥
अजीजनत्सुतानष्टौनामतस्तान्निबोधमे । आयुर्दृढायुर्वश्यायुर्बलायुर्धृतिमान्वसुः ॥७५॥
दिव्यजायुःशतायुश्चसर्वेदिव्यबलौजसः । आयुषोनहुषःपुत्रो वृद्धशर्मातथैवच ॥ ७६ ॥
रजिर्दंडोविशाखश्चवीराःपंच महारथाः । रजेःपुत्रशतं जज्ञे राजेयाइतिविश्रुतम् ॥ ७७ ॥

रजिराराधयामासनारायणमकल्मषम् । तपसातोषितो विष्णुर्वरंप्रादान्महीपतेः ॥ ७८ ॥
देवासुरमनुष्याणामभूत्सविजयीतदा । अथ देवासुरं युद्धमभूद्वर्षशतत्रयम् ॥ ७९ ॥
प्रह्लादशक्रयोर्भीमं न कश्चिद्विजयी तयोः । ततोदेवासुरैःपृष्टःपृथग्देवश्चतुर्मुखः ॥ ८० ॥
अनयोर्विजयीकःस्याद्रजिर्यत्रेतिसोऽब्रवीत् । जयायप्रार्थितोराजासहायस्त्वंभवस्वनः ॥
दैत्यैःप्राहयदिस्वामीवोभवामिततस्त्वलम् । नासुरैःप्रतिपन्नंतत्प्रतिपन्नंसुरैस्तदा ॥८२॥
स्वामीभवत्वमस्माकंबलनाशायविद्विषः । ततोविनाशिताःसर्वेयेवध्यावज्रपाणिनः ॥८३
पुत्रत्वमगमत्तुष्टस्तस्येंद्रःकर्मणा ततः । दत्त्वेंद्राय पुरा राज्यं जगाम तपसे रजिः ॥ ८४ ॥
रजिपुत्रैस्तदाछिन्नंबलादिंद्रस्यवै यदा । यज्ञभागश्च राज्यंचतपोबलगुणान्वितैः ॥ ८५ ॥
राज्यभ्रष्टस्ततः शक्रो रजिपुत्रनिपीडितः । प्राहवाचस्पतिंदीनःपीडितोऽस्मिरजेःसुतैः ॥
नयज्ञभागोराज्यंमेपीडितस्यबृहस्पते । राज्यलाभायमेयत्नं विधत्स्वधिषणाधिप ॥८७॥
ततोबृहस्पतिः शक्रमकरोद्बलदर्पितम् । ग्रहशांतिविधानेनपौष्टिकेनचकर्मणा ॥ ८८ ॥
गत्वाथमोहयामासरजिपुत्रान्बृहस्पतिः । जिनधर्मंसमास्थायवेदबाह्यंसधर्मवित् ॥ ८९
वेदत्रयीपरिभ्रष्टांश्चकारधिषणाधिपः । वेदबाह्यान्परिज्ञायहेतुवादसमन्वितान् ॥ ९० ॥
जघानशक्रोवज्रेणसर्वान्धर्मबहिष्कृतान् । नहुषस्यप्रवक्ष्यामिपुत्रान्सप्तैवधार्मिकान् ॥९१
यतिर्ययातिश्शर्यातिरुत्तरःपरएवच । अ (आ) यतिर्वियतिश्चैवसप्तैतेवंशवर्द्धनाः ॥ ९२ ॥
यतिःकुमारभावेऽपियोगीवैखानसोऽभवत् । ययातिरकरोद्राज्यंधर्मैकशरणःसदा ॥ ९३
शर्मिष्ठातस्यभार्याभूद्दुहितावृषपर्वणः । भार्गवस्यात्मजाचैवदेवयानीचसुव्रता ॥ ९४ ॥
ययातेःपंचदायादास्तान्प्रवक्ष्यामिनामतः । देवयानीयदुंपुत्रंतुर्वसुंचाप्यजीजनत् ॥ ९५ ॥
तथाद्रुह्यमणं (नुं) पूरुंशर्मिष्ठाजनयत्सुतान् । यदुःपूरुश्चभरतस्तेवैवंशविवर्द्धनाः ॥ ९६ ॥
पूरोर्वंशंप्रवक्ष्यामियत्रजातोऽसिपार्थिव । यदोस्तुयादवाजातायत्रतौबलकेशवौ ॥ ९७॥
भारावतारणार्थाय पांडवानां हितायच । यदोःपुत्रा बभूवुश्च पंचदेवसुतोपमाः ॥ ९८ ॥
सहस्रजित्तथाज्येष्ठःक्रोष्टानीलोञ्जिकोरघुः । सहस्रजितोदायादःशतजिन्नामपार्थिवः ॥९९
शतजितश्चदायादास्त्रयःपरमधार्मिकाः । हैहयश्च हयश्चैव तथा तालहयश्च यः ॥ १०० ॥
हैहयस्यतुदायादोधर्मनेत्रःप्रतिश्रुतः । धर्मनेत्रस्यकुंतिस्तुसंहतस्तस्यचात्मजः ॥ १०१ ॥

संहतस्यतुदायादोमहिष्मान्नामपार्थिवः । आसीन्महिष्मतःपुत्रोभद्रसेनःप्रतापवान् ॥
वाराणस्यामभूद्राजाकथितःपूर्वमेवहि । भद्रसेनस्यपुत्रस्तुदुर्दमोनामधार्मिकः ॥ १०३ ॥
दुर्दमस्यसुतोभीमोधनकोनामवीर्यवान् । धनकस्यसुताह्यासंश्चत्वारोलोकविश्रुताः ॥
कृताग्निःकृतवीर्यश्चकृतधर्मातथैवच । कृतौजाश्चचतुर्थोऽभूत्कृतवीर्याच्चसोऽर्जुनः ॥१०५॥
जातोबाहुसहस्रेणसप्तद्वीपेश्वरोनृपः । वर्षायुतंतपस्तेपेदुश्चरंपृथिवीपतिः ॥ १०६ ॥
दत्तमाराधयामासकार्त्तवीर्योऽत्रिसंभवम् । तस्मैदत्तोवरान्प्रादाच्चतुरःपुरुषोत्तमः ॥१०७
पूर्वंबाहुसहस्रंतुसवव्रेराजसत्तमः । अधर्मंध्यायमानस्यभीतिश्चापिनिवारणम् ॥ १०८ ॥
युद्धेनपृथिवींजित्वाधर्मेणावाप्यवैबलम् । संग्रामेवर्तमानस्यवधश्चैवाधिकाद्भवेत् ॥
एतेनेयंवसुमतीसप्तद्वीपासपत्तना । सप्तोदधिपरिक्षिप्ताक्षात्रेणविधिनाजिता ॥ ११० ॥
जज्ञे बाहुसहस्रंवइच्छतस्तस्यधीमतः । सर्वे यज्ञा महाबाहोस्तस्यासन्भूरिदक्षिणाः ॥
सर्वेकांचनयूपास्तेसर्वेकांचनवेदिकाः । सर्वेदेवैश्चसंप्राप्ताविमानस्थैरलंकृतैः ॥ ११२ ॥
गंधर्वैरप्सरोभिश्चनित्यमेवापिसेविताः । यस्ययज्ञेजगौगाथागंधर्वोनारदस्तथा ॥११३॥
कार्त्तवीर्यस्यराजर्षेर्महिमानंनिरीक्ष्यसः । न नूनंकार्त्तवीर्यस्यगतिंयास्यंतिपार्थिवाः ॥
यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्च विक्रमेण श्रुतेनच । सप्तद्वीपाननुचरन्वेगेन पवनोपमः ॥ ११५ ॥
पंचाशीतिसहस्राणिवर्षाणांचनराधिपः । सप्तद्वीपपृथिव्याश्चचक्रवर्ती बभूवह ॥ ११६ ॥
सएवपशुपालोऽभूत्क्षेत्रपालःसएवहि । सएववृष्ट्यापर्जन्योयोगित्वादर्जुनोऽभवत् ॥
योऽसौबाहुसहस्रेणज्याघातकठिनत्वचा । भातिरश्मिसहस्रेणशारदेनेवभास्करः ॥११८
एषनाममनुष्येषुमाहिष्मत्यांमहाद्युतिः । एषवेगंसमुद्रस्यप्रावृट्कालेभजेतवै ॥ ११९ ॥
क्रीडन्नेवसुखायैवप्रतिस्रोतोमहीपतिः । ललनाःक्रीडितास्तेनप्रतिबद्धोर्मिमालिनी ॥
ऊर्मिभ्रुकुटिमालासाशंकिताभ्येतिनर्मदा । एषएवमनोर्वंशेत्ववगाहेन्महार्णवम् ॥ १२१ ॥
करेणोद्धृत्यवेगंतुकामिनीर्प्राणनेनतु । तस्यबाहुसहस्रेणक्षोभ्यमाणेमहोदधौ ॥ १२२ ॥
भवंतिलीनानिश्चेष्टाःपातालस्थामहासुराः । तदूरुक्षोभचकिता अमृतोत्पादशंकिताः ॥
नतानिश्चलमूर्द्धानोभवंतिचमहोरगाः । एषधन्वीचचिक्षेपरावणंप्रतिसायकान् ॥ १२४॥
एष धन्वी धनुर्गृह्य उत्सिक्तं पंचभिःशरैः । लंकेशं मोहयित्वातु सबलं रावणं बलात् ॥

निर्जित्यबद्धात्वानीयमाहिष्मत्यांबबंधतम् । ततोगतोऽहंतस्याग्रेअर्जुनंसंप्रसादयन् ॥
मुमोचराजन्पौत्रंमेसख्यंकृत्वाचपार्थिव । तस्यबाहुसहस्रस्यबभूवज्यातलस्वनः ॥ १२७
युगांताग्नेःप्रवृत्तस्ययथाज्यातलनिःस्वनः । अहोबलंविधेर्वीर्यंभार्गवःसयदाच्छिनत् ॥
मृधे सहस्रं बाहूनांहेमतालवनंयथा । यंवसिष्ठस्तुसंक्रुद्धोह्यर्जुनंशप्तवान्विभुः ॥ १२९ ॥
यस्माद्वनं प्रदग्धं ते विश्रुतं मम हैहय । तस्मात्तेदुष्कृतंकर्मकृतमन्योहनिष्यति ॥ १३० ॥
छित्वाबाहुसहस्रंतेप्रमथ्यतरसाबली । तपस्वीब्राह्मणस्त्वांवैवधिष्यतिसभार्गवः ॥१३१
तस्य रामोऽथ हंतासीन्मुनिशापेनधीमतः । तस्य पुत्रशतं त्वासीत्पंच तत्र महारथाः ॥
कृतास्त्राबलिनःशूराधर्मात्मानोमहाबल । शूरसेनश्चशूरश्च धृष्टो वै कृष्ण एवच ॥ १३३ ॥
जयद्ध्वजःसर्वेकर्ताअवन्तिश्चरसापतिः ॥ जयध्वजस्यपुत्रस्तुतालजंघोमहाबलः ॥१३४॥
तस्यपुत्राश्शतान्येव तालजङ्घा इतिस्मृताः । तेषां पंचकुलान्यासन्हैहयानांमहात्मनाम् ॥
वीतिहोत्राश्चसंजाताभोजाश्चावंतयस्तथा । तुंडकेराश्चविक्रांतास्तालजंघाःप्रकीर्तिताः ॥
वीतिहोत्रसुतश्चापिअनंतोनामवीर्यवान् । दुर्जयस्तस्यपुत्रस्तुबभूवामित्रकर्षणः ॥ १३७॥
सद्भावेनमहाराजःप्रजाधर्मेणपालयन् । कार्तवीर्यार्जुनोनामराजाबाहुसहस्रधृत् ॥ १३८॥
येनसागरपर्यंताधनुषानिर्जितामही । यस्तस्यकीर्तयेन्नामकल्यमुत्थायमानवः ॥ १३९ ॥
न तस्य वित्तनाशःस्यान्नष्टं चलभते पुनः । कार्तवीर्यस्य यो जन्म कथयेदिह धीमतः ॥
यथा यष्टा यथा दाता स्वर्गलोके महीयते ॥ १४० ॥

इतिश्रीपाद्मपुराणेप्रथमेसृष्टिखण्डे यदुवंशकीर्तनंनाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः ।

क्रोष्टुवंशविस्तारवर्णनम् ।

पुलस्त्य उवाच

क्रोष्टोःशृणुत्वंराजेन्द्रवंशमुत्तमपूरुषम् । यस्यान्वयायेसंभूतो विष्णुर्वृष्णिकुलोद्वहः ॥
क्रोष्टोरेवाभवत्पुत्रोवृजिनीवान्महायशाः । तस्यपुत्रोऽभवत्स्वातिःकुशंकुस्तत्सुतोभवत्

कुशंकोरभवत्पुत्रो नाम्नाचित्ररथोऽस्यतु । शशबिंदुरितिख्यातश्चक्रवर्तीबभूवह ॥ ३ ॥
अत्रानुवंशश्लोकोऽयंगीतस्तस्यपुराऽभवत् । शशबिंदोस्तुपुत्राणांशतानामभवच्छतम् ॥
धीमतांचारुरूपाणां भूरिद्रविणतेजसाम् । तेषांशतप्रधानानांपृथुसाह्वामहाबलाः ॥ ५ ॥
पृथुश्रवाःपृथुयशाःपृथुतेजाः पृथूद्भवः । पृथुकीर्तिः पृथुमतो राजानः शशबिंदवः ॥ ६ ॥
शंसंति च पुराणज्ञाः पृथुश्रवसमुत्तमम् । ततश्चास्याभवत्पुत्र उशनाःशत्रुतापनः ॥ ७ ॥
पुत्रश्चोशनसस्तस्यशिनेयुर्नाम सत्तमः । आसीच्छिनेयोःपुत्रो यः सरुक्मकवचोमतः ॥
निहत्यरुक्मकवचो युद्धेयुद्धविशारदः । धन्विनोविविधैर्बाणैरवाप्यपृथिवीमिमाम् ॥
अश्वमेधेऽददाद्राजाब्राह्मणेभ्यश्च दक्षिणाम् । जज्ञेतुरुक्मकवचात्परावृत्परवीरहा ॥१० ॥
तत्पुत्राजज्ञिरेपंच महावीर्यपराक्रमाः । रुक्मेषुःपथुरुक्मश्च ज्यामघःपरिघोहरिः ॥ ११ ॥
परिघंचहरिंचैव विदेहेऽस्थापयत्पिता । रुक्मेषुरभवद्राजापृथुरुक्मस्तथाश्रयः ॥ १२ ॥
ताभ्यांप्रव्राजितोराज्याज्ज्यामघोऽवसदाश्रमे । प्रशांतश्चाश्रमस्थस्तुब्राह्मणेनविबोधितः
जगाम धनुरादाय देशमन्यं ध्वजी रथी । नर्मदातटएकाकीकेवलंवृत्तिकर्शितः ॥ १४ ॥
ऋक्षवंतंगिरिंगत्वामुक्तमन्यैरुपाविशत् । ज्यामघस्याभवद्भार्या शैब्यापरिणतासती ।१५।
अपुत्रोऽप्यभवद्राजाभार्यामन्यामचिन्तयन् । तस्यासीद्विजयोयुद्धेतत्रकन्यामवाप्यसः ॥
भार्यामुवाचसंत्रासात्स्नुषेयंतेशुचिस्मिते । एवमुक्त्वाब्रवीदेनंकस्यकेयंस्नुषेतिवै ।१७।

राजोवाच ।

यस्तेजनिष्यतेपुत्रस्तस्यभार्या भविष्यति । तस्याःसा तपसोग्रेण कन्यायाःसंप्रसूयत ॥
पुत्रंविदर्भंसुभगं शैब्यापरिणतासती । राजपुत्र्यांतुविद्वांसौस्नुषायां क्रथकौशिकौ ।१६।
लोमपादंतृतीयंतु पुत्रंपरमधार्मिकम् । पश्चाद्विदर्भोऽजनयच्छूरं रणविशारदम् ॥२० ॥

लोमपादात्मजो बभ्रु धृतिस्तस्य तु चात्मजः ।
कौशिकस्यात्मजश्चेदिस्तस्माच्चैद्यनृपाःस्मृताः ॥ २१ ॥

क्रथोविदर्भपुत्रोयःकुंतिस्तस्यात्मजोऽभवत् । कुन्तेर्धृष्टस्ततोजज्ञेधृष्टात्सृष्टःप्रतापवान् ॥
सृष्टस्यपुत्रोधर्मात्मानिवृत्तिः परवीरहा । निवृत्तिपुत्रोदाशार्होनाम्नासतुविदूरथः ॥२३॥
दाशार्हपुत्रोभीमस्तु भीमाज्जीमूतउच्यते । जीमूतपुत्रोविकृतिस्तस्य भीमरथःसुतः ॥

अथभीमरथस्यापिपुत्रोनवरथःकिल । तस्यचासीद्दशरथः शकुनिस्तस्यचात्मजः ॥२५ ॥
तस्मात्करंभस्तस्माच्चदेवरातोबभूवह । देवक्षत्रोऽभवद्राजादेवरातान्महायशाः ॥ २६ ॥
देवगर्भसमो जज्ञे देवक्षत्रस्य नन्दनः । मधुर्नाममहातेजामधोःकुरुवशःस्मृतः ॥ २७ ॥
आसीत्कुरुवशात्पुत्रः पुरुहोत्रःप्रतापवान् । अंशुर्जज्ञेऽथवैदर्भ्यां द्रवंत्यांपुरुहोत्रतः ॥२८॥
वेत्रकीत्वभङ्गर्भार्याअंशोस्तस्याव्यजापत । सात्वतःसत्वसंपन्नःसात्वतां कीर्तिवर्द्धनः ॥
इमांविसृष्टिंविज्ञायज्यामघस्यमहात्मनः । प्रजावानेतिसायुज्यं राज्ञः सोमस्यधीमतः ॥
सात्वतान्सत्वसंपन्नाकौसल्यासुषुवेसुतान् । तेषांगर्गाश्चचत्वारोविस्तरेणैवताञ्छृणु ॥
भजमानस्यसृंजय्यांभाजनामासुतोऽभवत् । सृंजयस्यसुतायांतुभाजकास्तुततोऽभवन्
तस्यभाजस्यभार्येद्वेसुषुवातेसुतान्बहून् । नेमिंचकृकणंचैववृष्णिपरपुरंजयम् ॥ ३३ ॥
तेभाजकाःस्मृतायस्माद्भजमानद्विजज्ञिरे । देवावृधःपृथुर्नाम मधूनां मित्रवर्धनः ॥ ३४ ॥
अपुत्रस्त्वभवद्राजाचचारपरमंतपः । पुत्रः सर्वगुणोपेतोममभूयादितिस्पृहन् ॥ ३५ ॥
संयोज्यकृष्णमेवाथपर्णाशायाजलंस्पृशन् । सातोयस्पर्शनात्तस्यसांनिध्यंनिम्नगाह्यगात्
कल्याणश्चरतस्तस्यशुशोचनिम्नगाततः । चिंतयाथपरीतात्माजगामाथविनिश्चयम् ॥
भूत्वागच्छाम्यहंनारीयस्यामेवंविधःसुतः । जायेत तस्माद्याहंभवाम्यस्यसुतप्रदा ।३८॥
अथ भूत्वा कुमारी सा बिभ्रतीपरमंवपुः । ज्ञापयामास राजानंतामियेषनृपस्ततः ॥३६॥
अथ सा नवमे मासि सुषुवे सरितांवरा । पुत्रं सर्वगुणोपेतंबभ्रुंदेवावृधात्परम् ॥ ४० ॥
अत्रवंशेपुराणज्ञाब्रुवंतीतिपरिश्रुतम् । गुणान्देवावृधस्याथकीर्त्तयन्तोमहात्मनः ॥ ४१ ॥
बभ्रुःश्रेष्ठोमनुष्याणां देवैर्देवावृधःसमः । षष्टिःशतंचपुत्राणां सहस्राणि च सप्ततिः ॥४२॥
एतेऽमृतत्वंसंप्राप्ताबभ्रोर्देवावृधादपि । यज्ञदानतपोधीमान्ब्रह्मण्यःसुदृढव्रतः ॥ ४३ ॥
रूपवांश्चमहातेजाभोजोऽतोऽमृतकावती । शरकान्तस्यदुहितासुषुवेचतुरः सुतान् ॥
कुकुरंभजमानंचश्यामंकंबलबर्हिषम् । कुकुरस्यात्मजोवृष्णिर्वृष्णेस्तुतनयोधृतिः ॥ ४५ ॥
कपोतरोमातस्यापितित्तिरिस्तस्यचात्मजः । तस्यासीद्बहुपुत्रस्तुविद्वान्पुत्रोनरिःकिल
ख्यायतेतस्यनामान्यच्चंदनोदकदुंदुभिः । अस्यासीदभिजित्पुत्रस्ततोजातःपुनर्वसुः ॥
अपुत्रोह्यभिजित्पूर्वमृषिभिःप्रेरितोमुदा । अश्वमेधंतुपुत्रार्थमाजुहावनरोत्तमः ॥ ४८ ॥

तस्यमध्येविचरतःसभामध्यत्समुत्थितः । अन्धस्तुविद्वान्धर्मज्ञोयज्ञदातापुनर्वसुः ॥४९॥
तस्यासीत्पुत्रमिथुनंवसोश्चारिजितःकिल । आहुकश्चाहुकीचैवख्यातामतिमतांवर ॥५०॥
इमांश्चोदाहरंत्यत्रश्लोकांश्चातिरसात्मकान् । सोपासंगानुकर्षाणांतनुत्राणांवरूथिनाम्
रथानांमेघघोषाणांसहस्राणिदशैवतु । नासत्यवादिनोभोजानायज्ञानासहस्रदाः ॥५२॥
नाशुचिर्नाप्यविद्वांसोनभोजादधिकोऽभवत् । आहुकांतमनुप्राप्तइत्येषोऽन्वयउच्यते ॥
आहुकश्चाप्यवंतीषुस्वसारंचाहुकीं ददौ । आहुकस्यैवदुहितापुत्रौद्वौसमसूयत ॥ ५४ ॥
देवकं चोग्रसेनश्च देवगर्भसमावुभौ । देवकस्य सुताश्चैव जज्ञिरे त्रिदशोपमाः ॥ ५५ ॥
देववानुपदेवश्चसुदेवोदेवरक्षितः । तेषां स्वसारः सप्तैव वसुदेवाय ता ददौ ॥ ५६ ॥
देवकीश्रुतदेवाचयशोदाचश्रुतिश्रवा । श्रीदेवाचोपदेवाच सुरूपाचेति सप्तमी ॥ ५७ ॥
नवोग्रसेनस्यसुताःकंसस्तेषांचपूर्वजः । न्यग्रोधस्तुसुनामाचकंकःशंकुःसुभूश्चयः ॥५८॥
अन्यस्तुराष्ट्रपालश्चबद्धमुष्टिःसमुष्टिकः । तेषांस्वसारःपंचासन्कंसाकंसवतीतथा ॥ ५९॥
सुरभीराष्ट्रपालीचकंकाचेतिवरांगनाः । उग्रसेनःसहापत्योव्याख्यातःकुकुरोद्भवः ॥ ६० ॥
भजमानस्यपुत्रोऽभूद्रथिमुख्योविदूरथः । राजाधिदेवःशूरश्चविदूरथसुतोऽभवत् ॥ ६१॥
राजाधिदेवस्यसुतौजज्ञातेवीरसंमतौ । क्षत्रव्रतेऽतिनिरतौशोणाश्वःश्वेतवाहनः ॥ ६२॥
शोणाश्वस्यसुताःपंचशूरारणविशारदाः । शमीचराजशर्माचनिमूर्त्तःशत्रुजिच्छुचिः ॥६३॥
शमीपुत्रःप्रतिक्षत्रःप्रतिक्षत्रस्यचात्मजः । प्रतिक्षत्रसुतोभोजोहृदीकस्तस्यचात्मजः ।६४।
हृदीकस्याभवन्पुत्रा दश भीमपराक्रमाः ॥
कृतवर्माग्रजस्तेषां शतधन्वा च सत्तमः । देवार्हश्च सुभानुश्च भीषणश्च महाबलः ॥६५।
अजातश्च विजातश्च करकश्च करंधमः । देवार्हस्य सुतो विद्वाञ्ज्ञेकंबलबर्हिषः ॥ ६६ ॥
असमौजास्ततस्तस्यसमौजाश्चसुतावुभौ । अजातपुत्रस्यसुतौप्रजायेतेसमौजसौ ॥६७॥
समौजःपुत्राविख्यातास्त्रयःपरमधार्मिकाः । सुदंशश्च सुवंशश्च कृष्णइत्यनुनामतः ॥
अंधकानामिमं वंशं यःकीर्तयति नित्यशः । आत्मनोविपुलंवंशंप्रजामाप्नोत्ययं ततः ॥
गांधारीचैवमाद्रीचक्रोष्टोर्भार्येबभूवतुः । गांधारीजनयामाससुमित्रंमित्रवत्सलम् ॥७०॥
माद्रीयुधाजितं पुत्रं ततो वै देवमीढुषम् । अनमित्रंशिनिंचैवपंचात्रकृतलक्षणाः ॥ ७१ ॥

अनमित्रसुतोनिघ्नोनिघ्नस्यापिचद्वौसुतौ। प्रसेनश्चमहावीर्यःशक्तिसेनश्चतावुभौ ॥७२॥ ॥
स्यमंतकंप्रसेनस्यमणिरत्नमनुत्तमम्। पृथिव्यांमणिरत्नानांराजेतिसमुदाहृतम् ॥ ७३॥ ॥
हृदिकृत्वासुबहुशोमणिंतंसव्यराजत। मणिरत्नंययाचेऽथराजार्थंशौरिरुत्तमम् ॥ ७४ ॥
गोविंदश्च न तं लेभे शक्तोऽपिन जहारसः। कदाचिन्मृगयांयातःप्रसेनस्तेनभूषितः ॥७५॥
बिले शब्दं स शुश्रावकृतंसत्त्वेनकेनचित्। ततः प्रविश्य स बिलंप्रसेनोह्यृक्षमासदत् ॥
ऋक्षःप्रसेनंचतथाऋक्षंचापिप्रसेनजित्। आसाद्ययुयुधातेतौपरस्परजयेच्छया ॥ ७७ ॥
हत्वाऋक्षःप्रसेनंचततस्तंमणिमाददात्। प्रसेनंतुहतंश्रुत्वागोविंदःपरिशंकितः ॥ ७८ ॥
सत्राजितातुतद्भ्रात्रायादवैश्चतथापरैः। गोविंदेनहतोनूनंप्रसेनोमणिकारणात् ॥ ७९ ॥
प्रसेनस्तुगतोऽरण्यंमणिरत्नेनभूषितः। तंदृष्ट्वानिजघानाथनत्यजन्तंस्यमंतकम् ॥ ८० ॥
जघानैवाप्रदानेन शत्रुभूतं च केशवः। इतिप्रवादस्सर्वत्रख्यातस्सत्राजिताकृतः ॥ ८१ ॥
अथदीर्घेणकालेनमृगयांनिर्गतः पुनः। यदृच्छयाचगोविंदोबिलाभ्याशमथागमत् ॥८२॥
ततश्शब्दंयथापूर्वंसचक्रेऋक्षराड्बली। शब्दंश्रुत्वातुगोविंदःखड्गपाणिःप्रविश्यच ॥८३॥
अपश्यज्जांबवंतं च ऋक्षराजं महाबलम्। ततस्तूर्णं हृषीकेशस्तमृक्षमतिरंहसा ॥ ८४ ॥
जांबवंतं स जग्राह क्रोधसंरक्तलोचनः। दृष्ट्वाचैनंतथाविष्णुंकर्मभिर्वैष्णवींतनुम्। ८५।
तुष्टावऋक्षराजोऽपिविष्णुसूक्तेनसत्वरम्। ततस्तुभगवांस्तुष्टोवरेणसमरोचयत् ॥ ८६॥

जाम्बवानुवाच।

इष्टंचक्रप्रहारेणत्वत्तोमेमरणंशुभम्। कन्याचेयंममसुताभर्त्तारंत्वामवाप्नुयात् ॥ ८७ ॥
योऽयंमणिःप्रसेनात्तुहत्वाचैवाप्तवानहम्। सत्वयागृह्यतांनाथमणिरेषोऽत्रवर्त्तते ॥ ८८॥
इत्युक्तोजांबवंतंवैहत्वाचक्रेणकेशवः। कृतकार्योमहाबाहुःकन्यांचैवाददौ(चादाय) तदा ॥
ततःसत्राजितेचैतन्मणिरत्नंसवैददौ। यल्लब्धमृक्षराजाच्चसर्वयादवसन्निधौ ॥ ९० ॥
तेनमिथ्याप्रवादेनसंतप्तोऽयंजनार्दनः। ततस्तेयादवाःसर्वेवासुदेवमथाब्रुवन् ॥ ९१ ॥
अस्माकंमनसिह्यासीत्प्रसेनस्तुत्वयाहतः। एकैकस्यास्तु सुंदर्योदशसत्राजितः सुताः ॥
सत्योत्पन्नास्सुतास्तस्यशतमेकंचविश्रुताः। विख्याताश्चमहावीर्याभंगकारश्चपूर्वजः ९३
सत्याव्रतवतीस्वप्राभंगकारस्यपूर्वजा। सुषुवुस्ताःकुमारांश्चशिनीवालःप्रतापवान् ॥९४॥

अभंगोयुयुधानश्च शिनिस्तस्यात्मजोऽभवत् । तस्माद्युगंधराःपुत्राश्शतंतस्यप्रकीर्तिताः॥
अनमित्राह्वयोयोवै विख्यातोवृष्णिवंशजः । अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे कनिष्ठोवृष्णिनंदनः ॥
अनमित्राच्चसंजज्ञेवृष्णिवीरोयुधाजितः । अन्यौचतनयौवीरावृषभश्चित्रएवच ॥ ९७ ॥
ऋषभःकाशिराजस्यसुतांभार्यामनिंदिताम् । जयंतश्चजयंतींचशुभांभार्यामविंदत ॥ ९८ ॥
जयंतस्यजयंत्यांवैपुत्रःसमभवत्ततः । सदा यज्वातिधीरश्चश्रुतवानतिथिप्रियः ॥ ९९ ॥
अक्रूरःसुषुवेतस्मात्सुदक्षोभूरिदक्षिणः । रत्नाकन्याचशैब्याचअक्रूरस्तामवाप्तवान् ।१००।
पुत्रानुत्पादयामास एकादशमहाबलान् । उपलंभंसदालंभमुत्कलंचार्य्यशैशवम् ॥ १०१॥
सुधीरं च सदाय क्षंशत्रुघ्नंवारिमेजयम् । धर्मदृष्टिंचधर्मंचसृष्टिमौलितथैवच ॥ १०२ ॥
सर्वे च प्रतिहर्तारोरत्नानांजज्ञिरेचते ॥ अक्रूराच्छूरसेनायांसुतौद्वौकुलनन्दनौ ॥ १०३ ॥
देववानुपदेवश्च जज्ञाते देवसंमतौ । अश्विन्यां त्रिचतुःपुत्राःपृथुर्विपृथुरेवच ॥ १०४ ॥
अश्वग्रीवोऽश्वबाहुश्चसुपार्श्वकगवेषणौ । रिष्टनेमिःसुवर्चाचसुधर्मामृदुरेवच ॥ १०५ ॥
अभूमिर्बहुभूमिश्चश्रविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ । इमांमिथ्याभिशर्स्तियोवेदकृष्णस्यबुद्धिमान् ॥
नसामिथ्याभिशापेनअभिगम्यश्चकेनचित् । ऐक्ष्वाकीसुषुवेपुत्रंशूरमद्भुतमीढुषम् ॥१०७॥
मीढुषाज्जज्ञिरे शूरा भोजायां पुरुषा दश । वसुदेवो महाबाहुः पूर्वमानकदुंदुभिः ।१०८।
देवभागस्तथाजज्ञेतथादेवश्रवाःपुनः । अनावृष्टिःकुनिश्चैवननंदिश्चैव सकृद्यशाः ॥१०९।
श्यामःशमीकःसप्ताख्यःपंचचास्यवरांगनाः । श्रुतकीर्तिः पृथाचैव श्रुतदेवीश्रुतश्रवाः ॥
राजाधिदेवीचतथापंचैतावीरमातरः । वृद्धस्य श्रुतदेवी तु कारूषं सुषुवे नृपम् ॥१११॥
कैकेयाच्छ्रुतकीर्तेस्तुजज्ञेसंतर्दनो नृपः । श्रुतश्रवसि चैद्यस्य सुनीथः समपद्यत ॥ ११२ ॥
राजाधिदेव्याःसंभूतो धर्माद्भय विवर्जितः । शूरःसख्येनबद्धोऽसौकुंतिभोजेपृथां ददौ ॥
एवंकुंतीसमाख्याचवसुदेवस्वसापृथा । कुंतिभोजोऽददात्तांतुपांडोर्भार्यामनिंदिताम् ॥
पाण्डवर्थेऽसूतदेवीसादेवपुत्रान्महारथान् । धर्माद्युधिष्ठिरोजज्ञेवाताज्जज्ञेवृकोदरः ॥११५॥
इंद्राद्धनंजयश्चैव शक्रतुल्यपराक्रमः । योऽसौऽत्रिपुरुषाज्जातस्त्रिभिरंशैर्महारथः ॥ ११६ ॥
देवकार्यकरश्चैव सर्वदानवसूदनः । अवध्याश्चापिशक्रस्यदानवायेनघातिताः ॥ ११७ ॥
स्थापितस्सतुशक्रेणलब्धवर्चास्त्रिविष्टपे । माद्रवत्यांतुजनितावश्विनावितिनःश्रुतम् ॥

नकुलः सहदेवश्च रूपसत्वगुणान्वितौ । रोहिणी पौरवी नामभार्याचानकदुंदुभेः ॥
लेभे ज्येष्ठं सुतं रामं सारणं च रणप्रियम् । दुर्धरं दमनं चैव पिंडारकमहाहनुम् ॥
अथमायात्वमावस्यादेवकीयाभविष्यति । तस्यांजज्ञेमहाबाहुः पूर्वंतुसप्रजापतिः ॥
अनुजाताभवत्कृष्णासुभद्राभद्रभाषिणी । विजयोरोचमानस्तुवर्द्धमानश्चदेवलः ॥
एते सर्वे महात्मान उपदेव्यां प्रजज्ञिरे । अगावहं महात्मानं बृहद्देवी व्यजायत ॥
बृहद्देव्यां स्वयं जज्ञे मन्दको नामनामतः । सप्तमं देवकी पुत्रं रैमन्तं सुषुवे सुतम् ॥
गवेषणं महाभागं संग्रामेष्वपराजितम् । श्रुतदेव्या विहारे तु वने विचरता पुरा ॥
वैश्यायांसमधाच्छौरिः पुत्रंकौशिकमग्रजम् । श्रुतंधरातुराज्ञी तु सौरगंधपरिग्रहः ॥
पुत्रं च कपिलं चैव वसुदेवात्मजो बली । जनानांचविषादोऽभूत्प्रथमःसधनुर्द्धरः ॥
सौभद्रश्चाभवश्चैवमहासत्वौबभूवतुः । देवभागसुतश्चापिप्रस्तावःसबुधःस्मृतः ॥
पण्डितंप्रथमंबाहुदेवश्रवसमुत्तमम् । इक्ष्वाकुकुलतोयस्यमनस्विन्यायशस्विनी ॥ १२६॥
निवृत्तशत्रुःशत्रुघ्नः श्रद्धातस्मादजायत । गंडूषायामपत्यानि कृष्णस्तुष्टःशतं ददौ ॥
सचंद्रंतुमहाभागं वीर्यवंतं महाबलम् । रंतिपालश्च रंतिश्च नंदनस्य सुतावुभौ ॥
शमीकपुत्राश्चत्वारो विक्रांताःसुमहाबलाः । विरजश्च धनुश्चैव व्योमस्तस्यसस्रृंजयः ॥
अनपत्योऽभवद्व्योमःसृंजयस्यधनंजयः । योजायमानोभोजत्वंराजर्षित्वमवाप्तवान् ॥
कृष्णस्यजन्माभ्युदयं यः कीर्तयतिनित्यशः । शृणोतिवानरोनित्यंसर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
अथदेवो महादेवःपूर्वं कृष्णःप्रजापतिः । विहारार्थं सदेवोऽसौ मानुषेष्वप्यजायत ॥
देवक्यांवसुदेवेनतपसापुष्करेक्षणः । चतुर्बाहुस्तुसंजातोदिव्यरूपोजनाश्रयः ॥ १३६ ॥
श्रीवत्सलक्षणंदेवंदृष्ट्वादेवैःसलक्षणम् । उवाच वसुदेवस्तं रूपं संहर वै प्रभो ॥ १३७ ॥
भीतोऽहंदेवकंसाद्धितस्त्वेतद्ब्रवीमिते । ममपुत्राहतास्तेनश्रेष्ठाःषड्भीमविक्रमाः ॥
वसुदेववचःश्रुत्वा रूपं संहरदच्युतः । अनुज्ञाप्य तु तंशौरिर्नंदगोपगृहेऽनयत् ॥
दत्वातंनंदगोपायरक्ष्यतामितिचाब्रवीत् । अतस्तुसर्वकल्याणंयादवानांभविष्यति ।१४०
अयंतुगर्भोदेवक्यायावत्कंसंहनिष्यति । तावत्पृथिव्यांभविताक्षेमोभारावहःपरम् ॥
येवैदुष्टास्तुराजानस्तांस्तुसर्वान्हनिष्यति । कौरवाणां रणे भूते सर्वक्षत्रसमागमे ॥

सारथ्यमर्जुनस्यायंस्वयंदेवःकरिष्यति । निःक्षत्रियांधरांकृत्वाभोक्ष्यतेशेषतांगताम् ॥
सर्वं यदुकुलं चैव देवलोकं नयिष्यति ।

भीष्म उवाच ।

क एष वसुदेवस्तु देवकी का यशस्विनी ॥ १४४ ॥
नंदगोपश्च कश्चैवयशोदाकामहाव्रता । याविष्णुंपोषितवतीयांसमातेत्यभाषत ॥
या गर्भं जनयामास या चैनं समवर्द्धयत् ।

पुलस्त्यउवाच ।

पुरुषः कश्यपश्चासावदितिस्तत्प्रिया स्मृता ॥ १४६ ॥
कश्यपोब्रह्मणोंऽशस्तुपृथिव्याअदितिस्तथा । नंदोद्रोणस्समाख्यातोयशोदाथधराभवत्
अथकामान्महाबाहुर्देवक्याःसमपूरयत् । येतयाकांक्षिताःपूर्वमजात्तस्मान्महात्मनः ॥
अचिरंसमहादेवःप्रविष्टोमानुषींतनुम् । मोहयन्सर्वभूतानियोगाद्योगीसमाययौ ॥१४९॥
नष्टेधर्मेतथायज्ञेविष्णुर्वृष्णिकुलेविभुः । कर्तुधर्मव्यवस्थानमसुराणांप्रणाशनम् ॥१५०॥
रुक्मिणीसत्यभामा च सत्यानाग्निजितातथा । सुमित्राचतथाशैब्यागांधारीलक्ष्मणातथा ॥
सुभीमा च तथा माद्री कौसल्या विजयातथा । एवमादीनिदेवीनांसहस्राणिच षोडश ॥
रुक्मिणीजनयामास पुत्राञ्शृणुविशारदान् । चारुदेष्णंरणेशूरं प्रद्युम्नञ्च महाबलम् ॥
सुचारुं चारुभद्रञ्च सदश्वं ह्रस्वमेवच । सप्तमञ्चारुगुप्तञ्च चारुभद्रञ्च चारुकम् ॥ १५४
चारुहासं कनिष्ठञ्च कन्याञ्चारुमतीं तथा । जज्ञिरे सत्यभामाया भानुर्भीमरथः क्षणः ॥
रोहितोदीप्तिमांश्चैवताम्रबंधोजलंधमः । चतस्रोजज्ञिरेतेषांस्वसारश्चयवीयसीः ॥१५६॥
जांबवत्याः सुतोजज्ञे सांबश्चैवातिशोभनः । सौरशास्त्रस्यकर्तावै प्रतिमामंदिरस्यच ॥
मूलस्थानेनिवेशश्चकृतस्तेनमहात्मना । तुष्टेन देवदेवेन कुष्ठरोगो विनाशितः ॥ १५८ ॥
सुमित्रंचारुमित्रंचमित्रविंदाव्यजायत ॥ मित्रबाहुःसुनीथश्च नाग्नजित्यांबभूवतुः ॥१५९॥
एवमादीनि पुत्राणां सहस्राणि निशामय । अशीतिश्च सहस्राणां वासुदेवसुतास्तथा ॥
प्रद्युम्नस्यचदायादोवैदर्भ्यां बुद्धिसत्तमः । अनिरुद्धोरणेयोद्धाजज्ञेऽस्यमृगकेतनः ॥१६१॥
काम्यासुपार्श्वतनयासांबाल्लेभेतरस्विनम् । सत्त्वप्रकृतयोदेवाःपराःपंचप्रकीर्तिताः ॥

तिस्रःकोट्यःप्रवीराणांयादवानांमहात्मनाम् । षष्टिः शतसहस्राणिवीर्यवंतोमहाबलाः ॥
देवांशाःसर्व एवेहउत्पन्नास्तेमहौजसः । देवासुरे हता ये वा असुरास्तुमहाबलाः ॥
इहोत्पन्ना मनुष्येषु बाधंते सर्वमानवान् । तेषामुद्धरणार्थाय उत्पन्ना यादवेकुले ॥
कुलानांशतमेकंचयादवानाम्महात्मनाम् । विष्णुस्तेषां प्रणेता च प्रभुत्वेचव्यवस्थितः ॥
निदेशस्थायिनस्तस्य ऋद्धयंते सर्वयादवाः ।

भीष्म उवाच ।

सप्तर्षयः कुबेरश्च यक्षो मणिधरस्तथा ॥१६७॥
सात्यकिर्नारदश्चैवशिवोधन्वन्तरिस्तथा । आदिदेवस्तथा विष्णुरेभिस्तु सह दैवतैः ॥
किमर्थं सहसंभूताः सुरसम्भूतयः क्षितौ । भविष्याःकतिवाचास्यप्रादुर्भावामहात्मनः ॥
सर्वक्षेत्रेषुसर्वेषुकिमर्थमिहजायते । यदर्थमिहसंभूतोविष्णुर्वृष्ण्यंधके कुले ॥ १७० ॥
पुनः पुनर्मनुष्येषु तन्मे त्वं ब्रूहि पृच्छतः ।

पुलस्त्य उवाच ।

शृणुभूपप्रवक्ष्यामिरहस्यातिरहस्यकम् । यथादिव्यतनुर्विष्णुर्मानुषेष्विह जायते ॥
युगांते तु परावृत्तेकालेप्रशिथिलेप्रभुः । देवासुरमनुष्येषु जायते हरिरीश्वरः ॥ १७२ ॥
हिरण्यकशिपुर्दैत्यस्त्रैलोक्यस्यप्रशासिता । बलिनाधिष्ठितेचैवपुनर्लोकत्रयेक्रमात् ॥१७३
सख्यमासीत्परमकंदेवानामसुरैः सह । युगाख्यादश संपूर्णा आसीदव्याकुलंजगत् ॥१७४
निदेशस्थायिनश्चापितयोर्देवासुराःस्वयम् । बद्धोबलिर्विमर्दोऽयंसुसंवृत्तःसुदारुणः ॥१७५
देवानामसुराणांचघोरःक्षयकरोमहान् । कर्तुं धर्मव्यवस्थांचजायतेमानुषेष्विह ॥ १७६ ॥
भृगोः शापनिमित्तं तु देवासुरकृते तदा ।

भीष्म उवाच ।

कथं देवासुरकृते हरिर्देहमवाप्तवान् ॥ १७७ ॥
दैवासुरं यथावृत्तं तन्मे कथय सुव्रत ।

पुलस्त्य उवाच ।

तेषां जयनिमित्तं वै संग्रामाः स्युः सुदारुणाः ॥ १७८ ॥

अवतारादशद्वौचशुद्धामन्वंतरेस्मृताः । नामधेयंसमासेन शृणुतेषांविवक्षितम् ॥ १७६ ॥
प्रथमोनारसिंहस्तुद्वितीयश्चापिवामनः । तृतीयस्तुवराहश्चचतुर्थोऽमृतमंथनः ॥ १८० ॥
संग्रामःपंचमश्चैवसुघोरस्तारकामयः । षष्ठोह्याडीवकाख्यश्चसप्तमस्त्रैपुरस्तथा ॥१८१॥
अष्टमश्चांधकवधोनवमोवृत्रघातनः । ध्वजश्चदशमस्तेषांहालाहलस्ततःपरम् ॥ १८२ ॥
प्रथितोद्वादशस्तेषांघोरःकोलाहलस्तथा । हिरण्यकशिपुर्दैत्योनरसिंहेनसूदितः ॥१८३॥
वामनेनबलिर्बद्धस्त्रैलोक्याक्रमणेपुरा । हिरण्याक्षोहतोद्वंद्वेप्रतिवादेतुदैवतैः ॥ १८४ ॥
दंष्ट्रयातुवराहेणसमुद्रस्थोद्विधाकृतः । प्रह्लादोनिर्जितोयुद्धइन्द्रेणामृतमंथने ॥ १८५ ॥
विरोचनस्तुप्राह्लादिर्नित्यमिंद्रवधोद्यतः । इन्द्रेणैवचविक्रम्यनिहतस्तारकामये ॥ १८६ ॥
अशक्नुवत्सुदेवेषुत्रिपुरंसोढुमासुरम् । मोहयित्वाऽमृतेपीतेगोरूपेणासुरारिणा ॥१८७
नासञ्जीवयितुंशक्याभूयोभूयोमृतासुराः । निहतादानवाःसर्वेत्रैलोक्येत्र्यंबकेणतु ॥१८८
असुराश्चपिशाचाश्चदानवाश्चांधकेवधे । हतादेवमनुष्यैस्तेपितृभिश्चैवसर्वशः ॥ १८६ ॥
संपृक्तोदानवैर्वृत्रोघोरैकोलाहलेहतः । तदाविष्णुसहायेनमहेंद्रेणनिपातितः ॥ १६० ॥
हतस्ततोमहेंद्रेणमायाछन्नस्तुयोगवित् । वज्रेणक्षणमाविश्यविप्रचित्तिःसहानुगः ॥१६१
दैत्याश्चदानवाश्चैवसंयुताःकृत्स्नशस्तुते । एतेदैवासुरावृत्तासंग्रामाद्वादशैवतु ॥ १६२ ॥
देवासुरक्षयकराःप्रजानांचहितायवै । हिरण्यकशिपूराजावर्षाणामर्बुदंबभौ ॥ १६३ ॥
द्विसप्ततितथान्यानिनियुतान्यधिकानितु । अशीतिंचसहस्राणित्रैलोक्यैश्वर्यवानभूत् ॥
पर्यायेण तुराजाभूद्बलिर्वर्षार्बुदंपुनः । षष्टिंचैवसहस्राणिनियुतानिचविंशतिम् ॥ १६५ ॥
बलिराज्याधिकारेतुयावत्कालश्चकीर्तितः । तावत्कालंतुप्रह्लादोनिर्वृतोह्यसुरैःसह॥१६६
जयार्थमेतेविज्ञेयाअसुराणांमहौजसः । त्रैलोक्यमिदमव्यग्रं महेंद्रेणानुपाल्यत ॥ १६७ ॥
असम्पन्नमिदंसर्वंयावद्वर्षायुतंपुनः । पर्यायेणैवसम्प्राप्तेत्रैलोक्यंपाकशासने ॥ १६८ ॥
ततोऽसुरान्परित्यज्ययज्ञोदेवानगच्छत । यज्ञेदेवानथगतेदितिजाःकाव्यमब्रुवन् ॥१६६ ॥

दैत्या ऊचुः ।

हतंमघवताराज्यंत्यक्त्वायज्ञःसुरान्गतः । स्थातुंनशक्नुमोह्यत्रप्रविशामोरसातलम् ॥२००
एवमुक्तोऽब्रवीदेतान्विषण्णान्सांत्वयन्गिरा । माभैष्टधारयिष्यामितेजसास्वेनवोऽसुराः

मंत्राश्चौषधयश्चैवधरायांयत्तुवर्तते । मयितिष्ठतितत्सर्वं पादमात्रंसुरेषुवै ॥ २०२ ॥
तत्सर्वंचप्रदास्यामियुष्मदर्थेधृतंमया । ततोदेवास्तुतान्दृष्ट्वाधृतान्काव्येनधीमता ॥२०३॥
अमंत्रयंतदेवावैसंविग्नास्तज्जिघृक्षया । काव्योह्येषइदंसर्वंव्यावर्तयतिनोबलात् ॥ २०४ ॥
साधुगच्छामहेतूर्णंयावन्नच्यावयेतवै । प्रसह्यजित्वाशिष्टांस्तुपातालंप्रापयामहे ॥ २०५ ॥
ततोदेवास्तुसंरब्धादानवानुपसृत्यह । ततस्तेवध्यमानास्तैःकाव्यमेवाभिदुद्रुवुः ॥२०६॥
ततःकाव्यस्तुतान्दृष्ट्वातूर्णंदेवैरभिद्रुतान् । रक्षाकार्येणसंहृत्यदेवेभ्यस्तान्सुरार्दितान् ॥२०७
काव्यंदृष्ट्वास्थितंदेवानिर्विशंकास्तुतेजह्रुः । ततःकाव्योऽनुचिंत्याथब्रह्मणोवचनंहितम् ॥
तानुवाचततःकाव्यःपूर्ववृत्तमनुस्मरन् । त्रैलोक्यंवोहृतंसर्वं वामनेन त्रिभिःक्रमैः॥२०९॥
बलिर्बद्धोहतोजंभोनिहतश्चविरोचनः । महासुराद्वादशसुसंग्रामेषुसुरैर्हताः ॥ २१० ॥
तैस्तैरुपायैर्भूयिष्ठानिहतास्तुप्रधानतः । केचिच्छिष्टाश्चयूयंवैयुद्धंनास्तीतिमेमतम् ॥२११॥
नीतयोवो विधातव्याउपासेकालपर्ययात् । यास्याम्यहंमहादेवंमन्त्रार्थंविजयावहम्॥२१२
अप्रतीपांस्ततोदेवान्मंत्रान्प्राप्यमहेश्वरात् । योत्स्यामहेपुनर्देवैस्ततःप्राप्स्यथवैजयम् ॥
ततस्तेकृतसंवादादेवानूचुस्तदासुराः । न्यस्तशस्त्रावयंसर्वेनिःसन्नाहारथैर्विना ॥ २१४॥
वयंतपश्चरिष्यामःसंवृतावल्कलैस्तथा । देवास्तेषां वचः श्रुत्वासत्याभिव्याहृतंततः ॥
ततोन्यवर्तयन्सर्वेविज्वरामुदिताश्चते । न्यस्तशस्त्रेषु दैत्येषुविनिवृत्तास्तदासुराः ॥२१६
ततस्तानब्रवीत्काव्यउपाध्वंतपसिस्थिताः । निरुत्सिक्तास्तपोयुक्ताःकालंकार्यार्थसाधकम्
पितुराश्रमसंस्थावैमांप्रतीक्षथदानवाः । तानुद्दिश्यासुरान्काव्योमहादेवं प्रपद्यत ॥२१८॥

शुक्र उवाच ।

मन्त्रानिच्छाम्यहंदेव ये न सन्तिबृहस्पतौ । पराभवायदेवानामसुराणांजयायच ॥२१९॥
एवमुक्तोऽब्रवीद्देवो व्रतं त्वं चर भार्गव । पूर्णवर्षसहस्रं तु कणधूममवाक्शिराः ॥ २२०॥
यदिपास्यसिभद्रंतेततोमन्त्रानवाप्स्यसि । तथेतिसमनुज्ञाप्यशुक्रस्तुभृगुनन्दनः ॥२२१॥
पादौसंस्पृश्यदेवस्यबाढमित्यब्रवीद्वचः । व्रतंचराम्यहंदेवत्वयादिष्टोऽद्यवैप्रभो ॥ २२२ ॥
आदिष्टोदेवदेवेनकृतवान्भार्गवोमुनिः । तदा तस्मिन्गते शुक्रे असुराणांहितायवै ॥२२३॥
मन्त्रार्थेतनुतेकाव्योब्रह्मचर्यंमहेश्वरात् । तद्बुद्ध्वानीतिपूर्वंवै राजन्यास्तु तदासुखम् ॥

अस्मिंश्छिद्रेतदामर्षाद्देवास्तानभिदुद्रुवुः । दंशिताःसायुधाःसर्वेबृहस्पतिपुरःसराः॥२२५
दृष्ट्वासुरगणादेवान्प्रगृहीतायुधान्पुनः। उत्पेतुस्सहसासर्वेसंत्रस्तास्तान्वचोऽब्रुवन्॥२२६

दैत्या ऊचुः ।

न्यस्तशस्त्रावयंदेवाआचार्यव्रतमास्थिते । दत्वाभवंतस्त्वभयंसम्प्राप्तानोजिघांसया ॥
अनमर्षावयंसर्वेत्यक्तशस्त्राश्चसंस्थिताः । चीरकृष्णाजिनधरानिष्क्रियानिष्परिग्रहाः ॥
रणेवीजेतुंदेवांश्चनशक्ष्यामः कथंचन । अयुद्धेनप्रपत्स्यामःशरणंकाव्यमातरम् ॥ २२९ ॥
ज्ञापयामःकृच्छ्रमिदंयावन्नाभ्येतिनोगुरुः । निवृत्तेचतथाशुक्रेयोत्स्यामोदंशितायुधाः ॥
एवमुक्त्वाचतेऽन्योन्यंशरणंकाव्यमातरम् । प्रापद्यंततोभीतास्तेभ्योऽदादभयंतुसा ॥२३१
नभेतव्यंनभेतव्यंभयंत्यजतदानवाः । मत्सन्निधौ वर्त्ततांवोनभीर्भवितुमर्हति ॥ २३२ ॥
तयाभिरक्षितांस्तांश्चदृष्ट्वादेवास्तदाऽसुरान् । अभिजग्मुःप्रसह्यैतानविचार्यबलाबलम् ॥
ततस्तान्वध्यमानांस्तुदेवैर्दृष्ट्वासुरांस्तदा । देवीक्रुद्धाऽब्रवीद्देवान्निद्रयामोहयाम्यहम् ॥
संभृत्यसर्वसंभारान्निद्रांसाव्यसृजत्तदा । तस्तम्भदेवीचबलाद्योगयुक्तातपोधना ॥२३५
ततस्तंस्तम्भितंदृष्ट्वाइंद्रंदेवाश्चमूढवत् । प्राद्रवं ततोभीताइंद्रंदृष्ट्वावशीकृतम् ॥ २३६ ॥
गतेषु सुरसंघेषु विष्णुरिंद्रमभाषत ।

विष्णुरुवाच ।

मां त्वं प्रविश भद्रं ते रक्षिष्ये त्वां सुरोत्तम ॥ २३७ ॥
एवमुक्तस्ततोविष्णुंप्रविवेशपुरंदरः । विष्णुसंरक्षितंदृष्ट्वादेवीक्रुद्धावचोऽब्रवीत् ॥ २३८ ॥
एषत्वांविष्णुनासार्धंदहामिमघवन्बलात् । मिषतांसर्वभूतानां दृश्यतांमेतपोबलम् ॥२३९
तयाभिभूतौतौदेवाविंद्रविष्णूबभूवतुः । कथंमुच्येयसहितोविष्णुरिंद्रमभाषत ॥ २४० ॥
इंद्रोऽब्रवीज्जहिह्येनांयावन्नौनदहेत्प्रभो । विशेषेणाभिभूतोऽस्मिजहीमांजहिमाचिरम् ॥
ततःसमीक्ष्यविष्णुस्तांस्त्रीवधेकृच्छ्रमास्थितः । अभिध्यायततः शक्रमापन्नंसत्वरंप्रभुः ॥
ततः सत्वरया युक्तःशीघ्रकारि भयान्वितः ।
ज्ञात्वा विष्णुस्ततस्तस्याः क्रूरं देव्याश्चिकीर्षितम् ॥ २४३ ॥
क्रुद्धश्चचक्रमादायशिरश्चिच्छेदवैभयात् । तंदृष्ट्वास्त्रीवधंघोरंचुक्रोधभृगुरीश्वरः ॥ २४४ ॥

ततो हि शप्तो भृगुणा विष्णुर्भार्यावधे कृते ।

भृगुरुवाच ।

यत्त्वयाजानताधर्ममवध्यास्त्रीनिषूदिता । यस्मात्त्वंसप्तकृत्वोहिमानुषेषूपयास्यसि ॥

ततस्तेनाभिशापेननष्टेधर्मेपुनः पुनः ॥ २४६ ॥

लोकस्यचहितार्थायजायतेमानुषेष्विह । अथव्याहृत्यविष्णुंसतदादायशिरः स्वयम् ॥

समानीय ततः कायं पाणौ गृह्येदमब्रवीत् ॥

भृगुरुवाच ।

एषा त्वं विष्णुना देवि हता संजीवयाम्यहम् ॥ २४८ ॥

यदिकृत्स्नोमयाधर्मोज्ञायतेचरितोऽपिवा । तेनसत्येनजीवस्व यदिसत्यंब्रवीम्यहम् ॥२४६

ततस्तां प्रोक्ष्य शीताद्भिर्जीवजीवेति सोऽब्रवीत् ।

ततोऽभिव्याहृते तस्मिन्देवी संजीविता तदा ॥ २५० ॥

ततस्तांसर्वभूतानिदृष्ट्वासुप्तोत्थितामिव । साधुसाध्वितिदृष्ट्वैवचस्तांसर्वतोऽब्रुवन् ॥

एवं प्रत्याहृता तेन देवीसाभृगुणातदा । मिषतां दैवतानां हि तदद्भुतमिवाभवत् ॥२५२॥

असंभ्रांतेनभृगुणापत्नीसंजीवितापुनः । दृष्ट्वाचेंद्रोनालभतशर्मकाव्यभयात्पुनः ॥ २५३ ॥

प्रजागरेततश्चेन्द्रोजयंतीमिदमब्रवीत् । संधिकामोऽभ्यधाद्वाक्यं स्वांकन्यांपाकशासनः ॥

इन्द्र उवाच ।

एषकाव्योह्यनिंद्रायव्रतंचरतिदारुणम् । तेनाहंव्याकुलः पुत्रिकृतोमतिमताद्दृढम् ॥२५५॥

तैस्तैर्मनोऽनुकूलैश्चउपचारैरतंद्रिता । आराधयतथापुत्रियथातुष्येत स द्विजः ॥ २५६ ॥

गच्छत्वंतस्यदत्तासिप्रयत्नं कुरुमत्कृते । एवमुक्ताजयंतीसावचःसंगृह्यवैपितुः ॥ २५७ ॥

अगच्छद्यत्रघोरंसतपोह्यारभ्यतिष्ठति । तंदृष्ट्वाचपिबन्तं सा कणधूममधोमुखम् ॥२५८ ॥

यक्षेणपात्यमानंचकुण्डधारेणपावनम् । दृष्ट्वातंयतमानंतुदेवीकाव्यमवस्थितम् ॥ २५६

शत्रूपघातेश्राम्यन्तंदुर्बलस्थितिमास्थितम् । पित्रायथोक्तंवाक्यंसाकाव्येकृतवतीतदा ॥

गीर्भिश्चैवानुकूलाभिःस्तुवंतीवल्गुभाषिणी । गात्रसंवाहनैः कालेसेवमानात्वचःसुखैः ॥

व्रतचर्यानुकूलाभिरुपास्यबहुलाः समाः । पूर्णे धूमव्रते तस्मिन्घोरे वर्षसहस्रके ॥ २६२ ॥

वरेण च्छंदयामास शिवः प्रीतोऽभवत्तदा ।

महेश्वर उवाच ।

एतद्व्रतं त्वयैकेन चीर्णं नान्येन केनचित् । २६३ ॥

तस्माद्वैतपसाबुद्ध्याश्रुतेनचबलेनच । तेजसाचसुरान्सर्वांस्त्वमेकोऽभिभविष्यसि ॥

यच्चकिंचिन्मयिब्रह्मन्विद्यतेभृगुनंदन । प्रतिदास्यामितत्सर्वंत्वयावाच्यंनकस्यचित् ॥

किंभाषितेनबहुनाअवध्यस्त्वंभविष्यसि । तान्दत्वातुवरांस्तस्मैभार्गवायपुनः पुनः ॥

प्रजेशत्वं धनेशत्वमवध्यत्वंचवैददौ । एतांल्लब्ध्वावरान्काव्यः संप्रहृष्टतनूरुहः ॥ २६७॥

एवमाभाष्यदेवेशमीश्वरं नीललोहितम् । प्रज्ञान्वितस्ततस्तस्मैप्राञ्जलिः प्रणतोऽभवत् ॥

ततः सोंऽतर्हिते देवेजयंतीमिदमब्रवीत् । कस्यत्वं सुभगेकावादुःखितेमयिदुःखिता ॥

महतातपसायुक्ता किमर्थंमांजिगीषसि । अनयासंस्थिता भक्त्याप्रश्रयेणदमेनच ॥ २७०

स्नेहेनचैवसुश्रोणि प्रीतोऽस्मिवरवर्णिनि । किमिच्छसिवरारोहेकस्तेकामः समुद्यतः ॥

तंतेसंपादयाम्यद्ययद्यपिस्यात्सुदुष्करम् । एवमुक्ताब्रवीदेनं तपसाज्ञातुमर्हसि ॥ २७२ ॥

चिकीर्षितंहिमेब्रह्मंस्त्वंवैवदयथातथम् । एवमुक्तोऽब्रवीदेनां दृष्ट्वादिव्येन चक्षुषा ॥२७३॥

मयासहत्वंसुश्रोणिशतवर्षाणि भामिनि । सर्वभूतैरदृश्यांतः संप्रयोगमिहेच्छसि ॥२७४॥

देवि इंदीवरश्यामे वरार्हेवामलोचने । एवंवृणोषिकामांस्त्वंददेवैवल्गुभाषिते ॥ २७५ ॥

एवंभवतुगच्छाव गृहंमेमत्तकाशिनि । ततः सगृहमागम्यजयंत्यासह चोशना ॥ २७६ ॥

तयासहावसद्देव्याशतवर्षाणिभार्गवः । अदृश्यःसर्वभूतानां माययासंशितव्रतः ॥ २७७॥

कृतार्थमागतंज्ञात्वा शुक्रंसर्वेदितेः सुताः । अभिजग्मुर्गृहंतस्य मुदितास्ते दिदृक्षवः ॥

गतायदानपश्यंति माययासंवृतंगुरुम् । लक्षणंतस्यचाबुद्ध्वानाद्यागच्छतिनोगुरुः॥२७९॥

एवंतेस्वानिधिष्ण्यानिगताः सर्वेयथागताः । ततोदेवगणास्सर्वे गत्वांगिरसमब्रुवन् ॥

दानवालयेतुभगवान्गत्वातत्रचतांचमूम् । मोहयित्वात्मवशगांक्षिप्रमेवतथाकुरु ॥२८१॥

धिषणस्तान्सुरानाहएवमेवव्रजाम्यहम् । तेनगत्वादानवेंद्रः प्रह्लादोवैवशीकृतः ॥ २८२ ॥

शुक्रोभूत्वास्थितस्तत्रपौरोहित्यंचकारसः । स्थितोवर्षशतंसाग्रमुशनातावदागतः ॥२८३

दनुपुत्रैस्ततोदृष्टः सभायांतुवृहस्पतिः । उशना एक एवात्र द्वितीयःकिमिहागतः ॥२८४॥

सुमहत्कौतुकंचात्रभवितविग्रहोदृढम् । किंवदिष्यतिलोकोऽयंद्वारियोऽयंव्यवस्थितः ॥
सभायामास्थितोयोऽयंगुरुःकिंनोवदिष्यति । एवंप्रजल्पतांतेषांदनूनांकविरागतः ॥२८६
स्वरूपधारिणंतत्रदृष्ट्वासीनंबृहस्पतिम् । उवाचवचनंक्रुद्धःकिमर्थंत्वमिहागतः ॥ २८७ ॥
शिष्यान्मोहयसेमेत्वंयुक्तंसुरगुरोस्तव । मूढास्तेत्वांनजानंतित्वन्मायामोहिताध्रुवम् ॥
तन्नयुक्तंतवब्रह्मन्परशिष्यप्रधर्षणम् । व्रजत्वंदेवलोकंस्वंतिष्ठधर्ममवाप्स्यसि ॥ २८९ ॥
शिष्योहिमेकचःपूर्वंहतोदानवपुंगवैः । विद्यार्थीतनयोब्रह्मंस्तवायोग्यागतिस्त्विह ॥२९०
श्रुत्वातुतस्यतद्वाक्यंस्मितंकृत्वावदद्गुरुः । संतिचोराः पृथिव्यांयेपरद्रव्यापहारिणः ॥
एवंविधानदृष्टाश्चरूपदेहापहारिणः । वृत्रघातेन चेंद्रस्य ब्रह्महत्या पुराभवत् ॥ २९२ ॥
लोकायतिकशास्त्रेणभवतासानिरस्कृता । जानामित्वामांगिरसंदेवाचार्यंबृहस्पतिम् ॥
मद्रूपधारिणंप्राप्तंसर्वेपश्यतदानवाः । एषवोमोहनायालंप्राप्तोविष्णुचिन्त्रेप्रितैः ॥ २९४ ॥
तदेनंश्रृंखलैर्बद्ध्वाक्षिपेतलवणार्णवे । पुनरेवाब्रवीच्छुक्रःपुरोधायंदिवौकसाम् ॥२९५॥
मोहितानूनमेतेनक्षयंयास्यथदानवाः । भोअहंदानवेंद्रेहवंचितोऽस्मिदुरात्मना ॥२९६॥
किमर्थंभवतात्यक्तःकृतश्चान्यःपुरोहितः । देवाचार्योंऽगिरःपुत्रएषएवबृहस्पतिः ॥२९७॥
वंचितोऽसिनसन्देहोहितार्थंतुदिवौकसाम् । त्यजस्वैनंमहाभागशत्रुपक्षजयावहम् ॥२९८
अनुशिष्यभयाद्यातः पूर्वमेवमहंप्रभो । जलमध्ये स्थितः पीतोमहादेवेन शम्भुना ॥२९९॥
उदरस्थस्य मे जातं साग्रं वर्षशतंकिल । उदराच्छुक्ररूपेणशिश्नेनाहंविसर्जितः ॥३००॥
वरदःप्राहमांदेवशुक्रेष्टंत्वंवरंवृणु । मया वृतो वरं राजन्देवदेवः पिनाकधृत् ॥३०१ ॥
मनसाचिंतिताह्यर्थामानसेयेस्थितावराः । भवंतुमयितेसर्वे प्रसादात्तव शंकर ॥३०२ ॥
एवमस्त्विति देवेन प्रेषितोऽस्मि तवांतिकम् । तावदत्राभवच्चायंपुरोधास्ते बृहस्पतिः ।
दृष्टःसत्यंदानवेंद्रमयोक्तंत्वंनिशामय । बृहस्पतिस्तदावाक्यंप्रह्लादंप्रत्यभाषत ॥ ३०४ ॥
नाहमेतंप्रजानामि देवं वा दानवंनरम् । मद्रूपधारिणंराजन्वंचनार्थं तवागतम् ॥ ३०५ ॥
ततस्तेदानवाःसर्वेसाधुसाध्वितिवादिनः । पुरोधाःपौर्विकोनोऽस्तुयोवाकोवाभवत्विति
नानेनकार्यमस्माकंयातुह्येषयथागतः । सक्रोधमशपत्काव्योदानवेंद्रान्समागतान् ॥३०७॥
त्यक्तोयथाहंयुष्माभिस्तथासर्वाश्चिरादिव । गतश्रीकान्गतप्राणान्पश्येयंदुःखजीविकान्

सुघोरामापदंप्राप्तानचिरादेवसर्वशः । एवमुक्त्वागतःकाव्योयदृच्छातस्तपोवनम् ॥३०६
तस्मिन्गतेततःशुक्रेस्थितस्तत्रबृहस्पतिः । पालयन्दानवांस्तत्रकिंचित्कालमतिष्ठत ॥३१०॥
ततोबहुतिथेकाले अतिक्रांतेनरेश्वर । संभूयदानवाःसर्वेपर्यपृच्छंस्तदागुरुम् ॥ ३११ ॥
संसारेऽस्मिन्नसारेतुकिंचिज्ज्ञानंप्रयच्छ नः । येनमोक्षंव्रजामश्चप्रसादात्तवसुव्रत ॥३१२॥
ततःसुरगुरुःप्राहकाव्यरूपीतदागुरुः । ममाप्येषामतिः पूर्वं या युष्माभिरुदाहृता ॥३१३॥
क्षणंकुर्वन्तुसहिताश्शुचीभूयसमाहिताः । ज्ञानंवक्ष्यामिवोदैत्याअहंवैमोक्षदायियत् ॥
एषाश्रुतिर्वैदिकीयाऋग्यजुःसामसंज्ञिता । वैश्वानरप्रसादात्तुदुःखदाप्राणिनामिह ॥३१५॥
यज्ञश्राद्धंकृतंक्षुद्रैरैहिकस्वार्थतत्परैः । येत्वमीवैष्णवाधर्माये च रुद्रकृतास्तथा ॥३१६॥
कुधर्मादारसहितैर्हिंसाप्रायाःकृताहितैः । अर्द्धनारीश्वरोरुद्रःकथंमोक्षंगमिष्यति ॥३१७॥
वृतोभूतगणैर्भूरिभूपितश्चास्थिभिस्तथा । नस्वर्गोनैवमोक्षोऽत्रलोकाःक्लिश्यंतिवैतथा ॥
हिंसायामास्थितोविष्णुःकथंमोक्षंगमिष्यति । रजोगुणात्मकोब्रह्मास्वांसृष्टिमुपजीवति
देवर्षयोऽथयेचान्येवैदिकंपक्षमाश्रिताः । हिंसाप्रायाः सदाक्रूरामांसादाः पापकारिणः ॥
सुरास्तुमद्यपानेनमांसादाब्राह्मणास्त्वमी । धर्मेणानेनकःस्वर्गंकथंमोक्षंगमिष्यति ॥३२१
यच्चयज्ञादिकंकर्म स्मार्तंश्राद्धादिकंतथा । तत्रनैवापवर्गोऽस्तियत्रैषाश्रूयतेश्रुतिः ॥३२२॥
यज्ञंकृत्वापशुंहत्वाकृत्वारुधिरकर्दमम् । यद्येवंगम्यतेस्वर्गोनरकः केन गम्यते ॥३२३ ॥
यदिभुक्तमिहान्येनतृप्तिरन्यस्यजायते । दद्यात्प्रवसतः श्राद्धं न सभोजनमाहरेत् ॥३२४॥
आकाशगामिनोविप्राःपतितामांसभक्षणात् । तेषां न विद्यतेस्वर्गोमोक्षोनैवेहदानवाः ॥
जातस्यर्जीवितंजंतोरिष्टंसर्वस्यजायते । आत्ममांसोपमं मांसं कथं खादेत पंडितः ३२६॥
योनिजास्तुकथंयोनिंसेवंते जंतवस्त्वमी । मैथुनेन कथं स्वर्गं यास्यंते दानवेश्वर ॥
मृद्भस्मना यत्र शुद्धिस्तत्रशुद्धिस्तु का भवेत् ॥ ३२७ ॥
विपरीततमंलोकंपश्यदानव यादृशम् । विण्मूत्रस्य कृतोत्सर्गेशिश्नापानेतुशोधनम् ॥
नसंभारोऽस्तिवदनेमृदातोयेनवापुनः । भुक्तेवाभोजनेराजन्कथंनापानशिश्नयोः ॥३२९
क्रियतेशोधनंतद्वद्विपरीतास्थितिस्त्वियम् । यत्र प्रक्षालनं प्रोक्तं तत्रतेनैवकुर्वते ॥३३०॥
तारांबृहस्पतेर्भार्यां हृत्वासोमःपुरागतः । तस्यांजातोबुधःपुत्रोगुरुर्जग्राहतांपुनः ॥३३१॥

गौतमस्यमुनेःपत्नीमहल्यांनामनामतः । अगृह्णात्तांस्वयंशक्रःपश्यधर्मोयथाविधः ॥३३२॥
एतदन्यच्चजगतिदृश्यते पापदायकम् । एवंविधो यत्र धर्मः परमार्थोमतस्तुकः ॥३३३॥
वदस्व त्वं दानवेंद्र वद भूयो वदामि ते । गुरोस्तुगदितंश्रुत्वापरमार्थान्वितंवचः ३३४
जातकौतूहलास्तत्र विविक्तास्तु भवार्णवात् ।

दानवा ऊचुः ।

दीक्षयस्व गुरो सर्वान्प्रपन्नान्भक्तितः स्थितान् ॥ ३३५ ॥
येन वैं न पुनर्मोहंव्रजामस्तवशासनात् । सुविरक्ताःस्मसंसारेशोकमोहप्रदायिनि ॥३३६॥
उद्धरस्व गुरो सर्वान्क्लेशाकर्षणकूपतः । कस्य देवस्य शरणंगच्छामोब्राह्मणोत्तम३३७॥
दैवतं च प्रपन्नानांप्रकाशयमहामते । स्मरणेनोपवासेन ध्यानधारणया तथा ॥३३८॥
पूजोपहारैश्चकृते अपवर्गस्तुलभ्यते । विरक्तास्स्मकुटुंबेतुभूयोनात्रयतामहे ॥ ३३९ ॥
एवंचैवगुरुश्छन्नस्तैरुक्तोदनुपुंगवैः । चिंतयामासतत्कार्यंकथमेतत्करोम्यहम् ॥ ३४० ॥
कथमेतेमयापापाःकर्तव्यानरकौकसः । विडंबनाच्छ्रुतेर्बाह्यास्त्रैलोक्येहास्यकारिणः ॥
इत्युक्त्वाधिपणोराजंश्चिंतयामासकेशवम् । तस्यतच्चिंतितंज्ञात्वामायामोहंजनार्दनः ॥
समुत्पाद्यददौतस्यप्राहचेदंबृहस्पतिम् । मायामोहोऽयमखिलांस्तान्दैत्यान्मोहयिष्यति ॥
भवतासहितःसर्वान्वेदमार्गबहिष्कृतान् । एवामादिश्य भगवानंतर्धानं जगामह ॥३४४ ॥
तपस्यभिरतान्सोऽथमायामोहोगतोऽसुरान् । तेषांसमीपमागत्यबृहस्पतिरुवाचह ।३४५।
अनुग्रहार्थंयुष्माकंभक्त्याप्रीतस्त्विहागतः । योगीदिगम्बरोमुण्डोबर्हिपत्रधरोह्ययम् ॥३४६
इत्युक्तेगुरुणापश्चान्मायामोहोऽब्रवीद्वचः । भो भो दैत्याधिपतयः प्रब्रूततपसिस्थिताः ॥
ऐहिकार्थं तु पारक्यं तपसःफलमिच्छथ ।

दानवा ऊचुः ।

पारक्यधर्मलाभाय तपश्चर्या हि नो मता ॥ ३४८ ॥
अस्माभिरियमारब्धा किं वा तत्र विवक्षितम् ।

दिगंबर उवाच ।

कुरुध्वं मम वाक्यानि यदि मुक्तिमभीप्सथ ॥ ३४९ ॥

आर्हतं सर्वमेतच्च मुक्तिद्वारमसंवृतम् । धर्माद्विमुक्तेरर्होऽयं नैतस्मादपरः परः ॥ ३५० ॥
अत्रैवावस्थिताःस्वर्गं मुक्तिंचापि गमिष्यथ । एवंप्रकारैर्बहुभिर्मुक्तिदर्शनवर्जितैः ॥३५१॥
मायामोहेन ते दैत्या वेदमार्गबहिष्कृताः । धर्मायैतदधर्माय सदेतदसदित्यपि ॥ ३५२ ॥
विमुक्तये त्विदंनैतद्विमुक्तिसंप्रयच्छति । परमार्थोऽयमत्यर्थंपरमार्थोनचाप्ययम् ॥३५३॥
कार्यमेतदकार्यंहिनैतदेतत्स्फुटंत्विदम् । दिग्वाससामयंधर्मोधर्मोऽयंबहुवाससाम् ॥३५४
इत्यनेकार्थवादांस्तुमायामोहेनतेयतः । उक्तास्ततोऽखिलादैत्याःस्वधर्मांस्त्याजितानृप ॥
अर्हध्वंमामकंधर्मंमायामोहेनतेयतः । उक्तास्तमाश्रिताधर्ममार्हतास्तेनतेऽभवन् ॥ ३५६॥
त्रयीमार्गंसमुत्सृज्यमायामोहेनतेऽसुराः । कारितास्तन्मयाह्यासंस्तथान्येतत्प्रबोधिताः ॥
तैरप्यन्येपरेतैश्चतैरन्योन्यैस्तथापरे । नमोऽर्हते चेति सर्वे संगमे स्थिरवादिनः ॥३५८॥
अल्पैरहोभिःसंत्यक्तास्तैर्दैत्यैःप्रायशस्त्रयी । पुनश्चरक्तांबरधृन्मायामोहोजितेक्षणः ।३५९॥
सोऽन्यानप्यसुरान्गत्वाऽऊचेऽन्यन्मधुराक्षरम् । स्वर्गार्थंयदिवोवाञ्छानिर्वाणार्थायवापुनः
तदलंपशुघातादिदुष्टधर्मैर्निबोधत । विज्ञानमयमेतद्वै त्वशेषमधिगच्छत ॥ ३६१ ॥
बुध्यध्वं मे वचः सम्यग्बुधैरेवमिहोदितम् । जगदेतदनाधारंभ्रांतिज्ञानानुतत्परम् ॥३६२॥
रागादिदुष्टमत्यर्थंभ्राम्यतेभवसंकटे । नानाप्रकारं वचनं स तेषां मुक्तियोजितम् ॥३६३॥
तथातथाऽवदद्धर्मंतत्यजुस्ते यथा यथा । केचिद्विनिन्दां वेदानां देवानामपरेनृप ॥३६४॥
यज्ञकर्मकलापस्यतथाचान्येद्विजन्मनाम् । नैतद्युक्तिसहंवाक्यंहिंसाधर्मायजायते ॥३६५॥
हवींष्यनलदग्धानिफलान्यर्हंतिकोविदाः । निहतस्यपशोर्यज्ञेस्वर्गप्राप्तियदीष्यते ॥ ३६६ ॥
स्वपिता यजमानेन किं वा तत्र न हन्यते । तृप्तये जायतेपुंसो भुक्तमन्येन चेद्यदि ॥३६७॥
दद्याच्छ्राद्धंप्रवसतोनवहेयुः प्रवासिनः । यज्ञैरनेकैर्देवत्वमवाप्येन्द्रेण भुज्यते ॥ ३६८ ॥
शम्यादि यदिचेत्काष्ठं तद्वरं पत्रभुक्पशुः । जनाश्रद्धेयमित्येतदगवम्य तु तद्वचः ॥३६९॥
उपेक्ष्य श्रयसे वाक्यं रोचतांयन्मयेरितम् । नह्याप्तवादानभसोनिपतंतिमहासुराः ॥३७०॥

युक्तिमद्वचनं ग्राह्यं मयान्यैश्च भवद्विधैः ।

दानवा ऊचुः ।

तत्त्ववादे वयं सर्वे प्रपन्नास्तव भक्तितः ॥ ३७१ ॥

कुरुष्वानुग्रहंचाद्यप्रसन्नोऽसियदिप्रभो । संभारानाहरामोऽद्यदीक्षायोग्यांश्चसर्वशः ॥
प्रसादत्तवयेनाशुमोक्षोहस्तगतोभवेत् । ततस्तानब्रवीत्सर्वान्मायामोहोऽसुरांस्तदा ३७३
प्रपन्नःशासनंह्येषमदीयोगुरुरग्रधीः । दीक्षांदास्यतियुष्माकंनिदेशान्ममसत्तमः ॥ ३७४॥
एतान्दीक्षयभोब्रह्मन्वचनान्ममपुत्रकान् । गतेमोहेदानवास्तेभार्गवंवाक्यमब्रुवन् ॥ ३७५
देहिदीक्षांमहाभागसर्वसंसारमोचनीम् । तथेत्याहोशनादैत्यान्गच्छामोनर्मदामनु ॥३७६
भोभोस्त्यजतवासांसिदीक्षांकारयितास्मिवः । एवंतेदानवाभीष्मभृगुरूपेणधीमता ॥
आंगिरसेनतेतत्रकृतादिग्वाससोऽसुराः । बर्हिपिच्छध्वजंतेषांगुंजिकाचारुमालिकाम् ॥
दत्वा चकार तेषां तु शिरसो लुंचनंततः । केशस्योत्पाटनंचैवपरमंधर्मसाधनम् ॥३७९॥
धनानामीश्वरोदेवोधनदःकेशलुंचनात् । सिद्धिपरमिकांप्राप्ताःसदावेषस्यधारणात्॥३८०
नित्यत्वंलभ्यतेह्येवंपुराप्राहार्हतःस्वयम् । वालोत्पाटेनदेवत्वंमानुषैर्लभ्यतेत्विह ॥ ३८१
किंनकुर्वीततत्तस्मान्महापुण्यप्रदंयतः । मनोरथो हि देवानां लोके वैमानुषेकदा ॥३८२॥
अस्मिन्स्याद्भारतेवर्षेजन्मनः श्रावकेकुले । तपसायुञ्ज्महेऽस्मान्वैकेशोत्पाटनपूर्वकम् ॥
तीर्थंकराश्चतुर्विंशत्तथातैस्तुपुरस्कृताः । छायाकृतंफणीन्द्रेणध्यानमार्गप्रदर्शकम् ॥ ३८४
स्तुवन्तंमंत्रवादेनस्वर्गोहस्तगतोऽर्हतम् । मोक्षोवाभवितानूनंविचारःकोऽत्रकथ्यते ॥
कदास्यामर्षयोभूत्वासूर्य्याग्निसमतेजसः । जप्त्वाविरागिणश्चैवमनुपंचांगकंतथा ॥३८६
तथातपस्यतांमृत्युंगतानांकालपर्ययात् । पाषाणेनशिरोभग्नंभवतेपुण्यकर्मणाम् ॥ ३८७॥
अरण्येनिर्जनेवासःकदावैभविताहिनः । कर्णजप्यंश्रावकाश्चकरिष्यंतिसमाहिताः ॥ ३८८
भोभोऋषेनगंतव्यंमोक्षमार्गीयतोभवान् । लब्धानियानिस्थानानिभूयोवृत्तिकराणि च ॥
त्याज्यानितेनचैतानिसत्यमेववचोहिनः । अस्मदीयेन तपसा नियमैर्विविधैस्तथा ॥
व्रजध्वंचोत्तमंस्थानंमोक्षमार्गंचयंबुधाः । विन्दन्ति भक्तिभावेन तपोयुक्तास्तपस्विनः ॥
अक्षेषु निग्रहो यत्रदयाभूतेषुसर्वदा । तत्तपोधर्ममित्युक्तंसर्वाचान्या विडम्बना॥३९२॥
ज्ञात्वैतद्व्रजतासाध्यंगंतव्यंपरंपदम् । यांवैतीर्थंकरायातायांगतियोगिनोगताः ॥ ३९३ ॥
एवंवैदेवताः पूर्वंविद्याधरामहोरगाः । मनोरथाभिलाषांस्तेचिंतयंतोदिवानिशम् ॥ ३९४
यद्येषणावैयुष्माकंसंसारविरतौकृता । परित्यजध्वंदाराणिस्वर्गमार्गार्गलानिच ॥ ३९५॥

यस्यां योनौ पितायातस्तांयोनिंसेवसेकथम् । आत्ममांसोपमंमांसंकथंखादंतिजंतवः ॥
ततस्तेदानवाभीष्मऊचुःसर्वे गुरुं वचः । दीक्षस्वनोमहाभागभ्रूणकानग्रतःःस्थितान् ॥
तथाकृत्वासतानाहसमयेनपुरोहितः । प्रणामोनान्यदेवेषुकर्तव्योवःकदाचन ॥ ३६८ ॥
एकस्थानेयदाभक्तंभोक्तव्यंकरसंपुटे । तत्रस्थानेस्थितंतोयंकेशकीटविवर्जितम् ॥ ३६६ ॥
तुल्यं प्रियाप्रियं कार्यं नान्यद्दृष्टिहतं क्वचित् । भोक्तव्यमेतेनविभो आचारेण तथा कुरु
भवध्वं सहितायूयं ते तथा मोक्ष भागिनः । एवमुक्त्वासनियमान्कृत्वातान्दनुपुंगवान् ॥
जगामधिषणो राजन्देवलोकं दिवौकसाम् । आचचक्षे स तत्सर्वंदानवानां च कारितम् ।
ततस्तेत्वसुराजग्मुर्नर्मदामभितोवसन् । दृष्ट्वातान्दानवांस्तत्र प्रह्लादेन विनाकृतान् ।४०३।
देवराजस्ततो हृष्टो नमुचिंप्राहवैवचः । हिरण्याक्षं यज्ञहनं धर्मघ्नं वेदनिंदकम् ॥४०४॥
राक्षसं क्रूरकर्माणं प्रघसंविघसंतथा । मुचिंचैव तथा बाणं विरोचनमथापि वा ॥
महिषाक्षं बाष्कलं च प्रचण्डंचंडकंतथा । रोचमानं तथात्युग्रं सुषेणं दानवोत्तमम् ॥
एतान्दृष्ट्वा तथा चान्यान्दानवेन्द्रानथाब्रवीत् ।

इन्द्र उवाच ।

दानवेंद्राः पुराजाताः कृतं राज्यं त्रिविष्टपे ॥ ४०७ ॥
इदानीं कथमेवेदं व्रतं वेदविलोपकम् । भवद्भिः कर्तुमारब्धं नग्नमुंडि कमंडलु ॥४०८॥
मयूरध्वजधारित्वं कथं चैवेह तिष्ठथ ।

दानवा ऊचुः ।

त्यक्तः सर्वासुरभाव ऋषिधर्मे वयं स्थिताः ॥ ४०६ ॥
धर्मवृद्धिकरं कर्म चरामः सर्वजंतुषु । त्रैलोक्यराज्यमखिलं भुंक्ष्व शक्र व्रजस्व च ॥
तथेति चोक्त्वा मघवा पुनर्यातस्त्रिविष्टपम् । एवंते मोहिताः सर्वे भीष्म देवपुरोधसा
नर्मदा सरितं प्राप्य स्थिता दानवसत्तमाः । ज्ञात्वा शुक्रेणते सर्वे वृत्तांतमनुबोधिताः ॥
तदा त्रैलोक्यहरणे चक्रुः क्रूरां पुनर्मतिम् ।४१३॥

इति श्री पद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे अवतारचरितं नाम त्रयोदशोऽध्यायः

चतुर्दशोऽध्यायः ।

अर्जुनकर्णयोरुत्पत्तिकथनपुरस्सरं वैरकारणकथनम् ।

भीष्म उवाच ।

कथं त्रिपुरुषाज्जातो ह्यर्जुनः परवीरहा । कथं कर्णस्तु कानीनः सूतजः परिकीर्त्यते ॥

वैरंतयोः कथं भूतं निसर्गादेव तद्वद । बृहत्कौतूहलं मह्यं तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ २ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

छिन्ने वक्त्रे पुरा ब्रह्मा क्रोधेन महता वृतः । ललाटे स्वेदमुत्पन्नं गृहीत्वाऽताडयद्भुवि ॥

स्वेदतः कुंडली जज्ञे स धनुष्कोमहेषुधिः । सहस्रकवची वीरः किंकरोमीत्युवाच ह ॥

तमुवाच विरिंचिस्तु दर्शयन्रुद्रमोजसा । हन्यतामेष दुर्बुद्धिर्जायते न यथा पुनः ॥ ५ ॥

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा धनुरुद्यम्य पृष्ठतः । संप्रतस्थे महेशस्य बाणहस्तोऽतिरौद्रदृक् ॥

दृष्ट्वा पुरुषमत्युग्रं भीतस्तस्य त्रिलोचनः । अपक्रांतस्ततोवेगाद्विष्णोराश्रममभ्यगात्

त्राहि त्राहीतिमांविष्णो नरादस्माच्च शत्रुहन् । ब्रह्मणानिर्मितः पापो म्लेच्छरूपोभयंकरः

यथा हन्यान्नमां क्रुद्धस्तथा कुरु जगत्पते । हुङ्कारध्वनिना विष्णुर्मोहयित्वा तु तंनरम्

अदृश्यः सर्वभूतानां योगात्मा विश्वदृक्प्रभुः । तत्रप्राप्तंविरूपाक्षं सांत्वयामास केशवः

ततस्स प्रणतो भूमौ दृष्टो देवेन विष्णुना ।

विष्णुरुवाच ।

पौत्रो हि मे भवान्रुद्र कं ते कामं करोम्यहम् ॥ ११ ॥

दृष्ट्वा नारायणं देवं भिक्षां देहीत्युवाच ह । कपालं दर्शयित्वाग्रे प्रज्वलंस्तेजसोत्कटम् ।

कपालपाणिं संप्रेक्ष्यरुद्रं विष्णुरचिन्तयत् । कोऽन्योयोग्योभवेद्भिक्षुर्भिक्षादानस्यसांप्रतम्

योग्योऽयमिति संकल्प्य दक्षिणं भुजमर्पयत् । तद्बिभेदातितीक्ष्णेन शूलेन शशिशेखरः

प्रावर्तततोधारा शोणितस्य विभोर्भुजात् । जांबूनदरसाकारा वह्निज्वालेव निर्मिता ॥

निपपात कपालांतश्शम्भुनासाप्रभिक्षिता । ऋज्वी वेगवती तीव्रा स्पृशंतीत्वंबरंजवात् ।

पंचाशद्योजनादैर्घ्याद्विस्ताराद्दशयोजना । दिव्यवर्षसहस्रं सा समुवाह हरेर्भुजात् ॥
इयं तं कालमीशोऽसौ भिक्षां जग्राह भिक्षुकः । दत्तानारायणेनाथ कापालेपात्रउत्तमे ॥
ततो नारायणः प्राह शंभुं परमिदं वचः । संपूर्णं वानवापात्रं ततो वै परमेश्वरः ॥ १९॥
सतोयांबुदनिर्घोषं श्रुत्वा वाक्यं हरेर्हरः । शशिसूर्याग्निनयनः शशिशेखरशोभितः ॥
कपाले दृष्टिमावेश्य त्रिभिर्नेत्रैर्जनार्दनम् । अंगुल्या घट्टयन्प्राह कपालं परिपूरितम् ॥
श्रुत्वा शिवस्यतांवाणींविष्णुर्धारांसमाहरत् । पश्यतोऽथहरेरीशःस्वांगुल्यारुधिरंतदा ॥
दिव्यवर्षसहस्रं च दृष्टिपातैर्ममंथ सः । मथ्यमाने ततो रक्ते कलिलं बुद्बुदं क्रमात् ॥
बभूव च ततः पश्चात्किरीटी स शरासनः । बद्धतूणीरयुगलो वृषस्कन्धोऽङ्गुलित्रवान् ।
पुरुषो वह्निसंकाशः कपाले संप्रदृश्यते । तं दृष्ट्वा भगवान्विष्णुः प्राहरुद्रमिदं वचः ॥
कपाले भव को वायं प्रादुर्भूतोऽभवन्नरः । वचःश्रुत्वा हरेरीशस्तमुवाचविभोशृणु ।२६
नरोनामैष पुरुषः परमास्त्रविदांवरः । भवतोक्तो नर इति नरस्तस्माद्भविष्यति ॥ २७॥
नरनारायणौ चोभौ युगे ख्यातौ भविष्यतः । संग्रामे देवकार्येषु लोकानां परिपालने ॥
एष नारायणसखो नरस्तस्माद्भविष्यति । अथासुरवधे साह्यं तवकर्त्तामहाद्युतिः ।२९।
मुनिर्ज्ञानपरीक्षायां जेता लोकेभविष्यति । तेजोऽधिकमिदं दिव्यं ब्रह्मणःपंचमंशिरः
तेजसो ब्रह्मणोदीप्ताद्भुजस्य तव शोणितात् । ममदृष्टिनिपाताच्चत्रीणितेजांसियानितु ॥
तत्संयोगसमुत्पन्नः शत्रुं युद्धेविजेष्यति । अवध्यायेभविष्यंति दुर्जया अपि चापरे ॥
शक्रस्य चामराणां च तेषामेषभयंकरः । एवमुक्त्वास्थितः शंभुर्विस्मितश्च हरिस्तदा ॥
कपालस्थः स तत्रैव तुष्टाव हरकेशवौ । शिरस्यंजलिमाधाय तदा वीर उदारधीः ।३४।
किंकरोमीतितौप्राह इत्युक्त्वा प्रणतः स्थितः । तमुवाचहरःश्रीमान्ब्रह्मणास्वेनतेजसा ॥
सृष्टो नरोधनुष्पाणिस्त्वमेनंतुनिषूदय । इत्थमुक्त्वांजलिधरं स्तुवंतं शंकरो नरम् ॥
तथैवांजलिसंबद्धं गृहीत्वा च करद्वयम् । उद्धृत्याथकपालात्तं पुनर्वचनमब्रवीत् ॥ ३७ ॥
स एष पुरुषो रौद्रो योमयावेदितस्तव । विष्णुहुंकाररचितमोहनिद्रां प्रवेशितः ॥
विबोधयैनंत्वरितमित्युक्त्वान्तर्दधे हरः । नारायणस्य प्रत्यक्षं नरेणानेनवैतदा ॥ ३९ ॥
वामपादहतःसोऽपि समुत्तस्थौमहाबलः । ततो युद्धं समभवत्स्वेदरक्तजयोर्महत् ॥४०॥

विस्फारितधनुःशब्दं नादिताशेषभूतलम् ।
कवचं स्वेदजस्यैकं रक्तजेन त्वपाकृतम् ॥ ४१ ॥

एवं समेतयोर्युद्धे दिव्यं वर्षद्वयंतयोः । युध्यतोः समतीतं च स्वेदरक्तजयोर्नृप ॥४२ ॥
रक्तजं द्विभुजं दृष्ट्वा स्वेदजंचैवसंगतौ । विचिन्त्य वासुदेवोऽगाद्ब्रह्मणः सदनं परम् ॥
ससंभ्रममुवाचेदं ब्रह्माणं मधुसूदनः । रक्तजेनाब्जभोब्रह्मन्स्वेदजोऽयंनिपातितः ॥४४॥
श्रुत्वैतदाकुलो ब्रह्मा बभाषे मधुसूदनम् । हरेऽद्यजन्मनि नरो मदीयो जीवतादयम् ॥

तथा तुष्टोऽब्रवीत्तं च विष्णुरेवं भविष्यति ।
गत्वा तयो रणमपि निवार्याह च तावुभौ ॥ ४६ ॥

अन्यजन्मनिभविताकलिद्वापरयोर्मिथः । संग्रामेमहारणेजातेतत्राहंयोजयामिवाम् ॥४७॥
विष्णुनातुसमाहूयग्रहेश्वरसुरेश्वरौ । उक्ताविमौनरौभद्रौपालनीयौममाज्ञया ॥ ४८ ॥
सहस्रांशोस्वेदजोऽयंस्वकीयोंऽशोधरातले । द्वापरांतेऽवतार्योऽयंदेवानांकार्यसिद्धये ॥
यदूनांतुकुलेभावीरोनाममहाबलः । तस्य कन्या पृथानामरूपेणाप्रतिमाभुवि ॥ ५० ॥
उत्पत्स्यतिमहाभागादेवानांकार्यसिद्धये । दुर्वासास्तुवरंतस्यै मंत्रग्रामंप्रदास्यति ॥ ५१
मंत्रेणानेनयंदेवंभक्त्याआवाहयिष्यति । देवि तस्य प्रसादात्तु तव पुत्रो भविष्यति ॥५२॥
सात्वत्वामुदयेदृष्ट्वासाभिलाषारजस्वला । चिंताभिपन्नातिष्ठन्तीभजितव्याविभावसो ५३
तस्यागर्भेत्वयंभावीकानीनःकुंतिनन्दनः । भविष्यति सुतोदेवदेवकार्यार्थसिद्धये ॥ ५४ ॥
तथेतिचोक्त्वाप्रोवाचतेजोराशिर्दिवाकरः । पुत्रमुत्पादयिष्यामिकानीनंबलगर्वितम् ॥५५
यस्यकर्णेतिवैनामलोकःसर्वोविदिष्यति । मत्प्रसादादस्यविष्णोविप्राणांभावितात्मनः ॥
अदेयंनास्तिवैलोकेवस्तुकिंचिच्चकेशव । एवं प्रभावं चैवैनं जनये वचनात्तव ॥ ५७ ॥
एवमुक्त्वासहस्रांशुर्देवंदानवघातिनम् । नारायणं महात्मानं तत्रैवांतर्दधे रविः ॥ ५८ ॥
अदर्शनंगतेदेवेभास्करे वारितस्करे । वृद्धश्रवसमप्येवमुवाच प्रीतमानसः ॥ ५९ ॥
सहस्रनेत्ररक्तोत्थोनरोऽयंमदनुग्रहात् । स्वांशभूतोद्वापरांतेयोक्तव्योभूतलेत्वया ॥ ६०॥
यदापांडुर्महाभागःपृथांभार्यामवाप्स्यति । माद्रींचापिमहाभागतदारण्यंगमिष्यति ।६१।
तस्याप्यरण्यसंस्थस्यमृगःशापंप्रदास्यति । तेनचोत्पन्नवैराग्यःशतश्रृंगंगमिष्यति ॥६२॥

पुत्रानभीप्सन्क्षेत्रोत्थान्भार्यां सप्रवदिष्यति। अनीप्संतीदाकुंतीतभर्त्तारंसावदिष्यति ॥
नाहंमर्त्यस्यवैराजन्पुत्रानिच्छेकथंचन। दैवतेभ्यःप्रसादाच्चपुत्रानिच्छे नराधिप ॥ ६४॥
प्रार्थयंत्यैत्वयाशक्रकुन्त्यैदेयोनरस्ततः। वचसा च मदीयेन एवं कुरु शचीपते ॥ ६५ ॥
अथाब्रवीत्तदाविष्णुंदेवेशोदुःखितोवचः। अस्मिन्मन्वंतरेऽतीतेचतुर्विंशतिकेयुगे ॥ ६६ ॥
अवतीर्यरघुकुलेगृहे दशरथस्यच। रावणस्य वधार्थाय शान्त्यर्थं च दिवौकसाम् ॥६७॥
रामरूपेण भवता सीतार्थमटतावने। मत्पुत्रोहिंसितोदेव सूर्यपुत्रहितार्थिना ॥ ६८ ॥
वालिनामाप्लवंगेंद्रः सुग्रीवार्थे त्वयाहतः। दुःखेनानेन तप्तोऽहंगृह्णामि न सुतंनरम् ।६९।
अगृह्णमानंदेवेंद्रं कारणांतरवादिनम्। हरिःप्रोचे शुनासीरं भुवोभारावतारणे ॥ ७० ॥
अवतारं करिष्यामि मर्त्यलोकेत्वहं प्रभो। सूर्यपुत्रस्य नाशार्थं जयार्थमात्मजस्य ते ॥
सारथ्यंच करिष्यामि नाशंकुरुकलस्यच। ततोहृष्टोऽभवच्छक्रो विष्णुवाक्येनतेनह ॥
प्रतिगृह्यनरंहृष्टः सत्यंचास्तु वचस्तव। एवमुक्त्वा वरंदेवः प्रेषयित्वाच्युतः स्वयम् ॥
गत्वातु पुण्डरीकाक्षो ब्रह्माणंप्राहवै पुनः। त्वयासृष्टमिदंसर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ७४
आवांकार्यस्यकरणे सहायौचतवप्रभो। स्वयंकृत्वा पुनर्नाशं कर्तुं देव न बुध्यते ॥७५ ॥
कृतंजगुप्सितंकर्म शम्भुमेतंजिघांसता। त्वयाच देवदेवस्यसृष्टः कोपेनवैपुमान् ॥७६ ॥
शुद्ध्यर्थमस्य पापस्य प्रायश्चित्तं परंकुरु। गृह्णन्वह्नित्रयं देव अग्निहोत्रमुपाहर ॥ ७७ ॥
पुण्यतीर्थे तथादेशेवनेवापि पितामह। स्वपत्न्या सहितोयज्ञंकुरुष्वास्मत्परिग्रहात् ॥
सर्वेदेवास्तथादित्यारुद्राश्चापि जगत्पते। आदेशंते करिष्यन्ति यतोऽस्माकंभवान्प्रभुः।
एकोहिगार्हपत्योऽग्निर्दक्षिणाग्निर्द्वितीयकः। आहवनीयस्तृतीयस्तु त्रिकुंडेषुप्रकल्पय ॥
वर्तुलेत्वर्चयात्मानम्मामथो धनुराकृतौ। चतुःकोणेहरं देवमृग्यजुःसामनामभिः ॥८१॥
अग्नीनुत्पाद्य तपसापरामृद्धिमवाप्यच। दिव्यंवर्षसहस्रंतु हुत्वाग्नीञ्शमयिष्यसि ॥८२॥
अग्निहोत्रात्परंनान्यत्पवित्रमिहपठ्यते। सुकृतेनाग्निहोत्रेणप्रशुद्ध्यंतिभुविद्विजाः ॥८३॥
पंथानोदेवलोकस्यब्राह्मणैर्दर्शितास्त्वमी। एकोऽग्निःसर्वदा धार्योगृहस्थेनद्विजन्मना ॥
विनाग्निना द्विजेनेह गार्हस्थ्यन्न तु लभ्यते।

भीष्म उवाच।

योऽसौ कपालादुत्पन्नो नरो नाम धनुर्द्धरः ॥ ८५ ॥

किमेष माधवाज्जात उताहोस्वेन कर्मणा । उत रुद्रेणजनितो ह्यथवाबुद्धिपूर्वकम् ॥८६॥
ब्रह्मन्हिरण्यगर्भोऽयमंडजातश्चतुर्मुखः । अद्भुतंपञ्चमंतस्य वक्त्रंतत्कथमुत्थितम् ॥ ८७॥
सत्वेरजोन दृश्येतनसत्वंरजसिक्वचित् । सत्वस्थोभगवान्ब्रह्माकथमुद्रेकमादधात् ॥
मूढात्मना नरो येन हंतुं हि प्रहितो हरम् ॥

पुलस्त्य उवाच ।

महेश्वरहरी चैतौ द्वावेव सत्पथि स्थितौ ॥ ८६ ॥
तयोरविदितंनास्ति सिद्धासिद्धं महात्मनोः । ब्रह्मणःपंचमं वक्त्रमूर्द्ध्वमासीन्महात्मनः ।
ततोब्रह्माऽभवन्मूढो रजसाचोपबृंहितः । ततोऽयं तेजसास्तृष्टिममन्यतमयाकृताम् ॥६१
मत्तोऽन्योनास्ति वैदेवोयेनसृष्टिःप्रवर्तिता । सहदेवाःसगंधर्वाः पशुपक्षिमृगाकुलाः ॥
एवंमूढःसपञ्चास्यो विरिंचिरभवत्पुनः । प्राग्वक्त्रंमुखमेतस्य ऋग्वेदस्यप्रवर्तकम् ॥ ६३
द्वितीयंवदनंतस्य यजुर्वेदप्रवर्तकम् । तृतीयं सामवेदस्य अथर्वार्थंचतुर्थकम् ॥ ६४ ॥
सांगोपांगेतिहासांश्चसरहस्यान्ससंग्रहान् । वेदानधीतेवक्त्रेणपंचमेनोर्द्ध्वचक्षुषा ।६५।
तस्यासुरसुराःसर्ववक्त्रस्याद्भुतवर्चसः । तेजसा न प्रकाशंते दीपाःसूर्योदयेयथा ॥ ६६॥
स्वपुरेष्वपिसोद्वेगा ह्यवर्ततविचेतसः । नकंचिद्गणयेच्चान्यंतेजसा क्षिपतेपरान् ॥ ६७॥
नाभिगंतुंन च द्रष्टुंपुरस्तान्नोपसर्तुम् । शेकुस्त्रस्ताः सुरास्सर्वे पद्मयोनिं महाप्रभुम् ॥
अभिभूतमिवात्मानं मन्यमाना हतत्विषः । सर्वेतेमंत्रयामासुर्देवताहितमात्मनः ॥६६॥
गच्छामः शरणं शंभुं निस्तेजसोऽस्य तेजसा ।

देवा ऊचुः ।

नमस्ते सर्वसत्वेश महेश्वर नमोनमः ॥ १०० ॥
जगद्योने परंब्रह्म भूतानांत्वं सनातनः । प्रतिष्ठा सर्वजगतांत्वंहेतुर्विष्णुनासह ॥१०१ ॥
एवं संस्तूय मानोऽसौदेवर्षिपितृदानवैः । अंतर्हित उवाचेदंदेवाःप्रार्थयतेप्सितम् ॥१०२

देवा ऊचुः ।

प्रत्यक्षदर्शनं दत्वा देहिदेव यथेप्सितम् । कृत्वा कारुण्यमस्माकं वरश्चापिप्रदीयताम् ॥
यदस्माकंमहद्वीर्यं तेजओजः पराक्रमः । तत्सर्वं ब्रह्मणाग्रस्तं पंचमास्यस्यतेजसा ॥१०४

विनेशुःसर्वतेजांसित्वत्प्रसादात्पुनः प्रभो। जायते तु यथापूर्वं तथाकुरुमहेश्वर ।१०५।
ततःप्रसन्नवदनो देवैश्चापि नमस्कृतः। जगाम यत्र ब्रह्मासौ रजोऽहंकारमूढधीः ॥१०६॥
स्तुवंतो देवदेवेशं परिवार्यसमाविशन्। ब्रह्मा तमागतं रुद्रं न जज्ञे रजसावृतः ॥ १०७॥
सूर्यकोटिसहस्राणांतेजसारंजयञ्जगत्। तदादृश्यतविश्वात्माविश्वसृग्विश्वभावनः।१०८।
स पितामहमासीनं सकलं देवमंडलम्। अभिगम्य ततोरुद्रोब्रह्माणंपरमेष्ठिनम् ॥१०९॥
अहोऽतितेजसावक्त्रमधिकंदेवराजते। एवमुक्त्वाट्टहासंतुमुमोचशशिशेखरः ॥११०॥
वामांगुष्ठनखाग्रेण ब्रह्मणः पंचमं शिरः। चकर्त कदलीगर्भं नरः कररुहैरिव ॥ १११ ॥
विच्छिन्नंतुशिरःपश्चाद्भवहस्तेस्थितंतदा। ग्रहमंडलमध्यस्थोद्वितीयइवचंद्रमाः ॥ ११२॥
करोत्क्षिप्तकपालेनननर्तचमहेश्वरः। शिखरस्थेन सूर्येण कैलास इव पर्वतः ॥ ११३ ॥
छिन्नेवक्त्रेततोदेवाहृष्टास्तंवृषभध्वजम्। तुष्टुवुर्विविधैःस्तोत्रैर्देवदेवंकपर्दिनम् ॥११४॥

देवा ऊचुः।

नमःकपालिनेनित्यंमहाकालस्यकालिने। ऐश्वर्यज्ञानयुक्तायसर्वभागप्रदायिने ॥ ११५ ॥
नमोहर्षविलासायसर्वदेवमयाय च। कलौसंहारकर्तात्वंमहाकालः स्मृतोह्यसि॥११६॥
भक्तानामार्तिनाशस्त्वंदुःखांतस्तेनचोच्यसे। शंकरोष्याशुभक्तानांतेनत्वंशंकरःस्मृतः ॥
छिन्नंब्रह्मशिरोयस्मात्त्वंकपालंबिभर्षि च। तेनदेवकपालीत्वंस्तुतोह्यद्यप्रसीदनः ॥११८॥
एवंस्तुतःप्रसन्नात्मादेवान्प्रस्थाप्यशंकरः। स्वानिधिष्ण्यानिभगवांस्तत्रैवासीन्मुदान्वितः
विज्ञायब्रह्मणोभावंततोवीरस्यजन्मच। शिरोनीरस्यवाक्यात्तुलोकानांकोपशांतये।१२०।
शिरस्यञ्जलिमाधायतुष्टावाथप्रणम्यतम्। तेजोनिधिपरंब्रह्मज्ञातुमित्थंप्रजापतिम् ॥१२१
निरुक्तसूक्तरहस्यै ऋग्यजुःसामभाषितैः।

रुद्र उवाच।

अप्रमेय नमस्तेऽस्तु परमस्य परात्मने ॥ १२२ ॥
अद्भुतानांप्रसूतिस्त्वंतेजसांनिधिरक्षयः। विजयाद्विश्वभावस्त्वंसृष्टिकर्तामहाद्युते।१२३।
ऊर्ध्ववक्त्रनमस्तेऽस्तुसत्वात्मकधरात्मक। जलशायिजलोत्पन्नजलालयनमोऽस्तुते।
जलजोत्फुल्लपत्राक्षजयदेवपितामह। त्वया ह्युत्पादितः पूर्वं सृष्ट्यर्थमहमीश्वर ॥१२५॥

यज्ञाहुति सदाहार यज्ञांगेश नमोऽस्तुते । स्वर्णगर्भ पद्मगर्भ देवगर्भ प्रजापते ॥१२६॥
त्वंयज्ञस्त्वंवषट्कारः स्वधात्वंपद्मसंभव । वचनेनतुदेवानांशिरश्छिन्नंमयाप्रभो ॥१२७॥
ब्रह्महत्याभिभूतोऽस्मिमांत्वंपाहिजगत्पते । इत्युक्तोदेवदेवेनब्रह्मावचनमब्रवीत् ॥१२८॥

ब्रह्मोवाच ।

सखानारायणोदेवः सत्वांपूतंकरिष्यति । कीर्तनीयस्त्वयाधन्यःसमेपूज्यःस्वयंविभुः ॥
अनुध्यातोऽसिवैनूनंतेनदेवेनविष्णुना । येनतेभक्तिरुत्पन्नास्तोतुमांमतिरुत्थिता ॥१३०॥
शिरश्छेदात्कपालीत्वंसोमसिद्धांतकारकः । कोटीःशतंच्चविप्राणामुद्धर्तासिमहाद्युते ॥
ब्रह्महत्याव्रतंकुर्यान्नान्यत्किंचनविद्यते । अभाष्याःपापिनःक्रूराब्रह्मघ्नाःपापकारिणः ।१३२।
वैतानिकाविकर्मस्थाननेभाष्याःकथंचन । तैस्तुदृष्टैस्तथाकार्यंभास्करस्यावलोकनम् ॥
अंगस्पर्शेकृतेरुद्रसचैलोजलमाविशेत् । एवंशुद्धिमवाप्नोतिपूर्वंदृष्टांमनीषिभिः ॥१३४॥
सभवान्ब्रह्महन्तासिशुद्ध्यर्थंव्रतमाचर । चीर्णेव्रतेपुनर्भूयःप्राप्स्यसित्वंवरान्बहून् ॥१३५॥
एवमुक्त्वागतोब्रह्मारुद्रस्तन्नाभिजज्ञिवान् । अचिंतयत्तदाविष्णुंध्यानगत्याततः स्वयम् ॥
लक्ष्मीसहायं वरदं देवदेवं सनातनम् । अष्टांगप्रणिपातेन देवदेवस्त्रिलोचनः ॥ १३७ ॥
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा शंखचक्रगदाधरम् ।

रुद्र उवाच ।

परं पराणाममृतं पुराणं परात्परं विष्णुमनंतवीर्यम् ॥ १३८ ॥
स्मरामि नित्यम्पुरुषं वरेण्यं नारायणं निष्प्रतिमं पुराणम् ।
परात्परं पूर्वजमुग्रवेगं गंभीरगम्भीरधियां प्रधानम् ॥ १३९ ॥
नतोऽस्मि देवं हरिमीशितारं परात्परं धामपरं च धाम ।
परापरं तत्परमं च धाम परापरेशं पुरुषं विशालम् ॥ १४० ॥
नारायणं स्तौमि विशुद्धभावं परापरं सूक्ष्ममिदं ससर्ज ।
सदास्थितत्वात्पुरुषं प्रधानं शांतं प्रधानं शरणं ममास्तु ॥ १४१ ॥
नारायणं वीतमलं पुराणं परात्परं विष्णुमपारपारम् ।
पुरातनं नीतिमतां प्रधानं धृतिक्षमाशांतिपरं क्षितीशम् ॥ १४२ ॥

शुभं सदा स्तौमि महानुभावं सहस्रमूर्द्धानमनेकपादम् ।
अनंतबाहुं शशिसूर्यनेत्रं क्षराक्षरं क्षीरसमुद्रनिद्रम् ॥ १४३ ॥
नारायणं स्तौमि परम्परेशं परात्परं यत्त्रिदशैरगम्यम् ।
त्रिसर्गसंस्थं त्रिहुताशनेत्रं त्रितत्त्वलक्ष्यं त्रिलयं त्रिनेत्रम् ॥ १४४ ॥
नमामि नारायणमप्रमेयं कृतसितद्वापरतश्चरक्तम् ।
कलौ च कृष्णं तमथो नमामि ससर्ज यो वक्त्रत एव विप्रान् ॥१४५॥
भुजांतरात्क्षत्रमथोरुयुग्माद्विशः पदाग्राच्च तथैव शूद्रान् ।
नमामि तं विश्वतनुं पुराणं परात्परं पारगमप्रमेयम् ॥ १४६ ॥
सूक्ष्ममूर्त्तिमहामूर्त्तिविद्यामूर्त्तिममूर्त्तिकम् । कवचंसर्वदेवानांनमस्येवारिजेक्षणम् ॥१४७
सहस्रशीर्षंदेवेशंसहस्राक्षंमहाभुजम् । जगत्संव्याप्य तिष्ठंतंनमस्येपरमेश्वरम् ॥ १४८ ॥
शरण्यंशरणंदेवंविष्णुंजिष्णुंसनातनम् । नीलमेघप्रतीकाशंनमस्येशार्ङ्गपाणिनम् ॥१४९॥
शुद्धंसर्वगतंनित्यंव्योमरूपंसनातनम् । भावाभावविनिर्मुक्तंनमस्येसर्वगंहरिम् ॥ १५० ॥
नचात्रकिंचित्पश्यामिव्यतिरिक्तंतवाच्युत । त्वन्मयंचप्रपश्यामिसर्वमेतच्चराचरम् ॥
एवं तु वदतस्तस्य रुद्रस्य परमेष्ठिनः ।
इतीरितस्तेन सनातनः स्वयं परात्परस्तस्य बभूव दर्शने ॥ १५२ ॥
रथांगपाणिर्गरुडासनो गिरिं विदीपयन्भास्करवत्समुत्थितः ।
वरं वृणीष्वेति सनातनोऽब्रवीद्वरस्तवाहं वरदः समागतः ॥ १५३ ॥
इतीरिते रुद्रवरो जगाद ममातिशुद्धिर्भविता सुरेश ।
न चास्य पापस्य हरं हि चान्यत्संदृश्यतेऽन्यश्च ऋते भवंतम् ॥१५४॥
ब्रह्महत्याभिभूतस्य तनुर्मे कृष्णतां गता । शवगंधश्च मे गात्रे लोहस्याभरणानि मे ॥१५५
कथं मे न भवेद्देवमेतद्रूपं जनार्दन । किं करोमि महादेव येन मे पूर्विका तनुः ॥ १५६ ॥
त्वत्प्रसादेन भविता तन्मे कथय चाच्युत ।

विष्णुरुवाच ।

ब्रह्मवध्या परा चोग्रा सर्वकष्टप्रदा परा ॥ १५७ ॥
मनसापिनकुर्वीतपापस्यास्यतुभावनाम् । भवतादेववाक्येननिष्ठाचैषानिबोधिता ॥१५८

इदानींत्वंमहाबाहोब्रह्मणोक्तंसमाचर । भस्मसर्वाणिगात्राणित्रिकालंघर्षयेस्तनौ ॥१५९
शिखायांकर्णयोश्चैवकरेचास्थीनिधारय । एवंचकुर्वतोरुद्रकष्टंनैवभविष्यति ॥ १६० ॥
संदिश्यैवंसभगवांस्ततोऽतर्धानमीश्वरः । लक्ष्मीसहायो गतवान्रुद्रस्तेनाभिजल्पितवान् ॥
कपालपाणिर्देवेशः पर्यटन्वसुधामिमाम् । हिमवंतं समैनाकं मेरुणा च सहैवतु ॥१६२॥
कैलासंसकलंविंध्यंनीलंचैव महागिरिम् । कांचींकाशींताम्रलिप्तां मगधामाविलांतथा ।
वत्सगुल्मं च गोकर्णं तथा चैवोत्तरान्कुरून् । भद्राश्वं केतुमालं च वर्षंहैरण्यकं तथा ॥
कामरूपं प्रभासं च महेन्द्रं चैव पर्वतम् । ब्रह्महत्याभिभूतोऽसौ भ्रमंस्त्राणं न विंदति ।
त्रपान्वितः कपालं तु पश्यन्हस्तगतंसदा । करौविधुन्वन्बहुशो विक्षिप्तश्चमुहुर्मुहुः।१६६।
यदास्यधुन्वतो हस्तौ कपालं पतते नतु । तदास्यबुद्धिरुत्पन्ना व्रतंचैतत् करोम्यहम् ॥
मदीयेनैव मार्गेण द्विजाया स्यंति सर्वतः । ध्यात्वैवं सुचिरं देवो वसुधांविचचार ह ॥
पुष्करं तु समासाद्य प्रविष्टोऽरण्यमुत्तमम् । नानाद्रुमलताकीर्णं नानामृगरवाकुलम् ॥
द्रुमपुष्पभरामोदवासितं यत्सुवायुना । बुद्धिपूर्वमिवन्यस्तैः पुष्पैर्भूषितभूतलम् ।१७०।
नानागंधरसैरन्यैः पक्वापक्वैः फलैस्तथा । विवेश तरुवृंदेन पुष्पामोदाभिनंदितः ।१७१।
अत्राराधयतोभक्त्याब्रह्मादास्यतिमेवरम् । ब्रह्मप्रसादात्संप्राप्तंपौष्करंज्ञानमीप्सितम् ॥
पापघ्नं दुष्टशमनं पुष्टिश्रीबलवर्द्धनम् । एवं वैध्यायतस्तस्यरुद्रस्यामिततेजसः ॥१७३॥
आजगामततोब्रह्माभक्तिप्रीतोऽथकंजजः । उवाच प्रणतं रुद्रमुत्थाप्यचपुनर्गुरुः ॥१७४॥
दिव्यव्रतोपचारेणसोऽहमाराधितस्त्वया । भवताश्रद्धयात्यर्थं मम दर्शनकांक्षया ॥१७५॥
व्रतस्थामांहिपश्यंतिमनुष्यादेवतास्तथा । तदिच्छया प्रयच्छामि वरंयत्प्रवरंवरम् ।१७६।
सर्वकामप्रसिद्ध्यर्थंव्रतंयस्मान्निषेवितम् । मनोवाक्कायभावैश्चसंतुष्टेनांतरात्मना ॥१७७॥

कं ददामि च वै कामं वद भोस्ते यथेप्सितम् ।

रुद्र उवाच ।

एष एवाद्य भगवन्सुपर्याप्तो महावरः ॥ १७८ ॥

यद्दृष्टोऽसिजगद्वंद्यजगत्कर्तर्नमोऽस्तुते । महातायज्ञसाध्येनबहुकालार्जितेनच ॥१७९॥
प्राणव्ययकरेणत्वंतपसादेवदृश्यते । इमं कपालं देवेश न करात्पतितंविभो ॥ १८० ॥

अपाकराअृषीणांचचर्यैषाकुत्सिताविभो ।त्वत्प्रसादाद्व्रतंचेदंकृतंकापालिकंतुयत्।१८१।
सिद्धमेतत्प्रपन्नस्यमहाव्रतमिहोच्यताम् । पुण्यप्रदेशे यस्मिंस्तु क्षिपामीदंवदस्वमे ।१८२॥
पूतो भवामि येनाहं मुनीनां भावितात्मनाम् ।

ब्रह्मोवाच ।

अविमुक्तं भगवतः स्थानमस्ति पुरातनम् ॥ १८३ ॥
कपालमोचनंतीर्थंतवतत्रभविष्यति । अहंचत्वंस्थितस्तत्र विष्णुश्चापिभविष्यति ॥१८४॥
दर्शने भवतस्तत्र महापातकिनोऽपि ये । तेऽपि भोगान्समश्नंति विशुद्धाभवनेमम ।१८५।
वरणापि असी चापिद्वेनद्यौसुरवल्लभे । अंतराले तयोःक्षेत्रे वध्या नविशतिक्वचित् ।१८६।
तीर्थानां प्रवरं तीर्थंक्षेत्राणां प्रवरं तत्र । आदेहपतनाद्येतु क्षेत्रंसेवंति मानवाः ॥ १८७ ॥
ते मृता हंसयानेन दिवं यांत्यकुतोभयाः । पंचक्रोशप्रमाणेन क्षेत्रं दत्तं मया तव ॥१८८॥
क्षेत्रमध्याद्यदागंगागमिष्यतिसरित्पतिम् । तदासामहतीपुण्यापुरीरुद्रभविष्यति ॥१८९॥
पुण्याचोदङ्मुखीगंगाप्राचीचापिसरस्वती । उदङ्मुखीयोजनेद्वेगच्छतेजाह्नवीनदी।१९०।
तत्रवैविबुधाःसर्वे मया सहसवासवाः । आगता वासमेष्यंति कपालं तत्रमोचय ॥१९१॥
तस्मिंस्तीर्थेतुयेगत्वापिंडदानेनवैपितॄन् । श्राद्धैस्तुप्रीणयिष्यंतितेषांलोकोऽक्षयोदिवि ॥
वाराणस्यांमहातीर्थेनरःस्नातोविमुच्यते । सप्तजन्मकृतात्पापाद्गमनादेवमुच्यते ॥१९३॥
तत्तीर्थंसर्वतीर्थानामुत्तमंपरिकीर्तितम् । त्यजंतितत्रयेप्राणान्प्राणिनःप्रणतास्तव ॥१९४ ॥
रुद्रत्वं ते समासाद्य मोदंते भवता सह । तत्रापि हि तु यद्दत्तं दानं रुद्र यतात्मना ॥
स्यान्महच्चफलंतस्यभविताभावितात्मनः । स्वांगस्फुटितसंस्कारंतत्रकुर्वंतियेनराः ।१९६।
ते रुद्रलोकमासाद्य मोदंतेसुखिनःसदा । तत्र पूजा जपोहोमःकृतोभवतिदेहिनाम्।१९७।
अनंतफलदः स्वर्गोरुद्रभक्तियुतात्मनः । तत्र दीपप्रदाने तु ज्ञानचक्षुर्भवेन्नरः ॥१९८॥
अव्यंगं तरुणंसौम्यंरूपवंतंतुगोसुतम् । योऽङ्कयित्वामोचयतिसयातिपरमंपदम् ॥१९९॥
पितृभिःसहितोमोक्षं गच्छते नात्रसंशयः । अथ किं बहुनोक्तेन यत्तत्रक्रियतेनरैः॥२००॥
कर्मधर्मं समुद्दिश्य तदनंतफलं भवेत् । स्वर्गापवर्गयोर्हेतुस्तद्धितीर्थम्मतंभुवि ॥२०१॥
स्नानाज्जपात्तथाहोमादनंतफलसाधनम् । गत्वावाराणसीतीर्थंभक्त्यारुद्रपरायणाः।२०२।

येतत्रपंचतांप्राप्ताभक्तास्तेनात्रसंशयः। वसवःपितरोज्ञेया रुद्राश्चैव पितामहाः ॥ २०३ ॥
प्रपितामहास्तथादित्याइत्येषावैदिकीश्रुतिः। त्रिविधःपिंडदानायविधिरुक्तोमयानघ ॥
मानुषैःपिंडदानं तु कार्यमत्रागतैस्सदा। पिंडदानं च तत्रैव स्वपुत्रैः कार्यमादरात् ।२०५॥
सुपुत्रास्तेपितृणां तु भवंतिसुखदायकाः। प्रोक्तंतीर्थमयातुभ्यंदर्शनादपिमुक्तिदम् ।२०६।
स्नात्वातुसलिलेतत्रमुच्यतेजन्मबंधनात्। विमुक्तोब्रह्महत्यायास्तत्ररुद्रयथासुखम् ।२०७।
अविमुक्ते मया दत्ते तिष्ठ त्वं भार्यया सह।

रुद्र उवाच।

पृथिव्यां यानि तीर्थानि तेष्वहं विष्णुना सह ॥ २०८ ॥
तिष्ठामि भवतोक्तेनवरएषवृतोमया। अहंदेवो महादेव आराध्यो भवता सदा ॥ २०९ ॥
वरंदास्यामितेचाहंसंतुष्टेनांतरात्मना। विष्णोश्चाहंप्रदास्यामिवरांश्चमनसीप्सितान् ॥
सुराणांचैवसर्वेषांमुनीनांभावितात्मनाम्। अहंदाताअहंयाच्योनान्योभाव्यः कथंचन ॥

ब्रह्मोवाच।

एवंकरिष्येऽहंरुद्रयत्त्वयोक्तंवचःशुभम्। नारायणश्चतेवाक्यंकर्तासर्वंनसंशयः ॥२१२॥
विसृज्यैवंतदारुद्रंब्रह्माचांतरधीयत। वाराणस्यांमहादेवोगत्वातीर्थंन्यवेशयत् ॥ २१३ ॥
इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमेसृष्टिखंडे रुद्रस्यब्रह्मवध्यानाशश्चतुर्दशोऽध्यायः

पञ्चदशोऽध्यायः

मेरोरुपरि वैराजंभवननाम वर्णनम्।

भीष्म उवाच।

किंकृतंब्रह्मणाब्रह्मन्प्रेष्यवाराणसीपुरीम्। जनार्दनेन किंकर्म शंकरेण च यन्मुने ॥ १ ॥
कथंयज्ञःकृतस्तेनकस्मिंस्तीर्थेवदस्वमे। केसदस्याऋत्विजश्चसर्वांस्तान्प्रब्रवीहिमे ॥२॥
के देवास्तर्पितास्तेन एतन्मे कौतुकं महत्।

पुलस्त्य उवाच ।

श्रीनिधानं पुरं मेरोःशिखरे रत्नचित्रितम् ॥ ३ ॥

अनेकाश्चर्यनिलयं बहुपादपसंकुलम् । विचित्रधातुभिश्चित्रं स्वच्छस्फटिकनिर्मलम् ॥४॥
लतावितानशोभाढ्यं शिखिशब्दविनादितम् । मृगेन्द्ररववित्रस्तगजयूथसमाकुलम् ॥५॥
निर्झरांबुप्रपातोत्थशीकरासारशीतलम् । वाताहततरुव्रातप्रसन्नापानचित्रितम् ॥ ६ ॥
मृगनाभिवरामोदवासिताशेषकाननम् । लतागृहरतिश्रान्तसुप्तविद्याधराध्वगम् ॥ ७ ॥
प्रगीतकिन्नरव्रातमधुरध्वनिनादितम् । तस्मिन्ननेकविन्यासशोभिताशेषभूमिकम् ॥८॥
वैराजं नाम भवनं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । तत्र दिव्यांगनोद्गीतमधुरध्वनिनादिता ॥ ९ ॥
पारिजाततरूत्पन्नमंजरीदाममालिनी । रत्नरश्मिसमूहोत्थबहुवर्णविचित्रिता ॥ १० ॥

विन्यस्तस्तंभकोटिस्तु निर्मलादर्शशोभिता ।

अप्सरोनृत्यविन्यासविलासोल्लासलासिता । ॥ ११ ॥

बह्वातोद्यसमुत्पन्नसमूहस्वननादिता । लयतालयुतानेकगीतवादित्रशोभिता ॥ १२ ॥
सभा कांतिमतीनाम देवानां शर्मदायिका । ऋषिसंघसमायुक्ता मुनिवृन्दनिषेविता ॥
द्विजातिसामशब्देन नादितानंददायिनी । तस्यां निविष्टो देवेशःसंध्यासक्तःपितामहः ॥
ध्यायतिस्म परं देवं येनेदं निर्मितंजगत् । ध्यायतो बुद्धिरुत्पन्ना कथं यज्ञं करोम्यहम्
कस्मिन्स्थाने मया यज्ञः कार्यः कुत्रधरातले । काशीप्रयागस्तुंगा च नैमिषं शृंखलं तथा
कांची भद्रा देविका च कुरुक्षेत्रं सरस्वती । प्रभासादीनि तीर्थानि पृथिव्यामिहमध्यतः
क्षेत्राणि पुण्यतीर्थानि संति यानीह सर्वशः । मदादेशाच्च रुद्रेण कृतान्यन्यानिभूतले ॥
यथाहं सर्वदेवेषु आदिदेवो व्यवस्थितः । तथाचैकं परं तीर्थमादिभूतं करोम्यहम् ॥
अहं यत्र समुत्पन्नः पद्मं तद्विष्णुनाभिजम् । पुष्करं प्रोच्यते तीर्थमृषिभिर्वेदपाठकैः ॥
एवं चिंतयतस्तस्य ब्रह्मणस्तु प्रजापतेः । मतिरेषा समुत्पन्ना व्रजाम्येषधरातले ॥२१॥
प्राक्स्थानं स समासाद्य प्रविष्टस्तद्वनोत्तमम् । नानाद्रुमलताकीर्णंनानापुष्पोपशोभितम्
नानापक्षिरवाकीर्णं नानामृगगणाकुलम् । द्रुमपुष्पभरामोदैर्वासयद्यत्सुरासुरान् ॥२३॥
बुद्धिपूर्वमिवन्यस्तैः पुष्पैर्भूषितभूतलम् । नानागंधरसैः पक्वैः पक्वैश्च षड्तू द्भवैः ॥ २४ ॥

फलैः सुवर्णरूपाढ्यैर्घ्राणदृष्टिमनोहरैः । जीर्णं पत्रं तृणं यत्र शुष्ककाष्ठफलानि च ॥
बहिः क्षिपति जातानि मारुतोऽनुग्रहादिव । नानापुष्पसमूहानां गंधमादाय मारुतः ॥
शीतलो वाति खं भूमिं दिशो यत्राभिवासयन् । हरितस्निग्धनिश्छिद्रैरकीटकवनोत्कटैः
वृक्षैरनेकसंज्ञैर्यद्भूषितं शिखरान्वितैः । अरोगैर्दर्शनीयैश्च सुवृत्तैः कैश्चिदुज्ज्वलैः ।२८।
कुटुंबमिव विप्राणामृत्विग्भिर्भाति सर्वतः । शोभंते धातुसंकाशैरंकुरैःप्रावृता द्रुमाः ॥
कुलीनैरिवनिश्छिद्रैः स्वगुणैः प्रावृतानराः । पवनाविद्धशिखरैः स्पृशन्तीवपरस्परम् ॥
आजिघ्रंतीवचान्योन्यं पुष्पशाखावतंसकाः । नागवृक्षाः क्वचित्पुष्पैर्द्रुमवानीरकेसरैः ॥
नयनैरिव शोभंते चंचलैः कृष्णतारकैः । पुष्प संपन्न शिखराः कर्णिकारद्रुमाःक्वचित् ।
युग्मयुग्माद्विधाचेह शोभन्त इवदंपती । सुपुष्पप्रभवाटोपैस्सिंदुवारद्रु पंक्तयः॥ ३३ ॥
मूर्तिमत्य इवाभांति पूजिता वनदेवताः । क्वचित्क्वचित्कुंदलताः सपुष्पाभरणोज्ज्वलाः
दिक्षु वृक्षेषु शोभंते बालचन्द्राइवोच्छ्रिताः । सर्जार्जुनाः क्वचिद्भान्ति वनोद्देशेषु पुष्पिताः
धौतकौशेयवासोभिः प्रावृताः पुरुषाइव । अतिमुक्तकवल्लीभिः पुष्पिताभिस्तथाद्रुमाः ॥
उपगूढा विराजन्ते स्वनारीभिरिवप्रियाः । अपरस्परसंसक्तैः सालाशोकाश्च पल्लवैः ॥
हस्तैर्हतान्स्पृशंतीव सुहृद्भिरसंगताः । फलपुष्पभरा नम्राः पनसाः सरलार्जुनाः ॥
अन्योन्यमर्चयन्तीव पुष्पैश्चैवफलैस्तथा । मारुतावेगसंश्लिष्टैःपादपास्सालबाहुभिः ॥
अभ्याशमागतं लोकं प्रतिभावैरिवोत्थिताः । पुष्पाणामवरोधेन सुशोभार्थं निवेशिताः
वसन्तमहमासाद्य पुरुषान्स्पर्धयंति हि । पुष्प शोभाभरनुतैः शिखरैर्वायुकम्पितैः ।४१।
नृत्यंतीव नराः प्रीताः स्रगलंकृतशेखराः । शृंगाग्रपवनक्षिप्ताः पुष्पावलियुताद्रुमाः ।४२
सवल्लीकाः प्रनृत्यंति मानवा इव सप्रियाः । स्वपुष्पनतवल्लीभिः पादपाः क्वचिदावृताः ॥
भांति तारागणैश्चित्रैः शरदीवनभस्तलम् । द्रुमाणामथ वाग्रेषु पुष्पिता मालती लताः ॥
शेखराइव शोभंते रचिता बुद्धिपूर्वकम् । हरिताःकांचनच्छायाःफलिताःपुष्पिताद्रुमाः
सौहृदं दर्शयंतीव नराः साधुसमागमे । पुष्पकिंजल्ककपिलागताः सर्वदिशासु च ।४६॥
कदंबपुष्पस्य जयं घोषयंतीव षट्पदाः । क्वचित्पुष्पासवक्षीबाः संपतंति ततस्ततः ॥
पुंस्कोकिलगणा वृक्षगहनेष्विवसप्रियाः । शिरीषपुष्पसंकाशाः शुकामिथुनशःक्वचित् ।

कीर्तयंति गिरश्चित्राः पूजिता ब्राह्मणा यथा । सहचारिसुसंयुक्ता मयूराश्चित्रबर्हिणः ॥
वनांतेष्वपि नृत्यंति शोभंतइव नर्त्तकाः । कूजन्तः पक्षिसंघातानानारुतविराविणः ॥
कुर्वंति रमणीयं वै रमणीयतरं वनम् । नानामृगगणाकीर्णं नित्यं प्रमुदितांडजम् ।५१॥
तद्वनं नन्दनसमं मनोदृष्टिविवर्धनम् । पद्मयोनिस्तु भगवांस्तथा रूपं वनोत्तमम् ॥५२॥
ददर्शादर्शवद्दृष्ट्या सौम्यया पाययन्निव । तावृक्षपंक्तयः सर्वा दृष्ट्वा देवं तथागतम् ।५३॥
निवेद्य ब्रह्मणे भक्त्या मुमुचुः पुष्पसंपदः । पुष्पप्रतिग्रहं कृत्वा पादपानां पितामहः ॥
वरं वृणीध्वं भद्रं वः पादपानित्युवाच सः । एवमुक्ता भगवता तरवो निरवग्रहाः ॥५५॥
ऊचुः प्रांजलयः सर्वे नमस्कृत्वा विरिंचिनम् । वरं ददासि चेद्देव प्रपन्नजनवत्सल ॥५६॥
इहैव भगवन्नित्यं वने संनिहितोभव । एष नः परमः कामः पितामह नमोऽस्तु ते ॥५७॥
त्वंचेद्वससि देवेश वनेऽस्मिन्विश्वभावन । सर्वात्मना प्रपन्नानां वांछतामुत्तमं वरम् ॥
वरकोटिभिरन्याभिरलंनो दीयतां वरम् । सन्निधानेन तीर्थेभ्य इदं स्यात्प्रवरं महत् ॥

ब्रह्मोवाच ।

उत्तमं सर्वक्षेत्राणां पुण्यमेतद्भविष्यति । नित्यं पुष्पफलोपेता नित्यं सुस्थिरयौवनाः ॥
कामगाः कामरूपाश्च कामरूपफलप्रदाः । कामसंदर्शनाःपुंसां तपःसिद्ध्युज्ज्वलानृणाम्
श्रिया परमया युक्ता मत्प्रसादाद्भविष्यथ । एवं स वरदो ब्रह्मा अनुजग्राहपादपान् ॥
स्थित्वा वर्षसहस्रंतु पुष्करंप्राक्षिपद्भुवि । क्षितिर्निपतितातेन व्यकंपत रसातलम् ॥६३॥
विवशास्तत्यजुर्वेलां सागराः क्षुभितोर्मयः । शक्राशनिहतानीवव्याघ्रव्यालावृतानि च ॥
शिखराण्यप्यशीर्यंत पर्वतानां सहस्रशः । देवसिद्धविमानानि गंधर्वनगराणि च ॥६५॥
प्रचेलुबभ्रमुःपेतुर्विविशुश्च धरातलम् । कपोतमेघाःखात्पेतुः पुटसंवातदर्शिनः ॥६६ ॥
ज्योतिर्गणांश्छादयंतो बभूवुस्तीव्रभास्कराः । महता तस्य शब्देन मूकान्धबधिरीकृतम्
बभूव व्याकुलं सर्वं त्रैलोक्यं स चराचरम् । सुरासुराणांसर्वेषां शरीराणिमनांसि च ॥
अवसेदुश्चकिमितिकिमित्येतन्नजज्ञिरे । धैर्यमालंब्य सर्वेऽथ ब्रह्माणं चाप्यलोकयन् ॥
न च ते तमपश्यंतकुत्र ब्रह्मा गतोह्यभूत् । किमर्थं कंपिता भूमि र्निमित्तोत्पातदर्शनम् ॥
तावद्विष्णुर्गतस्तत्र यत्र देवा व्यवस्थिताः । प्रणिपत्य इदं वाक्यमुक्तवंतोदिवौकसः ॥

किमेतद्भगवन्ब्रूहि निमित्तोत्पातदर्शनम् । त्रैलोक्यं कंपितं येन संयुक्तं कालधर्मणा ॥
जातकल्पावसानंतु भिन्नमर्यादसागरम् । चत्वारोदिग्गजाःकिंतु बभूवुरचलाश्चलाः ॥
समावृता धरा कस्मात्सप्तसागरवारिणा । उत्पत्तिर्नास्ति शब्दस्य भगवन्निष्प्रयोजना
यादृशोवास्मृतः शब्दो न भूतो न भविष्यति । त्रैलोक्यमाकुलंयेन चक्रेरौद्रेण चोद्यता
शुभोऽशुभोवाशब्दोऽयंत्रैलोक्यस्यदिवौकसाम् । भगवन्यदिजानासिकिमेतत्कथयस्वनः
एवमुक्तोऽब्रवीद्विष्णुः परमेणानुभावितः । माभैष्टमरुतःसर्वे शृणुध्वंचात्र कारणम् ७७॥
निश्चयेनानुविज्ञाय वक्ष्याम्येषयथाविधम् । पद्महस्तोहिभगवान्ब्रह्मा लोकपितामहः ॥
भूप्रदेशेपुण्यराशौ यज्ञं कर्त्तुं व्यवस्थितः । अवरोहे पर्वतानां वनेचातीवशोभने ॥७६॥
कमलंतस्य हस्तात्तु पतितं धरणीतले । तस्यशब्दोमहानेष येन यूयं प्रकंपिताः ॥ ८० ॥
तत्रासौ तरुवृंदेन पुष्पामोदाभिनंदितः । अनुगृह्याथभगवान्वनंतत्समृगांडजम् ॥८१॥
जगतोऽनुग्रहार्थाय वासं तत्रान्वरोचयत् । पुष्करं नाम तत्तीर्थं क्षेत्रं वृषभमेव च ॥८२॥
जनितं तद्भगवता लोकानां हितकारिणा । ब्रह्माणंतत्रवैगत्वा तोषयध्वं मया सह ।८३।
आराध्यमानो भगवान्प्रदास्यतिवरान्वरान् । इत्युक्त्वाभगवान्विष्णुः सहतैर्देवदानवैः ॥
जगामतद्वनोद्देशं यत्रास्ते स तु कंजजः । प्रहृष्टास्तुष्टमनसः कोकिलालापलापिताः ॥
पुष्पोच्चयोज्ज्वलं शस्तं विविशुर्ब्रह्मणोवनम् । संप्राप्तंसर्वदेवैस्तु वनंनंदनसंमितम् ८६॥
पद्मिनीमृगपुष्पाढ्यं सुदृढं शुशुभे तदा । प्रविश्याथ वनंदेवाः सर्वपुष्पोपशोभितम् ॥
इहदेवोऽस्तीतिदेवा बभ्रमुश्चदिदृक्षवः । मृगयं तस्ततस्ते तु सर्वदेवाः सवासवाः ॥८८॥
अद्भुतस्यवनस्यांतं न ते ददृशुराशुगाः । विचिन्वद्भिस्तदादेवं दैवैर्वायुर्विलोकितः ॥८६॥
स तानुवाच ब्रह्माणं न द्रक्ष्यथ तपोविना । तदाखिन्नाविचिन्वंतस्तस्मिन्पर्वतरोधसि ॥
दक्षिणेचोत्तरेचैव अंतरालेपुनःपुनः । वायूक्तं हृदये कृत्वा वायुस्तानब्रवीत्पुनः ॥ ६१ ॥
त्रिविधो दर्शनोपायो विरिंचेरस्य सर्वदा । श्रद्धाज्ञानेन तपसा योगेन च निगद्यते ।६२।
सकलंनिष्कलं चैव देवं पश्यंतियोगिनः । तपस्विनस्तु सकलं ज्ञानिनोनिष्कलं परम् ॥
समुत्पन्ने तु विज्ञाने मंदश्रद्धो न पश्यति । भक्त्या परमयाक्षिप्रं ब्रह्मपश्यंतियोगिनः ॥
द्रष्टव्योनिर्विकारोऽसौप्रधानपुरुषेश्वरः । कर्मणा मनसा वाचा नित्ययुक्ताःपितामहम् ॥

तपश्चरतभद्रं वो ब्रह्माराधनतत्पराः। ब्राह्मींदीक्षां प्रपन्नानां भक्तानां च द्विजन्मनाम्॥
सर्वकालंसजानाति दातव्यं दर्शनं मया। वायोस्तुवचनं श्रुत्वा हितमेतदवेत्य च ॥६७॥
ब्रह्मेच्छाविष्टमतयो वाक्पतिं च ततोऽब्रुवन्। प्रज्ञानविबुधास्माकंब्राह्मींदीक्षांविधत्स्वनः
सदिदीक्षयिषुः क्षिप्रममरान्ब्रह्मदीक्षया। वेदोक्तेन विधानेन दीक्षयामासतान्गुरुः ॥६६।
विनीतवेषाःप्रणता अंतेवासित्वमाययुः। ब्रह्मप्रसादंसंप्राप्ताः पौष्करंज्ञानमीरितम् १००।
यज्ञंचकारविधिनाधिषणोऽध्वर्युसत्तमः। पद्मं कृत्वा मृणालाढ्यं पद्मदीक्षाप्रयोगतः॥
अनुजग्राहदेवांस्तान्सुरेच्छाप्रेरितोमुनिः। तेभ्यो ददौ विवेकिभ्यः सवेदोक्तावधानवित्
दीक्षांवैविस्मयंत्यक्त्वा बृहस्पतिरुदारधीः। एकमग्निंचसंस्कृत्य महात्मात्रिदिवौकसाम्
प्रादादांगिरसंस्तुष्टोजाप्यंवेदोदितंतुयत्। त्रिसुपर्णंत्रिमधुच पावमानींचपावनीम् १०४।
स हि जाप्यादिकं सर्वमशिक्षयदुदारधीः। आपोहिष्ठेति यत्स्नानं ब्राह्मं तत्परिपठ्यते।
पापघ्नं दुष्टशमनं पुष्टिश्रीबलवर्धनम्। सिद्धिदं कीर्तिदंचैव कलिकल्मषनाशनम् ॥१०६।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मं स्नानं समाचरेत्।
कुर्वंतो मौनिनो दांता दीक्षिताःक्षपितेंद्रियाः ॥ १०७ ॥

सर्वे कमंडलुयुता मुक्तकक्षाक्षमालिनः। दंडिनश्चीरवस्त्राश्च जटाभिरतिशोभिताः॥
स्नानाचारासनरताः प्रयत्नध्यानधारिणः। मनोब्रह्मणिसंयोज्य नियताहारकांक्षिणः॥
अतिष्टन्दर्शनालापसंगध्यानविवर्जिताः। एवं व्रतधराःसर्वे त्रिकालं स्नानकारिणः।११०
भक्त्या परमयायुक्ता विधिनापरमेण च। कालेन महताध्यानाद्देवज्ञानमनोगताः ॥१११॥
ब्रह्मध्यानाग्निनिर्दग्धा यदा शुद्धैकमानसाः। आविर्बभूवभगवान्सर्वेषां दृष्टिगोचरः॥
तेजसाप्यायितास्तस्य बभूवुर्भ्रांतचेतसः। ततोऽवलंब्य ते धैर्यमिष्टं देवं यथाविधि॥
षडंगवेदयोगेन हृष्टचितास्तुतत्पराः। शिरोगतैरंजलिभिः शिरोभिश्च महींगता ॥११४॥

तुष्टुवुः सृष्टिकर्त्तारं स्थितिकर्तारमीश्वरम्।

देवाऊचुः।

ब्रह्मणे ब्रह्मदेहाय ब्रह्मण्यायाजिताय च ॥ ११५ ॥

नमस्कुर्मः सुनियताः क्रतुवेदप्रदायिने। लोकानुकंपिने देव सृष्टिरूपाय वै नमः ॥११६॥

भक्तानुकंपिनेऽत्यर्थं वेदजाप्यस्तुताय च । बहुरूपस्वरूपाय रूपाणां शतधारिणे ।११७।
सावित्रिपतये देव गायत्रीपतयेनमः । पद्मासनाय पद्माय पद्मवक्त्राय ते नमः ॥११८॥
वरदाय वराहाय कूर्माय च मृगाय च । जटामुकुटयुक्ताय स्रुवस्रुचनिधारिणे ॥११६॥
मृगांकमृगधर्माय धर्मनेत्राय ते नमः । विश्वनाम्नेऽथविश्वाय विश्वेशाय नमोनमः ॥
धर्मनेत्रत्राणमस्मादधिकं कर्तुमर्हसि । वाङ्मनःकायभावैस्त्वां प्रपन्नास्स्मः पितामह ॥
एवंस्तुतस्तदादेवैर्ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः । प्रदास्यामि स्मृतोबाढममोघं दर्शनं हि वः ।१२२।
ब्रुवंतुवांछितंपुत्राः प्रदास्यामि वरान्वरान् । एवमुक्ता भगवतादेवा वचनमब्रुवन् ॥१२३॥
एषएवाद्य भगवन्सु पर्याप्तोमहान्वरः । जनितोनः सुशब्दोऽयंकमलंक्षिपतात्वया ।१२४।
किमर्थंकंपिताभूमिर्लोकाश्चाकुलिताःकृताः । नैतन्निरर्थकं देव उच्यतामत्रकारणम् ।१२५।

ब्रह्मोवाच ।

युष्मद्धितार्थमेतद्धि पद्मंविनिहितंमया । देवतानां च रक्षार्थं श्रूयतामत्रकारणम् ॥१२६॥
असुरोवज्रनाभोऽयं बालजीवापहारकः । अवस्थितस्त्ववष्टभ्यरसातलतलाश्रयम् ॥१२७॥
युष्मदागमनं ज्ञात्वा तपस्थान्निहितायुधान् । हंतुकामोदुराचारःसेंद्रानपि दिवौकसः ॥
घातःकमलपातेन मयातस्यविनिर्मितः । स राज्येश्वर्यदर्पिष्ठस्तेनासौनिहतोमया ।१२६।
लोकेऽस्मिन्समये भक्ताब्राह्मणा वेदपारगाः । मैव ते दुर्गतिं यांतुलभंतांसुगतिंपुनः ।१३०।
देवानां दानवानांच मनुष्योरगरक्षसाम् । भूतग्रामस्यसर्वस्य समोऽस्मित्रिदिवौकसः ॥
युष्मद्धितार्थंपापोऽसौमयामंत्रेणघातितः । प्राप्तःपुण्यकृतॉंलोकान्कमलस्यास्यदर्शनात् ॥
यन्मयापद्ममुक्तंतु तेनेदंपुष्करं भुवि । ख्यातंभविष्यते तीर्थं पावनं पुण्यदंमहत् ॥१३३॥
पृथिव्यां सर्वजंतूनाम्पुण्यदं परिपठ्यते । कृतोह्यनुग्रहोदेवा भक्तानां भक्तिमिच्छताम् ॥
वनेऽस्मिन्नित्यवासेन वृक्षैरभ्यर्थितेनच । महाकालोवनेऽत्रागादागतस्य ममानघाः १३५
तपस्यतांच भवतांमहज्ज्ञानं प्रदर्शितम् । कुरुध्वं हृदयेदेवाः स्वार्थंचैव परार्थकम् ॥१३६॥
भवद्भिर्दर्शनीयं तु नानारूपधरैर्भुवि । द्विषन्वैज्ञानिनंविप्रं पापेनैवार्दितोनरः ॥ १३७ ॥
नविमुच्येत पापेन जन्मकोटिशतैरपि । वेदांगपारगं विप्रं नहन्यान्नचदूषयेत् ॥१३८ ॥
एकस्मिन्निहते यस्मात्कोटिर्भवतिघातिता । एकंवेदातगं विप्रंभोजयेच्छ्रद्धयान्वितः ॥

तस्यभुक्ताभवेत्कोटिर्विप्राणां नात्रसंशयः । यःपात्रपूरणीं भिक्षांयतीनांतुप्रयच्छति ॥
विमुक्तःसर्वपापेभ्योनासौदुर्गतिमाप्नुयात् । यथाहंसर्वदेवानांज्येष्ठःश्रेष्ठः पितामहः १४१
तथाज्ञानीसदापूज्यो निर्ममोनिष्परिग्रहः । संसारबंधमोक्षार्थं ब्रह्मगुप्तमिदं व्रतम् ।१४२।
मयाप्रणीतं विप्राणामपुनर्भवकारणम् । अग्निहोत्रमुपादाय यस्त्यजेदजितेंद्रियः ॥१४३॥
रौरवंसप्रयात्याशु प्रणीतोयमकिंकरैः । लोकयात्रावितंडश्चक्षुद्रं कर्मकरोति यः ॥१४४॥
सरागचित्तः शृंगारी नारीजनधनप्रियः । एकभोजीसुमीष्टाशी कृषिवाणिज्यसेवकः ॥
अवेदो वेदनिन्दीच परभार्यां च सेवते । इत्यादिदोषदुष्टो यस्तस्यसंभाषणादपि ॥१४६॥
नरो नरकगामीस्यायश्चसद्व्रतदूषकः । असंतुष्टंभिन्नचित्तं दुर्मतिंपापकारिणम् ॥१४७॥
नस्पृशेदंगसंगेनस्पृष्ट्वास्नानेनशुद्ध्यति । एवमुक्त्वा स भगवान्ब्रह्मा तैरमरैःसह ॥१४८॥
क्षेत्रंनिवेशयामासयथावत्कथयामिते । उत्तरे चंद्रनद्यास्तु प्राची यावत्सरस्वती ।१४९।
पूर्वंतुनंदनात्कृत्स्नंयावत्कल्पंसपुष्करम् । वेदीह्येषाकृतायज्ञे ब्रह्मणालोककारिणा ॥१५०
ज्येष्ठंतुप्रथमंज्ञेयंतीर्थं त्रैलोक्यपावनम् । ख्यातंतद्ब्रह्मदैवत्यं मध्यमं वैष्णवं तथा ।१५१।
कनिष्ठं रुद्रदैवत्यं ब्रह्मा पूर्वमकारयत् । आद्यमेतत्परं क्षेत्रं गुह्यं वेदेषु पठ्यते ॥ १५२ ॥
अरण्यं पुष्कराख्यं तु ब्रह्मासन्निहितःप्रभुः । अनुग्रहोभूमिभागेकृतोवैब्रह्मणास्वयम् ।१५३॥
अनुग्रहार्थं विप्राणां सर्वेषांभूमिचारिणाम् । सुवर्णवज्रपर्यंता वेदिकांका महीकृता ॥
विचित्रकुट्टिमारत्नैः कारितासर्वशोभना । रमतेतत्र भगवान्ब्रह्मालोकपितामहः ॥१५५॥
विष्णुरुद्रौतथादेवौवसवोऽप्यश्विनावपि । मरुतश्चमहेंद्रेण रमंतेचदिवौकसः ॥ १५६ ॥
एतत्तेतथ्यमाख्यातंलोकानुग्रहकारणम् । संहितानुक्रमेणात्रमंत्रैश्चविधिपूर्वकम् ॥१५७॥
वेदान्पठंतियेविप्रा गुरुशुश्रूषणेरताः । वसंति ब्रह्मसामीप्येसर्वेतेनानुभाविताः ॥१५८॥

भीष्म उवाच ।

भगवन्केनविधिनाअरण्येपुष्करैर्नरैः । ब्रह्मलोकमभीप्सद्भिर्वस्तव्यंक्षेत्रवासिभिः ॥१५९॥
किमनुष्यैरुतस्त्रीभिरुतवर्णाश्रमान्वितैः । वसद्भिः किमनुष्ठेयमेतत्सर्वं ब्रवीहिमे ॥१६० ॥

पुलस्त्य उवाच ।

नरैःस्त्रीभिश्चवस्तव्यंवर्णाश्रमनिवासिभिः । स्वधर्माचारनिरतैर्दंभमोहविवर्जितैः ।१६१॥

कर्मणामनसा वाचाब्रह्मभक्तैर्जितेंद्रियैः । अनसूयुभिरक्षुद्रैः सर्वभूतहितेरतैः ॥१६२॥

भीष्म उवाच ।

किंकुर्वाणोनरःकर्मब्रह्मभक्तस्त्विहोच्यते । कीदृशाब्रह्मभक्ताश्चस्मृतानृणांवदस्वमे ।१६३।

पुलस्त्य उवाच ।

त्रिविधाभक्तिरुद्दिष्टामनोवाक्कायसंभवा । लौकिकीवैदिकीचापिभवेदाध्यात्मिकीतथा ॥

ध्यानधारणमाबुद्ध्यावेदार्थस्मरणेहियत् । ब्रह्मप्रीतिकरीचैषामानसी भक्तिरुच्यते ।१६५।

मंत्रवेदनमस्कारैरग्निश्राद्धादिचिंतनैः । जाप्यैश्चावश्यकैश्चैववाचिकीभक्तिरिष्यते॥१६६॥

व्रतोपवासनियतैश्चित्तेंद्रियनिरोधिभिः । कृच्छ्रैःसांतपनैश्चान्यैस्तथाचांद्रायणदिभिः ॥

ब्रह्मकृच्छ्रोपवासैश्चतथाचान्यैःशुभव्रतैः । कायिकीभक्तिराख्यातात्रिविधातुद्विजन्मनाम्

गोघृतक्षीरदधिभिःरत्नदीपकुशोदकैः । गंधैर्माल्यैश्चविविधैर्धातुभिश्चोपपादितैः ॥१६९॥

घृतगुग्गुलुधूपैश्चकृष्णागरुसुगंधिभिः । भूषणैर्हेमरत्नाढ्यैश्चित्राभिः स्रग्भिरेवच ॥१७०

नृत्यवादित्रगीतैश्चसर्वरत्नोपहारकैः । भक्ष्यभोज्यान्नपानैश्चयापूजाक्रियतेनरैः ॥१७१॥

पितामहंसमुद्दिश्यभक्तिस्सालौकिकीमता । वेदमंत्रहविर्योगैर्भक्तिर्यावैदिकीमता॥१७२॥

दर्शेवापौर्णमास्यांवाकर्तव्यमग्निहोत्रकम् । प्रशस्तंदक्षिणादानंपुरोडाशंचरुक्रिया ।१७३।

इष्टिर्धृतिःसोमपानांयज्ञीयंकर्मसर्वशः । ऋग्यजुःसामजाप्यानिसंहिताध्ययनानिच ।१७४।

क्रियंतेविधिमुद्दिश्यसाभक्तिर्वैदिकीष्यते । अग्निभूम्यनिलाकाशांबुनिशाकरभास्करम् ॥

समुद्दिश्यकृतंकर्मतत्सर्वंब्रह्मदैवतम् । आध्यात्मिकीतुद्विविधाब्रह्मभक्तिःस्थितानृप ।१७६।

संख्याख्यायोगजाचान्याविभागंतत्रमेशृणु । चतुर्विंशतितत्त्वानिप्रधानादीनिसंख्यया ॥

अचेतनानिभोग्यानिपुरुषःपञ्चविंशकः । चेतनःपुरुषोभोक्ता न कर्त्ता तस्यकर्मणः ।१७८।

आत्मानित्योऽव्ययश्चैवअधिष्ठाताप्रयोजकः । अव्यक्तःपुरुषोनित्यःकारणंचपितामहः ॥

तत्त्वसर्गोभावसर्गोभूतसर्गश्चतत्त्वतः । संख्ययापरिसंख्यायप्रधानंचगुणात्मकम् ॥१८०

साधर्म्यमानमैश्वर्यंप्रधानंचविधर्मिच । कारणत्वंचब्रह्मत्वंकाम्यत्वमिदमुच्यते ॥ १८१ ॥

प्रयोज्यत्वंप्रधानस्यवैधर्म्यमिदमुच्यते । सर्वत्रकर्तृस्याद्ब्रह्मपुरुषस्याप्यकर्तृता ॥१८२॥

चेतनत्वं प्रधाने च साधर्म्यमिदमुच्यते । तत्त्वांतरं च तत्वानांकर्मकारणमेवच ॥१८३॥

प्रयोजनंचवैयोज्यमैश्वर्यंतत्त्वसंख्यया । संख्यास्तीत्युच्यतेप्राज्ञैर्विनिश्चित्यार्थचिंतकः ॥
इतितत्त्वस्यसंभरंतत्वसंख्याचतत्त्वतः । ब्रह्मतत्त्वाधिकंचापिश्रुत्त्वातत्त्वंविदुर्बुधाः १८५
सांख्यकृद्भक्तिरेषाचसद्भिराध्यात्मिकीकृता । योगजामपिभक्तानांश्रृणुभक्तिंपितामहे १८६
प्राणायामपरोनित्यंध्यानवान्नियतेन्द्रियः । भैक्ष्यभक्षीव्रतीवापिसर्वप्रत्याहृतेंद्रियः।१८७।
धारणं हृदये कुर्याद्ध्यायमानः प्रजेश्वरम् । हृत्पद्मकर्णिकासीनंरक्तवक्त्रंसुलोचनम् ॥
परितोद्योतितमुखंब्रह्मसूत्रकटीतटम् । चतुर्वक्त्रंचतुर्बाहुंवरदाभयहस्तकम् ॥ १८६ ॥
योगजामानसीसिद्धिर्ब्रह्मभक्तिःपरास्मृता । यएवंभक्तिमान्देवेब्रह्मभक्तः सउच्यते ।१६०।
वृत्तिंचश्रृणुराजेंद्रयास्मृताक्षेत्रवासिनाम् । स्वयंदेवेनविप्राणांविष्ण्वादीनांसमागमे १६१
कथिताविस्तरात्पूर्वंसर्वेषांतत्रप्रसन्निधौ ।:निर्ममानिरहंकारानिःसंगानिष्परिग्रहाः।१६२।
वंधुवर्गेचनिःस्नेहास्समलोष्टाश्मकांचनाः ।भूतानांकर्मभिर्नित्यैर्विविधैरभयप्रदाः ।१६३।
प्राणायामपरानित्यंपरध्यानपरायणाः । याजिनःशुचयोनित्यंयतिधर्मपयणाः ॥ १६४॥
सांख्ययोगविधिज्ञाश्चधर्मज्ञाश्छिन्नसंशयाः । यजंतेविधिनायेनयेविप्राः क्षेत्रवासिनः ॥
अरण्येपौष्करेतेषांमृतानांसत्फलंश्रृणु । व्रजंतितेसुदुष्प्रापंब्रह्मसायुज्यमक्षयम् ॥१६६॥
यत्प्राप्यनपुनर्जन्मलभन्तेमृत्युदायकम् । पुनरावर्तनंहित्वाब्राह्मींविद्यांसमास्थितः ॥१६७॥
पुनरावृत्तिरन्येषांप्रपंचाश्रमवासिनाम् । गार्हस्थ्यविधिमाश्रित्यषट्कर्मनिरतःसदा १६८।
जुहोतिविधिनासम्यङ्मन्त्रैर्यज्ञेनिमंत्रितः ।अधिकंफलमाप्नोतिसर्वदुःखविवर्जितः ।१६६।
सर्वलोकेषुचाप्यस्यगतिर्नप्रतिहन्यते । दिव्येनैश्वर्ययोगेन स्वारूढःसपरिग्रहः ॥ २०० ॥
बालसूर्यप्रकाशेन विमानेन सुवर्चसा । वृतः स्त्रीणांसहस्रैस्तुस्वच्छंदगमनालयः॥२०१॥
विचरत्यानिवार्येणसर्वलोकान्यदृच्छया ।स्पृहणीयतमः पुंसांसर्वधर्मोत्तमोधनी ।२०२॥
स्वर्गच्युतः प्रजायेत कुले महति रूपवान् । धर्मज्ञो धर्मभक्तश्च सर्वविद्यार्थपारगः ॥
तथैवब्रह्मचर्येण गुरुशुश्रूषणेनच । वेदाध्यनसंयुक्तो भैक्ष्यवृत्तिर्जितेन्द्रियः ॥ २०४ ॥
नित्यंसत्यव्रतेयुक्तः स्वधर्मेष्वप्रमादवान् । सर्वकामसमृद्धेनसर्वकामावलंबिना ॥२०५॥
सूर्यणैवद्वितीयेनविमानेनानिवारितः । गुह्यका नाम ब्रह्माख्यगणाः परमसंमताः ॥२०६॥
अप्रमेयबलैश्वर्या देवदानवपूजिताः । तेषां स समतां यातितुल्यैश्वर्यसमन्वितः ॥२०७॥

देवदानवमर्त्येषु भवत्यनियतायुधः । वर्षकोटिसहस्राणि वर्षकोटिशतानि च ॥२०८॥
एवमैश्वर्यसंयुक्तो विष्णुलोकेमहीयते । उषित्वासौविभूत्यैवंयदाप्रच्यवतेपुनः ॥२०९॥
विष्णुलोकात्स्वकृत्येन स्वर्गस्थानेषु जायते ॥२१०॥
पुष्करारण्यमासाद्यब्रह्मचर्याश्रमेस्थितः । अभ्यासेनतुवेदानांवसतेम्रियतेऽपिवा ॥२११॥
मृतोऽसौयातिदिव्येनविमानेनस्वतेजसा । पूर्णचंद्रप्रकाशेनशशिवत्प्रियदर्शनः ॥२१२॥
रुद्रलोकं समासाद्यगुह्यकैः सहमोदते । ऐश्वर्यं महदाप्नोति सर्वस्यजगतः प्रभुः ॥२१३॥
भुक्त्वा युगसहस्राणि रुद्रलोकेमहीयते । प्रच्युतस्तुपुनस्तस्माद्रुद्रलोकात्क्रमेणतु॥२१४॥
नित्यंप्रमुदितस्तत्रभुक्त्वा सुखमनामयम् । द्विजानां सदने दिव्ये कुलेमहतिजायते ॥२१५॥
मानुषेषुसधर्म्मात्मासुरूपोवाक्पतिर्भवेत् । स्पृहणीयवपुःस्त्रीणाम्महाभोगपतिर्बली २१६
वानप्रस्थसमाचारोग्राम्योपाधिविवर्जितः । सर्वलोकेषुचाप्यस्यगतिर्नप्रतिहन्यते ।२१७।
शीर्णपर्णफलाहारःपुष्पमूलांबुभोजनः । कपोतेनाश्मकुट्टेन दंतोलूखलिकेन च ॥२१८॥
वृत्त्युपायेनजीवेतचीरवल्कलवाससा । जटीत्रिषवणस्नायीत्यक्तदोषस्तुदंडवान् ॥२१९॥
कृच्छ्रव्रतपरोयस्तुश्वपचोयदिवापरः । जलशार्यापंचतपावर्षास्वभ्रावगाहकः ॥२२०॥
कीटकंटकपाषाणभूम्यांतुशयनंतथा । स्थानवीरासनरतः संविभागीदृढव्रतः ॥ २२१ ॥
अरण्यौषधिभोक्ताचसर्वभूताभयप्रदः । नित्यंधर्मार्जनरतोजितक्रोधोजितेंद्रियः ॥२२२॥
ब्रह्मभक्तःक्षेत्रवासीपुष्करेवसनेमुनिः । सर्वसंगपरित्यागीस्वारामोविगतस्पृहः ॥२२३॥
यश्चात्रवसतेभीष्मशृणुतस्यापियागतिः । तरुणार्कप्रकाशेनवेदिकास्तंभशोभिना ।२२४।
ब्रह्मभक्तोविमानेनयातिकामप्रचारिणा । विराजमानोनभसिद्वितीयइवचंद्रमाः ॥ २२५ ॥
गीतवादित्रनृत्यज्ञैर्गंधर्वाप्सरसांगणैः । अप्सरोभिःसमायुक्तोवर्षकोटिशतान्यसौ २२६
यस्यकस्यापिदेवस्यलोकंयात्यनिवारितः । ब्रह्मणोऽनुग्रहेणैव तत्र तत्र विराजते ॥२२७॥
ब्रह्मलोकाच्च्युतश्चापिविष्णुलोकंसगच्छति । विष्णुलोकात्परिभ्रष्टोरुद्रलोकंसगच्छति
तस्मादपिच्युतः स्थानाद्द्वीपेषुसहिजायते । स्वर्गेषुचतथान्येषुभोगान्भुक्त्वायथेप्सितान्
भुक्त्वैश्वर्यंततस्तेषुपुनर्मर्त्येषुजायते । राजावाराजपुत्रोवाजायतेधनवान्सुखी ॥२३०॥
सुरूपःसुभगःकांतःकीर्तिमान्भक्तिभावितः । ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःशूद्रावाक्षेत्रवासिनः ।

स्वधर्मनिरताराजन्सुवृत्ताश्चिरजीविनः । सर्वात्मनाब्रह्मभक्ताभूतानुग्रहकारिणः ॥२३२॥
पुष्करेतुमहाक्षेत्रेयेवसंतिमुमुक्षवः । मृतास्ते ब्रह्मभवनंविमानैर्यान्तिशोभनैः ॥ २३३ ॥
अप्सरोगणसंघुष्टैःकामगैःकामरूपिभिः । अथवासंप्रदीप्ताग्नौस्वशरीरंजुहोतियः ॥२३४॥
ब्रह्माध्यायीमहासत्वःसब्रह्मभवनंव्रजेत् । ब्रह्मलोकोऽक्षयस्तस्य शाश्वतो विभवैःसह ॥
सर्वलोकोत्तमो रम्यो भवतीष्टार्थसाधकः ।
पुष्करे तु महापुण्ये प्राणान्येसलिलेऽत्यजन् ॥ २३६ ॥
तेषामप्यक्षयोभीष्मब्रह्मलोकोमहात्मनाम् । साक्षात्पश्यंति ते देवंसर्वदुःखविनाशनम् ।
सर्वामरयुतं देवं रुद्रविष्णुगणैर्युतम् । अनाशकेमृताश्शूद्राः पुष्करे तु वने नराः ॥२३८॥
हंसयुक्तैस्ततोयांति विमानैरर्कसप्रभैः । नानरत्नसुवर्णाढ्यैर्दृढैर्गन्धाधिवासितैः ।२३६।
अनौपम्यगुणैरन्यैरप्सरोगीतनादितैः । पताकाध्वजविन्यस्तैर्नानाघण्टानिनादितैः ॥
बह्वाश्चर्यसमोपेतैः क्रीडाविज्ञानशालिभिः । सुप्रभैर्गुणसंपन्नैर्मयूरवरवाहिभिः ॥२४१॥
ब्रह्मलोकेनराधाधीरारमंतेऽनाशकेमृताः। तत्रोषित्वाचिरंकालंभुक्त्वाभोगान्यथेप्सितान् ।
धनीविप्रकुलेभोगी जायतेमर्त्यमागतः । कारीषीं साधयेद्यस्तुपुष्करेतु वनेनरः ॥२४३॥
सर्वलोकान्परित्यज्य ब्रह्मलोकंसगच्छति । ब्रह्मलोकेवसेत्तावद्यावत्कल्पक्षयो भवेत् ॥
नवैपश्यतिमर्त्यंहिक्लिश्यमानंस्वकर्मभिः । गतिस्तस्याप्रतिहता तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा ॥
स पूज्यः सर्वलोकेषु यशोविस्तारयन्वशी । सदाचारविधिप्रज्ञः सर्वेन्द्रियमनोहरः ॥
नृत्यवादित्रगीतज्ञःसुभगः प्रियदर्शनः । नित्यमम्लानकुसुमो दिव्याभरणभूषितः ॥२४७॥
नीलोत्पलदलश्यामो नीलकुञ्चितमूर्द्धजः । अजघन्याः सुमध्याश्च सर्वसौभाग्यपूरिताः ।
सर्वैश्वर्यगुणोपेता यौवनेनातिगर्विताः । स्त्रियः सेवन्ति तत्रस्थाः शयनेरमयंतिच ।२४६।
वीणावेणुनिनादैश्चसुप्तःसंप्रतिबुध्यते । महोत्सवसुखंभुंक्तेदुष्प्राप्यमकृतात्मभिः ।२५०॥
प्रसादाद्देवदेवस्य ब्रह्मणः शुभकारिणः ।

भीष्म उवाच ।

आचाराः परमा धर्माः क्षेत्रधर्मपरायणाः ॥ २५१ ॥
स्वधर्माचारनिरता जितक्रोधाजितेंद्रियाः । ब्रह्मलोकं व्रजंतीतिनैतच्चित्रं मतं मम ।२५२।

असंशयंचगच्छंति लोकानन्यानपिद्विजाः। विना यज्ञोपवासेन तथैवनियमेन च॥२५३॥
स्त्रियोम्लेच्छाश्च शूद्राश्चपक्षिणः पशवोमृगाः। मूकाजडान्धबधिरास्तपोनियमवर्जिताः।
तेषां वद गतिं विप्र पुष्करे ये त्ववस्थिताः।

पुलस्त्य उवाच।

स्त्रियोम्लेच्छाश्च शूद्राश्च पशवः पक्षिणोमृगाः॥२५५॥
पुष्करे तु मृता भीष्म ब्रह्मलोकंव्रजंतिते। शरीरैर्दिव्यरूपैस्तु विमानैरविसप्रभैः॥२५६॥
दिव्यव्यूहसमायुक्तैः सुवर्णवरकेतनैः। सुवर्णवज्रसोपानमणिस्तंभविभूषितैः॥ २५७॥
सर्वकामोपभोगाढ्यैःकामगैःकामरूपिभिः। नानारसाढ्यं गच्छंतिस्त्रीसहस्रसमाकुलाः।
ब्रह्मलोकंमहात्मानोलोकान्यान्यथेप्सितान्। ब्रह्मलोकाच्च्युताश्चापिक्रमाद्द्वीपेषुयांतिते
कुलेमहति विस्तीर्णे धनीभवतिसद्विजः। तिर्यग्योनिगताये तु सर्पकीटपिपीलिकाः॥
स्थलजाजलजाश्चैव स्वेदांडोद्भिज्जरायुजाः। सकामावाप्यकामावा पुष्करेतुवनेमृताः।
सूर्यप्रभविमानस्था ब्रह्मलोकं प्रयांतिते। कलौयुगे महाघोरे प्रजाः पापसमीरिताः॥
नान्येनास्मिन्नुपायेन धर्मः स्वर्गश्चलभ्यते। वसंति पुष्करे ये तु ब्रह्मार्चनरतानराः॥
कलौयुगेकृतार्थास्ते क्लिश्यंत्यन्येनिरर्थकाः। रात्रौकरोति यत्पापंनरः पंचभिरिंद्रियैः॥
कर्मणामनसावाचा कामक्रोधवशानुगः। प्रातः सवनमासाद्य पुष्करेतु पितामहम्॥
अभिगम्यशुचिर्भूत्वा तस्मात्पापात्प्रमुच्यते। अर्कस्योदयमारभ्य यावद्दर्शनमूर्ध्वगम्॥
मानसाख्येप्रसंचिंत्य ब्रह्मयोगे हरेदघम्। दृष्ट्वा विरिंचिं मध्याह्ने नरः पापात्प्रमुच्यते॥
मध्याह्नास्तमयान्तं यदिंद्रियैः पापमाचरेत्। पितामहस्य संध्यायां दर्शनादेवमुच्यते॥
शब्दादीन्विषयान्सर्वान्भुंजानोऽपिसकामतः। यःपुष्करेब्रह्मभक्तोनिवसेत्तपसिस्थितः॥
शीर्णपर्णाशिनोवायः फलमूलाम्बुभोजनः। वृक्षमूलेऽश्मकूटे वा सर्वदा तपते तपः।२७०।
पुष्करारण्यमध्यस्थोमिष्टान्नास्वादभोजनः। त्रिकालमपिभुंजानो वायुभक्षसमोमतः॥
वसंतिपुष्करेयेतुनराः सुकृतकर्मिणः। ते लभंते महाभोगान्क्षेत्रस्यास्य प्रभावतः॥२७२॥
यथामहोदधेस्तुल्योनचान्योऽस्तिजलाशयः। तथा वै पुष्करस्यापि समं तीर्थं न विद्यते॥
देवाधिकोयथाब्रह्मायथानान्योऽधिकोभवेत्। पुष्करारण्यसदृशंतीर्थंनास्त्यधिकंगुणैः॥

अथ तेऽन्यान्प्रवक्ष्यामि येऽस्मिन्क्षेत्रे व्यवस्थिताः ॥ २७५ ॥
विष्णुना सहिताः सर्वे इंद्राद्याश्चदिवौकसः । गजवक्त्रः कुमारश्चरेवंतः सदिवाकरः ॥
शिवदूती तथादेवी कन्या क्षेमंकरीवरा । स्थिताहितार्थं जगतो ब्रह्मणो निलये सदा ॥
अलंतपोभिर्नियमैः सुक्रियार्चनकारिणाम् । व्रतोपवासकर्माणि कृत्वान्त्यत्र महान्त्यपि ।
ज्येष्ठेतुपुष्करारण्ये यस्तिष्ठति निरुद्यमः । लभतेसर्वकामित्वं योऽत्रैवास्तेद्विजः सदा ॥
पितामहसमं याति स्थानं परममव्ययम् । कृतेद्वादशभिर्वर्षैस्त्रेतायांहायनेन तु ॥ १७६ ॥
मासेन द्वापरे भीष्म अहोरात्रेण तत्कलौ ॥ २८० ॥
फलंसंप्राप्यतेलोकैः क्षेत्रेऽस्मिंस्तीर्थवासिभिः । इत्येवं देवदेवेन पुरोक्तं ब्रह्मणामम ॥
नातःपरतरं किंचित्क्षेत्रमस्तीहभूतले । तस्मात्सर्वप्रयत्नेनारण्यमेतत्समाश्रयेत् ॥२८२॥
गृहस्थोब्रह्मचारीच वानप्रस्थोऽथभिक्षुकः । यथोक्तकारिणः सर्वेगच्छंतिपरमांगतिम् ॥
एकस्मिन्नाश्रमेधर्मं योऽनुतिष्ठेद्यथाविधि । अकामद्वेषसंयुक्तः स परत्रमहीयते ॥२८४॥
चतुष्पदाहिनिःश्रेणीब्रह्मणैषाप्रतिष्ठिता । एतामाश्रित्यनिःश्रेणीं ब्रह्मलोके महीयते ।२८५।
आयुषोऽपिचतुर्भागं ब्रह्मचार्यनसूयकः । गुरौवा गुरुपुत्रेवावसेद्धर्मार्थकोविदः ॥२८६॥
कर्मातिरेकेणगुरोरध्येतव्यं बुभूषता । दक्षिणानां प्रदायीस्यादाहूतोगुरुमाश्रयेत् ॥२८७॥
जघन्यशायीपूर्वंस्यादुत्थायीगुरुवेश्मनि । यच्च शिष्येण कर्त्तव्यं कार्यमासेवनादिकम् ॥
कृतमित्येवतत्सर्वंकृत्वातिष्ठेत्तुपार्श्वतः । किंकरःसर्वकारीच सर्वकर्मसुकोविदः ॥२८६॥
शुचिर्दक्षोगुणोपेतोब्रूयादिष्टमथोत्तरम् । चक्षुषागुरुमव्यग्रोनिरीक्षेत जितेंद्रियः ॥ २६०॥
नाभुक्तवतिचाश्नीयादपीतवतिनोपिबेत् । नतिष्ठतितथासीत न सुप्तेनैवसंविशेत् ॥२६१॥
उत्तानाभ्यां च पाणिभ्यां पादावस्य मृदु स्पृशेत् ।
दक्षिणं दक्षिणेनैव सव्यं सव्येन पीडयेत् ॥ २६२ ॥
अभिवाद्यगुरुंब्रूयादभिधांस्वांब्रुवन्निति । इदं करिष्ये भगवन्निदं चापिमयाकृतम् ॥
इति सर्वं च विज्ञाप्य निवेद्यगुरवेधनम् । कुर्यात्कृतं च तत्सर्वमाख्येयं गुरवेपुनः ॥
यांस्तुगंधान्रसान्वापि ब्रह्मचारी न सेवते । सेवेततान्समावृत्य इतिधर्मेषुनिश्चयः ॥
येकेचिद्विस्तरेणोक्ता नियमा ब्रह्मचारिणः । तान्सर्वाननुगृह्णीयाद्भक्तशिष्यश्चवै गुरोः ॥

स एवं गुरवे प्रीतिमुपहृत्य यथाबलम् । अग्राम्येष्वाश्रमेष्वेवं शिष्यो वर्तेत कर्मणा ॥
वेदंवेदौ तथा वेदान्वेदार्थांश्चतथाद्विजः । भिक्षाभुगप्यधःशायीसमधीत्यगुरोर्मुखात् ॥
वेदव्रतोपयोगी च चतुर्थांशेन योगतः । गुरवे दक्षिणांदत्वा समावर्तेद्यथाविधि ॥
धर्मान्वितैर्युतोदारैरग्नीनावाह्य पूजयेत् । द्वितीयमायुषोभागं गृहमेधी समाचरेत् ।३००।
गृहस्थवृत्तयःपूर्वं चतस्रोमुनिभिः कृताः । कुशूलधान्याप्रथमा कुंभीधान्या द्वितीयका ।
अश्वस्तनी तृतीयोक्ता कापोत्यथ चतुर्थिका । तासांपरापराश्रेष्ठा धर्मतालोकजित्तमा ॥
षट्कर्मवर्त्तकस्त्वेकस्त्रिभिरन्यःप्रवर्तते । द्वाभ्यांचैव चतुर्थस्तु द्विजःसब्रह्मणिस्थितः ।
गृहमेधिव्रतादन्यन्महत्तीर्थं न चक्षते ।नात्मार्थे पाचयेदन्नं न वृथाघातयेत्पशुम् ॥
प्राणी वा यदि वा प्राणी संस्कारायज्ञ मर्हति । न दिवा प्रस्वपेज्जातुनपूर्वापररात्रयोः ।
न भुंजीतांतराकाले नानृतं तु वदेदिह । नास्यानश्नन्वसेद्विप्रो गृहेकश्चिदपूजितः ॥
तथास्या तिथयः पूज्याहव्यकव्यवहाःस्मृताः । वेदविद्यव्रतस्नाताः श्रोत्रियावेदपारगाः
स्वकर्मजीविनोदांताःक्रियावंतस्तपस्विनः । तेषां हव्यं च कव्यं चाप्यर्हणार्थंविधीयते
नश्वरैस्संप्रयातस्य स्वधर्मापगतस्य च । अपविद्धाग्निहोत्रस्य गुरोर्वालीककारिणः ।
असत्याभिनिवेशस्यनाधिकारोऽस्तिकव्ययोः । संविभागोऽत्रभूतानांसर्वेषामेवशिष्यते
तथैवापचमानेभ्यः प्रदेयंगृहमेधिना । विघसाशी भवेन्नित्यं नित्यं चामृतभोजनः ॥
अमृतं यज्ञशेषः स्याद्भोजनं हविषासमम् । संभुक्तशेषं योऽश्नातितमाहुर्विघसाशिनम् ॥
स्वदारनिरतोदांतोदक्षोऽत्यर्थंजितेन्द्रियः । ऋत्विक्पुरोहिताचार्यमातुलातिथिसंहतः ॥
वृद्धवालातुरैर्वैद्यैर्ज्ञातिसंबंधिबांधवैः । मात्रा पित्रा च जामात्रा भ्रात्रापुत्रेण भार्यया ॥
दुहित्रा दासवर्गेण विवादं न समाचरेत् । एतान्विमुच्यसंवादान्सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥
एतैर्जितैस्तु जयति सर्वलोकान्नसंशयः । आचार्यो ब्रह्मलोकेशः प्राजापत्यप्रभुः पिता ॥
अतिथिःसर्वलोकेश ऋत्विग्वेदाश्रयः प्रभुः । जामाताप्सरसांलोकेज्ञातयोवैश्वदेविकाः ।
संबंधिबांधवादिक्षुपृथिव्यां मातृमातुलौ । वृद्धबालातुराश्चैव आकाशेप्रभविष्णवः ॥
पुरोधाऋषिलोकेशःसंश्रितास्साध्यलोकपाः । अश्विलोकपतिर्वैद्योभ्राताततुवसुलोकपः ।
चन्द्रलोकेश्वरीभार्या दुहिताप्सरसांगृहे । भ्राता ज्येष्ठः समःपित्रा भार्यापुत्रःस्वकातनुः

कायस्थादासवर्गाश्च दुहिताकृपणंपरम् । तस्मादेतैरधिक्षिप्तः सहेन्नित्यमसंज्वरः ॥
गृहधर्मरतोविद्वान्धर्मनिष्ठो जितक्रमः । नारभेद्बहुकार्याणि धर्मवान्किंचिदारभेत् ॥
गृहस्थवृत्तयतिस्रस्तासांनिःश्रेयसंपरम् । परस्परं तथैवाहुश्चातुराश्रम्यमेव च ॥
येचोक्तानियमास्तेषां सर्वंकार्यंबुभूषुणा । कुंभधान्यैरुञ्छशिलैःकापोतींवृत्तिमाश्रिताः ।
यस्मिंश्च तव संत्यर्थास्तद्राष्ट्रमभिवर्धते । पूर्वापरान्दशपरान्पुनाति च पितामहान् ॥
गृहस्थवृत्तिमप्येतां वर्तते यो गतव्यथः । स चक्रधरलोकानां समानाम्प्राप्नुयाद्गतिम् ।
जितेन्द्रियाणामथवा गतिरेषाविधीयते । स्वर्गलोको गृहस्थानां प्रतिष्ठानियतात्मनाम् ।
ब्रह्मणाभिहिता श्रेणीह्येषायस्याःप्रमुच्यते । द्वितीयां क्रमशः प्राप्य स्वर्गलोके महीयते ।
तृतीयामपि वक्ष्यामि वानप्रस्थाश्रमंशृणु । गृहस्थस्तुयदापश्येद्वलीपलितमात्मनः ॥
अपत्यस्यैवचापत्यं वनमेव तदाश्रयेत् । गृहस्थव्रतखिन्नानां वानप्रस्थाश्रमौकसाम् ॥

श्रूयतां भीष्म भद्रं ते सर्वलोकाश्रयात्मनाम् ।
दीक्षापूर्वं निवृत्तानां पुण्यदेशनिवासिनाम् ॥ ३३१ ॥

प्रज्ञाबलयुजांपुसां सत्यशौचक्षमावताम् । तृतीयमायुषोभागं वानप्रस्थाश्रमे वसन् ॥
तानेवाग्नीन्परिचरैद्यजमानो दिवौकसः । नियतो नियताहारो विष्णुभक्तिप्रसक्तिमान् ।
तदाग्निहोत्रमात्राणि यज्ञांगानि च सर्वशः । अकृष्टं च व्रीहियवंनीवारं विघसानि च
ग्रीष्मेहविष्यं प्रायच्छेत्समखेष्वपि पंचसु । वानप्रस्थाश्रमेऽप्येताश्चतस्रोवृत्तयःस्मृताः ।

सद्यःप्रभक्षकाः केचित्केचिन्मासिकसंचयान् ।
वार्षिकान्संचयान्केचित्केचिद् द्वादशवार्षिकान् ॥ ३३६ ॥

कुर्वन्त्यतिथिपूजार्थं यज्ञतन्त्रार्थमेव च । अभ्रावकाशा वर्षासु हेमंते जलसंश्रयाः ।
ग्रीष्मे पंचाग्नितपसः शश्वदमृतभोजनाः । भूमौविपरिवर्तंते तिष्ठन्तिप्रपदैरपि ॥ ३३८ ॥
स्थानासने च वर्तन्ते वसनेष्वपि संस्थिते । दंतोलूखलिनः केचिदश्मकुट्टास्तथापरे ॥
शुक्लपक्षेपिबन्त्येके यवागूंक्वथितां क्वचित् । कृष्णपक्षेपिबन्त्येके भुंजते च यथागमम् ॥
मूलैरेके फलैरेके जलैरेके दृढव्रताः । वर्त्तयंति यथान्यायं वैखानसधृतव्रताः ॥ ३४१ ॥
एताश्चान्याश्च विविधादीक्षास्तेषांमनस्विनाम् । चतुर्थश्चौपनिषदोधर्मः साधारणोमतः ।

वानप्रस्थोगृहस्थश्च स ततोऽन्यः प्रवर्त्तते । तस्मिन्नेवयुगे तात विप्रैःसर्वार्थदर्शिभिः ॥
अगस्त्यश्चसप्तर्षयोमधुच्छंदोगवेषणः । सांकृतिः सदिवोभांडिर्यवप्रोथोह्यथर्वणः ।४४।
अहोवीर्यस्तथाकाम्यःस्थाणुर्मेधातिथिर्बुधः । मनोवाकःशिनीवाकःशून्यपालोऽकृतव्रणः

एते कर्मसु विद्वांसस्ततः स्वर्गमुपागमन् ।
एते प्रत्यक्षधर्माणस्तथा यायावरा गणाः ॥ ३४६ ॥

ऋषीणामुग्रतपसां धर्मनैपुण्यदर्शिनाम् । सुरेश्वरं समाराध्य ब्राह्मणा वनमाश्रिताः ॥
अपास्योपरतामायांब्राह्मणावनमाश्रिताः । अनक्षत्रास्तथाऽधृष्याद्दृश्यन्तेज्योतिषांगणाः।
जरया तु परिद्यूनाव्याधिना परिपीडिताः । चतुर्थं त्वाश्रमं शेषं वानप्रस्थाश्रमाद्ययुः ॥
सद्यस्कारीसुनिर्वाप्यसर्ववेदसदक्षिणान् । आत्मयाजीसौम्यमतिरात्मक्रीडात्मसंश्रयः ॥
आत्मन्यग्निं समाधाय त्यक्त्वासर्वपरिग्रहम् । सद्यस्कश्चयजेद्यज्ञानिष्टिं चैवेह सर्वदा ॥
सदैवयाजिनां यज्ञमात्मनीज्याप्रवर्त्तते । त्रींश्चैवाग्नीन्यजेत्सम्यगात्मन्येवात्मनाक्षणात् ।
प्राप्नुयाद्येन वा यच्च तत्प्राश्नीयादकुत्सयन् । केशलोमनखान्यस्येद्वानप्रस्थाश्रमे रतः ॥
आश्रमादाश्रमं सद्यः पूतोगच्छतिकर्मभिः । अभयंसर्वभूतेभ्यो यो दत्वाप्रव्रजेद्द्विजः ॥

लोकास्तेजोमयास्तस्य प्रेत्य चानन्त्यमश्नुते ॥ ३५४ ॥
सुशीलवृत्तो व्यपनीतकल्मषो न चेह नामुत्र चरन्त्यमीहते ।
अरोषमोहो गतसंधिविग्रहः स चेदुदासीनवदात्मचिंतया ॥ ३५५ ॥
यमेषु चैवान्यगतेषु न व्यथः स्वशास्त्रशून्यो हृदि नात्मविभ्रमः ।
भवेद्यथेष्टागतिरात्मयाजिनि निस्संशये धर्मपरे जितेन्द्रिये ॥ ३५६ ॥
अतःपरं श्रेष्ठमतीवसद्गुणैरधिष्ठितं त्रीनतिवर्त्य चाश्रमान् ।
चतुर्थमुक्तं परमाश्रमं शृणु प्रकीर्त्यमानं परमं परायणम् ॥ ३५७ ॥

प्राप्य संस्कारमेताभ्यामाश्रमाभ्यांततःपरम् । यत्कार्यंपरमात्मार्थंतत्त्वमेकमनाः शृणु ॥
काषायंधारयित्वातुश्रेणीस्थाने तु च त्रिषु । योव्रजेच्चपरंस्थानं पारिव्राज्यमनुत्तमम् ॥

तद्भावेन न संन्यस्य वर्तनं श्रूयतां तथा ॥ ३६० ॥

एकएवचरेद्धर्मसिद्ध्यर्थमसहायवान् । एकश्चरतियः पश्यन्नजहाति न हीयते ॥ ३६१ ॥

अनग्निरनिकेतस्तु ग्रामं भिक्षार्थमाश्रयेत् । अश्वस्तनविधानःस्यान्मुनिर्भावसमन्वितः ॥
लब्धाशीनियताहारः सकृदन्नं निषेवयेत् । कपालं वृक्षमूलानि कुचैलमसहायता ॥
उपेक्षा सर्वभूतानामेतावद्भिक्षुलक्षणम् ॥ ३६३ ॥
यस्मिन्वाचः प्रविशंति कूपेप्राप्तामृताइव । न वक्तारं पुनर्यांति सकैवल्याश्रमेवसेत् १६४
नैवपश्येन्नशृणुयादवाच्यं जातु कस्यचित् । ब्राह्मणानां विशेषेण नैतद्ब्रूयात्कथंचन ॥
यद्ब्राह्मणस्यानुकूलं तदेव सततंवदेत् । तूष्णीमासीत निंदायां कुर्वन्भैषज्यमात्मनः ॥
येनपूर्णमिवाकाशं भवत्येकेन सर्वदा । शून्यं येन समाकीर्णं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥
येनकेनचिदाच्छन्नो येनकेनचिदाशितः । यत्र क्वचनशायी च तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥
अहेरिव जनाद्भीतः सुहृदोनरकादिव । कुणपादिव नारीभ्यस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥
नहृष्येतविषीदेत मानितोऽमानितस्तथा । सर्वभूतेष्वभयदस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ।३७०।
नाभिनंदेत मरणं नाभिनंदेत जीवितम् । कालमेव निरीक्षेत निर्देशं कृषको यथा ३७१॥
अनभ्याहतचित्तश्च दांतश्चाहतधीस्तथा । विमुक्तः सर्वपापेभ्यो नरोगच्छेत्ततोदिवम् ॥
अभयं सर्वभूतेभ्यो भूतानामभयंयतः । तस्य देहविमुक्तस्य भयं नास्ति कुतश्चन ।३७३।
यथानागपदेऽन्यानि पदानि पदगामिनाम् । सर्वाण्येवावलीयंते तथा ज्ञानानिचेतसि ॥
एवं सर्वमहिंसायां धर्मोऽर्थश्चमहीयते । मृतः स नित्यं भवति यो हिंसां प्रतिपद्यते ॥
अहिंसकस्ततः सम्यग्धृतिमान्नियतेंद्रियः । शरण्यस्सर्वभूतानां गतिमाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥
एवं प्रज्ञानतृप्तस्य निर्भयस्य मनीषिणः । न मृत्युरधिकोभावः सोऽमृतत्वंचगच्छति ॥
विमुक्तः सर्वसंगेभ्योमुनिराकाशवत्स्थितः । विष्णुप्रियकरःशांतस्तं देवाब्राह्मणंविदुः ॥
जीवितं यस्य धर्मार्थं धर्मोरत्यर्थमेव च । अहोरात्रादि पुण्यार्थं तं देवा ब्राह्मणं विदुः
निवारितसमारंभं निर्नमस्कारमस्तुतिम् । अक्षीणं क्षीणकर्माणं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥

सर्वाणि भूतानि सुखं रमंते सर्वाणि दुःखानि भृशं भवन्ति ।
तेषां भवोत्पादनजातखेदः कुर्यात्तु कर्माणि च श्रद्दधानः ॥ ३८१ ॥
दानं हि भूताभयदक्षिणाया सर्वाणि दानान्यधितिष्ठतीह ।
तीक्ष्णं तनुं यः प्रथमंजुहोति सोऽनंतमाप्नोत्यभयं प्रजाभ्यः ॥ ३८२ ॥

उत्तानमास्येन हविर्जुहोति अनंतप्राप्नोत्यभितः प्रतिष्ठाम् ।
तस्यांगसंगादभिनिष्कृतं च वैश्वानरं सर्वमिदं प्रपेदे ॥ ३८३ ॥
प्रादेशमात्रे हृदिनिस्सृतं यत्तस्मिन्प्राणेनात्मयाजी जुहोति ।
तस्याग्निहोत्रं हुतमात्मसंस्थं सर्वेषु लोकेषु सदैवतेषु ॥ ३८४ ॥
देवं विधातुं त्रिवृतं सुवर्णं ये वै विदुस्तं परमार्थभूतम् ।
ते सर्वभूतेषु महीयमाना देवाः समर्था अमृतं व्रजंति ॥ ३८५ ॥
वेदांश्च वेद्यं च विधिंच कृत्स्नमथोनिरुक्तं परमार्थताञ्च ।
सर्वं शरीरात्मनि यः प्रवेद तस्याभिसर्वे प्रचरंति नित्यम् ॥३८६॥
भूमावसक्तं दिवि चाप्रमेयं हिरण्मयं तं च स मंडलांते ।
प्रदक्षिणं दक्षिणमंतरिक्षे यो वेदनाप्यात्मनि दीप्तरश्मिः ॥ ३८७ ॥
आवर्तमानं च विवर्तमानं षण्नेमि यद्द्वादशारं त्रिपर्व ।
यस्येदमास्यं परिपाति विश्वं तत्कालचक्रं निहितं गुहायाम् ॥३८८ ॥
यतःप्रसादं जगतःशरीरं सर्वांश्चलोकानधिगच्छतीह ।
तस्मिन्हिसंतर्पयतीह देवान्सर्वैविमुक्तो भवतीह नित्यम् ॥ ३८९ ॥
तेजोमयो नित्यमतःपुराणो लोके भवत्यर्थभयादुपैति ।
भूतानि यस्मान्न भयं व्रजंति भूतेभ्यो यो नोद्विजते कदाचित् ॥ ३९० ॥
अगर्हणीयो नच गर्हतेऽन्यान्सर्वैविप्रः प्रवरं स्वात्मनीक्षेत् ।
विनीतमोहोऽप्यपनीतकल्मषो न चेह नामुत्र च योऽर्थमृच्छति ॥३९१॥
अरोषमोहः समलोष्टकांचनः प्रहीणशोको गतसंधिविग्रहः ।
अपेतनिंदास्तुतिरप्रियाप्रियश्चरन्नुदासीनवदेव भिक्षुः ॥ ३९२ ॥
इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे क्षेत्रवासमाहात्म्यं नाम पंचदशोऽध्यायः

षोडशोऽध्यायः

ब्रह्मदेवकृतयज्ञवर्णनम् ।

भीष्म उवाच ।

यदेतत्कथितं ब्रह्मंस्तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् । कमलस्याभिपातेन तीर्थजातं धरातले ॥१॥
तत्रस्थेन भगवता विष्णुना शंकरेण च । यत्कृतं मुनिशार्दूल तत्सर्वं परिकीर्त्तय ॥२॥
कथं यज्ञोहिदेवेन विभुना तत्र कारितः । केसदस्याऋत्विजश्च ब्राह्मणाः केसमागताः ॥
के भागास्तस्य यज्ञस्य किंद्रव्यं काचदक्षिणा । कावेदीकिंप्रमाणंचकृतं तत्र विरिंचिना
योयाज्यः सर्वदेवानां वेदैःसर्वत्र पठ्यते । कंचकाममभिध्यायन्वेधायज्ञंचकार ह ॥५॥
यथासौदेवदेवेशो ह्यजरश्चामरश्चह । तथाचैवाक्षयः स्वर्गस्तस्य देवस्य दृश्यते ॥ ६ ॥
अन्येषांचैवदेवानांदत्तःस्वर्गोमहात्मना । अग्निहोत्रार्थमुत्पन्नावेदाओषधयस्तथा ॥७॥
येवान्येपशवोभूमौसर्वेतेयज्ञकारणात् । सृष्टा भगवतानेनइत्येषा वैदिकीश्रुतिः ॥ ८ ॥
तदत्रकौतुकंमह्यंश्रुत्वेदंतवभाषितम् । यंकाममधिकृत्यैकं यत्फलं यां च भावनाम् ॥९॥
कृतश्चानेनवैयज्ञःसर्वंशंसितुमर्हसि । शतारूपा च यानारीसावित्रीसात्विहोच्यते ॥१०॥
भार्यासाब्रह्मणःप्रोक्ताऋषीणांजननीचसा । पुलस्त्याद्यान्मुनीन्सप्तदक्षाद्यांस्तुप्रजापतीन् ।
स्वायंभुवादींश्चमनून्सावित्रीसमजीजनत् । धर्मपत्नींतुतांब्रह्मापुत्रिणीमात्मनःप्रियाम् ॥
पतिव्रतांमहाभागांसुव्रतांचारुहासिनीम् । कथंसतींपरित्यज्यभार्यामन्यामविंदत ॥१३॥
किंनाम्नीकिंसमाचाराकस्यसातनयाविभोः । क्वसादृष्टाहिदेवेनकेनचास्यप्रदर्शिता ॥१४
किंरूपासातुदेवेशीदृष्टाचित्तविमोहिनी । यांतुदृष्ट्वासदेवेशःकामस्यवशमेयिवान् ॥१५॥
वर्णतोरूपतश्चैवसाविश्यास्त्वधिकामुने । यामोहितवतीदेवंसर्वलोकेश्वरंविभुम् ॥१६॥
यथागृहीतवान्देवोनारींतांलोकसुन्दरीम् । यथाप्रवृत्तोयज्ञोऽसौतथासर्वंप्रकीर्तय ॥१७॥
तांदृष्ट्वाब्रह्मणःपार्श्वेसावित्रीकिंचकारह । सावित्र्यांतुतदाब्रह्माकांतुवृत्तिमवर्त्तत ॥१८॥
सन्निधौकानिवाक्यानिसावित्रीब्रह्मणातदा । उक्ताप्युक्तवतीभूयःसर्वंशंसितुमर्हसि ॥१९

किंकृतंतत्रयुष्माभिःकोपोवाथक्षमापिवा। यत्कृतंतत्रयद्दृष्टंयत्तवोक्तंमयात्विह ॥ २० ॥
विस्तरेणेहसर्वाणिकर्माणिपरमेष्ठिनः । श्रोतुमिच्छाम्यशेषेणविधेर्यज्ञविधिंपरम् ॥२१॥
कर्मणामानुपूर्व्यंचप्रारंभोहोत्रमेवच । होतुर्भक्षोयथार्चापिप्रथमाकस्यकारिता ॥ २२ ॥
कथंचभगवान्विष्णुःसाहाय्यंकेनकीदृशम् । अमरैर्वाकृतंयच्चतद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ २३ ॥
देवलोकंपरित्यज्यकथंमर्त्यमुपागतः । गार्हपत्यंचविधिनाअन्वाहार्यंचदक्षिणम् ॥ २४ ॥
अग्निमाहवनीयंचवेदींचैवतथास्रुवम् । प्रोक्षणीयंस्रुचंचैव आवभृथ्यं तथैवच ॥ २५ ॥
अग्नींस्त्रींश्चयथाचक्रेहव्यभागवहान्हि वै । हव्यादांश्चसुरांश्चक्रेकव्यादांश्चपितॄनपि ॥ २६
भागार्थं यज्ञविधिना ये यज्ञायज्ञकर्मणि । यूपान्समित्कुशं सोमं पवित्रं परिधीनपि॥२७
यज्ञियानिचद्रव्याणि यथा ब्रह्माचकारह । विवभ्राजपुरायश्चपारमेष्ठ्येन कर्मणा ॥ २८॥
क्षणानिमेषाः काष्ठाश्चकलास्त्रैकाल्यमेव च। मुहूर्तास्तिथयो मासा दिनंसंवत्सरस्तथा।
ऋतवः कालयोगाश्च प्रमाणं त्रिविधंपुरा । आयुःक्षेत्राण्यपचयंलक्षणं रूपसौष्ठवम् ।३०।
त्रयोवर्णास्त्रयोलोकास्त्रैविद्यंपावकास्त्रयः । त्रैकाल्यंत्रीणिकर्माणित्रयोवर्णास्त्रयोगुणाः
सृष्टालोकाः पराःस्रष्ट्रायेचान्येऽनल्पचेतसा । यागतिर्धर्मयुक्तानां या गतिःपापकर्मणाम्
चातुर्वर्ण्यस्य प्रभवश्चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता । चातुर्विद्यस्ययोवेत्ता चतुराश्रमसंश्रयः ॥३३
यः परंश्रूयतेज्योतिर्यः परं श्रूयतेतपः । यः परंपरतःप्राह परं यः परमात्मवान् ॥ ३४ ॥
सेतुर्योलोकसेतूनां मेध्योयोमेध्यकर्मणाम् । वेद्योयोवेदविदुषांयःप्रभुःप्रभवात्मनाम् ॥
असुभूतश्चभूतानामग्निभूतोऽग्निवर्चसाम् । मनुष्याणांमनोभूतस्तपोभूतस्तपस्विनाम् ॥
विनयोनयवृत्तानां तेजस्तेजस्विनामपि । इत्येतत्सर्वमखिलान्सृजन्लोकपितामहः ॥
यज्ञाद्गतिंकामन्वैच्छत्कथंयज्ञेमतिःकृता । एष मे संशयोब्रह्मन्नेषमे संशयः परः ॥ ३८ ॥
आश्चर्यः परमोब्रह्मा देवैर्दैत्यैश्च पठ्यते । कर्मणाश्चर्यभूतोऽपितत्त्वतः स इहोच्यते ॥

पुलस्त्य उवाच ।

प्रश्नभारोमहानेष त्वयोक्तो ब्रह्मणश्चयः । यथाशक्तितु वक्ष्यामि श्रूयतांतत्परं यशः ॥
सहस्रास्यं सहस्राक्षं सहस्रचरणंचयम् । सहस्रश्रवणं चैव सहस्रकरमव्ययम् ॥ ४१ ॥
सहस्रजिह्वं साहस्रं सहस्रपरमंप्रभुम् । सहस्रदं सहस्रादिं सहस्रभुजमव्ययम् ॥

हवनं सवनं चैव हव्यंहोतारमेव च । पात्राणि च पवित्राणि वेदीं दीक्षां चरुंस्रुवम् ॥
स्रुक्सोममवभृच्चैव प्रोक्षणी दक्षिणाधनम् । अद्ध्वर्युं सामगं विप्रं सदस्यान्सदनंसदः ॥
यूपं समित्कुशं दर्वीं चमसोलूखलानि च । प्राग्वंशं यज्ञभूमिं च होतारं बन्धनंचयत् ॥
ह्रस्वान्यतिप्रमाणानिप्रमाणस्थावराणिच । प्रायश्चित्तानिवाजाश्चस्थंडिलानिकुशास्तथा
मंत्रंयज्ञंच हवनं वह्निभागं भवंचमम् । अग्रेभुजं होमभुजं शुभार्चिषमुदायुधम् ॥ ४७ ॥
आहुर्वेदविदोविप्रा योयज्ञःशाश्वतःप्रभु । यां पृच्छसि महाराजपुण्यांदिव्यामिमांकथाम्
यदर्थंभगवान्ब्रह्माभूमौ यज्ञमथाकरोत् । हितार्थंसुरमर्त्यानांलोकानांप्रभवायच ॥ ४६ ॥
ब्रह्माथ कपिलश्चैव परमेष्ठी तथैव च । देवाःसप्तर्षयश्चैव त्र्यंबकश्च महायशाः ॥

सनत्कुमारश्च महानुभावो मनुर्महात्मा भगवान्प्रजापतिः ।
पुराणदेवोऽथ तथा प्रचक्रे प्रदीप्तवैश्वानरतुल्यतेजाः ॥ ५१ ॥

पुरा कमलजातस्य स्वपतस्तस्यकोटरे । पुष्करे यत्र संभूतादेवाऋषिगणास्तथा ॥५२॥
एषपौष्करकोनामप्रादुर्भावोमहात्मनः । पुराणं कथ्यतेयत्र वेदस्मृतिसुसंहितम् ॥५३॥
वराहस्तुश्रुतिमुखः प्रादुर्भूतोविरिंचिनः । सहायार्थं सुरश्रेष्ठो वाराहं रूपमास्थितः ॥
विस्तीर्णं पुष्करे कृत्वा तीर्थं कोकामुखं हि तु । वेदपादोयूपदंष्ट्रःक्रतुहस्तश्चितीमुखः ॥
अग्निजिह्वोदर्भरोमाब्रह्मशीर्षोमहातपाः । अहोरात्रेक्षणोदिव्योवेदांगःश्रुतिभूषणः ॥ ५६॥
आज्यनासः स्रुवतुंडःसामघोषस्वनोमहान् । सत्यधर्ममयः श्रीमान्कर्मविक्रमसत्कृतः॥
प्रायश्चित्तनखोधीरः पशुजानुर्मखाकृतिः । उद्गात्रंत्रो होमलिंगो फलबीजमहौषधिः ॥

वाय्वंतरात्मा मंत्रास्थिरापः स्फिक् सोमशोणितः ।
वेदस्कन्धो हविर्गंधो हव्यकव्यातिवेगवान् ॥ ५६ ॥

प्राग्वंशकायोद्युतिमान्नानादीक्षाभिरर्चितः । दक्षिणाहृदयोयोगीमहासत्रमयोमहान् ।६०
उपाकर्मेष्टिरुचिरःप्रवर्ग्यावर्तभूषणः । छायापत्निसहायोवैमणिशृंगमिवोच्छ्रितः ॥६१॥
सर्वलोकहितात्मायोदंष्ट्रयाभ्युज्जहारगाम् । ततःस्वस्थानमानीयपृथिवींपृथिवीधरः ॥
ततोजगामपृथिवी निर्वाणंधारणाद्धरेः । एवमादिवराहेण धृत्वाब्रह्महितार्थिना ॥६३ ॥
उद्धृता पुष्करेपृथ्वीसागरांबुगतापुरा । वृतः शमदमाभ्यांयोदिव्येकोकामुखेस्थितः ।६४।

आदित्यैर्वसुभिःसाध्यैर्मरुद्भिर्दैवतैःसह । रुद्रैर्विश्वसहायैश्च यक्षराक्षसकिन्नरैः ॥ ६५ ॥
दिग्भिर्विदिग्भिः पृथिवीनदीभिः सह सागरैः । चराचरगुरुःश्रीमान्ब्रह्माब्रह्मविदांवरः ॥
उवाचवचनंकोकामुखंतीर्थंत्वयाविभो । पालनीयंसदागोप्यंरक्षाकार्यामखेत्विह ॥ ६७॥
एवंकरिष्येभगवंस्तदाब्रह्माणमुक्तवान् । उवाचतंपुनर्ब्रह्माविष्णुंदेवंपुरः स्थितम् ॥ ६८॥

ब्रह्मोवाच ।

त्वं हि मे परमोदेवस्त्वंहि मे परमोगुरुः । त्वं हि मेपरमंधामशक्रादीनां सुरोत्तम॥६९॥
उत्फुल्लामलपद्माक्ष शत्रुपक्षक्षयावह । यथायज्ञेन मेध्वंसोदानवैश्चविधीयते ॥ ७० ॥
तथात्वयाविधातव्यंप्रणतस्यनमोऽस्तुते । भयंत्यजस्वदेवेशक्षयंनेष्यामिदानवान् ॥ ७२॥
येचान्येविघ्नकर्तारोयातुधानास्तथासुराः । घातयिष्याम्यहंसर्वान्स्वस्तितेऽस्तुपितामह ॥
एवमुक्त्वास्थितस्तत्रसाहाय्येन कृतक्षणः । प्रववुश्चशिवावाताः प्रसन्नाश्चदिशोदश ॥७३
सुप्रभाणिचज्योतींषिचंद्रंचक्रुः प्रदक्षिणम् । नविग्रहंग्रहाश्चक्रुः प्रसेदुश्चापि सिंधवः ॥
नीरजस्काभूमिरासीत्सकलाह्लादयस्त्रयः । जग्मुः स्वमार्गंसरितोनापिचुक्षुभुरर्णवाः ॥
आसञ्शुभानींद्रियाणिनराणामंतरात्मनाम् । महर्षयोवीतशोकावेदानुच्चैरवाचयन् ॥६६।
यज्ञेतस्मिन्हविः पाकेशिवआसंश्चपावकाः । प्रवृत्तधर्मसद्वृत्तलोकामुदितमानसाः ॥ ७७॥
विष्णोःसत्यप्रतिज्ञस्यश्रुत्वाऽरिनिधनागिरः । ततोदेवाःसमायातादानवाराक्षसैस्सह ॥
भूतप्रेतपिशाचाश्चसर्वेतत्रागताःक्रमात् । गन्धर्वाप्सरसश्चैवनागाविद्याधरागणाः ॥७९॥
वानस्पत्याश्चौषधयोयच्चेहयच्चनेहति । ब्रह्मादेशान्मारुतेनआनीताः सर्वतोदिशः ॥ ८० ॥
यज्ञपर्वतमासाद्यदक्षिणामभितोदिशम् । सुराउत्तरतः सर्वे मर्यादापर्वते स्थिताः ॥८१॥
गंधर्वाप्सरसश्चैवमुनयो वेदपारगाः । पश्चिमांदिशमास्थायस्थितास्तत्रमहाक्रतौ ॥८२॥
सर्वदेवनिकायाश्चदानवाश्चासुरागणाः । अमर्षंपृष्ठतःकृत्वासुप्रीतास्तेपरस्परम् ॥ ८३ ॥
ऋषीन्पर्यचरन्सर्वेशुश्रूषन्ब्राह्मणांस्तथा । ऋषयो ब्रह्मर्षयश्चैव द्विजादेवर्षयस्तथा ॥८४॥

राजर्षयो मुख्यतमास्समायातास्समं ततः ।
कतमश्च सुरोऽप्यत्र क्रतौ याज्यो भविष्यति ॥ ८५ ॥

पशवः पक्षिणश्चैवतत्रायातादिदृक्षवः । ब्राह्मणाभोक्तुकामाश्चसर्वेवर्णानुपूर्वशः ॥८६ ॥

स्वयंचवरुणोरत्नंदक्षश्चान्नंस्वयंददौ । आगत्यवरुणोलोकात्पक्वंचान्नंस्वतोऽपचत् ॥८७॥
वायुर्भक्ष्यविकारांश्चरसपाचीदिवाकरः । अन्नपाचनकृत्सोमोमतिदाताबृहस्पतिः ॥ ८८ ॥
धनदानं धनाध्यक्षोवस्त्राणिविविधानिच । सरस्वती नदाध्यक्षोगंगादेवीसनर्मदा ॥८९॥
याश्चान्याःसरितःपुण्याःकूपाश्चैवजलाशयाः । पल्वलानितटाकानिकुंडानिविविधानिच ।
प्रस्रवणानिमुख्यानिदेवखातान्यनेकशः । जलाशयानिसर्वाणिसमुद्राःसप्तसंख्यकाः ।९१।
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलैःसमम् ।सप्तलोकाःसपातालाःसप्तद्वीपाःसपत्तनाः ॥ ९२ ॥
वृक्षवल्ल्यःसतृणानिशाकानिचफलानिच । पृथिवीवायुराकाशमापोज्योतिश्चपंचमम् ॥
सविग्रहाणिभूतानिधर्मशास्त्राणियानि च । वेदभाष्याणिसूत्राणिब्रह्मणानिर्मितंचयत् ॥
अमूर्तंमूर्तमत्यन्तं मूर्तंदृश्यंतथाखिलम् । एवं कृते तथातस्मिन्यज्ञे पैतामहेतदा ॥ ९५ ॥
देवानांसंनिधौतत्रऋषिभिश्चसमागमे । ब्रह्मणोदक्षिणेपार्श्वेस्थितोविष्णुःसनातनः ।९६।
वामपार्श्वेस्थितोरुद्रःपिनाकीवरदःप्रभुः । ऋत्विजांचापिवरणंकृतंतत्रमहात्मना ॥ ९७॥
भृगुर्होतावृतस्तत्रपुलस्त्योऽध्वर्युसत्तमः । तत्रोद्गातामरीचिस्तुब्रह्मावैनारदःकृतः ॥९८॥
सनत्कुमारादयो ये सदस्यास्तत्रतेऽभवन् । प्रजापतयो दक्षाद्या वर्णा ब्राह्मणपूर्वकाः ॥
ब्रह्मणश्चसमीपेतु कृता ऋत्विग्विकल्पना । वस्त्रैराभरणैर्युक्ताः कृता वैश्रवणेन ते ।१००
अंगुलीयैः सकटकै र्मुकुटैर्भूषिताद्विजाः । चत्वारो द्वौ दशान्येच ततस्ते षोडशर्त्विजः
ब्रह्मणा पूजिताःसर्वे प्रणिपातपुरःसरम् । अनुग्राह्यो भवद्भिस्तु सर्वैरस्मिन्क्रताविह ॥
पत्नीममैषा सावित्री यूयं मे शरणंद्विजाः । विश्वकर्माणमाहूय ब्रह्मणः शीर्षमुंडनम् ॥
यज्ञेतुविहितं तस्य कारितं द्विजसत्तमैः । आतसेयानिवस्त्राणि दंपत्यर्थे तथाद्विजैः ॥
ब्रह्मघोषेणतेविप्रा नादयन्तस्त्रिविष्टपम् । पालयंतो जगच्चेदं क्षत्रियाःसायुधाःस्थिताः
भक्ष्यप्रकारान्विविधान्वैश्यास्तत्रप्रचक्रिरे । रसबाहुल्ययुक्तं च भक्ष्यं भोज्यं कृतं ततः
अश्रुतं प्रागदृष्टंच दृष्ट्वा तुष्टः प्रजापतिः । प्राग्वाटेति ददौनाम वैश्यानां सृष्टिकृद्विभुः ॥
द्विजानां पादशुश्रूषा शूद्रैः कार्यासदात्विह । पादप्रक्षालनं भोज्यमुच्छिष्टस्यप्रमार्जनम्
तेऽपि चक्रुस्तदा तत्र तेभ्योभूयःपितामहः । शुश्रूषार्थं मयायूयं तुरीयेतु पदे कृताः ॥
द्विजानां क्षत्रबन्धूनां वैश्यानांचभवद्भिधैः । त्रिभ्यश्शुश्रूषणाकार्येत्युक्त्वाब्रह्मातथाकरोत्

द्वाराध्यक्षं तथा शक्रं वरुणं रसदायकम् ॥ वित्तप्रदं वैश्रवणं पवनं गंधदायिनम् ॥१११
उद्योतकारिणंसूर्यंप्रभुत्वे माधवःस्थितः । सोमःसोमप्रदस्तेषांवामपक्षपथाश्रितः ॥११२
सुसत्कृताचपत्नी सा सावित्री च वरांगना । अध्वर्युणासमाहूता एहि देवि त्वरान्विता
उत्थिताश्चाग्नयः सर्वे दीक्षाकालउपागतः । व्यग्रासाकार्यकरणेस्त्रीस्वभावेन नागता ॥
इहवेनकृतंकिंचिद्द्वारेवैमंडनंमया । भित्त्यां वैचित्र्यकर्माणि स्वस्तिकप्रांगणेनतु ॥११५
प्रक्षालनंचभांडानांनकृतंकिमपित्विह । लक्ष्मीरद्यापिनायातापत्नीनारायणस्ययाा॥११६॥
अग्नेःपत्नीतथास्वाहाधूम्रोर्णातुयमस्यतु । वारुणीवैतथागौरीवायोर्वैसुप्रभातथा ॥११७
ऋद्धिर्वैश्रवणीभार्याशम्भोर्गौरीजगत्प्रिया । मेधाश्रद्धाविभूतिश्च अनसूयाधृतिःक्षमा ॥
गंगासरस्वतीचैवनाद्यायाताश्चकन्यकाः । इन्द्राणीचंद्रपत्नीतुरोहिणीशशिनःप्रिया ११६
अरुंधतीवसिष्ठस्यसप्तर्षीणांचयाःस्त्रियः । अनसूया त्रिपत्नी च तथान्याःप्रमदा इह ॥
वध्वोदुहितरश्चैवसख्योभगिनिकास्तथा । नाद्यागतास्तुताःसर्वाअहंतावत्स्थिता चिरम्
नाहमेकाकिनीयास्येयावन्नायांतिताःस्त्रियः । ब्रूहिगत्वाचिरंचितुतिष्ठतावन्मुहूर्तकम् ॥
सर्वाभिःसहिताचाहमागच्छामित्वरान्विता । सर्वैःपरिवृतःशोभांदेवैःसहमहामते ॥१२३
भवान्प्राप्नोति परमां तथाहंतुनसंशयः । वदमानांतथाध्वर्युस्त्यक्त्वा ब्रह्माणमागतः ॥
सावित्रीव्याकुलादेवप्रसक्तागृहकर्मणि । सख्योनाभ्यागतायावत्तावन्नागमनं मम ॥१२५
एवमुक्तोऽस्मि वै देव कालश्चाप्यतिवर्त्तते । यत्तेऽद्य रुचितं तावत्तत्कुरुष्व पितामह ॥
एवमुक्तस्तदा ब्रह्मा किंचित्कोपसमन्वितः । पत्नीं चान्यां मदर्थे वै शीघ्रं शक्र इहानय॥
यथा प्रवर्तते यज्ञःकालहीनो नजायते । तथाशीघ्रं विधत्स्वत्वं नारींकांचिदुपानय ॥
यावद्यज्ञसमाप्तिर्मेवर्णत्वंमाकृथामनः । भूयोऽपि तां प्रमोक्ष्यामि समाप्तौतुक्रतोरिह॥१२६
एवमुक्तस्तदाशक्रोगत्वासर्वंधरातलम् । स्त्रियोदृष्टास्तुयास्तेनसर्वास्तास्सपरिग्रहाः ॥
आभीरकन्या रूपाढ्या सुनासा चारुलोचना । नदेवीनचगन्धर्वीनासुरीनचपन्नगी॥१३१
नचास्ति तादृशी कन्या यादृशीसा वरांगना । ददर्शतांसुचार्वंगींश्रियंदेवीमिवापराम् ॥
संक्षिपन्तींमनोवृत्तिविभवं रूपसंपदा । यद्यत्तुवस्तुसौंदर्याद्विशिष्टं लभ्यते क्वचित्॥१३३
तत्तच्छरीरसंलग्नंतन्वंग्या ददृशे वरम् । तां दृष्ट्वा चिंतयामास यद्येषा कन्यका भवेत् ॥

तन्मत्तःकृतपुण्योऽन्योनदेवोभुविविद्यते । योषिद्रत्नमिदंसेयंसद्भाग्यायां पितामहः ॥
स रागो यदि वा स्यात्तु सफलस्त्वेषमेश्रमः । नीलाभ्रकनकांभोजविद्रुमाभांसदर्शताम्
त्विषंसंबिभ्रतीमंगैःकेशगंडेक्षणाधरैः । मन्मथाशोकवृक्षस्य प्रोद्भिन्नांकलिकामिव॥१३७
प्रदग्धहृच्छयेनैव नेत्रवह्निशिखोत्करैः । धात्रा कथं हि सासृष्टाप्रतिरूपमपश्यता ॥१३८॥
कल्पिताचेत्स्वयं बुद्ध्यानैपुण्यस्यगतिःपरा । उत्तुंगाग्राविमौसृष्टौयन्मेसंपश्यतःसुखम्
पयोधरौनातिचित्रंकस्यसंजायतेहृदि । रागोपहतदेहोऽयमधरो यद्यपि स्फुटम् ॥१४०॥
तथापि सेवमानस्य निर्वाणं संप्रयच्छति । वहद्भिरपि कौटिल्यमलकैः सुखमर्प्यते॥१४१
दोषोऽपिगुणवद्भातिभूरिसौंदर्यमाश्रितः । नेत्रयोर्भूषितावंतावाकर्णाभ्याशमागतौ ॥१४२
कारणाद्भावचैतन्यं प्रवदंति हि तद्विदः । कर्णयोर्भूषणे नेत्रे नेत्रयोः श्रवणाविमौ ॥१४३
कुंडलांजनयोरत्रनावकाशोऽस्ति कश्चन । नतद्युक्तंकटाक्षाणांयद्विधाकरणं हृदि॥१४४
तव संबंधिनो येऽत्रकथंतेदुःखभागिनः । सर्वसुन्दरतामेतिविकारःप्राकृतैर्गुणैः ॥१४५॥
वृद्धक्षणशतानां तु दृष्टमेषां मया फलम् । धात्रा कौशल्यसीमेयं रूपोत्पत्तौ सुदर्शिता ॥
करोत्येषा मनो नृणां सस्नेहं कृतिविभ्रमैः । एवं विमृशतस्तस्यतद्रूपापहृतत्विषः॥१४७
निरंतरोद्गतैश्छन्नमभवत्पुलकैर्वपुः । तां वीक्ष्य तप्तहेमाभां पद्मपत्रायतेक्षणाम् ॥ १४८॥
देवानामथ यक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् । नाना दृष्टा मया नार्यो नेदृशी रूपसंपदा ॥
त्रैलोक्यांतर्गतं यद्यद्वस्तु तत्तत्प्रधानतः । समादाय विधात्रास्याः कृता रूपस्यसंस्थितिः

इन्द्र उवाच ।

कासि कस्य कुतश्चत्वमागतासुभ्रुकथ्यताम् । एकाकिनी किमर्थंचवीथीमध्येतुतिष्ठसि
यान्येतान्यंगसंस्थानि भूषणानि बिभर्षि च । नैतानि तव भूषायैत्वमेतेषांहिभूषणम् ॥
नदेवी नचगन्धर्वी नासुरी नचपन्नगी । किन्नरी दृष्टपूर्वा वा यादृशी त्वं सुलोचने ॥
उक्ता मयाऽपि बहुशःकस्माद्दत्से हि नोत्तरम् । त्रपान्विता तुसाकन्याशक्रंप्रोवाचवेपती

कन्योवाच ।

गोपकन्यात्वहं वीर विक्रीणामीह गोरसम् । नवनीतमिदं शुद्धं दधि चेदं विमण्डकम्
दध्ना चैवात्र तक्रेण रसेनापि परंतप । अर्थी येनासि तद्ब्रूहि प्रगृह्णीष्व यथेप्सितम् ॥

एवमुक्तस्तदा शक्रो गृहीत्वा तां करे दृढम् । अनयत्तां विशालाक्षीं यत्र ब्रह्माऽव्यवस्थितः
नीयमाना तु सा तेन क्रोशन्ती पितृमातरौ । हातातमातर्हाभ्रातर्नयत्येष नरो बलात् ॥
यदि तेऽस्ति मया कार्यं पितरं मे प्रयाचय । स दास्यति हि मां नूनंभवतःसत्यमुच्यते॥
का हि नाभिलषेत्कन्याभर्तारं भक्तिवत्सलम् । नादेयमस्ति ते किंचित्पितुर्मेधर्मवत्सल
प्रसादये त्वां शिरसा मां स तुष्टःप्रदास्यति । पितुश्चित्तमविज्ञाययद्यात्मानंददामिते ॥
धर्मोहिविपुलोनश्येत्तेनत्वांनप्रसादये । भविष्यामि वशे तुभ्यं यदि तातः प्रदास्यति ॥
इत्थमाभाष्यमाणस्तु तया शक्रोऽनयच्च ताम् । ब्रह्मणःपुरतःस्थाप्यप्राहास्यार्थेमयाऽबले
आनीतासि विशालाक्षि माशुचोवरवर्णिनि । गोपकन्याचतंदृष्ट्वागौरवर्णंमहाद्युतिम् ॥
कमलाक्षंसुबाहुंसं पुंडरीकनिभेक्षणम् । तप्तकांचनसद्भित्तिसदृशापीनवक्षसम् ॥ १६५ ॥
मत्तेभहस्तवृत्तोरुंरक्तोत्तुंगनखत्विषम् । प्रांसाऽमन्यतात्मानंमन्मथस्येषुगोचरे ॥१६६॥
तत्प्राप्तिहेतुकधिया गतचित्तेवलक्ष्यते । प्रभुत्वमात्मनोदानेगोपकन्याऽप्यमन्यत॥१६७
यद्येषमांसुरूपत्वादिच्छत्यादातुमाग्रहात् । नास्तिसीमंतिनीकाचिन्मत्तोधन्यतराभुवि ॥
अनेनाहंसमानीतायच्चक्षुर्गोचरंगता । अस्यत्यागेभवेन्मृत्युरत्यागेजीवितंसुखम् ॥१६८ ॥
भवेयमपमानाच्च धिग्रूपादुःखदायिनी । दृश्यतेचक्षुषानेनयाऽपियोषित्प्रसादतः ॥१७० ॥
साऽपिधन्यानसन्देहः किंपुनर्यां परिष्वजेत् । जगद्रूपमशेषंहिपृथक्संचारमाश्रितम्॥१७१
लावण्यंतदिहैकस्थंदर्शितंविश्वयोनिना । अस्योपमास्मरः साध्वीमन्मथस्योपमात्वयम्
तिरस्कृतस्तुशोकोऽयंपितामातानकारणम् । यदिमांनैषआदत्तेस्वल्पंमयिनभाषते ॥१७३
अस्यानुस्मरणान्मृत्युःप्रभविष्यतिशोकजः । अनागसिचपत्न्यांतुक्षिप्रंयातयमीदृशी ॥
कुचयोर्मणिशोभायैशुद्धाम्बुजसमद्युतिः । मुखमस्यप्रपश्यंत्या मनो मे ध्यानमागतम् ॥
अस्यांगस्पर्शसंयोगं न वायो बहुमन्यसे । स्पृशन्नटसि येन त्वं शरीरंप्राणिनांवरम् ॥
अथवास्यनदोषोऽस्तियदृच्छाचारकोह्यसि । मुषितःस्मरनूनंत्वंसंरक्षस्वांप्रियांरतिम् ॥
त्वत्तोऽपिदृश्यतेयेनरूपेणायंस्मराधिकः । ममानेन मनोरत्नसर्वस्वं च हृतंदृढम् ॥१७८॥
शोभायादृश्यतेवक्रेसाकुतःशशलक्ष्मणि । नोपमा सकलंकस्य निष्कलंकेन शस्यते ॥
समानभावतां याति पंकजंनास्यनेत्रयोः । कोपमाजलशंखेन प्राप्ताश्रवणशङ्खयोः॥१८०॥

विद्रुमोऽप्यधरस्यास्यलभतेनोपमांध्रुवम्। आत्मस्थममृतंह्येषसंस्रवंश्रेष्टतेध्रुवम् ॥१८१।
यदिकिंचिच्छुभंकर्मजन्मांतरशतैःकृतम्। तत्प्रसादात्पुमान्भर्ताभवत्वेषममेप्सितः ॥१८२
एवंचिंतापराधीना यावत्सागोपकन्यका। तावद्ब्रह्मा हरिं प्राहयज्ञार्थंसत्वरंवचः ॥१८३
देवीचैषामहाभागा गायत्रीनामतःप्रभो। एवमुक्तेतदाविष्णुर्ब्रह्माणंप्रोक्तवानिदम् ॥ १८४

विष्णुरुवाच।

तदेनामुद्वहस्वाद्यमयादत्तांजगत्प्रभो। गांधर्वेण विवाहेन विकल्पंमाकृथाश्चिरम्॥१८५॥
अमुंगृहाणदेवाद्य अस्याःपाणिमनाकुलम्। गांधर्वेण विवाहेन उपयेमेपितामहः ॥१८६॥
तामवाप्यतदाब्रह्मा जगादाध्वर्युसत्तमम्। कृता पत्नी मयाह्येषा सदने मे निवेशय ॥१८७॥
मृगशृङ्गधराबालाक्षौमवस्त्रावगुंठिता। पत्नीशालांतदानीता ऋत्विग्भिर्वेदपारगैः ॥१८८
औदुम्बरेण दंडेन प्रावृतो मृगचर्मणा। महाध्वरे तदा ब्रह्मा धाम्ना स्वेनैव शोभते ॥
प्रारब्धं च ततो होत्रं ब्राह्मणैर्वेदपारगैः। भृगुणा सहितैःकर्म वेदोक्तं तैः कृतं तदा ॥
तथा युगसहस्रं तु स यज्ञः पुष्करेऽभवत् ॥ १९० ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे गायत्रीसंग्रहो नाम षोड़शोऽध्यायः।

सप्तदशोऽध्यायः

ब्रह्मदेवकृतयज्ञे शिवस्य भिक्षोद्देशेनागमनम्।

भीष्म उवाच।

तस्मिन्यज्ञेकिमाश्चर्यंतदासीद्द्विजसत्तम। कथंरुद्रःस्थितस्तत्रविष्णुश्चापिसुरोत्तमः ॥१॥
गायत्र्याकिंकृतंतत्रपत्नीत्वेस्थितयातया। आभीरैःकिंनुतत्त्वज्ञैर्ज्ञात्वातैश्चकृतंमुने ॥ २ ॥
एतद्वृत्तंसमाचक्ष्व यथावृत्तं यथाकृतम्। आभीरैर्ब्रह्मणाचापि ममैतत्कौतुकं महत्॥३॥

पुलस्त्य उवाच।

तस्मिन्यज्ञेयदाश्चर्यंवृत्तमासीन्नराधिप। कथयिष्यामितत्सर्वंशृणुष्वैकमना नृप ॥ ४ ॥

रुद्रस्तु महदाश्चर्यं कृतवान्वैसदोगतः । निंद्यरूपधरोदेवःस्थितोऽसौद्विजसन्निधौ ॥५॥
विष्णुना न कृतंकिंचित्प्राधान्येसयतःस्थितः । नाशंतुगोपकन्यायाज्ञात्वागोपकुमारकाः
गोप्यश्च तास्तथासर्वाआगताब्रह्मणोऽतिकम् । दृष्ट्वातांमेखलाबद्धांयज्ञसीमव्यवस्थिताम्
हापुत्रीतितदामातापिताहापुत्रिकेतिच । स्वसेतिबांधवाःसर्वेसख्यःसख्येन हासखि ॥८॥
केन त्वमिह चानीता केनकस्माच्च वेष्टिता। मौञ्जीं तु त्रिवृतांकृत्वा केन युक्ता च कंबली
केन चेयं जटापुत्रि रक्तसूत्रावकल्पिता । एवं विधानि वाक्यानि श्रुत्वोवाच पुरंदरः ॥
प्रतिषिध्य तु तानेवं सर्वानेवप्रसादयन् ।

इन्द्र उवाच ।

इह चास्माभिरानीता पत्न्यर्थं विनियोजिता ॥ ११ ॥
ब्रह्मणालंबिता बाला प्रलापंमाकृथास्त्विह । पुण्या चैषा सुभाग्या च सर्वेषांकुलनंदिनी
पुण्याचेन्नभवत्येषा कथमागच्छते सदः । एवं ज्ञात्वा महाभाग न त्वंशोचितुमर्हसि ॥
गोपांस्त्ववगृह्य तदा शक्रवाक्यादनन्तरम् । उवाचम्निग्धयावाचाप्रतिनन्द्यहरिःपुनः ॥

विष्णुरुवाच ।

भोभोगोपसदावारनत्वंशोचितुमर्हसि । कन्यैषातेमहाभागाप्राप्तादेवंविरिञ्चिनम् ॥१५॥
योगिनोयोगयुक्तायेब्राह्मणावेदपारगाः । नलभन्तेप्रार्थयन्तस्तांगतिंदुहितागता ॥ १६ ॥
धर्मवन्तं सदाचारं भवन्तं धर्मवत्सलम् । मया ज्ञात्वा ततःकन्यादत्ताचैषा विरंचये ॥
अनया तारितोगच्छदिव्याँल्लोकान्महोदयान् । युष्माकं च कुलेचापिदेवकार्यार्थसिद्धये
अवतारं करिष्येऽहं सा क्रीडा तु भविष्यति । यदा नन्दप्रभृतयो ह्यवतारं धरातले ॥
करिष्यंति तदा चाहं वसिष्ये तेषु मध्यतः । युष्माकं कन्यकाःसर्वा रमिष्यंते मयासह॥
तत्र दोषो न भविता न द्वेषो न च मत्सरः । करिष्यंति तदागोपा भयं च नमनुष्यकाः॥
नचासां भविता दोषः कर्मणानेन कर्हिचित् ।
श्रुत्वा वाक्यन्तदा विष्णोरूचुर्गोपाःप्रणम्य तम् ॥ २२ ॥

गोपाऊचुः ।

एवमेष वरो देव यो दत्तो भविता हि मे । अवतारःकुलेऽस्माकंकर्तव्योधर्मसाधनः॥२३

भवतोदर्शनादेवभवामःस्वर्गवासिनः । शुभदा कन्याका चैषा तारिणी मे कुलैःसह ॥२४
एवं भवतु देवेश वरदानं विभो तव । अनुनीतास्तदागोपाःस्वयं देवेन विष्णुना ॥ २५॥
ब्रह्मणाप्येवमेवन्तु वामहस्तेनभाषितम् । त्रपान्विता दर्शने तु बन्धूनां वरवर्णिनी ॥२६॥
कैरहं तु समाख्याता येनेमं देशमागताः । दृष्ट्वा तु तांस्ततः प्राह गायत्री गोपकन्यका ॥
वामहस्तेनतान्सर्वान्प्रणिपातपुरःसरम् ।

गायत्र्युवाच ।

अत्र चाहं स्थिता मातर्ब्रह्माणं समुपागता ॥ २८ ॥
भर्तालब्धोमयादेवः सर्वस्याद्योजगत्पतिः । नाहं शोच्याभवत्या तु नपित्रानचबांधवैः॥
सखीगणश्चमेयातुभगिन्योदारकैःसह । सर्वेषां कुशलं वाच्यं स्थिताऽस्मि सहदैवतैः ॥
गतेषु तेषु सर्वेषु गायत्री सा सुमध्यमा । ब्रह्मणा सहिता रेजे यज्ञवाटं गता सती ॥
याचितो ब्राह्मणैर्ब्रह्मा वरान्नो देहि चेप्सितान् । यथेप्सितं वरं तेषांतदाब्रह्माऽप्ययच्छत
तया देव्या च गायत्र्या दत्तंतच्चानुमोदितम् । सातुयज्ञेस्थितासाध्वीदेवतानांसमीपगा
दिव्यंवर्षशतं·साग्रं स यज्ञो ववृधे तदा । यज्ञवाटं कपर्दी तु भिक्षार्थं समुपागतः॥३४॥
बृहत्कपालं संगृह्य पंचमुण्डैरलंकृतः । ऋत्विग्भिश्च सदस्यैश्च दूरात्तिष्ठञ्जुगुप्सितः ॥
कथं त्वमिह संप्राप्तो निंदितोवेदवादिभिः । एवंप्रोत्सार्यमाणोऽपि निंद्यमानःसतैर्द्विजैः॥
उवाच तान्द्विजान्सर्वान्स्मितं कृत्वा महेश्वरः ।

महेश्वर उवाच ।

अत्र पैतामहे यज्ञे सर्वेषां तोषदायिनि ॥ ३७ ॥
कश्चिदुत्सार्यतेनैव ऋतेमां द्विजसत्तमाः । उक्तःस तैःकपर्दी तु भुक्त्वा चान्नं ततो व्रज॥
कपर्दिना च तेउक्ताभुक्त्वायास्यामिभोद्विजाः । एवमुक्त्वानिषण्णःसकपालंन्यस्यचाग्रतः
तेषांनिरीक्ष्यतत्कर्मचक्रकौटिल्यमीश्वरः । मुक्त्वा कपालं भूमौ तुतान्द्विजानवलोकयन्॥
उवाच पुष्करं यामि स्नानार्थं द्विजसत्तमाः । तूर्णं गच्छेति तैरुक्तः स गतः परमेश्वरः॥
वियत्स्थितःकौतुकेन मोहयित्वा दिवौकसः। स्नानार्थं पुष्करं याते कपर्दिनि द्विजातयः
कथं होमोऽत्र क्रियते कपालेसदसिस्थिते । कपालं तान्यशौचानि पुरा प्राह प्रजापतिः

विप्रोऽभ्यधात्सदस्येकःकपालमुत्क्षिपाम्यहम् ।
उद्धृतं तु सदस्येन प्रक्षिप्तं पाणिना स्वयम् ॥ ४४ ॥
तावदन्यत्स्थितं तत्र पुनरेव समुद्धृतम् । एवं द्वितीयं तृतीयं विंशतिस्त्रिंशदप्यहो ॥४५
पंचाशच्च शतंचैवसहस्रमयुतंतथा । एवं नांतः कपालानां प्राप्यते द्विजसत्तमैः ॥४६ ॥
नत्वा कपर्दिनं देवं शरणं समुपागताः । पुष्करारण्यमासाद्य जप्यैश्चवैदिकैर्भृशम् ॥४७
तुष्टुवुःसहिताःसर्वे तावत्तुष्टो हरःस्वयम् । ततःस दर्शनंप्रादाद्द्विजानांभक्तितःशिवः ॥
उवाच तांस्ततो देवो भक्तिनम्रान्द्विजोत्तमान् ॥

शिव उवाच ।

पुरोडाशस्य निष्पत्तिःकपालं न विना भवेत् ॥ ४९ ॥
कुरुध्वं वचनं विप्राभागःस्विष्टकृतोमम । एवं कृते कृतं सर्वं मदीयं शासनं भवेत्॥५०॥
तथेत्यूचुर्द्विजाश्शंभुं कुर्मो वै तव शासनम् । कपालपाणिराहेशो भगवंतं पितामहम् ॥
वरं वरय भो ब्रह्मन्हृदि यत्ते प्रियंस्थितम् । सर्वं तव प्रदस्यामि अदेयं नास्ति मे प्रभो ॥

ब्रह्मोवाच ।

न ते वरं ग्रहीष्यामि दीक्षितोऽहं सदःस्थितः । सर्वकामप्रदश्चाहं यो मां प्रार्थयते त्विह
एवं वदंतं वरदं क्रतौ तस्मिन्पितामहम् । तथेति चोक्त्वा रुद्रः स वरमस्माद्याचत ॥
ततो मन्वंतरेऽतीतेपुनरेवप्रभुःस्वयम् । ब्रह्मोत्तरं कृतं स्थानं स्वयं देवेन शंभुना ॥ ५५॥
चतुर्ष्वपि हि वेदेषु परिनिष्ठां गतो हि यः । तस्मिन्काले तदा देवो नगरस्यावलोकने॥
संभाषणे द्विजानां तु कौतुकेन सदोगतः । तेनैवोन्मत्तवेषेण हुतशेषे महेश्वरः ॥ ५७ ॥
प्रविष्टो ब्रह्मणःसद्म दृष्टोदेवैर्द्विजोत्तमैः । प्रहसंति च केऽप्येनं केचिन्निर्भर्त्सयंतिच॥५८
अपरे पांसुभिःसिञ्चन्त्युन्मत्तं तं तथाद्विजाः । लोष्टैश्च लगुडैश्चान्येशुष्मिणोबलगर्विताः
प्रहरन्तिस्मोपहासंकुर्वाणाहस्तसंविदम् । ततोऽन्येवटवस्तत्रजटाःस्वा गृह्य चांतिकम्॥
पृच्छंति व्रतचर्यां तां केनैषा ते निदर्शिता। अत्र वामाः स्त्रियः संति तासामर्थेत्वमागतः
केनैषा दर्शिता चर्या गुरुणा पापदर्शिना । येन चोन्मत्तवद्वाक्यं वदन्मध्येप्रधावसि ॥६२
शिश्नं मे ब्रह्मणो रूपं भगंचापि जनार्दनः । उप्यमानमिदंबीजंलोकःक्लिश्नातिचान्यथा ॥

मयाऽयं जनितः पुत्रो जनितोऽनेन चाप्यहम् । महादेवकृते सृष्टिःसृष्टा भार्या हिमालये॥
उमा दत्ता तु रुद्रस्य कस्य सा तनया वद । मूढा यूयं न जानीथ वदतां भगवांस्तु वः॥
ब्रह्मणा न कृता चर्या दर्शिता नैव विष्णुना । गिरिशेनापि देवेन ब्रह्मवध्याकृतेन तु ॥
कथंस्विद्गर्हसे देवं वध्योऽस्माकं त्वमद्य वै । एवं तैर्हन्यमानस्तु ब्राह्मणैस्तत्र शंकरः ॥
स्मितं कृत्वाऽब्रवीत्सर्वान्ब्राह्मणान्नृपसत्तम ॥

शिव उवाच ।

किं मां न वित्थ भोविप्रा उन्मत्तं नष्टचेतनम् ॥ ६८ ॥
यूयं कारुणिकाःसर्वे मित्रभावे व्यवस्थिताः । वदमान मिदं छद्म ब्रह्मरूपधरं हरम्॥६९॥
माययातस्यदेवस्यमोहितास्तेद्विजोत्तमाः । कपर्दिनं निजघ्नुस्ते पाणिपादैश्चमुष्टिभिः
दंडैश्चापि च कीलैश्च उन्मत्तवेषधारिणम् । पीड्यमानस्ततस्तैस्तु द्विजैःकोपमथागमत्॥
ततो देवेन ते शप्ता यूयं वेदविवर्जिताः । ऊर्ध्वजटाः क्रतुभ्रष्टाः परदारोपसेविनः ॥७२ ॥
वेश्यायां तु रता द्यूते पितृमातृविवर्जिताः।न पुत्रःपैतृकं वित्तं विद्यां वापि गमिष्यति॥
सर्वे च मोहिताः संतु सर्वेन्द्रियविवर्जिताः। रौद्रीं भिक्षां समश्नंतु परपिंडोपजीविनः ॥
आत्मानं वर्तयंतश्च निर्ममा धर्मवर्जिताः । कृपार्पिता तु यैर्विप्रैरुन्मत्ते मयि सांप्रतम् ॥
तेषां धनं च पुत्राश्च दासीदासमजाविकम् । कुलोत्पन्नाश्च वैनार्योमयितुष्टेभजिष्यथ ॥
एवं शापं वरंचैव दत्त्वांतर्द्धानमीश्वरः । गतो द्विजागते देवे मत्वा तं शंकरं प्रभुम् ॥७७
अन्विष्यंतोऽपि यत्नेन न चापश्यंत ते यदा। तदा नियमसंपन्नाःपुष्करारण्यमागताः ॥
स्नात्वा ज्येष्ठसरो विप्राजेपुस्तेशतरुद्रियम् । जाप्यावसाने देवस्तानशरीरगिराब्रवीत् ॥

शिव उवाच ।

अनृतं न मयाप्रोक्तं स्वैरेष्वपिकुतः पुनः । आगते निग्रहे क्षेमं भूयोऽपि करवाण्यहम् ॥
शांता दांता द्विजाये तु भक्तिमंतो मयि स्थिराः। न तेषां छिद्यते वेदो न धनंनापिसंततिः
अग्निहोत्ररता येच भक्तिमंतो जनार्दने । पूजयंति च ब्रह्माणं तेजोराशिं दिवाकरम् ॥
नाशुभं विद्यते तेषां येषांसाम्येस्थितामतिः। एतावदुक्त्वावचनंतूष्णींभूतस्तुसोऽभवत् ॥
लब्ध्वा वरं स प्रसादं देवदेवान्महेश्वरात् । आजग्मुः सहितास्सर्वे यत्र देवः पितामहः॥

विरिञ्चिसंहिताजाप्यैस्तोषयंतोऽग्रतःस्थिताः। तुष्टस्तानब्रवीद्ब्रह्मामत्तोऽपिव्रियतांवरः॥
ब्रह्मणस्तेन वाक्येन हृष्टाःसर्वे द्विजोत्तमाः । को वरो याच्यतां विप्राःपरितुष्टेपितामहे॥
एके तत्राब्रुवन्विप्रा वेदान्वैवृणवामहे । नेति चान्ये धनं चान्ये व्रियतामविशङ्कितैः ॥
किमस्माकं धनेनेह कार्यंतुष्टेपितामहे। अग्निहोत्राणि वेदाश्च शास्त्राणि विविधानिच ॥
सांतानिकाश्च ये लोका वरदानाद्भवंतु नः । एवं प्रजल्पतां तत्र विप्राणांकोपमाविशत्॥
के यूयं केऽत्रप्रवरा वयं श्रेष्ठास्तथापरे । नेति नेति तथाविप्राद्विजांस्तांस्तत्रसंस्थितान्॥

ब्रह्मोवाचाभिसंप्रेक्ष्य ब्राह्मणान्क्रोधपूरितान् ।
यस्माद्यूयंत्रिभिर्भागैःसभायां बाह्यतःस्थिताः ॥ ९१ ॥

तस्मादामूलिकोगुल्मोह्येको भवतु वोद्विजाः । उदासीनाःस्थितायेतु उदासीनाभवंतुते
सायुधा बद्धनिस्त्रिंशायोद्धुकामाव्यवस्थिताः। कौशिकीतिगणोनामतृतीयोभवतुद्विजाः
त्रिधाबद्धमिदंस्थानंसर्वंयुष्मद्भविष्यति । बाह्यतो लोकशब्देन प्रोच्यमानाःप्रजास्त्विह ॥
अविक्रेयं नास्ति वोऽत्र सर्वस्वं वःप्रणश्यति। तृणानि भूमिरुदकं तथावै दारु संचयः॥
प्रतिग्रहे चानुवृत्तिः कुपिताश्च परस्परम् । अभिप्रपन्नविप्राणां क्षमा वै नात्र काचन ॥
केवलं द्रव्यरुचयो लोभोपहतचेतसः । एवंविधा रुद्रशापाद्भवितारो न संशयः ॥९७॥
युष्माकंस्थानमेतत्तुविष्णुःपालयिताध्रुवम् । मयादत्तंचिरस्थायि अभंगं च भविष्यति ॥
एवमुक्त्वा तदा ब्रह्मा समाप्तिं तामवैक्षत । ब्राह्मणाः सहितास्तेतु यज्ञार्थे चिन्नुधैस्सह ॥
अतिथिं भोजयानाश्च वेदाभ्यास रतास्तुते । एतच्च परमं क्षेत्रं पुष्करं ब्रह्मसंज्ञितम् ॥
तत्रस्थाये द्विजाःशांतावसंतिक्षेत्रवासिनः । न तेषां दुर्लभं किंचिद्ब्रह्मलोकेभविष्यति ॥
कोकामुखे कुरुक्षेत्रे नैमिषे ऋषिसंगमे । वाराणस्यां प्रभासे च तथा बदरिकाश्रमे ॥
गङ्गाद्वारे प्रयागे च गंगासागरसंगमे । रुद्रकोट्यांविरूपाक्षे मित्रस्यापि तथावने॥१०३
तीर्थेष्वेतेषुसर्वेषु सिद्धिर्याद्वादशाब्दिका । प्राप्यते मानवैर्लोके षण्मासाद्राजसत्तमः ॥
पुष्करे तु न संदेहो ब्रह्मचर्यमनायदि। तीर्थानां परमंतीर्थं क्षेत्राणामपिचोत्तमम् ॥१०५
सदा तु पूजितं पूज्यैर्भक्तियुक्तैःपितामहे । अतःपरं प्रवक्ष्यामि सावित्र्या ब्रह्मणा सह ॥
वादोयथानुभूतस्तु परिहासकृतो महान् । सावित्री गमने सर्वा आगता देवयोषितः ॥

भृगोःख्यात्यां समुत्पन्ना विष्णुपत्नी यशस्विनी ।
आमन्त्रिता तदा लक्ष्मीस्तत्रायाता त्वरान्विता ॥ १०८ ॥
मदिरा च महाभागा योगनिद्रा विभूतिदा । श्रीःकमलालयाभूतिःकीर्तिःश्रद्धामनस्विनी
पुष्टि तुष्टिप्रदाया तु देव्यएताः समागताः । सती या दक्षतनया उमेति पार्वती शुभा ॥
त्रैलोक्यसुन्दरीदेवी स्त्रीणां सौभाग्यदायिनी । जया च विजयाचैव मधुच्छंदामरावती
सुप्रिया जनकांता च साविच्यामंदिरे शुभे । गौर्या सहसमायातास्सुवेषाभरणान्विताः
पुलोमदुहिता चैव शक्राणी च सहाप्सराः ।
स्वाहा चापि स्वधायाता धूमो(म्रो)र्णा च वरानना ॥ ११३ ॥
यक्षी तु राक्षसीचैव गौरीचैव महाधना । मनोजवा वायुपत्नी ऋद्धिश्च धनदप्रिया ॥
देवकन्यास्तथायाता दानव्योदनुवल्लभाः । सप्तर्षीणां महापत्न्य ऋषीणां च वरांगनाः ॥
एवं भगिन्यो दुहिता विद्याधरीगणास्तथा। राक्षस्यःपितृकन्याश्च तथान्यालोक मातरः
वधूभिः सस्नुषाभिश्च सावित्री गंतुमिच्छति ।
आदित्याद्यास्तथा सर्वा दक्षकन्यास्समागताः ॥११७ ॥
ताभिः परिवृतासाध्वी ब्रह्माणी कमलालया । काचिन्मोदकमादाय काचिच्छूर्पंवरानना
फलपूरितमादाय प्रयाताब्रह्मणोऽतिकम् । आढकीःसहनिष्पावा गृहीत्वान्यास्तथापराः
दाडिमानि चिचित्राणि मातुलिंगानि शोभना ।
करीराणि तथा चान्या गृहीत्वा कमलानि च ॥ १२० ॥
कौसुंभकंजीरकं च खर्जूरमपरातथा । उत्तमान्यपरादाय नालिकेराणि सर्वशः ॥१२१॥
द्राक्षया पूरितंकाचित्पात्रंश्रृंगाटकं तथा। कर्पूराणि विचित्राणि जंबुकानि शुभानि च
अक्षोटामलकान्गृह्य जंबीराणि तथापरा । बिल्वानि परिपक्वानि चिपिटानि वरानना ॥
अतुल्यान्नविकाराणि बहूनि विविधानि च ।
कार्पासतूलिकाश्चान्या वस्त्रं कौसुंभकं तथा ॥ १२४ ॥
एवमाद्यानिचान्यानि कृत्वाशूर्पे वराननाः । साविच्यासहिताःसर्वाःसंप्राप्ताःसहसाशुभाः
सावित्रीमागतां दृष्ट्वा भीतस्तत्रपुरंदरः । अधोमुखः स्थितो ब्रह्मा किमेषा मांवदिष्यति ॥

रूपान्वितौ विष्णुरुद्रौ सर्वे चान्ये द्विजातयः। सभासदस्तथा भीतास्तथा चान्ये दिवौकसः
पुत्राः पौत्रा भागिनेया मातुला भ्रातरस्तथा। ऋभवो नाम ये देवा देवानामपि देवताः॥
वैलक्ष्ये तु स्थिताः सर्वे सावित्री किं वदिष्यति। ब्रह्मपार्श्वे स्थिता तत्र किं तु वै गोपकन्यका
मौनीभूता तु शृण्वाना सर्वेषां वदतां गिरः। अध्वर्युणा समाहूता नागता वरवर्णिनी॥
शक्रेणान्याहृता भीरीदत्ता सा विष्णुना स्वयम्। अनुमोदिता च रुद्रेण पित्राऽदत्ता स्वयं तथा
कथं सा भविता यज्ञसमाप्तिं वा व्रजेत्कथम्। एवं चिंतयतां तेषां प्रविष्टा कमलालया
वृतो ब्रह्मा सदस्यैस्तु ऋत्विग्भिर्दैवतैस्तथा। हूयन्ते चाग्नयस्तत्र ब्राह्मणैर्वेदपारगैः॥
पत्नीशालास्थिता गोपी सैणशृंगासमेखला। क्षौमवस्त्रपरीधाना ध्यायंती परमं पदम्॥
पतिव्रता पतिप्राणा प्राधान्ये च निवेशिता। रूपान्विता विशालाक्षी तेजसा भास्करोपमा
द्योतयंती सदस्तत्र सूर्य्यस्येव यथा प्रभा। ज्वलमानं तथा वह्निं श्रयंते ऋत्विजस्तथा॥
पशूनामिह गृह्णाना भागं स्व स्वचरोर्मुदा। यज्ञभागार्थिनो देवा विलंबाद्ब्रुवते तदा॥
कालहीनं न कर्तव्यं कृतं न फलदं यतः। वेदेष्वेवमर्धाकारो (?) दृष्टः सर्वैर्मनीषिभिः॥
प्रावर्ग्ये क्रियमाणे तु ब्राह्मणैर्वेदपारगैः। क्षीरद्वयेन संयुक्तः शृतेनाध्वर्युणा तथा॥१३९॥
उपहूते नागतेन चाहूतेषु द्विजन्मसु। क्रियमाणे तथा भक्ष्ये दृष्ट्वा देवी रुषान्विता॥१४०

उवाच देवी ब्रह्माणं सदोमध्ये तु मौनिनम्।

सावित्र्युवाच।

किमेतद्युज्यते देव कर्तुमेतद्विचेष्टितम्॥ १४१॥

मां परित्यज्य यत्कामात्कृतवानसि किल्बिषम्। न तुल्या पादरजसा ममेयं गोपकन्यका
यद्वदंति जनास्सर्वे संगताः सदसि स्थिताः। आज्ञामीश्वर भूतानां तां कुरुष्व यदिच्छसि
भवता रूपलोभेन कृतं लोक विगर्हितम्। पुत्रेषु न कृता लज्जा पौत्रेषु च न ते प्रभो॥
कामकारकृतं मन्य एतत्कर्म विगर्हितम्। पितामहोऽसि देवानामृषीणां प्रपितामहः॥
कथं न ते त्रपा जाता आत्मनः पश्यतस्तनुम्। लोकमध्ये कृतं हास्यमहं चाप कृता प्रभो॥
यद्येष ते स्थिरो भावस्तिष्ठ देव नमोऽस्तु ते। अहं कथं सखीनां तु दर्शयिष्यामि वै मुखम्॥

भर्त्रा मे विधृता पत्नी कथमेतदहं वदे।

ब्रह्मोवाच ।

ऋत्विग्भिस्त्वरितश्चाहं दीक्षाकालादनन्तरम् ॥ १४८ ॥

पत्नीं विना न होमोऽत्र शीघ्रपत्नीमिहानय । शक्रेणैषा समानीता दत्तेयं मम विष्णुना ॥

गृहीता च मया सुभ्रु क्षमस्वैतं मया कृतम् । न चापराधं भूयोऽन्यं करिष्ये तव सुव्रते ॥

पादयोः पतितस्तेऽहं क्षमस्वेह नमोऽस्तु ते ॥

पुलस्त्य उवाच ।

एवमुक्ता तदा क्रुद्धा ब्रह्माणं शप्तुमुद्यता ॥१५१ ॥

यदि मेऽस्ति तपस्तप्तं गुरवो यदि तोषिताः । सर्वब्रह्मसमूहेषु स्थानेषु विविधेषु च ॥

नैवते ब्राह्मणाःपूजां करिष्यंति कदाचन । ऋते तु कार्तिकीयकांपूजां सांवत्सरीं तव॥

करिष्यंति द्विजाःसर्वेमर्त्यानान्यत्रभूतले । एतद्ब्रह्मणमुक्त्त्वाहशतक्रतुमुपस्थितम् ॥

भो भोःशक्र त्वयानीता आभीरी ब्रह्मणोंऽतिकम् ।

यस्मात्ते क्षुद्रकं कर्म तस्मात्त्वं लप्स्यसेफलम् ॥१५५ ॥

यदा संग्राममध्येत्वंस्थाताशक्र भवष्यसि । तदात्वं शत्रुभिर्बद्ध नीतःपरमिकांदशाम् ॥

अकिंचनोनष्टसत्त्वःशत्रूणांनगरेस्थितः । पराभवंमहत्प्राप्यनचिरादेवमोक्ष्यसे ॥१५७ ॥

शक्रंशप्त्वा तदा देवी विष्णुं वाक्यमथाब्रवीत् ॥

भृगुवाक्येन ते जन्म यदा मर्त्ये भविष्यति ॥१५८ ॥

भार्यावियोगजं दुःखं तदा त्वं तत्र भोक्ष्यसे । हृतां ते शत्रुणा पत्नी परेपारे महोदधेः ॥

न च त्वं ज्ञास्यसे नीतां शोकोपहतचेतनः । भ्रात्रा सह परांकष्टा मा पदंप्राप्यदुःखितः

यदा यदुकुलेजातः कृष्णसंज्ञो भविष्यसि । पशूनां पालकोभूत्वा चिरकालं भ्रमिष्यसि

तदाह रुद्रं कुपिता यदा दारुवनेस्थितः । तदा ते ऋषयः क्रुद्धाः शापं दास्यंति वै हर ॥

भो भोःकापालिकक्षुद्र स्त्रीरस्माकं जिहीर्षसि । तदेतदर्पितं तेऽद्य भूमौ लिंगं पतिष्यति

विहीनःपौरुषेणत्वंमुनिशापाच्चपीड़ितः । गंगाद्वारेस्थितापत्नी सा त्वामाश्वासयिष्यति

अग्ने त्वं सर्वभक्षोऽसि पूर्वं पुत्रेण मे कृतः । भृगुणाधर्मनित्येन कथं दग्धं दहाम्यहम्॥

जातवेदस्सरुद्रस्त्वां रेतसा प्लावयिष्यति ।

अमेध्येषु च ते जिह्वा अधिकं प्रज्वलिष्यति ॥ १६६ ॥

ब्राह्मणानृत्विजः सर्वान्सावित्रीवैशशाप ह । प्रतिग्रहार्थेऽग्निहोत्रे वृथाटव्याश्रयास्तथा
सदा तीर्थानि क्षेत्राणि लोभादेव भविष्यथ । परान्नेषु सदा तृप्ता अतृप्तास्स्वगृहेषु च॥
अयाज्ययाजनं कृत्वा कुत्सितस्यप्रतिग्रहम् । वृथा धनार्जनं कृत्वा व्ययं चैव तथा वृथा
प्रेतानां तेन प्रेतत्वं भविष्यति न संशयः । एवं शक्रं तथा विष्णुं रुद्रं वै पावकं तथा ॥
ब्रह्माणं ब्राह्मणांश्चैव सर्वांस्तानशपद्रुषा । शापंदत्त्वा तथा तेषां निष्क्रांतासदसस्तथा
ज्येष्ठंपुष्करमासाद्य तदा सा च व्यवस्थिता । लक्ष्मींप्राहसतीं तां च शक्रभार्यांवराननाम्
युवतीस्तास्तथोवाचनात्रस्थास्यामिसंसदि । तत्र चाहंगमिष्यामियत्रश्रोष्येनचध्वनिम्

पुलस्त्य उवाच ।

ततस्ताः प्रमदाःसर्वाः प्रयाताःस्वनिकेतनम् । सावित्री कुपितातासामपिशापायचोद्यता
यस्मान्मांतु परित्यज्यगतास्तादेवयोषितः । तासामपि तथाशापं प्रदास्ये कुपिताभृशम्

सावित्र्युवाच ।

नैकत्रवासोलक्ष्म्यास्तु भविष्यतिकदाचन । क्षुद्रासाचलचित्ता च मूर्खेषु च वसिष्यति
म्लेच्छेषु पार्वतीयेषु कुत्सितेऽकुत्सिते तथा । मूर्खेषु चावलिप्तेषु अभिशप्ते दुरात्मनि॥
एवंविधे नरे स्यात्तेवसतिःशापकारिता । शापं दत्त्वा ततस्तस्या इन्द्राणीमशपत्तदा ॥
ब्रह्महत्या गृहीतेन्द्र पत्यौ ते दुःखभागिनि । नहुषापहृतेराज्ये दृष्ट्वा त्वां याचयिष्यति
अहमिंद्रः कथंचैषानोपस्थास्यति बालिशा । सर्वान्देवान्हनिष्यामि नलप्स्येऽहंशचींयदि
नष्टात्वं च तदात्रस्ता वाक्पतेर्दुःखितागृहे । वसिष्यसे दुराचारे मम शापेनगर्विते ॥

देवभार्यासु सर्वासु तदा शापमयच्छत ।
न चापत्यकृतां प्रीतिमेताःसर्वा लभिष्यथ ॥ १८२ ॥

दह्यमानादिवारात्रौ वंध्याशब्देन दूषिताः । गौर्य्यप्येवं तदा शप्ता सावित्र्यावरवर्णिनी॥

रुदमानातु सा दृष्टा विष्णुना च प्रसादिता ।

विष्णुरुवाच ।

मा रोदीस्त्वं विशालाक्षि एह्यागच्छ सदा शुभे ॥ १८४ ॥

प्रविश्य च सभां देहि मेखलांक्षौमवाससी । गृहाणदीक्षां ब्रह्माणि पादौ च प्रणमामिते
एवमुक्ताऽब्रवीदेनं न करोमि ववस्तव । तत्र चाहं गमिष्यामि यत्र श्रोष्येन वै ध्वनिम्

एतावदुक्त्वा सारुह्य तस्मात्स्थानाद्गिरौ स्थिता ।
विष्णुस्तदग्रतःस्थित्वा बद्ध्वा च करसंपुटम् ॥१८७॥
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा भक्त्या परमया स्थितः ।

विष्णुरुवाच ।

सर्वगा सर्वभूतेषु द्रष्टव्या सर्वतोऽद्भुता ॥१८८॥

सदसच्चैवयत्किंचिद्दृश्यं तन्न विना त्वया । तथापियेषुस्थानेषु द्रष्टव्यासिद्धिमीप्सुभिः
स्मर्तव्या भूमिकामैर्वा तत्प्रवक्ष्यामितेऽग्रतः । सावित्री पुष्करेनाम तीर्थानांप्रवरे शुभे॥
वाराणस्यां विशालाक्षी नैमिषे लिंगधारिणी । प्रयागे ललितादेवी कामुकागंधमादने॥
मानसे कुमुदा नाम विश्वकाया तथांबरे । गोमंते गोमतीनाम मंदरे कामचारिणी ॥
मदोत्कटा चैत्ररथे जयंती हस्तिनापुरे । कान्यकुब्जे तथा गौरी रंभा मलयपर्वते॥१९३
एकाम्रके कीर्तिमती विश्वा विश्वेश्वरी तथा । कर्णिके पुरुहस्तेति केदारे मार्गदायिका
नंदा हिमवतःपृष्ठे गोकर्णे भद्रकालिका । स्थाण्वीश्वरे भवानीतु बिल्वकेबिल्वपत्रिका
श्रीशैले माधवी देवी भद्रा भद्रेश्वरी तथा । जया वराहशैलेतु कमला कमलालये॥१९६
रुद्रकोट्यां तु रुद्राणी काली कालंजरे तथा । महालिंगेतु कपिला कर्कोटे मंगलेश्वरा
शालग्रामे महादेवी शिवलिंगे जलप्रिया । मायापुर्यां कुमारी तु संताने ललिता तथा
उत्पलाक्षी सहस्राक्षे हिरण्याक्षे महोत्पला । गयायां मंगलानाम विमला पुरुषोत्तमे ॥
विपाशायाममोघाक्षी पाटला पुण्यवर्द्धने । नारायणी सुपार्श्वेतु त्रिकूटे भद्रसुंदरी ॥
विपुले विपुला नाम कल्याणी मलयाचले । कोटवी कोटितीर्थे तु सुगंधा माधवी वने
कुब्जाम्रके त्रिसंध्या तु गंगाद्वारे हरिप्रिया । शिवकुंडे शिवानंदा नंदिनी देविकातटे ॥

रुक्मिणी द्वारवत्यां तु राधा वृन्दावने तथा ।
देवकी मथुरायां तु पाताले परमेश्वरी ॥ २०३ ॥

चित्रकूटे तथा सीता विंध्ये विंध्यनिवासिनी । सह्याद्रावेकवीरा तु हरिश्चंद्रेतु चंद्रिका

रमणा रामतीर्थे तु यमुनायां मृगावती । करवीरे महालक्ष्मीरुमादेवी विनायके ॥२०५॥
अरोगा वैद्यनाथे तु महाकाले महेश्वरी । अभया पुष्पतीर्थे तु अमृता विंध्यकंदरे ॥
मांडव्ये मांडवीदेवी स्वाहा माहेश्वरेपुरे । वेगले तु प्रचंडाथ चंडिकामरकंटके ॥२०७।
सोमेश्वरे वरारोहा प्रभासे पुष्करावती । देवमाता सरस्वत्यां पारापारतटेस्थिता ॥
महालये महापद्मा पयोष्ण्यां पिंगलेश्वरी । सिंहिकाकृतशौचे तु कार्तिकेये तु शंकरी ॥
उत्पलावर्तके लोला सुभद्रा सिंधुसंगमे । उमा सिद्धवने लक्ष्मीरनंगा भरताश्रमे॥२१०
जालंधरे विश्वमुखी तारा किष्किंधपर्वते । देवदारुवने पुष्टिर्मेधा काश्मीरमण्डले॥२११
भीमादेवी हिमाद्रौ च तुष्टिर्वस्त्रेश्वरे तथा । कपालमोचने श्रद्धा माता कायावरोहणे ॥
शंखोद्धारेध्वनिर्नाम धृतिः पिंडारके तथा । काला तु चंद्रभागायामच्छोदेसिद्धिदायिनी
वेणायाममृतादेवी बदर्यामुर्वशी तथा । औषधी चोत्तरकुरौ कुशद्वीपे कुशोदका॥२१४॥
मन्मथा हेमकूटे तु कुमुदे सत्यवादिनी । अश्वत्थे वंदनीया तु निधिर्वैश्रवणालये ॥
गायत्री वेदवदने पार्वती शिवसन्निधौ । देवलोके तथेंद्राणी ब्रह्मास्ये तु सरस्वती ॥
सूर्यबिंबे प्रभा नाम मातृणां वैष्णवी तथा । अरुन्धती सतीनां तु रामासु च तिलोत्तमा
चित्रे ब्रह्मकला नाम शक्तिः सर्वशरीरिणाम् । एतद्धत्तग्रामयाप्रोक्तंनामाष्टशतमुत्तमम् ॥
अष्टोत्तरं च तीर्थानां शतमेतदुदाहृतम् । यो जपेच्छृणुयाद्वापिसर्वपापैःप्रमुच्यते॥२१६॥
येषु तीर्थेषु यःकृत्वा स्नानं पश्येन्नरोत्तमः । सर्वपापविनिर्मुक्तः कल्पं ब्रह्मपुरे वसेत् ॥
नामाष्टकशतं यस्तु श्रावयेद्ब्रह्मसन्निधौ । पौर्णमास्याममायां वा बहुपुत्रो भवेन्नरः ॥
गोदाने श्राद्धदाने वा अहन्यहनि वा पुनः । देवार्चनविधौ शृण्वन्परं ब्रह्माधिगच्छति॥

एवं स्तुवंतं सावित्री विष्णुं प्रोवाच सुव्रता ।

सावित्र्युवाच ।

सम्यक्स्तुता त्वया पुत्र त्वमजय्यो भविष्यसि॥२२३॥

अवतारे सदारस्त्वं पितृमातृषुवल्लभः । इह चागत्य यो मां तु स्तवेनानेन संस्तुयात् ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तःपरं स्थानं गमिष्यति । गच्छ यज्ञं विरिञ्चस्य समाप्तिं नय पुत्रक ॥
कुरुक्षेत्रे प्रयागे च भविष्ये चान्नदायिनी । समीपगास्थिताभर्त्तःकरिष्येतवभाषितम् ॥

पुलस्त्य उवाच ।

एवमुक्तोगतोविष्णुर्ब्रह्मणःसद उत्तमम् । गतायामथ सावित्र्यां गायत्री वाक्यमब्रवीत्॥

गायत्र्युवाच ।

शृण्वन्तु वाक्यमृषयो मदीयंभर्तृसन्निधौ । यदिदं वच्म्यहं तुष्टा वरदानाय चोद्यता ।
ब्रह्माणं पूजयिष्यंति नराभक्तिसमन्विताः । तेषां वस्त्रं धनं धान्यंदाराःसौख्यंधनानिच
अविच्छिन्नं तथा सौख्यं गृहे वैपुत्रपौत्रकम् । भुक्त्वासौसुचिरंकालमंतेमोक्षंगमिष्यति

पुलस्त्य उवाच ।

ब्रह्माणं च प्रतिष्ठाप्य सर्वयत्नैर्विधानतः । यत्पुण्यफलमाप्नोति तदेकाग्रमनाःशृणु॥२३१
सर्वयज्ञतपोदानतीर्थं वेदेषु यत्फलम् । तत्फलं कोटिगुणितं लभेतैतत्प्रतिष्ठया ॥२३२॥
पौर्णमास्युपवासं तु कृत्वा भक्त्यानराधिप । अनेन विधिना यस्तु विरिंचिं पूजयेन्नरः॥
प्रतिपदि महाबाहो स यातिब्रह्मणःपदम् । विरिंचिं वासुदेवं तु ऋत्विग्भिश्चविशेषतः॥

कार्तिके मासि देवस्य रथयात्रा प्रकीर्तिता ।
यां कृत्वा मानवा भक्त्या संयांति ब्रह्मलोकताम् ॥ २३५ ॥

कार्तिकेमासि राजेंद्र पौर्णमास्यां चतुर्मुखम् । मार्गेण ब्रह्मणा सार्द्धंसावित्र्या च परंतप
भ्रामयेन्नगरं सर्वं नानावाद्यसमन्वितः । स्थापयेद् भ्रामयित्वा तु सलोकनगरं नृप ॥
ब्राह्मणान्भोजयित्वाग्रे शांडिलेयं प्रपूज्यच । आरोपयेद्रथे देवं पुण्यवादित्रनिःस्वनैः ॥
रथाग्रे शांडिलीपुत्रं पूजयित्वा विधानतः । ब्राह्मणान्वाचयित्वातुकृत्वापुण्याहमङ्गलम्
देवमारोपयित्वा च रथे कुर्यात्प्रजागरम् । नानाविधैः प्रेक्षणिकैर्ब्रह्मघोषैश्च पुष्कलः ॥
कृत्वा प्रजागरं देवं प्रभाते ब्राह्मणान्नृप । भोजयित्वा यथाशक्ति भक्ष्यभोज्यैरनेकशः॥
पूजयित्वा जनंधीरमंत्रेणविधिवन्नृप । आज्येन तु महाबाहो पयसापायसेन च॥२४२॥

ब्राह्मणान्वाचयित्वा तु स्वस्त्या तु विधिवन्नृप ।
कृत्वा पुण्याहशब्दं च तद्रथं भ्रामयेत्पुरे ॥२४३ ॥

विप्रैश्चतुर्वेदविद्भिर्भ्रामयेद्ब्रह्मणोरथम् । बह्वृचाथर्वणैर्वीरछंदोगाध्वर्यभिस्तथा ॥२४४॥

भ्रामयेद्देवदेवस्य सुरश्रेष्ठस्य तं रथम् । प्रदक्षिणं पुरं सर्वं मार्गेण सुसमेन तु ॥२४५॥
नवोढव्यो रथो वीर शूद्रेण हितमिच्छता । नचारोहेद्रथं प्राज्ञो मुक्त्वैकं भोजकं नृप ॥
ब्रह्मणो दक्षिणे पार्श्वे गायत्रीं स्थापयेन्नृप । भोजकं वामपार्श्वे तु पुरतः पङ्कजे न्यसेत्
एवं तूर्यनिनादैस्तु शंखशब्दैश्च पुष्कलः । भ्रामयित्वा रथं वीर पुरं सर्वं प्रदक्षिणम् ॥

स्वस्थाने स्थापयेद्देवं दत्वा नीराजनं बुधः ।
य एवं कुरुते यात्रां यो वा भक्त्यापि पश्यति ॥ २४६ ॥
रथं वा कर्षयेद्यस्तु स गच्छेद् ब्रह्मणः पदम् ।
कार्तिके मास्यमावास्यां यश्च दीपप्रदीपनम् ॥ २५० ॥

शालायां ब्रह्मणः कुर्यात्स गच्छेत्परमं पदम् । गंधपुष्पैर्नवैर्वस्त्रैरात्मानं पूजयेत्तु यः ॥
तस्यां प्रतिपदायां तु स गच्छेद्ब्रह्मणः पदम् । महापुण्या तिथिरियं बलिराज्यप्रवर्तिनी
ब्रह्मणः सुप्रिया नित्यंबालेयी परिकीर्तिता । ब्रह्माणं पूजयेद्योऽस्यामात्मानं च विशेषतः
स याति परमं स्थानं विष्णोरमितेतजसः । चैत्रमासि महाबाहो पुण्या प्रतिपदांवरा ॥

तस्यां यः श्वपचं स्पृष्ट्वा स्नानं कुर्यान्नरोत्तमः ।
न तस्य दुरितं किंचिन्नाधयो व्याधयो नृप ॥२५५ ॥

भवंति कुरुशार्दूल तस्मात्स्नानं समाचरेत् । दिव्यं नीराजनं तद्धि सर्वरोगविनाशनम्

गोमहिष्यादि यत्किंचित्तत्सर्वं कर्षयेन्नृप ।
तेन वस्त्रादिभिः सर्वैस्तोरणं बाह्यतो न्यसेत् ॥ २५७॥

ब्राह्मणानां तथा भोज्यं कुर्यात्कुरुकुलोद्वह । तिस्रो ह्येताः पुरा प्रोक्तास्तिथयःकुरुनंदन
कार्तिकेऽश्वयुजे मासि चैत्रे मासि तथा नृप । स्नानं दानं शतगुणं कार्तिके या तिथिर्नृप

बलिराज्ञस्तु शुभदा पशूनां हितकारिणी ।

गायत्र्युवाच ।

यदुक्तं तु तया वाक्यं सावित्र्या कमलोद्भवः ॥ २६० ॥

न तु ते ब्राह्मणाःपूजां करिष्यंति कदाचन । मदीयं तु वचः श्रुत्वा ये करिष्यंतिचार्चनम्
इह भुक्त्वा तु भोगांस्ते परत्र मोक्षभागिनः । एतां ज्ञात्वा परांद्रृष्टिं परं तुष्टःप्रयच्छति

शक्राहं ते वरं दास्ये संग्रामे शत्रुनिग्रहे । तदा ब्रह्मा मोचयिता गत्वा शत्रुनिकेतनम् ॥
स्वपुरं लप्स्यसे नष्टं शत्रुनाशात्परां मुदम् । अकंटकं महद्राज्यं त्रैलोक्ये ते भविष्यति
मर्त्यलोके यदा विष्णो अवतारं करिष्यसि । भ्रात्रा सहपरं दुःखं स्वभार्याहरणादिजम्

हत्वा शत्रुं पुनर्भार्यां लप्स्यसे सुरसन्निधौ ।
गृहीत्वा तां पुना राज्यं कृत्वा स्वर्गं गमिष्यसि ॥२६६ ॥

एकादश सहस्राणि वर्षाणां च पुनर्दिवम् । ख्यातिस्ते विपुला लोके अनुरागं जनैस्सह

सांतानिका नाम तु वै लोकाः स्थास्यंति भाविताः ।
त्वया ते तारिता देव रामरूपेण मानवाः ॥ २६८ ॥

गायत्री तु तदा रुद्रं वरदा प्रत्यभाषत । पतितेऽपि च ते लिंगे पूजां कुर्वंति ये नराः ॥
ते पूताः पुण्यकर्माणःस्वर्गलोकस्य भागिनः । न तां गतिं चाग्निहोत्रे न क्रतौ हुतपावके
यां गतिं मनुजा यांति तव लिंगस्य पूजनात् । गंगातीरे सदा लिंगं बिल्वपत्रेण ये तव
पूजयिष्यंति सुप्रीता रुद्रलोकस्य भागिनः। प्राप्यापि सर्वभक्षत्वमग्ने त्वं भव पावनः॥

त्वयि प्रीते सुराः सर्वे प्रीता वै नात्र संशयः ।
त्वन्मुखेन हविर्देवाः प्रोताः प्राप्य सदा ध्रुवम् ॥ २७३ ॥

भुंजते नात्र संदेहो वेदोक्तं वचनं यथा । गायत्री ब्राह्मणांस्तांश्च सर्वांश्चैवाब्रवीदिदम्
युष्माकं प्रीणनं कृत्वा सर्वतीर्थेषु मानवाः । पदं सर्वे गमिष्यंति वैराजाख्यं न संशयः
अन्नप्रकारान्विविधान्दत्त्वा दानान्यनेकशः । श्राद्धेषु प्रीणनं कृत्वा देव देवा भवंति ते
ये च वै ब्राह्मणश्रेष्ठास्तेषामास्ये दिवौकसः । भुंजते च हविः क्षिप्रं कव्यं चैव पितामहाः
यूयं हि धारणे शक्तास्त्रैलोक्यस्य न संशयः। प्राणायामेन चैकेन सर्वे पूता भविष्यथ ॥

विशेषात्पुष्करे स्नात्वा मां जप्त्वा वेदमातरम् ।
प्रतिग्रहकृतान्दोषान्न प्राप्स्यथ द्विजोत्तमाः ॥ ७६॥
पुष्करे चान्नदानेन प्रीताः स्युः सर्वदेवताः ।
एकस्मिन्भोजिते विप्रे कोट्याः फलमवाप्स्यते ॥ २८० ॥

ब्रह्महत्यादिपापानि दुष्कृतानि कृतानि च । तरिष्यन्ति नरास्सर्वे दत्त्वा युष्मत्करेधनम्

मदीयेनतुजाप्येन जन्मभिस्तुत्रिभिःकृतम् । ब्रह्महत्यासमंपापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥२८२
दशभिर्जन्मभिर्जातं शतेन च पुराकृतम् । त्रियुगेन सहस्रेण गायत्री हंति किल्बिषम् ॥
एवं ज्ञात्वा सदापूता जाप्ये तु मम वै कृते। भविष्यध्वं न संदेहो नात्र कार्याविचारणा
प्रणवेन त्रिमात्रेण सार्द्धं जप्त्वा विशेषतः । पूताःसर्वे न सदेहो जप्त्वा मां शिरसासह
अष्टाक्षरा स्थिता चाहं जगद्व्याप्तं मया त्विदम् । माताहं सर्ववेदानां पदैः सर्वैरलंकृता॥

जप्त्वा मां भक्तितःसिद्धिं यास्यंति द्विजसत्तमाः ।
प्राधान्यं मम जाप्येन सर्वेषां वो भविष्यति ॥ २८७ ॥

गायत्रीमात्रसरोऽपि वरं विप्रः सुसंयतः । नायं त्रितश्चतुर्वेदी सर्वाशी सर्वविक्रयी ॥
यस्माद्विप्रेषु सावित्र्या शापो दत्तःसदस्यथ । अत्र दत्तं हुतं चापि सर्वमक्षयकारकम्॥
दत्तो वरो मया तेन युष्माकं द्विजसत्तमाः । अग्निहोत्रपरा विप्रास्त्रिकालंहोमदायिनः

स्वर्गं ते तु गमिष्यंति सैकविंशतिभिःकुलैः ।

पुलस्त्य उवाच ।

एवं शक्रस्य विष्णोश्च रुद्रस्य पावकस्य च ॥ २९१ ॥

ब्रह्मणो ब्राह्मणानां च गायत्रीवरमुत्तमम् । तस्मिन्वै पुष्करे दत्त्वा ब्रह्मणःपार्श्वगाभवत्

चारणैस्तु तदाख्यातं लक्ष्म्या वै शापकारणम् ।
युवतीनां च सर्वासां शापाञ्ज्ञात्वापृथक् पृथक् ॥२९३॥
लक्ष्म्याश्चैव वरं प्रादाद्गायत्री ब्रह्मणः प्रिया ।

गायत्र्युवाच ।

अकुत्सितान्सदा सर्वान्कुर्वंती धनशोभना ॥ २९४ ॥

शोभिष्यसे न संदेहःसर्वेभ्यःप्रीतिदायिनी । येत्वया वीक्षिताःपुत्रि सर्वेते पुण्यभाजनाः
परित्यक्तास्त्वया ये तु सर्वे ते दुःखभागिनः । तेषां जातिः कुलं शीलं धर्मश्चैव वरानने
सभायां ते च शोभंते दृश्यंते चैव पार्थिवैः । अर्थित्वंचैवतेषांतु करिष्यंति द्विजोत्तमाः

सौजन्यं तेषु कुर्वंति त्वं नो भ्राता पिता गुरुः ।
बांधवोऽपि न संदेहो न जीवेयं त्वया विना ॥ २९८ ॥

त्वयि दृष्टे प्रसन्ना मे दृष्टिर्भवति शोभना। मनःप्रसीदतेऽत्यर्थं सत्यं सत्यं वदामि ते॥

एवं विधानि वाक्यानि त्वद्दृष्ट्या ये निरीक्षिताः।

सज्जनास्ते तु श्रोष्यंति जनानां प्रीतिदायकाः॥ ३००॥

इंद्रत्वं नहुषः प्राप्य दृष्ट्वा त्वां याचयिष्यति। त्वद्दृष्ट्यातु हतःपापो ह्यगस्त्यवचनाद्ध्रुवम्

सर्पत्वं समनुप्राप्य प्रार्थयिष्यति तं तु सः। दर्पेणाहं विनष्टोऽस्मि शरणं मे मुने भव॥

वाक्येन तेन तस्यासौ नृपस्य भगवानृषिः। कृत्वा मनसि कारुण्यमिदं वाक्यं वदिष्यति

उत्पत्स्यते कुले राजा त्वदीये कुलनंदनः। सर्परूपधरं दृष्ट्वा स ते शापं हि भेत्स्यति॥

तदा त्वं सर्पतां त्यक्त्वा पुनःस्वर्गं गमिष्यसि। अश्वमेधकृते न त्वं भर्त्रा सहपुनर्दिवम्

प्राप्स्यसे वरदानेन मदीयेन सुलोचने।

पुलस्त्य उवाच।

देवपत्न्यस्तदा सर्वास्तुष्ट्या परिभाषिताः॥३०६॥

अपत्यैरपि हीनानां नैव दुःखं भविष्यति। गौरीचैव तु गायत्र्या तदा सापि विबोधिता

बृंहिता परितोषेण वरान्दत्त्वा मनस्विनी। समाप्तिं तस्य यज्ञस्य कांक्षंती ब्रह्मणःप्रिया

वरदां तां तथा दृष्ट्वा गायत्रीं वेदमातरम्। प्रणिपत्य तदा रुद्रःस्तुतिमेतां चकारह॥३०६

रुद्र उवाच।

नमोऽस्तु ते वेदमातरष्टाक्षरविशोधिते। गायत्री दुर्गतरणी वाणी सप्तविधा तथा॥३१०

सर्वाणि स्तुतिशास्त्राणि गाथाश्च निखिलास्तथा।

अक्षराणि च सर्वाणि लक्षणानि तथैव च॥३११॥

भाष्यादिसर्वशास्त्राणि ये चान्ये नियमास्तथा।

अक्षराणि च सर्वाणि त्वं तु देवि नमोऽस्तुते॥ ३१२॥

श्वेता त्वं श्वेतरूपाऽसि शशांकेन समानना। बिभ्रती विपुलौ बाहू कदलीगर्भकोमलौ॥

एणशृंगं करे गृह्य पंकजं च सुनिर्मलम्। वसानावसने क्षौमे रक्तेनोत्तरवाससा॥३१४॥

शशिरश्मिप्रकाशेन हारेणोरसि राजिता। दिव्यकुंडलपूर्णाभ्यां कर्णाभ्यां सुविभूषिता

चन्द्रसापत्न्यभूतेन मुखेन त्वं विराजसे। मुकुटेनातिशुद्धेन केशबंधेन शोभिता॥३१६॥

भुजगाभोगसदृशौ भुजौ ते भूषणं दिवः । स्तनौ ते रुचिरौ देवि वर्तुलौ समचूचुकौ
जघनेनातिशुभ्रेण त्रिवलीभंगदर्पिता । सुमध्यवर्त्तिनी नाभिर्गंभीरा शुभदर्शिनी ॥३१८॥
विस्तीर्णजघना देवी सुश्रोणी च वरानने । सुजातवृत्तोरुयुगा सुजानुचरणा तथा ॥
त्रैलोक्यधारिणी सा त्वं भुवि सत्योपयाचना । भविष्यसि महाभागे वरदा वरवर्णिनी

पुष्करे च कृता यात्रा द्रष्टा त्वां संभविष्यति ।
ज्येष्ठे मासे पौर्णमास्यामग्र्यां पूजां च लप्स्यसे ॥ ३२१ ॥

ये च वा त्वत्प्रभावज्ञाःपूजयिष्यंति मानवाः । न तेषां दुर्लभं किंचित्पुत्रतोधनतोऽपिवा
कांतारेषु निमग्नानामटव्यां वा महार्णवे । दस्युभिर्वानिरुद्धानां त्वं गतिःपरमा नृणाम्

त्वं सिद्धिः श्रीर्धृतिःकीर्तिर्ह्रीर्विद्यासन्नतिर्मतिः ।
संध्या रात्रिः प्रभा निद्रा कालरात्रिस्त्वमेव च ॥ ३२४ ॥

अम्बा च कमला मातर्ब्रह्माणी ब्रह्मचारिणी । जननी सर्वदेवानां गायत्री परमांगना ॥
जया च विजया चैव पुष्टिस्त्वं च क्षमा दया । सावित्र्यवरजा चासि सदा चेष्टापितुर्मम
बहुरूपा विश्वरूपा सुनेत्रा ब्रह्मचारिणी । सुरूपा त्वं विशालाक्षी भक्तानां परिरक्षिणी ।
नगरेषु च पुण्येषु आश्रमेषु वरानने । वासस्तव महादेवि वनेषूपवनेषु च ॥ ३२८ ॥
ब्रह्मस्थानेषु सर्वेषु ब्रह्मणो वामतःस्थिता । दक्षिणेन तु सावित्री मध्ये ब्रह्मा पितामहः ॥

अन्तर्वेदी च यज्ञानामृत्विजां चापि दक्षिणा ।
सिद्धिस्त्वं हि नृपाणां च वेला सागरजा मता ॥ ३३० ॥
ब्रह्मचारिणि या दीक्षा शोभा च परमा मता ।
ज्योतिषां च प्रभा देवी लक्ष्मीर्नारायणे स्थिता ॥ ३३१ ॥

क्षमासिद्धिर्मुनीनां च नक्षत्राणां च रोहिणी । राजद्वारेषु तीर्थेषु नदीनां संगमेषु च ॥
पूर्णमापूर्णचन्द्रे च बुद्धिर्नीत्यां क्षमा धृतिः । उमा देवी च नारीणां श्रूयसे वरवर्णिनी
इन्द्रस्य चारुदृष्टिस्त्वं सहस्रनयनोपगा । ऋषीणां धर्मबुद्धिस्त्वं देवानां च परायणा
कर्षकाणां च सीता त्वं भूतानां धरणी तथा ॥ स्त्रीणामवैधव्यकरी धनधान्यप्रदा सदा

व्याधिं मृत्युं भयं चैव पूजिता शमयिष्यसि ।

तथा तु कार्तिके मासि पौर्णमास्यां सुपूजिता ॥ ३३६ ॥

सर्वकामप्रदा देवी भविष्यसि शुभप्रदे । यश्चेदं पठते स्तोत्रं श्रृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णशः ॥

सर्वार्थसिद्धिं लभते नरो नास्त्यत्र संशयः ।

गायत्र्युवाच ।

भविष्यत्येवमेवं तु यत्त्वया पुत्र भाषितम् ॥ ३३८ ॥

विष्णुना सहितः सर्वस्थानेष्वेव भविष्यसि ॥ ३२९ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे सावित्रीविवादगायत्रीवरप्रदानंनाम सप्तदशोऽध्यायः

अष्टादशोऽध्यायः

ब्रह्मदेवकृतयज्ञस्य विस्तरेण वर्णनम्

भीष्म उवाच ।

अत्यद्भुतमिदं ब्रह्मञ्छ्रुतवानस्मि तत्त्वतः । अभिषेकं तु गायत्र्याःसदस्यत्र तथा कृतम् ॥

विरोधश्चैव सावित्र्या शापदानं तथा कृतम् । विष्णुना च यथादेवी सर्वस्थानेषु कीर्तिता

गायत्री चापि रुद्रेण स्तुता च वरवर्णिनी । श्रुत्वेदं पूतमात्मानं मन्येऽहं तु महामुने ॥

प्रहृष्टानि च रोमाणि प्रशांतं च मनो मम । श्रुत्वा मे परमा प्रीतिःकौतूहलमथैव हि ॥

नारायणस्तु भगवान्कृत्वा तां परमां च वै ।

ब्रह्मपत्न्याः स्तुतिं भक्तया न्यस्य तां पर्वतोपरि ॥ ५ ॥

उवाच वचनं विष्णुस्तुष्टिपुष्टिप्रदायकम् । श्रीमती ह्रीमती चैव या च देवीश्वरी तथा ॥

एतदेव श्रुतं ब्रह्मंस्तव वक्त्राद्विनिःसृतम् । उत्तरं तत्र यद्भूतं यच्च तस्मिन्स्थले कृतम् ॥

आनुपूर्व्या च तत्सर्वं भगवान्वक्तुमर्हति । श्रुतेन मे देहशुद्धिर्भविष्यति न संशयः ॥८ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

यजतः पुष्करे तस्य देवस्य परमेष्ठिनः । श्रृणु राजन्निदं चित्रं पूर्वमेव यथा कृतम् ॥९॥

आदौ कृतयुगे तस्मिन्यजमाने पितामहे। मरीचिरंगिराश्चैव पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः॥
दक्षः प्रजापतिश्चैव नमस्कारं प्रचक्षिरे। विद्योतमानाः पुरुषाः सर्वाभरणभूषिताः॥
उपनृत्यंति देवेशं विष्णुमप्सरसांगणाः। ततो गंधर्वतूर्यैस्तु प्रतिनंद्य विहायसि॥१२॥
बहुभिः सह गंधर्वैःप्रगायति च तुंबुरुः। महाश्रुतिश्चित्रसेन ऊर्णायुरनघस्तथा॥ १३॥

गोमायुस्सूर्यवर्चाश्च सोमवर्चाश्च कौरव।
युगपश्च तृणायुश्च नंदिश्चित्ररथस्तथा॥ १४॥

त्रयोदशः शालिशिराः पर्जन्यश्च चतुर्दशः। कलिः पंचदशश्चात्र तारकश्चात्र षोडशः॥
हाहाहूहूश्चगन्धर्वो हंसश्चैव महाद्युतिः इत्येते देवगन्धर्वा उपगायंति ते विभुम्॥१६॥
तथैवाप्सरसो दिव्याउपनृत्यंति तं विभुम्। धाताऽर्यमा च सविितावरुणोंऽशोभगस्तथा
इन्द्रो विवस्वान्पूषा च त्वष्टा पर्जन्य एवच। इत्येते द्वादशादित्या ज्वलंतो दीप्ततेजसः
चक्रुरस्मिन्सुरेशाश्च नमस्कारं पितामहे। मृगव्याधश्च शर्वश्च निर्ऋतिश्च महायशाः॥
अजैकपादहिर्बुध्न्यः पिनाकी चापराजितः। भवो विश्वेश्वरश्चैव कपर्दी च विशांपते॥
स्थाणुर्भगश्च भगवान्रुद्रास्तत्रावतस्थिरे। अश्विनौ वसवश्चाष्टौ मरुतश्च महाबलाः॥

विश्वेदेवाश्च साध्याश्च तस्मै प्रांजलयःस्थिताः।
शेषाद्यास्तु महानागा वासुकिप्रमुखास्स्थिताः॥ २२॥

काश्यपःकंबलश्चापि तक्षकश्च महाबलः। अधृष्यास्तेजसा दीप्ता महाक्रोधा महाबलाः
एते नागा महात्मानस्तस्मै प्रांजलयःस्थिताः। तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च गरुडश्च महाबलः
वारुणिश्चैवारुणिश्च वैनतेयाव्यवस्थिताः। नारायणश्च भगवान्स्वयमागत्य लोकवान्
प्राह लोकगुरुं श्रीमान्सह सर्वैर्महर्षिभिः। त्वया ततमिदं सर्वं त्वया सृष्टं जगत्पते॥

तस्माल्लोकेश्वरश्चासि पद्मयोने नमोऽस्तु ते।
यदत्र ते मया कार्यं कर्तव्यं च तदा दिश॥ २७॥

एवं प्रोवाच भगवान्सार्धं देवर्षिभिः प्रभुः। नमस्कृत्य सुरेशाय ब्रह्मणेऽव्यक्तजन्मने॥
स च तत्र स्थितो ब्रह्मा तेजसा भासयन्दिशः। श्रीवत्सलोमसंच्छन्नो हेमसूत्रेण राजता
सुरर्षिप्रतिमः श्रीमान्स्वयंभूर्भूतभावनः। शुचिरोमा महावक्षाः सर्वतेजोमयःप्रभुः॥३०॥

या गतिः पुण्यशीलानामगतिःपापकर्मणाम् । योगसिद्धमहात्मानो यं विदुर्लोकमुत्तमम्
यस्याष्टगुणमैश्वर्यं यमाहुर्देवसत्तमम् ।
यं प्राप्य शाश्वतं विप्रा नियता मोक्षकांक्षिणः ॥ ३२ ॥
जन्मनो मरणाच्चैव मुच्यंते योगभाविताः । यदेतत्तप इत्याहुः सर्वाश्रमनिवासिनः ॥
सेवं सेवं यताहारादुश्चरं व्रतमास्थिताः । योऽनंत इति नागेषु प्रोच्यते सर्वयोगिभिः ॥
सहस्रमूर्द्धा रक्ताक्षः शेषादिभिरनुत्तमैः । यो यज्ञ इति विप्रेंद्रैरिज्यते स्वर्गलिप्सुभिः ॥
नानास्थानगतिः श्रीमानेकः कविरनुत्तमः । यं देवं वेत्ति वेत्तारं यज्ञभागप्रदायिनम् ॥
वृषाग्निसूर्यचंद्राक्षं देवमाकाशविग्रहम् । तं प्रपद्यामहे देवं भगवञ्छरणार्थिनः ॥ ३७ ॥
शरण्यं शरणं देवं सर्वदेवभवोद्भवम् ।
ऋषीणां चैव स्रष्टारं लोकानां च सुरेश्वरम् ॥ ३८ ॥
प्रियार्थं चैव देवानां सर्वस्य जगतःस्थितौ । कव्यं पितॄणामुचितं सुराणांहव्यमुत्तमम्
येन प्रवर्तितंसर्वं तं नताःस्मस्सुरोत्तमम् । त्रेताग्निना तु यजता देवेन परमेष्ठिना ॥ ४० ॥
यथा सृष्टिःकृता पूर्वं यज्ञसृष्टिस्तथा पुनः । तथाब्रह्माप्यनंतेन लोकानां स्थितिकारिणा
अन्वास्यमानो भगवान्वृद्धोऽप्यथ च बुद्धिमान् ।
यज्ञवाटमचिंत्यात्मा गतस्तत्र पितामहः ॥ ४२ ॥
धनाढ्यैर्ऋत्विजैः पूर्णं सदस्यैः परिपालितम् । गृहीतचापेन तदा विष्णुना प्रभविष्णुना
दैत्यदानवराजानो राक्षसानांगणाःस्थिताः। आत्मानमात्मना चैव चिंतयामास वै द्रुतम्
चिंतयित्वा यथा तत्त्वं यज्ञं यज्ञःसनातनः । वरणं तत्र भगवान्कारयामास ऋत्विजाम्
भृग्वाद्याऋत्विजश्चापि यज्ञकर्मविचक्षणाः । चक्रुर्बह्वृचमुख्यैश्च प्रोक्तं पुण्यं यदक्षरम् ।
शुश्रुवुस्ते मुनिश्रेष्ठा चितते तत्र कर्मणि । यज्ञविद्या वेदविद्या पदक्रमविदां तथा ॥४७॥
घोषेण परमर्षीणां सा बभूव निनादिता । यज्ञसंस्तरविद्भिश्च शिक्षाविद्भिस्तथाद्विजैः ॥
शब्दनिर्वचनार्थज्ञैःसर्वविद्याविशारदैः । मीमांसाहेतुवाक्यज्ञैर्नानाविद्याविशारदैः ॥४९॥
लोकायतिकमुख्यैश्च शुश्रुवुशब्दमीरितम् । इतिहासपुराणज्ञैर्नैकविज्ञानवेदिभिः ॥५०॥
तत्र तत्र च राजेंद्र नियतान्संशितव्रतान् । जपहोमपरान्मुख्यान्ददृशुस्तत्रवै द्विजान् ॥

यज्ञभूमौ स्थितस्तस्यां ब्रह्मा लोकपितामहः ।
सुरासुरगुरुः श्रीमान्सेव्यमानः सुरासुरैः ॥५२ ॥

उपासते च तत्रैनं प्रजानांपतयःप्रभुम् । दक्षो वसिष्ठःपुलहो मरीचिश्च द्विजोत्तमः॥५३॥
अंगिरा भृगुरत्रिश्च गौतमो नारदस्तथा । विद्यमानं चांतरिक्षं वायुस्तेजो जलं मही ॥
शब्दःस्पर्शश्च रूपं च रसो गंधस्तथैव च । विकृतश्च विकारश्च यच्चान्यत्कारणं महत्

ऋग्यजुःसामाथर्वाख्या वेदाश्चत्वार एव च ।
शब्दःशिक्षा निरुक्तं च कल्पश्छंदःसमन्विताः ॥ ५६ ॥

आयुर्वेदधनुर्वेदौ मीमांसा गणितं तथा । हस्त्यश्वज्ञानसहिता इतिहाससमन्विताः ॥
एतैरंगैरुपांगैश्च वेदाः सर्वे विभूषिताः । उपासते महात्मानं सहोंकारं पितामहम्
तपश्च क्रतवश्चैव संकल्पःप्राणएव च । एतेचान्ये च बहवःपितामहमुपस्थिताः ॥ ५९ ॥
अर्थोधर्मश्च कामश्च द्वेषोहर्षश्च सर्वदा । शुक्रो बृहस्पतिश्चैव संवर्तो बुध एव च ॥६०॥
शनैश्चरश्चराहुश्च ग्रहाःसर्वे तथैव च । मरुतो विश्वकर्मा च पितरश्चापि भारत ॥ ६१ ॥
दिवाकरश्च सोमश्च ब्रह्माणं पर्युपासते । गायत्रीदुर्गतरणी वाणी सप्तविधा तथा ॥

सर्वाणि श्रुतिशास्त्राणि यमाश्च नियमास्तथा ।
अक्षराणि च सर्वाणि नक्षत्राणि तथैव च ॥ ६३ ॥

भाष्याणि सर्वशास्त्राणि देहवंति विशांपते । क्षणालवा मुहूर्ताश्च दिनंरात्रिस्तथैव च
अर्द्धमासाश्च मासाश्च ऋतवःसर्वएव च । उपासते महात्मानं ब्रह्माणं दैवतैःसह ॥
अन्याश्च देव्यःप्रवरा ह्रीःकीर्तिर्द्युतिरेव च । प्रभा धृतिःक्षमा भूतिर्नीतिर्विद्यामतिस्तथा॥

श्रुतिःस्मृतिस्तथा क्षांतिःशांतिःपुष्टिस्तथा क्रिया ।
सर्वाश्चाप्सरसो दिव्या नृत्यगीतविशारदाः ॥ ६७ ॥

उपतिष्ठंति ब्रह्माणं सर्वास्ता देवमातरः । विप्रचित्तिःशिबिःशंकुरयःशंकुस्तथैव च ॥
वेगवान्केतुमानुग्रःसोऽग्रोव्यग्रो महासुरः । परिघःपुष्करश्चैव सांबोऽश्वपतिरेव च ॥

प्रह्लादोऽथ बलिः कुंभः संह्रादो गगनप्रियः ।
अनुह्लादो हरिहरौ वराहश्च कुशोरजः ॥ ७० ॥

योनिभक्षो वृषपर्वा लिंगभक्षोऽथ वै कुरुः । निष्प्रभःसप्रभःश्रीमांस्तथैव च निरूदरः ॥
एकचक्रो महाचक्रो द्विचक्रः कुलसंभवः । शरभःशलभश्चैव क्रपथःक्रापथःक्रथः ॥७२॥
बृहद्भ्रांतिर्महाजिह्वः शंकुकर्णो महाध्वनिः ।
दीर्घजिह्वोऽर्कनयनो मृदुकायो मृडप्रियः ॥ ७३ ॥
वायुर्गरिष्ठो नमुचिश्शम्बरो विज्वरो विभुः । विष्वक्सेनश्चंद्रहंता क्रोधवर्द्धन एवच
कालकःकलकांतश्च कुण्डदःसमरप्रियः । गरिष्ठश्च वरिष्ठश्च प्रलंबो नरकःपृथुः ॥ ७५ ॥
इंद्रतापन वातापी केतुमान्बलदर्पितः । असिलोमा सुलोमा च बाष्कलिःप्रमदो मदः ॥
शृगालवदनश्चैव केशी च शरदस्तथा । एकाक्षश्चैव राहुश्च वृत्रःक्रोधविमोक्षणः ॥७७॥
एते चान्ये च बहवो दानवा बलदर्पिताः। ब्रह्माणं पर्युपासंत वाक्यं चेदमथोचिरे ॥७८॥
त्वया सृष्टाःस्म भगवंस्त्रैलोक्यं भवता हि नः। दत्तं सुरवरश्रेष्ठ देवेभ्यश्चाधिकाःकृताः ॥
भगवन्निह किं कुर्मो यज्ञे तव पितामह । यद्धितं तद्वदास्माकं समर्थाःकार्यनिर्णये ॥८०
किमेभिस्ते वराकैश्च अदितेर्गर्भसंभवैः । दैवतैर्निहतैःसर्वैःपराभूतैश्च सर्वदा ॥ ८१ ॥
पितामहोऽसि सर्वेषामस्माकं दैवतैःसह । तव यज्ञसमाप्तौ च पुनरस्मासु दैवतैः ॥८२॥
श्रियं प्रतिविरोधश्च भविष्यति न संशयः । इदानीं प्रेक्षणं कुर्मःसहिताःसर्वदानवैः ॥८३

पुलस्त्य उवाच ।

सगर्वं तु वचस्तेषां श्रुत्वा देवो जनार्दनः । शक्रेण सहितःशंभुमिदमाह महायशाः ॥
यज्ञे पैतामहे ये तु सम्प्राप्ता दनुपुङ्गवाः । ब्रह्मणा मंत्रिताश्चेह विघ्नार्थं प्रयतंति ते ॥८५
अस्माभिस्तु क्षमा कार्या यावद्यज्ञः समाप्यते ।
समाप्ते तु क्रतावस्मिन्युद्धं कार्यं दिवौकसाम् ॥ ८६ ॥
यथा निर्दानवा भूमिस्तथा कार्यं त्वया विभो ।
जयार्थं चेह शक्रस्य भवता च मया सह ॥ ८७ ॥
द्विजानां परिवेष्टारो मरुतःपरिकल्पिताः । दानवानां धनं यच्च गृहीत्वा तद्यजामहे ॥
अत्रागतेषु विप्रेषु दुःखितेषु जनेष्विह । व्ययं तस्य करिष्यामो दासभावे निवेशिताः॥
वदंतमेवं तं विष्णुं ब्रह्मा वचनमब्रवीत् । एते दनुसुताःक्रुद्धा युष्माकमपि नेप्सिताः ॥

भवता च क्षमा कार्या रुद्रेण सह दैवतैः । कृतेयुगावसाने तु समाप्ति च कृतौगते ॥
मया च प्रेषिता यूयमेते च दनुपुंगवाः । संधिर्वा विग्रहोवापि सर्वैःकार्यस्तदैव हि ॥

पुलस्त्य उवाच ।

पुनस्तान्दानवान्ब्रह्मा वाक्यमाह स्वयं प्रभुः ।
दानवैर्न विरोधोऽत्र यज्ञे मम कथंचन ॥ ६३ ॥
मैत्रभावस्थिता यूयमस्मत्कार्यपरायणाः ।

दानवा ऊचुः ।

सर्वमेतत्करिष्यामः शासनं ते पितामह ॥ ६४ ॥
अस्माकमनुजा देवा भयं तेषां न विद्यते ॥

पुलस्त्य उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा तदा तेषां परितुष्टःपितामहः ॥ ६५ ॥

मुहूर्तं तिष्ठतां तेषामृषिकोटिरुपागता । श्रुत्वा पैतामहं यज्ञं तेषां पूजां तु केशवः ॥
आसनानि ददौ तेषां तदा देवःपिनाकधृक् । वसिष्ठोऽर्घं ददौ तेषां ब्रह्मणा परिचोदितः

गामर्घं च ततो दत्वा पृष्ट्वा कुशलमव्ययम् ।
निवेशं पुष्करे दत्वा स्थीयतामिति चाब्रवीत् ॥ ६८ ॥

ततस्त ऋषयःसर्वे जटाजिनधरास्तथा । शोभयंतःसरःश्रेष्ठं गङ्गामिव दिवौकसः ॥
मुंडाःकाषायिणश्चैके दीर्घश्मश्रुधराः परे । विरलैर्दशनैःकेचिच्चिपिटाक्षास्तथापरे ॥
बृहत्तनूदराःकेऽपि केकराक्षास्तथापरे । दीर्घकर्णा विकर्णाश्च कर्णैश्च त्रुटितास्तथा ॥

दीर्घफाला विफालाश्च स्नायुचर्मावगुंठिताः ।
निर्गतं चोदरं तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ २ ॥

दृष्ट्वा ते पुष्करं तीर्थं दीप्यमानंसमंततः । तीर्थलोभान्नरव्याघ्र तस्य तीरे व्यवस्थिताः ॥
वालखिल्या महात्मानो ह्यश्मकुट्टास्तथापरे । दंतोलूखलिनश्चान्ये संप्रक्षालास्तथापरे

वायुभक्षा जलाहाराः पर्णाहारास्तथापरे ।
नानानियमयुक्ताश्च तथा स्थंडिलशायिनः ॥ ५ ॥

सरस्यस्मिन्मुखं दृष्ट्वा सुरूपास्याःक्षणादनु । किमेतदितिचित्याथ निरीक्ष्य च परस्परम्
अस्मिंस्तीर्थे दर्शनेन मुखस्येह सुरूपता । मुखदर्शनमित्येव नाम कृत्वा तु तापसाः ॥
स्नाता नियमयुक्ताश्चसुरूपास्ते तदा भवन् । देवपुत्रोपमा जाता अनौपम्यगुणान्विताः
शोभमाना नरश्रेष्ठ स्थिताःसर्वे वनौकसः । यज्ञोपवीतमात्रेण व्यभजंस्तीर्थमंजसा ॥

जुह्वतश्चाग्निहोत्राणि चक्रुश्च विविधाः क्रियाः ।
चिंतयंतो हि राजेंद्र तपसा दग्धकिल्बिषाः ॥ १० ॥

न यास्यामो परं तीर्थं ज्येष्ठभावो त्विदं सरः। ज्येष्ठपुष्करमित्येवनाम चक्रुर्द्विजातयः
तत्र कुब्जान्बहून्दृष्ट्वा स्थितांस्तीर्थसमीपतः। बभूवु र्विस्मितास्तत्र जना ये च समागताः

दत्वा दानं द्विजातिभ्यो भांडानि विविधानि च ।
श्रुत्वा सरस्वतीं प्राचीं स्नातुकामां द्विजागताः ॥ १३ ॥

सरस्वती तीर्थवरा नानाद्विजगणैर्युता । बदरेंगुदकाश्मर्यप्लक्षाश्वत्थबिभीतकैः ॥ १४ ॥
पौलोमैश्च पलाशैश्च करीरैःपीलुभिस्तथा । सरस्वतीतीर्थरुहैर्धन्वनैःस्यंदनैस्तथा ॥
कपित्थैःकरवीरैश्च बिल्वैराम्रातकैस्तथा । अतिमुक्तकषंडैश्च पारिजातैश्च शोभिता ॥
कदंबवनभूयिष्ठा सर्वसत्वमनोरमा । वाय्वंबुफलपर्णादैर्दंतोलूखलिकैरपि ॥ १७ ॥
तथाश्मकुट्टमुख्यैश्च वरिष्ठैर्मुनिभिर्वृता । स्वाध्यायघोषसंघुष्टा मृगयूथशताकुला ॥
अहिंसैर्धर्मपरमैस्तथा चातीव शोभिता । सुप्रभा कांचनाख्या च प्राची नंदाविशालका
स्रोतोभिःपंचभिस्तत्र वर्तते पुष्करे नदी । पितामहस्य सदसि वर्त्तमाने महीतले ॥२०
वितते यज्ञवाटे तु स्वागतेषु द्विजादिषु । पुण्याहघोषैर्विततैर्देवानां नियमैस्तथा ॥२१॥
देवेषु चैव व्यग्रेषु तस्मिन्यज्ञविधौ तथा । तत्र चैव महाराज दीक्षिते च पितामहे ॥
यजतस्तस्य सूत्रेण सर्वकामसमृद्धिना । मनसा चिंतिता ह्यर्था धर्मार्थकुशलास्तथा ॥
उपतिष्ठंति राजेंद्र द्विजातींस्तत्र तत्र ह । जगुश्च देवगंधर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥२४

वादित्राणि च दिव्यानि वादयामासुरंजसा ।
तस्य यज्ञस्य संपत्त्या तुतुषुर्देवता अपि ॥ २५ ॥

विस्मयं परमं जग्मुः किमु मानुषयोनयः । वर्तमाने तथा यज्ञे पुष्करस्थे पितामहे ॥

अब्रुवन्नृषयो भीष्म तदा तुष्टास्सरस्वतीम्। सुप्रभां नाम राजेंद्र नाम्ना चैव सरस्वतीम्
ते दृष्ट्वा मुनयःसर्वे वेगयुक्तां सरस्वतीम्। पितामहं भासयंतीं क्रतुं ते बहुमेनिरे ॥२८॥
एवमेषा सरिच्छ्रेष्ठा पुष्करेषु सरस्वती। पितामहार्थं सम्भूता तुष्ट्यर्थं च मनीषिणाम्

पुण्यस्य पुण्यताकारि पंचस्रोतास्सरस्वती।
सुप्रभा नाम राजेंद्र नाम्नचैव सरस्वती ॥ ३० ॥

यत्र ते मुनयश्शान्ता नानास्वाध्यायवादिनः। ते समागत्य ऋषयस्ससमरुवैंसरस्वतीम्
साभिध्याता महाभागा ऋषिभिःसत्रयाजिभिः। समास्थितादिशं पूर्वांभक्तिप्रीतामहानदी
प्राची पूर्ववहानाम्ना मुनिवंद्या सरस्वती। इदमन्यन्महाराज! शृण्वाश्चर्यवरं भुवि ॥
क्षतो मंकणको विप्रःकुशाग्रेणेतिनः श्रुतम्। क्षतात्किलकरेतस्य राजञ्शाकरसोऽस्रवत्
स वै शाकरसंदृष्ट्वा हर्षाविष्टःप्रनृत्तवान्। ततस्तस्मिन्प्रनृत्ते तु स्थावरं जंगमं च यत् ॥
प्रानृत्यत जगत्सर्वं तेजसा तस्य मोहितम्। शक्रादिभिस्सुरै राजन्नृषिभिश्च तपोधनैः
विज्ञप्तस्तत्र वै ब्रह्मा नायं नृत्येत्तथा कुरु। आदिष्टो ब्रह्मणा रुद्र ऋषेरर्थे नराधिप ॥
नायं नृत्येद्यथा भीम तथा त्वं वक्तुमर्हसि। गत्वा रुद्रो मुनिं दृष्ट्वा हर्षाविष्टमतीव हि
भो भो विप्रर्षभ त्वं हि नृत्यसे केन हेतुना। नृत्यमानेन भवता जगत्सर्वं च नत्यति

तेनायं वारितः प्राह नृत्यन्वै मुनिसत्तमः॥

मुनिरुवाच।

किं न पश्यसि मे देव कराच्छाकरसोऽस्रवत् ॥ ४० ॥

तं तु दृष्ट्वा प्रनृत्तोऽहं हर्षेण महतावृतः। तं प्रहस्याब्रवीद्देवो मुनिं रागेण मोहितम् ॥
अहं न विस्मयं विप्र गच्छामीह प्रपश्य माम्। एवमुक्तो मुनिश्रेष्ठो महादेवेन कौरव ॥

ध्यायमानस्तदा कोऽयं प्रतिषिद्धोऽस्मि येन हि।
अंगुल्यग्रेण राजेन्द्र स्वांगुष्ठस्ताडितस्तथा ॥ ४३ ॥

ततो भस्मक्षताद्राजन्निर्गतं हिमपांडुरम्। तद्दृष्ट्वा व्रीडितश्चासौ प्राह तत्पादयोःपतन्
नान्यद्देवादहं मन्ये रुद्रात्परतरंमहत्। चराचरस्य जगतो गतिस्त्वमसिशूलधृत् ॥४५ ॥
त्वया सृष्टिमिदं सर्वं वदंतीह मनीषिणः। त्वामेव सर्वं विशति पुनरेव युगक्षये ॥४६॥

देवैरपि न शक्यस्त्वं परिज्ञातुं मया कुतः ॥ त्वयि सर्वे च दृश्यंते सुरा ब्रह्मादयोऽपि ये
सर्वस्त्वमसि देवानां कर्ता कारयिता च यः । त्वत्प्रसादात्सुराःसर्वेभवंतीहाकुतोभयाः
एवंस्तुत्वा महादेवमृषिश्च प्रणतोऽब्रवीत् । भगवंस्त्वत्प्रसादेन तपो न क्षीयतेत्विह ॥
ततो देवःप्रीतमनास्तमृषिं पुनरब्रवीत् । तपस्ते वर्द्धतां विप्र मत्प्रसादात्सहस्रधा ॥५०॥
प्राचीमेवेह वत्स्यामि त्वया सार्द्धमहंसदा । सरस्वती महापुण्या क्षेत्रेचास्मिन्विशेषतः
न तस्य दुर्लभं किंचिदिहलोके परत्र च । सरस्वत्युत्तरे तीरे यस्त्यजेदात्मनस्तनुम्॥५२
प्राचीतटे जाप्यपरो न चेह म्रियते पुनः । अल्पतो वाजिमेधस्य फलमाप्स्यति पुष्कलम्
नियमैश्चोपवासैश्च कर्शयन्देहमात्मनः । जलाहारो वायुभक्षः पर्णाहारश्च तापसः ॥

तथा स्थंडिलशायी च ये चान्ये नियमाःपृथक् ।
करोति यो द्विजश्रेष्ठो नियमांस्तान्व्रतानि च ॥ ५५ ॥

स याति शुद्धदेहश्च ब्रह्मणःपरमं पदम् । तस्मिंस्तीर्थे तु यैर्दत्तं तिलमात्रं तु कांचनम् ॥
मेरुदानसमं तत्स्यात्पुरा प्राह प्रजापतिः । तस्मिंस्तीर्थे तु ये श्राद्धं करिष्यंति हिमानवाः
एकविंशकुलोपेताःस्वर्गं यास्यंति ते नराः । पितॄणां च शुभं तीर्थं पिंडेनैकेन तर्पिताः ॥
ब्रह्मलोकं गमिष्यंति स्वपुत्रेणेह तारिताः। भूयश्चान्नं न चेच्छंति मोक्षमार्गं व्रजंति ते ॥
प्राचीनत्वं सरस्वत्या, यथाभूतं शृणुष्व तत् । सरस्वती पुरा प्रोक्ता देवैःसर्वैः सवासवैः
तटे त्वया प्रयातव्यं प्रतीच्यां लवणोदधेः । वडवाग्निमिमं नीत्वा समुद्रे निक्षिपस्व ह
एवं कृते सुराः सर्वे भवन्ति भयवर्जिताः । अन्यथा वडवाग्निस्तु दहते स्वेन तेजसा ॥
तस्माद्रक्षस्व विबुधा नेतस्माद्‌चिराद्भयात् । मातेव भव सुश्रोणि सुराणामभयप्रदा ॥

एवमुक्ता तु सा देवी विष्णुना प्रभविष्णुना ।
आह नाहं स्वतंत्रास्मि पिता मे व्रियतां स्वराट् ॥ ६४ ॥

तदाज्ञाकारिणी नित्यं कुमारीह धृतव्रत । पित्रादेशाद्विना नाहं पदमेकमपि क्वचित् ॥

गच्छामि तस्मात्कोऽप्यन्य उपायश्चिंत्यतामहो ।
तदाशयं विदित्वाहुस्ते समेत्य पितामहम् ॥ ६६ ॥

नान्येन शक्यते नेतुं वडवाग्निः पितामहः । अदुष्टदोषाम्मुक्त्वैकां कुमारीं तनयां तव ॥

सरस्वतीं समानीय कृत्वांके वरवर्णिनी। शिरस्याघ्राय सस्नेहमुवाचाथ सरस्वतीम् ॥

मां च देवासुराः प्राहुः सत्वं ब्रूहि यशस्विनीम्।
नीत्वा विनिक्षिपेदेनं वाडवं लवणांबुनि ॥ ६६ ॥

पितुर्वाक्यं हि तच्छ्रुत्वा वियुक्ता कुररी यथा। पित्रा तदैव सा कन्या रुरुदे दीनमानसा
शोभते तन्मुखंतस्याःशोकवाष्पाविलेक्षणम्। सितंविकसितं तद्वत्पद्मं तोयकणोक्षितम्
तत्तथाविधमालोक्य पितामहपुरस्सराः। विबुधाः शोकभावस्य सर्वेवंशमुपागताः ॥
संस्तभ्य हृदयं तस्याःशोकसंतापितं तदा। पितामहस्तामुवाच मारोदीर्नास्ति ते भयम्
मानलाभश्च भविता तव देवानुभावतः। नीत्वा क्षारोदमध्ये तु क्षिपस्व ज्वलनं सुते ॥

एवमुक्ता तु सा बाला वाष्पाकुलितलोचना।
प्रणम्य पद्मजन्मानं गच्छाम्युक्तव्रती तु सा ॥ ७५ ॥

माभैरुक्ता पुनस्तैस्तु पित्रा चापि तथैव सा। त्यक्त्वा भयं हृष्टमनाः प्रयातुं समवस्थिता
तस्याःप्रयाणसमये शंखदुंदुभिनिस्वनैः। मंगलानां च निर्घोषैर्जगदापूरितं शुभैः ॥७७॥
सितांबरधरा धन्या सितचंदनमंडिता। शरदंबुजसच्छायतारहारविभूषिता ॥ ७८ ॥
सम्पूर्णचंद्रवदना पद्मपत्रायतेक्षणा। शुभां कीर्तिं सुरेशस्य पूरयन्ती दिशोदश ॥ ७६ ॥
स्वतेजसा तद्धृदयान्निःसृता भासयज्जगत्। अनुव्रजन्ती तां गंगा तयोक्ता वरणिनी ॥
द्रक्ष्यामि त्वां पुनरहं कुत्र यातासि मे सखि। एवमुक्ता तया गंगा प्रोवाच मधुरांगिरम्
यदैवायास्यसि प्राचीं दिशं मां पश्यसे शुभे। विबुधैस्त्वं परिवृता दर्शनं स्तव संश्रये

उदङ्मुखी तदा भूत्वा त्यज शोकं शुचिस्मिते।
अहं चोदङ्मुखी पुण्या त्वं तु प्राची सरस्वती ॥ ८३ ॥

तत्र क्रतुशतं पुण्यं स्नानदानेन सुव्रते। श्राद्धदाने तथा नित्यं पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥ ८४
ये करिष्यंति मनुजा विमुक्तास्त ऋणैस्त्रिभिः। मोक्षमार्गंगमिष्यन्तिविचारोनात्रविद्यते
तामुवाच ततो गङ्गा पुनर्दर्शननमस्तु ते। गच्छ स्वमालयं भद्रे स्मर्तव्याहं त्वयानघे ॥

यमुनापि तथैवं सा गायत्री च मनोरमा।
सावित्र्या सहिताः सर्वाः सखीं संप्रेषयंस्तथा ॥ ८७ ॥

ततो विसृज्य तान्देवान्नदीभूता सरस्वती । उत्तंकस्याश्रमपद उद्भूता सा मनस्विनी ॥
अधस्तात्प्लक्षवृक्षस्य अवरोप्य च तां तनुम् । अवतीर्णामहाभागा देवानां पश्यतां तदा
विष्णुरूपस्तरुः सोऽत्र सर्वदेवैस्तु वन्दितः । संसेव्यश्चद्विजैर्नित्यं फलहेतोर्महोदयः ॥
अनेकशाखावितत्श्चतुर्मुख इवापरः । तत्कोटरकुटीकोटिप्रविष्टानां द्विजन्मनाम् ॥ ६१॥
श्रूयंते विविधा वाचः सुराणां रक्तचेतसाम् । वनस्पतिरपुष्पोऽपि पुष्पितश्चोपलक्ष्यते
जातीचम्पकवत्पुष्पैः शाखालग्नैः शुकैः शुभैः । केतकीव बलाकाभिरशोभत सरिद्वरा ॥
कोकिलाभिस्समालेव फेनकैःपुष्पितेव सा । हरेणेव यथा गङ्गा प्लक्षेणैव हि सा तथा
तत्रांभस्था तदा देवं प्रोवाचाथ जनार्दनम् । समर्पयस्व तं वह्निं देवादेशं करोम्यहम् ॥

एवमुक्तेन सा तेन प्रत्युक्ता विष्णुना तदा ।
न ते दाहभयं त्याज्यस्त्वया यं वह्निराट् स्वयम् ॥ ६६ ॥

पश्चिमं सागरं नेतुं वाडवज्वलनं शुभे । एवं क्रमेण गच्छंत्या तदापः प्राप्स्यते शुभे ॥
ततस्तं शातकुंभस्थं कृत्वाऽसौ वडवानलम् । समर्पयत गोविन्दः सरस्वत्या महोदरे ॥
सा तं गृहीत्वा सुश्रोर्णा प्रतीच्यभिमुखी ययौ । अंतर्द्धानेन संप्राप्ता पुष्करं सा महानदी
मर्यादापर्वते तस्मिन्सम्भूता विमला सरित् । पुष्करारण्यं विपुलं सुरसिद्धनिषेवितम्
पितामहेन यत्रासीद्यज्ञसत्रं निषेवितम् । सिद्ध्यर्थं मुनिमुख्यानामागताऽसौ महानदी ॥

येषु यत्र कृतो होमः कुंडेष्वासीद्विरिंचिना ।
तानि सर्वाणि संप्लाव्य तोयेनाप्युद्गता हि सा ॥ २०२ ॥

तत्र क्षेत्रे महापुण्या पुष्करे सा तथोत्थिता । तेन तत्पूरणं प्रोक्तं वायुनाजगदायुषा ॥
सापि तत्क्षेत्रमासाद्य पुण्यंपुण्या महानदी । सरस्वतीस्थितादेवी मर्त्यानां पापनाशिनी
तत्र ये शुभकर्माणःपुष्करस्थां सरस्वतीम् । पश्यंति ते न पश्यंति सुघोरांतामधोगतिम्
यः पुनस्तत्र भावेन नरःस्नानं समाचरेत् । स ब्रह्मलोकमासाद्य ब्रह्मणा सह मोदते ॥
यस्तुदद्यात्तत्र दधिब्राह्मणाय मनोरमम् । सोऽप्यग्निलोकमासाद्यभुंक्तेभोगान्सुशोभनान्
वरं प्रावरणं योऽपि भक्त्यादद्याद्द्विजातये । सोऽपि सहस्त्रदानस्य फलं दशगुणंलभेत्

ज्येष्ठं कुंडे नरःस्नात्वा यःसंतर्पयते पितॄन् ।

स तानुद्धरते सर्वान्नरकादपि शुद्धधीः ॥ २०६ ॥

क्षेत्रे पैतामहे पूते पुण्यां प्राप्य सरस्वतीम् । नरः किं प्रार्थयेदन्यत्तीर्थं ब्रह्मसुतोऽब्रवीत्

तस्मात्सर्वेषु तीर्थेषु स्नातः प्राप्नोति यत्फलम् ।

तत्सर्वं प्राप्नुयान्मर्त्यो ज्येष्ठकुंडे सकृत्प्लुतः ॥ २११ ॥

किमत्र बहुनोक्तेन क्षेत्रं तीर्थं गतिश्शुभा । येनैतत्त्रितयं प्राप्तं प्राप्ता तेन गतिः परा ॥

काले क्षेत्रे तथा तीर्थे स्नात्वा हुत्वापि तत्र यः । प्रयच्छते द्विजायार्थं सोऽनन्तं सुखमश्नुते

कार्त्तिके मासि शुक्ले च वैशाखे शशिभूषणे । चंद्रसूर्योपरागे च काले च कुरुजांगले ॥

क्षेत्रेष्वेतेषु तीर्थानि यान्युक्तानि मुनीश्वरैः । तेषां पुण्यतमं तीर्थमिदमाह पितामहः ॥

कुण्डे तु मध्यमे स्नात्वा कार्तिक्यां यः पुमान्द्विजे ।

प्रयच्छते चापि द्रव्यं सोऽश्वमेधमवाप्नुयात् ॥ २१६ ॥

एवं कनिष्ठकेऽप्यत्र कुंडे स्नात्वा समाधिना ।

यः प्रयच्छति विप्राय सुरूपामपि शालिकाम् ॥ २१७ ॥

स प्रयाति नरः क्षिप्रमग्निलोकं मनोरमम् । त्रिःसप्तकुलसंयुक्तो भुंक्ते तत्र महाफलम् ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गमनाय मतिःस्थिरा । पुरुषेण तु कर्तव्या पुष्करावाप्तये शुभा ॥

पुष्करारण्यमासाद्य प्राची यत्र सरस्वती । मतिः स्मृतिःशुभा प्रज्ञा मेधाबुद्धिर्दया परा

सरस्वत्यास्तु पर्यायाष्षडेते संप्रकीर्तिताः । ततःप्रभृति यत्रासौ प्राचीभूता सरस्वती ॥

तत्रस्थं तज्जलं येऽपि पश्यंति तटसंस्थिताः । तेऽप्यश्वमेधस्य फलंलभंते नात्रसंशयः ॥

योऽवतीर्य पुनस्तत्र कश्चित्स्नानं समाचरेत् ।

नरः समाधियुक्तो वै ब्रह्मणोऽनुचरो भवेत् ॥ २२३ ॥

शाकादिनापि हि पितॄन्यस्तत्रार्चयतेनरः । सोऽप्येति विपुलान्भोगांस्तेषामेवानुभावतः

येपुनर्विधिना तत्र श्राद्धंकुर्वंति मानवाः । ते नयंति पितॄन्स्वर्गं नरकादपि दुःखदात् ॥

तृप्यंति पितरस्तस्य यस्तत्रकुशमिश्रितम् । स्नात्वाप्रयच्छते तोयं पूतंतेषांतिलान्वितम्

तेऽपि तुष्टाः पुनस्तस्य प्रयच्छन्त्यमितं फलम् ।

सर्वेषामेवतीर्थानामिदमेवाधिकं स्मृतम् ॥ २२७ ॥

आदितीर्थमिदं तस्मात्तीर्थानां भुवि विश्रुतम् ।
धर्मापवर्गयोः क्रीड़ानिधिभूतमवस्थितम् ॥ २२८ ॥
सरस्वत्या पुनश्चैव समेतं गुणवत्तरम् । धर्मार्थकाममोक्षाणां चतुर्णामपि दायकम् ॥
येऽप्यत्र मलनाशाय पुमांसो विविशुर्जलम् । गोप्रदानसमं तेषां सुखेनैव फलं भवेत् ॥
सुवर्णदानेन सममेवमाहुर्मनीषिणः । तर्पणात्पिण्डदानाच्च नरकेष्वपि संस्थिताः ॥
स्वर्गं प्रयान्ति पितरस्तत्र पुत्रेण तारिताः । पुष्करेऽपि सरस्वत्यां ये पिबंति जलं जनाः
ते लभन्तेऽक्षयाँल्लोकान्ब्रह्मविश्वेशवंदितान् ।
स्वर्गनिश्रेणिका भूता पुष्करे च सरस्वती ॥२३३ ॥
सा पुण्यवद्भिस्संप्राप्तुं पुंभिश्शक्या महानदी । मुनिभिर्धर्मतत्त्वज्ञैस्तत्र तत्र निषेविता
तस्मात्सर्वत्र सा देवी पवित्रासर्वतःस्थिता । पुष्करे तु विशेषेण पूतात्पूततमा हि सा
नदी सरस्वती पुण्या सुलभा जगति स्थिता । दुर्लभा सा कुरुक्षेत्रे प्रभासे पुष्करे तथा
तत्तीर्थं सर्वतीर्थानां प्रवरं विहितं भुवि । धर्मार्थकाममोक्षाणां चतुर्णामपि साधकम्
प्राचींसरस्वतीं प्राप्ययोऽन्यत्तीर्थं हि मार्गते । स करस्थं समुत्सृज्यह्यमृतंविषमिच्छति
ज्येष्ठे ज्येष्ठा प्रयागस्य मध्यमे मध्यमा स्मृता ।
प्रदक्षिणं ततो गच्छेत्कनीयांसं विचक्षणः ॥ २३६ ॥
त्रिष्वप्येतेषु स्नायीत कुर्याच्चापि प्रदक्षिणम् ।
प्रयच्छति पितृभ्यो यस्तोयं तेषां तिलान्वितम् ॥ २४० ॥
तेऽपितुष्टाःपुनस्तस्य प्रयच्छंत्यमितंफलम् । यःस्नात्वाप्रयतोनित्यंततः पश्येत्पितामहम्
अनुलोमविलोमाभ्यां तथाव्यस्तसमस्तयोः । स्नातव्यंपुष्करेनित्यंब्रह्मलोकमभीप्सिता
त्रीणिशृङ्गाणिशुभ्राणित्रीणिप्रस्रवणानि च । पुष्कराणिप्रसिद्धानि नविद्मस्तत्रकारणम्
कनीयांसं मध्यमं च तृतीयं ज्येष्ठपुष्करम् ।
शृंगशब्दाभिधानानि शुभप्रस्रवणानि च ॥ २४४ ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां संकल्पैरफलं नरः ।
यस्तत्र संत्यजेद्देहं मोक्षं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ २४५ ॥

प्रयतः संयतस्तस्यां स्नात्वा दद्याद्द्विजे शुभाम् ।
गामेकां मन्त्रपूतां च लोकानाप्नोति सोऽक्षयान् ॥ २४६ ॥

किमत्र बहुनोक्तेन रात्रावपि हि योऽर्थिने। अर्थं प्रयच्छते स्नात्वासोऽनन्तं सुखमश्नुते
तत्र दानं प्रशंसंति तिलानां मुनिसत्तमाः । कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां स्नानं च विहितं सदा

पिण्याकेन गुडेनापि पिण्डं योऽत्र प्रयच्छति ।
पितॄणां प्रयतो भूत्वा पितॄलोकं स यच्छति ॥ २४९ ॥
पुष्करारण्यमासाद्य पुनस्तस्मात्सरस्वती ।
अन्तर्धानं गता गन्तुं प्रवृत्ता पश्चिमामुखी ॥ २५० ॥

नातिदूरे ततस्तस्य पुष्करस्य सुशोभना । खर्जूरवनमासाद्य फलपुष्पोपशोभितम् ॥
तत्रोषित्वा पुनर्देवी वने मुनिमनोरमे । सर्वर्तुकुसुमाकीर्णे सिद्धचारणसेविते ॥ २५२॥
नंदानामसरिच्छ्रेष्ठा त्रिषु लोकेषु विश्रुता । मीननक्रझषोपेता विमलोदकपूरिता ॥

सूत उवाच ।

अथ देवव्रतःप्राह किमन्यासा सरिद्वरा । एतन्मे कौतुकं ब्रह्मन्नंदाशब्दा सरस्वती ॥
यथाभूता येन कृता कारणेन सरिद्वरा । एवमुक्ते पुलस्त्यःस भीष्मायैतत्पुरातनम् ॥
आख्यातुमुपचक्राम नन्दा नाम यतस्स्मृता। क्षत्त्रव्रतधरो नित्यमासीद्राजा प्रभंजनः ॥
प्रवृत्तोऽसौ मृगान्हंतुं वने तस्मिन्महाबलः । स ददर्श ततस्तस्मिन्मृगींगुल्मांतरेस्थिताम्

मार्गणेन सुतीक्ष्णेन तां विव्याध पुरोगताम् ।
सा विलोक्य दिशः सर्वास्तं दृष्ट्वा शरपाणिनम् ॥ २५८ ॥
आह किं ते कृतं मूढ त्वयैतत्कर्म दुष्करम् ।
स्तनं तावत्प्रयच्छामि सुतस्याधोमुखी स्थिता ॥ २५९ ॥

मांसलोभेन विद्धाहं तरसा ह्यकुतोभया । विश्वस्तं गुप्तवत्सं च गूढमैथुनमागतम् ॥२६०
एवंविधं मृगं राजन्नहन्यात्प्राङ्मया श्रुतम् । स्तनं तु तनयस्यास्य प्रयच्छंती त्वयाहता

बाणेनाशनिकल्पेन निर्दोषा वनमागता ।
तस्मात्त्वमपि दुर्बुद्धे क्रव्यादत्वमवाप्स्यसि ॥ २६२ ॥

वनेऽस्मिन्कंटकाकीर्णं व्याघ्ररूपं त्वमाप्नुहि। शापप्रदानं श्रुत्वैवं स राजा पुरतःस्थितः
प्रोवाच प्रांजलिर्भूत्वा तां मृगीं व्यथितेंद्रियः। स्तनं तु तनयस्येह प्रयच्छंती न मे मता॥
अज्ञानेन हता भद्रे प्रसीद सुसमाधिना। व्याघ्ररूपमहं त्यक्त्वाप्राप्स्यामि मानुषं कदा
एवंविधस्य शापस्य विमोक्षं शंस मे मृगि। एवमुक्ते मृगी तस्य प्रोवाच वचनं शुभम्॥
राजन्नब्दशतांते तु शापस्यागतया गवा। नंदया सह संवादमासाद्यांतो भविष्यति॥
मृग्योक्ते वचने राजा व्याघ्र एवाभवत्तदा। नखदंष्ट्रायुधोपेतो व्याघ्ररूपोऽतिभीषणः॥
तत्रासौ भक्षयन्नास्ते मृगान्हत्वा चतुष्पदः। द्विपदानपि तत्रस्थान्कालेन क्रमयोजितान्
एवं तत्र वने तस्य संवत्सरशतं गतम्। आत्मानं निंदमानस्य मृगमांसानि खादतः॥
कदाहं मानुषं भावं गमिष्यामीदृशं पुनः। कुत्सितं न करिष्यामि वियोनिकरणं महत्
कुर्वता मांसलोभेन मृगयां परिधावता। आपदासहितं प्राप्तं मानुषाणां भयावहम्॥
दर्शनं दुःखदं मह्यं मृगाणां मानुषैः सह। पापेन पापतां नीतो ह्यपापेऽपि सतांकुले॥

उत्पन्नो विकृतिं नीतः पश्य कालस्य पर्ययम्।
तस्मान्मे सुकृतं नास्ति हिंसाप्येकं विगर्हिता॥ २७४॥
तया तु प्राप्यते दुःखं न च मोक्षो भविष्यति।
कथं मे भविता मोक्षः कथं सत्या मृगी भवेत्॥ २७५॥

गते वर्षशते तस्य वसतस्तद्वने तदा। आयातं गोकुलं काले यवसोदककारणात्॥
गोवाटवाटीसंस्थानं तत्तत्र समवस्थितम्। वनोपकण्ठे मंथानरवेणापूरितं च यत्॥
क्षीबैर्गोपैःसमाकीर्णं पादपैरपि तद्वनम्। निशि वंशरवोपेतं गोपीनां च शुभप्रदम्॥
एवं तु वसतस्तस्य खर्जूरवनसंसदि। हृष्टा तुष्टा च पुष्टा च नंदा वै नाम नामतः॥

गोमण्डलस्य सा मुख्या हंसवर्णा घटस्रवा।
दीर्घघोणा विभक्तांगी वंधुरांगी तनुत्वचा॥ २८०॥

नीलकण्ठा शुभग्रीवा घण्टाली मधुरस्वना। सा च यूथस्य सर्वस्य पुरश्चरति निर्भया॥
घासस्थानं चरेच्छन्नं गत्वैका च यथासुखम्। यथेष्टकामा सुरभिश्छन्नं चरति वै तृणम्
रोहितो नाम तत्रान्यः पर्वतः सरितस्तटे। अनेककन्दरदरीगुहासत्त्वनिषेवितः॥२८३॥

तस्य पूर्वोत्तरे भागे घोरे तृणसमाकुले । संकटे विषमे दुर्गे भैरवे लोमहर्षणे ॥ २८४॥
मृगसिंहसमाकीर्णे बहुश्वापदसेविते । वल्लीवृक्षादिगहने शिवाशतनिनादिते ॥२८५ ॥
दुर्गेऽस्मिन्वसते रौद्रः कामरूपी भयंकरः । द्वीपी शोणितदिग्धांसो घोरदंष्ट्रो नखायुधः
नंदो नाम स धर्मात्मा स च गोपीहिते रतः । अच्छिन्नाग्रैस्तृणैर्दीर्घैर्गोधनं परिरक्षति
तस्य यूथपरिभ्रष्टा सा नंदा तृणलिप्सया । चरंती व्याघ्रपुरतः सा धेनुः प्रत्युपस्थिता

अभ्यद्रवच्च तां द्वीपी तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ।
त्वमद्य विहितो भक्षः स्वयं प्राप्तासि धेनुके ॥ २८६ ॥

द्वीपिनश्च वचः श्रुत्वा निष्ठुरं रोमहर्षणम् । शुक्ररूपान्वितं बालं भद्रमिंदुसमप्रभम् ॥
वत्सं स्मरति सा धेनुः स्नेहाक्ता गद्गदाक्षरम् । दह्यंती पुत्रशोकेन नंदा सा पुत्रवत्सला
रुदंती करुणं चैव निराशा पुत्रदर्शने । द्वीपी दृष्ट्वा तु तां धेनुं क्रंदमानां सुदुःखिताम् ।
उवाच वचनं घोरं धेनुके किं प्ररुद्यते । दैवात्सुखोपपन्नासि भक्षस्त्वं मे यदृच्छया ॥

रुदंत्या वा हसंत्या वा तवात्तं जीवितं भवेत् ।
विहितं भुज्यते लोके स्वयं प्राप्तासि धेनुके ॥ २९४ ॥
मृत्युस्ते विहितोऽद्यैव वृथा किमनुशोचसि ।
पप्रच्छ तां पुनर्द्वीपी किमर्थं रुदितं त्वया ॥ २९५ ॥

कौतुकं चात्र मे जातं महन्मे कथयस्व वै । व्याघ्रस्य वचनं श्रुत्वा नंदावाक्यमथाब्रवीत्
क्षंतुमर्हसि मे नाथ कामरूपिन्नमोऽस्तु ते । त्वां समासाद्य लोकस्य परित्राणं न विद्यते
जीवितार्थं न शोचामि प्राप्तव्यं मरणं मया । जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्ममृतस्यच
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न शोचामि मृगाधिप । देवैरपि यथा सर्वैर्मर्तव्यमवशैर्ध्रुवम् ॥२९९

तस्मात्तु नाहमेवैका व्याघ्र शोचामि जीवितम् ।
किंतु स्नेहेन वै साधो दुःखेन रुदितं मया ॥ ३०० ॥

अस्ति मे हृदि संतापस्तं च त्वं श्रोतुमर्हसि । प्रथमे वयसि प्राप्ते प्रसूताऽहं मृगाधिप ॥
इष्टः प्रथमजातश्च सुतस्तु मम बालकः । क्षीरपायी च मे वत्सस्तृणं नाद्यापि जिघ्रति
स च गोपकुले बद्धः क्षुधार्तो मामवेक्षते । तमहं चानुशोचामि कथं जीविष्यते सुतः ॥

तस्येच्छामि स्तनं दातुं पुत्रस्नेहवशं गता। पाययित्वा स्तनं वत्समवलिह्य च मूर्द्धनि
सखीनामर्पयित्वा तु संदिश्य च हिताहितम्।
पुनः प्रत्यागमिष्यामि यथेष्टं भक्षयिष्यसि ॥ ३०५ ॥
स नंदाया वचः श्रुत्वा मृगेंद्रः पुनरब्रवीत्। किंते पुत्रेण कर्तव्यं मरणं किं न बुध्यसे॥
त्रस्यंति सर्वभूतानि म्रियंते मां निरीक्ष्य च। त्वं पुनः कृपयाविष्टा पुत्र पुत्रेति भाषसे
न पुत्रा न तपोदानं न माता नपिता गुरुः। शक्नुवंति परित्रातुं नरं कालप्रपीडितम्॥
कथं त्वं गोकुलं गत्वा गोपीजनसमाकुलम्। वृषभैर्नादितं दिव्यं बालवत्सविभूषितम्
भूषणं देवलोकस्य स्वर्ग तुल्यं न संशयः। नित्यं प्रमुदितं दिव्यं सर्वदेवप्रपूजितम्॥
यत्पवित्रं पवित्राणां मंगलानां च मंगलम्।
यत्तीर्थं सर्वतीर्थानां धन्यानां धन्यमुत्तमम्॥ ३११ ॥
समस्तगुणसंपन्नमीश्वरायतनं महत्। यत्ख्यातं सर्वतीर्थानां भूमिस्वर्गमनुत्तमम्॥
गोपीमंथनशब्देन बालवत्सरवेण च। गवां हुंकारशब्देन अलक्ष्मीः प्रतिहन्यते ॥३१३॥
यत्र वत्साश्च हुंकारं करुणं मातृकांक्षया। यद्गोपैः पालितं शूरैर्बाहुयुद्धकृतश्रमैः॥
प्रगीतनृत्यसंलापं नंदितास्फोटनादितम्। इतस्ततः स्थितैर्वत्सैर्नर्द्यमानं समंततः ॥३१५
सरोवद्राजते गोष्ठं चलद्भिरिव पंकजैः। तं श्रीनिकेतनं सौम्यं हृष्टपुष्टजनाकुलम्॥
गोलोक प्रतिमं दृष्ट्वा कथं प्रत्यागमिष्यसि।
पंचभूतानि मे भद्रे पिबंतु रुधिरं तव ॥ ३१७ ॥
न निर्विण्णानि भूतानि वाङ्मात्रेण करोम्यहम्।

नंदोवाच।

एवं प्रथमवत्साया मृगेंद्र शृणु मे वचः ॥ ३१८ ॥
दृष्ट्वा सखीं सुतं बालं गोपांश्च प्रतिपालकान्। गोपीजनमुपामन्त्र्य जननीं च विशेषतः
शपथैरागमिष्यामि मन्यसे यदि मुञ्चमाम्। यत्पापं ब्रह्मवध्यायां मातापितृवधेषुच॥
तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः। यत्पापं लुब्धकानां तु म्लेच्छानां गरदायिनाम्
तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः। गोषु विघ्नांश्च ये कुर्युः स्वपंतीं ताडयंति च॥

तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः । सकृद्दत्त्वा तु यः कन्यां द्वितीये दातुमिच्छति
तस्य पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः । यस्त्वनर्हान्बलीबर्दान्विपमे वाहयेत्पुमान् ॥
कथायां कथ्यमानायां विघ्नं कारयते तु यः । तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः
गृहे यस्यागतं मित्रं निराशं प्रतिगच्छति । तस्य पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥
इत्येतैः पातकैर्घोरैरागमिष्याम्यहं पुनः । बुद्ध्वा संप्रत्ययं द्वीपी पुनर्वचनमब्रवीत् ॥

व्याघ्र उवाच ।

संजातः प्रत्ययोऽस्माकं शपथैर्धेनुके तव । कदाचिन्मन्यसे गत्वा मूर्खोऽयं वञ्चितां मया
अत्रापि केचिद्वक्ष्यंति शपथे नास्ति पातकम् । कामिनीषु विवाहेषु गवांमुक्तौ तथैव च

प्राणत्यागे समुत्पन्ने श्रद्धातव्यं न च त्वया ।
लोकेऽस्मिन्नास्तिकाः केचिन्मूर्खाः पंडितमानिनः ॥ ३३० ॥

भ्रामयिष्यंति ते चित्रं चक्रारूढमिव क्षणात् । कुतर्कहेतुवृत्तांतैरज्ञानावृतचेतसः ॥३३१॥
मोहयंति नराः क्षुद्रा आगमार्थविशारदाः । अतथ्यान्यपि तथ्यानि दर्शयंत्यतिपेशलाः ॥
स मे निम्नोन्नतानीवचित्रकर्मविदोजनाः । प्रायःकृतार्थो लोकोऽयं मन्यतेनोपकारिणम्
वत्सः क्षीरक्षयं दृष्ट्वा परित्यजतिमातरम् । न तं पश्यामि लोकेऽस्मिन्कृते प्रतिकरोति यः

सर्वस्य हि कृतार्थस्य मतिरन्या प्रवर्तते ।
ऋषिदेवासुरनरैः शपथाः कार्यसिद्धये ॥ ३३५ ॥

कृताः परस्परं पूर्वं तान्न मन्यामहे वयम् । सत्येनापि शपेद्यस्तु देवाग्निगुरुसन्निधौ ॥
तस्य वैवस्वतो राजा धर्मस्यार्द्धं निकृन्तति । मा ते बुद्धिर्भवेदेवं शपथैरेष वंचितः ॥

त्वयैव दर्शितं सर्वं यथेष्टं कुरु सांप्रतम् ।

नंदोवाच ।

एवमेव महासाधो कस्त्वां वञ्चयितुं क्षमः ॥ ३३८ ॥
आत्मैव वंचितस्तेन यः परं वञ्चयिष्यति ।

द्वीप्युवाच ।

धेनुके पश्य गच्छ त्वं पुत्रकं पुत्रवत्सले ॥ ३३९ ॥

पाययित्वा स्तनं वत्समवलिह्य च मूर्द्धनि । मातरं भ्रातरं दृष्ट्वा सखीस्वजनबांधवान् ॥
सत्यमेवाग्रतः कृत्वा शीघ्रमागमनं कुरु । एवं सा शपथं कृत्वा धेनुर्वै सत्यवादिनी ॥
अनुज्ञाता मृगेंद्रेण प्रयाता पुत्रवत्सला । अश्रुपूर्णमुखी दीना वेपमाना सुदुःखिता ॥
हुंभारवं प्रमुंचंती पतिता शोकसागरे । करीव चरणग्राहं गृहीतः सलिलाशये ॥३४३॥

अशक्ता स्वपरित्राणे विलपंती मुहुर्मुहुः ।
सा तत्र गोकुलं प्राप्ता हरिन्नद्यास्तटे स्थितम् ॥ ३४४ ॥

श्रुत्वा वत्सं तु क्रोशंतं पर्यधावत संमुखी । उपसृप्य च तं बालं बाष्पपर्याकुलेक्षणम्
संप्राप्य मातरं वत्सःशंकितःपरिपृच्छति । न ते पश्याम्यहं स्वास्थ्यं धैर्यं नैवाद्य लक्षये

उद्विग्ना चापि ते दृष्टिर्भीता चातीव लक्ष्यसे ।

नन्दोवाच ।

पिब पुत्र स्तनं मेऽद्य कारणं यदि पृच्छसि ॥ ३४७ ॥

अशक्ताहं तवाख्यातुं कुरु तृप्तिं यथेप्सिताम् । अपश्चिमं तु ते पुत्र दुर्लभं मातृदर्शनम् ॥
एकाहमद्य मे पीत्वा प्रभाते कस्य पास्यसि। त्वां त्यक्त्वा पुत्रगंतव्यं शपथैरागता ह्यहम्

क्षुत्क्षामस्य च व्याघ्रस्य दातव्यमात्मजीवितम् ।
नंदायाश्च वचः श्रुत्वा वत्सो वचनमब्रवीत् ॥ ३५० ॥

वत्स उवाच ।

अहं तत्र गमिष्यामि यत्र त्वं गंतुमिच्छसि। श्लाघ्यंममापि मरणं त्वया सह न संशयः
एकाकिनापि मर्तव्यंमयार्तेन त्वया विना । यदि मांसंहितं मातर्वने व्याघ्रो हनिष्यति
यागतिर्मातृभक्तानां ध्रुवं सा मे भविष्यति। तस्माद्वश्यंयास्यामि त्वया सह न संशयः
अथवा तिष्ठ मातस्त्वं शपथाः संतु ते मम। जनन्या च वियुक्तस्यजीवितेर्किं प्रयोजनम्
अनाथस्यवनेनित्यं कोमे नाथोभविष्यति । नास्तिमातृसमोबन्धुर्बालानांक्षीरजीविनाम्

नास्ति मातृसमो नाथो नास्ति मातृसमा गतिः ।
नास्ति मातृसमः स्नेहो नास्ति मातृसमंसुखम् ॥ ३५६ ॥

नास्ति मातृसमो देव इह लोके परत्र च । एवं वै परमोधर्मः प्रजापतिविनिर्मितः ॥

ये तिष्ठंति सदा पुत्रास्ते यांति परमां गतिम् ।

नंदोवाच ।

ममैव विहितो मृत्युर्नत्वं पुत्रागमिष्यसि ॥ ३५८ ॥

न चायमन्यजीवानां मृत्युः स्यादन्यमृत्युना । अपश्चिममिमम्पुत्र मातृसंदेशमुत्तमम् ॥
अत्रातिष्ठस्व मद्वाक्यात्ततःशुश्रूषणं पुनः । जले स्थले च विचरन्प्रमादं तात मा कुरु ॥
प्रमादात्सर्वभूतानि विनश्यंति न संशयः । न च लोभेनचर्तव्यंविषमस्थं तृणं क्वचित् ॥
लोभाद्विनाशः सर्वेषामिहलोके परत्र च । समुद्रमटवीं पुत्र विशंति लोभमोहिताः ॥

लोभादकार्यमत्युग्रं विद्वानपि समाचरेत् ।

लोभात्प्रमादाद्विस्रंभात्त्रिभिर्नाशोभवेन्नृणाम् ॥ ३६३॥

तस्माल्लोभं न कुर्वीत न प्रमादं न विश्वसेत् । आत्मा हि सततं पुत्र रक्षितव्यः प्रयत्नतः
सर्वेभ्यः श्वापदेभ्यश्च म्लेच्छचोरादिसंकटात् । तिरश्चां पापयोनीनामेकत्र वसतामपि
विपरीतानि चित्तानि विज्ञायंते न पुत्रक । नखीनां च नदीनां च शृङ्गिणां शस्त्रधारिणाम्

न विश्वासस्त्वया कार्यः स्त्रीणां प्रेष्यजनस्य च ।

न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत् ॥ ३६७ ॥

विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति ।

न विश्वसेत्स्वदेहेऽपि बलिष्ठे भीतचेतसि ॥ ३६८ ॥

वक्ष्यंति गूढमत्यर्थं सुप्तं मत्तं प्रमादतः । गंधः सर्वत्र सततमाघ्रातव्यः प्रयत्नतः ॥३६९॥
गावः पश्यंति गंधेन राजानश्चारचक्षुषा । नैकस्तिष्ठेद्वने घोरे धर्ममेकं च चिंतयेत् ॥
न चोद्वेगस्त्वयाकार्यःसर्वस्य मरणंध्रुवम् । यथाहिपथिकःकश्चिच्छायामाश्रित्य तिष्ठति
विश्रम्य च पुनर्याति तद्वद्भूतसमागमः । पुत्र नित्यं जगत्सर्वं तत्रैकः शोचसे कथम् ॥

तावत्त्वं शोकमुत्सृज्य मद्वाक्यमनुपालय ।

शिरस्याघ्राय तं पुत्रमवलिह्य च मूर्द्धनि ॥ ३७३ ॥

शोकेन महताविष्टा बाष्पव्याकुललोचना । विनिःश्वसंती नागीव दीर्घमुष्णं मुहुर्मुहुः ॥
पुत्रहीनं जगच्छून्यं प्रपश्यंतीव साऽभवत् । महापंकनिमग्नेव तिष्ठन्ती चावसीदती ॥

विलप्य नंदिनीपुत्रमुवाचेदं पुनर्वचः । नास्ति पुत्रसमः स्नेहो नास्ति पुत्रसमं सुखम् ॥
नास्ति पुत्रसमा प्रीतिर्नास्ति पुत्रसमागतिः । अपुत्रस्य जगच्छून्यमपुत्रस्य गृहेऽसुखम्
पुत्रेण लभते लोकमपुत्रो नरकं व्रजेत् । लोको वदति वाक्यानि चंदनं किल शीतलम्
पुत्रगात्रपरिष्वंगश्चंदनाद्‌तिशीतलः । इति पुत्रगुणानुक्त्वा निरीक्ष्य च पुनः पुनः॥३७९

स्वमातरं सखीर्गोपीस्त्वरमाणा च पृच्छति ।

यूथस्याग्रे चरंतीं मामाससाद मृगाधिपः ॥ ३८० ॥

मुक्ताऽहं तेन शपथैः पुनर्यास्यामि त त्रवै । सुतं च मातरं चैव सखीर्द्रष्टुं च गोकुलम्
आगता सत्यवाक्येन पुनर्यास्यामि तत्र वै । मातः क्षमस्व तत्सर्वं दौःशील्यादि कृतं मम
बालस्तवायं दौहित्रः किमत्रान्यद्‌ब्रवीम्यहम् । विपुले चंपके मातर्भद्रे सुरभि मानिनि ॥
वसुधारे प्रियानंदे महानंदे घटस्रवे । आज्ञानाज्ज्ञानतो वापि यदुक्तं किंचिदप्रियम् ॥

तत्क्षमध्वम्महाभागा यच्चान्यच्च कृतं मया ।

सर्वाःसर्वगुणोपेताः सर्वा लोकस्य मातरः ॥ ३८५ ॥

सर्वाःसर्वप्रदा नित्यं रक्षध्वं मम बालकम् । अनाथं विकलं दीनं रक्षध्वं मम पुत्रकम्
मातृशोकाभिसंतप्तं भगिन्यःपालयिष्यथ । भगिनीनामयं पुत्रो ह्यर्पितस्स्वसुतो मया ॥

पाल्यो बालश्च सर्वाभिः पोष्यः पाल्यश्च पुत्रवत् ।

तस्मादनाथमबलं पुत्रवत्पालयिष्यथ ॥ ३८८ ॥

क्षमध्वं च महाभागा यास्येऽहं सत्यसंश्रया । न चिंतामहती कार्या सखीभिश्चकथंचन
प्रथमस्यास्य जातस्य स्थितं मरणमग्रतः । श्रुत्वा तु नंदावचनं माता सख्यश्चदुःखिताः
विषादं परमं जग्मुरिदमूचुश्च विस्मिताः । अहोऽत्र महदाश्चर्यं यद्व्याघ्रवचनं त्वया ॥
प्रकर्तुमुद्यतं भीमं नंदा त्वं सत्यवादिनी । शपथैः सत्यवाक्येन वंचयित्वा महाभयम् ॥
नाशनीयं प्रयत्नेन न गंतव्यं कथंचन । नंदे न चैव गंतव्यमधर्मं क्रियते त्वया ॥३९३ ॥

यद्बालं स्वसुतं त्यक्त्वा सत्यलोभेन गम्यते ।

अत्र गाथा पुरा प्रोक्ता ऋषिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ ३९४ ॥

प्राणत्यागे समुत्पन्ने शपथैर्नास्ति पातकम् । उक्त्वाऽनृतं भवेद्यत्र प्राणिनां प्राणरक्षणम्

अनृतं तत्र सत्यं स्यात्सत्यमप्यनृतं भवेत्। कामिनीषु विवाहेषु गवां मुक्तौ तथैव च

ब्राह्मणानां विपत्तौ च शपथैर्नास्ति पातकम्।

नंदोवाच।

परेषां प्राणरक्षार्थं वदाम्येवानृतं वचः॥ ३९७॥

नात्मार्थमुत्सहे वक्तुं जीवितार्थे कथंचन। एकः संश्लिष्यते गर्भे मरणे भरणे तथा॥
भुंक्ते चैकः सुखंदुःखमतः सत्यं वदाम्यहम्। सत्येप्रतिष्ठिता लोका धर्मः सत्येप्रतिष्ठितः
उदधिस्सत्यवाक्येन मर्यादां न विलंघते। विष्णवे पृथिवीं दत्त्वाबलिः पातालमाश्रितः
छद्मनापिबलिर्बद्धः सत्यवाक्यं न चात्यजत्। प्रवर्धमानः शैलेन्द्रः शतःश्रृङ्गः समुत्थितः

सत्येन संस्थितो विंध्यः प्रवन्धं नातिवर्तते।

स्वर्गापवर्गनरकाः सत्यवाचि प्रतिष्ठिताः॥ ४०२॥

यस्तु लोपयते वाचमशेषं तेन लोपितम्। योऽन्यथा संतमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते॥
किंतेन न कृतं पापं चोरेणात्मापहारिणा। यास्यामिनरकं घोरंविलोप्यात्मानमात्मना
तस्य वैवस्वतो राजा धर्मस्यार्धं निकृंतति। अगाधे सलिले शुद्धे सत्यतीर्थे क्षमाहृदे॥

स्नात्वा पापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमां गतिम्।

अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम्।

अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते॥ ४०६॥

सत्यं साधुफलं श्रुतं च परमं क्लेशादिभिर्वर्जितं,

साधूनां निकटं सतां कुलधनं सर्वाश्रमाणां फलम्।

स्वाधीनं च सुदुर्लभं च जगतस्साधारणं भूषणं;

यन्म्लेच्छोऽप्यभिधार्य गच्छति दिवं तत्त्यज्यते वा कथम्॥ ४०७॥

सख्य ऊचुः।

नंदे सा त्वं नमस्कार्यासर्वैरपिसुरासुरैः। यात्वं परमसत्त्वेन प्राणांस्त्यजसिदुस्त्यजान्
ब्रूमःकिं तत्र कल्याणि या त्वंधर्मधुरंधरा। त्यागेनानेन न प्राप्यं त्रैलोक्येवस्तुकिंचन
अवियोगश्चपश्यामस्त्यागादस्मात्सुतेनहि। नार्याःकल्याणचित्तायानापदःसंतिकुत्रचित्

दृष्ट्वागोपीजनं सर्वं परिक्रम्य च गोकुलम् । नन्दा संप्रस्थिता देवान्वृक्षांश्चापृच्छ्यसापुनः
क्षितिं वरुणमग्निं च वायुं चापि निशाकरम् । दश दिग्देवता वृक्षान्नक्षत्राणि ग्रहैः सह
सर्वान्विज्ञापयामास प्रणिपत्य मुहुर्मुहुः । ये संश्रिता वने सिद्धाः सर्वाश्च वनदेवताः ॥

वने चरंतं च तृणं ते रक्षंतु सुतं मम ।

चंपकाशोकपुन्नागास्सरलार्जुनकिंशुकाः ॥ ४१४ ॥

शृण्वंतु पादपाः सर्वे संदेशं मम विक्लवम् । वत्समेकाकिनं दीनं चरंतं विषमे वने ॥
रक्षध्वं वत्सकं बालं स्नेहात्पुत्रमिवौरसम् । मात्रापित्राविहीनं च अनाथं दीनमानसम्
विचरंतमिमां भूमिं क्रंदमानं सुदुःखितम् । तस्येह क्रंदमानस्य मत्पुत्रस्य महावने ॥
महाशोकाभिभूतस्य क्षुत्पिपासातुरस्य च । शून्यस्यैकाकिनः सर्वं जगच्छून्यं प्रपश्यतः
चरमाणस्य कर्तव्यं सानुक्रोशैस्तु रक्षणम् । संदिश्य नंदा प्रीत्यैवं पुत्रस्नेहवशं गता ॥
शोकाग्निना च सन्दीप्ता विच्छिन्ना पुत्रदर्शने । वियुक्ता चक्रवाकीव लतेव पतिता तरोः
अन्धेव दृष्टिरहिता प्रस्खलंती पदे पदे । अगच्छत्सापुनस्तत्र यत्रासौ पिशिताशनः ॥

आस्ते विस्फूर्जितमुखस्तीक्ष्णदंष्ट्रो भयावहः ।

तावत्तस्याःसुतो वत्स ऊर्ध्वपुच्छोऽतिवेगवान् ॥ ४२२ ॥

आगत्यमातुरग्रेऽसौ मृगेंद्रस्याग्रतोऽभवत् । आगतं तु सुतं दृष्ट्वा मृत्युं तमग्रतः स्थितम्
व्याघ्रं दृष्ट्वा तु सा धेनुरिदं वचनमब्रवीत् । भो भो मृगेंद्रागताहं सत्यधर्मव्रते स्थिता
कुरु तृप्तिं यथाकाममस्मन्मांसेन सांप्रतम् । संतर्पयस्व भूतानि पिब त्वं शोणितं मम

मृतायां तु मयि त्वं भो भक्षयेमं तु बालकम् ।

द्वीप्युवाच ।

स्वागतं तव कल्याणि धेनुके सत्यवादिनि ॥ ४२६ ॥

न हि सत्यवतां किंचिदशुभं भवति क्वचित् । त्वयोक्तं धेनुके पूर्वं सत्यं प्रत्यागमे पुनः
तेन मे कौतुकं प्राप्तं प्राप्तागच्छेत्कथंपुनः । तव सत्यपरीक्षार्थं प्रेषितासि मया पुनः ॥

अन्यथा मां समासाद्य जीवंती यास्यसे कथम् ।

यच्च नः कौतुकं जातं सत्यस्यान्वेषणं मम ॥ ४२९ ॥

तस्मादनेन सत्येन मुक्ताऽसि च मयाधुना। भगिनी भवती मह्यं भागिनेयः सुतस्तव॥
दत्तोपदेशस्य शुभे मम पापिष्ठकर्मणः। सत्ये प्रतिष्ठिता लोका धर्मः सत्ये प्रतिष्ठितः

सत्येन गौः क्षीरधारां प्रमुंचति हविः प्रियाम्।

स वै धन्यतमो गोपो यस्त्वत्क्षीरेण जीवति ॥ ४३२ ॥

भूमिप्रदेशा धन्यास्ते सतृणावीरुधः शुभे। ते धन्याश्च कृतार्थाश्च तैरेव सुकृतं कृतम्॥
तैराप्तं जन्मनः सारं ये पिबंति पयस्तव। मृगेंद्रः प्रत्ययं गत्वा विस्मयं परमं गतः॥

प्रत्यादेशोऽयमस्माकं सत्यं देवैःप्रदर्शितः।

सत्यमिष्टं गवां दृष्ट्वा न मे वाञ्छास्ति जीवितम्॥ ४३५॥

तत्करिष्याम्यहं कर्म येन मुच्येय किल्विषात्। मया जीवसहस्राणि भक्षितानि शतानिच
गतिं कामिहगच्छामि दृष्ट्वा गोःसत्यमीदृशम्। अहं पापो दुराचारो नृशंसोजीवघातकः

कांस्तुलोकान्गमिष्यामि कृत्वा कर्म सुदारुणम्।

गमिष्ये पुण्यतीर्थानि करिष्ये पापशोधनम्॥ ४३८॥

पतिष्ये गिरिमारुह्य प्रवेक्ष्ये वा हुताशनम्। धेनोऽद्य यन्मया कार्यं तपः पापाद्विशुद्धये

तदा दिशस्व संक्षेपान्न कालो विस्तरस्य तु।

धेनुरुवाच।

तपः कृते प्रशंसंति त्रेतायां ज्ञानमेव च॥ ४४०॥

द्वापरे यज्ञमित्याहुर्दानमेकं कलौ युगे। सर्वेषामेव दानानामिदमेवैकमुत्तमम्॥ ४४१॥
अभयं सर्वभूतानां नास्ति दानमतः परम्। चराचराणां भूतानामभयं यः प्रयच्छति॥
स च सर्वभयान्मुक्तः परं ब्रह्माधिगच्छिति। नास्त्यहिंसासमंदानं नास्त्यहिंसासमं तपः
यथा हस्तिपदेष्वन्यत्पदं सर्वं प्रलीयते। सर्वे धर्मास्तथा व्याघ्रे प्रलीयंते ह्यहिंसया॥
योगवृक्षस्य छाया या तापत्रयविनाशिनी। धर्मज्ञाने च पुष्पाणि स्वर्गमोक्षौ फलानि च
दुःखत्रयाभितप्तस्य छाया योगतरोःस्मृता। न बाध्यते पुनर्दुःखैः प्राप्य निर्वाणमुत्तमम्

इत्येतत्परमं श्रेयः कीर्तितं ते समासतः।

ज्ञातं चैव त्वया सर्वं केवलं मां तु पृच्छसि॥ ४४७॥

द्वीप्युवाच ।

अहं मृगया पुरा शप्तो व्याघ्ररूपेणसंस्थितः । ततःप्राणिवधात्सर्वमशेषंममविस्मृतम् ॥
त्वत्संपर्कोपदेशाभ्यां संजातंस्मरणंमम । त्वंचाप्यनेनसत्येनगमिष्यसिपरां गतिम् ॥
तदहं त्वां पुनः पृच्छे प्रश्नमेकं हृदि स्थितम् । साग्रं वर्षशतं जानं चिंतयानस्य मे शुभे
भवत्या भाग्ययोगेन कदाचित्स्वर्गशोभने । कृतंधर्मस्य संस्थानं सतां मार्गे प्रतिष्ठितम्
किंतेऽभिधानं कल्याणि ब्रूहि मेऽज्ञस्य सुव्रते ।

नंदोवाच ।

मम नंदेति संज्ञा तु कृता नंदेन स्वामिना ॥ ४५२ ॥
सांप्रतं भक्षयामीति ह्यतिप्टः केन हेतुना । नंदेति श्रुत्वा तन्नाममुक्तशापप्रभंजनः ॥४५३
पुनर्नृपत्वमापन्नो बलरूपसमन्वितः ।एतस्मिन्नंतरे धर्मस्तां ज्ञात्वा सत्यवादिनीम् ॥
द्रष्टुं समागतस्तत्र प्राब्रवीच्च पयस्विनीम् । तव सत्यव्रताद्धृष्टो धर्मोऽहमिह चागतः ॥
नंदे वृणीष्व भद्रं ते वरं वरतमं हि यत् । एवमुक्ता हि सा देवी नंदा तं प्रार्थयद्वरम् ॥
तवानुभावात्ससुता गच्छामि पदमुत्तमम् । भवेदिदंशुभं तीर्थं मुनीनां धर्मदायकम् ॥
मन्नाम्ना च सरिदियं नंदा नाम सरस्वती । वरप्रदानाद्देवेश तदेतत्प्रार्थितं मया ॥४५८

पुलस्त्य उवाच ।

सातत्क्षणाद्गता देवी स्थानं सत्यवतां शुभम् ।
प्रभंजनोऽपि तद्राज्यं संप्राप्तः प्रागुपार्जितम् ॥ ४५९ ॥
नंदा येन गता स्वर्गं नंदां प्राप्य सरस्वतीम् ।
तेनाख्यया बुधैस्तस्याः प्रोक्ता नंदा सरस्वती ॥ ४६० ॥
सरस्वतीपुनस्तस्माद्वनात्खर्जूरसंज्ञितात् । दक्षिणेन पुनर्याता प्लावयंती धरातलम् ॥
आगच्छन्नपि यस्तस्या नाम गृह्णाति मानवः । जीवन्सुखं स आप्नोति मृतो भवतिखेचरः
तत्र ये शुभकर्माणस्त्यजंति स्वां तनुं नराः ॥ ते विद्याधरराजानो भवंति सुखिनोजनाः
नराणां स्वर्गनिःश्रेणीस्नानात्पानात्सरस्वती ।
तत्र स्नानं प्रकुर्वन्ति येऽष्टम्यां सुसमाहिताः ॥ ४६४ ॥

ते मृताः स्वर्गमासाद्य मोदंते सुमनोरमाः। सरस्वती सदा स्त्रीणां तत्र सौभाग्यदायिका
उपोषिता तृतीयायामपि सौभाग्यभाजना। तत्र तद्दर्शनेनापि मुच्यते पापसंचयात्॥
स्पृशंति ये नराः केचित्तेऽपिज्ञेया मुनीश्वराः। रजतस्य प्रदानेन रूपवाञ्जायते नरः॥
पुण्यापुण्यजलोपेता नदीयं ब्रह्मणःसुता। नंदानामेति विपुला प्रवृत्ता दक्षिणामुखी॥
गत्वा ततो नातिदूरं पुनर्याता पराङ्मुखी। ततःप्रभृति सादेवी प्रसभप्रकटास्थिता॥
तस्यास्तटेषु पुण्येषु तीर्थान्यायतनानि च। संसेवितानि मुनिभिः सिद्धैश्चापि समंततः॥
तेषु सर्वेषु भवति धर्मे हेतुस्सरस्वती। स्नानात्पानात्प्रदानाद्वाहिरण्यस्य महानदी॥
हाटकक्षितिगौरीणां नंदातीर्थे महोदयम्। दानं दत्तं नरैः स्नातैर्जनयत्यक्षयं फलम्॥

धान्यप्रदानं प्रवदंति शस्तं वसुप्रदानं च तथा मुनींद्राः।
यैस्तेषु तीर्थेषु नरैः प्रदत्तं तद्धर्महेतुः प्रवरं प्रदिष्टम्॥ ४७३॥
प्रायोपवेशं प्रयतःप्रयत्नाद्यस्तत्र कुर्यात्प्रमदा पुमान्वा।
तीर्थेषु सायुज्यमवाप्य सोऽयं भुङ्क्ते फलं ब्रह्मगृहे यथेष्टम्॥ ४७४॥
तस्योपकण्ठे तु मृतास्तु ये वै कर्मक्षयात्स्थावरजंगमाश्च।
तैश्चापि सर्वैः सहसा प्रसह्य लभ्येत यज्ञस्य फलं दुरापम्॥ ४७५॥
ततस्तु सा धर्मफलप्रदा भवेज्जन्मादिदुःखार्दितचेतसां नृणाम्।
सर्वात्मना पुण्यफला सरस्वती सेव्या प्रयत्नात्पुरुषैर्महानदी॥ ४७६॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे नंदाप्राचीमाहात्म्येऽष्टादशोऽध्यायः।

एकोनविंशोऽध्यायः

ऋषिभिर्यज्ञोपवीतैः पुष्करस्य तीर्थविभागकरणम्।

भीष्म उवाच।

पुष्करस्य च नंदायाः श्रुतं माहात्म्यमुत्तमम्। ऋषिकोटिर्यदायाता पुष्करे मुखदर्शनात्

सर्वैस्सुरूपता लब्धा सर्वमेतन्मया श्रुतम्। यज्ञोपवीतैर्भक्तानि यानि तानि वदस्व मे॥
कथं तीर्थविभागस्तु कृतस्तैः सुमहात्मभिः। आश्रमे यानि तीर्थानि कृतान्यपि महर्षिभिः
पदन्यासःकृतःपूर्वं विष्णुना यज्ञपर्वते। नागैस्तत्र पञ्चतीर्थं कृतं तैस्तु महाविषैः॥४॥
पिंडप्रदानवापी च केन पूर्वं विनिर्मिता। उदङ्मुखी भूमिगता कथं गङ्गा सरस्वती॥
ब्राह्मणैर्वेदविद्वद्भिः कथं यात्रा त्रिपुष्करे। कर्तव्या यत्फलं तस्या जायते तद्वदस्व मे॥

पुलस्त्य उवाच।

प्रश्नभारो महानेष भवता परिकल्पितः। तदेकाग्रमना भूत्वा शृणु तीर्थमहाफलम्॥७॥
यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्। विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते
प्रतिग्रहादुपावृत्तः संतुष्टो येन केनचित्। अहङ्कारनिवृत्तश्च स तीर्थफलमश्नुते॥ ६॥

अक्रोधनश्च राजेन्द्र सत्यशीले दृढव्रतः।
आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलंमश्नुते॥ १०॥

ऋषीणां परमं गुह्यमिदं भरतसत्तम। पूर्वं यत्र महाराज सत्रे पैतामहे तथा॥११॥
यतीनामुग्रतपसां येषां कोटिः समागता। मुखदर्शनमाश्रित्य स्थितास्ते ज्येष्ठपुष्करे॥
सुरूपतां परां लब्ध्वा प्रीतास्ते मुनिसत्तमाः। हर्षेण महताविष्टा ब्रह्मदर्शनकांक्षिणः॥
यज्ञोपवीतैस्ते भूमिमाप्य सर्वे चतुर्दिशम्। कृत्वा तीर्थविभागं च स्थिताभक्तिपरायणाः
आसन्नश्च ततस्तेषां तदा तुष्टःपितामहः। कोटिं कृत्वा तदा तेषां मानं दृष्ट्वा मनीषिणाम्
अद्यप्रभृति युष्माकं धर्मवृद्धिर्भविष्यति। इहागत्य नरो यो वै यदंगं प्रथमं जले॥
प्लावयिष्यति रूपार्थं रूपिता तीर्थकारिता। भविष्यति न संदेहो योजनायतमंडले॥
अर्धयोजनविस्तारं दीर्घं सार्धं हि योजनम्। एतत्प्रमाणं तीर्थस्य ऋषिकोटिप्रवर्त्तितम्
गमनादेव राजेंद्र पुष्करस्य त्वरिंदम। राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलमाप्नोति मानव॥१६॥

सरस्वती महापुण्या प्रविष्टा ज्येष्ठपुष्करे।
तत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयः सिद्धचारणाः॥ २०॥
अभिगच्छंति राजेंद्र चैत्रशुक्लचतुर्दशीम्।
तत्राभिषेकं कुर्वीत पितृदेवार्चने रतः॥ २१॥

गोमेधं च तदाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् । एवं तीर्थविभागस्तु कृतस्तैस्तु महर्षिभिः ॥
पितॄन्देवांश्च सन्तर्प्य विष्णुलोके महीयते। तत्र स्नात्वा भवेन्मर्त्यो विमलश्चन्द्रमा यथा
ब्रह्मलोकमवाप्नोति गतिं च परमां व्रजेत् । नृलोके देवदेवस्य तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥
पुष्करं नाम विख्यातं महापातकनाशनम् । दशकोटि सहस्राणि तीर्थानां वै महीपते ॥

सान्निध्यं पुष्करे येषां त्रिसन्ध्यं कुलनन्दन ।
आदित्या वसवो रुद्रास्साध्याश्च समरुद्गणाः ॥ २६ ॥
गन्धर्वाप्सरसश्चैव नित्यं सन्निहिता विभोः ।
यत्र देवास्तपस्तप्त्वा दैत्या ब्रह्मर्षयस्तथा ॥ २७ ॥

दिव्ययोगा महाराज पुण्येन महतान्विताः । मनसाप्यभिकामस्य पुष्कराणि मनस्विनः
पूयन्ते सर्वपापानि नाकपृष्ठे स मोदते । तस्मिंस्तीर्थे महाराज नित्यमेव पितामहः ॥
उवास परमप्रीतो देवदानवसम्मतः । पुष्करेषु महाराज देवाः सर्षिपुरोगमाः ॥ ३० ॥
सिद्धिं च समनुप्राप्ता पुण्येन महतान्विताः । तत्राभिषेकं यः कुर्यात्पितृदेवार्चने रतः ॥
अश्वमेधाद्दशगुणं प्रवदंति मनीषिणः । अप्येकं भोजयेद्विप्रं पुष्करारण्यमाश्रितः ॥३२॥
अन्नेन तेन संप्रीता कोटिर्भवति पूजिता ।तेनासौ कर्मणा भीष्म प्रेत्य चेह च मोदते॥
शाकैर्मूलैः फलैर्वापि येन वा वर्तयेत्स्वयम् । तद्वै दद्याद्ब्राह्मणाय श्रद्धावाननसूयकः ॥
तेनैव प्राप्नुयात्प्राज्ञो हयमेधफलंनरः । ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा राजसत्तम ॥
पैतामहं सरःपुण्यं पुष्करं नाम नामतः । वैखानसानां सिद्धानां मुनीनां पुण्यदं हि यत्

सरस्वती पुण्यतमा यस्माद्याता महार्णवम् ।
आदिदेवो महायोगी यत्रास्ते मधुसूदनः ॥ ३७ ॥

ख्यात आदिवराहेति नाम्ना त्रिदशपूजितः । हीनवर्णाश्च ये वर्णास्तीर्थे पैतामहे गताः

न वियोनिं व्रजंत्येते स्नात्वा तीर्थे महात्मनः ।
कार्तिक्यां च विशेषेण योऽभिगच्छेत्तु पुष्करम् ॥ ३९ ॥
फलं तत्राक्षयं तस्य भवतीत्यनुशुश्रुम ।
सायं प्रातः स्मरेद्यस्तु पुष्कराणि कृतांजलिः ॥ ४० ॥

उपस्पृष्टं भवेत्तेन सर्वतीर्थे तु कौरव । जन्मप्रभृति यत्पापं स्त्रियो वा पुरुषस्य वा ॥
पुष्करे स्नानमात्रेण सर्वमेतत्प्रणश्यति । यथा सुराणां प्रवरः सर्वेषां तु पितामहः ॥
तथैव पुष्करं तीर्थं तीर्थानामादि रुच्यते । तद्दृष्ट्वा दशवर्षाणि पुष्करे नियतः शुचिः ॥
क्रतून्सर्वानवाप्नोति ब्रह्मलोकं स गच्छति । यस्तु वर्षशतं पूर्णमग्निहोत्रमुपासते ॥४४॥
कार्तिकीं वा वसेदेकां पुष्करे सममेव तु । पुष्करे दुष्करो होमः पुष्करे दुष्करं तपः
पुष्करे दुष्करं दानं वासश्चैव सुदुष्करः ।ब्राह्मणो वेदविद्वांस्तु गत्वा वै ज्येष्ठपुष्करम्

स्नानाद्भवेन्मोक्षभागी श्राद्धेन पितृतारकाः ।
नाममात्रोऽपि यो विप्रो गत्वा संध्यामुपासते ॥ ४७ ॥

वर्षाणि द्वादशैवेह तेन संध्या ह्युपासिता । भवेत्तु नात्र संदेहः पुरा प्रोक्तं स्वयंभुवा ॥

सावित्राकथितो दोषः कुले तस्य न जायते ।
या पत्नी ददते भर्तुः संध्योपास्ति करिष्यतः ॥ ४९ ॥

करकेणतु ताम्रेण तोयं मुक्त्वा दिवं व्रजेत् । ब्रह्मलोकमनुप्राप्य तिष्ठति ब्रह्मणो दिनम्

एकाकिना गतेनापि संध्या वंद्या यथाक्रमम् ।
पौष्करेणाथ तोयेन शृंगारे निहिते न तु ॥ ५१ ॥
तेनापि द्वादशाब्दानि संध्योपास्ता न संशयः ।
भवेत्समीपगा पत्नी कुर्वतः पितृतर्पणम् ॥ ५२ ॥

दक्षिणां दिशमास्थाय गायत्र्या राजसत्तम । पितॄणां परमा तृप्तिः क्रियते द्वादशाब्दिकी
युगसहस्रपिण्डेन श्राद्धेनानन्त्यमश्नुते । एतदर्थं हि विद्वांसः कुर्वते दारसंग्रहम् ॥५४॥

तीर्थे गत्वा प्रदास्यामःपिंडान्वै श्राद्धपूर्वकम् ।
तेषां पुत्रा धनं धान्यमविच्छिन्ना च संततिः ॥ ५५ ॥

भवेद्वै नात्र संदेह एतदाह पितामहः । तर्पयित्वा पितॄन्देवानग्निष्टोमफलं लभेत् ॥५६॥
आश्रमानपि ते वच्मि शृणुष्वैकमना नृप । अगस्त्येन कृतश्चात्र आश्रमो देवसंमितः ॥
सप्तर्षीणां पुरा चात्र आश्रमो देवसम्मतः । ब्रह्मर्षीणां तथा चात्र मनूनां परमस्तथा ॥
नागानां च पुरी रम्या यज्ञपर्वतरोधसि । अगस्त्यस्य महाराज प्रभावममितात्मनः ॥

कथयामि समासेन शृणु त्वं सुसमाहितः। पूर्वं कृतयुगे भीष्म दानवा युद्धदुर्मदाः॥
कालेया इति विख्याता गणाः परमदारुणाः। ते तु वृत्रं समाश्रित्य नानाप्रहरणोद्यताः
समन्तात्पर्यधावन्त महेन्द्रप्रमुखान्सुरान्। ततो वृत्रवधे यत्नमकुर्वंस्त्रिदशाः पुरा॥६२॥
पुरन्दरं पुरस्कृत्य ब्रह्माणमुपतस्थिरे। कृताञ्जलींस्तु तान्सर्वान्परमेष्ठीत्युवाच ह॥६३॥
विदितं मे सुराःसर्वं यद्वःकार्यं चिकीर्षितम्। तमुपायं प्रवक्ष्यामि यथा वृत्रं वधिष्यथ
दधीचिरिति विख्यातो महानृषिरुदारधीः। तं गत्वासहितास्सर्वे वरं च प्रतियाचत॥
स वो दास्यतिधर्मात्मा सुप्रीतेनान्तरात्मना। स वाच्यःसहितैः सर्वैर्भवद्भिर्जयकांक्षिभिः

स्वान्यस्थीनि प्रयच्छस्व त्रैलोक्यहितकांक्षया।

स शरीरं समुत्सृज्य स्वान्यस्थीनि प्रदास्यति॥ ६७॥

तस्यास्थिभिर्महाघोरं वज्रं संक्रियतां दृढम्। महच्छत्रुहनं दिव्यं तदस्त्रमशनिः स्मृतम्
तेन वज्रेण वै वृत्रं वधिष्यति शतक्रतुः। एतद्वः सर्वमाख्यातं तस्मात्सर्वं विधीयताम्
एवमुक्तास्ततो देवा अनुज्ञाप्य पितामहम्। शतक्रतुं पुरस्कृत्य दधीचेराश्रमं ययुः॥
सरस्वत्याः परेपारे नानाद्रुमलतावृतम्। षट्पदोद्गीतनिनदैरुद्घुष्टं सामगैरिव॥ ७१॥
पुंस्कोकिलरवोन्मिश्रं जीवं जीवकनादितम्। महिषैश्च वराहैश्च सृमरैश्चमरैरपि॥७२॥
तत्र तत्रानुचरितैः शार्दूलभयवर्जितैः। करेणुभिर्वारणैश्च प्रभिन्नकरटामुखैः॥ ७३॥
सरोद्गारैश्च क्रीडद्भिः समंतादनुनादितम्। सिंहव्याघ्रैर्महानादं नदद्भिरनुनादितम्॥
मयूरैश्चापि संलीनैर्गुहाकंदरवासिभिः। तेषु तेषु च कुञ्जेषु नादितं सुमनोरमम्॥७५॥
त्रिविष्टपसमप्रख्यं दधीच्याश्रममागमन्। तत्रापश्यन्दधीचिं तं दिवाकरसमप्रभम्॥
जाज्वल्यमानंवपुषा यथा लक्ष्म्या चतुर्भुजम्। तस्य पादौ सुरा राजन्नभिवंद्य प्रणम्यच
अयाचंत वरं सर्वे यथोक्तं परमेष्ठिना। ततो दधीचिः परमप्रतीतश्च सुरोत्तमान्॥७८॥

उवाच प्रणतो भूत्वा त्विदं कार्यकरं वचः।

दधीचिरुवाच।

इन्द्राद्यास्स्वागता देवाः किमर्थं तद्वदन्तु मे॥ ७६॥

पीड्यमानानहं मन्ये हतप्रभसुरोत्तमाः। यदर्थं पीडितात्मानस्तद्वदन्तु निराकुलम्॥८०॥

देवा ऊचुः ।

त्वदस्थिकृतशस्त्रेण देवास्सन्तु निरामयाः ॥ ८१ ॥

दधीचिरुवाच ।

करोमि यद्वो हितमद्य देवाः स्वं वापि देहं त्वहमुत्सृजामि ।

पुलस्त्य उवाच ।

तानेवमुक्त्वा द्विपदांवरिष्ठः प्राणांस्ततोऽसौ सहसोत्ससर्ज ॥८२ ॥

सुरास्तदस्थीनि सवासवास्ते यथोपयोगं जगृहुःस्म तस्य ।

प्रहृष्टरूपाश्च जयाय देवास्त्वष्टारमासाद्य तमर्थमूचुः ॥ ८३ ॥

त्वष्टा तु तेषां वचनं निशम्य प्रहृष्टरूपः प्रयतः प्रयत्नात् ।

चकार वज्रं भृशमुग्रवीर्यं कृत्वा च शस्त्रं तमुवाच हृष्टः ॥ ८४ ॥

अनेन शस्त्र प्रवरेण देव भस्मीकुरुष्वाद्य सुरारिमुग्रम् ।

ततो हतारिः सगणः सुखं त्वं प्रशाधि कृत्स्नं त्रिदिवं दिविष्ठः ।

त्वष्ट्रा तथोक्तस्तु पुरंदरश्च वज्रं प्रहृष्टः प्रयतो ह्यगृह्णात् ॥ ८५ ॥

ततःसवज्रेण युतो दैवतैरभिपूजितः । आससाद ततो वृत्रं स्थितमावृत्य रोदसी ॥

कालकेयैर्महाकायैस्समन्तादपि रक्षितम् । समुद्यतप्रहरणैः सश्रृंगैरिव पर्वतैः ॥ ८७ ॥

ततो युद्धं समभवद्देवानां सह दानवैः । मुहूर्तं भरतश्रेष्ठ लोकत्रासकरं महत् ॥ ८८ ॥

उद्यतैःप्रतिसृष्टानां खड्गानां वीरबाहुभिः । आसीत्सुतुमुलःशब्दः शरीरैरभिपातितः ॥

शिरोभिःप्रपतद्भिश्चाप्यंतरिक्षान्महीतलम् । तालैरिव महीपाल वृतं तैरेव दृश्यते ॥९०॥

ते हेमकवचा भूत्वा कालेयाः परिघायुधाः । त्रिदशानभ्यवर्तन्त दावदग्धा इव द्रुमाः

तेषां वेगवतां वेगं सहितानां प्रधावताम् ।

न शेकुः सहिताः सोढुं भग्नास्ते प्राद्रवन्भयात् ॥ ९२ ॥

तान्दृष्ट्वा द्रवतो भीतान्सहस्राक्षः पुरन्दरः । पुत्रं च वर्द्धमानं तु कश्मलं महदाविशत् ॥

तं शक्रं कश्मलाविष्टं दृष्ट्वा विष्णुःसनातनः । स्वतेजो व्यदधाच्छक्रे बलमस्य विवर्धयन्

विष्णुनाप्यायितं शक्रं दृष्ट्वा देवगणास्तदा । सर्वेतेजस्समादध्युस्तथा ब्रह्मर्षयोऽमलाः

स समाप्यायितः शक्रो विष्णुना दैवतैः सह ।
ऋषिभिश्च महाभागैर्बलवान्समपद्यत ॥ ९६ ॥
ज्ञात्वा बलस्थं त्रिदशाधिपं तं ननाद वृत्रस्सुमहानिनादम् ।
तस्य प्रणादेन धरादिशश्च खं द्यौर्नगाश्चेति चचाल सर्वम् ॥ ९७ ॥
ततो महेंद्रः परमाभितप्तः श्रुत्वा रवं घोरतरं महान्तम् ।
भयेन मग्नस्त्वरितं मुमोच वज्रं महान्तं खलुतस्य शीर्षे ॥ ९८ ॥
स शक्रवज्राभिहतः पपात महास्वनः काञ्चनमाल्यधारी ।
यथा महाशैलवरः पुरस्तात्समन्दरो विष्णुकरात्प्रमुक्तः ॥ ९९ ॥
तस्मिन्हते दैत्यवरे भयार्तः शक्रः प्रदुद्राव सरः प्रवेष्टुम् ।
वज्रं च मेने स्वकरात्प्रमुक्तं वृत्रं भयाच्चैव हतं न पश्यति ॥ १०० ॥
सर्वे च देवा मुदिताः प्रहृष्टाः महर्षयश्चैनमथो स्तुवन्ति ।
शेषांश्च दैत्यांस्त्वरितं समेत्य जघ्नुः सुरा वृत्रवधाभितप्तान् ॥ १०१ ॥
ते वध्यमानास्त्रिदशैस्तदानीं महासुरा वायुसमानवेगाः ।
समुद्रमेवाविविशुर्भयार्ताः प्रविश्य चैवोदधिमप्रमेयम् ॥ १०२ ॥
झषाकुलं रत्नसमाकुलं च तदास्म मन्त्रं सहिताः प्रचक्रुः ।
तत्रस्म केचिन्मतिनिश्चयज्ञास्तांस्तानुपायान्परिचिन्तयन्तः ॥ १०३ ॥
भयार्दिता देवनिकायतप्तास्त्रैलोक्यनाशाय मतिंप्रचक्रुः ।
तेषां तु तत्र क्षयकालयोगाद्धोरामतिश्चिन्तयतां बभूव ॥ १०४ ॥
ये सन्ति विद्या तपसोपपन्नास्तेषां विनाशः प्रथमं च कार्यः ।
लोकाश्च सर्वे तपसा ध्रियन्ते तस्मात्त्वरध्वं तपसा क्षयाय ॥ १०५ ॥
ये सन्ति केचिद्धि वसुन्धरायां तपस्विनो धर्मविदश्च तज्ज्ञाः ।
तेषां वधश्च क्रियतां हि क्षिप्रं तेषु प्रनष्टेषु जगद्धिनष्टम् ॥ १०६ ॥
एवं हि सर्वे गतबुद्धिभावा जगद्विनाशे परमप्रहृष्टाः ।
दुर्गं समाश्रित्य महोर्मिमन्तं रत्नाकरं वारुणमालयं स्म ॥ १०७ ॥

समुद्रं ते समासाद्य वारुणं त्वम्भसांनिधिम् । कालेयास्समपद्यन्त त्रैलोक्यस्य विनाशने
ते रात्रौ समभिक्रुद्धा बभक्षुस्तांस्तदा मुनीन् । आश्रमेषुच ये सन्ति पुण्येष्वायतनेषु च
वसिष्ठस्याश्रमे विप्रा भक्षितास्तैर्दुरात्मभिः । अशीतिःशतमष्टौ च वनेचान्ये तपस्विनः
च्यवनस्याश्रमं गत्वा पुण्यं द्विजनिषेवितम् । फलमूलाशनानां हि मुनीनां भक्षितंशतम्
एवं रात्रौस्म कुर्वन्तो विविशुश्चार्णवं दिवा । भरद्वाजाश्रमंगत्वा नियता ब्रह्मचारिणः
वाताहाराम्बुभक्षाश्च विंशतिश्च निषूदिताः । एवं क्रमेण भिक्षार्थं मुनीनां दानवास्तदा
निशायां पर्यधावन्त शक्ता भुजबलाश्रयात् । कालेन महता तेवै जघ्नुर्मुनिगणान्बहून् ॥
नचैतानवबुध्यन्त मनुजामनुजाधिपः । निःस्वाध्यायवषट्कारं नष्टयज्ञोत्सवक्रियम् ॥
जगदासीन्निरुत्साहं कालेयभयपीड़ितम् । एवं प्रक्षीयमाणास्ते मानवा मनुजेश्वर ॥
आत्मत्राणपरा भीताःप्राद्रवन्तु दिशोदश । केचिद्गुहां प्रविविशुर्विकीर्णाश्चापरे द्विजाः
अपरे च भयोद्विग्ना भयात्प्राणान्समत्यजन् । केचित्तत्र महेष्वासाः शूराः परमदर्पिता
मार्गमाणाः परं यत्नं दानवानां प्रचक्रिरे । नचैताननुजग्मुस्ते समुद्रं समुपाश्रितान् ॥
शमं न जग्मुः परममाजग्मुः क्षयमेव च । जगत्प्रशमने जाते नष्टयज्ञोत्सवक्रिये ॥१२०॥

आजग्मुः परमोद्विग्नास्त्रिदशा मनुजेश्वर ।
समेत्य समहेन्द्रास्तु भयान्मंत्रं प्रचक्रिरे ॥ १२१ ॥

नारायणं पुरस्कृत्य वैकुण्ठमपराजितम् । ततो देवास्समेतास्ते तदोचुर्मधुसूदनम् ॥१२२
त्वं नः स्रष्टाच गोप्ता च भर्ता च जगतः प्रभो । त्वयासृष्टं जगत्सर्वं यच्चेङ्गं यच्चनेङ्गति
त्वया भूमिः पुरा नष्टा समुद्रात्पुष्करेक्षण । वाराहं रूपमास्थाय जगदर्थे समुद्धृता ॥
आदिदैत्यो महावीर्यो हिरण्यकशिपुःपुरा । नारसिंहं वपुः कृत्वा सूदितः पुरुषोत्तम ॥
अवध्यः सर्वभूतानां बलिश्चापि महासुरः । वामनं वपुरास्थाय त्रैलोक्याद्भ्रंशितस्त्वया
असुरःसुमहेष्वासो जंभ इत्यभिविश्रुतः । यज्ञक्षोभकरः क्रूरस्त्वया सर्वनिपातितः ॥
एवमादीनि कर्माणि येषां संख्या न विद्यते । अस्माकं भयभीतानां त्वं गतिर्मधुसूदन
तस्मात्त्वां देवदेवेश लोकार्थं ज्ञापयामहे । रक्ष लोकांश्च देवांश्च शक्रं च महतो भयात्
भवत्प्रसादाद्वर्तन्ते प्रजाःसर्वाश्चतुर्विधाः । स्वस्था भवन्ति मनुजा हव्यकव्यैर्दिवौकसः

लोकाह्येवं प्रवर्तन्ते अन्योन्यं च समाश्रिताः ।

त्वत्प्रभावान्निरुद्विग्नास्त्वयैव परिरक्षिताः ॥ १३१ ॥

इदं च समनुप्राप्तं लोकानां भयमुत्तमम् । जानीमो न च केनैते वध्यन्ते ब्राह्मणानिशि

ब्राह्मणेषु च क्षीणेषु पृथिवीक्षयमेष्यति । त्वत्प्रसादान्महाबाहो लोकास्सर्वे जगत्पते ॥

विनाशं नाधिगच्छेयुस्त्वया वै परिरक्षिताः ।

विष्णुरुवाच ।

विदितं मे सुरास्सर्वे प्रजायाः क्षयकारणम् ॥ १३४ ॥

भवतां चापि वक्ष्यामि शृणुध्वं विगतज्वराः । कालकेया इतिख्याता गणापरमदारुणाः

ते वृत्रं निहतं दृष्ट्वा सहस्राक्षेण धीमता ।

जीवितं परिरक्षन्तःप्रविष्टा वरुणालयम् ॥ १३६ ॥

ते प्रविश्योदधिं घोरं नानाग्राहसमाकुलम् ।

उत्सादनार्थं लोकस्य रात्रौ घ्नन्ति मुनीनिह ॥ १३७ ॥

न तु शक्याःक्षयं नेतुं समुद्रान्तर्हिता हि ते ।

समुद्रस्य क्षये बुद्धिर्भवद्भिःपरिचिन्त्यताम् ॥ १३८ ॥

एतच्छ्रुत्वा वचो देवा विष्णुना समुदाहृतम् ।

परमेष्ठिनमासाद्य अगस्त्यस्याश्रमं ययुः ॥ १३९ ॥

तत्रापश्यन्महात्मानं वारुणं दीप्ततेजसम् । उपास्यमानमृषिभिर्देवैरिव पितामहम् ॥

तेऽभिगम्य महात्मानं मैत्रावरुणिमुत्तमम् । अप्रमत्तं तपोराशिं कर्मभिःस्वैरनुष्ठितैः ॥

देवाऊचुः ।

नहुषेणाभितप्तानां लोकानां त्वं गतिः पुरा । भ्रंशितश्च सुरैश्वर्याल्लोकार्थं लोककण्टकः

क्रोधात्प्रवृद्धःसमहान्भास्करस्य नगोत्तमः । वचस्तवानतिक्रामन्विन्ध्यःशैलो न वर्धते

तमसाच्छादिते लोके मृत्युनाभ्यर्दिताःप्रजाः । त्वामेव नाथमागम्य निर्वृतिं परमांगताः

अस्माकं भयभीतानां नित्यमेव भवान्गतिः ।

ततस्त्वद्य प्रयाचामस्त्वां वरं वरदो ह्यसि ॥ १४५ ॥

भीष्म उवाच ।

किमर्थं सहसाविन्ध्यःप्रवृद्धःक्रोधमूर्छितः । एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण महामुने ॥

पुलस्त्य उवाच ।

अद्रिराजं महाशैलं मेरुं कनकपर्वतम् । उदयेऽस्तमये भानुः प्रदक्षिणमवर्तत ॥१४७॥
ते दृष्ट्वा तु तदाविन्ध्यःशैलसूर्यमथाब्रवीत् । यथा हि मेरुर्भवता नित्यशः परिगम्यते ॥
प्रदक्षिणं च क्रियते मामेवं कुरु भास्कर । एवमुक्तस्ततःसूर्यःशैलेन्द्रं प्रत्यभाषत ॥१४६
नाहमात्मेच्छया शैलं करोम्येनं प्रदक्षिणम् । एषमार्गःप्रदिष्टो मे येनेदं निर्मितं जगत् ॥
एवमुक्तस्तदाक्रोधात्प्रवृद्धःसहसाचलः । सूर्याचन्द्रमसोर्मार्गंरोद्धुमिच्छन्परंतप ॥ १५१

ततो हि देवाः सहितास्तु सर्वे सेंद्राःसमागम्य महाद्रिराजम् ।
निवारयामासुरथोत्पतन्तं न वै स तेषां वचनं चकार ॥ १५२ ॥
ततो हि जग्मुर्मुनिमाश्रमस्थं तपस्विनां धर्मवतां वरिष्ठम् ।
अगस्त्यमत्यद्भुतदीप्तवीर्यं तं चार्यमूचुः सहिताः सुरास्ते ॥ १५३ ॥

देवा ऊचुः ।

सूर्याचन्द्रमसोर्मार्गं नक्षत्राणां गतिं तथा । शैलराडावृणोत्येष विन्ध्यःक्रोधवशानुगः ॥
तं निवारयितुंशक्तोनान्यःकश्चिन्मुनीश्वर । तच्छ्रुत्वा वचनंविप्रःसुराणां शैलमभ्यगात्

सोऽभिगम्याब्रवीद्विन्ध्यं सादरं समुपस्थितम् ।
मार्गमिच्छाम्यहं दत्तं भवता पर्वतोत्तम् ॥ १५६ ॥
दक्षिणामभिगन्तास्मि दिशं कार्येण केनचित् ।
यावदागमनं मे स्यात्तावत्त्वं प्रतिपालय ॥ १५७ ॥
निवृत्ते मयि शैलेन्द्र ततो वर्धस्व कामतः ।

पुलस्त्य उवाच ।

अद्यापि दक्षिणाद्देशाद्वारुणिर्न निवर्तते ॥ १५८ ॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं यथाविन्ध्यो न वर्धते । अगस्त्यस्य प्रभावेणयन्मां त्वं परिपृच्छसि
कालेयास्तु यथाराजन्सुरैःसर्वेनिषूदिताः । अगस्त्यद्वारमासाद्य तन्मे निगदतःशृणु ॥

त्रिदशानांवचःश्रुत्वा मैत्रावरुणिरब्रवीत्। किमर्थं समुपायाता वरंमत्तःकिमिच्छथ॥

एवंमुक्तास्तदा तेन देवास्तं मुनिमब्रुवन्।
इच्छाम एकं वरमद्भुतं वयं पिबार्णवं देवमुने महात्मन्॥ १६२॥
एवं त्वयेच्छेमकृते महर्षे महार्णवं पीयमानं समग्रम्।
ततो विहन्याम च सानुबन्धं कालेयसंज्ञं सुरविद्विषां बलम्॥ १६३॥

त्रिदशानांवचःश्रुत्वा तथेति मुनिरब्रवीत्। करिष्ये भवतां कामंलोकानांसुखकारकम्॥
एवमुक्त्वा ततोऽगच्छत्समुद्रं निधिमम्भसाम्। तपःसिद्धैश्च मुनिभिःसार्धंदेवैश्च सुव्रत
मनुष्योरगगंधर्वा यक्षाःकिंपुरुषास्तथा। अनुजग्मुर्महात्मानं द्रष्टुकामास्तदद्भुतम्॥१६६
ततोऽभ्यपश्यत्सहितःसमुद्रं भीमनिःस्वनम्। नृत्यन्तमिवचोर्मीभिर्वल्गन्तमिव वायुना
हसंतमिव फेनौघैःस्खलन्तं कन्दरेषु च। नानाग्राहसमाकीर्णं नानाद्विजगणैर्युतम्॥
अगस्त्यसहितादेवाःसगंधर्वमहोरगाः। ऋषयश्च महाभागाःसमासेदुर्महोदधिम्॥१६६
समुद्रं स समासाद्य वारुणिर्भगवानृषिः। उवाच सहितान्देवानृषींस्तांस्तु समागतान्
पातुकामः समुद्रं च अगस्त्यऋषिसत्तमः। एष लोकहितार्थाय पिबामि वरुणालयम्॥
भवतां यदनुष्ठेयंतच्छीघ्रं संविधीयताम्। एतावदुक्त्वा वचनं मैत्रावरुणिरग्रतः॥१७२॥
समुद्रमपिबत्क्रुद्धःसर्वलोकस्य पश्यतः। पीयमानं समुद्रं तु दृष्ट्वा देवाःसवासवाः॥

विस्मयं परमंजग्मुस्स्तुतिभिश्चाप्यपूजयन्।
त्वं नस्त्राता विधाता च लोकानां लोकभावनः।
त्वत्प्रसादात्समुत्सेधमुपगच्छेत्समं जगत्॥ १७४॥
संपूज्यमानस्त्रिदशैर्महात्मा गन्धर्वमुख्येषु नदत्सु चैव।
दिव्यैश्च पुष्पैरवकीर्यमाणो महार्णवं निःसलिलं चकार॥ १७५॥
दृष्ट्वा कृतं निःसलिलं महार्णवं सुराःसमस्ताःपरमप्रहृष्टाः।
प्रगृह्य दिव्यानि वरायुधानि तान्दानवाञ्जघ्नुरदीनसत्त्वाः॥ १७६॥
ते वध्यमानास्त्रिदशैर्महात्मभिर्महाबलैर्वेगयुतैर्नदद्भिः।
न सेहिरे वेगवतां महात्मनां वेगं तदाधारयितुं दिवौकसाम्॥ १७७॥

ते वध्यमानास्त्रिदशैर्दानवा भीमनिःस्वनाः । चक्रुःसुतुमुलंयुद्धं मुहूर्त्तमिव भारत ॥
ते पूर्वं तपसादग्धा मुनिभिर्भावितात्मभिः। यतमानाःपरं शक्त्या त्रिदशैर्विनिषूदिताः ॥
ते हेमनिष्काभरणाःकुण्डलाङ्गदधारिणः । निहता बह्वशोभंत पुष्पिताइव किंशुकाः ॥
हतशिष्टास्ततःकेचित्कालेयदनुजोत्तमाः । विदार्य वसुधां देवीं पातालतलमाश्रिता ॥
निहतान्दानवान्दृष्ट्वा त्रिदशा मुनिपुङ्गवम् । तुष्टुवुर्विविधैर्वाक्यैरिदंचैवाब्रुवन्वचः ॥१८२
त्वत्प्रसादान्महाभाग लोकेःप्राप्तंमहत्सुखम् । त्वत्तेजसा च निहताःकालेयाभीमविक्रमाः
पूरयस्व महाविप्र समुद्रं लोकभावनम् । यत्त्वया सलिलंपीतंतदस्मिन्पुनरुत्सृज ॥८४॥
एवमुक्त प्रत्युवाच भगवान्मुनिपुङ्गवः । जीर्णंतद्धि मया तोयमुपायोऽन्यःप्रचिन्त्यताम्
पूरणार्थं समुद्रस्य भवद्भिर्यत्नमास्थितैः । एवं श्रुत्वा तु वचनं महर्षेर्भावितात्मनः ॥

विस्मिताश्च विषण्णाश्च बभूवुःसहितास्सुराः ।
परस्परमनुज्ञाप्य प्रणम्य मुनिपुङ्गवम् ॥ १८७ ॥
प्रजाःसर्वामहाराज विप्राजग्मुर्यथागतम् ।
त्रिदशा विष्णुनासार्द्धमनुजग्मुःपितामहम् ॥ १८८ ॥
पूरणार्थं समुद्रस्य मन्त्रयन्तःपरस्परम् ।
ऊचुःप्राञ्जलयस्सर्वे सागरस्य हि पूरणम् ॥ १८६ ॥

तानुवाच समेतांस्तु ब्रह्मा लोकपितामहः ।गच्छध्वं विबुधास्सर्वेयथाकामं यथेप्सितम्
महताकालयोगेन प्रकृतिं यास्यतेऽर्णवः ॥ ज्ञातींस्तु कारणं कृत्वा महाराजोभगीरथः ॥
गंगौघेन समुद्रं च पुनःसंपूरयिष्यति । एवं ते ब्रह्मणा देवाःप्रेषिता ऋषिसत्तमाः ॥
उवाच भगवांस्तुष्टस्त्वगस्त्यमृषिसत्तमम् ॥ देवकार्यं तु भवता दानवानां विनाशनम्
यतस्संतारिता देवास्तेनतुष्टोऽस्मि वै मुने । अभिप्रेतो वरो यस्ते याचयस्व ददामितम्
एवमुक्तस्तदागस्त्यःप्रणिपातपुरःसरम् । इहस्थेन मया देव देवकार्यमिदं कृतम् ॥१६५
सर्वाश्रमाणां प्रवरो भवत्वेष ममाश्रमः । त्वया चोक्तस्तु भगवन्भविता नात्र संशयः ॥

ब्रह्मोवाच ।

यात्रां तु पुष्करे कृत्वा इहागत्य नरास्तु ये ।

इह कुण्डेषु ये स्नानं तर्पणं पितृदेवयोः ॥ १९७ ॥

अर्चनं चैव देवेषु सर्वमक्षयकारकम् । अर्घ्यं चोच्चावचं गृह्य शष्कुलापूपकांस्ततः ॥

दास्यन्ति द्विजमुख्येभ्यस्तेषांवासस्त्रिविष्टपे । श्राद्धेन पितरस्तृप्ता यावदाभूतसंप्लवम् ॥

कन्दमूलफलैर्वापि तर्पयिष्यति यो मुनिम् ।

सप्तर्षिस्थानमासाद्य मोदते शाश्वतीःसमाः ॥ २०० ॥

यज्ञपर्वतमारूढो दृष्ट्वा गंगाविनिर्गमम् । उदङ्मुखी देवनदी निर्गता पुष्करं प्रति ॥२०१

अत्राभिषेकं यःकुर्यात्पितृदेवार्चने रतः । अश्वमेधफलं तस्य भवत्येव न संशयः ॥२०२

यस्त्वेकं भोजयेद्विप्रं कोटिर्भवति भोजिता । अक्षयं त्वन्नपानं च अत्र दत्तं मुनीश्वर ॥

योऽयमिच्छति कामं तु सर्वं तस्य भविष्यति ।

न वियोनिं व्रजत्यत्र स्नातमात्रो नरो भुवि ॥ २०४ ॥

स्थानानां परमं स्थानं तीर्थानां तीर्थमुत्तमम् ।

मया दत्तं मुनिश्रेष्ठ भविष्यति न संशयः ॥ २०५ ॥

जन्मप्रभृति यत्पापं स्त्रिया वा पुरुषस्य वा । अत्रैव स्नातमात्रस्य सर्वमेतत्प्रणश्यति

एवमुक्त्वा तु भगवान्ब्रह्मालोकपितामहः । जगामामन्त्र्य स मुनिमगस्त्यं मुनिसत्तमम्

अगस्त्योऽपि स्थितस्तत्र आश्रमे स्वे परंतप ।

अगस्त्यस्याश्रमोत्पत्तिरेषा ते परिकीर्तिता ॥ २०८ ॥

सप्तर्षीणामाश्रमांश्च कीर्तयिष्ये कुरूद्वह । अत्रिश्चैव वसिष्ठोऽथ पुलस्त्यःपुलहःक्रतुः ॥

अंगिरा गौतमश्चैव सुमतिःसुमुखस्तथा । विश्वामित्रःस्थूलशिराःसंवर्तश्चप्रतर्दनः ॥

रैभ्योबृहस्पतिश्चैव च्यवनःकश्यपो भृगुः। दुर्वासा जमदग्निश्च मार्कण्डेयोऽथ गालवः

उशनाथ भरद्वाजो यवक्रीतस्तथामुनिः ।

स्थूलाक्षःसकलाक्षश्च कण्वो मेधातिथिःक्रतः ॥ २१२ ॥

नारदःपर्वतश्चैव स्वगन्धी च्यवनो द्विजः । तृणाम्बुःशबलोधौम्यःशतानन्दोऽकृतव्रणः

जमदग्निस्तथा रामो ह्यष्टकश्चैवमादयः । कृष्णद्वैपायनश्चैव पुत्रशिष्यैःसमन्वितः ॥

एते तु पुष्करं प्राप्य सप्तर्षीणामथाश्रमे । वेष्टिता नियमैश्चापि दयायुक्तास्तपस्विनः ॥

आनृशंस्यं जयो धैर्यं तपःसत्यं क्षमार्जवम् ।
दया दानं जपश्चैव सर्वेषां तत्प्रतिष्ठितम् ॥ २१६ ॥
इहयत्क्रियतेकर्म तत्परत्रोपभुज्यते । ज्ञात्वा तदित्थं मुनयःपरमार्थपरायणाः ॥ २१७ ॥
न तत्र नास्तिका यान्ति न स्तेना नाजितेन्द्रियाः ।
न नृशंसा न पिशुना न कृतघ्ना न मानिनः ॥ २१८ ॥
सत्यतेजस्विनःशूरा दयावंतःक्षमापराः । यज्वानो यज्ञशीलाश्च निरीहा निरुपद्रवाः ॥
निर्ममा निरहङ्कारास्तत्र गच्छन्ति पुष्करे ।
न रोगो न जरामृत्युर्भविताऽत्र महात्मनाम् ॥ २२० ॥
न तत्र मूढा विशन्ति पुरुषा विषयात्मकाः । कामलोभमदद्रोहक्रोधमोहैरुपद्रुताः ॥
तुल्यमानापमानाश्च निर्द्वन्द्वास्संयतेन्द्रियाः ।
ध्यानयोगपराश्चैव ते तु गच्छन्ति पुष्करम् ॥ २२२ ॥
आश्रमेषु यथोक्तेषु यथोक्तं वै द्विजातयः । ये वर्तन्ते समन्त्रास्तु तेषां लोकामहो दयाः
ये न हिंसन्ति भूतानि कर्मणा मनसा गिरा । अनृशंसतराःसन्तःसर्वदा च प्रियंवदाः ॥
अग्निहोत्ररतानित्यं नित्यं चातिथिपूजकाः। नित्यं स्वाध्यायवन्तश्च नित्यं स्नानपरायणाः
मातृवत्स्वसृवच्चैव तथा दुहितृवच्च ह । परदारान्प्रपश्यन्ति सततं विगतस्पृहाः ॥२२६॥
येऽधिक्षिप्ता न कुप्यन्ति न हिंसन्ति च हिंसिताः ।
समदुःखसुखाःसन्तो महात्मानो जितेन्द्रियाः ॥ २२७ ॥
ते हि सर्वे प्रपश्यन्ति पुरा चेरुर्महीमिमाम् ।
समाधिना चिन्तयन्तो ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ २२८ ॥
अथाभवदनावृष्टिःकदाचिन्महती तदा । कृच्छ्रं प्रायोह्यभूत्तत्र सर्वलोकःक्षुधार्दितः ॥
ततो निरन्नेलोकेऽस्मिश्चात्मानं ते परीप्सवः । मृतं कुमारमादाय कृच्छ्रप्रायास्तदापचन्
अथ पर्यचरत्तत्र क्लिश्यमानान्हि तानृषीन् । दृष्ट्वा राजा विषादार्त्तःप्रोवाचेदं वचस्तदा ॥

राजोवाच ।

प्रतिग्रहो ब्राह्मणानां दृष्ट्वा वृत्तिरनिन्दिता । तस्मात्प्रतिग्रहान्मत्तो गृह्णीध्वंमुनिसत्तमाः

वरान्ग्रामान्व्रीहियवान्रसान्रत्नानि काञ्चनम् ।
गाश्च धेनूश्च तत्सर्वं मा मांसं पचत द्विजाः ॥ २३३ ॥

ऋषय ऊचुः ।

राजन्प्रतिग्रहो घोरो मध्वास्वादो विषोपमः ।
तज्जानतां नःकस्मात्त्वं कुरुषे सम्प्रलोभनम् ॥ २३४ ॥

दशसूनासमश्चक्री दशचक्रिसमो ध्वजी । दशध्वजिसमा वेश्या दशवेश्यासमो नृपः ॥
दशसूना सहस्राणि यो वाहयति शौण्डिकः । तेन तुल्यस्ततोराजा घोरस्तस्य प्रतिग्रहः
यो राज्ञःप्रतिगृह्णाति ब्राह्मणो लोभमोहितः । तामिस्रादिषु घोरेषु नरकेषु सपच्यते ॥

तद्गच्छ कुशलं तेऽस्तु सहदानेन पार्थिव ।
अन्येषां दीयतामेतदित्युक्त्वा ते वनं ययुः ॥ २३८ ॥

अथराज्ञःसमादेशात्तत्र गत्वाथ मन्त्रिणः । उदुम्बराणि व्यकिरन्हेमगर्भाणि भूतले ॥

ततो ह्यन्नं विचिन्वन्तो गृह्णंश्चोदुम्बराण्यपि ।
गुरूणि हि विदित्वा तु न ग्राह्याण्यत्रिरब्रवीत् ॥ २४० ॥

अत्रिरुवाच ।

नास्महे मूढविज्ञाना नास्महे मन्दबुद्धयः । हैमानीमानि जानीमःप्रतिबुद्धाःस्मज्ञानिनः ॥
इहैवेदं वसुप्रीत्यै प्रेत्य वैकुण्ठितोदयम् । तस्मान्न ग्राह्यमेवैतत्सुखमानन्त्यमिच्छता ॥
शतेन गुणितं निष्कं सहस्रेण समन्वितम् । यश्चान्यतःप्रतीच्छेत्स पापिष्ठां लभतेगतिम्
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवःस्त्रियः । नूनं नैकस्य पर्याप्तमिति मत्वा शमंव्रजेत्

वसिष्ठ उवाच ।

तपसा संचयो यस्य द्रव्याणां यस्य संचयः ।
तपःसंचय एवेह विशिष्टो धनसंचयात् ॥ २४५ ॥

त्यजत संचयान्सर्वान्यान्ति नाशमुपद्रवाः । न हि संचयवान्कश्चिद्दृश्यते निरुपद्रवः ॥
यथायथा न गृह्णातिब्राह्मणोऽसत्प्रतिग्रहम् । तथातस्य हि संतोषाद् ब्राह्मं तेजोविवर्द्धते

अकिञ्चनत्वं राज्यं च तुलया समतोलयत् ।

अकिञ्चनत्वमधिकं राज्यादपि हितात्मनः ॥ २४८ ॥

कश्यप उवाच ।

अनर्थो ब्राह्मणस्यैष यस्त्वर्थ निचयो महान् ॥ २४९ ॥
अर्थैश्वर्यविमूढो हि श्रेयसो भ्रश्यते द्विजः । अर्थसंपद्विमोहाय विमोहो नरकाय च ॥
तस्मादर्थमनर्थाख्यं श्रेयोऽर्थीदूरतस्त्यजेत् । यस्य धर्मार्थमर्थेहा तस्यानीहा गरीयसी ॥
प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरम् । योऽर्थेन साध्यते धर्मःक्षयिष्णुःस प्रकीर्तितः
यः परार्थेपरित्यागःसोऽक्षयो मुक्तिलक्षणः ॥

भरद्वाज उवाच ।

जीर्यंति जीर्यतःकेशा दंता जीर्यन्ति जीर्यतः ॥ २५३ ॥
धनाशा जीविताशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यति । चक्षुःश्रोत्रे च जीर्येते तृष्णैका निरुपद्रवा
सूच्यासूत्रं यथावस्त्रे समानयति सूचकः । तद्वत्संसारसूत्रं हि तृष्णासूच्योपनीयते ॥
यथा शृंगं रुरोःकाये वर्द्धमाने च वर्द्धते । अनन्तपारा दुष्पूरा तृष्णादुःखशतावहा ॥
अधर्मबहुला चैव तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥

गौतम उवाच ।

संतुष्टः को न शक्नोति फलैश्चाप्यतिवर्तितुम् ॥ २५७ ॥
लुब्ध इन्द्रियलौल्येन संकटान्यवगाहते । सर्वत्र संपदस्तस्य संतुष्टं यस्य मानसम् ॥
उपानद् गूढपादस्य तस्य चर्मावृतेव भूः । संतोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम् ॥
कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम् । असंतोषःपरंदुखं सन्तोषःपरमंसुखम् ॥२६०
सुखार्थी पुरुषस्तस्मात्संतुष्टःसंततं भवेत् ॥

विश्वामित्र उवाच ।

कामं कामयमानस्य यदि कामःसमृद्ध्यति ॥ २६१ ॥
अथैनमपरःकामो भूयो विध्यति बाणवत् । न जातुकामःकामानामुपभोगेन शाम्यति ॥
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते । कामानभिलषन्मोहान्न नरःसुखमेधते ॥६३॥
श्येनालग्नतरुच्छायां व्रजन्निव कपिञ्जलः । चतुस्सागरपर्यन्तां यो भुंक्ते पृथिवीमिमाम् ॥

तुल्याश्मकाञ्चनो यश्च स कृतार्थो न पार्थिवः ॥

जमदग्निरुवाच ।

प्रतिग्रहसमर्थोऽपि नादत्ते यःप्रतिग्रहम् ॥ २६५ ॥

ये लोका दानशीलानां स तानाप्नोति शाश्वतान् ।

योऽर्थानिच्छेन्नृपाद्विप्रःशोचितव्यो महर्षिभिः ॥ २६६ ॥

न स पश्यति मूढात्मा नरके यातनाभयम् । प्रतिग्रहसमर्थोऽपि न प्रसज्येत्प्रतिग्रहे ॥

प्रतिग्रहेण विप्राणां ब्राह्मं तेजःप्रशाम्यति । प्रतिग्रहसमर्थानां निवृत्तानां प्रतिग्रहात् ॥

य एवं ददतां लोकास्त एवाप्रतिगृह्णताम् ॥

अरुन्धत्युवाच ।

बिसतंतुर्यथानित्यमम्भस्थस्सततं विशेत् ॥ २६९ ॥

तृष्णा चैवमनाद्यंतां तथा देहगतासदा । या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यतिजीर्यतः ॥

योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतःसुखम् ॥

चाण्डाल उवाच ।

उग्राद्यतो भयाद्यस्माद् बिभ्यतीमे महेश्वराः ॥ २७१ ॥

बलीयसां दुर्बलवत्तस्माच्चैव बिभेम्यहम् ॥

पशुसख उवाच ।

यदा चरन्ति विद्वांसःसदा धर्मपरायणाः ॥ २७२ ॥

तदेव विदुषा कार्यमात्मनो हितमिच्छता ।

इत्युक्त्वा हेमगर्भाणि त्यक्त्वा तानि फलानि वै ॥ २७३ ॥

ऋषयोजग्मुरन्यत्र सर्व एव दृढव्रताः । ततस्ते विचरन्तो वै मध्यमं पुष्करं गताः ॥

ददृशुःसहसा प्राप्तं परिव्राजंशुनःसखम् । तेनेह सहितास्तत्र गत्वा किञ्चिद्वनान्तरम् ॥

सरःपरमपश्यन्त वृतं पद्मैर्जलाशयम् । निविष्टाःसरसस्तीरे चिन्तयन्तो गतिंशुभाम् ॥

शुनःसखो मुनीन्सर्वानुवाच क्षुधितांस्तदा । सर्वे वदन्तु सहिताःकीदृशी क्षुत्प्रवेदना ॥

तमूचुः सहितास्ते तु परिव्राजंशुनः सखम् ॥

ऋषय ऊचुः ।

शक्तिखड्गगदाभिश्च चक्रतोमरसायकैः ॥ ७८ ॥

बाधितेवेदना या तु क्षुधयासापि निर्जिता । श्वासकुष्ठक्षयाष्ठीली ज्वरापस्मारशूलकैः
व्याधिभिर्जनितासापि क्षुधायानाधिकाभवेत् । हिरण्याङ्गदकेयूरमुकुटोज्ज्वलकुण्डलाः
क्षुधायां न विराजन्ते तत्रये संस्थिता नराः । यथा भूमिगतं तोयं रविरश्मिर्विकर्षति
तद्वच्छरीरजानाड्यःशोष्यन्ते जठराग्निना । न शृणोति न चाघ्राति चक्षुषा नैव पश्यति
दह्यते क्षीयते मूढः शुष्यते क्षुधयार्दितः । न पूर्वां दक्षिणां चापि पश्चिमां नोत्तरामपि
नचाधो नैव चोद्र्ध्वं च क्षुधाविष्टो हि विन्दति । मूकत्वं बधिरत्वं च जडत्वमथपङ्गुता
भैरवत्वममर्यादं क्षुधायां संप्रवर्द्धते । जनकं जननीं पुत्रान्भार्यां दुहितरं तथा ॥ २८५॥
भ्रातरं स्वजनं वापि त्यजति क्षुधयार्दितः । न पितॄन्पूजयेत्सम्यग्देवं चापि गुरुं तथा ॥
ऋषीनुपगतांश्चापि क्षुधाविष्टो न विन्दति । एवमन्नविहीनस्य भवन्त्येतानि देहिनाम्
अन्नात्परमतो लोके न भूतं न भविष्यति । अन्नमूलं जगत्सर्वमन्ने चैव प्रतिष्ठितम् ॥
पितरो देवदैत्याश्च यक्षराक्षसकिन्नराः । मनुष्याश्च पिशाचाश्च सर्वे चान्नमयाःस्मृताः

कुक्कुटा वायसाःश्वान आखुर्बिलेशयास्तथा ।

मत्स्याः कीटाः पिपीलाश्च सर्वे चान्नाशयाःस्मृता ॥ २९० ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन अन्नं दद जुषस्व च ।

अन्नदस्तृप्तिमाप्नोति शाश्वतीं स्थितिमक्षयाम् ॥ २९१ ॥

तपः सत्यं जपो होमोध्यानं योगःपरागतिः । स्वर्गश्चैव सुखप्राप्तिः सर्वमन्नात्प्रवर्तते

चान्द्रो वारुणलोकश्च याम्यः कौबेरकस्तथा ।

गोलोको ब्रह्मलोको वा सर्वे चान्ने प्रतिष्ठिताः ॥ २९३ ॥

चन्दनागरुधूपानि शिशिरेष्विन्धनानि च । अन्नदानस्य वै राजन्कलांनार्हन्तिषोड़शीम्
कूपारामवृषोत्सर्गवाप्यश्चायतनानि च । अन्नदानस्य चैतानि कलां नार्हन्ति षोड़शीम्
पानीयं भूमिगावश्च अन्नं च तुलया धृतम् । देवैरपि पुरा तात तेषामन्नं विशिष्यते ॥
अन्नं प्राणो बलं तेजो ह्यन्नं चैव पराक्रमः । अन्नात्संभवते तेजो ह्यन्नेनैव विवर्धते ॥

पौण्डरीकोऽश्वमेधश्च उक्थ षोड़शिकःक्रतुः । अग्निष्टोमस्त्रिरात्रश्चराजसूयोमहाधनः
सौत्रामणिर्वाजपेयो मानुषोऽथपशुस्तथा । अन्नमूलात्प्रवर्तन्ते सर्वे यज्ञाःसविस्तराः ॥
सपर्वतनदीचापि पृथिवी सर्वकानना । विधिना तेन सा दत्ता योऽन्नं ददाति सर्वदा
क्षुधिते नित्यमन्नं वै ददच्छ्रद्धासमन्वितः । ब्रह्महत्यादिकं पापं अन्नदश्चापकर्षति ॥
किमज्ञानं तु ते सौम्ययेनास्मान्परिपृच्छसि । ब्राह्मणेभ्योमहाभागक्षुधितेभ्योविशेषतः

सर्वदानानि दत्तानि सर्वे यज्ञाः सदक्षिणाः ।

देवताः पूजिताः सर्वायोऽन्नं ददाति नित्यशः ॥ ३०३ ॥

स स्नातः सर्वतीर्थेषु स सर्वव्रतपारगः । तद्देवं संप्रयच्छेत अन्नं श्रद्धासमन्वितः ॥
ब्रह्मभूतस्ततः सोऽथ ब्रह्मणा सह मोदते । सुसंस्कृतं च योऽप्यन्नं दद्यादहरहर्द्विजे ॥
यःपठेदन्नदानं तु श्राद्धे चैव विशेषतः । एकाग्रमानसो भूत्वा अमावस्येन्दुसंक्षये ॥
भूतोपघातसंपूर्णे श्राद्धे श्रावयते सदा । पितरस्तस्य तुष्यन्ति यावज्जीवं न संशयः ॥

देवद्विजसमीपस्थोऽन्नस्य दाता विमुच्यते ।

प्रबुद्धो वा प्रमत्तो वा प्रसंगादागतोऽपि वा ॥ ३०८ ॥

भक्त्याविरहितो वापि श्रृण्वन्पापाद्विमुच्यते । दानेनसंयुता विप्राः सुखिनोधर्मभागिनः
यमो दमो वै नियमः प्रोक्तस्तत्त्वार्थदर्शिभिः । ब्राह्मणानां विशेषेण दमो धर्मःसनातनः
दमस्तेजो वर्द्धयति पवित्रो दम उत्तमः । विपाप्मा चैव तेजस्वी पुरुषो दमतो भवेत् ॥
ये केचिन्नियमालोके ये च धर्माश्शुभान्वयाः । सर्वयज्ञफलं चापि दमस्तेभ्योविशिष्यते

तपो यज्ञस्तथा दानं दमादेव प्रवर्तते ।

किमरण्ये त्वदान्तस्य दान्तस्यापि किमाश्रमे ॥ ३१३ ॥

यत्र यत्र वसेद्दान्तस्तदरण्यं महाश्रमः । शीलवृत्तसमेतस्य निगृहीतेन्द्रियस्य च ।

आर्जवे वर्तमानस्य आश्रमैः किं प्रयोजनम् ॥ ३१४

वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः ।

अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् ॥ ३१५ ॥

सुकर्मधर्मार्जितजीवितानां सदा च सन्तुष्य गृहे रतानाम् ।

जितेन्द्रियाणामतिथिप्रियाणां गृहेऽपि धर्मो नियमस्थितानाम् ॥ ३१६ ॥

न शब्दशास्त्रे निरतस्य मोक्षो न चैव रम्यावसथप्रियस्य ।

न भोजनाच्छादनतत्परस्य न लोकचित्तग्रहणे रतस्य ॥ ३१७ ॥

एकांतशीलस्य दृढव्रतस्य सर्वेन्द्रियप्रीतिनिवर्तकस्य ।

अध्यात्मयोगे गतमानसस्य मोक्षो ध्रुवं नित्यमहिंसकस्य ॥ ३१८ ॥

सुखं च दान्तः स्वपिति सुखेन प्रतिबुध्यते । समः सर्वेषु भूतेषु मनो यस्य प्रबुध्यते ॥

न रथेन सुखं याति न हयेन न दन्तिना । यथात्मना विनीतेन सुखं याति महापथे ॥

न तु कुर्याद्धरिः स्पृष्टः सर्पोवाप्यतिरोषितः । अरिर्वानित्यसंक्रुद्धो यथात्मा दमवर्जितः

न यमं यममित्याहुरात्मा वै यमउच्यते । आत्मा वै यमितो येन स यमस्तु विशिष्यते

यमो यम इति प्रोक्तो वृथा तूद्विजते जनः ।

आत्मा वै यमितो येन यमस्तस्य करोति किम् ॥ ३२३ ॥

क्रव्यादेभ्यश्चभूतेभ्योऽदान्तेभ्यश्च सदाभयम् । तेषांविप्रतिषेधार्थं दण्डः सृष्टःस्वयंभुवा

दण्डो रक्षति भूतानि दण्डःपालयते प्रजाः । निवारयति पापिष्ठान्दण्डो दुर्जय एव वा

श्यामोयुवा लोहिताक्षःसर्वभूतभयावहः । दण्डःशास्ता मनुष्याणांयस्मिन्धर्म प्रतिष्ठितः

अथाश्रमेषु सर्वेषु दम एवोत्तमव्रतम् । तानि लिंगानि वक्ष्यामि यैर्दान्त इति कीर्त्यते

अकार्पण्यमपारुष्यं संतोषः सुविधानता ।

अनसूया गुरोः पूजा दया भूतेष्वपैशुनम् ॥ ३२८ ॥

षड्भिरेष दमः प्रोक्त ऋषिभिः शांतबुद्धिभिः ।

दयाधीनौ धर्ममोक्षौ तथा स्वर्गश्च पार्थिव ॥ ३२९ ॥

अपमाने न कुप्येत संमाने न प्रहृष्यति । समदुःखसुखोधीरः स शांत इति कीर्त्यते ॥

शेते सुखं हि शान्तस्तु सुखं हि प्रतिबुध्यते । श्रेयस्तरमतस्तिष्ठेदवमन्ता विनश्यति ॥

अपमानितस्तु न ध्यायेत्तस्य पापं कदाचन । स्वधर्ममपि चावेक्ष्य परधर्मं न दूषयेत् ॥

आत्मानमपि जानीयात्परं दोषैस्तुनाक्षिपेत् । मन्त्रैर्हीनं क्रियाभिर्वा जन्मनाप्यथवापुनः

दमश्छादयते सर्वं हीनमंगं पटो यथा । अधीयते निरर्थं ते नाभिजानन्ति ये दमम् ॥

श्रुतस्य हि दमो मूलं दमो धर्मः सनातनः। यो ह्यात्मनस्तुलयते सुवर्णं तुलया दमम्
स तेन धृतिमान्ख्यातो न तु द्रव्येण मोहितः। व्रतानामपि सर्वेषां दम एव परायणम्
यद्यधीते षडङ्गानि वेदतत्त्वार्थविद्द्विजः। दमेन तु विहीनश्च पूज्यत्वं नेह गच्छति॥

दमेन हीनं न पुनंति वेदा यद्यप्यधीताः सह षड्भिरंगैः।
साङ्ख्यं च योगश्च कुलं च जन्म तीर्थाभिषेकश्च निरर्थकानि॥ ३३८॥

अमृतस्येव तृप्येत अपमानस्य योगवित्। विषवच्च जुगुप्सेत संमानस्य सदा द्विजः॥
अपमानात्तपो वृद्धिः संमानाच्च तपःक्षयः। अर्चितःपूजितो विप्रो दुग्धा गौरिव गच्छति
पुनराप्यायते धेनुः सतृणैः सलिलैर्यथा। एवं जपैश्च होमैश्च पुनराप्यायते द्विजः॥
आक्रोशकसमो लोके सुहृदन्यो न विद्यते। यस्तु दुष्कृतमादाय सुकृतं स्वं प्रयच्छति
आक्रोशमानानाक्रोशेन्मन्युं स्वं विनिवर्तयेत्। सन्नियम्य तदात्मानममृतेनाभिषिञ्चति
कपालं वृक्षमूलानि कुचैलमसहायता। अनपेक्षा ब्रह्मचर्यं नयन्ति परमांगतिम्॥३४४॥
कामक्रोधौ विनिर्जित्य किमरण्येकरिष्यति। अभ्यासेन तु वै शास्त्रंकुलंशीले न धार्यते
गुणैर्मन्त्रा विधार्यन्ते·क्रोधस्सत्त्वेन धार्यते। यस्तुक्रोधं समुत्पन्नं संधारयतिचात्मनः
अक्रोधेन जपेद्धीरः कस्तेन सदृशो भुवि। यस्तु क्रोधं समुत्पन्नं सन्तं संयम्य तिष्ठति
तं सत्सारतमम्मन्ये नास्मिन्सीदति यः पुमान्। एष पैतामहो गुह्योब्रह्मराशिस्सनातनः

धर्मस्यनियमो यो हि मया ते कथितोभृशम्।
अन्ये च यज्वनां लोका अन्येचापि तपस्विनाम्॥ ३४६॥

अन्ये दमवतां लोकास्ते वै परमपूजिताः। एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते॥
यदिदं क्षमयायुक्तमशक्तम्मन्यते जनः। न चैष दोषो मन्तव्यः क्षमा प्रज्ञावतां बलम्॥
प्रशमं योऽभिजानाति इष्टापूर्तं महोयते। यत्क्रोधयुक्तो जपति जुहोति च यदर्चति॥
सर्वं क्षरति तत्तस्य भिन्नकुम्भादिवोदकम्। दमाध्यायमिमं पुण्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत्
स धर्मनावमारुह्य दुर्गाण्यतितरिष्यति। दमाध्यायमिमं पुण्यं सततं श्रावयेद्द्विजः॥
स ब्रह्मलोकमाप्नोति तस्मान्न·च्यवते पुनः। श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैतत्प्रधार्यताम्
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्। मातृवत्परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्ठवत्॥

आत्मवत्सर्वभूतानि यः पश्यति स पश्यति। पचनं वैश्वदेवार्थं परार्थं यस्य जीवितम्
पुत्रार्थं मैथुनं यस्य स्वर्गार्थं तस्य जीवितम्। एतद्धवेद्ध सर्वस्वं धातूनामिव काञ्चनम्
सर्वभूतहितं राजन्नधीत्यामृतमश्नुते।
एवं वै धर्मसर्वस्वमुक्त्वा ते तु शुनःसखम्॥ ३५६॥
तेनैव सहिताः सर्वे निविष्टास्सरसस्तटे। सरोऽपश्यन्सुविस्तीर्णं पद्मोत्पलजलावृतम्
तत्रावतारंकृत्वा ते बिसानि च कलापशः। तीरेनिक्षिप्य सरसश्चक्रुः पुण्यां जलक्रियाम्
अथोत्तीर्यजलात्तस्मात्ते समेत्य परस्परम्। बिसान्येतान्यपश्यन्त इदं वचनमब्रुवन्॥

ऋषय ऊचुः।

केन क्षुधाभितप्तानामस्माकं पापकर्मणाम्। नृशंसेनापनीतानि बिसान्याहारकाङ्क्षिणा
ते शङ्कमानास्त्वन्योन्यं पर्यपृच्छन्द्विजोत्तमाः। चक्रुश्च निश्चयं सर्वे शपथं प्रति पार्थिव

कश्यप उवाच।

सर्वत्र सर्वं हरतु न्यासलोपं करोतु च। कूटसाक्षित्वमभ्येतु बिसस्तैन्यं करोति यः॥
दम्भेन धर्मं चरतु राजानं चोपसेवताम्। मधु मांसं समश्नातु बिसस्तैन्यं करोति यः
अनृतं भाषतु सदा विषयांश्चोपसेवतु। ददातु कन्यां शुल्केन बिसस्तैन्यं करोति यः॥

वसिष्ठ उवाच।

अनृतौ मैथुनंयातु दिवा स्वप्नं निषेवतु। अन्योन्यातिथितामेतु बिसस्तैन्यं करोति यः
एककूपे वसेद्ग्रामे ब्राह्मणो वृषलीपतिः। तस्य सालोक्यतां यातु बिसस्तैन्यं करोति यः

भरद्वाज उवाच।

नृशंसस्सोऽस्तु सर्वेषु समृद्ध्या चाप्यहङ्कृतः।
मत्सरी पिशुनश्चैव बिसस्तैन्यं करोति यः॥ ३७०॥
प्रत्याक्रोशत्ववाक्रुष्टस्ताडयत्वन्यताडितः। विक्रीणातु रसांश्चैव बिसस्तैन्यंकरोति यः

गौतम उवाच।

अतिथिं त्वागतं प्राप्य पाकभेदं करोतु सः। शूद्रान्नं च सदाश्नातु बिसस्तैन्यंकरोतियः
दत्त्वा दानं कीर्तयतु परभार्यासुतुष्यतु। एकाकीमिष्टमश्नातु बिसस्तैन्यं करोति यः॥

विश्वामित्र उवाच ।

नित्यकामपरः सोऽस्तु दिवसे चैव मैथुनी ।
नित्यं तु पातकी चैव बिसस्तैन्यं करोति यः ॥ ३७४ ॥

परापवादं वदतु परदारांश्च सेवतु । परनिन्दारतश्चास्तु बिसस्तैन्यं करोति यः ॥३७५॥
मातरं पितरंचैव सोऽवमन्येतदुर्मतिः । स मातर्यन्यबुद्धिः स्याद्बिसस्तैन्यं करोति यः ॥
परपाकं सदाश्नातु परनारी च सेवतु । वेदविक्रयकृच्चास्तु बिसस्तैन्यं करोति यः ॥

जमदग्निरुवाच ।

परस्य या तु प्रेष्यत्वं स तु जन्मनि जन्मनि । सर्वधर्मक्रियाहीनो बिसस्तैन्यं करोतियः

शुनःसख उवाच ।

न्यायेन वेदानध्येतु गृहस्थोऽस्तु प्रियातिथिः ।
सत्यं वदतु वाजस्रं बिसस्तैन्यं करोति यः ॥ ३७६ ॥

अग्निं जुहोतु विधिवद्यज्ञं यजतु नित्यशः । ब्रह्मणस्सदनं यातु बिसस्तैन्यं करोति यः ॥

ऋषय ऊचुः ।

इष्टमेव द्विजातीनां यदिदं शपथीकृतम् । त्वया कृतं बिसस्तैन्यं सर्वेषां नः शुनः सख ॥

शुनःसख उवाच ।

मया ह्यन्तर्हितान्यासन्बिसानीमानि वो द्विजाः ।
धर्मं च श्रोतुकामेन जानीध्वं मां च वासवम् ॥ ३८२ ॥
अलोभादक्षया लोका जिता वो मुनिसत्तमाः ।
विमानमधितिष्ठध्वं गच्छामस्त्रिदशालयम् ॥ ३८३ ॥

ततो महर्षयस्ते तु विज्ञायाथ पुरन्दरम् । ऊचुः पुरन्दरंचेदं वाक्यं वाक्यविशारदाः ॥
इहागत्य नरो यस्तु मध्यमं पुष्करंविशेत् । त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा लभेदावश्यकंफलम्

द्वादशे वार्षिकी दीक्षा स्मृता या तु वनौकसाम् ।
तस्याः फलं समग्रं च लभेदिह न संशयः ॥ ३८६ ॥

नासौ दुर्गतिमाप्नोति स्वगणैःसहमोदते । विरिञ्चिस्थानमासाद्य तिष्ठेद्ब्रह्मणो दिनम्

पुलस्त्य उवाच ।

इन्द्रेणसह संप्रीतास्तदाजग्मुस्त्रिविष्टपम् । एवं विलोभ्यमानास्ते लोभैर्बहुविधैरिह ॥
नैव लोभं तदा चक्रुस्तेन जग्मुस्त्रिविष्टपम् । इदंयःश्रृणुयान्नित्यमृषीणां चरितं शुभम्
विमुक्तः सर्वपापेभ्यः स्वर्गलोके महीयते ॥ ३६० ॥

इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे सप्तर्षिसंवादो नामैकोनविंशोऽध्यायः ।

विंशोऽध्यायः

पुष्पवाहननृपत्याख्यानम् ।

भीष्म उवाच ।

अत्याश्चर्यवती रम्या कथेयं पापनाशिनी । विस्तरेण च मे ब्रूहि याथातथ्येन पृच्छतः ॥
माहात्म्यं मध्यमस्यापि ऋषिभिः परिकीर्तितम् ।
फलं चान्नस्य कथितं माहात्म्यं च दमस्य तु ॥ २ ॥
विष्णुना च पदन्यासः कृतोयत्र महामुने । कनीयसस्तथोत्पत्तिर्यथा भूता वदस्व मे ॥

पुलस्त्य उवाच ।

पुरारथन्तरे कल्पे राजासीत्पुष्पवाहनः । नाम्ना लोकेषु विख्यातस्तेजसा सूर्यसन्निभः॥
तपसा तस्य तुष्टेन चतुर्वक्त्रेण भारत । कमलं काञ्चनं दत्तं यथाकामगमं नृप ॥ ५ ॥
सप्तद्वीपानि लोकं च यथेष्टं विचरत्सदा । कल्पादौ तु समं द्वीपं तस्य पुष्करवासिना
लोकेन पूजितं तस्मात्पुष्करद्वीपमुच्यते । तदेव ब्रह्मणादत्तं यानमस्य ततोऽम्बुजम् ॥
पुष्पवाहन इत्याहुस्तस्मात्तं देवदानवाः ॥ ८ ॥
नौपम्यमस्तीह जगत्त्रयेऽपि ब्रह्माम्बुजस्थस्य च तस्य राज्ञः ।
तपोऽनुभावादथ तस्य राज्ञी नारी सहस्त्रैरभिवन्द्यमाना ।
नाम्ना च लावण्यवती बभूव या पार्वती वेष्टतमा भवस्य ॥ ६ ॥

तस्यात्मजानामयुतं बभूव धर्मात्मनामग्र्य धनुर्धराणाम् ।
तदात्मजांस्तानभिवीक्ष्य राजा मुहुर्मुहुर्विस्मयमाससाद ॥ १० ॥
सोऽभ्यागतं पूज्य मुनिप्रवीरं प्रचेतसं वाक्यमिदं बभाषे ।
कस्माद्विभूतिरचलामरमर्त्यपूजा जाता कथं कमलजा सदृशी सुराज्ञी ॥११॥
भार्या मयाल्पतपसा परितोषितेन दत्तं ममाम्बुजगृहं च मुनीन्द्र धात्रा ।
यस्मिन्प्रविष्टमपि कोटिशतं नृपाणां सामात्यकुञ्जररथौघजनावृतानाम् ॥१२
नालक्ष्यते क्वगतमम्बरगामिभिश्च तारागणेन्दु रविरश्मिभिरप्यगम्यम् ।
तस्मात्किमन्यजननीजठरोद्भवेन धर्मादिकं कृतमशेषजनातिगं यत् ॥ १३ ॥
सर्वैर्मयाथ तनयैरथवानयापि सद्भार्यया तदखिलं कथय प्रचेतः ।
सोऽप्यभ्यधादथभवान्तरितं निरीक्ष्य पृथ्वीपते शृणु तदद्भुत हेतुवृत्तम् ॥
जन्माभवत्तव तु लुब्धकुलेऽपि घोरं जातस्त्वमप्यनुदिनं किल पापकारी ।
वपुरप्यभूत्तव पुनः परुषाङ्गसन्धि दुर्गन्धिसत्त्वकुनखाभरणं समन्तात् ॥१५
नो ते सुहृन्नसुतबन्धुजनो न तादृङ् नैव स्वसा न जननी च तदाभिशस्ता ।
अतिसंमतापरमभीष्टतमाभिमुखी जाता महीश तव योषिदियं सुरूपा ॥१६॥
अभूदनावृष्टिरतीव रौद्रा कदाचनाहारनिमित्तमस्याम् ।
क्षुत्पीडितेन भवता तु यदा न किञ्चिदासादितं वन्यफलादिभक्ष्यम् ॥ १७॥
अथाभिदृष्टं महदम्बुजाढ्यं सरोवरं पङ्कपरीतरोधः ।
पद्मान्यथादायततो बहूनि गतः पुरं वैदिश नामधेयम् ॥ १८ ॥
तन्मूल्यलाभाय पुरं समस्तं भ्रान्तं त्वयाशेषमहस्तदासीत् ।
क्रेता न कश्चित्कमलेषु जातः क्लान्तः परं क्षुत्परिपीडितश्च ॥ १९ ॥

उपविष्टस्त्वमेकस्मिन्सभार्यो भवनाङ्गणे । ततो रात्रौ भवांस्तत्र अश्रौषीन्मङ्गलध्वनिम्
सभार्यस्तत्रगतवान्यत्रासौ मङ्गलध्वनिः । तत्रमण्डलमध्यस्था विष्णोरर्चाविलोकिता
वेश्यानङ्गवती नाम बिभ्रती द्वादशीव्रतम् । समाप्य माघमासस्य द्वादश्यां लवणाचलम्
न्यवेदयत्तु गुरवे शय्यांचोपस्करान्विताम् ।

अलङ्कृत्य हृषीकेशं सौवर्णं सममादरात् ॥ २३ ॥
सा तु दृष्टा ततस्ताभ्यामिदं च परिचिन्तितम् । किमेभिःकमलैःकार्यंवरं विष्णुरलंकृतः
इति भक्तिस्तदा जाता दम्पत्योस्तु नरेश्वर । तत्प्रसङ्गात्समभ्यर्च्य केशवंलवणाचलम्
शय्या च पुष्पप्रकरैः पूजिताऽभूच्च सर्वशः । अथानङ्गवती तुष्टा तयोर्धान्यशतत्रयम् ॥
दीयतामादिदेशाथ कलधौतपलत्रयम् । न गृहीतं ततस्ताभ्यां महासत्त्वावलम्बनात् ॥
अनङ्गवत्या च पुनस्तयोरन्नं चतुर्विधम् । आनीय व्याहृतं चान्नं भुज्यतामिति भूपते ॥
ताभ्यां च तदपि त्यक्तं भोक्ष्यावः श्वो वरानने ।
प्रसङ्गादुपवासो नौ तवाद्यास्तु शुभावहः ॥ २६ ॥
जन्मप्रभृति पापिष्ठावावां देवि दृढव्रते । त्वत्प्रसङ्गाद्भवद्गेहे धर्मलेशोऽस्तु नाविह ॥३०
इति जागरणं ताभ्यां तत्प्रसङ्गादनुष्ठितम् । प्रभाते च तया दत्ता शय्या सलवणाचला
ग्रामश्च गुरवे भक्त्या विप्रेभ्यो द्वादशैव तु । वस्त्रालंकारसंयुक्ता गावश्च कनकान्विताः
भोजनं च सुहृन्मित्रदीनान्धकृपणैःसह । तच्च लुब्धकदाम्पत्यं पूजयित्वा विसर्जितम्
स भवांल्लुब्धको जातः सपत्नीको नृपेश्वरः ।
पुष्करप्रकरात्तस्मात्केशवस्य तु पूजनात् ॥ ३४ ॥
विनष्टाशेषपापस्य तव पुष्करमन्दिरम् । तस्य सत्यस्य माहात्म्यादलोभतपसा नृप ॥
प्रादात्कामगमं यानं लोकनाथश्चतुर्मुखः । संतुष्टस्तवराजेन्द्र पुष्करं त्वं समाश्रय ॥३६
कल्पं स त्वं समासाद्य विभूतिद्वादशीव्रतम् । कुरु राजेन्द्र निर्वाणमवश्यं समवाप्स्यसि
एतदुक्त्वा तु स मुनिस्तत्रैवान्तरधीयत । राजा यथोक्तं च पुनरकरोत्पुष्पवाहनः ३८॥
इदमाचरतो राजन्नखण्डव्रतता भवेत् । यथाकथंचित्कालेन द्वादशद्वादशीर्नृप ॥ ३९ ॥
कर्तव्या शक्तितो देव विप्रेभ्यो दक्षिणा नृप । ज्येष्ठे गावः प्रदातव्यामध्यमेभूमिरुत्तमा
कनिष्ठे काञ्चनं देयमित्येषा दक्षिणा स्मृता । प्रथमं ब्रह्मदैवत्यं द्वितीयं वैष्णवं तथा ॥
तृतीयं रुद्रदैवत्यं त्रयो देवास्त्रिषु स्थिताः ॥ ४१ ॥
इति कलुषविदारणं जनानां पठति च यस्तु शृणोति चापि भक्त्या ।
मतिमपि च स याति देवलोके वसति च रोमसमा निवत्सराणि ॥ ४२ ॥

अथातः संप्रवक्ष्यामि व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥ ४३ ॥
कथितं तेन रुद्रेण महापातकनाशनम् । नक्तमब्दं चरित्वा तु गवा सार्द्धं कुटुम्बिने ॥
हैमं चक्रं त्रिशूलं च दद्याद्विप्राय वाससी । एवं यः कुरुते पुण्यं शिवलोके समोदते ॥
एतदेव व्रतं नाम महापातकनाशनम् । यस्त्वेकभक्तेन क्षिपेद्धेनुं वृषसमन्विताम् ॥४६॥
धेनुं तिलमयीं दद्यात्स पदं याति शांकरम् । एतद्रुद्रव्रतं नाम भयशोकविनाशनम् ॥
यश्च नीलोत्पलं हैमं शर्करापात्रसंयुतम् । एकान्तरितनक्ताशी समांतेवृषसंयुतम् ॥४८॥
वैष्णवं स पदं याति नीलव्रतमिदं स्मृतम् । आषाढादि चतुर्मासमभ्यगं वर्जयेन्नरः ॥
भोजनोपस्करं दद्यात्स याति भवनं हरेः । जनप्रीतिकरं नृणां प्रीतिव्रतमिहोच्यते ॥
वर्जयित्वा मधौयस्तु दधिक्षीरघृतैक्षवम् । दद्याद्वस्त्राणिसूक्ष्माणि रसपात्रेणसंयुतम् ॥
संपूज्य विप्रमिथुनं गौरी मे प्रीयतामिति । एतद्गौरीव्रतंनाम भवानीलोकदायकम् ॥
पुष्यादौ यस्त्रयोदश्यां कृत्वा नक्तमथोपुनः । अशोकं काञ्चनं दद्यादिक्षुयुक्तंदशाङ्गुलम्
विप्राय वस्त्रसंयुक्तं प्रद्युम्नःप्रीयतामिति । कल्पं विष्णुपुरेस्थित्वाविशोकस्स्यात्पुनर्नृप
एतत्कामव्रतं नाम सदाशोक विनाशनम् । आषाढादिव्रतेयस्तुवर्जयेद्यःफलाशनम् ॥
चातुर्मास्ये निवृत्ते तु घटंसर्पिर्गुडान्वितम् । कार्तिक्यां तत्पुनर्हैमंब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥
सरुद्रलोकमाप्नोति शिवव्रतमिदं स्मृतम् । वर्जयेद्यस्तु पुष्पाणि हेमन्तेशिशिरावृते ॥
पुष्पत्रयं च फाल्गुन्यां कृत्वा शतयाचकाञ्चनम् । दद्याद्विकालवेलायांप्रीयेतांशिवकेशवौ
दत्त्वा परंपदंयाति सौम्यव्रतमिदंस्मृतम् । फाल्गुनादि तृतीयायां लवणंयस्तु वर्जयेत्
समांते शयनं दद्याद् गृहंचोपस्करान्वितम् । संपूज्य विप्रमिथुनं भवानीप्रीयतामिति ॥
गौरीलोके वसेत्कल्पं सौभाग्यव्रतमुच्यते । सन्ध्यामौनं नरःकृत्वा समांतेघृतकुम्भकम्
वस्त्रयुग्मं तिलान्घण्टां ब्राह्मणाय निवेदयेत् । लोकं सारस्वतं यातिपुनरावृत्तिदुर्लभम्
एतत्सारस्वतंनाम रूपविद्याप्रदायकम् । लक्ष्मीमभ्यर्च्य पञ्चम्यामुपवासीभवेन्नरः ॥
समांते हेमकमलं दद्याद्धेनुसमन्वितम् । स वै विष्णुपदंयाति लक्ष्मीःस्याज्जन्मजन्मनि
एतल्लक्ष्मीव्रतंनाम दुःखशोकविनाशनम् । कृत्वोपलेपनं शम्भोरग्रतःकेशवस्य च ॥६५ ॥
यावदब्दं पुनर्देया धेनुर्जलघटस्तथा । जन्मायुतं स राजास्यात्ततःशिवपुरं व्रजेत् ॥६६॥

एतदायुर्व्रतंनाम सर्वकामप्रदायकम् । अश्वत्थं भास्करं गङ्गां प्रणम्यैकाग्रमानसः ॥
एकभक्तंनरःकुर्यादब्दमेकं विमत्सरः । व्रतांते विप्रमिथुनं पूज्यं धेनुत्रयान्वितम् ॥६८॥
वृक्षं हिरण्मयंदद्यात्सोऽश्वमेध फलं लभेत् । एतत्कीर्तिव्रतंनाम भूतिकीर्तिफलप्रदम् ॥
घृतेन स्नपनं कृत्वा शम्भोर्वाकेशवस्य वा । अक्षताभिःसपुष्पाभिःकृत्वा गोमयमण्डलम्
समांते हेमकमलं तिलधेनुसमन्वितम् । शूलमष्टाङ्गुलंदद्याच्छिवलोकेमहीयते ॥ ७१ ॥
सामगायनकंचैव सामव्रतमिहोच्यते । नवम्यामेकभक्तं तु कृत्वा कन्याश्च शक्तितः ॥

भोजयित्वा समंदद्याद्धेमकंचुकवाससी ।
हैमं सिंहं च विप्राय दद्याच्छिवपदं व्रजेत् ॥ ७३ ॥

जन्मार्बुदसुरूपःस्याच्छत्रुभिश्चापराजितः । एतद्वीरव्रतंनाम नराणां च सुखप्रदम् ॥७४॥
चैत्रादि चतुरोमासाञ्जलंदद्याद्दयान्वितः । व्रतान्ते मणिकंदद्यादन्नंवस्त्रसमन्वितम् ॥
तिलपात्रं हिरण्यं च ब्रह्मलोके महीयते । कल्पान्ते भूतिजननमानंदव्रतमुच्यते ॥ ७६ ॥
पंचामृतेन स्नपनं कृत्वा संवत्सरं विभोः । वत्सरान्ते पुनर्दद्याद्धेनुं पञ्चामृतान्विताम् ॥
विप्राय दद्याच्छंखं च स पदं याति शांकरम् । राजा भवति कल्पान्तेधृतिव्रतमिदंस्मृतम्
वर्जयित्वा पुमान्मांसं व्रतान्ते गोप्रदो भवेत् । तद्वद्धेममृगं दद्यात्सोऽश्वमेधफलं लभेत्

अहिंसाव्रतमित्युक्तं कल्पांते भूपतिर्भवेत् ।
कल्यमुत्थाय वै स्नानं कृत्वा दाम्पत्यमर्चयेत् ॥ ८० ॥

भोजयित्वा यथाशक्ति माल्यवस्त्रविभूषणैः । सूर्यलोके वसेत्कल्पं सूर्यव्रतमिदं स्मृतम् ॥
आषाढ़ादिचतुर्मासं प्रातःस्नायी भवेन्नरः । विप्राय भोजनं दत्त्वा कार्तिक्यांगोप्रदोभवेत्
सवैष्णवं पदं याति विष्णुव्रतमिदं स्मृतम् । अयनादयनं यावद्वर्जयेत्पुष्पसर्पिषी ॥८३
तदन्ते पुष्पमन्नानि घृतधेन्वा सहैव तु । दत्त्वा शिवपदं याति विप्राय घृतपायसम् ॥
एतच्छीलव्रतंनाम शीलारोग्यफलप्रदम् । यावत्समं भेवेद्यस्तु पञ्चदश्यां पयोव्रतः ॥
समान्ते श्राद्धकृद्दद्याद्गाश्च पञ्चपयस्विनीः । वासांसि च पिशङ्गानि जलकुम्भयुतानि च
स याति वैष्णवं लोकं पितॄणां तारयेच्छतम् । कल्पान्तेराजराजेन्द्र पितृव्रतमिदंस्मृतम्
सन्ध्यादीपप्रदो यस्तु घृतैस्तैलं विवर्जयेत् । समान्ते दीपकं दद्याच्चक्रं शूलं च काञ्चनम्

वस्त्रयुग्मं च विप्राय स तेजस्वी भवेन्नरः । रुद्रलोकमवाप्नोति दीप्तिव्रतमिदं स्मृतम् ॥
कार्तिकादितृतीयायां प्राश्यगोमूत्रयावकम् ॥ नक्तंचरेदब्दमेकमब्दान्तेगोप्रदोभवेत् ॥
गौरीलोके वसेत्कल्पं ततो राजा भवेदिह । एतद्रुद्रव्रतं नाम सदा कल्याणकारकम् ॥
वर्जयेच्चतुरोमासान्यस्तु गन्धानुलेपनम् । शुक्तिगन्धाक्षतान्दद्याद्विप्राय सितवाससी ॥
वारुणं पदमाप्नोति दृढव्रतमिदं स्मृतम् । वैशाखे पुष्पलवणं वर्जयेदथ गोप्रदः ॥ ६३ ॥
भूत्वा विष्णुपदे कल्पं स्थित्वाराजाभवेदिह । एतच्छान्तिव्रतं नाम कीर्तिकामफलप्रदम्
ब्रह्माण्डं काञ्चनं कृत्वातिलराशिसमन्वितम् । घृतेनान्यप्रदो भूत्वा वह्निं संतर्प्यसद्विजम्
संपूज्य विप्रदाम्पत्यं माल्यवस्त्रविभूषणैः । शक्तितस्त्रिपलादूर्ध्वं विश्वात्मा प्रीयतामिति
पुण्येऽह्नि दद्यादपरे ब्रह्म यात्यपुनर्भवम् । एतद्ब्रह्मव्रतं नाम निर्माणफलदं नृणाम्॥६७॥
यश्चोभयमुखीं दद्यात्प्रभूतसकलान्विताम् । दिनं पयोव्रतं तिष्ठेत्स याति परमं पदम् ॥
एतद्वै सुव्रतं नाम पुनरावृत्तिदुर्लभम् । त्र्यहं पयोव्रतः स्थित्वा काञ्चनं कल्पपादपम् ॥

पलादूर्ध्वं यथाशक्ति तण्डुलप्रस्थसंयुतम ।
दत्त्वा ब्रह्मपदं याति भीमव्रतमिदं स्मृतम् ॥ १०० ॥

मासोपवासी यो दद्याद्धेनुं विप्रायशोभनाम् । सवैष्णवपदं याति भीमतव्रमिदं स्मृतम्
दद्याद्विंशत्पलादूर्ध्वं महीं कृत्वा तु काञ्चनीम् । दिनं पयोव्रतस्तिष्ठेद्रुद्रलोके महीयते ॥
धनप्रदमिदं प्रोक्तं सप्तकल्पशतानुगम् । माघे मास्यथ चैत्रे वा गुडधेनुप्रदो भवेत् ॥
गुडव्रतं तृतीयायां गौरीलोके महीयते । महाव्रतमिदं नाम परमानन्दकारकम् ॥१०४॥

पक्षोपवासी यो दद्याद्विप्राय कपिलाद्वयम् ।
स ब्रह्मलोकमाप्नोति देवासुरसुपूजितः ॥ १०५ ॥

कल्पान्ते सर्वराजा स्यात्प्रभाव्रतमिदं स्मृतम् । वत्सरंत्वेकभक्ताशी सभक्ष्यजलकुम्भदः
शिवलोके वसेत्कल्पं प्राप्तिव्रतमिदंस्मृतम् । नक्ताशीत्वष्टमीषु स्याद्वत्सरान्ते तु धेनुदः
पौरन्दरं पुरं याति सुगतिव्रतमुच्यते । इन्धनं यो ददेद्विप्रे वर्षादींश्चतुरस्त्वृतून् ॥१०८॥

घृतधेनुप्रदोऽन्ते च स परं ब्रह्म गच्छति ।
वैश्वानरव्रतं नाम सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १०६ ॥

एकादश्यां तु नक्ताशी यश्चक्रं विनिवेदयेत् ।
कृत्वा समान्ते सौवर्णं विष्णोः पदमवाप्नुयात् ॥ ११० ॥
एतत्कृष्णव्रतंनाम कल्पान्तेराज्यलाभकृत् । पायसाशीसमान्ते तु दद्याद्विप्राय गोयुगम्
लक्ष्मीलोके वसेत्कल्पमेतद्देवीव्रतं स्मृतम् । सप्तम्यां नक्तभुग्दद्यात्समाप्ते गां पयस्विनीम्
सूर्यलोकमवाप्नोति भानुव्रतमिदं स्मृतम् । चतुर्थ्यां नक्तभुग्दद्याद्धेमन्ते गोयुगं तथा ॥
एतद्वैनायकं नाम शिवलोकफलप्रदम् ।
महाफलानि यस्त्यक्त्वा चातुर्मास्यं द्विजातये ॥ ११४ ॥
हैमानि कार्तिके दद्याद्धोमान्ते गोयुगं तथा । एतत्सौरव्रतं नाम सूर्यलोकफलप्रदम् ॥
द्वादशद्वादशीर्यस्तु समाप्योपोषणे नृप । गोवस्त्रकाञ्चनैर्विप्रान्पूजयेच्छक्तितो नरः ॥
परं पदमवाप्नोति विष्णुव्रतमिदं स्मृतम् । चतुर्दश्यां तु नक्ताशी समान्ते गोयुगप्रदः ॥
शैवं पदमवाप्नोति त्रैयम्बकमिदं स्मृतम् । सप्तरात्रोषितो दद्याद्घृतकुम्भं द्विजातये ॥
वरव्रतमिदं प्राहुर्ब्रह्मलोकफलप्रदम् । असौ काशीं समासाद्य धेनुं दत्ते पयस्विनीम् ॥
शक्रलोके वसेत्कल्पमिदं मन्त्रव्रतं स्मृतम् ।
मुखवासं परित्यज्य समांते गोप्रदो भवेत् ॥ १२० ॥
वारुणं लोकमाप्नोति वारुणव्रतमुच्यते । चान्द्रायणं च यः कुर्याद्धैमं चन्द्रं निवेदयेत्
चन्द्रव्रतमिदं प्रोक्तं चन्द्रलोकफलप्रदम् । ज्येष्ठे पञ्चतपा योऽन्ते हेमधेनुप्रदो दिवम् ॥
यात्यष्टमीचतुर्दश्यो रुद्रव्रतमिदं स्मृतम् । सकृद्विधानकं कुर्यात्तृतीयायां शिवालये ॥
समाप्तेधेनुदो यातिभवानीव्रतमुच्यते । माघेनिश्यार्द्रवासाः स्यात्सप्तम्यां गोप्रदोभवेत्
दिवि कल्पं वसित्वेह राजा स्यात्पवनव्रतम् ।
त्रिरात्रोपोषितो दद्यात्फाल्गुन्यां भवनं शुभम् ॥ १२५ ॥
आदित्यलोकमाप्नोति धामव्रतमिदंस्मृतम् । त्रिसन्ध्यंपूज्य दाम्पत्यमुपवासी विभूषणैः
ददन्मोक्षमवाप्नोति मोक्षव्रतमिदं स्मृतम् ।
दत्त्वा सितद्वितीयायामिन्दौ लवणभाजनम् ॥ १२७ ॥
समाप्ते गोप्रदो याति विप्राय शिवमन्दिरम् । कांस्यंसवस्त्रं राजेन्द्र दक्षिणासहितं तथा

समाप्ते गांच योदद्यात्सयातिशिवमन्दिरम् । कल्पान्तेराजराजस्स्यात्सोमव्रतमिदंस्मृतम्
प्रतिपत्स्वेकभक्ताशी समाप्ते च फलप्रदः । वैश्वानरपदं याति शिखिव्रतमिदं स्मृतम् ॥
हैमं पलद्वयादूर्ध्वं रथमश्वयुगान्वितम् । दद्यात्कृतोपवासः स दिविकल्पशतं वसेत् ॥
तदन्ते राजराजस्स्यादश्वव्रतमिदं स्मृतम् । तद्वद्धेमरथं दद्यात्करिभ्यां संयुतं पुनः ॥

सत्यलोके वसेत्कल्पं सहस्रमपि भूमिपः ।
भवेदिहागतो भूम्यां करिव्रतमिदं स्मृतम् ॥ १३३ ॥

दशम्यामेकभक्ताशी समाप्ते दशधेनुदः । दीपं च काञ्चनं दद्याद्ब्रह्माण्डाधिपतिर्भवेत् ॥
एतद्विश्वव्रतं नाममहापातकनाशनम् । कन्यादानंतुकार्तिक्यां पुष्करे यःकरिष्यति ॥

एकविंशद्गुणोपेतो ब्रह्मलोकं गमिष्यति ।
कन्यादानात्परं दानं नैव चास्त्यधिकं क्वचित् ॥ १३६ ॥

पुष्करेतुविशेषेण कार्तिक्यां तु विशेषतः । विप्रायविधिवद्देयन्तेषां लोकोऽक्षयो भवेत्

तिलपिष्टमयं कृत्वा गजं रत्नसमन्वितम् ।
विप्राय ये प्रयच्छन्ति जलमध्ये स्थिता नराः ॥ १३८ ॥

तेषां चैवाक्षयो लोको भविताऽऽभूतसंप्लवम् । यः पठेच्छृणुयाद्वापि व्रतषष्टिमनुत्तमाम्

मन्वन्तरशतं सोऽपि गन्धर्वाधिपतिर्भवेत् ॥ १३९ ॥
षष्टिव्रतं भारत पुण्यमेतत्तवोदितं विश्वजनीनमद्य ॥
श्रोतुं यदीच्छा तव राजराज शृणु द्विजातेः करणीयमेतत् ॥ १४० ॥
नैर्मल्यं भावशुद्धिश्च विना स्नानं न विद्यते ॥ १४१ ॥

तस्मान्मनोविशुद्ध्यर्थं स्नानमादौ विधीयते । अनुद्धृतैरुद्धृतैर्वाजलैःस्नानं समाचरेत्
तीर्थं प्रकल्पयेद्विद्वान्मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् । नमो नारायणायेति मूलमन्त्र उदाहृतः ॥
सदर्भपाणिर्विधिना आचान्तः प्रयतः शुचिः । चतुर्हस्तसमायुक्तं चतुरस्रं समन्ततः ॥
प्रकल्प्यावाहयेद्गंगामेभिर्मन्त्रैर्विचक्षणः । विष्णोः पादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुदेवता ॥

त्राहि नस्त्वेनसस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात् ।
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत् ॥ १४६ ॥

दिवि भुव्यंतरिक्षे च तानि ते सन्ति जाह्नवि। नन्दिनीत्येव ते नाम देवेषु नलिनीति च
दक्षापृथ्वी च सुभगा विश्वकायाशिवा सिता। विद्याधरीसुप्रसन्ना तथालोकप्रसादिनी

क्षेमा च जाह्नवी चैव शान्ता शान्तिप्रदायिनी।
एतानि पुण्यनामानि स्नानकाले प्रकीर्त्तयेत्॥ १४९॥

भवेत्सन्निहिता तत्र गङ्गा त्रिपथगामिनी। सप्तवाराभिजप्तेन करसंपुटयोजितम्॥१५०॥
मूर्ध्नि कुर्याज्जलं भूयस्त्रिचतुः पञ्च सप्तधा। स्नानं कुर्यान्मृदा तद्वदामन्त्र्य तु विधानतः
अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे। मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्
उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना। नमस्ते सर्वलोकानां प्रभवारणि सुव्रते॥
एवं स्नात्वा ततःपश्चादाचम्य तु विधानतः। उत्थायवाससी शुभ्रे शुद्धे तु परिधाय वै
ततस्तु तर्पणं कुर्यात्त्रैलोक्याप्यायनाय वै। ब्रह्माणं तर्पयेत्पूर्वं विष्णुं रुद्रं प्रजापतीन्॥

देवा यक्षास्तथा नागा गन्धर्वाप्सरसां गणाः।
क्रूरास्सर्पास्सुपर्णाश्च तरवो जम्भकादयः॥ १५६॥

विद्याधरा जलधरास्तथैवाकाशगामिनः। निराधाराश्च ये जीवा पापधर्मरताश्च ये॥
तेषामाप्यायनायैतद्दीयते सलिलं मया। कृतोपवीतो देवेभ्यो निवीती च भवेत्ततः॥
मनुष्यांस्तर्पयेद्भक्त्या ऋषिपुत्रानृषींस्तथा। सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः॥
कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिखस्तथा। सर्वे ते तृप्तिमायान्तु मद्दत्तेनाम्बुना सदा

मरीचिमत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च॥ १६१॥

देवब्रह्मऋषीन्सर्वांस्तर्पयेत्साक्षतोदकैः। अपसव्यं ततः कृत्वा सव्यं जानु च भूतले॥

अग्निष्वात्तांस्तथा सौम्यान्हविष्मन्तस्तथोष्मपान्।
सुकालिनो बर्हिषदस्तथा चैवाज्यपान्पुनः॥ १६३॥

संतर्पयेत्पितॄन्भक्त्या सतिलोदकचन्दनैः। सदर्भपाणिर्विधिना पितॄन्स्वांस्तर्पयेत्ततः॥
पत्रादीन्नामगोत्रेण तथा मातामहानपि। संतर्प्य विधिवद्भक्त्या इमं मन्त्रमुदीरयेत्॥

येऽबान्धवा बान्धवा ये येऽन्यजन्मनि बान्धवाः।

ते तृप्तिमखिला यान्तु येऽप्यस्मत्तोयकाङ्क्षिणः ॥ १६६ ॥

आचम्य विधिना सम्यगालिखेत्पद्ममग्रतः । साक्षताद्भिस्सपुष्पाभिः सतिलागरुचन्दनैः
अर्घ्यं दद्यात्प्रयत्नेन सूर्यनामानुकीर्तनैः । नमस्ते विश्वरूपाय नमस्ते विष्णुरूपिणे ॥
सर्वदेव नमस्तेऽस्तु प्रसीद मम भास्कर । दिवाकर नमस्तेऽस्तु प्रभाकर नमोऽस्तु ते

एवं सूर्यं नमस्कृत्य त्रिःकृत्वा च प्रदक्षिणम् ।
द्विजं गां काञ्चनं चैव दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा गृहं व्रजेत् ॥ १७० ॥

स्वगेहस्थां ततःपुण्यां प्रतिमां चापिपूजयेत् । भोजनंच ततः पश्चाद्द्विजपूर्वंच कारयेत्

अनेन विधिना सर्वे ऋषयः सिद्धिमागताः ॥ १७२ ॥

इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे स्नानविधिर्नामविंशोऽध्यायः ।

एकविंशोऽध्यायः

धर्ममूर्तिराजकथानकम् ।

पुलस्त्य उवाच ।

आसीत्पुरा बृहत्कल्पे धर्ममूर्तिर्जनाधिपः । सुहृच्छक्रस्य निहता येन दैत्यास्सहस्रशः ॥
सोमसूर्यादयो यस्य तेजसा विगतप्रभाः । भवन्ति शतशो येन दानवाश्च पराजिताः ॥

यथेच्छरूपधारी च मानुषोऽप्यपराजितः ।
तस्य भानुमती भार्या सती त्रैलोक्यसुन्दरी ॥ ३ ॥

लक्ष्मीसदृशरूपेण निर्जितामरसुन्दरी । राज्ञस्तस्याग्रमहिषी प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥
दशनारीसहस्राणां मध्ये श्रीरिवराजते । नृपकोटिसहस्रेण न कदाचित्समुच्यते ॥ ५ ॥

कदाचिदास्थानगतः पप्रच्छ स्वपुरोहितम् ।
विस्मयेनावृतो नत्वा वसिष्ठमृषिसत्तमम् ॥ ६ ॥

भगवन्केन धर्मेण मम लक्ष्मीरनुत्तमा । कस्माच्च विपुलं तेजो मच्छरीरे सदोत्तमम् ॥

वसिष्ठ उवाच ।

पुरा लीलावती नाम वेश्या शिवपरायणा ।
तया दत्तश्चतुर्दश्यां पुष्करे लवणाचलः ॥ ८ ॥

हेमवृक्षामरैः सार्द्धं यथावद्विधिपूर्वकम् । शूद्रःसुवर्णकारश्च कर्मकृत्सोऽभवत्तदा ॥
भृत्योलीलावतीगेहे तेन हैमीर्विनिर्मिताः । तरवो हेमपुष्पाश्च श्रद्धायुक्तेन पार्थिव ॥
अतिरूपेण संपन्ना घटितास्ते सुशोभनाः। धर्मकार्यमिति ज्ञात्वा न गृहीतं च वेतनम् ॥
उज्ज्वालिताश्च ते पत्न्या सुवर्णमयपादपाः । लीलावतीगृहे चापि परिचर्या च पार्थिव

कृता ताभ्यामशाठ्येन द्विजशुश्रूषणादिका ।
सा च लीलावती वेश्या कालेन महताऽनघ ॥ १३ ॥

सर्वपापविनिर्मुक्ता जगाम शिवमन्दिरम् । योऽसौसुवर्णकारश्च दरिद्रोऽप्यतिसत्त्ववान्
न मूल्यमादाद्वेश्यातः स भवानिह साम्प्रतम् । सप्तद्वीपपतिर्जातः सूर्यायुतसमप्रभः ॥
यया सुवर्णकारस्य तरवो हेमनिर्मिताः । सम्यगुज्ज्वलिताः पत्न्या सेयंभानुमती तव ॥

तस्मान्नृलोकेष्वपराजितस्त्वमारोग्यसौभाग्ययुता च लक्ष्मीः ।
तस्मात्त्वमप्यत्र विधानपूर्वं धान्याचलादीन्नृपते कुरुष्व ॥ १७ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

तथेति संपूज्य सुधर्ममूर्तिर्वचो वसिष्ठस्य ददौ च सर्वान् ।
धान्याचलादीन्विधिना स्मरारेर्लोकं गतोऽसौ सुरपूज्यमानः ॥ १८ ॥
पश्येद्यदीमानुपनीयमानान्स्पृशेन्मनुष्यैरिह दीयमानान् ।
शृणोति भक्त्याऽथ मतिं ददाति विकल्मषः सोऽपि दिवं प्रयाति ॥ १९ ॥
दुःस्वप्नप्रशममुपैति पठ्यमानैः शैलेन्द्रैर्भवभयभेदनैर्मनुष्यः ।
यः कुर्यात्किमु नृपपुङ्गवेह सम्यक् शान्तात्मा सकलगिरीन्द्रसंप्रदानम् ॥२०॥

भीष्म उवाच ।

किमभीष्टवियोगशोकसंघानलमुद्धर्तुमुपोषणं व्रतं वा ।
विभवध्रुवकारि भूतलेऽस्मिन्भवभीतेरपि सूदनं च पुंसः ॥ २१ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

परिपृष्टमिदं जगत्प्रियं ते विबुधानामपि दुर्लभं महत्वात् ।

तव भक्तिमतस्तथापि वक्ष्ये व्रतमिन्द्रासुरमानवेषु गुह्यम् ॥ २२ ॥

पुण्यमाश्वयुजे मासि विशोकद्वादशीव्रतम् । दशम्यां लघुभुग्विद्वान्प्रारभेत यमेन तु ॥

उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा दन्तधावनपूर्वकम् ।

एकादश्यां निराहारः सम्यगभ्यर्च्य केशवम् ॥ २४ ॥

श्रियंचाभ्यर्च्य विधिवद्भोक्ष्येऽहं चापरेऽहनि । एवं नियमकृत्सुप्त्वा प्रातरुत्थायमानवः

स्नानं सर्वौषधैः कुर्यात्पञ्चगव्यजलेन तु । शुभ्रमाल्याम्बरधरः पूजयेच्छ्रीशमुत्पलैः ॥२६।

विशोकाय नमः पादौ जंघे च वरदाय वै । श्रीशाय जानुनी तद्वदूरू च जलशायिने ॥

कन्दर्पाय नमो गुह्यं माधवाय नमः कटिम् । दामोदरायेत्युदरं पार्श्वे च विपुलाय वै

नाभिं च पद्मनाभाय हृदयं मन्मथाय वै । श्रीधराय विभोर्वक्षःकरौ मधुभिदे नमः ॥

वैकुण्ठाय नमः कण्ठमास्यं पद्ममुखाय वै ।

नासामशोकनिधये वासुदेवाय चाक्षिणी ॥ ३० ॥

ललाटं वामनायेति हरये च पुनर्भुवौ । अलकं माधवायेति किरीटं विश्वरूपिणे ॥ ३१ ॥

नमः सर्वात्मने तद्वच्छिर इत्यभिपूजयेत् । एवं सम्पूज्य गोविन्दं धूपमाल्यानुलेपनैः ॥

ततस्तु मण्डलं कृत्वा स्थण्डिलं कारयेन्मृदा । चतुरस्रं समन्ताच्चारत्निमात्रमुदक्प्लवम्

श्लक्ष्णं हृद्यं च परितो वप्रत्रयसमावृतम् । त्रिरङ्गुलोच्छ्रिता वप्रास्तद्विस्तारो द्विरङ्गुलः

स्थण्डिलस्योपरिष्टात्तु भित्तिरष्टांगुला भवेत् ।

नदी वालुकया सूर्पे लक्ष्म्याः प्रतिकृतिं न्यसेत् ॥ ३५ ॥

स्थण्डिले सूर्पमध्यस्थ लक्ष्मीमभ्यर्चयेद्बुधः ।

नमो देव्यै नमः शान्त्यै नमो लक्ष्म्यै नमःश्रियै ॥ ३६ ॥

नमस्तुष्ट्यै नमःपुष्ट्यै सृष्ट्यै हृष्ट्यै नमोनमः। विशोका दुःखनाशायविशोकावरदास्तु मे

विशोका मेऽस्तु संपत्त्यै विशोका सर्वसिद्धये । ततःशुभ्राम्बरैःसूर्पं वेष्ट्यसम्पूजयेत्फलैः

भक्ष्यैर्नानाविधैस्तद्वत्सुवर्णकमलेन च । राजतीषु च पात्रीषु न्यसेद्दर्भोदकं बुधः ॥३६॥

ततस्तु नृत्यगीतानि कारयेत्सकलां निशाम् । यामत्रये व्यतीते तु तत उत्थाय मानवः
अभिगम्य च विप्राणां मिथुनानि च पूजयेत् । शक्तितस्त्रीणि चैकं वावस्त्रमाल्यानुलेपनैः
शयनस्थानि पूज्यानि नमोऽस्तु जलशायिने । ततस्तु गीतवाद्येन रात्र्यां जागरणे कृते ॥
प्रभाते च ततः स्नानं कृत्वादाम्पत्यमर्चयेत् । भोजयेच्च यथाशक्ति वित्तशाठ्येन वर्जितः

भक्त्या श्रुत्वा पुराणानि तद्दिनं चातिवाहयेत् ।
अनेना विधिना सर्वं मासि मासि समाचरेत् ॥ ४४ ॥

व्रतान्ते शयनं दद्याद्गुडधेनुसमन्वितम् । सोपधानं सविश्रामं स्वास्तरावरणं शुभम् ॥
तथा लक्ष्मीर्नरेश त्वां न परित्यज्य गच्छति । तथा सुरूपतारोग्यमशोकं चास्तु मे सदा

यथा देवेन रहिता न लक्ष्मीर्जायते क्वचित् ।
यथा विशोकता मेऽस्तु भक्तिरग्र्या च केशवे ॥ ४७ ॥

मन्त्रेणानेन शयनं गुडधेनुसमन्वितम् । सूर्यश्च लक्ष्म्यासहितो दातव्यो भूतिमिच्छता ॥
उत्पलं करवीरं वाप्यम्लानंचैव कुङ्कुमम् । केतकं सिन्धुवारं च मल्लिकागन्धपाटला ॥

कदम्बं कुब्जकञ्जातीशस्तान्येतानि सर्वदा ।

भीष्म उवाच ।

गुडधेनुविधानं च समाचक्ष्व मुनीश्वर ॥ ५० ॥
किं रूपा केन मन्त्रेणदातव्या तदिहोच्यताम् ।

पुलस्त्य उवाच ।

गुडधेनुविधानस्य यद्रूपमिह यत्फलम् ॥ ५१ ॥

तदिदानीं प्रवक्ष्यामि सर्वपापविनाशनम् । कृष्णाजिनं चतुर्हस्तं प्राग्ग्रीवं विन्यसेद्भुवि ॥
गोमयेनानुलिप्तायां दर्भानास्तीर्य सर्वतः । लघ्वेणकाजिनं तद्वद्वत्सं च परिकल्पयेत् ॥
प्राङ्मुखीं कल्पयेद्धेनुंमृदा वा गांसवत्सकाम् । उत्तमा गुडधेनुःस्यात्सदाभारचतुष्टयम्

वत्सं भारेण कुर्वीत भाराभ्यां मध्यमा स्मृता ।
अर्द्धभारेण वत्सस्स्यात्कनिष्ठा भारकेण तु ॥ ५५ ॥
चतुर्थांशेन वत्सः स्याद् गृहवित्तानुसारतः ।

धेनुवत्सौ कृतौ चोभौ सितसूक्ष्माम्बरावृतौ ॥ ५६
शुक्तिकर्णाविक्षुपादौ शुचिमुक्ताफलेक्षणौ । सितसूत्रसिराजालौ सितकम्बलकम्बलौ ॥
ताम्रगण्डकपृष्ठौ द्वौ सितचामरलोमकौ । विद्रुमभ्रूयुगावेतौ नवनीतस्तनान्वितौ ॥५८
काञ्चनाक्षियुगोपेताविन्द्रनीलकनीनिकौ । क्षौमपुच्छौ कांस्यदोहौ शुभ्रातिकमनीयकौ
सुवर्णशृङ्गाभरणौ राजताढ्यखुरौ च तौ । नानाफलसमायुक्तौ घ्राणगन्धकरण्डकौ ॥
इत्येवं रचयित्वा तु धूपदीपैस्तथार्चयेत् । या लक्ष्मीस्सर्वभूतानां या च देवेष्ववस्थिता
धेनुरूपेणसा देवीममपापंव्यपोहतु । विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा याच विभावसौ
चन्द्रार्कशक्रशक्तिर्या सा धेनुर्वरदास्तु मे ।
स्वधा त्वं पितृमुख्यानां स्वाहा यज्ञभुजां यतः ॥ ६३ ॥
सर्वपापहरा धेनुस्तस्माद्भूतिं प्रयच्छ मे । एवमामन्त्र्य तां धेनुं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥
विधानमेतद्धेनूनां सर्वासामपिपठ्यते । यास्तुपापविनाशिन्यः पठ्यन्ते दशधेनवः ॥६५॥
तासां स्वरूपं वक्ष्यामि नामानि च नराधिप । प्रथमा गुडधेनुःस्याद् घृतधेनुरथापरा ॥
तिलधेनुस्तृतीया च चतुर्थी जलनामिका । क्षीरधेनुः पञ्चमी च मधुधेनुस्तथा परा ॥
सप्तमी शर्कराधेनुरष्टमी दधिकल्पिता । रसधेनुश्च नवमी दशमीस्यात्स्वरूपतः ॥ ६८ ॥
कुम्भास्स्यू रसधेनूनामितरासां स्वराशयः ।
सुवर्णधेनुं चाप्यत्र केचिदिच्छन्ति मानवाः ॥ ६६ ॥
नवनीतेन तैलैश्च तथान्येऽपि महर्षयः । एतदेव विधानं स्यात्त एवोपस्करास्स्मृताः ॥
मन्त्रवाहनसंयुक्ताः सदा पर्वणि पर्वणि । यथाश्राद्धं प्रदातव्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः
गुडधेनुप्रसङ्गेन सर्वास्तव मयोदिताः । अशेषयज्ञफलदाः सर्वपापहराः शुभाः ॥ ७२ ॥
व्रतानामुत्तमं यस्माद्विशोकद्वादशीव्रतम् । तदङ्गत्वेन चैवात्र गुडधेनुः प्रशस्यते ॥७३॥
अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते तथा पुनः । गुडधेन्वादयो देया उपरागादि पर्वसु ॥७४॥
विशोकद्वादशी चैषा सर्वपापहराशुभा । यामुपोष्य नरो याति तद्विष्णोः परमं पदम्
इहलोके स सौभाग्यमायुरारोग्यमेव च । वैष्णवं पुरमाप्नोति मरणे स्मरणं हरेः॥७६॥
नवार्बुदसहस्राणि दश चाष्टौ च धर्मवित् ।

न शोकदुःखदौर्गत्यं तस्य सञ्जायते नृप ॥ ७७ ॥
नारी वा कुरुते या तु विशोकद्वादशीमिमाम् ।
नृत्यगीतपरा नित्यं साऽपि तत्फलमाप्नुयात् ॥
यस्मादग्रे हरेर्नृत्यमनन्तं गीतवादनम् ॥ ७८ ॥
इति पठति य इत्थं यः शृणोतीह सम्यङ् मधुमुरनरकारेरर्चनं वाथ पश्येत् ॥
मतिमपि च जनानां योऽददातीन्द्रलोके स वसति विबुधौघैःपूज्यतेकल्पमेकम् ॥

भीष्मउवाच ।

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि दानमाहात्म्यमुत्तमम् । यदक्षयं परे लोके देवर्षिगणपूजितम्॥८०

पुलस्त्य उवाच ।

मेरोः प्रदानं वक्ष्यामि दशधा नृपसत्तम ॥ ८१ ॥
यत्प्रदातानन्तलोकान्प्राप्नोति सुरपूजितान् । पुराणेषु च वेदेषु यज्ञेष्वायतनेषु च ॥८२
नतत्फलमधीतेषु कृतेष्विह यदश्नुते । तस्माद्दानं प्रवक्ष्यामि पर्वतानामनुक्रमात् ॥८३॥
प्रथमो धान्यशैलः स्याद्द्वितीयो लवणाचलः। गुडाचलस्तृतीयस्तु चतुर्थो हेमपर्वतः ॥
पञ्चमस्तिलशैलस्स्यात्षष्ठःकार्पासपर्वतः । सप्तमो घृतशैलःस्याद्रत्नशैलस्तथाष्टमः ॥
राजतो नवमस्तद्वद्दशमःशर्कराचलः । वक्ष्ये विधानमेतेषां यथावदनुपूर्वशः ॥ ८६ ॥
अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये । शुक्लपक्षेतृतीयायामुपरागे शशिक्षये ॥ ८७ ॥
विवाहोत्सवयज्ञेषु द्वादश्यामथवा पुनः । शुक्लायां पञ्चदश्यां वा पुण्यर्क्षे वा विधानतः
धान्यशैलादयो देयाः कार्तिक्यां ज्येष्ठपुष्करे । तीर्थेष्वायतनेवापि गोष्ठे वा भवनाङ्गणे
मण्डपं कारयेद्भक्त्या चतुरस्रमुदङ्मुखम् । प्रागुदक्प्रवणं पुण्यं प्राङ्मुखं वा विधानतः
गोमयेनानुलिप्तायां भूमावास्तीर्य वै कुशान् । तन्मध्ये पर्वतं कुर्याद्विष्कम्भंपर्वतान्वितम्
धान्यद्रोणसहस्रेण भवेद्गिरिरिहोत्तमः । मध्यमः पञ्चशतकैः कनिष्ठश्च त्रिभिःशतैः ॥
मेरुर्महाव्रीहिमयस्तु मध्ये सुवर्णवृक्षत्रयसंयुतः स्यात् ।
मूर्द्धन्यवस्थानमथाम्बरेण कार्यं त्वनेकं च पुनर्द्विजाग्र्यैः ॥ ९३ ॥
चत्वारि शृङ्गाणि च राजतानि नितम्ब भागा अपि राजतास्स्युः ।

पूर्वेण मुक्ताफलवज्रयुक्तो याम्येन गोमेदकपद्मरागैः ॥ ९४ ॥
पश्चाच्च गारुत्मतनीलरत्नैः सौम्येन वैडूर्यकपुष्परागैः ।
श्रीखण्डखण्डैरभितःप्रवालै र्लतान्वितो मौक्तिकप्रस्तराढ्यः ॥ ९५ ॥
ब्रह्माऽथविष्णुर्भगवान्पुरारिर्दिवाकरोऽप्यत्र हिरण्मयःस्यात् ॥
तथेक्षुवंशावृतकन्दरस्तु घृतोदकप्रस्रवणो दिशासु ॥ ९६ ॥
शुभ्राम्बराण्यम्बुधरावलिः स्यात्पूर्वेण पीतानि च दक्षिणेन ।
वासांसि पश्चादथ कर्बुराणि रक्तानि चैवोत्तरतो घनानि ॥ ९७ ॥
रौप्यान्महेन्द्रप्रमुखांस्तथाऽष्टौ संस्थाप्य लोकाधिपतीन्क्रमेण ।
नानावनाली च समन्ततः स्यान्मनोरमम्माल्यविलेपनं च ९८ ॥
वितानकं चोपरि पञ्चवर्णमम्लानपुष्पाभरणं सितं च ।
इत्थं निवेश्यामरशैलमग्र्यं मेरोस्तु विष्कम्भगिरीन्क्रमेण ॥ ९९ ॥
तुरीयभागेन चतुर्दिशं च संस्थापयेत्पुष्पविलेपनाढ्यम् ।
पूर्वेण मन्दरमनेकफलैश्च युक्तं कामेन काञ्चनमयेन विराजमानम् ॥१००॥
याम्येन गन्धमदनो विनिवेशनीयो गोधूमसंचयमयः कलधौतवांश्च ।
हैमेन यज्ञपतिना घृतमानसेन वस्त्रेण राजतवनैश्च ससंयुतस्यात् ॥ १०१ ॥
पश्चात्तिलाचलमनेकसुगन्धपुष्पसौवर्णपिप्पलहिरण्मयहंसयुक्तम् ।
आकारयेद्रजतपुष्पवनेन तद्वद्वस्त्रान्वितं दधिसितोदसरस्तथाग्रे ॥ १०२ ॥
संस्थाप्य तं विपुलशैलमथोत्तरेण शैलं सुपार्श्वमपि माषमयं सवस्त्रम् ।
पुष्पैश्च हेमवटपादपशेखरं तमाकारयेत्कनककेतुविराजमानम् ॥ १०३ ॥
माक्षीकभद्रसरसा च वनेन तद्वद्रौप्येण भासुरवितानयुतं विधाय ।
होमश्चतुर्भिरथवेदपुराणविद्भिर्दान्तैरनिन्द्यचरिताकृतिभिर्द्विजेन्द्रैः ॥१०४॥
पूर्वेण हस्तमितमत्र विधाय कुण्डं कार्यस्तिलैर्यवघृतेन समित्कुशैश्च ।
रात्रौ च जागरमनुद्धतगीतरूपैरावाहनं च कथयामि शिलोच्चयानाम् ॥१०५
त्वं सर्व देवगणधामनिधे विरुद्धमस्मद्गृहेष्वमरपर्वत नाशयाशु ।

क्षेमं विधत्स्व कुरु शान्तिमनुत्तमां च संपूजितः परमभक्तिमता मया हि ॥
त्वमेव भगवानीशो ब्रह्माविष्णुर्दिवाकरः। मूर्तामूर्तमयं बीजमतः पाहि सनातन ॥
यस्मात्त्वं लोकपालानां विश्वमूर्तेश्च मन्दिरम्।
रुद्रादित्यवसूनां च तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे ॥ १०८ ॥
यस्मादशून्यममरैर्नारीभिश्च शिरस्तव। तस्मान्मामुद्धरामुष्माद्दुःखसंसारसागरात् ॥
एवमभ्यर्च्य तं मेरुं मंदरं चाभिपूजयेत्। यस्माच्चैत्ररथेन त्वं भद्राश्वेन च पर्वत ॥
शोभसे मन्दरक्षिप्रमतस्तुष्टिकरो भव। यस्माच्चूडामणिर्जम्बूद्वीपे त्वं गन्धमादन ॥
गन्धर्वगणशोभावांस्ततः कीर्तिर्दृढास्तु मे। यस्मात्त्वं केतुमालेन वैभ्राजेन वनेन च ॥
हिरण्मयाश्मशोभावांस्तस्मात्पुष्टिर्ध्रुवास्तु मे। उत्तरैः कुरुभिर्यस्मात्सावित्रेण वनेन च
सुपार्श्वराजसे नित्यमतः श्रीरक्षयास्तु मे। एवमामन्त्र्य तान्सर्वान्प्रभाते विमलेपुनः ॥
स्नात्वा तु गुरवे दद्यान्मध्यमं पर्वतोत्तमम्। विष्कम्भपर्वतान्दद्यादृत्विग्भ्यःक्रमशोनृप ॥
गावो देयाश्चतुर्विंशदथवा दश पार्थिव। शक्तितः सप्त चाष्टौ वा पञ्च दद्यादशक्तिमान्
एकापि गुरवे देया कपिलाऽथ पयस्विनी। पर्वतामामशेषाणामेष एव विधिःस्मृतः ॥
त एव पूजने मन्त्रास्त एवोपस्कराःस्मृताः। ग्रहाणां लोकपालानां ब्रह्मादीनां च सर्वतः
स्वमन्त्रेणैव सर्वेषु होमः शैलेषु पठ्यते। उपवासी भवेन्नित्यमशक्तौ नक्तमिष्यते ॥
विधानं सर्वशैलानां क्रमशः शृणु पार्थिव। दानेषु चैव ये मन्त्राः पर्वतेषु यथाफलम् ॥
अन्नं ब्रह्म यतः प्रोक्तमन्नं प्राणाः प्रकीर्तिताः। अन्नाद्भवन्ति भूतानि जगदन्नेन वर्धते ॥
अन्नमेव यतोलक्ष्मीरन्नमेव जनार्दनः। धान्यपर्वतरूपेण पाहि तस्मान्नगोत्तम ॥ १२२॥
अनेन विधिना यस्तु दद्याद्धान्यमयं गिरिम्। मन्वन्तरशतं साग्रं देवलोके महीयते।
अप्सरोगणगन्धर्वैराकीर्णेन विराजितः। विमानेन दिवः पृष्ठमायाति नृपसत्तम ॥
कर्मक्षये राजराज्यमाप्नोतीह न संशयः। अथातः संप्रवक्ष्यामि लवणाचलमुत्तमम् ॥
यत्प्रदानान्नरो लोकमाप्नोति शिवसंयुतम्। उत्तमःषोडशद्रोणैःकर्तव्यो लवणाचलः
मध्यमश्च तदर्धेन चतुर्भिरधमस्मृतः। वित्तहीनो यथाशक्ति द्रोणादूर्ध्वं च कारयेत् ॥
चतुर्थांशेन विष्कम्भपर्वतान्कारयेत्पृथक्। विधानं पूर्ववत्कुर्याद्ब्रह्मादीनां च सर्वतः॥

तद्वद्धेममयं सर्वलोकपालनिवेशनम् । सरांसि वनवृक्षादि तद्वद्धान्यान्निवेशयेत् ॥१२९॥
कुर्याज्जागरमत्रापि दानमन्त्रान्निबोधत । सौभाग्यरससंयुक्तो यतोऽयं लवणे रसः ॥
तदात्मकत्वेन च मां पाह्यापन्नं नगोत्तम । यस्मादन्ये रसाः सर्वे नोत्कटा लवणं विना
प्रियश्च शिवयोर्नित्यं तस्माच्छान्तिप्रदो भव । विष्णुदेहसमुद्भूतो यस्मादारोग्यवर्धनः

तस्मात्पर्वतरूपेण पाहि संसारसागरात् ।
अनेन विधिना यस्तु दद्याल्लवणपर्वतम् ॥ १३३ ॥

उमालोके वसेत्कल्पं ततो याति परां गतिम् । अतःपरं प्रवक्ष्यामि गुडपर्वतमुत्तमम् ॥
यत्प्रदानान्नरः स्वर्गं प्राप्नोति सुरपूजितः । उत्तमो दशभिर्भारैर्मध्यमः पञ्चभिर्मतः ॥

त्रिभिर्भारैः कनिष्ठः स्यात्तदर्धेनाल्पवित्तवान् ।
तद्वदामन्त्रणं पूजां हैमवृक्षान्सुरार्चनम् ॥ १३६ ॥

विष्कम्भपर्वतांस्तद्वत्सरांसि वनदेवताः । होमं जागरणं तद्वल्लोकपालाधिवासनम् ॥
धान्यपर्वतवत्कुर्यादिमं मन्त्रमुदीरयेत् । यथा देवेषु विश्वात्मा प्रवरोऽयं जनार्दनः ॥

सामवेदस्तु वेदानां महादेवस्तु योगिनाम् ।
प्रणवः सर्वमन्त्राणां नारीणां पार्वती यथा ॥ १३९ ॥

तथा रसानां प्रवरः सदैवेक्षुरसो मतः । मम तस्मात्परां लक्ष्मीं ददातु गुडपर्वतः ॥
यस्मात्सौभाग्यदायिन्या धामत्वं गुडपर्वत । निर्मितश्चादिपार्वत्यातस्मान्मांपाहिसर्वदा
अनेन विधिना यस्तु दद्याद्गुडमयं गिरिम् । सम्पूज्यमानो गन्धर्वैः गौरीलोके महीयते
पुनः कल्पशतान्ते च सप्तद्वीपाधिपो भवेत् । आयुरारोग्यसंपन्नः शत्रुभिश्चापराजितः
अथ पापहरं वक्ष्ये सुवर्णाचलमुत्तमम् । यस्य प्रदानाद्भवनं वैरिञ्चं यान्ति मानवाः ॥
उत्तमः पलसाहस्रो मध्यमः पञ्चभिः शतैः । तदर्धेनाधमस्तद्वदल्पवित्तोऽपि मानवः ॥
दद्यादेकपलादूर्ध्वं यथाशक्ति विमत्सरः । धान्यपर्वतवत्सर्वं विदध्याद्राजसत्तम ॥

विष्कम्भशैलांस्तद्वच्च ऋत्विग्भ्यःप्रतिपादयेत् ।
नमस्ते सर्वबीजाय ब्रह्मगर्भाय वै नमः ॥ १४७ ॥

यस्मादनन्तफलदस्तस्मात्पाहि शिलोच्चय । यस्मादग्नेरपत्यं त्वं यस्मात्पुत्रोजगत्पतेः

हेमपर्वतरूपेण तस्मात्पाहि नगोत्तम । अनेन विधिना यस्तु दद्यात्कनकपर्वतम् ॥
स याति परमं ब्रह्मलोकमानन्दकारकम् । तत्र कल्पशतं तिष्ठेत्ततो याति परांगतिम् ॥
अथातः संप्रवक्ष्यामि तिलशैलं विधानतः । यत्प्रदानान्नरो याति विष्णुलोकमनुत्तमम्

उत्तमो दशभिर्द्रोणैर्मध्यमः पञ्चभिः स्मृतः ।
त्रिभिः कनिष्ठो राजेन्द्र तिलशैलः प्रकीर्तितः ॥ १५२ ॥

पूर्ववच्चापरं सर्वं विष्कम्भपर्वतादिकम् । दानमन्त्रं प्रवक्ष्यामि यथा च नृपपुङ्गव ॥
यस्मान्मधुवधे विष्णोर्देहस्वेदसमुद्भवाः । तिलाःकुशाश्च माषाश्च तस्माच्छान्तिप्रदोभव
हव्यकव्येषुयस्माच्च तिला एव हि रक्षणम् । लक्ष्मीं च कुरुशैलेन्द्र तिलाचलनमोऽस्तुते

इत्यामन्त्र्य च यो दद्यात्तिलाचलमनुत्तमम् ।
स वैष्णवं पदं याति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ १५६ ॥

कार्पासपर्वतश्चैव विंशद्भारैरिहोत्तमः । दशभिर्मध्यमः प्रोक्तः कनिष्ठः पञ्चभिर्मतः ॥१५७
भारेणाल्पधनो दद्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः । धान्यपर्वतवत्सर्वमासाद्यं राजसत्तम॥१५८॥
प्रभातायां च शर्वर्यां दद्यादिदमुदीरयेत् । त्वमेवावरणं यस्माल्लोकानामिह सर्वदा ॥
कार्पासाद्रे नमस्तस्मादघौघध्वंसनो भव । इति कार्पासशैलेन्द्रं यो दद्याच्छर्वसंनिधौ
रुद्रलोके वसेत्कल्पं ततो राजा भवेदिह । अथातः संप्रवक्ष्यामि घृताचलमनुत्तमम् ॥

तेजोमयं घृतं पुण्यं महापातकनाशनम् ।
विंशत्याघृतकुम्भानामुत्तमःस्याद् घृताचलः ॥ १६२ ॥
दशभिर्मध्यमः प्रोक्तः पञ्चभिस्त्वधमः स्मृतः ।
अल्पवित्तोऽपि कुर्वीत द्वाभ्यामिह विधानतः ॥ १६३ ॥

विष्कम्भपर्वतांस्तद्वच्चतुर्भागेन कल्पयेत् । शालितण्डुलपात्राणि कुम्भोपरि निवेशयेत्
कारयेत्संहतानुच्चान्यथाशोभं विधानतः । वेष्टयेच्छुक्लवासोभिरिक्षुदण्डफलादिकैः ॥
धान्यपर्वतवत्सर्वं विधानमिह पठ्यते । अधिवासनपूर्वं हि तद्वद्धोम सुरार्चनम् ॥१६६॥
प्रभातायां च शर्वर्यां गुरवे विनिवेदयेत् । विष्कम्भपर्वतांस्तद्वदृत्विग्भ्यःशान्तमानसः
संयोगाद्घृतमुत्पन्नं यस्मादमृततेजसि । तस्माद्घृतार्चिर्विश्वात्मा प्रीयतामत्र शंकरः

यस्मात्तेजोमयं ब्रह्म घृते चैव व्यवस्थितम्। घृतपर्वतरूपेण तस्मान्नः पाहि भूधर॥

अनेन विधिना दद्याद् घृताचलमनुत्तमम्।

महापातकयुक्तोऽपि लोकमायाति शाम्भवम्॥ १७० ॥

हंससारसयुक्तेन किङ्किणीजालमालिना। विमानेनाप्सरोभिश्च सिद्धविद्याधरैर्वृतः॥

विचरेत्पितृभिःसार्धं यावदाभूतसम्प्लवम्। अथातः संप्रवक्ष्यामि रत्नाचलमनुत्तमम्॥

मुक्ताफलसहस्रेण पर्वतस्यादनुत्तमः। मध्यमः पञ्चशतिकस्त्रिशतेनाधमः स्मृतः॥१७३

चतुर्थांशेन विष्कम्भपर्वताः स्युः समन्ततः। पूर्वेण वज्रगोमेदैर्दक्षिणेनेन्द्रनीलकैः॥

पुष्परागैर्युतः कार्यो विद्वद्भिर्गन्धमादनः।

वैडूर्यविद्रुमैः पश्चात्संमिश्रो विपुलाचलः॥ १७५॥

पद्मरागैःससौवर्णैरुत्तरेणापि विन्यसेत्। धान्यपर्वतवत्सर्वमत्रापि परिकल्पयेत्॥

तद्वदावाहनं कृत्वा वृक्षान्देवांश्च काञ्चनान्। पूजयेत्पुष्पगन्धाद्यैः प्रभाते स्याद्विसर्जनम्

पूर्ववद्गुरुऋत्विग्भ्य इमं मन्त्रमुदीरयेत्। यथा देवगणाः सर्वे सर्वरत्नेष्ववस्थिताः॥

त्वं च रत्नमयो नित्यमतः पाहि महाचल। यस्माद्रत्नप्रदानेन तुष्टिमेति जनार्दनः॥

पूजामन्त्रप्रसादेन तस्मान्नः पाहि पर्वत।

अनेन विधिना यस्तु दद्याद्रत्नमयं गिरिम्॥ १८०॥

स याति वैष्णवं लोकममरेश्वरपूजितः। यावत्कल्पशतं साग्रं वसेत्तत्र नराधिप॥

रूपारोग्यगुणोपेतः सप्तद्वीपाधिपोभवेत्। ब्रह्महत्यादिकं किञ्चिदत्रामुत्राथ वा कृतम्॥

तत्सर्वं नाशमायाति गिरिर्वज्राहतो यथा।

अथातः संप्रवक्ष्यामि रौप्याचलमनुत्तमम्॥ १८३॥

यत्प्रदानान्नरो याति सोमलोकं नरोत्तम। दशभिः पलसाहस्रैरुत्तमो रजताचलः॥

पञ्चभिर्मध्यमः प्रोक्तस्तदर्धेनाधमः स्मृतः। अशक्तोर्विंशतेरूर्ध्वं कारयेच्छक्तितःसदा॥

विष्कंभपर्वतांस्तद्वत्तुरीयांशेन कल्पयेत्। पूर्ववद्राजतान्कुर्यान्मन्दरादीन्विधानतः॥१८६

कलधौतमयांस्तद्वल्लोकेशान्कारयेद् बुधः। ब्रह्मविष्ण्वर्कवान्कार्यो नितम्बोऽत्रहिरण्मयः

राजतं स्यात्तदन्येषां पर्वतानां च काञ्चनम्। शेषं च पूर्ववत्कुर्याद्धोमजागरणादिकम्॥

दद्यात्तद्वत्प्रभाते तु गुरवे रौप्यपर्वतम् ।
विष्कंभशैलानृत्विग्भ्यः पूज्य वस्त्रविभूषणैः ॥ १८६ ॥
इमं मन्त्रं पठन्दद्याद्दर्भपाणिर्विमत्सरः । पितॄणां वल्लभं यस्मादिन्दोर्वा शङ्करस्य च ॥
रजतं पाहि तस्मान्नः शोकसंसारसागरात् । इत्थं निवेश्य यो दद्याद्रजातचलमुत्तमम् ॥
गवामयुतसाहस्रफलमाप्नोति मानवः । सोमलोके सगन्धर्वैः किन्नराप्सरसांगणैः ॥
पूज्यमानो वसेद्विद्वान्यावदाभूतसंप्लवम् । अथातः संप्रवक्ष्यामि शर्कराचलमुत्तमम् ॥
यस्य प्रदानाद्विष्णवर्करुद्रास्तुष्यन्ति सर्वदा । अष्टभिः शर्कराभारैरुत्तमः स्यान्महाचलः
चतुर्भिर्मध्यमः प्रोक्तो भाराभ्यामधमःस्मृतम् ।
भारेण चार्द्धभारेण कुर्याद्यः स्वल्पवित्तवान् ॥ १९५ ॥
विष्कंभपर्वतान्कुर्यात्तुरीयांशेन मानवः । धान्यपर्वतवत्सर्वं हैमाम्बरसुसंयुतम् ॥१९६॥
मेरोरुपरितःस्थाप्यं हैमं तत्र तरुत्रयम् । मंदारःपारिजातश्च तृतीयः कल्पपादपः ॥१९७॥
एतद्वृक्षत्रयं मूर्ध्निसर्वेष्वपि निवेशयेत् । हरिचन्दनसंतानौ पूर्वपश्चिमभागयोः ॥१९८॥
निवेश्यौ सर्वशैलेषु विशेषाच्छर्कराचले । मन्दरे कामदेवस्तु प्रत्यग्वक्त्रः सदा भवेत् ॥
गंधमादनशृङ्गे तु धनदः स्यादुदङ्मुखः ।
प्राङ्मुखो वेदमूर्तिस्तु हंसः स्याद्विपुलाचले ॥ २०० ॥
हैमी भवेत्सुपार्श्वे तु सुरभी दक्षिणामुखी । धान्यपर्वतवत्सर्वमावाहनमखादिकम् ॥
कृत्वाऽथगुरवे दद्यान्मध्यमं पर्वतोत्तमम् । ऋत्विग्भ्यश्चतुरः शैलानिमान्मन्त्रानुदीरयेत्
सौभाग्यामृतसारोऽयं परमःशर्कराचलः । तस्मादानन्दकारी त्वं भव शैलेन्द्र सर्वदा ॥
अमृतं पिबतां ये तु पतिता भुवि शीकराः । देवानां तत्समुत्थस्त्वं पाहिनः शर्कराचल
मनोभवधनुर्मध्यादुद्भूता शर्करा पुनः ।
तन्मयोऽसि महाशैल पाहि संसारसागरात् ॥ २०५ ॥
यो दद्याच्छर्कराशैलमनेन विधिना नरः । सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति ब्रह्ममन्दिरम् ॥
चन्द्रसूर्यप्रतीकाशमधिरुह्यानुजीविभिः । सहैव यानमुत्तिष्ठेत्ततो विष्णुप्रभो दिवि ॥
ततः कल्पशतान्ते तु सप्तद्वीपाधिपो भवेत् । आयुरारोग्यसंपन्नो यावज्जन्मायुतत्रयम् ॥

भोजनं शक्तितः कुर्यात्सर्वशैलेष्वमत्सरः । स्वयं चाक्षारलवणमश्नीयात्तदनुज्ञया ॥२०६
पर्वतोपस्करान्सर्वान्प्रापयेद्ब्राह्मणालयम् । एतत्ते सर्वमाख्यातं शैलदानमनुत्तमम् ॥
यदन्यद्रोचते तुभ्यं तन्मां पृच्छस्व पार्थिव ! ।

भीष्म उवाच ।

भगवन्भवसंसारसागरोत्तारकारकम् ॥ २११ ॥
किञ्चिद् व्रतं समाचक्ष्व स्वर्गारोग्यफलप्रदम् ।

पुलस्त्य उवाच ।

सौरधर्मं प्रवक्ष्यामि नाम्ना कल्याणसप्तमीम् ॥ २१२ ॥
विशोकसप्तमीं तत्तद्वत्तृतीयां फलसप्तमीम् । शर्करासप्तमीं कुर्यात्तथा कमलसप्तमीम् ॥
मन्दारसप्तमीं षष्ठीं सप्तमीं शुभसप्तमीम् । सर्वाः पुण्यफलाः प्रोक्ताः सर्वादेवर्षिपूजिताः
विधानमासां वक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः । यदा तु शुक्लसप्तम्यामादित्यस्य दिनंभवेत्
सा तु कल्याणिनी नाम विजयाच निगद्यते । प्रातर्गव्येन पयसा स्नानं नद्या समाचरेत्
शुक्लाम्बरधरः पद्ममक्षतैः परिकल्पयेत् ।
प्राङ्मुखोऽष्टदलं मध्येतद्वद्वृत्तां च कर्णिकाम् ॥ २१७ ॥
पुष्पाक्षताद्भिर्देवेशं विन्यसेत्सर्वतः क्रमात् । पूर्वेण तपनायेति मार्तण्डायेति वै ततः ॥
याम्ये दिवाकरायेति विधात्र इति नैर्ऋते । पश्चिमे वरुणायेति भास्करायेति चानिले
सौम्ये विकर्तनायेति देवायेत्यष्टमे दले । आदावंते च मध्ये च नमोऽस्तु परमात्मने ॥
मन्त्रैरेतैस्समभ्यर्च्य नमस्कारान्तदापितैः । शुक्लैर्वस्त्रैःफलैर्भक्ष्यैर्धूपमाल्यानुलेपनैः ॥
स्थण्डिले पूजयेद्भक्त्या गुडेन लवणेन वै ।
ततो व्याहृतिमन्त्रेण विसृज्य द्विजपुङ्गवान् ॥ २२२ ॥
शक्तितस्तर्पयेद्भक्त्या गुडक्षीरघृतादिभिः । तिलपात्रं हिरण्यं च ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥
एवं नियमकृत्सुप्त्वा प्रातरुत्थाय मानवः । कृतस्नानजपो विप्रैः सहैवघृतपायसम् ॥
भुक्त्वा च वेदविदुषि वैडालव्रतवर्जिते । घृतपात्रं सकनकं सोदकुंभं निवेदयेत् ॥२२५॥
प्रीयतामत्र भगवान्परमात्मा दिवाकरः । अनेन विधिना सर्वं मासि मासि समाचरेत्

ततस्त्रयोदशे मासि गाश्च दद्यात्त्रयोदश ।

वस्त्रालंकारसंयुक्ताः स्वर्णशृङ्गाः पयस्विनीः ॥ २२७ ॥

एकामपि प्रदद्याच्च वित्तहीनो विमत्सरः । न वित्तशाठ्यं कुर्वीत यतो मोहात्पतत्यधः

अनेन विधिना यस्तु कुर्यात्कल्याणसप्तमीम् । सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यलोके महीयते ॥

आयुरारोग्यमैश्वर्यमनंतमिह जायते । सर्वपापहरा चेयं सर्वदैवतपूजिता ॥ २३० ॥

सर्वदुष्टोपशमनी सदा कल्याणसप्तमीम् । इमामनन्तफलदां यस्तु कल्याणसप्तमीम् ॥

शृणोति यः पठेद्वापि स च पापैः प्रमुच्यते । विशोकसप्तमीं तद्वद्वक्ष्यामि नृपसत्तम ॥

यामुपोष्य नरःशोकं न कदाचिदिहाश्नुते ।

माघे कृष्णतिलैः स्नातः पंचम्यां शुक्लपक्षतः ॥ २३३ ॥

कृताहारःकृसरया दन्तधावनपूर्वकम् । उपवासव्रतं कृत्वा ब्रह्मचारी निशि स्वपेत् ॥२३४

ततः प्रभात उत्थाय कृतस्नानजपः शुचिः । कृत्वा तु काञ्चनं पद्ममर्कायेति प्रपूजयेत् ॥

करवीरेण रक्तेन रक्तवस्त्रयुगेन च । यथा विशोकं भुवनं त्वयैवादित्य सर्वदा ॥२३६॥

तथा विशोकता मे स्यात्त्वद्भक्तिः प्रति जन्म च ।

एवं सम्पूज्य षष्ठ्यां तु भक्त्या सम्पूजयेद्द्विजान् ॥ २३७ ॥

स्वयं सम्प्राश्य गोमूत्रमुत्थाय कृतनैत्यकः । सम्पूज्य विप्रान्यत्नेन गुडपात्रसमन्वितम्

सद्वस्त्रयुग्मं पद्मं च ब्राह्मणाय निवेदयेत् । अतैललवणं भुक्त्वा सप्तम्यां मौनसंयुतः ॥

ततः पुराणश्रवणं कर्तव्यं भूतिमिच्छता । अनेन विधिना सर्वमुभयोरपि पक्षयोः ॥

कुर्याद्यावत्पुनर्माघशुक्लपक्षस्य सप्तमी । व्रतांते कलशं दद्यात्सुवर्णकमलान्वितम् ॥

शय्यां सोपस्करां दद्यात्कपिलां च पयस्विनीम् ।

अनेन विधिनायस्तु चित्तशाठ्येन वर्जितः ॥ २४२ ॥

विशोकसप्तमीं कुर्यात्सयाति परमांगतिम् । यावज्जन्मसहस्राणां साग्रं कोटिशतंभवेत्

तावन्नशोकमाप्नोति रोगदौर्गत्यवर्जितः । यं यं कामयते कामं तं तं प्राप्नोति पुष्कलम्

निष्कामं कुरुते यस्तु स परं ब्रह्म गच्छति ।

यः पठेच्छृणुयाद्वापि विशोकाख्यां तु सप्तमीम् ॥ २४५ ॥

सोऽपीन्द्रलोकमासाद्य न दुःखी जायते क्वचित्।
अन्यामपि प्रवक्ष्यामि नाम्ना तु फलसप्तमीम्॥ २४६॥
यामुपोष्यनरः पापैर्विमुक्तः स्वर्गभाग्भवेत्। मार्गशीर्षे शुभे मासि पञ्चम्यां नियतव्रतः॥
षष्ठीमुपोष्य कमलं कारयित्वा तु काञ्चनम्। शर्करासंयुतं दद्याद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने॥
रूपं च काञ्चनं कृत्वा फलस्यैकस्य धर्मवित्। दद्याद्द्विकालवेलायां भानुर्मेप्रीयतामिति
शक्त्या तु विप्रान्सम्पूज्य सप्तम्यां क्षीरभोजनम्।
कृत्वा कुर्यात्फलत्यागं यावत्स्यात्कृष्णसप्तमी॥ २५०॥
तामुपोष्याथ विधिवदनेनैव क्रमेण तु। तद्वद्धेमफलं दत्त्वा सुवर्णकमलान्वितम्॥
शर्करापात्रसंयुक्तं वस्त्रमालासमन्वितम्। संवत्सरमनेनैव विधिनोभयसप्तमीम्॥२५२
उपोष्य दद्यात्क्रमशः सूर्यमन्त्रमुदीरयेत्। भानुरर्कोरविर्ब्रह्मासूर्यःशक्रोहरिः शिवः॥
श्रीमान्विभावसुस्त्वष्टा वरुणः प्रीयतामिति। प्रतिमासं च सप्तम्यामेकैकं नामकीर्त्तयेत्
प्रतिपक्षं फलत्यागमेतत्कुर्वन्समाचरेत्। व्रतान्ते विप्रमिथुनं पूजयेद्वस्त्रभूषणैः॥ २५५॥
शर्कराकलशं दद्याद्धेमपद्मफलान्वितम्। यथा न विफलः कामस्त्वद्भक्तानां सदा भवेत्
तथानन्तफलावाप्तिरस्तु मे जन्मजन्मनि। इमामनन्तफलदां यः कुर्यात्फलसप्तमीम्॥
भूतभव्यांश्च पुरुषांस्तारयेदेकविंशतिम्।
यः शृणोति पठेद्वापि सोऽपि कल्याणभाग्भवेत्॥ २५८॥
सर्वपापविशुद्धात्मा सूर्यलोके महीयते। सुरापानादिकं किञ्चिदत्रामुत्र च वा कृतम्॥
तत्सर्वं नाशमायाति यःकुर्यात्फलसप्तमीम्। शर्करासप्तमींवक्ष्ये तद्वत्कल्मषनाशिनीम्
आयुरारोग्यमैश्वर्यं ययानन्तं प्रजायते। माधवस्य सिते पक्षे सप्तम्यां नियतव्रतः॥
प्रातः स्नात्वा तिलैः शुभ्रैः शुद्धमाल्यानुलेपनः।
स्थण्डिले पद्ममालिख्य कुङ्कुमेन सकर्णिकम्॥ २६२॥
तस्मिन्नमः सवित्रेति गन्धपुष्पं निवेदयेत्। स्थापयेदुदकुम्भं च शर्करापात्रसंयुतम्॥
शुक्लवस्त्रैरलङ्कृत्य शुक्लमाल्यानुलेपनैः। स्वर्णपुष्पसमायुक्तं मन्त्रेणानेन पूजयेत्॥
विश्ववेदमयो यस्मात्त्वं वेदेषु च पठ्यसे। त्वमेवामृतसर्वस्वमत शान्तिं प्रयच्छ मे॥

पञ्चगव्यं ततः पीत्वा स्वपेत्तत्पार्श्वतः क्षितौ । सौरसूक्तं जपन्नास्ते पुराणश्रवणेन च
अहोरात्रे गते पश्चादष्टम्यां कृतनैत्यकः । तत्सर्ववेदविदुषे ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥२६७॥
भोजयेच्छक्तितो विप्रान्शर्कराघृतपायसैः । भुञ्जीतातैललवणं स्वयमप्यथ वाग्यतः ॥
अनेन विधिना सर्वं मासि मासि समाचरेत् । संवत्सरन्ते शयनं शर्कराकलशान्वितम्

सर्वोपस्करसंयुक्तं तथैकां गां पयस्विनीम् ।
गृहं च शक्तिमान्दद्यात्समस्तोपस्करान्वितम् ॥ २७० ॥
सहस्रेणाथ निष्काणां कृत्वा दद्याच्छतेन वा ।
दशभिर्वा त्रिभिर्वापि निष्केणैकेन वा पुनः ॥ २७१ ॥
पद्मं स्वशक्तितो दद्यात्पूर्ववन्मन्त्रपाठनम् ।
वित्तशाठ्यं न कुर्वीत कुर्वन्दोषान्समश्नुते ॥ २७२ ॥

अमृतं पिबतो वक्रात्सूर्यस्यामृतबिन्दवः । समुत्पेतुर्द्धरण्यां ये शालिमुद्गेक्षवस्तु ते ॥
शर्करायारसस्तस्मादिक्षुसारोऽमृतात्मवान् । इष्टा रवेरतःपुण्या शर्करा हव्यकव्ययोः
शर्करासप्तमी चेयं वाजिमेधफलप्रदा । सर्वदुष्टोपशमनी पुत्रपौत्रविवर्धिनी ॥ २७५ ॥
यःकुर्यात्परया भक्त्या स परं ब्रह्मगच्छति । कल्पमेकं वसेत्स्वर्गे ततो याति परं पदम्

इदमनघ शृणोति यः स्मरेद्वा परिपठतीह सुरेश्वरस्य लोके ।
मतिमपि च ददाति सोऽपि देवैरमरपुरे परिपूज्यते मुनीन्द्रैः ॥२७७॥

अतःपरं प्रवक्ष्यामि तद्वत्कमलसप्तमीम् । यस्यास्संकीर्त्तनादेव तुष्यतीह दिवाकरः ॥
वसन्तामलसप्तम्यां सुस्नातो गौरसर्षपैः । तिलपात्रे च सौवर्णं निधाय कमलं शुभम् ॥
वस्त्रयुग्मावृतं कृत्वा गन्धपुष्पैरथार्चयेत् । नमस्ते पद्महस्ताय नमस्ते विश्वधारिणे ॥
दिवाकर नमस्तेऽस्तु प्रभाकर नमोऽस्तुते । ततो द्विकालवेलायामुदकुम्भसमन्वितम् ॥
विप्राय दद्यात्सम्पूज्य वस्त्रमाल्यविभूषणैः । शक्तितः कपिलां दद्यादलङ्कृत्यविधानतः
अहोरात्रे गते पश्चादष्टम्यां भोजयेद्द्विजान् । यथाशक्ति च भुञ्जीत विमांसंतैलवर्जितम्
अनेन विधिना शुक्लसप्तम्यां मासि मासि च । सर्वं समाचरेद्भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः

व्रतान्ते शयनं दद्यात्सुवर्णकमलान्वितम् ॥ २८५ ॥

गाश्च प्रदद्याच्छक्त्या तु सुवर्णस्य पयस्विनीः। भाजनासनदीपादीन्दद्यादिष्टानुपस्करान्
अनेन विधिना यस्तु कुर्यात्कमलसप्तमीम्। लक्ष्मीमनन्तामभ्येति सूर्यलोके च मोदते

कल्पे कल्पे ततो लोकान्सप्त गत्वा पृथक् पृथक्।
अप्सरोभिः परिवृतस्ततो याति परां गतिम् ॥ २८८ ॥
पश्येदिमां यः शृणुयान्मुहूर्तं पठेच्च भक्त्याऽथ मतिं ददाति।
सोऽप्यत्र लक्ष्मीममलामवाप्यगन्धर्वविद्याधरलोकमेति ॥ २८९ ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम्। सर्वकामप्रदां पुण्यां नाम्ना मन्दारसप्तमीम्
माघस्यामलपक्षे तु पञ्चम्यां लघुभुङ्नरः। दन्तकाष्ठं ततः कृत्वा षष्ठीमुपवसेद्बुधः ॥

विप्रान्सम्पूजयित्वा तु मन्दारं प्राशयेन्निशि।
ततः प्रभात उत्थाय कृत्वा स्नानं पुनर्द्विजान् ॥ २९२ ॥
भोजयेच्छक्तितः कुर्यान्मन्दारकुसुमाष्टकम्।
सौवर्णं पुरुषं तद्वत्पद्महस्तं सुशोभनम् ॥ २९३ ॥

पद्मं कृष्णतिलैः कृत्वा ताम्रपात्रेऽष्टपत्रकम्। हेममन्दारकुसुमैर्भास्करायेति पूर्वतः ॥
नमस्कारेण तद्वच्च सूर्यायेत्यमले दले। दक्षिणे तद्वदर्काय तथार्यम्णे च नैर्ऋते ॥
पश्चिमे वेदधाम्ने च वायव्ये चण्डभानवे। पूष्णे चोत्तरतःपूज्य आनन्दायेति तत्परम्

कर्णिकायां च पुरुषः स्थाप्यः सर्वात्मनेऽपि च।
शुक्लवस्त्रैःसमावेष्ट्य भक्ष्यैर्माल्यफलादिभिः ॥ २९७ ॥

एवमभ्यर्च्य तत्सर्वं दद्याद्वेदविदे पुनः। भुञ्जीतातैललवणं वाग्यतः प्राङ्मुखो गृही ॥
अनेन विधिना सर्वं सप्तम्यां मासि मासि च। कुर्यात्संवत्सरं यावद्वित्तशाठ्यविवर्जितः
एतदेव व्रतान्ते तु निधाय कलशोपरि। गोभिर्विभवतः सार्द्धं दातव्यं भूतिमिच्छता ॥
नमो मन्दारनाथाय मन्दारभवनाय च। त्वं रवे! तारयस्वास्मानस्मात्संसारसागरात्

अनेन विधिना यस्तु कुर्यान्मन्दारसप्तमीम्।
विपाप्मा स सुखी मर्त्यः कल्पं च दिवि मोदते ॥ ३०२ ॥

इमामघौघपटलभीषणध्वान्तदीपिकाम्। गच्छन्सङ्गृह्य संसारशर्वर्यां न स्खलेन्नरः ॥

मन्दारसप्तमीमेतामीप्सितार्थफलप्रदाम् । यः पठे च्छृणुयाद्वापि सोऽपि पापैः प्रमुच्यते
अथान्यामपि वक्ष्यामि शोभनां शुभसप्तमीम् । यामुपोष्य नरो रोगशोकौघात्तुप्रमुच्यते
पुण्यमाश्वयुजे मासि कृतस्नानजपः शुचिः ॥
वाचयित्वा ततो विप्रानारभेच्छुभसप्तमीम् ॥ ३०६ ॥
कपिलां पूजयेद्भक्त्या गन्धमाल्यानुलेपनैः । नमामि सूर्यसम्भूतामशेषभुवनालयाम् ॥
त्वामहं शुभकल्याणि स्वशरीरविशुद्धये । अथ कृत्वा तिलप्रस्थं ताम्रपात्रेण संयुतम्
काञ्चनं वृषभं तद्वद्वस्त्रमाल्यगुडान्वितम् । सोपधानं च विश्रामभाजनासनसंयुतम् ॥
फलैर्नानाविधैर्भक्ष्यैर्घृतपायससंयुतैः । दद्याद्द्विकालवेलायामर्यमाप्रीयतामिति ॥
पञ्चगव्यं च संप्राश्य स्वपेद्भूमावसंस्तरे । ततः प्रभाते सञ्जाते भक्त्या संतर्पयेद्द्विजान्
अनेन विधिना दद्यान्मासि मासि सदा नरः । वाससी वृषभंहैमंतद्वद्गां काञ्चनोद्भवाम्
संवत्सरान्ते शयनमिक्षुदण्डगुडान्वितम् । ताम्रपात्रे तिलप्रस्थं सौवर्णं वृषभं तथा ॥
दद्याद्वेदविदे सर्वं विश्वात्मा प्रीयतामिति । अनेन विधिनाविद्वान्कुर्याद्यःशुभसप्तमीम् ॥
तस्य श्रीर्विमला कीर्त्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि । अप्सरोगणगन्धर्वैःपूज्यमानःसुरालये
वसेद्गणाधिपो भूत्वा यावदाभूतसम्प्लवम् । कल्पादाववतीर्णश्च सप्तद्वीपाधिपो भवेत्
भ्रूणहत्यासहस्रस्य ब्रह्महत्याशतस्य च । नाशायालमियं पुण्या पठ्यते शुभसप्तमी ॥
इमां पठेद्यः शृणुयान्मुहूर्तं पश्येत्प्रसंगादपि दीयमानम् ।
सोऽप्यत्र सर्वाघविमुक्तदेहः प्राप्नोति विद्याधरनायकत्वम् ॥ ३१८ ॥
यावत्समास्सप्त नरः करोति यः सप्तमीं सप्तविधानयुक्ताम् ।
स सप्तलोकाधिपतिः क्रमेण भूत्वा पदं याति परं मुरारेः ॥ ३१९ ॥
इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे पुष्करमाहात्म्य एकविंशोऽध्यायः ।

———

द्वाविंशोऽध्यायः

इन्द्रदत्तशापेनाग्निमारुतयोः पृथिव्यां जन्मवर्णनम् ।

भीष्म उवाच ।

भूर्लोकोऽथ भुवर्लोकःस्वर्लोकोऽथमहर्जनः । तपः सत्यं च सप्तैते देवलोकाःप्रकीर्तिताः
पर्यायेण तु सर्वेषामाधिपत्यं कथं भवेत् । इह लोके शुभं रूपमायुरारोग्यमेव च ॥२॥
लक्ष्मीश्च विपुला ब्रह्मन्कथं स्यात्सुरपूजित ॥

पुलस्त्य उवाच ।

पुरा हुताशनःसार्द्धं मारुतेन महीतले ॥ ३ ॥
आदिष्टः पुरुहूतेन विनाशाय सुरद्विषाम् । निर्दग्धेषु ततस्तेन दानवेषु सहस्रशः ॥ ४॥
तारकः कमलाक्षश्च कालदंष्ट्रःपरावसुः । विरोचनस्तु संह्रादः प्रयातास्ते तदावसन् ॥
अन्तःसमुद्रमाविश्य सन्निवेशमकुर्वत । अशक्ता इति तेऽप्यग्निमारुताभ्यामुपेक्षिताः ॥
ततःप्रभृति वै देवान्मानुषान्सभुजङ्गमान् । सम्पीड्य च मुनीन्सर्वान्प्रविशन्ति पुनर्जलम्
एवं युगसहस्राणि ते वीराः सप्त पञ्च च । जलदुर्गबलाद्राजन्पीडयन्ति जगत्त्रयम् ॥८
ततः पुनरथो वह्निमारुतावमराधिपः । आदिदेशाचिरादम्बुनिधिरेष विशोष्यताम् ॥६॥
यस्मादस्मद्द्विषां चैष शरणं वरुणालयः । तस्माद्भवद्भ्यामद्यैव शोषमेष प्रणीयताम् ॥
तावूचतुस्ततः शक्रं मयशम्बरसूदनम् । अधर्म एष देवेन्द्र सागरस्य विनाशनम् ॥ ११ ॥
यस्माज्जीवनिकायस्य महतः संक्षयो भवेत् । तस्मादुपायमन्यं तु समाश्रय पुरन्दर ॥
यस्य योजनमात्रेऽपि जीवकोटिशतानिच । निवसन्ति सुरश्रेष्ठ स कथं नाशमर्हति ॥

पुलस्त्य उवाच ।

एवमुक्तः सुरेन्द्रस्तु क्रोधसंरक्तलोचनः । उवाचेदं वचो रोषादमरावग्निमारुतौ ॥१४॥

इन्द्र उवाच ।

न धर्माधर्मसंयोगं प्राप्नुवन्त्यमराःक्वचित् । भवन्तौ तु विशेषेण महात्मानौ च तिष्ठत
ममाज्ञानकृता यस्मान्मारुतेन समं त्वया । मुनिव्रतपरो भूत्वा परिगृह्य कलेवरम् ॥१६

धर्मार्थशास्त्ररहितां योनिं प्रति विभावसो । तस्मादेकेन वपुषा मुनिरूपेण मानुषे ॥१७
मारुतेन समं लोके तव जन्म भविष्यति । यदा तु मानुषत्वेऽपि त्वया गण्डूषशोषितः
भविष्यत्युदधिर्वह्ने तदा देवत्वमाप्स्यसि ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इतीन्द्रशापात्पतितौ तत्क्षणात्तौ महीतले ॥ १६ ॥
अवाप्तवन्तौ देहं च कुम्भाज्जन्म ततोऽभवत् । मित्रावरुणयोर्वीर्याद्वसिष्ठश्चात्मजोऽभवत्
ततोऽगस्त्य उग्रतपा बभूव मुनिसत्तमः । अस्मद्भ्रातुः सवैभ्राता वसिष्ठस्यानुजो मुनिः

भीष्म उवाच ।

कथं च मित्रावरुणौ पितरावस्य तौ स्मृतौ । जन्मकुम्भादगस्त्यस्य यथाभूत्तद्वदाधुना

पुलस्त्य उवाच ।

पुरा पुराणपुरुषः कदाचिद्गन्धमादने । भूत्वा धर्मसुतो विष्णुश्चचार विपुलं तपः ॥२३॥
तपसा चास्य भीतेन विघ्नार्थं प्रेषितावुभौ । शक्रेण माधवानङ्गावप्सरोगणसंयुतौ ॥
यदा च गीतवाद्येन भावहावादिना हरिः । न काममाधवाभ्यां च मोहं नेतुमशक्यत ॥
तदा काममधुस्त्रीणां विषादमभजद्गणः । संक्षोभाय ततस्तेषामूरुदेशान्नराग्रजः ॥२६
नारीमुत्पादयामास त्रैलोक्यस्यापि मोहिनीम् ।
संमोहितास्तया देवास्तौ तु चैव सुरावुभौ ॥ २७ ॥
अप्सराणां समक्षं हि देवानामब्रवीद्धरिः ।
उर्वशीति च नाम्नेयं लोके ख्यातिं गमिष्यति ॥ २८ ॥
ततः कामयमानेन मित्रेणाहूयतोर्वशी । प्रोक्ता मां रमयस्वेति बाढमित्यब्रवीच्च सा ॥
गच्छन्ती तु ततः सूर्यलोकमिन्दीवरेक्षणा । वरुणेन वृता पश्चाद्वचनं तमभाषत ॥३०॥
मित्रेणाहं वृता पूर्वं मम सूर्यःपतिःप्रभो । उवाच वरुणश्चित्तं मयि संन्यस्य गम्यताम् ॥
गतायां बाढमित्युक्त्वा मित्रशापमदादथ ।
अद्यैव मानुषे लोके गच्छ सोमसुतात्मजम् ॥ ३२ ॥
भजस्वेति यतो मिथ्याधर्म एष त्वया कृतः। जलकुम्भे ततो वीर्यं मित्रेण वरुणेन च ॥

प्रक्षिप्तमथ सञ्जातौ द्वावेव मुनिसत्तमौ । निमिर्नाम नृपः स्त्रीभिः पुरा द्यूतमदीव्यत ॥
तदन्तरेऽभ्याजगाम वसिष्ठो ब्रह्मसम्भवः । तस्य पूजामकुर्वाणं शशाप स मुनिर्नृपम्
विदेहस्त्वं भवस्वेति शप्तस्तेनाप्यसौमुनिः । अन्योन्यशापादुभयोर्विशरीरे तु तेजसी
जग्मतुश्शापनाशाये ब्रह्माणं जगतःपतिम् । अथ ब्रह्मसमादेशाल्लोचनेष्ववसन्निमिः ॥
निमेषाःस्युश्च लोकानां तद्विश्रामायपार्थिव । वसिष्ठोऽप्यभवत्तस्मिञ्जलकुम्भे च पूर्ववत्

ततो जातश्चतुर्बाहुः साक्षसूत्रकमण्डलुः ॥

अगस्त्य इति शान्तात्मा बभूव ऋषिसत्तमः ॥ ३६ ॥

मलयस्यैकदेशे तु वैखानसविधानतः । सभार्यः संवृतो विप्रैस्तपश्चके सुदुष्करम् ॥
ततः कालेन महताः तारकादिनिपीडितम् । जगद्वीक्ष्य स कोपेन पीतवान्वरुणालयम् ॥
ततोऽस्य वरदास्सर्वे बभूवुः शङ्कराद्यः । ब्रह्मा विष्णुश्च भगवान्वरदानाय जग्मतुः ॥

वरं वृणीष्व भद्रं ते यश्चाभीष्टोऽत्र:वै मुने ।

अगस्त्य:उवाच ।

यावद् ब्रह्मसहस्राणां पञ्चविंशतिकोटयः ॥ ४३ ॥

वैमानिको भविष्यामि दक्षिणाम्बरवर्त्मनि । मद्विमानोदयात्कुर्याद्यः कश्चित्पूजनं मम

स सप्तलोकाधिपतिः पर्यायेण भविष्यति ।

यस्त्वाश्रमं पुष्करे तु मन्नाम्ना परिकीर्तयेत् ॥ ४५ ॥

स चैवपुण्यतां यातु वर एष वृतो मया । श्राद्धं येऽत्र करिष्यन्ति पिण्डपूर्वं तु भक्तितः
तेषां पितृगणास्सर्वे मया सह दिवि स्थिताः । एतत्कालं वसिष्यन्ति एषएव वरो मम

एवमस्त्विति तेऽप्युक्त्वा जग्मुर्देवा यथागतम् ।

तस्मादर्घः प्रदातव्यो ह्यगस्त्याय सदा बुधैः ॥ ४८ ॥

भीष्म उवाच ।

कथमर्घप्रदानं च कर्तव्यं तस्य वै मुनेः । विधानं यदगस्त्यस्य पूजने तद्वदस्व मे ॥४९॥

पुलस्त्य उवाच ।

प्रत्यूषसमये विद्वान्कुर्यादस्योदये निशि । स्नानं शुक्लतिलैस्तद्वच्छुक्लमाल्याम्बरो गृही

स्थापयेदव्रणं कुम्भं माल्यवस्त्रविभूषितम् । पञ्चरत्नसमायुक्तं घृतपात्रेण संयुतम् ॥५१॥

अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं तथैव सुवर्णमध्यायतबाहुदण्डम् ।

चतुर्भुजं कुम्भमुखे निधाय धान्यानि सप्ताचलसंयुतानि ॥ ५२ ॥

सकांस्यपात्राक्षतशुक्तियुक्तं मन्त्रेण दद्याद् द्विजपुङ्गवाय ।

उत्क्षिप्य कुम्भोपरि दीर्घबाहुमनन्यचेता यमदिङ्मुखस्थम् ॥ ५३ ॥

श्वेतां च दद्याद्यदिशक्तिरस्ति रौप्यैः खुरैर्हेममुखीं सवत्साम् ।

धेनुं नरः क्षीरवतीं प्रणम्य स्रग्वस्त्रघण्टाभरणां द्विजाय ॥ ५४ ॥

आसप्तरात्रादुदये नृपास्य दातव्यमेतत्सकलं नरेण ।

यावत्समास्सप्तदशाथवा स्युरथोर्द्ध्वमप्यत्र वदन्ति केचित् ॥ ५५ ॥

काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव । मित्रावरुणयोःपुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते ॥

प्रत्यब्दं च फलत्यागमेवं कुर्वन्न सीदति ।

होमंकृत्वा ततः पश्चाद्वर्तयेन्मानवःफलम् ॥ ५७ ॥

अनेन विधिना यस्तु पुमानर्घं निवेदयेत् । इमं लोकमवाप्नोति रूपारोग्यफलप्रदम् ॥

द्वितीयेनभुवर्लोकं स्वर्लोकं च ततः परम् । सप्तैव लोकानाप्नोति सप्तार्घान्यःप्रयच्छति

इति पठति शृणोति यो हि सम्यक्चरितमगस्त्यसमर्चनं च पश्येत् ।

मतिमपि च ददाति सोऽपि विष्णोर्भवनगतः परिपूज्यतेऽमरौघैः ॥ ६० ॥

भीष्म उवाच ।

सौभाग्यारोग्यफलदममित्रक्षयकारकम् । भुक्तिमुक्तिप्रदं यच्च तन्मे ब्रूहि महामते ॥६१॥

पुलस्त्य उवाच ।

यदुमायां पुरा देव उवाचान्धकसूदनः । कथासु सम्प्रवृत्तासु धर्म्यासु ललितासु च ॥

तदिदानीं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ।

गौर्युवाच ।

दत्तः शापो हि सावित्र्या मह्यं लक्ष्म्यै सुरेश्वर ॥ ६३ ॥

यथा लक्ष्मीप्रधानत्वमहं यामि तथा वद ।

शङ्कर उवाच ।

श्रृणुष्वावहिता देवि तथैवान्यत्स्वयङ्कृतम् ॥ ६४ ॥

नराणामथ नारीणामाराधनमनुत्तमम् । नभस्ये वाथ वैशाखे पुण्ये मार्गशिरस्यथ ॥
शुक्लपक्षे तृतीयायां स्नातः सगौरसर्षपैः । गोरोचनं सगोमूत्रं गोदुग्धं च घृतं तथा ॥

दधिचन्दनसंमिश्रं ललाटे तिलकं न्यासेत् ।

सौभाग्यारोग्यकृद्यस्मात्सदा च ललिताप्रियम् ॥ ६७ ॥

प्रतिपक्षं तृतीयायां पुमान्वापि सुवासिनी । धारयेद्रक्तवस्त्राणि कुसुमानि सितानि च
विधवा शुक्लवस्त्रं वै त्वेकमेव हि धारयेत् । कुमारी शुक्लसूक्ष्मे च परिदध्यात्तु वाससी॥
देवीं च पञ्चगव्येन ततः क्षीरेण केवलम् । स्नापयेन्मधुना तद्वत्पुष्पगन्धोदकेन तु ॥
पूजयेच्छुक्लपुष्पैस्तु फलेर्नानाविधैरपि । धान्यलाजादिलवणगुडक्षीरघृतान्वितैः ॥७१॥
शुक्लाक्षततिलैरर्चा कार्या देवि सदा त्वया । पादयोरर्चनं कुर्यात्प्रतिपक्षं वरानने ॥७२॥

वरदायै नमः पादौ तथा गुल्फौ श्रियै नमः ।

अशोकायैन नमो जङ्घे पार्वत्यै जानुनी तथा ॥ ७३ ॥

ऊरू माङ्गल्यकारिण्यै वामदेव्यै तथा कटिम् । पद्मोदरायै जठरं नमः कण्ठे श्रियै नमः
करौसौभाग्यदायिन्यै बाहू च सुमुखश्रियै । मुखं दर्पविनाशिन्यैस्मरदायै स्मितं पुनः ॥
गौर्यैं नमस्तथा नासामुत्पलायै च लोचने । तुष्ट्यै ललाटमलकं कात्यायन्यै नमःशिरः
नमोगौर्य्यैं नमः पुष्ट्यै नमः कान्त्यै नमःश्रियै । रम्भायैललितायै च वामदेव्यैनमोनमः
एवं सम्पूज्य विधिवदग्रतः पद्ममालिखेत् । पत्रैः षोडशभिर्युक्तं क्रमेणैव सकर्णिकम् ॥
पूर्वेण विन्यसेद्गौरीमपर्णां च ततः परम् । भवानीं दक्षिणे तद्वद्रुद्राणीं च ततः परम्

विन्यसेत्पश्चिमे भागे सौम्यां मदनवासिनीम् ।

वायव्ये पाटलामुग्रामुत्तरेण तथा उमाम् ॥ ८० ॥

साध्यां पथ्यां तथा सौम्यां मङ्गलां कुमुदां सतीम् ।

भद्रां च मध्ये संस्थाप्य ललितां कर्णिकोपरि ॥ ८१ ॥

कुसुमैरक्षताद्भिर्वा नमस्कारेण विन्यसेत् । गीतमङ्गलघोषं च कारयित्वा सुवासिनीम्

पूजयेद्रक्तवासोभी रक्तमाल्यानुलेपनैः । सिन्दूरं स्नानचूर्णं च तासां शिरसि पातयेत्
सिन्दूरं कुङ्कुमं स्नानमतीवेष्टं यतस्ततः। तथोपदेष्टारमपि पूजयेद्यत्नतो गुरुम् ॥ ८४ ॥
न पूज्यते गुरुर्यत्र सर्वास्तत्राफलाःक्रिया । जप्यैश्च पूजयेद्गौरीमुत्पलैरसितैः सदा ॥

बन्धुजीवैः प्रिये पूज्या कार्तिके मासि यत्नतः ।
जातीपुष्पैर्मार्गशिरे पौषे पीतैः कुरण्टकैः ॥ ८६ ॥

कुन्दैःकुमुदपुष्पैश्च देवीं माघेऽपिपूजयेत् । सिन्दुवारेण जात्या वा फाल्गुनेऽप्यर्चयेन्नरः
चैत्रे तु मल्लिकाशोकैर्वैशाखे गन्धपाटलैः । ज्येष्ठे कमलमन्दारैराषाढे च जलाम्बुजैः ॥

मन्दारैरथ मालत्या श्रावणे पूजयेत्सदा ।
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ॥ ८६ ॥

बिल्वपत्रार्ककुसुमाम्बुजगोश्रृङ्गवारि च । पञ्चगव्यं च बिल्वं च प्राशयेत्क्रमशः सदा ॥
एतद्भाद्रपदादौ तु प्राशनं समुदाहृतम् । प्रतिपक्षं च मिथुनं तृतीयायां वरानने ॥ ६१ ॥
भोजयित्वार्चयेद्भक्त्या वस्त्रमाल्यानुलेपनैः । पुंसःपीताम्बरैदद्यात्स्त्रियाः कौशेयवाससी
निष्पावजीरलवणमिक्षुदण्डगुडान्वितम् । स्त्रियै दद्यात्फलं पुंसः सुवर्णोत्पलसंयुतम् ॥
यथा न देवि देवस्त्वां सम्परित्यज्यगच्छति । तथा मामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात् ॥

कुमुदा विमला नंदा भवानी वसुधा शिवा ।
ललिता कमला गौरी सती रम्भाऽथ पार्वती ॥ ६५ ॥

नभस्यादिषु मासेषु प्रीयतामित्युदीरयेत् । व्रतान्ते शयनन्दद्यात्सुवर्णकमलान्वितम् ॥
मिथुनानि चतुर्विंशद्द्वादशाथ समर्चयेत् । अष्टावष्टाथवा भूयश्चतुर्मासेऽथवार्चयेत् ॥
पूर्वंदत्त्वाथ गुरवे पश्चादन्यान्समर्चयेत् । उक्तानन्ततृतीयैषा सदाऽनन्तफलप्रदा ॥६८॥
सर्वपापहरा देवी सौभाग्यारोग्यवर्धिनी । न चैनां वित्तशाठ्येन कदाचिदपिलङ्घयेत्

नरो वा यदि वा नारी सोपवासव्रतं चरेत् ।
गर्भिणी सूतिकानक्तं कुमारी वाऽथ रोगिणी ॥ १०० ॥

यदाऽशुद्धा तदान्येन कारयेत्प्रयता स्वयम् । इमामनन्तफलदांयस्तृतीयां समाचरेत् ॥
कल्पकोटिशतं साग्रं शिवलोकेमहीयते । वित्तहीनोऽपि कुर्वीत यावद्वर्षमुपोषणम् ॥

पुष्पमन्त्रविधानेन सोऽपि तत्फलमाप्नुयात् ।
नारी वा कुरुते या तु आत्मनः शुभमिच्छती ।
जन्म पौरुषमाप्नोति गौर्यनुग्रहकारितम् ॥ १०३ ॥

इति पठति शृणोति वा य इत्थं गिरितनयाव्रतमिन्द्रलोकसंस्थः ।
मतिमपि च ददाति योऽपि देवैरमरवधूजनकिन्नरैः स पूज्यः ॥ १०४ ॥

अन्यामपि प्रवक्ष्यामि तृतीयां पापनाशिनीम् । रसकल्याणीनीमेतां पुराकल्पभवाविदुः

माघे मासि तु सम्प्राप्य तृतीयां शुक्लपक्षतः ।
प्रातर्गन्धेन पयसा तिलैः स्नानं समाचरेत् ॥ १०६ ॥

स्नापयेन्मधुना देवीं तथैवेक्षुरसेन तु । गन्धोदकेन च पुनःपूजनं कुङ्कुमेन तु ॥ १०७ ॥

दक्षिणाङ्गानि संपूज्य ततो वामानि पूजयेत् ।
ललितायै पदं देव्यै वामगुल्फौ ततोऽर्चयेत् ॥ १०८ ॥
जङ्घे जानु तथा शान्त्यै तथैवोरुं श्रियै नमः ॥ १०९ ॥

मदालसायै च कटिममलायै तथोदरम् । स्तनौ मदन वासिन्यै कुमुदायै च कन्धराम् ॥
भुजं भुजाग्रं माधव्यै कमलायै सुखस्मिते । भ्रूललाटं च रुद्राण्यै शङ्करायै तथालकम् ॥
मदनायै ललाटं तु मोहनायै पुनर्भ्रुवौ । नेत्रे चन्द्रार्धधारिण्यै तुष्ट्यै च वदनं पुनः ॥
उत्कण्ठिन्यै नमः कण्ठममृतायै नमस्तनुम् । रम्भायै च महाबाहू विशोकायैनमः करौ
हृदयं मन्मथाह्लायै पाटलायै तथोदरम् । कटिं सुरतवासिन्यै तथोरू पङ्कजश्रियै ॥११४॥
जानु जङ्घे नमोगौर्यै गुल्फौशान्त्यैतथार्चयेत् । धराधरायै पादौ तु विश्वकायैनमःशिरः
नमो भवान्यै कामिन्यै वासुदेव्यै जगच्छ्रियै । आनन्ददायै नन्दायै सुभद्रायै नमोनमः
एवं सम्पूज्य विधिवद्द्विजदाम्पत्यमर्चयेत् । भोजयित्वा तथान्नेन मधुरेण विमत्सरः
समोदकं वारिकुम्भं शुक्लाम्बरयुगद्वयम् । दत्त्वा सुवर्णकमलं गन्धमाल्यैरथार्चयेत ॥
प्रीयतामत्र कुमुदा गृह्णीयाल्लवणव्रतम् । अनेन विधिना देवीं मासिमासि सदार्चयेत् ॥
लवणं वर्जयेन्माघे फाल्गुने च गुडंपुनः । नवनीतं तथा चैत्रे वर्ज्यं मधुच माधवे ॥
पानीयं ज्येष्ठमासे तु तथाषाढे च जीरकम् । श्रावणे वर्जयेत्क्षीरं दधि भाद्रपदे तथा ॥

घृतमाश्वयुजे तद्वदूर्जेवर्ज्यं च माक्षिकम् । धान्याकं मार्गशीर्षे तु पौषे वर्ज्या च शर्करा
व्रतान्ते करकं पूर्णमेतेषां मासिमासि च । दद्याद्द्विकालवेलायां भक्ष्यपात्रेण संयुतम्
लड्डुकास्सेवकाश्चैव संयावमथ पूरिका । नारिका घृतपूर्णाश्च पिष्टपूर्णा च नन्दिकी
क्षीरशाकं च दध्यन्नं पिण्डशाकं तथैव च । माघादौ क्रमशो दद्यादेतानि करकोपरि ॥
कुमुदा माधवी रम्भा सुभद्रा चाशिवा जया । ललिता कमलानङ्गा मङ्गला रतिलालसा
क्रमान्माघादिमासेषु प्रीयतामिति कीर्तयेत् । सर्वत्र पञ्चगव्यं च प्राशनं समुदाहृतम् ॥
उपवासीभवेन्नित्यमशक्तौ नक्तमिष्यते । कुर्यादेवमिदंनारी रसकल्याणिनीव्रतम् ॥
पुनर्माघे च संप्राप्ते शर्कराकलशोपरि । कृत्वा तु काञ्चनींगौरीं पञ्चरत्नसमन्विताम् ॥

स्वकीयाङ्गुष्ठमात्रं च साक्षसूत्रकमण्डलुम् ।
चतुर्भुजामिंदुयुतां सितनेत्रपटावृताम् ॥ १३० ॥
तद्वद्गोमिथुनं चैव सुवर्णस्य सिताम्बरम् ।
सवस्त्रं भाजनं दद्याद्भवानी प्रीयतामिति ॥ १३१ ॥

अनेन विधिना यस्तु रसकल्याणिनीव्रतम् । कुर्याच्च सर्वपापेभ्यस्तत्क्षणादेव मुच्यते ॥
भवानां च सहस्रं तु न दुःखी जायते क्वचित् । अग्निष्टोमसहस्रेण यत्फलं तदवाप्नुयात्

नारी वा कुरुते या तु कुमारी वा वरानने ।
विधवा च वराकी वा सापि तत्फलभागिनी ॥
सौभाग्यारोग्यसंपन्ना गौरीलोके महीयते ॥ १३४ ॥

इति पठति य इत्थं यः शृणोति प्रसङ्गात्सकलकलुषमुक्तः पार्वतीलोकमेति ॥
मतिमपि च विधत्ते यो नराणां प्रियार्थं विबुधपतिजनानां लोकगःस्यादमोघः ॥

तथैवान्यां प्रवक्ष्यामि तृतीयां पापनाशिनीम् ।
नाम्ना च लोकविख्यातामग्र्यानन्दकरीमिमाम् ॥ १३६ ॥
यदा शुक्लतृतीयायामषाढर्क्षं भवेत्क्वचित् ॥ १३७ ॥

ब्रह्मर्क्षं वाथ च मघा हस्तो मूलमथापिवा । दर्भगन्धोदकैः स्नानं तदा सम्यक्समाचरेत्
शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः । भवानीमर्चयेद्भक्त्या शुक्लपुष्पैः सुगन्धिभिः

महादेवं च सकलमुपविष्टं महासने। वासुदेव्यै नमः पादौ शङ्करायै नमो हरेः ॥१४०
जङ्घे शोकविनाशिन्यै मानदायै नमः प्रभोः। रम्भायै पूजयेदूरू शिवाय च पिनाकिने
आनन्दिन्यै कटिं देव्याः शूलिनश्शूलपाणये। माधव्यै च तथा नाभिमथ शम्भोर्भवायवै
स्तनौ चानन्दकारिण्यै शंकरस्येन्दुधारिणे। उत्कण्ठिन्यै नमःकण्ठं नीलकण्ठाय वैहरेः
करावुत्पलधारिण्यै रुद्राय जगतःप्रभोः। बाहू च परिरम्भिण्यै नृत्यप्रीताय वै हरेः ॥
देव्या मुखं विलासिन्यै वृषभाय पुनर्विभोः।
स्मितं च स्मरणीयायै विश्ववक्त्राय वै विभोः ॥ १४५ ॥
नेत्रे मन्दारवासिन्यै विश्वधाम्ने त्रिशूलिनः। भ्रुवौ नृत्यप्रियायै च शंभोर्वै पाशशूलिने
देव्या ललाटमिन्द्राण्यै वृषवाहाय वैविभोः। स्वाहायै मुकुटं देव्या विभोगङ्गाधरायवै
विश्वकायौ विश्वभुजौ विश्वपादमुखौ शिवौ। प्रसन्नवरदौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ
एवं सम्पूज्य विधिवदग्रतः शिवयोः पुनः। पद्मोत्पलानि रजसा नानावर्णेन कारयेत् ॥
शङ्खचक्रे सकटके स्वस्तिकं शुभकारकम्।
यावन्तः पांसवस्तत्र रजसः पतिताभुवि ॥ १५० ॥
तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते। चत्वारिघृतपात्राणि सहिरण्यानि शक्तितः ॥
दत्त्वा द्विजाय करकमुदकेन समन्वितम्। प्रतिपक्षंचतुर्मासं यावदेतान्निवेदयेत् ॥१५२॥
ततस्तु चतुरोमासान्पूर्ववत्करकोपरि। चत्वारि घृतपात्राणि तिलपात्राण्यनन्तरम् ॥
गन्धोदकं पुष्पवारि चन्दनं कुङ्कुमोदकम्।
अपक्वं दधिदुग्धं च गोश्रृङ्गोदकमेव च ॥ १५४ ॥
अब्दोदकं तथा वारिकुष्ठचूर्णान्वितम्पुनः। उशीरसलिलं चैव यवचूर्णोदकंपुनः ॥१५५ ॥
तिलोदकं च सम्प्राश्य स्वपेन्मार्गशिरादिषु। मासेषु पक्षद्वितयं प्राशनं समुदाहृतम् ॥
सर्वत्र शुक्लपुष्पाणि प्रशस्तानि सदार्चने। दानकाले च सर्वत्र मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥१५७
गौरी मे प्रीयतां नित्यमघनाशायमङ्गला। सौभाग्यायास्तु ललिता भवानी सर्वसिद्धये
संवत्सरान्तु लवणंगुडकुङ्कुमसंयुतम्। चन्दनेन युतं कुम्भं सह स्वर्णाम्बुजेन च ॥
उमायाः प्रीतये हैमं तद्विदिक्षुफलैर्युतम्।

सास्तरावणां शय्यां सविश्रामां निवेदयेत् ॥ १६० ॥
सपत्नीकाय विप्राय गौरी मे प्रीयतामिति । आत्मानन्दकरीं नाम प्राप्नुयात्सम्पदंनरः
आयुरानन्दसम्पन्नो न क्वचिच्छोकमाप्नुयात् ।
नारी वा कुरुते यातुकुमारीविधवातथा ॥ १६२ ॥
सापितत्फलमाप्नोति देव्यनुग्रहलालिता । प्रतिपक्षमुपोष्यैवं मन्त्रार्चनविधानतः ॥१६३॥
रुद्राणां लोकमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम् । इमां यः शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वापि भक्तितः
शक्रलोकं सगत्वा तु पूज्यते कल्पसंस्थितः ।

शङ्कर उवाच ।

एवंविधा भवति चेन्नारी व्रतपरायणा ॥ १६५ ॥
सावित्री तु वराकीसातस्याःशापस्तुकीदृशः । नकाचिद्गणनाचास्तियतस्त्रैलोक्यसुन्दरी
सा पूर्वस्यापि वन्द्या च लक्ष्मीर्विष्णुप्रतिग्रहात् । मयापूर्वन्तवार्थाय दक्षयज्ञस्तुनाशितः
लक्ष्म्यर्थंविष्णुना चापि वारिधिर्मथितः पुरा ।
आज्ञाकरौ भवत्योश्च मा कुरुष्व भयं क्वचित् ॥ १६८ ॥
सावित्र्या माननाकार्या कुपितायाः प्रसादनम् । मयाचविष्णुनाचैवब्रह्मणामानमीप्सुना
गमिष्ये ब्रह्मसदनं त्वं च तिष्ठ वरानने । एवमुक्त्वा गतोरुद्रो गौरी तत्र व्यवस्थिता ॥
कृतं युगं समग्रं च यज्ञे तस्मिन्हुताशनः । वहंस्तु हव्यं देवानां प्रीणयानो जगत्त्रयम् ॥
भोजनंद्विजमुख्येषु भोगान्विद्याधरे गणे । कामावाप्तिं मनुष्येषु सर्वमेव ददौप्रभुः ॥
रुद्रेणोक्तस्तदा विष्णुर्धर्मांस्ते त्वं प्रकीर्त्तय ।
गौरीधर्मान् सरस्वत्याव्रतं यत्परिकीर्तितम् ॥ १७३ ॥
इत्येवमुक्ते रुद्रेण विष्णुः प्रोवाच सादरम् ।

विष्णुरुवाच ।

नाहं धर्मं ख्यापयिष्ये स्वकीयं शङ्कराधुना ॥ १७४ ॥
भवानाख्या तु माहात्म्यं मदीयं सुरसत्तम । त्वया वै कथितं पूर्वं कृते वै पापसंक्षयः॥
भविष्यति न सन्देहो भवान्पूतो भविष्यति ।

भीष्म उवाच ।

मधुरा गीर्भवेत्केन व्रतेन मुनिसत्तमः ॥ १७६ ॥

तथैव जनसौभाग्यं मतिर्विद्यासु कौशलम् । अभेदश्चापि दाम्पत्ये सङ्गो बन्धुजनेन च

आयुश्च विपुलं पुंसां तन्मे कथय सत्तम ।

पुलस्त्य उवाच ।

सम्यक्पृष्टं त्वया राजञ्श्रृणु सारस्वतं व्रतम् ॥ १७८ ॥

यस्य संकीर्तनादेवदेवी तुष्येत्सरस्वती । यावद्भक्तः स्तवं कुर्यादेतद्व्रतमनुत्तमम् ॥१७६

प्राग्वासरादौ सम्पूज्य दिव्यं स्तवं समारभेत् । अथवा रविवारेण ग्रहताराबलेन च ॥

पायसं भोजयेद्विप्रान्कुर्याद्ब्राह्मणवाचनम् । शुक्लवस्त्राणि दत्त्वा च सहिरण्यानिशक्तितः

गायत्रीं पूजयेद्भक्त्या शुक्लमाल्यानुलेपनैः । यथा न देवि भगवान्ब्रह्मालोकपितामहः ॥

त्वां परित्यज्य तिष्ठेच्च तथा भव वरप्रदा । वेदशास्त्राणिधर्माणि नृत्यगीतादिकंचयत्

न विहीनं त्वयादेवि तथामे सन्तु सिद्धयः । लक्ष्मीर्मेधा धरा पुष्टिर्गौरीतुष्टिर्जयामतिः

एताभिः पाहिचाष्टाभीर्मूर्तिभिर्मासरस्वति । एवं सम्पूज्यगायत्रींवीणाकमलधारिणीम्

शुक्लपुष्पाक्षतैर्भक्त्या सकमण्डलुपुस्तकाम् । मौनतेन भुञ्जीव्रत सायंप्रातश्च धर्मवित् ॥

पञ्चम्यां प्रतिपक्षं च गांचविप्राय शोभनाम् । तथैव तण्डुलप्रस्थं घृतपात्रेण संयुतम् ॥

क्षीरंदद्याद्धिरण्यं च गायत्री प्रीयतामिति । सन्ध्यायां च तथा मौनमेतत्कुर्वन्समाचरेत्

न राव्यां भोजनं कुर्याद्यावन्मासास्त्रयोदश । समाप्ते तु व्रतेदद्याद्भोजनं शुक्लतण्डुलैः ॥

पूर्णसद्वस्त्रयुग्मं तु गांचविप्राय शोभनाम् । दिव्यां वितानं घण्टांचसितनेत्रपटान्विताम्

चन्दनं वस्त्रयुग्मं च दध्यन्नं सुरसं पुनः । अथोपदेष्टारमपि भक्त्यासंपूजयेद्गुरुम् ॥

वित्तशाठ्य न रहितो वस्त्रमाल्यानुलेपनैः । अनेन विधिना यस्तु कुर्यात्सारस्वतं व्रतम्

सौभाग्यमतियुक्तस्तु सूक्ष्मकण्ठश्चजायते । सरस्वत्याः प्रसादेनब्रह्मलोके महीयते ॥

नारी वा कुरुते या तु सापि तत्फलभागिनी । ब्रह्मलोके वसेद्राजन्यावत्कल्पायुतत्रयम्

सारस्वतं व्रतं यस्तु श्रृणुयादपि वा पठेत् । विद्याधरपुरेसोऽपि वसेद्वायुतत्रयम् ॥

इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे व्रताध्यायो नाम द्वाविंशोध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

वैष्णवधर्मवर्णनम् ।

भीष्म उवाच ।

वैष्णवा ये तु वैधर्मा यान्रुद्रः प्रोक्तवानिह । तान्मे कथयविप्रेन्द्रकीदृशास्तेफलंतुकिम्

पुलस्त्य उवाच ।

पुरा रथन्तरे कल्पे परिपृष्टो महात्मना । मन्दरस्थो महादेवः पिनाकी ब्रह्मणा स्वयम्

कथमारोग्यमैश्वर्यमन्तममरेश्वर । अल्पेन तपसा देव भवेन्मोक्षः सदा नृणाम् ॥ ३ ॥

किं तज्ज्ञानं महादेव त्वत्प्रसादादधोक्षज ।

अल्पकेनापि तपसा महाफलमिहोच्यते ॥ ४ ॥

इति पृष्टः स विश्वात्मा ब्रह्मणा लोकभावनः । उमापतिरुवाचेदं मनसः प्रीतिकारकम् ॥

ईश्वर उवाच ।

अस्माद्रथन्तरात्कल्पाद्भूयो विंशतिमो यदा । वाराहोभविता कल्पस्तदा मन्वन्तरे शुभे

वैवस्वताख्ये संप्राप्ते सप्तमे सप्तलोकधृक् । द्वापराख्यं युगं तस्मिन्सप्तविंशतिमं यदा ॥

तस्यान्ते तु महातेजा वासुदेवो जनार्दनः । भारावतरणार्थाय त्रिधा विष्णुर्भविष्यति

द्वैपायनऋषिस्तत्र रौहिणेयोऽथ केशवः । कंसारिः केशिमथनः केशवः क्लेशनाशनः ॥

पुरीं द्वारवतीं नाम साम्प्रतं या कुशस्थली । दिव्यानुभावसंयुक्तामधिवासाय शार्ङ्गिणः

त्वष्टा तदाज्ञया ब्रह्मन्करिष्यति जगत्पतेः ।

तस्यां कदाचिदासीनः सभायां सोऽमितद्युतिः ॥ ११ ॥

भार्याभिर्वृष्णिविद्वद्भिर्भूरिभिर्भूरिदक्षिणैः ।

कुरुभिर्देवगन्धर्वैरन्वितः कैटभार्दनः ॥ १२ ॥

प्रवृत्तासु पुराणासुधर्मसम्बन्धिनीषु च । कथासु भीमसेनेन परिपृष्टः प्रतापवान् ॥१३॥

त्वया पृष्टस्य धर्मस्य वक्ष्यत्यस्य च भेदकृत् । भविता स तदा ब्रह्मन्कर्ता चैव वृकोदरः

प्रवर्तकोऽस्य धर्मस्य पाण्डुसूनुर्महाबलः। यस्य तीक्ष्णो वृको नाम जठरे हव्यवाहनः
संभाष्यते स धर्मात्मा तेन चासौ वृकोदरः।
अतीवस्वादशीलश्च नागायुतबलो महान्॥ १६॥
धार्मिकस्याप्यशक्तस्य तीव्राग्नित्वादुपोषणे। इदं व्रतमशेषाणां व्रतानामधिकं यतः॥
कथयिष्यति विश्वात्मा वासुदेवो जगद्गुरुः। अशेषयज्ञफलदमशेषाघविनाशनम्॥
अशेषदुष्टशमनमशेषसुरपूजितम्। पवित्राणां पवित्रं यन्मङ्गलानां च मङ्गलम्॥
भविष्यं च भविष्याणां पुराणानां पुरातनम्॥ १६॥

वासुदेव उवाच।

यद्यष्टमी चतुर्दश्योर्द्वादशीषु च भारत। अन्येष्वपि दिनर्क्षेषु न शक्तस्त्वमुपोषितुम्॥
ततस्त्वग्र्यामिमां भीम तिथिं पापप्रणाशिनीम्।
उपोष्य विधिनानेन गच्छ विष्णोः परं पदम्॥ २१॥
माघमासस्य दशमी यदा शुक्ला भवेत्तदा। घृतेनाभ्यञ्जनं कृत्वा तिलैः स्नानं समाचरेत्
तथैव विष्णुमभ्यर्चेन्नमो नारायणाय च। कृष्णाय पादौ संपूज्य शिरःकृष्णात्मनेतिच
वैकुण्ठायेति वैकुण्ठमुरः श्रीवत्सधारिणे। शङ्खिने गदिने चैव चक्रिणे वरदाय वै॥
सर्वं नारायणन्त्वेवं सम्पूज्यावाहनक्रमात्। दामोदरायेत्युदरं कटिं पञ्चजनाय वै॥
ऊरू सौभाग्यनाथाय जानुनी भूतधारिणे। नमो नीलाय वै जङ्घे पादौ विश्वभुजे पुनः
नमो देव्यै नमः शान्त्यै नमो लक्ष्म्यै नमः श्रियै।
नमस्तुष्ट्यै नमः पुष्ट्यै धृत्यै व्युष्ट्यै नमो नमः॥ २७॥
नमो विहङ्गनाथाय वायुवेगाय पक्षिणे। विषप्रमथनायेति गरुडं चाभिपूजयेत्॥२८॥
एवं सम्पूज्य गोविन्दमुमापतिविनायकौ। गन्धैर्माल्यैस्तथा धूपैर्भक्ष्यैर्नानाविधैरपि॥
गव्येन पयसासिक्तां कृसरामथपायसम्। सर्पिषासह भुक्त्वा तु गत्वा स्थानान्तरं पुनः
नैयग्रोधं दन्तकाष्ठमथवा खादिरं बुधः। गृहीत्वा धावयेद्दन्तानाचांतः प्रागुदङ्मुखः॥
ब्रूयात्सायन्तनीं कृत्वा सन्ध्यामस्तमिते रवौ। नमोनारायणायेति त्वामहं शरणं गतः
एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य च केशवम्।

तां रात्रिं सकलां स्थित्वा शेषपर्यङ्कशायिनम् ॥ ३३ ॥
सर्पिषा विश्वदहनं हुत्वा ब्राह्मणपुङ्गवैः । सहैव पुण्डरीकाक्षं द्वादश्यां क्षीरभोजनम् ॥
करिष्यामि यथात्मानं निर्विघ्नेनास्तु तच्च मे ।
एवमुक्त्वा स्वपेद् भूमावितिहासकथां पुनः ॥ ३५ ॥
श्रुत्वा प्रभाते संजाते नदीं गत्वा विशांपते ।
स्नानं कृत्वा मुदा तद्वत्पाषण्डानभिवर्जयेत् ॥ ३६ ॥
उपास्य सन्ध्यां विधिवत्कृत्वा च पितृतर्पणम् ।
प्रणम्य च हृषीकेशं शेषपर्यङ्कशायिनम् ॥ ३७ ॥
गृहस्य पुरतो भक्त्या मण्डपं कारयेद्बुधः । चतुर्हस्तां शुभां कुर्याद्वेदीमरिनिषूदन ॥३८
चतुर्हस्तप्रमाणं तु विन्यसेत्तत्र तोरणम् । मध्ये च कलशं तत्र माषमात्रेण संयुतम् ॥
छिद्रेण जलसम्पूर्णमधः कृष्णाजिने स्थितः ।
तस्य धारां च शिरसा धारयेत्सकलां निशाम् ॥ ४० ॥
धाराभिर्भूरिभिर्भूरिफलं वेदविदो विदुः । यस्मात्तस्मात्कुरुश्रेष्ठ कारयेत्प्रयतो द्विजः ॥
दक्षिणे चार्धचन्द्रन्तु पश्चिमे वर्तुलं तथा । अश्वत्थपत्राकारं च उत्तरेण तु कारयेत् ॥
मध्ये तु पद्माकारं च कारयेद्वैष्णवो द्विजः ।
पूर्वतो वेदिकास्थानं स्थानं याम्ये च कल्पयेत् ॥ ४३ ॥
पानीयधारां शिरसि धारयेद्विष्णुतत्परः । द्वितीया वेदी देवस्य तत्र पद्मं सकर्णिकम् ॥
तस्य मध्ये स्थितं देवं कुर्याद्वै पुरुषोत्तमम् ।
हस्तमात्रं च तत्कुण्डं कृत्वा तत्र त्रिमेखलम् ॥ ४५ ॥
योनिवक्त्रं ततस्तस्मिन्ब्राह्मणैर्यवसर्पिषी । तिलांश्च विष्णुदेवत्यैर्मन्त्रैरेवानले हुनेत् ॥
कृत्वा तु वैष्णवं सम्यग्यागं तत्र प्रकल्पयेत् । आज्यधारा मध्यमे तु कुण्डे दद्यात्तु यत्नतः
क्षीरधारां देवदेवे वारिधारात्मनोपरि । निष्पावार्धप्रमाणां वै धारामाज्यस्य पातयेत्
स्वेच्छया क्षीरजलयोरविच्छिन्नां च शर्वरीम् । जलकुम्भान्महावीर्यस्थापयित्वात्रयोदश
भक्ष्यैर्नानाविधैर्युक्तान्सितवस्त्रैरलङ्कृतान् । प्रतानोदुम्बरैः पात्रैः पञ्चरत्नसमन्वितैः ॥

चतुर्भिर्बह्वृचैर्होमः कार्यस्तत्र उदङ्मुखैः । रुद्रजाप्यश्चतुर्भिश्च यजुर्वेदपरायणैः ॥५१॥

वैष्णवानि च सामानि चतुर्भिः सामवेदिभिः ।
अरिष्टवर्गसहितान्यभितः परिपाठयेत् ॥ ५२ ॥

एवंद्वादश वै विप्रान्वस्त्रमाल्यानुलेपनैः । पूजयेदङ्गुलीयैश्च कटकैर्हेमसूत्रकैः ॥ ५३ ॥
वासोभिः शयनीयैश्च वित्तशाठ्यविवर्जितः । एवं क्षपातिवाह्या वै गीतमङ्गलनिःस्वनै
उपाध्यायस्य च पुनर्द्विगुणं सर्वमेव तु । ततः प्रभाते विमले समुत्थाय त्रयोदश ॥५५
गावो देयाः कुरुश्रेष्ठ सौवर्णश्रृङ्गसंवृताः । पयस्विन्यःशीलवत्यः कांस्यदोहसमन्विताः

रौप्यखुराः सवत्साश्च चन्दनेनाभिभूषिताः ।
तास्तु तेषां ततो दत्त्वा भक्ष्यभोज्येन तर्पितान् ॥ ५७ ॥
कृत्वा वै ब्राह्मणान्सर्वाञ्छत्रैर्नानाविधैस्तथा ॥
भुक्त्वा चाक्षारलवणमात्मना च विसर्जयेत् ॥ ५८ ॥

अनुगम्य पदान्यष्टौ पुत्रभार्यासमन्वितः । प्रीयतामत्र देवेशः केशवः क्लेशनाशनः ॥
एवं गुर्वाज्ञया कुम्भानगाश्चैव शयनानि च । वासांसि चैव सर्वेषां गृहाणिप्रापयेद्बुधः
अभावे बहुशय्यानामेकामपि सुसंस्कृताम् । शय्यां दद्याद्गृही भीमसर्वोपस्करसंयुताम्
इतिहासपुराणानि वाचयित्वा तु वाहयेत् । तद्दिनं कुरुशार्दूल य इच्छेद्विपुलां श्रियम् ॥

तस्मात्त्वं सत्त्वमालम्ब्य भीमसेन विमत्सरः ।
कुरु व्रतमिदं सम्यक्स्नेहाद्गुह्यं मयोदितम् ॥ ६३ ॥

त्वया कृतमिदं वीर त्वन्नाम्ना च भविष्यति । सा भीमद्वादशी ह्येषा सर्वपापहरा शुभा

या तु कल्याणिनी नाम पुरा कल्पेषु पठ्यते ॥ ६४ ॥
त्वं चादिकर्ता भव सौकरेऽस्मिन्कल्पे महावीरवरप्रधान ।
यस्याः स्मृतेः कीर्तनतोऽप्यशेषं पापं प्रनष्टं त्रिदशाधिपस्य ॥ ६५ ॥
दृष्ट्वा च तामप्सरसामभीष्टां वेश्याकृतामन्यभवान्तरेषु ।
आभीरकन्या हि कुतूहलेन सैवोर्वशी सम्प्रति नाकपृष्ठे ॥ ६६ ॥
जाताऽथ सा वैश्यकुलोद्भवापि पुलोमकन्या पुरुहूतपत्नी ।

तत्रापि तस्याः परिचारिकेयं मम प्रिया सम्प्रति सत्यभामा ॥ ६७ ॥
कृतं पुरा मङ्गलमेतदेव द्विजात्मजा वेदवती बभूव ॥ ६८ ॥
अस्यां च कल्याणतिथौ विवस्वान्सहस्रधारेण सहस्ररश्मिः ।
स्नातः पुरा मण्डलमेत्य तद्वत्तेजोमयं खेटपतिर्बभूव ॥ ६९ ॥
इदमेव कृतं महेन्द्रमुख्यैर्बहुभिर्देवसुरारिकोटिभिश्च ।
फलमस्येह न शक्यते हि वक्तुं यदि जिह्वायुतकोटयो मुखे स्युः ॥७०॥
कलिकलुषविदारिणीमनन्तामपि कथयिष्यति यादवेन्द्रसूनुः ।
अपि नरकगतान्पितॄनथैषा ह्यलमुद्धर्तुमिहैव यः करोति ॥ ७१ ॥
इदमनघ शृणोति वक्ति भक्त्या परिपठतीह परोपकारहेतोः ॥
इह पङ्कजनाभिभक्तिमान्भवेदथ शक्रस्य स पूज्यतामुपैति ॥ ७२ ॥
कल्याणिनी नाम पुरा विसर्गे या द्वादशी माघसितेऽभिपूज्या ।
सा पाण्डुपुत्रेण कृता भविष्यत्यनन्तपुण्याऽनघ भीमपूर्वा ॥ ७३ ॥

ब्रह्मोवाच ।

वर्णाश्रमाणां प्रभवः पुराणेषु मया श्रुतः । सदाचारश्च भगवन्धर्मशास्त्राङ्गविस्तरैः ॥
पण्यस्त्रीणां समाचारं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥

ईश्वर उवाच ।

तस्मिन्नेव पुरे ब्रह्मन्सहस्राणि तु षोडश ॥ ७५ ॥
वासुदेवस्य नारीणां भविष्यत्यम्बुजोद्भव । ताभिर्वसन्तसमये कोकिलालिकुलाकुले ॥
पुष्पितोपवने फुल्लकह्लारसरसस्तटे । निर्भरं सह पत्नीभिः प्रशस्ताभिरलङ्कृतः ॥ ७७ ॥
रमयिष्यति विश्वात्मा कृष्णो यदुकुलोद्वहः । कुरङ्गनयनः श्रीमान्मालतीकृतशेखरः ॥
गच्छन्समीपमार्गेण साम्बो जाम्बवतीसुतः । साक्षात्कन्दर्परूपेण सर्वाभरणभूषितः ॥
अनङ्गशरतप्ताभिः साभिलाषमवेक्षितः । प्रबुद्धो मन्मथस्तासां भविष्यति यदात्मनि ॥
तदवेक्ष्य जगन्नाथस्सर्वज्ञो ध्यानचक्षुषा । स्वयं प्रभुर्वक्ष्यति ता वो हरिष्यन्ति दस्यवः
अपरोक्षं यतस्त्वेवं स्निग्धमेतद्विचिन्तितम् । ततः प्रसादितो देव इदं वक्ष्यति शार्ङ्गभृत्

ताभिः शापाभितप्ताभिर्भगवान्भूतभावनः । उत्तराश्रितदाशानामुद्धर्ता ब्राह्मणप्रियः ॥

उपदेक्ष्यत्यनन्तात्मा भावि कल्याणकारकम् ।

भवतीनामृषिर्दाल्भ्यो यद् व्रतं कथयिष्यति ॥ ८४ ॥

इत्युक्त्वा ता परित्यज्य गतोऽन्तर्धानमीश्वरः । ततःकालेन महता भारावतरणे कृते ॥

निवृत्ते मौसले तद्वत्केशवे दिवमागते । शून्ये यदुकुले सर्वे चोरैरपि जितेऽर्जुने ॥८६॥

हृतासु कृष्णपत्नीषु दाशभोग्यासु चार्बुदे । तिष्ठन्तीषु च दौर्गत्यसन्तप्तासु चतुर्मुख ॥

आगमिष्यति योगात्मा दाल्भ्यो नाम महातपाः ।

तास्तमर्घ्येण सम्पूज्य प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥ ८८ ॥

लालप्यमानाबहुशोबाष्पपर्याकुलेक्षणाः। स्मरन्त्यो विविधान्भोगान्दिव्यमाल्यानुलेपनान्

भर्त्तारं जगतामीशमनन्तमपराजितम् । दिव्यानुभावां च पुरीं नानारत्नगृहाणि च ॥

द्वारकावासिनः सर्वान्देवरूपान्कुमारकान् । प्रश्नमेतं करिष्यन्ति मुनेरभिमुखं स्थिताः॥

दस्युभिर्भगवन्सर्वाः परिभुक्ता वयं बलात् ।

स्वधर्मश्च्यावितोऽस्माकमस्मिन्नः शरणं भवान् ॥ ९२ ॥

आदिष्टोऽस्मि पुरा ब्रह्मन्केशवेन च धीमता ।

कस्मादीशेन संयोगं प्राप्य वेश्यात्वमागताः ॥ ९३ ॥

वेश्यानामपि यो धर्मस्तंनो ब्रूहि तपोधन । कथयिष्येऽवदत्तासांयद्दाल्भ्यश्चैकितायनः

दाल्भ्य उवाच ।

जलक्रीडाविहारेषु पुरा सरसि मानसे । भवतीनां सगर्वाणां नारदोऽभ्याशमागतः ॥

हुताशनसुताः सर्वा भवत्योऽप्सरसः पुरा । अप्रणम्यावलेपेन परिपृष्टः स योगवित् ॥

कथं नारायणोऽस्माकं भर्त्ता स्यादित्युपादिश ।

तस्माद्वरप्रदानं च शापश्चायमभूत्पुरा ॥ ९७ ॥

शय्याद्वयप्रदानेन मधुमाधवमासयोः । सुवर्णोपस्करोत्सङ्गं द्वादश्यां शुक्लपक्षतः ॥९८॥

भर्ता नारायणो नूनं भविष्यत्यन्यजन्मनि । यदकृत्वा प्रणामं मे रूपसौभाग्यमत्सरात्

परिपृष्टोऽस्मि तेनाशु वियोगो वो भविष्यति । चोरैरपहृताःसर्वा वेश्यात्वंसमवाप्स्यथ

एवं नारदशापेन केशवस्य च शापतः । वेश्यात्वमागताः सर्वा भवत्यःकाममोहिताः ॥
इदानीमपि यद्वक्ष्ये तच्छृणुध्वं वराङ्गनाः । पुरादैवासुरे युद्धे हतेषु शतशः सुरैः ॥
दानवासुरदैत्येषु राक्षसेषु ततस्ततः । तेषां दारसहस्राणि शतशोऽथ सहस्रशः ॥
परिणीतानि यानि स्युर्बलाद्भुक्तानि यानि वै । तानि सर्वाणि देवेशः प्रोवाच वदतांवरः
वेश्याधर्मेण वर्तध्वमधुना नृपमन्दिरे । भक्तिमत्यो वरारोहास्तथा देवकुलेषु च ॥

राजतः स्वामिनश्चापि जीविकां च प्रलप्स्यथ ।
भविष्यति च सौभाग्यं सर्वासामपि शक्तितः ॥ १०६ ॥
यः कश्चिच्छुल्कमादाय गृहमेष्यति वः सदा ।
निश्छद्मनैवोपचर्यः प्रीतिभावैरदाम्भिकैः ॥ १०७ ॥

देवतानां पितॄणां च पुण्येऽह्नि समुपस्थिते । गोभूहिरण्यधान्यानि प्रदेयानि च शक्तितः
यद्व्रतं चोपदेक्ष्यामि तत्कुरुध्वं च सर्वशः। संसारोत्तारणायालमेतद्वेदविदो विदुः ॥
यदा सूर्यदिने हस्तः पुष्यो वाथ पुनर्वसुः । भवेत्सर्वौषधिस्नानं सम्यङ्नारी समाचरेत्

तदा पञ्चशरात्मा तु हरिस्सन्निधिमेष्यति ।
अर्चयेत्पुण्डरीकाक्षमनङ्गस्यानुकीर्तनैः ॥ १११ ॥

कामाय पादौ सम्पूज्य जङ्घे वै मोहकारिणे । मेढ्रं कन्दर्पनिधये कटिं प्रीतिमते नमः
नाभिं सौख्यसमुद्राय वामनाय तथोदरम् । हृदयं हृदयेशाय स्तनावाह्लादकारिणे ॥
उत्कण्ठायेति वै कण्ठमास्यमानन्दकारिणे । वामांसं पुष्पचापाय पुष्पबाणायदक्षिणम्
मानसायेति वै मौलिं विलोलायेति मूर्द्धजम् । सर्वात्मने शिरस्तद्वद्देवदेवस्य पूजयेत्
नमःशिवाय शान्ताय पाशाङ्कुशधराय च । गदिने पीतवस्त्राय शङ्खचक्रधराय च ॥११६
नमोनारायणायेति कामदेवात्मने नमः । नमः शान्त्यै नमः प्रीत्यै नमो रत्यैनमःश्रियै ॥
नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै नमः सर्वार्थसम्पदे । एवं सम्पूज्य गोविन्दमनङ्गात्मकमीश्वरम्
गन्धमाल्यैस्तथा धूपैर्नैवेद्येन च भामिनी । तत आहूय धर्मज्ञं ब्राह्मणं वेदपारगम् ॥११६
अव्यङ्गमथ सम्पूज्य गन्धपुष्पार्चनादिभिः । शालेयतण्डुलप्रस्थं घृतपात्रेण संयुतम् ॥
तस्मै विप्राय वै दद्यान्माधवः प्रीयतामिति । यथेष्टाहारसम्भुक्तमेनं द्विजमनुत्तमम् ॥

रत्यर्थं कामदेवोऽयमिति चित्ते चधारयेत्। यद्यदिच्छति विप्रेन्द्रस्तत्तत्कुर्याद्विलासिनी
सर्वभावेन चात्मानमर्पयेत्स्मितभाषिणी। एवमादित्यवारेण सर्वमेतत्समाचरेत् ॥१२३
तण्डुलप्रस्थदानं च यावन्मासास्त्रोदश। ततस्त्रयोदशे मासि सम्प्राप्ते चास्य भामिनी॥

विप्रस्योपस्करैर्युक्तां शय्यां दद्याद्विचक्षणा।
सोपधानां सविन्यासां स्वास्तरावरणां शुभाम् ॥ १२५ ॥

दीपिकोपानहच्छत्रपादुकासनसंयुताम्। सपत्नीकमलङ्कृत्य हेमसूत्राङ्गुलीयकैः ॥१२६।
सूक्ष्मवस्त्रैः सकटकैर्धूपमाल्यानुलेपनैः। कामदेवं सपत्नीकं गुडकुम्भोपरि स्थितम् ॥
ताम्रपात्रासनागतं हेमनेत्रपटावृतम्। सुकांस्यभाजनोपेतमिक्षुदण्डसमन्वितम् ॥१२८॥
दद्यादनेन मन्त्रेण तथैकां गां पयस्विनीम्। यथान्तरं न पश्यामि कामकेशवयोः सदा
तथैव सर्वकामाप्तिरस्तु विप्र सदा मम। तथा च काञ्चनं देवं प्रतिगृह्य द्विजोत्तमः

कोऽदात्कामोऽदादिति वैदिकं मन्त्रमुदीरयेत्।
ततः प्रदक्षिणीकृत्य विसृज्य द्विजपुङ्गवम् ॥ १३१ ॥

शय्यासनादिकं सर्वं ब्राह्मणस्य गृहं नयेत्। ततः प्रभृति योन्योऽपि रत्यर्थं गेहमागतः
सम्मान्य सूर्यवारेण ससम्पूज्यो भवेत्सदा। एवं त्रयोदशं यावन्मासमेकं द्विजोत्तमम्
तर्पयित्वा यथा कामं प्रेषयेच्चैव मन्दिरम्। तदनुज्ञया रूपवन्तं यावदस्यागमो भवेत् ॥
आत्मनोऽपि यदा विघ्नं गर्भसूतकराजकम्। दैवं वा मानुषं वा स्यादुपरागेण वा ततः
सा वारानष्ट पञ्चाशद्यथाशक्ति समर्पयेत्। एतद्धि कथितं सम्यग्भवतीनां विशेषतः ॥

स्वधर्मोऽयं यतो भाव्यो वेश्यानामिह सर्वदा।
शय्यया त्यज्यते देव न कदाचिद्यथा भवान् ॥ १३७ ॥

शय्या ममाप्यशून्येयं तथास्तु मधुसूदन। गीतवादित्रनिर्घोषं देवदेवस्य कारयेत् ॥१३८
एतद्वः कथितं सर्वं वेश्याधर्ममशेषतः। पुरुहूतेन यत्प्रोक्तं दानवीषु पुरा मया ॥१३९॥
तदिदं साम्प्रतं सर्वं भवतीष्वपि युज्यते। सर्वपापप्रशमनमनन्तफलदायकम्।

कल्याणिनीनां कथितं तदेतद्दुश्चरं व्रतम् ॥ १४० ॥
करोति याऽशेषमुदग्रमेतत्कल्याणिनी माधवलोकसंस्था।

सा पूजितादेवगणैरानन्दकृत्स्थानमुपैति विष्णोः ॥ १४१ ॥
तपोधनः सोऽप्यभिधाय चैतदनङ्गदानव्रतमङ्गनानाम् ।
स्वस्थानमेष्यन्ति समस्तमित्थं व्रतं करिष्यन्ति च देवयोने ॥१४२॥
इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे वेश्याव्रतकथनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ।

चतुर्विंशोऽध्यायः

श्रावणकृष्णपक्षीयद्वितीयायामशून्यशयनव्रतविधानम् ।

ब्रह्मोवाच ।

भगवन्पुरुषस्येह स्त्रियाश्च वरदायकम् । शोकव्याधिभयन्दुःखं न भवेद्येन तद्वद ॥१॥

शङ्कर उवाच ।

श्रावणस्य द्वितीयायां कृष्णायां मधुसूदनः । क्षीरार्णवे सपत्नीकः सदा वसति केशवः॥
तस्यां सम्पूज्य गोविन्दं सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।
गोभूहिरण्यदानादि सप्तकल्पशतानुगम् ॥ ३ ॥
आवाहनादिकाम्पूजां पूर्ववत्परिकल्पयेत् । अशून्यशयना नाम द्वितीयाऽसौ प्रकीर्तिता
तस्यां सम्पूजयेद्विष्णुमेभिमन्त्रैर्विधानतः । श्रीवत्सधारिञ्श्रीकान्त श्रीपते श्रीधराव्यय
गार्हस्थ्यं मा प्रणाशं मे यातु धर्मार्थकामदम् । अग्नयोमा प्रणश्यन्तु देवताः पुरुषोत्तम
पितरो मा प्रणश्यन्तु मम दाम्पत्यभेदतः । लक्ष्म्या वियुज्यते देवो न कदाचिद्यथाहरिः
तथा कलत्रसम्बन्धो देव मा मे वियुज्यताम् । लक्ष्म्या न शून्यं वरद यथा ते शयनंसदा
शय्याममाप्यशून्यास्तु तथैव मधुसूदन । गीतवादित्रनिर्घोषान्देवदेवस्य कारयेत् ॥ ६ ॥
घण्टाभवेदशक्तस्य सर्ववाद्यमयीयतः । एवं सम्पूज्य गोविन्दमश्नीयात्तैलवर्जितम् ॥१०
नक्तमक्षारलवणं यावत्तत्स्याच्चतुष्टयम् । ततः प्रभाते सञ्जाते लक्ष्मीपतिसमन्विताम् ॥
दीपान्नभाजनैर्युक्तां शय्यां दद्याद्विलक्षणाम् । पादुकोपाहनच्छत्रचामरासनसंयुताम् ॥

अभीष्टोपस्करैर्युक्तां शुक्लपुष्पाम्बरावृताम्। अव्यङ्गाय च विप्राय वैष्णवाय कुटुम्बिने
दातव्या वेदविदुषे न वन्ध्यापतये क्वचित्। तत्रोपवेश्य दाम्पत्यमलङ्कृत्य विधानतः॥

पत्न्यास्तु भाजनं दद्याद्भक्ष्यभोज्यसमन्वितम्।
ब्राह्मणस्यापि सौवर्णीमुपस्करसमन्वितम् ॥ १५ ॥

प्रतिमां देवदेवस्य सोदकुम्भां निवेदयेत्। एवं यस्तु पुमान्कुर्यादशून्यशयनं हरेः॥
वित्तशाठ्येन रहितो नारायणपरायणः। न तस्य पत्न्या विरहः कदाचिदपि जायते॥

नारी वा विधवा ब्रह्मन्यावच्चन्द्रार्कतारकम्।
न विरूपौ न शोकार्तौ दम्पती भवतः क्वचित् ॥ १८ ॥

न पुत्रपशुरत्नानि क्षयं यान्ति पितामह। सप्तकल्पसहस्राणि सप्तकल्पशतानि च ॥१९॥

कुर्वन्नशून्यशयनं विष्णुलोके महीयते।

ब्रह्मोवाच।

कथमारोग्यमैश्वर्यं मतिर्धर्मस्थितिस्सदा ॥ २० ॥
अव्यङ्गाथ परे भक्तिर्विष्णौ चापि भवेत्कथम्।

ईश्वर उवाच।

साधु ब्रह्मंस्त्वया पृष्टमिदानीं कथयामि ते ॥ २१ ॥

विरोचनस्य संवादं भार्गवस्य च धीमतः। प्रह्लादस्य सुतं दृष्ट्वा द्विरष्टपरिवत्सरम्॥२२
तस्य रूपमिदं ब्रह्मन्सोऽहसद् भृगुनन्दनः। साधु साधु महाबाहो विरोचन शिवं तव॥
तत्तथा हसितं तस्य पप्रच्छ सुरसूदनः। ब्रह्मन्किमर्थमेतत्ते हास्यं वै मामकं कृतम्॥२४
साधु साध्विति मामेव मुक्तवांस्त्वं वदस्व मे। तमेवं वादिनं शुक्रमुवाच वदतांवरः॥
विस्मयाद्व्रतमाहात्म्याद्धास्यमेतत्कृतं मया। पुरा दक्षविनाशाय कुपितस्य त्रिशूलिनः
अपतद्भीमवक्त्रस्य स्वेदबिन्दुर्ललाटजः। भित्त्वा स सप्तपातालानदहत्सप्तसागरान्॥
अनेकवक्त्रनयनोऽज्वलज्ज्वलनभीषणः। वीरभद्र इति ख्यातः करपादायुतैर्युतः ॥ २८॥
कृत्वा स यज्ञमथनं पुनर्भूतस्य संप्लवः। त्रिजगद्दहनाद्भूयः शिवेन विनिवारितः ॥ २९॥
कृतं त्वया वीरभद्र दक्षयज्ञविनाशनम्। इदानीमलमेतेन लोकदाहेन कर्मणा ॥ ३० ॥

शान्तिप्रदानात्सर्वेषां ग्रहाणां प्रथमो भव । प्रहृष्टाभिजनाः पूजां करिष्यन्ति कृतात्मनः ॥

अङ्गारक इति ख्यातिं गमिष्यसि धरात्मज ।
देवलोके द्वितीयं च तव रूपं भविष्यति ॥ ३२ ॥
ये च त्वां पूजयिष्यन्ति चतुर्थ्यां तु दिने नरः ।
रूपमारोग्यमैश्वर्यं तेष्वनन्तं भविष्यति ॥ ३३ ॥

एवमुक्तस्ततःशान्तिमगमत्कामरूपधृक् । स जातस्तत्क्षणाद्राजन्ग्रहत्वमगमत्पुनः ॥३४॥
स कदाचिद्भवांस्तस्य पूजार्घादिकमुत्तमम् । दृष्ट्वाग्क्रियमाणं च शूद्रेण त्वं व्यवस्थितः
तेन त्वं रूपवाञ्जातो सुरः शत्रुकुलाशनिः । विविधा च रुचिर्जाता यस्मात्तव विदूरगा
विरोचन इति प्राहुस्तस्मात्त्वां देवदानवाः । शूद्रेण क्रियमाणस्य व्रतस्य तव दर्शनात्
ईदृशी रूपसंपत्तिरिति विस्मितवानहम् । साधुसाध्विति तेनोक्तमहोमाहात्म्यमुत्तमम्

पश्यतोऽपि भवेद्रूपमैश्वर्यं किमु कुर्वतः ॥ ३८ ॥
यस्माच्च भक्त्या धरणीसुतस्य विनिन्द्यमानेन गवादिदानम् ।
आलोकितं तेन सुरारिगर्भे सम्भूतिरेषा तव दैत्य जाता ॥ ३९ ॥

अथ तद्वचनं श्रुत्वा भार्गवस्य महात्मनः । प्रह्लादनन्दनो वीरः पुनः पप्रच्छ भार्गवम् ॥

विरोचन उवाच ।

भगवंस्तद्व्रतं सम्यक्श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः । दीयमानं तु यद्दानं मया दृष्टं भवान्तरे ।
माहात्म्यं च विधिं तस्य यथावद्वक्तुमर्हसि । इति तद्वचनं श्रुत्वा विप्रः प्रोवाच सादरम्
चतुर्थ्यङ्गारकदिने यदा भवति दानव । मृदा स्नानं तदा कुर्यात्पद्मरागविभूषितः ॥४३॥

अग्निर्मूर्द्धादिवो मन्त्रं जपेत्स्नात उदङ्मुखः ।
शूद्रस्तूष्णींस्मरन्भौममास्तां भोगविवर्जितः ॥ ४४ ॥

अथास्तमित आदित्ये गोमयेनानुलेपयेत् । प्राङ्गणं पुष्पमालाभिरक्षताद्भिः समन्ततः ॥
तदभ्यर्च्यालिखेत्पद्मं कुङ्कुमेनाष्टपत्रकम् । कुङ्कुमस्याप्यभावेन रक्तचन्दनमिष्यते ॥
चत्वारः करकाः कार्या भक्ष्यभोज्यसमन्विताः। तण्डुलैरक्तशालेयाः पद्मरागैश्च संयुताः

चतुष्कोणेषु तान्कृत्वा फलानि विविधानि च ।

गन्धमाल्यादिकं सर्वं तथैव विनिवेशयेत् ॥ ४८ ॥

सुवर्णशृङ्गां कपिलामथार्च्य रौप्यैः खुरैः कांस्यदोहां सवस्त्राम् ।

धुरन्धरं रक्तखुरं च सौम्यं धान्यानि सप्ताम्बरसंयुतानि ॥ ४९ ॥

अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं तथैव सौवर्णमप्यायतबाहुदण्डम् ।

चतुर्भुजं हेममयं च ताम्रपात्रे गुडस्योपरि सर्पियुक्तम् ॥ ५० ॥

सामस्वरज्ञाय जितेन्द्रियाय चाग्रूपशीलान्वयसंयुताय ।

दातव्यमेतत्सकलं द्विजाय कुटुम्बिने नैव तु दम्भयुक्ते ॥ ५१ ॥

भूमिपुत्र महाभाग स्वेदोद्भव पिनाकिनः। रूपार्थी त्वां प्रपन्नोऽहं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते

मन्त्रेणानेन दत्त्वार्घ्यं रक्तचन्दनवारिणा । ततोऽर्चयेद्विप्रवरं रक्तमाल्याम्बरादिभिः ॥

दद्यात्तेनैव मन्त्रेण भौमं गोमिथुनान्वितम् ।

शय्यां च शक्तिमान्दद्यात्सर्वोपस्करसंयुताम् ॥ ५४ ॥

यद्यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं गृहे । तत्तद्गुणवते देयं तत्स्याक्षयमिच्छता ॥

ततः प्रदक्षिणं कृत्वा विसृज्य द्विजसत्तमम् । नक्तं क्षीराशनं कुर्यादेवं चाङ्गारकाष्टकम्

चतुरो वाथ वा तस्य यत्पुण्यं तद्वदामि ते । रूपसौभाग्यसंपन्नः पुमाञ्जन्मनि जन्मनि

विष्णौ वाथ शिवे भक्तः सप्तद्वीपाधिपो भवेत् । सप्तकल्पसहस्राणि रुद्रलोके महीयते

तस्मात्त्वमपि दैत्येन्द्र व्रतमेतत्समाचर ॥ ५८ ॥

इत्येवमुक्तो भृगुनन्दनेन चकार सर्वं च तमेव दैत्यः ।

त्वं चापि राजन्कुरु सर्वमेतद्यतोऽक्षयं वेदविदो वदन्ति ॥ ५९ ॥

शृणोति यश्चैनमनन्यचेतास्तस्यापि सर्वंभगवन्विधत्त ॥ ६० ॥

इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे अङ्गारकचतुर्थीव्रतं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।

पञ्चविंशोऽध्यायः

आदित्यशयनव्रतविधानवर्णनम् ।

भीष्म उवाच ।

उपवासेष्वशक्तस्य तदेव फलमिच्छतः । अनभ्यासेन रोगाद्वा किमिष्टं व्रतमुच्यताम् ॥

पुलस्त्य उवाच ।

उपवासेष्वशक्तानां नक्तं भोजनमिष्यते । यस्मिन्व्रते तदप्यत्र श्रूयतां वै व्रतं महत् ॥

आदित्यशयनं नाम यथावच्छङ्करार्चनम् । येषु नक्षत्रयोगेषु पुराणज्ञाः प्रचक्षते ॥ ३ ॥

यदा हस्तेन सप्तम्यामादित्यस्य दिनं भवेत् ।
सूर्यस्य चापि सङ्क्रातिस्तिथिस्सा सार्वकामिकी ॥ ४ ॥

उमामहेश्वरस्यार्चामर्चयेत्सूर्यनामभिः । सूर्यार्चां शिवलिङ्गं च उभयं पूजयेद्यतः ॥ ५॥

उमापते रवेश्चापि न भेदः क्वचिदिष्यते । यस्मात्तस्मान्नृपश्रेष्ठ गृहे भानुं समर्चयेत् ॥

हस्तेन सूर्याय नमोऽस्तु पादावर्काय चित्रासु च गुल्फदेशम् ।
स्वातीषु जङ्घे पुरुषोत्तमाय धात्रे विशाखासु च जानुदेशम् ॥ ७ ॥
तथाऽनुराधासु नमोऽभिपूज्यमूरुद्वयं चैव सहस्रभानोः ।
ज्येष्ठास्वनङ्गाय नमोऽस्तु गुह्यमिन्द्राय भीमाय कटिं च मूले ॥ ८ ॥
पूर्वोत्तराषाढयुगे च नाभिं त्वष्ट्रे नमः सप्ततुरङ्गमाय ।
तीक्ष्णांशवे श्रवणे चाथ कुक्षिं पृष्ठं धनिष्ठासु विकर्तनाय ॥ ९ ॥
वक्षस्थलं ध्वान्तविनाशनाय जलाधिपर्क्षे प्रतिपूजनीयम् ।
पूर्वोत्तराभाद्रपदद्वये च बाहू तमश्चण्डकराय पूज्यौ ॥१०॥
साम्नामधीशाय करद्वयं च सम्पूजनीयं नृप रैवतीषु ।
नखानि पूज्यानि तथाश्विनीषु नमोऽस्तु सप्ताश्वधुरन्धराय ॥ ११ ॥
कठोरधाम्ने भरणीषु कण्ठं दिवाकरायेत्यभिपूजनीयम् ।

श्रीवाग्निपर्क्षेऽधरसम्पुटे तु सम्पूजयेद्वारत रोहिणीषु ॥ १२ ॥
मृगेऽर्चनीया रसना पुरारे रौद्रे तु दन्ता हरये नमस्ते ।
नमः सवित्रे इतिशङ्करस्य नासाभिपूज्या च पुनर्वसौ च ॥ १३ ॥
ललाटमम्भोरुहवल्लभाय पुष्येऽलकान्वेदशरीरधारिणे ।
सार्पे च मौलिं विबुधप्रियाय मघासु कर्णाविति पूजनीयौ ॥ १४ ॥
पूर्वासु गोब्राह्मणनन्दनाय नेत्राणि संपूज्यतमानि शम्भोः ।
अथोत्तराफाल्गुनिभे भ्रुवौ च विश्वेश्वरायेति च पूजनीये ॥ १५ ॥
नमोऽस्तु पाशाङ्कुशपद्मशूलकपालसर्पेन्दुधनुर्धराय ।
गयासुरानङ्गपुरान्धकादिविनाशमूलाय नमः शिवाय ॥ १६ ॥
इत्यादिकाङ्गानि च पूजयित्वा विश्वेश्वरायेति शिरोऽभिपूज्यम् ।
अत्रापि भोक्तव्यमतैलमन्नममांसमक्षारमभुक्तशेषम् ॥ १७ ॥

इत्येवं नृपनक्तानि कृत्वा दद्यात्पुनर्वसौ । शालेयतण्डुलप्रस्थमौदुम्बरमथो घृतम् ॥१८॥
संस्थाप्य पात्रे विप्राय सहिरण्यं निवेदयेत् । सप्तमे वस्त्रयुग्मं तु पारणे त्वधिकं भवेत्
चतुर्दशे तु सम्प्राप्ते पारणे भारतादिके । ब्राह्मणं भोजयेद्भक्त्या गुडक्षीरघृतादिभिः ॥
कृत्वा च काञ्चनं पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम् । शुद्धमष्टाङ्गुलं तच्च पद्मरागदलान्वितम् ॥२१

शय्यां सुलक्षणां कृत्वा विरुद्धग्रन्थिवर्जिताम् ।
सोपधानवितानां च स्वास्तरावरणाश्रयाम् ॥ २२ ॥

पादुकोपानहच्छत्रचामरासनदर्पणैः । भूषणैरपि संयुक्तां फलवस्त्रानुलेपनैः ॥ २३ ॥

तस्यां विधाय तत्पद्ममलङ्कृत्य गुणान्विताम् ।
कपिलां वस्त्रसंयुक्तामतिशीलां पयस्विनीम् ॥ २४ ॥
रौप्यखुरां हैमशृङ्गीं सवत्सां कांस्यदोहनाम् ।
दद्यान्मन्त्रेण तां धेनुं पूर्वाह्णे नातिलङ्घयेत् ॥ २५ ॥
यथैवादित्यशयनमशून्यं तव सर्वदा ।
कान्त्या धृत्या श्रिया पुष्ट्या तथा मे सन्तु वृद्धयः ॥ २६ ॥

तथा न देवाः श्रेयांसं त्वदन्यमनघं विदुः । तथा मामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात् ॥
ततः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य च विसर्जयेत् । शय्यां गवादि तत्सर्वं द्विजस्य भवनं नयेत्

नैतद्विशीलाय न दाम्भिकाय प्रकाशनीयं व्रतमिन्दुमौलेः ।
गोविप्रदेवर्षिविकर्मयोगिनां यश्चापि निन्दामधिकां विधत्ते ॥ २९ ॥
भक्ताय दान्ताय च गुह्यमेतदाख्येयमानन्दकरं शिवञ्च ।
इदं महापातकिनां नराणां अघक्षयं वेदविदो वदन्ति ॥ ३० ॥
न बन्धुपुत्रैर्नधनैर्वियुक्तः पत्नीभिरानन्दकरः सुराणाम् ।
नाभ्येति रोगं न च दुःखमोहं या चापि नारी कुरुतेऽथ भक्त्या ॥ ३१ ॥
इदं वसिष्ठेन पुरार्जुनेन कृतं कुबेरेण पुरन्दरेण ।
यत्कीर्तनादप्यखिलानि नाशमायान्ति पापानि न संशयोऽत्र ॥ ३२ ॥
इति पठति शृणोति वा य इत्थं रविशयनं पुरुहूतवल्लभःस्यात् ।
अपि नरकगतान्पितॄनशेषानपि दिवमानयतीह यः करोति ॥ ३३ ॥

अश्वत्थं च वटं चैवोदुम्बरं वृक्षमेव च । नन्दीशं जम्बुवृक्षं च बिल्वं प्राहुर्महर्षयः ॥३४॥

मार्गशीर्षादिमासाभ्यां द्वाभ्यां द्वाभ्यामथ क्रमात् ।
एकैकं दन्तधवनं वृक्षेष्वेतेषु कारयेत् ॥ ३५ ॥

दद्यात्समाप्ते दध्यन्नं वितानध्वजचामरम् । द्विजानामुदकुम्भांश्च पञ्चरत्नसमन्वितान् ॥

न वित्तशाठ्यं कुर्वीत कुर्वन्दोषानवाप्नुयात् ॥ ३७ ॥

इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे आदित्यशयनव्रतं नाम पञ्चविंशोध्यायः ॥२५॥

षड्विंशोऽध्यायः

रोहिणीचन्द्रशयनव्रतविधानम् ।

भीष्म उवाच ।

दीर्घायुरारोग्यकुलातिवृद्धिभिर्युक्तः पुमान्रूपकुलान्वितः स्यात् ।

मुहुर्मुहुर्जन्मनि येन सम्यग्व्रतं समाचक्ष्व च शीतरश्मेः ॥ १ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

त्वया पृष्टमिदं सम्यगक्षयस्वर्गकारकम् । रहस्यं तु प्रवक्ष्यामि यत्पुराणविदो विदुः ॥
रोहिणीचन्द्रशयनं नाम व्रतमिहोच्यते । तस्मिन्नारायणस्यार्चामर्चयेदिन्दुनामभिः ॥
यदा सोमदिने शुक्ला भवेत्पञ्चदशी क्वचित् । अथवा ब्रह्मनक्षत्रं पौर्णमास्यां प्रजायते
तदा स्नानं नरः कुर्यात्पञ्चगव्येन सर्षपैः । आप्यायस्वेति च जपेद्विद्वानष्टशतं पुनः ॥५
शूद्रोऽपि परया भक्त्या पाषण्डालापवर्जितः । सोमाय वरदायाथ विष्णवे च नमोनमः
कृतजप्यः स्वभवनमागत्य मधुसूदनम् । पूजयेत्फलपुष्पैश्च सोमनामानि कीर्तयन् ॥७॥

सोमाय शान्ताय नमोऽस्तु पादावनन्तधाम्नेति च जानुजङ्घे ।
ऊरुद्वयं चापि जलोदराय सम्पूजयेन्मेढ्रमनङ्गधाम्ने ॥ ८ ॥
नमो नमः कामसुखप्रदाय कटिःशशाङ्कस्य सदार्चनीयः ।
तथोदरं चाप्यमृतोदराय नाभिः शशाङ्काय नमोऽभिपूज्या ॥ ९ ॥
नमोऽस्तु चन्द्राय मुखं च नित्यं दन्ता द्विजानामधिपाय पूज्याः ।
हास्यं नमश्चन्द्रमसेऽभिपूज्यमोष्ठौ तु कौमोदवनप्रियाय ॥ १० ॥
नासा च नाथाय वरौषधीनामानन्दबीजाय पुनर्भ्रुवौ च ।
नेत्रद्वयं पद्मनिभं तथेन्दोरिन्दीवरव्यासकराय शौरेः ॥ ११ ॥
नमः समस्ताध्वरपूजिताय कर्णद्वयं दैत्यनिषूदनाय ।
ललाटमिन्दोरुदधिप्रियाय केशाः सुषुम्नाधिपतेः प्रपूज्याः ॥ १२ ॥
शिरः शशाङ्काय नमो मुरारेर्विश्वेश्वरायाथ नमः किरीटम् ।
पद्मप्रिये रोहिणी नाम लक्ष्मिसौभाग्यसौख्यामृतसागराय ॥ १३ ॥
देवीं च सम्पूज्य सुगन्धिपुष्पैर्नैवेद्यधूपादिभिरिन्दुपत्नीम् ।
सुप्त्वा तु भूमौ पुनरुत्थितो यः स्नात्वा च विप्राय हविष्यभुक्तः ॥ १४ ॥
देयः प्रभाते सहिरण्यवारि कुम्भोनमः पापविनाशनाय ।
सम्प्राश्य गोमूत्रममांसमन्नमक्षारमष्टावथ विंशतिं च ॥ १५ ॥

ग्रासांश्च त्रीन्सर्पियुतानुपोष्य भुक्त्वेतिहासं शृणुयान्मुहूर्तम् ।
कदम्बनीलोत्पलकेतकानि जातिः सरोजं शतपत्रिका च ॥ १६ ॥
अम्लानपुष्पाण्यथ सिन्दुवारं पुष्पं पुनर्भारतमल्लिकायाः ।
शुक्लं च पुष्पं करवीरपुष्पं श्रीचम्पकं चन्द्रमसे प्रदेयम् ॥ १७ ॥
श्रावणादिषु मासेषु क्रमादेतानि सर्वदा। यस्मिन्मासे व्रतादिः स्यात्तत्पुष्पैरर्चयेद्धरिम्
एवं संवत्सरं यावदुपोष्य विधिवन्नरः । व्रतान्ते शयनं दद्याच्छयनोपस्करान्वितम् ॥
रोहिणीचन्द्रमिथुनं कारयित्वा तु काञ्चनम् । चन्द्रः षडङ्गुलः कार्यो रोहिणीचतुरङ्गुला
मुक्ताफलाष्टकयुतां सितनेत्रसमन्विताम् । क्षीरकुम्भोपरि पुनः कांस्यपात्राक्षतान्विताम्
दद्यान्मन्त्रेण पूर्वाह्णे शालीक्षुफलसंयुताम् । श्वेतामथ सुवर्णास्यां रौप्यखुरसमन्विताम्
सवस्त्रभाजनां धेनुं तथा शङ्खं च भाजनम् । भूषणैर्द्विजदाम्पत्यमलङ्कृत्य गुणान्वितम्
चन्द्रोऽयं विप्ररूपेण सभार्य इति कल्पयेत् ।
यथा ते रोहिणीकृष्णशय्यां त्यक्त्वा न गच्छति ॥ २४ ॥
सोमरूपस्य वै तद्वन्न मे भेदोविभूतिभिः । यथा त्वमेव सर्वेषां परमानन्दमुक्तिदः ॥२५
भुक्तिर्मुक्तिस्तथा भक्तिस्त्वयि चन्द्र दृढास्तु मे ।
इति संसारभीतस्य मुक्तिकामस्य चानघ ॥ २६ ॥
रूपारोग्यायुषामेतद्विधायकमनुत्तमम् । इदमेव पितॄणां च सर्वदा वल्लभं नृप ॥ २७ ॥
त्रैलोक्याधिपतिर्भूत्वा सप्तकल्पशतत्रयम् । चन्द्रलोकमवाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥
नारी वा रोहिणीचन्द्रशयनं या समाचरेत् । सापि तत्फलमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥
इति पठति शृणोति वा य इत्थम्मधुमथनार्चनमिन्दुकीर्तनेन ।
मतिमपि च ददाति सोऽपि शौरेर्भवनगतः परिपूज्यतेऽमरौघैः ॥३०॥
इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे रोहिणीचन्द्रशयनव्रतं नाम षड्विंशोऽध्यायः।२६।

सप्तविंशोऽध्यायः

तटाकप्रतिष्ठाविधिवर्णनम् ।

भीष्म उवाच ।

तटाकाराममकूपेषु वापीषु नलिनीषु च । विधिं वदस्व मे ब्रह्मन्देवतायतनेषु च ॥ १ ॥

के तत्र ऋत्विजो विप्रा वेदी वा कीदृशी भवेत् ।

दक्षिणावलयः कालः स्थानमाचार्य एव च ॥ २ ॥

द्रव्याणि कानि शस्तानि सर्वमाचक्ष्व सुव्रत ॥

पुलस्त्य उवाच ।

शृणुराजन्महाबाहो तटाकादिषु यो विधिः ॥ ३ ॥

पुराणेष्वितिहासोऽयं पठ्यते राजसत्तम । प्राप्य पक्षं शुभं शुक्लं संप्राप्ते चोत्तरायणे ॥

पुण्येऽह्नि विप्रैः कथिते कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् । अशुभैर्वर्जिते देशे तटाकस्य समीपतः

चतुर्हस्तां समां वेदीं चतुरस्रां चतुर्मुखीम् । तथा षोडशहस्तः स्यान्मण्डपश्च चतुर्मुखः

वेद्यास्तु परितो गर्ता रत्निमात्रास्त्रिमेखलाः । नव सप्ताथ वा पञ्चऋजुवक्त्रा नृपात्मज

वितस्तिमात्रा योनिः स्यात्षट्सप्ताङ्गुलिविस्तृता ।

गर्ताश्च हस्तमात्रास्स्युस्त्रिपर्वोच्छ्रितमेखलाः ॥ ८ ॥

सर्वतस्तु सवर्णाः स्युः पताकाध्वजसंयुताः । अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटशाखा कृतानि तु

मण्डपस्य प्रतिदिशं द्वाराण्येतानि कारयेत् । शुभास्तत्राष्टहोतारो द्वारपालास्तथाष्टवै

अष्टौ तु जापकाः कार्या ब्राह्मणा वेदपारगाः ।

सर्वलक्षणसम्पूर्णान्मन्त्रज्ञान्विजितेन्द्रियान् ॥ ११ ॥

कुलशीलसमायुक्तान्स्थापयेद्वै द्विजोत्तमान् । प्रतिगर्तेषु कलशा यज्ञोपकरणानि च ॥

व्यजने चासनं शुभ्रं ताम्रपात्रं सुविस्तरम् । ततस्त्वनेकवर्णास्स्युर्बलयः प्रतिदैवतम् ॥

आचार्यः प्रक्षिपेद्भूमावनुमन्त्र्य विचक्षणः । अरत्निमात्रोयूपः स्यात्क्षीरवृक्षविनिर्मितः

यजमानप्रमाणोवा संस्थाप्योभूतिमिच्छता । हेमालङ्कारिणःकार्याः पञ्चविंशतिऋत्विजः
कुण्डलानि च हैमानि केयूरकटकानि च । तथाङ्गुलिपवित्राणि वासांसि विविधानिच

दद्यात्समानि सर्वेषामाचार्ये द्विगुणं स्मृतम् ।
दद्याच्छयनसंयुक्तमात्मनश्चापि यत्प्रियम् ॥१७॥

सौवर्णौ कूर्ममकरौ राजतौ मत्स्यडुण्डुभौ । ताम्रौ कम्भीरमण्डूका वायसःशिशुमारकः
एवमासाद्य तत्सर्वमादावेव विशांपते । शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः ॥१६॥
सर्वौषध्युदकैः सर्वैः स्नापितो वेदपारगैः । यजमानः सपत्नीकः पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥
पश्चिमद्वारमासाद्य प्रविशेद्यागमण्डपम् । ततो मङ्गलशब्देन भेरीणां निःस्वनेन च ॥
रजसा मण्डलं कुर्यात्पञ्चवर्णेन तत्त्ववित् । षोडशारं ततश्चक्रं पद्मगर्भं चतुर्मुखम् ॥
चतुरस्रं तु परितो वृत्तं मध्ये सुशोभनम् । वेद्याश्चोपरितः कृत्वा ग्रहाँल्लोकपतींस्ततः ॥
संन्यसेन्मन्त्रतः सर्वान्प्रतिदिक्षु विचक्षणः । कलशं स्थापयेन्मध्ये वारुणं मन्त्रमाश्रितम्
ब्रह्माणं च शिवंविष्णुं तत्रैव स्थापयेद्बुधः । विनायकंचविन्यस्य कमलामम्बिकान्तथा

शान्त्यर्थं सर्वलोकानां भूतग्रामं न्यसेत्ततः ।
पुष्पभक्ष्यफलैर्युक्तमेवं कृत्वाधिवासनम् ॥ २६ ॥
कुम्भांश्च रत्नगर्भांस्तान्वासोभिः परिवेष्टयेत् ।
पुष्पगन्धैरलङ्कृत्य द्वारपालान्समन्ततः ॥ २७ ॥

यजध्वमिति तान्ब्रूयादाचार्यमभिपूजयेत् । बह्वृचौ पूर्वतः स्थाप्यौ दक्षिणेन यजुर्विदौ
सामगौ पश्चिमे स्थाप्यावुत्तरेणाप्यथर्वणौ । उदङ्मुखो दक्षिणतो यजमान उपाविशेत्
यजध्वमिति तान्ब्रूयाद्याजकान्पुनरेव तान् । उत्कृष्टमन्त्रजाप्येन तिष्ठध्वमिति जापकान्

एवमादिश्य तान्सर्वान्संधुक्ष्याग्निं स मन्त्रवित् ।
जुहुयादाहुती मन्त्रैराज्यं च समिधस्तथा ॥ ३१ ॥

ऋत्विग्भिश्चैव होतव्यं वारुणैरेव सर्वतः । ग्रहेभ्यो विधिवद्धुत्वा तथेन्द्रायेश्वराय च
मरुद्भ्यो लोकपालेभ्योविधिवद्विश्वकर्मणे । शान्तिसूक्तं च रौद्रं च पावमानं च मङ्गलम्

जपेच्च पौरुषं सूक्तं पूर्वतो बह्वृचः पृथक् ।

शाक्तं रौद्रं च सौम्यं च कौष्माण्डं जातवेदसम् ॥ ३४ ॥
सौरं सूक्तं जपेयुस्ते दक्षिणेन यजुर्विदः । वैराजं पौरुषं सूक्तं सौपर्णं रुद्रसंहितम् ॥
शैशवं पञ्चनिधनं गायत्रं ज्येष्ठसाम च । वामदेव्यं बृहत्साम रौरवं च रथन्तरम् ॥
गवां व्रतं विकीर्णं च रक्षोघ्नं च यमं तथा । गायेयुः सामगाराजन्पश्चिमद्वारमाश्रिताः
आथर्वणाश्चोत्तरतः शान्तिकं पौष्टिकं तथा । जपेयुर्मनसा देवमाश्रिता वरुणं प्रभुम् ॥
पूर्वेद्युरभितो रात्रावेवं कृत्वाधिवासनम् । गजाश्वरथवल्मीकसंगमाद्व्रजगोकुलात् ॥

मृदमादाय कुम्भेषु प्रक्षिपेदोषधीस्तथा ।
रोचनां च ससिद्धार्थां गन्धान्गुग्गुलुमेव च ॥ ४० ॥
स्नापनं तस्य कर्त्तव्यं पञ्चगव्यसमन्वितम् ।
पूर्वं कर्तुर्महामन्त्रैरेवं कृत्वा विधानतः ॥ ४१ ॥

अतिवाह्य क्षपामेवं विधियुक्तेन कर्मणा । ततः प्रभाते विमले सञ्जाते तु शतं गवाम् ॥
ब्राह्मणेभ्यः प्रदातव्यमष्टषष्ट्यथ वा पुनः । पञ्चाशद्वाथ षट्त्रिंशत्पञ्चविंशति वा पुनः ॥
ततश्चावसरप्राप्ते शुद्धे लग्ने सुशोभने । वेदशब्दैःसगन्धर्वैर्वाद्यैश्च विविधैः पुनः ॥ ४४ ॥
कनकालङ्कृतां कृत्वा जले गामवतारयेत् । सामगाय च सा देया ब्राह्मणाय विशांपते
पात्रीमादाय सौवर्णीं पञ्चरत्नसमन्विताम् । ततोनिक्षिप्यमकरान्मत्स्यादींश्चैव सर्वशः
धृतां चतुर्भिर्विप्रैश्च वेदवेदाङ्गपारगैः । महानदीजलोपेतां दध्यक्षतविभूषिताम् ॥ ४७ ॥
उत्तराभिमुखांन्युब्जां जलमध्ये तु कारयेत् । आथर्वणेन सुस्नातां पुनर्मायां तथैव च

आपोहिष्ठेति मन्त्रेण क्षिप्त्वाऽऽगत्य च मण्डपम् ।
पूजयित्वा सदस्यान्वै बलिं दद्यात्समन्ततः ॥ ४६ ॥

पुनर्दिनानि होतव्यं चत्बारि राजसत्तम । चतुर्थीकर्म कर्त्तव्यं देयं तत्रापि शक्तितः ॥
कृत्वा तु यज्ञपात्राणि यज्ञोपकरणानि च । ऋत्विग्भ्यस्तु समं दद्यान्मण्डपंविभजेत्पुनः
हेमपात्रीं च शय्यां च विप्राय च निवेदयेत् । ततः सहस्रं विप्राणामथवाऽष्टशतं तथा ॥
भोजनीयं यथाशक्ति पञ्चाशद्वाथ विंशतिः । एवमेष पुराणेषु तटाकविधिरुच्यते ॥५३॥
कूपवापीषु सर्वासु तथा पुष्करिणीषु च । एष एव विधिर्दृष्टः प्रतिष्ठासु तथैव च ॥

मन्त्रतस्तु विशेषः स्यात्प्रासादोद्यानभूमिषु । अयं त्वशक्तावर्धेनविधिर्दृष्टःस्वयंभुवा ॥

स्वल्पेष्वेकाग्निवत्कार्योवित्तशाठ्यविवर्जितैः ।

प्रावृट्काले स्थितं तोयमग्निष्टोमसमं स्मृतम् ॥ ५६ ॥

शरत्कालस्थितं यत्स्यात्तदुक्तफलदाकयम् ।

वाजपेयातिरात्राभ्यां हेमन्ते शिशिरे स्थितम् ॥ ५७ ॥

अश्वमेधसमं प्राहुर्वसन्तसमये स्थितम् । ग्रीष्मेऽपि यत्स्थितं तोयंराजसूयाद्विशिष्यते

एतान्महाराज विशेषधर्मान्करोति चोर्व्यामतिशुद्धबुद्धिः ।

स याति ब्रह्मालयमेव शुद्धः कल्पाननेकान्दिवि मोदते च ॥ ५९ ॥

अनेकलोकान्विचरन्स्वरादीन्भुक्त्वा परार्धद्वयमङ्गनाभिः ।

सहैव विष्णोः परमं पदं यत्प्राप्नोति तद्योगबलेन भूयः ॥ ६० ॥

इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमेसृष्टिखण्डे तटाकप्रतिष्ठाविधिर्नाम सप्तविंशोऽध्यायः ।

अष्टाविंशोऽध्यायः

पादपारोपणविधिवर्णनम् ।

भीष्म उवाच ।

पादपानां विधिं ब्रह्मन्यथावद्विस्तराद्वद । विधिना येन कर्त्तव्यं पादपारोपणं बुधैः ॥१॥

ये च लोकाःस्मृता येषां तानिदानीं वदस्व मे ।

पुलस्त्य उवाच ।

पादपानां विधिं वक्ष्ये तथैवोद्यानभूमिषु ॥ २ ॥

तटाकविधिवत्सर्वं समाप्य जगतीश्वर । ऋत्विङ्मण्डपसंभारमाचार्यं चापि तद्विधम्

पूजयेद्ब्राह्मणांस्तद्वद्धेमवस्त्रानुलेपनैः । सर्वौषध्युदकैः सिक्तान्दध्यक्षतविभूषितान् ॥४॥

वृक्षान्माल्यैरलङ्कृत्यवासोभिरभिवेष्टयेत् । सूच्या सौवर्णया कार्यं सर्वेषांकर्णवेधनम्

अञ्जनं चापि दातव्यं तद्वद्धेमशलाकया । फलानि सप्त चाष्टौ वा कालधौतानि कारयेत्
प्रत्येकं सर्ववृक्षाणां वेद्यां तान्यधिवासयेत् । धूपोऽत्रगुग्गुलुःश्रेष्ठस्ताम्रपात्रेष्वधिष्ठितान्
सप्तधान्यस्थितान्कृत्वा वस्त्रगन्धानुलेपनैः। कुम्भान्सर्वेषु वृक्षेषु स्थापयित्वाऽवनीश्वर

पूजयित्वा दिनान्ते च कृत्वा बलिनिवेदनम् ।
यथावल्लोकपालानामिन्द्रादीनां विधानतः ॥ ६ ॥

वनस्पतेरधिवास एवं कार्यो द्विजातिभिः । ततः शुक्लाम्बरधरां सौवर्णकृतमेखलाम् ॥

सकांस्यदोहां सौवर्णशृङ्गाभ्यामतिशालिनीम् ।
पयस्विनीं वृक्षमध्यादुत्सृजेद् गामुदङ्मुखीम् ॥ ११ ॥

ततोऽभिषेकमन्त्रेण वाद्यमङ्गलगीतकैः । ऋग्यजुः साममन्त्रैश्च वारुणैरभितस्तदा ॥१२।
तैरेव कुम्भैः स्नपनं कुर्युर्ब्राह्मणपुङ्गवाः । स्नातःशुक्लाम्बरधरो यजमानोऽभिपूजयेत् ॥
गोभिर्विभवतः सर्वानृत्विजः सुसमाहितान् । हेमसूत्रैः सकटकैरङ्गुलीयैः पवित्रकैः ॥
वासोभिः शयनीयैश्च तथोपस्करपादुकैः । क्षीराभिषेचनं कुर्याद्यावद्दिनचतुष्टयम् ॥
होमश्च सर्पिषा कार्यो यवैः कृष्णतिलैरपि । पलाशसमिधः शस्ताश्चतुर्थेऽह्नि तथोत्सवः
दक्षिणा च पुनस्तद्वद्देया तत्रापि शक्तितः । यद्यदिष्टतमं किञ्चित्तत्तद्द्यादमत्सरी ॥१७।
आचार्ये द्विगुणं दत्त्वा प्रणिपत्य क्षमापयेत् । अनेन विधिना यस्तुकुर्याद्वृक्षोत्सवं बुधः
सर्वान्कामानवाप्नोति पदं चानन्तमश्नुते । यश्चैवमपि राजेन्द्र वृक्षं संस्थापयेद् बुधः

सोऽपि स्वर्गे वसेद्राजन्यावदिन्द्रायुतत्रयम् ।
भूतान्भव्यांश्च मनुजांस्तारयेद्रोमसम्मितान् ॥ २० ॥

परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम् । य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वापि मानवः ॥
सोऽपि सम्पूज्यते देवैर्ब्रह्मलोके महीयते । अपुत्रस्य च पुत्रित्वं पादपा एवकुर्वते ॥२२।
तीर्थेषु पिण्डदानादिन्रोपकाणां ददन्ति ते । यत्नेनापि च राजेन्द्र अश्वत्थारोपणं कुरु ॥
स ते पुत्रसहस्रस्य कृत्यमेकः करिष्यति । धनी चाश्वत्थवृक्षेण अशोकः शोकनाशनः

प्लक्षो यज्ञप्रदः प्रोक्तः क्षीरीचायुः प्रदः स्मृतः ।
जम्बुकी कन्यकादात्री भार्यादा दाडिमी तथा ॥ २५ ॥

अश्वत्थो रोगनाशाय पलाशो ब्रह्मदस्तथा । प्रेतत्वं जायते पुंसो रोपयेद्यो विभीतकम्
अङ्कोले कुलवृद्धिस्तु खादिरेणापि रोगिता । निम्बप्ररोहकाणां तु नित्यंतुष्येद्दिवाकरः
श्रीवृक्षे शङ्करो देवः पाटलायां तु पार्वती । शिंशपायामप्सरसः कुन्दे गन्धर्वसत्तमाः ॥
तिन्तिडीके दासवर्गा वञ्जुले दस्यवस्तथा । पुण्यप्रदः श्रीप्रदश्च चन्दनःपनसस्तथा ॥
सौभाग्यदश्चम्पकश्च करीरः पारदारिकः । अपत्यनाशकस्तालो बकुलः कुलवर्द्धनः ।३०
बहुभार्या नारिकेला द्राक्षा सर्वाङ्गसुन्दरी । रतिप्रदा तथा कोली केतकी शत्रुनाशिनी ॥

एवमादिनगाश्चान्ये येनोक्तास्तेऽपि दायकाः ।
प्रतिष्ठां ते गमिष्यन्ति यैस्तु वृक्षाःप्ररोपिताः ॥ ३२ ॥

इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे वृक्षारोपणविधिर्नामाष्टाविंशोऽध्यायः ।

ऊनत्रिंशोऽध्यायः

सौभाग्यशयनव्रतविधानम् ।

पुलस्त्य उवाच ।

तथैवान्यत्प्रवक्ष्यामि सर्वकामफलप्रदम् । सौभाग्यशयनं नाम यत्पुराणविदो विदुः ॥
पुरा दग्धेषु लोकेषु भूर्भुवःस्वर्महादिषु । सौभाग्यं सर्वभूतानामेकस्थमभवत्तदा ॥ २ ॥
वैकुण्ठं सर्वमासाद्य विष्णोर्वक्षस्थले स्थितम् । ततः कालेन कियता पुनःसर्गविधौनृप
अहङ्कारावृते लोके प्रधानपुरुषान्विते । स्पर्द्धायां च प्रवृद्धायां कमलासनकृष्णयोः ॥
पिङ्गाकारा समुद्भूता वह्निज्वालातिभीषणा । तयाभितप्तस्य हरेर्वक्षसस्तद्विनिःसृतम् ॥

यद्वक्षस्थलमाश्रित्य विष्णोः सौभाग्यमास्थितम् ।
रसरूपं न तद्यावदाप्नोति वसुधातले ॥ ६ ॥

उत्क्षिप्तमन्तरिक्षात्तु ब्रह्मपुत्रेण धीमता । दक्षेण पीतमात्रं तद्रूपलावण्यकारकम् ॥ ७ ॥
बलं तेजो महज्जातं दक्षस्य परमेष्ठिनः । शेषं यदपतद्भूमावष्टधा तदुव्यजायत ॥ ८ ॥

ततस्त्वोषधयो जाताः सप्तसौभाग्यदायिकाः ।
इक्षवस्तरुराजश्च निष्पावाश्शालिधान्यकम् ॥ ६ ॥
विकारवच्च गोक्षीरं कुसुम्भं कुसुमं तथा । लवणं चाष्टमं तद्वत्सौभाग्याष्टकमुच्यते ॥
पीतं यद्ब्रह्मपुत्रेण योगज्ञानविदा पुरा । दुहिता साऽभवत्तस्माद्या सतीत्यभिधीयते ॥
लोकानतीत्य लालित्याल्ललिता तेन चोच्यते । त्रैलोक्यसुन्दरीं देवीमुपयेमे पिनाकधृक्
त्रिविश्वसौभाग्यमयीं भुक्तिमुक्तिफलप्रदाम् ।
तामाराध्य पुमान्भक्त्या नारी वा किं न विन्दति ॥ १३ ॥

भीष्म उवाच ।

कथमाराधनं तस्या ललिताया मुने वद । यद्विधानं च जगतः शान्तये तद्वदस्व मे ॥१४॥

पुलस्त्य उवाच ।

वसन्तमासमासाद्य तृतीयायां जनप्रियः । शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्णे तिलैः स्नानं समाचरेत्॥
तस्मिन्नहनि सा देवी किल विश्वात्मना सती । पाणिग्रहणिकैर्मन्त्रैरूढा वरवर्णिनी
तया सहैव विश्वेशं तृतीयायामथार्चयेत् ।
फलैर्नानाविधैर्दीपैर्धूपैर्नैवेद्यसंयुतैः ॥ १७ ॥
प्रतिमां पञ्चगव्येन तथा गन्धोदकेन च । स्नापयित्वाऽर्चयेद्गौरीमिन्दुशेखरसंयुताम्
नमोऽस्तु पाटलायै तु पादौ देव्याः शिवस्य च ।
शिवायेति च सङ्कीर्त्य जयायै गुल्फयोर्द्वयोः ॥ १९ ॥
त्र्यम्बकायेति रुद्रस्य भवान्यै जङ्घयोर्युगम् ।
शिरो रुद्रेश्वरायेति विजयायै च जानुनी ॥ २० ॥
सङ्कीर्त्य हरिकेशाय तथोरुवरदे नमः । ईशायेति कटिं रत्यै शङ्करायेति शङ्करम् ॥ २१ ॥
कुक्षिद्वयं च कोटव्यै शूलिनं शूलपाणये । मङ्गलायै नमस्तुभ्यमुदरं चाभिपूजयेत् ॥२२॥
सर्वात्मने नमो रुद्रमीशान्यै च कुचद्वयम् । शिवंवेदात्मने तद्वद्रुद्राण्यै कण्ठमर्चयेत् ॥
त्रिपुरघ्नाय विश्वेशमनन्तायै करद्वयम् । त्रिलोचनायेति हरं बाहू कालानलप्रिये ॥२४॥
सौभाग्यभवनायेति भूषणानि सदार्चयेत् । स्वाहा स्वधायै च मुखमीश्वरायेतिशूलिनम्

अशोकवनवासिन्यै पूज्यावोष्ठौ च भूतिदौ। स्थाणवे च हरं तद्वदास्यं चन्द्रमुखप्रिये॥
नमोऽर्धनारीशहरमसिताङ्गेति नासिकाम्। नम उग्राय लोकेशं ललितेति पुनर्भ्रुवौ॥
शर्वाय पुरहर्त्तारं वासुदेव्यै तथालकम्। नमः श्रीकण्ठनाथाय शिवकेशांस्तथार्चयेत्॥
भीमोग्रभीमरूपिण्यै शिरःसर्वात्मनेनमः। हरमभ्यर्च्य विधिवत्सौभाग्याष्टकमग्रतः॥
स्थापयेत्स्निग्धनिष्पावान्कुसुम्भक्षीरजीरकम्। तरुराजेक्षुलवणं कुस्तुम्बुरुमथाष्टमम्॥
दद्यात्सौभाग्यकृद्यस्मात्सौभाग्याष्टकमित्युत। एवं निवेद्य तत्सर्वमग्रतः शिवयोः पुनः
चैत्रे शृङ्गाटकान्प्राश्य स्वपेद्भूमावरिन्दम। पुनः प्रभाते च तथा कृतस्नानजपःशुचिः॥
सम्पूज्य द्विजदाम्पत्यं माल्यवस्त्रविभूषणैः। सौभाग्याष्टकसंयुक्तं सौवर्णप्रतिमाद्वयम्
प्रीयतांमेऽत्रललिता ब्राह्मणाय निवेदयेत्। एवं संवत्सरं यावत्तृतीयायां सदा नृप॥३४
प्राशने दानमन्त्रे च विशेषोऽयं निबोधमे। गोशृङ्गाम्बुमधौ प्रोक्तं वैशाखे गोमयं पुनः

ज्येष्ठे मन्दारकुसुमं बिल्वपत्रं शुचौ स्मृतम्।
श्रावणे दधि सम्प्राश्यं नभस्ये तु कुशोदकम्॥ ३६ ॥
क्षीरं चाश्वयुजे मासि कार्तिके पृषदाज्यकम्।
मार्गशीर्षे तु गोमूत्रं पौषे सम्प्राशयेद् घृतम्॥ ३७ ॥
माघे कृष्णतिलांस्तद्वत्पञ्चगव्यं च फाल्गुने।
ललिता विजया भद्रा भवानी कुमुदा शिवा॥ ३८ ॥
वासुदेवी तथा गौरी मङ्गला कमला सती।
उमा च दानकाले तु प्रीयतामिति कीर्त्तयेत्॥ ३९ ॥
तस्मिंस्तु द्वादशे मासि द्वादश्यां कृष्णमर्चयेत्।
तथा लक्ष्मीं च तत्रैव भर्त्रा सार्धमथार्चयेत्॥ ४० ॥

पौर्णमास्यामतस्तद्वत्सपत्नीकः पितामहः। उपासनीयो विदुषा परत्राभीतिमिच्छता॥
सौभाग्याष्टकं तद्वच्च दातव्यं भूतिमिच्छता। मल्लिकाशोककमलं कदम्बोत्पलचम्पकम्
कुब्जकं करवीरं च बाणमम्लानपङ्कजम्। सिन्दुवारं च सर्वेषु मासेषु कुसुमंस्मृतम्॥
जपाकुसुम्भकुसुमं मालती शतपत्रिका। यथा लाभं प्रशस्तानि करवीरं च सर्वदा॥

एवं संवत्सरं यावदुपोष्य विधिवन्नरः । स्त्री च नक्तं कुमारी च शिवमभ्यर्च्य भक्तितः
व्रतान्ते शयनं दद्यात्सर्वोपस्करसंयुतम् । उमामहेश्वरौ हैमौ वृषभश्च गवा सह ॥४६॥

स्थापयित्वा च शयनं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।
द्वादश्यां वत्सरं त्वेकं महालक्ष्म्या च केशवम् ॥ ४७ ॥
ब्रह्माणं सह सावित्र्या पूजयित्वा नरस्त्विह ।
सर्वान्कामानवाप्नोति मनसा समभीप्सितान् ॥ ४८ ॥

अन्यान्यपि यथाशक्ति मिथुनान्यम्बरादिभिः । धान्यालङ्कारगोदानैरन्यैश्च धनसञ्चयैः ॥
वित्तशाठ्येन रहितः पूजयेद्गतविस्मयः । एवं करोति यः सम्यक्सौभाग्यशयनव्रतम्

सर्वान्कामानवाप्नोति पदं वा नित्यमश्नुते ।
फलस्यैकस्य च त्यागमेतत्कुर्वन्समाचरेत् ॥ ५१ ॥

यशः कीर्तिमवाप्नोति प्रतिमासं नराधिप । सौभाग्यारोग्यरूपैश्च वस्त्रालङ्कारभूषणैः ॥
न वियुक्तो भवेद्राजन्सौभाग्यशयनप्रदः । यस्तु द्वादशवर्षाणि सौभाग्यशयनव्रतम् ॥
करोति सप्त चाष्टौ वा ब्रह्मलोके महीयते । पूज्यमानो वसेत्सम्यग्यावत्कल्पायुतंनरः ॥
विष्णोर्लोकमथासाद्य शिवलोकगतस्तथा । नारी वा कुरुते या तु कुमारी वा नरेश्वर
सापि तत्फलमाप्नोति देव्यनुग्रहलालिता । शृणुयादपि यश्चैव प्रदद्यादथवा मतिम् ॥

सोऽपि विद्याधरो भूत्वा स्वर्गलोके चिरं वसेत् ।
इदमिह मदनेन पूर्वसृष्टं शतधनुषा च कृतं नरेण तद्वत् ॥
कृतमथ पवनेन नन्दिना च किमु जननाथ महाद्भुतं न वा स्यात् ॥५८॥

इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे व्रताध्यायो नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

त्रिंशोऽध्यायः

वामनावतारचरित्रवर्णनम् ।

भीष्म उवाच ।

यज्ञपर्वतमासाद्य विष्णुना प्रभविष्णुना । पदानि चेह दत्तानि किमर्थं पदपद्धतिः ॥१॥
कृता वै देवदेवेन तन्मे वद महामते । कतमो दानवस्तेन विष्णुना दमितोऽत्र वै ॥२॥
कृत्वा वै पदविन्यासं तन्मे शंस महामुने । स्वर्लोके वसतिर्विष्णोर्वैकुंठेऽस्य महात्मनः॥
स कथं मानुषे लोके पदन्यासं चकारह । देवलोकेषु वै देव देवाः सेन्द्रपुरोगमाः ॥४॥
तपसा महता ब्रह्मन्भक्ता ये सततं प्रभुम् । श्रीवराहस्यवसतिर्महर्लोकेप्रकीर्तिता ॥ ५ ॥
नृसिंहस्य तथा प्रोक्ता जनलोके महात्मनः । त्रिविक्रमस्य वसतिस्तपोलोके प्रकीर्तिता
लोकानेतान्परित्यज्य कथंभूमौ पदद्वयम् । क्षेत्रेपैतामहे चास्मिन्पुष्करे यज्ञपर्वते ॥ ७ ॥
पदानि कृतवान्ब्रह्मन्विस्तरान्मम कीर्तय । श्रुतेन सर्वपापस्य नाशो वै भविता ध्रुवम् ॥

पुलस्त्य उवाच ।

सम्यक्पृच्छसि भोस्त्वं यत्संश्रृणुत्वं समाहितः ।
यथा पूर्वं पदन्यासः कृतो देवेन विष्णुना ॥ ६ ॥

यज्ञपर्वतमासाद्य शिलापर्वतरोधसि । पुरा कृतयुगे भीष्म देवकार्यार्थसिद्धये ॥ १० ॥
विष्णुना च कृतं पूर्वं पृथिव्यर्थे परन्तप । त्रिदिवं सर्वमानीतं दानवैर्बलवत्तरैः ॥ ११ ॥
त्रैलोक्यं वशमानीय जित्वा देवान्सवासवान् । दानवा यज्ञभोक्तारस्तत्रासन्बलवत्तराः
कृता बाष्कलिना सर्वे दानवेन बलीयसा । एवम्भूते तदा लोके त्रैलोक्ये सचराचरे
परमार्तिं ययौ शक्रो निराशो जीविते कृतः। स बाष्कलिर्दानवेन्द्रोऽवध्योऽयं ममसंयुगे
ब्रह्मणो वरदानेन सर्वेषां तु दिवौकसाम् । तदहं ब्रह्मणो लोकवृतः सर्वैर्दिवौकसैः ॥
ब्रजामि शरणं देवं गतिरन्या न विद्यते । एवं विचिन्त्य देवेन्द्रो वृतः सर्वैर्दिवौकसैः
जगाम त्वरितो भीष्म यत्र देवः पितामहः । ब्रह्मणः स पदंप्राप्य वृतस्तैश्च दिवौकसैः

अब्रवीज्जगतः कार्यं प्राप्तामापदमुत्तमाम् । किं न जानासिवै देव यतो नो भयमागतम्
दैत्यैर्यदाहृतं सर्वं वरदानाच्च ते प्रभो । कथितं वै मयासर्वं बाष्कलेश्च दुरात्मनः ॥
क्रियतां चाविलम्बेन पिता त्वं नः पितामहः । तत्त्वं चिन्तयदेवेशशान्त्यर्थंजगतस्त्विह

तेषां च पश्यतां किञ्चिच्छ्रौतस्मार्तादिकाःक्रियाः ।
न प्रावर्तन्त हानिस्तु तैरस्माकं दिने दिने ॥ २१ ॥

यथा हि प्राकृतः कश्चित्स्वार्थमुद्दिश्यभाषते । विज्ञाप्यसेतथास्माभिर्निरस्तोपकृतैःसदा
यद्येनोपकृतं यस्य सहस्रगुणितंपुनः । यो न तस्योपकाराय तत्करोति वृथा मतिः ॥
तस्योपकारदग्धस्य निस्त्रपस्यासतःपुनः । नरकेष्वपि संवासस्तस्य दुष्कृतकारिणः ॥
नैतावतैव साधुत्वं कृते या तु प्रतिक्रिया । स्वार्थे कनिष्ठबुद्धीनामेतन्नापि प्रवर्तते ॥
यद्यस्य नाभवत्स्थानं जगतो ह्यत्र दुःखदम् । शतधाहृदयं दीर्णं तन्न तृप्तिमुपागतम् ॥
तत्र वा यत्र गन्तास्मि निमग्नानुद्धरस्व नः । उपायकथनेनास्य येन तेजःप्रवर्तते ॥२७॥

यथाऽऽस्रगतं मया दृष्टं जगत्तत्स्थमवेक्ष्यताम् ।
निस्स्वाध्यायवषट्कारं निवृत्तोत्सवमङ्गलम् ॥ २८ ॥

त्यक्ताध्ययनसंयोगं मुक्तवार्तापरिग्रहम् । दण्डनीत्या परित्यक्तं श्वासमात्रावशेषितम्
जगदार्तिमपि प्राप्तं पुनः कष्टतरां दशाम् । एतावता हि कालेन वयं ग्लानिमुपागताः ॥

ब्रह्मोवाच ।

जानामि वाष्कलिं तं तु वरदानाच्च गर्वितम् । अजेयंभवतांमन्येविष्णुसाध्योभविष्यति
निरुध्य संस्थितो ब्रह्मा भावं तत्वमयं तदा । समाधिस्थस्य तस्यैवध्यानमात्राच्चतुर्भुजः
स्तोकेनैव हि कालेन चिन्त्यमानः स्वयम्भुवा । आजगाम मुहूर्तेन सर्वेषामेव पश्यताम्

विष्णुरुवाच ।

भोभोब्रह्मन्निवर्त्तस्व ध्यानादस्मान्निवारितः । यदर्थमिष्यतेध्यानंसोऽहंत्वांसमुपागतः

ब्रह्मोवाच ।

महाप्रसाद एषोऽत्र स्वामिनो हि प्रदर्शनम् । कस्यान्यस्यभवेच्चैषाचिन्तायाजगतःप्रभो
ममैव तावदुत्पत्तिर्जगदर्थे विनिर्मिता । जगदेतत्त्वदर्थीयं तत्त्वतो नास्ति विस्मयः ॥

भवता पालनं कार्यं संहरेद्रुद्र एव तु । एवम्भूते जगत्यस्मिञ्शक्रस्यास्य महात्मनः ॥
हृतं राज्यं बाष्कलिना त्रैलोक्यं सचराचरम् । भृत्यस्य क्रियतां साह्यं मन्त्रदानेन केशव:

वासुदेव उवाच ।

भवतो वरदानेन:अवध्यः स तु सांप्रतम् । बुद्धिसाध्यः स वै कार्यो बन्धनादिह दानवः
वामनोऽहं भविष्यामि दानवानां विनाशकः । मया सह व्रजत्वेष बाष्कलेस्तु निवेशनम्
तत्र गत्वा वरं त्वेष मदर्थे याचतामिमम् । वामनस्यास्य विप्रस्य भूमे राजन्पदत्रयम्
प्रयच्छस्वमहाभाग याच्ञैषा तु मया कृता । शक्रेणोक्तो दानवेन्द्रो दद्यात्स्वमपि जीवितम्
गृह्य प्रतिग्रहं तस्य दानवस्य पितामह । तं बद्ध्वा च ततो यत्नात्कृत्वा पातालवासिनम्
सौकरं रूपमास्थाय वधार्थं च दुरात्मनः । भविष्यामि न सन्देहो व्रज शक्र त्वरान्वितः
विरराम तमुक्त्वैवमन्तर्द्धानं गतश्च वै । अथ कालान्तरे विष्णावदितेर्गर्भतां गते ॥ ४५ ॥
निमित्तान्यतिघोराणि प्रादुर्भूतान्यनेकशः । समस्तजगदाधारे विष्णौ गर्भत्वमागते ॥
शोभनं हि तदा जातं निमित्तं चैवमूर्जितम् । मालतीकुसुमानां तु सुगन्धःसुरभिर्ववौ

अथ विहितविधानं कालमासाद्य देवस्त्रिदशगणहितार्थं सर्वभूतानुकम्पी ।
विमलविरलकेशश्चन्द्रशङ्खोदयश्रीरदितितनयभावं देवदेवश्चकार ॥ ४८ ॥
अवतरति च विष्णौ सिद्धदेवासुराणामनिमिषनयनानां विप्रसेदुर्मुखानि ॥
अति विरतरजोभिर्वायुभिः संवहद्भिर्दिनमपि च तदासीज्जन्म विष्णोः सुगर्भे ॥
अदितिरजनगर्भा सापि देवी प्रयान्ती नतजघनभरार्ता मन्दसंचाररम्या ।
अलसवदनखेदं पाण्डुभावं वहन्ती गुरुतरमवगाढं गर्भमेवोद्वहन्ती ॥ ५० ॥
ततःप्रविष्टे खलु गर्भवासं नारायणे भूतभविष्ययोगात् ।
विना पदं प्राप्तमनोरथानि भूतानि सर्वाणि तदा बभूवुः ॥ ५१ ॥
समीरणो वाति च मन्दमन्दम्पतत्सु वर्षेषु नगोद्भवेषु ।
विविक्तमार्गेषु दिगन्तरेषु जनेषु वै सत्यमुपागतेषु ॥ ५२ ॥
विमुच्यमाने गगने रजोभिः शनैश्शनैर्नश्यति चान्धकारे ॥ ५३ ॥

उदरान्तर्गते विष्णौ द्रोहबुद्धिस्तदाभवत् । तां निशामय राजेन्द्र देवमातुर्यथाक्रमम् ॥

किमनुक्रमणेनैव लङ्घ्यामित्रिविष्टपम् । बाष्कलिं दानवेन्द्रं तं कुर्यां पातालवासिनम् ॥
शक्रस्य तु मया दत्तं धनं लावण्यमेव च । दानवानां विनाशाय एकैव प्रभवाम्यहम् ॥
क्षिपामिशरजालानि चक्रयानान्यनेकशः । गदाव्रातांश्च विविधान्दानवानां विनाशने ॥
विबुधान्देवलोकस्थानधोभूमेस्तु दानवान् । करोमि कालयोगेन तत्तु कार्यं व्रतेन मे ॥
निस्सृतासहसावाणीवक्त्रमेवाभिसंस्थिता । येनेदं चिन्त्यते पूर्वं यन्न दृष्टं न च श्रुतम्
बन्धं वै दनुमुख्यस्य कृतं कोपेन पश्य मे । कश्यपाय पुरादत्तं धनं लावण्यमेव च ॥
किमयं विगतोत्साहो वायवोऽथ समाकुलाः । भ्रमतीव हि मे दृष्टिर्मैतद्रूपं प्रचिन्तितम्
आविष्टा किमहं वच्मि केनाप्यसदृशं वचः । विकल्पवशमापन्नाभीक्ष्णं हृदि ममर्श सा
दधार दिव्यं वर्षाणां सहस्रं दिव्यमीश्वरम् । ततः समभवत्तस्यां वामनोभूतवामनः ॥
जातेन येन चक्षूंषिदानवानां हृतानिवै । जातमात्रे ततस्तस्मिन्देवदेवे जनार्दने ॥ ६४ ॥

नद्यः स्वच्छाम्बुवाहिन्यो ववौ गन्धवहोऽनिलः ।
कश्यपोऽपि सुखं लेभे तेन पुत्रेण भास्वता ॥ ६५ ॥

सर्वेषां मानसोत्साहस्त्रैलोक्यान्तरवासिनाम् । सञ्जातमात्रे तु ततो जनाधिप जनार्दने

स्वर्गलोके दुन्दुभयो विनेदुस्तैश्च ताड़िताः ।
अतिप्रहर्षात्तु जगत्त्रयस्य मोहश्च दुःखानि च नाशमीयुः ।
जगौ च गन्धर्वगणोऽतिमात्रं भावस्वरैर्भर्तृ विमिश्रिताश्च ॥ ६७ ॥
सुराङ्गनाश्चापि च भावयुक्ता नृत्यन्ति तत्राप्सरसां समूहाः ।
तथैव विद्याधरसिद्धसङ्घा विमानयानैर्मुदिता भ्रमन्ति ॥ ६८ ॥
वदन्ति सत्यानृतकार्यनिर्णयं तथाभिरङ्गं प्रतिदर्शयन्ति ।
गायन्ति गेयं विनिवृत्तरागा मुहुर्मुहुर्दुःखसुखप्रभूताः ॥ ६९ ॥
नृत्यन्ति वै स्वर्गगताश्च ते तु धर्मार्जितं स्वर्गमितो व्रजन्ति ॥ ७० ॥
इति विगतविषादे निर्मले जीवलोके तिमिरनिकरमुक्ता निर्वृतिं प्राप्तुकामाः।
तत्रोचुः केचिदुर्व्यां जयजयभगवन्संप्रहृष्टाश्च केचि-
त्स्वेवं प्रोक्तप्रणादैरविरलमनसश्चानुवादैस्तथान्ये ।

ध्यायन्तेऽन्ये निगूढं जननभयजरामृत्युविच्छेदहेतो-
रित्येवं कृत्स्नमासीज्जगदिदमखिलं सर्वतःसम्प्रहृष्टम् ॥ ७२ ॥
परमासाद्य यं विष्णुं ब्रह्माहं जगतःकृते । जातोऽयं भवतामर्थे वामनो यद्पीश्वरः ॥७३
एष ब्रह्मा च विष्णुश्च एष एव महेश्वरः । एष वेदाश्च यज्ञाश्च स्वर्गश्चैष न संशयः ॥
विष्णुव्याप्तमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् । एकःस तु पृथक्त्वेन स्वयम्भूरिति विश्रुतः
यथार्थवर्णके स्थाने विचित्रःस्फाटिकोमणिः। ततो गुणवशात्तस्य स्वयम्भोरनुवर्त्तनम्
यथा हि गार्हपत्योऽग्निरन्यसंज्ञां पुनर्व्रजेत् । लभेत संज्ञां भगवान्ब्राह्मादिषु तथा ह्यसौ
सर्वथा वामनोदेवो देवकार्यं करिष्यति । एवं चिन्तयतांतेषां भावितानां दिवौकसाम्
जगाम शक्रसहितो बाष्कलेश्च निवेशनम् । दूरादेव च तां दृष्ट्वा पुरीं तस्यसमावृत्ताम् ॥
पाण्डुरैः खगमागम्यैः सर्वरत्नोपशोभितैः । शोभितां भवनैर्मुख्यैस्सुविभक्तमहापथैः ॥
नित्यप्रभिन्नैर्मातङ्गैरञ्जनाचलसन्निभैः। देवनागकुलोत्पन्नैःशतसङ्ख्यैर्विराजिताम् ॥८१॥
निर्मांसगात्रैस्तुरगैरल्पकर्णैर्मनोजवैः । दीर्घग्रीवाक्षिकुटैश्च मनोज्ञैरुपशोभिताम् ॥८२॥
पद्मगर्भसुवर्णाभाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः । सँल्लापोल्लापकुशलास्तत्र वेश्याः सहस्रशः ॥
न तत्पुण्यं न सा विद्या न तच्छिल्पं न सा कला ।
बाष्कलेर्न पुरे यत्तु निवासं प्रतिगच्छति ॥ ८४ ॥
उद्यानशतसम्बाधे समाजोत्सवमालिनि । अन्विते दनुमुख्यैश्च सर्वैरन्तकवर्जितैः ॥८५॥
वीणावेणुमृदङ्गानां शब्दैः सर्वत्र नादिते । सदा प्रहृष्टा दनुजा बहुरत्नोपशोभिताः ॥८६॥
क्रीडमानाः प्रहृश्यन्ते मेराविव यथाऽमराः । ब्रह्मघोषो महांस्तत्र दनुवृद्धैरुदीरितः ॥
साज्यधूमेन चाग्नीनां वायुना नष्टकिल्बिषे । सुगन्धधूपविक्षेपसुरभीकृतमारुते ॥ ८८ ॥
सुगन्धिदनुजाकीर्णे पुरे तस्मिंस्तु बाष्कलिः ।
त्रैलोक्यं तु वशे कृत्वा सुखेनास्ते स दानवः ॥ ८९ ॥
तत्रस्थः पालयन्नास्ते त्रैलोक्यं सचराचरम् । धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवादी जितेन्द्रियः
सुदर्शः पूर्वदेवानां नयानयविचक्षणः । ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च दीनानामनुकम्पकः ॥ ९१ ॥
वेदमन्त्रप्रभूत्साहसर्वशक्तिसमन्वितः । षाड्गुण्यविषयोत्साहःस्मितपूर्वाभिभाषितः ॥

वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो यज्ञयाजी तपोरतः। न च दुःशीलनिरतः स सर्वत्राविहिंसकः ॥९३॥
मान्यमानयिता शुद्धः सुमुखः पूज्यपूजकः। सर्वार्थविदनाधृष्यः सुभगः प्रियदर्शनः ॥
बहुधान्यो बहुधनो बहुयानश्च दानवः। त्रिवर्गसाधको नित्यं त्रैलोक्ये वरपूरुषः ॥९५
स्वपुरीनिलयो नित्यं देवदानवदर्पहा। स चैव पालयामास त्रैलोक्ये सकलाः प्रजाः ॥

नाधमः कश्चिदप्यास्ते तस्मिन्राजनि दानवे।
दीनो वा व्याधितो वापिरल्पायुर्वाथ दुःखितः
मूर्खो वा मन्दरूपो वा दुर्भगो वा निराकृतः ॥ ९७ ॥
एवं युतं तं विमलैर्गुणौघैर्दृष्ट्वा च मत्वा च निविष्टबुद्धिम्।
प्रसादयन्दैत्यवरं महात्मा पुरन्दरस्तं तु दनुप्रधानम् ॥ ९८ ॥

तेजोयुक्तं दानवंतं तपन्तमिव भास्करम्। त्रैलोक्यधारणे शक्तं विस्मितः सोऽभवत्तदा
इन्द्रं पुरागतं दृष्ट्वा दानवेन्द्राय पार्थिव। इदमूचुस्तदा गत्वा दानवा युद्धदुर्मदाः ॥१००।
आश्चर्यमिति वै कृत्वा इन्द्रोऽभ्येति पुरीं तव। एकाकी द्विजमुख्येन वामनेन सहप्रभो॥
अस्माभिर्यदनुष्ठेयं साम्प्रतं नो वद स्वराट्। दानवानब्रवीत्सर्वान्पुरे तिष्ठत सङ्कुलम् ॥

प्रवेश्यतां देवराजः पूज्यः स तु ममाद्य वै ॥ १०२ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु वामनः स च वासवः। आगतौ दनुनाथेन प्रेम्णाचैवावलोकितौ
कृतार्थं मन्यतात्मानं प्रणिपातपुरःसरम्। उवाच वचनं राजा दानवानां धुरन्धरः ॥१०४
अद्य वै त्रिषु लोकेषु नास्ति धन्यतरो मया। योऽहंश्रिया वृतःशक्रं पश्यामिगृहमागतम्
अर्थित्वकाम्यया यस्तु मामयं याचयिष्यति। गृहागतस्य तस्याहं दास्येप्राणानपिध्रुवम्

दारान्पुत्रांस्तथागारं त्रैलोक्ये का कथा मम।
आगत्य संमुखं तस्य अङ्कमानीय सादरम् ॥ १०७ ॥

परिष्वज्याभिनन्द्यैनं गृहं प्रावेशयत्स्वकम्। तस्य स्वागतमर्घ्याद्यैःकृत्वा पूजां प्रयत्नतः
अद्य मे सफलं जन्म पूर्णाः सर्वे मनोरथाः। यस्त्वां पश्यामि शक्राद्य स्वयमेव गृहागतम्

ख्याप्योऽहं दनुमुख्यानां देवराज त्वया कृतः।
आगच्छता मम गृहं पुण्यता तु परा हि मे ॥ ११० ॥

अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैस्सम्यगिष्टैस्तु यत्फलम् । तत्फलं समवाप्यैतत्त्वयि दृष्टे पुरन्दर ॥
यत्फलं भूमिदानेन गवांदानेन ऋत्विजे । ममाद्य तत्फलं भूतमथवा राजसूयकम् ॥
नाल्पेन तपसालभ्यं दर्शनं तव वासव । एवं गेहे मया यत्ते प्रियं कार्यं तदुच्यताम् ॥

विकल्पोऽन्यो न भवता हृदि कार्यः कथञ्चन ।
कृतं च तद्विजानीया यद्यपि स्यात्सुदुष्करम् ॥ ११४ ॥

पुण्योऽहं पुण्यतां प्राप्तो दर्शनात्तव शत्रुहन् । यत्ते देववरैर्वन्द्यौ वन्दितौ चरणौ मया ॥
किमागमनकृत्यं ते वद सर्वं मयि प्रभो । अत्याश्चर्यमिदं मन्ये तवागमनकारणम् ॥

इन्द्र उवाच ।

जानेऽहं दनुमुख्यानांप्रधानं त्वांतुवाष्कले । नात्याश्चर्यमिदं भाति त्वयि दृष्टेऽसुरोत्तम

विमुखा नार्थिनो यान्ति भवतो गृहमागताः ।
अर्थिनां कल्पवृक्षोऽसि दाता चान्यो न विद्यते ॥ ११८ ॥

प्रभायां सूर्यतुल्योऽसिगाम्भीर्ये सागरोपमः । सहिष्णुत्वे धराचैव श्रियानारायणोपमः
ब्रह्मणः कश्यपकुले जातोऽयं वामनःशुभे । प्रार्थितोऽहमनेनैवं भूमेर्देहि पदत्रयम् ॥

ममाग्निशरणार्थाय यत्र कुर्यां मखं त्वहम् ।
तदस्य कारणं कृत्वा अर्थितैषा मम प्रभो ॥ १२१ ॥
लोकत्रयं मेऽपहृतन्त्वया विक्रम्य बाष्कले ।
निर्वृत्तिको निर्धनोऽस्मि यद्दित्सेन तदस्ति मे ॥ १२२ ॥

भवन्तं याचयिष्यामि परार्थेनापि चात्मना । अर्थित्वेन ममाप्यस्य यद्योग्यं तत्समाचर
जातोऽसिकाश्यपेच त्वं वंशेवंशविवर्द्धनः । दित्यास्त्वंगर्भसम्भूतः पितात्रैलोकपूजितः

एवं भूतमहं ज्ञात्वा तेन त्वां याचयाम्यहम् ।
अस्याग्निशरणार्थाय दीयतां भूपदत्रयम् ॥ १२५ ॥

अतीव ह्रस्वगात्रस्य वामनस्यास्य दानव । भूमिभागे च पारक्ये दातुं न त्वहमुत्सहे ॥
एतदेव मया दत्तं यद्भवानर्थितोऽसि मे । गुरवो यदि मन्यन्ते मन्त्रिणो वा पदत्रयम् ॥
अर्थित्वेन मदीयेन स्वकुले बान्धवेऽपि च । गृहायाते मयि तथा यद्योग्यं तत्समाचर ॥

यदि ते रुचितं वीर दानवेन्द्र महाद्युते । तदस्मै दीयतां शीघ्रं वामनाय महात्मने ॥

बाष्कलिरुवाच ।

देवेन्द्र स्वागतं तेऽस्तु स्वस्ति प्राप्नुहि मा चिरम् ।
त्वं समीक्ष स्वधात्मानं सर्वेषां च परायणम् ॥ १३० ॥

त्वयि भारं समावेश्य सुखमास्ते पितामहः । ध्यानधारणया युक्तश्चिन्तयानः परं पदम्

सङ्ग्रामैर्बहुभिः खिन्नो जगच्चिन्तामपास्य तु ।
क्षीराब्धिद्वीपमाश्रित्य सुखं स्वपिति केशवः ॥ १३२ ॥

कैलासे पर्वतश्रेष्ठे कृत्तिवासा उमापतिः । रमते भार्यया सार्धं भारं त्वयि निवेश्य वै ॥
अन्ये च दानवाः सर्वे बलिनःसायुधास्त्वया । असहायेनैव शक्र सर्वेऽपिविनिपातिताः
आदित्या द्वादशैवेह रुद्रास्त्वेकादशापि वा । अश्विनौ वसवश्चैव धर्मश्चैव सनातनः
त्वद्बाहुबलमाश्रित्य त्रिदिवे मखभागिनः । त्वयाक्रतुशतैरिष्टं समाप्तवरदक्षिणैः॥१३६॥

त्वया च घातितो वृत्रो नमुचिः पाकशासन ।
त्वदाज्ञाकारिणा पूर्वं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ १३७ ॥
हिरण्यकशिपोर्भ्राता हिरण्याक्षोऽपि घातितः ।
हिरण्यकशिपुर्योऽत्र जङ्घे चारोप्य घातितः ॥ १३८ ॥

वज्रपाणिनमायान्तमैरावणशिरोगतम् । सङ्ग्रामभूमौ दृष्ट्वा त्वां सर्वे नश्यन्ति दानवाः
ये त्वया विजिताः पूर्वं दानवा बलवत्तराः । सहस्रांशेन तत्तुल्यो न भवामि कथञ्चन ॥

एवं विधोऽसि देवेन्द्र मम का गणना भवेत् ।
मां समुद्धर्तुकामेन त्वयैवागमनं कृतम् ॥ १४१ ॥

करिष्यामि न सन्देहो दास्ये प्राणानपिध्रुवम् । किमर्थंदेवराजोक्ता भूमिरेषात्वया हि मे
इमेदाराः सुता गावो यच्चान्यद्विद्यतेवसु । त्रैलोक्यराज्यमखिलं विप्रस्यास्य प्रदीयताम्
अपकीर्तिर्भवेन्मह्यं पूर्वेषां च न संशयः । गृहायातस्य शक्रस्य दत्तं बाष्कलिना न तु ॥

अन्योऽपि योऽर्थी मे प्राप्तः स मे प्रियतरः सदा ।
भवानत्र विशेषेण विचारं मा कृथाः क्वचित् ॥ १४५ ॥

बृहत्त्रपा मे देवेन्द्र यद्भूमेस्तु पदत्रयम् ।
ब्राह्मणस्य विशेषेण प्रार्थितं तु त्वया विभो ॥ १४६ ॥
दास्येग्रामवरानस्य भवतस्तुत्रिविष्टपम् । अश्वान्गजान्भूमिधनं स्त्रियश्चोद्भिन्नचूचुकाः
यासां दर्शनमात्रेण वृद्धोऽपि तरुणायते । ताः स्त्रियो वसुधां चैतां वामनस्यप्रतिग्रहम्
प्रतिदास्यामि देवेन्द्र प्रसादः क्रियतां हि मे ।
एतावदुक्ते वचने तदा बाष्कलिना नृप ॥ १४९ ॥
पुरोधास्तूशना प्राह दानवेन्द्रं तदा वचः । भवान्राजा दानवेन्द्र ऐश्वर्येऽष्टविधे स्थितः
युक्तायुक्तं न जानासि देयं कस्य मया क्वचित् ।
मन्त्रिभिः सुसमालोच्य युक्तायुक्तं परीक्ष्य च ॥ १५१ ॥
प्राप्तं त्रैलोक्यराज्यत्वं जित्वा देवान्सवासवान् ।
वाक्यस्यास्यावसाने च भवान्प्राप्स्यति बन्धनम् ॥ १५२ ॥
य एष वामनोराजन्विष्णुरेव सनातनः । नास्य वै भवता देयं पिता ते घातितः स्वयम्
अयं ते पितृहा प्राप्तो मातृहा बन्धुघातकः । वंशोच्छेदकरस्तुभ्यं भूतश्चैव भविष्यति
न चैष धर्मं जानाति शक्रादीनां हिते रतः । मायाविना दानवा ये मायया येननिर्जिताः
मायया ब्राह्मणं रूपं वामनं च प्रदर्शितम् । अत्र किं बहुनोक्तेन नास्य देयं तु किञ्चन ॥
मक्षिकापादमात्रं तु भूमिरस्य प्रतिग्रहः । विनाशमेष्यसि क्षिप्रं सत्यं सत्यं मया श्रुतम्
गुरुणाप्येवमुक्तस्तु भूयो वाक्यमथाब्रवीत् ।
धर्मार्थिना मया सर्वं प्रतिज्ञातं गुरो त्विदम् ॥ १५८ ॥
प्रतिज्ञापालनं कार्यं सतां धर्मः सनातनः । यद्येष भगवान्विष्णुर्नास्ति धन्यतरो मया ॥
गृह्य प्रतिग्रहं मत्तो यदि देवान्नुभूषति । भूयोऽपि धन्यतां नीतो देवेनानेन वै गुरो ॥
यं योगिनो ध्यानयुक्ता ध्यायमाना हि दर्शनम् ।
न लभन्ते तथा विप्रास्सोऽयं दृष्टो मयाद्य वै ॥ १६१ ॥
दानानि ये प्रयच्छन्ति सकुशोदकपाणिना । प्रीयतां भगवान्विष्णुः परमात्मा सनातनः
एवमुक्ते तु वचने अपवर्गस्य भागिनः । यदत्र कार्यं करणे विकल्पो मे बभूव ह ॥१६३॥

उपदिष्टोऽस्मि भवता बालत्वे चावधारितम् ।
शत्रावपि गृहायातो मास्त्वदेयं तु किञ्चन ॥ १६४ ॥
एतदेव विचिन्त्याहं प्राणानपि स्वकान्गुरो ।
वामनस्य प्रदास्यामि शक्रस्यापि त्रिविष्टपम् ॥ १६५ ॥
अपीडाकारि यद्दानं तद्दानमिह दीयते । पीडाकारि च यद्दानं तद्दानं समलंस्मृतम् ॥

पुलस्त्य उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा गुरुस्तत्र त्रपयाऽधोमुखः स्थितः ।

बाष्कलिरुवाच ।

अर्थिता भवता देव देया सर्वा धरा मया ॥ १६७ ॥
त्रपाकरं भवेन्मह्यं यदस्य भूपदत्रयम् ।

इन्द्र उवाच ।

सत्यमेतद्दानवेन्द्र यदुक्तं भवता हि मे ॥ १६८ ॥
भूमेः पदत्रयार्थित्वं द्विजेनानेन मे कृतम् । एतावता त्वयं चार्थी मयाप्यस्य कृते भवान्
दनुपुत्रो याचितोऽसि वरमेतत्प्रदीयताम् ।

बाष्कलिरुवाच ।

पदत्रयं वामनाय देवराज प्रतीच्छ मे ॥ १७० ॥
तत्र त्वं सुचिरं कालं सुखी सुरपते वस ।

पुलस्त्य उवाच ।

एवमुक्त्वा बाष्कलिना वामनाय पदत्रयम् ॥ १७१ ॥
तोयपूर्वं तदा दत्तं प्रीयतां मे हरिःस्वयम् । दत्ते तु दानवेन्द्रेण त्यक्त्वा रूपं च वामनम्
हरिराचक्रमे लोकान्देवानां हितकाम्यया । यज्ञपर्वतामासाद्य गत्वाचैव उदङ्मुखः ॥
देवस्य वामचरणे निविष्टो दानवालयः । तत्र क्रमं स प्रथमं ददौ सूर्ये जगत्पतिः ॥
द्वितीयं च ध्रुवे देवस्तृतीयेन च पार्थिव । ब्रह्माण्डस्ताडितस्तेन देवेनाद्भुतकर्मणा ॥
अंगुष्ठाग्रेण भिन्नेऽण्डे जलं भूरि विनिःसृतम् ।

प्लावयित्वा ब्रह्मलोकान्सर्वांल्लोकाननुक्रमात् ॥ १७६ ॥
ध्रुवस्थानं सूर्यलोकं प्लाव्य तं यज्ञपर्वतम् ।
प्रविष्टा पुष्करं धारा धौत्वा विष्णुपदानि सा ॥ १७७ ॥
पदानि यानि जातानि वैष्णवानि धरातले ।
तत्राश्रमे तु यो गत्वा स्नानं वाप्यां समाचरेत् ॥ १७८ ॥
अश्वमेधफलं तस्य दर्शनादेव जायते । एकविंशकुलोपेतो वैकुण्ठे वासमाप्नुयात् ॥
भुक्त्वा तु विपुलान्भोगन्कल्पानां तु शतत्रयम् ।
तदन्ते जायते राजा सार्वभौमः क्षिताविह ॥ १८० ॥
तोयधारा तु सा भीष्म अंगुष्ठाग्राद्विनिःसृता । नदीसावैष्णवीप्रोक्ताविष्णुपादसमुद्भवा
अनेन कारणेनाभूद्गङ्गा विष्णुपदी नृप । यया सर्वमिदं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥
अंगुष्ठाग्रक्षता दण्डायतप्रविष्टं जलं शुभम् । प्राप्तं देवनदीत्वं तु यातु विष्णुपदी नदी ॥
देवनद्या तया व्याप्तं ब्रह्माण्डं सचराचरम् । विभूतिभिर्महाभाग सर्वानुग्रहकाम्यया ॥
स बाष्कलिर्वामनेन उक्तःपूरय मे क्रमान् । अधोमुखस्तदा जात उत्तरं नास्यविन्दति ॥
मौनीभूतं तु तं दृष्ट्वा पुरोधा वाक्यमब्रवीत् ॥

शुक्र उवाच ।

स्वाभाविकी दानशक्तिर्न तु स्रष्टुं वयं क्षमाः ॥ १८६ ॥
यावतीयं धरा देव सा दत्ताऽनेन ते प्रभो ।

पुलस्त्य उवाच ।

उक्तो बाष्कलिना विष्णुर्यावन्मात्रा वसुन्धरा ॥ १८७ ॥
या सृष्टा भवता पूर्वं सा मया न च गोपिता । अल्पा भूमिर्भवान्दीर्घो न तु सृष्टेरहं क्षमः
इच्छाशक्तिः प्रभवति प्रभोस्ते देव सर्वदा । निरुत्तरस्तदा विष्णुर्मत्वा तं सत्यवादिनम्
ब्रूहि दानवमुख्य त्वं कं ते कामं करोम्यहम् । मम हस्तगतं तोयं त्वया दत्तं तु दानव ॥
तेन त्वं वरयोग्योऽसि वराणां भाजनं शुभम् । दास्येऽहं भवतः काममर्थीयेनवृणुष्वह
विज्ञप्तो हि तदा तेन देवदेवो जनार्दनः ॥

बाष्कलिरुवाच ।

भक्तिं वृणोमि देवेश त्वद्धस्तान्मरणं हि मे ॥१९२॥

व्रजामि श्वेतद्वीपं ते दुर्लभं तु तपस्विनाम् ॥

पुलस्त्य उवाच ॥

आहैवमुक्ते विष्णुस्तां तिष्ठस्वैकं युगान्तरम् ॥ १९३ ॥

वाराहरूपी यदाहं प्रवेक्ष्यामि धरातलम् । तदा हनिष्येऽहं त्वां तु मदग्रे च यदैष्यसि ॥

उक्तोऽथ दानवस्तेन अपासर्प्पत्तदग्रतः । वामनेन समाक्रान्ताः सर्वे लोकास्तदा नृप ॥

असुरैस्तैस्तदा त्यक्तं देवानां सत्यरक्षणैः । देवो हृत्वा तु त्रैलोक्यं जगामादर्शनं विभुः

पातालनिलयश्चापि सुखमास्ते स बाष्कलिः । शक्रोऽपि पालयामास विपश्चिद्भुवनत्रयम्

अयं त्रैविक्रमो नाम प्रादुर्भावो जगद्गुरोः । गङ्गासम्भवसंयुक्तस्सर्वकल्मषनाशनः ॥

विष्णोःपदानामेषा त उत्पत्तिःकथिता नृप । यां श्रुत्वा तु नरोलोके सर्वपापैःप्रमुच्यते

दुःस्वप्नं दुर्विचिन्त्यं च दुष्करं दुष्कृतानि च ।

क्षिप्रं हि नाशमायान्ति दृष्टे विष्णुपदत्रये ॥ २०० ॥

युगानुक्रमशो दृष्ट्वा पापिनो जन्तवस्तथा । सूक्ष्मता दर्शिता भीष्म विष्णुना पददर्शने ॥

यस्त्वारोहति तस्मिंस्तु मौनवान्मानवो भुवि । कृत्वात्रिपुष्करीयात्रामश्वमेधफलंव्रजेत्

मुच्यते सर्वपापैश्च मृतो विष्णुपुरं व्रजेत् ॥ २०३ ॥

इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे विष्णुपदोत्पत्तिर्नामत्रिंशोध्यायः ।

एकत्रिंशोऽध्यायः

नागतीर्थवर्णनम् ।

भीष्म उवाच ।

भगवन्महदाश्चर्यं बाष्कलेर्बन्धनं हि यत् । कृतं त्रिविक्रमं रूपं यदा संयमितो बलिः ॥

एतन्मया श्रुतं पूर्वं कथ्यमानं द्विजोत्तमैः । पाताले वसतेऽद्यापि वैरोचनसुतोबलिः ॥
नागतीर्थं यथाभूतं पिशाचानां तु सम्भवम् । शिवदूतो कथं चात्र केनेयं मङ्गलीकृता ॥
अन्तरिक्षे पुष्करं तु केन नीतं महामुने । एतदाचक्ष्व मे सर्वं यथा बाष्कलिबन्धनम् ॥
भूमिप्रक्रमणं पूर्वं कृतं देवेन विष्णुना । द्वितीये कारणं किंच येन देवश्चकार ह ॥
तत्त्वतस्त्वं हि तत्सर्वं यथाभूतं तथा वद । पापक्षयकरं ह्येतच्छ्रोतव्यं भूतिमिच्छता ॥

पुलस्त्य उवाच ।

प्रश्नभारस्त्वया राजन्कौतुकादेव कीर्तितः । कथयामि हि तत्सर्वं यथा भूतं नृपोत्तम
विष्णोःपदानुषङ्गेण बन्धनं बाष्कलेरिह । श्रुतन्तद्भवता सर्वं मया ते परिकीर्तितम् ॥

भूयोऽपि विष्णुना भीष्म प्राप्ते वैवस्वतेऽन्तरे ।
त्रैलोक्यं बलिनाक्रान्तं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ ६ ॥

गत्वा त्वेकाकिना यज्ञे तथा संयमितोबलिः । भूयोऽपि देवदेवेन भूमेःप्रक्रमणं कृतम्
प्रादुर्भावो वामनस्य तथा भूतो नराधिप । पुनस्त्रिविक्रमो भूत्वा वामनोऽभूदवामनः
उत्पत्तिरेषा ते सर्वा कथिता कुरुनन्दन । नागानां तु यथा तीर्थं तच्छृणुष्व महाव्रत ॥
अनन्तो वासुकिश्चैव तक्षकश्च महाबलः । कर्कोटकश्च नागेन्द्रः पद्मश्चान्यःसरीसृपः ॥
महापद्मस्तथाशङ्खः कुलिकश्चापराजितः । एते कश्यपदायादा एतैरापूरितं जगत् ॥१४॥
एतेषां तु प्रसूत्या तु इदमापूरितं जगत् । कुटिलाभीमकर्माणस्तीक्ष्णास्याश्चविषोल्बणाः
दष्ट्वा मन्दांश्च मनुजान्कुर्युर्भस्म क्षणात्तु ते । तद्दर्शनाद्भवेन्नाशो मनुष्याणां नराधिप ॥
अहन्यहनि जायेत क्षयः परमदारुणः । आत्मनस्तु क्षयं दृष्ट्वा प्रजाःसर्वास्समन्ततः ॥१७
जग्मुः शरण्यं शरणं ब्रह्माणं परमेश्वरम् । इममेवार्थमुद्दिश्य प्रजाः सर्वा महीपते ॥१८

ऊचुः कमलजं दृष्ट्वा पुराणं ब्रह्मसंज्ञकम् ॥

प्रजा ऊचुः ।

देवदेवेश लोकानां प्रसूते परमेश्वर ॥ १९ ॥
त्राहि नस्तीक्ष्णदंष्ट्राणां भुजगानां महात्मनाम् ।
दिने दिने भयं देव पश्यामः कृपणा भृशम् ॥ २० ॥

मनुष्यपशुपक्ष्यादि तत्सर्वं भस्मसाद्भवेत्। त्वया सृष्टिः कृता देव क्षीयते तु भुजङ्गमैः

एतज्ज्ञात्वा यदुचितं तत्कुरुष्व पितामह ॥

ब्रह्मोवाच।

अहं रक्षां विधास्यामि भवतीनां न संशयः ॥ २२ ॥

व्रजध्वं स्वनिकेतानि नीरुजो गतसाध्वसाः ॥

पुलस्त्य उवाच।

एवमुक्ते प्रजाः सर्वा ब्रह्मणा व्यक्तमूर्तिना ॥ २३ ॥

आजग्मुः परमप्रीताः स्तुत्वा चैव स्वयम्भुवम्।

प्रयातासु प्रजास्वेवं तानाहूय भुजङ्गमान् ॥ २४ ॥

शशाप परमक्रुद्धो वासुकिप्रमुखांस्तदा ॥

ब्रह्मोवाच।

अहन्यहनि भूतानि भक्ष्यन्ते वै दुरात्मभिः ॥ २५ ॥

नश्यन्ति तुरगै दंष्ट्रामनुष्याः पशवस्तथा। [यस्मान्मत्प्रभवान्नित्यं क्षयं नयथ मानुषान्]

अतोऽन्यस्मिन्भवे भूयान्मम कोपात्सुदारुणात्।

भवतां हि क्षयो घोरो भावि वैवस्वतेऽन्तरे ॥ २७ ॥

तथान्यः सोमवंशीयो राजा वै जनमेजयः ॥

धक्ष्यते सर्पसत्रेण प्रदीप्ते हव्यवाहने ॥ २८ ॥

भ्रातृश्वसुश्च तनयांस्ताक्ष्र्यो वो भक्षयिष्यति। एवं वो भविता नाशः सर्वेषां दुष्टचेतसाम्

शप्त्वा कुलसहस्रन्तु यावदेकं कुलं स्थितम्।

पुलस्त्य उवाच।

एवमुक्ते तु वेपन्तो ब्रह्मणा भुजगोत्तमाः ॥ ३० ॥

निपत्य पादयोस्तस्य इदमूचुर्वचस्तदा।

सर्पा ऊचुः।

भगवन्कुटिला जातिरस्माकं भूतभावन ॥ ३१ ॥

विषोल्बणत्वं क्रूरत्वं दन्दशूकत्वमेव च। सम्पादितं त्वया देव इदानीं शापसे कथम् ॥

ब्रह्मोवाच।

यदि नाम मया सृष्टा भवन्तः कुटिलाशयाः। ततः किं बहुना नित्यं भक्षयध्वं गतव्यथाः

नागा ऊचुः।

मर्यादां कुरु देवेश स्थानं चैव पृथक्पृथक्। मनुष्याणां तथास्माकं समयं देव कारय ॥
शापो यो भवता दत्तो मनुष्यो जनमेजयः। नाशं नः सर्पसत्रेण उल्बणं च करिष्यति॥

ब्रह्मोवाच।

जरत्कारुरिति ख्यातो भविता ब्रह्मवित्तमः। जरत्कन्या तस्यदेया तस्यामुत्पत्स्यतेसुतः
रक्षां कर्त्ता स वो विप्रो भवतां कुलपावनः। तथा करोमि नागानां समयं मनुजैः सह
तदेकमनसः सर्वे शृणुध्वं मम शासनम्। सुतलं वितलं चैव तृतीयं च तलातलम् ॥
दत्तंच त्रिप्रकारं वो गृहं तत्र गमिष्यथ। तत्र भोगान्बहुविधान्भुञ्जाना मम शासनात्
तिष्ठध्वं सप्तमं यावत्कालं तं तु पुनःपुनः। ततो वैवस्वतस्यादौ काश्यपेयो भविष्यति
दायादः सर्वदेवानां सुपर्णस्सर्पभक्षकः। तदा प्रसूतिः सर्पाणां दग्धा वै चित्रभानुना
भवतां चैव सर्वेषां भविष्यति न संशयः ॥ ४१ ॥

ये ये क्रूरा भोगिनो दुर्विनीतास्तेषामन्तो भाविता नान्यथैतत्।
कालव्याप्तं भक्षयध्वं च सत्त्वं तथापकारे च कृते मनुष्यम् ॥ ४२ ॥

मन्त्रैषधैर्गारुडैश्चैव तन्त्रैर्बन्धैर्जुष्टा मानवा ये भवन्ति।
तेभ्यो भीतैर्वर्तितव्यं न चान्यश्चित्ते कार्यं चान्यथा वो विनाशः ॥ ४३ ॥

पुलस्त्य उवाच।

इतीरिते ब्रह्मणा वै भुजङ्गा जग्मुः स्थानं सुतलाख्यं हि सर्वे।
तस्थुर्भोगान्भुञ्जमानाश्च सर्वे रसातले लीलया संस्थितास्ते ॥ ४४ ॥

एवं शापं तु ते लब्ध्वा प्रसादं च चतुर्मुखात्।
तस्थुः पातालनिलये मुदिते नान्तरात्मना ॥ ४५ ॥

ततः कालान्तरे भूते पुनरेवं व्यचिन्तयन्। भविता भारतो राजा पाण्डवेयो महायशाः

अस्माकं तु क्षयकरौ दैवयोगेन केनचित्। कथं त्रिभुवने नाथः सर्वेषां च पितामहः ॥
सृष्टिकर्त्ता जगद्वन्द्यः शापमस्मासु दत्तवान्। देवं विरञ्चिनं त्यक्त्वा गतिरन्यान विद्यते
वैराजे भवनश्रेष्ठे तत्रदेवः स तिष्ठति। स देवः पुष्करस्थो वै यज्ञं यजति साम्प्रतम् ॥

गत्वा प्रसादयामस्तं वरं तुष्टः प्रदास्यति।
एवं विचिन्त्य ते सर्वे नागा गत्वा च पुष्करम् ॥ ५० ॥

यज्ञपर्वतमासाद्य शैलभित्तिमुपाश्रिताः। दृष्ट्वा नागांस्तथा श्रान्तान्वारिधाराश्च शीतलाः
उदङ्मुखा वै निष्क्रान्तास्सर्वेषां तु सुखप्रदाः। नागतीर्थं ततो जातं पृथिव्यां भरतर्षभ
नागकुण्डं च वै केचित्सरितं चापरेऽब्रुवन्। पुण्यं तत्सर्वतीर्थानां सर्पाणां विषनाशनम्

मज्जन्ति तत्र ये मर्त्या अधिश्रावणपञ्चमीम्।
न तेषां तु कुले सर्पाः पीडां कुर्वन्ति कर्हिचित् ॥ ५४ ॥

श्राद्धं पितॄणां ये तत्र करिष्यन्ति नरा भुवि। ब्रह्मातेषां परं स्थानं दास्यते नात्रसंशयः
नागानां तु भयं ज्ञात्वा ब्रह्मालोकपितामहः। पूर्वोक्तं तु पुनर्वाक्यं नागानश्रावयत्तदा

पञ्चमी सा तिथिर्धन्या सर्वपापहरा शुभा।
यतोऽस्यामेव सुतिथौ नागानां कार्यमुद्धृतम् ॥ ५७ ॥
एतस्यां सर्वतो यस्तु कट्वम्लं परिवर्जयेत्।
क्षीरेण स्नापयेन्नागांस्तस्य ते यान्ति मित्रताम् ॥ ५८ ॥

भीष्म उवाच।

शिवदूती यथा जातायेन चैव निवेशिता। तन्मे सर्वंयथातत्त्वं भवाञ्शंसितुमर्हति ॥५९॥

पुलस्त्य उवाच।

शिवा नीलगिरिं प्राप्ता तपसे धृतमानसा। रौद्री जटोद्भवाशक्तिस्तस्याः शृणु नृपव्रतम्

तपः कृत्वा चिरं कालं ग्रसिष्याम्यखिलं जगत्।
एवमुद्दिश्य पञ्चाग्निं साधयामास भामिनी ॥ ६१ ॥

तस्याःकालान्तरे देव्यास्तपन्त्यास्तप उत्तमम्। रुरुर्नाम महातेजा ब्रह्मदत्तवरोऽसुरः ॥
समुद्रमध्ये रत्नाख्यं पुरमस्ति महाधनम्। तत्रातिष्ठत्सदैत्येन्द्रस्सर्वदेवभयङ्करः ॥६३॥

अनेकशतसाहस्रकोटिकोटिशतोत्तमैः । असुरैरर्चितःश्रीमान्द्वितीयो नमुचिर्यथा ॥६४॥
कालेन महता सोऽथ लोकपालपुरं ययौ । जिगीषुः सैन्यसंवीतो देवैर्वैरमरोचयत् ॥

उत्तिष्ठतस्तस्य महासुरस्य समुद्रतोयं ववृधेऽतिवेगात् ।
अनेकनागग्रहमीनजुष्टमाप्लावयत्पर्वतसानुदेशान् ॥ ६६ ॥
अन्तस्थितानेकसुरारिसङ्घं विचित्रवर्मायुधचित्रशोभम् ।
भीमं बलं चलितं चारुयोधं विनिर्ययौ सिन्धुजलाद्विशालम् ॥ ६७ ॥
तत्र द्विपा दैत्यभटाभ्युपेताः सयानघण्टाश्च समृद्धियुक्ताः ।
विनिर्ययुः स्वाकृतिभिर्भूषाणां समत्वमुच्चैः खलु दर्शयन्तः ॥ ६८ ॥
अश्वास्तथा काञ्चनसूत्रनद्धा रोहीत मत्स्या इव ते जलान्ते ।
व्यवस्थितास्तैः सममेव तूर्णं विनिर्ययुर्लक्षशः कोटिशश्च ॥ ६९ ॥
तथा रविस्यन्दनतुल्यवेगाः सचक्रदण्डाक्षतवेणुयुक्ताः ।
रथाश्च यन्त्रोपरिपीडिताङ्गाश्चलत्पताकाः स्वनितं विचक्रुः ॥ ७० ॥
तथैव योधाः स्थगितास्तरीभिस्तितीर्षवस्ते प्रवरास्त्रपाणयः ॥
रणे रणे लब्धजयाः प्रहारिणो विरेजुरुच्चैरसुरानुगा भृशम् ॥ ७१ ॥

देवेषु वै रणे तेषु विद्रुतेषु विशेषतः । असुरास्सर्वदेवानामन्वधावंस्ततस्ततः ॥ ७२ ॥
ततो देवगणाः सर्वे द्रवन्तो भयविह्वलाः । नीलं गिरिवरं जग्मुर्यत्रदेवीस्वयं स्थिता ॥

रौद्री तपोन्विता धन्या शाम्भवी शक्तिरुत्तमा ।
संहारकारिणी देवी कालरात्रीति यां विदुः ॥ ७४ ॥

सा तु दृष्ट्वा तदा देवान्भयत्रस्तान्विचेतसः । पप्रच्छ विस्मयाद्देवी प्रोत्फुल्लाम्बुजलोचन

देव्युवाच ।

पृष्ठतो वो न पश्यामि भयं किञ्चिदुपागतम् । कथं तु विद्रुता देवाः सर्वे शक्रपुरःसराः

देवा ऊचुः ।

अयमायाति दैत्येन्द्रो रुरुर्भीमपराक्रमः । चतुरङ्गेण सैन्येन महता परिवारितः ॥ ७७ ॥

तस्माद्दीना वयं देवीं भगवतीं शरणं गताः ।

पुलस्त्य उवाच ।

देवानामिति वै श्रुत्वा वाक्यमुच्चैर्जहास सा ॥ ७८ ॥

तस्यां हसन्त्यां निश्चेरुर्वराङ्ग्यो वदनात्ततः ।

पाशाङ्कुशधराःसर्वाःपीनोन्नतपयोधराः ॥ ७९ ॥

सर्वाश्शूलधरा भीमाःसर्वादंष्ट्राङ्कुशाननाः । आबद्धमुकुटाःसर्वाःसन्दष्टदशनच्छदाः ॥

फूत्काररावैरशिवैस्त्रासयन्त्यश्चराचरम् ।

काश्चिच्छुक्लाम्बरधराःकाश्चिच्चित्राम्बरास्तथा ॥ ८१ ॥

सुनीलवसनाःकाश्चिद्रक्तपानातिलालसाः । नानारूपैर्मुखैस्तास्तु नानावेषवपुर्धराः ॥

ताभिरेवं वृता देवी देवानामभयङ्करी । मा भैष्ट देवा भद्रं वो यावद्वदति दानवः ॥

चतुरङ्गबलोपेतो रुरुस्तावत्समागतः । तं नीलपर्वतवरं देवानां मार्गमार्गिणः ॥

देवानामग्रतःसैन्यं दृष्ट्वा देवी समाकुलम् । तिष्ठतिष्ठेति जल्पन्तो दैत्यास्ते समुपागताः

ततःप्रववृते युद्धं तासां तेषां मह भयम् । नाराचैर्भिन्नदेहानां दैत्यानां भुवि सर्पताम् ॥

रोषाद्दण्डप्रभग्नानां सर्पाणामिव सर्पताम् । शक्तिनिर्भिन्नहृदयां गदासंचूर्णितोरसः

कुठारैर्भिन्नशिरसोमुसलैर्भिन्नमस्तकाः । विद्धोदरास्त्रिशूलाग्रैश्छिन्नग्रीवा वरासिभिः ॥

क्षताश्वरथमातङ्गपादाताःपेतुराहवे । रणभूमिं समासाद्य दैत्याःसर्वे रुरुंविना ॥ ८६ ॥

ततो बलं हतं दृष्ट्वा रुरुर्मायान्तदाऽऽददे । तया संमोहिता देव्यो देवाश्चापिरणाजिरे ॥

तामस्या मायया देव्या सर्वमन्धन्तमोऽभवत् ।

ततोदेवी महाशक्त्या तन्दैत्यंसमताडयत् ॥ ९१ ॥

तया तु ताडितस्याजौ दैत्यस्य प्रगतंतमः । मायायामथ नष्टायां तामस्यां दानवोरुरुः ॥

पातालमाविशत्तूर्णं तत्रापि परमेश्वरी । देवीभिःसहिताक्रुद्धा पुरतोऽभिमुखी स्थिता ॥

रुरोस्तु दानवेन्द्रस्य भीतस्याग्रे गतस्य च । नखाग्रेण शिरश्छित्त्वा चर्मचादाय वेगिता

निर्ययावथ पातालात्पुष्करं च पुनर्गिरिम् । कन्यासैन्येन महता बहुरूपेण भास्वता ॥

देवैस्तु विस्मितैर्दृष्टा चर्ममुण्डधरा रुरोः । स्वकीये तपसःस्थाने निविष्टापरमेश्वरी ॥

ततो देव्यो महाभागाःपरिवार्य व्यवस्थिताः । याचयामासुरव्यग्रास्तांतुदेवींबुभुक्षिताः॥

देव्य ऊचुः ।

बुभुक्षिता वयं देवि देहि नो भोजनं वरम् ।

पुलस्त्य उवाच ।

एवमुक्ता ततो देवी दध्यौ तासां तु भोजनम् ॥ ९८ ॥

नाध्यगच्छत्तदा तासां भोजनं चिन्तितम्महत् । तदादध्यौ महादेवं रुद्रं पशुपतिं विभुम्
सोऽपिध्यानात्समुत्तस्थौ परमात्मात्रिलोचनः । उवाचरुद्रस्तांदेवींकिंतेकार्यंविवक्षितम्

ब्रूहि देवि महामाये यत्ते मनसि वर्तते ।

शिवदूत्युवाच ।

छागमध्ये तु वै देव छागरूपेण वर्तसे ॥ १०१ ॥

एतास्त्वांभक्षयिष्यन्तिभक्ष्यमीप्सितमादरात् । भक्षार्थमासांदेवेशकिञ्चिद्दातुमिहार्हसि
शूलीकुर्वन्ति मामेता भक्षार्थिन्यो महाबलाः । अन्यथा मामपि बलाद्भक्षयेयुर्बुभुक्षिताः

एवं मां तु समालक्ष्य भक्ष्यं कल्पय सत्वरम् ।

रुद्र उवाच ।

शिवदूति ब्रवीम्येकं प्रवृत्तं यद्युगान्तरे ॥ १०४ ॥

गङ्गाद्वारे दक्षयज्ञो गणैर्विध्वंसितो मम । तत्र यज्ञोमृगोभूत्वा प्रदुद्राव सुवेगवान् ॥
मया बाणेन निर्विद्धो रुधिरेण प्रसेचितः । अजगन्धस्तदाभूतो नाम देवैस्तु मे कृतम् ॥
अजगन्धस्त्वमेवेति दास्ये चान्यत्तु भोजनम् । एतासां शृणुमेदेवि भक्ष्यमेकंमयोचितम्
कथ्यमानं वरारोहे कालरात्रि महाप्रभे । यास्त्री सगर्भा देवेशि अन्यस्त्रीपरिधानकम्

परिधत्ते स्पृशेद्वापि पुरुषस्य विशेषतः ।

सभागोऽस्तु वरारोहे कासाञ्चित्पृथिवीतले ॥ १०६ ॥

अप्येकवर्षं बालं तु गृहीत्वा तत्रवै बलात् । भुक्त्वातिष्ठन्तु सुप्रीता अपि वर्षशतान्बहून्
अन्याःसूतिगृहेच्छिद्रं गृह्णीयुस्तु ह्यपूजिताः । निवसिष्यन्ति देवेशि तथावैजातहारिकाः
गृहेक्षेत्रेतटाके च वाप्युद्यानेषु चैवहि । अन्येषु च रुदन्त्यो याःस्त्रियस्तिष्ठन्ति नित्यशः

तासां शरीरगाश्चान्याःकाश्चित्तृप्तिमवाप्नुयुः ।

शिवदूत्युवाच ।

कुत्सितं भवता दत्तं प्रजानांपरि पीडनम् ॥ ११३ ॥

न च त्वं बुध्यसे दातुं शङ्करस्यविशेषतः । अपाकरं यद्भवति प्रजानां परिपीडकम् ॥

न तु तद्युज्यते दातुं तासां भक्ष्यं तु शङ्कर ! ।

रुद्र उवाच ।

अवन्त्यां तु यदा स्कन्दो मया पूर्वं तु भद्रितः ॥ ११५ ॥

चूड़ाकर्मणि वृत्ते तु कुमारस्यतदाशुभे । आगत्य मातरो भक्ष्यमपूर्वं तु प्रचक्रिरे ॥

देवलोकाद्देवगणा मातृणां भोक्तुमागताः । तासांगृहे यदापूर्वं ब्रह्माद्यास्सुरसत्तमाः ॥

गन्धर्वाप्सरसश्चैव यक्षास्सर्वे च गुह्यकाः । मेर्वादयःशिखरिणो गङ्गाद्याःसरितस्तथा

सर्वेनागा गजास्सिद्धाःपक्षिणोऽसुरसूदनाः । डाकिन्यःसहवेतालैर्वृताःसर्वैर्ग्रहैस्तदा ॥

किमुक्तेनामुना देवि यत्सृष्टं ब्रह्मणात्विह । तत्सर्वं भोजनंदत्तं स्वेच्छान्नं च नभोगतम्

शिवदूत्युवाच ।

आसां कृतं देहिभोज्यं दुलभं यत्त्रिविष्टपे । स्नेहाक्तं सगुडंहृद्यं सुपक्वपरिकल्पितम् ॥

क्वचिन्नान्येन यद्भुक्तमपूर्वं परमेश्वर ।

पुलस्त्यउवाच ।

एवमुक्तस्तदा सोऽपि देवदेवो महेश्वरः ॥ १२२ ॥

भक्ष्यार्थं तास्तदा प्राह पार्वत्याश्चैव सन्निधौ ।

शिवउवाच ।

मया वै साधितं चान्नं प्रकारैर्बहुभिःकृतम् ॥ १२३ ॥

तत्सर्वं च व्ययं यातं न चान्यदिह दृश्यते । भवतीष्वागतास्वद्यकिं मया देयमुच्यताम्

अपूर्वं भवतीनां यन्मयादेयं विशेषतः । आस्वादितं न चान्येन भक्ष्यार्थं च ददाम्यहम्

अधोभागे च मेनाभेर्वर्तुलौफलसन्निभौ । भक्षयध्वं हि सहितालम्बौ मे वृषणाविमौ ॥

अनेन चापि भोज्येन परा तृप्तिर्भविष्यति ।

पुलस्त्य उवाच ।

महाप्रसादं ता लब्ध्वा देव्यस्सर्वास्तदा शिवम् ॥ १२७ ॥
प्रणिपत्य स्थिताश्शर्वं इदं वचनमब्रवीत् । करिष्यन्ति शुभाचारान्विना हास्येन ये नराः
तेषां धनं पशुःपुत्रा दाराश्चैव गृहादिकम् ।
भविष्यति मया दत्तं यच्चान्यन्मनसि स्थितम् ॥ १२६ ॥
हास्येन दीर्घदशना दरिद्राश्च भवन्ति ते । तस्मान्ननिन्दा हास्यं च कर्तव्यं हि विजानता
भवत्यो मातरःख्याता ह्यस्मिँल्लोके भविष्यथ । उपहारै नरा ये तु करिष्यन्तिचकौमुदीम्
चणकान्पूरिकाश्चैव वृषणैःसह पूपकान् । बन्धुभिःस्वजनैश्चैव तेषां वंशो न छिद्यते
अपुत्रो लभतेपुत्रं धनार्थी लभतेधनम् । रूपवान्सुभगो भोगी सर्वशास्त्रविशारदः ॥
हंसयुक्तेन यानेन ब्रह्मलोके महीयते । शिवदूति मयाप्येवं तासां दत्तं च भक्षणम् ॥
त्रपाकरं किं भवत्या उक्तोऽहं तन्निशामय । जयस्व देवि चामुण्डे जयभूतापहारिणि ॥
जय सर्वगते देवि कालरात्रि नमोऽस्तुते । विश्वमूर्तियुते शुद्धे विरूपाक्षि त्रिलोचने ॥
भीमरूपे शिवे विद्ये महामाये महोदरे । मनोजये मनोदुर्गे भीमाक्षि क्षुभितक्षये ॥१३७॥
महामारि विचित्राङ्गि गीतनृत्यप्रिये शुभे । विकरालि महाकालि कालिके पापहारिणि
पाशहस्ते दण्डहस्ते भीमहस्ते भयानके । चामुण्डे ज्वलमानास्ये तीक्ष्णदंष्ट्रे महाबले ॥
शिवयानप्रिये देवि प्रेतासनगते शिवे । भीमाक्षि भीषणे देवि सर्वभूतभयङ्करि ॥१४०॥
करालि विकराले च महाकालि करालिनि ।
कालि करालविक्रान्ते कालरात्रि नमोस्तुते ॥ १४१ ॥
सर्वशस्त्रभृते देवि नमो देवनमस्कृते ।

पुलस्त्य उवाच ।

एवं स्तुता शिवदूती रुद्रेण परमेष्ठिना ॥ १४२ ॥
तुतोष परमा देवी वाक्यं चैवमुवाच ह । वरं वृणीष्व देवेश यत्ते मनसि वर्तते ॥

रुद्रउवाच ।

स्तोत्रेणानेन ये देवि स्तोष्यन्ति त्वां वरानने । तेषां त्वां वरदा देवि भव सर्वगतासती

इमं पर्वतमारुह्य यः पूजयति भक्तितः। सपुत्रपौत्रः पशुमान्समृद्धिमुपगच्छतु ॥ १४५ ॥
यश्चैवं शृणुयाद्भक्त्या स्तवं देवि समुद्भवम्। सर्वपापविनिर्मुक्तः परं निर्वाणमृच्छतु ॥
भ्रष्टराज्यो यदा राजा नवम्यां नियतः शुचिः। अष्टम्यां च चतुर्दश्यां सोपवासो नरोत्तम

संवत्सरेण लभतां राज्यं निष्कण्टकं पुनः।
एषा ज्ञानान्विता शक्तिः शिवदूतीति चोच्यते ॥ १४८ ॥

य एवं शृणुयान्नित्यं भक्त्या परमया नृप। सर्वपापविनिर्मुक्तः परं निर्वाणमाप्नुयात् ॥
यश्चैनं पठते भक्त्या स्नात्वा वै पुष्करेजले। सर्वमेतत्फलं प्राप्य ब्रह्मलोके महीयते ॥
यत्रैतल्लिखितं गेहे सदा तिष्ठति पार्थिव। न तत्राग्निभयं घोरं सर्वचोरादिसम्भवम् ॥

यश्चेदं पूजयेद्भक्त्या पुस्तकेऽपि स्थितं बुधाः।
तेन चेष्टं भवेत्सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ १५२ ॥
जायन्ते बहवः पुत्रा धनं धान्यं वरस्त्रियः।
रत्नान्यश्वा गजा भृत्यास्तेषामाशु भवन्ति च ॥ १५३ ॥
यत्रेदं लिख्यते गेहे तत्राप्येव ध्रुवं भवेत् ॥ १५४ ॥

इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे शिवदूतीचरितं नामैकत्रिंशोऽध्यायः।

द्वात्रिंशोऽध्यायः

प्रेतपञ्चककथानकम्।

भीष्म उवाच।

केन कर्मविपाकेन प्रेतत्वं जायते पुनः। केन वात्र प्रमुच्येत तन्मे ब्रूहि महामते ॥ १ ॥

पुलस्त्य उवाच।

अहं ते कथयिष्यामि सर्वमेतदशेषतः। यच्छ्रुत्वा न पुनर्मोहं यास्यते नृपसत्तम ॥ २ ॥
येन जायेत प्रेतत्वं येन चास्मात्प्रमुच्यते। प्राप्नोति नरकं घोरं दुस्तरं त्रिदशैरपि ॥३॥

सतां सम्भाषणे चैव पुण्यतीर्थानुकीर्त्तने । मानवास्तु प्रमुच्यन्ते आपन्नाः प्रेतयोनिषु ॥

श्रूयते हि पुरा भीष्म ब्राह्मणःशंसितव्रतः ।

पृथुस्सर्वत्र विख्यातःसन्तोषे च सदा स्थितः ॥ ५ ॥

स्वाध्याययुक्तो गेहेषु नित्ययोगश्च योगवित् । जपयज्ञविधानेन युक्तं कालं क्षिपेच्च सः

युक्तःक्षमादयाभ्यां च क्षान्त्या युक्तश्च तत्त्ववित् ।

अहिंसाहितचित्तश्च मार्द्दवे च तथा स्थितः ॥ ७ ॥

ब्रह्मचर्यसमायुक्तः तपोयोगसमन्वितः । युक्तः स पितृकार्येषु युक्तो वैदिककर्मसु ॥८॥

परलोकभयेयुक्तो यक्तस्सत्यवचः प्रति । युक्तोमधुरवाक्येषु युक्तश्चातिथि पूजने ॥९॥

इष्टापूर्तसमायुक्तो युक्तो द्वन्द्वविवर्जने ।

स्वकर्मविधिसंयुक्तो युक्तःस्वाध्याय कर्मसु ॥ १० ॥

एवं कर्माणि कुर्वतस्संसारविजिगीषया । बहून्यब्दान्यतीतानि ब्राह्मणस्य गृहेसतः ॥

तस्य बुद्धिरियं जाता तीर्थाभिगमनं प्रति । पुण्यैस्तीर्थजलैरेतत्क्लिन्नं कुर्यां कलेवरम्

प्रयतः पुष्करे स्नात्वा भास्करस्योदयं प्रति ।

कृतजप्यनमस्कारोऽप्यद्ध्वानं प्रत्यपद्यत ॥ १३ ॥

अग्रतःपञ्चपुरुषानपश्यत्सोऽति भीषणान् । वने कण्टकवृक्षाढ्ये निर्जने पक्षिवर्जिते ॥

तान्दृष्ट्वा विकृताकारान्सुघोरान्पापदर्शनान् ।

ईषत्सन्त्रस्तहृदयो व्यतिष्ठन्निश्चलाकृतिः ॥ १५ ॥

अवलम्ब्य ततो धैर्य्यं भयमुत्सृज्य दूरतः । पप्रच्छ मधुराभाषो के यूयं विकृताःकुतः ॥

किं वा चैव कृतं कर्म येन प्राप्ताश्च वैकृतम् । कथमेवं विधाःसर्वे प्रस्थिताःकुत्रचाध्वनि

प्रेता ऊचुः ।

क्षुत्पिपासान्विता नित्यं महादुःखसमावृताः ।

हृतप्रज्ञा वयं सर्वे नष्टसञ्ज्ञा विचेतसः ॥ १८ ॥

न जानीमो दिशं चापि प्रदिशं चापिकाञ्चन । नान्तरिक्षंमहीं चापि न जानीमोदिवंतथा

यदेतद्दुःखमाख्यातमेतदेव सुखं भवेत् । प्रभातमिदमाभाति भास्करोदयदर्शनात् ॥

अहं पर्युषितो नाम सूचीमुखस्तथापरः।
शीघ्रगो रोहकश्चैव पञ्चमो लेखकस्तथा॥ २१॥

ब्राह्मण उवाच।

प्रेतानां कर्मजातानां नाम्नां वै सम्भवःकुतः।
किं तत्कारणमुद्दिश्य यतो यूयं सनामकाः॥ २२॥

प्रेता ऊचुः।

अहं स्वादु सदाभुञ्जे दद्यां पर्युषितं द्विजे। एतत्कारणमासाद्य नामपर्युषितो मम॥२३॥
सूचिता बहवोऽनेन विप्राश्चान्नाद्यकाङ्क्षिणः। एतत्कारणमुद्दिश्य सूचीमुखाभिधोमतः
शीघ्रंगतोऽस्मिविप्रेणयाचितःक्षुधितेन च। एतत्कारणमुद्दिश्य शीघ्रगोद्विजसत्तम॥
गृहोपरिसदास्वादेभुङ्क्तेद्विजभयेनहि। उद्विग्नमानसस्तत्र तेनासौ रोहकःस्मृतः॥२६॥

मौने चापि स्थितो नित्यं याचितो विलिखन्महीम्।
अस्माकमपि पापिष्ठो लेखको नाम नामतः॥ २७॥
कृच्छ्रेण लेखको याति रोहकस्तु अवाक्छिराः।
शीघ्रगःपङ्गुतां प्राप्तःसूची सूचीमुखोऽभवत्॥ २८॥

पर्युषितो लम्बग्रीवो लम्बोदर उदाहृतः। वृहद्वृषण लम्बोष्ठःपापादस्मादजायत॥२९॥
एतत्ते सर्वमाख्यातमात्मवृत्तं सहेतुकम्। पृच्छस्व यदि ते श्रद्धा पृष्टाश्च कथयामहे॥

ब्राह्मण उवाच।

ये जीवा भुवि तिष्ठन्ति सर्वेऽप्याहारमूलकाः।
युष्माकमपि चाहारं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥ ३१॥

प्रेता ऊचुः।

शृणुष्वाहारमस्माकं सर्वसत्त्वविगर्हितम्।
यच्छ्रुत्वा निन्दसे विप्र भूयोभूयश्च नित्यशः॥ ३२॥

श्लेष्ममूत्रपुरीषेण योषिदङ्गमलेन च। गृहाणि त्यक्तशौचानि प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै॥

स्त्रीभिर्दग्धानि कीर्णानि प्रकीर्णोच्छिष्टकानि च।

मलेनापि जुगुप्स्यानि प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ॥ ३४ ॥
वित्तलज्जाविहीनानि होमहीनानि यानि च । व्रतैश्चैव विहीनानि प्रेताभुञ्जन्ति तत्र वै
गुरवो नैव पूज्यन्ते स्त्रीजितानि गृहाणि च ।
क्रोधलोभगृहीतानि प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ॥ ३६ ॥
त्रपा मे जायते तात कथ्यमाने स्वभोजने । अस्मात्परतरं चान्यन्न वक्तुमपि शक्यते ॥
निवृत्तिं प्रेतभावस्य पृच्छामस्त्वां दृढव्रत । यथा न भवति प्रेतस्तन्मे वद तपोधन ॥३८

ब्राह्मण उवाच ।

एकरात्रद्विरात्रादि कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः । व्रतैरन्यैः कृतैर्नित्यं न प्रेतो जायते नरः ॥
त्रीनग्नीन्पञ्च चैकं वा योऽहन्यहनि सेवते । स वै भूतदयापन्नो न प्रेतो जायते नरः ॥
तुल्यो मानेऽपमाने च तुल्यःकाञ्चनलोष्ट्रयोः ।
तुल्यःशत्रौ च मित्रे च न प्रेतो जायते नरः ॥ ४१ ॥
देवतातिथिपूजासु गुरुपूजासु नित्यशः । रतो वै पितृपूजासु न प्रेतो जायते नरः ॥
शुक्राङ्गारकसंयुक्ता चतुर्थी जायते यदा ।
श्रद्धया श्राद्धकृत्तस्यां न प्रेतो जायते नरः ॥ ४३ ॥
जितक्रोधविमर्शो यस्तृष्णासङ्गविवर्जितः । क्षमावान्दानशीलश्च न प्रेतो जायते नरः ॥
गोब्राह्मणांश्च तीर्थानि पर्वतांश्च नदीस्तथा । देवांश्चैव तु यो वन्द्यान्न प्रेतो जायते नरः

प्रेता ऊचुः ।

श्रुताश्च विविधा धर्माः पृच्छामो दुःखिता मुने । येन वै जायते प्रेतस्तन्नो वद महामते

ब्राह्मण उवाच ।

शूद्रान्नेन तु भुक्तेन ब्राह्मणेन विशेषतः । म्रियते ह्युदरस्थेन स वै प्रेतो भवेन्नरः ॥४७॥
मातरं पितरं भ्रातॄन्भगिनीं सुतमेव च । अदृष्टदोषांस्त्यजति स प्रेतो जायते नरः॥४८॥
अयाज्ययाजनाच्चैव याज्यस्य च विवर्जनात् । रतो वै शूद्रसेवासु स प्रेतो जायते नरः
न्यासापहर्ता मित्रध्रुक्छूद्रपाकरतः सदा ।
विस्रम्भघाती कूटस्थः स प्रेतो जायते नरः ॥ ५० ॥

ब्रह्महा गोघ्नकः स्तेनः सुरापो गुरुतल्पगः । भूमिकन्यापहर्त्ता च स प्रेतो जायते नरः

सामान्यां दक्षिणां लब्ध्वा एक एव निगूहति ।
नास्तिकी भावनिरतः स वै प्रेतोऽभिजायते ॥ ५२ ॥
एवं ब्रुवाणे विप्रेन्द्र आकाशे दुन्दुभिस्वनः ।
पुष्पवृष्टिः पपातोर्व्यां देवैर्मुक्ता सहस्रशः ॥ ५३ ॥
प्रेतानां तु विमानानि आगतानि समन्ततः ।
अस्य विप्रस्य सम्भाषात्पुण्यसङ्कीर्तनेन च ॥ ५४ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सतां सम्भाषणं कुरु । यदि ते श्रेयसा कार्यं गङ्गासुत अतन्द्रितः ॥
तिलकं सर्वधर्मस्य पञ्चप्रेतकथामिमाम् । पठेल्लक्षंयोऽस्य कुले न प्रेतो जायते नरः ॥

शृणोति वाप्यभीक्ष्णं वा श्रद्धया परयाऽन्वितः ।
भक्त्या समन्वितो वापि न प्रेतो जायते नरः ॥ ५७ ॥

भीष्म उवाच ।

अन्तरिक्षे किमर्थं तु पुष्करं परिकीर्त्यते । मुनिभिर्धर्मशीलैश्च लभ्यते तत्कथं त्विह ॥
येन तल्लभ्यते लब्धं लब्धं चैव फलप्रदम् । तन्मे सर्वं समाचक्ष्व कौतुकादेव पृच्छतः ॥

पुलस्त्य उवाच ।

ऋषिकोटिस्समायाता दक्षिणापथवासिनी ।
स्नानार्थं पुष्करे राजन्पुष्करञ्च वियद्गतम् ॥ ६० ॥

मत्वा ते मुनयः सर्वे प्राणायामपरायणाः । ध्यायमानाःपरं ब्रह्मस्थिता द्वादशवत्सरान्
ब्रह्मामहर्षयस्तत्र देवास्सेन्द्रास्समागताः । ऋषयोऽन्तर्हिताः प्रोचुर्नियमांस्तेसुदुष्करान्

आकारणं पुष्करस्य मन्त्रेण क्रियतां द्विजाः ।
आपोहिष्ठेति तिसृभिर्ऋग्भिः सान्निध्यमेष्यति ॥ ६३ ॥

अघमर्षणजप्येन भवेद्वैफलदायकम् । विप्रैर्वाक्यावसाने तु सर्वैस्तैस्तु तथाकृतम् ॥६४॥
कृतेनपुण्यतां प्राप्ता ये निदेशाच्च ते द्विजाः । गर्हिता धर्मशास्त्रेषु ते विप्रादक्षिणोत्तराः

ये चान्ये पार्वतीयाश्च श्राद्धे नार्हन्ति केतनम् ।

एतस्मात्कारणाद्राजन्वियत्येवं समास्थितम् ॥ ६६ ॥
कार्तिक्यां पुष्करं स्नानात्पूततामभिगच्छति । ब्रह्मणा सहितं राजन्सर्वेषांपुण्यदायकम्
तत्रागतास्तु ये वर्णाः सर्वे ते पुण्यभाजनाः ।
द्विजैस्तुल्या न सन्देहो विना मन्त्रेण ते नृप ॥ ६८ ॥
आग्नेयं तु यदा ऋक्षं कार्तिक्यां भवति क्वचित् ।
महती सा तिथिर्ज्ञेया स्नाने दाने तथोत्तमा ॥ ६९ ॥
यदा याम्यं तु भवति ऋक्षं तस्यां तिथौ क्वचित् ।
तिथिः सापि महापुण्या यतिभिः परकीर्तिता ॥ ७० ॥
प्राजापत्यं यदा ऋक्षं तिथौ तस्यां नराधिप ।
सा महाकार्तिकी प्रोक्ता देवानामपि दुर्लभा ॥ ७१ ॥
यदा चार्के गुरौ सोमे वारेष्वेतेषु वै त्रिषु ।
त्रीण्येतानि च ऋक्षाणि स्वयं प्रोक्तानि ब्रह्मणा ॥ ७२ ॥
अत्राश्वमेधिकं पुण्यं स्नातस्यभवति ध्रुवम् । दानमक्षयतां याति पितणां तर्पणं तथा
विशाखासु यदा भानुः कृत्तिकासु च चन्द्रमाः ।
स योगः पुष्करो नाम पुष्करेष्वतिदुर्लभः ॥ ७४ ॥
अन्तरिक्षावतीर्णे तु तीर्थे पैतामहे शुभे । स्नानं येऽत्र करिष्यन्ति तेषां लोकामहोदयाः
न स्पृहान्तेऽन्यपुण्यस्य कृतस्याप्यकृतस्य च ।
करिष्यन्ति महाराज सत्यमेतदुदाहृतम् ॥ ७६ ॥
तीर्थानां प्रवरं तीर्थं पृथिव्यामिह पठ्यते । नास्मात्परं पुण्यतीर्थं लोकेषु नृप पठ्यते ॥
कार्तिक्यां तु विशेषेण पुण्या पापहरा शुभा । उदुम्बरवनात्तस्मादागता च सरस्वती ॥
तया तत्पूरितं तीर्थं पुष्करं मुनिसेवितम् । दक्षिणे शिखरं भाति पर्वतस्याविदूरतः ॥
नीलाञ्जनचयप्रख्यं वर्णतोनीलशाद्वलम् । तया तच्छिखरं तस्य खस्थितंपुष्करं यथा ॥
प्रावृट्काले वियत्पूर्णं घनवृन्दमिवोच्छ्रितम् । कदम्बपुष्पगन्धाढ्यं कुटजार्जुनभूषितम्
रथमार्गमिवारोढुं रवेस्तच्छिखरं स्थितम् । वृत्तैस्सपुलकैस्स्निग्धैः स्त्रीणामिवपयोधरैः

श्रीफलैः शिखरं भाति समन्तात्सुमनोहरैः ।

गुञ्जद्भिः षट्पदकुलैः समन्तादुपशोभितम् ८३ ॥

कोकिलारावरुचिरं शिखिकेकारवाकुलम् । शृङ्गे मनोहरे तस्मिन्नुद्गता सुमनोरमा ॥
पुण्या पुण्यजलोपेता नदीयं ब्रह्मणस्सुता । वंशस्तम्बात्सुविपुला प्रवृत्ता चोत्तरामुखी
गत्वा ततो नातिदूरात्पुनर्याति पराङ्मुखी । ततः प्रभृति सा देवी प्रसन्ना प्रकटास्थिता
अन्तर्धानं परित्यज्य प्राणिनामनुकम्पया । कनका सुप्रभा चैव नन्दा प्राची सरस्वती
पञ्चस्रोताः पुष्करेषु ब्रह्मणा परिभाषिता । तस्यास्तीरे सुरम्याणितीर्थान्यायतनानि च
संसेवितानि मुनिभिः सिद्धैश्चापि समन्ततः । तेषु सर्वेषु भविता धर्महेतुः सरस्वती ॥
हाटकक्षितिगौरीणां तत्तीर्थेषु महोदयम् । दानं दत्तं नरैः स्नातैर्जनयत्यक्षयं फलम् ॥

धान्यप्रदानं प्रवरं वदन्ति तिलप्रदानं च तथा मुनीन्द्राः ।

यैस्तेषु तीर्थेषु नरैः प्रदत्तं तद्धर्महेतुप्रवरं प्रदिष्टम् ॥ ९१ ॥

प्रायोपवेशं प्रयतः प्रयत्नाद्यस्तेषु कुर्यात्प्रमदा पुमान्वा ।

तीर्थेऽपि संयोज्य मनोऽपि चेत्थं भुङ्क्ते फलं ब्रह्म गृहे यथेष्टम् ॥ ९२ ॥

तस्योपकण्ठे म्रियते हि यैस्तु कर्मक्षयात्स्थावरजङ्गमैश्च ।

ते चापि सर्वे सकलं प्रसह्य लभन्ति यज्ञस्य फलं दुरापम् ॥ ९३ ॥

ततस्तु सा धर्मफलारणी च जन्मादिदुःखार्दितचेतसां तु ।

सर्वात्मना चारुफला सरस्वती सेव्या प्रयत्नात्पुरुषैर्महानदी ॥ ९४ ॥

तत्र ये सलिलं पूतं पिबन्ति सततन्नराः । न ते मनुष्या देवास्ते जगत्यामिह संस्थिताः
यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्च यत्फलं प्राप्यते द्विजैः । तदत्र स्नानमात्रेण शूद्रैरपि स्वभावजैः ॥
दर्शनात्पुष्करस्यापि महापातकिनोऽपि ये । तेऽपि तत्पापनिर्मुक्ताः स्वर्गं यान्ति तनुक्षये
तत्रोपवासो यज्ञस्य पुण्डरीकस्य यत्फलम् । तत्प्राप्नोति नरः क्षिप्रमल्पायासेन पुष्करे
माघमासेतिलान्यस्तु प्रयच्छति च सद्द्विजे । यथाशक्तिच भक्त्या च सविष्णुभवनेवसेत्

तत्रोपवासं स्नानं च पञ्चगव्याशनं तथा ।

यः करोति नरः सोऽपि देहान्ते स्वर्गमाप्नुयात् ॥ १०० ॥

वसन्ति तत्समीपस्था• येऽपि तस्करजातयः ।
तेऽपि तस्यानुभावेन स्वर्यान्ति च न संशयः ॥ १०१ ॥
ये पुनः शूद्रवृत्तिस्थास्त्रिरात्रोपोषितानराः । प्रयच्छन्ति द्विजेष्वर्थं ब्रह्मशक्तिसमन्विताः
ते मृता यानमारूढाः पद्मासनचतुर्भुजाः । ब्रह्मणा सह सायुज्यं प्राप्नुवन्त्यपुनर्भवम् ॥
गङ्गोद्भेदं यत्र गङ्गा सम्प्राप्ता सरितां वराम् ।
सरस्वतीं द्रष्टुकामा सान्त्वार्थे प्रोद्गताऽम्बरात् ॥ १०४ ॥
तत्रगत्वा पयः पूतं सुरसिद्धनिषेवितम् । सारस्वतं च विमलं विद्याधरगणार्चितम् ॥
पीतमेकाञ्जलिमितं येनाप्तं तेन तत्परम् । अवलोक्य दिशं पूर्वामाह गङ्गे सखि त्वया ॥
एकाकिनी वियुक्तास्मि क्व यास्येऽहमबान्धवा ।
तां विज्ञाय ततो गङ्गा रुदन्तीं शोककर्शिताम् ॥ १०७ ॥
पूर्वदेशात्समायाता द्रष्टुंतां दोनमानसाम् । दृष्ट्वाच तां महाभागां परिष्वज्य तु पीडिताम्
नेत्रे प्रमृज्य चैतस्याः प्राहगङ्गा वचस्तदा ।

गङ्गोवाच ।

मा रोदीस्त्वं महाभागे दुष्करं ते कृतं सखि ॥ १०६ ॥
देवकार्यं यदन्येन कर्तुं शक्येत नैवहि । एतस्मात्ते महाभागे द्रष्टुं देवाः समागताः ॥
एषाञ्च क्रियतां पूजा वाङ्मनःकायकर्मणा ।

पुलस्त्य उवाच ।

सरस्वती सुरेन्द्राणां कृत्वा पूजाविधिक्रमम् ॥ १११ ॥
क्रमेण ब्रह्मजा पश्चात्सङ्गता तु सखीजनम् । जेष्ठमध्यमयोर्मध्ये सङ्गमो लोकविश्रुतः ॥
पश्चान्मुखी ब्रह्मसुता जाह्नवो तु उदङ्मुखी । ततस्ते विबुधा सर्वे पुष्करं ये समागताः
विदित्वा दुष्करं कर्म तस्यां स्तुतिमकारयन् ।

देवा ऊचुः ।

त्वं बुद्धिस्त्वं मतिर्लक्ष्मीस्त्वं विद्या त्वं गतिः परा ॥ ११४ ॥
त्वं श्रद्धा त्वं परा निष्ठा बुद्धिर्मेधा रतिःक्षमा ।

त्वं सिद्धिस्त्वं स्वधा स्वाहा त्वं पवित्रं मतं महत् ॥ ११५ ।
सन्ध्या रात्रिः प्रभाभूतिर्मेधा श्रद्धासरस्वती । यज्ञविद्या महाविद्या गुह्यविद्याच शोभना
आन्वीक्षिकी तु या वार्ता दण्डनीतिश्च कथ्यते ।
नमोऽस्तु ते पुण्यजले नमः सागरगामिनि ॥ ११७ ॥
नमस्ते पापनिर्मोके नमो देवि जगत्प्रिये ।

पुलस्त्य उवाच ।

एवं स्तुता हि सा देवो दिव्या स्वार्थपरायणैः ॥ ११८ ॥
एवं सा प्राङ्मुखी तत्र स्थिता देवी सरस्वती । सर्वतीर्थमयी देवी सर्वामरसमन्विता
प्राची सेति बुधैर्ज्ञेया ब्रह्मणो वचनन्तथा । तत्र शुद्धावटं नाम तीर्थं पैतामहं स्मृतम्
दर्शनेनापि वै तस्य महापातकिनोऽपि ये ।
भोगिभोगान्समश्नन्ति विशुद्धा ब्राह्मणोऽन्तिके ॥ १२१ ॥
प्रायोपवेशं ये तत्र प्रकुर्वन्ति नरोत्तमाः । ते मृता ब्रह्मयानेन दिवं यान्त्यकुतोभयाः ॥
तत्राल्पमपि यैर्दानन्दत्तं ब्रह्मविदात्मनाम् । जन्मान्तरशतं तेषां तैर्दत्तं भावितात्मनाम् ॥
खण्डस्फुटितसंस्कारं तत्र कुर्वन्ति ये नराः । ते ब्रह्मलोकमासाद्य मोदन्ते सुखिनस्सदा
योऽत्र पूजा जपो होमः कृतो भवति देहिनाम् ।
अनन्तं तत्फलं सर्वं ब्रह्मभक्तिरतात्मनाम् ॥ १२५ ॥
तत्र दीपप्रदानेन ज्ञानचक्षुरतीन्द्रियः । प्राप्नोति धूपदानेन स्थानं ब्रह्मनिषेवितम् ॥ १२६ ।
अथ किं बहुनोक्तेन सङ्गमे यत्प्रदीयते । तदनन्तफलं प्रोक्तं जीवतो वा मृतस्य च ॥
स्नानाज्जपात्तथा होमादनन्तफलसाधकम् । रामेणागत्य वै तत्र पिण्डं दशरथस्य च ॥
दत्तं श्राद्धं तत्र तेन मार्कण्डेयेन दर्शिते । तत्रवापो चतुष्कोणा तत्र पिण्डप्रदा नराः ॥
हंसयुक्तेन यानेन सर्वंयान्ति त्रिविष्टपम् । तस्यां वाप्यां तु वै ब्रह्मा पितृमेधं चकार ह
यज्ञं यज्ञविदां श्रेष्ठः समाप्तवरदक्षिणम् । वसवः पितरो ज्ञेया रुद्राश्चैव पितामहाः ॥
आदित्याश्च ततस्तेषां विहिताः प्रपितामहाः ।
त्रिविधा अपि आहूय पुनरुक्ता विरिञ्चिना ॥ १३२ ॥

भवद्भिः पिण्डदानाद्यं ग्राह्यमत्रस्थितैस्सदा । यत्कृतं पितृकार्यं च तदनन्तफलं भवेत् ॥
वृत्त्यर्थं पितरस्तेषां तुष्टाश्चैव पितामहाः । लभन्ते तर्पणात्तृप्तिं पिण्डदानात्त्रिविष्टम् ॥
तस्मात्सर्वं परित्यज्य प्राचीने पिण्डदो भवेत् ।
दत्त्वा पुत्रः प्रयत्नेन पितॄन्सर्वांश्च तर्पयेत् ॥ १३५ ॥
प्राचीनेश्वरदेवस्य पुरोभूतं प्रतिष्ठितम् । आदितीर्थंतदित्युक्तं दर्शनादपि मुक्तिदम् ॥
स्पृष्ट्वा तु सलिलन्तत्र मुच्यते जन्मबन्धनात् ।
अवगाहनाद् ब्रह्मणोऽसौ भवत्यनुचरःसदा ॥ १३७ ॥
आदितीर्थे नरः स्नात्वा यःप्रदद्यात्समाधिना ।
अन्नमल्पमपि प्रायः प्रायशस्स्वर्गमाप्नुयात् ॥ १३८ ॥
यस्तत्र ब्रह्मभक्तानां नरः स्नात्वा ददेद्धनम् । कृसरेणापि हेम्नाच सस्वर्गे मोदते सुखी
प्राची सरस्वती तत्र नरैः किं मृग्यते परम् ।
तस्यां स्नानात्फलं तृप्त्यै तपोयज्ञादिलक्षणम् ॥ १४० ॥
ये पिबन्ति नराः पुण्यां प्राचीं देवीं सरस्वतीम् ।
न ते नराः सुराः ज्ञेया मार्कण्डेयर्षिरब्रवीत् ॥ १४१ ॥
सरस्वतीं नदीं प्राप्य न स्नाने नियमः क्वचित् ।
भुक्ते वा न च वा भुक्ते दिवा वा यदि वा निशि ॥ १४२ ॥
तत्तीर्थंसर्वतीर्थानांप्राचीनप्रवरंस्मृतम् । पापघ्नं पुण्यजननं प्राणिनां परिकीर्तितम् ॥
ये पुनर्भावितात्मानस्तत्र स्नात्वा जनार्दनम् ।
पूजयन्ति यथाशक्ति ते प्रयान्ति त्रिविष्टपम् ॥ १४४ ॥
देवानां प्रवरो विष्णुस्तेन यत्र सरस्वतीम् ।
सेविता तत्परंतीर्थं क्षितौ ब्रह्मसुतोऽब्रवीत् ॥ १४५ ॥
ततस्तस्मान्महातीर्थं मन्यमाना महोदयम् । मन्दाकिनीमुदीक्षन्ती स्थिता तत्र सरस्वरती
तत्तीर्थं सर्वतीर्थानां परं स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ।
मन्दकिन्या समं यत्र प्राप्य पुण्यसमागमम् ॥ १४७ ॥

तत्र स्थाने स्थिता देवैःस्तुता देवी सरस्वती ।
मत्वा चैकाकिनीं तां तु दीनास्यां दीनमानसाम् ॥ १४८ ॥

सखीं तदासृजद्ब्रह्मा रूपिणीं विमलेक्षणाम् । हरिणीं हरिरप्याशु जज्ञे कमललोचनाम्
वज्रिणीमपि देवेशो वज्रपाणिर्विसृष्टवान् । सुकुरङ्गरुचिर्देवो नीलकण्ठो वृषध्वजः ॥
सखीं सञ्जनयामास सरस्वत्यास्त्रिलोचनः । विलोक्यमाना साराजन्सखीभिःसुरसुन्दरी
प्रहृष्टा यातुमारब्धा दैवादेशान्महानदी । ततः सखीभिः सार्द्धं सा प्राचीनागन्तुमुद्यता
सरस्वती समस्तानां तासां श्रेष्ठतमास्मृता । प्राची सरस्वतीतोयं ये पिबन्तिमृगाभुवि
तेऽपि स्वर्गं गमिष्यन्ति यज्ञैर्द्विजवरायथा । चिन्तामणिरिवात्रैषा प्राचीज्ञेया सरस्वती
तथा कामफलस्येयं हेतुभूता महानदी । दक्षिणां दिशमालोक्य पुनःपश्चान्मुखीगता
उक्ता तया तथागङ्गा दिशं प्राचीं व्रजस्वह । विस्मर्तव्या न चाहं ते व्रज देवियथागतम्

इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे तीर्थावतारो नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ।

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेयोत्पत्तिकथानकम् ।

भीष्म उवाच ।

मार्कण्डेये न वैरामः कथमत्र प्रबोधितः । कथं समागमो भूतः कस्मिन्काले कदामुने
मार्कण्डेयः कस्य सुतः कथं जातो महातपाः । नाम्नोऽस्य निगमंब्रूहियथाभूतंमहामुने ॥

पुलस्त्य उवाच ।

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि मार्कण्डेयोद्भवं पुनः । पुरा कल्पे मुनिः पूर्वं मृकण्डुर्नाम विश्रुतः
भृगोः पुत्रो महाभागः सभार्यस्तप्तवांस्तपः । तस्यपुत्रस्तदा जातो वसतस्तु वनान्तरे
स पञ्चवार्षिको भूतो बालएव गुणाधिकः । ज्ञानिना सतदादृष्टो भ्रमन्बालस्तदाङ्गणे
स्थित्वा ससुचिरंकालं भाव्यर्थं प्रत्यबुध्यत । तस्य पित्रा सवै पृष्टःकियदायुः सुतस्यमे

सङ्ख्ययाऽऽचक्ष्व वर्षाणि तस्याल्पान्यधिकानि वा ।
मृकण्डुनैव मुक्तस्तु स ज्ञानी वाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥

षण्मासमायुः पुत्रस्य धात्रा सृष्टं मुनीश्वर । नैवशोकस्त्वया कार्यः सत्यमेतदुदाहृतम्
सतच्छ्रुत्वा वचो भीष्म ज्ञानिनायदुदाहृतम् । अथोपनयनं चक्रे बालकस्य पिता तदा
आह चैनं पिता पुत्रमृषींस्त्वमभिवादय । एवमुक्तः सवैपित्रा प्रहृष्टश्चाभिवादने ॥१०॥
न वर्णावर्णतां वेत्ति सर्ववर्णाभिवादनः । पञ्चमासास्त्वतिक्रान्ता दिवसाःपञ्चविंशतिः
मार्गेणाथ समायाता ऋषयस्तत्र सप्त वै । बालेन तेन ते दृष्टाः सर्वे चाप्यभिवादिताः ॥
आयुष्मान्भव तै रुक्तः स बालो दण्डमेखली । उक्त्वैवं तेपुनर्बालमपश्यन्क्षीणजीवितम्
दिनानि पञ्च तस्यायुर्ज्ञात्वा भीताश्चतेनृप । तंगृहीत्वाबालकंचगतास्तेब्रह्मणोऽन्तिकम्
प्रतिमुच्य च तं राजन्प्रणिपेतुः पितामहम् । अयमावेदितस्तैस्तु तेन ब्रह्माभिवादितः ॥

चिरायुर्ब्रह्मणा बालः प्रोक्तः स ऋषिसन्निधौ ।
ततस्ते मुनयः प्रीताः श्रुत्वा वाक्यं पितामहात् ॥ १६ ॥
पितामहो ऋषीन्दृष्ट्वा प्रोवाच विस्मयान्वितः ।
कार्येण येन चायातः कोऽयं बालो निवेद्यताम् ॥ १७ ॥

ततस्त ऋषयो राजन्सर्वं तस्मै न्यवेदयन् । पुत्रोमृकण्डोः क्षीणायुः सायुषंकुरुबालकम्
अल्पायुषस्त्वस्य मुनिर्बद्ध्वेमां चापि मेखलाम् । यज्ञोपवीतंदण्डं च दत्त्वाचैनमबोधयत्
यं कंचित्पश्यसे बालभ्रमन्तं भूतले जनम् । तस्याभिवादः कर्तव्य एवमाह पिता वचः
अभिवादनशीलोऽयं क्षितौ दृष्टः परिभ्रमन् । तीर्थयात्राप्रसङ्गेन दैवयोगात्पितामह ॥
चिरायुर्भवपुत्रेति प्रोक्तोऽसौ तत्र बालकः । कथं वचो भवेत्सत्यमस्माकं भवतासह
एवमुक्तस्तदा तैस्तु ब्रह्मा लोकपितामहः । ऋतवाक्यादियं भूमिः संस्थिता सर्वतोभया

ब्रह्मोवाच ।

मत्समश्चायुषाबालो मार्कण्डेयो भविष्यति । ऋषीणांचापिमुख्यश्चमत्सहायोभविष्यति
कल्पस्यादौ तथा चान्ते मतो मे मुनिसत्तमः । एवं ते मुनयो बालं ब्रह्मलोकेपितामहात्
संसाध्य प्रेषयामासु भूयोऽप्येनं धरातलम् । तीर्थयात्रां गताविप्रामार्कण्डेयोनिजंगृहम्

जगाम तेषु यातेषु पितरं स्वमथाब्रवीत् । ब्रह्मलोकमहंनीतो मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥
दीर्घायुश्च कृतश्चास्मि वरान्दत्वा विसर्जितः । एतदन्यच्च मे दत्तं गतं चिन्ताकरं तव ॥
कल्पस्यादौ तथा चान्ते भविष्ये समनन्तरे । लोककर्तुर्ब्रह्मणोऽहं प्रसादात्तस्य वै पितः
पुष्करं वै गमिष्यामि तपस्तप्तुं समुद्यतः । तत्राहं देवदेवेशमुपासिष्ये पितामहम् ॥
सर्वाकामवाप्तिकरं सर्वारातिनिवर्हणम् । सर्वसौख्यप्रदं देवमिन्द्रादीनां परायणम् ॥
ब्रह्माणंतोषयिष्यामि सर्वलोकपितामहम् । मार्कण्डेयवचः श्रुत्वा मृकण्डुर्मुनिसत्तमः
जगाम परमं हर्षंक्षणमेकं समुच्छ्वसन् । धैर्यं सुमनसास्थाय इदं वचनमब्रवीत् ॥३३॥
अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम् । सर्वस्य जगतां स्रष्टा येन दृष्टःपितामहः
त्वया दायादवानस्मि पुत्रेण वंशधारिणा । त्वं गच्छ पश्य देवेशं पुष्करस्थं पितामहम्
दृष्टेतस्मिञ्जगन्नाथे न जरामृत्युरेव च । नृणां भवति सौख्यानि तथैश्वर्यं तपोऽक्षयम्

त्रीणि शृङ्गाणि शुभ्राणि त्रीणि प्रस्रवणानि च ।
पुष्कराणि तथा त्रीणि न विद्मस्तत्र कारणम् ॥ ३७ ॥

कनीयांसंमध्यमं च तृतीयं ज्येष्ठपुष्करम् । शृङ्गशब्दाभिधानानि शुभ्रप्रस्रवणानि च ॥
ब्रह्माविष्णुस्तथा रुद्रो नित्यं सन्निहितास्त्रयः । पुष्करेषु महाराज नातःपुण्यतमं भुवि
विरजंविमलं तोयंत्रिषु लोकेषु विश्रुतम् । ब्रह्मलोकस्य पन्थानं धन्याःपश्यन्तिपुष्करम्
यस्तु वर्षशतं साग्रमग्निहोत्रमुपासिता । कार्तिकीं वावसेदेकां पुष्करे सममेवच ॥४१॥
कर्तुम्मया न शकितं कर्मणा नैव साधितम् । तदयत्नात्त्वया तात मृत्युस्सर्वहरोजितः
तत्र दृष्टस्सदेवेशो ब्रह्मालोकपितामहः । नान्योमर्त्यस्त्वया तुल्योभविता जगतीतले ॥
अहं वै तोषितो येन पञ्चवार्षिकजन्मना । वरेण त्वं मदीयेन उपमा चिरजीविनाम् ॥
गमिष्यसि न सन्देहस्तथाशीर्वचनम्मम । एवं वदन्ति ते सर्वे व्रजलोकान्यथेप्सितान्
एवं लब्धप्रसादेन मृकण्डुतनयेन च । आश्रमः स्थापितस्तेन मार्कण्डाश्रम इत्युत ॥
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा वाजपेयफलं लभेत् । सर्वपापविशुद्धात्मा चिरायुर्जायते नरः ॥

पुलस्त्य उवाच ।

तथान्यं ते प्रवक्ष्यामि इतिहासं पुरातनम् । यथा रामेण वै तीर्थं पुष्करं तु विनिर्मितम्

चित्रकूटात्पुरा रामो मैथिल्या लक्ष्मणेन च। अत्रेराश्रममासाद्य पप्रच्छ मुनिसत्तमम् ॥

राम उवाच।

कानि पुण्यानि तीर्थानि किं वा क्षेत्रं महामुने।
यत्र गत्वा नरो योगिन्वियोगं सह बन्धुभिः ॥ ५० ॥

नैव प्राप्नोति भगवंस्तन्ममाचक्ष्व सुव्रत। अनेन वनवासेन राज्ञस्तु मरणेन च ॥५१॥
भरतस्य वियोगेन परितप्ये ह्यहं त्रिभिः। तद्वाक्यं राघवेणोक्तं श्रुत्वा विप्रर्षभस्तदा ॥
ध्यात्वा च सुचिरं कालमिदं वचमब्रवीत्।

अत्रिरुवाच।

साधु पृष्टं त्वया वीर रघूणां वंशवर्धन ॥ ५३ ॥

मम पित्रा कृतं तीर्थं पुष्करं नाम विश्रुतम्। पर्वतौ द्वौ च विख्यातौ मर्यादायज्ञपर्वतौ
कुण्डत्रयं तयोर्मध्ये ज्येष्ठमध्यकनिष्ठकम् ॥ ५५ ॥

तेषु गत्वा दशरथं पिण्डदानेन तर्पय। तीर्थानां प्रवरं तीर्थक्षेत्राणामपि चोत्तमम् ॥
अवियोगा च सुरसा वापी रघुकुलोद्वह ॥ ५६ ॥

तथा सौभाग्यकूपोऽन्यः सुजलो रघुनन्दन। तेषु पिण्डप्रदानेन पितरो मोक्षमाप्नुयुः
आभूतसम्प्लवं कालमेतदाह पितामहः। तत्र राघव गच्छस्व भूयोऽप्यागमनं क्रिया ॥
तथेति चोक्त्वा रामोऽपि गमनाय मनो दधे। ऋक्षवन्तमभिक्रम्य नगरं वैदिशन्तथा ॥
चर्मण्वतीं समुत्तीर्य प्राप्तोऽसौ यज्ञपर्वतम्। तमतिक्रम्य वेगेन मध्यमे पुष्करे स्थितः ॥
पितॄन्सन्तर्पयामास अद्भिर्देवांश्च सर्वशः। स्नानावसाने रामेण मार्कण्डो मुनिपुङ्गव ॥
आगच्छञ्शिष्यसंयुक्तो दृष्टस्तत्रैव धीमता।
गत्वा वै सम्मुखं तस्य प्रणिपत्य च सादरम् ॥ ६२ ॥
पृष्टोऽवियोगदः कूपः कतमस्यां दिशि प्रभो।
सुतो दशरथस्याहं रामो नाम जनैः स्मृतः ॥ ६३ ॥

सौभाग्यवापीं तां द्रष्टुमहं प्राप्तोऽत्रिशासनात्। तत्स्थानं तौ चैव कूपौ भगवान्प्रब्रवीतु मे
एवमुक्तश्च रामेण मार्कण्डः प्रत्युवाच ह।

मार्कण्डेय उवाच ।

साधु राघव भद्रं ते सुकृतं भवता कृतम् ॥ ६५ ॥
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन यत्प्राप्तोऽसीह साम्प्रतम ।
एह्यागच्छस्व पश्यस्व वापीं तामवियोगदाम् ॥ ६६ ॥

अवियोगश्च सर्वैश्च कूप एवात्र जायते । आमुष्मिके चैहिके च जीवतोऽपि मृतस्य वा
एतद्वाक्यं मुनीन्द्रस्य श्रुत्वा लक्ष्मणपूर्वजः । सस्मार रामो राजानं तदा दशरथं नृप ॥
भरतं सह शत्रुघ्नं भ्रातॄनन्यांश्च नागरान् । एवं चिन्तयतस्तस्य सन्ध्याकालो व्यजायत

उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां मुनिभिः सह राघवः ।
सुष्वाप तां निशां तत्र भ्रातृभार्यासमन्वितः ॥ ७० ॥
विभावर्यवसाने तु स्वप्नान्ते रघुनन्दनः ।
पित्रा मात्रा तथा चान्यैरयोध्यायां स्थितः किल ॥ ७१ ॥

विवाहमङ्गले वृत्ते बहुभिर्बान्धवैः सह । समासीनः सभार्योऽसावृषिभिः परिवारितः
लक्ष्मणेनाप्येवमेव दृष्टोऽसौ सीतया तथा । प्रभाते तुमुनीनांतत्सर्वमेव प्रकीर्तितम् ॥
ऋषिभिश्चतथेत्युक्तः सत्यमेतद्रघूत्तम । मृतस्य दर्शने श्राद्धं कार्यमावश्यकं स्मृतम् ॥
वृद्धिकामास्तु पितरस्तथा चैवान्नकाङ्क्षिणः । ददन्ति दर्शनं स्वप्ने भक्तियुक्तस्य राघव
अवियोगस्तु ते भ्रात्रा पित्रा च भरतेन च । चतुर्दशानां वर्षाणां भविता राघव ध्रुवम्
कुरु श्राद्धं तथा वीर राज्ञो दशरथस्य च । अमी च ऋषयः सर्वे तव भक्ताःकृतक्षणाः ॥
अहं च जमदग्निश्च भारद्वाजश्च लोमशः । देवरातः शमीकश्च षडेते वै द्विजोत्तमाः ॥
श्राद्धे च ते महाबाहो संभारांस्त्वमुपाहर । मुख्यं चेङ्गुदिपिण्याकं बदरामलकैः सह ॥
श्रीफलानि च पक्वानि मूलं चोच्चावचं बहु । मार्गेण चाथ मांसेनधान्येन विविधेन च
तृप्तिं प्रयच्छ विप्राणां श्राद्धदानेन सुव्रत । पुष्करारण्यमासाद्य नियतो नियताशनः ॥

पितॄंस्तर्पयते यस्तु सोऽश्वमेधमवाप्नुयात् ।
स्नानार्थं तु वयं राम गच्छामो ज्येष्ठपुष्करम् ॥ ८२ ॥

इत्युक्त्वा ते गताः सर्वे मुनयो राघवं नृप । लक्ष्मणं चाब्रवीद्रामो मेध्यमाहर मे मृगम्

शुद्धे क्षणं च शशाकं कृष्णशाकन्तथा मधु ।
जम्बीराणि च मुख्यानि मूलानि विविधानि च ॥ ८४ ॥
पक्कानि च कपित्थानि फलान्यन्यानि यानि च ।
तान्याहरस्व वै श्राद्धे क्षिप्रमेवास्तु लक्ष्मण ॥ ८५ ॥
तथा तत्कृतवान्सर्वं रामादेशाच्च राघवः । बदरेङ्गुदिशाकानि मूलानि विविधानि च ॥
तत्राहृत्य च रामेण कूटाकारः कृतो महान् ।
परिपक्कं च जानक्या सिद्धं रामे निवेदितम् ॥ ८७ ॥
स्नात्वा रामो योगवाप्यां मुनींस्ताननुपालयन् । मध्याह्नाच्चलिते सूर्य कालेकुतपकेतथा
आयाताऋषयः सर्वे येरामेणानुमन्त्रिताः । तानागतान्मुनीन्दृष्ट्वा वैदेही जनकात्मजा ॥
रामान्तकं परित्यज्य व्रीडिताऽन्यत्रसंस्थिता । विस्मयोत्फुल्लनयना चिन्तयानाचवेपती
ब्राह्मणा नेह जानन्ति श्राद्धकाले ह्युपस्थिताः ।
रामेण भोजिता विप्राः स्मृत्युक्तेन यथाविधि ॥ ९१ ॥
वैदिक्यश्च कृतास्सर्वाः सत्क्रियायास्समीरिताः ।
पुराणोक्तो विधिश्चैव वैश्वदेविकपूर्वकः ॥ ९२ ॥
भुक्तवत्सु च विप्रेषु दत्वा पिण्डान्यथाक्रमम् । प्रेषितेषु यथाशक्ति दत्वातेषुचदक्षिणाम्
गतेषु विप्रमुख्येषु प्रियांरामोऽब्रवीदिदम् । किमर्थं सुभ्रु नष्टासि मुनीन्दृष्ट्वा त्विहागतान्
तत्सर्वं त्वमिदं तत्त्वं कारणं वद मा चिरम् । भवितव्यं कारणेन तच्च गोप्यंनमे कुरु
शापितासि मम प्राणैर्लक्ष्मणस्य शुचिस्मिते ।
एवमुक्ता तदा भर्त्रा त्रपयाऽवाङ्मुखी स्थिता ॥ ९६ ॥
विमुञ्चन्ती साऽश्रुपातं राघवं वाक्यमब्रवीत् । शृणुत्वं नाथ यद्दृष्टमाश्चर्यमिह यादृशम्
राम त्वया चिन्त्यमानो राजेन्द्रस्त्विह चागतः ।
सर्वाभरणसंयुक्तौ द्वौ चान्यौ च तथाविधौ ॥ ९८ ॥
द्विजानां देहसंयुक्तास्त्रयस्ते रघुनन्दन । पितरस्तु मया दृष्टा ब्राह्मणाङ्गेषु राघव ॥
दृष्ट्वा त्रपान्विता चाहमपत्रान्ता तवान्तिकात् ।

त्वया वै भोजिता विप्राः कृतं श्राद्धं यथाविधि ॥ १०० ॥

वल्कलाजिनसंवीता कथं राज्ञःपुरःसरा । भ्रमामि रिपुवीरघ्न सत्यमेतदुदाहृतम् ॥

कौशेयानि च वस्त्राणि कैकेय्यापहृतानिच । ततः प्रभृति चैवाहं चीरिणी तु वनाश्रयम्

ज्ञात्वाहं न वदेत्किञ्चिन्मा ते दुःखं भवत्विति ।

नाहं स्मरामि वै मातुर्न पितुश्च परन्तप ॥ १०३ ॥

कदा भविष्यतीहान्तो वनवासस्य राघव । एतदेवानिशं राम चिन्तयन्त्याः पुनः पुनः

व्रजन्ति दिवसा नाथ तव पद्भ्यां शपाम्यहम् ।

स्वहस्तेन कथं राज्ञो दास्ये वै भोजनं त्विदम् ॥ १०५ ॥

दासानामपि यो दासो नोपभुञ्जीतयत्कचित् । एतादृशी कथं त्वस्मै सम्प्रदातुंसमुत्सहे

याहं राज्ञा पुरा दृष्टा सर्वालङ्कारभूषिता । वालव्यजनहस्ता च वीजयन्ती नराधिपम् ॥

सा स्वेदमलदिग्धाङ्गी कथं पश्यामि भूमिपम् ।

व्यक्तं त्रिविष्टपं प्राप्तस्त्वया पुत्रेण तारितः ॥ १०८ ॥

दृष्ट्वा मां दुःखितां बालां वने क्लिष्टामनागसम् ।

शोकः स्यात्पार्थिवस्यास्य तेन नष्टास्मि राघव ॥ १०६ ॥

भवान्प्राणसमो राम न तु गोप्यं मम त्विह । सत्येन तेन चैवाथ स्पृशामि चरणौ तव

तच्छ्रुत्वाराघवः प्रीतः प्रियां तां प्रियवादिनीम् । अङ्कमानीयसुदृढं परिष्वज्यच सादरम्

भुक्तौ भोज्यं तदा वीरौ पश्चाद्भुक्ता च जानकी ।

एवं स्थितौ तदा सा च तां रात्रिं तत्र राघवौ ॥ ११२ ॥

उदिते च सहस्रांशौ गमनाय मनो दधुः ।

प्रत्यङ्मुखं गतः क्रोशं ज्येष्ठं यावच्च पुष्करम् ॥ ११३ ॥

पूर्वभागे पुष्करस्य यावत्तिष्ठति राघवः । शुश्राव च ततो वाचं देवदूतेन भाषितम् ॥

भोभोराघवभद्रं ते तीर्थमेतत्सुदुर्लभम् । अस्मिन्स्थानेस्थितो वीर आत्मनःपुण्यतां कुरु

देवकार्यं त्वया कार्यं हन्तव्या देवशत्रवः । ततो हृष्टमना वीरो ह्यब्रवील्लक्ष्मणं वचः ॥

सौमित्रेऽनुगृहीतोऽहं देवदेवेन ब्रह्मणा । अत्राश्रमपदं कृत्वा मासमेकं च लक्ष्मण ॥

व्रतं चरितुमिच्छामि कायशोधनमुत्तमम् ।
तथेति लक्ष्मणेनोक्ते व्रतं परिसमाप्यतु ॥ ११८ ॥
पिण्डदानादिभिर्दानैः श्राद्धैश्चैव पितामहान् । पुष्करे तु तदा रामोऽतर्पयद्विधिवत्तदा
कनकप्रासुभा चैव नन्दा प्राची सरस्वती । पञ्चस्रोताः पुष्करेषु पितॄणां तुष्टिदायिनी ॥
दैनन्दिनीं पितॄणां तु पूजां तां पितृपूर्विकाम् ।
रचयित्वा तदा रामो लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ॥ १२१ ॥
एहि लक्ष्मण शीघ्रं त्वं पुष्कराज्जलमानय । पादप्रक्षालनं कृत्वा शयनं कुरु संस्तरे ॥
विभावर्यां निवृत्तायां यास्यामो दक्षिणां दिशम् ।
लक्ष्मणस्त्वब्रवीद्वाक्यं सीतया नीयतां पयः ॥ १२३ ॥
नाहं राम सर्वकाले दासभावं करोमि ते । इयं पुष्टा च सुभृशं पीवरी च ममाप्युत ॥
किं त्वं करिष्यस्यनया भार्यया वद साम्प्रतम् ।
किं वा मृतस्य वै पृष्ठ इयं यास्यति ते प्रिया ॥ १२५ ॥
रक्षसे त्वं सदाकालं सुपुष्टां चैव सर्वदा । हृष्टा चैषा क्लेशयति सततं मां रघूत्तम ॥
त्वं च क्लेशयसे राम परत्र जायते क्षतिः । त्वत्कृते च सदा चाहं पिपासां क्षुधया सह
संसहामि न सन्देहः परत्र च निशामय । मृतानां पृष्ठतः कश्चिद्गतो नैव च दृश्यते ॥
भार्य्यापुत्रौ धनं चापि एवमाहुर्मनीषिणः ।
मृतश्च ते पिता राम त्यक्त्वा राज्यमकण्टकम् ॥ १२६ ॥
विनिक्षिप्य वने त्वां च कैकेय्याः प्रियकाम्यया ।
इह स्थिता सा कैकेयी धनं सर्वे च बान्धवाः ॥ १३० ॥
महाराजो दशरथ एक एव गतोगतिम् ।
मन्येऽहं न त्वया सार्धं सीता यास्यति वै ध्रुवम् ॥ १३१ ॥
करिष्यसे किमनया वद राघव साम्प्रतम् । श्रुत्वाचाश्रुतपूर्वं हिवाक्यं लक्ष्मणभाषितम्
विमना राघवस्तस्थौ सीता चापि वरानना ।
यदुक्तं लक्ष्मणेनाथ सीता सर्वं चकार ह ॥ १३३ ॥

स्नात्वाभुक्त्वा ततो वीरौ पुष्करेपुष्करेक्षणौ। नीत्वाविभावरीं तत्र गमनाय मनो दधुः

प्रत्युत्तिष्ठ च सौमित्रे व्रजामो दक्षिणां दिशम्।
सौमित्रिरब्रवीद्राम नाहं यास्ये कथञ्चन ॥ १३५ ॥

व्रजत्वमनया सार्धं भार्यया कमलेक्षण। नान्यद्वनंगमिष्यामि नैवायोध्यां च राघव ॥
अस्मिन्वनेवसिष्यामि वर्षाणीहचतुर्दश। मयाविनात्वयोध्यायां यदि त्वं न गमिष्यसि
अनेनवर्त्मना भूप आगन्तव्यं त्वया विभो। यदि जीवामि तत्कालं पुनर्यास्येपितुःपुरम्

तपस्सम्भावयिष्यामि मया त्वं किं करिष्यसि।
व्रज सौम्य शिवः पन्था मा च ते परिपन्थिनः ॥ १३६ ॥

पश्यामि त्वां पुनः प्राप्तं सभार्यं कमलेक्षणम्। पितृपैतामहं राज्यमयोध्यायां नराधिप
शत्रुघ्नभरतौ चोभौ त्वदाज्ञाकरणे स्थितौ। अहं ते प्रतिकूलस्तु वनवासे विशेषतः ॥

अनारतं दिवा चाहं रात्रौ चैव परन्तप।
कर्म कर्तुं न शक्नोमि व्रज सौम्य यथासुखम् ॥ १४२ ॥

एवं ब्रुवाणं सौमित्रिमुवाच रघुनन्दनः। कथं पूर्वमयोध्याया निर्गतोऽसि मया सह ॥
वनेवत्स्याम्यहं राम नववर्षाणिपञ्च च। न तु त्वया विरहितः स्वर्गेऽपि निवसे क्वचित्
या गतिस्ते नरव्याघ्र मम सापि भविष्यति। प्रसादः क्रियतां मह्यं नय मामपि राघव
इदानीमर्धमार्गे त्वं कथं स्थास्यसि शत्रुहन्। लक्ष्मणस्त्वब्रवीद्राम नाहं गन्ता वनेपुनः
लक्ष्मणंसंस्थितंज्ञात्वारामोवचनमब्रवीत्। मामनुव्रज सौमित्र एको यास्यामिकाननम्
द्वितीया मे त्वियंसीतारामेणोक्तस्तुलक्ष्मणः।गृहीत्वाऽथसमुत्तस्थौरामवाक्यंसलक्ष्मणः
मर्यादापर्वतं प्राप्तौ क्षेत्रसीमां परन्तपौ। अजगन्धं च देवेशं देवदेवं पिनाकिनम्॥१४६॥
अष्टाङ्गप्रणिपातेननत्वारामस्त्रिलोचनम्। तुष्टाव प्रयतः स्थित्वा शङ्करं पार्वतीप्रियम् ॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा रोमाञ्चितशरीरकः। सात्त्विकं भावमापन्नो विनिर्धूतरजस्तमाः

लोकानां कारणं देवं बुबुधे विबुधाधिपम् ॥ १५२ ॥

राम उवाच।

कृत्स्नस्य योऽस्य जगतः सचराचरस्य कर्ता कृतस्य च पुनः सुखदुःखदश्च

संहारहेतुरपि यः पुनरन्तकाले तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥ १५३ ॥
यं योगिनो विगतमोहरजस्तमस्का भक्त्यैकतानमनसो विनिवृत्तकामाः ।
ध्यायन्ति निश्चलधियोऽमितदिव्यभावं तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥
यश्चेन्दुखण्डममलं विलसन्मयूखं बद्ध्वा सदा प्रियतमां शिरसा बिभर्ति ॥
यश्चार्धदेहमददाद्गिरिराजपुत्र्यै तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥ १५५ ॥
योऽयं सकृद्विमलचारुविलोलतोयां गङ्गां महोर्मिविषमां गगनात्पतन्तीम् ।
मूर्ध्ना दधे स्रजमिव प्रविलोलपुष्पां तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥१५६॥
कैलासशैलशिखरं परिकम्पमानं कैलासशृङ्गसदृशेन दशाननेन ।
यत्पादपद्मविधृतं स्थिरतां दधार तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥१५७॥
येनासकृद्दनुसुताः समरे निरस्ता विद्याधरोरगगणाश्च वरैः समग्रैः ।
संयोजिता मुनिवराः फलमूलभक्षास्तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥१५८॥
दक्षाध्वरे च नयने च तथा भगस्य पूष्णस्तथा दशनपङ्क्तिमपातयच्च ।
तस्तम्भ यः कुलिशयुक्तमथेन्द्रहस्तं तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥१५९॥
एनः कृतोऽपि विषयेष्वपि सक्तचित्ताज्ञानान्वयश्रुतगुणैरपि नैव युक्ताः ।
यं संश्रिताः सुखभुजः पुरुषा भवन्ति तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि॥१६०।
अत्रिप्रसूतिरविकोटिसमानतेजाः सन्त्रासनं विबुधदानवसत्तमानाम् ॥
यः कालकूटमपिबत्प्रसभं सुदीप्तं तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥१६१।
ब्रह्मेन्द्ररुद्रमरुतां च सषण्मुखानां दद्याद्वरं सुबहुशो भगवान्महेशः ।
नन्दिं च मृत्युवदनात्पुनरुज्जहार तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥१६२॥
आराधितः सुतपसा हिमवन्निकुञ्जधूम्रव्रतेन मनसाऽपि परैरगम्ये ।
सञ्जीवनीमकथयद् भृगवे महात्मा तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥१६३॥
नानाविधैर्गजबिडालसमानवक्त्रैर्दक्षाध्वरप्रमथनैर्बलिभिर्गणेन्द्रैः ।
योऽभ्यर्चितोऽमरगणैश्च सलोकपालैस्तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि॥१६४

क्रीडार्थमेव भगवान्भुवनानि सप्त नानानदीविहगपादपमण्डितानि ।
सब्रह्मकानि व्यसृजत्सुकृताहितानि तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥१६५॥
यस्याखिलं जगदिदं वशवर्ति नित्यं योऽष्टाभिरेव तनुभिर्भुवनानि भुङ्क्ते ।
यः कारणं सुमहतामपि कारणानां तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥ १६६॥
शङ्खेन्दुकुन्दधवलं वृषभप्रवीरमारुह्य यः क्षितिधरेन्द्रसुतानुयातः ।
यात्यम्बरं प्रलयमेघविभूषितं च तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥ १६७ ॥
शान्तिमुनियमनियोगपरायणैस्तैर्भीमैर्महोग्रपुरुषैः प्रतिनीयमानम् ।
भक्त्यानतं स्तुतिपरं प्रसभं ररक्ष तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥ १६८ ॥
यः सव्यपाणिकमलाग्रनखेन देवस्तत्पञ्चमं प्रसभमेव पुरस्सुराणाम् ।
ब्राह्मं शिरस्तरुणपद्मनिभञ्चकर्त्त तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥ १६९ ॥
यस्य प्रणम्य चरणौ वरदस्य भक्त्या स्तुत्वा च वाग्भिरमलाभिरतन्द्रितात्मा ।
दीप्तस्तमांसि नुदते स्वकरैर्विवस्वांस्तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥ १७० ॥
ये त्वां सुरोत्तमगुरुं पुरुषा विमूढा जानन्ति नास्य जगतः सचराचरस्य ।
ऐश्वर्यमाननिगमानुशयेन पश्चात्ते यातनामनुभवन्त्यविशुद्धचित्ताः ॥ १७१ ॥
तस्यैवं स्तुवतोऽवोचच्छूलपाणिर्वृषध्वजः । उवाच वचनं हृष्टो राघवं तुष्टमानसः ॥

रुद्र उवाच ।

राम हृष्टोऽस्मि भद्रं ते जातस्त्वं निर्मले कुले ।
त्वं चापि जगतां वन्द्यो देवो मानुषरूपधृक् ॥ १७३ ॥
त्वया नाथेन वै देवाः सुखिनः शाश्वतीः समाः ।
सेविष्यन्ते चिरं कालं गते वर्षे चतुर्दशे ॥ १७४ ॥
अयोध्यामागतं त्वां ये द्रक्ष्यन्ति भुवि मानवाः ।
सुखं तेऽत्र भजिष्यन्ति स्वर्गे वासं तथाक्षयम् ॥ १७५ ॥
देवकार्यं महत्कृत्वा आगच्छेथाः पुनः पुरीम् ।
राघवस्तु तथा देवं नत्वा शीघ्रं विनिर्गतः ॥ १७६ ॥

इन्द्रमार्गां नदीं प्राप्य जटाजूटं नियम्य च । अब्रवील्लक्ष्मणं राम इदमर्पय मे धनुः॥१७७

रामवाक्यं तु तच्छ्रुत्वा सीतां वै लक्ष्मणोऽब्रवीत् ।

किमर्थं देवि रामेण त्यक्तोऽहं कारणं विना ॥ १७८

अपराधं न जानामि कुपितो यन्महाभुजः ।

रामेणाहं परित्यक्तः प्राणांस्त्यक्ष्याम्यसंशयम् ॥ १७९ ॥

नैव मे जीवितेनार्थो धिग्धिङ्मांकुलपांसनम् । आर्यस्य येनवै मन्युर्जनितःपापकारिणा

कांस्तु लोकान्गमिष्यामि अपध्यातो महात्मना ।

उभौ हस्तौ मुखे कृत्वा साश्रुकण्ठोऽब्रवीदिदम् ॥ १८१ ॥

नापराध्यामि रामस्य कर्मणा मनसागिरा । स्पृष्टौ ते चरणौ देवि मम नान्यागतिर्भवेत्

ततःसीताऽब्रवीद्रामं त्यक्तः किमनुजस्त्वया । वैषम्यं त्यज्यतां बाले लक्ष्मणेलक्ष्मिवर्धने

राघवस्त्वब्रवीत्सीतां नाहं त्यक्ष्यामि लक्ष्मणम् ।

न कदाचिदपि स्वप्ने लक्ष्मणस्य मतं प्रिये ॥ १८४ ॥

श्रुतपूर्वं च सुश्रोणि क्षेत्रस्यास्य विचेष्टितम् ।

अत्र क्षेत्रे जनास्सत्यं सर्वे हि स्वार्थतत्पराः ॥ १८५ ॥

परस्परं न पश्यन्ति स्वात्मनश्च हितंवचः । न शृण्वन्ति पितुः पुत्राः पुत्राणांपितरस्तथा

न शिष्या हि गुरोर्वाक्यं शिष्यस्यापि तथा गुरुः ।

अर्थानुबन्धिनी प्रीतिर्नकश्चित्कस्यचित्प्रियः ॥ १८७ ॥

इत्येवं कथयन्नेव प्राप्तो रेवां महानदीम् । चक्रेऽभिषेकं काकुत्स्थः सानुजः सहसीतया

तर्पयित्वा च सलिलैः स्वान्पितॄन्दैवतान्यपि । उद्वीक्ष्य च मुहुः सूर्यं देवताश्च समाहितः

कृताभिषेकस्तु रराज रामः सीताद्वितीयः सहलक्ष्मणेन ।

कृताभिषेकः सहशैलपुत्र्या गुहेन सार्धं भगवानिवेशः ॥ १९० ॥

इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे मार्कण्डेयाश्रमदर्शनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मकृतयज्ञकालर्त्विग्दक्षिणादिसर्वकृत्यवर्णनम् ।

भीष्म उवाच ।

कस्मिन्काले भगवता ब्रह्मणा लोककारिणा । यज्ञियैर्यष्टुमारब्धं तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥१॥

किं नामानो ऋत्विजस्ते ब्रह्मणा ये प्रकल्पिताः ।
का च वै दक्षिणा तेषां दत्ता तेन महात्मना ॥ २ ॥

यथाभूतं यथा वृत्तं तथा त्वं मे प्रकीर्तय । सुमहत्कौतुकं जातं यज्ञं पैतामहं प्रति ॥३॥

पुलस्त्य उवाच ।

पूर्वमेव मयाख्यातं यदा स्वायम्भुवो मनुः । सृष्ट्वा प्रजापतीन्सर्वानुक्तः सृष्टिं कुरुष्व वै

स्वयं तु पुष्करं गत्वा यज्ञस्याहृत्य विस्तरम् ।
ससम्भारान्समानाय्य वह्न्यगारे स्थितोऽभवत् ॥ ५ ॥

गायन्ति नित्यं गन्धर्वा नृत्यन्त्यप्सरसां गणाः ।
ब्रह्मोद्गाता होताध्वर्युश्चत्वारो यज्ञवाहकाः ॥ ६ ॥

एकैकस्यत्रयश्चान्ये परिवाराःस्वयङ्कृताः । ब्रह्मा च ब्राह्मणाच्छंसी होता चाग्नीध्रएवच
आन्वीक्षिकी सर्वविद्या ब्राह्मी ह्येषाचतुष्टयी । उद्गाता च प्रत्युद्गाता प्रतिहर्ता सुब्रह्मण्यः
चतुष्टयी द्वितीयैषा तूद्गातुश्च प्रकीर्तिता । होता च मैत्रावरुणस्तथाऽच्छावाक एव च
ग्रावस्तुच्च चतुर्थोऽत्र तृतीया च चतुष्टयी । अध्वर्युश्च प्रतिष्ठाता नेष्टोन्नेता तथैव च ॥
चतुष्टयी चतुर्थ्येषां प्रोक्ता शन्तनुनन्दन । एते वै षोडश प्रोक्ता ऋत्विजो वेदचिन्तकैः
शतानित्रीणि षष्टिश्च यज्ञाः सृष्टाःस्वयम्भुवा । एतांश्चैतेषु सर्वेषु प्रवदन्ति सदाद्विजान्

सदस्यं केचिदिच्छन्ति त्रिसामाध्वर्युमेव च ।
ब्रह्माणं नारदं चक्रे ब्राह्मणाच्छंसि गौतमम् ॥ १३ ॥

देवगर्भं च होतारमाग्नीध्रं चैव देवलम् । उद्गाताङ्गिरसः प्रत्युद्गाता च पुलहस्तथा ॥

नारायणः प्रतिहर्ता सुब्रह्मण्योऽत्रिरुच्यते । तस्मिन्यज्ञेभृगुर्होता वसिष्ठो मैत्र एव च ॥

अच्छावाकः क्रतुः प्रोक्तो ग्रावस्तु च्यवनस्तथा ।

पुलस्त्योऽध्वर्युरेवासीत्प्रतिष्ठाता च वै शिविः ॥ १६ ॥

बृहस्पतिस्तत्र नेष्टा उन्नेता शांशपायनः । धर्मः सदस्यस्तत्रासीत्पुत्रपौत्रसहायवान्
भरद्वाजः शमीकश्च पुरुकुत्सो युगन्धरः । एनकस्तीर्णकश्चैव केशः कुतप एव च ॥
गर्गो वेदशिराश्चैव त्रिसामाध्वर्यवः कृताः । कण्वादयस्तथाचान्येमार्कण्डो गण्डिरेवच
पुत्रपौत्रसमेताश्च सशिष्याः सहबान्धवाः । कर्माणि तत्र कुर्वाणा दिवानिशमतन्द्रिताः
मन्वन्तरे व्यतीते तु यज्ञस्यावभृथोऽभवत् । दक्षिणाब्रह्मणे दत्ता प्राची होतुस्तु दक्षिणा
अध्वर्यवे प्रतीचीतु उद्गातुश्चोत्तरा तथा । त्रैलोक्यं सकलं ब्रह्मा ददौ तेषां तुदक्षिणाम्
धेनूनां च शतं प्राज्ञैर्दातव्यं यज्ञसिद्धये । अष्टौ तु यज्ञवाहेभ्यश्चत्वारिंशाधिकास्तथा ॥
द्वितीयस्थानिनां चैव चतुर्विंशत्प्रकीर्तिताः । षोडशैव तृतीयानां देयावै धेनवः शुभाः॥
द्वादशैव तथा चान्याआग्नीध्रादिषुदापयेत् । अनयासङ्ख्ययाचैवग्रामान्दासीरजाविकम्
सहस्रभोज्यं दातव्यं स्नात्वा चावभृथे क्रतौ । यजमानेन सर्वस्वंदेयंस्वायम्भुवोऽब्रवीत्
अध्वर्यूणांसदस्यानां स्वेच्छया दानमिष्यते । विष्णुंचाहूयवैब्रह्मावाक्यमाहमुदान्वितः

ब्रह्मोवाच ।

अभिप्रसाद्य सावित्रीं त्वमिहानय सुव्रत । त्वयिदृष्टेन साकोपं करिष्यति शुभानना
स्निग्धैः सानुनयैर्वाक्यैर्हेतुयुक्तैर्विशेषतः । त्वं सदा मधुराभाषी जिह्वाते स्रवतेऽमृतम्
यः करोति न ते वाक्यं त्रैलोक्ये न सदृश्यते । गन्धर्वैःसहितो गत्वाप्रियांममसमानय

त्वया प्रसादिता साध्वी तुष्टा सा त्वेष्यति ध्रुवम् ।

विलम्बो न त्वया कार्या व्रज माधव मा चिरम् ॥ ३१ ॥

लक्ष्मीस्तेपुरतो यातुसावित्र्याःसदनंशुभा । एषात्वंपदवींगच्छसान्त्वयस्वप्रियांमम
न च ते विप्रियं देवि विविक्तं कर्तुमीहते । मुखं प्रेक्ष्य सदा कालं वर्तते तव सुन्दरि ॥

एवंविधानि वाक्यानि मधुराणि बहूनि च ।

देवी श्रावयितव्या सा यथा तुष्टाऽचिराद्भवेत् ॥ ३४ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

एवमुक्तस्तदा विष्णुर्ब्रह्मणा लोककारिणा । जगाम त्वरितो भूत्वा सावित्रीयत्रतिष्ठति
दूरादेवागच्छमानं पत्न्या सह च केशवम् । उत्तस्थौ सत्वराभूत्वाविष्णुनाचाभिवन्दिता

विष्णुरुवाच ।

नमस्ते देवदेवेशि ब्रह्मपत्नि नमोऽस्तुते । त्वां नमस्कृत्य सर्वो हि जनःपापात्प्रमुच्यते
पतिव्रतामहाभागाब्रह्मणस्त्वंहृदिस्थिता । अहर्निशंचिन्तयंस्त्वांप्रसादं तेऽभिकाङ्क्षति
तस्यैवं दुःखतप्तस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि । सखीं चैनां प्रियां पृच्छ लक्ष्मीं भृगुसुतांसतीम्
यदि च श्रद्दधानाऽसि वाक्यादस्मात्सुलोचने ।

पुलस्त्य उवाच ।

एवमुक्त्वा ततः शौरिःसावित्र्याश्चरणद्वयम् ॥ ४० ॥
उभाभ्यां चैव हस्ताभ्यां क्षमदेवि नमोऽस्तु ते । जगद्वन्द्यजगन्मातरितिस्पृष्ट्वाभ्यवन्दत
सङ्कोच्य पादौ सा देवी स्वकरेण करौ हरेः । गृहित्वोवाचतंविष्णुंसर्वंक्षान्तंमयाच्युत

सावित्र्युवाच ।

इयं लक्ष्मीः सदा वत्सहृदये ते निवत्स्यति । विनात्वयानचान्यत्ररतिंयास्यति कर्हिचित्
भृगोः पत्न्यां समुत्पन्ना पत्न्येषा तव सुव्रता । देवदानवयत्नेन सम्भूता चोदधौ पुनः
भगवान्यत्र तत्रैषा अवतारं च कुर्वती । देवत्वे देवदेहा वै मानुषत्वे च मानुषी ॥ ४५ ॥
त्वत्सहाया न सन्देहो दाम्पत्यव्रतिनीचिरम् । यन्मयाचात्रकर्तव्यंप्रभोतन्मां वदस्ववै ॥

विष्णुरुवाच ।

यज्ञावसानं सञ्जातं प्रेषितोऽहं तवान्तिकम् । सावित्रीमानय क्षिप्रं मयास्नानंसमाचरेत्
आगच्छत्वरिता देवि याहि तत्र मुदान्विता । पश्यस्वस्वपतिंगत्वादेवैःसर्वैस्समन्वितम्

लक्ष्मीरुवाच ।

आर्ये उत्तिष्ठ शीघ्रं त्वं याहियत्र पितामहः । विना त्वयानयास्यामिस्पृष्टौपादौमयातव

पुलस्त्य उवाच ।

उत्थाप्य साग्रहीद्धस्तं दक्षिणा दक्षिणे करे । चिरायमाणांसावित्रींज्ञात्वादेवःपितामहः

समीपस्थं महादेवमिदमाह तदा वचः ।

ब्रह्मोवाच ।

गच्छ त्वमनया सार्द्धं पार्वत्या सुरभूषण ॥ ५१ ॥

गौरी त्वदग्रतो यातु पश्चात्त्वं गच्छ शङ्कर । प्रतिबोध्यानय यथा शीघ्रमायाति तत्कुरु

पुलस्त्य उवाच ।

एव मुक्तो गतोरुद्रः पार्वत्या ब्रह्मणः प्रियाम् । तथाहृष्टौ दम्पती तौ पार्वती परमेश्वरौ

देवी सा सम्मुखीताभ्यामुत्थिता परमेश्वरी । दूरादेव तु रुद्रेण ब्रह्माणी चाभिवादिता

शिव उवाच ।

ब्रह्माप्रतीक्षते देवि माविलम्बस्व शोभने । बृहत्कृत्यं त्वया तत्र करणीयं पतिव्रते ॥

पृच्छस्वेमां वरारोहां गौरीं पर्वतनन्दिनीम् । लक्ष्मींचैतांविशालाक्षीमिन्द्राणींवाशुभानने

यासां वा श्रद्धयासित्वं पृच्छ देवि नमोऽस्तुते । आशीर्वादस्तयादत्तोदेवदेवस्यशूलिनः

सावित्र्युवाच ।

शरीरार्धे च ते गौरी सदास्थास्यतिशङ्कर । अनया शोभसे देव त्वन्तु त्रैलोक्यसुन्दर ॥

सुखभागि जगत्सर्वं त्वया नाथेन शत्रुहन् ।

पुलस्त्य उवाच ।

एवं ब्रुवन्ती सावित्री गृहीता ब्रह्मणःप्रिया ॥ ५६ ॥

गौर्य्या च वामहस्ते तु लक्ष्म्या वै दक्षिणे करे । अभिवन्द्यतुतांदेवींशङ्करोवाक्यमब्रवीत्

शिव उवाच ।

एह्यागच्छ महाभागे यत्रतिष्ठति ते पतिः । तत्र गच्छ वरारोहे स्त्रीणां भर्ता परा गतिः

एषागौरी समायाता भ्रातृभार्या तवानघा । बृहदाग्रहेण देवि प्रणयाद्गन्तुमर्हसि ॥ ६२॥

लक्ष्मी सैषा पार्वती च स्थिता देवि तवाग्रतः । एतयोर्वचसा देवि आवयोश्चशुभानने

मानभङ्गो नतेकर्तुं युज्यते ब्रह्मणःप्रिये । अस्मदभ्यर्थिता देवि तत्र याहि मुदान्विता ॥

गौर्युवाच ।

अहं च ते प्रिया देवि सर्वदा वदसि स्वयम् । लक्ष्मीश्चते करे लग्ना दक्षिणे च मयाधृता

एह्यागच्छ महाभागे यत्र तिष्ठति ते पतिः ।

पुलस्त्य उवाच ।

नीता सा तु तदा ताभ्यां देवी सा मध्यतः कृता ॥ ६६ ॥

पुरस्सरौ विष्णुरुद्रौ शक्राद्याश्च तथासुराः । गन्धर्वाप्सरसश्चैव त्रैलोक्यं सचराचरम्

तत्रायाता च सा देवी सावित्री ब्रह्मणःप्रिया ।

सावित्रीं सुमुखीं दृष्ट्वा सर्वलोकपितामहः ॥ ६८ ॥

गायत्र्यासहितो ब्रह्मा इदं वचनमब्रवीत् । एषा देवी कर्मकरी अहं ते वशगःस्थितः ॥

समादिश वरारोहे यत्ते कार्यं मयात्विह । एवमुक्ता च सा देवी स्वयं देवेन ब्रह्मणा ॥

त्रपयाऽधोमुखी देवी न च किञ्चिदवोचत । पादयोः पतिता देवी गायत्री ब्रह्मचोदिता

कृतवत्यपराधं ते क्षम देवि नमोऽस्तुते ।

पुलस्त्य उवाच ।

आलिङ्ग्य सादरं कण्ठे सा परिष्वज्य पीडिताम् ॥ ७२ ॥

गायत्रीं सान्त्वयामास मान्यश्चैष पतिर्मम ।

कर्त्तव्यं वचनं तस्य स्त्रीणां प्राणेश्वरःपति ॥ ७३ ॥

उक्तं भगवता पूर्वं सृष्टिकाले विरिञ्चिना । न च स्त्रीणां पृथग्यज्ञोन व्रतं नाप्युपोषणम्

भर्ता यद्वदतेवाक्यं तत्तुकुर्यादकुत्सया । भर्तृनिन्दां या कुरुते स्वसृनिन्दां तथैव च ॥

परिवादं प्रलापं वा नरकं सा तु गच्छति । पत्यौ जीवति या नारी उपवासव्रतं चरेत्

आयुष्यं हरते भर्तुर्मृता नरकमृच्छति । एवं ज्ञात्वा त्वया भर्तुर्न कार्यं विप्रियं सति ॥

न चास्य दक्षिणं त्वङ्गं त्वया सेव्यं कथञ्चन ।

सर्वकार्ये त्वहं चास्य दक्षिणं पक्षमाश्रिता ॥ ७८ ॥

सव्यं त्वमाश्रये स्साध्वि पार्श्वे नारदपुष्करौ ।

ब्रह्मस्थानानि चान्यानि स्थितान्यायतनानि च ॥ ७६॥

लभे वै शोभमानेह यावत्सृष्टिःप्रजायते । भवत्या च मयाचैव स्थातव्यं च न संशयः ॥

पुष्करे ब्रह्मणः पार्श्वे वामं च त्वं समाश्रय । अनेन चोपदेशेन सुखं तिष्ठ मयान्विता ॥

गायत्र्युवाच ।

एवमेतत्करिष्यामि तव निर्देशकारिका । तवैवाज्ञा मया कार्या त्वं मे प्राणसमा सखी

अहं ते त्वनुजा देवि सदा मां पातुमर्हसि ।

पुलस्त्य उवाच ।

देवदेवस्तदा ब्रह्मा पुष्करे विष्णुना सह ॥ ८३ ॥

स्नानावसाने देवानां सर्वेषां प्रददौ वरान् । देवानांच पतिं शक्रं ज्योतिषांच दिवाकरम्

नक्षत्राणां तथा सोमं रसानां वरुणं तथा । प्रजापतीनां दक्षं च नदीनां चैव सागरम् ॥

कुबेरं च धनाध्यक्षं तथा चक्रेच रक्षसाम् । भूतानां चैव सर्वेषां गणानां च पिनाकिनम्

मानवानां मनुं चैव पक्षिणां गरुडं तथा । ऋषीणां च वसिष्ठं च ग्रहाणां च प्रभाकरम्

एवमादीनि वै दत्त्वा देवदेवःपितामहः । विष्णुं च शङ्करं चैव ब्रह्मा प्रोवाच सादरम् ॥

ब्रह्मोवाच ।

पृथिव्याःसर्वतीर्थेषु भवन्तौ पूज्यसत्तमौ । भवद्भ्यां न विनातीर्थं पुण्यतामेति कर्हिचित्

लिङ्गं वा प्रतिमावापि दृश्यते यत्र कुत्रचित् । तत्तीर्थं पुण्यतां याति सर्वमेव फलप्रदम्

मानवा ह्युपहारैश्च ये करिष्यन्ति पूजनम् । युष्माकं मां पुरस्कृत्य तेषां रोगभयंकुतः॥

येषु राष्ट्रेषु युष्माकमुत्सवाः पूजनादिकाः ।

प्रवर्त्स्यन्ति क्रियाः सर्वा यत्फलं तेषु तच्छृणु ॥ ९२ ॥

नाधयो व्याधयश्चैव नोपसर्गा न क्षुद्भयम् । विप्रयोगो न चापीष्टैरनिष्टैर्नापि सङ्गतिः

नाक्षिरोगः शिरोर्तिर्वा पित्तशूल भगन्दराः । नाभिचारं भयं तत्रापस्मारो न विषूचिका

वृद्धिर्निकामतस्तस्मिन्सम्यग्बुद्धिरनुत्तमा । आरोग्यं सर्वतश्चैवदीर्घायुश्च प्रजाधनम् ॥

नाकालेभविता मृत्युर्गावो नाल्पपयोमुचः । नाकालफलितावृक्षा नोत्पातभयमण्वपि

एतच्छ्रुत्वा ततो विष्णुर्ब्रह्माणं स्तोतुमुद्यतः ॥ ९७ ॥

विष्णुरुवाच ।

नमोऽस्त्वनन्ताय विशुद्धचेतसे स्वरूपरूपाय सहस्रबाहवे ।

सहस्ररश्मिप्रभवाय वेधसे विशालदेहाय विशुद्धकर्मणे ॥ ९८ ॥

समस्त विश्वार्तिहाराय शम्भवे समस्त सूर्यानलतिग्मतेजसे ।
नमोऽस्तु विद्याविततायं चक्रिणे समस्तधीस्थानकृते सदा नमः ॥ ९९ ॥
अनादिदेवाच्युत शेखर प्रभो भाव्युद्भवद्भूतपते महेश्वर ।
महत्पते सर्वपते जगत्पते भुवःपते भुवनपते सदा नमः ॥ १०० ॥
यज्ञेश नारायण जिष्णुशङ्कर क्षितीश विश्वेश्वर विश्वलोचन ।
शशाङ्क सूर्याच्युतवीर विश्वप्रवृत्तमूर्तेऽमृतमूर्त अव्यय ॥ १०१ ॥
ज्वलद्धुताशार्चिनिरुद्धमण्डलप्रदेश नारायण विश्वतोमुख ।
समस्त देवार्तिहरा मृताव्यय प्रपाहि मां शरणगतं तथा विभो ॥१०२॥
वक्त्राण्यनेकानि विभो तवाहं पश्यामि यज्ञस्य गतिं पुराणम् ।
ब्रह्माणमीशं जगतां प्रसूतिं नमोऽस्तु तुभ्यं प्रपितामहाय ॥ १०३ ॥
संसारचक्रक्रमणैरनेकैः क्वचिद्भवान्देववराधिदेवः ।
तत्सर्वविज्ञानविशुद्धसत्त्वैरुपास्यसे किं प्रणमाम्यहं त्वाम् ॥ १०४ ॥
एवं भवन्तं प्रकृतेः पुरस्ताद्यो वेत्त्यसौ सर्वविदां वरिष्ठः ।
गुणान्वितेषु प्रसभं विवेद्यो विशालमूर्तिस्त्विह सूक्ष्मरूपः ॥ १०५ ॥
वाक्पाणिपादैर्विगतेन्द्रियोऽपि कथं भवान्वै सुगतिस्सुकर्मा ।
संसारबन्धे निहितेन्द्रियोऽपि पुनःकथं देववरोऽसिवेद्यः ॥ १०६ ॥
मूर्त्तादमूर्त्तं न तु लभ्यते परं परं वपुर्देव विशुद्धभावैः ।
संसारविच्छित्तिकरैर्यजद्भिरतोऽवसीयेत चतुर्मुखत्वम् ॥ १०७ ॥
परं न जानन्ति यतो वपुस्ते देवादयोऽप्यद्भुतरूपधारिन् ।
विभोऽवतारेऽग्रतरं पुराणमाराधयेद्यत्कमलासनस्थाम् ॥ १०८ ॥
न ते तत्त्वं विश्वसृजोऽपि योनिमेकान्ततो वेत्ति विशुद्धभावः ।
परं त्वहं वेद्मि कथं पुराणं भवन्तमाद्यं तपसा विशुद्धम् ॥ १०९ ॥
पद्मासनो वै जनकःप्रसिद्ध एवं प्रसिद्धिर्ह्यसकृत्पुराणात् ।
सञ्चिन्त्यते नाथ विभुं भवन्तं जानाति नैवं तपसा विहीनः ॥ ११० ॥

अस्माद्दृशैश्च प्रवरैर्विबोध्यं त्वां देव मूर्खाः स्वमतिं विभज्य ।
प्रबोद्धुमिच्छन्ति न तेषु बुद्धिरुदारकीर्तिष्वपि वेदहीनाः ॥ १११ ॥
जन्मान्तरैर्वेदविवेकबुद्धिभिर्भवेद्यथा वा यदि वा प्रकाशः ।
तल्लाभलुब्धस्य न मानुषत्वं न देवगन्धर्वपतिःशिवःस्यात् ॥ ११२ ॥
न विष्णुरूपो भगवान्सुसूक्ष्मःस्थूलोऽसि देवःकृतकृत्यतायाः ।
स्थूलोऽपि सूक्ष्मःसुलभोऽसि देव त्वद्बाह्यकृत्या नरके पतन्ति ॥ ११३ ॥
विमुच्यते वा भवति स्थितेऽस्मिन्दस्त्रेन्दुवह्न्यर्कमरुन्महीभिः ।
तत्त्वैःस्वरूपैः समरूपधारिभिरात्मस्वरूपे विततस्वभावः ॥ ११४ ॥
इति स्तुतिं मे भगवन्ह्यनन्त जुषस्व भक्तस्य विशेषतश्च ।
समाधियुक्तस्य विशुद्धचेतसस्त्वद्भावभावैकमनोऽनुगस्य ॥ ११५ ॥
सदाहृदिस्थो भगवन्नमस्ते नमामि नित्यं भगवन्पुराण ।
इतिप्रकाशं तवमेतदीशस्तवं मया सर्वगति प्रबुद्ध ॥ ११६ ॥
संसारचक्रे भ्रमणादियुक्ता भीतिं पुनर्नः प्रतिपालयस्व ॥ ११७ ॥

ब्रह्मोवाच ।

सर्वज्ञस्त्वं न सन्देहो प्रज्ञाराशिश्च केशव । देवानां प्रथमःपूज्यःसर्वदात्वं भविष्यसि ॥
नारायणादनन्तरं रुद्रोभक्त्या विरिञ्चनम् । तुष्टाव प्रणतो भूत्वा ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ॥

नमःकमलपत्राक्ष नमस्ते पद्मजन्मने ।
नमःसुरासुरगुरो कारिणे परमात्मने ॥ १२० ॥

नमस्ते सर्वदेवेश नमो वै मोहनाशन । विष्णोर्नाभिस्थितवते कमलासनजन्मने ॥
नमो विद्रुमरक्ताङ्गपाणिपल्लवशोभिने । शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मि त्राहि मां भवसंसृतेः
पूर्वं नीलाम्बुदाकारं कुड्मलंते पितामह । दृष्ट्वा रक्तमुखं भूयः पत्रकेसरसंयुतम् ॥ १२३ ॥
पद्मं चानेकपत्रान्तमसङ्ख्यातं निरञ्जनम् । तत्रस्थितेन त्वयैषा सृष्टिश्चैव प्रवर्तिता ॥

त्वां मुक्त्वा नान्यतस्त्राणं जगद्वन्द्य नमोऽस्तु ते ।
सावित्रीशापदग्धोऽहं लिङ्गं मे पतितं क्षितौ ॥ १२५ ॥

इदानींकुरु मे शान्ति त्राहि मां सहभार्यया। ब्रह्मा वै पातु मे पादौ जङ्घे वै कमलासनः
विरिञ्चो मे कटिं पातु सृष्टिकृद्गुह्यमेव च। नाभिं पद्मनिभःपातु जठरं चतुराननः॥
उरस्तु विश्वसृक्पातुहृदयं पातु पद्मजः। सावित्रीपतिर्मेकण्ठं हृषीकेशो मुखं मम॥
पद्मवर्णश्च नयने परमात्मा शिरो मम। एवंन्यस्य गुरोर्नाम शङ्करोनाम शङ्करः॥१२९॥
नमस्ते भगवन्ब्रह्मन्नित्युक्त्वा विररामह। ततस्तुष्टो हरं ब्रह्मा वाक्यमेतदुवाचह॥१३०॥

ब्रह्मोवाच।

कं ते कामं करोम्यद्य पृच्छ मां यद्यदिच्छसि।

रुद्र उवाच।

यदि प्रसन्नो मे नाथ वरदो यदि वा मम॥ १३१॥

तदेकं मे वद विभो यस्मिन्स्थाने भवान्स्थितः।

केषु केषु च स्थानेषु त्वां पश्यन्ति सदा द्विजाः॥ १३२॥

नाम्ना च केन ते स्थानं शोभते धरणीतले। तन्मे वदस्व सर्वेश तवभक्तिरतस्य च॥

ब्रह्मोवाच।

पुष्करेऽहं सुरश्रेष्ठो गयायां च चतुर्मुखः। कान्यकुब्जे देवगर्भो भृगुकक्षे पितामहः॥
कावेर्य्यांसृष्टिकर्ता च नन्दिपुर्य्यां बृहस्पतिः। प्रभासे पद्मजन्मा च वानर्य्यां च सुरप्रियः
द्वारवत्यां तु ऋग्वेदी वैदिशे भुवनाधिपः। पौण्ड्रके पुण्डरीकाक्षः पिङ्गाक्षो हस्तिनापुरे
जयन्त्यां विजयश्चास्मि जयन्तः पुष्करावते। उग्रेषुपद्महस्तोऽहं तमोनद्यां तमोनुदः॥

अहिच्छत्रे जयानन्दी काञ्चीपुर्यां जनप्रियः।

ब्रह्माऽहं पाटलीपुत्र ऋषिकुण्डे मुनिस्तथा॥ १३८॥

महितारे मुकुन्दश्च श्रीकण्ठःश्रीनिवासिते। कामरूपे शुभाकारो वाराणस्यां शिवप्रियः
मल्लिकाक्षे तथा विष्णुर्महेन्द्रे भार्गवस्तथा। गोनर्दे स्थविराकार उज्जयिन्यां पितामहः
कौशाम्ब्यां तु महाबोधिरयोध्यां च राघवः। मुनीन्द्रश्चित्रकूटे तु वाराहो विन्ध्यपर्वते
गङ्गाद्वारे परमेष्ठी हिमवत्यपि शङ्करः। देविकायां स्रुचाहस्तः स्रवहस्तश्चतुर्वटे॥१४२॥
वृन्दावने पद्मपाणिः कुशहस्तश्च नैमिषे। गोप्लक्षेचैव गोपीन्द्रः सचन्द्रो यमुनातटे॥
भागीरथ्यां पद्मतनुर्जलानन्दो जलन्धरे। कौङ्कणे चैव मद्राक्षःकाम्पिल्ये कनकप्रियः॥

वेङ्कटे चान्नदाता च शम्भुश्चैव क्रतुस्थले।

लङ्कायां च पुलस्त्योऽहं काश्मीरे हंसवाहनः ॥ १४५ ॥

वसिष्ठश्चार्बुदे चैव नारदश्चोत्पलावते। मेलके श्रुतिदाताहं प्रपाते यादसां पतिः॥१४६॥

सामवेदस्तथा यज्ञे मधुरे मधुरप्रियः। अङ्कोटे यज्ञभोक्ता च ब्रह्मवादे सुरप्रियः ॥१४७॥

नारायणश्च गोमन्ते मायापुर्यां द्विजप्रियः। ऋषिवेदे दुराधर्षो देवायां सुरमर्दनः ॥

विजयायां महारूपः स्वरूपो राष्ट्रवर्द्धने। पृथूदरस्तु मालव्यां शाकम्भर्यां रसप्रियः ॥

पिण्डारके तु गोपालः शङ्खोद्धारेऽङ्गवर्द्धनः।

कादम्बके प्रजाध्यक्षो देवाध्यक्षः समस्थले ॥ १५० ॥

गङ्गाधरो भद्रपीठे जलशाय्यहमर्बुदे। त्र्यम्बके त्रिपुराधीशः श्रीपर्वते त्रिलोचनः ॥

महादेवः पद्मपुरे कापाले वैधसस्तथा। शृङ्गबेरपुरे शौरिर्नैमिषे चक्रपाणिकः ॥ १५२ ॥

दण्डपुर्यां विरूपाक्षो गौतमो धूतपापके। हंसनाथो माल्यवति द्विजेन्द्रो वलिके तथा

इन्द्रपुर्यां देवनाथो धूतपायां पुरन्दरः। हंसवाहस्तु लम्बायां चण्डायां गरुडप्रियः ॥

महोदये महायज्ञः सुयज्ञो यज्ञकेतने। सिद्धिस्मरे पद्मवर्णे विभायां पद्मबोधनः ॥ १५६॥

देवदारुवने लिङ्गं महापत्तौ विनायकः।

त्र्यम्बको मातृकास्थाने अलकायां कुलाधिपः ॥ १५६ ॥

त्रिकूटे चैव गोनर्दःपाताले वासुकिस्तथा। पद्माध्यक्षश्च केदारे कूष्माण्डे सुरतप्रियः ॥

कुण्डवाप्यां सुभाङ्गस्तु सारण्यांतक्षकस्तथा। अक्षोटे पापहाचैव अम्बिकायांसुदर्शनः

वरदायां महावीरः कान्तारे दुर्गनाशनः। अनन्तश्चैव पर्णाटे प्रकाशायां दिवाकरः ॥

विराजायां पद्मनाभःस्वरुद्रश्च वृकस्थले।

मार्कण्डो वटके चैव वाहिन्यां मृगकेतनः ॥ १६० ॥

पद्मावत्यां पद्मगृहो गगने पद्मकेतनः। अष्टोत्तरं स्थानशतं मया ते परिकीर्तितम्।

यत्र वै मम सान्निध्यं त्रिसन्ध्यं त्रिपुरान्तक। एतेषामपि यस्त्वेकं पश्यते भक्तिमान्नरः

स्थानं सुविरजं लब्ध्वा मोदते शाश्वतीः समाः।

मानसं वाचिकं चैव कायिकं यच्च दुष्कृतम् ॥ १६३ ॥

तत्सर्वंनाशमायाति नात्रकार्याविचारणा । यस्त्वेतानिच सर्वाणि गत्वा मां पश्यतेनरः
भवते मोक्षभागी च यत्राहं तत्र वै स्थितः । पुष्पोपहारैर्धूपैश्च ब्राह्मणानां च तर्पणैः ॥
ध्यानेन च स्थिरेणाशु प्राप्यते परमेश्वरः । तस्य पुण्यफलं चाग्र्यमन्ते मोक्षफलं तथा
स ब्रह्मलोकमासाद्य तत्कालं तत्र तिष्ठति । पुनःसृष्टौ भवेद्देवो वैराजानां महातपाः ॥
ब्रह्महत्यादिपापानि इहलोके कृतान्यपि । अकामतःकामतो वा तानि नश्यन्ति तत्क्षणात्

इहलोके दरिद्रो यो भ्रष्टराज्योऽथवापुनः ।
स्थानेष्वेतेषु वै गत्वा मां पश्यति समाधिना ॥ १६६ ॥

कृत्वापूजोपहारं च स्नानंच पितृतर्पणम् । कृत्वापिण्डप्रदानं च सोऽचिराद्दुःखवर्जितः
एकच्छत्रो भवेद्राजा सत्यमेतन्नसंशयः । इहराज्यानि सौभाग्यं धनंधान्यं वरस्त्रियः
भवन्ति विविधास्तस्य यैर्यात्रा पुष्करेकृता । इदं यात्राविधानं यःकुरुते कारयेत वा ॥
शृणोति वा सपापैस्तु सर्वैरेव प्रमुच्यते । अगम्या गमनं येन कृतं जानाति मानवः ॥
ब्रह्मक्रियाया लोपेन बहुवर्षं कृतेन च । यात्रां चेमां सकृत्कृत्वा वेदसंस्कारमाप्नुयात्
किमत्र बहुनोक्तेन इदमस्तीह शङ्कर । अप्राप्यं प्राप्यते तेन पापं चापि विनश्यति ॥
सर्वयज्ञफलैस्तुल्यं सर्वतीर्थफलप्रदम् । सर्वेषां चैव वेदानां समाप्तिस्तेनवै कृता ॥
यःकृत्वा पुष्करे सन्ध्यां सावित्रींसमुपासिता । स्वपत्नी हस्तदत्तेन पौष्करेण जलेन तु
भृङ्गारेण वरेणैव मृण्मयेनापि शङ्कर । आनीयतज्जलं पुण्यं सन्ध्योपास्तिर्दिनक्षये १७८॥
समाधिना समाश्रेया सप्राणायामपूर्विका । तस्यां कृतायां यत्पुण्यं तच्छृणुष्वहराद्यमे
तेन द्वादशवर्षाणि भवेत्सन्ध्यासुवन्दिता । अश्वमेधफलं स्नाने दाने दशगुणं तथा ॥
उपवासेऽप्यनन्तं च स्वयं प्रोक्तं मयाऽनघ । सावित्र्याःपुरतोयस्तु दम्पत्योर्भोजनं ददेत्
तेनाहं भोजितस्तत्र भवामीह न संशयः । द्वितीयं भोजयेद्यस्तु भोजितस्तेन केशवः ॥
लक्ष्मीसहायो.वरदो वरांस्तस्य प्रयच्छति । उमासहायस्तार्तीये भोजितोसि न संशयः

अथवा या कुमारीणां भक्त्यादद्याच्चभोजनम् ।
तस्याःकुलेभवेद्वन्ध्या न कदाचिच्चदुर्भगा ॥ १८४ ॥
न कन्या जननो क्वापि न भर्तुर्या न वल्लभा ।

पुलस्त्य उवाच ।

तस्मात्सर्वंप्रयत्नेन सावित्र्यग्रे तु भोजनम् ॥ १८५ ॥

पारत्रमैहिकं वापि कामयद्भिर्नरैःसदा । दातव्यं सर्वदा भीष्म कटुतैल विवर्जितम् ॥

न चाम्लं न च वै क्षारं स्त्रीणां भोज्यं कदाचन ।

भक्ष्यं पञ्च प्रकारं च रसैः सर्वैस्सुसंस्कृतम् ॥ १८७ ॥

घृतपूर्यःसुपक्वाश्च वहुक्षीर समन्विताः । शिखरिणी तथा पेया दधिक्षीर समन्विता ॥

आह्लादकारिणी पुंसां स्त्रीणां चातीवभल्लभा । धनधान्याञ्जनोपेतनारीणां च शताकुलम्

पूपकं शष्कुलं तस्यांजायते नात्रसंशयः । न ज्वरो न च सन्तापो न दुःखं न वियोगिता

असौ तारयते स्वानां कुलानामेकविंशतिम् । बन्धुभिश्च सुतैश्चैव दासीदासैरनन्तकैः ॥

पूरितं च कुलं तस्याःपूरिकां या प्रदास्यति । एधते च चिरंकालं पुत्रपौत्र समन्वितम्

कुलं च सकलं तस्यशष्कुलं यःप्रयच्छति । पुत्रिण्यो वै दुहितरो बन्धुभिःसहितंकुलम्

शिखरिणी प्रदात्रीणां युवतीनां न संशयः । मोदते तु कुलं तस्याःसर्वसिद्धि प्रपूरितम्

मोदकानां प्रदानेन एवमाह प्रजापतिः । एतदेव तु गौरीणां भोजनं हर शस्यते १९५॥

सुभगा पुत्रिणीसाध्वी धनऋद्धि समन्विता । सहस्रभोजिनी शम्भोजन्मजन्मभविष्यति

पूपानि चैव पुण्यानि कृतानि मधुराणि च । द्राक्षारस प्रधानं च गुडखण्ड समन्वितम्

शारदेन तु धान्येन कृत्वा खण्डंविमिश्रितम् ।

स्त्रीणां चैव तु पेयानि भक्ष्याणि च द्विजन्मनाम् ॥ १९८ ॥

इह चाविकवासांसि वर्षायोग्यानि सर्वशः । यानियानिचपेयानितानियोग्यानिदापयेत्

प्रतिपूज्य विधानेन वसुदानैः सकञ्चुकैः । कुङ्कुमेनानुलिप्ताङ्ग्याःस्रग्दामभिरलङ्कृताः

दत्त्वा तूपानहावङ्घ्र्योर्नारिकेलं करेतथा । अक्ष्णोश्चैवाञ्जनं दत्त्वा सिन्दूरंचैवमस्तके

गुडं फलानि हृद्यानि वाञ्छितानिमृदूनि च ।हस्ते.दत्त्वासपात्राणिप्रणिपत्य विसर्जयेत्

स्वयंभुञ्जीत वै पश्चात्सबन्धुर्बालकैःसह । अथवानैव सम्पत्तिस्तीर्थे दानं च भाजनम्

गृहेगतः प्रदास्यामि इष्टोदेव प्रसीद मे । एवमेव पितॄणां च आगत्य स्वीयमन्दिरे॥२०४

पिण्डप्रदानपूर्वं तु श्राद्धं कुर्याद्विधानतः । पितरस्तस्य वै तृप्ता भवन्ति ब्रह्मणोदितम्

तीर्थादष्टगुणं पुण्यं स्वगृहे ददतांशिव । न च पश्यन्ति वै नीचाःश्राद्धंद्विजातिभिःकृतम्
एकान्ते तु गृहेगुप्ते पितॄणांश्राद्धमिष्यते । नीचदृष्टया हतं तच्च पितॄन्नैवोपतिष्ठति ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्राद्धंगुप्तं च कारयेत् । पितॄणां तृप्तिदं प्रोक्तं स्वययेव स्वयम्भुवा

गौरीभक्त्याधिका या तु शस्ता ज्ञातक्रिया तु सा ।
राजसी मनसा ज्ञाता जनानां कीर्तिदायिनी ॥ २०६ ॥

गुप्तंदानं सदादेयमात्मनोहितमिच्छता । पक्वान्नं दृश्यतामेति दीयमानं जनैर्भुवि ॥
दृश्यमानं तु तत्तुष्ट्यै दृश्यते नेह कर्हिचित् । एकस्मिन्भोजते विप्रे कोटिर्भवतिभोजिता
भवनेनात्रसन्देहः सत्यं पौराणिकं वचः । तीर्थे तु ब्राह्मणं नैव परिक्षेत कथञ्चन ॥
अन्नार्थिनमनुप्राप्तं भोज्यं तं मनुरब्रवीत् । सक्तुभिः पिण्डदानं च संयावैः पायसेन वा
कर्त्तव्यमृषिभिर्दृष्टं पिण्याकेनेङ्गुदेन वा । तिलपिण्याककैर्देयं भक्तिमद्भिर्नरैःसदा॥२१४॥

श्राद्धं तत्र तु कर्तव्यमर्घ्यावाहनवर्जितम् ।
स्वधां तु गृध्राःकाका वा नैव दृष्ट्या हरन्ति ते ॥ २१५ ॥

श्राद्धं तत्तैर्थिकं प्रोक्तं पितॄणां तृप्तिदं परम् । कर्तव्यं तत्प्रयत्नेन भक्तिरेवात्रकारणम् ॥

भक्त्या तुष्यन्ति पितरस्तुष्टाः कामान्दिशन्ति ते ।
पुत्रं पौत्रं धनंधान्यं कामान्यान्मनसेच्छति ॥ २१७ ॥

भक्त्याचाराधितो दद्यान्नॄणांप्रीतःपितामह । अकालेऽप्यथकाले वा तीर्थे श्राद्धं सदानरैः
प्राप्तैरेव सदास्नानं कर्तव्यं पितृतर्पणम् । पिण्डदानं च कर्तव्यं पितॄणांचातिवल्लभम् ॥
पितरो हि निरीक्षन्ते गोत्रजं समुपागतम् । आशया परयायुक्ताः काङ्क्षन्तस्सलिलंचते

बिलम्बो नैवकर्तव्यो नैवविघ्नं समाचरेत् ।
अच्छिन्ना सन्ततिस्तेषां सदाकालं भविष्यति ॥ २२१ ॥

पितरःपुत्रदातारो वृद्धिश्राद्धाभिकाङ्क्षिणः । तेन ते सन्ततिच्छेदं न कुर्वन्तिहिकर्हिचित्
अतःश्राद्धं पुराप्रोक्तं स्वयमेव स्वयम्भुवा । गुणोत्तरं तु यत्कार्यं द्विजैः पितृपरायणैः ॥
तीर्थे क्षेत्रे गृहे वापि सङ्क्रान्तौ ग्रहणेऽपिवा । विषुवे अयनेचापि जन्मर्क्षे च प्रपीड़िते
एतान्वै श्राद्धकालांस्तु पुरास्वायम्भुवोऽब्रवीत् । कृते श्राद्धेन वै पुंसां पीड़ाभवतिदेहजा

तदा पुत्रकृतंवापि सर्वंत्यजति दुष्कृतम् । यथा न भविता पीड़ा ग्रहचोरनृपादिकात्
दुष्कृतं नश्यते सर्वं परत्र च गतिं शुभाम् । लभते नात्र सन्देह प्रजापति वचो यथा ॥
कृतेयुगे पुष्कराणि त्रेतायां नैमिषंस्मृतम् । द्वापरे च कुरुक्षेत्रं कलौ गङ्गां समाश्रयेत् ॥
दुष्करःपुष्करेवासो दुष्करं पुष्करेतपः । दुष्करं पुष्करेदानं दुष्करः पुष्करे जपः ॥
यदन्यत्र कृतं पापं तीर्थेतद्याति लाघवम् । न तीर्थकृतमन्यत्र क्वचित्पापं व्यपोहति ॥
सायंप्रातःस्मरेद्यस्तु पुष्कराणि कृताञ्जलिः । उपस्पृष्टं भवेत्तेन सर्वतीर्थेषु भारत ॥२३१
सायम्प्रातरुपस्पृश्य पुष्करे नियतेन्द्रियः । क्रतून्सर्वानवाप्नोति ब्रह्मलोकं च गच्छति ॥
द्वादशाब्दं द्वादशाहं मासं मासार्धमेव च । यो वसेत्पुष्करेनित्यं सगच्छेत्परमांगतिम्
सर्वेषामेव लोकानां ब्रह्मलोकोपरि स्थितः । य इच्छेत्पुष्करंगन्तुं सोऽनुसेवेतपुष्करम्

यथा लोम विलोमाभ्यां तथा व्यस्तसमस्तयोः ।
स्नातस्तु पुष्करे सम्यक्कोट्याश्च फलमश्नुते ॥ २३५ ॥

विधिवत्क्रियमाणेषु सर्वतीर्थेषु यत्फलम् । पुष्करालोकनादेव नरःप्राप्नोति तत्फलम् ॥
दशकोटिसहस्राणि तीर्थानां वै महीतले । सान्निध्यं पुष्करे तेषां त्रिसन्ध्यं कुरुनन्दन
यावत्तिष्ठन्ति गिरयो यावत्तिष्ठन्ति सागराः । तावत्पुष्करमृत्यूनां ब्रह्मलोको न संशयः
जन्मान्तरसहस्रैश्च आजन्म मरणान्तिकम् । निर्दहेद्दुष्कृतं सर्वं सकृत्स्नात्वातु पुष्करे

पुष्करं दुष्करं क्षेत्रं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २३६ ॥
पुष्करे वाऽजगन्धं ये प्रपश्यन्ति स्म मानवाः ।
तेऽप्यशेषाघनिर्मुक्ता यान्ति रुद्रसलोकताम् ॥ २४० ॥

तत्रोष्य रजनीमेकां भवस्य सदने शुचिः । अम्बुभक्षो वायुभक्षःशिवसायुज्यतां व्रजेत्
अजकर्णे ह्रदे स्नात्वा दृष्ट्वा माहेश्वरं पदम् । सुवर्णमौलिमालोक्य किं पुनःपरितप्यते ॥
एकहंसं कुरुक्षेत्रे गङ्गाभेदं च नैमिषे । पुष्करे तु अजं दृष्ट्वा मुक्तिरेषा विशिष्यते ॥२४३॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे ब्रह्मयज्ञवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

क्षेमङ्कर्युत्पत्तिवर्णनम् ।

भीष्म उवाच ।

क्षेमङ्करी तु या देवी स्थिता पुष्करपर्वते । तस्या उत्पत्तिमाचक्ष्व परंकौतूहलं हि मे ॥

पुलस्त्य उवाच ।

या सा क्षेमङ्करीदेवी सर्वसत्त्वबलोत्कटा । सात्त्विकी परमाशक्तिःपुष्करं प्राप कारणे
शुभवक्त्राम्बुजा देवी नीलायतविलोचना । तस्यास्तपन्त्याःकालेन महत्त्वात्कुपितं मनः

तस्यक्रोधात्समुत्तस्थुःकुमार्यस्सौम्यलोचनाः ।
नीलकुञ्चितकेशान्ता बिम्बोष्ठाःपद्मलोचनाः ॥ ४ ॥

नितम्बरशनादामनूपुराढ्याःसुवर्चसः । एवंविधाःस्त्रियो देव्याःक्षुभिते मनसिद्रुतम् ॥
सहस्रशःसमुत्तस्थुःकोटिशोविविधामलाः । सृष्ट्वा कुमारीस्तादेवीस्तस्मिन्नेवगिरौशुभाः
तपसा निर्मितं देव्या पुरमाकाशगं महत् । विशालरथसौवर्णप्राकारेणोपशोभितम् ॥
अन्तर्जलानि वेश्मानि मणिसोपानवन्ति च । रत्नजालगवाक्षाणि आसन्नोपवनानि च

प्राधान्येन प्रवक्ष्यामि कन्यानामानि तेऽनघ ।
विद्युत्प्रभा चन्द्रकान्तिस्सूर्यकान्तिस्तथापरा ॥ ६ ॥

गम्भीरा दारुकेशी च सुकेशी चापि सुन्दरी । नीलकेशी घृताची च उर्वशी शीलमण्डना
चारुकर्णा विशालाक्षी धन्या पीनपयोधरा । चन्द्रप्रभा गिरिसुता तथा सूर्यप्रभानना
स्वयम्प्रभा चारुमुखी सर्वदूती विभावरी । जया च विजयाचैव तथा चैवापराजिता ॥
एताश्चान्याश्च शतशःकन्यास्तस्मिन्पुरोत्तमे । देव्या अनुचर्यःसर्वाःपाशाङ्कुशधराःशुभाः
ताभिःपरिवृतादेवी सिंहासनगता स्थिता । यौवनस्था महाभागा पीनोन्नतपयोधरा ॥
चम्पकाशोकपुन्नागनागकेसरदामभिः । सचामरार्चिता देवी यावदास्ते तपोऽन्विता ॥
तावदागतवांस्तत्र नारदो ब्रह्मणःसुतः । तं दृष्ट्वा सहसाऽऽयातं ब्रह्मपुत्रं तपोनिधिम् ॥

विद्युत्प्रभामुवाचेदमासनं दीयतामिति । पाद्यमाचनीयं च क्षिप्रमस्मै प्रदीयताम् ॥१७॥
एवमुक्ता तदा देवी कन्या विद्युत्प्रभा शुभा । आसनं पाद्यमर्घ्यं च नारदाय न्यवेदयत्॥
ततःकृतासनं दृष्ट्वा प्रणतं नारदंमुनिम् । उवाच वचनं देवी हर्षेण महताऽन्विता ॥१९॥

देव्युवाच ।

स्वागतं तेमुनिश्रेष्ठकस्माल्लोकादिहागतः । किं कार्यं देवयत्कृत्यं मानःकालात्ययो भवेत्

पुलस्त्य उवाच ।

इत्येवमुक्तःसमुनिर्नारदःप्राह लोकवित् ॥ २१ ॥

नारद उवाच ।

ब्रह्मलोकादिन्द्रलोकं तस्माद्रौद्रमथाचलम् । इहस्थां त्वां च वैदेवि द्रष्टुमभ्यागतो ह्यहम्

पुलस्त्य उवाच ।

एवमुक्त्वा मुनिवरस्तां देवीं सन्निरीक्ष्य च । अहोऽभयमहोधैर्यमहोकान्तिरहोवयः ॥
अहोनिष्कामता देव्या इतिखेदमुपाययौ । देवगन्धर्वसिद्धानां यक्षकिन्नररक्षसाम् ॥
न रूपमीदृशं क्वापि स्त्रीष्वन्यास्विह दृश्यते । एवं सञ्चिन्त्य मनसा नारदोविस्मयान्वितः
प्रणम्य देवीं वरदामुत्पपात नभस्तलम् । गतश्च त्वरयायुक्तःपुरीं दैत्येन्द्रपालिताम् ॥

महिषाख्येन या भीष्म समुद्रान्तःस्थिता तदा ।
तत्राससाद भगवान्महिषं दानवाकृतिम् ॥ २७ ॥

दृष्ट्वा लब्धवरं वीरं देवसैन्यान्तकं महत् । स तेन पूजितो भक्त्या नारदो मुनिपुङ्गवः
प्रीतात्मा नारदस्तस्मै देव्यारूपमनुत्तमम् । आचख्यौ तद्यथान्यायं यद्दृष्टं पुष्करे तथा

नारद उवाच ।

असुरेन्द्र शृणुष्वैकं कन्यारत्नसमन्वितम् ।
येन लब्धेन लब्धं स्यात्त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ३०॥

ब्रह्मलोकादहं दैत्य पुष्करारण्यमागतः । तत्र देवी पुरंदृष्टं कुमारीशतसङ्कुलम् ॥ ३१ ॥
तत्र प्रधानाया कन्या तापसी व्रतधारिणी । आदेवदैत्य यक्षाणां मध्ये काचिन्न दृश्यते

तादृशी तु शुभा दैत्य तादृग्ब्रह्माण्डमध्यतः ।

तादृशी भ्रमता दृष्टा न कदाचिन्मया सतो ॥ ३३ ॥

तस्याश्च देवगन्धर्वाःसिद्धकिन्नरचारणाः । उपासाञ्चक्रिरे सर्वे ये चान्ये देवनायकाः

तां दृष्ट्वा च शुभां देवीं त्वां द्रष्टुं समुपागतः ।

अजित्वा देवताःसर्वा न तां लभेत कर्हिचित् ॥ ३५ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

एवमुक्त्वा क्षणं स्थित्वा तमनुज्ञाप्य नारदः ।

यथागतं ययौ धीमानन्तर्धानेन तत्क्षणात् ॥ ३६ ॥

गते तु नारदे दैत्यश्चिन्तयामासतां शुभाम् । श्रुतायां नारदमुखात्स्मृत्वाविस्मितमानसः

तामेव चिन्तयञ्छर्म न लभे दैत्यसत्तमः । तत्रज्ञाःसर्वमन्त्राणां मन्त्रिणःसमुपाह्वयत् ॥

तस्याष्टौ मन्त्रिणो धीरानीतिमन्तो बहुश्रुताः । प्रघसो विघसश्चैव शङ्कुकर्णो विभावसुः

विद्युन्माली सुमाली च पर्जन्योऽक्रूर एव च । एते मन्त्रिवराः सर्वे प्राधान्येनप्रकोर्तिताः

ते दानवेन्द्रमासाद्य ऊचुःकृत्यं विधीयताम् । तेषां तद्वचनं श्रुत्वा दानवेन्द्रो महाबलः॥

उवाच कन्यालाभाय नारदावाप्तनिश्चयः ॥ ४२ ॥

महिषासुर उवाच ।

मह्यं हि कथिताबाला नारदेन सुरर्षिणा । बिम्बोष्ठी चारुसर्वाङ्गी चन्द्रकान्ततरा हि सा

स्तनौ च पीनौ कठिनौ संहतौ चारुदर्शनौ । मृणालकोमलौ बाहू नयने च सुतारके ॥

गम्भीरा वर्तुला नाभिस्त्रिवली शोभनोदरा । विस्तोर्णजघना चैव सुश्रोणी मृदुगामिनी

कदलीगर्भसङ्काशमूरुयुग्मं च शोभनम् । चरणौ सुप्रभौ तस्या धरण्यां सुप्रतिष्ठितौ ॥

परोपकारिणा तेन मुनिना भावितात्मना । एवंविधा मे कथिता श्रुता या वीर्यहारिणी

पुंसां वै श्राविते लिङ्गे दृष्टा प्राणहरा हि सा ।

अवश्यं सा मया ग्राह्या युष्माकं सन्निधौ रणे ॥ ४८ ॥

सा चाऽजित्वा सुरान्यक्षान्नलभ्येत किलाङ्गना । एतदर्थं भवन्तो मे कथयन्तु विनिश्चयम्

कथं सालभ्यते बाला कथंदेवाश्च निर्जिताः । भवेयुरिति ते सर्वे मन्त्रिणो दानवेश्वरम्

ऊचुःसम्मन्त्रिताःसर्वेकथयामो वयं तव । एवमुक्त्वा वचोऽवोचत्प्रघसो दानवेश्वरम् ॥

प्रघस उवाच ।

यासा ते कथिता दैत्य नारदेन महासती । सा शक्तिःपरमादेवी वैष्णवी लोकधारिणी
गुरुपत्नीं भृत्यपत्नीं तथा सामन्तयोषितः । जिघृक्षन्म्रियते राजन्नगम्यागमनेन च ॥५३॥
साग्निज्वाला तृणं त्वं च सा च त्वां निर्दहिष्यति ।
एवं ज्ञात्वा न भावं तु कर्तुमर्हसि दानव ॥ ५४ ॥
सुरर्षिणा सुरकार्यं कर्तुकामेन कीर्तिता ॥ ५५ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

प्रघसेनैव मुक्ते तु तद्देवीं प्रतिपार्थिव । दैत्येश्वरमथाहेदं विघसो नयकोविदः ॥ ५६ ॥

विघस उवाच ।

वारणीया कदाचित्तु सर्वदा विजिगीषुभिः । अन्यतन्त्रेण कन्यायाःकार्यं क्वापि प्रधर्षणम्
यदि ते रोचते वाच्यं मदीयं राजसत्तम । इदानीं तां शुभां देवीं गत्वा याचतु कश्चन ॥
यो महात्मा भवेत्तस्य बन्धुस्तंयाचयामहे । साम्नैवादौ ततःपश्चात्करिष्यामःप्रयाणकम्
ततोभेदं करिष्यामस्ततो दण्डंक्रमेण वै । अनेन क्रमयोगेन यदि सा नैव लभ्यते ॥६०॥
ततःसन्नह्य गच्छाम बलाद्गृह्णाम तां तदा ।

महिषासुर उवाच ।

साधूक्तो विघसेनैष यत्नःप्रति वराननाम् ॥ ६१ ॥
तदेव क्रियतां शीघ्रं दूतस्तत्र विसृज्यताम् । यः सर्वशास्त्रनीतिज्ञःशुचिःशौचसमन्वितः
सत्यं ज्ञात्वा तु तां देवीं वर्णतो रूपतो गुणः । पराक्रमेण शौर्येण वयसा च बलेन च
बन्धुवर्गेण सामग्र्या मानेनाभरणेन च । एवं ज्ञात्वा तु तां देवीं ततःकार्यं विधीयताम्

पुलस्त्य उवाच ।

प्रशस्य तस्य तद्वाक्यं विघसं मन्त्रिसत्तमम् । प्रशस्यसर्वे तं दूतं सन्देष्टुमुपचक्रमुः ॥
विद्युत्प्रभं महाभागं बहुमायाविदं शुभम् । विसर्जयित्वा तं दूतं विघसो वाक्यमब्रवीत्

विघस उवाच ।

सन्नह्यतां दानवेन्द्र चतुरङ्गबलेन च । क्रियतां विजयं तावद्देवसैन्यं प्रति प्रभो ॥ ६७ ॥

असुरेन्द्र सुरैर्भग्नैस्त्वत्पराक्रमभीषितः। साकन्यावश्यतामेति त्वयि शक्रत्वमागते ॥
लोकपालैर्जितैःसर्वैस्तथैव मरुतांगणैः। नागैर्विद्याधरैःसिद्धैर्गन्धर्वैःसर्वतोजितैः ॥६९॥
रुद्रैर्वसुभिरादित्यैस्त्वमेवेन्द्रो भविष्यसि। इन्द्रस्य ते सतःकन्या देवगन्धर्वयोषितः ॥
वसमेवागमिष्यन्ति सर्वदा भयपीडिताः ॥ ७० ॥

पुलस्त्य उवाच।

एवमुक्तस्तदा दैत्यः सेनापतिमुवाच ह। विरूपाक्षं महामेघं नीलाञ्जनसमप्रभम् ॥७१॥

महिषासुर उवाच।

आनीयतां द्रुतंसैन्यं हस्त्यश्वरथपत्तिमत्। येन देवांश्च गन्धर्वाञ्जयामो युधि दुर्जयान्

पुलस्त्य उवाच।

एवमुक्तो विरूपाक्षस्तं गृहीत्वा समूर्धनि। उवाच तं दानवेन्द्रं प्रणिपत्य प्रशस्य च ॥

विरूपाक्ष उवाच।

अविरोधेनदेवानां तिष्ठराजञ्छतं समाः। जीवद्भिःप्राप्यते राज्यं भोगाःसौख्यं धनानिच
एतन्मत्वा न विरोधं सुरैर्गच्छ महाद्युते। ब्रह्मणा ते वरोदत्तस्त्वजेयस्त्वं दिवौकसाम्
अनेनैव वरेण त्वं स्वस्थाने तिष्ठ वै सुखम्। देवानां दानवानां च कन्याया रूपतोऽधिकाः
पतिस्तासां दानवेन्द्र सवैकर्तास्मि ते वचः। अतीवस्पर्धने लोको जेतुं स्वेन बलेन च
तेषां प्रधानभूतानां कोटयस्त्वर्बुदानि च। येषां स्वबलमायाति शतकोट्यायुताधिकम्
तेषां दैत्यसहस्राणि दानवानां महात्मनाम्। संमतं चक्रुरव्यग्रास्तदा दैत्याःप्रहारिणः
प्रयाणं रोचयामास देवसैन्यजिघांसया ॥ ७९ ॥

पुलस्त्य उवाच।

ततो महिषदैत्यस्तु कामरूपी महाबलः। मत्तं नागं समारूढो ययौसुमेरुपर्वतम् ॥८०॥
तत्रेन्द्रपुरमासाद्य देवैःसह शतक्रतुम्। अभिदुद्राव दैत्येन्द्रस्ततो देवाःक्रुधान्विताः ॥
शितान्यादाय शस्त्राणि वाहनानि विशेषतः। अधिष्ठाय सुरानाजौ दुद्रुवुर्मुदिता भृशम्
तेषां प्रववृते युद्धं महतां भीमविक्रमम्। घोरं प्रचण्डयोधानामन्योन्यमति गर्जताम् ॥
तत्राञ्जनो नीलकुक्षिर्मेघवर्णो बलाहकः। उदराक्षो ललाटाक्षो महाक्षो भीमविक्रमः ॥

स्वर्भानुर्वसुरष्टौघः सर्वे दुद्रुवुराहवे ॥ ८५ ॥
यथासङ्ख्येन तद्वच्च दैत्याद्वादशचापरे। आदित्यान्दैत्यसङ्घास्ते तेषां प्राधान्यतःशृणु
भीमाक्षो गजकर्णश्च शङ्कुकर्णस्तथैव च। रक्ताक्षो भीमदंष्ट्रश्च विद्युज्जिह्वस्तथैव च॥
अतिकायो महाकायो दीर्घबाहुःकृतान्तकृत्। एतेद्वादशदैत्येन्द्रा आदित्यानभिदुद्रुवुः॥
स्वं स्वं बलमुपादाय तद्वदन्येऽपि दानवाः। यथासङ्ख्येन रुद्रांस्तु दुद्रुवुर्भीमविक्रमाः॥
शेषान्देवाञ्शेषदैत्या यथायोग्यमुपाद्रवन्। स्वयं महिषदैत्यस्तु इन्द्रंदुद्राव वेगतः॥
स चातिबलवान्दैत्यो ब्रह्मणो वरदर्पितः। अवध्यःपुरुषेणाजौ यद्यपिस्यात्पिनाकधृक्
आदित्यैर्वसुभिःसर्वै रुद्रैश्चापि महद्भृशम्। असुरा यातुधानाश्च सङ्ख्या पूरणकेवलाः
देवानामपि सैन्यानि निहतान्यसुरैर्युधि। एवम्भूते तदाभग्ने देवेन्द्रे विद्रुताःसुराः ॥९३
अर्दिता विविधैःशस्त्रैःशूलपट्टिशमुद्गरैः। गतवन्तौ ब्रह्मलोकमसुरैरर्दिताः सुराः ॥९४॥

अथ विद्युत्प्रभो दैत्यस्तदा दूतो विसर्जितः।
देव्याः सकाशं गत्वा तु उवाच तनुमध्यमाम् ॥ ९५ ॥

प्रणम्य प्रणतो भूत्वा कुमारीशतसङ्कुलाम्। आस्थाने विनयायत्तस्तथा वचनमब्रवीत्
देवि पूर्वमृषिस्त्वासीदादिसर्गेषु सम्भवः। संवत्सरशताज्जातः सुपार्श्वो नाम वै भुवि

तस्याभवन्महातेजाः सिन्धुद्वीपः प्रतापवान्।
स हि तीव्रं तपस्तेपे माहिष्मत्यां सुरोत्तमे। ॥ ९८ ॥

कुर्वन्स्थितस्तपो घोरं निराहारस्त्वशोभने। दैत्यस्य विप्रचित्तेस्तु सुता सुरसुतोपमा
माहिष्मतीति विख्याता रूपेणासदृशीभुवि। सखीभिः सा परिवृता विरहन्तीयदृच्छया
आगता मन्दरद्रोणीं तत्रापश्यत्तपोवनम्। मुनेरम्बरसंसक्तविविधद्रुममालिकम् ॥१०१॥
लतागृहैः सुविहितैर्बकुलैराम्रतिन्दुकैः। चन्दनैर्बदरैः शालैः सरलैरुपशोभितम् ॥१०२॥
विचित्रवनखण्डैश्च भूषितं तन्महात्मभिः। दृष्ट्वोत्तमं वनं रम्यमासुरी कन्यकाशुभा॥

माहिष्मती वरारोहा चिन्तयामास भामिनी।
भीषयित्वाऽहमेतांस्तु तापसानाश्रमे स्वयम् ॥ १०४ ॥

तिष्ठामि क्रीडती सार्धं सखीभिः परमार्चिता। एवंसंचिन्त्य सा देवी महिषी सम्बभूवह

महिषीभिः सहान्याभिस्तीक्ष्णश्रृङ्गाग्रधारिणी ।
तमृषिं भीषितुं ताभिर्महानादं ननाद सा ॥ १०६ ॥
असौ च भीषितस्ताभिस्तां ज्ञात्वा ज्ञानचक्षुषा ।
आसुरीं क्रोधसम्पन्नः शशाप च सुलोचनाम् ॥ १०७ ॥

यस्माद्भीषयसे मां त्वं महिषी रूपधारिणी । अतो भव महिष्येव पापकर्मे शतं समाः
एवमुक्ता तदा सा तु सखीभिः सह वेपती । पादयोरपतत्तस्य शापान्तं कुरु जल्पती ॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा स मुनिःकरुणान्वितः । शापान्तमकरोत्तस्या वाक्यं चेदमुवाचह

मुनिरुवाच ।

अनेनैव तु रूपेण पुत्रमेकं प्रसूयसे । शापान्तो भविता भद्रे मद्वाक्यं न मृषा भवेत् ॥

पुलस्त्य उवाच ।

एवमुक्ता गता सा तु नर्मदातीरमुत्तमम् ।
यत्र तेपे तपो घोरं सिन्धुद्वीपः प्रतापवान् ॥ ११२ ॥

तत्रविद्युन्मती नाम दैत्यकन्याऽतिरूपिणी । सा दृष्टा तेन मुनिना विवस्त्रा मज्जती जले

चस्कन्द च मुनिः शुक्रं शिलाद्रोण्यां महातपाः ।
तच्च माहिष्मती दृष्ट्वा दिव्यगन्धि सुगन्धि च ॥ ११४ ॥
निजां सखीमुवाचेदं पिबामि च जलं शुभम् ।
एवमुक्त्वा तु सा पीत्वा तच्छुक्रं मुनिसम्भवम् ॥ ११५ ॥

प्राप गर्भं मुनेर्वीर्याद्वत्सरं जठरे धृतम् । तस्याः पुत्रोऽभवच्छ्रीमान्महाबलपराक्रमः ॥
महिषेति स्मृतो नाम्ना ब्रह्मवंशविवर्धनः । सुराणामपहृत्याजौ त्रैलोक्यं सम्मतोऽनघे
आगम्य दास्यते सुभ्रु तव देवि महासुरः । तस्यात्मनः प्रदानेन कुरु देवि महत्कृतम् ॥

आत्मना स्वयमात्मानं शोचमाना सुखी भव ॥ ११८ ॥

वृथात्वं यौवनं प्राप्ता पीनौ चेमौपयोधरौ । यदि तस्याङ्गसंलग्नौ सफलं जीवितंभवेत
भवत्या न तु सन्देहः प्राप्तं वै जन्मनःफलम् । मां क्लेशय वृथा देवि वयश्चेदंसयौवनम

सभाग्या भव सुश्रोणि पतिं प्राप्नुहि दानवम् ।

किमनेन तु वक्त्रेण यन्मुखे तस्य नार्प्यते ॥ १२१ ॥
सुधारसस्याभ्यधिकमास्वादं लभ शोभनम् । एवमुक्ता तदा देवी तेन दूतेन शोभना ॥
जहास परमा देवी वाचं नोवाच किञ्चना ॥ १२२ ॥
तस्या हसन्त्याः सहितं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
ददर्श कुक्षौ सम्भ्रान्तः तत्क्षणात्समपद्यत ॥ १२३ ॥
ततोदेव्याः प्रतीहारी जया नामासितेक्षणा । देव्या हृदि स्थितं वाक्यमुवाचतनुमध्यमा
कन्यार्थं यत्त्वया दूत वचनं समुदीरितम् । इदं नाम व्रतं चास्याःकौमारं सार्वकालिकम्
अन्या अपि कुमार्योऽत्र सन्ति देव्याः पदानुगाः ।
तासामेकापि नो लभ्या किमु देवी स्वयं शुभा ॥ १२६ ॥
या हि दूतत्वरावांस्त्वं किञ्चिदन्यद्भविष्यति ।
एवमुक्तस्ततो दूतस्तावद्व्योम्नि महामुनिः ॥ १२७ ॥
आयातो नारदस्तूर्णमेतदूचे महातपाः । देवि देवैरहं प्रीत्या प्रेषितोऽस्मि तवान्तिकम्
देवाः सर्वे जिता मेरुं विहाय ब्रह्मणोऽन्तिकम् ॥ १२८ ॥
विगता देवि दैत्येन महिषाख्येन निर्जिताः ॥ १२९ ॥
त्वां ग्रहीतुं हि यत्नं स कृतवान्देवि दैत्यराट् । एवमुक्तासि देवि त्वं योधयस्ववरानने
स्थिरीभूत्वा महादेवि तं दैत्यं प्रतिघातय ।
उक्त्वैवान्तर्हितः सद्यो नारदःस्वेच्छया ययौ ॥ १३१ ॥
देवी च कन्याकोट्यस्ताः सन्नह्यन्तामुवाच ह ।
ततः कन्या महाभागाः सर्वास्ता देवि शासनात् ॥ १३२ ॥
बभूवुर्घोररूपिण्यः खड्गचर्मधनुर्धराः । सङ्ग्रामहेतोः सन्तस्थुः सैन्यविध्वंसनाय वै ॥
तच्च देवबलं त्यक्त्वा सा वै दैत्यचमूर्द्रुतम् । आगता यत्र सा देवी संनद्धस्त्रीबलं महत्
ततस्ता युयुधुः कन्या दानवैः सह दर्पिताः । क्षणेन तद्बलं ताभिश्चतुरङ्गं निपातितम्
शिरांसि तत्र केषाञ्चिच्छिन्नानि पतितानि च ।
इतरेषां विदार्याशु क्रव्यादाः शोणितं पपुः ॥ १३६ ॥

अन्ये कबन्धभूतास्तु ननृतुस्तत्र दानवाः । एवं क्षणेन ते सर्वे विध्वस्ताः पापचेतसः ॥
अपरे विद्रुताः सर्वे यत्रासौ महिषासुरः । ततो हाहाकृतंसर्वंतदा दैत्यबलं महत् ॥
एवं तदा कुलं दृष्ट्वा महिषो वाक्यमब्रवीत् । सेनापते किमेतद्धि बलं भग्नं ममाग्रतः ॥
ततो यज्ञहतो नाम दैत्यो हस्तिस्वरूपवान् । उवाच हतमेतद्धि कुमारीभिः समन्ततः ॥
भवानपूर्वकन्यार्थी कथितं नारदेन ते । तया हतमिदं सर्वं मन्ये त्वां तु हनिष्यति ॥
ततोदुद्राव महिषस्तां कन्यां शुभलोचनाम् । गदामुसलहस्तश्च कन्यां दुद्राव तां बलात्
यत्र तिष्ठति सा देवी देवगन्धर्वपूजिता । तत्र वसोऽसुरः प्राप यत्र देवी व्यवस्थिता
सा तु दृष्ट्वा तमायान्तं विंशत्पाणिर्बभूव ह । धनुः खड्गं तथा शक्तिः शरःशूलं तथागदा

सहस्रारं तथा चक्रं मुसलं भिण्डिपालकम् ।
परशुर्डमरुश्चैव तथा घण्टा विशालिनी ॥ १४५ ॥

शतघ्नी मुद्गरो घोरो भुशुण्डी कुन्तमेव च । दण्डपाशौ ध्वजश्चैव पद्मं चेतीहविंशतिः
भूत्वा विंशद्भुजा देवी सिंहमास्थाय दंशिता । सस्मार रुद्रं देवेशं रौद्रं संहारकारिणम्
ततो वृषध्वजः साक्षाद्रुद्रस्तत्रैव संययौ । तया प्रणम्य विज्ञप्तः सर्वान्दैत्याञ्जयाम्यहम्
त्वयि सन्निहिते देवे विष्णौचापि परन्तप । युष्मत्सन्निधिमात्रे तु पश्य देव सनातन

एवमुक्त्वाऽसुरान्सर्वाञ्जिघांसुः परमेश्वरी ।
मुक्त्वा तमेकं महिषं वधार्थं सा तमभ्यगात् ॥ १५० ॥
तथा देवीं ततः सोऽपि दृष्ट्वा दुद्राव चेश्वरीम् ।
क्वचिद्युध्यति दैत्येन्द्रः क्वचिन्नैव पलायते ॥ १५१ ॥

क्वचित्पुनर्भृशं चक्रे क्वचित्पुनरुपागमत् । एवं वर्षसहस्राणि दश तस्य तया सह ॥१५२

देव्या विनिर्गतानि स्युर्युध्यतस्तस्य शोभने ।
बभ्राम सकलन्त्वाजौ ब्रह्माण्डं भीतमानसम् ॥ १५३ ॥

ततः कालेन महता शतशृङ्गे महागिरौ । दैत्येश्वरं च तं दृष्ट्वा देवी वचनमब्रवीत् ॥

रूपलोभात्त्वया नीच दूतो योऽसौ ममान्तिकम् ।
प्रेषितो यत्त्वया तस्य सन्दिष्टं तद्वदस्व मे ॥ १५५ ॥

न मया तच्छ्रुतपूर्वमिदानीं त्वन्मुखात्पुनः ।
श्रोतुमिच्छामि तद्वाक्यं भवाननुभविष्यति ॥ १५६ ॥
पद्भ्यामाक्रम्य शूलेन निहतोदैत्यसत्तमः । छिन्ने शिरसि खड्गेनतत्कण्ठादुत्थितःपुमान्
रौद्रोऽपि सगतः स्वर्गं देव्या शस्त्रनिपातितः ॥ १५७ ॥
ततो देवगणाः सर्वे महिषं वीक्ष्य निर्जितम् । सेन्द्राद्यास्तु स्तुतिंचक्रुर्देव्यास्तुष्टेनचेतसा

देवा ऊचुः ।

नमो देवि महाभागे गम्भीरे भीमदर्शने । नयस्थे स्थितिसिद्धान्ते त्रिनेत्रे विश्वतोमुखि
विद्याविद्ये जपेजाप्ये महिषासुरमर्दिनि । सर्वगेसर्वविद्येशि विश्वरूपिणि वैष्णवि ॥
वीतशोके ध्रुवे देवि पद्मपद्मायतेक्षणे । शुद्धसत्वव्रतस्थे च चण्डरूपे विभावरि ॥१६१॥
ऋद्धिसिद्धिप्रदे देवि सर्वसत्वमये ध्रुवे । विद्या पुराणशिल्पानां जननि भूतधारिणि ॥
सर्वदेवरहस्यानां सर्वसत्त्ववतां शुभे । नमोऽस्तु ते महादेवि नमोऽस्तु परमेश्वरि ॥
नमोऽस्तु सर्वभूतानां मातर्नित्येऽक्षयेऽव्यये । न तेषां जायते किञ्चिदशुभं रणसङ्कटे ॥
ये तु व्याघ्रभये घोरे चौरराजभये तथा । सर्वभूताभया देवी क्षेम्याक्षेमङ्करीति च ॥
विभावरी भावरी च सर्वस्थितिकरी तथा । सर्वासां भगवान्रुद्रः सर्वगत्वात्पतिःस्मृतः
यावत्यस्तु महाशक्त्यस्तावद्रूपस्तु शङ्करः ।
निगड़स्थोऽपि यो देवि त्वां स्मरिष्यति मानवः ।
सोऽपि बन्धात्प्रमुच्येत स सुखं वसते सुखी ॥ १६७ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

एवं स्तुता सुरैर्देवी प्रणिपातपुरस्कृता । उवाच देवी सुश्रोणी वृणुध्वं वरमुत्तमम् ॥

देवा ऊचुः ।

देवि पुष्करसंस्थां त्वां स्तुवन्त्यनेन भक्तितः । ते सर्वकामसम्पन्ना भवन्तु वर एषवै

पुलस्त्य उवाच ।

एवमस्त्विति तान्देवानुक्त्वा देवी परावराम् । विसर्जयित्वा तान्देवीस्वयंतत्रैवसंस्थिता
एवं यः शृणुते जन्म देव्याः कुरुकुलोद्वह । सदा सेवेत विरज इदं प्राप्नोत्यनामयम् ॥

यः क्षेमङ्करिवृत्तान्तं ब्रह्मशक्तिसमुद्भवम् । स पुत्रपौत्रपशुमान्समृद्धिमुपगच्छति ॥१७२॥
यश्चेदं शृणुयाद्भक्त्या देवीस्तोत्रमनुत्तमम् । सर्वबाधाविनिर्मुक्तं पदं निर्वाणमृच्छति ॥

य एतां वेद वै देव्या उत्पत्तिं त्रिविधां स्थिताम् ।

सर्वपापविनिर्मुक्तः पदं निर्वाणमृच्छति ॥ १७४ ॥

भ्रष्टराज्यपदो राजा सप्तम्यां नियतः शुचिः । अष्टम्यां च नवम्यां च उपवासी नरोत्तम
संवत्सरेण लभते राज्यं निष्कण्टकं नृपः । या सा त्रिवेदसम्भूता वेदशक्तिः परावरा ॥

एषा ज्ञानात्मिका सर्वा सात्त्विकी ब्रह्मसंज्ञिता ।

एषैव रक्ता राजसी वैष्णवी परिकीर्तिता ॥ १७७ ॥

एषैव कृष्णा तामसी रौद्री देवी प्रकीर्तिता । परमात्मा यथा देव एक एव त्रिधा स्थितः
अपरा च परा चैव तथैवान्या परावरा । त्रिधा व्यवस्थिता शक्तिरेकैका त्रिविधा भवेत्
य एवं शृणुयात्सर्वं क्षेम्यायाः परमं शिवम् । सर्वपापविनिर्मुक्तः पदं निर्वाणमाप्नुयात्
यश्चैवं पठते भक्त्या नवम्यां नियतः शुचिः । सराज्यापत्यलाभेन भयेभ्यः परिमुच्यते
यत्रैवं लिखिता गेहे सदा तिष्ठति धारिता । न तत्राग्निभयं घोरं चौर्यसर्पादिकं नृप ॥
यश्चैतत्पूजयेद्भक्त्या पुस्तके लिखतं बुधः । तेन चेष्टं भवेत्सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥

जायन्ते पशवः पुत्रास्तथा धान्यं वरस्त्रियः ।

रत्नान्यश्वा गजा भृत्या ग्रामाश्चाशु भवन्त्युत ॥ १८४ ॥

यस्येदं तिष्ठते गेहे तस्याप्येतद् ध्रुवं भवेत् । एतदेव रहस्यं मे कीर्तितं नृपसत्तम ॥
क्षेमङ्करीभवं ते तु सर्वंक्षेमङ्करं शुभम् । क्षेम्या क्षेमङ्करी देवी सर्वेषां भयनाशिनी ॥

रुद्रस्य खलु माहात्म्यं देवीनां सम्भवस्तथा ।

नवकोट्यस्तु चामुण्डा भेदभिन्ना व्यवस्थिताः ॥ १८७ ॥

या रौद्री तामसी शक्तिः सा चामुण्डा प्रकीर्तिता ।

अष्टादश तथा कोट्यो वैष्णव्या भेद उच्यते ॥ १८८ ॥

या सा तु राजसी शक्तिः पालने चैव वैष्णवी ।

या ब्राह्मी शक्तिः सत्त्वस्था सा चानन्ता प्रकीर्तिता ॥ १८६ ॥

क्षेमङ्कर्यो न सङ्ख्या तु ब्राह्मी शक्तिः परावरा ।
ब्रह्माणी सा भुवि ज्ञेया सृष्टिरूपा जगत्स्थिता ॥ १६० ॥
एतासां सर्वभेदेषु पृथगेकैकशोभनाः । सर्वासां भगवान्रुद्रः सर्वगत्वात्पतिः स्मृतः ॥
यावत्यस्ता महाशक्त्यस्तावद्रूपाणि शङ्करः । कृत्तिवासास्तु भजते पतिरूपेण सर्वदा ॥
यश्चाराधयते तास्तु तस्य रुद्रोऽपि तुष्यति ।
सिध्यन्ते तास्तदा देव्यो मन्त्रिणो नात्र संशयः १६३ ॥
इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे क्षेमङ्कर्युत्पत्तिर्नाम पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

षट्त्रिंशोऽध्यायः

वैष्णवीचामुण्डारूपरुद्रशक्तिविहितदैत्यवधवर्णनम् ।

भीष्म उवाच ।

या सम्भूता शरीरात्तु ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
गायत्र्यष्टभुजा भूत्वा ख्याता विंशभुजा तथा ॥ १ ॥
सैव चान्याभवद्देवी देवकार्यचिकीर्षया । महिषाख्यासुरवधं कुर्वती ब्रह्मणो रता ॥२॥
वैष्णव्या निहतो दैत्यः कतमो यो महाबलः । चामुण्डया रुद्रशक्त्या कतमोदानवोहतः

पुलस्त्य उवाच ।

इदं जगत्स्थितं भीष्म गङ्गा सिकतसङ्ख्यया । यत्किञ्चिद्भवते वृत्तं तत्सर्वं वेद सर्ववित्
स्वायम्भुवो हतो दैत्यो वैष्णव्या मन्दरे गिरौ ।
महिषाख्योऽभिभाष्यश्च स च वैवस्वते पुनः ॥ ५ ॥
नन्दया निहतो विन्ध्ये महाबलपराक्रमः । अथवा ज्ञानशक्तिश्च महिषोऽज्ञानमूर्तिमान् ॥
अज्ञानं ज्ञानसाध्यं तु भवतीह न संशयः । मूर्तिपक्षे चेतिहासो मन्मूर्तिः स्वेनबाध्यत ॥
ख्याप्यते वेदवादैस्तु अहन्तैर्वेदवादिभिः ॥ ८ ॥

इदानीं शृणु मे राजन्पञ्चपातकनाशनम् । यजनं देवदेवस्य ब्रह्मपुत्र वसुप्रदम् ॥ ९ ॥

इह जन्मनि दारिद्र्यव्याधिकुष्ठादिपीडितः ।
अलक्ष्मीवानपुत्रस्तु यो भवेत्पुरुषो भुवि ॥ १० ॥
तस्य सद्यो भवेल्लक्ष्मीरायुः पूर्णं सुतास्सुखम् ।
कृत्वा तु मण्डलगतं लोकपालसमन्वितम् ॥ ११ ॥

ब्रह्माणं तु परं देवं यः पश्यति विधानतः । पूजितं नवनाभेन मन्त्रमूर्तिमयोनिजम् ॥
कार्तिके मासि शुक्लायां पौर्णमास्यां विशेषतः । सर्वासु वायजेद्देवं पूर्णिमासु विधानतः
सङ्क्रान्तौ च महाबाहो चन्द्रसूर्यग्रहेऽपिवा । यः पश्यति विभुं देवं पूजितं गुरुणा नृप॥
तस्य सद्यो भवेत्तुष्टिः पापध्वंसश्च जायते । स मान्यो देवतानां च भवतीह नराधिप ॥
ब्राह्मणक्षत्रियविशां भक्तानां तु परीक्षणम् । संवत्सरं गुरुः कुर्याज्जातिशौचक्रियादिभिः
उपपन्नमिति ज्ञात्वा हृदयेनावधारयेत् । तेऽपि भक्तियुता ध्यात्वा त्वाचार्यं परमेश्वरम्
संवत्सरं गुरौ भक्तिं कुर्युर्विष्णौ यथा तथा । प्रसादयेयुश्च ततः पूर्णे संवत्सरे गुरुम् ॥
भगवंस्त्वत्प्रसादेन संसारार्णवतारणम् । परब्रह्मोपासनेन विरिञ्च्याराधनेन च ॥१९॥
सहस्रशीर्षजप्येन मण्डलब्राह्मणेन च । ध्यानेन स्यात्तथास्माकमुपदेशः प्रदीयताम् ॥२०

इच्छामो वैदिकीं लक्ष्मीं विशेषेण प्रसाद्यताम् ।
अभ्यर्थितो गुरुस्त्वेवं मेधावी तैस्तदा ततः ॥ २१ ॥
यथाविधि समभ्यर्चेद्ब्रह्माणं विष्णुमग्रतः ।
ते बद्धनेत्राः स्वाप्यास्तु कार्तिकस्य चतुर्दशीम् ॥ २२ ॥

ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय बद्धपद्मासनास्तु ते । ध्यात्वा गुरुं सहस्रारे श्वेतवस्त्रोपवीतकम्
श्वेतमाल्याम्बरधरं श्वेतगन्धानुलेपनम् । निर्गम्य च बहिर्नद्यां यर्युनित्यमतन्द्रिताः ॥
क्षीरवृक्षोत्थमाचार्यो दापयेद्दन्तधावनम् । ते च तं भक्षयेयुर्हि नदीं गत्वा समुद्रगाम् ॥
इतरद्वा तटाकं वा गृहे वापि विधानतः । तद्भक्षयेयुर्मन्त्रेण मन्त्रितं परमेष्ठिनः ॥ २६ ॥

आपोहिष्ठेति मन्त्रेण सप्तकृत्वोऽभिमन्त्रितम् ।
देवस्य त्वेति वै जप्त्वा युञ्जानेति करे न्यसेत् ॥ २७ ॥

इरावत्येति प्रक्षाल्य ब्रह्मोदनेति वै मुखे। भक्षयित्वा क्षिपेद्दूरं पतितं च निरीक्षयेत् ॥

सम्मुखं प्राङ्मुखं वापि विदिशं चापि वागतम्।
संमुखे देवता लब्धिर्मन्त्रसिद्धिश्च जायते ॥ २६ ॥

पराङ्मुखे दन्तकाष्ठे सर्वेदेवाः पराङ्मुखाः। उत्तरेण गते तस्मिन्सिद्धिर्भवति वा नवा
दक्षिणेन भवेन्मृत्युर्गुरोस्तस्य न संशयः। प्रेक्ष्याशुभं स्वपेद्भूमौ देवदेवस्य सन्निधौ ॥
स्वप्नान्दृष्ट्वागुरोरग्रेश्रावयेयुर्विचक्षणाः। ततः शुभाशुभं तत्र लक्षयेत्परमो गुरुः ॥ ३२ ॥

पौर्णमास्यामथ स्नात्वा ततो देवालयं व्रजेत्।
गुरुश्च मण्डलं भूमौ कल्पितायां तु वर्तयेत् ॥ ३३ ॥

लक्षणैर्विविधैर्भूमिं लक्षयित्वा विधानतः। षोडशारं लिखेत्पद्मं नवधारमथापिवा ॥
अष्टपत्रमथो वापि लिखित्वा दर्शयेद् बुधः। नेत्रबन्धं तु कुर्वीत सितवस्त्रेण यत्नतः ॥
वर्णानुक्रमतः शिष्यान्पुष्पहस्तान्प्रवेशयेत्। नवनाभं यदा कुर्यान्मण्डलं वर्णकैर्बुधः ॥
इन्द्राणीपूर्वकं देवमिन्द्रमैन्द्र्यां तु पूजयेत्। लोकपालैः समं तद्वदग्निसम्पूजयेन्नृपः ॥

दिशि वह्नेर्यमं याम्यां नैर्ऋत्यां चैव निर्ऋतिम्।
वरुणं वारुणाशायां वायुं वायव्यगोचरे ॥ ३८ ॥

धनदं चोत्तरे न्यस्य रुद्रमीशानगोचरे। कमण्डलुं पूर्वतो हि स्रुचं वै दक्षिणे तथा ॥
हंसं वै पश्चिमायांतु उत्तरायां स्रुवं तथा। आग्नेय्यां च बृसीं दद्यान्नैर्ऋत्यां पादुकेतथा

वायव्यां योगपट्टं च ऐशान्यां च गलन्तिकाम्।
विष्णुस्तु पूर्वतः पूज्यो दक्षिणे चापि शङ्करः ॥ ४१ ॥

पश्चिमे तु रविर्देव ऋषयश्चोत्तरे तथा। मध्येस्वयं पद्मजन्मा सावित्री दक्षिणे तथा ॥
उत्तरे चैव गायत्री देवी पद्मदलेक्षणा। ऋग्वेदं पूर्वतो न्यस्य यजुर्वेदं च दक्षिणे ॥४३॥
पश्चिमे सामवेदं च अथर्वं चोत्तरे तथा। इतिहासपुराणानि च्छन्दो ज्यौतिषमेव च

धर्मशास्त्राणि चान्यानि इन्द्रादि दिक्षु विन्यसेत्।
पूर्वपत्रे बलं पूज्य प्रद्युम्नं दक्षिणे दले ॥ ४५ ॥

पश्चिमे चानिरुद्धं च वासुदेवमथोत्तरे। पूर्वतो वामदेवं च सद्यो जातं तु दक्षिणे ॥४६

ईशानं पश्चिमे स्थाप्यतत्पुरुषं चोत्तरे तथा। अघोरस्सर्वतः पूज्य एषा पूजा तु मण्डले
पूर्वतो भास्करं पूज्य दक्षिणेन दिवाकरम्। प्रभाकरं पश्चिमे तु ग्रहराजमथोत्तरे॥४८॥
एवं पूज्य विधानेन ब्रह्माणं परमेश्वरम्। दिङ्मण्डले तु विन्यस्य अष्टौ कुम्भान्विधानतः
ब्राह्मं तु कलशं मध्ये नवमं तत्र कल्पयेत्। स्नापयेन्मुक्तिकामं तु ब्रह्मणो वै घटेन तु॥
श्रीकामं वैष्णवेनेह कलशेन तु पार्थिव। राज्यार्थिनं स्नापयेच्च ऐन्द्रेण कलशेन च॥
द्रव्यप्रतापकामं तु आग्नेयघटवारिणा। मृत्युञ्जयविधानाय याम्येन स्नापयेन्नरम् ॥५२
दुष्टप्रध्वंसनायालं नैर्ऋतेन विधीयते। स्नापयेद्वारुणेनाशु पापनाशाय मानवम् ॥५३॥
शरीरारोग्यकामं तु वायव्येनाभिषेचयेत्। द्रव्यसम्पत्तिकामस्य कौबेरेण विधीयते॥
रौद्रेण ज्ञानकामस्य लोकपालघटास्त्विमे। एकैकेन नरः स्नात्वा सर्वदोषविवर्जितः॥
जायते ब्रह्मसदृशो राजा सद्योऽथ वा नरः। अथवा दिक्षु सर्वासु यथा सङ्ख्येन लोकपान्

पूजयेत्तु स्वनाम्ना तु कुम्भैरेव विधानतः।
एवं सम्पूज्य देवास्तु लोकपालान्प्रसन्नधीः॥ ५७॥
पश्चात्परीक्षिताञ्शिष्यान्बद्धनेत्रान्प्रवेशयेत्।
दग्ध्वाग्नेय्या धारणया वायुना विधुनेत्ततः॥ ५८॥
सोमेनाप्यायितान्कृत्वा श्रावयेत्समयांस्ततः।
न निन्द्याद् ब्राह्मणान्देवान्विष्णुं ब्राह्मणमेव च॥ ५९॥

इन्द्रमादित्यमग्निं च लोकपालान्ग्रहांस्तथा। गुरुं च ब्राह्मणं वापि मुनीन्द्रं पूर्वदीक्षितम्

एवं तु समयाञ्श्राव्य पश्चाद्धोमं तु कारयेत्।
ॐनमो भगवतेब्रह्मणे सर्वरूपिणे हुं फट् स्वाहा॥ ६१॥

षोडशाक्षरमन्त्रेण होमयेज्ज्वलितेऽनले। गर्भाधानादिकास्सर्वा आहुतीस्सम्प्रदापयेत्
तिसृभिस्तु व्याहृतिभिर्देवदेवस्य सन्निधौ। होमान्ते दीक्षितः पश्चाद्दापयेद्गुरुदक्षिणाम्
हस्त्यश्वयानशकटहेमधान्यादिकं नृप। दापयेद्गुरवे प्राज्ञो मध्यमे मध्यमं तथा॥६४॥
दापयेदपरे युग्मं सहिरण्यन्तु तद्गुरोः। एवं कृते तु यत्पुण्यं महत्सञ्जायते तथा॥६५॥
तन्न शक्यं निगदितुमपि वर्षशतैरपि। दीक्षितोऽथ पुरा भूत्वा पाद्मं वै शृणुयाद्यदि॥

तेन वेदाः पुराणानि सर्वमन्त्रास्ससङ्ग्रहाः ।
जप्तास्स्युः पुष्करे तीर्थे प्रयागे सिन्धुसागरे ॥ ६७ ॥
देवह्रदे कुरुक्षेत्रे वाराणस्यां विशेषतः । ग्रहणे विषुवे चैव यत्फलं जपतां भवेत् ॥६८॥
फलं शतगुणं तच्च पुष्करस्थं पितामहम् । दृष्ट्वाप्राप्नोति विविधान्कामान्कामयते यदि
पूजां वैधानिकीं कृत्वा दीक्षितो यः शृणोति च ।
देवा अपि तपः कृत्वा ध्यायन्ति च वदन्ति च ॥ ७० ॥
कदा मे भारतेवर्षे जन्मस्यादिति पार्थिव । दीक्षिताश्चभविष्यामः पाद्मं श्रोष्यामहे कदा
पाद्मं तु षोडशात्मानं न्यस्य देहे कदा वयम् ।
यास्यामस्तु परं स्थानं यद्गत्वा न पुनर्भवेत् ॥ ७२ ॥
एवं जल्पन्ति विबुधा मनसा चिन्तयन्ति च । ब्रह्मयज्ञं च कार्तिक्यांकदाद्रक्ष्यामहे नृप
एवं ते विधिरुद्दिष्टो मयाऽयं कुरुसत्तम । देवगन्धर्वयक्षाणां सर्वदा दुर्लभो ह्यसौ ॥
एवं यो वेत्ति तत्त्वेन यश्च पश्यति मण्डलम् । यश्चेमं शृणुयाच्चैव सर्वे मुक्ता इति श्रुतिः
अतः परं प्रवक्ष्यामि रहस्यमिदमुत्तमम् । येन लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिःपुष्टिश्चापि भवेन्नृणाम्
सर्वे ग्रहास्सदा सौम्या जायन्ते येन पार्थिव । आदित्यवारं हस्तेन पूर्वमादाय भक्तितः
भक्तैकेन क्षिपेत्तावद्यावत्सप्त च संख्यया । ततस्तु सप्तमे पूर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥
आदित्यं चैव सौवर्णं कृत्वा यत्नेन मानवः । रक्तवस्त्रयुगच्छन्नं छत्रिकां पादुके तथा
उपानहौ च दातव्ये स्थापयेत्ताम्रभाजने । घृतेन स्नपनं कृत्वा सम्पूर्णाङ्गं द्विजातये ॥
दापयेत्कृत्यविदुषे ब्राह्मणाय विशेषतः । एवं कृतौ फलं तस्य भवेदारोग्यमुत्तमम् ॥
द्रव्यसम्पत्समग्राप्तिरिति पौराणिकी क्रिया ।
अविसंवादिनी चेयं शान्तिपुष्टिप्रदा नृणाम् ॥ ८२ ॥
तद्वच्चित्रासु सङ्गृह्य सोमवारं विचक्षणः । रात्रिभक्षः क्षिपेदष्टौ सोमवारान्प्रयत्नतः ॥
प्रत्येकं ब्राह्मणा भोज्या यथाशक्ति विचक्षणाः ।
नवमे तु ततः पूर्णे कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ॥ ८४ ॥
वस्त्रयुग्मं च दातव्यं ततः सोमं प्रदापयेत् । कांस्यभाजनसंस्थं तु क्षीरसम्पूरितं ततः

तद्वच्छत्रं पादुके च तथोपानत्समन्वितम् । सम्पूर्णाङ्गाय दातव्यं ब्राह्मणाय विशेषतः ॥
स्वात्यामङ्गारकं पूज्य क्षपयेन्नक्तभोजनैः । अष्टावेवं च यावच्च कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम्
अङ्गारकं च सौवर्णं स्थापितं ताम्रभाजने । दापयेद्ब्राह्मणायाथ सम्पूर्णाङ्गाय चैव हि
नक्षत्रानुक्रमेणैव क्षिपेन्नक्तानि सप्त वै । अष्टमे तु क्रमात्खेटान्सौवर्णान्दापयेद् बुधः ॥
अग्निकार्यं च कुर्वीत यथा दृष्टं विधानतः । एवं कृते भवेद्यद्वै तन्निबोध नराधिप ॥
असौम्याश्चग्रहास्सर्वेसौम्यरूपा भवन्ति च । सर्वेरोगा विनश्यन्ति तुष्टिमायान्तिदेवताः

न विरुन्धन्ति तं नागाः पितरस्तर्पितास्तथा ।
दुस्स्वप्ननाशो भवति शृण्वतां पठतां तथा ॥ ९२ ॥

यदि भौमो रविसुतो भास्करोराहुणासह । केतुश्चमूर्ध्नि तिष्ठन्ति रौद्राःपीडाकराग्रहाः
अनेन कृतमात्रेण ससौभाग्या भवन्ति हि । य एवं कुरुते राजन्सदा भक्तिसमन्वितः ॥

तस्य सानुग्रहाःसर्वे शान्तिं गच्छन्ति नान्यथा ।
शनैश्चरं राहुकेतू लोहपात्रेषु विन्यसेत् ॥ ९५ ॥
लोहेन कारयेच्चैनान्ब्राह्मणेभ्यश्च दापयेत् ।
कृष्णं वस्त्रयुगं देयमेतेषां प्रीणनाय वै ॥ ९६ ॥
सौवर्णाङ्गाश्च दातव्याः शान्तिश्रीविजयेप्सुभिः ।
व्रतान्ते सर्व एते हि ग्रहास्सौवर्णका नृप ॥ ९७ ॥
दातव्याः शन्तिमिच्छद्भिर्व्रतान्ते द्विजभोजनम् ।
यथाशक्ति दक्षिणा च ग्रहाणां प्रीतये तथा ॥ ९८ ॥
अल्पायासेन राजेन्द्र सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।
शङ्कराज्ज्ञानमन्विच्छेदारोग्यं भास्करात्तथा ॥ ९९ ॥
हुताशनाद्धनं हीच्छेद् गतिमिच्छेज्जनार्दनात् ।
ब्राह्मयं पितामहाच्चैव सर्वजन्तुप्रशान्तिदम् ॥१०० ॥

भीष्म उवाच ।

यस्त्वयाकथितोयज्ञो यज्वनां तु फलं महत् । तथायुषस्स्वल्पतयाअन्यैःप्राप्तुंनशक्यते

स्वल्पायासेन यत्पुण्यं संवत्सरमुपोषणम् । भवेत्तन्मे मुनिश्रेष्ठ कथयस्व महाफलम् ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इदमर्थं महाराज श्वेतो राजा महायशाः । वसिष्ठं पृष्टवान्प्रश्नं क्षुधया पीडितो भृशम् ॥
आसीदिलावृते वर्षे श्वेतो राजा महाबलः । स महीं सकलां जिग्ये सप्तद्वीपां सपत्तनाम्
ब्रह्मपुत्रो वसिष्ठश्च आसीत्तस्य पुरोहितः । सकदाचिन्नृपश्रेष्ठो जित्वा परमधार्मिकः ॥
पुरोहितमुवाचेदं वसिष्ठं जपतां वरम् ।

श्वेत उवाच ।

भगवन्नश्वमेधानां सहस्रं कर्तुमुत्सहे ॥ ६ ॥
सुवर्णरूप्यरत्नानां दानं कर्तुं द्विजातिषु । पृथिव्यामन्नदानं तु दातुन्नेच्छामि वै गुरो
नान्नेन किंचिद्दत्तेन दत्ते हेम्नि द्विजे प्रभो ।

पुलस्त्य उवाच ।

न किंचिद्वस्त्विवति ज्ञात्वा न दत्तं तत्कदाचन ॥ ८ ॥
रक्तवस्त्रमलङ्कारं ग्रामांश्च नगराणि च । अददाद्ब्राह्मणेभ्योऽसौ श्वेतो राजामहायशाः
नान्नं जलं तेन राज्ञा दत्तमासीत्कदाचन । ततोऽश्वमेधैर्बहुभिर्यज्वाऽसौ नृपसत्तम ॥
स्वर्गं गतः पुण्यजिततपस्तप्त्वार्बुदत्रयम् । ब्राह्मीं सलोकतां प्राप्तःसर्वालङ्कारभूषितः ॥
नृत्यन्त्यप्सरसस्तत्र गायन्ते सिद्धयोषितः । तुम्बुरुर्नारदस्तत्र द्वावप्यनुगतौ सदा ॥
अगायेतां महाप्राज्ञौ मुनयश्च तपोऽन्विताः । वेदोक्तमन्त्रैः स्तुन्वन्ति अनेकक्रतुयाजिनम्
एवं विभवयुक्तस्य राज्ञस्तस्य महात्मनः । क्षुधया पीड्यते देहं तृष्णया च विशेषतः ॥
स तया पीड्यमानस्तुक्षुधयाराजसत्तमः । विमानेनाप्यसौ स्वर्गंत्यक्त्वाऽगादृक्षपर्वतम्
यत्रात्ममूर्तिस्तत्रागात्पुरा दग्धा महावने। तत्रास्थीनि स्वयं गृह्य लिहन्नास्तेसपार्थिवः
पुनर्विमानमारुह्य ययौ नाकं नराधिपः । अथ कालेन महता स राजा संशितव्रतः ॥
स्वान्यस्थीनि लिहन्दृष्टोवसिष्ठेनपुरोधसा । उक्तश्च किन्नुराजेन्द्रस्वास्थिभक्षोनराधिप
एवमुक्तस्ततो राजा वसिष्ठेन महर्षिणा । उवाच वचनं चेदं श्वेतो राजाऽथ तं मुनिम्
भगवंस्तृट्क्षुधार्तोऽहमन्नदानं पुरा मया । न दत्तं मुनिशार्दूल तेन मांक्षुत्प्रबाधते ॥

एवमुक्तस्तदा राज्ञा वसिष्ठो मुनिपुङ्गवः। उवाच तं नृपं भूयो वाक्यमेतन्महामुनिः ॥
किंते करोमि राजेन्द्र क्षुधितस्य विशेषतः। वस्तु कस्यापि किञ्चिद्धि नादत्तमुपतिष्ठति
रत्नहेमप्रदानेन भोगवाञ्जायते नरः। अन्नदानप्रदानेन सर्वकामैः प्रदीपितः।

तन्न दत्तं त्वया राजन्स्तोकं मत्वा नराधिप ॥ १२३ ॥

श्वेत उवाच।

अदत्तस्य च सम्भूतिर्यथा भवति मे गुरो। वसिष्ठ त्वत्प्रसादेन तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥

वसिष्ठ उवाच।

अस्त्येकं कारणं येन जायते नात्र संशयः। तच्छृणुष्व नरव्याघ्र कथ्यमानं मया तव ॥
आसीद्राजा पुरा कल्पे विनीताश्वेति कीर्तितः। स चाश्वमेधमारेभे यज्ञंकर्तुं वरं नप ॥

यजनान्ते द्विजेन्द्रेभ्यो दत्तं गोऽश्वादि याचितम्।

नान्नं दत्तं तेन किञ्चित्स्वल्पं मत्वा यथा त्वया ॥ १२७ ॥

ततः कालेन महता मृतोऽसौ जाह्नवीतटे। मायापुर्यां विनीताश्वः सार्वभौमोऽभवन्नृप

स्वर्गं च गतवान्सोऽपि यथा राजा भवान्प्रभो।

असावपि क्षुधाविष्ट एवमेवागतोऽभवत् ॥ १२६ ॥

मर्त्यलोके नदीतीरे गङ्गायां नालपर्वते। विमानेनार्कवर्णेन भास्वता देववन्नृप ॥१३०॥
ददर्श तत्स्वकं देहं तथा स्वं च पुरोहितम्। होतारं ब्राह्मणं नाम यजन्तं जाह्नवीतटे ॥
तं दृष्ट्वासावपि पुनः पर्यपृच्छद्द्विजोत्तमम्। क्षुधायाः कारणं राजन्सहोता तमुवाच ह
तिलधेनुं च वै राजन्घृतधेनुं च सत्तम। जलधेनुं च धेनुं च रसधेनुं च पार्थिव ॥१३३॥
देहि शीघ्रं येन भवांस्तृट्क्षुधावर्जितो दिवि। रमेत यावदादित्यस्तपते दिवि चन्द्रमाः
एवमुक्तस्ततो राजा तं पुनः पृष्टवानिदम्। तिलधेनुस्थितिं ब्रूहि तथा कृत्वा ददाम्यहम्

पुरोहित उवाच।

विधानं तिलधेनोस्तु तच्छृणुष्व नराधिप।

धेनुस्स्यात्षोडशाढक्या चतुर्भिर्वत्सको भवेत् ॥ १३६ ॥

इक्षुदण्डमयाः पादादन्ताः पुष्पमयाःशुभाः। नासा गन्धमयी तस्या जिह्वा गुडमयीतथा

पुच्छेस्त्रक्कल्पनीयास्याद्घण्टाभरणभूषिता। ईदृशीं कल्पयित्वातु स्वर्णश्रृङ्गींतु कल्पयेत्
रौप्यखुरां कांस्यदोहां पूर्वधेनुविधानतः। कृत्वा तां ब्राह्मणायाशु दापयेन्मन्त्रतो नृप

स्थितां कृष्णाजिने धेनुं वासोभिर्गोपितां शुभाम्।
सूत्रेणासूत्रितां कृत्वा पञ्चरत्नसमन्विताम्॥ १४०॥

सर्वौषधिसमायुक्तांमन्त्रपूतांतुदापयेत्। अन्नंमेजायतां सद्यःपानंसर्वरसास्तथा॥१४१॥

कामान्सम्पादयास्माकं तिलधेनो द्विजेऽर्पिता।
गृह्णामि देवि त्वां भक्त्या कुटुम्बार्थे विशेषतः॥ १४२॥

देहिकामान्वितान्सर्वांस्तिलधेनो नमोऽस्तुते। एवंविधानतो दत्ता तिलधेनुर्नृपोत्तम॥
सर्वकामसमावाप्तिं कुरुते नात्र संशयः। जलधेनुस्तथैवेह कुम्भैरेव प्रकल्पिता॥१४४॥
दत्ता तु विधिनाकामान्सद्यःसर्वान्प्रयच्छति। धेनुशतं तथा दत्तं पूर्णिमानियमेन हि॥
सावित्री इव वै स्वर्गे सर्वकामप्रदा भवेत्। घृतधेनुस्तथा दत्ता विधानेन विचक्षणैः॥
सर्वकामसमावाप्तिं कुरुते कान्तिदा भवेत्। रसधेनुस्तथा दत्ता कार्तिकेमासि पार्थिव

सर्वान्कामान्प्रयच्छेत्तु नित्यं सा गतिदा भवेत्।
एतत्ते सर्वमाख्यातं समासाद्बहुविस्तरम्॥ १४८॥

अपारं फलमुद्दिष्टं ब्रह्मणा सर्वकर्मणा। तृष्णया क्षुधया यद्वा पीडितो राजसत्तम॥
तद्दानं कार्तिके देयं पूर्वंदेहि नराधिप। ब्रह्माण्डं सर्वसम्पन्नं भूतरत्नौषधीयुतम्॥१५०॥
देवदानवयक्षैश्च युक्तमेतत्सदा विभो। एतत्तु सकलं कृत्वा सर्वतो रजतान्वितम्॥१५१
सुरत्नसूर्यचन्द्राढ्यं कार्तिके द्वादशीदिने। अथवा पञ्चदश्यां तु कार्तिकस्यैव नान्यतः॥
पुरोहिताय गुरवे दापयेद्भक्तिमान्नरः। ब्रह्माण्डोदरवर्तीनि यानि भूतानि पार्थिव॥१५३
तानि दत्तानि वै तेन समासात्कथितं तव। यद्यज्ञैर्यजतो राजन्समाप्तवरदक्षिणैः॥१५४
सर्वं फलं तत्खण्डस्य ब्रह्माण्डस्य विशेषतः। यःपुनःसकलं चेदं ब्रह्माण्डंप्रदिशेन्नरः॥

तेन जप्तं हुतं दत्तं पठितं कीर्तितं भवेत्।

राजोवाच।

विधिं ब्रह्माण्डदानस्य कृत्वा तन्मोक्षभाग्भवेत्॥ १५६॥

कालं देशं विप्रतीर्थं सर्वं त्वं वद मेऽनघ । कृतेन येन सर्वस्य फलभागी भवाम्यहम् ॥
कुत्सितस्यास्य भावस्य क्षमस्मात्स्यादचिराच्च मे ।

वसिष्ठ उवाच ।

एवं श्रुत्वा ततो राजन्पुरोधास्तस्य स द्विजः ॥ ५८ ॥
ब्रह्माण्डं कारयामास सौवर्णं सर्वधातुभिः । युतं निष्कसहस्रेण पद्मं तत्र ह्यकल्पयत्
तत्र ब्रह्मातस्य मध्ये पद्मरागैरलङ्कृतः । सावित्र्या चैव गायत्र्या ऋषिभिर्मुनिभिःसह ॥
नारदाद्याःसुताःसर्वे इन्द्राद्याश्च दिवौकसः । सौवर्णविग्रहाःसर्वे ब्रह्मणस्तु पुरःसराः ॥
वराहरूपी भवगवाँल्लक्ष्म्यासह सनातनः । नीलं मरकतं चैव भूषायां तस्य कारयेत् ॥
गोमेदैस्तस्य वैशोभां कारयेत च बुद्धिमान् ।
मौक्तिकैश्चापि सोमस्य शोभां वज्रैर्दिवाकरे ॥ १६३ ॥
ग्रहाणां चैव सर्वेषां सुवर्णानिच दापयेत् । स्वर्णात्सप्तगुणंरौप्यं रौप्यात्ताम्रं तथाविधम्
ततःसप्तगुणं कार्यं कांस्यंसप्तगुणं तथा । कांस्यात्सप्तगुणं कार्यं त्रपु चैव नराधिप ॥
त्रपुसप्तगुणं सीसं सीसाल्लोहं च कारयेत् । सप्तद्वीपाःसमुद्राश्च सप्तवै कुलपर्वताः ॥
अनयासङ्ख्यया कृत्वा निपुणैःशिल्पिभिस्ततः। पादपादीनि भूतानि राजतान्येव कारयेत
आरण्यानि च सत्त्वानि सौवर्णानि च कारयेत् ।
वृक्षान् वनस्पतीन्गुल्मतृणपर्णानि वीरुधः ॥ १६८ ॥
सर्वं प्रकल्प्य विधिवत्तीर्थे देयं विचक्षणः । कुरुक्षेत्रे गयायां च प्रयागेऽमरकण्टके ॥
द्वारवत्यां प्रभासे च गङ्गाद्वारे च पुष्करे । तीर्थेष्वेतेषु वै देयं ग्रहणे शशिसूर्ययोः ॥
दिनच्छिद्रेषु सर्वेषु अयने दक्षिणोत्तरे । व्यतीपाते बहुगुणं विषुवे च विशेषतः ॥
दातव्यमेतद्राजेन्द्र विचारं नैव कारयेत् । शालाग्निहोत्रिणं कृत्वा सुरूपं च गुणान्वितम्
सपत्नीकं च सम्पूज्य भूषयित्वा च भूषणैः । पुरोहितं मुख्यतमं कृत्वान्ये च तथाद्विजाः
चतुर्विंशद्गुणोपेताःसपत्नीका निमन्त्रिताः । अङ्गुलीयानि च तथा कर्णवेष्टं च दापयेत्
एवंविधांस्तु तान्पूज्य तेषामग्रे सुसंस्थितः । अष्टाङ्गप्रणिपातेन प्रणम्य च पुनःपुनः ॥
पुरोहिताय पुरतः कृत्वा वै करसम्पुटम् । यूयं वै ब्राह्मणाःप्रीता मैत्रत्वेनानुगृह्णत ॥१७६

सौमुख्येन द्विजश्रेष्ठा भूयःपूततरस्त्विह । भवतां प्रीतियोगेन स्वयं प्रीतःपितामहः ॥१७७॥
ब्रह्माण्डेन तु दत्तेन तोषं यातु जनार्दनः । पिनाकपाणिर्भगवाञ्छक्रश्च त्रिदशेश्वरः ॥
एते तोषं समायान्तु अनुध्यानाद्द्विजोत्तमाः ।
एवं स्तुत्वा ततो राजा ब्राह्मणान्वेदपारगान् ॥ १७९ ॥
ब्रह्माण्डं तु गुरोःप्रादात्सविधानं पुनःक्षणात् । सर्वकामैस्ततस्तृप्तो ययौ स्वर्गं नराधिप
तेनैव गुरुणा तच्च विभक्तं ब्राह्मणैःसह । दत्तं तेनापि चान्येभ्यो ब्रह्माण्डं च नराधिप ॥
ब्रह्माण्डे भूमिदाने च ग्राही चैकोन वै भवेत् । गृह्णन्दोषमवाप्नोति ब्रह्महत्यां न संशयः ॥
सर्वेषां चैव प्रत्यक्षं दातव्यं परिकीर्त्यं वै । दीयमानं च पश्यन्ति तेऽपि पूता भवन्ति हि
दर्शनादेव ते मुक्ता भवन्त्येव न संशयः । या भीमद्वादशी प्रोक्ता स्वर्णतोय मृगाजिनम्
एतानि कृत्वा पश्यन्तु दृष्टैरेतैःक्रियाफलम् । अयत्नादेव लभ्येत कर्तुश्चैव सलोकता ॥
सदा गावःप्रणम्याश्च मन्त्रेणानेन पार्थिव । नमो गोभ्यःश्रीमतीभ्यःसौरभेयीभ्य एव च
नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः ।
मन्त्रस्य चास्यस्मरणाद्गोदानफलमाप्नुयात् ॥ १८७ ॥
तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र पुष्करे तीर्थ उत्तमे । कार्तिक्यां तु विशेषेण गोदान फलमाप्स्यसि
यत्किञ्चिद्विद्यते पापं स्त्रियो वा पुरुषस्य वा । पुष्करे स्नानमात्रेण तदशेषं प्रणश्यति ॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि आसमुद्रात्तु भारत ।
पुष्करे तान्युपायान्ति कार्तिक्यां तु विशेषतः ॥ १९० ॥
इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे ब्रह्माण्डदानं नामषट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥

सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः

अन्नदानमाहात्म्यवर्णनप्रस्तावाद्रामकथानकवर्णनम् ।

भीष्म उवाच ।

उक्तं भगवता सर्वं पुराणाश्रयसंयुतम् । तथा श्वेतेन ब्रह्माण्डं गुरवे प्रतिपादितम् ॥१॥

श्रुत्वैतत्कौतुकं जातं यथा तेनास्थिलेहनम् । कृतंक्षुधापनोदार्थे अन्नदानाद्विना द्विज ॥
तदहं श्रोतुमिच्छामि पृथिव्यां ये च पार्थिवाः । अन्नदानाद्दिवंप्राप्ताःकृतवश्चान्नमूलकाः
कथं तस्यमतिर्नष्टा श्वेतस्य च महात्मनः । न दत्तं तेनान्नदानमृषिभिर्वा न दर्शितम् ॥
अहो माहात्म्यमन्नस्य इह दत्तस्य यत्फलम् । परत्रभुज्यते पुम्भिःस्वर्गश्चाक्षयतां व्रजेत्
अन्नदानं परंविप्राःकीर्तयन्ति सदोत्थिताः । अन्नदानात्सुरेन्द्रेण त्रैलोक्यमिह भुज्यते ॥
शतक्रतुरिति प्रोक्तः सर्वैरेव द्विजोत्तमैः । तेनावस्थां तत्सदृशीं प्राप्तावांस्त्रिदशेश्वरः ॥
दानादेव गतःस्वर्गं त्वत्तःसर्वंश्रुतं दयाः । अपरं च पुरावृत्तं निवृत्तं यदि कर्हिचित् ॥

भूयोऽपि श्रोतुमिच्छामि तन्मे वद महामते ।

पुलस्त्य उवाच ।

एतदाख्यानकं पूर्वमगस्त्येन महात्मना ॥ ६ ॥
रामाय कथितं राजंस्तत्ते वक्ष्यामि साम्प्रतम् ।

भीष्म उवाच ।

कस्मिन्वंशसमुत्पन्नो रामोऽसौ नृपसत्तमः ॥ १० ॥
यस्यागस्त्येन कथितश्चेतिहासःपुरातनः ।

पुलस्त्य उवाच ।

रघुवंशे समुत्पन्नो रामो नाम महाबलः ॥ ११ ॥

देवकार्यं कृतं तेन लङ्कायां रावणो हतः । पृथिवी राज्यसंस्थस्य ऋषयोऽभ्यागता गृहे
प्राप्तास्ते तु महात्मानो राघवस्य निवेशनम् । प्रतीहारस्ततो राममगस्त्यवचनाद्द्रुतम्
आवेदयामास ऋषीन्प्राप्तांस्तांश्च त्वरान्वितः । दृष्ट्वा रामं द्वारपालःपूर्णचन्द्रमिवोदितम्

द्वारपाल उवाच ।

कौसल्यासुत भद्रं ते सुप्रभाताद्यशर्वरी । द्रष्टुमभ्युदयन्तेऽद्य सम्प्राप्तो रघुनन्दन ॥१५॥
अगस्त्यो मुनिभिःसार्धं द्वारि तिष्ठति ते नृप ।

पुलस्त्य उवाच ।

श्रुत्वा प्राप्तान्मुनीन्रामस्तान्भास्करसमद्युतीन् ॥ १६ ॥

प्राह वाक्यं तदा द्वाःस्थं प्रवेशय त्वरान्वितः ।
किमर्थं तु त्वया द्वारि निरुद्धा मुनिसत्तमाः ॥ १७ ॥
रामवाक्यान्मुनींस्तांस्तु प्रावेशयद्यथासुखम् ।
दृष्ट्वा तु तान्मुनीन्प्राप्तान्प्रत्युवाच कृताञ्जलिः ॥ १८ ॥
रामोऽभिवाद्य प्रणत आसनेषु न्यवेशयत् । ते तु काञ्चनचित्रेषु स्वास्तीर्णेषु सुखेषु च
कुशोत्तरेषु चासीनाःसमन्तान्मुनिपुङ्गवाः । पाद्यमाचमनीयं च ददौ चार्घ्यं पुरोहितः ॥
रामेण कुशलं पृष्टा ऋषयःसर्व एव ते । महर्षयो वेदविद इदं वचनमब्रुवन् ॥ २१ ॥

ऋषय ऊचुः ।

कुशलं नो महाबाहो सर्वत्र रघुनन्दन । त्वां तु दिष्ट्या कुशलिनं पश्यामो हतविद्विषम्
हृता सीताऽतिपापेन रावणेन दुरात्मना । पत्नी ते रघुशार्दूल तस्या एवौजसा हतः ॥
असहायेन चैकेन त्वया राम रणे हतः । यादृशं ते कृतं कर्म तस्य कर्ता न विद्यते ॥२४
इह सम्भाषितुं प्राप्ता दृष्ट्वा पूताःस्म साम्प्रतम् । दर्शनात्तव राजेन्द्र सर्वेजातास्तपस्विनः
रावणस्य वधात्तेऽद्य कृतमश्रुप्रमार्जनम् । दत्त्वा पुण्यामिमां वीर जगत्यभयदक्षिणाम्
दिष्ट्या वर्धसि काकुत्स्थ जयेनामितविक्रम ।
दृष्टस्सम्भाषितश्चासि यास्यामश्चाश्रमान्स्वकान् ॥ २७ ॥
अरण्यं ते प्रविष्टस्य मया चेन्द्रशरासनम् । अर्पितं चाक्षयौ तूणौ कवचं च परन्तप ॥
भूयोऽप्यागमनं कार्यमाश्रमे मे रघूद्वह ।

पुलस्त्य उवाच ।

एवमुक्त्वा तु ते सर्वे मुनयोऽन्तर्हिता भवन् ॥ २९ ॥
गतेषु मुनिमुख्येषु रामो धर्मभृतांवरः । चिन्तयामास तत्कार्यं किं स्यान्मे मुनिनोदितम्
भूयोऽप्यागमनं कार्यमाश्रमे रघुनन्दन । अवश्यमेवगन्तव्यं मयागस्त्यस्यसन्निधौ ॥
श्रोतव्यं देवगुह्यं तु कार्यमन्यच्च यद्वदेत् । एवं चिन्तयतस्तस्य रामस्यामिततेजसः ॥
करिष्ये नियतं धर्मं धर्मोहि परमा गतिः । स तु वर्षसहस्राणि दशराज्यमकारयत् ॥
ददतो जुह्वतश्चैव जग्मुस्तान्येकवर्षवत् । प्रजाःपालयतस्तस्य राघवस्य महात्मनः ॥३४

एतस्मिन्नेवदिवसे वृद्धो जानपदो द्विजः। मृतं पुत्रमुपादाय राजद्वारमुपागतः ॥ ३५ ॥
उवाच विविधं वाक्यं स्नेहाक्षरसमन्वितम्।

ब्राह्मण उवाच।

दुष्कृतं किन्नु मे पुत्र पूर्वदेहान्तरे कृतम् ॥ ३६ ॥
त्वामेकपुत्रं यदहं पश्यामि निधनं गतम्। अप्राप्तयौवनं बालं पञ्चवर्षं गतायुषम् ॥३७॥
अकाले कालमापन्नं दुःखाय ममपुत्रक। अकृत्वा पितृकार्याणि गतौ वैवस्वतक्षयम् ॥
रामस्य दुष्कृतं व्यक्तं येन ते मृत्युमागतः। बालवध्या ब्रह्मवध्या स्त्रीवध्या चैव राघवम्
प्रवेक्ष्यति न सन्देहःसभार्ये तु मृते मयि।

पुलस्त्य उवाच।

शुश्राव राघवःसर्वं दुःखशोकसमन्वितम् ॥ ४० ॥
निवार्य तं द्विजं रामो वसिष्ठं वाक्यमब्रवीत्।

राम उवाच।

किं मयाद्य च कर्तव्यं कार्यमेवंविधे स्थिते ॥ ४१ ॥
प्राणानहं जुहोम्यग्नौ पर्वताद्वा पते ह्यहम्। कथं शुद्धिमहंयामि श्रुत्वा ब्राह्मणभाषितम्

पुलस्त्य उवाच।

वसिष्ठस्याग्रतःस्थित्वा राज्ञोदीनस्य नारदः। प्रत्युवाच श्रुतंवाक्यमृषीणां सन्निधौ तदा

नारद उवाच।

शृणु रामयथाऽकाले प्राप्तो वै बालसंक्षयः। पुराकृतयुगे राम सर्वत्र ब्राह्मणोत्तरम् ॥
अब्राह्मणो न वै कश्चित्तपस्तपति राघव। अमृत्यवस्तदा सर्वे जायन्ते चिरजीविनः ॥
त्रेतायुगे पुनःप्राप्ते ब्रह्मक्षत्रमनुत्तमम्। अधर्मो द्वापरे तेषां वैश्याञ्छूद्रांस्तथाविशत् ॥
एवं निरन्तरं जुष्टमुद्भूतमनृतं पुनः। अधर्मस्य त्रयःपादा एको धर्मस्य चागतः ॥४७॥
ततःसर्वे भृशंत्रस्ता वर्णा ब्राह्मणपूर्वकाः। भूयःपादस्तु धर्मस्य द्वितीयःसमपद्यत ॥
तस्मिन्द्वापरसंज्ञेतु तपो वैश्यं समाविशत्। युगत्रयस्य वै धर्म्यं धर्मस्य प्रतितिष्ठति
कलिसंज्ञे ततः प्राप्ते वर्तमाने युगेऽन्तिमे। अधर्मश्चानृतं चैव ववृधाते नरर्षभ ॥ ५० ॥

न शूद्रो लभते कर्तुं तपउग्रं नरर्षभ । भविता शूद्रयोन्यां तु तपश्चर्या कलौयुगे ॥ ५१ ॥
स ते विषयपर्यन्ते राजन्नुग्रतरन्तपः । शूद्रस्तपति दुर्बुद्धिस्तेन बालवधःकृतः ॥ ५२ ॥
यस्याधर्ममकार्यं वा विषये पार्थिवस्य हि । पुरे वा राजशार्दूल कुरुते दुर्मतिर्नरः ॥
क्षिप्रं स नरकं याति यावदाभूतसम्प्लवम् । चतुर्थं तस्य पापस्य भागमश्नाति पार्थिवः
स त्वं पुरुषशार्दूल गच्छस्व विषयं स्वकम् । दुष्कृतं यत्र पश्येथास्तत्र यत्नं समाचर ॥
एवं ते धर्मवृद्धिश्च बलस्य वर्धनं तथा । भविष्यति नरश्रेष्ठ बालस्यास्य च जीवनम् ॥

पुलस्त्य उवाच ।

नारदेनैवमुक्तस्तु साश्चर्यो रघुनन्दनः । प्रहर्षमतुलं लेभे लक्ष्मणं चेदमब्रवीत् ॥ ५७ ॥

राम उवाच ।

गच्छ सौम्य द्विजश्रेष्ठं समाश्वासय लक्ष्मण ।
बालस्य च शरीरं त्वं तैलद्रोण्यां निधापय ॥ ५८ ॥
गन्धैश्च परमोदारैस्तैलैश्चैव सुगन्धिभिः ।
यथा न शीर्यते बालस्तथा सौम्य विधीयताम् ॥ ५९ ॥

यथा शरीरं गुप्तं स्याद्बालस्याक्लिष्टकर्मणः । विपत्तिःपरिभेदो वा न भवेत्तत्तथा कुरु

पुलस्त्य उवाच ।

तथा सन्दिश्य सौमित्रिं लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ।
मनसा पुष्पकं दध्यावागच्छेति महायशाः ॥ ६१ ॥

इङ्गितं तत्तु विज्ञाय कामगं हेमभूषितम् । आजगाम मुहूर्त्तात्तु समीपं राघवस्य हि ॥
सोऽब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यमहमस्मि नराधिप । अग्रे तव महाबाहो किङ्करःसमुपस्थितः ॥
भाषितं सुचिरं श्रुत्वा पुष्पकस्य नराधिप । अभिवाद्यमहर्षीस्तान्विमानंसोऽध्यरोहत
धनुर्गृहीत्वा तूणौ च खड्गं चापि महाप्रभम् । निक्षिप्य नगरेवीरौसौमित्रि भरतावुभौ
प्रायात्प्रतीचीं त्वरितो विचिन्वन्सुसमाहितः। उत्तरामगमत्पश्चाद्दिशंहिमवदाश्रिताम् ॥

पूर्वामपि दिशां गत्वा तथापश्यन्नराधिपः ।
सर्वां शुद्धसमाचारामादर्शमिव निर्मलाम् ॥ ६७ ॥

ततो दिशं समाक्रामद्दक्षिणां रघुनन्दनः । शैलस्य चोत्तरे पार्श्वे ददर्श सुमहत्सरः ॥
तस्मिन्सरसि तप्यन्तं तापसं सुमहत्तपः । ददर्श राघवो भीमं लम्बमानमधोमुखम् ॥
तमुपागम्य काकुत्स्थस्तप्यमानं तु तापसम् । उवाच राघवो वाक्यं धन्यस्त्वममरप्रभ
कस्यां योनौ तपोवृद्धिर्वर्तते दृढनिश्चय । अहं दाशरथी रामःपृच्छामि त्वां कुतूहलात्

कोऽर्थो व्यवसितस्तुभ्यं स्वर्गलोकोऽथवेतरः ।
किमर्थं तप्यसे वा त्वं श्रोतुमिच्छामि तापस ॥ ७२ ॥
ब्राह्मणो वाऽसि भद्रं ते क्षत्रियो वाथ दुर्जयः ।
वैश्यस्तृतीयवर्णो वा शूद्रो वा सत्यमुच्यताम् ॥ ७३ ॥

तपःसत्यात्मकं नित्यं स्वर्गलोकपरिग्रहे । सात्विकं राजसं चैवतच्चसत्यात्मकं तपः ॥
जगदुपकारहेतुर्हि सृष्टं तद्वै विरिञ्चिना । रौद्रक्षत्रियतेजोजं तत्तु राजसमुच्यते ॥
परस्योत्सादनार्थाय तच्चासुरमुदाहृतम् । अङ्गानि निह्नुते यो वा असृग्दिग्धानि भागशः
पञ्चाग्निं साधयेद्वापि सिद्धिं वा मृत्युमेव वा । आसुरो ह्येष ते भावो नच मेत्वंद्विजोमतः
सत्य ते वदतःसिद्धिरनृते नास्तिजीवितम् । तस्यतद्भाषितं श्रुत्वा रामस्याक्लिष्टकर्मणः

अवाक्छिरास्तथा भूतो वाक्यमेतदुवाच ह ।

शूद्रतापस उवाच ।

स्वागतं ते नृपश्रेष्ठ चिराद्दृष्टोऽसि राघव ॥ ७६ ॥

पुत्रभूतोऽस्मि ते चाहं पितृभूतोऽसि मेऽनघ । अथवा नैतदेवं हि सर्वेषां नृपतिः पिता
सत्वमर्च्योऽसिभोराजन्वयंते विषये तपः । चरामस्तत्रभागोऽस्ति पूर्वंसृष्टःस्वयम्भुवा
न धन्याःस्मोवयंरामधन्यस्त्वमसिपार्थिव । यस्य ते विषयेह्येवंसिद्धिमिच्छन्तितापसाः
तपसा त्वं मदीयेन सिद्धिमाप्नुहि राघव । यदेतद्भवता प्रोक्तं योनौ कस्यां तु ते तपः
शूद्रयोनिप्रसूतोऽहं तपउग्रं समास्थितः । देवत्वं प्रार्थये राम स्वशरीरेण सुव्रत ॥८४॥
न मिथ्याहं वदे भूपदेवलोकजिगीषया । शूद्रं मां विद्धि काकुत्स्थ शम्बूकं नामनामतः

पुलस्त्य उवाच ।

भाषतस्तस्य काकुत्स्थःखड्गंतु रुचिरप्रभम् । निष्कृष्यकोशाद्विमलंशिरश्छिच्छेदराघव

तस्मिञ्छूद्रेहतेदेवाःसेन्द्राश्चाग्निपुरोगमाः । साधुसाध्वितिकाकुत्स्थंप्रशशंसुर्मुहुर्मुहुः ॥
पुष्पवृष्टिश्चमहतीदेवानांसुसुगन्धिनी । आकाशाद्विप्रमुक्तातु राघवं सर्वतोऽकिरम् ॥
सुप्रीताश्चाब्रुवन्देवा रामं वाक्यविदांवरम् ।

देवा ऊचुः ।

सुरकार्यमिदंसौम्य कृतं ते रघुनन्दन ॥ ८९ ॥
गृहाण च वरं राम यमिच्छसि महाव्रत ।

पुलस्त्य उवाच ।

देवानां भाषितं श्रुत्वा राघवःसुसमाहितः ॥ ९० ॥
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं सहस्राक्षं पुरन्दरम् ।

राम उवाच ।

यदि देवाःप्रसन्ना मे वराहो यदि वाप्यहम् ॥ ९१ ॥
कर्मणा यदि मे प्रीता द्विजपुत्रः स जीवतु । वरमेतद्धि भवतां कांक्षितं परमं हि मे ॥
ममापराधाद्बालोऽसौ ब्राह्मणस्यैकपुत्रकः । अप्राप्तकालःकालेन नीतो वैवस्वतक्षयम्
तं जीवयत भद्रं वो नानृतीस्यामहं गुरोः । द्विजस्य संश्रुतो ह्यर्थो जीवयिष्यामि तेसुतम्
मदीयेनायुषाबालं पादेनार्द्धेन वा सुराः । जीवेदयं वरो मह्यं वरकोऽप्यधिकोवृतः ॥९५॥

पुलस्त्य उवाच ।

राघवस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा विबुधसत्तमाः ।
प्रत्यूचुस्ते महात्मानं प्रीताःप्रीतिसमन्विताः ॥ ९६ ॥

देवा ऊचुः ।

निर्वृतो भव काकुत्स्थ ब्राह्मणस्यैकपुत्रकः । जीवितं प्राप्तवान्भूयःसमेतश्चापिबन्धुभिः
यस्मिन्मुहूर्ते काकुस्थ शूद्रोऽयं विनिपातितः । तस्मिन्मुहूर्ते सहसा जीवेन समयुज्यत
स्वस्ति प्राप्नुहि भद्रं ते साधयामःपरंतपः । अगस्त्यस्याश्रमपदे द्रष्टारस्महामुनिम् ॥
स तथेति प्रतिज्ञाय देवानां रघुनन्दनः । आरुरोह विमानं तं पुष्पकं हेमभूषितम् ॥

इति श्री पाद्मपुराणेप्रथमेसृष्टिखण्डेशूद्रतापसवधो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

रामस्यागस्त्याश्रमगमनवर्णनम् ।

पुलस्त्य उवाच ।

ततो देवाःप्रयातास्तैर्विमानैर्बहुभिरतदा । रामोऽप्यनुजगामाशु कुम्भयोनेस्तपोवनम् ॥
उक्तं भगवता तेन भूयोऽप्यागमनं कृथाः । पूर्वमेव सभायां च यो मां द्रष्टुं समागतः
तदहं देवतादेशात्तत्कार्यार्थे महामुनिम् । पश्यामि तं मुनिं गत्वा देवदानवपूजितम् ॥
उपदेशं च मे तुष्टःस्वयं दास्यति सत्तमः । दुःखी येन पुनर्मर्त्ये न भवामि कदाचन ॥४॥
पिता दशरथो मह्यं कौसल्या जननी तथा । सूर्यवंशे समुत्पन्नस्तथाप्येवं सुदुःखितः ॥
राज्यकाले वनेवासो भार्यया चानुजेन च । हरणं चापि भार्याया रावणेन कृतं मम ॥
असहायेनतु मया तीर्त्वा सागरमुत्तमम् । रुद्ध्वातु तां पुरीं सर्वां कृत्वातस्यकुलक्षयम्
दृष्ट्वा सीता मया त्यक्ता देवानां तु पुरस्तदा । शुद्धांतांमां तथोचुस्ते मया सीतातथागृहम्
समानीता प्रीतिमता लोकवाक्याद्विसर्जिता । वने वसति सा देवी पुरेचाहं वसामि वै
जातोऽहमुत्तमे वंश उत्तमोऽहं धनुष्मताम् । उत्तमं दुःखमापन्नो हृदयं नैव भिद्यते ॥
वज्रसारस्य सारेण धात्राहं निर्मितो ध्रुवम् । इदानीं ब्राह्मणादेशाद्भ्रमामि धरणीतले ॥

तपःस्थितस्तु शूद्रोऽसौ मया पापो निपातितः ।
देववाक्यात्तु मे भूयः प्राणो मे हृदि संस्थितः ॥ १२ ॥

पश्यामि तं मुनिं वन्द्यं जगतोऽस्य हिते रतम् । दृष्टेन मे तथा दुःखं नाशमेष्यति सत्वरम्
उदयेनसहस्रांशोर्हिमं यद्वद्विलीयते । तद्वन्मे दुःखसम्प्राप्तिः सर्वथा नाशमेष्यति ॥१४॥

दृष्ट्वा च देवान्सम्प्राप्तानगस्त्यो भगवानृषिः ।
अर्घ्यमादाय सुप्रीतः सर्वांस्तानभ्यपूजयत् ॥ १५ ॥

ते तु गृह्य ततः पूजां सम्भाष्यचमहामुनिम् । जग्मुस्ते त्रिदशा हृष्टा नाकपृष्ठं सहानुगाः
गतेषु तेषु काकुत्स्थः पुष्पकादवरुह्य च । अभिवादयितुं प्राप्तः सोऽगस्त्यमृषिमुत्तमम्

राम उवाच ।

सुतो दशरथस्याहं भवन्तमभिवादितुम् । आगतो वै मुनिश्रेष्ठ सौम्येनेक्षस्व चक्षुषा ॥
निर्धूतपापस्त्वां दृष्ट्वा भवामीह न संशयः ।

पुलस्त्य उवाच ।

एतावदुक्त्वा स मुनिमभिवाद्य पुनः पुनः ॥ १६ ॥
कुशलं भृत्यवर्गस्य मृगाणां तनयस्य च । भगवद्दर्शनाकांक्षी शूद्रं हत्वा त्विहागतः ॥

अगस्त्य उवाच ।

स्वागतं ते रघुश्रेष्ठ जगद्वन्द्य सनातन । दर्शनात्तव काकुत्स्थ पूतोऽहं मुनिभिः सह ॥
त्वत्कृते रघुशार्दूल गृहाणार्घं महाद्युते । स्वागतं नरशार्दूल दिष्ट्या प्राप्तोऽसि शत्रुहन् ॥
त्वं हि नित्यं बहुमतो गुणैर्बहुभिरुत्तमैः । अतस्त्वं पूजनीयो वै मम नित्यं हृदि स्थितः
सुरा हि कथयन्ति त्वां शूद्रघातिनमागतम् । ब्राह्मणस्य च धर्मेण त्वया वै जीवितः सुतः
उष्यतां चेह भगवन्सकाशे मम राघव । प्रभाते पुष्पकेणासि गन्ताऽयोध्यां महामते ॥
इदं चाभरणं सौम्य सुकृतं विश्वकर्मणा । दिव्यं दिव्येन वपुषा दीप्यमानं स्वतेजसा ॥
प्रतिगृह्णीष्व राजेन्द्र मत्प्रियं कुरु राघव । लब्धस्य हि पुनर्दाने सुमहत्फलमुच्यते ॥
त्वं हि शक्तः परित्रातुं सेन्द्रानपि सुरोत्तमान् ।
तस्मात्प्रदास्ये विधिवत्प्रतीच्छस्व नरर्षभ ॥ २८ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

अथोवाच महाबाहुरिक्ष्वाकूणां महारथः । कृताञ्जलिर्मुनिश्रेष्ठं स्वं च धर्ममनुस्मरन् ॥

श्रीराम उवाच ।

प्रतिग्रहो वै भगवंस्तव मेऽत्र विगर्हितः । क्षत्रियेण कथं विप्र प्रतिग्राह्यं विजानता ॥
ब्राह्मणेन तु यद्दत्तं तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि । सपुत्रो गृहवानस्मि समर्थोऽस्मि महामुने ॥
आपदा च न चाक्रान्तः कथं ग्राह्यः प्रतिग्रहः ।
भार्या मे सुचिरं नष्टा न चान्या मम विद्यते ॥ ३२ ॥
केवलं दोषभागी च भवामीह न संशयः । कष्टां चैव दशांप्राप्यक्षत्रियोऽपि प्रतिग्रहम्

कुर्वन्नदोषमाप्नोति मनुरेवात्र कारणम् । वृद्धौ च मातापितरौ साध्वी भार्या शिशुः सुतः ॥
अप्यकार्यशतं कृत्वा भर्तव्या मनुरब्रवीत् । नाहं प्रतीच्छे विप्रर्षे त्वया दत्तं प्रतिग्रहम् ॥
न च मे भवता कोपः कार्यो वै सुरपूजित ॥ ३६ ॥

अगस्त्य उवाच ।

न च प्रतिग्रहे दोषो गृहीतपार्थिवैर्नृप । भवान्वैतारणे शक्तस्त्रैलोक्यस्यापि राघव ॥
तारय ब्राह्मणं राम विशेषेण तपस्विनम् । तस्मात्प्रदास्ये विधिवत्प्रतीच्छस्व नराधिप

राम उवाच ।

क्षत्रियेण कथं विप्र प्रतिग्राह्यं विजानता । ब्राह्मणेन यथा दत्तं तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि ॥

अगस्त्य उवाच ।

आसन्कृतयुगे राम ब्रह्मभूते पुरातने ॥
अपार्थिवाः प्रजाः सर्वाः पुराणां च चतुर्मुखम् ॥ ४० ॥
ताः प्रजा देवदेवेशं राजार्थं समुपागमन् । सुराणां विद्यते राजा देवदेवः शतक्रतुः ॥
श्रेयसेऽस्मासु लोकेश पार्थिवं कुरु साम्प्रतम् । यस्मिन्पूजां प्रयुञ्जानाः पुरुषा भुञ्जते महीम्
ततो ब्रह्मा सुरश्रेष्ठो लोकपालान्सवासवान् ।
समाहूयाब्रवीत्सर्वांस्तेजोभागोऽत्र युज्यताम् ॥ ४३ ॥
ततो ददुर्लोकपालाश्चतुर्भागं स्वतेजसा । अक्षयश्च ततो ब्रह्मा यतो जातोऽक्षयो नृप ॥
तं ब्रह्मा लोकपालानामंशं पुंसामयोजयत् । ततो नृपस्तदा तासां प्रजानां क्षेमपण्डितः
तत्रैन्द्रेण तु भागेन सर्वानाज्ञापयेन्नृपः । वारुणेन च भागेन सर्वान्पुष्णाति देहिनः ॥ ४६ ॥
कौबेरेण तथांशेन त्वर्थान्दिशति पार्थिवः । यश्च याम्यो नृपे भागस्तेन शास्ति च वै प्रजाः ॥
तत्र चैन्द्रेण भागेन नरेन्द्रोऽसि रघूत्तम । प्रतिगृह्णीष्वाभरणं तारणार्थं मम प्रभो ॥

पुलस्त्य उवाच ।

ततो रामः प्रजग्राह मुनेर्हस्तान्महात्मनः । दिव्यमाभरणं चित्रं प्रदीप्तमिव भास्करम् ॥
प्रतिगृह्य ततोऽगस्त्याद्राघवः परवीरहा । निरीक्ष्य सुचिरं कालं विचार्य च पुनः पुनः
मौक्तिकानि विचित्राणि धात्रीफलसमानि च । जाम्बूनदनिबद्धानि वज्रविद्रुमनीलकैः ॥

पद्मरागैः सगोमेधैर्वैडूर्यैः पुष्परागकैः ।
सुनिबद्धं सुविभक्तं सुकृतं विश्वकर्मणा ॥ ५२ ॥
दृष्ट्वा प्रीतिसमायुक्तो भूयश्चेदं व्यचिन्तयत् ।
नेदृशानि च रत्नानि मया दृष्टानि कानिचित् ॥ ५३ ॥

उपशोभानि बद्धानि पृथ्वीमूल्यसमानि च । विभीषणस्य लङ्कायां न दृष्टानि मया पुरा
इति सञ्चिन्त्य मनसा राघवस्तमृषिंपुनः । आगमं तस्य दिव्यस्य प्रष्टुं समुपचक्रमे ॥

राम उवाच ।

अत्यद्भुतमिदं ब्रह्मन्नप्राप्यं च महीक्षिताम् । कथं भगवता प्राप्तं कुतो वा केन निर्मितम्
कुतूहलवशाच्चैव पृच्छामि त्वां महामते । करतले स्थिते रत्ने करमध्यं प्रकाशते ॥
अधमं तद्विजानीयात्सर्वशास्त्रेषु गर्हितम् । दिशः प्रकाशयेद्यत्तन्मध्यमं मुनिसत्तम ॥
ऊर्द्ध्वगं त्रिशिखं यत्स्यादुत्तमं तदुदाहृतम् । एतान्युत्तमजातीनि ऋषिभिःकीर्तितानितु

आश्चर्याणां बहूनां हि दिव्यानां भगवान्निधिः ।
एवं वदति काकुत्स्थे मुनिर्वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ६० ॥

अगस्त्य उवाच ।

शृणु राम पुरावृत्तं पुरात्रेतायुगेमहत् । द्वापरे समनुप्राप्ते वने यद्दृष्टवानहम् ॥ ६१ ॥
आश्चर्यं सुमहाबाहो निबोध रघुनन्दन । पुरा त्रेतायुगे ह्यासीदरण्यं बहुविस्तरम् ॥६२॥
समन्ताद्योजनशतं मृगव्याघ्रविवर्जितम् । तस्मिन्निष्पुरुषेऽरण्ये चिकीर्षुस्तप उत्तमम् ॥
अहमाक्रमितुं सौम्य तदरण्यमुपागतः । तस्यारण्यस्य मध्यं तु युक्तं मूलफलैः सदा ॥
शाकैर्बहुविधाकारैर्नानारूपैःसुकाननैः । तस्यारण्यस्य मध्ये तु पञ्चयोजनमायतम् ॥६५
हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् । तत्राश्चर्यं मयादृष्टं सरः परमशोभितम् ॥
विसारिकच्छपाकीर्णं बकपङ्क्तिगणैर्युतम् । समीपे तस्य सरसस्तपस्तप्तुं गतः पुरा ॥
देशं पुण्यमुपेत्यैवं सर्वहिंसाविवर्जितम् । तत्राहमवसं रात्रिं नैदाघीं पुरुषर्षभ ॥ ६८ ॥
प्रभाते पुनरुत्थाय सरस्तदुपचक्रमे । अथापश्यं शवमहमस्पृष्टजरसं क्वचित् ॥ ६९ ॥
तिष्ठन्तं परया लक्ष्म्या सरसो नातिदूरतः । तदर्थं चिन्तयानोऽहं मुहूर्तमिव राघव ॥७०

अस्य तीरे न वै प्राणी को वाप्येष सुरर्षभः ।
मुनिर्वा पार्थिवो वापि क्व मुनिः पार्थिवोऽपि वा ॥ ७१ ॥

अथवा पार्थिवसुतस्तस्यैवं सम्भवः कुतः । अतीतेऽहनि रात्रौ वा प्रातर्वापि मृतो यदि

अवश्यं तु मया ज्ञेया सरसोऽस्य विनिष्क्रिया ।
यावदेवं स्थितश्चाहं चिन्तयानो रघूत्तम ॥ ७३ ॥

अथापश्यं मुहूर्तात्तु दिव्यमद्भुतदर्शनम् । विमानं परमोदारं हंसयुक्तं मनोजवम् ॥७४॥
पुरस्तत्र सहस्रं तु विमानेऽप्सरसां नृप । गन्धर्वाश्चैव तत्संख्या रमयन्ति वरं नरम् ॥
गायन्ति दिव्यगेयानि वादयन्ति तथापरे । अथापश्यं नरं तस्माद्विमानादवरुह्य तु ॥७६॥
शवमांसं भक्षयन्तं स्नात्वा रघुकुलोद्वह । ततो भुक्त्वा यथाकामं समांसं बहुपीवरम् ॥
अवतीर्य सरः शीघ्रमारुरोह दिवं पुनः । तमहं देवसङ्काशं श्रिया परमयान्वितम् ॥७८॥

भोभोस्वर्गिन्महाभाग पृच्छामि त्वां कथं त्विदम् ।
जुगुप्सितस्तवाहारो गतिश्चेयं तवोत्तमा ॥ ७९ ॥

यदि गुह्यं न चैतत्ते कथय त्वद्य मे भवान् । कामतः श्रोतुमिच्छामि किमेतत्परमं वचः
को भवान्वदसन्देहमाहारश्चविगर्हितः । त्वयेदं भुज्यते सौम्य किमर्थं क्व च वर्तसे ॥

कस्यायमैश्वरो भावः शवत्वेन विनिर्मितः ।
आहारं च कथं निन्द्यं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ८२ ॥

श्रुत्वा च भाषितं तत्र मम राम सतांवर । प्राञ्जलिः प्रत्युवाचेदं सस्वर्गी रघुनन्दन ॥

श्वेत उवाच ।

शृणुष्वाद्य यथावृत्तं ममेदं सुखदुःखजम् । कामो हि दुरतिक्रम्यः शृणु यत्पृच्छसे द्विज
पुरा वैदर्भको राजा पिता मे हि महायशाः। वासुदेव इति ख्यातस्त्रिषु लोकेषु धार्मिकः

तस्य पुत्रद्वयं ब्रह्मन्द्वाभ्यां स्त्रीभ्यामजायत ।
अहं श्वेत इति ख्यातो यवीयान्सुरथोऽभवत् ॥ ८६ ॥

पितर्युपरते तस्मिन्पौरा मामभ्यषेचयन् । तत्राहं कारयन्राज्यं धर्मे चासं समाहितः ॥
एवं वर्षसहस्राणि बहूनि समुपाव्रजन् । मम राज्यं कारयतः परिपालयतः प्रजाः ॥८८॥

सोऽहं निमित्ते कस्मिंश्चिद्वैराग्येण द्विजोत्तम। मरणं हृदये कृत्वा तपोवनमुपागमम् ॥
सोऽहं वनमिदं रम्यं भृशं पक्षिविवर्जितम्। प्रविष्टस्तप आस्थातुमस्यैव सरसोऽन्तिके

राज्येऽभिषिच्य सुरथं भ्रातरं तं नराधिपम्।
इदं सरः समासाद्य तपस्तप्तं सुदारुणम् ॥ ९१ ॥

दशवर्षसहस्राणि तपस्तप्त्वा महावने। शुभं तु भवनं प्राप्तो ब्रह्मलोकमनामयम् ॥९२॥
स्वर्गस्थमपि मां ब्रह्मन्क्षुत्पिपासे द्विजोत्तम। अबाधेतां भृशं चाहमभवं व्यथितेन्द्रियः
ततस्त्रिभुवनश्रेष्ठमवोचं वै पितामहम्। भगवन्स्वर्गलोकोऽयं क्षुत्पिपासाविवर्जितः ॥
कस्येयं कर्मणः पक्तिः क्षुत्पिपासे यतो हि मे। आहारः कश्च मे देव ब्रूहि त्वं श्रीपितामह

ततः पितामहः सम्यक्चिरं ध्यात्वा महामुने।
मामुवाच ततो वाक्यं नास्ति भोज्यं स्वदेहजम् ॥ ९६ ॥

ऋते स्वानि तु मांसानि भक्षय त्वं तु नित्यशः। स्वशरीरं त्वया पुष्टं कुर्वता तपउत्तमम्
नादत्तं जायते तात श्वेत पश्य महीतले। आग्रहाद्भिक्षमाणाय भिक्षापि प्राणिने पुरा ॥
न हि दत्ता गृहे भ्रान्त्या मोहादतिथये तदा। तेन स्वर्गगतस्यापि क्षुत्पिपासे तवाधुना
स त्वं प्रपुष्टमाहारैः स्वशरीरमनुत्तमम्। भक्षयस्व च राजेन्द्र सा ते तृप्तिर्भविष्यति ॥
एवमुक्तस्ततो देवं ब्रह्माणमहमुक्तवान्। भक्षिते च स्वके देहे पुनरन्यन्न मे विभो ॥
क्षुधानिवारणे नैव देहस्यास्य विनोदनम्। खादामि ह्यक्षयं देव प्रियं मे न हि जायते॥
ततोऽब्रवीत्पुनर्ब्रह्मा तव देहोऽक्षयः कृतः। दिने दिने ते पुष्टात्मा शवः श्वेत भविष्यति
यावद्वर्षशतं पूर्णं स्वमांसं खाद भो नृप। यदागच्छति चागस्त्यः श्वेतारण्ये महातपाः
भगवानतिदुर्धर्षस्तदा कृच्छ्राद्विमोक्ष्यसे। स हि तारयितुं शक्तः सेन्द्रानपि सुरासुरान्
आहारं कुत्सितं चेमं राजर्षे किं पुनस्तव। सुरकार्यं महत्तेन सुकृतं तु महात्मना ॥
उदधिं निर्जलं कृत्वा दानवाश्च निपातिताः। विन्ध्यश्चादित्यविद्वेषाद्वर्धमानो निवारितः

लम्बमाना मही चैषा गुरुत्वेनाधिवासिता।
दक्षिणादिग्दिवं याता त्रैलोक्यं विषमं स्थितम् ॥ १०८ ॥
मया गत्वा सुरैः सार्द्धं प्रेषितो दक्षिणांदिशम्।

समां कुरु महाभोग गुरुत्वेन जगत्समम् ॥ १०६ ॥

एवं च तेन मुनिना स्थित्वा सर्वा धरा समा । कृता राजेन्द्र मुनिना एवमद्यापिदृश्यते
सोऽहं भगवतः श्रुत्वा देवदेवस्य भाषितम् । भुञ्जे च कुत्सिताहारं स्वशरीरमनुत्तमम् ॥
पूर्णं वर्षशतं चाद्य भोजनं कुत्सितं च मे । क्षयं नाभ्येति तद्विप्रतृप्तिश्चापि ममोत्तमा॥
तं मुनिं कृच्छ्रसन्तप्तश्चिन्तयामि दिवानिशम् । कदा वै दर्शनं मह्यं समुनिर्दास्यतेवने ॥
एवं मे चिन्तयानस्य गतंवर्षशतन्त्विह । सोऽगस्त्यो हि गतिर्ब्रह्मन्मुनिर्मे भविताध्रुवम्
न गतिर्भविता मह्यं कुम्भयोनिमृतेद्विजम् । श्रुत्वेत्थं भाषितं राम दृष्ट्वाहारं च कुत्सितम्
कृपयापरया युक्तस्तं नृप स्वर्गगामिनम् । करोम्यहं सुधाभोज्यं नाशयामि च कुत्सितम्
चिन्तयन्नित्यथोचं तमगस्त्यः किं करिष्यति । अहमेतत्कुत्सितं तेनशयामि महामते ॥

ईप्सितं प्रार्थयस्वास्मान्मनः प्रीतिकरं परम् ।
सस्वर्गी मां ततः प्राह कथं ब्रह्मवचोऽन्यथा ॥ ११८ ॥

कर्तुं मुने मया शक्यं न चान्यस्तारयिष्यति । ऋते वै कुम्भयोनिं तं मैत्रावरुणसम्भवम्
अपृष्टोऽपि मया ब्रह्मन्नेवमूचे पितामहः । एवं ब्रुवाणं तं श्वेतमुक्तवानहमस्मि सः ॥

आगतस्तव भाग्येन दृष्टोऽहं नात्र संशयः ।
ततः स्वर्गी समां ज्ञात्वा दण्डवत्पतितो भुवि ॥ १२१ ॥
तमुत्थाप्य ततो रामाब्रवं किं ते करोम्यहम् ।

राजोवाच ।

आहारात्कुत्सिताद्ब्रह्मंस्तारयस्वाद्यदुष्कृतात् ॥ १२२ ॥

येन लोकोऽक्षयः स्वर्गो भविता त्वत्कृतेन मे। ततः प्रतिग्रहो दत्तो जगद्वन्द्यनृपेण हि॥
भवान्मामनुगृह्णातु प्रतीच्छस्व प्रतिग्रहम् । इदमाभरणं सौम्य तारणार्थं द्विजोत्तम ॥
ब्रह्मर्षे प्रतिगृह्णीष्व प्रसादं कर्तुमर्हसि । इह गाश्च सुवर्णं च धनं वस्त्रसमन्वितम् ॥

भक्ष्यं भोज्यं च विप्रर्षे ददाम्याभरणं त्वहम् ।
सर्वकामप्रदं तुभ्यं सर्वान्भोगांश्च ते द्विज ॥ १२६ ॥
तारणे तु भवान्मह्यं प्रसादं कर्तुमर्हति ।

तस्याहं स्वर्गिणो वाक्यं श्रुत्वा दुःखसमन्वितम् ॥ १२७ ॥
कृता मतिस्तारणाय न लोभाद्रघुनन्दन । गृहीते भूषणे राम ममहस्तगते तदा ॥१२८॥
मानुषः पौर्विको देहस्तदा नष्टोऽस्यभूपते । प्रनष्टे तु शरीरे च राजर्षिः परया मुदा ॥
मयोक्तोऽसौ विमानेन जगाम त्रिदिवं पुनः । तेन मे शक्रतुल्येन दत्तमाभरणं शुभम् ॥
तस्मिन्निमित्ते काकुत्स्थ दत्तमद्भुतकर्मणा । श्वेतो वैदर्भको राजा तदाभूद्गतकल्मषः ॥
इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे रामागस्त्यसंवादो नामाष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥

ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः

दण्डकारण्योत्पत्तिवर्णने दण्डराजकथानकम् ।

पुलस्त्य उवाच ।

तदद्भुततमं वाक्यं श्रुत्वा च रघुनन्दनः । गौरवाद्विस्मयाच्चापि भूयः प्रष्टुं प्रचक्रमे ॥१॥

राम उवाच ।

भगवंस्तद्वनं घोरं यत्रासौ तप्तवांस्तपः । श्वेतो वैदर्भको राजा तदद्भुतमभूत्कथम् ॥२॥
विषमं तद्वनं राजा शून्यं मृगविवर्जितम् । प्रविष्टस्तपआस्थातुं कथंवद महामुने ॥३॥
समन्ताद्योजनशतं निर्मनुष्यमभूत्कथम् । भवान्कथं प्रविष्टस्तद्येन कार्येण तद्वद ॥ ४ ॥

अगस्त्य उवाच ।

पुरा कृतयुगे राजा मनुर्दण्डधरः प्रभुः । तस्यपुत्रोऽथ नाम्नासीदिक्ष्वाकुरमितद्युतिः ॥५
तं पुत्रं पूर्वजं राज्ये निक्षिप्य भुवि संमतम् । पृथिव्यां राजवंशानां भव राजेत्युवाच ह
तथेति च प्रतिज्ञातं पितुः पुत्रेण राघव । ततः परमसंहृष्टः पुनस्तं प्रत्यभाषत ॥ ७ ॥

मनुरुवाच ।

प्रीतोऽस्मि परमोदारकर्मणा तेन संशयः । दण्डेन च प्रजा रक्ष नच दण्डमकारणम्॥८
अपराधिषु यो दण्डः पात्यते मानवैरिह । स दण्डो विधिवन्मुक्तःस्वर्गं नयतिपार्थिवम्
तस्माद्दण्डे महाबाहो यत्नवान्भव पुत्रक । धर्मस्ते परमो लोके कृत एवं भविष्यति ॥

अगस्त्य उवाच ।

इति तं बहु संदिश्य मनुपुत्रं समाधिना । जगाम त्रिदिवं हृष्टोब्रह्मलोकमनुत्तमम् ॥११

जनयिष्ये कथं पुत्रानिति चिन्तापरोऽभवम् ।
कर्मभिर्बहुभिस्तैस्तैस्ससुतैस्संयुतोऽभवत् ॥ १२ ॥

तोषयामास पुत्रैस्सपितॄन्देवसुतोपमैः । सर्वेषामुत्तमस्तेषां कनीयान्रघुनन्दन ॥ १३॥
शूरश्च कृतविद्यश्चगुरुश्च जनपूजया । नाम तस्याथ दण्डेति पिता चक्रे सबुद्धिमान् ॥१४
भविष्यद्दण्डपतनं शरीरे तस्य वीक्ष्य च । सम्पश्यमानस्तं दोषंघोरं पुत्रस्य राघव ॥१५
सविन्ध्यनीलयोर्मध्ये राज्यमस्य ददौ प्रभुः । सदण्डस्तत्रराजाभूद्रम्ये पर्वतमूर्द्धनि ॥
पुरं चाप्रतिमं तेन निवेशाय तथा कृतम् । नाम तस्य पुरस्याथ मधुमत्तमिति स्वयम् ॥
तथा देशेन सम्पन्नः शूरो वासमथाकरोत् । एवं राजा स तद्राज्यं चकार स पुरोहितः
प्रहृष्टसुप्रजाकीर्णं देवराजो यथा दिवि । ततः सदण्डः काकुत्स्थ बहुवर्षगणायुतम् ॥

अकारयत्तु धर्मात्मा राज्यं निहतकण्टकम् ।
अथ काले तु कस्मिंश्चिद्राजा भार्गवमाश्रमम् ॥ २० ॥

रमणीयमुपाक्रामच्चैत्रमासे मनोरमे । तत्रभार्गवकन्यांतुरूपेणाप्रतिमांभुवि ॥ २१ ॥
विचरन्तींवनोद्देशेदण्डोऽपश्यदनुत्तमाम् । उत्तुङ्गपीवरींश्यामांचन्द्राभवदनांशुभाम् ।२२।

सुनासां चारुसर्वाङ्गीं पीनोन्नतपयोधराम् ।
मध्ये क्षामां च विस्तीर्णां दृष्ट्वा तां कुरुते मुदम् ॥ २३ ॥

एकवस्त्रां वने चैकां प्रथमे यौवने स्थिताम् । स तां दृष्ट्वा त्वधर्मेण अनङ्गशरपीडितः ॥

अभिगम्य सुविश्रान्तां कन्यां वचनमब्रवीत् ।

दण्ड उवाच ।

कुतस्त्वमसि सुश्रोणि कस्य चासि सुशोभने ॥ २५ ॥

पीडितोऽहमनङ्गेन पृच्छामि त्वां सुशोभने । त्वया मेऽपहृतं चित्तंदर्शनादेव सुन्दरि ॥
इदं ते वदनं रम्यं मुनीनां चित्तहारकम् । यद्यहं न लभे भोक्तुं मृतं मामवधारय ॥२७ ॥

त्वया हृता मम प्राणा मां जीवय सुलोचने ।

दासोऽस्मि ते वरारोहे भक्तं मां भज शोभने॥ २८ ॥

अगस्त्य उवाच।

तस्यैवं तु ब्रुवाणस्य मदोन्मत्तस्य कामिनः। भार्गवी प्रत्युवाचेदं वचः सविनयं नृपम्

अरजोवाच।

भार्गवस्य सुतां विद्धि शुक्रस्याक्लिष्टकर्मणः। अरजां नाम राजेन्द्रज्येष्ठामाश्रमवासिनः

शुक्रः पिता मे राजेन्द्र त्वं च शिष्यो महात्मनः। धर्मतो भगिनी चाहं भवामिनृपनन्दन

एवं विधं वचो वक्तुं नत्वमर्हसि पार्थिव।

अन्येभ्योऽपि सुदुष्टेभ्यो रक्ष्या चाहं सदा त्वया॥ ३२ ॥

क्रोधनो मे पिता रौद्रोभस्मत्वं त्वां समानयेत्।

अथवा राजधर्मेणासम्बन्धं कुरुषे बलात् ॥ ३३ ॥

पितरं याचयस्वत्वं धर्मदृष्टेन कर्मणा। वरयस्व नृपश्रेष्ठ पितरं मे महाद्युतिम् ॥३४॥

अन्यथा विपुलं दुःखं तव घोरं भवेद्ध्रुवम्। क्रुद्धो हि मे पिता सर्वंत्रैलोक्यमभिनिर्दहेत्

अगस्त्य उवाच।

ततोऽशुभं महाघोरं श्रुत्वादण्डः सुदारुणम्। प्रत्युवाच मदोन्मत्तः शिरसाभिनतः पुनः

दण्ड उवाच।

प्रसादं कुरु सुश्रोणि कामोन्मत्तस्य कामिनि। त्वया रुद्धाममप्राणाविशीर्यन्तेशुभानने

त्वां प्राप्य वैरं मेऽत्रास्तु वधो वापि महत्तरः। भक्तंभजस्व मांभीरुत्वयिभक्तिर्हिमेपरा

अगस्त्य उवाच।

एवमुक्त्वा तु तां कन्यां बलात्सङ्गृह्य बाहुना। अन्येन राज्ञाहस्तेनविवस्त्रासातथाकृता

अङ्गमङ्गे समाश्लिष्य मुखेचैव मुखं कृतम्। विस्फुरन्तीं यथाकामंमैथुनायोपचक्रमे ॥

तमनर्थं महाघोरं दण्डः कृत्वा सुदारुणम्। नगरं स्वं जगामाशु मदोन्मत्त इव द्विपः ॥

भार्गवी रुदती दीना आश्रमस्याविदूरतः। प्रत्यपालयदुद्विग्ना पितरं देवसम्मितम् ॥

स मुहूर्तादुपस्पृश्य देवर्षिरमितद्युतिः। स्वमाश्रमं शिष्यवृतं क्षुधार्तः सन्न्यवर्तत ॥

सोऽपश्यदरजांदीनांरजसासमभिप्लुताम्। चन्द्रस्यघनसंयुक्तांज्योत्स्नामिवपराजिताम्

तस्य रोषः समभवत्क्षुधार्तस्यमहात्मनः । निर्दहन्निवलोकांस्त्रींस्ताञ्शिष्यान्समुवाचह

भार्गव उवाच ।

पश्यध्वंविपरीतस्य दण्डस्यादीर्घदर्शिनः । विपत्तिं घोरसङ्काशां दीप्तामग्निशिखामिव

यन्नाशं दुर्गतिं प्राप्तस्सानुगश्च न संशयः । यस्तु दीप्तहुताशस्य अर्चिः संस्पृष्टवानिह ॥

यस्मात्सकृतवान्पापमीदृशं घोरसम्मितम् ।

तस्मात्प्राप्स्यति दुर्मेधाः पांसुवर्षमनुत्तमम् ॥ ४८ ॥

कुराजादेशसंयुक्तः सभृत्यबलवाहनः । पापकर्मसमाचारो वधंप्राप्स्यतिदुर्मतिः ॥

समन्ताद्योजनशतं विषयं चास्य दुर्मतेः । धुनोतु पांसुवर्षेण महता पाकशासनः ॥

सर्वसत्त्वानि यानीह जङ्गमस्थावराणिवै । सर्वेषां पांसुवर्षेण क्षयः क्षिप्रं भविष्यति ॥

दण्डस्य विषयोयावत्तावत्सवनमाश्रमम् । पांसुवर्षमिवाकस्मात्सप्तरात्रं भविष्यति

अगस्त्य उवाच ।

इत्युक्त्वा क्रोधसन्तप्तस्तमाश्रमनिवासिनम् । जनं जनपदस्यान्ते स्थीयतामित्युवाच ह

उक्तमात्रे उशनसा आश्रमावसथो जनः । क्षिप्रं तु विषयात्तस्मात्स्थानं चक्रे च बाह्यतः

तं तथोक्त्वा मुनिजनमरजामिदमब्रवीत् ।

भार्गव उवाच ।

आश्रमे त्वं सुदुर्मेधे वस चेह समाहिता ॥ ५५ ॥

इदं योजनपर्यन्तमाश्रमं रुचिरप्रभम् । अरजेविरजास्तिष्ठ कालमत्र समाश्वतम् ॥

अगस्त्य उवाच ।

श्रुत्वा नियोगं विप्रर्षेररजा भार्गवी तदा । तथेति पितरं प्राह भार्गवं भृशदुःखिता ॥

इत्युक्त्वा भार्गवो वासं तस्मादन्यमुपाक्रमत् । सप्ताहे भस्मसाद्भूतं यथोक्तंब्रह्मवादिना

तस्माद्दण्डस्य विषयो विन्ध्यशैलस्य सानुष । शप्तो ह्युशनसा राम तदाभूद्धर्षणकृते ॥

ततः प्रभृति काकुत्स्थ दण्डकारण्यमुच्यते । एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां पृच्छसि राघव

सन्ध्यामुपासितुं वीर समयो ह्यतिवर्तते । एते महर्षयो राम पूर्णकुम्भाः समन्ततः ॥

कृतोदका नरव्याघ्र पूजयन्ति दिवाकरम् । सर्वैर्ऋषिभिरभ्यस्तैः स्तोत्रैर्ब्रह्मादिभिःकृतैः

रविरस्तं गतो राम गत्वोदकमुपस्पृश ।

पुलस्त्य उवाच ।

ऋषेर्वचनमादाय रामः सन्ध्यामुपासितुम् ॥ ६३ ॥

उपचक्रामतत्पुण्यं स सरो रघुनन्दनः । अथ तस्मिन्वनोद्देशे रम्ये पादपशोभिते ॥
नदीपुण्ये गिरिवरे कोकिलाशतमण्डिते । नानापक्षिरवोद्याने नानामृगसमाकुले ॥
सिंहव्याघ्रसमाकीर्णे नानाद्विजसमावृते । गृध्रोलूकौप्रवसितौ बहून्वर्षगणानपि ॥
अथोलूकस्य भवनं गृध्रः पापविनिश्चियः । ममेदमिति कृत्वासौ कलहं तेन चाकरोत्
राजासर्वस्यलोकस्य रामो राजीवलोचनः । तं प्रपद्यावहै शीघ्रं कस्यैतद्भवनं भवेत् ॥
गृध्रोलूकौ प्रपद्येतां जातकोपावमर्षिणौ । रामं प्रपद्यतौ शीघ्रं कलिव्याकुलचेतसौ ॥
तौ परस्परविद्वेषौ स्पृशतश्चरणौ तथा । अथ दृष्ट्वा राघवेन्द्रं गृध्रो वचनमब्रवीत् ॥

गृध्रउवाच ।

सुराणामसुराणां च त्वं प्रधानो मतो मम । बृहस्पतेश्च शुक्राच्च त्वंविशिष्टो महामतिः
परावरज्ञो भूतानां मर्त्ये शक्र इवापरः । दुर्निरीक्ष्यो यथासूर्यो हिमवानिव गौरवे ॥

सागरश्चासि गाम्भीर्ये लोकपालो यमोह्यसि ।

क्षान्त्या धरण्या तुल्योऽसि शीघ्रत्वे ह्यनिलोपमः ॥ ७३ ॥

गुरुस्त्वं सर्वसम्पन्नो विष्णुरूपोऽसि राघव । अमर्षी दुर्जयो जेतासर्वास्त्रविधिपारगः
शृणु त्वं मम देवेश विज्ञाप्यं नरपुङ्गव । ममालयं पूर्वकृतं बाहुवीर्येण वै प्रभो ॥ ७५ ॥
उलूको हरतेराजंस्त्वत्समीपे विशेषतः । ईदृशोऽयं दुराचारस्त्वदाज्ञालङ्घको नृप ॥
प्राणान्तिकेन दण्डेन राम शासितुमर्हसि । एवमुक्ते तु गृध्रेण उलूकोवाक्यमब्रवीत् ॥
शृणु देव मम ज्ञाप्यमेकचित्तो नराधिप । सोमाच्छक्राच्च सूर्याच्च धनदाच्च यमात्तथा ॥
जायतेवैनृपो राम किञ्चिद्भवति मानुषः । त्वं तु सर्वमयो देवो नारायणपरायणः ॥

प्रोच्यते सोमता राजन्सम्यक्कार्ये विचारिते ।

सम्यग्रक्षसि तापेभ्यस्तमोघ्नो हि यतो भवान् ॥ ८० ॥

दोषे दण्डात्प्रजानां त्वं यतः पापभयापहः ।

दाता प्रहर्ता गोप्ता च तेनेन्द्र इव नो भवान् ॥ ८१
अधृष्यः सर्वभूतेषु तेजसा चानलो मतः । अभीक्ष्णं तपसे पापांस्तेन त्वं रामभास्करः
साक्षाद्वित्तेशतुल्यस्त्वमथवा धनदाधिकः ।
चित्तायत्ता तु पत्नी श्रीर्नित्यं ते राजसत्तम ॥ ८३ ॥
धनदस्य तु कोशेन धनदस्तेन वै भवान् । समः सर्वेषु भूतेषु स्थावरेषु चरेषु च ॥
शत्रौ मित्रे च ते दृष्टिः समन्तायाति राघव । धर्मेण शासनं नित्यं व्यवहारविधिक्रमैः
यस्य रुष्यसि वै राम मृत्युस्तस्याभिधीयते ।
गीयसे तेन वै राजन्यमइत्यभिविश्रुतः ॥ ८६ ॥
यश्चासौ मानुषो भावो भवतो नृपसत्तम । आनृशंस्यपरो राजा सर्वेषु कृपयान्वितः ॥
दुर्बलस्यत्वनाथस्य राजा भवति वै बलम् । अचक्षुषो भवेच्चक्षुरमतेषु मतिर्भवेत् ॥
अस्माकमपि नाथस्त्वं श्रूयतां मम धार्मिक । भवता तत्र मन्तव्यं यथैते किल पक्षिणः
योऽस्मन्नाथः स पक्षीन्द्रो भवतो विनियोज्यकः ।
अस्वाम्यं देवनास्माकं सन्निधौ भवतः प्रभो ॥ ६० ॥
भवतैव कृतं पूर्वंभूतग्रामं चतुर्विधम् । ममालयप्रविष्टस्तु गृध्रो मां बाधते नृप ॥ ६१ ॥
भवान्देवमनुष्येषु शास्ता वै नरपुङ्गव ।

पुलस्त्य उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा तु वै रामः सचिवानाह्वयत्स्वयम् ॥ ६२ ॥
विष्टिर्जयन्तो विजयः सिद्धार्थो राष्ट्रवर्धनः । अशोको धर्मपालश्च सुमन्त्रश्च महाबलः ॥
एते रामस्य सचिवा राज्ञो दशरथस्य च । नीतियुक्तामहात्मानः सर्वशास्त्रविशारदाः॥
सुशान्ताश्च कुलीनाश्च नयेमन्त्रे च कोविदाः । तानाहूय सधर्मात्मा पुष्पकादवरुह्य च
गृध्रोलूकौ विवदन्तौ पृच्छतिस्म रघूत्तमः ।

राम उवाच ।

कति वर्षाणि भो गृध्र तवेदं निलयं कृतम् ॥ ६६ ॥
एतन्मे कौतुकंब्रूहियदि जानासि तत्त्वतः । एतच्छ्रुत्वावचोगृध्रोबभाषे राघवंस्थितम्

गृध्र उवाच ।

इयं वसुमती राम मानुषैर्बहुबाहुभिः । उच्छ्रितैराचिता सर्वा तदा प्रभृति मद्गृहम् ॥
उलूकस्त्वब्रवीद्रामं पादपैरुपशोभिता । यदैव पृथिवी राजंस्तदाप्रभृति मे गृहम् ॥९९॥
एतच्छ्रुत्वा तु रामो वै सभासद उवाच ह ॥ १०० ॥

राम उवाच ।

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम् ।
नासौ धर्मो यत्र न चास्ति सत्यं न तत्सत्यं यच्छलमभ्युपैति ॥१०१॥
ये तु सभ्याः सभां गत्वा तूष्णीं ध्यायन्त आसते ।
यथा प्राप्तं न ब्रुवते सर्वे तेऽनृतवादिनः ॥ १०२ ॥
न वक्ति च श्रुतं यश्च कामक्रोधात्तथाभयात् । सहस्रं वारुणाःपाशाःप्रतिमुञ्चन्तितं नरम्
तेषां संवत्सरे पूर्णे पाश एकः प्रमुच्यते । तस्मात्सत्यं तु वक्तव्यं जानता सत्यमञ्जसा
एतच्छ्रुत्वा तु सचिवा राममेवाब्रुवंस्तदा । उलूकःशोभते राजन्नतु गृध्रो महामते ॥
त्वं प्रमाणं महाराज राजा हि परमा गतिः । राजमूलाः प्रजाःसर्वा राजा धर्मःसनातनः
शास्ता राजा नृणां येषां न ते गच्छन्ति दुर्गतिम् ।
वैवस्वतेन मुक्ताश्च भवन्ति पुरुषोत्तमाः ॥ १०७ ॥
सचिवानां वचः श्रुत्वा रामो वचनमब्रवीत् । श्रूयतामभिधास्यामि पुराणं यदुदाहृतम्
द्यौः सचन्द्रार्कनक्षत्रासपर्वतमहीद्रुमम् । सलिलार्णवसंमग्नं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥
एकमेव तदाह्यासीत्सर्वमेकमिवाम्बरम् । पुनर्भूःसहलक्ष्म्या च विष्णोर्जठरमाविशत् ॥
तां निगृह्य महातेजाः प्रविश्य सलिलार्णवम् । सुष्वाप हि कृतात्मा स बहुवर्षशतान्यपि
विष्णौ सुप्ते ततो ब्रह्मा विवेश जठरं ततः । बहुस्रोतं च तं ज्ञात्वामहायोगीसमाविशत्
नाभ्यां विष्णोः समुद्भूतं पद्मं हेमविभूषितम् ।
स तु निर्गम्य वै ब्रह्मा योगी भूत्वा महाप्रभुः ॥ ११३ ॥
सिसृक्षुः पृथिवीं वायुं पर्वतांश्च महीरुहान् । तदन्तराः प्रजाःसर्वा मानुषांश्चसरीसृपान्
जरायुजाण्डजान्सर्वान्ससर्ज स महातपाः । तस्य गात्रसमुत्पन्नः कैटभो मधुनासह ॥

दानवौ तौ महावीर्यौ घोरौ लब्धवरौ तदा। दृष्ट्वा प्रजापतिं तत्र क्रोधाविष्टावभौनृप
वेगेनमहताभोक्तुं स्वयम्भुवमधावताम्। दृष्ट्वासत्त्वानिसर्वाणिनिस्सरन्ति पृथक्पृथक्
ब्रह्मणा संस्तुतो विष्णुर्हत्वा तौ मधुकैटभौ। पृथिवीं वर्धयामास स्थित्यर्थं मेदसातयोः
मेदो गन्धा तु धरणी मेदिनीत्यभिधांगता। तस्मान्नगृध्रस्य गृहमुलूकस्य तदाऽभवत्

तस्माद्गृध्रस्त्वसत्यो वै पापकर्मा परालयम्।

स्वीयं करोति पापात्मा दण्डनीयो न संशयः॥ १२० ॥

ततोऽशरीरिणी वाणी अन्तरिक्षात्प्रभाषते। मा वधी राम गृध्रं त्वंपूर्वं दग्धं तपोबलात्
पुरा गौतमदग्धोऽयं प्रजानाथो जनेश्वर। ब्रह्मदत्तस्तु नामैष शूरः सत्यव्रतः शुचिः॥
गृहमागत्यविप्रोऽस्य भोजनं प्रत्ययाचत। साग्रं वर्षशतं चैव भुक्तवान्नृपसत्तम॥१२३
ब्रह्मदत्तस्तु वै तस्य पाद्यमर्घ्यं स्वयं ततः। आत्मनैवाकरोत्सम्यग्भोजनार्थं महाद्युते॥
समाविश्य गृहं तस्य आहारे तु महात्मनः। नारीं पूर्णस्तनीं दृष्ट्वाहस्तेनाथपरामृशत्
अथ क्रुद्धेन मुनिना शापो दत्तः सुदारुणः। गृध्रत्वं गच्छवैमूढ राजा मुनिमथाब्रवीत्
कृपां कुरु महाभाग शापोद्धारो भविष्यति। दयालुस्तद्वचः श्रुत्वा पुनराह नराधिप॥
उत्पत्स्यते रघुकुले रामो नाम महायशाः। इक्ष्वाकूणां महाभागो राजाराजीवलोचनः
तेन दृष्टो विपापस्त्वं भविता नरपुङ्गव। दृष्टो रामेण तच्छ्रुत्वा बभूव पृथिवीपतिः॥
गृध्रत्वं त्यज्य वै शीघ्रं दिव्यगन्धानुलेपनः। पुरुषो दिव्यरूपोऽसौ बभाषे तं नराधिपम्
साधुराघव धर्मज्ञत्वत्प्रसादहं विभो। विमुक्तो नरकाद्धोरादपापस्तु त्वया कृतः॥
विसर्जितं मया गार्ध्यं नररूपी महीपतिः। उलूकं प्राह धर्मज्ञ स्वगृहं विश कौशिक॥

अहं सन्ध्यामुपासित्वा गमिष्ये यत्र वै मुनिः।

अथोदकमुपस्पृश्य सन्ध्यामन्वास्य पश्चिमाम्॥ १३३ ॥

आश्रमं प्राविशद्रामः कुम्भयोनेर्महात्मनः। तस्यागस्त्यो बहुगुणं फलमूलं च सादरम्

रसवन्ति च शाकानि भोजनार्थमुपाहरत्।

सभुक्तवान्नरव्याघ्रस्तदन्नममृतोपमम्॥ १३५ ॥

प्रीतश्च परितुष्टश्च तां रात्रिं समुपावसत्। प्रभाते काल्यमुत्थाय कृत्वाऽऽह्निकमरिन्दम॥

ऋषिसमभिचक्राम गमनाय रघूत्तमः । अभिवाद्याब्रवीद्रामो महर्षिं कुम्भसम्भवम् ॥
आपृच्छे साधये ब्रह्मन्ननुज्ञातुं त्वमर्हसि । धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि दर्शनेन महामुने
दिष्ट्या चाहं भविष्यामि पावितात्मा महात्मनः ।
एवं ब्रुवति काकुत्स्थे वाक्यमद्भुतदर्शनम् ॥ १३९ ॥
उवाच परमप्रीतो बाष्पनेत्रस्तपोधनः । अत्यद्भुतमिदं वाक्यं तव राम शुभाक्षरम् ॥१४०
पावनं सर्वभूतानां त्वयोक्तं रघुनन्दन । मुहूर्तमपि राम त्वां मैत्रेणेक्षन्ति ये नराः ॥
पावितास्सर्वसूक्तैस्तेकथ्यन्तेत्रिदिवौकसः । ये च त्वां घोरचक्षुर्भिरीक्षन्तेप्राणिनो भुवि
ते हता ब्रह्मदण्डेन सद्यो नरकगामिनः । ईदृशस्त्वं रघुश्रेष्ठ पावनःसर्व देहिनाम् ॥१४३॥
कथयन्तश्चलोकास्त्वां सिद्धिमेष्यन्तिराघव । गच्छस्वानातुरोऽविघ्नंपन्थानमकुतोभयः
प्रशाधि राज्यं धर्मेण गतिस्तु जगतां भवान् । एवमुक्तस्तु मुनिना प्राञ्जलिप्रग्रहो नृपः
अभिवादयितुं चक्रे सोऽगस्त्यमृषिसत्तमम् ।
अभिवाद्य मुनिश्रेष्ठांस्तांश्च सर्वांस्तपोऽधिकान् ॥ १४६ ॥
अथारोहत्तदा व्यग्रः पुष्पकं हेमभूषितम् । तं प्रयान्तं मुनिगणा आशीर्वादैस्समन्ततः ॥
अपूपुजन्नरेन्द्रं तं सहस्राक्षमिवामराः । ततोऽर्धदिवसे प्राप्ते रामः सर्वार्थकोविदः ॥
अयोध्यांप्राप्यकाकुत्स्थःपद्भ्यांकक्षामवातरत् । ततोविसृज्यरुचिरं पुष्पकंकामवाहितम्
कक्षान्तराद्विनिष्क्रम्य द्वास्स्थान्राजाऽब्रवीदिदम् ।
लक्ष्मणं भरतं चैव गच्छध्वं लघुविक्रमाः ॥ १५० ॥
ममागमनमाख्याय समानयत मा चिरम् । श्रुत्वाऽथभाषितंद्वास्स्था रामस्याक्लिष्टकर्मणः
गत्वा कुमारावाहूय राघवाय न्यवदेयन् । द्वास्स्थैः कुमारावानीतौ राघवस्य निदेशतः
दृष्ट्वा तु राघवः प्राप्तौ प्रियौ भरतलक्ष्मणौ । समालिङ्ग्य तु रामस्तौ वाक्यंचेदमुवाचह
कृतं मया यथातथ्यं द्विजकार्यमनुत्तमम् । धर्महेतुमतो भूयः कर्तुमिच्छामि राघवौ ॥
भवद्भ्यामात्मभूताभ्यां राजसूयं क्रतूत्तमम् । सहितो यष्टुमिच्छामि यत्र धर्मश्च शाश्वतः
पुष्करस्थेन वै पूर्वं ब्रह्मणा लोककारिणा । शतत्रयेण यज्ञानामिष्टं षष्ट्यधिकेन च ॥
इष्ट्वा हि राजसूयेन सोमो धर्मेण धर्मवित् ।

प्राप्तः सर्वेषु लोकेषु कीर्तिस्थानमनुत्तमम् ॥ १५७

इष्ट्वा हि राजसूयेन मित्रः शत्रुनिबर्हणः। मुहूर्तेन सुशुद्धेन वरुणत्वमुपागतः ॥ १५८ ॥

तस्माद्भवन्तौ सञ्चिन्त्य कार्येऽस्मिन्वदतं हितम्।

भरत उवाच।

त्वं धर्मः परमः साधो त्वयि सर्वा वसुन्धरा ॥ १५९ ॥

प्रतिष्ठिता महाबाहो यशश्चामितविक्रम। महीपालाश्च सर्वे त्वां प्रजापतिमिवामराः ॥

निरीक्षन्ते महात्मानो लोकनाथ तथावयम्। प्रजाश्चपितृवद्राजन्पश्यन्ति त्वां महामते

पृथिव्यां गतिभूतोऽसि प्राणिनामिह राघव। सत्वमेवंविधं यज्ञं नाहर्त्तासि परन्तप ॥

पृथिव्यां सर्वभूतानां विनाशो दृश्यते यतः। श्रूयते राजशार्दूल सोमस्य मनुजेश्वर ॥

ज्योतिषां सुमहद्युद्धं सङ्ग्रामे तारकामये। ताराबृहस्पतेर्भार्या हृता सोमेन कामतः ॥

तत्र युद्धं महद्वृत्तं देवदानवनाशनम्। वरुणस्य क्रतौ घोरे सङ्ग्रामे मत्स्यकच्छपाः ॥

निवृत्ते राजशार्दूल सर्वे नष्टा जलेचराः। हरिश्चन्द्रस्य यज्ञान्ते राजसूयस्य राघव ॥

आडीबकं महद्युद्धं सर्वलोकविनाशनम्।

पृथिव्यां यानि सत्त्वानि तिर्यग्योनिगतानि वै ॥ १६७ ॥

दिव्यानां पार्थिवानां च राजसूये क्षयः श्रुतः।

स त्वं पुरुषशार्दूल बुद्ध्या सञ्चिन्त्य पार्थिव ॥ १६८ ॥

प्राणिनां च हितं सौम्यं पूर्णं धर्मं समाचर। भरतस्य वचः श्रुत्वा राघवः प्राह सादरम्

राम उवाच।

प्रीतोऽस्मि तव धर्मज्ञ वाक्येनानेन शत्रुहन्। निवर्तिता राजसूयान्मतिर्मे धर्मवत्सल ॥

पूर्णं धर्मं करिष्यामि कान्यकुब्जे च वामनम्।

स्थापयिष्याम्यहं वीर सा मे ख्याति दिवंगता ॥ १७१ ॥

भविष्यति न सन्देहो यथा गङ्गा भगीरथात् ॥ १७२ ॥

इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे यज्ञनिवारणं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः।

———

चत्वारिंशोऽध्यायः

विभीषणवृत्तजिज्ञासयाभरतेन सह रामस्यलङ्कांप्रतिगमनम् ।

भीष्म उवाच ।

कथं रामेण विप्रर्षे कान्यकुब्जे तु वामनः ।
स्थापितः क्व च लब्धोऽसौ विस्तरान्मम कीर्तय ॥ १ ॥

तथाहि मधुरा चैषा या वाणी रामकीर्तने । कीर्तिता भगवन्मह्यं मनः कर्णसुखावहा ॥
अनुरागेण तं लोकाः स्नेहात्पश्यन्तिराघवम् । धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च बुद्ध्या च परिनिष्ठितः
प्रशास्तिपृथवीं सर्वां धर्मेणसुसमाहितः । तस्मिञ्शासति वै राज्यं सर्वकामफलाद्रुमाः
रसवन्तः प्रभूताश्च वासांसि विविधानि च । अकृष्टपच्या पृथिवी निःसपत्नामहात्मनः

देवकार्यं कृतं तेन रावणो लोककण्टकः ।
सपुत्रोऽमात्यसहितो लीलयैव निपातितः ॥ ६ ॥

तस्य बुद्धिस्समुत्पन्ना पूर्णे धर्मे द्विजोत्तम । तस्याहं चरितं सर्वं श्रोतुमिच्छामि वै मुने

पुलस्त्य उवाच ।

कस्यचित्त्वथ कालस्य रामो धर्मपथे स्थितः । यच्चकार महाबाहो श्रृणुष्वैकमना नृप
सस्माररराघवेन्द्रस्तु कथं राजाविभीषणः । लङ्कायांसंस्थितो राज्यं करिष्यतिचराक्षसः

गीर्वाणेषु प्रातिकूल्यं विनाशस्य तु लक्षणम् ।
मया तस्य तु तद्दत्तं राज्यं चन्द्रार्ककालिकम् ॥ १० ॥
तस्याविनाशतः कीर्तिः स्थिरा मे शाश्वती भवेत् ।
रावणेन तपस्तप्तं विनाशायात्मनस्त्विह ॥ ११ ॥

विध्वस्तः स च पापिष्ठोदेवकार्येमयाधुना । तदिदानींमयान्वेष्यः स्वयं गत्वाविभीषणः
सन्देष्टव्यं हितं तस्य येन तिष्ठेत्सशाश्वतम् । एवं चिन्तयतस्तस्य रामस्यामिततेजसः
आजगामाथ भरतो रामं दृष्ट्वाऽब्रवीदिदम् । किं त्वं चिन्तयसे देव न रहस्यं वदस्व मे

देवकार्ये धरायां वा स्वकार्ये वा नरोत्तम । एवं ब्रुवन्तं भरतं ध्यायमानमवस्थितम् ॥
अब्रवीद्राघवो वाक्यं रहस्यं तु न वै तव । भवान्बहिश्चरः प्राणो लक्ष्मणश्च महायशाः
अवेद्यं भवतो नास्ति मम सत्यं विधारय । एषा मे महती चिन्ता कथं देवैर्विभीषणः
वर्तते यद्धितार्थं वै दशग्रीवो निपातितः । गमिष्ये तदहं लङ्कां यत्र चासौ विभीषणः ॥

तं च दृष्ट्वा पुरीं तां तु कार्यमुक्त्वा च राक्षसम् ।
आलोक्य सर्ववसुधां सुग्रीवं वानरेश्वरम् ॥ १६ ॥

महाराजं च शत्रुघ्नं भ्रातृपुत्रांश्च सर्वशः । एवं वदति काकुत्स्थे भरतः पुरतः स्थितः ॥
उवाच राघवं वाक्यं गमिष्ये भवता सह । एवं कुरु महाबाहो सौमित्रिरिह तिष्ठतु ॥
इत्युक्त्वा भरतं रामस्सौमित्रिं चाह वै पुरे । रक्षाकार्या त्वया वीर यावदागमनं हि नौ
एवं लक्ष्मणमादिश्य ध्यात्वा वै पुष्पकं नृप । आरुरोह स वै यानं कौसल्यानन्दवर्धनः
पुष्पकं तु ततःप्राप्तं गान्धारविषयो यतः । भरतस्य सुतौ दृष्ट्वा जगन्नीतिं निरीक्ष्य च
पूर्वां दिशं ततोगत्वा लक्ष्मणस्य सुतौ यतः । पुरेषु तेषु षड्रात्रमुषित्वा रघुनन्दनौ ॥

गतौ तेन विमानेन दक्षिणामभितो दिशम् ।
गङ्गायामुनसम्भेदं प्रयागमृषिसेवितम् ॥ २६ ॥

अभिवाद्य भरद्वाजमत्रेराश्रममर्मायतुः । सम्भाष्य च मुनींस्तत्र जनस्थानमुपागतौ ॥

राम उवाच ।

अत्रपूर्वं हृता सीता रावणेन दुरात्मना । हत्वा जटायुषं गृध्रं योऽसौ पितृसखोहि नौ
अत्रास्माकं महद्युद्धं कबन्धेन कुबुद्धिना । हतेन तेन दग्धेन सीतास्ते रावणालये ॥
ऋष्यमूके गिरिवरे सुग्रीवो नाम वानरः । स ते करिष्यते साह्यं पम्पांव्रज सहानुजः

पम्पासरःसमासाद्य शबरीं गच्छ तापसीम् ।
इत्युक्तो दुःखितो वीर निराशो जीविते स्थितः ॥ ३१ ॥

इयं सा नलिनी वीर यस्यांवै लक्ष्मणोऽवदत् । माकृथाः पुरुषव्याघ्रशोकं शत्रुविनाशन

आज्ञाकारिणि भृत्ये च मयि प्राप्स्यसि मैथिलीम् ।
अत्र मे वार्षिका मासा गता वर्षशतोपमाः ॥ ३२ ॥

अत्रैव निहतो बाली सुग्रीवार्थे परन्तप। एषा सादृश्यते नूनं किष्किन्धावालिपालिता
यस्यां वै सहिधर्मात्मा सुग्रीवो वानरेश्वरः। वानरैःसहितोवीर तावदास्ते समाःशतम्
वानरैस्सह सुग्रीवो यावदास्ते सभांगतः। तावत्तत्रागतौ वीरौ पुर्यां भरतराघवौ ॥

दृष्ट्वा सभ्रातरौ प्राप्तौ प्रणिपत्याब्रवीदिदम्।
क युवां प्रस्थितौ वीरौ कार्यं किंतु करिष्यथः ॥ ३७ ॥

विनिवेश्यासने तौ च ददावर्घ्यं स्वयंतदा। एवं सभास्थिते तत्र धर्मिष्ठे रघुनन्दने ॥
अङ्गदोऽथ हनूमांश्च नलोनीलश्च पाटलः। गजो गवाक्षो गवयःपनसश्च महायशाः ॥
पुरोधसो मन्त्रिणश्च दैवज्ञो दधिवक्त्रकः। नीलश्शतबलिर्मैन्दो द्विविदो गन्धमादनः
वीरबाहुस्सुबाहुश्च वीरसेनो विनायकः। सूर्याभःकुमुदश्चैव सुषेणो हरियूथपः ॥
ऋषभो विनतश्चैव गवाख्यो भीमविक्रमः। ऋक्षराजश्च धूम्रश्च सहसैन्यैरुपागताः ॥
अन्तःपुराणि सर्वाणि रुमातारातथैव च। अवरोधोऽङ्गदस्यापि तथान्याःपरिचारिकाः
प्रहर्षमतुलंप्राप्य साधुसाध्विति चाब्रुवन्। वानराश्च महात्मानःसुग्रीवसहितास्तदा ॥
वानर्यश्च महाभागास्ताराद्यास्तत्र राघवम्। अभिप्रेक्ष्याश्रुकण्ठ्यश्च प्रणिपत्येदमब्रुवन्

क सा देवी त्वया देव या विर्निजत्य रावणम्।
शुद्धिं कृत्वा हिते वह्नौ पितुरग्र उमापतेः ॥ ४६ ॥

त्वयानीतां पुरीं राम न तां पश्यामि तेऽग्रतः। न विना त्वं तया देव शोभसे रघुनन्दन

त्वया विनापि साध्वी सा क्वनु तिष्ठति जानकी।
अन्यां भार्यां न ते वेद्मि भार्याहीनो न शोभसे ॥४६॥

क्रौञ्चयुग्मं मिथोयद्वच्चक्रवाकयुगं यथा। एवंवदन्तीं तां तारांताराधिपसमाननाम् ॥४६॥
प्राह प्रवचसां श्रेष्ठो रामो राजीवलोचनः। चारुदंष्ट्रे विशालाक्षि कालो हि दुरतिक्रमः
सर्वं कालकृतं विद्धि जगदेतच्चराचरम्। विसृज्यताःस्त्रियःसर्वाःसुग्रीवोऽभिमुखःस्थितः

सुग्रीव उवाच।

भवन्तौ येन कार्येण इहायातौ नरेश्वरौ। तच्चापि कथ्यतां शीघ्रं कृत्यकालोहि वर्तते ॥
ब्रुवाणमेवं सुग्रीवं भरतो रामचोदितः। आचचक्षे च गमनं लङ्कायां राघवस्य तु ॥

तौ चाब्रवीच्च सुग्रीवो भवद्भ्यां सहितःपुरीम् ॥५३ ॥
गमिष्ये राक्षसं देव द्रष्टुं तत्रविभीषणम् । सुग्रीवेणैवमुक्ते तु गच्छस्वेत्याह राघवः ॥
सुग्रीवो राघवौ तौ च पुष्पकेतुस्थितास्त्रयः । तावत्प्राप्तेविमानं तु समुद्रस्योत्तरंतटम् ॥
अब्रवीद्वरतं रामोह्यत्र मे राक्षसेश्वरः । चतुर्भिःसचिवैःसार्धं जीवितार्थे विभीषणः ॥
प्राप्तस्ततोलक्ष्मणेन लङ्काराज्येऽभिषेचितः । अत्रचाहं समुद्रस्य परेपारेस्थितस्त्र्यहम् ॥
दर्शनं दास्यते मेऽसौ ज्ञातिकार्यं भविष्यति । तावन्नदर्शनं मह्यं दत्तमेतेन शत्रुहन् ॥
ततःकोपःसमुद्भूतश्चतुर्थेऽहनि राघव । धनुरायम्य वेगेन दिव्यमस्त्रं करे धृतम् ॥५९॥
दृष्ट्वा मां शरणान्वेषी भीतो लक्ष्मणमाश्रितः ।
सुग्रीवेणानुनीतोऽस्मि क्षम्यतां राघव त्वया ॥ ६० ॥
ततोमयोत्क्षिप्तशरो मरुदेशह्यपाकृतः । ततस्समुद्रराजेन भृशं विनयशालिना ॥ ६१ ॥
उक्तोऽहं सेतुबन्धेन लङ्कां त्वं व्रजराघव । लङ्घयित्वा नरव्याघ्र वारिपूर्णं महोदधिम् ॥
एष सेतुर्मयाबद्धःसमुद्रे वरुणालये । त्रिभिर्दिनैःसमाप्तिं वै नीतो वानरसत्तमैः ॥६३ ॥
प्रथमेदिवसे बद्धो योजनानि चतुर्दश । द्वितीयेऽहनि षट्त्रिंशत्तृतीयेऽर्धशतं तथा ॥
इयं सा दृश्यते लङ्का स्वर्णप्राकारतोरणा । अवरोधो महानत्र कृतो वानरसत्तमैः ॥
चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां महद्युद्धमभूदिह । अष्टचत्वारिंशद्दिनं यत्रासौ रावणोहतः ॥ ६६॥
अत्रप्रहस्तो नीलेन हतो राक्षसपुङ्गवः । हनूमता च धूम्राक्षो ह्यत्रैव विनिपातितः ॥
महोदरातिकायौ च सुग्रीवेण महात्मना । हतोमया कुम्भकर्णो लक्ष्मणेनेन्द्रजित्तथा ॥
मया चात्र दशग्रीवो हतो राक्षसपुङ्गवः । अत्र सम्भाषितुं प्राप्तो ब्रह्मा लोकपितामहः ॥
पार्वत्यासहितोदेवःशूलपाणिर्वृषध्वजः । महेन्द्राद्याःसुरगणाःसगन्धर्वाःसकिन्नराः ॥
पिता मे च समागतो महाराजस्त्रिविष्टपात् । वृतश्चाप्सरसांसङ्घैर्विद्याधरगणैस्तथा ॥
तेषां समक्षं सर्वेषां जानकीशुद्धिमिच्छता । उक्ता सीता हव्यवाहं प्रविष्टाशुद्धिमागता ॥
असुरैश्च सुरैर्दृष्टा गृहीता पितृशासनात् । अथाप्युक्तोऽथ राज्ञाऽहमयोध्यां गच्छपुत्रक
न मे स्वर्गो बहुमतस्त्वया हीनस्य राघव ।
तारितोऽहं त्वया पुत्र प्राप्तोऽस्मीन्द्रसलोकताम् ॥ ७४ ॥

लक्ष्मणं चाब्रवीद्राजा पुत्र पुण्यं त्वयार्जितम् ।
भ्रात्रा सममथो दिव्यांल्लोकान्प्राप्स्यसि चोत्तमान् ॥ ७५ ॥

आहूय जानकीं राजा वाक्यं चेदमुवाच ह । न च मन्युस्त्वया कार्यो भर्तारं प्रति सुव्रते
ख्यातिर्भविष्यत्येवाग्र्या भर्तुस्ते शुभलोचने । एवं वदति रामे तु पुष्पके च व्यवस्थिते

तत्र ये राक्षसचरास्ते गत्वा ऽऽशु विभीषणम् ।
प्राप्तो रामः ससुग्रीवश्चारा इत्थं तदाऽवदन् ॥ ७८ ॥

विभीषणस्तु तच्छ्रुत्वा रामागमनमन्तिके । चारांस्तान्पूजयामास सर्वकामधनादिभिः
अलङ्कृत्य पुरीं तां तु निष्क्रान्तः सचिवैः सह । दृष्ट्वा रामं विमानस्थं मेराविव दिवाकरम्
अष्टाङ्गप्रणिपातेन नत्वा राघवमब्रवीत् । अद्य मे सफलं जन्म प्राप्ताः सर्वे मनोरथाः ॥
यद्दृष्टौ देवचरणौ जगद्वन्द्यावनिन्दितौ । कृतः श्लाघ्योऽस्म्यहं देवशक्रादीनां दिवौकसाम्
आत्मानमधिकं मन्ये त्रिदशेशात्पुरन्दरात् । देवस्य दर्शनात्तेऽद्य स्पृहणीयो दिवौकसाम्
अभिवन्द्य स रामं तु आलिङ्ग्य भरतं हरिम् । लङ्कां प्रवेशयामास विशिष्टायात्रिविष्टपात्
रावणस्य गृहे दीप्ते सर्वरत्नोपशोभिते । उपविष्टे तु काकुत्स्थे अर्घं दत्त्वा विभीषणः ॥
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा सुग्रीवं भरतं तथा । इहागतस्य रामस्य यद्दास्येन तदस्ति मे ॥
इयं च लङ्का रामेण रिपुं त्रैलोक्यकण्टकम् । हत्वा तु पापकर्माणं दत्तापूर्वं पुरी मम ॥
इयं पुरी इमे दारा अमी पुत्रास्तथा ह्यहम् । सर्वमेतन्मया दत्तं सर्वमक्षयमस्तु ते ॥ ८८ ॥
ततः प्रकृतयः सर्वा लङ्कावासिजनाश्च ये । आजग्मू राघवं द्रष्टुं कौतूहलसमन्विताः ॥८९॥
उक्तो विभीषणस्तैस्तु रामं दर्शय नः प्रभो । विभीषणेन कथिता राघवाय महात्मने ॥
तेषामुपायनं सर्वं भरतो रामचोदितः । जग्राह वानरेन्द्रश्च धनरत्नौघसञ्चयम् ॥ ९१ ॥
एवं तत्र त्र्यहं रामो ह्यवसद्राक्षसालये । चतुर्थेऽहनि सम्प्राप्ते रामे चापि सभास्थिते ॥
कैकसी पुत्रमाहेदं रामं द्रक्ष्यामि पुत्रक । वधूभिस्सहिता गत्वा त्वं विज्ञापय पुत्रक ॥
दृष्टे तस्मिन्महत्पुण्यं प्राप्यते मुनिसत्तमैः । विष्णुरेष महाभागश्चतुर्मूर्तिस्सनातनः ॥

सीता लक्ष्मीर्महाभाग न बुद्धा साग्रजेन ते ।
पित्रा ते पूर्वमाख्यातं देवानां दिवि सङ्गमे ॥ ९५ ॥

कुले रघूणां वै विष्णुः पुत्रो दशरथस्य तु । भविष्यतिविनाशाय दशग्रीवस्य रक्षसः ॥

विभीषण उवाच ।

एवं कुरुष्व वै मातर्गृहाण नवमम्बरम् । पात्रं चन्दनसंयुक्तं दधिक्षौद्राक्षतैःसह ॥
दूर्वयार्घं सह कुरु राजपुत्रस्य दर्शनम् । सरमामग्रतःकृत्वा याश्चान्या देवकन्यकाः ॥
व्रजस्व राघवाभ्याशं तस्मादग्रे व्रजाम्यहम् । एवमुक्त्वा गतं रक्षो यत्ररामो व्यवस्थितः
उत्सार्य दानवान्सर्वान्रामं द्रष्टुं समागतान् ।
सभां तां विमलां कृत्वा रामं स्वाभिमुखेस्थितम् ॥ १०० ॥

विभीषण उवाच ।

विज्ञाप्यं शृणु मे देव वदतश्च विशांपते । दशग्रीवं कुम्भकर्णं याचमां चाप्यजीजनत् ॥
इयं सा देवमातानःपादौ ते द्रष्टुमिच्छति । तस्यास्तु त्वं कृपां कृत्वा दर्शनं दातुमर्हसि

राम उवाच ।

अहं तस्याःसमीपं तु मातृदर्शनकाङ्क्षया । गमिष्ये राक्षसेन्द्र त्वं शीघ्रंयाहि ममाग्रतः
प्रतिज्ञाय तु तं वाक्यमुत्तस्थौ च वरासनात् । मूर्ध्निचाञ्जलिमाधाय प्रणाममकरोद्विभुः
अभिवादयेऽहं भवतीं माताभवसि धर्मतः । महता तपसाचापि पुण्येन विविधेन च ॥
इमौते चरणौ देवि मानवो यदिपश्यति । पूर्णःस्यात्तदहं प्रीतो दृष्ट्वे मौपुत्रवत्सले ॥
कौशल्या मे यथामाता भवती च तथामम । केकसी चाब्रवीद्रामं चिरंजीव सुखीभव
भर्त्रा मे कथितं वीर विष्णुर्मानुषरूपधृत् । अवतीर्णा रघुकुले हितार्थे त्रिदिवौकसाम्
दशग्रीव विनाशायमूर्तिंदातुं विभीषणे । वालिनो निधनंचैव सेतुबन्धं च सागरे ॥
पुत्रो दशरथस्यैव सर्वं स च करिष्यति । इदानीं त्वं मयाज्ञातःस्मृत्वा तद्भर्तृ भाषितम्
सीतालक्ष्मोर्भवान्विष्णुर्देवा वै वानरास्तथा । गृहं पुत्रगमिष्यामि स्थिरकीर्तिमवाप्नुहि

सरमोवाच ।

इहैव वत्सरं पूर्णमशोकवनिकास्थिता । सेविता जानकीदेवी सुखंतिष्ठति ते प्रिया ॥
नित्यं स्मरामि वै पादौ सीतायास्तु परन्तप ।
कदा द्रक्ष्यामि तां देवीं चिन्तयानात्वहर्निशम् ॥ ११३ ॥

किमर्थं देवदेवेन नानीता जानकीत्विह । एकाकी नैवशोभेथा योषिता च तयाविना ॥
समीपे शोभते सीता त्वं च तस्याःपरन्तप । एवंब्रुवन्त्यां भरतः केयमित्यब्रवीद्वचः ॥
ततश्चेङ्गितविद्रामो भरतंप्राह सत्वरम् । विभीषणस्य भार्या वै सरमानाम नामतः ॥
प्रियासखी महाभागा सीतायास्सुदृढंमता । सर्वंकालकृतंपश्य न जाने किंकरिष्यति ॥
गच्छत्वं सुभगेभर्तृगेहंपालय शोभने । मां त्यक्त्वा हि गता देवीभाग्यहीनं गतिर्यथा
तया विरहितःसुभ्रु रतिंविन्दे न कर्हिचित् । शून्या एवदिशःसर्वाःपश्यामीह पुनर्भ्रमन्

विसृज्य तां च सरमां सीतायास्तु प्रियांसखीम् ।
गतायामथ केकस्यां रामःप्राह विभीषणम् ॥ १२० ॥

दैवतेभ्यःप्रियंकार्यं नापराध्यास्त्वयासुराः । आज्ञयाराजराजस्य वर्तितव्यं त्वयाऽनघ ॥
लङ्कायांमानुषोयोवै समागच्छेत्कथञ्चन । राक्षसैर्न च हन्तव्योऽद्रष्टव्योसौ यथात्वहम्

विभीषण उवाच ।

आज्ञयाहं नरव्याघ्र करिष्ये सर्वमेव तु । विभीषणे हि वदति वायू राममुवाच ह ॥
इहास्ति वैष्णवीमूर्तिःपूर्वंबद्धो बलिर्यया । तां नयस्व महाभागे कान्यकुजे प्रतिष्ठय ॥
विदित्वातदभिप्रायं वायुनासमुदाहृतम् । विभीषणस्त्वलङ्कृत्य रत्नैःसर्वैश्च वामनम् ॥
आनीयचार्पयद्रामे वाक्यं चेदमुवाच ह । यदा वै निर्जितःशक्रो मेघनादेन राघव ॥
तदा वै वामनस्त्वेष आनीतो जलजेक्षण । नयस्व तन्निमं देव देवदेवं प्रतिष्ठय ॥१२७॥

तथेति राघवःकृत्वा पुष्पकं च समारुहत् ।
धनं रत्नमसङ्ख्येयं वामनं च सुरोत्तमम् ॥ १२८ ॥

गृह्य सुग्रीवभरतावारूढौ वामनादनु । व्रजन्नेवाम्बरे रामस्तिष्ठेत्याह विभीषणम् ॥
राघवस्य वचःश्रुत्वा भूयोऽप्याह सराघवम् । करिष्येसर्वमेतद्धि यदाज्ञप्तं विभोत्वया
सेतुनानेन राजेन्द्र पृथिव्यां सर्वमानवाः । आगत्य प्रतिबाधेरन्नाज्ञाभङ्गो भवेत्तव ॥
कोऽत्र मे नियमोदेव किन्नुकार्यं मयाविभो । श्रुत्वैतद्राघवो वाक्यंराक्षसोत्तमभाषितम्

कार्मुकं गृह्य हस्तेन रामःसेतुं द्विधाऽच्छिनत् ।
त्रिर्विभज्य च वेगेन मध्ये वै दशयोजनम् ॥ १३३ ॥

छित्त्वा तु योजनं चैकमेकंखण्डत्रयंकृतम् । वेलावनं समासाद्य रामःपूजामुमापतेः ॥
कृत्वा रामेश्वरंनाम्ना देवदेवं जनार्दनम् । अभिषिच्याथ संगृह्य वामनं रघुनन्दनः ॥
दक्षिणादुदधेश्चैव निर्जगाम त्वरान्वितः । अन्तरिक्षादभूद्वाणी मेघगम्भीरनिःस्वना ॥

रुद्र उवाच ।

भोभो रामास्तु भद्रं ते स्थितोऽहमिह साम्प्रतम् । यावज्जगदिदंराम यावदेषा धरास्थिता
तावदेव च ते सेतुतीर्थं स्थास्यति राघव । श्रुत्वैवं देवदेवस्य गिरंताममृतोपमाम् ॥

राम उवाच ।

नमस्ते देवदेवेश भक्तानामभयङ्कर । गौरीकान्त नमस्तुभ्यं दक्षयज्ञविनाशन ॥ १३९ ॥
नमो भवाय शर्वाय रुद्राय वरदाय च । पशूनांपतये नित्यं चोग्राय च कपर्दिने ॥१४०॥
महादेवाय भीमाय त्र्यम्बकाय दिशांपते । ईशानाय भगघ्नाय नमोऽस्त्वन्धकघातिने
नीलग्रीवाय घोराय वेधसेवेधसास्तुत । कुमारशत्रुनिघ्नाय कुमारजननाय च ॥१४२॥
विलोहिताय धूम्राय शिवाय क्रथनाय च । नमो नीलशिखण्डाय शूलिने दैत्यनाशिने ॥
उग्राय च त्रिनेत्राय हिरण्यवसुरेतसे । अनिन्द्यायाम्बिकाभर्त्रे सर्वदेवस्तुताय च ॥
अभिगम्याय काम्याय सद्योजाताय वै नमः । वृषध्वजाय मुण्डाय जटिने ब्रह्मचारिणे ॥
तप्यमानाय तप्याय ब्रह्मण्याय जयाय च । विश्वात्मने विश्वसृजे विश्वमावृत्य तिष्ठते
नमोनमोऽस्तु दिव्याय प्रपन्नार्तिहराय च । भक्तानुकम्पिनेदेव विश्वतेजो मनोगते ॥

पुलस्त्य उवाच ।

एवं संस्तूयमानस्तु देवदेवो हरोनृप । उवाच राघवं वाक्यं भक्तिनम्रं पुरःस्थितम् ॥

रुद्र उवाच ।

भोभो राघव भद्रं ते ब्रूहि यत्ते मनोगतम् । यावदेव प्रयच्छामि नास्त्यदेयं मया हि ते
पुष्कराक्ष महादेव देवदेवस्सनातनः । भवान्नारायणो नूनं गूढो मानुषयोनिषु ॥१५०॥
अवतीर्णो देवकार्यं कृतं तच्चानघ त्वया । इदानीं स्वं व्रजस्थानं कृतकार्योऽसि शत्रुहन्
त्वयाकृतं परंतीर्थं सेत्वाख्यं रघुनन्दन । आगत्य मानवा राजन्पश्येयुरिहसागरे ॥१५२
महापातकयुक्ता ये तेषां पापं विलीयते । ब्रह्मवध्यादि पापानि यानिकष्टानि कानिचित्

दर्शनादेव नश्यन्ति नात्रकार्या विचारणा । गच्छत्वं वामनं स्थाप्य गङ्गातीरे रघूत्तम
पृथिव्यां सर्वशः कृत्वा भागानष्टौ परन्तप ।
श्वेतद्वीपं स्वकं स्थान व्रज देव नमोऽस्तु ते ॥ १५५ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

प्रणिपत्य ततो रामस्तीर्थं प्राप्तश्च पुष्करम् ।
विमानं तु न यात्यूर्ध्वं वेष्टितं तत्तु राघवः ॥ १५६ ॥
किमिदं वेष्टितं यानं निरालम्बेऽम्बरे स्थितम् ।
भवितव्यं कारणेन पश्येत्याह स्म वानरम् ॥ १५७ ॥
सुग्रीवो रामवचनादवतीर्य धरातले । स च पश्यति ब्रह्माणं सुरसिद्धसमन्वितम् ॥
ब्रह्मर्षिसङ्घसहितं चतुर्वेदसमन्वितम् । दृष्ट्वाऽऽगत्याब्रवीद्रामं सर्वलोकपितामहः ॥
सहितो लोकपालैश्च वस्वादित्यमरुद्गणैः । तं देव पुष्पकं नैव लङ्घयेद्धि पितामहम् ॥
अवतीर्य ततो रामःपुष्पकाद्धेमभूषितात् । नत्वा विरिञ्चनंदेवं गायत्र्या सह संस्थितम्
अष्टाङ्गप्रणिपातेन पञ्चाङ्गालिङ्गितावनिः । तुष्टाव प्रणतो भूत्वा देवदेवं विरिञ्चनम् ॥

राम उवाच ।

नमामि लोककर्तारं प्रजापतिसुरार्चनम् । देवनाथं लोकनाथं प्रजानाथं जगत्पतिम् ॥
नमस्ते देवदेवश सुरासुरनमस्कृत । भूतभव्यभवन्नाथ हरिपिङ्गललोचन ॥ १६४ ॥
बालस्त्वं वृद्धरूपी च मृगचर्मासनाम्बरः । तारणश्चासि देवस्त्वं त्रैलोक्यप्रभुरीश्वरः ॥
हिरण्यगर्भ पद्मगर्भ वेदगर्भ स्मृतिप्रद । महासिद्धो महापद्मी महादण्डी च मेखली ॥
कालश्च कालरूपी च नीलग्रीवो विदांवरः । वद कर्ताभको नित्य पशूनां पतिरव्ययः
दर्भपाणिर्हंसकेतुः कर्ता हर्ता हरो हरिः । जटी मुण्डी शिखी दण्डी लगुडीचमहायशाः
भूतेश्वरः सुराध्यक्षः सर्वात्मा सर्वभावनः । सर्वगः सर्वहारी च स्रष्टा च गुरुरव्ययः
कमण्डलुधरो देवः स्रुक् स्रुवादिधरस्तथा । हवनीयोऽर्चनीयश्च ओंकारो ज्येष्ठसामगः
मृत्युश्चैवामृतश्चैव पारियात्रश्च सुव्रतः । ब्रह्मचारीव्रतधरो गुहावासीसुपङ्कजः ॥१७१
अमरो दर्शनीयश्च बालसूर्यनिभस्तथा । पद्मवासी च भगवान्सावित्रीपतिरच्युतः ॥

वरप्रदो दानवानां विष्णोर्लब्धवरस्तथा । कर्मकर्ताऽधर्महर्ता अभयहस्त एव च ॥
अग्निमुखोह्यग्निकेतुर्मुनिरूपो दिशांपतिः । उत्सवो वेदस्रष्टासिचतुर्वर्गाधिपस्तथा ॥
दक्षिणे वामतश्चापि पत्नीभ्यामुपसेवितः । भिक्षुश्च भिक्षुरूपश्च त्रिजटी लब्धनिश्चयः ॥
चित्तवृत्तिकरः कामो मधुर्मधुकरस्तथा । वानप्रस्थोवनगत आश्रमी पूजितस्तथा ॥

जगद्धाता च कर्त्ता च पुरुषः शाश्वतो ध्रुवः ।
धर्माध्यक्षो विरूपाक्षस्त्रिधर्मो भूतभावनः ॥ १७७ ॥

त्रिवेदो बहुरूपश्च सूर्यायुतसमप्रभः । मोहको बन्धकश्चैव दानवानां विशेषतः ॥१७८
देवदेवश्च पद्माङ्कस्त्रिनेत्रोऽब्जजटस्तथा । हरिश्मश्रुर्धनुर्धारीभीमो धर्मपराक्रमः ॥१७९॥

पुलस्त्य उवाच ।

एवं स्तुतस्तु रामेण ब्रह्मा ब्रह्मविदांवरः । उवाच प्रणतं रामं करे गृह्य पितामहः ॥

ब्रह्मोवाच ।

विष्णुस्त्वं मानुषे देहेऽवतीर्णो वसुधातले । कृतं तद्भवता सर्वं देवकार्यं महाविभो ॥
संस्थाप्य वामनं देवं जाह्नव्या दक्षिणेतटे । अयोध्यां स्वपुरींगत्वा सुरलोकं व्रजस्वच

पुलस्त्य उवाच ।

विसृष्टो ब्रह्मणा रामः प्रणिपत्य पितामहम् । आरूढः पुष्पकं यानं सम्प्राप्तो मधुरांपुरीम्
समीक्ष्य पुत्रसहितं शत्रुघ्नं शत्रुघातिनम् । तुतोष राघवः श्रीमान्भरतः स हरीश्वरः ॥
शत्रुघ्नो भ्रातरौ प्राप्तौ शक्रोपेन्द्राविवागतौ । प्रणिपत्य ततोमूर्ध्नापश्चाङ्गालिङ्गितावनिः
उत्थाप्य चाङ्कमारोप्य रामो भ्रातरमञ्जसा । भरतश्च ततः पश्चात्सुग्रीवस्तदनन्तरम् ॥
उपविष्टोऽथ रामाय सोऽर्घमादाय सत्वरम् । राज्यं निवेदयामास चाष्टाङ्गं राघवे तदा
श्रुत्वा प्राप्तं ततो रामं सर्वो वै माथुरो जनः । वर्णा ब्राह्मणभूयिष्ठा द्रष्टुमेनं समागताः

सम्भाष्य प्रकृतीः सर्वा नैगामान्ब्राह्मणैः सह ।
दिनानि पञ्चोषित्वाऽत्र रामो गन्तुं मनो दधे ॥ १८९ ॥

शत्रुघ्नश्च ततो रामे वाजिनोऽथ गजांस्तथा । कृताकृतं च कनकं तत्रोपायनमाहरत् ॥
रामस्त्वाह ततः प्रीतः सर्वमेतन्मया तव । दत्तं पुत्रौ तेऽभिषिञ्च राजानौ माथुरे जने

एवमुक्त्वा ततो रामः प्राप्तो मध्यन्दिने रवौ। महोदयं समासाद्य गङ्गातीरे स वामनम्
प्रतिष्ठाप्य द्विजानाह भाविनः पार्थिवांस्तथा। मया कृतोऽयं धर्मस्य सेतुर्भूतिविवर्धनः
प्राप्ते काले पालनीयो न च लोप्यः कथञ्चन।
प्रसारितकरेणैव प्रार्थनैषा मया कृता॥ १६४॥
नृपाः कृते मयार्थित्वे यत्क्षेमं क्रियतामिह। नित्यं दैनन्दिनी पूजा कार्या सर्वैरतन्द्रितैः
ग्रामान्दत्त्वा धनं तच्च लङ्कायां आहृतं च यत्।
प्रेषयित्वा च किष्किन्धां सुग्रीवं वानरेश्वरम्॥ १६६॥
अयोध्यामागतो रामः पुष्पकं तमथाब्रवीत्।
नागन्तव्यं त्वया भूयस्तिष्ठ यत्र धनेश्वरः।
कृतकृत्यस्ततो रामः कर्तव्यं नाप्यमन्यत॥ १६७॥

पुलस्त्य उवाच।

एवंते भीष्म रामस्यकथायोगेनपार्थिव। उत्पत्तिर्वामनस्योक्ता किं भूयःश्रोतुमिच्छसि
कथयामि तु तत्सर्वं यत्र कौतूहलं नृप। सर्वं ते कीर्त्तयिष्यामि येनार्थी नृपनन्दन॥
इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे वामनप्रतिष्ठा नाम चत्वारिंशोऽध्यायः।

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

भीष्मस्य पुलस्त्यं प्रति विष्णोर्नाभिपद्मोत्पत्तिवर्णनम्।

भीष्म उवाच।

कथितं वामनस्यैव माहात्म्यं विस्तरेण वै। पुनस्तस्यैव माहात्म्यमन्यद्विष्णोरतो वद
पद्मं कथमभूद्देव नाभौ येनाभवज्जगत्। कथं च वैष्णवी सृष्टिः पद्ममध्येऽभवत्पुरा॥
कथं पाद्मे महाकल्पेऽभवत्पद्ममयं जगत्। जलार्णवगतस्येह नाभौ जातं जलानुगम्॥
प्रभावं पद्मनाभस्य स्वपतः सागराम्भसि॥ पुष्करे तु कथं जाता देवा ऋषिगणाः पुरा

एतदाख्याहि निखिलं योगं योगविदां वर। शृण्वतस्तस्य मे कीर्तिं न तृप्तिरुपजायते
कियताचैव कालेन शोभतेपुरुषोत्तमः। कियन्तं वै स्वपिति च कति कालस्यसम्भवाः

कियता वाथ कालेन प्रोत्तिष्ठति महायशाः।
कथं चोत्थाय भगवान्सृजते निखिलं जगत् ॥ ७ ॥

के प्रजापतयस्तावदासन्पूर्वं महामुने। कथं निर्मितवांस्तत्र चैतं लोकं सनातनम् ॥ ८ ॥
कथमेकार्णवे शून्ये नष्टे स्थावरजङ्गमे। भूगोलके प्रदग्धे तु प्रनष्टोरगराक्षसे ॥ ९॥
नष्टानलानिलाकाशे नष्टधर्मे महीतले। केवले गह्वरीभूते महाभूतविपर्यये ॥ १० ॥

किंनु विश्वपतिः साक्षान्महातेजा महाद्युतिः।
आस्ते यथाध्याननिष्ठो विधिमास्थाय योगवित् ॥ ११ ॥

शृण्वतः परया भक्त्या ब्रह्मन्नेतदशेषतः। वक्तुमर्हसि धर्मज्ञ यशो नारायणात्मकम् ॥

श्रद्धिनः सूपविष्टस्य भगवन्वक्तुमर्हसि ॥ १३ ॥

पुलस्त्य उवाच।

नारायणस्य यशसः श्रवणे या तव स्पृहा। सद्वंशान्वयपूतस्य न्याय्यं कुरुकुलोद्वह ॥
शृणुष्वादिपुराणेषु देवेभ्यश्च यथाश्रुति। ब्राह्मणानां च वदतां श्रुत्वा वै सुमहात्मनाम्

यथा च तपसा दृष्ट्वा बृहस्पतिसमद्युतिः।
पराशरसुतः श्रीमान्गुरुर्द्वैपायनोऽब्रवीत् ॥ १६ ॥

तत्तेऽहं कथयिष्यामि यथाभक्ति यथाश्रुति। यद्विज्ञातं मया सम्यगृषिमार्गेण सत्तम ॥
कः समुत्सहते ज्ञातुं परं नारायणात्मकम्। विश्वाधितारं ब्रह्मायं न वेदयति तत्त्वतः
तत्कर्म विश्वदेवानां तद्रहस्यं महर्षिषु। स इज्यस्सर्वयज्ञानां स तत्त्वं तत्त्वदर्शिनाम् ॥
अध्यात्ममध्यात्मविदां नरकं च विकर्मिणाम्। अधिदैवं च तद्दैवमधिदैवतसंज्ञितम् ॥
अधिभूतं च तद्भूतं परं च परमार्थिनाम्। स यज्ञो वेदनिर्दिष्टस्तत्तपः कवयो विदुः॥
यः कर्त्ता कारको बुद्धिर्यतः क्षेत्रज्ञ एवच। प्रणवः पुरुषः शास्ता एकश्चेति विभाव्यते
प्राणः पञ्चविधश्चैव ध्रुवमक्षरमेव च। कालः पाकश्च यज्ञश्च यष्टा चाधीतमेव च ॥
उच्यते विविधैर्भावैः स एवायं तु तत्परम्। स एव भगवान्सर्वं करोति न करोतिच

सोऽस्मिन्कारयते सर्वं स्थानिनां च कृतिः कृता ।
यजामहे तमेवाद्यं स एवोत्थाननिर्वृतः ॥ २५ ॥
योवक्ता यच्च वक्तव्यं यश्चाहं तद्ब्रवीमि ते । श्रूयतेयच्च वैश्राव्यं यच्चान्यत्परिजल्पितम्
या कथा याश्च श्रुतयो यो धर्मोधर्मतत्परः । विश्वंविश्वपतिर्यश्च स तु नारायणःस्मृतः
यत्सत्यं यदनृतमादिमध्यभूतं यच्चान्त्यं निरवधिकं च यद्भविष्यम् ।
यत्किञ्चिच्चरमचरं यदस्ति चान्यत्सर्वंतत्पुरुषवरः प्रधानभूतः ॥ २८ ॥
चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम् ।
तस्य तावच्छती सन्ध्या द्विगुणा कुरुनन्दन ॥ २६ ॥
यत्र धर्मश्चतुष्पादस्त्वधर्मः पादविग्रहः । स्वधर्मनिरताः शान्ता जायन्ते यत्र मानवाः
विप्राः स्थिता धर्मपरा राजवृत्तिस्थिता नृपाः ।
कृष्यामभिरता वैश्याः शूद्राः शुश्रूषवस्तथा ॥ ३१ ॥
तदा सत्यं च सत्वं च धर्मश्चैव विवर्धत । सद्भिराचरितो धर्मोयेन लोकः प्रवर्त्तते ॥
एतत्कृतयुगे वृत्तं सर्वेषामेव पार्थिव । प्राणिनां धर्मसंज्ञानां नराणां नीचजन्मनाम् ॥
त्रीणि वर्षसहस्राणि त्रेतायुगमिहोच्यते ।
तस्य तावच्छती सन्ध्या द्विगुणा परिकीर्तिता ॥ ३४ ॥
द्वाभ्यामधर्मः पादाभ्यां त्रिभिर्धर्मो व्यवस्थितः ।
यत्र सत्यं च सत्वं च क्रिया धर्मो विधीयते ॥ ३५ ॥
त्रेतायां विकृतिं यान्ति वर्णा लोभेनसंयुताः ।चातुर्वर्ण्यस्य वैकृत्यं क्षान्तिर्दौर्बल्यमेव च
एषा त्रेतायुगगतिर्विचित्रा देवनिर्मिता । द्वापरं द्विसहस्रं तु वर्षाणां कुरुनन्दन ॥ ३७॥
तस्य तावच्छती सन्ध्या द्विगुणंयुगमुच्यते । तत्राप्यतीवार्थपराः प्राणिनो रजसाहताः
शठा नैष्कृतिकाः क्षुद्रा जायन्ते कुरुनन्दन ।
द्वाभ्यां धर्मः स्थितः पद्भ्यामधर्मस्त्रिभिरुत्थितः ॥ ३६ ॥
विपर्ययशतैर्धर्मः क्षयमेति कलौ युगे । ब्रह्मण्यभावश्च्यवते तथास्तिक्यं विवर्ज्यते ॥
व्रतोपवासास्त्यज्यन्ते कलौ वै युगपर्यये । तदा वर्षसहस्रं तु वर्षाणां द्वे शते तथा ॥

सन्ध्यया सहसङ्ख्यातः क्रूरः कलियुगस्तथा ।
यत्राधर्मश्चतुष्पादो धर्मः पादपरिग्रहः ॥ ४२ ॥
कामिनस्तापसाः क्षुद्रा जायन्ते यत्र मानवाः ।
न चावसायिकः कश्चिन्न साधुर्न च सत्यवाक् ॥ ४३ ॥
नास्तिका ब्राह्मणा भक्ता जायन्ते तत्र मानवाः ।
अहंकारगृहीताश्च प्रक्षीणस्नेहबन्धनाः ॥ ४४ ॥

विप्राः शूद्रसमाचारास्सन्ति सर्वे कलौ युगे। आश्रमाणां विपर्यासःकलौ सम्प्रतिवर्तते
वर्णानां चैव सन्देहो युगान्ते कुरुनन्दन । एषा द्वादशसाहस्री युगाख्या पूर्वनिर्मिता ॥
सहस्रयुगपर्यन्तं तदहर्ब्राह्ममुच्यते । ततोऽहनि गते तस्मिन्सर्वेषामेव जीविनाम् ॥

शरीरनिर्वृतिं दृष्ट्वा कालः संहारबुद्धिमान् ।
देवतानां च सर्वेषां ब्राह्मणानां महीपते ॥ ४८ ॥
दैत्यानां दानवानां च यक्षराक्षसपक्षिणाम् ।
गन्धर्वाणामप्सरसां भुजङ्गानां च पार्थिव ॥ ४९ ॥

पर्वतानां नदीनां च पशूनां चैव सत्तम । तिर्यग्योनिगतानां च क्रिमीणां दंशिनां तथा
सर्वभूतपतिः पश्च भूत्वा भूतानि भूतकृत् । जगत्संहरणार्थाय कुरुते वैशसं महत् ॥

भूत्वा सूर्यश्चक्षुषी आददानो भूत्वा वायुः प्राणिनां प्राणिजातम् ।
भूत्वा वह्निर्निर्दहन्सर्वलोकान्भूत्वा मेघो भूय उग्रोऽभ्यवर्षत् ॥ ५२ ॥

भूत्वा नारायणो योगी सर्वमूर्तिर्विभावसुः। गभस्तिभिःप्रदीप्ताभिःसंशोषयति सागरान्
ततः पीत्वार्णवान्सर्वान्नदीकूपांश्च सर्वतः । पर्वतानां च सलिलं सर्वमादाय योगवित्॥
भूत्वा चैव सहस्रार्चिर्महीं भित्वा रसातले । रमते जलमादाय पिबन्रसमनुत्तमम् ॥
मूर्त्तामूर्त्ते तदन्यच्च यदस्ति प्राणिषु ध्रुवम् । तत्सर्वमरविन्दाक्ष आदत्ते पुरुषोत्तमः ॥

वायुश्च बलवान्भूत्वा विधुन्वानोऽखिलं जगत् ।
प्राणापानं समासाद्य वायुनाक्रमते हरिः ॥ ५७ ॥
ततो देवगणानां च सर्वेषां चैव देहिनाम् ।

पञ्चेन्द्रियगुणास्सर्वे भूतान्येव च यानि च ॥ ५८ ॥
घ्रेयं घ्राणं शरीरं च पृथिवीं संश्रिता गुणाः । लोकयात्रा भगवता मुहूर्तेन विनाशिता ॥
जिह्वा रसश्च स्नेहश्च संश्रिताः सलिले गुणाः । रूपंचक्षुर्विभागश्चनेत्रं ज्योतिःश्रितागुणाः
स्पर्शः प्राणश्च चेष्टा च पवनं संश्रिता गुणाः । शब्दः श्रोत्रे च श्रवणं गगनं संश्रितागुणाः
मनोबुद्धिश्च चित्तं च क्षेत्रज्ञं चेति संश्रिताः । परेण परमेष्ठी च हृषीकेशमुपाश्रिताः ॥
ततो भगवतस्तस्य रश्मिभिः परिवारिताः । वायुना परिनुन्नाश्च भूमिशाखामपाश्रिताः
तेषां संहरणोद्भूतः पावकः शतधाज्वलन् । प्रदहन्नखिलं विश्वं वृत्तः संवर्त्तकोऽनलः
सपर्वतद्रुमान्गुल्मांल्लतावल्लीस्तृणानि च । विमानानि च दिव्यानि पुराणिविविधानि च

यानि चाश्रयणीयानि सर्वाण्यप्यदहद् भृशम् ।
भस्मीकृत्य तु तान्सर्वांल्लोकाँल्लोकगुरोर्गुरुः ॥ ६६ ॥
स भूतिं धारयामास युगान्ते लोकसंभवाम् ।
सहस्रवृष्टिः शतधा भूत्वा कृष्णो महाघनः ॥ ६७ ॥

दिव्यतोयेन हविषातर्पयामास मेदिनीम् । ततः क्षीरनिकाशेन स्वादुना परमाम्भसा ॥
शिशिरेण च पुण्येन मही निर्वाणमागमत् । तेन तोयेन सम्पृक्ता पयस्साधर्म्यतो धरा
एकार्णवजलीभूता सर्वसत्त्वविवर्जिता । महासत्त्वान्यपि विभुं प्रविष्टान्यमितौजसम् ॥
नष्टार्कपवनाकाशे सूक्ष्मेजगतिसंवृते । संशोषमात्मना कृत्वा समुद्राणां च देहिनः ॥

दग्ध्वा सङ्कोच्य च तथा स्वपित्येकः सनातनः ।
पौराणं रूपमास्थाय स्वपित्यमितविक्रमः ॥ ७२ ॥
एकार्णवजले व्यापी योगी योगमुपासितः ।
अनेकानि सहस्राणि युगान्येकार्णवाम्भसि ॥ ७३ ॥

न चैव कश्चिदव्यक्तं व्यक्तो वेदितुमर्हति । कश्चैष पुरुषो नाम किंयोगः कश्च योगवान्
न पृष्ठे नैवमभितो नैव पार्श्वे न चाग्रतः । कश्चिद्विज्ञायते तस्य दृश्यते देवसत्तमः ॥

नभः क्षितिंपवनमपः प्रकाशनं प्रजापतिं भुवनधरं सुरेश्वरम् ।
पितामहं श्रुतिनिलयं मुनिं प्रभुं समापयञ्छयनमरोचयत्प्रभुः ॥ ७६ ॥

एवमेकार्णवीभूते शेते लोके महाद्युतिः । प्रच्छाद्य सलिलेनोर्वी हंसो नारायणायते ॥
महतो रजसो मध्ये महार्णवसमस्य वै । वारिजाक्षो महाबाहुरक्षयं ब्रह्म यद्विदुः ॥
आत्मरूपसरूपेण तमसा संवृतः प्रभुः । मनः सात्त्विकमादाय यत्र तत्सत्वमाहितम् ॥
याथातथ्यं परं ज्ञानं भूताय ब्रह्मणे ततः । रहस्यं च तथोद्दिष्टं यथोपनिषदां स्मृतम् ॥
पुरुषो यज्ञ इत्येतत्परमं परिकीर्तितम् । यश्चान्यः पुरुषाख्यः स्यात्स एव पुरुषोत्तमः
ये च यज्ञकरा विप्रा य ऋत्विज इति स्मृताः । अस्मादेव पुरा भूतावक्त्रेभ्यःश्रूयते तथा
ब्रह्माणं प्रथमं वक्त्रादुद्गातारं च सामगम् । होतारं च तथाध्वर्युं बाहुभ्यामसृजत्प्रभुः
ब्रह्माणं ब्राह्मणाच्छंसि स्तोतारौ चैव सर्वशः । मेढ्राच्चमैत्रावरुणं प्रतिष्ठातारमेवच ॥

उदरात्प्रतिहर्तारं पोतारं चैव पार्थिव ।
पाणिभ्यामथ चाग्नीध्रमुन्नेतारं च याजुषम् ॥ ८५ ॥

अच्छावाकमथोरुभ्यां सुब्रह्मण्यं च सामगम् । एवमेवं स भगवान्षोडशैताञ्जगत्पतिः ॥
स्वयम्भूः सर्वयज्ञानामृत्विजोऽसृजदुत्तमान् । तदाचैष महायोगी पुरुषो यज्ञसंज्ञितः ॥
वेदाश्चैव तथा सर्वे सहाङ्गोपनिषत्क्रियाः । स्वपित्येकार्णवे चैव यदाश्चर्यमभूत्पुरा ॥
श्रूयतां तु तदा विप्रो मार्कण्डेयः कुतूहलात् । गीर्णो भगवतातेन कुक्षावासीन्महामुनिः
बहुवर्षसहस्रायुस्तस्यैव वरतेजसः । अटंस्तीर्थप्रसङ्गेन पृथिवी तीर्थगोचरः ॥ ९० ॥

आश्रमाणि च पुण्यानि देवतायतनानि च ।
देशान्राष्ट्राणि चित्राणि पुराणि विविधानि च ॥ ९१ ॥
जपहोमपराः शान्तास्तपोभिरमलाःस्मृताः ।
मार्कण्डेयस्ततस्तस्य शनैर्वक्त्राद्विनिर्गतः ॥ ९२ ॥

निष्क्रामन्तं न चात्मानं जानीते देवमायया । निष्क्रम्य तस्य उदरादेकार्णवमथोजगत्

सर्वतस्तमसाच्छन्नं मार्कण्डेयोऽन्ववैक्षत ।
तस्योत्पन्नं भयं तीव्रं व्यत्ययं चात्मजीवितम् ॥ ९४ ॥

देवदर्शनसंहृष्टो विस्मयं परमं गतः । सोऽचिन्तयदमोघात्मा मार्कण्डेयोऽथ शङ्कितः ॥
किं नु स्याच्चित्तसंमोहः किं नु स्वप्नोऽनुभूयते । व्यक्तमन्यतरो भाव एतयोर्भवितामम

न हि स्वप्नोह्ययं सत्ययुक्तं यत्सत्यमर्हति । नष्टचन्द्रार्कपवनो नष्टपर्वतभूतलः ॥ ९७ ॥
कतमः स्यादयं लोक इति शोकमुपागतः । ददर्श चापि पुरुषं स्वपन्तं पर्वतोपमम् ॥
सलिलेऽर्धमथोमग्नं जीमूतमिव सागरे । तपन्तमिवतेजोभिरामुक्तशशिभास्करम् ॥

गाम्भीर्यात्सागरमिव भासमानम्महौजसा ।

देवं द्रष्टुमिहायातः को भवानिति विस्मयात् ॥ १०० ॥

तथैव च मुनिः कुक्षिं पुनरेव प्रवेशितः । स प्रविष्टः पुनः कुक्षिं मार्कण्डेयः सविस्मयम्
तथैव च पुनर्भूयो विजानन्स्वप्नदर्शनम् । स तथैव यथा पूर्वं पृथिवीमटते वनम् ॥
पुण्यतीर्थजलोपेतं विविधान्याश्रमाणि च । क्रतुभिर्यजमानांश्च समाप्तगुरुदक्षिणैः ॥
अपश्यद्देवकुक्षिस्थान्यज्ञस्थाञ्छतशो द्विजान् । सद्वृत्तमाश्रिताःसर्वेवर्णाब्राह्मणपूर्वकाः
चत्वार आश्रमाः सम्यग्यथापूर्वंविलोकिताः । एवं वर्षशतं साग्रं मार्कण्डेयेन धीमता ॥
चरता पृथिवी सर्वातत्कुक्षौ हि समीक्ष्यते । ततः कदाचिदथ वै पुनः कुक्षेर्विनिर्गतः ॥
सुप्तं न्यग्रोधशाखायां बालमेकं निरीक्ष्य च । तथैवैकार्णवजले नीहारेणावृतान्तरे ॥
अव्यक्तक्रीडिते लोके सर्वभूतविवर्जिते । स मुनिर्विस्मयाविष्टः कौतूहलसमन्वितः ॥

बालमादित्यसङ्काशं न शक्नोत्यभिवीक्षितुम् ।

सोऽप्यचिन्तयदेकान्ते स्थित्वा सलिलसन्निधौ ॥ १०६ ॥

पूर्वदृष्टमिदं मेने शङ्कितो देवमायया । अगाधे सलिले शेते मार्कण्डेयः सविस्मयः ॥
पूर्ववृत्तमथो द्रष्टुमव्रजत्त्रस्तलोचनः । स तस्मै भगवानाह स्वागतं बाल भो इति ॥
बभाषे मेघतुल्येन स्वरेण पुरुषोत्तमः । मार्कण्डेय न भेतव्यमागच्छस्व ममान्तिकम् ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

को नाम्ना कीर्तयति मां कुर्वन्परिभवं मम । दिव्यवर्षसहस्राख्यं धर्षयंश्चैव मे वयः
न ह्येष च सदाचारो देवेष्वपि ममोचितः । मां ब्रह्मापि हि सस्नेहो दीर्घायुरितिभाषते

कस्तपो घोरमासाद्य ममाद्य त्यक्तजीवितः ।

मार्कण्डेयेति मामुक्त्वा मृत्युमीक्षितुमर्हसि ॥ ११५ ॥

एवं प्रक्षुभितः क्रोधान्मार्कण्डेयो महामुनिः । तदैनं भगवान्भूयो बभाषे मधुसूदनः ॥

श्रीभगवानुवाच ।

अहंते जनको वत्स हृषीकेशः पितागुरुः । आयुःप्रदाता पौराणः किं मां त्वं नोपसर्पसि

मां पुत्रकामः प्रथमं त्वत्पिताऽङ्गिरसो मुनिः ।

पूर्वमाराधयामास तपस्तीव्रं समाश्रितः ॥ ११८ ॥

तं दृष्ट्वा घोरतपसं त्रिदशोत्तमतेजसम् । दत्तवांस्त्वामहं पुत्रं महर्षिममितौजसम् ॥

कस्समुत्सहते चान्यो योगिभूतात्मगात्मकम् ।

द्रष्टुमेकार्णवगतं क्रीडन्तं योगमायया ॥ १२० ॥

ततः प्रहृष्टहृदयो विस्मयोत्फुल्ललोचनः ।

मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिपुटो मार्कण्डेयो महातपाः ॥ १२१ ॥

नामगोत्रे तु सम्प्रोच्य दीर्घायुर्लोकपूजितः । तस्मै भगवते भक्त्या नमस्कारमथाकरोत्

मार्कण्डेय उवाच ।

इच्छामि तत्त्वतो ज्ञातुमिमां मायां तवानघ ।

यदेकार्णवमध्यस्थः शेषे त्वं बालरूपवान् ॥ १२३ ॥

किं संज्ञश्चैव भगवाँल्लोके विज्ञायसे प्रभो ।

तर्कयेऽहं महात्मानं को ह्यन्यः स्थातुमर्हसि ॥ १२४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

अहं नारायणो ब्रह्मन्सर्वभूतविनाशनः । अहं सहस्रशीर्षास्यः सहस्रपदसंयुतः ॥१२५॥

आदित्यवर्णः पुरुषो मुखे ब्रह्ममयो ह्यहम् । अहमग्निर्हव्यवहः सप्तसप्तभिरन्वितः ॥१२६

अहमिन्द्रपदः शक्र ऋतूनां परिवत्सरः । अहं योगिषु साङ्ख्याख्यो युगान्तावर्त एव च

अहं सर्वाणि सत्त्वानि दैवतान्यखिलानि च ।

भुजगानामहं शेषस्ताक्ष्योऽहं सर्वपक्षिणाम् ॥ १२८ ॥

कृतान्तः सर्वभूतानां विज्ञेयः कालसंज्ञितः । अहं धर्मस्तपश्चाहं सर्वाश्रमनिवासिनाम् ॥

अहं दयापरो धर्मः क्षीरोदोऽहं महार्णवः । यत्सत्यं तत्परं त्वेक अहमेव प्रजापतिः ॥

अहं साङ्ख्यमहं योगो ह्यहं तत्परमं पदम् । अ[illegible]मि[illegible]्या क्रिया चाहमहं विद्याधिपःस्मृतः

अहं ज्योतिरहं वायुरहं भूमिरहं जलम् । आकाशोऽहं समुद्राश्च नक्षत्राणि दिशो दश ॥
अहं वर्षमहं सोमः पर्जन्योऽहमहं रविः । अहं पुराणं परमं तथैवाहं परायणम् ॥१३३॥
भविष्ये चापि सर्वत्र भविष्यत्सर्वसङ्ग्रहः ।
यत्किञ्चित्पश्यसे विप्र यच्छृणोषि च किञ्चन ॥ १३४ ॥
यच्चानुभवसे लोके तत्सर्वं मामनुस्मर । विश्वं सृष्टं मया पूर्वं सृजेऽद्यापि च पश्यमाम्
युगे युगे च रक्षामि मार्कण्डेयाखिलं जगत् ।
तदेतत्कथितं सर्वं मार्कण्डेयावधारय ॥ १३६ ॥
शुश्रूषुरपि धर्मेषु कुक्षौ चर सुखं मम । मम ब्रह्मा शरीरस्थो देवाश्च ऋषिभिः सह ॥
व्यक्तमव्यक्तयोगं मामवगच्छ मुरद्विषम् । अहमेकाक्षरो मन्त्रस्त्र्यक्षरश्च पितामहः ॥
परस्त्रिवर्ग ओंकारः परमात्मप्रदर्शनः । एवमादिपुराणं च वदते मां महामते ॥ १३९ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

वक्त्रमाहृतवानीशो मार्कण्डेयमथो हरिः । ततो भगवतः कुक्षिं प्रविष्टो मुनिसत्तमः ॥
यदक्षयं विविधमुपाश्रितं तु तन्महार्णवे व्यपगतचन्द्रभास्करे ।
शनैश्चरन्प्रभुरथ हंसव्रतः सिंसृजञ्जगद्विहरति कालपर्यये ॥ १४१ ॥
अथचैवं शुचिर्भूत्वा चचार स तु वै तपः । छादयित्वाऽत्मनो देहं पयसाम्बुजसम्भवः
ततो महात्मातिबलोमर्त्यलोकविसर्जने । महतां चैव भूतानां विश्वो विश्वमचिन्तयत्
तस्य चिन्तयमानस्य नियते संस्थितेऽर्णवे ।
निराकाशे तोयमये सूक्ष्मे जगति संक्षये ॥ १४४ ॥
ईशः संक्षोभयामास सोऽर्णवं सलिलं गतः । अथान्तरादपां सूक्ष्ममथच्छिद्रमभूत्पुरा
शब्दं प्रति ततो भूतो मारुतश्छिद्रसम्भवः । संलब्धवान्तरसंक्षोभं व्यवर्धत समीरणः ॥
नभस्वता बलवता वेगाद्विक्षोभितोऽर्णवः ।
तस्यार्णवस्य क्षुब्धस्य तस्मिन्नम्भसि मथ्यतः ॥ १४७ ॥
कृष्णवर्त्मा समभवत्प्रभुर्वैश्वानरो महान् ।
ततः संशोषयामास पावकः सलिलं बहु ॥ १४८ ॥

समस्तजलधिश्छिद्रमभवद्विस्तृतं नभः । आत्मतेजोभवाः पुण्या आपोऽमृतरसोपमाः
आकाशं छिद्रसम्भूतं वायुराकाशसम्भवः । अथ सङ्घर्षसम्भूतं पावकं चास्य सम्भवम्
दृष्ट्वा पितामहो देवो महाभूतविभावनः । दृष्ट्वा भूतानि भगवाँल्लोकसृष्ट्यर्थमुत्तमम्
ब्रह्मणो जन्मसहितं बहुरूपो ह्यचिन्तयत् । चतुर्युगानां संख्यातं सहस्रं युगपर्यये ॥

यत्पृथिव्यां द्विजेन्द्राणां तपसा भावितात्मनाम् ।
बहु जन्म विशुद्धात्मा ब्रह्मणो हरिरुच्यते ॥ १५३ ॥
ज्ञानं दृष्ट्वा तु विश्वात्मा योगिनां याति योग्यताम् ।
तं योगवन्तं विज्ञाय सम्पूर्णैश्वर्यमुत्तमम् ॥ १५४ ॥

पद्मे ब्रह्मणि विश्वस्य न्ययोजयत योगवित् । ततस्तस्मिन्महातोये महेशो हरिरच्युतः
जलक्रीडां च विधिवत्स चक्रे सर्वलोककृत् । पद्मं नाभ्युद्भवं चैकं समुत्पादितवांस्ततः

सहस्रवर्णं विरजं भास्कराभं हिरण्मयम् ॥ १५७ ॥
हुताशनज्वलितशिखोज्ज्वलप्रभं समुत्थितं शरदमलार्कतेजसम् ।
विराजते कमलमुदारवर्चसं महात्मनस्तनुरुहचारुशैवलम् ॥ १५८ ॥

इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे पद्मप्रादुर्भावो नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ।

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

पद्ममध्याद् ब्रह्मण उत्पत्तिकथनम् ।

पुलस्त्य उवाच ।

अथ योगवतां श्रेष्ठमसृजद्भूरिवर्चसम् । स्रष्टारं सर्वलोकानां ब्रह्माणं सर्वतोमुखम् ॥
तस्मिन्हिरण्मये पद्मे बहुयोजनविस्तृते । सर्वतेजोगुणमये पार्थिवैर्लक्षणैर्वृते ॥ २ ॥
तच्च पद्मं पुराभूतं पृथिवीरूपमुत्तमम् । नारायणसमुद्भूतं प्रवदन्ति महर्षयः ॥ ३ ॥

यत्पद्मं सा रसा देवी पृथिवी परिकथ्यते ।

ये पद्मकेशरा मुख्यास्तान्दिव्यान्पर्वतान्विदुः ॥ ४ ॥
हिमवन्तं च नीलं च मेरुं निषधमेवच । कैलासं शृङ्गवन्तं च तथाद्रिं गन्धमादनम् ।
पुण्यं त्रिशिखरं चैव कान्तं मन्दरमेवच । उदारं पिञ्जरं चैव विन्ध्यमस्तं च पर्वतम् ॥
एत एव गणानां च सिद्धानां च महात्मनाम् ।
आश्रयाः पुण्यशीलानां सर्वकामफलप्रदाः ॥ ७ ॥
एतेषामन्तरे द्वीपो जम्बूद्वीप इतिस्मृतः । जम्बूद्वीपस्य संस्थानं यज्ञिया यत्र च क्रियाः
तेभ्योयद्द्रवते तोयं दिव्यामृतरसोपमम् । दिव्यतीर्थशताधाराः सरस्यः सर्वतःस्मृताः
यान्येतानीह पद्मस्य केसराणि समन्ततः । असंख्येयाः पृथिव्यां ते विविधाश्चैवपर्वताः
यानि पर्णानि पद्मस्य भूरि पूर्वाणिपार्थिव । ते दुर्गमाःशलचिताम्लेच्छदेशाःप्रकीर्तिताः
यान्यधोभागपत्राणि तानि वासास्तु भागशः ।
दैत्यानामसुराणां च पन्नगानां च पार्थिव ॥ १२ ॥
तेषां मध्येऽन्तरं यत्तु तद्रसातलसंज्ञितम् । महापातककर्माणो मज्जन्ते यत्र मानवाः ॥
पद्मस्य चान्तरे पद्म एकार्णवगता मही । चतुर्दिशासु सङ्ख्याताश्चत्वारः सलिलाकराः
एवंनारायणस्यार्थे मही पुष्करसम्भवा । प्रादुर्भावोऽप्ययं तस्मान्नाम्ना पुष्करसंज्ञितः
एतस्मात्कारणाद्यज्ञे पुराणैः परमर्षिभिः । यज्ञियैर्वेदद्दृष्टान्तैयज्ञैर्यूपचितिः कृता ॥१६॥
एवं भगवता तेन विश्वं व्याप्यधराचिता । पर्वतानां नदीनां च रचना चैव निर्मिता ॥
विश्वस्य यश्चाप्रतिमप्रभावः प्रभाकराभो वरुणोऽमितद्युतिः ।
शनैः स्वयम्भूर्व्यसृजत्सुषुप्तं जगन्मयः पद्मनिधिं महार्णवे ॥ १८ ॥
विघ्नस्तपसि सम्भूतो मधुर्नाम महासुरः । तेनैव च सहोद्भूतो ह्यसुरो नाम कैटभः ॥
तौरजस्तमसोर्भूतौ सम्भूतौ तामसौ गणौ । एकार्णवं जगत्सर्वं क्षोभयेतां महाबलौ
दिव्यरक्ताम्बरधरौ श्वेतदीप्तोग्रदंष्ट्रिणौ । किरीटमुकुटोदग्रौकेयूरवलयोज्ज्वलौ ॥२१॥
महाविवृतताम्राक्षौ पीनोरस्कौ महाभुजौ । महागिरेः संहननौ जङ्गमाविवपर्वतौ ॥
नवमेघप्रतीकाशावादित्यप्रतिमाननौ विपुलाभोगकेयूरकराभ्यामतिभीषणौ ॥ २३ ॥
पादसञ्चारविन्यासैर्विक्षपन्ताविवार्णवम् । कम्पयन्तौ हरिमिव शयानं मधुसूदनम् ॥

तौ तत्र विचरन्तौ तु पुष्करे विश्वतोमुखौ । योगिनां श्रेष्ठमत्यन्तं दीप्तं ददृशतुस्तदा

नारायणं समाज्ञातं सृजन्तमखिलाः प्रजाः ।

दैवतानि च विश्वानि मानसांश्च सुतानृषीन् ॥ २६ ॥

ततस्तावूचतुस्तत्र ब्रह्माणमसुरोत्तमौ । दुष्टौ युयुत्सू सङ्क्रुद्धौ क्रोधव्याकुलितेक्षणौ

कस्त्वंपुष्करमध्यस्थः सितोष्णीषश्चतुर्भुजः । आवामगणयन्मोहादास्से त्वं विगतस्पृहः

एह्यागच्छावयोर्युद्धं देहि त्वं कमलोद्भव । आवाभ्यां परमेशाभ्यामशक्तःस्थातुमर्णवे ॥

तत्रकश्च भवेत्तुभ्यं येन चात्रनियोजितः । कः स्रष्टा कश्च ते गोप्ता केन नाम्नाभिधीयते

ब्रह्मोवाच ।

ईश्वरःप्रोच्यते लोकेविष्णुश्चानन्तशक्तिधृत् । तत्सकाशात्तुजातं मां स्रष्टारमवगच्छतम्

मधुकैटभावूचतुः ।

नावयोःपरमं लोके किंचिदस्तिमहामुने । आवाभ्यां छाद्यते विश्वं तमसा रजसा च वै

रजस्तमोमयावावामृषीणामतिलङ्घिनौ । धर्मशीलं छादयन्तौ नाशकौ सर्वदेहिनाम् ॥

आवाभ्यां युज्यते लोको दुस्ताराभ्यां युगे युगे ।

आवामर्थश्च कामश्च यज्ञस्सर्वपरिग्रहः ॥ ३४ ॥

सुखंयत्र मदो यत्र यत्र श्रीः कीर्तिरेव च । येषांयत्काङ्क्षितं किञ्चित्तत्तदावांविचिन्तय

ब्रह्मोवाच ।

आवाभ्यांसंहतौदृष्ट्वा युवां पूर्वंपराजितौ । तं समाधाय गुणिनं सत्वं चास्मिसमाश्रितः

यः परो योगयुक्तात्मा योऽक्षरः स त्वमेव च ।

रजसस्तमसश्चैव यः स्रष्टा विश्वसम्भवः ॥ ३७ ॥

ततो भूतानि जायन्ते सात्विकानीतराणि च । स एव युवयोर्नाशं वासुदेवः करिष्यति

स्वपन्नेव ततो देवो बहुयोजनविस्तृतौ । बाहू नारायणो ब्रह्मकृतवानात्ममायया ॥

कृष्यमाणौ ततस्तस्य बाहुभ्यां बाहुशालिनौ ।

चेरतुस्तौ विगलितौ शकुनाविव पीवरौ ॥ ४० ॥

ततस्तावाहतुर्गत्वा वासुदेवं सनातनम् । पद्मनाभं हृषीकेशं प्रणिपत्य नतावुभौ ॥ ४१ ॥

जानीवस्त्वां विश्वयोनिं त्वामेकं पुरुषोत्तमम् ।
आवयोश्चैव हेतुं त्वां जानन्तौ बुद्धिकारणम् ॥ ४२ ॥

अमोघदर्शनंसत्यंयतस्त्वांविद्वश्शाश्वतम् । ततस्त्वामभितो देवकाङ्क्षावःप्रसमीक्षितुम्
अमोघदर्शनोऽसि त्वं नमस्ते समितिञ्जय । तमिच्छावोवरं देव त्वया हितमरिन्दम ॥

श्रीभगवानुवाच ।

किमर्थंमामनुब्रूथ युवामसुरसत्तमौ । गतायुष्कौ युवां भूयस्त्वहो जीवितुमिच्छथः ॥

मधुकैटभावूचतुः ।

यस्मिन्नकश्चिन्मृतवान्देव तस्मिन्वधं प्रभो । इच्छावः पुत्रतां चैव भवतः सुमहातपः

श्रीभगवानुवाच ।

युवयोर्बाढमेतत्स्याद्भविष्ये कलिसम्भवे । भविष्यथो न सन्देहः सत्यमेतद्ब्रवीमि वाम्

पुलस्त्य उवाच ।

वरं प्रदायाथ महासुराभ्यां सनातनो विश्वधरः सुरोत्तमः ।
रजस्तमोजौ तु तदाञ्जनोपमौ ममर्दतावूरुतलेऽमरप्रभुः ॥ ४८ ॥

स्थित्वा तस्मिंस्तु कमले ब्रह्मा ब्रह्मविदांवरः ।
ऊर्ध्वबाहुर्महातेजास्तपोघोरं समाश्रितः ॥ ४९ ॥

प्रज्वलन्निव तेजोभिर्भाभिःस्वाभिस्तमोनुदः । बभासे स तुधर्मात्मासहस्रांशुरिवांशुभिः
अथान्यद्रूपमास्थाय प्रभुर्नारायणोऽव्ययः । आजगाम महातेजा योगाचार्यो महायशाः
साङ्ख्याचार्यश्च मतिमान्कपिलो ब्रह्मणांवरः । उभावपि महात्मानौ पूजितौतत्रतत्परौ
तौप्राप्तावूचतुस्तत्र ब्रह्माणममितौजसम् । परावरविशेषज्ञौ पूजितौ च महर्षिभिः ॥
ब्रह्मसम्परिवेद्यन्ते विशालं जगदास्थितौ । ग्रामणीस्सर्वभूतानां ब्रह्मा त्रैलोक्यपूजितः
तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा विबोध्य गतयोः परम् । त्रीनिमान्कृतवाँल्लोकान्यथेयं ब्रह्मणःश्रुतिः
पुत्रं स्वसम्भवं चैकं समुत्पादितवान्भुवम् । तदाग्रे चागतस्तस्य ब्रह्ममानससम्भवः ॥

उत्पन्नमात्रो ब्रह्माणमुक्तवान्मानसःसुतः ।
किंकुर्मस्तव साहाय्यं ब्रवीतु भगवानिति ॥ ५७ ॥

ब्रह्मोवाच ।

यद्देष कपिलो नाम ब्रह्मनारायणस्तथा । यदतो भवतस्त्वं तु तत्कुरुष्व महामते ॥
ब्रह्मणा स तथोक्तस्तौ प्राहभूप समुत्थितः । शुश्रूषुरस्मि युवयोः किंकरोमि कृताञ्जलिः

श्रीभगवानुवाच ।

यत्सत्यमक्षरं ब्रह्म अष्टादशविधं च तत् । यत्सत्यममृतं तत्तु परंपदमनुस्मर ॥ ६० ॥
एतद्वचो निशम्यैवं स ययौ दिशमुत्तराम् । गत्वा च तत्र स ब्रह्म अगमज्ज्ञानचक्षुषा ॥
ततो ब्रह्मा भुवर्नामद्वितीयमसृजत्प्रभुः । सङ्कल्पयित्वा मनसा तमेव च महामना ॥
ततः सोऽप्यब्रवीद्वाक्यं किंकरोमिपितामह । पितामहसमाज्ञातो ब्रह्माणं समुपस्थितः
ब्राह्मणस्यामृतरसोऽनुभूतस्तेन वै ततः । प्राप्तः स परमं स्थानं सतयोः पार्श्वमागतः

तस्मिन्नपि गते सोऽथ तृतीयमसृजत्प्रभुः ।
मोक्षप्रवृत्तिकुशलं सुवर्नामयुतं प्रभुः ॥ ६५ ॥

सोऽपितं धर्ममास्थाय तयोरेवागमद्गतिम् । एवं पुत्रास्त्रयोऽप्येतेगताःशम्भोर्महात्मनः
तान्गृहीत्वा सुतांस्तस्य तौगतावूर्जितां गतिम् । नारायणश्च भगवान्कपिलश्च यतीश्वरः
यं कालं ते गता ब्रह्म ब्रह्मा तं कालमेवच । तपोघोरतरं भूयः संश्रितः परमं पदम् ॥
न च शक्तस्ततो ब्रह्मा प्रभुरेकस्तपश्चरन् । शरीरार्धात्ततो भार्यामुत्पादयति तच्छुभाम्
आत्मनः सदृशान्पुत्रानसृजद्वै पितामहः । विश्वेप्रजानां पतयो येभ्यो लोकाविनिःसृताः

विश्वेशं प्रथमं तावन्महात्मातपसात्मजम् ।
सर्वत्र संहतं पुण्यं नाम्ना धर्मं स सृष्टवान् ॥ ७१

दक्षं मरीचिमत्रिं च पुलस्त्यं पुलहंक्रतुम् । वसिष्ठंगौतमं चैव भृगुमङ्गिरसं मुनिम् ॥
अत्यद्भुतास्स्वकृत्येन ज्ञेयास्तेतु महर्षयः । त्रयोदशगुणारम्भा ये वंशास्तु महर्षिणाम् ॥
अदितिर्दितिर्दनुः काला अनायुः सिंहिकाखसा । प्राची क्रोधावसुरसाविनताकद्रूरेवच
दक्षस्यापत्यमेतद्वै कन्यद्वादशपार्थिव । नक्षत्राणि च चन्द्रस्यविंशतिस्सप्त चोर्जिताः ॥
मरीचेः कश्यपः पुत्रस्तपसा निर्मितः किल । तस्मै द्वादशकन्याश्च दक्षस्ताश्चान्वमन्यत
नक्षत्राणि च सोमाय तथैवं दत्तवानृषिः । रोहिण्यादीनि सर्वाणि पुण्यानि कुलनन्दनः

तथैव दशधर्माय दत्ताश्चापिमनोरमाः। लक्ष्मीस्सरस्वती सन्ध्याविश्वेशा च महायशाः

देवी सरस्वती चैव ब्रह्मणा निर्मिताः पुरा ॥ ७८ ॥

एताः पञ्चवरिष्ठा वै सुरश्रेष्ठाय पार्थिव । दत्ता धर्माय भद्रं ते ब्रह्मणा दृष्टकर्मणा ॥

यारूपार्धवती पत्नी ब्रह्मणः कामरूपिणी । सुरभिः सहसा भूत्वा ब्रह्माणं समुपस्थिता

ततस्तामगमद्ब्रह्मा मैथुने लोकपूजितः । लोकसर्जनहेतुज्ञो गवामर्थाय सत्तम ॥ ८१ ॥

जज्ञे चैकादश सुतान्विपुलान्धर्मसंज्ञिताम् । रक्तसंध्याभ्रसङ्काशान्महतस्तिग्मतेजसः ॥

ते रुदन्तो द्रवन्तश्च गतवन्तः पितामहम् । रोदनाद्द्रवणाच्चैव रुद्रा एवेति तेस्मृताः ॥

निर्ऋतिश्चैव सन्ध्यश्च तृतीयश्चाप्ययोनिजः ।

मृगव्याधः कपर्दी च महाविश्वेश्वरश्च यः ॥ ८४ ॥

अहिर्बुध्न्यश्च भगवान्कपाली चैव पिङ्गलः । सेनानाश्च महातेजा रुद्राश्चैकादशस्मृताः

तस्यामेव सुरभ्यां च गावोजाताः सुराश्रये । अजश्चैव तु हंसश्च तथैवनृपसत्तम ॥

ओषध्यः प्रवरायाश्च सुरभ्यास्तास्समुत्थिताः ।

धर्माल्लक्ष्मीस्तथा कामं साध्यान्साध्या व्यजायत ॥ ८७ ॥

भवं च प्रभवंच व कृशाश्वंसुवहं तथा । अरुणं वरुणंचैव विश्वामित्रचलध्रुवौ ॥ ८८ ॥

हविष्मन्तं तनूजं च विधानाभिमतावपि । वत्सरं चैव भूतिं च सर्वासुरनिषूदनम् ॥

सुपर्वाणं बृहत्कान्तिं महालोकनमस्कृतम् । वासवानुगता देवी जनयामास वै सुरान्

धरं वै प्रथमं देवं द्वितीयं ध्रुवमव्ययम् । विश्वावसुं तृतीयं च चतुर्थं सोममीश्वरम् ॥

ततोऽनुरूपमायं च यमं तस्मादनन्तरम् । सप्तमं च तथा वायुमष्टमं निर्ऋतिंतथा ॥

धर्मस्यापत्यमेतद्वै सुरभ्यां तदजायत । विश्वेदेवाश्च विश्वायां धर्माज्जाता इतिस्मृता

दक्षश्चैव महाबाहुः पुष्करस्तम एव च । चाक्षुषश्च ततोऽत्रिश्च तथाभद्रमहोरगौ ॥

विश्वान्तकवसुर्बालो निकुम्भश्च महायशाः । रुरुदुश्चातिसिद्धौजा भास्करप्रमितद्युतिः

विश्वान्देवान्देवमाता विश्वेषां जनयत्सुतान् ।

मरुत्वती मरुत्वतो देवानजनयत्सुतान् ॥ ९६ ॥

अग्निश्चक्षूरविर्ज्योतिः सावित्री मित्रमेव च । अमरं शरवृष्टिं च सुकर्षं च महत्तरम् ॥

विराजं चैव राजं च विश्वायुं सुमतिं तथा। अश्वगं चित्ररश्मिं च तथा च निषधं नृपम्
भूय एवं चात्मविधिं चारित्रं पादमात्रगम्।
बृहन्तं वै बृहद्रूपं तथा चैव सनाभिगम् ॥ ९९ ॥
मरुत्वती प्रजा जज्ञे ज्येष्ठान्तं मरुतां गणम्। अदितिः कश्यपाज्जज्ञे आदित्यान्द्वादशैवहि
इन्द्रो विष्णुर्भगस्त्वष्टा वरुणोंऽशोऽर्यमा रविः।
पूषा मित्रश्च वरदो धाता पर्जन्य एव हि ॥ १०१ ॥
इत्येते द्वादशादित्यावरिष्ठास्त्रिदिवौकसाम्। आदित्यस्यसरस्वत्यां जज्ञाते द्वौसुतौवरौ
तपःश्रेष्ठौ गुणश्रेष्ठौ त्रिदिवस्यातिसंमतौ। दनुस्तु दानवाञ्जज्ञे दितिर्दैत्यान्व्यजायत ॥
काला तु कालकेयांस्तानसुरान्राक्षसांस्तथा। अनायुषायास्तनया व्याधयश्च महाबलाः
सिंहिका ग्रहमाता च गन्धर्वजननी मुनिः। प्राचीत्वप्सरसां माता पुण्यानां भारतेतरा
क्रोधाद्याः सर्वभूतानि पिशाचायाश्च पार्थिव।
जज्ञे यक्षगणांश्चैव राक्षसांश्च विशांपते ॥ १०६ ॥
चतुष्पदानि सत्त्वानि एता गाश्चैव सौरभी। पुराणपुरुषश्चैव मायां विष्णुर्हरिः प्रभुः
कथितस्तेऽनुपूर्वेण संस्तुतश्च महर्षिभिः ॥ १०८ ॥
यश्चेदमग्र्यं शृणुयात्पुराणं सदा नरः पर्वसु चेत्पठेत।
अवाप्य लोकं स हि वीतरागः परत्र च स्वर्गफलानि भुङ्क्ते ॥ १०९ ॥
चक्षुषामनसा वाचाकर्मणा च चतुर्विधम्। प्रसादयति यः कृष्णं तस्य कृष्णः प्रसीदति
राज्यं च लभते राजा निर्धनश्चोत्तमं धनम्।
क्षीणायुर्लभते चायुः पुत्रकामोऽथ सन्ततिम् ॥ १११ ॥
यज्ञार्थिनस्तथा कामांस्तपांसि विविधानि च।
यं यं कामयते कामं तं तं लोकेश्वराल्लभेत् ॥ ११२ ॥
सर्वं विहाय य इमं पठेद्वै पौष्करं हरेः। प्रादुर्भावं नरश्रेष्ठ न तस्य ह्यशुभं भवेत् ॥११३
एष पौष्करको नाम प्रादुर्भावो महात्मनः। कीर्तितस्तु महाराज व्यासश्रुतिनिदर्शनात्
विष्णुत्वं शृणु मे विष्णोर्हरित्वं च कृतेयुगे। वैकुण्ठत्वं च देवेषु कृष्णत्वं मानुषेषु च

ईश्वरस्य हितस्यैषा कर्मणां गहना गतिः । साम्प्रतं भूतभव्यं च श्रृणुराजन्यथातथम् ॥

अव्यक्तो व्यक्तलिङ्गस्थो य एष भगवान्प्रभुः ।

नारायणो ह्यनन्तात्मा प्रभवोऽप्यय एव च ॥ ११७ ॥

एष नारायणो भूत्वा हरिरासीत्सनातनः । ब्रह्मा वायुश्च सोमश्च धर्मः शक्रोबृहस्पतिः

अदितेरपि पुत्रत्वमेत्यजः कुरुनन्दन । एष विष्णुरिति ख्यात इन्द्रस्यावरजो विभुः ॥

प्रसादनं तस्य विभोरदित्याः पुत्रकारणम् । वधार्थं सुरशत्रूणां दैत्यदानवरक्षसाम् ॥

प्रधानात्मा पुरा ह्येष ब्रह्माणमसृजत्प्रभुः । ससर्जाथ सुरान्कल्पे ब्रह्माणं च प्रजापतीन्

असृजन्मानसांस्तत्र ब्रह्मवंशाननुत्तमान् । तेभ्योऽभवन्महात्मभ्यः परं ब्रह्म सनातनम् ॥

एतदाश्चर्यभूतस्य विष्णोः कर्मानुकीर्तितम् ।

कीर्त्तनीयस्य लोकेषु कीर्त्यमानं निबोध मे ॥ १२३ ॥

वृत्ते वृत्रवधे भीष्म वर्तमाने कृते युगे । आसीत्त्रैलोक्यविख्यातः सङ्ग्रामस्तारकामयः

यत्र ते दानवा घोराः सर्वे सङ्ग्रामदुर्जयाः । घ्नन्ति देवासुरान्सर्वान्सयक्षोरगराक्षसान्

ते वध्यमाना विमुखाश्छिन्नप्रहरणारणे । त्रातारं मनसा जग्मुर्देवं नारायणं प्रभुम् ॥

एतस्मिन्नन्तरे मेघा निर्वाणाङ्गारवर्चसः । सार्कचन्द्रग्रहगणं छादयन्तो नभस्तलम् ॥

चण्डविद्युद्गणोपेता घोरनिर्ह्रादकारिणः । अन्योन्यवेगाभिहताः प्रवव्रुः सप्तमारुताः ॥

दीप्ततोयाः सनिर्घातैःसहवज्रानलानिलैः । रवेस्सुघोरैरुत्पातैर्दह्यमानमिवाम्बरम् ॥१२६

पेतुरुल्कासहस्राणि निपेतुः खचराण्यपि ।

दैवानि च विमानानि प्रपतन्त्युत्पतन्ति च ॥ १३० ॥

चतुर्युगान्तसमये लोकानां यद्भयं भवेत् । अरूपवति रूपाणि तस्मिन्नुत्पातलक्षणे ॥

तस्माद्दुष्प्रथितं सर्वं न प्राज्ञायत किंचन । तिमिरौघपरिक्षिप्ता न रेजुश्च दिशो दश ॥

विवेश रूपिणी काली कालमेघावगुण्ठिता । द्यौर्नभात्यभिभूतार्का घोरेण तमसा वृता

तान्घनौघान्सतिमिरान्दोर्भ्यामाच्छिद्य स प्रभुः । वपुःस्वंदर्शयामासदिव्यंकृष्णवपुर्हरिः

बलाहकाञ्जननिभं बलाहकतनूरुहम् । तेजसा वपुषा चैव कृष्णं कृष्णमिवाचलम्॥१३५॥

दीप्तं पीताम्बरधरं तप्तकाञ्चनभूषणम् ।

धूम्रान्धकारवपुषं युगान्ताग्निमिवोत्थितम् ॥ १३६ ॥
वृत्तद्विगुणपीनांसं किरीटाच्छन्नमूर्धजम् । बभौ चामीकरप्रख्यैरायुधैरुपशोभितम् ॥
चन्द्रार्ककिरणोद्योतं गिरिकूटमिवोच्छ्रितम् ।
नन्दकानन्दितकरं कौस्तुभोद्भासितोरसम् ॥ १३८ ॥
शक्तिचित्रफलोदग्रं शङ्खचक्रगदाधरम् । विष्णुशैलं क्षमाशीलं श्रीवत्सं शार्ङ्गपाणिनम् ॥
त्रिदशोदारफलदं स्वर्गस्त्रीचारुपल्लवम् । सर्वलोकमनः कान्तं सर्वसत्वमनोहरम्॥१४०॥
मायाविशालविटपं तोयदौघसमप्रभम् । विद्याहङ्कारमानाढ्यमहाभूतप्ररोहणम् ॥१४१॥
विशेषपत्रैर्निचितंग्रहनक्षत्रपुष्पितम् । दैत्यलोकमहास्कन्धं मर्त्यलोकप्रकाशितम्॥१४२॥
सागराकारनिर्ह्रादं रसातलतलाश्रयम् । नागेन्द्रपाशैर्विततं पक्षिजन्तुसमन्वितम्॥१४३॥
शीलानाहार्यगन्धाढ्यं सर्वलोकमहाद्रुमम् । अव्यक्तानन्दसलिलं व्यक्ताहङ्कारफेनिलम् ॥
महाभूतकरौघौघं ग्रहनक्षत्रबुद्बुदम् । विमानवाहनैर्व्याप्तं तोयदाडम्बराकुलम् ॥१४५॥
जन्तुमत्स्यगणाकीर्णं शैलशङ्खकुलैर्युतम् । त्रैगुण्यविषयावर्तं सर्वलोकतिमिङ्गिलम् ॥
वीरवृक्षलतागुल्मं भुजगोत्सृष्टशैवलम् । द्वादशार्कमहाद्वीपं रुद्रैकादशपत्तनम् ॥ १४७ ॥
वस्वष्टपर्वतोपेतंत्रैलोक्याम्भोमहोदधिम् । सन्ध्यासन्ध्योर्मिसलिलमापूर्णानिलशोभितम्
दैत्ययक्षगणग्रामं रक्षोगणझषाकुलम् । पितामहमहावीर्यं स्वर्गस्त्रीरत्नसङ्कुलम् ॥१४९॥
श्रीकीर्तिकान्तिलक्ष्मीभिर्नदीभिश्च समाकुलम् । कालयोगमहावर्षप्रलयोत्पत्तिवेगितम्
सत्संयोगमहापारं नारायणमहार्णवम् । देवातिदेवं वरदं भक्तानां भक्तवत्सलम्॥१५१॥
अनुग्रहकरं देवं प्रशान्तिकरणं शुभम् । हर्यश्वरथसंयुक्तसुपर्णध्वजशोभिते ॥ १५२ ॥
चन्द्रार्कचक्ररचित उदाराक्षवृतान्तरे । अनन्तरश्मिसंयुक्ते दुर्दर्शे मेरुकूबरे ॥ १५३ ॥
तारकाचित्रकुसुमे ग्रहनक्षत्रबन्धुरे । भयेष्वभयदे व्योम्नि देवदैत्यापराजिते ॥ १५४ ॥
हर्यश्वरथसंयुक्तमुक्ताशोभसमन्वितम् । ददृशुस्ते स्थितं देवं दिव्यलोकमयेरथे ॥१५५॥
ते कृताञ्जलयः सर्वे देवा इन्द्रपुरोगमाः । जयशब्दं पुरस्कृत्य शरण्यं शरणं गताः॥१५६॥
एतेषां च गिरः श्रुत्वा स विष्णुर्देवदैवतः । मनश्चक्रे विनाशाय दानवानां महामृधे ॥
आकाशे तु स्थितो विष्णुरुत्तमं वपुराश्रितः । उवाच देवताः सर्वाः सप्रतिज्ञमिदं वचः

विष्णुरुवाच ।

शान्तिं व्रजत भद्रं वो माभैष्ट मरुतां गणाः ।
जिता मे दानवाः सर्वे त्रैलोक्यं परिगृह्यताम् ॥ १५९ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

ततोऽस्य सत्यसन्धस्य विष्णोर्वाक्येन तोषिताः ।
देवाः प्रीतिं परां जग्मुः प्राश्यामृतमिवोत्तमम् ॥ १६० ॥

ततस्तमश्च संहृत्य विनेशुश्च बलाहकाः । प्रववुश्च शिवा वाताः प्रसन्नाश्च दिशो दश ॥
शुद्धप्रायाणिज्योतींषिसोमं चक्रुःप्रदक्षिणम् । न विग्रहंग्रहाश्चक्रुः प्रसन्नाश्चापिसिन्धवः
विरजा अभवन्मार्गा लोकाः स्वर्गादयस्त्रयः । यथार्थमूहुस्सरितश्चुक्षुभे न तथार्णवः ॥
आसञ्छुभानोन्द्रियाणि नराणामन्तरात्मसु । महर्षयो वीतशोका वेदानुच्चैरधीयत ॥
यज्ञेषु च हविः पाकं शिवमाप च पावकः । प्रवृत्तधर्मसंवृत्ता लोका मुदितमानसाः ॥

विष्णोः सत्यप्रतिज्ञस्य श्रुत्वारिनिधना गिरः ।
ततोऽभयं विष्णुमुखाच्छ्रुत्वा दैतेयदानवाः ॥ १६६ ॥

उद्योगं विपुलं चक्रुर्युद्धाय विजयाय च । मयस्तु काञ्चनमयं त्रिनल्वान्तरमव्ययम् ॥
चतुश्चक्रं सुविपुलं सुकल्पितमहायुधम् । किङ्किणीजालनिर्घोषं द्वीपिचर्मपरिष्कृतम् ॥

रुचिरं रश्मिजालैश्च हैमजालैश्च शोभितम् ।
ईहामृगगणाकीर्णं पक्षिसङ्घविराजितम् ॥ १६९ ॥

दिव्यास्त्रशस्त्ररुचिरं पयोधरनिनादितम् । स्वक्षं रथवरोदारं सूपस्थं गगनोपमम् ॥१७०
गदापरिघसम्पूर्णं मूर्तिमन्तमिवार्णवम् । हेमकेयूरवलयं चन्द्रमण्डलकूबरम् ॥ १७१ ॥
सपताकं ध्वजोपेतं सादित्यमिव मन्दरम् । गजेन्द्राभोगवपुषं क्वचित्केसरवर्चसम् ॥
युक्तमृक्षसहस्रेण सुधाराम्बुदनादितम् । दीप्तमाकाशगं दिव्यं रथं पररथारुजम् ॥१७३

अध्यतिष्ठद्रणाकाङ्क्षी मेरुं दीप्तमिवांशुमान् ।
तारस्तु क्रोशविस्तारमायामे च तथाविधम् ॥ १७४ ॥

शैलकूबरसङ्काशं नीलाञ्जनचयोपमम् । काललोहस्यरत्नानां समूहाबद्धकूबरम् ॥ १७५॥

तिमिरोद्गारकिरणं गर्जन्तमिवतोयदम्। लोहजालेन महता सगवाक्षेण दंशितम्॥
आयसैः परिघैः पूर्णंक्षेपणीयैश्च मुद्गरैः। प्रासैःपाशैश्च विततैरसंयुक्तैश्च कण्टकैः॥
शोभितं त्रासनीयश्च तोमरैः सपरश्वधैः। उद्यतं द्विषतां हेतोर्द्वितीयमिव मन्दरम्॥
युक्तं खरसहस्रेण सोऽध्यारोहद्रथोत्तमम्। विरोचनस्तु सङ्क्रुद्धो गदापाणिरवस्थितः
प्रमुखे तस्य सैन्यस्य दीप्तशृङ्ग इवाचलः। युक्तं हयसहस्रेण हयग्रीवस्तु दानवः॥
व्यूहितं दानवव्यूहं परिचक्राम वीर्यवान्। विप्रचित्तिसुतः श्वेतः श्वेतकुण्डलभूषणः॥
स्यन्दनं वाहयामास परानीकस्य मर्दनः। व्यायतं किष्कुसाहस्रं धनुर्विस्फारयन्महत्
स चाहवमुखे तस्थौ स प्ररोह इवाचलः। खरस्तु विकिरन्क्रोधान्नेत्राभ्यां रोषजं जलम्॥

स्फुरद्दन्तोष्ठनयनः सङ्ग्रामं सोऽभ्यकाङ्क्षत।
त्वष्टा त्वष्टादशहयं यानमास्थाय दानवः॥ १८४॥
श्वेतमेघप्रतीकाशो युद्धायाभिमुखः स्थितः।
अरिष्टो बलिपुत्रश्च वरिष्ठो दुर्धरायुधः॥ १८५॥
युद्धायाभिमुखस्तस्थौ धराधरविकम्पनः।
किशोरस्त्वतिसंहर्षात्किशोर इव चोदितः॥ १८६॥

अभवद्दैत्यमध्ये स ग्रहमध्ये यथा रविः। लम्बस्तु नवमेघाभः प्रलम्बाम्बरभूषणः॥
दैत्यव्यूहगतो भाति सनीहार इवांशुमान्। वसुन्धराभस्तदनु दशनौष्ठेक्षणायुधः॥
हसंस्तिष्ठति दैत्यानां मध्ये क्रूरमहाग्रहः। अन्ये हयगतास्तत्र मत्तेभेन्द्रगताः परे॥
सिंहव्याघ्रगताश्चान्ये वराहर्क्षेषु चापरे। केचित्खरोष्ट्रयातारः केचित्तोयदवाहनाः॥१९०

पत्तयश्चापरे दैत्या भीषणा विकृताननाः।
एकपादास्त्वपादाश्च ननृतुर्युद्धकाङ्क्षिणः॥ १९१॥

आस्फोटयन्तो बहवः स्वनन्तश्च तथापरे। दृप्तशार्दूलनिर्घोषा नेदुर्दानवपुङ्गवाः॥१९२
ते गदापरिघैर्घोरैः शिलामुद्गरपाणयः। बाहुभिः परिघाकारैस्तर्जयन्ति स्म देवताः॥
प्रासैः खड्गैश्च पाशैश्च तोमराङ्कुशपट्टिशैः। चिक्रीडुस्ते शतघ्नीभिः शतधारैश्च मुद्गरैः
खड्गैः शूलैश्च शैलैश्च परिघैश्चोद्यतायुधैः। युक्तं बलाहकगणैः सर्वतः संवृतं नभः॥

एवं तद्दानवं सैन्यं सर्वसत्त्वमदोत्कटम् । देवताभिमुखं तस्थौ मेघानीकमिवोदितम् ॥
रेजे च तद्दैत्यसहस्रगाढं वाय्वग्निशैलाम्बुदतोयकल्पम् ।
बलं बलौघाकुलमभ्युदीर्णं युयुत्सयोन्मत्तमिवावभासे ॥ १६७ ॥
श्रुतस्ते दैत्यसैन्यस्य विस्तारः कुरुनन्दन । सुराणामपि सैन्यस्य विस्तरं वैष्णवं शृणु
इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे दैत्यसेनावर्णनं नाम द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

देवसैन्यानां तारकासुरसैन्यैः सह युद्धवर्णनम् ।

पुलस्त्य उवाच ।

आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च महाबलौ ।
सबलाः सानुगाश्चैव समनह्यन्यथाक्रमम् ॥ १ ॥
पुरुहूतश्च पुरतो लोकपालः सहस्रदृक् । ग्रामणीः सर्वदेवानामारुरोह वरद्विपम् ॥ २ ॥
सव्ये चास्य रथः पार्श्वे पक्षिप्रवरकेतनः । सुचारु चक्रचरणो हैमच्छत्रपरिष्कृतः ॥३॥
देवगन्धर्वयक्षौघैरनुयातः सहस्रशः । दीप्तिमद्भिश्च स्वर्गस्थैर्ब्रह्मर्षिभिरभिष्टुतः ॥ ४ ॥
वज्रविस्फारितोद्भूतै विद्युदिन्द्रायुधप्रभैः । युक्तं बलाहकगणैः पर्वतैरिव कामगैः ॥
यमारूढः सभगवान्पर्येति सकलंजगत् । हविर्दानेषु गायन्ति विप्रा मखमुखेस्थिताः ॥
स्वर्गसङ्ग्रामयातेषु देवतूर्यनिनादिषु । सदा यमुपनृत्यन्ति शतशोह्यप्सरोगणाः ॥
केतुना नागराजेन राजमानो यथा रविः । युक्तोहयसहस्रेण मनोमारुतरंहसा ॥ ८ ॥
सस्यग्रथ वरो भाति युक्तो मातलिना तदा । कृत्स्नः परिवृतो मेरुर्भास्करस्येवतेजसा
यमस्तु दण्डमुद्यम्य कालयुक्तं च मुद्गरम् । तस्थौ सुरगणानीके दैत्यानां चैवदर्शयन् ॥
चतुर्भिः सागरैर्युक्तो लेलिहानैश्च पन्नगैः । शङ्खमुक्ताङ्गदधरो बिभ्रत्तोयमयं वपुः ॥११॥
कालपाशान्समाविध्य हयैः शशिकरोपमैः ।

वाय्वीरितजलाकारैः कुर्वंल्लीलाःसहस्रशः ॥ १२ ॥

पाण्डुरोद्धूतवसनः प्रवालरुचिराङ्गदः । मणिश्यामोत्तमवपुर्हारकेणार्चितोदरः ॥ १३ ॥

वरुणः पाशधृन्मध्ये देवानीकस्य तस्थिवान् ।

युद्धवेलामभिलषन्भिन्नवेल इवार्णवः ॥ १४ ॥

यक्षराक्षससैन्येन गुह्यकानां गणैरपि । युक्तश्च शंखपद्माभ्यां निधीनामधिपःप्रभुः ॥

राजराजेश्वरः श्रीमान्गदापाणिरदृश्यत । विमानयोधी धनदो विमाने पुष्पकेस्थितः ॥

स राजराजः शुशुभे यक्षेशो नरवाहनः । ईक्षमाणः स्वसङ्ग्रामं साक्षादिव शिवःस्थितः

पूर्वपक्षे सहस्राक्षः पितृराजश्च दक्षिणे । वरुणः पश्चिमे पक्ष उत्तरे नरवाहनः ॥ १८ ॥

चतुष्पक्षाश्च चत्वारो लोकपाला महाबलाः ।

आत्मदिक्षु चरन्तश्च तस्य देवबलस्य ते ॥ १९ ॥

सूर्यः सप्ताश्वयुक्तेन रथेनानिलगामिना । श्रियाजाज्वल्यमानेन दीप्यमानैश्च रश्मिभिः ॥

उदयास्तमयौ चक्रे मेरुपर्यन्तगामिना । त्रिदिवद्वारचक्रेण तपसा लोकमव्ययम् ॥२१॥

सहस्ररश्मियुक्तेन भ्राजमानेन तेजसा । चचार मध्ये देवानां द्वादशात्मा दिवाकरः ॥

सोमः श्वेतहयो भाति स्यन्दने शीतरश्मिमान् ।

हिमतोयप्रपूर्णाभिर्भाभिराह्लादयञ्जगत् ॥२३ ॥

तमृक्षयोगानुगतं शिशिरांशुं द्विजेश्वरम् । शशच्छायाङ्किततनुं नैशस्य तमसः क्षयम् ॥

ज्योतिषामीश्वरं व्योम्नि रसदं प्रभुमव्ययम् ।

ओषधीनां पवित्राणां निधानममृतस्य च ॥ २५ ॥

जगतः परमं भागं सौम्यं सर्वमयं रसम् । ददृशुर्दानवाः सोमं हिमप्रहरणं स्थितम् ॥

यः प्राणः सर्वभूतानां पञ्चधा भिद्यते नृषु । सप्तस्कन्धगतो लोकांस्त्रीन्दधार चकारच

यमाहुरग्निकर्त्तारं सर्वप्रभवमीश्वरम् । सप्तस्वरगता यस्य योनिर्गीर्भिरुदीर्यते ॥ २८ ॥

यं वदन्ति चलं भूतं यं वदन्त्यशरीरिणम् । यमाहुराकाशगमं शीघ्रगं शब्दयोनिजम् ॥

स वायुः सर्वभूतायुरुद्धतः स्वेन तेजसा । ववौ प्रव्यथयन्दैत्यान्प्रतिलोमं स तोयदः ॥

मारुतो देवगन्धर्वैर्विद्याधरगणैःसह । चिक्रीड रश्मिभिश्शुभ्रैर्निर्मुक्तैरिव पन्नगैः ॥३१॥

सृजन्तः सर्पपतयस्तीव्रं रोषमयं विषम् । शरभूता विलग्नाश्च चेरुर्व्यात्ताननाः दिवि ॥
पर्वताश्च शिलाशृङ्गैः शतशाखैश्च पादपैः । उपतस्थुः सुरगणान्प्रहर्तुं दानवं बलम् ॥

यः स देवो हृषीकेशः पद्मनाभस्त्रिविक्रमः ।
युगान्ते कृष्णवर्त्मा च विश्वस्य जगतः प्रभुः ॥ ३४ ॥
सर्वयोनिः स मधुहा हव्यभुक्क्रतुसंस्थितः ।
भूम्यम्बुव्योम भूतात्मा श्यामः शान्तिकरोऽरिहा ॥ ३५ ॥

सोमार्काग्निमयं चक्रमुद्यम्योत्तमतेजसम् । अविघ्नममरादीनां चक्रे चक्रगदाधरः ॥३६॥
सव्येनालम्ब्य महतीं सर्वायुधविनाशिनीम् । करेण कालींवपुषा शत्रुकालप्रदां गदाम्
शेषैर्भुजैः प्रदीप्ताभैर्भुजगारिध्वजः प्रभुः । दधारयुधजालानि शार्ङ्गादीनि महाबलः ॥

स कश्यपस्यात्मभवं द्विजं भुजगभोजनम् ।
भुजगेन्द्रेण वदने निविष्टेन विराजितम् ॥ ३९ ॥

अमृतारम्भसंयुक्तं मन्दराद्रिमिवोच्छ्रितम् । देवासुरविमर्देषु बहुशो दृष्टविक्रमम् ॥४०॥
महेन्द्रेणामृतस्यार्थे वज्रेण कृतलक्षणम् । विचित्रपत्रवसनं धातुमन्तमिवाचलम् ॥४१॥
स्फीतक्रोधावलम्बेन शीतांशुसमतेजसा । भोगिभोगावसक्तेन मणिरत्नेन भास्वता ॥

पक्षाभ्यां चारु पत्राभ्यामावृतं दिवि लीलया ।
युगान्ते सेन्द्रचापाभ्यां तोयदाभ्यामिवाम्बरम् ॥ ४३ ॥

नीललोहितपीताभिः पताकाभिरलङ्कृतम् । अरुणावरजं श्रीमानारुह्य समरे प्रभुः ॥
सुवर्णवर्णवपुषं सुपर्णं खेचरोत्तमम् । तमन्वयुः सुरगणा मुनयश्च समाहिताः ॥ ४५ ॥
गीर्भिः परममन्त्राभिस्तुष्टुवुश्च गदाधरम् । तद्वैश्रवणसंश्लिष्टं वैवस्वतपुरःसरम् ॥४६॥
वारिराजपरिक्षिप्तं देवराजविराजितम् । पवनाबद्धनिर्घोषं सम्प्रदीप्तहुताशनम् ॥ ४७ ॥

विष्णोर्जिष्णोः सहिष्णोश्च भ्राजिष्णोस्तेजसा वृतम् ।
बलं बलवदुद्रिक्तं युद्धाय समवर्तत ॥ ४८ ॥

स्वस्त्यस्तु देवेभ्य इति बृहस्पतिरभाषत । स्वस्त्यस्तु दैत्येभ्य इति उशना वाक्यमाददे
ताभ्यां बलाभ्यां सञ्जज्ञे तुमुलो विग्रहस्तथा । सुराणामसुराणां च परस्परजयैषिणाम्

दानवा दैवतैः सार्द्धं नानाप्रहरणोद्यमाः। समीयुर्युध्यमाना वै पर्वता इव पर्वतैः ॥५१॥
तत्सुरासुरसंयुक्तं युद्धमत्यद्भुतं बभौ। धर्माधर्मसमायुक्तं दर्पेण विनयेन च ॥ ५२ ॥
ततो हयैः प्रजवितैर्वारणैश्च प्रचोदितैः। उत्पतद्भिश्च गगने सासिहस्तैः समन्ततः ॥

क्षिप्यमाणैश्च मुसलैः सम्पतद्भिश्च सायकैः।
चापैर्विस्फार्यमाणैश्च पात्यमानैः सुदारुणैः ॥ ५४ ॥

तद्युद्धमभवद्घोरं देवदानवसंकुलम्। जगतस्त्रासजननं युगसंवर्तकोपमम् ॥ ५५ ॥
स्वहस्तमुक्तैः परिघैर्मुद्गरैश्चैव पर्वतैः। दानवास्समरे जघ्नुर्देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥ ५६ ॥
ते वध्यमाना बलिभिर्दानवैर्जितकाशिभिः। विषण्णवदना देवा जग्मुरार्तिं परां मृधे ॥
ते चास्त्रशूलमथिताः परिघैर्भिन्नमस्तकाः। भिन्नोरस्कादितिसुतैः स्रवद्रक्ता रणे बहु ॥

सूदिताः शरजालैश्च निर्यत्नाश्च शरैः कृताः।
प्रविष्टा दानवीं मायां न शेकुस्ते विचेष्टितुम् ॥ ५९ ॥

उत्तम्भितमिवाभाति निष्प्राणसदृशाकृति। बलं सुराणामसुरैर्निष्प्रयत्नायुधं कृतम् ॥

दैत्यचापच्युतान्घोरांश्छित्त्वा वज्रेण ताञ्शरान्।
शक्रो दैत्यबलं घोरं विवेश बहुलोचनः ॥ ६१ ॥

स दैत्यप्रमुखान्सर्वान्हत्वा दैत्यबलं महत्। तामसेनास्त्रजालेन तमोभूतमथाकरोत् ॥

तेऽन्योन्यं नान्वबुध्यन्त दैत्यानां वाहनानि च।
घोरेण तमसाविष्टाः पुरुहूतस्य तेजसा ॥ ६३ ॥

मायापाशैर्विमुक्तास्तु यत्नवन्तः सुरोत्तमाः। शिरांसि दैत्यसङ्घानां तमोभूतान्यपातयन्
अपध्वस्ताविसंज्ञाश्च तमसानीलवर्चसा। पेतुस्ते दानवास्सद्यश्छिन्नपक्षा इवाद्रयः ॥
तत्राभिभूतदैत्येन्द्रमन्धकारमिवान्तरम्। दानवं देहसदनं तमोभूतमिवाभवत् ॥ ६६ ॥
तथासृजन्महामायां मयस्तां तामसीं दहन्। युगान्तोद्योतजननीं सृष्टामौर्वेण वह्निना ॥

सा ददाह च तां शाक्रीं मायामयविकल्पिताम्।
दैत्याश्चादित्यवपुषा सद्य उत्तस्थुराहवे ॥ ६८ ॥

मायामौर्वीं समासाद्य दह्यमाना दिवौकसः। भेजिरे चन्द्रविषयं शीतांशुसलिलं ह्रदम् ॥६९॥

तेदह्यमानाऔर्वेणवह्निनानष्टचेतसः । शशंसुर्वज्रिणंदेवाः सन्तप्ताः शरणैषिणः ॥ ७० ॥
सन्तप्ते मायया सैन्ये हन्यमाने च दानवैः । चोदितो देवराजेन वरुणो वाक्यमब्रवीत्

वरुण उवाच ।

पुरा ब्रह्मार्षिजः शक्रतपस्तेपे सुदारुणम् । उर्वः स पूर्वं तेजस्वी सदृशो ब्रह्मणोगुणैः
तं तपन्तमिवादित्यं तपसा जगदव्ययम् । उपतस्थुर्मुनिगणा देवा देवर्षिभिः सह ॥७३॥
हिरण्यकशिपुश्चैव दानवो दानवेश्वरः । ऋषिं विज्ञापयामास पुरा परमतेजसम्॥७४॥
ऊचुर्ब्रह्मर्षयस्ते तु वचनं धर्मसंहितम् । ऋषिवंशेषु भगवंश्छिन्नमूलमिदं कुलम् ॥७५॥

एकस्त्वमनपत्यश्च गोत्रायान्यो न विद्यते ।
कौमारं व्रतमास्थाय क्लेशमेवानुवर्तसे ॥ ७६ ॥
बहूनि विप्र गोत्राणि मुनीनां भावितात्मनाम् ।
एकदेहानि तिष्ठन्ति विविक्तानि विना प्रजाः ॥ ७७ ॥
एवम्भूतेषु सर्वेषु पुत्रैर्मे नास्ति कारणम् ।
भवांश्च तापसश्रेष्ठः प्रजापतिसमद्युतिः ॥ ७८ ॥

तत्प्रवर्तस्व वंशाय वर्धयात्मानमात्मना । समाधत्स्वोर्जितं तेजोद्वितीयां कुरु वै तनुम्
स एवमुक्तो मुनिभिर्मुनिर्मनसि ताडितः । जगर्ह तानृषिगणान्वचनं चेदमब्रवीत् ॥
यथा हि विहितोधर्मो मुनीनांशाश्वतःपुरा । आर्षं हि केवलं कर्मवन्यमूलफलाशिनः ॥
ब्रह्मयोनौ प्रसूतस्य ब्राह्मणस्यात्मचर्तिनः । ब्रह्मचर्यं सुचरितं ब्रह्माणमपि चालयेत् ॥
जनानांवृत्तयस्तिस्रो येगृहाश्रमवासिनः । अस्माकं च वने वृत्तिर्वनाश्रमनिवासिनाम् ॥
अब्भक्षा वायुभक्षाश्च दन्तोलूखलिनस्तथा । अश्मकुट्टा दयो यत्र पञ्चाग्नितपसश्च ये ॥

एते तपसि तिष्ठन्तो व्रतैरपि सुदुश्चरैः ।
ब्रह्मचर्यं पुरस्कृत्य प्रार्थयन्ति परां गतिम् ॥ ८५ ॥

ब्रह्मचर्याद्ब्राह्मणस्य ब्राह्मणत्वं विधीयते । एवमाहुः परेलोके ब्रह्मचर्यविदो जनाः ॥
ब्रह्मचर्ये स्थितो धर्मो ब्रह्मचर्ये स्थितं तपः । ये स्थिता ब्रह्मचर्येतुब्राह्मणादिविते स्थिताः

नास्ति योगं विनासिद्धिर्नास्ति योगं विना यशः ।

नास्ति लोके यशो मूलं ब्रह्मचर्यात्परन्तप ॥ ८८ ॥
यो निगृह्येन्द्रियग्रामं भूतग्रामं च पञ्चकम् । ब्रह्मचर्यं समाधत्ते किमतः परमं तपः ॥
अयोगकेशधरणमसङ्कल्पव्रतक्रिया । अब्रह्मचर्या चर्या च त्रयं स्याद्दम्भसंज्ञितम् ॥
क्व दाराः क्व च संयोगः क्व च भावविपर्ययः । नन्वियं ब्रह्मणा सृष्टा मनसा मानसीप्रजा
यद्यस्ति तपसो वीर्यं युष्माकं विजितात्मनाम् ।
सृजध्वं मानसान्पुत्रान्प्राजापत्येन कर्मणा ॥ ६२ ॥
मनसा निर्मिता योनिराधातव्या तपस्विभिः । नोदारयोगं बीजं चव्रतमुक्तंतपस्विनाम्
यदिदं लुप्तधर्माख्यं युष्माभिरिह निर्भयैः । व्याहृतं सद्भिरत्यर्थमसद्भिरिव संमतम् ॥
वपुर्दीप्तान्तरात्मानमेष कृत्वा मनोमयम् । दारयोगं विनास्रक्ष्ये पुत्रमात्मतनूरुहम् ॥
एवमात्मानमात्मामे द्वितीयं जनयिष्यति । प्राजापत्येन विधिना दिधक्षन्तमिव प्रजाः

वरुण उवाच ।

उर्वस्तु तपसा विष्टो निवेश्योरुं हुताशने । ममन्थैकेन दर्भेण पुत्रस्य प्रसवारणिम् ॥
तस्योरुं सहसा भित्त्वा वरोऽसौ ह्यग्निरुत्थितः ।
जगतो दहनाकाङ्क्षी पुत्रोऽग्निस्समपद्यत ॥ ६८ ॥
उर्वस्योरुं विनिर्भिद्य और्वो नामान्तकोऽनलः । दिधक्षुरखिलोकांस्त्रीञ्जज्ञे परमकोपनः
उत्पद्यमानश्चोवाचपितरं दीनयागिरा । क्षुधा मे बाधते तात जगद्भक्षे त्यजस्व माम् ॥
त्रिदिवारोहिभिर्ज्वालैर्जृम्भमाणो दिशो दश । निर्दहन्सर्वभूतानि ववृधे सोऽन्तकोपमः
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा मुनिमुर्वंसमागतः । उवाच वार्यतां पुत्रो जगतस्त्वं दयां कुरु ॥
अस्यापत्यस्य ते विप्रकरिष्ये साह्यमुत्तमम् । तथ्यमेतद्वचः पुत्र शृणु त्वं वदतांवर ॥

और्व उवाच ।

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यन्मे त्वं भगवञ्छिशोः ।
मतिमेतां ददासीह परमात्मन्हिताय वै ॥ १०४ ॥
प्रभातकाले सम्प्राप्ते काङ्क्षितव्ये समागमे ।
भगवंस्तर्पितः पुत्रः कैर्हव्यैःप्राप्स्यते सुखम ॥ १०५ ॥

कुत्र चास्य निवासः स्याद्भोजनं तु किमात्मकम् ।
विधास्यतीह भगवान्वीर्यतुल्यं महौजसः ॥ १०६ ॥

ब्रह्मोवाच ।

वडवामुखे च वसतिः समुद्रे वै भविष्यति । मम योनिर्जलं विप्र तस्मामेयं व्रजत्वयम्
तत्रायमास्ते नियतं पिबन्वारिमयं हविः । तद्वारि विस्तरं विप्र विसृजाम्यालयं च तम्
ततो युगान्ते भूतानामेष चाहं च पुत्रक । सहितो विचरिष्यावो निष्पुराणकराविह ॥
एषोऽग्निरन्तकाले तु सलिलाशी मया कृतः । दहनः सर्वभूतानां स देवासुररक्षसाम् ॥
एवमस्त्विवतितं सोग्निः संवृतज्वालमण्डलः । प्रविवेशार्णवमुखं नत्वोर्वं पितरं प्रभुम् ॥
प्रतियातस्ततो ब्रह्मा ते च सर्वे महर्षयः । और्वस्याग्नेःप्रभावज्ञाःस्वां स्वांगतिमुपागताः
हिरण्यकशिपुर्दृष्ट्वा तदातन्महदद्भुतम् । उर्वं प्रणतसर्वाङ्गो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ११३ ॥

हिरण्यकशिपुरुवाच ।

भगवन्नद्भुतमिदं सं वृत्तं लोकसाक्षिकम् । तपसा ते मुनिश्रेष्ठ परितुष्टः पितामहः ॥
अहं तु तव पुत्रस्य तव चैव महाव्रत । भृत्य इत्यवन्तव्यः श्लाघ्यस्त्वमिह कर्मणा ॥
तन्मां पश्य समापन्नं तवैवाराधनेरतम् । यदिसीदेन्मुनिश्रेष्ठ तवैव स्यात्पराजयः ॥

उर्व उवाच ।

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्यतेऽहं गुरुर्मतः ।
नास्ति ते तपसानेन भयं चैवेह सुव्रत ॥ ११७ ॥

तामेव मायां गृह्णीष्व ममपुत्रेण निर्मिताम् । निरिन्धनामग्निमयीं दुस्पर्शां पावकैरपि ॥
एषा ते स्वस्य वंशस्य वशगारिविनिग्रहे । रक्षिष्यत्यात्मपक्षं च विपक्षं च प्रधक्ष्यति

वरुण उवाच ।

एषा दुर्विषहा माया देवैरपि दुरसदा । और्वेण निर्मिता पूर्वं पावकेनोर्वसूनुना ॥
तस्मिंस्तुव्यथिते दैत्ये निवार्यैषा न संशयः। शापो ह्यस्याः पुरादत्तःसृष्टा येनैव तेजसा
यद्येषा प्रतिहन्तव्या कर्तव्यो भगवान्सुखी । दीयतां मे सखा शक्र तोययोनिर्निशाकरः
तेनाहं सहसङ्गम्य यादोभिश्च समावृतः । मायामेतां हनिष्यामि त्वत्प्रसादान्न संशयः

पुलस्त्य उवाच ।

एवमस्त्विति संतुष्टः शक्रस्त्रिदशवर्धनः । सन्दिदेशाग्रतः सोमं युद्धाय शिशिरायुधम्

इन्द्र उवाच ।

गच्छ सोमसहायस्त्वं भवपाशधरस्य वै । असुराणां विनाशाय जयार्थं त्रिदिवौकसाम्
त्वमतः प्रतिवीर्यश्च ज्योतिषामपिचेश्वरः । त्वन्मयान्सर्वलोकेषु रसान्वेदविदोविदुः ॥
त्वया समो न लोकेऽस्मिन्विद्यते शिशिरायुधः। क्षयवृद्धी तवाव्यक्ते सागरे चैव चाम्बरे
प्रवर्तयस्यहोरात्रात्कालं संमोहयञ्जगत्। लोकच्छायामयं लक्ष्म तवाङ्कः शशविग्रहः ॥

न विदुः सोम ते मायां ये च नक्षत्रयोनयः ।
त्वमादित्यपथादूर्ध्वं ज्योतिषां चोपरि स्थितः ॥ १२६ ॥

तमः प्रोत्सार्य सहसा भासयस्यखिलं जगत् । शीतभानुर्हिमतनुर्ज्योतिषामधिपः शशी

अपि तत्कालयोगात्मा इज्यो यज्ञरथोऽव्ययः ।
ओषधीशः क्रियायोनिरपां योनिरनुष्णगुः ॥ १३१ ॥

शीतांशुरमृताधारश्चपलः श्वेतवाहनः । त्वं कान्तिःकान्तवपुषां त्वंसोमःसोमपायिनाम्

सौम्यस्त्वं सर्वभूतानां तिमिरघ्नस्त्वमृक्षराट् ।
तद्गच्छ त्वं महासेन वरुणेन वरूथिना ॥ १३३ ॥
शमयस्वासुरीं मायां यया दह्यामहे रणे ॥ १३४ ॥

सोम उवाच ।

यन्मां वदसि युद्धार्थं देवराजवरप्रद । एष वर्षामि शिशिरं दैत्यमायापकर्षणम् ॥१३५॥
एतान्मे शीतनिर्दग्धान्पश्यस्व हिमवेष्टितान् । विमायान्विमदांश्चैव दैत्यसङ्घान्महाहवे
तथा हिमकरोत्सृष्टाः स पाशा हिमवृष्टयः । वेष्टयन्ति च तान्दैत्यान्वायुर्मेघगणानिव ॥
तौ पाशशीतांशुधरौ वरुणेन्दू महाबलौ । जघ्नतुर्हिमपातैश्च पाशपातैश्च दानवान् ॥

द्वावम्बुनाथौ समरे तौ पाशहिमयोधिनौ ।
मृधे चेरतुरम्भोभिः क्षुब्धाविव महार्णवौ ॥ १३६ ॥

ताभ्यामापरितं सर्वं तद्दानवबलं महत् । जगत्संवर्त्तकाम्भोदैः प्रवर्षैरिवसंवृतम्॥१४०॥

तावुद्यतावम्बुनाथौ शशाङ्कवरुणावुभौ। शमयामासतुस्तां तु मायां दैत्येन्द्रनिर्मिताम्
शीतांशुजालनिर्दग्धाः पाशैश्चास्कन्दिता रणे। न शेकुश्चलितुं दैत्या विशिरस्का इवाद्रयः
शीतांशुनिहतास्ते तु दैत्यास्सर्वे निपातिताः। हिमप्लावितसर्वाङ्गा निरूष्माण इवाग्नयः

तेषां तु दिवि दैत्यानां निपतन्ति शुभानि वै।
विमानानि विचित्राणि निपतन्त्युत्पतन्ति च ॥ १४४ ॥

तान्पाशहस्तग्रथितांश्छादिताञ्शीतरश्मिभिः। मयो ददर्श मायावी दानवान्दिविदानवः

सशैलजालां विततां खड्गपट्टिशहासिनीम्।
पादपोत्करकूटस्थां कन्दराकीर्णकाननाम् ॥ १४६ ॥

सिंहव्याघ्रगणाकीर्णां नदद्भिर्द्विपयूथपैः। ईहामृगगणाकीर्णां पवनाघूर्णितद्रुमाम् ॥१४७॥

निर्मितां स्वेन पुत्रेण कूजन्तीं दिवि कामगाम्।
प्रथितां पार्वतीं मायां ससृजे स समन्ततः ॥ १४८ ॥

सासिशब्दैश्शिलावर्षैः सम्पतद्भिश्च पादपैः। जघान देवसङ्घांस्तान्दानवानभ्यजीवयत् ॥
नैशाकरी वारुणी च माये अन्तर्हिते तदा। अभवद्घोरसञ्चारा पृथिवीपर्वतैरिव॥१५०॥
अश्मप्रहरणेनापि न शिलाभिर्वशीकृतः। न चारुद्धो द्रुमगणैर्देवोऽदृश्यत कश्चन ॥१५१॥
तदपध्वस्तधनुषं भग्नप्रहरणाविलम्। निष्प्रयत्नं सुरानीकं वर्जयित्वा गदाधरम् ॥१५२॥

सहि युद्धगतः श्रीमानीशो न स्म व्यकम्पत।
सहिष्णुत्वाज्जगत्स्वामी न चुक्रोध गदाधरः ॥ १५३ ॥

कालज्ञः कालमेघाभः समीक्षन्कालमाहवे। देवासुरविमर्दं च द्रष्टुकामस्तदा हरिः॥१५४
ततो भगवतादिष्टौ रणे पावकमारुतौ। चोदितौविष्णुवाक्येन ततो मायां व्यकर्षताम्

ताभ्यामुद्भ्रान्तवेगाभ्यां प्रबुद्धाभ्यां महाहवे।
दग्धा सा पार्वती माया भस्मीभूता ननाश ह ॥ १५६ ॥

सोऽनिलोऽनलसंयुक्तस्सोऽनलश्चानिलाकुलः।
दैत्यसेनां ददहतुर्युगान्तेष्विव मूर्च्छितौ ॥ १५७ ॥

वायुः प्रजवितस्तत्र पश्चादग्निश्च मारुतात्। चेरतुर्दानवानीके क्रीडन्तावनलानिलौ ॥

भस्मीभूतेषु भूतेषु प्रपतत्सूत्पतत्सु च। दानवानां विमानेषु निपतत्सु समन्ततः ॥
वातस्कन्धापविद्धेषु कृतकर्मणि पावके। मायावधेप्रवृत्ते तु स्तूयमाने गदाधरे ॥१६०॥

निष्प्रयत्नेषु दैत्येषु त्रैलोक्ये मुक्तबन्धने।
प्रहृष्टेषु च देवेषु साधुसाध्विति जल्पिषु ॥ १६१ ॥

जये दशशताक्षस्य दैत्यानां च पराजये। दिक्षु सर्वासु शुद्धासु प्रवृत्ते धर्मविस्तरे ॥
अपावृत्ते चन्द्रपथे स्वस्थानस्थे दिवाकरे। प्रवृत्तिस्थेषु भूतेषु नृषु चारित्रवत्सु च ॥
अभिन्नबन्धने मृत्यौ हूयमाने हुताशने। यज्ञशोभिषु देवेषु स्वर्गमार्गं दिशत्सु च ॥
लोकपालेषु सर्वेषु दिक्षु सन्धानवर्तिषु। भावे तपसि सिद्धानामभावे पापकर्मणाम् ॥
देवपक्षे प्रमुदिते दैत्यपक्षे विषीदति। त्रिपादविग्रहे धर्मेऽधर्मे पादपरिग्रहे ॥ १६६ ॥
अपावृत्ते महाद्वारे वर्तमाने च सत्पथे। लोकेषु धर्मवृत्तेषु प्रवृत्तेष्वाश्रमेषु च ॥ १६७ ॥
प्रजारक्षणयुक्तेषु राजमानेषु राजसु। प्रशान्तेषु च लोकेषु शान्ते तमसि दानवे ॥१६८॥

अग्निमारुतयोस्तस्मिन्वृत्ते सङ्ग्रामकर्मणि।
तन्मयाविमला लोकास्ताभ्यां जयकृतक्रियाः ॥ १६९ ॥

तीव्रं दैत्यभयं श्रुत्वा मारुताग्निकृतंमहत्। कालनेमीति विख्यातो दानवः प्रत्यदृश्यत ॥
भास्कराकारमुकुटः शिञ्जिताभरणाङ्गदः। मन्दराद्रिप्रतीकाशो महारजतसंवृतः॥१७१॥
शतप्रहरणोदग्रः शतबाहुः शताननः। शतशीर्षः स्थितः श्रीमाञ्छतशृङ्ग इवाचलः॥१७२॥
कक्षे महति संवृद्धो निदाघ इव पावकः। धूम्रकेशो हरिश्मश्रुर्दन्तुरो विकटाननः ॥

त्रैलोक्यान्तरविस्तारं धारयन्विपुलं वपुः।
बाहुभिस्तुलयन्व्योमक्षिपन्पद्भ्यां महीधरान् ॥ १७४ ॥

ईरयन्मुखनिश्वासैर्वृष्टिकारान्बलाहकान्। तिर्यगायतरक्ताक्षं मन्दरोदग्रवर्चसम् ॥१७५॥
दिधक्षन्तमिवायान्तं सर्वान्देवगणान्मृधे। तर्जयन्तं सुरगणांश्छादयन्तं दिशो दश ॥
संवर्तकाले तृषितं दृष्टं मृत्युमिवोत्थितम्। सुतलेनोच्छ्रयवता विपुलाङ्गुलिपर्वणा ॥
लम्बाभरणपूर्णेन किंचिच्चलितकर्मणा। उच्छ्रितेनाग्रहस्तेन दक्षिणेन वपुष्मता ॥१७८॥
दानवान्देवनिहतान्ब्रुवन्तं तिष्ठतेति च। तं कालनेमिं समरेद्विषतां कालनेमिनाम् ॥१७९

वीक्षन्तेस्मसुराः सर्वेभयविह्वललोचनाः। तंवीक्षन्तेस्मभूतानिग्रसन्तंकालनेमिनम् ॥

त्रिविक्रमं विक्रमन्तं नारायणमिवापरम्।

सोऽभ्युच्छ्रयं पुनः प्राप्तो मारुताघूर्णिताम्बरः ॥ १८१ ॥

प्राक्रामदसुरो योद्धुं त्रासयन्सर्वदेवताः। समेयिवान्सुरेन्द्रेण परिष्वक्तो भ्रमन्रणे ॥
कालनेमिर्बभौ दैत्यः सविष्णुरिव मन्दरः। अथ विव्यथिरे देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः ॥
कालनेमिनमायान्तं दृष्ट्वा कालमिवापरम्। दानवाननुपिप्रीषुः कालनेमिर्महासुरः ॥१८४॥
व्यवर्धत महातेजास्तपान्ते जलदोयथा। तं त्रैलोक्यान्तरगतं दृष्ट्वा ते दानवेश्वराः ॥
उत्तस्थुरपरिश्रान्ताः पीत्वेवामृतमुत्तमम्। ते वीतभयसन्त्रासा मयतारपुरोगमाः ॥१८६
तारकामयसङ्ग्रामे सततं जितकाशिनः। रेजुरायोधनगता दानवा युद्धकाङ्क्षिणः ॥

मन्त्रमभ्यसतां तेषां व्यूहं च परिधावताम्।

प्रेक्षतां चाभवत्प्रीतिर्दानवं कालनेमिनम् ॥ १८८ ॥

ये तु तत्र मयस्यासन्मुख्या युद्धपुरस्सराः।

ते तु सर्वे भयं त्यक्त्वा हृष्टा योद्धुमुपस्थिताः ॥ १८९ ॥

मयस्तारो वराहश्च हयग्रीवश्च दानवः। विप्रचित्तिसुतः श्वेतः खरलम्बावुभावपि ॥
अरिष्टो बलिपुत्रश्च किशोराख्यस्तथैव च। स्वर्भानुश्चामरप्रख्यश्चक्रयोधी महासुरः ॥
एतेऽस्त्रवेदिनः सर्वे सर्वेतपसि सुस्थिताः। दानवाः कृतिनोजग्मुः कालनेमिनमुद्धतम् ॥
ते गदाभिस्सुगुर्वीभिश्चक्रैरथपरश्वधैः। कालकल्पैश्च मुसलैः क्षेपणीयैश्च मुद्गरैः ॥
अश्मभिश्चाद्रिसदृशैस्तथा शैलैश्च दारुणैः। पट्टिशैर्भिण्डिपालैश्च परिघैश्चोत्तमायसैः ॥

घातिनीभिश्च गुर्वीभिः शतघ्नीभिस्तथैव च।

युगैर्यन्त्रैश्च निर्मुक्तैर्लाङ्गलैरुग्रताडितैः ॥ १९५ ॥

दोर्भिरायतमानैश्च पाशैश्च परिघादिभिः। भुजङ्गवक्त्रैर्लेलिहानैर्विसर्पद्भिश्च सायकैः ॥
वज्रैः प्रहरणीयैश्च दीप्यमानैश्च तोमरैः। विकोशैरसिभिस्तीक्ष्णैः शूलैश्च शितनिर्मलैः
दैत्यैः सन्दीप्यमानैश्च प्रगृहीतशरासनैः। ततः पुरस्कृत्य तदा कालेनमिनमाहवे ॥१९९॥
सादीप्तशस्त्रप्रवरा दैत्यानां रुरुचे चमूः। यैर्निमीलितसर्वाङ्गा वनालीवाम्बुदागमे ॥

देवतानामपि चमूर्मुमुदे शक्रपालिता । उपेता शिशिरोष्णाभ्यां तेजोभ्यां चन्द्रसूर्ययोः
वायुवेगवती सौम्या तारागणपताकिनी । तोयदाबद्धवसना ग्रहनक्षत्रहासिनी ॥२०२ ॥
यमेन्द्रधनदैर्गुप्ता वरुणेन च धीमता । सा प्रदीप्ताग्निपवना नारायणपरायणा ॥ २०३ ॥
सासमुद्रौघसदृशी दीप्यमाना महाचमूः । रराजास्त्रवती भीमा यक्षगन्धर्वशालिनी ॥

तयोश्चम्वोस्तदानीं तु बभूव स समागमः ।
द्यावापृथिव्योः संयोगो यथास्याद्युगपर्यये ॥ २०५ ॥

तद्युद्धमभवद्घोरं देवदानवसङ्कुलम् । क्षमापराक्रमपरं सदर्पं विनयस्य च ॥ २०६ ॥

निश्चक्रमुर्बलाभ्यां तु भीमाभ्यां च सुरासुराः ।
पूर्वापराभ्यां संरब्धाः सागराभ्यामिवाम्बुदाः ॥ २०७ ॥
ताभ्यां बलाभ्यां संहृष्टाश्चेरुस्ते देवदानवाः ।
वनाभ्यां पार्वतीयाभ्यां पुष्पिताभ्यां यथा नगाः ॥ २०८ ॥

समाजघ्नुस्तथा भेरीः शङ्खान्दध्मुरनेकशः । ब्रह्माण्डं च भुवं चैव दिशश्च समपूरयन् ॥
ज्याघाततलनिर्घोषो धनुषां कूजितानि च । दुन्दुभीनां चनिर्ह्रादोदैत्यमन्तर्दधुःस्वनम्
तेऽन्योन्यमभिसम्पेतुर्यातयन्तः परस्परम् । बभञ्जुर्बाहुभिर्बाहुद्वन्द्वमन्ये युयुत्सवः ॥

देवानामशनीर्घोराः परिघांश्चोत्तमायुधान् ।
निस्त्रिंशान्ससृजुः सङ्ख्ये गदागुर्वीश्च दानवाः ॥ २१२ ॥

गदानिपातैर्भग्नाङ्गबाणैश्च शकलीकृताः । परिपेतुर्भृशं केचित्पुनः केचित्तु जघ्निरे ॥
ततो रथैश्च तुरगैर्विमानैश्च गजादिभिः । समीयुस्तेऽतिसंरब्धा रोषादन्योन्यमाहवे ॥
संवर्त्तमानास्समरे सन्दष्टौष्ठपुटाननाः । रथारथैर्निरुध्यन्ते पादाताश्च पदातिभिः ॥
तेषांरथानां तुमुलः सशब्दः शब्दवाहिनाम् । नभोनभस्वान्हि न यथा नभस्ये जलदस्वनैः
बभञ्जिरे रथान्केचित्केचित्संमृदिता रथैः । सम्बाधमन्ये सम्प्राप्ता नशेकुश्चलितुं रथाः

अन्योन्यमध्ये समरे दोर्भ्यामुत्क्षिप्य दंशिताः ।
संह्रादमाणास्सबला जघ्नुस्तत्रासिचर्मिणः ॥ २१८ ॥

अस्त्रैरन्येविनिर्भिन्ना रक्तंवेमुर्हता युधि । क्षरज्जलानां सदृशाजलदानां समागताः ॥

तदस्त्रशस्त्रप्रथितं क्षिप्ताक्षिप्तगदाविलम् । देवदानवसङ्घुष्टं सङ्कुलं युद्धमाबभौ ॥
तद्दानवमहामेघं देवायुधविराजितम् । अन्योन्यबाणवर्षेण युद्धदुर्दिनमाबभौ ॥ २२१ ॥
एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धः कालनेमिस्सदानवः । अवर्धत समुद्रौघैः पूर्णमाण इवाम्बुदः ॥
तस्य विद्युल्लता पीडाः प्रदीप्ताशनिवर्षिणः । गात्रैर्नगगिरिप्रख्यैर्विनिपेतुर्बलाहकाः ॥
क्रोधान्निश्वसतस्तस्य भ्रूभेदस्वेदवर्षिणः । साग्निस्फुलिङ्गाः प्रतताः मुखान्निश्चेरुरर्चिषः

तिर्यगूर्ध्वं च गगने ववृधुस्तस्य बाहवः ।
पर्वतादिव निष्क्रान्ताः पञ्चास्या इव पन्नगाः ॥ २२५ ॥

सोऽस्त्रजालैर्बहुविधैर्धनुभिः परिघैरपि । दिव्यमाकाशमावव्रे पर्वतैरुच्छ्रितैरिव ॥

सोऽनिलोद्भूतवसनस्तस्थौ सङ्ग्रामलालसः ।
सन्ध्यातपग्रस्तशिलः साक्षान्मेरुरिवाचलः ॥ २२७ ॥

ऊरुवेगप्रमथितैः शृङ्गशैलाग्रपादपैः । अपातयद्देवगणान्वज्रेणेव महागिरीन् ॥ २२८ ॥

बाहुभिश्च सनिस्त्रिंशैश्छिन्नभिन्नशिरोरुहाः ।
न शेकुश्चलितुं देवाः कालनेमिहता युधि ॥ २२९ ॥

मुष्टिभिर्निहताः केचित्केचिच्च द्विदलीकृताः । यक्षगन्धर्वपतगाः समहोरगकिन्नराः ॥
तेन वित्रासिताःपेतुः समरे कालनेमिना । न शेकुर्यत्नवन्तोऽपि यत्नं कर्तुं विचेतसः
तेन शक्रः सहस्राक्षोऽस्पन्दितः शरबन्धनैः । निष्प्रयत्नः कृतः सङ्ख्ये चलितुंनशशाकह
निर्जलाम्भोदसदृशो निर्जलार्णवसप्रभः । निर्व्यापारः कृतस्तेन विपाशो वरुणो मृधे ॥

रणे वैश्रवणस्तेन परीतः कालरूपिणा ।
विलपँल्लोकपालेशस्त्याजितो धनदः क्रियाम् ॥ २३४ ॥

यमः सर्वहरस्तेन मृत्युप्रहरणो रणे । याम्यामवस्थां सन्त्यज्य भीतःस्वांदिशमाविशत्
सलोकपालानुत्सार्य हत्वा तेषां च कर्मतत् । दिक्षु सर्वासु देहं स्वं चतुर्धाविदधेतदा
स नक्षत्रपथं गत्वा दिव्यं स्वर्भानुदर्शितम् । जहार लक्ष्मीं सोमस्ययच्चास्यविषयंमहत्
चालयामास दीप्तांशं धर्मद्वारा सभास्करम् । शासनं चास्य विषयं जहार दिनकर्म च
सोऽग्निंदेवमुखं जित्वा चकारात्ममुखाश्रयम् । वायुं च तरसाजित्वाचकारात्मवशानुगम्

ससमुद्रात्समानीयसमस्ताःसरितोबलात् । चकाराभिमुखावीर्याद्देवभूताश्चसिन्धवः ॥
अपःस्ववशगाःकृत्वा दिविजा याश्च भूमिजाः ।
छादयामास जगतीं सुगुमां धरणीधरैः ॥ २४१ ॥
सस्वयम्भूरिवाभाति महाभूतपतिर्महान् । सर्वलोकमयो दैत्यः सर्वलोकभयावहः ॥
सलोकपालैकवपुश्चन्द्रसूर्यग्रहात्मवान् । पावकानिलसम्भूतो रराज युधि दानवः ॥
पारमेष्ठ्ये स्थितः स्थाने लोकानां प्रभवोपमे । तं तुष्टुवुर्दैत्यगणा देवा इव पितामहम्
पञ्च तं नाभ्यवर्त्तन्त विपरीतेन कर्मणा । वेदोधर्मः क्षमा सत्यं श्रीश्च नारायणाश्रया ॥
स तेषामनुपस्थानात्सक्रोधो दानवेश्वरः । वैष्णवं पदमन्विच्छन्सगतो देवता यतः ॥
सदृदर्श सुपर्णस्थं शङ्खचक्रगदाधरम् । दानवानां विनाशाय भ्रामयन्तं गदां शुभाम् ॥
सजलाम्भोदसदृशं विद्युत्सदृशवाससम् । आरूढं स्वर्णपत्राढ्यं खेचरं काश्यपं खगम्
दुष्टदैत्यविनाशाय दृष्ट्वा खस्थमिव स्थितम् ।
दानवो विष्णुमक्षोभ्यं बभाषे क्षुब्धमानसः ॥ २४६ ॥

कालनेमिरुवाच ।

अयं स रिपुरस्माकं पूर्वेषां प्राणनाशनः । अर्णवावासिनश्चैव मधोश्च कैटभस्य च ॥
अयं स रिपुरस्माकमसमः किल कथ्यते । अनेकसंयुगेऽनेन दानवा बहवो हताः ॥२५१
अयं स निर्घृणो लोके स्त्रीबालनिरपत्रपः ।
येन दानवनारीणां सीमन्तोद्धरणं कृतम् ॥ २५२ ॥
अयं स विष्णुर्देवानां वैकुण्ठश्च दिवौकसाम् ।
अनन्तो भोगिनां मध्ये स्वयम्भूश्च स्वयम्भुवः ॥ २५३ ॥
अयं स नाथो देवानामस्माभिर्विप्रकृष्यते । अस्य क्रोधं समासाद्य हिरण्यकशिपुर्हतः ॥
अस्य च्छायामुपाश्रित्य देवा मखमुखे स्थिताः ।
आज्यं महर्षिभिर्दत्तमश्नुवन्ति त्रिधाहुतम् ॥ २५५ ॥
अयं स निधने हेतुः सर्वेषाममरद्विषाम् । अस्य चक्रप्रविष्टानि कुलान्यस्माकमाहवे ॥
अयं स किल युद्धेषु सुरार्थे त्यक्तजीवितः । स विभुस्तेजसा युक्तं चक्रंक्षिपतिशत्रुषु ॥

अयं स कालो दैत्यानां कालभूते मयि स्थिते ।
अतिक्रान्तस्य कालस्य फलंप्राप्स्यति केशवः ॥ २५८ ॥
दिष्ट्येदानीं समक्षं मे विष्णुरेष समागतः। निष्पिष्टो बहुनासङ्ख्ये मय्येव प्रणशिष्यति
यास्याम्यपचितिं दिष्ट्या पूर्वेषामद्य संयुगे । इमं नारायणं हत्वा दानवानां भयावहम्
क्षिप्रमेव हनिष्यामि रणेऽमरगणानहम् । जात्यन्तरगतोऽप्येष बाधतेदानवान्मृधे ॥
एषोऽनन्तः पुरा भूत्वा पद्मनाभ इति श्रुतः । जघानैकार्णवे घोरे तावुभौ मधुकैटभौ ॥
द्विधा भूतं वपुः कृत्वा सिंहस्यार्द्धं नरस्य च । पितरं मे जघानैको हिरण्यकशिपुं पुरा ॥
यं सुतं गर्भमाधत्त ह्यदितिर्देवतारणिः । त्रीँल्लोकानाजहारैकः क्रममाणस्त्रिभिःक्रमैः
भूयस्त्विदानीं सम्प्राप्ते सङ्ग्रामे तारकामये ।
मया सह समागम्य स देवो विनशिष्यति ॥ २६५ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

एवमुक्त्वा बहुविधं क्षिप्रं नारायणं रणे । वाग्भिरप्रतिरूपाभिर्युद्धमेवाभ्यरोचयत् ॥
क्षिप्यमाणोऽसुरेन्द्रेण न चुकोप गदाधरः । क्षमाबलेन महता सस्मितं चेदमब्रवीत् ॥

नारायण उवाच ।

अल्पं दर्पबलं दैत्यस्थिरमक्रोधजं बलम् । हतस्त्वं दर्पजैर्दोषैर्हित्वा यो भाषसेक्षमाम्
अधमस्त्वं मम मतो धिगेतत्तववाग्बलम् । के तत्र पुरुषाः सन्ति यत्र गर्जन्ति योषितः
अहं त्वां दैत्य पश्यामि पूर्वेषां मार्गगामिनम् ।
प्रजापतिकृतं सेतुं त्यक्त्वा कः स्वस्तिमान्भवेत् ॥ २७० ॥
अद्य त्वां नाशयिष्यामि देवव्यापारघातकम् ।
स्वेषु स्वेषु च स्थानेषु स्थापयिष्यामि देवताः ॥ २७१ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

एवं ब्रुवति वाक्यं तु मृधे श्रीवत्सधारिणि ।
जहास दानवः क्रोधाद्धस्तांश्चक्रे च सायुधान् ॥ २७२ ॥
स बाहुशतमुद्यम्य सर्वायुधगणान्रणे । क्रोधाद्द्विगुणरक्ताक्षो विष्णोर्वक्षस्यपातयत् ॥

दानवाश्चापि समरे मयतारपुरोगमाः । उद्यतायुधनिस्त्रिंशा विष्णुमभ्यद्रवन्रणे ॥२७४
स ताड्यमानोऽतिबलैर्दैत्यैः सर्वायुधोद्यतैः । न चचाल ततो युद्धे कम्प्यमान इवाचलः
संयुक्तश्च सुपर्णेन कालनेमिर्महासुरः ।'सर्वप्राणेन महतीं गदामुद्यम्य बाहुभिः ॥२७६॥
घोरां ज्वलन्तीं मुमुचे संरब्धो गरुडोपरि । कर्मणातेन दैत्यस्य विष्णुर्विस्मयमागमत्
तदा तेन सुपर्णस्य पातिता मूर्ध्नि सा गदा । सुपर्णं व्यथितं दृष्ट्वा क्षतं च वपुरात्मनः ॥
क्रोधसंरक्तनयनो वैकुण्ठश्चक्रमाददे । व्यवर्द्धत च वेगेन सुपर्णेन समं विभुः ॥ २७९ ॥
भुजाश्चास्य व्यवर्धन्त व्याप्तवन्तो दिशो दश । विदिशश्चैव खंचापिगांचैव प्रत्यपूरयन्
ववृधे स पुनर्लोकान्क्रान्तुकाम इवौजसा । तं जयाय सुरेन्द्राणां वर्द्धमानं नभस्तले ॥
ऋषयः सहगन्धर्वास्तुष्टुवुर्मधुसूदनम् । स द्यां किरीटेन लिखञ्छिरसा भास्वरेण च ॥

पद्भ्यामाक्रम्य वसुधां दिशः प्रच्छाद्य बाहुभिः ।
सहस्रकरतुल्याभं सहस्रारमरिक्षयम् ॥ २८३ ॥

दीप्ताग्निसदृशं घोरं दर्शनेन सुदर्शनम् । सुवर्णरेणुपर्यन्तं वज्रनाभं भयावहम् ॥२८४॥
मेदोऽस्थिमज्जारुधिरैः सिक्तं दानवसम्भवैः । अद्वितीयं प्रहरणं क्षुरपर्यन्तमण्डलम् ॥

स्रग्दाममालानिचितं कामगं कामरूपिणम् ।
स्वयं स्वयम्भुवा सृष्टं भयदं सर्वविद्विषाम् ॥ २८६ ॥

दधार रोषेणाविष्टं नित्यमाहवदर्पितम् । क्षपणाद्यस्य मुह्यन्ति लोकाःसस्थाणुजङ्गमाः
क्रव्यादानिच भूतानि तृप्तिं यान्ति महामृधे । तमप्रतिमकर्माणं समानं सूर्यवर्चसा ॥
चक्रमुद्यम्य समरे कोपदीप्तो गदाधरः । प्रनष्टं दानवं तेजः कुर्वाणं स्वेन तेजसा ॥
चिच्छेद बाहूंस्तेनैव समरे कालनेमिनः । तच्च वक्त्रशतं घोरंसाग्निचूर्णाट्टहासि वै ॥
तस्य दैत्यस्य चक्रेण प्रममाथ बलाद्धरिः । सच्छिन्नबाहुर्विशिरानप्राकम्पत दानवः ॥

कबन्धावस्थितः सङ्ख्ये विशाख इव पादपः ।
तं वितत्य महापक्षौ वायोः कृत्वा समं जवम् ॥ २९२ ॥

उरसाताडयामास गरुडः कालनेमिनम् । सतस्यदेहोऽभिमुखो विबाहुः खात्परिभ्रमन्
निपपात दिवं त्यक्त्वा क्षोभयन्धरणीतलम् । तस्मिन्निपतितेदैत्येदेवाःसर्षिगणास्तथा

साधुसाध्विति वैकुण्ठं समेताः प्रत्यपूजयन् । अपरे ये तु दैत्या वै युद्धे दृष्टपराक्रमाः
ते सर्वे बाहुभिर्व्याप्ता नशेकुश्चलितुं रणे। कांश्चित्केशेषु जग्राहकांश्चित्कण्ठेष्वपीडयत्
चकर्त कस्यचिद्वक्त्रं मध्येऽगृह्णात्तथापरम् । ते गदाचक्रनिर्दग्धा गतसत्त्वा गतासवः॥
गगनाद्भ्रष्टसर्वाङ्गा निपेतुर्धरणीतले। तेषु सर्वेषु दैत्येषु हतेषु पुरुषोत्तमः ॥ २९८ ॥
शक्रप्रियंततः कृत्वा कृतकर्मा गदाधरः । तस्मिन्विमर्दे संवृत्ते सङ्ग्रामे तारकामये ॥
तं च देशं जगामाशु ब्रह्मा लोकपितामहः । सर्वैर्ब्रह्मर्षिभिः सार्द्धं गन्धर्वाप्सरसांगणैः

देवदेवं हरिं देवः पूजयन्वाक्यमब्रवीत् ॥ ३०१ ॥

ब्रह्मोवाच ।

कृतं देव महत्कर्म सुराणां शल्यमुद्धृतम् । निधनेन च दैत्यानां वयं च परितोषिताः ॥

योऽयं त्वया हतो विष्णो कालनेमिर्महासुरः ।
त्वामेतस्य ऋते ह्यस्मिञ्शास्ता कश्चिन्न विद्यते ॥ ३०३ ॥

एष देवान्परिभवँल्लोकांश्च सचराचरान् । ऋषीणां कदनं कृत्वा मामपि प्रतिगर्जति ॥
तदनेन त्वदीयेन परितुष्टोऽस्मि कर्मणा । यदयं कालकल्पस्ते कालनेमिर्निपातितः ॥
तदागच्छस्व भद्रंते गच्छाम दिवमुत्तमाम् । ब्रह्मर्षयस्त्वां तत्रस्थाःप्रतीक्षन्ते सदोगताः
कं चाहं तव दास्यामि वरं वरभृतांवर । स्वस्थानस्थेषु देवेषु तेषां च वरदो भवान् ॥
निर्यातमेतत्त्रैलोक्यं स्फीतं निहतकण्टकम् । अस्मिन्नेव मृधे विष्णो शक्राय सुमहात्मने

पुलस्त्य उवाच ।

एवमुक्तो भगवता ब्रह्मणा हरिरव्ययः । देवाञ्छक्रमुखान्सर्वानुवाच शुभया गिरा ॥

विष्णुरुवाच ।

श्रूयतां त्रिदशास्सर्वे यावन्तोऽत्र समागताः । सुपर्णसहितैस्तत्र पुरस्कृत्य पुरन्दरम् ॥
अस्माभिः समरे सर्वैः कालनेमिमुखाहताः । दानवा विक्रमोपेताः शक्रादपि महत्तराः॥
अस्मिन्महति सङ्ग्रामे द्वावेव तु विनिस्सृतौ । विरोचनस्तु दैतेयः स्वर्भानुश्चमहाबलः
स्वां दिशं भजतां शक्रो दिशं वरुण एव च । याम्यां यमः पालयतामुत्तरां च धनाधिपः
ऋक्षैः सह सदा योगं गच्छतां चन्द्रमास्तथा । अयमृतुमुखं सूर्यो भजतामयनैः सह ॥

आज्यभागाः प्रवर्तन्तां सदस्यैरभिपूजिताः । हूयन्तामग्नयो विप्रैर्वेददृष्टेन कर्मणा ॥
देवाश्च बलिहोमेन स्वाध्यायेन महर्षयः । श्राद्धेन पितरश्चैव तुष्टिं यान्तु यथासुखम् ॥

वायुश्चरतु मार्गस्थस्त्रिधा दीप्यतु पावकः ।
त्रयो वर्णाश्च लोकांस्त्रींस्तर्पयन्त्वात्मजैर्गुणैः ॥ ३१७ ॥

क्रतवः सम्प्रवर्तन्तां दीक्षणीयैर्द्विजातिभिः । दक्षिणाश्चोपपद्यन्तां याज्ञिकैश्चपृथक्पृथक्
गाश्च सूर्यो रसान्सोमो वायुःप्राणांश्च प्राणिषु । तर्पयन्तः प्रवर्तन्तामेते सौम्यैःस्वर्मभिः
यथावदनुपूर्वेण महेन्द्रमलयोद्भवाः । त्रैलोक्यमातरः सर्वाः समुद्रं यान्तु सिन्धवः ॥

दैत्येभ्यस्त्यज्यतां भीश्च शान्तिं व्रजत देवताः ।
स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ ३२१ ॥

स्वगृहे स्वर्गलोके वा सङ्ग्रामे वा विशेषतः। विश्वस्तैश्चन गन्तव्यंनित्यंक्षुद्राहिदानवाः
छिद्रेषु प्रहरन्त्येते न तेषां संस्थितिर्ध्रुवा । सौम्यानां निजभावानां भवतामार्जवे मनः

पुलस्त्य उवाच ।

एवमुक्त्वा सुरगणान्विष्णुस्सत्यपराक्रमः । जगाम ब्रह्मणा सार्द्धं ब्रह्मलोकं महायशाः

देवानां महतीं प्रीतिमुत्पाद्य भगवान्प्रभुः ॥ ३२५ ॥

एतदाश्चर्यमभवत्सङ्ग्रामे तारकामये । दानवानां च विष्णोश्च यन्मांत्वं परिपृच्छसि ॥

इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे पद्मोद्भवदेवासुरयुद्धो नाम
त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

शङ्करमाहात्म्यवर्णनारम्भः ।

भीष्म उवाच ।

श्रुतः पद्मोद्भवो ब्रह्मन्विस्तरेण त्वयेरितः । समासाद्भवमाहात्म्यमुत्पत्तिं च गुहस्य च ॥

श्रोतुमिच्छामि ते ब्रह्मन्यथाभूतः कृतं च यत्। तारकश्च कथम्भूतो दानवो बलवत्तरः ॥
कार्तिकेयेन स ब्रह्मन्कथं ध्वस्तो महासुरः। कथं रुद्रेण मुनयः प्रेषिता मन्दरं गिरिम् ॥
कथं लब्धा उमा तत्र रुद्रेण परमेष्ठिना। एतदाख्याहि मे सर्वं यथाभूतं महामुने ॥ ४ ॥

पुलस्त्य उवाच।

कश्यपेन पुरा प्रोक्ता दितिर्दैत्यारणिः शुभा। वज्रसारमयैश्चाङ्गैः पुत्रो देवि भविष्यति
वज्राङ्गो नाम पुत्रस्तु भविता धर्मवत्सलः। सा च लब्धवरा देवी सुषुवे वज्रदुश्छिदम्
स जातमात्र एवाभूत्सर्वशास्त्रार्थपारगः। उवाच मातरं भक्त्या मातः किंकरवाण्यहम्
तस्योवाच ततो हृष्टादितिर्दैत्याधिपस्य तु। बहवो मे हताः पुत्राः सहस्राक्षेण पुत्रक ॥

तेषामपचितिं कर्तुं गच्छ शक्र वधाय तु।
बाढमित्येव तां चोक्त्वा जगाम त्रिदिवं बलात् ॥ ६ ॥

बद्ध्वा ततः सहस्राक्षं पाशेनामोघवर्चसा। मातुरन्तिकमागच्छद्व्याधः क्षुद्रमृगं यथा
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा कश्यपश्च महातपाः। आगतौ तत्र यत्रास्तां माता पुत्रावभीतकौ ॥
दृष्ट्वा तु तावुवाचेदं ब्रह्मा कश्यप एव च। मुञ्चैनं पुत्र देवेन्द्रं किमनेन प्रयोजनम् ॥

अवमानो वधः प्रोक्तः पुत्रसम्भावितस्य तु।
अस्मद्वाक्येन यो मुक्तस्त्वद्धस्तान्मृत एव सः ॥ १३ ॥

परस्य गौरवान्मुक्तः शत्रूणां शत्रुराहवे। स जीवन्नेव हि मृतो दिवसे दिवसे पुनः ॥

एतच्छ्रुत्वा तु वज्राङ्गः प्रणतो वाक्यमब्रवीत्।
न मे कृत्यमनेनास्ति मातुराज्ञा कृता हि मे ॥ १५ ॥

त्वं सुरासुरनाथो वै मान्यश्च प्रपितामहः। करिष्ये त्वद्वचो देव एष मुक्तः शतक्रतुः ॥
तपसे मे रतिर्देवानिर्विघ्नं तच्च मे भवेत्। त्वत्प्रसादेन भगवन्नित्युक्त्वा विरराम ह ॥

तस्मिंस्तूष्णीं स्थिते दैत्ये प्रोवाचेदं पितामहः।

ब्रह्मोवाच।

तपस्त्वं कुरु मापन्नः सोऽस्मच्छासनसंस्थितः ॥ १८ ॥
अनया चित्तशुद्ध्या हि पर्याप्तं जन्मनः फलम्।

इत्युक्त्वा पद्मजः कन्यां ससर्जायतलोचनाम् ॥ १६ ॥

तामस्मै प्रददौ देवः पत्न्यर्थे पद्मसम्भवः । वराङ्गीति च नामास्याः कृत्वा यातः पितामहः

वज्राङ्गोऽपि तया सार्द्धं जगाम तपसे वनम् ।

ऊर्द्ध्वबाहुस्सदैत्येन्द्रोऽचरद्वर्षसहस्रकम् ॥ २१ ॥

कालं कमलपत्राक्षः शुद्धबुद्धिर्महातपाः । तावच्चाधोमुखः कालं तावत्पञ्चाग्निमध्यगः ॥

निराहारो घोरतपास्तपोराशिरजायत । ततः सोऽन्तर्जले चक्रे वासं वर्षसहस्रकम् ॥

जलान्तरं प्रविष्टस्य तस्य पत्नी महाव्रता । तस्यैव तीरे सरसः स्थिताऽसौ मौनमाश्रिता

निराहारं तपोघोरं प्रविवेश महाद्युतिः । तस्यां तपसि वर्तन्त्यामिन्द्रश्चक्रे विभीषिकाम्

गत्वा तु मर्कटाकारस्तदाश्रमपदं महत् । बृसीं चकर्ष बलवान्गन्धाद्यर्चाकरण्डकम् ॥

ततस्तु सिंहरूपेण भीषयामास भामिनीम् । ततो भुजङ्गरूपेणाप्यदशच्चरणद्वयम् ॥ २७ ॥

तपो बलवशात्सा तु न वध्यत्वं जगाम ह । भीषिकाभिरनेकाभिः क्लेशयन्पाकशासनः

विरराम यदा नैव वज्राङ्गमहिषी तदा । शैलस्य दुष्टतां मत्वा शापं दातुं समुद्यता ॥

तां शापाभिमुखीं दृष्ट्वा शैलः पुरुषविग्रहः । उवाच तां वरारोहां वराङ्गीं भीतलोचनः ॥

शैल उवाच ।

नाहं महाव्रते दुष्टः सेव्योऽहं सर्वदेहिनाम् । विप्रियेतं करोत्येष रुषितः पाकशासनः

एतस्मिन्नन्तरेजातः कालो वर्षसहस्रकः । तस्मिञ्ज्ञात्वा तु भगवान्काले कमलसम्भवः

तुष्टः प्रोवाच वज्राङ्गं तदागत्य जलाशयम् ।

ब्रह्मोवाच ।

ददामि सर्वकामं त उत्तिष्ठ दितिनन्दन ॥ ३३ ॥

एवमुक्तस्तदोत्थाय स दैत्येन्द्रस्तपोनिधिः ।

उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं सर्वलोकपितामहम् ॥ ३४ ॥

वज्राङ्ग उवाच ।

आसुरो मास्तु मे भावः सन्तु लोका ममाक्षयाः ।

तपस्यभिरतिर्मेऽस्तु शरीरस्यास्य वर्तनम् ॥ ३५ ॥

एवमस्त्विति तं देवो जगाम स्वकमालयम् ।
वज्राङ्गोऽपि समाप्ते तु तपसि स्थिरसंयमः ॥ ३६ ॥
सङ्गन्तुमिच्छन्स्वां भार्यां न ददर्शाश्रमे स्वके । क्षुधाविष्टः सशैलस्य गहनं प्रविवेश ह
आदातुं फलमूलानि स च तस्मिन्व्यलोकयत् ।
रुदन्तीं स्वां प्रियां दीनां तरुप्रच्छादिताननाम् ॥ ३८ ॥
तां विलोक्य ततो दैत्यः प्रोवाच परिसान्त्वयन् ।

वज्राङ्ग उवाच ।

केन तेऽपकृतं भद्रे यमलोकं यियासुना ॥ ३६ ॥
कं वा कामं प्रयच्छामि शीघ्रं प्रब्रूहि मानिनि ।

वराङ्ग्युवाच ।

त्रासितास्म्यपविद्धास्मि ताडिता पीडितास्मि च ॥ ४० ॥
रौद्रेण देवराजेन नष्टनाथेव भूरिशः । दुःखस्यान्तमपश्यन्ती प्राणांस्त्यक्तुं व्यवस्थिता
पुत्रं मे तारकं देहि तस्माद्दुःखमहार्णवात् । एवमुक्तस्तु दैत्येन्द्रः कोपव्याकुललोचनः
शक्तोऽपि देवराजस्य प्रतिकर्तुं महासुरः । तप एव पुनश्चर्तुं व्यवस्यत महाबलः॥४३॥
ज्ञात्वा तस्य तु सङ्कल्पं ब्रह्मा क्रूरतरं पुनः । आजगामत्वरायुक्तो यत्रासौ दितिनन्दनः

ब्रह्मोवाच ।

किमर्थं पुत्रभूयस्त्वं कर्तुं नियममुद्यतः । तदहं ते पुनर्दास्ये काङ्क्षितं पुत्रमोजसा ॥

वज्राङ्ग उवाच ।

उत्थितेन मया दृष्टा समाधानात्त्वदाज्ञया । त्रासितेन्द्रेण मामाह सा वराङ्गी सुतार्थिनी
पुत्रं मे तारकं देहि तुष्टो मे त्वं पितामह ।

ब्रह्मोवाच ।

अलं ते तपसा वीर मा क्लेशे दुस्तरे विश ॥ ४७ ॥
पुत्रस्तु तारको नाम भविष्यति महाबलः । देवसीमन्तिनीनां तु धम्मिल्लकविमोक्षकः
इत्युक्तो दैत्यनाथस्तु प्रणम्य प्रपितामहम् ।

गत्वा तां नन्दयामास महिषीं कर्शितान्तराम् ॥ ४६ ॥
तौ दम्पती कृतार्थौ तु जग्मतुः स्वाश्रमं तदा। आहितं तु तदा गर्भं वराङ्गी वरवर्णिनी
पूर्णवर्षसहस्रं तु दधारोदर एव हि। ततो वर्षसहस्रान्ते वराङ्गी सात्वसूयत ॥ ५१ ॥
जायमाने तु दैत्ये तु तस्मिँल्लोकभयङ्करे। चचाल सर्वा पृथिवी प्रोद्भूताश्च महार्णवाः
चेलुर्धराधराश्चापि ववुर्वाताश्च भीषणाः। जेपुर्जप्यं मुनिवरा नेदुर्व्यालमृगा अपि ॥५३
जहौ कान्तिश्चन्द्रसूर्यौ नीहारच्छादितादिशः। जाते महासुरे तस्मिन्सर्वे चापिमहासुराः
आजग्मुर्हर्षितास्तत्र तथा चासुरयोषितः। जगुर्हर्षसमाविष्टा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥
ततो महोत्सवे जाते दानवानां महाद्युते। विषण्णमनसो देवाः सहेन्द्रा अभवंस्तदा ॥
वराङ्गी तु सुतं दृष्ट्वा हर्षेणापूरिता तदा। बहु मेने च दैत्येन्द्रो विजातं तं तदा तथा ॥
जातमात्रस्तु दैत्येन्द्रस्तारकश्चोग्रविक्रमः।
अभिषिक्तोऽसुरैर्मुख्यैः कुजम्भमहिषादिभिः ॥ ५८ ॥
सर्वासुरमहाराज्ये पृथिवीतुलनक्षमे। स तु प्राप्तमहाराज्यस्तारको नृपसत्तम ॥ ५९ ॥
उवाच दानवश्रेष्ठो युक्तियुक्तमिदं वचः।

तारक उवाच।

शृणुध्वमसुराः सर्वे वाक्यं मम महाबलाः ॥ ६० ॥
वंशक्षयकरा देवाः सर्वेषामेव दानवाः। अस्माकं जातिधर्मेण विरूढं वैरमक्षयम् ॥६१॥
वयं तपश्चरिष्यामः सुराणां निग्रहाय तु। स्वबाहुबलमाश्रित्य सर्वे एवन संशयः ॥६२

पुलस्त्य उवाच।

तच्छ्रुत्वा संमतं कृत्वा पारियात्रं ययौगिरिम्। निराहारःपञ्चतपा.पत्रभुग्वारिभोजनः
शतं शतं समानां तु तपांस्येतान्यथाकरोत्। एवं तु कर्शिते देहे तपो राशित्वमागते ॥
ब्रह्माऽऽगत्याह दैत्येन्द्रं वरं वरय सुव्रत। स वव्रे सर्वभूतेभ्यो न मे मृत्युर्भवेदिति ॥
तमुवाच ततो ब्रह्मा देहिनां मरणं ध्रुवम्। यतस्ततोऽपि वरय मृत्युं यस्मान्न शङ्कसे ॥
ततः सञ्चिन्त्य दैत्येन्द्रः शिशोर्वै सप्तवासरात्। वव्रे महासुरो मृत्युं मोहितोह्यवलेपतः
जगामोमित्युदाहृत्य ब्रह्मा दैत्यो निजं गृहम्।

अथाह मन्त्रिणस्तूर्णं बलं मे सम्प्रयुज्यताम् ॥ ६८ ॥

यदि वो मत्प्रियं कार्यं निग्राह्याः सुरसत्तमाः । निगृहीतेषु मेप्रीतिर्जायतेचातुलाऽसुराः

तारकस्य वचः श्रुत्वा ग्रसनो नाम दानवः ॥

सेनानीर्दैत्यराजस्य सज्जं चक्रे बलं च तत् ॥ ७० ॥

आहत्य भेरीं गम्भीरां दैत्यानाहूय सत्वरः। दशकोटीश्वरा दैत्या दैत्यानांचण्डविक्रमाः

तेषामग्रेसरो जम्भः कुजम्भोऽनन्तरोऽसुरः । महिषः कुञ्जरो मेघः कालनेमिर्निमिस्तथा

मन्थनो जम्भकः शुम्भो दैत्येन्द्रा दशनायकाः ।

अन्ये च शतशस्तत्र पृथिवीतुलनक्षमाः ॥ ७३ ॥

गरुडानां सहस्रेण चक्राष्टकविभूषितः । स कूबरपरीवारश्चतुर्योजनविस्तृतः ॥ ७४ ॥

स्यन्दनस्तारकस्यासीद्व्याघ्रसिंहखरार्वभिः ।

युक्ता रथास्तु ग्रसनजम्भकौजम्भकुम्भिनाम् ॥ ७५ ॥

मेघस्य द्वीपिभिर्युक्तःकूष्माण्डैः कालनेमिनः । पर्वताभश्चतुर्दंष्ट्रो निमेश्चैव महागजः ॥

शतहस्ततुरङ्गस्थो मन्थनो नामदैत्यराट् । जम्भकस्तू ष्ट्रमारूढो गिरीन्द्राभं महाबलः ॥

शुम्भो मेषं समारूढोऽन्येऽप्येवं चित्रवाहनाः ।

प्रचण्डाश्चित्रवर्माणःकुण्डलोष्णीषभूषिताः ॥ ७८ ॥

तद्बलंदैत्यसिंहस्यभीमरूपंव्यजायत । प्रमत्तमत्तमातङ्गतुरङ्गरथसङ्कुलम् ॥ ७६ ॥

प्रतस्थेऽमरयुद्धाय बहुपत्तिपताकिकम् । एतस्मिन्नन्तरे वायुर्देवदूतोऽसुरालये ॥ ८० ॥

दृष्ट्वा तद्दानवबलं जगामेन्द्रस्यशंसितुम् । स गत्वा तु सभां दिव्यां महेन्द्रस्यमहात्मनः

शशंसमध्ये देवानां तत्कार्यसमुपस्थितम् । तच्छ्रुत्वा देवराजस्तु निमीलितविलोचनः

बृहस्पतिमुवाचेदं वाक्यं काले महाभुजः ।

इन्द्र उवाच ।

सम्प्राप्नोति विमर्दोऽयं देवानां दानवैः सह ॥ ८३ ॥

कार्यंकिमत्र तद्ब्रूहि नीत्युपायोपबृंहितम् । एतच्छ्रुत्वा तु वचनं महेन्द्रस्य गिरांपतिः

इत्युवाच महाभागो बृहस्पतिरुदारधीः ।

बृहस्पतिरुवाच ।

सामपूर्वा श्रुता नीतिश्चतुरङ्गा पताकिनी ॥ ८५ ॥

जिगीषतां सुरश्रेष्ठ स्थितिरेषा सनातनी । सामभेदस्तथादानं दण्डश्चाङ्गचतुष्टयम् ॥

न सान्त्वगोचरेलुब्धा नभेद्यास्त्वेकधर्मिणः । न दानमत्र संसिद्ध्यैप्रसह्यैवापहारिणाम्

एकोऽभ्युपायो दण्डोऽत्र भवतां यदि रोचते । एवमुक्तः सहस्राक्ष एवमेतदुवाचह ॥

कर्त्तव्यतां च सञ्चिन्त्य प्रोवाचामरसंसदि ।

इन्द्र उवाच ।

अवधाने न मे वाचं शृणुध्वं नाकवासिनः ॥ ८६ ॥

भवन्तो यज्ञभोक्तारो दिव्यात्मानो हि सान्वयाः ।

स्वे महिम्नि स्थिता नित्यं जगतः पालने रताः ॥ ९० ॥

क्रियतांसमरोद्योगः सैन्यं संयोज्यतांमम । आह्रियन्तांच शस्त्राणि पूज्यन्तांशस्त्रदेवताः

वाहनानि विमानानि योजयध्वं ममेश्वराः ।

यमंसेनापतिं कृत्वा शीघ्रमेव दिवौकसः ॥ ९२ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्तास्समनह्यन्त देवानां ये प्रधानतः । वाजिनामयुतेनाजौ हेमघण्टापरिष्कृतम् ॥

नानाश्चर्यगुणोपेतं सम्प्राप्तं देवदानवैः । रथं मातलिना युक्तं देवराजस्य दुर्जयम् ॥

यमो महिषमास्थाय सेनाग्रे समवर्त्तत । चण्डकिङ्करवृन्देन सर्वतः परिवारितः ॥९५॥

कल्पकालोद्गतज्वालापूरितोऽम्बरगोचरः । हुताशनस्त्वजारूढः शक्तिहस्तो व्यवस्थितः

पवनोऽङ्कुशहस्तश्च विस्तारितमहाजवः । भुजगेन्द्रसमारूढो जलेशो भगवान्स्वयम् ॥

नरयुक्ते रथे देवो राक्षसेशो वियच्चरः । तीक्ष्णखड्गयुतो भीमः समरे समवस्थितः ॥

महासिंहरथे देवो धनाध्यक्षो गदायुधः । चन्द्रादित्यावश्विनौ च चतुरङ्गबलान्विताः

सेनान्योदेवराजस्य दुर्जया भुवनत्रये । कोटयस्तास्त्रयस्त्रिंशद्देवदेवनिकायिनाम् ॥

हिमाचलाभे सितचारुचामरे सुवर्णपद्मामलसुन्दरस्रजि ।

कृताभिरामोज्ज्वलकुङ्कुमाङ्कुरे कपोललीलालिकदम्बसङ्कुले ॥ १०१ ॥

स्थितस्तदैरावणनामकुञ्जरे महामणिश्चित्रविभूषणाम्बरः ।
विशालवज्रः सुवितानभूषितः प्रकीर्णकेयूरभुजङ्गमण्डलः ॥ १०२ ॥
सहस्रदृग्वन्दितपादपल्लवस्त्रिविष्टपेऽशोभत पाकशासनः ।
तुरङ्गमातङ्गकुलोघसङ्कुला सीतातपत्रध्वजशालिनी च ॥ १०३ ॥
बभूव सा दुर्जयपत्तिसन्तता विभाति नानायुधयोधदुस्तरा १०४ ॥
ततोऽश्विनौ च मरुतः ससाध्याः सपुरन्दराः । यक्षराक्षसगन्धर्वा दिव्यनानास्त्रपाणयः
जघ्नुर्दैत्येश्वरं सर्वे सम्भूय तु महाबलाः । न चैवास्त्राण्यसज्जन्त गात्रे वज्राचलोपमे
अथोरथादवप्लुत्य तारकोदानवाधिपः । जघान कोटिशो देवान्करपार्ष्णिभिरेवच ॥
हतशेषाणि सैन्यानि देवानां विप्रदुद्रुवुः । दिशो भूतानि सन्त्यज्य रणोपकरणानिच ॥
दृष्ट्वा तान्विद्रुतान्देवांस्तारको वाक्यमब्रवीत् ॥ १०६ ॥

तारक उवाच ।

मावधिष्टसुरान्दैत्या वज्राङ्गाय च मन्दिरे । शीघ्रमानीयदर्श्यन्ताम्बद्धान्पश्यत्वयं सुरान्

पुलस्त्य उवाच ।

लोकपालांस्ततो दैत्यो बद्ध्वा चेन्द्रमुखान्रणे । सरुद्रान्सुदृढैः पाशैः पशुपालः पशूनिव
स भूयो रथमास्थाय जगाम स्वकमालयम् ।
सिद्धगन्धर्वसङ्घुष्टं विपुलाचलमस्तकम् ॥ ११२ ॥
स्तूयमानो दितिसुतैरप्सरोभिः सुसेवितः ॥ ११३ ॥

इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे देवासुरसङ्ग्रामे तारकजयो नाम
चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

———

पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

सर्वदेवकृतं ब्रह्मस्तोत्रम् ।

पुलस्त्य उवाच ।

प्रादुरासीत्प्रतीहारः शुभ्रचीनांशुकाम्बरः । स जानुभ्यां महीं गत्वापिहितास्यश्चपाणिना
उवाचानाविलं वाक्यमल्पाक्षरपरिष्कृतम् । दैत्येन्द्रमर्कवृन्दाभं बिभ्रतं भास्करं वपुः॥
कालनेमिः सुरान्बद्ध्वा प्रादाय द्वारितिष्ठति । स विज्ञापयति स्थेयं क्वन्दिनिचयैःप्रभो
तन्निशम्याब्रवीद्दैत्यः प्रतीहारस्य भाषितम् । यथेष्टं स्थीयतामेभिर्गृहं मे भुवनत्रयम् ॥
केवलं वासवं त्वेकं मुण्डयित्वा विमुच्यताम् । सितवस्त्रपरिच्छन्नंशुनःपादेनचिह्नितम्
एवं कृते ततो देवा दूयमानेन चेतसा । जग्मुर्जगद्गुरुं द्रष्टुं शरणं कमलोद्भवम् ॥६॥
विनिर्विण्णास्तमासाद्य शिरोभिर्धरणींगताः। तुष्टुवुःसुष्ठुवर्णाढ्यैर्वचोभिःकमलम् नास

देवा ऊचुः ।

नमस्त्वोङ्काराङ्कुरादिप्रसूत्यै विश्वस्यानानन्तभेदस्य पूर्वकम् ।
सम्भूतस्यानन्तरं सत्त्वमूले संहारेच्छोस्ते नमः सत्त्वमूर्त्ते ॥ ८ ॥
व्यक्तीनां त्वामादिभूतं महिम्ना चास्मादस्मानभिधानाद्विचिन्त्य ।
द्यावापृथिव्योरूर्ध्वलोकांस्तथाधश्चाण्डादस्मात्त्वं विभागं चकर्थ ॥ ९ ॥
व्यक्तं मेरुर्यज्जरायुस्तवाभूद्देवं विज्ञस्त्वत्प्रणीतोऽवकाशः ।
व्यक्तं देवा जज्ञिरे यस्य देहाद्देहस्यान्तश्चारिणो देहभाजः ॥ १० ॥
द्यौस्ते मूर्द्धा लोचने चन्द्रसूर्यौ व्यालाः केशाः श्रोत्ररन्ध्रे दिशस्ते ।
गात्रं यज्ञः सिन्धवः सन्धयो वै पादौ भूमिस्तूदरं ते समुद्राः ॥ ११ ॥
मायाकारः कारणं त्वं प्रसिद्धो वेदैः शान्तो ज्योतिरर्कस्त्वमुक्तः ।
वेदार्थेन त्वां विवृण्वन्ति बुद्ध्या हृत्पद्मान्तः संनिविष्टं पुराणम् ॥ १२ ॥
त्वां चात्मानं लब्धयोगा गृणन्ति साङ्ख्यैर्यास्ताःसप्तसूक्ष्माः प्रणीताः ।

तासां हेतुर्याष्टमी चापि गीता तास्वन्तस्थो जीवभूतस्त्वमेव ॥ १३ ॥
दृष्ट्वा मूर्ति स्थूलसूक्ष्मां चकार ये वै भावाःकारणे केचिदुक्ताः ।
सम्भूतास्ते त्वत्त एवादिसर्गे भूयस्तास्त्वां वासनान्तेऽभ्युपेयुः ॥ १४ ॥
त्वत्सङ्केतस्त्वन्तरायो निगूढः कालोऽमेयोध्वस्तसङ्ख्या विकल्पः ।
भावाभावाव्यक्तिसंहारहेतुः सोऽनन्तस्त्वं तस्य कर्ता निधानम् ॥ १५ ॥
स्थूलस्सर्वोऽनर्थभूतस्ततोऽन्यस्सोऽर्थस्सूक्ष्मो यो हि तेभ्योऽपि गीतः ।
स्थूलाभावाश्चावृता यैश्च तेषां तेभ्यः स्थूलस्त्वं पुराणे प्रणीतः ॥ १६ ॥
भूतं भूतं भूतिमद्भूतभावं भावे भावं भावितं त्वं युनक्षि ।
युक्तं युक्तं व्यक्तिभावान्निरस्य स्थाने स्थाने व्यक्तिवृत्तिं करोषि ॥ १७ ॥
इत्थं देवो व्यक्तिभाजां शरण्यस्त्राता गोप्ताभावितोऽनन्तमूर्तिः ॥ १८ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

विरेमुरमराः स्तुत्वा ब्रह्माणमितिकारणम् । तस्थुर्मनोभिरिष्टार्थसम्प्राप्तिप्रार्थनास्ततः ॥
एवं स्तुतो विरिञ्चिस्तु प्रसादं परमं गतः । अमरान्वरदोऽप्याह वामहस्तेन निर्दिशन्

ब्रह्मोवाच ।

नारी वा भर्तृकाऽकस्माद्ध्वस्तसन्त्यक्तभूषणा । न राजसे कुतश्शक्र म्लानवक्त्रसरोरुहः
हुताशनवियुक्तोऽपि धूमेन न विराजसे । तृणौघेन प्रतिच्छन्नो दग्धदावश्चिरोषितः ॥
यमामयशरीरेणक्लिष्टोनाद्य विराजसे । दण्डेनालम्बनेनेव कृष्टो येन पदे पदे ॥ २३ ॥
रजनीचरनाथ त्वं किंभीत इवभाषसे । राक्षसेन्द्र कृतादाने त्वमरातिक्षतो यथा ॥
तनुस्ते वरुणो च्छुष्का परीतस्येव वह्निना । विमुक्तरुधिरं चाथ पदं त्वं प्रविलोकय
वायो भवान्विचेतस्कः खड्गाग्रैरिवनिष्कृतः ।
किं त्वं नतोऽसि धनद सन्त्यज्येव कुबेरताम् ॥ २६ ॥
रुद्रास्त्रिशूलिनः सन्तोऽविन्दध्वं बहुशूरताम् । भवतांकेनचाक्षिप्तातीव्रतानस्तदुच्यताम्

पुलस्त्य उवाच ।

एवमुक्ताः सुरास्तेन ब्रह्मणा ब्रह्मवर्तिना । वाचां प्रधानभूतत्वात्ते मारुतमचोदयन् ॥

अथ शक्रमुखैर्देवः पवनः प्रतिचोदितः । प्राहदेवं चतुर्वक्त्रं भवान्वेत्ति चराचरम् ॥

वायुरुवाच ।

पुरुहूतमुखाः सबला निमिषा विजिताः प्रसभं किल दैत्यशतैः ।
क्रतवो विहिता भवता स्थितये जगतां च महाद्भुतचित्रगुणाः ॥ ३० ॥
अपि यज्ञकृतः श्रुतकामफला विहिता ऋषयस्तत एव पुरः ।
अपि नाकमभूत्किल यज्ञभुजां भवतो विनियोगवशात्सततम् ॥ ३१ ॥
अपहृत्य विमानगणं सकृतो दनुजेन महाकरभूमिसमः ।
कृतवानसि सर्वगुणातिशयं यमशेषमहीधरराजतया ॥ ३२ ॥
मखभूषितमंशुमतामवधिं सुरधामगिरिं गगनेऽपि सदा ।
अधिवासविहारविधानुचितो दनुजेन परिष्कृतशृङ्गतटः ॥ ३३ ॥
प्रविलम्बितरत्नगुहानिवहो बहुदैत्यसमाश्रयतां गमितः ।
असुरस्य च तस्य भयेन गतं सविषादशरीरनिमित्ततया ॥ ३४ ॥
उपभोग्यतयाऽधिकृतं सुचिरं विमलद्युतिपूरितदिग्वदनम् ।
भवतैव विनिर्मितमादियुगे सुरहेति समूहवरं कुलिशम् ॥ ३५ ॥
दितिजस्य शरीरमवाप्य गतं शतधा मतिभेदमिवाल्पविदः ॥ ३६ ॥
बाणश्च युधिविद्धाङ्गा द्वारि द्वास्थैर्निदर्शिताः ।
लब्धप्रवेशाः कृच्छ्रेण वयं तस्यामरद्विषः ॥ ३७ ॥

सभायाममरा देव प्रकृष्योपनिवेशिताः । वेत्रहस्तैरजल्पन्तस्तथोपहसिता परैः ॥ ३८ ॥

महार्थाः सिद्धसर्वार्था भवन्तः स्वल्पभाषिणः ।
शास्त्रयुक्तमथ ब्रूतमाऽमरा बहुभाषिणः ॥ ३९ ॥

सभेयं दैत्यसिंहस्य न शक्रस्य विशृङ्खला । वदद्भिरिति दैत्यस्य प्रेष्यैर्विहसिता बहु ॥
ऋतवो मूर्तिमन्तश्चाप्यहर्निशमुपासते । कृतापराधं सत्रासं न त्यजन्ति कथञ्चन ॥
तन्त्रीलयनयोपेतं सिद्धगन्धर्वकिन्नरैः । सुरागमुपधाविद्धं गीयते तस्य वेश्मसु ॥४२॥
कृताकृतोपकरणैर्मित्रादिगुरुलाघवः । शरणागतसन्त्यागी त्यक्तसत्यप्रतिश्रयः ॥ ४३ ॥

इति निश्शेषमथवानिश्शेषं केन शक्यते । तस्या विनयमाख्यातुं स्रष्टा तत्र परायणम्
पुलस्त्य उवाच ।
इत्युक्त्वाऽपरमद्वायुः शनैर्देवविचेष्टितम् । सुरानुवाच भगवांस्ततः स्मितमुखाम्बुजः ॥
ब्रह्मोवाच ।
अवध्यस्तारको दैत्यः सर्वैरपि सुरासुरैः । यस्य वध्यस्सनाद्यापि जातस्त्रिभुवने पुमान्
मया स वरदानेन छन्दयित्वा निवारितः । तपसः साम्प्रतं राजा त्रैलोक्यदहनात्मकः ॥
स तु वव्रे वधं दैत्यश्शिशुतः सप्तवासरात् । सतु सप्तदिनो बालः शङ्कराद्योभविष्यति
तारकस्य निहन्ता स भाष्कराभो भविष्यति ।
साम्प्रतं चाप्य पत्नीकः शङ्करो भगवान्प्रभुः ॥ ४६ ॥
हिमाचलस्य दुहितायाच देवी भविष्यति । तस्याः सकाशाद्यः सूनुररण्याःपावकोयथा
जनिष्यति स तं प्राप्य तारको न भविष्यति। मयाऽभ्युपायःकथितोयथैष हिभविष्यति
शेषं चाप्यस्य विभवं विभजध्वमनन्तरम् । स्तोककालं प्रतीक्षध्वं निर्विशङ्केन चेतसा
पुलस्त्य उवाच ।
इत्युक्तास्त्रिदशास्तेन साक्षात्कमलयोनिना ।
जग्मुस्ते प्रणिपत्येशं यथायोगं दिवौकसः ॥ ५३ ॥
ततो यातेषु देवेषु ब्रह्मा लोकपितामहः । निशां सस्मार भगवांस्तां देवीं पूर्वसम्भवाम्
ततो भगवती रात्रिरुपतस्थे पितामहम् । तां विविक्ते समालोक्य ब्रह्मोवाच विभावरीम्
ब्रह्मोवाच ।
विभावरिमहत्कार्यं देवानां समुपस्थितम् । तत्कर्तव्यं त्वयादेवि शृणु कार्यस्यनिश्चयम्
तारको नाम दैत्येन्द्रः सुरशत्रुरनिर्जितः । तस्याभवाय भगवाञ्जनयिष्यति चेश्वरः ॥
सुतं स भविता तस्य तारकस्यान्तकः किल ।
शङ्करस्याभवत्पत्नी सती दक्षसुता तु या ॥ ५८ ॥
सा पितुः कुपितादेवी कस्मिंश्चित्कारणान्तरे । भवित्रीहिमशैलस्य दुहितालोकभाविनी
विरहेण हरस्तस्या मत्वा शून्यं जगत्त्रयम् । स तस्यहिमशैलस्य कन्दरे सिद्धसेविते ॥

प्रतीक्षमाणस्तज्जन्म किञ्चित्कालं निवत्स्यति । तयोः सुतप्ततपसोर्भवितायोमहान्सुतः

भविष्यति स दैत्यस्य तारकस्य विनाशकः ।
जातमात्रा च सा देवी स्वल्पसंज्ञेव भामिनी ॥ ६२ ॥

विरहोत्कण्ठिता गाढं हरसङ्गमलालसा । तयोःसुतप्ततपसोः संयोगः स्याच्छुभावहः ॥

ततस्ताभ्यां तु जनितः स्वलगो वाक्कलहोभवेत् ।
ततस्तु संशयो भूयस्तारकस्य च दृश्यते ॥ ६४ ॥
तयोः संयुक्तयोस्तस्मात्सुरतासक्तिकारणे ।
विघ्नं त्वया विधातव्यं यथा ताभ्यां तथा शृणु ॥ ६५ ॥

गर्भस्थमेव तन्मातुः स्वेन रूपेण संज्ञया । ततो विहस्य शर्वस्तां विषण्णो नर्मपूर्वकम्

भर्त्सयिष्यति तां देवीं ततः सा कुपिता सती ।
प्रयास्यति तपश्चर्तुं ततः सा तपसा युता ॥ ६७ ॥

जनयिष्यति तं शर्वादमितद्युतिमण्डलम् । सम्भविष्यति हन्ताऽसौ सुरारीणामसंशयम्
त्वयापि दानवा देवि हन्तव्या लोकदुर्जयाः । यावत्सुरेश्वरी देहसङ्क्रान्तगुणसञ्चया ॥
तत्सङ्गमेन तावत्त्वं दैत्यान्हन्तुं न शक्यसे । एवं कृते तपस्तप्त्वा त्वयासर्वं करिष्यति
समाप्तनियमा देवि यदा चोमा भविष्यति । तदा स्वमेव सारूप्यं शैलजा प्रतिपत्स्यते ॥
तदा त्वयापि सहिता भवानी सा भविष्यति । रूपांशेनतुसंयुक्ताउमायास्त्वंभविष्यसि
एकाऽनंशेति लोकस्त्वां वरदे पूजयिष्यति। भेदैर्बहुविधाकारैः सर्वगांकामसाधिनीम्
ओंकारवक्त्रा गायत्री त्वमिति ब्रह्मवादिभिः। आक्रान्तैरूर्जिताकाराराजभिश्चमहाभुजैः
त्वंभूरिति विशां माता शूद्रैश्शैवेति पूजिता । क्षान्तिर्मुनीनामक्षोभ्यादयानियमिनामपि
त्वं महोपायसन्देहो नीतिर्नयविसर्पिणाम् । परिच्छित्तिस्त्वमर्थानांत्वमीहाप्राणिहृच्छया

त्वं मुक्तिस्सर्वभूतानां त्वं गतिःसर्वदेहिनाम् ।
रतिस्त्वं रतचित्तानां प्रीतिस्त्वं हृदि देहिनाम् ॥ ७७ ॥
त्वं कीर्तिः सत्यभूतानां त्वं शान्तिर्दुष्टकर्मणाम् ।
त्वं भ्रान्तिः सर्वभूतानां त्वं गतिः क्रतुयाजिनाम् ॥ ७८ ॥

जलधीनां महावेला त्वं च लीला विलासिनी । प्रियकण्ठग्रहानन्ददायिनी त्वंविभावरी
इत्यनेकविधैर्देवीरूपैर्लोकेत्वमर्चिता । ये त्वां स्तोष्यन्ति वरदे पूजयिष्यन्ति चापि ये ॥
ते सर्वकामानाप्स्यन्ति नियता नात्र संशयः ॥ ८१ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्ता तु निशादेवी तथेत्युक्त्वा कृताञ्जलिः । जगाम त्वरिता तूर्णं गृहं हिमगिरेर्महत्
तत्रासीनां महाहर्म्यैरत्नभित्तिसमाश्रयाम् । ददर्श मेनामापाण्डुच्छविवक्त्रसरोरुहाम् ॥
किञ्चित्क्षामां मुखोदग्रस्तनभारावनामिताम् ॥ ८३ ॥
महौषधिगणाबद्धमन्त्रराजनिषेविताम् ।
उदूढकनकोन्नद्धजीवरक्षामनोरमाम् ॥ ८४ ॥

मणिदीपगणज्योतिर्महालोकप्रकाशिते । प्रकीर्णबहुसिद्धार्थमनोज्ञपरिचारके ॥ ८५ ॥
शुद्धचीनांशुकच्छत्रभूशय्यास्तरणोज्ज्वले । धूपामोदमनोरम्ये सज्जसर्वोपयोगिके ॥
ततः क्रमेण दिवसे गते दूरं विभावरी । विजृम्भितसुखोदर्के ततो मेना महागृहे ॥८७॥
प्रसुप्तप्रायपुरुषे निद्राभूतोपचारके । स्फुटालोके शशभृतिभ्रान्तरात्रिविहङ्गमे ॥ ८८ ॥
रजनीचरसञ्चारभूतैरावृतचत्वरे । गाढकण्ठग्रहालग्ने शुभगोष्ठजने ततः ॥ ८९ ॥
किंचिदाकुलतां प्राप्ते मेनानेत्राम्बुजद्वये । आविवेश मुखे रात्रिः सुखमद्भुतसङ्गमा ॥९०॥
उन्मादाय जगन्मातुः क्रमेण जठरान्तरे । आविवेशातुलं जन्म मन्यमाना कदा तु वै ॥
अरञ्जयद्गृहं देव्या गुहारण्ये विभावरी । ततो जगत्यानिर्वाणहेतुर्हिमगिरिप्रिया॥९२॥
ब्राह्मे मुहूर्ते सुभगे प्रासूयत गुहारणिम् । तस्यां तु जायमानायां जन्तवः स्थाणुजङ्गमाः
अभवन्सुखिनः सर्वे सर्वलोकनिवासिनः । नारकाणामपि तदा सुखं स्वर्गसमं महत् ॥
अभवत्क्रूरसत्त्वानां चेतः शान्तं च देहिनाम् ।
ज्योतिषामपि तेजस्तु सुतरां चाभवत्तदा ॥ ९५ ॥
वनाश्रिताश्चौषधयः स्वादवन्ति फलानि च ।
गन्धवन्ति च माल्यानि विमलं च नभोऽभवत् ॥ ९६ ॥

मारुतश्च सुखस्पर्शो दिशश्च सुमनोहराः । ऋतूद्भूतफला योगपरिपाकगुणोज्ज्वला ॥

अभवत्पृथिवी देवी शालिमालाकुलापि च ।
तपांसि दीर्घचीर्णानि मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ ६८ ॥
तस्मिन्गतानि साफल्यं काले निर्मलचेतसाम् ।
विस्मृतानि च शास्त्राणि प्रादुर्भावं प्रपेदिरे ॥ ६६ ॥
प्रभावस्तीर्थमुख्यानां तदा पुण्यतमस्त्वभूत् । अन्तरिक्षेऽमराश्चासन्विमानेषु सहस्रशः
समहेन्द्रजलाधीशवायुवह्निपुरोगमाः । पुष्पवृष्टिं प्रमुमुचुस्तस्मिंस्तुहिनभूधरे ॥ १०१ ॥
जगुर्गन्धर्वमुख्याश्च ननृतुश्चाप्सरोगणाः । मेरुप्रभृतयश्चापि मूर्तिमन्तो महाचलाः ॥
तस्मिन्महोत्सवे प्राप्ते दिव्याः प्रसृतपाणयः ।
सागरास्सरितश्चैव समाजग्मुश्च सर्वशः ॥ १०३ ॥
हिमशैलोऽभवल्लोके तदा सर्वैश्चराचरैः । संसेव्यश्चाधिगम्यश्च साश्रयश्चाचलोत्तमः ॥
अनुभूयोत्सवं देवा जग्मुः स्वान्निलयांस्तदा । देवनागेन्द्रगन्धर्वशैलललीलावतीगणैः ॥
हिमशैलसुतादेवी त्वहम्पूर्विकयाततः । क्रमेणबुद्धिमानीता विद्याज्ञानलसैर्बुधैः ॥१०६॥
क्रमेण रूपसौभाग्यप्रबोधैर्भुवनत्रये । सम्पूर्णलक्षणा जाता हिमालयसुता तथा ॥१०७॥
एतस्मिन्नन्तरे शक्रो नारदं देवसंमतम् । देवर्षिमथ सस्मार कार्यसाधनतत्परः ॥१०८॥
स तु शक्रस्य विज्ञाय काङ्क्षितं भगवांस्तदा ।
आजगाम मुदा युक्तो महेन्द्रस्य निवेशनम् ॥ १०६ ॥
तं तु दृष्ट्वा सहस्राक्षः समुत्थाय महासनात् ।
यथार्हेण तु पाद्येन पूजयामास वासवः ॥ ११० ॥
शक्रप्रणिहितां पूजां प्रतिगृह्य यथाविधि । नारदः कुशलं देवमपृच्छत्पाकशासनम् ॥
पृष्टे च कुशले शक्रः प्रोवाच वचनं प्रभुः ॥ ११२ ॥

इन्द्र उवाच ।

कुशलस्याङ्कुरस्तावत्संवृत्तो भुवनत्रये । तत्फलोद्भवसम्पत्तौ त्वं मया चिदितो मुने ॥
वेत्स्येव तत्समस्तं त्वं तथापि परिचोदितः । निर्वृतिं परमां याति निवेद्यार्थं सुहृज्जने
तद्यथा शैलजा देवी योगं यायात्पिनाकिना । शीघ्रंतथोद्यमः सर्वैरस्मत्पक्षैर्विधीयताम्

पुलस्त्य उवाच ।

अवगम्यार्थमखिलं तत आमन्त्र्य नारदः । शीघ्रं जगाम भगवान्हिमशैलनिकेतनम् ॥
तत्र द्वारे स विप्रेन्द्रश्चित्रवेत्रलताकुले । वन्दितो हिमशैलेन निर्गतेन पुरो मुनिः॥११७॥
स ह प्रविश्य भवनं भुवो भूषणतां गतम् । निवेदिते स्वयं हैमे हिमशैलेन विस्तृते ॥

महासने मुनिवरो निषसादातुलद्युतिः ।
यथार्हमर्घ्यं पाद्यं च शैलस्तस्मै न्यवेदयत् ॥ ११९ ॥

मुनिः स प्रतिजग्राह तमर्घ्यं विधिवत्तदा । गृहीतार्घ्यम्मुनिश्रेष्ठमपृच्छच्छ्लक्ष्णया गिरा
कुशलं तपसः शैलः शनैः फुल्लाननाम्बुजः । मुनिरप्यद्रिराजानमपृच्छत्कुशलं तदा ॥

नारद उवाच ।

अहो धर्मोचितस्तेऽस्ति संनिवेशो महागिरे । पृथुत्वं मनसा तुल्यं कन्दराणां तवानघ
गुरुत्वं ते गुणौघानां स्थावरादतिरिच्यते । प्रसन्नता च तोयस्य मुनिभ्यश्चाधिका तव

न लक्षयामः शैलेन्द्र कुत्राविनयता स्थिता ।
नानातपोभिर्मुनिभिर्ज्वलनार्कसमप्रभैः ॥ १२४ ॥

पावनैः पावितो नित्यं त्वं कन्दरसमाश्रयैः । अवमत्यविमानानि स्वर्गवासविरागिणः
पितुर्गृहइवासीना देवगन्धर्वकिन्नराः । अहो धन्योऽसि शैलेन्द्र यस्य ते कन्दरं हरः

अध्यास्ते लोकनाथो हि रामध्यानपरायणः ॥ १२७ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्तवति देवर्षौ नारदे सादरं गिरा । हिमशैलस्य महिषी मेना मुनिदिदृक्षया॥१२८॥
अनुयाता दुहित्रा तु स्वल्पालिपरिचारिका । लज्जा प्रणयनम्राङ्गी प्रविवेश निकेतनम्
यत्रस्थितो मुनिवरः शैलेन सहितो वशी । तं दृष्ट्वा तेजसो राशिं मुनिं शैलप्रिया तदा ॥
ववन्दे गूढवदना पाणिपद्मकृताञ्जलिः । तां विलोक्य महाभागां देवर्षिरमितद्युतिः ॥

आशीर्भिरमृतोद्गाररूपाभिस्तां व्यवर्द्धयत् ।
ततो विस्मितचित्ता तु हिमवद्गिरिपुत्रिका ॥ १३२ ॥

ऐक्षिष्ट नारदंदेवी मुनिमद्भुतरूपिणम् । एहि वत्सेति साप्युक्ता ऋषिणा स्निग्धयागिरा

कण्ठे गृहीत्वा पितरमङ्के सा तु समाविशत् ।
उवाच माता तां देवीमभिवन्दय पुत्रिके ॥ १३४ ॥
भगवन्तं तपोधन्यं पतिमाप्स्यसिसम्मतम् । इत्युक्ता तु ततो मात्रा वस्त्रेणपिहितानना
किंचित्कम्पितमूर्द्धा तु वाक्यं नोवाच किंचन ।
ततः पुनरुवाचेदं वाक्यं माता सुतां तदा ॥ १३६ ॥
वत्से वन्दय देवर्षिं ततो दास्यामि ते शुभम् । रत्नक्रीडनकं रम्यं स्थापितं यच्चिरं मया
इत्युक्ता सा ततो वेगादुद्दुत्य चरणौ तदा । ववन्दे मूर्ध्नि सन्धाय पाणिपङ्कजकुड्मलम्
कृते तु वन्दने तस्या मातासखिमुखेन तु । चोदयामासशनकैस्तस्याःसौभाग्यदर्शिनाम्
शरीरलक्षणानां च परिज्ञानाय कौतुकात् ।
स्त्रीस्वभावात्स्वदुहितुश्चिन्तां हृदि समुद्वहन् ॥ १४० ॥
ज्ञात्वा तदिङ्गितं शैलो महिष्या हृदयेन तु । अनुदीर्णाकृतिर्मेने रम्यमेतदुपस्थितम् ॥
चोदितः शैलमहिषीसख्या मुनिवरस्ततः । स्मिताननो महाभागो वाक्यं प्रोवाचनारदः

नारद उवाच ।

न जातोऽस्याः पतिर्भद्रे लक्षणैश्च विवर्जितः । उत्तानहस्ता सततं चरणैर्व्यभिचारिभिः
सुच्छायास्या भविष्येयं किमन्यद्बहुभाष्यते ।
श्रुत्वैतत्सम्भ्रमाविष्टो ध्वस्तधैर्यो हिमाचलः ॥ १४४ ॥
नारदं प्रत्युवाचाथ साश्रुकण्ठो महागिरिः ॥ १४५ ॥

हिमवानुवाच ।

संसारस्यातिदोषस्यदुर्विज्ञेयागतिर्यतः । सृष्ट्या चावश्यभाविन्या केनाप्यतिशयात्मना
कर्त्रा प्रणीता मर्यादा स्थिता संसारिणामियम् ।
यो जायते हि यद्बीजाज्जनितुः सोऽर्थसाधकः ॥ १४७ ॥
जनिताचापि जातस्य न कश्चिदितिचस्फुटम् । स्वकर्मणैव जायन्ते विविधाभूतजातयः
अण्डजो ह्यण्डजाज्जातःपुनर्जायेत मानवः । मानुषोऽपि सरीसृप्यांमानुषत्वे न जायते
तत्रापि जातौ श्रेष्ठायां धर्मस्योत्कर्षणे न तु । अपुत्रजन्मनः शेषा प्राणिनःसमवस्थिताः

मनुजास्तत्र सुतरां नयेन सहधर्मिणः। क्रमेणाश्रमसम्प्राप्तिर्ब्रह्मचारिव्रतादनु ॥ १५१ ॥
तस्यकर्तुर्नियोगेन संसारो येन वर्धितः। संसारस्य हि नोत्पत्तिः सर्वेस्युर्यदिनिर्गृहाः
कर्त्रा तु शास्त्रेषु सदा सुतलाभः प्रशंसितः। प्राणिनां मोहनार्थाय नरकत्राणकारणात्

स्त्रिया विरहिता सृष्टिर्जन्तूनां नोपपद्यते।

स्त्रीजातिस्तु प्रकृत्यैव कृपणा दैन्यभागिनी ॥ १५४ ॥

शास्त्रालोचनसामर्थ्याद्दूषितं तासु कर्तृणा। तस्यां नोपरिभावज्ञा भवेदिति च वेधसा
शास्त्रेषूक्तमसन्दिग्धं बहुवारं महाफलम्। दशपुत्रसमा कन्या याऽपिस्या च्छीलवर्जिता
वाक्यमेतत्फलभ्रष्टं पुंसां ग्लानिकरंफलम्। कन्या हि कृपणासोच्यापितुर्दुःखविवर्द्धिनी
यापि स्यात्पूर्णसर्वार्था पतिपुत्रसमन्विता। किं पुनर्दुर्भगा हीना पतिपुत्रधनादिभिः

त्वं चोक्तवान्सुता या मे शरीरे दोषसङ्ग्रहम्।

अहो मुह्यामि शुष्यामि ग्लामि सीदामि नारद ॥ १५६ ॥

अयुक्तमपि वक्तव्यमप्राप्यमपि साम्प्रतम्। अनुग्रहाय मेछिन्धि दुःखं कन्याश्रयं मुने ॥
परिच्छिन्नेऽप्यसन्दिग्धेमनःपरिभवाश्रयात्। तृष्णामुष्णातिनिष्णातंफललोभाश्रयात्पुनः
स्त्रीणां हि परमं जन्म कुलानामुभयात्मनाम्। इहामुत्रसुखायोक्तं सत्पतिप्राप्तिसंज्ञितम्
दुर्लभःत्वात्सतःस्त्रीणांविगुणोऽपिपतिःकिल। न प्राप्यतेविनापुण्यैःपतिर्नार्याःकदाचन

यतो निस्साधनो धर्मः परिणामोत्थिता रतिः।

धनं जीवितपर्यन्तं पत्यौ नार्याः प्रतिष्ठितम् ॥ १६४ ॥

निर्द्धनो दुर्मुखो मूर्खः सर्वलक्षणवर्जितः। दैवतं परमं नार्याः पतिरुक्तः सदैव हि ॥१६५
त्वया देवर्षिणा प्रोक्तं न जातोऽस्याःपतिःकिल। एतद्दौर्भाग्यमतुलमसङ्ख्यंचदुरुद्वहम्
चराचरे भूतसर्गे चिन्ता सा व्यापिनी मुने। स न जात इति श्रुत्वा ममेदंव्याकुलं मनः
मनुष्यदेवजातीनां शुभाशुभनिवेदकम्। लक्षणं हस्तपादाभ्यां लक्षणं विहितं किल ॥
सेयमुत्तानहस्तेति त्वयोक्ता मुनिपुङ्गव। उत्तानहस्तता प्रोक्ता याचतामवनित्यका ॥

शुभोदयानां धन्यानां न कदाचित्प्रयच्छताम्।

सुच्छाययास्याश्चरणौ त्वयोक्तौ व्यभिचारिणौ ॥ १७० ॥

तत्रापि श्रेयसी ह्याशा मुने न प्रतिभाति नः । शरीरलक्षणाश्चान्ये पृथक्फलनिवेदिनः ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्त्वाविरतेशैले महादुःखविचारिणि । स्मितपूर्वमुवाचेदं नारदो देवपूजितः ।१७२

नारद उवाच ।

हर्षस्थाने च महति त्वया दुःखं निरुच्यते । अपरिच्छिन्नवाक्यार्थो मोहंयासिमहागिरे
इमां शृणु गिरं मत्तो रहस्यपरिनिष्ठिताम् । समाहितो महाशैलमयोक्तस्य विचारणाम्
न जातोऽस्याः पतिर्देव्या यन्मयोक्तंहिमाचल । सनजातोमहादेवो भूतभव्यभवोद्भवः ॥
शरण्यः शास्वतः शास्ता शङ्करः परमे श्वरः । ब्रह्मरुद्रेन्द्रमुनयो गर्भजन्मजरार्दिताः ॥१७६
तस्य ते परमेशस्य सर्वे क्रीडनका गिरे । ब्रह्माण्डतस्तदिच्छातः सम्भूतो भुवनप्रभुः ॥
विष्णुर्युगे युगे जातो नानाजातिर्महातनुः । मन्यसे मायया जातं विष्णुं चापि युगेयुगे
आत्मनो नविनाशोऽस्तिस्थावरान्तेऽपिभूधर । संसारे जायमानस्यम्रियमाणस्यदेहिनः

नश्यते देह एवात्र नात्मनो नाश उच्यते ।
ब्रह्मादिस्थावरान्तोऽयं संसारो यः प्रकीर्तितः ॥ १८० ॥

स जन्ममृत्युदुःखार्तो ह्यनिशं परिवर्तते । महादेवोऽचलः स्थाणुर्नजातो जनकोऽजरः
भविष्यति पतिः सोऽस्या जगन्नाथोनिरामयः । यदुक्तं च मया देवी लक्षणैर्वर्जितातव
शृणु तस्यापि वाक्यस्य सम्यक्त्वेन विचारणम् । लक्षणं देवि कोह्यङ्कःशरीरावयवाश्रयः
स चायुर्धनसौभाग्यपरिणामप्रकाशकः । अनन्तस्याप्रमेयस्य सौभाग्यस्य तु भूधर ॥

नैवाङ्को लक्षणाकारः शरीरे संविधीयते ।
अतोऽस्या लक्षणं गात्रे शैल नास्ति महामते ॥ १८५ ॥

यच्चाहमुक्तवानस्या उत्तानकरता सदा । उत्तानो वरदः पाणिरेष देव्याः सदैव तु ॥
सुरासुरमुनिव्रातवरदात्री भविष्यति । यच्चप्रोक्तं मया पादौ सुच्छायौ व्यभिचारिणौ

मत्तः शृणुत्वमस्यापि व्याख्योक्तिं शैलसत्तमः ।
चरणौ पद्मसंकाशौ स्वच्छावस्यानखोज्ज्वलौ ॥ १८८ ॥
सुरासुराणां नमतां किरीटमणिकान्तिभिः ।

विचित्रवर्णैः पश्यद्भिः सुच्छायौ प्रतिबिम्बितौ ॥ १८६ ॥
एषा भार्या जगद्भर्तुर्वृषाङ्कस्य महीधर। जननी सर्वलोकस्य सम्भूता भूतभाविनी ॥
शिवेयं पावनायैव त्वत्क्षेत्रे पावनद्युतिः। तद्यथा शीघ्रमेवैषा योगं ययात्पिनाकिनः ॥
तथाविधेयं विधिवत्त्वया शैलेन्द्रसत्तम। अस्त्यत्र हि महत्कार्यं देवानां हिमभूधर ॥

पुलस्त्य उवाच।

एवं श्रुत्वा तु शैलेन्द्रो नारदात्सर्वमेव हि। स्वमात्मानं पुनर्जातं मेने मेनापतिस्तदा ॥
उवाच चापि संहृष्टो नारदं तु हिमाचलः ॥ १६४ ॥

हिमाचल उवाच।

दुस्तरान्नरकाद्घोरादुद्धृतोऽस्मित्वया विभो। पातालद्दमुद्धृत्यसप्तलोकाधिपः कृतः
हिमाचलोऽस्मि विख्यातस्त्वया मुनिवराधुना।
हिमाचलाच्छतगुणां प्रापितोऽस्मि समुन्नतिम् ॥ १६६ ॥
आनन्दादेव चाहारि हृदयं मे महामुने। नाध्यवस्यति कृत्यानां विभागप्रविचारणम् ॥
भवद्विधानां नियतममोघं दर्शनं मुने। भवद्भिरेव हि प्रोक्तं निवासायात्मरूपिणाम् ॥
मुनीनां देवतानां च स्वयं कर्तास्मि कल्मषम्।
तथापि वस्तुन्येकस्मिन्नाज्ञा मे सम्प्रदीयताम् ॥ १६६ ॥

पुलस्त्य उवाच।

इत्युक्तवति शैलेन्द्रे स तदा हर्षनिर्भरः। उवाच नारदो वाक्यं कृतं सर्वमिति प्रभो ॥
सुरकार्ये स एवार्थस्तवापि सुमहत्तरः। इत्युक्त्वा नारदः शीघ्रं जगाम त्रिदिवं ततः ॥
स गत्वा देवभवनं महेन्द्रं सन्ददर्श ह। ततोऽनुरूपे स मुनिरुपविष्टो महासने ॥२०२॥
पृष्टः शक्रेण प्रोवाच गिरिजासंश्रयां कथाम् ॥ २०३ ॥

नारद उवाच।

यन्महामुक्तं कर्तव्यं तन्मया कृतमेव हि। किं तु पञ्चशरस्येषु गोचरत्वमपेक्षितम्॥२०४॥

पुलस्त्य उवाच।

इत्युक्तो देवराजस्तु मुनिना कार्यदर्शिना।

चूताङ्कुरास्त्रं सस्मार भगवान्पाकशासनः ॥ २०५ ॥

संस्मृतस्तु तदा क्षिप्रं सहस्राक्षेण धीमता । उपतस्थे रतियुतः स विलासो झषध्वजः

प्रादुर्भूतं च तं दृष्ट्वा शक्रः प्रोवाच मन्मथम् ॥ २०७ ॥

शक्र उवाच ।

उपदेशेन बहुना किं त्वां प्रति रतिप्रिय । मनोभवोऽसितेन त्वं वेत्सि भूतमनोगतम्

तद्यथानुक्रमं तु त्वं कुरु नाकसदां प्रियम् । शङ्करं योजय क्षिप्रं गिरिपुत्र्या मनोभव

संयुक्तो मधुनानेन गच्छ रत्या सहायवान् ।

इत्युक्तो मदनस्तेन शक्रेण स्वार्थसिद्धये ॥ २१० ॥

प्रोवाच पञ्चबाणोऽथ वाक्यं भीतः शतक्रतुम् ॥ २११ ॥

काम उवाच ।

अनया देवसामग्र्या मुनिदानवभीमया । दुःसाध्यश्शङ्करो देवः किं न वेत्सि जगत्प्रभो

तस्य देवस्य वेत्थ त्वं कारणं पदमव्ययम् । प्रायःप्रसादे कोपेऽपि सर्वं हि महतांमहत्

सर्वोपभोगसारं हि सौन्दर्यं स्वर्गसम्भवम् ।

विशेषं काङ्क्षतां शक्र सामान्याद्भ्रंशनंफलात् ॥ २१४ ॥

श्रुत्वैतद्वचनं शक्रस्तमुवाचामरैर्युतः ॥ २१५ ॥

शक्र उवाच ।

वयं प्रमाणं ते तत्र रतिकान्त न संशयः । सन्दंशेन विना शक्तिरयस्कादस्य नेष्यते ॥

कस्यचिच्च क्वचिद्दृष्टं सामर्थ्यं न तु सर्वतः ॥ २१७ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्तः प्रययौ कामः सखायं मधुमाश्रितः । रतियुक्तो जगामाशु प्रस्थं तुहिनभूभृतः ॥

स तु प्राप्याकरोच्चिन्तां कार्यस्योपायपूर्विकाम् ।

महात्मानो हि निष्कम्पा मनस्तेषां सुदुर्जयम् ॥ २१९ ॥

तदादावेव संक्षोभ्य नेत्थं तस्य जयोभवेत् ।

संसिद्धिः प्रायशश्चैव पूर्वं संशोध्य मानसम् ॥ २२० ॥

कथमेवं विधैर्भावैर्द्वेषानुगमनं विना । क्रोधः क्रूरतरात्सङ्गाद्भीषणेर्षा महासखी ॥ २२१
चापल्यान्मूर्ध्निविध्वस्तधैर्याधारमहाबला । तामस्यविनियोक्ष्यामि मनसोविकृतिंपुरः
ोपधाय धैर्यद्वाराणि सन्तोषमपकृष्य च । अवगन्तुं हि मां तत्र न कश्चिदिह पण्डितः॥
विकल्पमात्रसंस्थानं विरूपाक्षमनोभवम् । प्रविश्याथ क्रियारम्भोगम्भीरावर्तदुस्तरः ॥

भविष्यामि हरस्याहं तपःस्थस्य स्थिरात्मनः ।
इन्द्रियग्राममावृत्यरम्यसाधनसंविधिः ॥ २२५ ॥

चिन्तयित्वेति मदनो भूतभर्तुस्तदाश्रमम् । जगाम जगतीसारं सरलद्रुमवेदिकम्॥२२६॥
शान्तसत्त्वसमाकीर्णमचलं प्राणिसङ्कुलम् । नानापुष्पलताजालं सानुसंस्थगणेश्वरम्
निर्व्यग्रवृषभोद्घुष्टं नीलशाद्वल सानुकम् । तत्रापश्यत्त्रिनेत्रस्य रम्यं कञ्चिद्द्वितीयकम्
वीरकं वीरलोकेशमीशानसदृशद्युतिम् । पक्कं कुङ्कुमकिञ्जल्कपुञ्जपिङ्गजटासटम् ॥२२९॥
वेत्रपाणिं तमव्यग्रमुग्रं चाभद्रभूषणम् । ततो निमीलितोन्निद्रपद्मपत्रान्तलोचनम्॥२३०॥
प्रेक्षमाणमृजुस्थानं नासावंशाग्रगोचरम् । अतीव रम्यसिंहेन्द्रचर्मलम्बोत्तरीयकम् ॥
श्रवणा हि फणोन्मुक्तनिश्वासानलपिङ्गलम् । प्रेङ्खत्कपोलपर्यन्तचुम्बिलम्बिजटाचयम्
कृतवासुकिपर्यन्तनाभिमूलनिवेशितम् । ब्रह्माञ्जलिस्थनासाग्रनिबद्धोरगभूषणम् ॥२३३॥
ददर्शशङ्करं कामः क्रमप्राप्तान्तिकः शनैः । ततो भ्रमरझङ्कारमालम्ब्य द्रुमसानुगम् ॥

प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण भवस्य मदनो मनः ।
शङ्करस्तमथाकर्ण्य मधुरं मदनाश्रयम् ॥ २३५ ॥

सस्मार दक्षतनयां दयितां रन्तुमानसः । ततः शिवस्य शनकैस्तिरोधायातिनिर्मला ॥

समाधिभावना तस्थौ लक्ष्यप्रत्यक्षरूपिणी ।
ततस्तन्मयतां यातः प्रत्यूहपिहिताशयः ॥ २३७ ॥
विवेश विबुधाधीशो विकृतिं मदनात्मिकाम् ।
ईषत्क्रोधसमाविष्टो धैर्यमालम्ब्य धूर्जटिः ॥ २३८ ॥

निरस्य मदनं स्थित्वा योगमायासमावृतः । स तया माययाविष्टो जज्वाल मदनस्ततः ॥
इच्छाशरीरो दुर्ज्ञेयो दोषावासोमहाशयः । हृदयान्निर्गतः सोऽथ वासनाव्यसनात्मकः

बहिस्थलं समासाद्य उपतस्थे झषध्वजः । अनुयातो हि साह्येन मित्रेण मधुनासह ॥
सहकारतरुर्दृष्ट्वा मन्दमारुतनिर्धुतम् । स्तबकं मदनो रम्यं हरवक्षसि सत्वरम् ।
मुमोच मोहनं नाम मार्गणं मकरध्वजः ॥ २४२ ॥
स तस्य हृदये शुद्धे नाम शाली महाशरः । पपात परुषः प्रांशुः पुष्पबाणो विमोहनः ॥
ततः करणसन्दोहे विद्धे तु हृदये भवः । बभूव भूतपोऽकस्य धैर्योऽपि मदनोन्मुखः ॥
ततः प्रभुत्वाद्भावानामावेशं स्वमपश्यत । वाक्यं बहु बभाषेऽथ प्रत्यूहप्रसवात्मकम् ॥
ततः कोपानलोद्भूतघोरहुङ्कारभीषणे । बभूव वदने नेत्रं तृतीयमनलाकुलम् ॥ २४६ ॥
रुद्रस्य रौद्रवपुषो जगत्संहारभैरवम् । तदन्तिकस्थे मदने व्यस्फारयत धूर्जटिः ॥
तन्नेत्र विस्फुलिङ्गे न क्रोशतां नाकवासिनाम् ।
गमितोभस्मतां तूर्णं कन्दर्पः कामदर्पकः ॥ २४८ ॥
स तु तं भस्मसात्कृत्वा हरनेत्रोद्भवोऽनलः ।
व्यजृम्भत जगद्दग्धुं ज्ञात्वा हुङ्कारघस्मरम् ॥ २४९ ॥
ततो भवो जगद्धेतोर्व्यभजज्जातवेदसम् । सहकारे मधौ चन्द्रे सुमनस्स्वपरेष्वपि ॥
भृङ्गेषु कोकिलास्ये च विभागेन स्मरानलम् ।
स बाह्याभ्यन्तरे विद्धो हरोऽथ स्मरमार्गणैः ॥ २५१ ॥
भागेष्वेतेषु संविष्टं वीक्षन्तीव हुताशनम् । विभक्तं लोकसंक्षोभकरं दुर्वारजृम्भितम् ॥
तत्प्राप्तिस्नेहसम्पूर्णकामेन हृदये किल । ज्वलन्नहर्निशं भीमो दुःखस्य वशगोऽभवत् ॥
विलोक्य हरहुङ्कारज्वालाभस्मीकृतं स्मरम् । विललाप रतिः क्रूरं बन्धुना मधुना सह ॥
ततोविलप्य बहुशो मधुना परिसान्त्विता । जगाम शरणं देवमिन्दुमौलिं त्रिलोचनम्
भृङ्गानुयातां सङ्गृह्य पुष्पितां सहकारजाम् । लतां पत्रद्रुमच्छन्नांजातांपरभृतांसखीम् ॥
निबध्य तु जटाजूटं कुटिलैरलकैरतिः । उद्धृत्य गात्रं शुभ्रेण हृद्येन स्मरभस्मना ॥
जानुभ्यामवनिं गत्वा प्रोवाचेन्दुविभूषणम् ॥ २५८ ॥

रतिरुवाच ।

नमः शिवायास्तु मनोमयाय जगन्मयायाद्भुतवर्त्मने नमः ।

नमः शिवायास्तु सुरार्चिताय तुभ्यं सदा भक्तकृपापराय ॥ २५९ ॥
नमो भवायास्तु भवोद्भवाय नमोऽस्तु ते ध्वस्तमनोभवाय ।
नमोऽस्तु मायामदनाश्रयाय नमोनिसर्गामलभूषिताय ॥ २६० ॥
नमोऽस्त्वमेयाय गुणायनाय नमोऽतु सिद्धाय पुरातनाय।
नमः शरण्याय नमोगुणाय नमोऽस्तु ते भीमगणानुगाय ॥ २६१ ॥
नमोस्तु नानाभुवनर्द्धिकर्त्रे नमोस्तु भक्ताभिमतप्रदाय ।
नमोऽथकर्मप्रसुवे नमः सदा अनन्तरूपाय सदैव तुभ्यम् ॥ २६२ ॥
असह्यकोपाय सदैव तुभ्यं शशाङ्कचिह्नाय नमोस्तु तुभ्यम् ।
असीमलीलापरमस्तुताय वृषेन्द्रयानाय पुरान्तकाय ॥ २६३ ॥
नमः प्रसिद्धाय महौषधाय नमोस्तु नानाविधरूपकाय ।
नमोऽस्तु कालायनमः कलाय नमोऽस्तु ते कालकलातिगाय ॥ २६४ ॥
चराचराचार्यविचार्यवर्यमाचार्यमुत्प्रेक्षितभूतसर्गम् ।
त्वामिन्दुमौलिं शरणं प्रपन्ना प्रियाप्तयेऽहं सहसा महेशम् ॥ २६५ ॥
प्रयच्छ मे कामयशः समृद्धिं पतिं विना तं भगवन्नजीवे ।
प्रियः प्रियायाः पुरुषेशनित्यस्ततोऽपरः कोभुवनेष्विहास्ति ॥ २६६ ॥
प्रभुः प्रभावी प्रभवः प्रियाणां प्रवीणपर्यायपरापरन्तपः ।
त्वमेव नाथो भुवनस्यगोप्ता दयालुरुन्मूलितभक्तभीतिः ॥ २६७ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्थं स्तुतः शङ्कर इन्दुमौलिर्वृषाकपिर्मन्मथकान्तया तु ।
तुतोष दोषाकरखण्डधारी उवाच चैनां मधुरं निरीक्ष्य ॥ २६८ ॥

शङ्कर उवाच ।

भविष्यति च कामोऽयं काले कान्तेऽचिरादथ ।
अनङ्ग इति लोकेषु स विख्यातिं गमिष्यति ॥ २६९ ॥

इत्युक्ता शिरसावन्द्य गिरीशं कामवल्लभा । जगामोपवनं चान्यद्रतिस्तुहिनपर्वते ॥

रुरोद चापि बहुशो दीना रम्ये स्थले स्थले। मरणव्यवसायापि निवृत्ता च शिवाज्ञया
अथ नारदवाक्येन चोदितो हिमभूधरः। कृताभरणसंस्करां कृतकौतुकमङ्गलाम् ॥
स्वर्गपुष्पकृतापीडां शुभ्रचीनांशुकाम्बराम्। सखीभ्यां संयुतां शैलोगृहीत्वास्वसुतांततः
जगाम सुभगे योगे तदासम्पूर्णमानसः। स काननान्युपाक्रम्य वनान्युपवनानि च ॥
ददर्श रुदतीं नारीमप्रतर्क्यां महौजसम्। न रूपेणेदृशी लोके रम्येषु वनसानुषु ॥२७५॥
कौतुकेन परामृष्टस्तांदृष्ट्वा रुदतीं गिरिः। उपसृप्य ततस्तस्या निकटं सोऽप्यपृच्छत ॥

हिमवानुवाच।

कासि कस्यासि कल्याणि किमर्थं चापिरोदिषि। नैतदल्पमहं मन्येकारणंलोकसुन्दरि
सा तस्य वचनं श्रुत्वा उवाच मधुना सह। रुदन्ती शोकवचनं श्वसन्ती दैन्यवर्धनम् ॥

रतिरुवाच।

कामस्य दयितां भार्यां रतिं मां विद्धि सुव्रत।
गिरावस्मिंश्च भगवान्गिरिशस्तपसिस्थितः ॥ २७६ ॥

तेन प्रत्यूहरुष्टेनक्रोधाद्विस्फार्यलोचनम्। विमुच्याग्निशिखाज्वालांकामोभस्मावशेषितः
अहं तु शरणं याता तं देवं भयविह्वला। स्तुतवत्यथ सन्तुष्टस्ततो मां गिरिशोऽब्रवीत्
तुष्टोऽहं कामदयितेकामोत्पत्तिर्भविष्यति। त्वत्स्तुतिंचाप्यधीयानोनरोभक्त्यामदाश्रयः
लप्स्यते काङ्क्षितं कामं निवर्तमरणादपि। प्रतीक्षकाणा तद्वाक्यमाशावेशवशादहम्
शरीरं परिरक्षिष्ये किञ्चित्कालं महाद्युते। इत्युक्तस्तु तया रत्या शैलः सम्भ्रमभीषणः
पाणावादाय तनयां गन्तुमैच्छत्स्वकंपुरम्। भाविनोऽवश्यभावित्वाद्भवित्रीभूतभाविनी
लज्जमाना सखिमुखैरुवाच पितरं गिरिम् ॥२८६॥

शैलपुत्र्युवाच।

दुर्भगेन शरीरेण किममानेन कारणम्। कथं च तां दशां प्राप्तशङ्करो मे पतिर्भवेत् ॥
तपोभिः प्राप्यतेऽभीष्टं नासाध्यन्तु तपस्यतः। दुर्भगत्वं वृथालोके विहिते सति साधने
तपसि भ्रष्टसन्देहा ततःस्वार्थजिगीषया। एवन्तपः करिष्येऽहं यामीत्युक्तवतीं सुताम् ॥
उवाच वाचा शैलेन्द्रो गद्गदस्वरवर्णया ॥ २६० ॥

हिमवानुवाच ।

उमेति चापलं पुत्रि नक्षमंतावकं वपुः । सोढुं क्लेशानुरूपस्य तपसःसौम्यदर्शने ॥२६१

भाविन्यपि च कार्याणि पदार्थानि सदैव तु ।
भाविनोऽर्था भवन्त्येव बहवोऽनिच्छतोऽपि हि ॥ २६२ ॥
तस्मान्न तपसा तेऽस्ति बाले किञ्चित्प्रयोजनम् ।
भवनं चैव गच्छामि चिन्तयिष्यामि तत्र वै ॥ २६३ ॥

इत्युक्ता तु यदानैव गृहमन्वेति शैलजा । ततोऽद्रिश्चिन्तयाविष्टः स्वसुतां प्रशशंस च ॥
ततोऽन्तरिक्षे दिव्या च वागभूद्भुवनत्रये । उमेति चापलं पुत्रि त्वयोक्ता तनया यतः ॥
उमेति नाम तेनास्या भुवनेषु भविष्यति। सिद्धिर्मूर्तिमतीत्वेषासाधयिष्यति चिन्तितम्
इति श्रुत्वा तु वचनं स तदाकाशमण्डले । अनुज्ञाय सुतां शैलो जगामाशु स्वमन्दिरम्

पुलस्त्य उवाच ।

शैलजापि ययौ शैलमगम्यमपि दैवतैः । सखीभ्यामनुयाता तु नियता नगराजजा ॥
शृङ्गं हिमवतः पुण्यं नानाधातुविभूषितम् । दिव्यपुष्पलताकीर्णं भ्रमरोद्घुष्टपादपम् ॥
दिव्यप्रस्रवणोपेतं मनोरथशतोज्ज्वलम् । नानापक्षिसमायुक्तं चक्रवाकोपशोभितम् ॥
जलजस्थलजैःपुण्यैः प्रफुल्लैरुपशोभितम् । चित्रकन्दरसङ्कुल्यं दिव्यगेहसमन्वितम् ॥
विहङ्गसङ्घसङ्घुष्टं कल्पपादपसङ्कटम् । तत्रापश्यन्महाशाखं शाखिनं हरितच्छदम् ॥
सर्वर्तुकुसुमोपेतं चक्रवाकोपशोभितम् । नानापुष्पशताकीर्णं नानाविधफलान्वितम् ॥
त्यक्तं सूर्यस्य रुचिभिर्भिन्नसंहतपल्लवम् । तत्राम्बराणि सन्त्यज्य भूषणानि च शैलजा
संवीतावल्कलैर्दिव्यैर्दर्भनिर्मितमेखला । त्रिःस्नाता पाटलाहारा बभूव शरदांशतम् ॥
शतमेकेनजीर्णेन पर्णेनावर्त्तयत्तदा । निराहारा शतं साऽभूत्समानां तपसोनिधिः ॥
ततउद्वेजिताः सर्वे प्राणिनस्तपसोऽग्निना । ततः सस्मार भगवान्मुनीन्सप्त शतक्रतुः ॥
ते समागम्य मुदिताःसर्वे समुदितास्तथा । पूजितास्ते महेन्द्रेण पप्रच्छुस्तत्प्रयोजनम्

ऋषय ऊचुः ।

किमर्थं हि सुरश्रेष्ठ संस्मृतास्तु वयं त्वया । शक्रः प्रोवाच शृण्वन्तु भगवन्तःप्रयोजनम्

शक्र उवाच ।

हिमाचले तपो घोरं तप्यते भूधरात्मजा ।

तस्याभिमतयोगेन भवन्तः कर्तुमर्हथ । तपः समापनं देव्या जगदर्थे त्वरान्विताः ।

तथेत्युक्त्वा ततः शैलं सिद्धसङ्घातसेवितम् ॥ ३११ ॥

ऊचुरागम्य मुनयस्तामथो मधुराक्षरम् । पुत्रिकस्ते व्यवसितः कामः कमललोचने ॥

तानुवाच ततो देवी सादरं गौरवान्मुनीन् । ३१३ ॥

देव्युवाच ।

तपस्यन्तो महाभागाः प्रोह्य मौनंभवादृशाम् । वन्दनायनियुक्ताधीर्याचयत्यविकल्पितम्

सुप्रसन्नमुखा यूयं गृहीत्वासनमादितः । उपविष्टाः श्रमं मुक्त्वा ततः प्रक्ष्यथ मामनु

इत्युक्तास्ते ततश्चक्रुस्तत्रासनपरिग्रहम् । साचतान्विधिवत्पूर्वं पूजयित्वा विधानतः ॥

उवाचादित्यसङ्काशान्मुनीन्सप्तऋषीञ्छनैः । त्यक्त्वाव्रतात्मकंमौनंनत्वाचविधिवन्मुनीन्

भगवन्तोऽपि मौनान्ते तस्याः सप्तर्षयोऽप्यथ ।

गौरवाधारतां प्राप्तां पप्रच्छुस्तां पुनस्तथा ॥ ३१८ ॥

सापि गौरवगर्भेण मनसा चारुहासिनी । मुनीन्सर्वांस्तथालोक्य प्रोवाचप्रोह्यवाग्यमम्

भगवन्तो विजानीथ प्राणिनां मनसेप्सितम् । शरीरादिभिरत्यर्थं कदर्थ्यन्ते हि देहिनः

केचित्तु निपुणास्तत्र घटन्तेविविधोद्यमैः । उपायैर्दुर्लभान्भावान्प्राप्नुवन्ति ह्यतन्द्रिताः

अपरे तु परिच्छिद्य नानाकारानुपक्रमान् । देहान्तरार्थं सारम्भमाश्रयन्ति हि तद्व्रतम् ।

ममत्वाकाशसम्भूतकुसुमस्रग्विभूषितम् । विन्ध्यश्रृङ्गं स्प्रष्टुकामो हस्तः प्रसरते मुहुः

अहं किल भवं देवं पतिं प्राप्तुं समुद्यता । प्रकृत्यैव दुराराध्यं तपस्यन्तं च सम्प्रति ॥

सुरासुरैरनिर्णीतं परमार्थक्रियाश्रयम् ।

साम्प्रतं चापि निर्दग्धो मदनो वीतरागिणा ॥ ३२५ ॥

कथमाराधयेदीशं मादृशी तादृशं शिवम् ॥ ३२६ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्ता मुनयस्ते तु स्थिरतां मनसस्ततः । ज्ञातुमस्या वचःप्रोचुः प्रक्रमात्प्रकृतार्थकम्

मुनय ऊचुः ।

द्विविधं तु सुखं तावत्पुत्रिलोकेविभाव्यते । शरीरस्यास्य संयोगश्चेतसश्चापिनिर्वृतिः

प्रकृत्या तु स दिग्वासा भीमो भस्मास्थिभूषणः ।

कपाली भिक्षुको नग्नो विरूपाक्षोऽस्थिरक्रियः ॥ ३२६ ॥

प्रमत्तोन्मत्तकाकारोबीभत्सोकृतसङ्ग्रहः । पत्या न तेन चास्त्यर्थोमूर्तानर्थेनकाङ्क्षितः

यदि स्वस्य शरीरस्य सुखमिच्छसि शाश्वतम् ।

तत्कथं ते महादेवाद्भूतभाजो जुगुप्सितात् ॥ ३३१ ॥

स्रवन्नरवसासास्थिकपालकृतभूषणात् । श्वसदुग्रभुजङ्गेन्द्रकृतभूषणभूषितात् ॥ ३३२ ॥

श्मशानवासिनो रौद्रप्रमथानुगतादपि । सुरेन्द्रमुकुटव्रातनिघृष्टचरणोऽरिहा ॥ ३३३ ॥

हरिरस्तिजगद्धाता श्रीकान्तोऽनन्तमूर्तिमान् । जप्यो यज्ञभुजामस्ति तथेन्द्रःपाकशासनः

देवतानां निधिश्चास्तिज्वलनस्सर्वकामधुक् । वायुरस्तिजगद्धातायः प्राणस्सर्वदेहिनाम्

तथा वैश्रवणो राजा सर्वार्थमहिमाप्रभुः । एभ्य एकतमं कस्मान्न त्वं सम्प्राप्तुमिच्छसि

उतान्यस्मादिह प्राप्यं सुखं ते मनसेहितम् । एवमेतत्तथा पुत्रि प्रभावो लोकसम्पदाम्

अस्मिन्देहे परे वापि कल्याणप्राप्तये तव । पितुरेवास्ति ते सर्वंसुरेभ्यो यन्निवेदितम् ।

वरस्य प्राप्तयेक्लेशस्सचाप्यत्राफलस्तरुः । प्रायेण प्रार्थितो ह्यर्थस्समर्थो ह्यतिदुर्लभः ॥

स्वस्थानविनियोगित्वात्पुत्रि तत्रापि लभ्यते ॥ ३४० ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्तवत्सु कुपिता मुनिवर्येषु शैलजा । उवाच क्रोधरक्ताक्षी विस्फुरद्दशनच्छदा ॥

देव्युवाच ।

असद्ग्रहस्य का नीतिर्व्यसनस्य क्व यन्त्रणा । विपरीतार्थबोद्धारः सत्पथे केन योजिताः

एवं मांवित्थदुष्प्रज्ञामस्थानासद्ग्रहप्रियाम् । न मां प्रति विचारोऽस्तियदहङ्कारमानिनी

प्रजापतिसमाः सर्वे भवन्तः सर्वदर्शिनः । न नूनं वित्थ तं देवं शाश्वतं जगतः प्रभुम् ॥

अजमीशानमव्यक्तममेयमहिमोदयम् । आस्तांतत्कर्म सद्भावं सम्बोधं तावदावृतम् ३४५

विदुस्तं न हरिब्रह्ममुखा अपि सुरेश्वराः । यत्तस्य विभवं स्वोत्थं भुवनेषु विजृम्भितम्

प्रकटं सर्वभूतानां तदप्यथनवित्थकिम् । कस्यैतद्गगनं मूर्तिः कस्याग्निः कस्य मारुतः

कस्य भूः कस्य वरुणः कश्चन्द्रार्कविलोचनः ।

कस्यार्चयन्ति लोकेषु लिङ्गं भक्त्या सुरासुराः ॥ ३४८ ॥

यच्च ब्रह्मेश्वरा देवा विष्णिवन्द्राद्या महर्षयः । प्रभावं प्रभवंवापि तेषामपिनवित्थ किम्

अदितेः कश्यपाज्जाता देवा नारायणादयः । मरीचेः कश्यपः पुत्रो ह्यदितिर्दक्षपुत्रिका

मरीचिश्चापि दक्षश्च पुत्रौ तौ ब्रह्मणः किल । ब्रह्मा हिरण्मयादण्डादेवसिद्धविभूतिकः

कस्य प्रादुरभूद्ध्यानात्प्राकृतः प्राकृतांशकः । अथ नारायणेनैव स्वकीयेच्छासमाश्रयात्

तत्प्रेरितः प्रयात्येष जन्म नारायणात्मकम् । सापि कर्मण एवोक्ता प्रेरणाविवशात्मनाम्

यथोन्मादादिदुष्टस्य मतिरेव हि सा भवेत् । इष्टानेव पदार्थान्वैविपरीतान्हि मन्यते ॥

लोकस्य व्यवहारेषु दृष्टेषु हसते सदा । धर्माधर्मफलप्राप्तौ विष्णुमेव निबोधत ॥३५५॥

विद्ध्वमित्थं मुनयोऽसकृच्च मे गिरं गिरीशश्रुतिभूमिसन्निधौ ।

उत्कृष्टकेदार इवावनीतले सुबीजमुष्टिं सुफलाय कर्षकाः ॥ ३५६ ॥

ते तां श्रुत्वा हि तां रम्यां प्रक्रमात्प्रक्रमक्रियाम् ।

वाचं वाचांपतिप्रख्याः प्रोचुश्च स्मितसुन्दराः ॥ ३५७ ॥

मुनय उचुः ।

जाते लोकविधाने तु सत्यं तत्कार्यमुत्तमम् । प्रायः प्रालेयशैलस्यशङ्कातत्कालरूपिणः

सत्यमुत्कण्ठिताः सर्वे ये ये कार्यार्थमुद्यताः । तेषांत्वरन्तेचेतांसिकिन्तुनाममहात्मनाम्

लोकयात्रानुगन्तव्या विशेषेणविवक्षितैः । यतस्तद्धर्ममेधन्ते तत्प्रामाण्यं परे धृताः ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्त्वा मुनयो जग्मुस्त्वरितातुहिनाचलम् । तत्र ते पूजितास्तेन हिमशैलेन सादरम्

ऊचुर्मुनिवराः प्रीताः स्वल्पकं तु त्वरान्विता ॥ ३६२ ॥

मुनय उचुः ।

देवो दुहितरं साक्षात्पिनाकी तव मार्गते । तच्छीघ्रं पावयात्मानमाहुत्येवानलेहुतम् ॥

कार्यं हि तच्च देवानां सुचिरं परिवर्तते । जगदुद्धारणायैष विधातव्यः समुद्यमः ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्तस्तु तदा शैलो हर्षावेशवशान्मुनीन् । असमर्थोऽभवद्वक्तुमुत्तरं प्रार्थयन्निव ॥

ततो मेना मुनीन्वन्द्य प्रोवाच स्नेहविक्लवा । दुहितुस्तान्मुनींश्चैववचनं स्वयमर्थवत् ॥

मेनोवाच ।

यदर्थं दुहितुर्जन्म चेच्छन्त्यपि महाफलम् । तदेवोपस्थितं सर्वं प्रक्रमेणैव साम्प्रतम् ॥

कुलजन्मवयोरूपविभुत्वैस्सहितोऽपियः । वरस्तस्यापिनाहूय सुता देया ह्ययाचतः ॥

दिग्वासा जटिलः शूली दग्धकामोऽपि कामदः ।

स तु मत्सुतया घोरः कथं नाम उपास्यते ॥ ३६६ ॥

मुनय ऊचुः ।

ऐश्वर्यमवगच्छस्व शङ्करस्य सुरासुराः । आराध्यमानपादाब्जयुगलाश्च सुनिर्वृताः ॥

यस्योपयोगि यद्रूपं तेन तत्प्रार्थ्यते चिरम् । घोरं तपस्यते बाला तेन रूपेण निर्वृता ॥

यत्सा व्रतानि दिव्यानि नयिष्यति समापनम् ।

तदत्रावहिता तावदस्मास्वेव भविष्यति ॥ ३७२ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्त्वा गिरिणा सार्द्धं ययुर्यत्रास्ति शैलजा ।

जितार्कज्वलनज्वाला तपस्तेजो मयीह्युमा ॥ ३७३ ॥

प्रोक्ता सा मुनिभिः स्निग्धं मानिन्याह वचोऽर्थवत् ॥ ३७४ ॥

उमोवाच ।

नाहं क्षुद्रात्किलेच्छामि ऋते शर्वात्पिनाकिनः । स्थितंचतारतम्येन प्राणिनांपरमर्द्धिदम्

धीरतैश्वर्यकार्याणि प्रमाणमतुलं महत् । यस्मान्नकिञ्चिदपरं यच्च यस्मात्प्रवर्तते ॥

यस्यैश्वर्यमनाद्यन्तं तमहं शरणं गता ।

समः सव्यवसायश्च दौर्ग्रेण विपरीतकः ॥ ३७७ ॥

एवं निशम्यते वाचं देव्या मुनिवरास्तदा । आनन्दाश्रुपरीताक्षाःसस्वजुस्तांतपस्विनीम्

ऊचुश्च परमप्रीताः शैलजां मधुरं वचः ॥ ३७८ ॥

ऋषय ऊचुः ।

अत्यद्भुतमहो पुत्रि ज्ञानमूर्तिरिवामला । प्रसादयसि नो भावं भवभावप्रतिश्रयात् ॥

ननु विद्मो वयं तस्य देवस्यैश्वर्यमद्भुतम् । त्वन्निश्चयस्य दृढतां वेत्तुं वयमिहागताः ॥

अचिरादेव तन्वङ्गि कामस्त्वेष भविष्यति ।

आदित्यस्सप्रभो याति रत्नेभ्यः का द्युतिः पृथक् ॥ ३८२ ॥

कोऽर्थोवर्णान्स्वकांस्त्यक्त्वा तथा त्वं गिरिशं विना ।

यामोऽनेकाभ्युपायेन तमभ्यर्थयितुं वयम् ॥ ३८३ ॥

अस्माकमपि चैषोऽर्थः सुतरां हृदि वर्तते । अतस्त्वमेव सा बुद्धिर्यतो नीतिस्त्वमेव हि

अतो निःसंशयं कार्यं शङ्करोऽपि विधास्यति ॥ ३८५ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्त्वा पूजितास्सर्वे मुनयो गिरिकन्यया ।

प्रययुर्गिरिशं द्रष्टुं प्रस्थं हिमवतो महत् ॥ ३८६ ॥

गङ्गाम्भः प्लावितात्मानः पिङ्गाबद्धजटासटाः । भृङ्गानुयातपाणिस्थमन्दारकुसुमस्रजः ॥

सम्प्राप्य तु गिरेः प्रस्थं ददृशुः शङ्कराश्रमम् । प्रशान्ताशेषसत्त्वौघं पर्यस्तमितकाननम् ॥

निःशब्दक्षोभसलिलप्रयातं सर्वतो दिशम् । तत्रापश्यंस्ततो द्वारि वीरकं वेत्रपाणिनम् ॥

तमेते मुनयः पूज्या विनीताःकार्यगौरवात् । ऊचुर्मधुरभाषाभिस्ते वाचं वाग्मिनां वराः

ऋषय ऊचुः ।

द्रष्टुं वयमिहायाताः शङ्करं गुणनायकम् । त्रिलोचनं विजानीहि सुरकार्यप्रचोदिताः ॥

त्वमेव नो गतिस्तत्र यथाकालानतिक्रमः । स्यात्प्रार्थनैषा प्रायेण प्रतीहारमयी प्रभो ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्तो मुनिभिः सोऽथ गौरवात्तानुवाचह ।

वीरक उवाच ।

स वनस्यापरां सन्ध्यां कर्तुं मन्दाकिनीं गतः ॥ ३९३ ॥

क्षणेन भाविता विप्रास्ततो द्रक्ष्यथ शूलिनम् ॥ ३९४ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्ता मुनयस्तस्थुर्यत्नात्कार्यविचक्षणाः । गम्भीराम्बुधरं प्रावृट्तृषिताश्चातका यथा
तथा क्षणेन निष्पन्नसमाचारक्रियाविधिम् । वीरासनकृतोद्देशं मृगचर्मनियामितम् ॥
ततो विनीतो जानुभ्यामवलम्ब्य महीं मुदा । उवाच वीरको देवं प्रणयैकसमाश्रयम् ॥

वीरक उवाच ।

सम्प्राप्ता मुनयः सप्त द्रष्टुंत्वां दीप्ततेजसम् । विभो समादिशद्रष्टुं ततो ध्यानमिहार्हसि

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्तो धूर्जटिस्तेन वीरकेण महात्मना । भ्रूभङ्गसंज्ञया तेषां प्रवेशाज्ञां ददौ तदा ॥३९९
मूर्द्धकम्पेन तान्सप्त वीरकोऽपि महामुनीन् । आजुहाव विदूरस्थान्दर्शनाय पिनाकिनः
त्वराबद्धजटास्ते च लम्बकृष्णाजिनाम्बराः । विविशुर्वेदिकां दिव्यां गिरिशस्य विभोस्ततः
बद्धपाणिपुटाक्षिप्तनाकपुष्पोत्करास्ततः । पिनाकिपादयुगलं वन्द्य नाकनिवासिनः ॥
ततः स्निग्धेक्षिताःसन्तो मुनयःशूलपाणिना । गिरीशं तु ततो दृष्ट्वा ते समं तुष्टुवुर्मुदा

मुनय ऊचुः ।

अहो कृतार्था वयमेव साम्प्रतं सुरेश्वरैर्वन्दितपादपल्लवम् ।
विलोकयामो गुणगौरवर्द्धिभिः समादिशेः कार्यमशेषरक्षणम् ॥ ४०४ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

ततः प्रहस्य सर्वज्ञ उवाच मुनिसत्तमान् ॥ ४०५ ॥

शङ्कर उवाच ।

भवतां यद्धृदि गतं कार्यं तत्कुरुताधुना ॥ ४०६ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्ता मुनयस्तूर्णं ययुर्यत्र च शैलजा । बभाषिरे विभागज्ञा गिरिजां गिरिगह्वरे ॥

ऋषय ऊचुः ।

रम्यं प्रियमनोहारि मा रूपं तपसा दह । प्रीतस्ते शङ्करः पाणिमेष प्रतिग्रहीष्यति ॥
वयमर्थितवन्तस्ते पितरं पूर्वमागताः । पित्रा सह गृहं गच्छ वयं यामः स्वमन्दिरम् ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्ता तपसः सत्यं फलमस्तीति चिन्त्य सा ।

त्वरमाणा ययौ वेश्म पितुर्दिव्यं सुशोभितम् ॥ ४१० ॥

सा तत्र रजनीं मेने वर्षायुतसमां सती । हरदर्शनसञ्जातसमुत्कण्ठा हिमाद्रिजा ॥

ततो मुहूर्त्ते ब्राह्मे तु तस्याश्चक्रुः सुहृत्क्रियाम् ।

नानामङ्गलसन्दोहान्यथावत्क्रमपूर्वकम् ॥ ४१२ ॥

दिव्यमङ्गलसंयोगान्मन्दिरे बहुमङ्गले । उपासत गिरिं मूर्त्ता ऋतवः सर्वकामिकाः ॥
वायवः सुखदाश्चासन्संमार्जनविधौ गिरेः । हर्म्येषु श्रीः स्वयं देवी कृतनानाप्रसाधना
कान्तिः सर्वेषु भावेषु ऋद्धिश्च भरणाकुला । चिन्तामणिप्रभृतयो रत्नाश्शैलं समन्ततः
उपतस्थुर्लताश्चापि कल्पकाद्यामहाद्रुमाः । ओषध्योमूर्तिमत्यश्च दिव्यौषधिसमन्विताः
रसाश्च धातवश्चैव सर्वेशैलस्य किङ्कराः । किङ्करास्तस्य शैलस्य व्यग्राश्चाश्रमवर्तिनः
नद्यः समुद्रा निखिलाः स्थावरं जङ्गमं च यत् । ते सर्वेहिमशैलस्य महिमानमवर्द्धयन् ॥
अभवन्मुनयो नागा यथागन्धर्वकिन्नराः । शङ्करस्यापि विबुधागन्धमादनपर्वते ॥
सज्जमण्डनसम्भारास्तस्थुर्निर्मलमूर्त्तयः । शर्वस्याथ जटाजूटे चन्द्रखण्डं पितामहः ॥
बबन्ध प्रणयोदारविस्फारितविलोचनः । कमलमालां विपुलां चामुण्डा मूर्ध्निबध्नती
उवाच गिरिशं काली पुत्रं जनय शङ्कर । यो दैत्येन्द्रकुलं हत्वा मां रक्तैस्तर्पयिष्यति ॥
सौरिर्वतंसिकारत्नं कण्ठाभरणमुज्ज्वलम् । भुजङ्गाभरणं गृह्य सज्जःशम्भोःपुरोऽभवत्
शक्रोगजाजिनं तस्य वसाभ्यक्ताग्रपल्लवम् । दध्रेसरभसंस्विद्यद्विस्तीर्णमुखपङ्कजम् ॥

वायवश्चववुस्तीक्ष्णा तीक्ष्णं हिमगिरिप्रभम् ।

वृषं विभूषयामासुर्हरयानं मनोजवम् ॥ ४२५ ॥

विरेजुर्नयनान्तस्थाःशम्भोसूर्यानलेन्दवः । स्वां द्युतिं लोकनाथस्य जगतःकर्मसाक्षिणः
चिताभस्मसमाधत्त कपाले रजतप्रभम् । मनुजास्थिमयीं मालां निबबन्ध च पाणिना
प्रेताधिपः पुरे दूरे सभयः समवर्तत । नानाकारमहारत्नभूषणंधनदाहृतम् ॥ ४२८ ॥
विहायोद्दीप्तसर्पेन्द्रकटकेन स्वपाणिना । कर्णोत्तंसं चकारेशो ह्यमलं तक्षकंस्वयम् ॥

निष्पन्नाभरणंचैव प्रसाध्येशं प्रसाधनैः । तत्राप्येषां नियमतो ह्यभवन्व्यग्रमूर्तयः ॥४३०
मुमोचाभिनवान्सर्वरम्यशालिरसौषधीन् । व्यग्रा तु पृथिवी देवी सर्वभावान्मनोरमा

गृहीत्वा वरुणः साक्षाद्रत्नाढ्याभरणानि च ।
पुष्पाणि च विचित्राणि नानारत्नमयानि तु ॥ ४३२ ॥

तस्थौ साभरणो देवःसर्वज्ञःसर्वदेहिनाम् । ज्वलनश्चापि दिव्यानिहैमान्याभरणानि च
जातरूपपवित्राणि प्रयतः समुपस्थितः । वायुर्ववौ च सुरभिः सुखसंस्पर्शनोविभुम् ॥
छत्रं चन्द्रकरोद्दामं हासितं च शतक्रतुः । जग्राह मुदितः श्रीमान्बाहुभिर्वज्रभूषणः ॥
जगुर्गन्धर्वमुख्याश्च ननृतुश्चाप्सरोगणाः । वादयन्तोऽति मधुरं जगुर्गन्धर्वकिन्नराः ॥
मुहूर्ताद्रूतवस्तत्र जगुश्च ननृतुश्चवै । चपलाश्च गणास्तस्थुर्लोडयन्तो हिमाचलम् ॥
उपविष्टः क्रमाद्धाता विश्वकृद्भगनेत्रहा । चकारोद्वाहिकं कृत्यं पत्न्यासह यथोदितम् ॥
दत्तार्घ्यो गिरिराजेन सुरवृन्दैर्विनोदितः । अवसत्तां क्षपां तत्र पत्न्यासह पुरान्तकः ॥
ततो गन्धर्वगीतेन नृत्येनाप्सरसामपि । स्तुतिभिर्देवदैत्यानां विबुद्धो विबुधाधिप ॥

आमन्त्र्य हिमशैलेन्द्रं प्रभाते जाययासह ।
जगाम मन्दरगिरिं वायुवेगेन शृङ्गिणा ॥ ४४१ ॥
ततो गते भगवति नीललोहिते सहोमयारतिमनुभूतभूधरः ।
सबान्धवो भवति हि कस्यनो मनो विशृङ्खलं जगति हि कन्यका पितुः ॥

पुरोद्यानेषु रम्येषु विविक्तेषु वनेषु च । सुरक्तहृदयोदेव्याविजहार भगाक्षिहा ॥४४३ ॥
ततो बहुतिथे काले पुत्र नाम्ना गिरेःसुता । सखीभिः सहिताक्रीडां चक्रेकृत्रिमपुत्रकैः
कदाचिद्गन्धतैलेन गात्रमभ्यज्यशैलजा । चूर्णैरुद्वर्तयामास मलेनापूरितां तनुम् ॥ ४४५
तदुद्वर्त्तनकं गृह्य नरं चक्रे गजाननम् । पुरुषंक्रीडतीदेवी तच्चाप्यक्षिपदम्भसि ॥ ४४६ ॥
जाह्नव्या शिवयासख्या ततः सोभूद्बृहत्तनुः । कायेनातिविशालेन जगदापुरयत्तदा ॥
पुत्रेत्युवाच तं देवी पुत्रेत्युचेचजाह्नवी । गाङ्गेय इतिदेवैस्तु पूजितोऽभूद्गजाननः ॥४४८
विनायकाधिपत्यं च ददावस्य पितामहः । पुनः साक्रीडतीचक्रे तरुं च वरवर्णिनी ॥
मनोज्ञमङ्कुरंरूढमशोकस्य शुभानना । वर्द्धयामास तं चापि कृतसंस्कारमङ्गलम् ॥

बृहस्पतिमुखैर्विप्रैर्दिवस्पतिपुरोहितैः। ततोदेवैः समुनिभिः प्रोक्तादेवी त्विदंवचः॥

मुनिदेवाऊचुः।

अधुना दर्शितेमार्गे मर्यादांकर्तुमर्हसि। फलं किं भविता देवि कल्पितैस्तरुपुत्रकैः॥

पुलस्त्य उवाच।

इत्युक्ता हर्षपूर्णाङ्गी प्रोवाचातिशुभांगिरम्॥ ४५३॥

पार्वत्युवाच।

एकं निरुदके ग्रामे यःकूपं कारयेद् बुधः। बिन्दौ बिन्दौ च तोयस्य स वसेत्वत्सरंदिवि

दशकूपसमा वापी दशवापी समोह्रदः। दशह्रदसमा कन्या दशकन्यासमोद्रुमः॥४५५॥

एषा वै शुभमर्यादा नियतालोकभाविनी॥ ४५६॥

पुलस्त्य उवाच।

इत्युक्तास्तु ततो विप्रा बृहस्पतिपुरोगमाः। जग्मुःस्वमन्दिराण्येव भवानींवन्द्यमानरम्

गतेषुतेषुदेवोऽपि शङ्करः पर्वतात्मजाम्। पाणिनालम्ब्य पादेन स्वमावासमगच्छत॥

चित्तप्रसादजननं प्रसादाट्टालगोपुरम्। लम्बमौक्तिकदामानं मालिकाकुलवेदिकम्॥

सुनद्धकलधौतं च क्रीडागृहमनोगतम्। प्रकीर्णकुसुमामोदमत्तालिकुलकूजितम् ४६०॥

किन्नरोद्गीतसङ्गीतगृहान्तरितभित्तिकम्। सुगन्धिधूपसङ्घातं मनः प्राप्यमलक्षितम्॥

क्रीड़ामयूरनारीभिरभितो रभसार्पितम्। हंससङ्घातसन्दिष्टस्फटिकस्तम्भतोरणम्॥

अनाविलमसम्भ्रान्त्या बहुशःकिन्नराकुलम्। शुकैर्यत्राभिदृश्यन्ते पद्मरागविनिर्मिताः॥

भित्तयो जातिसम्भ्रान्त्या प्रतिबिम्बितमौक्तिकाः।

तत्राक्षैः प्रियया देवो विहर्तमुपचक्रमे॥ ४६४॥

स्वच्छेन्द्रनीलभूभागे क्रीडन्तौ यत्र संस्थितौ। वपुःसहायतां प्राप्तौ विनोदरसनिर्वृतौ

एवंप्रक्रीडतोस्तत्र देवीशङ्करयोस्तदा। प्रादुर्भूतो महाशब्दः पतिताम्बरगोचरः॥

तच्छ्रुत्वा कौतुकाद्देवी किमेतदिति शङ्करम्। पर्यपृच्छत्सुरवरं हरं विस्मितपूर्वकम्॥

उवाच देवो नैतत्ते दृष्टपूर्वं शुचिस्मिते। एते गणेशाः क्रीडन्ते शैलेऽस्मिन्मत्प्रियाः सदा

तपसा ब्रह्मचर्येण नामभिः क्षेत्रसेवनैः। यैरहं तोषितः पूर्वं त एते मनुजोत्तमाः॥

मत्समीपमनुप्राप्ता मम हृद्याः शुभानने ।
कामरूपा महोत्साहा महारूपगुणान्विताः ॥ ४७० ॥
कर्मभिर्विस्मयं तेषां प्रयामि बलशालिनाम् । सामरस्यास्य जगतः सृष्टिसंहरणक्षमाः ॥
ब्रह्मचन्द्रेन्द्रगन्धर्वैस्सकिन्नरमहोरगैः । विवर्जितोऽप्यहं नित्यं नैभिर्विरहितो रमे ॥
हृद्या मे चारुसर्वाङ्गि त एते क्रीडितागिरौ । इत्युक्तातुतदादेवीत्यक्त्वा तं विस्मयाकुला
गवाक्षान्तरमासाद्य प्रेक्षते चकितानना ।
यावन्तस्ते कृशा दीर्घा ह्रस्वाः स्थूला महोदराः ॥ ४७४ ॥
व्याघ्रेभवदनाः केचित्केचिन्मेषाजरूपिणः । अनेकप्राणिरूपाश्चज्वालास्याःकृष्णपिङ्गलाः
सौम्या भीमाः स्मितमुखाःकृष्णपिङ्गजटास्सदा । नानाविहङ्गवदनानानाविधसुराननाः
कौशेयचर्मवसना नग्नाश्चान्ये विरूपिणः । गोकर्णा गजकर्णाश्च बहुवक्त्रेक्षणोदराः ॥
बहुपादा बहुभुजा दिव्यनानास्त्रपाणयः ।
अनेककुसुमापीडा नानाव्याकुलभीषणाः ॥ ४७८ ॥
कृतनानायुधधरा नानाकवचभूषणाः । विचित्रवाहनारूढा दिव्यरूपा वियच्चराः ॥४७९॥
वीणावाद्यरवोद्घुष्टा नानास्थानकनर्तकाः । गणेशांस्तांस्तथा दृष्ट्वा देवी प्रोवाच शङ्करम्

देव्युवाच ।

गणेशाः कति सङ्ख्याताः किं नामानः किमात्मकाः ।
एकैकशो मम ब्रूहि निष्ठिता ये पृथक्पृथक् ॥ ४८१ ॥

शङ्कर उवाच ।

कोटिकोटिश्च सङ्ख्याता नानाविख्यातपौरुषाः । जगदापूरितं सर्वमेभिर्भीमैर्महाबलैः ॥
सिद्धक्षेत्रेषु रथ्यासु जीर्णोद्यानेषु वेश्मसु । दानवानां शरीरेषु बालेषून्मत्तकेषु च ॥
एते विशन्ति मुदिता नानाहारविहारिणः । ऊष्मपाः फेनपाश्चैव धूमपा मधुपायिनः ॥
मेदाहारा रुधिरपास्सर्वभक्षा ह्यभोजनाः ।
देवादास्तापसाहारा नानावाद्यरतिप्रियाः ॥ ४८५ ॥
न हि वक्तुमनन्तत्वाच्छक्यन्ते हि गणाःपृथक् ॥ ४८६ ॥

देव्युवाच ।

नागत्वगुत्तरासङ्गः शुद्धाङ्गो मुञ्जमेखली । मनः शिलेन कल्पेन चपलो रञ्जिताननः ॥
भृङ्गदष्टोत्पलानां च स्रग्दामा मधुराकृतिः । पाषाणशकलोत्तानकांस्यतालप्रवर्तकः ॥
असौ गणेश्वरो देव किं नामा किन्नरानुगः । य एष गणगीतेषु दत्तकर्णो मुहुर्मुहुः ॥

शर्व उवाच ।

स एष वीरको देवि सदा मे हृदयप्रियः । नानाश्चर्यगुणाधारो गणेश्वरगणार्चितः ॥

देव्युवाच ।

ईदृशस्य सुतस्यास्ति ममोत्कण्ठा पुरान्तक ।
कदाऽहमीदृशं पुत्रं द्रक्ष्याम्यानन्ददायकम् ॥ ४६१ ॥

शर्व उवाच ।

एष एव सुतस्तेऽस्तु नयनानन्दकारकः । त्वयामात्रा कृतार्थो हि वीरकोऽपि सुमध्यमे

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्ता प्रेषयामास विजयां हर्षणोत्सुकाम् ।
वीरकानयनायाशु दुहिता भूभृतः सखीम् ॥ ४६३ ॥
साऽवरुह्य त्वरा युक्ता प्रासादादम्बरस्पृशः । गणपं गणमध्यस्थं सूर्यकोटिप्रवर्तनम् ॥

विजयोवाच ।

एहि वीरक चापल्यात्त्वया देवी प्रतोषिता ।
त्वामाह्वयति चेत्युक्तस्त्यक्त्वा पाषाणखण्डनम् ॥ ४६५ ॥
देव्याः समीपमागच्छद्विजयानुगतःशनैः । प्रासादशिखरोत्फुल्लरक्ताम्बुजनिभद्युतिः ॥
तं दृष्ट्वा प्रस्थितानल्पस्वादुक्षीरपयोधरा ॥ ४६७

गिरिजोवाच ।

पिब क्षीरमिदं वत्स स्रुतं पिब यथेच्छकम् ॥ ४६८ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

उवाच देवी सस्नेहं गिरा मधुरवर्णया ॥ ४६६ ॥

गिरिजोवाच ।

एहि सद्यो हि जातोऽसि मे पुत्रको देवदेवेन दत्तोऽधुना वीरक ।
उक्तवत्यङ्क आधाय पर्यष्वजत्तं कपोले चुचुम्बागराणनन्दिनी ॥ ५०० ॥
मूर्ध्न्युपाघ्राय संमार्ज्य गात्राणि चाभूषयामास दिव्यैः स्वयं भूषणैः ।
किङ्किणीमेखलानूपुरैः सम्मणिप्रोक्तकेयूरहारैरमूल्यैर्गुणैः ॥ ५०१ ॥
कोमलैः पल्लवैश्चित्रितश्चारुभिर्मङ्गलैः कङ्कणैर्दिव्यमन्त्रोद्भवैः ।
तस्य शुद्धैस्ततो भूरिभिश्चाकरोन्मिश्रसिद्धार्थकैरङ्गरक्षाविधिम् ॥ ५०२ ॥
एवमादाय चोवाच कृत्वा स्रजं मूर्ध्नि गोरोचनापत्रभङ्गोज्ज्वलैः ।
वत्स वत्साधुनाक्रीड सार्द्धं गणैरप्रमत्तो व्रज श्वभ्रवर्जं शनैः ॥ ५०३ ॥
व्यालमालाकुलाः शैलसानुद्रुमा दन्तिभिर्भग्नशाखापरं भङ्गिनः ।
जाह्नवीमण्डलक्षुब्धतोयाकुलं मा विशेथा बहुव्याघ्रजुष्टे वने ॥ ५०४ ॥
वत्स सङ्ख्येषु दुर्गेषु यद्वीरकपुत्र भावाय तां स्वच्छचित्तो जनः ।
प्रार्थितं भव्यमायाति भाविन्यसौ भाव्यतां सोऽपि निर्वर्त्य सर्वैर्गुणैः ॥ ५०५ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

एवमुक्तोऽनया वीरको मातरं सस्मयन्नाह लीलावशाविष्टधीः ।
एष मात्रा स्वयं मे कृतः कङ्कणः पत्रकश्चित्रितः पाटलैर्बिन्दुभिः ॥ ५०६ ॥
चारुपुष्पैरियं मालतीभिः कृता मालिका मे शिरस्याहिता कोमला ।
तोषयामीश्वरीमित्ययं सत्वरं चिन्तयित्वाऽव्रजद् बाह्यतः क्रीडनम् ॥५०७॥
स्वैर्गुणैः संयुतो वीरको हर्षितो दक्षिणात्पश्चिमं पश्चिमादुत्तरम् ।
उत्तरात्पूर्वमभ्येत्य सख्या युता प्रेक्षते तं गवाक्षान्तराद्वीरकम् ॥ ५०८ ॥
शैलपुत्री बहिः क्रीडितारं जगत्स्नेहतः पुत्रलुब्धायतस्सोऽत्रकः ।
मोहमायाति यः स्वल्पवेत्ता जडो मांसविण्मूत्रसङ्घातदेहोद्वहः ॥ ५०९ ॥
द्रष्टुमभ्यन्तरं नाकवासेश्वरेष्विन्दुमौलिं प्रविष्टेषु कक्षान्तरम् ।
वाहनान्येवमारोहमाणास्ततो लोकपालास्त्रपूगं मुहूर्त्तावधि ॥ ५१० ॥

खड्ग एषोऽविखड्गाकरो निर्मलः कृन्तकः कस्य केनाहृतो ब्रूत नः ।
नोभवेद्धस्तदण्डेन किंब्रूमहे भीममूर्त्यङ्गणेनास्ति कृत्यं गिरौ ॥ ५११ ॥
पाश एषोऽस्ति ते नात्रको बध्यते मा वृथा लोकपालानुगास्तिष्ठत ।
एवमेवैतदित्यब्रुवंस्ते तदा वीक्ष्य देवानुगं वीरकं रक्षकम् ॥ ५१२ ॥
प्राह देवी वने पर्वते निर्जराध्यग्निशालामुखे भूतले भूतपाः ।
निर्झराम्भोनिपातेषु नो मज्जतात्पुष्पजालावनद्धेषु धामस्वपि ॥ ५१३ ॥
प्रोच्चनानाद्रिकुञ्जावगाहेष्वथो मारुतास्फोटसंरक्षणे कामतः ।
काञ्चनोत्तुङ्गशृङ्गावरोहक्षितौ हैमरेणूत्करासङ्गपिङ्गद्युतिः ॥ ५१४ ॥
खेचराणां वने चापि रम्ये बभौ रूपसम्पत्प्रकारो गणो वासितुम् ।
मन्दरे कन्दरे चारु वापीतटे कुन्दमन्दारपुष्पप्रवालाम्बुजे ॥ ५१५ ॥
सिद्धनारीभिरापीतरूपामृतं विस्तृतैर्नेत्रमात्रैरनुन्मेषिभिः ।
वीरकं शैलपुत्री निमेषान्तरादस्मरत्पुत्रगृध्नुर्विनोदार्थिनी ॥ ५१६ ॥
सोऽपि तादृक्क्षणावाप्तपुण्योदयो यो हि जन्मान्तरेऽस्यात्मजत्वन्ततः ।
क्रीडतस्तस्य तृप्तिः कथं जायते योऽपि भावाज्जगद्भेधसा तेजसा ॥५१७॥
कल्पितः प्रेक्षणं दिव्यगीतक्षणं नृत्यलोलैर्गणेशैः प्रवृत्यक्षणम् ।
सिंहनादाकुले गण्डशैले ज्वलद्रत्नजाले बृहत्सालतालेक्षणम् ॥ ५१८ ॥
फुल्लनानातमालालिकालेक्षणं वृक्षमूले विलोलोमरालेक्षणम् ।
स्वल्पपङ्के जले पङ्कजाङ्केक्षणं मातुरङ्के शुभे निष्कलङ्केक्षणम् ॥ ५१९ ॥
परिक्रीडिते बाललीलाविसारी गणेशाधिपो देवतानन्दकारी ।
निकुञ्जेषु विद्याधरोद्गीतशीलपिनाकीव लीलाविलासैः सलीलः ॥ ५२० ॥
प्रकाश्य भुवने गोभिस्ततो दिनकरे गते । देशान्तरं तदा पश्चाद् दूरस्थो धरणीधरः ॥
मित्रत्वमस्य सुदृढं हृदये द्योतयन्निव ।
नित्यमाराधितो विप्रैः श्रीमान्विखनसः सुतः ॥ ५२२ ॥
नाकरोत्सवितुर्मेरुरुपकारं पतिष्यतः । जनेष्वेषाव्यवस्थेति श्रूयते स्खलितो ह्यधः ॥

दिनेनानुगतो भानुः स्वजनं परिपूरयन् । सन्ध्या बद्धाञ्जलिपुटा मुनयोऽभिमुखा रविम्
याविदध्यासते शीघ्रं निवार्योष्णाभिभाविताम् ।
व्यजृम्भताथ लोकेऽस्मिन्क्रमाद्वैभावरं तमः ॥ ५२५ ॥
कुटिलस्येव हृदये कालुष्यं दूषयन्मनः ।
ज्वलत्फणिफणारत्नदीपोद्योतितभित्तिके ॥ ५२६ ॥
शयने शशिसङ्घातरत्नवस्त्रोत्तरच्छदे । नानारत्नद्युतिलसच्छक्रचापविडम्बके ॥ ५२७ ॥
रत्नैः किङ्किणिजालेन लसन्मुक्ताकलापके । कमनीयचलल्लीलावितानाच्छादिताम्बरे ॥
मन्दरे मन्दसञ्चारं गते गिरिसुतायुतः । तस्थौ गिरिसुताबाहुलतामीलितकन्धरः॥५२९
शशिमौलिः सितज्योत्स्नास्फारपूरितगोचरः ।
गिरिजाप्यसितापाङ्गी नीलोत्पलदलच्छविः ॥ ५३० ॥
विभावर्या च सम्पृक्ता बभूवातीव गोमयी । तामुवाच ततो देवः क्रीडाकेलिकलायुताम्
इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे गौरीविवाहवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ।

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

कृष्णवर्णायाः पार्वत्याः शङ्करेण विनोदकरणम् ।

शर्व उवाच ।

शरीरे मम तन्वङ्गि सिते भास्यसितद्युतिः । भुजङ्गी वासिता शुभ्रे संश्लिष्टा चन्दने तरौ ॥
चन्द्रातपेन सम्पृक्ता रुधिराम्बरसंवृता । रजनीवासिते पक्षे दृष्टिदोषं ददासि मे ॥ २ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्ता गिरिजा तेन मुक्तकण्ठा पिनाकिनम् । उवाच कोपरक्ताक्षी भ्रुकुटी विकृतानना

देव्युवाच ।

स्वकृतेन जनः सर्वो जाड्येन परिभूयते । अवश्यमर्थी प्राप्नोति खण्डनं शशिमण्डन ॥

तपोभिर्दीर्घचरितैर्यात्वां प्रार्थितवत्यहम् । तस्या मे नियतस्त्वेष ह्यवमानः पदेपदे ॥
नैवास्मि कुटिला शर्व विषमा न च धूर्जटे । सविषस्त्वं जगत्ख्यातो व्यक्तदोषाकराश्रयः

त्वं हि मुष्णासि दशनान्नेत्रहन्ता भगस्य च ।
आदित्यस्त्वां विजानाति भगवान्द्वादशात्मकः ॥ ७ ॥
मूर्ध्नि शूलं जनयसि स्वैर्दोषैर्मामधिक्षिपन् ।
यस्त्वं मामात्थ कृष्णेति महाकालोऽसि विश्रुतः ॥ ८ ॥

यास्याम्यहं परित्यक्तुमात्मानं तपसा गिरिम् । जीवन्त्या न मया कृत्यं धूर्तेन परिभूतया
कापालिकेनक्षुद्रेण श्मशाने नित्यवासिना । भूत्याविलिप्तस्वाङ्गेन मातृमध्यस्थचारिणा

पुलस्त्य उवाच ।

निशम्य तस्या वचनं कोपतीक्ष्णाक्षरंहरः । उवाचानिष्टसम्भ्रान्तः प्रचलेनेन्दुमौलिना ॥

शर्व उवाच ।

अगात्मजासि गिरिजे नाहं निन्दापरस्तव । चाटूक्तिबुद्ध्या तु मया कृत उन्मादसंश्रयः

विकल्पः स्वस्थचित्ते तु गिरिजे न मम क्रमात् ।
यद्येवं कुपिता भीरु तत्तवाहं न वै पुनः ॥ १३ ॥

नर्मवादी भविष्यामि जहि कोपं शुचिस्मिते । शिरसा प्रणतेनैष रचितस्ते मयाञ्जलिः
विहीनोह्यपमानेन निन्दितेनैति विक्रियाम् । असतां तु सतां न स्यान्मर्मस्पृष्टो नरःकिल

पुलस्त्य उवाच ।

अनेकैश्चाटुभिर्देवी देवेन प्रतिबोधिता । कोपंतीव्रं न तत्याज सती मर्मणि घट्टिता ॥
अवष्टब्धमथाच्छिद्यवासः शङ्करपाणिना । विपर्यस्तालका वेगाद्गन्तुमैच्छच्चशैलजा ॥

तस्या व्रजन्त्याः कोपेन पुनराह पुरान्तकः ॥ १८ ॥

शर्व उवाच ।

सत्यं सर्वैरवयवैस्तनोषि सदृशं पितुः । हिमाचलस्य शृङ्गस्थमेघजालाकुलं मनः ॥
तथा दुरवगाह्येभ्यो गहनो हि तवाशयः । काठिन्यमश्मसारेभ्यो वनेभ्यो बहुलं गता ॥

कुटिलत्वं निम्नगाभ्यो दुःसेव्यत्वं हिमादपि ।

सङ्क्रान्तं सर्वमेवैतत्तन्वङ्गि हिमभूधरात् ॥ २१ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्ता सा पुनः प्राह गिरिशं शैलकन्यका । कोपकम्पितमूर्द्धा सा प्रस्फुरद्दशनच्छदा ॥

उमोवाच ।

स्यात्सर्वदोषदानेन निन्दायां गुणिनो बलात् । तवापि दुष्टसम्पर्कात्सङ्क्रान्तं सर्वमेव हि

व्यालेभ्योऽनेकजिह्वत्वं भस्मनोऽस्नेहवृत्तिता ।

हृत्कालुष्यं शशाङ्कोत्थं दुर्बोधत्वं विषादपि ॥२४ ॥

किं चात्र बहुनोक्तेन अलं वाचां श्रमेण ते । श्मशानवासान्निर्भीस्त्वं नग्नत्वात्तव नत्रपा

निर्घृणत्वं कपालित्वाद्दया ते विगता चिरम् ॥ २५ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्त्वा मन्दिरात्तस्मान्निर्जगाम हिमाद्रिजा ।

तस्यां व्रजन्त्यां देवेश्यां गणैः किलकिलाकृता ॥ २६ ॥

क्व मातर्गच्छसीत्युक्त्वा रुदद्भिर्धावितं पुनः । विष्टभ्य चरणौ देव्या वीरको बाष्पगद्गदः

प्रोवाच मातः किन्त्वेतत्क्वयासि कुपितातुरा । अहं त्वामनुयास्यामि व्रजन्तीं स्नेहवर्जिताम्

न चेत्पतिष्ये शिखराद्गिरेरस्य त्वयोज्झितः । उन्नम्य वदनं देवी दक्षिणेन तु पाणिना

उवाच वीरकं माता त्वं शोकं पुत्र मा कृथाः । शैलाग्रात्पतितुं नैव न च गन्तुं मया सह

युक्तं ते पुत्र गच्छामि येन कार्येण तच्छृणु ।

कृष्णेत्युक्ता हरेणाहं स्तम्भितास्म्यवमानिता ॥३१ ॥

साऽहं तपः करिष्यामि येन गौरीत्वमाप्नुयाम् । एष स्त्रीलम्पटो देवो यातायां मय्यनन्तरम्

द्वाररक्षा त्वया कार्या नित्यं रन्ध्रान्ववेक्षणम् । यथा न काचित्प्रविशेद्योषित्तत्र हरान्तिकम्

दृष्ट्वा परस्त्रियं चापि वदेथा मम पुत्रक । शीघ्रमेव करिष्यामि यथा युक्तमनन्तरम् ॥

पुलस्त्य उवाच ।

एवमस्त्विति देवेशीं वीरकोवाच साम्प्रतम् । मातुराज्ञा मृताहारप्लाविताङ्गो गतज्वरः

जगाम रक्षां स द्रष्टुं प्रणिपत्य तु मातरम् । देवी चापश्यदायान्तीं सखीं मातुर्विभूषिताम्

कुसुमामोदिनीं नाम तस्य शैलस्य देवताम् । सापि दृष्ट्वा गिरिसुतां स्नेहविक्लवमानसा
क्व पुत्रि गच्छसीत्युच्चैरालिङ्ग्योवाच देवता ।
सा तस्याः सर्वमाचख्यौ शङ्करात्कोपकारणम् ॥ ३८ ॥
पुनश्चोवाच गिरिजा देवतां मातृसंमिताम् ॥ ३९ ॥

उमोवाच ।

नित्यं शैलाधिराजस्य देवता त्वमनिन्दिते । सर्वतः सन्निधानं ते मनसाऽतीववत्सला
अतस्तु ते प्रवक्ष्यामि यद्विधेयं त्वयाम्बिके । अन्यस्त्रीसम्प्रवेशस्तु त्वया रक्ष्यःप्रयत्नतः
स रहस्ये प्रयत्नेन निषेव्यः सततं गिरौ । पिनाकिनः प्रविष्टायां वक्तव्यं मे त्वयाऽनघे
ततोऽहं संविधास्यामि यत्क्षमं तदनन्तरम् ॥ ४२ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्तातां तथेत्युक्त्वा जगामसा गिरिं शुभा । उमापि पितुरुद्यानं जगामाद्रिसुताद्भुतम्
अन्तरिक्षं समाविश्य मेघमालाविलप्रभम् । भूषणानि ततो न्यस्य वृक्षवल्कलधारिणी ॥
ग्रीष्मे पञ्चाग्निसन्तप्ता वर्षासु च जलोषिता ।
वन्याहारा निराहारा शुष्कस्थण्डिलशायिनी ॥ ४५ ॥
एवं साधयती तत्र तपः सा च व्यवस्थिता । ज्ञात्वा गतां गिरिसुतांदैत्यस्तत्रान्तरेबली
अन्धकस्य सुतोहृष्टः पितुर्वधमनुस्मरन् ।
देवान्सर्वान्विजित्याजौ बकभ्राता रणोत्कटः ॥ ४७ ॥
आडिर्नामान्तरप्रेक्षी सततं चन्द्रमौलिनः । आजगामामररिपुः पुरं त्रिपुरघातिनः ॥४८॥
स तत्रागत्य ददृशे वीरकं द्वार्यवस्थितम् । विचिन्त्य सोऽपिच वरं दत्तं कमलयोनिना
हते किलान्धके दैत्ये गिरिशेनासुरद्विषा । आडिश्चकार विपुलं तपः परमदारुणम् ॥
समागत्याब्रवीद्ब्रह्मा तपसा परितोषितः । किमाडे दानवश्रेष्ठ तपसा प्राप्तुमिच्छसि
ब्रह्माणमाह दैत्यस्तु निर्मृत्युत्वमहं वृणे ॥ ५२ ॥

ब्रह्मोवाच ।

जातानामिह संसारे विना मृत्युं न युज्यते ।

यतस्ततोऽपि दैत्येन्द्र मृत्युः प्राप्यश्शरीरिभिः ॥ ५३ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्तो दैत्यसिंहस्तु प्रोवाचाम्बुजसम्भवम् ॥ ५४ ॥

आडिरुवाच ।

रूपस्य परिवर्तो मे यदास्यात्पद्मसम्भव । तदामृत्युर्मम भवेदन्यथा त्वमरोऽस्म्यहम् ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्तस्तु तथोवाच तुष्टः कमलसम्भवः । यदाद्वितीयो रूपस्य विवर्त्तस्ते भविष्यति ॥

तदा ते भविता मृत्युरन्यथा न भविष्यति । इत्युक्तोऽमरतां मेने दैत्यसूनुर्महाबलः ॥

तस्मिन्काले त्वसंस्मृत्य तद्वधोपायमात्मनः ।

प्रतिहर्तुर्दृष्टिपथे वीरकस्याभवंस्तदा ॥ ५८ ॥

भुजङ्गरूपी रन्ध्रेण प्रविवेश दृशःपथम् । परिहृत्य गणेशस्य दानवो रौद्रदुर्जयः ॥५९॥

अलक्षितो गणेशेन प्रविश्याथ परांतनुम् । भुजङ्गरूपं सन्त्यज्य जग्राहाथ महासुरः ॥

उमारूपं रमयितुं गिरिशं मूढचेतनः । कृत्वा मायामयं रूपमप्रतर्क्यं मनोहरम् ॥ ६१ ॥

सर्वैरवयवैः पूर्णं सर्वाभिज्ञानबृंहितम् । कृत्वा भगान्तरे दन्तं दैत्यो वज्रमयं दृढम् ॥

तीक्ष्णाग्रं बुद्धिमोहेन गिरिशं हन्तुमुद्यतः । कृत्वोमारूपसंस्थानं गतो दैत्यो हरान्तिकम्

पापो रम्याकृतिश्चित्रभूषणाम्बरसंयुतः । तं दृष्ट्वा गिरिशस्तुष्टस्तमालिङ्ग्य महासुरम् ॥

मन्यमानो गिरिसुतां सर्वैरवयवान्तरैः । अपृच्छत्साधुभावं ते गिरिपुत्रि न कृत्रिमम् ॥

या त्वं मदाशयं ज्ञात्वा प्राप्तेह वरवर्णिनी । त्वया विरहितं शून्यं मम स्थानं जगत्त्रयम्

प्राप्ता प्रसन्नवदने युक्तमेवंविधं त्वयि । इत्युक्तो दानवेन्द्रस्तु तं बभाषे स्मयञ्छनैः ॥६७

स चाबुध्यदभिज्ञानैः प्राह त्रिपुरघातिनम् ॥ ६८ ॥

दैत्य उवाच ।

यातास्मि तपसः कामाद्वरं लब्धुं हिमाचलम् । रतिश्चतत्र मे नाभूत्ततः प्राप्ता त्वदन्तिकम्

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्तः शङ्करः शङ्कां चित्ते प्राप्तो विचारयन् ।

हृदयेन समाधाय देवः प्रहसिताननः ॥ ७० ॥

कुपिता कुपितं बुद्ध्वा प्रकृत्या च दृढव्रता । अप्राप्तकामा संप्राप्ता किमेतत्संविजानती
इति चिन्त्य हरस्तस्या अभिज्ञानं विचारयन् । नापश्यद्वामपार्श्वे तु तदङ्कं पद्मलक्षणम्
लोम्नामावर्तरचितं ततो देवः पिनाकधृत् । बुद्ध्वातां दानवीं मायामाकारंगूहयंस्ततः
मेढ्रदंष्ट्रास्त्रमादाय दानवं तमसादयत् । न चाबुध्यत तद्वृत्तं वीरको द्वाररक्षकः ॥७४॥
कुसुमामोदिनं दृष्ट्वा स्त्रीरूपं दानवेश्वरम् । दूतेन मारुतेनाशु बोधिता हिमशैलजा॥७५॥
श्रुत्वा वायुमुखाद्देवी क्रोधरक्ता विलक्षणा । अपश्यद्वीरकं पुत्रं हृदयेनैव दूयता ॥ ७६ ॥

देव्युवाच ।

मातरं मां परित्यज्य यस्मात्त्वं स्नेहविक्लवाम् ।
विहितावसरः स्त्रीणां शङ्करस्य रहोविधौ ॥ ७७ ॥

तस्मात्ते मानुषे रूक्षा जडा हृदयवर्जिता । गणेशाकारसदृशी शिलामाता भविष्यति ॥
निमित्त एष विख्यातो वीरकस्य सुतादरात् । सम्भवेप्रक्रमेचैव विचित्राख्या न संशयः

पुलस्त्य उवाच ।

एवमुत्सृष्टशापायां गिरिपुत्र्यामनन्तरम् । निर्जगाम मुखात्क्रोधः सिंहरूपी महाबलः ॥
स तु सिंहः करालास्यः सटाजटिलकन्धरः ।ऊर्ध्वप्रोद्भूतलाङ्गूलो दंष्ट्रोत्कटमुखावटः

व्यादितास्यो लम्बजिह्वः क्षामः कुक्षिबलादिषु ।
अस्यास्ये वर्तितुं देवी व्यवस्थितवती तदा ॥ ८२ ॥

ज्ञात्वा मनोगतं तस्या भगवांश्चतुराननः । आजगामाश्रमपदं सम्पदामाश्रयं यतः ॥

आगम्योवाच देवेशो गिरिजां स्पष्टया गिरा ॥८३ ॥

ब्रह्मोवाच ।

किं पुनः प्राप्तुकामासि!किमलभ्यं ददामि ते ।
विरम्यतामतिक्लेशात्तपसोऽस्मान्मदाज्ञया ॥ ८४ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

तच्छ्रुत्वोवाचगिरिजागुरुगौरवयन्त्रितम् । वाक्यंवाचा हरोद्गीर्णवर्णनिर्गमवाञ्छितम्

देव्युवाच ।

तपसा दुष्करेणाप्तः पतिर्वै शङ्करो मया । स मां श्यामलवर्णेति बहुशः प्रोक्तवान्हरः ॥८६

तस्मादहं काञ्चनाभवर्णा तन्नामसंयुता । भर्तुर्भूतपतेरङ्गमेकतो निर्विघ्नं भवेत् ॥ ८७ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

तस्यास्तद्भाषितं श्रुत्वा प्रोवाच जगदीश्वरः ॥ ८८ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एवं भवत्वं भूयश्च भर्तुर्देहार्द्धचारिणी ॥ ८९ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

ततस्तत्याज तां कृष्णां फुल्लनीलोत्पलत्वचम् ।

त्वक्च साप्यभवद्भीमा घण्टाहस्ता त्रिलोचना ॥ ९० ॥

नानाभरणसम्पूर्णा पीतकौशेयधारिणी । तामब्रवीत्ततो ब्रह्मा देवीं नीलाम्बुजत्विषम् ॥

ब्रह्मोवाच ।

निशे भूधरजादेहसम्पर्कात्त्वं मदाज्ञया । सम्प्राप्ता कृतकृत्यत्वमेकानंशा पुरोह्यसि॥९२॥

य एषसिंहः प्रोद्भूतो देव्याःक्रोधाद्वरानने । सतेऽस्तु वाहनं देवि केतौ चास्तुमहाबलः

गच्छ विन्ध्याचलं तत्र सुरकार्यं करिष्यसि । पञ्चालो नाम यक्षोऽयं यक्षलक्षपदानुगः

दत्तस्ते किङ्करो देवि मया मायाशतैर्युतः ॥ ९४ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्ता कौशिकी देवी विन्ध्यशैलं जगाम ह ।

उमाऽपि प्राप्तसङ्कल्पा जगाम गिरिशान्तिकम् ॥ ९५ ॥

प्रविशन्तीं तु तां द्वारादपहृत्य समाहितः । रुरोध वीरको देवीं हेमवेत्रलताधरः ।

तामुवाच च कोपेन रूपे तु व्यभिचारिणीम् ॥ ९६ ॥

वीरक उवाच ।

प्रयोजनं न तेऽत्रास्ति गच्छ यावन्न भक्ष्यसे । देव्या रूपधरो दैत्यो देवं वञ्चितुमागतः

प्रविष्टो न च दृष्टोऽसौ स च देवेनघातितः । घातिते चाहमाज्ञप्तो नीलकण्ठेनकोपिना

द्वारे त्वनवधानं ते यस्मात्पश्यामि वै ततः। भविष्यसि न मे द्वाःस्थो वर्षपूगाननेकशः

अतस्ते नात्र दास्यामि प्रवेशं गम्यतां द्रुतम्।

एकां मुक्त्वा गिरिसुतां मातरं स्नेहवत्सलाम्।

प्रवेशं लभते नान्या नारी कमललोचने ॥ १०० ॥

पुलस्त्य उवाच।

इत्युक्ता तु तदा देवी चिन्तयामास चेतसा। नारी नैव स दैतेयो वायुर्मे यामभाषत ॥

वृथैव वीरकश्शप्तो मया क्रोधपरीतया। अकार्यं क्रियते मूढैः प्रायः क्रोधसमन्वितैः ॥

क्रोधेन नश्यते कीर्तिः क्रोधो हन्ति स्थिरां श्रियम्।

अपरिच्छिन्नतत्त्वार्था पुत्रं शापितवत्यहम् ॥ १०३ ॥

विपरीतार्थबुद्धीनां सुलभो विपदागमः। सञ्चिन्त्यैवमुवाचेदं वीरकं प्रति शैलजा।

सज्जलज्जाविकारेण वदनेनाम्बुजत्विषा ॥ १०४ ॥

देव्युवाच।

अहं वीरक ते माता न तेऽस्तु मनसो भ्रमः। शङ्करस्यास्मिदयिता सुता तुहिनभूभृतः

ममगात्रच्छविभ्रान्त्या माशङ्कां पुत्र धारय। तुष्टेन गौरता दत्ता ममेयं पद्मजन्मना ॥

मया शप्तोऽस्यविदिते वृत्तान्ते दैत्यनिर्मिते। ज्ञात्वा नारीप्रवेशं तु शङ्करे रहसि स्थिते

न निवर्तयितुं शक्यः शापः किन्तुब्रवीमि ते। शीघ्रमेष्यसिमानुष्यात्सर्वकामसमन्वितः

पुलस्त्य उवाच।

शिरसा तु ततो वन्द्य मातरं पूर्णमानसः। उवाच साध्वीं पूर्णेन्दुद्युतिं तुहिनशैलजाम् ॥

वीरक उवाच।

नतसुरासुरमौलिलसन्मणिप्रचरकान्तिकरालिनखाङ्घ्रिके।

नगसुते शरणागतवत्सले तव नमोऽवनतार्तिविनाशिनि ॥ ११० ॥

तपनमण्डलमण्डितकन्धरे पृथुसुवर्णनगद्युतिहारिके।

विषमभङ्गविषङ्गमभीषितो गिरिसुते भवतीमहमाश्रये ॥ १११ ॥

जगति का प्रणताभिमतं ददौ झटिति सिद्धिमृते भवती यथा।

जगतिकां प्रणमेच्छशिशेखरो भुवनभृन्मुनयो भवतीं यथा ॥ ११२ ॥
विमलयोगविनिर्मितदुर्जये सुतनुतुल्यमहेश्वरमण्डली ।
विदलितान्धकबान्धवसंहतिः सुरवरैः प्रथमं त्वमभिष्टुता ॥ ११३ ॥
सितसटापटलोद्धतकन्धरा भवमहामृगराजरथस्थिता ।
विमलशक्तिमुखानलपिङ्गलायतभुजौघनिपिष्टमहासुरा ॥ ११४ ॥
निगदिता भुवनैरतिचण्डिका जननिशुम्भनिशुम्भनिषूदिनी ।
प्रणतचिन्तितदाभवदानवप्रशमनैकरतिस्तरसा भुवि ॥ ११५ ॥
वियति वायुपथे ज्वलनाकुलेऽवनितले तव देवि च तद्वपुः ।
तदजिते प्रतिमे प्रणमाम्यहं भुवनभाविनि ते भववल्लभे ॥ ११६ ॥
जलधयो ललितोद्धतवीचयो हुतवहो द्युतिदग्धचराचरः ।
फणसहस्रभृतश्च भुजङ्गमास्त्वमभिधास्यसि मामभयङ्करा ॥ ११७ ॥
भगवति स्थिरभक्तजनाश्रये प्रतिगतो भवती चरणाश्रयम् ।
करणजातिमहास्तु ममाद्य वै तव विलासमुखानुभवास्पदम् ॥ ११८ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

सुप्रसन्ना ततो देवी वीरकस्येतिसंस्तुता । प्रविवेश शुभं भर्तुर्भवनं भूधरात्मजा ॥
द्वास्स्थोऽपि वीरको देवान्हरदर्शनकाङ्क्षिणः। व्यसर्जयत्स्वकानेव गृहानादरपूर्वकम् ॥
नास्त्यत्रावसरो देवा देव्या सह वृषाकपिः । निभृतः क्रीडतीत्युक्ताययुस्तेचयथागतम्
गते वर्षसहस्रे तु देवास्त्वरितमानसाः ।
ज्वलनं चोदयामासुर्ज्ञातुं शङ्करचेष्टितम् ॥ १२२ ॥
प्रविश्य पक्षिरन्ध्रेण शुकरूपी हुताशनः । ददर्श शयने सर्वं रतौगिरिजयासह ॥ १२३ ॥
ददर्श तं च देवेशो हुताशंशुकरूपिणम् । तमुवाच महादेवः किञ्चित्कोपसमन्वितः ॥

शर्व उवाच ।

निषिक्तमर्धं देव्यां मे वीर्यं च शुकविग्रह । लज्जया विरतिश्चास्य त्वमर्धं पिब पावक
यस्मात्तु त्वत्कृते विघ्नं तस्मात्त्वय्युपपद्यते ॥ १२६ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्तः प्राञ्जलिर्वह्निरपिबद्वीर्यमाहितम् । तेनाप्लुतास्ततो देवास्तन्मुखा ह्यभवो यतः ॥
विपाट्य जठरं तेषां वीर्यं माहेश्वरं ततः । निष्क्रान्तं तप्तहेमाभं वितते शङ्कराश्रमे ॥
तस्मिन्सरोमहज्जातं विमलं बहुयोजनम् । प्रोत्फुल्लहेमकमलं नानाविहगनादितम् ॥

तच्छ्रुत्वा तु सरो देवी जातं हेममहाम्बुजम् ।
जगाम कौतुकाविष्टा तत्सरःकनकाम्बुजम् ॥ १३० ॥

तत्र कृत्वा जलक्रीडां तदब्जकृतशेखरा । उपविष्टा ततस्तस्य तीरे देवी सखीवृता ॥
पातुकामा च तत्तोयं स्वादु निर्मलपङ्कजम् । अपश्यत्कृत्तिकास्तास्सषडर्कद्युतिसन्निभाः
पद्मपत्रेतुतद्वारिगृहीत्वाप्रस्थितागृहम् । हर्षात्सोवाचपास्यामि पद्मपत्रे स्थितं पयः ॥१३३॥

ततस्ता ऊचुरखिलाःकृत्तिका हिमशैलजाम् ॥ १३४ ॥

कृत्तिका ऊचुः ।

दास्यामो दयिते गर्भे सम्भूतो यो भविष्यति ।
सोऽस्माकमपि पुत्रः स्यादस्मत्त्राता च वृत्तिमान् ।
त्रिषु लोकेषु विख्यातः सर्वेष्वपि शुभानने ॥ १३५ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्तोवाच गिरिजा कथं मद्गात्रसम्भवैः । सर्वैरवयवैर्युक्तो भवतीभ्यः सुतो भवेत्
ततस्तां कृत्तिका ऊचुर्विधास्यामोऽस्य वै वयम् । उत्तमान्युत्तमाङ्गानियद्येवंतुभविष्यति
उक्ता वै शैलजा प्राह भवत्वेवमनिन्दिताः । ततस्तुहर्षसम्पूर्णाः पद्मपत्रस्थितं पयः

तस्यै ददुस्तया चापि तत्पीतं क्रमशो जलम् ॥ १३८ ॥

पीते तु सलिले चैव तस्मिन्नेव क्षणे वरः । विपाट्य देव्याश्चततो दक्षिणं कुक्षिमुद्गतः
निश्चक्रामाद्भुतो बालो रोगशोकविनाशनः । प्रभाकरकरव्रातप्रकारप्रकरप्रभुः ॥ १४० ॥
गृहीतनिर्मलोदग्रशक्तिशूलाङ्कुशोऽनलः । दीप्तो मारयितुं दैत्यानुत्थितःकनकच्छविः

एतस्मात्कारणादेव कुमारश्चापि सोऽभवत् ।
वामं विदार्य निष्क्रान्तस्ततो देव्याः पुनः शिशुः ॥ १४२ ॥

स्कन्दोऽथवदनाद्वह्नेः शुभ्रात्षड्वदनोऽरिहा । कृत्तिकासलिलाद्देवशाखाभिः सविशेषतः
शाखाः शिवाः समाख्याताः षट्सु वक्त्रेषु विस्तृताः ।
यतस्ततो विशाखोऽसौ ख्यातो लोकेषु षण्मुखः ॥ १४४ ॥
स्कन्दो विशाखः षड्वक्त्रः कार्तिकेयश्च विश्रुतः । पक्षे चैत्रस्यबहुलेपञ्चदश्यांमहाबलौ
सम्भूतावर्कसदृशौ विशाले शरकानने । सिते पक्षे तु पञ्चम्यां तथैतौ पावकानलौ ॥
बालकाभ्यां चकारैकं सन्ध्यायामेव भूतये । तस्यामेव ततः षष्ठ्यामभिषिक्तो गुहः प्रभुः
सर्वैरमरसङ्घातैर्ब्रह्मोपेन्द्रेन्द्रभास्करैः । गन्धमाल्यैः शुभैर्धूपैस्तथाक्रीडनकैरपि ॥ १४८ ॥
छत्रैश्चामरजालैश्च भूषणैश्च विलेपनैः । अभिषिक्तो विधानेन यथावत्षण्मुखःप्रभुः ॥
सुतामस्मै ददौ शक्रो देवसेनेति विश्रुताम् । पत्न्यर्थं देवदेवेशो ददौ विष्णुरथायुधम्
यक्षाणां दशलक्षाणि ददावस्यधनाधिपः । ददौहुताशनस्तेजो ददौवायुश्च वाहनम् ॥
ददौक्रीडनकं त्वष्टा कुक्कुटं कामरूपिणम् । एवं सुरास्तु ते सर्वे परिवारमनन्तकम् ॥
ददुर्मुदितचेतस्काः स्कन्दायादित्यवर्चसे ।
जानुभ्यामवनौ स्थित्वा सुरसङ्घास्तमस्तुवन् ॥ १५३ ॥
स्तोत्रेणानेन वरदं षण्मुखं मुख्यशः सुराः ॥ १५४ ॥

देवा ऊचुः ।

नमःकुमाराय महाप्रभाय स्कन्दाय चास्कन्दितदानवाय ।
नवार्कबिम्बाप्रतिमप्रभाय नमोऽस्तु गुह्याय गुहाय तुभ्यम् ॥ १५५ ॥
नमोऽस्तु ते लोकभयापहाय नमोऽस्तु ते लोककृपापराय ।
नमो विशालामललोचनाय नमो विशाखाय महाव्रताय ॥१५६ ॥
नमो नमस्तेऽस्तु रणोत्कटाय नमो मयूरोज्ज्वलवाहनाय ।
नमोऽतु केयूरधराय तुभ्यं नमो धृतोदग्रपताकिने ते ॥ १५७ ॥
नमः प्रभावप्रणताय तेऽस्तु नमोऽस्तु घण्टाधरधैर्यशालिने ॥ १५८ ॥

कुमार उवाच ।

कं वः कामं प्रयच्छामि भवन्तो ब्रूत निर्वृताः ।

यद्यप्यसाध्यं कृत्यं नो हृदये चिन्तितं चिरम् ॥ १५६ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्तास्तु सुरास्तेन प्रोचुः प्रणतमौलयः । सर्व एव महात्मानं गुहं मुदिमानसाः ॥

देवा ऊचुः ।

दैत्येन्द्रस्तारको नाम सर्वामरकुलान्तकृत् । बलवान्दुर्जयस्तीक्ष्णो दुराचारोऽतिकोपनः

तमेव जहि दुर्धर्षं दैत्यं सर्वविनाशनम् । उपस्थितः कृत्यशेषो ह्यस्माकं च भयावहः ॥

हिरण्यकशिपुश्चोग्रो ह्यवध्यो देवतागणैः । यज्ञघ्नःपापकर्मा वै येन ब्रह्मापि तापितः ॥

एतौ हरस्व भद्रं ते तावकं च महाबलम् ॥

पुलस्त्य उवाच ।

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा सर्वामरपदानुगः । जगाम जगतां नाथः स्तूयमानोऽमरेश्वरैः ॥

तारकस्य वधार्थाय जगतां कण्टकस्य च । ततश्चप्रेषयामास शक्रो लब्धसमाश्रयः ॥

दूतं दानवसिंहस्य परुषाक्षरवादिनम् ॥ १६५ ॥

स तु गत्वाऽब्रवीद्दैत्यमभयो भीमदर्शनम् ॥ १६६ ॥

दूत उवाच ।

शक्रस्त्वामाह देवशो दैत्यकेतुं दिवस्पतिः । तारकासुर तच्छ्रत्या घटयस्व यथेच्छया

यज्ञगज्ज्वलनोद्दीप्तं किल्बिषं च त्वया कृतम् ।

तस्याहं सादकस्तेऽद्य राजाऽस्मि भुवनत्रये ॥ १६८ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

श्रुत्वैतदद्भुतं वाक्यं कोपसंरक्तलोचनः । उवाच दूतं दुष्टात्मा नष्टप्रायविभूतिकः ॥१६६

तारक उवाच ।

दृष्टं ते पौरुषं शक्र शतशोऽथ महारणे । निस्त्रपत्वान्न ते शान्तिर्विद्यते शक्र दुर्मते ॥

पुलस्त्य उवाच ।

एवमुक्ते गते दूते चिन्तयामास दानवः । नालब्धसंश्रयश्शक्रो वक्तुमेवमिहार्हति ॥१७१

जातः स्कन्दोऽधुना शर्वाज्ज्ञायते समुपाश्रयः ।

निमित्तौघांस्तदा दुष्टान्सोऽपश्यन्नाशवेदिनः ॥ १७२ ॥
पांसुवर्षमसृक्पातं गगनादवनीतले । वामनेत्रप्रकम्पं च वक्त्रशोषं मनोभयम् ॥१७३॥
स्वकानां वक्त्रपद्मानां म्लानतां च व्यलोकयत् ।
दुष्टांश्च प्राणिनो रौद्रान्सोऽपश्यद्दुष्टवादिनः ॥ १७४ ॥
तदचिन्त्यैव दितिजोन्यस्तचित्तोऽभवत्क्षणात् । यावद्गजघटाघण्टाघनत्कारखोत्कटाम्
तद्वत्तुरङ्गसङ्घातहेषोत्साहविभूषिताम् । सैन्यैस्सेनान्तरोदग्रध्वजराजैर्विराजिताम् ॥
विमानैश्चाद्भुताकारैश्चलितामलचामरैः । विभूषणपिनद्धां च किन्नरोद्गीतनादिताम् ॥
नानानाकतरूत्फुल्लकुसुमापीडधारिणीम् । विशोकास्त्रपरिस्फारचर्मनिर्मलदर्शिनीम् ॥
विद्युत्पुष्टद्युतिधरां नानावाद्यविनादिताम् । सेनां नाकसदां दैत्यःप्रासादस्थोऽव्यलोकयत्
संचिन्तयामास तदा किञ्चिद्विभ्रान्तमानसः । अपूर्वः को भवेद्योद्धा यो मया न विनिर्जितः
ततश्चिन्ताकुलो दैत्यः शुश्राव कटुकाक्षरम् । सिद्धबन्दिभिरुद्घुष्टमिदं हृदयदारुणम् ॥

बन्दिन ऊचुः ।

जयातुलशक्तिदीधितिपञ्जरभुजदण्डप्रचण्डतररभससुरवदनकुमुदविकासन-
विलासनेत्रकुमारवर ॥ १८२ ॥
जय दितिज कुलमहोदधिवडवानल मधुरमयूरस्थ सुरमुकुटकोटिकुञ्चित-
चरणनखाङ्कुरमहासेन ॥ १८३ ॥
जयचलितललितचूडाकलापनवविमलकमलदण्डकान्तकदैत्येशवंशदुःसहदावानल॥
जय विशाखविभो जयबालसप्तवासर भुवनालिशोकशमन जय सकललोकदि-
तिसुतधुरन्धरनाशक स्कन्द ॥ १८५ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

श्रुत्वैतत्तारकः सर्वमुद्घुष्टं देवबन्दिभिः । सस्मार ब्रह्मणो वाक्यं वधंबालादुपस्थितम्
स्मृत्वा धर्मौघविध्वंसी सदा वीरपदानुगः । मन्दिरान्निर्जगामाशु शोकग्रस्तेन चेतसा
कालनेमिमुखादैत्याः सन्त्रस्ता भ्रान्तचेतसः । स्वेष्वनीकेषु च तदात्वराविस्मितचेतसः
हिरण्यकशिपुं प्राह दानवानां धुरन्धरः ॥ १८८ ॥

तारक उवाच ।

त्रपाकरं भवेन्मह्यं बलादस्मात्पलायनम् । यद्यहंहन्तवे यामि सोऽपि वै कमलाश्रितः ॥
हत्वाऽहंबालकंचैनं दुस्स्पर्शःस्यामकारणम् । यात धावत गृह्णीत योजयध्वंवरूथिनीम्

पुलस्त्य उवाच ।

कुमारं तारको दृष्ट्वा बभाषे भीषणाकृतिः ॥ १६१ ॥

तारक उवाच ।

किं बाल योद्धुकामोऽसि क्रीड कन्दुकलीलया ।
यैरसि त्वं विसृष्टोऽत्र सङ्गरे ते हि भीरवः ॥ १६२ ॥

बालत्वादथ ते बुद्धिरेवं स्वल्पार्थदर्शिनी । कुमारोऽपि तमग्रस्थं बभाषे हर्षवत्तमम् ॥

कुमार उवाच ।

श्रृणुतारकशास्त्रार्थ इह नैव निरूप्यते । शस्त्रैरर्था न दृश्यन्ते समरे निर्भरं भये ॥१६४
शिशुत्वं मावमंस्थामेशिशुःकष्टो भुजङ्गमः । दुष्प्रेक्षो भास्करो बालस्तथाहंदुर्जयःशिशुः
अल्पाक्षरो न मन्त्रः किं सस्फुरो दैत्य दृश्यते ॥ १६५ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

कुमारे प्रोक्तवत्येवं दैत्यश्चिक्षेप मुद्गरम् । कुमारस्तं तु चिच्छेद चक्रेणामोघवर्चसा ॥
ततश्चिक्षेप दैत्येन्द्रो भिन्दिपालमयोमयम् । करेण तं च जग्राह कार्तिकेयोऽमरारिहा ॥
गदां मुमोच दैत्याय समुत्थाय खरस्वनाम् । तया हतस्ततोदैत्यश्चकम्पेऽचलराडिव ॥
मेने च दुर्जयं दैत्यस्तदा बालं सुदुःसहम् । चिन्तयामासबुद्धयावै प्राप्तःकालोनसंशयः
कम्पितं च समालोक्य कालनेमि पुरोगमाः । सर्वे दैत्येश्वरा जघ्नुः कुमारं रणदारुणम्
स तैः प्रहारैरस्पृष्टस्तथा क्लेशैर्महाद्युतिः । स बालो बलिभिर्वेगैरयुध्यद्दानवै रणे ॥२०१
रणशौण्डाश्च दैत्येन्द्राःपुनर्जघ्नुःशिलीमुखैः । कुमारं समरे दैत्या बलिनो देवकण्टकाः
कुमारस्य व्यथा नाभूद्दैत्यास्त्रनिहतस्य तु । प्राणान्तकरणं जातं देवानां दानवाहवम्
देवान्निपीडितान्दृष्ट्वा कुमारः कोपमाविशत् ।
ततोऽस्त्रैर्दारयामास दानावानामनीकिनीम् ॥ २०४ ॥

तैरस्त्रैर्निष्प्रतीकारैस्ताडितास्सुरकण्टकाः। कालनेमिमुखाःसर्वेरणेह्यासन्पराङ्मुखाः
विद्रुतेषु च दैत्येषु प्रहतेषु समन्ततः। किन्नरोद्गारगीतैश्च हास्यसंन्यस्तचेतनः॥२०६
जघ्ने कुमारं गदया निष्टप्तकनकत्विषा। शरैर्मयूरं चित्रैश्च चकार विमुखं रणे॥२०७
दृष्ट्वा पराङ्मुखो देवो मुक्तरक्तं स्ववाहनम्। जग्राह शक्तिं विमलां रणे कनकभूषणाम्
बाहुना हेमकेयूररुचिरेण षडाननः। ततोऽब्रवीन्महासेनस्तारकं दानवाधिपम्॥२०९॥

महासेन उवाच।

तिष्ठतिष्ठ सुदुर्बुद्धे यमलोकं विलोकय। हतोह्यसि मया शक्त्या स्मरस्वं दैत्यचेष्टितम्

पुलस्त्य उवाच।

इत्युक्त्वा तु ततः शक्तिं मुमोच दितिजं प्रति। सा कुमारभुजोत्सृष्टा तत्केयूररवानुगा
बिभेद दैत्यहृदयं वज्रशैलेन्द्रकर्कशम्। गतासुः स पपातोर्व्यां प्रलये भूधरो यथा॥
विकीर्णमुकुटोष्णीषो विस्रस्ताखिलभूषणः। तस्मिन्विनिहते दैत्ये दानवानां धुरन्धरे॥
नाभूत्कश्चित्तदा दुःखी नरकेष्वपि पापकृत्।
स्तुवन्तः षण्मुखं देवाः प्राक्रीडन्नागतस्मिताः॥ २१४॥
जग्मुः स्वानेवभुवनान्निरस्यासंस्तथोत्सुकाः। ददुश्चापि वरं सर्वे देवास्ते षण्मुखाय तु
तुष्टाः सम्प्राप्तसर्वार्थास्सह सिद्धैस्तपोधनैः॥२१६॥

देवा ऊचुः।

यः पठेत्स्कन्दसम्बन्धां कथामेतां महामतिः। शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि स भवेत्कीर्तिमान्नरः
बह्वायुः सुभगः श्रीमान्कीर्तिमाञ्छुभदर्शनः। भूतेभ्योनिर्भयश्चापि सर्वदुःखविवर्जितः॥
सन्ध्यामुपास्य यः पूर्वां स्कन्दस्य चरितं पठेत्। सयुक्तः किन्नरैः सर्वैर्महाधनपतिर्भवेत्

इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे कुमारसंभवतारकवधो नाम
षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।

———

सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

श्रीनृसिंहावतारवर्णनम् ।

भीष्म उवाच ।

इदानीं श्रोतुमिच्छामि हिरण्यकशिपोर्वधम् । नरसिंहस्य माहात्म्यं तथा पापविनाशनम्

पुलस्त्य उवाच ।

पुरा कृतयुगे राजन्हिरण्यकशिपुः प्रभुः । दैत्यानामादिपुरुषश्चकार सुमहत्तपः ॥ २ ॥
दश वर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च । जलवासी समभवत्स्नानमौनधृतव्रतः ॥ ३ ॥
वृतः शमदमाभ्यां च ब्रह्मचर्येण चैव हि । ब्रह्मा प्रीतोऽभवत्तस्य तपसा नियमेन च ॥
ततः स्वयम्भूर्भगवान्स्वयमागत्य तत्र हि । विमानेनार्कवर्णेन हंसयुक्तेन भास्वता ॥५॥
आदित्यैर्वसुभिः साध्यैर्मरुद्भिर्दैवतैस्सह । रुद्रैर्विश्वसहायैश्च यक्षराक्षसपन्नगैः ॥ ६ ॥
दिग्भिश्चैव विदिग्भिश्च नदीभिः सागरैस्तथा । नक्षत्रैश्च मुहूर्तैश्च खेचरैश्च महाग्रहैः ॥
देवैर्ब्रह्मर्षिभिः सार्द्धं सिद्धैः सप्तर्षिभिस्तथा । राजर्षिभिः पुण्यकृद्भिर्गन्धर्वाप्सरसांगणैः
चराचरगुरुः श्रीमान्वृतः सर्वैर्दिवौकसैः । ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो दैत्यं वचनमब्रवीत् ॥

ब्रह्मोवाच ।

प्रीतोऽस्मि तव भक्तस्य तपसानेन सुव्रत । वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममाप्नुहि॥१०॥

हिरण्यकशिपुरुवाच ।

न देवा सुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः । न मानुषाः पिशाचाश्च हन्युर्मां देवसत्तम ॥
ऋषयो मानवाः शापैर्नशपेयुः पितामह । यदि मे भगवान्प्रीतो वर एष वृतो मया ॥

न शस्त्रेण न चास्त्रेण गिरिणा पादपेन वा ।
न शुष्केण न चार्द्रेण न स्याच्चान्येन मे वधः ॥ १३ ॥

भवेयमहमेवार्कः सोमो वायुर्हुताशनः । सलिलं चान्तरिक्षं च नक्षत्राणि दिशो दश ॥

अहं क्रोधश्च कामश्च वरुणो वासवो यमः ।

धनदश्च धनाध्यक्षो यक्षः किम्पुरुषाधिपः ॥ १५ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एष दिव्यो वरस्तात मया दत्तस्तवाद्भुतः । सर्वकामप्रदो वत्स प्राप्स्यसि त्वं न संशयः

पुलस्त्य उवाच ।

एवमुक्त्वा स भगवाञ्जगामाकाशमेव हि । वैराजं ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥

ततो देवाश्च गन्धर्वा ऋषिभिः सह चारणाः । वरप्रदानं श्रुत्वैवं पितामहमुपस्थिताः ॥

देवा ऊचुः ।

वरप्रदानाद्भगवन्वधिष्यति स नोऽसुरः । तत्प्रसादश्च भगवान्वधोऽप्यस्य विचिन्त्यताम्

पुलस्त्य उवाच ।

भगवान्सर्वभूतानामादिकर्त्ता स्वयं प्रभुः । स्रष्टा च हव्यकव्यानामव्यक्तप्रकृतिः परः ॥

सर्वलोकहितं वाक्यं श्रुत्वा देवःप्रजापतिः । आश्वासयामास तदा सुशीतैर्वचनाम्बुभिः

ब्रह्मोवाच ।

अवश्यं त्रिदशास्तेन प्राप्तव्यं तपसः फलम् ।

तपसोऽन्तेऽस्य भगवान्वधं विष्णुः करिष्यति ॥ २२ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

तच्छ्रुत्वा विबुधा वाक्यं सर्वे पङ्कजजाननात् ।

स्वानि स्थानानि दिव्यानि विप्र जग्मुर्मुदान्विताः ॥ २३ ॥

लब्धमात्रे वरे सोऽथ प्रजास्सर्वा अबाधत । हिरण्यकशिपुर्दैत्यो वरदानेन गर्वितः ॥

आश्रमेषु महाभागान्मुनीन्वै शंसितव्रतान् । सत्यधर्मपरान्दान्तान्धर्षयामास दानवः ॥

देवांस्त्रिभुवनस्थांश्च पराजित्य महासुरः । त्रैलोक्यं वशमानीय स्वर्गे वसति दानवः ॥

यदा वरमदोत्सिक्तश्चोदितः कालधर्मिणा ।

यज्ञियानकरोद्दैत्यानयज्ञियांश्च दैवतान् ॥ २७ ॥

तदा दैत्याश्च साध्याश्च विश्वे च वसवस्तथा । रुद्रा देवगणा यक्षा देवद्विजमहर्षयः ॥

शरण्यं शरणं विष्णुमुपतस्थुर्महाबलम् । देवदेवं यज्ञमयं वासुदेवं सनातनम् ॥ २९ ॥

देवा ऊचुः ।

नारायण महाभाग देवास्त्वां शरणं गताः ।
त्रायस्व जहि दैत्येन्द्रं हिरण्यकशिपुं प्रभो ॥ ३० ॥

त्वंहि नः परमोदाता त्वंहि नः परमोगुरुः । त्वं हि नः परमोदेवो ब्रह्मादीनांसुरोत्तमः

विष्णुरुवाच ।

भयंत्यजध्वममरा अभयं वो ददाम्यहम् । तथैवत्रिदिवं देवाः प्रतिपद्यत मा चिरम् ॥

एनं हि सगणं दैत्यं वरदानेन गर्वितम् । अवध्यममरेन्द्राणां दानवेन्द्रं निहन्म्यहम् ॥

पुलस्त्य उवाच ।

एवमुक्त्वा तु भगवान्विश्वपो विष्णुरव्ययः । हिरण्यकशिपुस्थानं जगाम हरिरीश्वरः

तेजसा भास्कराकारः शशी कान्त्येव चापरः ।
नरस्य कृत्वार्धतनुं सिंहस्यार्द्धतनुं तथा ॥ ३५ ॥

नारसिंहेनवपुषा पाणिं सङ्गृह्यपाणिना । ततोददर्श विस्तीर्णां दिव्यां रम्यांमनोरमाम्

सर्वकामयुतां शुभ्रां हिरण्यकशिपोः सभाम् । विस्तीर्णांयोजनशतं शतमध्यर्द्धमायताम्

वैहायसीं कामगमां पञ्चयोजनमुच्छ्रिताम् ।
जराशोकक्लमापेतां निष्प्रकम्प्यां शिवां सुखाम् ॥ ३८ ॥

वेश्मासनवतीं रम्यां ज्वलन्तीमिव तेजसा । अन्तः सलिलसंयुक्तां विहितांविश्वकर्मणा

दिव्यवर्णमयैर्वृक्षैः फलपुष्पप्रदैर्युताम् । नीलपीतासितश्यामैः श्वेतैर्लोहितकैरपि ॥४०॥

अवदातैस्तथा गुल्मै रक्तमञ्जरिधारिभिः । सिताभ्रघनसङ्काशां प्लावन्तीं च ददर्श सः ॥

रश्मिमती स्वभावेन दिव्यगन्धमनोरमा ।
सुसुखा न च दुःखा सा न शीता न च घर्मदा ॥ ४२ ॥

न क्षुत्पिपासेग्लानिं वा प्राप्य तां प्राप्नुवन्ति ते । नानारूपैरुपकृतासुचित्रैश्चसुभास्वरैः

अतिचन्द्रातिसूर्यातिशिखिकान्तिस्वयम्प्रभा । दीप्यते नाकपृष्ठस्था भासयन्तोविभासुरा

सर्वे चकाशिरे तस्यां मुदिताश्चैव मानुषाः । रसवच्च प्रभूतं च भक्ष्यभोज्यान्नमुत्तमम्

पुण्यगन्धाः स्रजश्चापि नित्यकालफला द्रुमाः ।

उष्णे शीतानि तोयानि शीते चोष्णानि सन्ति वै ॥ ४६ ॥
पुष्पिताग्रान्महाशाखान्प्रवालाङ्कुरधारिणः । लतावितानसंछन्नान्कल्पानैक्षिष्ट स प्रभुः ॥
गन्धवन्ति च पुष्पाणि रसवन्ति फलानि च ।
तानि शीतानि चोष्णानि तत्र तत्र सरांसि च ॥ ४८ ॥
अपश्यद्भूपतीर्थानि सभायां तस्य स प्रभुः । नलिनैः पुण्डरीकैश्च शतपत्रैः सुगन्धिभिः
रक्तैः कुवलयैश्चैव कह्लारैरुत्पलैस्तथा । नानाश्चर्यसमोपेतैः पुष्पैरन्यैश्च सुप्रियैः ॥
कारण्डवैश्चक्रवाकैः सारसैः कुररैरपि । विमलस्फटिकाभानि पाण्डुरच्छदनैर्द्विजैः ॥
बहुहंसोपगीतानि सारसानां रुतानि च । गन्धयुक्तालतास्तत्र पुष्पमञ्जरिधारिणीः ॥
दृष्टवान्भगवान्हृष्टः खदिरान्वेतसार्जुनान् । चूतानिम्बानागवृक्षाः कदम्बाबकुलाधवाः ॥
प्रियङ्गवः पाटलाख्याः शाल्मल्यस्सहरिद्रवाः ।
शालास्तालास्तमालाश्च चम्पकाश्च मनोरमाः ॥ ५४ ॥
तथैवान्ये व्यराजन्त सभायां पुष्पितादुमाः । एला ककुभकङ्कोललवलीकर्णपूरकाः ॥
मधुकाः कोविदाराश्च बहुतालसमुच्छ्रयाः । अञ्जनाशोकपर्णासा बहवश्चित्रकाद्रुमाः ॥
वरुणाश्च पलाशाश्च पनसास्सह चन्दनैः । नीलास्सुमनसश्चैव नीपाश्चाश्वत्थतिन्दुकाः
पारिजाताश्च तरवो मल्लिका भद्रदारवः । अटरूषाः पीलुकाश्च तथाचैवैलवालुकाः ॥
मन्दारकाः कुरबकाः पुन्नागाः कुटजास्तथा । रक्ताः कुरबकाश्चैव नीलाश्चागरुभिः सह
किंशुकाश्चैव भव्याश्च दाडिमाबीजपूरकाः । कालेयकादुकूलाश्च हिङ्गवस्तैलवर्त्तिकाः
खर्जूरा नारिकेलाश्च हरीतकमधूककाः । सप्तपर्णाश्च बिल्वाश्च सयावाश्च शरावताः ॥
असनाश्च तमालाश्च नानागुल्मसमावृताः । लताश्चविविधाकाराः पुष्पपत्रफलोपगाः ॥
एते चान्ये च बहवस्तत्र काननजा द्रुमाः ।
नानापुष्पफलोपेता व्यराजन्त समन्ततः ॥ ६३ ॥
चकोराः शतपत्राश्च मत्तकोकिलशारिकाः। पुष्पितान्पुष्पिताग्रांश्च सम्पतन्ति महाद्रुमान्
रक्तपीतारुणास्तत्र पादपाग्रगताः खगाः । परस्परमवैक्षन्त प्रहृष्टा जीवजीवकाः ॥६५॥
तस्यां सभायां दैत्येन्द्रो हिरण्यकशिपुस्तदा । आसीन आसने चित्रदशनल्वप्रमाणतः

दिवाकरनिभे दिव्ये दिव्यास्तरणसंस्तृते । हिरण्यकशिपुस्तत्र आस्ते ज्वलितकुण्डलः
उपचेरुर्महादैत्या हिरण्यकशिपुं तदा । दिव्यतालानि गीतानि जगुर्गन्धर्वसत्तमाः ॥

विश्वाची सहजन्या च प्रम्लोचेति च पूजिता ।
दिव्याथ सौरभेयी च समीची पुञ्जिकस्थली ॥ ६९ ॥

मिश्रकेशी च रम्भा च चित्रभा श्रुतिविभ्रमा । चारुनेत्रा घृताची च मेनका चोर्वशी तथा
एतासहस्रशश्चान्या नृत्यगीतविशारदाः । उपातिष्ठन्त राजानं हिरण्यकशिपुं प्रभुम् ॥
उपासतेऽदितेः पुत्राः सर्वे लब्धवरास्तथा । बलिर्विरोचनस्तत्र नरकः पृथिवीसुतः ॥
प्रह्लादो विप्रचित्तिश्च गविष्ठश्च महासुरः । सुरहन्ता दुःखकर्ता सुमनास्सुमतिस्तथा ॥
घटोदरो महापार्श्वः क्रथनः पिठरस्तथा । विश्वरूपस्सुरूपश्च विश्वकायो महाबलः ॥
दशग्रीवश्च वाली च मेघवासा महासुरः । घटाभो विटरूपश्च ज्वलनश्चेन्द्रतापनः ॥
दैत्यदानवसङ्घास्ते सर्वे ज्वलितकुण्डलाः । स्रग्विणो वाग्मिणः सर्वे सर्वे च चरितव्रताः
सर्वे लब्धवराः शूरास्सर्वे विहितमृत्यवः । एते चान्ये च बहवो हिरण्यकशिपुं प्रभुम्
उपासते महात्मानं सर्वे दिव्यपरिच्छदाः । विमानैर्विविधाकारैर्भ्राजमानैरिवाग्निभिः ॥
महेन्द्रवपुषः सर्वे विचित्राङ्गदबाहवः । भूषिताङ्गादितेः पुत्रास्तमुपासत सर्वतः ॥ ७९ ॥
ऐश्वर्यं दैत्यसिंहस्य यथा तस्य महात्मनः । न श्रुतं नैव दृष्टं च कस्यापि भुवनत्रये ॥

रजतकनकचित्रवेदिकायां परिकृतरत्नविचित्रवीथिकायाम् ।
स ददर्श मृगाधिपः सभायां सुरुचिरजालगवाक्षशोभितायाम् ॥ ८१ ॥
कनकवलयहारभूषिताङ्गं दितितनयं स मृगाधिपो ददर्श ॥
दिवसकरकरप्रभं ज्वलन्तं दितिजसहस्रशतैर्निषेव्यमाणम् ॥ ८२ ॥

ततो दृष्ट्वा महाभागं कालचक्रमिवागतम् । नारसिंहवपुश्छन्नं भस्मच्छन्नमिवानलम् ॥
हिरण्यकशिपोः पुत्रः प्रह्लादो नाम वीर्यवान् । दिव्येन वपुषा सिंहमपश्यद्देवमागतम् ॥
तं दृष्ट्वा रुक्मशैलाभमपूर्वां तनुमाश्रितम् । विस्मिता दानवाः सर्वे हिरण्यकशिपुश्च सः

प्रह्लाद उवाच ।

महाराज महाबाहो दैत्यानामादिसम्भव । न श्रुतं नैव मे दृष्टं नारसिंहमिदं वपुः ॥८६॥

अव्यक्तं परमं दिव्यं किमिदं रूपमागतम् । दैत्यान्तकरणं घोरं शंसतीव मनो मम ॥८७॥
अस्य देवाः शरीरस्थाः सागराः सरितस्तथा । हिमवान्पारियात्रश्च ये चान्ये कुलपर्वताः
चन्द्रमास्सहनक्षत्रैरादित्यो रश्मिभिः सह । धनदो वरुणश्चैव यमः शक्रः शचीपतिः ॥
मरुतो देवगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः । नागा यक्षाः पिशाचाश्च राक्षसा भीमविक्रमाः

ब्रह्मा देवाः पशुपतिर्ललाटस्था भ्रमन्ति हि ।
स्थावराणि च सर्वाणि जङ्गमानि तथैव च ॥ ९१ ॥

भवांश्च सहितोऽस्माभिः सर्वैर्दैत्यगणैर्वृतः । विमानशतसङ्कीर्णा सर्वा या भवतः सभा
सर्वं त्रिभुवनं राजँल्लोकधर्मश्च शाश्वतः । दृश्यन्ते नरसिंहेऽस्मिंस्तथेदं निखिलं जगत्

प्रजापतिश्चात्र मनुर्महात्मा ग्रहाश्च योगाश्च मही नभश्च ।
उत्पातकालश्च धृतिर्मतिश्च रतिश्च सत्यं च तपो दमश्च ॥ ९४ ॥
सनत्कुमारश्च महानुभावो विश्वे च देवा ऋषयश्च सर्वे ।
क्रोधश्च कामश्च तथैव हर्षो दर्पश्च मोहः पितरश्च सर्वे ॥ ९५ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा हिरण्यकशिपुः प्रभुः । उवाच दानवान्सर्वान्गणांश्च सगणाधिपः

हिरण्यकशिपुरुवाच ।

मृगेन्द्रो गृह्यतामेष अपूर्वां तनुमास्थितः । यदि वा संशयः कश्चिद्वध्यतां वनगोचरः ॥

पुलस्त्य उवाच ।

ते दानवगणास्सर्वे मृगेन्द्रं भीमविक्रमम् । परिक्षिपन्तो मुदितास्त्रासयामासुरोजसा ॥
सिंहनादं विमुच्याऽथ नरसिंहो महाबलः । बभञ्ज तां सभां सर्वां व्यादितास्य इवान्तकः

सभायां भज्यमानायां हिरण्यकशिपुः स्वयम् ।
चिक्षेपास्त्राणि सिंहस्य रोषव्याकुललोचनः ॥ १०० ॥

सर्वास्त्राणामथ श्रेष्ठं दण्डमस्त्रं सुदारुणम् । कालचक्रं तथा घोरं विष्णुचक्रं तथापरम् ॥
पैतामहं महात्युग्रं त्रैलोक्यनिर्मितं महत् । विचित्रामशनिं चैव शुष्कार्द्रं चाशनिद्वयम् ॥
रौद्रं तथोग्रशूलं च कङ्कालं मुसलं तथा । अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चैव ब्राह्ममस्त्रं तथैव च ॥१०३॥

नारायणास्त्रमैन्द्रं च आग्नेयं शैशिरं तथा । वायव्यं मथनं चैव कपालमथ किङ्करम् ॥
तथाऽप्रतिहतां शक्तिं क्रौञ्चमस्त्रं तथैव च । मोहनं शोषणं चैव सन्तापनविलापने ॥

कम्पनं शातनं चैव महास्त्रं चैव रोधनम् ।

कालमुद्गरमक्षोभ्यं तापनं च महाबलम् ॥ १०६ ॥

संवर्तनं मोहनं च तथा मायाधरं वरम् । गान्धर्वमस्त्रं दयितमसिरत्नं च नन्दकम् ॥
प्रस्वापनं प्रमथनं वारुणं चास्त्रमुत्तमम् । अस्त्रं पाशुपतं चैव यस्याप्रतिहता गतिः ॥

एतान्यस्त्राणि दिव्यानि हिरण्यकशिपुस्तादा ।

असृजन्नरसिंहस्य दीप्तस्याग्नेरिवाहुतिम् ॥ १०९ ॥

अस्त्रैः प्रज्वलितैः सिंहमावृणोदसुरोत्तमः । विवस्वान्घर्मसमये हिमवन्तमिवांशुभिः ॥
सह्यमर्षानिलोद्भूतो दैत्यानां सैन्यसागरः । क्षणेनाप्लावयत्सर्वं मैनाकमिव सागरः ॥
प्रासैः पाशैश्च खड्गैश्च गदाभिर्मुसलैस्तथा । वज्रैरशनिभिश्चैव बहुशाखैर्महाद्रुमैः ॥
मुद्गरैः कूटपाशैश्च शिलोलूखलपर्वतैः । शतघ्नीभिश्च दीप्ताभिर्दण्डैरपि सुदारुणैः ॥

ते दानवाः पाशगृहीतहस्ता महेन्द्रतुल्याशनितुल्यवेगाः ।

समन्ततोऽभ्युद्यतबाहुकायाः स्थिताः स शीर्षा इव नागपोताः ॥ ११४ ॥

सुवर्णमालाकुलभूषिताङ्गाः सुतीक्ष्णदंष्ट्रा कुलवक्त्रगर्ताः ।

स्फुरत्प्रभास्ते च सशृङ्गदेहाश्चीनांशुका भान्ति यथैव हंसाः ॥ ११५ ॥

सोऽसृजद्दानवो मायामग्निं वायुसमीरितम् । तमिन्द्रस्तोयदैः सार्धं सहस्राक्षोमहाद्युतिः
महता तोयवर्षेण शमयामास पावकम् । तस्यां प्रतिहतायां तु मायायां युधि दानवः ॥
असृजद्घोरसङ्काशं तमस्तीव्रं समन्ततः । तमसा संवृते लोके दैत्येष्वात्तायुधेषु च ॥
स्वतेजसा परिवृतो दिवाकर इवोद्गतः । त्रिशिखां भ्रुकुटीमस्य ददृशुर्दानवारणे ॥
ललाटस्थां त्रिकूटस्थां गङ्गां त्रिपथगामिव । ततः सर्वासु मायासु हतासुदितिनन्दनाः

हिरण्यकशिपुं दैत्या विषण्णाश्शरणं ययुः ।

ततः प्रज्वलितः क्रोधात्प्रदहन्निव तेजसा ॥ १२१ ॥

तस्मिन्क्रुद्धेतुदैत्येन्द्रेतमोभूतमभूज्जगत् । आवहः प्रवहश्चैव विवहोऽथ समीरणः ॥ १२२

परावहस्संवहश्च उद्वहश्च महाबलः । तथा परिवहः श्रीमानुत्पातभयशंसिनः ॥ १२३ ॥
इत्येवं क्षुभिताः सप्त मरुतो गगनेचराः । ये ग्रहास्सर्वलोकस्य क्षये प्रादुर्भवन्ति हि ॥
ते सर्वे गगने दृष्टा व्यचरंश्च यथासुखम् । अयोगतश्चाप्यचरद्योगं निशि निशाचरः ॥
सग्रहः सहनक्षत्रैस्तारापतिररिंदम । विवर्णतां च भगवान्गतो दिवि दिवाकरः ॥१२६॥
कृष्णः कबन्धश्च तदा लक्ष्यते सुमहान्दिवि । असृजच्चासितां सूर्योधूमवत्तांविभावसु ॥
गगनस्थश्च भगवानभीक्ष्णं परिविष्यते । सप्तधूमनिभा घोराः सूर्या दिवि समुत्थिताः
सोमस्य गगनस्थस्य ग्रहास्तिष्ठन्ति शृङ्गगाः । वामे च दक्षिणे चैव स्थितौ शुक्रबृहस्पती
शनैश्चरो लोहिताङ्गो लोहिताङ्गसमद्युतिः । समं समधिरोहन्त सर्वे वै गगनेचराः ॥
शृङ्गाणिशनकैर्घोरा युगान्तावर्त्तनग्रहा । चन्द्रमाश्च सनक्षत्रो ग्रहैः सह तमोनुदः ॥३१॥
चराचरविनाशाय रोहिणीं नाभ्यनन्दत । गृहीतोराहुणा चन्द्र उल्काभिरभिहन्यते ॥

उल्काः प्रज्जलिताश्चन्द्रे व्यचरन्त यथासुखम् ।
देवानामधिपोदेवः सोऽप्यवर्षतशोणितम् ॥ ३३ ॥

अपतद्गगनादुल्काविद्युद्रूपा महास्वना । अकाले च द्रुमास्सर्वे पुष्प्यन्ति च फलन्ति च ॥

लताश्च सफलाः सर्वा या आहुर्दैत्यनाशिकाः ।
फले फलान्यजायन्त पुष्पे पुष्पं तथैव च ॥ ३५ ॥
उन्मीलन्ति निमीलन्ति हसन्ति प्ररुदन्ति च ।
विक्रोशन्ति च गम्भीरं धूमायन्ते ज्वलन्ति च ॥ ३६ ॥

प्रतिमास्सर्वदेवानां कथयन्त्यो महद्भयम् । आरण्यैः सह संसृष्टा ग्राम्याश्च मृगपक्षिणः
चुक्रुशुर्भैरवं तत्र मृगयुद्धउपस्थिते । नद्यश्च प्रतिकूलाः प्रवहन्ति कलुषोदकाः ॥ ३८ ॥
न प्राकाशन्त च दिशो रक्तरेणुसमाकुलाः । वानस्पत्या न पूज्यन्ते पूजनार्हा कथञ्चन ॥
वायुवेगेन हन्यन्ते भज्यन्ते प्रणमन्ति च । तथा च सर्वभूतानां छाया न परिवर्त्तते ॥
अपरेण गते सूर्ये सलोकानां युगक्षये । तदा हिरण्यकशिपोर्दैत्यस्योपरि वेश्मनः ॥
भाण्डागारा युधागारे निविष्टमभवन्मधु । असुराणां विनाशाय सुराणां विजयाय च
दृश्यन्ते विविधोत्पाता घोरा घोरनिदर्शनाः । एते चान्ये च बहवो घोररूपाःसमुत्थिताः

दैत्येन्द्रस्यविनाशाय दृश्यन्ते रजशंसिनः । मेदिन्यां कम्पमानायां दैत्येन्द्रेण महात्मना

महीधरा नागगणा निपेतुरमितौजसः ।

विषज्वालाकुलैर्वक्त्रैर्विमुञ्चन्तो हुताशनम् ॥ १४५ ॥

चतुःशीर्षाः पञ्चशीर्षाः सप्तशीर्षाश्च पन्नगाः । वासुकिस्तक्षकश्चैव कर्कोटकधनञ्जयौ

एलामुखः कालियश्च महापद्मश्च वीर्यवान् । सहस्रशीर्षश्शुद्धाङ्गो हेमतालध्वजः प्रभुः ॥

शेषोऽनन्तो महानागो ह्यप्रकम्प्यश्च कम्पिताः ।

दीप्यन्तेऽन्तर्जलस्थानि पृथिवीविवराणि वै ॥ १४८ ॥

सप्तदैत्येन्द्रकोपेन कम्पितानि समन्ततः । नानातेजोधराश्चापि पातालतलचारिणः ॥

पातालेसहसा क्षुब्धे दुष्प्रकम्प्याःप्रकम्पिताः ।·हिरण्यकशिपुर्दैत्यस्तदासंस्पृष्टवान्महाम्

सन्दष्टौष्ठपुटः क्रुद्धो वराह इव पूर्वजः । गङ्गाभागीरथी चैव कौशिकी सरयूरपि ॥१५१

यमुना चाथ कावेरी कृष्णावेणी च निम्नगा ।

तुङ्गा भद्रा महावेगा नदी गोदावरी तथा ॥ १५२ ॥

चर्मण्वती च सिन्धुश्च तथा नदनदीपतिः । मेलकप्रभवश्चैव शोणो मणिनिभोदकः ॥

नर्मदा च शुभस्रोता तथा वेत्रवती नदी ।

गोमती गोकुलाकीर्णा तथा पूर्वा सरस्वती ॥ १५४ ॥

महाकालमही चैव तमसा पुष्पवाहिनी । जम्बूद्वीपं रत्नवच्च सर्वरत्नोपशोभितम् ॥

सुवर्णपुटकं चैव सुवर्णाकरमण्डितम् ।

महानदश्च लौहित्यश्शैलः काञ्चनशोभितः ॥ १५६ ॥

पत्तनं कोशकाराणां कर्शि च रजताकरम् । मगधाश्च महाग्रामाः पुण्ड्रा उग्रास्तथैव च

सुह्मा मल्ला विदेहाश्च मालवाः काशिकोसलाः ।

भवनं वैनतेयस्य दैत्येन्द्रेणाभिकम्पितम् ॥ १५८ ॥

कैलासशिखराकारं यत्कृतं विश्वकर्मणा। रक्ततोयो महाभीमो लौहित्यो नाम सागरः ॥

उदयश्च महाशैल उच्छ्रितः शतयोजनम् । सुवर्णवेदिकः श्रीमान्मेघपङ्क्तिनिषेवितः ॥

भ्राजमानोऽर्कसदृशैर्जातरूपमयैर्द्रुमैः । सालैस्तालैस्तमालैश्च कर्णिकारैश्च पुष्पितैः ॥

अयोमुखश्च विख्यातः सर्वतो धातुमण्डितः । तमालवनगन्धश्च पर्वतो मलयःशुभः ॥
सुराष्ट्राश्च सबाह्लीकाश्शूद्राभीरास्तथैव च ।
भोजाः पाण्ड्याश्च वङ्गाश्च कलिङ्गास्ताम्रलिप्तकाः ॥ १६३ ॥
तथैव पौण्ड्राः शुभ्राश्च वामचूडास्सकेरलाः । क्षोभितास्तेनदैत्येनदेवाश्चाप्सरसांगणाः
अगस्त्यभवनं चैव यदगस्त्यकृतं पुरा । सिद्धचारणसङ्घैश्च विप्रकीर्णं मनोहरम् ॥१६५
विचित्रनानाविहगं सुपुष्पितमहाद्रुमम् । जातरूपमयैः शृङ्गैरप्सरोगणसेवितम् ॥१६६॥
गिरिः पुष्पितकश्चैव लक्ष्मीवान्प्रियदर्शनः । उत्थितःसागरं भित्त्वाविश्रामश्चन्द्रसूर्ययोः
रराज स महाशृङ्गैर्गगनं विलिखन्निव । चन्द्रसूर्यांशुसङ्काशैः सागराम्बुसमावृतैः ॥
विद्युत्त्वान्पर्वतः श्रीमानायतः शतयोजनम् । विद्युतां यत्रसम्पाता निपात्यन्ते नगोत्तमे ॥
ऋषभः पर्वतश्चैव श्रीमानृषभसंस्थितः । कुञ्जरः पर्वतः श्रीमानगस्त्यस्य गृहं शुभम् ॥
विमलाख्या च दुर्द्धर्षा सर्पाणां मालती पुरी । तथा भोगवती चापि दैत्येन्द्रेणाभिकम्पिता
महासेनगिरिश्चैव पारियात्रश्च पर्वतः । चक्रवांश्च गिरिश्रेष्ठो वाराहश्चैव पर्वतः ॥
प्राग्ज्योतिषपुरं चापि जातरूपमयं शुभम् । यस्मिन्नुवास दुष्टात्मा नरको नाम दानवः
मेघश्च पर्वतश्रेष्ठो मेघगम्भीरनिस्स्वनः । षष्टिस्तत्र सहस्राणि पर्वतानां विशांपते ॥
तरुणादित्यसङ्काशो मेरुश्चैव महान्गिरिः । यक्षराक्षसगन्धर्वैर्नित्यं सेवितकन्दरः ॥१७५
हेमगर्भो महासेनस्तथामेघसखोगिरिः । कैलासश्चैव शैलेन्द्रो दानवेन्द्रेण कम्पितः ॥
हेमपुष्करसञ्छन्नं तेन वैखानसं सरः । कम्पितं मानसं चैव हंसकारण्डवाकुलम् ॥
त्रिशृङ्गः पर्वतश्रेष्ठः कुमारी च सरिद्वरा । तुषारचयसंच्छन्नो मन्दरश्चापि पर्वतः ॥
उशीरबीजश्च गिरिर्भद्रप्रस्थस्तथाद्रिराट् । प्रजापतिगिरिश्चैव तथा पुष्करपर्वतः ॥१७९
देवाभः पर्वतश्चैव तथा वै वालुकागिरिः । क्रौञ्चसप्तर्षिशैलश्चधूम्रवर्णश्च पर्वतः ॥१८०
एते चान्ये च गिरयो देशा जनपदास्तथा । नद्यःससागराः सर्वा दानवेनाभिकम्पिताः
कपिलश्च महीपुत्रो व्याघ्रवांश्च प्रकम्पितः । खेचराश्च निशा पुत्राःपातालतलवासिनः ॥
गणस्तथा परो रौद्रो मेघनामाङ्कुशायुधः ।
ऊर्द्ध्वगो भीमवेगश्च सर्वे एतेऽभिकम्पिताः ॥ १८३ ॥

गदी शूली करालश्च हिरण्यकशिपुस्तथा। जीमूतघननिर्घोषो जीमूत इव वेगवान् ॥
देवारिर्दितिजो दृप्तो नृसिंहं समुपाद्रवत्। स तु तेन ततस्तीक्ष्णैर्मृगेन्द्रेण महानखैः ॥
तदोङ्कारसहायेन विदार्य निहतो युधि ॥ १८५ ॥
मही च कालश्च शशी नभश्च ग्रहाश्च सूर्याश्च दिशश्च सर्वाः।
नद्यश्च शैलाश्च महार्णवाश्च गताः प्रसादं दितिपुत्रनाशात् ॥ १८६ ॥
ततः प्रमुदिता देवा ऋषयश्च तपोधनाः। तुष्टुवुर्नामभिर्दिव्यैरादिदेवं सनातनम् ॥१८७
यत्त्वया विधृतं देव नारसिंहमिदं वपुः। एतदेवार्चयिष्यन्ति परापरविदो जनाः ॥१८८

ब्रह्मोवाच।

भवान्ब्रह्मा च रुद्रश्च महेन्द्रो देवसत्तमः। भवान्कर्त्ता विकर्त्ता च लोकानां प्रभवोऽव्ययः
परां च सिद्धिं च परं च सत्वं परं रहस्यं परमं हविश्च।
परं च धर्मं परमं यशश्च त्वामाहुरग्र्यं परमं पुराणम् ॥ १९० ॥
परंच सत्यं परमं तपश्च परं पवित्रं परमं च मार्गम्।
परं च यज्ञं परमं च होत्रं त्वामाहुरग्र्यं परमं पुराणम् ॥ १९१ ॥
परं शरीरं परमं च ब्रह्म परं च योगं परमां च वाणीम्।
परं रहस्यं परमां गतिं च त्वामाहुरग्र्यं परमं पुराणम् ॥ १९२ ॥

पुलस्त्य उवाच।

एवमुक्त्वा तु भगवान्सर्वलोकपितामहः। स्तुत्वा नारायणं देवं ब्रह्मलोकं गतः प्रभुः ॥
ततो नदत्सु तूर्येषु नृत्यन्तीष्वप्सरःसु च। क्षीरोदस्योत्तरं कूलं जगाम हरिरीश्वरः ॥
नारसिंहं वपुर्देवः स्थापयित्वा सुदीप्तिमान्। पौराणं रूपमास्थाय प्रययौ गरुडध्वजः ॥
अष्टचक्रेण यानेन भूतियुक्तेन भास्वता। अव्यक्तप्रकृतिर्देवः स्वस्थानं गतवान्प्रभुः ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे नरसिंहप्रादुर्भावो नाम सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।

———

अष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

अन्धकासुरकथानकवर्णनम् ।

श्रीभीष्म उवाच ।

नरसिंहस्यमाहात्म्यं विस्तरेणत्वयेरितम् । तथा भवस्य माहात्म्यं भैरवास्याभिधीयताम्

पुलस्त्य उवाच ।

तस्यापि देवदेवस्य शृणु त्वं कर्म चोत्तमम् । आसीद्दैत्योऽन्धकोनाम भिन्नाञ्जनचयोपमः

तपसा महता युक्तोह्यवध्यस्त्रिदिवौकसाम् । स कदाचिन्महादेवं पार्वत्यासहितं विभुम्

क्रीडमानं तदा दृष्ट्वा हर्तुं देवीं प्रचक्रमे । एतां देवीं हराम्यद्य वियोगे मृत्युमेष्यति ॥

ततः स्थिरा भवित्री मे भार्यैषा लोकसुन्दरी । बिम्बौष्ठं चारुवदनं चारुकान्ततरं मुखम्

यद्येषा न भवेद्भार्याजीविते किं प्रयोजनम् । एतां मतिमथास्थाय मन्त्रिभिःसहमन्त्र्यच

चक्रे योगं ससैन्यस्य सेनापतिमभाषत ॥ ७ ॥

अन्धक उवाच ।

आनयस्व रथं मह्यं जैत्रं देवनिपातनम् । जयिष्ये त्रिदशान्सर्वान्विष्णुरुद्रपुरोगमान् ॥

हरिष्ये पर्वतसुतां तया मेऽपहृतं मनः ॥

पुलस्त्य उवाच ।

मन्त्रिणा तस्य;चाख्यातः कनकस्य वधस्सुरैः ।

परभार्यानुरक्तस्य कृतो देवः सवासवैः ॥ ६ ॥

श्रुत्वा कोपपरीतात्मा बभूवासुरसत्तमः । हत्वा तु कनकं शक्रो भयादन्धासुरस्यच ॥

जगाम शरणान्वेषी कैलासं शङ्करालयम् । दृष्ट्वा प्रणम्य देवेशं चन्द्रार्द्धकृतशेखरम् ॥

भीतो विज्ञापयामास धृतसाहस्रलोचनः ॥ १२ ॥

इन्द्र उवाच ।

अभयं देहि मे देव दानवादन्धकादहम् । बिभेमि तस्य पुत्रोऽद्य मया युधि निपातितः

तद्यावन्न स जानाति हतं पुत्रं महासुरः । तावत्तत्रस्थ एवाशु हन्यतां मद्भयावहः ॥
स्त्रीलौल्याद्दानवः क्रूरः परभार्यापहारकः । सर्वथा घातनीयस्ते भवता सुरसत्तम ॥

पुलस्त्य उवाच ।

शक्रस्यैवं वचः श्रुत्वा शरण्यः शङ्करस्तदा । ददावभयमेवासौ माभैरिति शतक्रतोः ॥
दत्ताभयोऽथ कैलासादाजगाम कुशस्थलीम् । वृतो भूतगणैरीशोवधार्थं चान्धकस्य तु
कृत्वा रूपं महाकायं विश्वरूपं सुभैरवम् । सर्पैर्ज्वलद्भिर्धावद्भिर्भीमं भीमभुजङ्गवत् ॥
जटासटाभिराकाशं फणिरत्नशिखार्चिषा । दहन्नतीवतेजोभिः कालाग्निरिव संक्षये ॥
मुखैर्दंष्ट्राङ्कुराङ्कैश्च द्वितीयेन्दुकलोज्ज्वलैः । पातालोदररूपाभैर्भैरवारावनादिभिः ॥२०॥
भुजैरनेकसाहस्रैर्बहुशस्त्रकृतग्रहः । बह्वाभरणभूषाढ्यै रणे घोरनिनादिभिः ॥ २१ ॥
सिंहचर्मपरीधानं व्याघ्रत्वगुत्तरीयकम् । गजाजिनकृताटोपं पतद्भृङ्गरवाकुलम् ॥२२॥
ईदृग्रूपंविधायेशो दनुदैत्यभयावहम् । अवातरन्महीं भीमो दनूनां क्षयकारकः ॥२३॥

अन्धासुरोऽपि दनुजः पुत्रं श्रुत्वा हतं युधि ।
क्रोधेन तमसाविष्टो रणतूर्याण्यचोदयत् ॥ २४ ॥

संहत्यावहितः प्राप्तो यत्र ते त्रिदशाः स्थिताः। महत्या सेनया सार्द्धं रथवारणयुक्तया ॥
ते देवा दानवान्वीक्ष्य महाहवकृतादरान् । व्यपयात तनुत्राणाः शम्भुं शरणमन्वयुः ॥
माभैष्टेति च तान्देवो देवानुक्त्वा त्रिलोचनः । गृहीत्वा शूलमातिष्ठद्दंष्ट्रारवधरो रुषा ॥
अन्धकेनाथ रुष्टेन शतकोटिशरैर्गणाः । निहताश्चापि देवानां बहूनामेकता कृता ॥२८॥
सस्फुलिङ्गार्चिषो वह्नेर्मुञ्चमानः पिनाकधृत् । शरैः समावृतं चक्रे अन्धकं रथगं ततः ॥
दनुनाथो रथस्थोऽथ शिथिलः शिथिलायुधः । निमन्त्र्य दानवान्सर्वान्स योद्धुमुपचक्रमे
बहुधा तद्बलं भग्नंविविधायुधयोधिभिः । युधि वीरैर्हतं देवैः स्थाणुनासख्यमाश्रितैः ॥
दानवश्चान्धकः सैन्यं भिन्नं दृष्ट्वा कृतं सुरैः । आत्मानंचमहेशेन निरुद्धं बाणकोटिभिः
विह्वलीभूतदेहोऽसौ धैर्यमालम्ब्य केवलम् । पिनाकं चैव रुद्रस्य गृह्य रुद्रमताडयत् ॥
पिनाकस्याभिघातेन रुद्रो भूमिमथागमत् । भूमौ निपातिते देवे चलितं भुवनत्रयम् ॥
तत्यजुः सागरावेलां पर्वताः शिखराणि च । नक्षत्राणि वियोगीनि जग्मुर्मुक्तान्यनेकशः

पतिते भुवि देवेशे अन्धको गदया पुनः । जघान रुषितो नागं हत्वा तं पातयद्भुवि ॥
शिवं त्यक्त्वा नागराजः प्रपलाय्यान्यतो गतः ।
मुहूर्त्ताच्चेतनां लब्ध्वा उत्थितः परमेश्वरः ॥ ३७ ॥
गृहीत्वा परशुं दिव्यं दानवं नैव पश्यति ।
कृत्वा तु तामसीं मायां मायाशतविशारदः ॥ ३८ ॥
तया विमोहिते देवे क्व नु वै दानवो गतः । शम्भोर्भयमथो प्राप्य किंनु पापः करिष्यति
तमसाच्छादिता यावद्देवा व्याकुलतां गताः ।
सम्भ्रान्तमानसानीकास्तदोचुः कार्यगौरवात् ॥ ४० ॥
एतस्मिन्नन्तरे सूर्यस्तेजोरूपो व्यवस्थितः । उत्तस्थौ नररूपेण कुर्वन्वितिमिरा दिशः
नष्टे तमसि हृष्टाङ्गे खद्योते प्रकटस्थिते । देवामुदमवापुस्ते स्पष्टाननविलोचनाः ॥४२॥
उद्गीतास्तु सुराः सर्वे गणाः स्कन्दपुरोगमाः ।
स्तुवन्ति विविधैः स्तोत्रैर्नररूपं दिवाकरम् ॥ ४३ ॥
अनौपम्यं जगद्व्यापि ब्रह्मविष्णुशिवात्परम् ।
स्निग्धविद्रुमसच्छायं सिन्दूरारुणसप्रभम् ॥ ४४ ॥
प्रभासन्त तदा दृष्ट्वा पञ्चाङ्गालिङ्गितावनिः । पुनः प्रणामप्रवणं प्रणिधानपुरःसरम् ॥
आलोक्य स्निग्धया दृष्ट्या देवदेवं त्रिलोचनः । उवाच स्निग्धगम्भीरवाचा देवं शनैर्हरः

हर उवाच ।

पूरयन्निव तेजोभिर्भगवान्भुवनत्रयम् । दैत्यमायाभिपन्नानां दर्शनाकुलचेतसाम् ॥
प्राणिनामिदमेवैकमविसंवादि दैवतम् ॥ ४७ ॥
अयमेव च संसारसागरात्सकलादपि । सत्त्वानुत्तारयन्देवः कर्णधारायते प्रभुः ॥
यजन्तो जन्तवो भक्त्या यं देवं विविधाः सदा ।
निःश्रेयसाय कल्पन्ते तं नतो भास्करं विभुम् ॥ ४९ ॥
यस्तूदयाद्रिशिखरे मुकुटायमानलीलागभस्तिभिरलं कुसुमप्रकाशैः ।
व्याप्य स्वदीधितिगणैःप्रदिशो दिशश्च देदीप्यते स सविता विभवायलोके॥

ब्रह्मेन्द्ररुद्रमरुदच्युतवह्निपाथोनाथप्रयोगनिपुणैश्च ऋषीन्द्रसङ्घैः ।
श्रेयोऽर्थिभिः प्रतिदिनं हिमसाङ्गरागैर्दिव्याङ्गरागपरिलिप्तसमस्तदेहैः ॥५१॥
पूज्यं वपुस्तव सदा प्रलये हि वेदैर्गीर्भिर्विचित्रपदमण्डलमण्डिताभिः ।
ये त्वां स्तुवन्ति परसद्मनि सद्महीना नित्यं प्रसारितकरा भुवि ते भवन्ति ॥
ये दद्रुकुष्ठपिटिकादिभिरर्दिताङ्गाः शीर्णत्वचः कुनखिनश्च्युतकेशपाशाः ।
देवेश तेऽपि तवपादनता भवन्ति सद्यो द्विरष्टशरदाकृतयो मनुष्याः ॥ ५३ ॥
सामेति सामगगणा हि मखार्थकं त्वा मध्वर्यवस्त्वृगिति बह्वृचमुख्यपूगाः ॥
त्वामेवमार्यमितिकायविदोऽधिगन्तुं नागाश्च वेत्ति पितरोऽप्यथ सर्वगन्धम्
मायेति चोपनिषदर्कषडेवदेवा मर्त्यास्तथावयमिवेह उपासतेऽमी ।
गन्धर्वकिन्नरगणाः सहचारणैस्तु रूपं तथा च भगवन्प्रतिपद्यसे त्वम् ॥
ये नार्चयन्ति सततं भवतोऽर्च्यमर्चिस्तेऽर्चिष्प्रतापितदिगम्बरवित्तहीनाः ।
क्षुत्क्षमामकण्ठजठरा घटखर्परेण भिक्षामटन्ति परवेश्मसुतेऽर्थहीनाः ॥५६॥
उत्फुल्लकोकनदकोशविशालनेत्रमीषद्विलासलुलिताञ्चितपिङ्गतारम् ।
कामं प्रशस्ततरसुन्दरहाररम्यमुत्तुङ्गपीवरपयोधरभारखिन्नम् ॥ ५७ ॥
रम्भोपमोरुपृथुपीननितम्बबिम्बानद्धक्वणन्मणिरणद्रशनाकलापम् ।
वृन्दं ललाटतटकोटिपटान्तलम्बि हेमाञ्चलाञ्चितमुखं कुलपालिकानाम् ॥
कान्तं गृहेषु कलगद्गदभाषितानां झङ्कारनूपुररवेण विरावितानाम् ।
तेषां कृशानुकरमिन्दुसमानकान्तं यैरर्चितोऽसि भगवन्भवमोचनस्त्वम् ॥
ब्रह्मात्वमेव हरिरस्यनिलोऽनलोऽसिरुद्रोऽन्तकोऽसिवरुणोऽस्यमराधिपोऽसि ।
सोमोऽसि वायुरसि भूरसि चेश्वरोऽसि यक्षोऽसि वित्तपतिरस्यपराजितोऽसि ॥
ये सप्तसप्तिसुरवाहरणेन मुक्ता भूमावथेति तरसो स्तरंतरीताः ।
व्योमैतदन्तरहितं परितो हि गत्वा गच्छन्ति न श्रमपदं हि मनागपीमे ॥
ध्यानैकयोगनिरताश्च समाधिभावाद्ध्यात्वा पदं तव तुरीयमनन्तमूर्ते ।
मुक्तामयास्तनुभृतो न भियाभियुक्तास्तद्ब्रह्म शाश्वतमचिन्त्यमनाद्यनन्तम् ॥

जन्मादिरोगरहितं परमं पुराणमीशं जरामरणशोकभयातिरिक्तम् ।
स्थूलानुभावनगणागणितं विशुद्धं वेदान्तवादिभिरलं परिमन्यते यत् ॥
त्वामग्निपुञ्जवपुषं तपसां निवासं याता दिवं सुचिरकालमुपास्य भक्ताः ॥
भानो सुरासुरसमूहशिरोनिघृष्टपादारविन्दुयुगलामलचारुमूर्ते ॥ ६४ ॥
भूतेशभूतवरदासकृदव्ययात्मन्व्योमाट्टहास सवितर्भुवनैकदीप ।
ऋक्साममन्त्रयजुषामधिवास नाम सृष्टिस्थितिप्रलयकारणलोकपाल ॥
दीनस्य देवकृपणस्य भवे भवे मे मग्नस्य चारुदविचारमनोरथानि ।
शश्वद्यतीश्वरशशीकरकङ्कघोरोत्पातो जरामरणशोकरुगान्तरस्य ॥ ६६ ॥
यःप्रातः सायमिदं मध्याह्ने वा पठेच्च दीप्तांशोः ।
सालोक्यं याति रवेः प्राप्नोति धर्मार्थकामांश्च ॥ ६७ ॥

नित्यं तस्माच्च सूर्याच्च मनसोऽभिहितं च यत् । नमस्ते देवदेवेश भक्तानामभयंङ्कर ॥
सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु सर्वदेवनमस्कृत । तिग्मांशो वै नमस्तुभ्यं जगतश्चक्षुषेनमः ॥
प्रभाकरनमस्तेऽस्तु भानो जय जगत्पते । अनेन दनुमुख्येन पीडितोऽहं जगत्पते ॥
किं करोमि कथं चैनं घातयामि दिवाकर ॥ ७१ ॥

सूर्य उवाच ।

जय शूलेन पापिष्ठं मायाशतविशारदम् । जयं प्राप्नुहि देवेश हत्वाशूलेन चान्धकम् ॥

पुलस्त्य ऊवाच ।

गृह्य शूलं ततो दूरमाक्षिपत्तेजसा हरः । ततोऽन्धकस्त्रिशूलेनाताडयत्पापकर्मकृत् ॥
तस्मिन्युद्धे तथा रुद्रो ह्यन्धकेनाभिपीडितः । मुमोच बाणमत्युग्रं नाम्ना पाशुपतं हियत्
पिनाकमानम्यदोर्भ्यां पिनाकी शङ्करः स्वयम् ।
रुद्रबाणविनिर्भेदाद्रुधिरादन्धकस्य तु । अन्धकाश्च समुत्पन्नाश्शतशोऽथसहस्रशः ॥
तेषांविदार्यमाणानां रुधिरादपरैपुनः । बभूवुरन्धकाघोरा यैर्व्याप्तमखिलं जगत् ॥७६॥
तं तु मायाविनं दृष्ट्वा देवदेवस्तदान्धकम् । पानार्थमन्धकस्यास्य ससृजे मातृकास्तदा
माहेश्वरीं तथा ब्राह्मीं शौरीं वा वाडवीं तथा । सौपर्णीमथ वायव्यां शाङ्खिनींतैत्तिरींतथा

सौरीं सौम्यां शिवदूतीं चामुण्डामथ वारुणीम् ।
वाराहीं नारसिंहीं च वैष्णवीं च विभावरीम् ॥ ७६ ॥

शतानन्दांभगानन्दांपिच्छिलां भगमालिनीम् । बालामतिबलांरक्तांसुरभींमुखमण्डिताम्
मातृनन्दां सुनन्दां च विडालीं शकुनींतथा । रैवतीं च महापुण्यां तथैव शिखिपट्टिकाम्
शूलेन च ततो दैत्यं बिभेद त्रिपुरान्तकः । निर्गतं रुधिरं तस्मात्पपुस्ता मातरस्तदा
नीरक्तो हि तदादैत्यश्शुष्कतां प्राप भूपते । शूलेप्रोतस्तदा दैत्योदिव्यवर्षसहस्रकम् ॥
महाबलेन रुद्रेण विधृतोऽपि मृतो न हि । स्तुतस्तेन तदाशम्भुर्भक्त्या दैत्येन सुव्रत ॥

अन्धक उवाच ।

नमोऽस्तु शम्भो भवनाशहेतो नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ।
त्वं भूजलाग्नोरनभोऽर्कसोमयज्वाष्टमूर्तिर्भवभावनोऽलम् ॥ ८५ ॥
त्वां वै बाणो बहुवाद्येन तोष्य प्राप्तश्चैश्यं स्वे पुरे तत्स्वरक्ष्यम् ।
रक्षोऽधीशो बाहुभिस्तोल्यशैलं युष्मत्कान्तक्लिष्टरूपो ह्यनैषीत् ॥ ८६ ॥
प्राप्तोऽप्यैश्यं सर्वरक्षोगणानां पुत्रं चापि प्रोर्जितं शक्रबन्धम् ॥ ८७ ॥
भवभयहर हर परमउदार मम सुखकरणनिखिलसुरसार ।
जितमरुदभिमतवितरणपार तव पदकमलमिहारणसार ॥ ८८ ॥
तवेशपादपङ्कजं करोति यो नरोहृदिसदेशतस्यवाञ्छितंददासिभक्तिभावितः
मुनीश्वराःपुरा हरं भवन्तमेवमादरात्प्रपूज्यलिङ्गरूपिणं समापितामनोरथान्
भवोद्भवैकरूपिणं प्रपञ्चपञ्चकाकृति विचिन्त्यवृक्षकोटरस्थ एषजीवजीवनम्
भवेद्भवाङ्घ्रिचिन्तनाप्तसर्वकाम ईश्वर त्वदीयकिङ्करान्विते पदे पदेसमागतः
मूढोऽहंनाभि जानामि त्वां स्तोतुं भक्तवत्सल ।
सदीश्वरेण मनसाऽप्यनुकम्प्यो रणं गतः ॥ ९१ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इति स्तुतो महेशस्तु भक्त्या दैत्येन सादरम् ।
गणेशतां ददौ तस्मै नाम भृङ्गीरिटीति च ॥ ९२ ॥

एष ते महिमा भूप हरस्य भवहारिणः । कथितो विघ्नविघ्नाख्यस्तत्पराणां सुखावहः ॥

भीष्म उवाच ।

मनुष्यस्यापि देवत्वं सुखं राज्यं धनं यशः ।
जयं भोग्यं तथारोग्यमायुर्विद्यां श्रियं सुतम् ।
बन्धुवर्गशिवं सर्वं ब्रूहि मे विप्रसत्तम ॥ ९४ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

एभिर्गुणैर्युतः श्रीमान्सदैव ब्राह्मणो भुवि । त्रैलोक्ये तु सदा मेध्यो विप्रदेवो युगे युगे
पूजयित्वा द्विजान्देवाः स्वर्गं भुञ्जन्ति चाक्षयम् ।
धरामवन्ति राजानो लोकावित्तं सुखं शिवम् ॥ ९६ ॥
लोके विप्रसमो नास्ति देवानामपि दैवतम् । स च धर्ममयः साक्षाद्भुक्तिमुक्तिप्रदो भृशम्
लोकानां स गुरुः पूज्यस्तीर्थभूतोऽनघो जनः ।
सर्वदेवालयः सत्वो निर्मितो ब्रह्मणा पुरा ॥ ९८ ॥
इममर्थं पुरा पृष्टो नारदेन पितामहः । कस्मिंस्तु पूजिते ब्रह्मन्प्रसन्नो माधवो भवेत्

ब्रह्मोवाच ।

यस्य विप्राः प्रसीदन्ति तस्य विष्णुःप्रसीदति । तस्माद्ब्राह्मणशुश्रूषुः परंब्रह्माऽधिगच्छति
विष्णुर्ब्राह्मणदेहेषु सदा वसति नान्यथा ।
तस्माद्ब्राह्मणपूजायां विष्णुस्तुष्यति तत्क्षणात् ॥ १०१ ॥
विप्रान्यः पूजयेन्नित्यं दानमानार्चनादिभिः । कृतं क्रतुशतं तेन विध्युक्तं प्रियदक्षिणम्
ब्राह्मणस्य मुखं क्षेत्रमनूषरमकण्टकम् । वापयेत्सर्वबीजानि सा कृषिस्सार्वकालिकी
अभिगम्य तु यद्दत्तं यच्च दानं मनोरमम् । विद्यतेसागरस्यान्तो दानस्यान्तो न विद्यते
मनसापि न हिंसन्ति भूदेवमाततायिनम् ।
मनोऽनुकूलतां यान्ति देवैरपि च दुर्लभाम् ॥ १०५ ॥
गृहे यस्यागतो विद्वान्नैराश्यं नोपगच्छति । सर्वपापक्षयस्तस्य चाक्षयं स्वर्गमश्नुते ॥
काले देशे च पात्रे च विप्रे यश्चार्पयेद्वसु । तद्धनं चाक्षयं विद्धि जन्म जन्मनि तिष्ठति ॥

न च दारिद्र्यतामेति नातुरो न च कातरः । मनोऽनुकूलां प्रमदामर्चयित्वा द्विजाँल्लभेत्

कृत्वा साहसकर्माणि दद्याद्विप्राय पर्वसु ।

तद्दानं सुगुणं प्रोक्तमभयं लाभएव च ॥ १०६ ॥

विप्रपादतलोद्घृष्टिक्षतोभवति यः करः । स करः श्रीकरो नाम अन्यः कर्मकरः करः ॥

विप्रपादरजः पूताः पूतास्तज्जलबिन्दुभिः ।

विपद्भिश्च सदा पापैर्मुक्ता यान्ति त्रिविष्टपम् ॥ १११ ॥

विप्रपादरजः पूताः शुचयो गृहचत्वराः । पुण्यक्षेत्रसमास्ते स्युः प्रशस्ता यज्ञकर्मसु ॥

आदौ ब्रह्ममुखाद्विप्रः समुद्भूतः पुरानघः । वेदास्तत्रैव सञ्जाताः सृष्टिसंस्थितिहेतवः ॥

तस्माद्विप्रमुखे वेदाश्चार्पिताः पुरुषेण हि । पूजार्थं सर्वलोकानां सर्वयज्ञार्थतो ध्रुवम् ॥

पितृयज्ञे विवाहे च वह्निकार्येषु शान्तिषु ।

प्रशस्ता ब्राह्मणा नित्यं सर्वस्वस्त्ययनेषु च ॥ ११५ ॥

देवा भुञ्जन्ति हव्यानि बलिं प्रेतादयोऽसुराः ।

पितरश्चैवकव्यानि विप्रस्यैव मुखाद् ध्रुवम् ॥ ११६ ॥

देवेभ्यश्च पितृभ्यश्च यो दद्याद्यज्ञकर्मसु । दानं होमं बलिं चैव विना विप्रेण निष्फलम्

भुञ्जन्ति चासुरास्तत्र प्रेता दैत्याश्च राक्षसाः ।

तस्माद् ब्राह्मणमाहूय तेषु कर्माणि कारयेत् ॥ ११८ ॥

काले देशे च पात्रे च लक्षकोटिगुणं भवेत् । श्रद्धया च द्विजं दृष्ट्वा प्रकुर्यादभिवादनम्

दीर्घायुस्तस्य वाक्येन चिरजीवी भवेन्नरः । अनभिवादनाद्विप्र द्वेषादश्रद्धयापि च ॥

आयुः क्षीणं भवेत्पुंसां भूतिनाशश्च दुर्गतिः । आयुर्वृद्धिर्यशोवृद्धिर्वृद्धिर्विद्याधनस्य च

पूजयित्वा द्विजांश्रेष्ठो भवेन्नास्त्यत्र संशयः ॥ १२१ ॥

न विप्रपादोदककर्दमानि न वेदशास्त्रप्रतिघोषितानि ।

स्वाहास्वधास्वस्तिविवर्जितानि श्मशानतुल्यानि गृहाणि तानि ॥ १२२ ॥

नारद उवाच ।

कश्चपूज्यतमो विप्रो ह्यपूज्यो वाऽथ को भवेत् ।

विप्रस्य लक्षणं ब्रूहि याथातथ्यं गुरोरपि ॥ १२३ ॥

ब्रह्मोवाच ।

पूज्यःश्रोत्रियको नित्यं सदाचारसमन्वितः । सद्वृत्तः कलुषैर्मुक्तस्तीर्थभूतोजनोऽनघः

नारद उवाच ।

जातः कः श्रोत्रियस्तात सत्कुले वाप्यसत्कुले ।
सदसत्कर्म कर्ता वा कः पूज्यो भुवि वाडवः ॥ १२५ ॥

ब्रह्मोवाच ।

सच्छोत्रियकुलेजातो ह्यक्रियो नैवपूजितः । असत्क्षेत्रकुले पूज्यो व्यासवैभाण्डकौयथा

क्षत्रियाणां कुले जातो विश्वामित्रोऽस्ति मत्समः ।
वेश्यापुत्रो वसिष्ठश्च अन्ये सिद्धा द्विजादयः ॥ १२७ ॥

तस्मात्सच्छोत्रियादीनां शृणु पुत्रक लक्षणम् । धराणां तीर्थभूतानां सर्वपापहराय च

जन्मनाब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विजउच्यते ।
विद्ययायातिविप्रत्वं त्रिभिःश्रोत्रियलक्षणम् ॥ १२९ ॥

विद्यापूतो मन्त्रपूतो वेदपूतस्तथैव च । तीर्थस्नानादिभिर्मेध्यो विप्रः पूज्यतमः स्मृतः
नारायणेसदा भक्तः शुद्धान्तःकरणस्तथा । जितेन्द्रियो जितक्रोधस्समः सर्वजनेषु च
गुरुदेवातिथेर्भक्तः पित्रोः शुश्रूषणेरतः । परदारे मनो यस्य कदाचिन्नैव मोदते ॥१३२॥

पुराणकथको नित्यं धर्माख्यानस्य सन्ततिः ।
अस्यैव दर्शनान्नित्यमश्वमेधादिजं फलम् ॥ १३३ ॥

संलापे गतिमेत्यस्य भागीरथ्या प्लवस्यच । व्रतैश्च विविधैः पूतो नित्यस्नानद्विजार्चनैः
मित्रामित्रे दयालुः स्यात्समः सर्वजनेषु च । परस्वं न हरेद्यस्तु तृणमप्यटवीगतम् ॥

कामक्रोधादिनिर्मुक्त इन्द्रियैरजितः पुमान् ।
परदारान्न गृह्णाति मनसाऽपि गृहागतान् ॥ १३६ ॥

नारद उवाच ।

गायत्र्या लक्षणं किं वा प्रत्येकाक्षरजंगुणम् । कुक्षिचरणगोत्राणां तस्याब्रूहिसुनिश्चयम्

ब्रह्मोवाच ।

छन्दो गायत्रीगायत्र्याः सविता देवता ध्रुवम् ।
शुक्लवर्णा त्वग्निमुखा विश्वामित्रऋषिस्तथा ॥ १३८ ॥
ब्रह्मणशिर आरूढा रूद्रविष्णुहृदि स्थिता ।
उपनयने नियोगः स्यात्साङ्ख्यायनसगोत्रजा ॥ १३९ ॥

त्रैलोक्यचरणा ज्ञेया पृथिवीकुक्षिसंस्थिता । चतुर्विंशतिस्थाने च पादादौमस्तकान्तके
चतुर्विंशत्यक्षरंन्यस्य ब्रह्मलोकं स विन्दति। प्रत्यर्णदेवतांज्ञात्वाविष्णुसायुज्यमाप्नुयात्
अपरं च प्रवक्ष्यामि गायत्र्या लक्षणं ध्रुवम् । सप्त पञ्च तथा ब्रह्मा यजुरष्टादशाक्षरम् ॥
ज्वलनादिहकारान्तं जले स्थित्वा शतं जपेत् । उपपातककोट्या तु तथातिपातकैरपि

ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुक्ता यान्ति ममालयम् ।
ॐ अग्नेर्वाक्पुंसि यजुर्वेदेन जुष्टात्सोमं पिब स्वाहा ॥ १४४ ॥

विष्णुमन्त्रं महामन्त्रं तथा माहेश्वरस्य च । देवीसूर्यगणेशानां तथा क्रतुभुजां सुत ॥
यस्य कस्य कुले जातो गुणवानेव तैर्गुणैः । साक्षाद्ब्रह्ममयो विप्रः पूजनीयः प्रयत्नतः ॥
दानं दद्याच्च विधिवत्सदा पर्वणि पर्वणि । अक्षयं लभते दाता जन्मकोटिशतान्प्रति ॥
स्वाध्यायनिरतोविप्रो यःपठेत्पाठयेत्परान् । धर्मंच श्रावयेल्लोके सदाचारं श्रुतिं स्मृतिम्

पुराणसंहितां नूनं तथैव धर्मसंहिताम् ।
श्रावयित्वा तु लोकेषु श्रावयित्वा द्विजातिषु ॥ १४९ ॥
उर्व्यां विष्णुसमः सोऽपि पूजनीयो नरैः सुरैः ॥ १५० ॥

यद्बलं चाक्षयं तस्य तीर्थभूतानघस्य च । समानमर्चनं कृत्वा नरो यात्यच्युतालयम्
कदाचित्क्रियते पापं विप्रः पापैर्नलिप्यते । चाण्डालस्य गृहे निष्ठौ भास्करज्वलनौयथा

याजनाध्यापनाद्यौनात्तथा वा सत्प्रतिग्रहात् ।
विप्राणां न भवेद्दोषो ज्वलनार्कसमा द्विजाः ॥ १५३ ॥

तान्प्रतिग्रहजान्दोषान्प्राणायामव्यवस्थिताः । नाशयन्तीह पापानि वायुर्मेघमिवाम्बरे ॥
गायत्रीं यो जपेन्नित्यंप्राणायामसमन्विताम् । प्रत्यक्षरामरैर्युक्तां स्वाङ्गेविन्यस्यतामपि

सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो जन्मकोटिकृतादपि ।
ब्रह्मणः पदवीं प्राप्य स गच्छेत्प्रकृतेः परम् ॥ १५६ ॥
प्राणायामयुतां तस्माद्गायत्रीं जप नारद ॥ १५७ ॥

नारद उवाच ।

प्राणायामाः कथं ब्रह्मन्प्रत्येकाक्षरदेवताः । तेषां न्यासं तथाङ्गेषु वद तात यथाक्रमम् ॥

ब्रह्मोवाच ।

गुददेशेत्वपानःस्याद्धृदिप्राणोऽस्तिदेहिनः । तस्माद्गुदंसमाकुञ्च्य प्राणेनसहयोजयेत्
पूरकेण तदा पुत्र कृत्वा कुम्भकमुत्तमम् । प्राणायामत्रयं कृत्वा गायत्रीं सञ्जपेद्द्विजः
अनेनैव जपेद्यस्तु महापातकसञ्चयः । सकृदुच्चारितेनैव क्षयं यात्युपपातकम् ॥ १६१ ॥
प्रतिवर्णस्वरं ज्ञात्वा विन्यसेद्यः कलेवरे । स जनो ब्रह्मतामेति फलं वक्तुं न शक्नुमः ॥
प्रत्यक्षरस्य यद्दैवं शृणु पुत्र वदाम्यहम् । यज्जप्त्वा च पुनर्मातुः स्तनं न पिबति द्विजः

आग्नेयं प्रथमं ज्ञेयं वायव्यं तु द्वितीयकम् ।
तृतीयं सूर्यदैवत्यं चतुर्थं वै (यु) तं तथा ॥ १६४ ॥

पञ्चमं यमदैवत्यं वारुणं षष्ठमुच्यते । सप्तमं बार्हस्पत्यं तु पार्जन्यं चाष्टमं विदुः ॥
ऐन्द्रं च नवमं ज्ञेयं गान्धर्वं दशमं तथा । पौष्णमेकादशं विद्धि मैत्रं द्वादशकं स्मृतम् ॥
त्वाष्ट्रं त्रयोदशं ज्ञेयं वासवं तु चतुर्दशम् । मारुतं पञ्चदशकं सौम्यं षोडशकं स्मृतम् ॥
आङ्गिरसं सप्तदशं वैश्वदेवमतःपरम् । आश्विनं चैकोनविंशं प्राजापत्यं तु विंशकम्
सर्वदेवमयं ज्ञेयमेकविंशकमक्षरम् । रौद्रं द्वाविंशकं ज्ञेयं ब्राह्मं ज्ञेयमतः परम् ॥ १६९ ॥
वैष्णवं तु चतुर्विंशमेता अक्षरदेवताः । जपकाले तु सञ्चिन्त्य तासु सायुज्यतां व्रजेत्

ज्ञात्वा तु देवतास्तस्य वाङ्मयं विदितं भवेत् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मणःपदवीं व्रजेत् ॥ १७१ ॥

गायत्रीं विन्यसेत्पूर्वं शरीरे चात्मनो बुधः । चतुर्विंशतिस्थानेषु आपादमस्तकेषु च ॥
तत्कारं विन्यसेद्योगी पादाङ्गुष्ठे विचक्षणः । सकारं गुल्फदेशे तु विकारं जङ्घयोर्न्यसेत्
तुकारं जानुमध्ये च वकारं चोरुदेशतः । रेकारं गुह्यदेशे तु णिकारं वृषणेन्यसेत् ॥

यङ्कारं कटिदेशे तु भकारं नाभिमण्डले। गोकारं जठरे न्यस्य देकारं स्तनयोर्न्यसेत् ॥
वकारं हृदये न्यस्य स्यकारं करदेशतः। धीकारं वदने न्यस्य मकारं तालुके न्यसेत् ॥

हिकारं नासिकाग्रे च धिकारं चक्षुषोर्न्यसेत्।
योकारं तु भ्रुवोर्मध्ये योकारं च ललाटके॥ १७७ ॥
नः कारं तु मुखे पूर्वे प्रकारं दक्षिणे मुखे।
चोकारं पश्चिमे न्यस्य दकारं चोत्तरे न्यसेत् १७८ ॥
यात्कारं मूर्ध्नि विन्यस्यसर्वव्यापी व्यवस्थितः।
एतान्विन्यस्य धर्मात्मा ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ॥ १७९ ॥

महायोगी महाज्ञानी परं निर्वाणकं व्रजेत्। सन्ध्याकाले पुनर्न्यासं शृणु त्वं तद्यथार्थतः

ॐभूरिति हृदये न्यस्य ॐभुवशिशरसि न्यसेत्।
ॐस्वःशिखायै तत्सवितुर्वरेण्यमिति कलेवरे ॥ १८१ ॥

ॐभर्गोदेवस्य धीमहीति नेत्रयोः। ओं धियो योनः प्रचोदयादिति करयोर्न्यसेत् ॥

ॐआपोज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवःस्वरोम्।
इत्युदकस्पर्शमात्रेण पापात्पूतो व्रजेद्धरिम् ॥ १८३ ॥
ॐभूःॐभुवःॐस्वःॐमहःॐजनःॐतपःॐसत्यम्।
ॐतत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥
ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवःस्वरोम्।

इति सव्याहृतिं सप्रणवां दशोङ्कारां सन्ध्याकाले कुम्भकेन वारत्रयं जप्त्वा सूर्योपस्थाने सावित्रीं चतुर्विंशत्यक्षरां जप्त्वा महाविद्याधिको भवति ॥ ब्रह्मत्वं लभते ॥
षट्कुक्षिलक्षणां पुत्र गायत्रींशृणु यत्नतः। यां ज्ञात्वा तु परं ब्रह्मस्थानं गच्छति वै द्विजः॥

ओंतत्सवितुर्वरेणियं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥१८५॥

अथ गायत्री पञ्चशीर्ष लक्षणम्।

ॐभूः। ॐवः। ॐस्वः। ॐमहः। ॐजनः। ॐतपः। ॐसत्यम् ॥
ॐतत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥१८६ ॥

सव्याहृतिं तु गायत्रीं पुनर्न्यासं तु कारयेत् ।

सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यतां व्रजेत् ॥ १८७ ॥

ॐभूः पादाभ्याम् । ॐभुवः जानुभ्याम् । ॐस्वः कट्याम् । ॐमहः नाभौ ।

ॐजनः हृदये न्यसेत् । ॐतपः करयोः । ॐसत्यं ललाटे ॥

ॐतत्सवितुर्वरेणियं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात् ॥ इति शिखायाम् ॥

एवं विप्रो न जानाति स एव ब्राह्मणाधमः । न तस्य क्षीयते पाप्मा भवेद्भूरि प्रतिग्रहः

इमां यो वेत्ति गायत्रीं सर्ववीजसमन्विताम् ।

स वेत्ति चतुरो वेदान्योगज्ञानं जपत्रयम् ॥ १९० ॥

य एनां नैव जानाति सशूद्रात्परतः स्मृतः ।

तस्यापूतस्य विप्रस्य न देयं पितृपार्वणम् ॥ १९१ ॥

न स्नानफलदः कश्चित्सर्वंच निष्फलं भवेत् । विद्यावित्तं तथा जन्मद्विजत्वंकारणंयतः

निष्फलं सकलं तस्य मेध्यं पुष्पं यथाऽशुचौ । चतुर्वेदाश्च गायत्री पुरा वै तुलिता मया

चतुर्वेदात्परागुर्वी गायत्री मोक्षदा स्मृता । दशभिर्जन्मजनितं शतेन च पुराकृतम् ॥

त्रियुगं तु सहस्रेण गायत्री हन्ति किल्बिषम् ।

गायत्रीमक्षमालायां सायं प्रातश्च यो जपेत् ॥ १९५ ॥

चतुर्णामपि वेदानां फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ।

त्रिसन्ध्यं यो जपेन्नित्यं गायत्रीं हायनं द्विजः ॥ १९६ ॥

तस्य पापं क्षयं याति जन्मकोटिसमुद्भवम् । गायत्र्युच्चारमात्रेण पापकूटात्पुनाति च ॥

स्वर्गापवर्गमाप्नोति जप्त्वा नित्यं द्विजोत्तमः ।

वासुदेवस्य मन्त्राणि जपेद्यस्तु दिने दिने ॥ १९८ ॥

प्रणमेच्च हरेः पादौ स गच्छेदपवर्गिताम् । वासुदेवस्य स्तोत्राणि मुखेनापि कथोत्तमा

पङ्कस्य लवमात्रं तु तस्य देहेन तिष्ठति । वेदशास्त्रावगाहेन त्रिस्रोतः स्नानजं फलम्

धर्मपाठकृतां लोके यज्ञकोटिफलं लभेत् । एवं विप्रगुणान्वक्तुं न शक्नोमि द्विजोत्तम

विश्वरूपश्च को देही समूर्तोहरिरेवच । यस्य शापाद्विनाशःस्यादायुर्विद्यायशोधनम् ॥

वरदानात्समायान्ति सर्वाः सम्पत्तयस्तथा । विष्णुर्ब्रह्मण्यतामेति सदा विप्रप्रसादतः
नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च । जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमोनमः ॥
मन्त्रेणैवं हरिं यस्तु पूजयेत्सततं नरः । प्रसादी च हरिस्तस्य विष्णुसायुज्यतां व्रजेत्
य इदं शृणुयात्पुण्यमाख्यानं धर्मविग्रहम् । तस्य पापं क्षयं याति जन्मजन्मकृतं च यत्
यः पठेत्पाठयेद्वाऽपि उपदेष्टा जनस्य च । न तस्य पुनरावृत्तिः स्वर्गमक्षयमश्नुते ॥२०७
धनं धान्यं लभेदत्र राज्यभोगानरोगिताम् । सत्सुतं च शुभां कीर्तिं देववद्रमते दिवि ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे ब्राह्मणसंस्कारो
नामाष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पञ्चविधस्नानानि

नारद उवाच ।

तव प्रसादतो ज्ञातो विप्रः पुण्यतमश्च यः । यथा जानामि देवेश क्रियया ब्राह्मणाधमम्
ब्रूहि शीघ्रं सुरश्रेष्ठ यदि प्रीतिं मयीच्छसि ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच ।

स्नानैर्दशविधैर्मुक्तस्तथैव तर्पणादिभिः । सन्ध्यासंयमहीनश्च स एव ब्राह्मणाधमः ॥३॥
देवपूजाव्रतैर्मुक्तो वेदविद्यादिभिस्तथा । सत्यशौचादिभिश्चैव योगज्ञानाग्नितर्पणैः ॥
पञ्चस्नानानि विप्राणां कीर्तितानि महर्षिभिः । आग्नेयं वारुणंब्राह्मं वायव्यं दिव्यमेवच
आग्नेयं भस्मनास्नानमद्भिर्वारुणमुच्यते । आपोहिष्ठेति वै ब्राह्मं वायव्यं गोरजःस्मृतम्
अद्भिरातपवर्षाभिर्दिव्यं स्नानमुदाहृतम् । एतैस्तु मन्त्रतः स्नानात्तीर्थानांफलमाप्नुयात्
तुलसीपत्रसंलग्नं शालग्रामशिलाम्बु च । गवां शृङ्गोदकं चैव विप्रपादोदकं च यत् ॥
गुरूणामेव मुख्यानां पूतात्पूतमिति स्मृतिः ॥ ८ ॥

त्यागतीर्थादिभिर्यज्ञै व्रतहोमादिभिस्तथा । यत्फलं लभते धीरः स्नानैरेतैस्तु तत्फलम्
तर्पणैश्च विनिर्मुक्तः पितॄणामेव नित्यशः । पितृहा नरकं याति सन्ध्याहीनस्तु विप्रहा
मन्त्रव्रतविहीनश्च वेदविद्यागुणैरपि । यज्ञदानादिभिर्मुक्तो ब्राह्मणश्चाधमाधमः ॥ ११ ॥
यज्ञार्थका देवलका नाक्षत्रा ग्रामयाचकाः । परदाररतानित्यं पञ्चैते ब्राह्मणाधमाः ॥
मन्त्रसंस्कारहीनाश्च शुचिसंयमवर्जिताः । मोघाशिनो दुरात्मानो ब्राह्मणाश्चाधमाधमाः
अपिस्तेयरतामूढाः सर्वधर्मविवर्जिताः । उन्मार्गगामिनो नित्यं ब्राह्मणाश्चाधमाधमाः ॥
श्राद्धादिकर्मरहिता गुरुसेवाविवर्जिताः । अमन्त्राभिन्नमर्यादा एते सर्वाधमाधमाः ॥
असम्भाष्या इमे दुष्टास्सर्वे निरयगामिनः । अमेध्यास्ते दुराचारा अपूज्याश्च समन्ततः
खड्गोपजीविकाः प्रेष्या गोवाहनरता द्विजाः । कारुवृत्त्युपजीवाश्च गणवार्द्धुषिकाश्च ये
बालापण्याभिचाराश्च अन्त्यजाश्रयमाश्रिताः । कृतघ्नाश्च गुरुघ्नाश्च एते सर्वाधमाःस्मृताः
ये चैवान्ये हताचाराः पाषण्डा धर्मनिन्दकाः । दूषकादेवभेदानामेते ब्रह्मद्विषो द्विजाः ॥
तथापि ब्राह्मणश्चैव न हन्यव्यः कदाचन । एनं हत्वा द्विजश्रेष्ठ ब्रह्महा पुरुषो भवेत् ॥
अन्त्यजातिषु म्लेच्छेषु तथाचाण्डालजातिषु ।पतितोवान्नयोनिभ्यां न हन्तव्यःकथञ्चन
सर्वजातिस्त्रियं गत्वा सर्वाभक्ष्यस्य भक्षणात् । द्विजत्वंनविनश्येतपुण्याद्विप्रो भवेत्पुनः

नारद उवाच ।

ईदृशं दुष्कृतं कृत्वा पश्चात्पुण्यं समाचयेत् । कां गतिं यात्यसौ विप्रःसर्वलोकपितामह:

ब्रह्मोवाच ।

कृत्वा सर्वाणि पापानि पश्चाद्यस्तु जितेन्द्रियः । मुच्यते सर्वपापेभ्यः पुनर्ब्रह्मत्वमर्हति॥
शृणु पुत्रकथां रम्यां विचित्रां च पुरातनीम् ।
कस्यचिद्ब्राह्मणस्यापि यौवनाढ्यःसुतोऽभवत् ॥ २५ ॥
ततो यौवनसम्पत्तेर्मोहाच्च पूर्वकर्मणः । चाण्डालीमगमत्सद्यस्तस्याः प्रियतरोऽभवत्
तस्यामुत्पादितास्तेन पुत्रा दुहितरस्तथा । स्वकुटुम्बं परित्यज्य गृहे तस्याश्चिरंस्थितः
अन्याभक्ष्यं न चाश्नाति घृणया च सुरां त्यजेत् ।
तमुवाच सदा सा च भक्षयान्यतरां सुराम् ॥ २८ ॥

तामुवाच तदा शौचं गदितुं नार्हसिप्रिये । उत्कारोजायते तस्याः श्रवणात्सततं मम ॥

एकदा स मृगान्वेषाच्छ्रांतः सुप्तो गृहे दिवा ।

गृहीत्वा सा सुरां तस्य हसित्वा च मुखे ददौ ॥ ३० ॥

ततो विप्रमुखादग्निः प्रजज्वाल समन्ततः । ज्वाला तु सकुटुम्बां तामदहच्च गृहं वसु

हाहाकृत्वा समुत्थाय विललाप तदा द्विजः । विलापान्ते च जिज्ञासा समारब्धाचतेनहि

कुतश्चाग्निः समुद्भूतो गृहे दाहः कथं मम । ततः खे तमुवाचेदंतेजस्ते ब्राह्मणस्य च॥

कथिते तद्यथावृत्ते ब्राह्मणो विस्मयं गतः । विमृश्यार्थमुवाचेदं पुनः खेऽस्य हितं वचः

विप्रनष्टं सुतेजस्ते तस्माद्धर्मचरो भव । ततो मुनिवरान्गत्वा पप्रच्छात्महितं द्विजः ॥

तमूचुर्मुनयः सर्वे दानधर्मं समाचर ॥ ३६ ॥

ऋषय ऊचुः ।

पूयन्ते सर्वपापेभ्यो ब्राह्मणा नियमैर्व्रतैः । नियमाञ्शास्त्रदृष्टांश्च पूतत्वार्थमुपाचर ॥

चान्द्रायणांश्च कृच्छ्रांश्च तप्तकृच्छ्रान्पुनः पुनः ।

प्राजापत्यांश्च दिव्यांश्च दोषशोषाय सत्वरम् ॥ ३८ ॥

गच्छतीर्थानि पूतानि गोविन्दाराधनं कुरु । क्षयमेष्यन्ति पापानि नचिरेण समन्ततः ॥

पुण्यतीर्थप्रभावाच्च गोविन्दस्य प्रभावतः । क्षयमेष्यन्ति पापानि ब्रह्मत्वंप्राप्स्यतेभवान्

शृणु तात यथावृत्तं कथयामः पुरातनम् । आहारार्थी पुरा वत्स गरुड़ो विनतासुतः ॥

पतङ्गोऽपि बहिः साक्षादण्डान्निस्सृत्य शावकः । क्षुधार्थीमातरंप्राहभक्ष्यंमेदीयतामिति

ततः पर्वतसङ्काशं गरुडं च महाबलम् । दृष्ट्वा माता महाभागा तनयं हृष्टमानसा ॥४३॥

विनतोवाच ।

क्षुधां ते बाधितुं पुत्र न शक्नोमि समन्ततः । तव तातस्तपस्तेपे लौहित्यस्योत्तरेतटे॥

कश्यपो नाम धर्मात्मा साक्षाल्लोकपितामहः । तत्र गच्छ स्वपितरं पृच्छ कामं यथा तव

अस्योपदेशतस्तात क्षुधा ते शममेष्यति ॥ ४५ ॥

ऋषय ऊचुः ।

ततोमातुर्वचः श्रुत्वा वैनतेयो महाबलः । अगमत्पितुरभ्याशं समुहूर्तान्मनोजवः ॥

दृष्ट्वा तातं मुनिश्रेष्ठं ज्वलन्तमिव पावकम् । प्रणम्य शिरसा वाक्यमुवाच पितरं खगः ॥

वैनतेय उवाच ।

भक्षार्थी समनुप्राप्तः सुतोऽहं ते महात्मनः । क्षुधया पीडितो नाथ भक्ष्यं मे दीयतांप्रभो

ऋषय ऊचुः ।

ततो ध्यानं समालम्ब्य ज्ञात्वा तं विनतासुतम् । पुत्रस्नेहाद्वचश्चेदं प्रोवाचमुनिसत्तमः

कश्यप उवाच ।

अनेकशतसाहस्रानिषादाः सरितां पतेः । तीरे तिष्ठन्ति पापिष्ठास्तन्सम्भक्ष्य सुखी भव
तीर्थमुत्सादयन्तिस्म तीर्थकाका दुरासदाः । विना विप्रं निषादेषु भक्षयत्वमलक्षितम् ॥

ऋषय ऊचुः ।

इत्युक्तः प्रययौ पक्षी भक्षयामास तांस्ततः । अलक्ष्य भावोविप्रोऽपिगिलितस्तेनपक्षिणा
स तस्य गलके गाढं लालगीतिद्विजस्तदा । वमितुं गिलितुं चापि न शशाकद्विजोत्तमम्
गत्वाऽथ पितरं प्राह किमेतदिति मे पितः । लग्नं मे गलके सत्त्वं प्रतिकर्तुं न शक्नुयाम्

ऋषय ऊचुः ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कश्यपस्तमुवाचह ॥ ५५ ॥

कश्यप उवाच ।

मयोक्तं ते पुरा वत्स ब्राह्मणोऽयं न बुध्यसे ॥ ५६ ॥

ऋषय ऊचुः ।

इत्युक्त्वा च मुनिर्धीमान्द्विजं प्राह स धार्मिकः ॥ ५७ ॥

कश्यप उवाच ।

आगच्छ त्वं ममासन्नं हितं ते प्रवदाम्यहम् ॥ ५८ ॥

ऋषय ऊचुः ।

तमुवाच तदा विप्रः कश्यपं मुनिपुङ्गवम् ॥ ५९ ॥

विप्र उवाच ।

ममैते सुहृदो नित्यं सर्वे सम्बन्धिनः प्रियाः । श्वशुराःश्यालकाश्चाप्तास्सबालाश्चतथापरे

एतैः सह प्रयास्यामि निरयं चापि वा शिवम् ॥ ६१ ॥

ऋषय ऊचुः ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा विस्मितः कश्यपोऽब्रवीत् ॥ ६२ ॥

कश्यप उवाच ।

द्विजानां च कुले जातश्चाण्डालैः पतितो भवान् ।

पुरुषास्ते प्रतिष्ठन्ते घोरे च निलये ध्रुवम् ॥ ६३ ॥

चिराय निष्कृतिस्तेषां नैवास्तीहकथञ्चन । सर्वांश्चैव दुराचारांश्चाण्डालान्पापकारिणः

दोषांस्त्यक्त्वा नरः पश्चात्सुखी भवति नान्यथा ॥ ६५ ॥

अज्ञानाद्यदि वा मोहात्कृत्वा पापं सुदारुणम् ।

ततो धर्मं चरेद्यस्तु स गच्छेत्परमां गतिम् ॥ ६६ ॥

पापकृन्न चरेद्धर्मं पापे कुर्यान्मतिं पुनः । शिलानावं यथाऽऽरूढः सागरे संनिमज्जति॥

कृत्वासर्वाणि पापानि तथा दुर्गतिसञ्चयम् । उपशान्तो भवेत्पश्चात्तं दोषं शमयिष्यति

ऋषय ऊचुः ।

तमुवाच महाप्राज्ञं द्विजं मुनिवरोत्तमम् ॥ ६६ ॥

विप्र उवाच ।

यदिमां न जहातीह खगः सर्वांश्चबान्धवान् । ततःप्राणांच त्यक्ष्यामि खगेममाविघातिनि

नोचेत्त्यजतु मे बन्धून्प्रतिज्ञा मे दृढात्मनः ॥ ७१ ॥

ऋषय ऊचुः ।

ततस्तार्क्ष्यमुवाचेदं मुनिर्ब्रह्मवधे भयात् ॥ ७२ ॥

कश्यप उवाच ।

उद्वमैतान्सविप्रांश्च म्लेच्छानेतान्समन्ततः । वनेषु पर्वतान्तेषु दिक्षु तान्पतगेश्वर ॥७३॥

ऋषयऊचुः ।

उद्वमाम ततः शीघ्रं दोषज्ञः पितुराज्ञया । ततः सर्वेऽभवन्व्यक्ता अकेशाः श्मश्रुवर्जिताः

यवनाभोजनप्रीताःकिञ्चिच्छ्मश्रुयुताश्चये । अग्नौच नग्नकाःपापादक्षिणस्यामवाचकाः

घोराः प्राणिवधे प्रीता दुरात्मानो गवाशिनः ।
नैर्ऋते कुवदाः पापा गोब्राह्मणवधोद्यताः ॥ ७६ ॥
खर्पराःपश्चिमे पूर्वे निवसन्ति च दारुणाः । वायव्यां च तुरुष्काश्च श्मश्रुपूर्णागवाशिनः
अश्वपृष्ठसमारूढा प्रयुद्धेष्वनिवर्तिनः । उत्तरस्यां च गिरयो म्लेच्छाः पर्वतवासिनः ॥
सर्वभक्षा दुराचारा वधबन्धरताः किल । ऐशान्यां निरयाः सन्ति कर्तॄणां वृक्षवासिनः
एते म्लेच्छाः स्थिता दिक्षु घोरास्ते शस्त्रपाणयः ।
येषां च स्पर्शमात्रेण सचैलो जलमाविशेत् ॥ ८० ॥
एतेषां च कलौ देशेऽप्यकाले धर्मवर्जिते । संस्पर्शं च प्रकुर्वन्ति वित्तलोभात्समन्ततः
म्लेच्छांस्तान्मोचयित्वा तु क्षुधया परिपीडितः ।
पुनराह द्विजस्तात क्षुधा मे बाधतेतराम् ।
अवदद्गरुडं तत्र कश्यपः कृपया द्रुतम् ॥ ८२ ॥

कश्यप उवाच ।

तिष्ठन्तौ विपुलौ तत्र जिघांसू गजकच्छपौ । अप्रमेयौ महासत्त्वौ सागरस्यैकदेशतः ।
तावप्सु च द्रुतं वत्स क्षुधां ते वारयिष्यतः ॥८३ ॥

ऋषय उचुः ।

स पितुर्वचनं श्रुत्वा तत्र गत्वाऽभिपद्य तौ ।
नखैर्भित्त्वा कूर्मगजौ महासत्त्वौ महाजवः ॥ ८४ ॥
खमुत्पपात तौ धृत्वा विद्युद्वेगो महाबलः । आधारतां न गच्छन्ति नगाश्चमन्दरादयः ॥
ततो योजनलक्षे द्वे गत्वा मारुतरंहसा । महत्यां जम्बुशाखायां निपपात महाबलः ॥
भग्ना सा सहसा शाखा तां पतन्तीं खगेश्वरः ।
गोब्राह्मणवधाद्भीतो दधार तरसा बली ॥ ८७ ॥
धृत्वा तां रुचिरंवेगाद्द्रवन्तं खे महाबलम् । गत्वा विष्णुरुवाचेदं नररूपधरो हरिः ॥

विष्णुरुवाच ।

कस्त्वं भ्रमसि चाकाशे किमर्थं पतगेश्वर । विधृत्य महतीं शाखां महान्तौ गजकच्छपौ

तमुवाच द्विजस्तस्मिन्नररूपधरं हरिम्। गरुडोऽहं महाबाहो खगरूपः स्वकर्मणा ॥
कश्यपस्य मुनेस्सूनुर्विनतागर्भसम्भवः। पश्यैतौ च महासत्त्वौ भक्षणार्थं मया धृतौ ॥

न धरा च ममाधारो न वृक्षा न च पर्वताः।
अनेकयोजनान्यूर्ध्वं दृष्ट्वा जम्बूमहीरुहम् ॥ ९२ ॥
अपतं तस्य शाखायां सहेमौपरिभक्षितुम्।
भग्ना सा सहसा शाखा तां च धृत्वा भ्रमाम्यहम् ॥ ९३ ॥

कोटिकोटिसहस्राणां ब्राह्मणानां गवां वधात्। भयंतत्र विषादो मे सहसाप्राविशद्बुध

किं करोमि कथं यामि को मे वेगं सहिष्यति ॥ ९४ ॥

ऋषय उचुः।

इत्युक्तः पतगश्रेष्ठं प्रोवाचेदं हरिस्तदा ॥ ९५ ॥

विष्णुरुवाच।

अस्मद्बाहुं समारुह्य भक्षेमौ गजकच्छपौ ॥ ९६ ॥

गरुड उवाच।

ममाधारं न गच्छन्ति सागराश्चनगोत्तमाः। अथ चैवं महासत्वं कथं त्वं धारयिष्यसि
ऋतेनारायणादन्यः को मां धारयितुंक्षमः। त्रैलोक्ये कः पुमांस्तिष्ठेद्योवेगं मे सहिष्यति

हरिरुवाच।

स्वकार्यमुद्धरेत्प्राज्ञः स्वकार्यं कुरु साम्प्रतम्।
कृत्वा कार्यं खगश्रेष्ठ विजानीषे च मां ध्रुवम् ॥ ९९ ॥

ऋषय ऊचुः।

महासत्त्वं च तं दृष्ट्वा विमृश्य मनसाखगः। एवमस्त्विति चोक्त्वा स पपात ह महाभुजे
न चचाल भुजस्तस्यसन्निपातखगेशितुः। तत्र स्थित्वा स तां शाखां मुमोच पर्वतालये
शाखापतनमात्रेण सचराचरकानना। चचाल वसुधा चैव सागराः प्रचकम्पिरे ॥१०२॥

ततश्च खादितौ सत्त्वौ सहसा गजकच्छपौ।
तृप्तिं न प्राप्तवान्सोऽपि क्षुधा तस्य न शाम्यति ॥ १०३ ॥

एतज्ज्ञात्वा तु गोविन्दस्तमुवाच खगेश्वरम् ॥ १०४ ॥

विष्णुरुवाच ।

भुजस्य मम मांसं तु भक्षयित्वा सुखी भव ॥ १०५ ॥

ऋषय ऊचुः ।

इत्युक्ते प्रचुरं मांसं भुजस्य तस्य तेन हि । खादितं क्षुधया पुत्र व्रणं तस्य न विद्यते ॥

तमुवाच महाप्राज्ञश्चराचरगुरुं हरिम् ॥ १०६ ॥

वैनतेय उवाच ।

कस्त्वं किं वा प्रियं तेऽद्य करिष्यामि च साम्प्रतम् ॥ १०७ ॥

नारायण उवाच ।

विद्धि नारायणं मां हि त्वत्प्रियार्थं समागतम् ॥ १०८ ॥

ऋषयऊचुः ।

रूपं स्वं दर्शयामास प्रत्ययार्थं च तस्य वै । पीतवस्त्रं घनश्यामं चतुर्भुजमनोहरम् ॥

शङ्खचक्रगदापद्मधरं सर्वसुरेश्वरम् । तं च दृष्ट्वा गरुत्मांश्च प्रणम्य शिरसा हरिम् ॥

वैनतेय उवाच ।

प्रियं किं ते करिष्यामि वद नः पुरुषोत्तम ॥१११ ॥

ऋषय ऊचुः ।

तमब्रवीन्महातेजा देवदेवेश्वरो हरिः ॥ ११२ ॥

विष्णुरुवाच ।

भव मे वाहनं शूर सखे त्वं सार्वकालिकम् ॥ ११३ ॥

ऋषय ऊचुः ।

तमुवाच खगश्रेष्ठो धन्योऽहं विबुधेश्वर । सफलं जन्म मे नाथ त्वां च दृष्ट्वाऽद्यमे प्रभो
प्रार्थयित्वा च पितरावागमिष्यामितेऽन्तिकम् । प्रीतो विष्णुरुवाचेदं भवत्वमजरामर
अवध्यः सर्वभूतेभ्यः कर्मतेजश्चमत्समम् । सर्वत्र ते गतिश्चास्तु निखिलं तु सुखं ध्रुवम्
संमिलतु द्रुतं सर्वं यत्ते मनसि वर्तते । यथेष्टं प्रातिमाहारमकष्टेन प्रलप्स्यसे ॥११७॥

व्यसनान्मातरं सद्यो मोचयिष्यसि नान्यथा।
एवमुक्त्वा हरिः सद्यस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ११८ ॥
तार्क्ष्योऽपिपितरं गत्वा कथयच्चाखिलंततः। स तच्छ्रुत्वा प्रहृष्टात्मा तनयं पुनरब्रवीत्

कश्यप उवाच।

धन्योऽहं च खगश्रेष्ठ धन्या ते जननीशिवा। धन्यं क्षेत्रे कुलं चैव यस्यपुत्रस्त्वमीदृशः
यस्य पुत्रः कुले जातो वैष्णवः पुरुषोत्तमः।
कुलकोटिं समुद्धृत्य विष्णुसायुज्यतां व्रजेत् ॥ १२१ ॥
विष्णुं यः पूजयेन्नित्यं विष्णुं ध्यायेत गायति।
जपेन्मन्त्रं सदा विष्णोः स्तोत्रं तस्य पठिष्यति ॥ १२२ ॥
प्रसादं च भजेन्नित्यमुपवासं हरेर्दिने। क्षयाच्च सर्वपापानां मुच्यते नात्र संशयः ॥
यस्य तिष्ठति गोविन्दो मानसे च सदैव हि। स एव नरशार्दूलो विष्णुलोके महीयते॥
जले विष्णुः स्थितो नित्यं रम्यस्थाने च सत्पथे।
गवि विप्रे सदा स्वर्गे ब्रह्मागारे शुचेर्गृहे ॥ १२५ ॥
एतेषु च जपेद्यस्तु स पुण्यः पुरुषोत्तमः। जन्मकोटिसहस्रेभ्यः कृत्वा सत्कर्मसञ्चयम्
क्षयाच्च सर्वपापानां विष्णोः किङ्करतां व्रजेत्।
धन्योऽसौ मानवो लोके विष्णोस्सादृश्यमाव्रजेत् ॥ १२७ ॥
नित्यःसुरवरैः पूज्यो लोकनाथोऽच्युतोऽव्ययः। सुप्रसन्नोभवेद्यस्य स एव पुरुषोत्तमः
तपोभिर्बहुभिर्धर्मैर्मखैर्नानाविधैरपि। विष्णुर्नलभ्यते देवैस्त्वयाऽसौ विप्रलभ्यते॥१२९।
सपत्नीव्यसनाद्घोरान्मातरं ते प्रमोचय। ततोयास्यसि देवेशं कृत्वा मातुःप्रतिक्रियाम्

ऋषय ऊचुः।

गृहीत्वा जनकस्याज्ञां लब्ध्वा विष्णोर्वरं महत्।
अम्बापार्श्वं गतो हृष्टस्तां प्रणम्याग्रतः स्थितः ॥ १३१ ॥

विनतोवाच।

अभवद्भोजनं तेऽद्य पुत्र दृष्टः पितापि च। किमर्थं वा विलम्बस्ते चिन्तयाऽव्यथिताह्यहम्

ऋषय ऊचुः ।

स मातुर्वचनं श्रुत्वा गरुडःप्रहसन्निव। कथयामास वृत्तान्तं सा श्रुत्वा विस्मिताऽभवत्

विनतोवाच ।

कथं च दुष्करं कर्म शिशुभावात्त्वया कृतम् ।

धन्याऽहं मे कुलं धन्यं यस्त्वं विष्णुसखोऽभवः ॥ १३४ ॥

लब्ध्वा वरं महात्मानं दृष्ट्वा मे हृष्यते मनः । पौरुषेण त्वया वत्स उद्धृतं मे कुलद्वयम्

सुपर्ण उवाच ।

मातः किंते करिष्यामि प्रियमेव तदुच्यताम् ।

कार्यं कृत्वाऽथ यास्यामि पार्श्वं नारायणस्य च ॥ १३६ ॥

ऋषय ऊचुः ।

एतच्छ्रुत्वा तु सा प्राह गरुडंविनतासती। महद्दुःखं च मे चास्तिकुरुतातप्रतिक्रियाम्

भगिनी मे सपत्नी सा पणिताऽहं तया पुरा। तस्या दास्यमहं प्राप्ताकस्तारयतिमामितः

कृष्णंकृत्वा विषैरश्वं तस्याःपुत्रैर्महोरगैः। उषःकालेऽवदत्सा च अश्वोऽयंकृष्णतांव्रजेत्

ततोऽहमवदं तत्र सदा चायं रुचासितः । मिथ्या ते वचनं मातः प्रतिज्ञां साऽकरोत्तदा

ततोऽहमब्रवंकद्रूं शपथं नागमातरम् । यदीमं कृष्णताम्येति हरेरश्वमहं तदा ॥

कृता भवामि ते दासीत्यहमेतत्तदाऽवदम् ॥ १४१ ॥

ततस्तस्मिन्हरेरश्वे कृते कृष्णे च कृत्रिमैः । तस्याः पुत्रैश्च धूर्तैश्च दासीत्वमगमं तदा ॥

यस्मिन्काले ह्यभीष्टश्च तस्या द्रव्यं ददाम्यहम् ।

तस्मिन्काले ह्यदासीत्वं यास्यामि कुलनन्दन ॥ १४३ ॥

गरुड उवाच ।

पृच्छ शीघ्रं च मातस्तां करिष्यामि प्रतिक्रियाम् ।

भक्षयिष्यामि तान्नागान्प्रतिज्ञा मे यथार्थतः ॥ १४४ ॥

ऋषय ऊचुः ।

ततः कद्रूमुवाचेदं विनता दुःखिता सती ॥ १४५ ॥

विनतोवाच ।

अभीष्टं वद कल्याणि येन मुच्येय कृच्छ्रतः ॥ १४६ ॥

ऋषय ऊचुः ।

अब्रवीत्सादुराचारा पीयूषं दीयतामिति । एतच्छ्रुत्वा तु वचनमभवत्सा च निष्प्रभा
ततः शनैरुपागम्य तनयं प्राह दुःखिता ॥ १४७ ॥

विनतोवाच ।

अमृतं प्रार्थयत्पापा तात किंवा करिष्यसि ॥ १४८ ॥

ऋषय ऊचुः ।

श्रुत्वा वाक्यं गरुत्मांश्च महाक्रोधसमन्वितः ॥ १४९ ॥

गरुड उवाच ।

अमृतं चानयिष्यामि मातर्मा विमुखी भव ॥ १५० ॥

ऋषय ऊचुः ।

एवमुक्त्वा तु तरसा स गतः पितुरन्तिकम् ॥ १५१ ॥

गरुड उवाच ।

अमृतं चानयिष्यामि मातुरर्थेऽधुनाऽनघ ॥ १५२ ॥

ऋषय ऊचुः ।

स तस्य वचनं श्रुत्वा मुनिः प्राह खगेश्वरम् ॥ १५३ ॥

कश्यप उवाच ।

सत्यलोकस्य वै चोर्ध्वे विश्वकर्मविनिर्मिता । पुरीचास्ति सभा रम्या देवानांहितहेतवे
वह्निप्राकारदुर्लभ्या दुर्धर्षा चासुरैः सुरैः । रक्षार्थं निर्मितो देवः सुरैस्तत्र महाबलः ॥
यं यं पश्यति वीरः स स एव भस्मतां व्रजेत् ॥ १५६ ॥

सुपर्ण उवाच ।

नारायणाद्वरो लब्धो मया च मुनिसत्तम । भयं नास्तीह मे तात सुरासुरगणादपि ॥

ऋषय ऊचुः ।

एवमुक्त्वा गरुत्मान्स उद्धृत्यसागराज्जलम् । जगामाकाशमाविश्य खगश्चोर्ध्वमनोजवः
पक्षवातेन तस्यैवरजः समुद्गतं बहु । तस्यान्तिकं न च त्यक्तमगमत्तस्य तच्चयः ॥
गत्वा चञ्चूजलेनापि वह्निं निर्वापयद्बली। रजोभिः परिपूर्णाक्षो न सुरस्तं च पश्यति
जघान रक्षिवर्गांस्तानमृतं चाहरद्बली । आनयन्तं च पीयूषं खगं गत्वा शतक्रतुः ॥
ऐरावतं समारूढो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १६२ ॥

इन्द्र उवाच ।

खगरूपधरः कस्त्वं पीयूषं हरसे बलात् । अप्रियं सर्वदेवानां कृत्वा जीवेरितः कथम् ॥
विशिखैरग्निसङ्काशैर्नयामि यममन्दिरम् ॥ १६४ ॥

ऋषय ऊचुः ।

श्रुत्वा वाक्यं हरेः कोपादुवाच स महाबलः ॥ १६५ ॥

गरुड उवाच ।

नयामि तव पीयूषं दर्शय स्वपराक्रमम् ॥ १६६ ॥

ऋषय ऊचुः ।

एतच्छ्रुत्वा महाबाहुर्जघान विशिखैः शितैः । यथा मेरुगिरेः शृङ्गं तोयवर्षेण तोयदः
नखैरशनिसङ्काशैर्बिभेद गरुडो गजम् । मातलिं च रथं चक्रं तथा देवान्पुरस्सरान् ॥
व्यथितोऽसौ महाबाहुर्मातलिर्गजपुङ्गवः । विमुखाः पक्षवातेन सर्वे देवगणास्तदा ॥
ततस्तु कोपितो जिष्णुर्जघान कुलिशेन तम् ।
कुलिशस्यावपातेन न च क्षुब्धो महाखगः ॥ १७० ॥

स्वं मोघं भिदुरं दृष्ट्वा हरिर्भीतोऽभवत्तदा । संनिवृत्य ततो युद्धात्तत्रैवान्तरधीयत ॥
सुतरामपि गच्छन्तं वेगाद्भूतलमागतः । अब्रवीत्स सुरश्रेष्ठः सर्वदेवगणाग्रतः ॥१७२॥

शक्र उवाच ।

यदि दास्यसि पीयूषमिदानीं नागमातरि । भुजगाश्चामराः सर्वे क्रियन्ते हि ध्रुवं तया
प्रतिज्ञा ते भवेन्नष्टा न फलं जीवितस्य ते । तस्मादिदं हरिष्यामि संमतेन तवानघ ॥

गरुत्मानुवाच ।

यस्मिन्काले ह्यदासी सा माता मे दुःखिता सती ।
विदिता सर्वलोकेषु हरेऽमृतं हरिष्यसि ॥ १७५ ॥

ऋषय ऊचुः ।

एवमुक्त्वा महावीर्यो गत्वोवाच प्रसूं तदा ॥ १७६ ॥

गरुड उवाच ।

आनीतममृतं मातस्तस्या एव प्रदीयताम् ॥ १७७ ॥

ऋषय ऊचुः ।

प्रोत्फुल्लहृदया सा च दृष्ट्वा पुत्रंसहामृतम् । तामाहूयामृतं दत्त्वा चादासीत्वं तदागता
तृणकाष्ठानि भूतानि पशवश्च सरीसृपाः । दृष्ट्वा सविस्मयास्सर्वे देवा महर्षयस्तदा
मोचयित्वा तु तामम्बां गरुडः सुष्ठुतां गतः । एतस्मिन्नन्तरे शक्रो जहारसहसासुधाम्
निधाय गरलं तत्र तया चानुपलक्षितः । प्रहृष्टहृदया कद्रूः पुत्रानाहूय सम्भ्रमात् ॥
तेषां मुखे ददौ हृष्टा क्ष्वेडं चामृतलक्षणम् । तानुवाच प्रसूः पुत्रान्युष्माकं च कुलेसदा

मुखे तिष्ठन्त्वमी देवा बिन्दवस्तेन निर्वृताः ।
महर्षयस्ततो देवाः सिद्धगन्धर्वमानुषाः ॥ १८३ ॥

ऊचुः सन्तु कुले मातरस्माकं च प्रसादतः । नागैर्विसर्जिता देवाः ससिद्धा मुनयस्तथा

जग्मुः स्वमालयं हृष्टा नागाः प्रमुदिताः स्थिताः ।
एतस्मिन्नन्तरे नागांश्चखाद गरुडो बलात् ॥ १८५ ॥

दिक्षु पलायिताः शेषाः पर्वतेषु वनेषु च । सागरेषु च पाताले बिलेषु तरुकोटरे ॥१८६

निभृतेषु निकुञ्जेषु स्थिताः सर्पाश्च निर्वृताः ।
भुजगास्तस्य भक्ष्याश्च सदैव विधिनिर्मिताः ॥ १८७ ॥

स खादयित्वानागांश्चसम्भाष्यपितरावथ । विबुधान्पूजयित्वा तु जगाम हरिमव्ययम्
यः पठेच्छृणुयाद्वापि सुपर्णचरितं शुभम् । सर्वपापविनिर्मुक्तः सुरलोके महीयते ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे गरुडोत्पत्तिर्नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कश्यपोपदशेन चाण्डालपतितद्विजस्य सदाचाराचरणेन स्वर्गप्राप्तिः ।

ब्रह्मोवाच ।

अतः परं तु विप्रर्षे चाण्डालपतितो द्विजः । प्रलप्य च बहूञ्छ्लोकाञ्जगाम कश्यपंमुनिम्

गत्वोवाच मुनिश्रेष्ठ वदास्माकं हितं वचः । यथा पापाद्विमुच्येऽहं मुनिश्रेष्ठ तथा कुरु

ऋषय ऊचुः ।

तमुवाच महातेजा ईषद्धास्यः समन्ततः ॥ २ ॥

कश्यप उवाच ।

सन्दर्शनाच्च म्लेच्छानामुपशान्तोऽसि वै स्वयम् ।

गायत्र्याश्च जपैर्होमैर्व्रतैश्चान्द्रायणादिभिः ।

स्मर नित्यं हरेः पादमुपोष्य हरिवासरम् ॥ ४ ॥

अहर्निशं हरेर्ध्यानं प्रणामं कुरु तं प्रभुम् । तीर्थस्नानेन मन्त्रेण पङ्कस्यान्तं गमिष्यसि ॥

ततः पापक्षयादेव ब्राह्मणत्वं च लप्स्यसे । व्रतैर्वृषाधिकैर्मोक्षं नाशयन्कल्मषं द्विजः ॥

ब्रह्मोवाच ।

मुनेस्तस्यवचः श्रुत्वा कृतकृत्योऽभवत्तदा । पुण्यं स विविधं कृत्वा पुनर्ब्रह्मत्वमाप्तवान्

ततस्तप्त्वातपस्तीव्रं स्वर्लोकंचिरमभ्यगात् । सद्वृत्तस्याखिलंपारं क्षयंयाति दिनेदिने

असद्वृत्तस्यपुण्यं हि क्षयं यात्यञ्जनोपमम् । अनाचाराद्धतो विप्र आचारात्सुरतांव्रजेत्

ततः कण्ठगतैः प्राणैराचारं कुरुते द्विजः । कर्मणा मनसाङ्गेन सदाचारं सदा कुरु ॥

कश्यपस्योपदेशेन सविनीतोऽभवद्द्विजः । आचारं तु पुनःकृत्वा तपस्तप्त्वा दिवंगतः

अनाचारी हतो विप्रः स्वर्गलोकेषु गर्हितः । आचारं तु पुनः कृत्वा सुरलोके महीयते ॥

नारद उवाच ।

प्राप्नुवन्ति गतिं लोकाः पूजयित्वा द्विजोत्तमान् ।

द्विजानां पीडनं कृत्वा गतिं गच्छन्ति कां प्रभो ॥ १३ ॥

ब्रह्मोवाच ।

क्षुधासन्तप्तदेहानां ब्राह्मणानांमहात्मनाम् । नार्चयेच्छक्तितो भक्त्या स याति नरकंनरः
परुषेण क्रोशयित्वा क्रोधाद्यस्तु विसर्जयेत् । स याति नरकं घोरं महारौरवकृच्छ्रकम्
सन्निवृत्तस्ततः कीटाद्यन्त्यजातिषु जायते । ततो रोगी दरिद्रस्तु क्षुधया परिपीडितः
नावमन्येत्ततो विप्रं क्षुधया गृहमागतम् । न ददामीति यो ब्रूयाद्देवाग्निब्राह्मणेषु सः ॥
तिर्यग्योनिशतंगत्वा चाण्डाल्यमुपगच्छति । पादमुद्यम्ययो विप्रं हन्ति गां पितरौगुरुम्

रौरवे नियतो वासस्तस्य नास्तीह निष्कृतिः ।

यदि पुण्याद् भवेज्जन्म स एव पण्डुतां व्रजेत् ॥ १६ ॥

अतिदीनोविषादी च दुःखशोकाभिपीडितः । एवंजन्मत्रयं प्राप्य भवेत्तस्य च निष्कृतिः

मुष्टिचपेटकीलैश्च हन्याद्विप्रं तु यः पुमान् ।

तापने रौरवे घोरे कल्पान्तं सोऽपि तिष्ठति ॥ २१ ॥

अथजन्म समासाद्य कुक्कुरः क्रूरचण्डकः । अन्त्यजातिषु जातोऽपि दरिद्रःकुक्षिशूलवान्
पादमुद्यच्छते वा यस्तस्य पादे शिलीपदः । खञ्जो वा मन्दजङ्घो वा खण्डपादो भवेन्नरः
पक्षवातेन चाङ्गानि प्रकम्पन्ते सदैव हि । मातरं पितरं विप्रं स्नातकं च तपस्विनम् ॥

हत्वा गुरुगणं क्रोधात्कुम्भीपाके चिरं भवेत् ।

उषित्वा चैव जायेत कीटजातिषु तत्परम् ॥ २५ ॥

विरुद्धं परुषं वाक्यं यो वदेद्धि द्विजातिषु । अष्टौ कुष्ठाः प्रजायन्ते तस्य देहे दृढं सुत

विचर्चिकाऽथ दद्रूश्च मण्डलः शुक्तिसिध्मकौ ।

कालकुष्ठस्तथा शुक्लस्तरुणश्चातिदारुणः ।

ततो भिषक्प्रयोगे च पापात्पुण्यं पलायते । अपुण्याज्जलरेखेव तेनेव निधनं व्रजेत् ॥
एषां मध्ये महाकुष्ठास्त्रय एव प्रकीर्तिताः । कालकुष्ठस्तथा शुक्लस्त्वरुणश्चातिदारुणः
महापातकभावानां ज्ञानात्संसर्गतोऽपि वा । अतिपातकिनामेव त्रयो देहे भवन्ति वै ।
संसर्गात्सहसम्बन्धाद्रोगः सञ्चरतेनृणाम् । दूरात्परित्यजेद्धीरः स्पृष्ट्वा स्नानं समाचरेत्

पतितं कुष्ठसंयुक्तं चाण्डालं च गवाशिनम् ।
श्वानं रजस्वलां भिल्लं स्पृष्ट्वा स्नानं समाचरेत् ॥ ३२ ॥

दुरितस्यानुरूपेण देहे कुष्ठा व्यवस्थिताः । इहलोके परत्रैवाप्यत्र नास्ति तु संशयः ॥
न्यायेनोपार्जितां वृत्तिं ब्रह्मस्वं हरते तु यः । अक्षयं नरकं प्राप्य पुनर्जन्म न विद्यते ॥
पिशुनोयस्तु विप्राणां रन्ध्रान्वेषणतत्परः । तं दृष्ट्वाप्यथवा स्पृष्ट्वा सचैलो जलमाविशेत्
ब्रह्मस्वं प्रणयाद्भुक्तं दहत्यासप्तमं कुलम् । विक्रमेण तु भुञ्जानो दशपूर्वान्दशापरान् ॥
न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते । विषमेकाकिनं हन्ति ब्रह्मस्वं पुत्रपौत्रकम् ॥

मोहाच्च मातरं गत्वा ब्राह्मणीं च गुरोः स्त्रियम् ।
पतित्वा रौरवे घोरे पुनरुत्पत्तिदुर्लभः ॥ ३८ ॥

पतन्ति पितरस्तस्य कुम्भीपाकेऽथ तापने । अवीचिकालसूत्रे च महारौरवरौरवे ॥३९॥

कदाचिदपि वा तेषां निष्कृतिं नानुमेनिरे ।
प्राणं हत्वा द्विजातीनां स्वयं यात्यपुनर्भवम् ।
पतन्ति पुरुषास्तस्य रौरवे च सहस्रशः ॥ ४० ॥

नारद उवाच ।

सर्वेषामेव विप्राणां वधे च पातकं समम् । विषमं वाकुतस्तिष्ठेत्तत्त्वतो वक्तुमर्हसि ॥

ब्रह्मोवाच ।

हत्वा विप्रं ध्रुवं पुत्र पातकं यदुदाहृतम् । लभते ब्रह्महा घोरं वक्तव्यं चापरं शृणु ॥
लक्षकोटिसहस्राणां ब्राह्मणानां वधंभजेत् । वेदशास्त्रयुतंहत्वा श्रोत्रियं विजितेन्द्रियम्
विप्रं च वैष्णवं हत्वातस्माद्दशगुणोत्तरम् । स्ववंशान्पातयित्वा तु पुनर्जन्म न विन्दते

त्रिवेदं स्नातकं हत्वा वधस्यान्तं न विन्दते ॥ ४५ ॥

श्रोत्रियं च सदाचारं तीर्थमन्त्रप्रपूतकम् । ईदृशं ब्राह्मणं हन्तुः पापस्यान्तो न विद्यते
अपकारं समुद्दिश्य द्विजः प्राणान्परित्यजेत् । दृश्यते येन चान्येन ब्रह्महा स भवेन्नरः

वचोभिः परुषैर्वृत्तैः पीडितस्ताडितो द्विजः ।
यमुद्दिश्य त्यजेत्प्राणांस्तमाहुर्ब्रह्मघातिनम् ॥ ४८ ॥

ऋषयो मुनयो देवाः सर्वे ब्रह्मविदस्तथा । देशानांपार्थिवानां च सा च वध्या भवेदिह
अतो ब्रह्मवधं प्राप्य पितृभिः सह पच्यते । प्रायोपवेशकं विप्रं बुधः संमानयेद् ध्रुवम्
दोषैश्चापि विनिर्मुक्तमुद्दिश्य प्राणमुत्सृजेत् । स प्रलिप्तो वधैर्घोरैर्नतु यं परिकीर्तयेत् ॥

आत्मघातं द्रुमारोहं कोटरैरुपजीवनम् ।
यः कुर्यादात्मनो घातं स्ववंशे ब्रह्महा भवेत् ॥ ५२ ॥

भ्रूणं च घातयेद्यस्तु शिशुं वा आतुरं गुरुम् । ब्रह्महा स्वयमेव स्यान्नतु यं परिकीर्तयेत्
मारयेच्च सगोत्रं वा ब्राह्मणं ब्राह्मणाधमः । तस्यैवं तद्भवेत्पापं न तु यं परिकीर्त्तयेत्

पीडयित्वा द्विजं शूद्रः स्वकार्यं चापि साधयेत् ।
तत्रापापे च शूद्रस्य पातकं नान्यथा भवेत् ॥ ५५ ॥
तात्कालिकवधं हत्वा हन्तारमाततायिनम् ।
न च हन्ता च तत्पापैर्लिप्यते द्विजसत्तम ॥ ५६ ॥

आततायिनमायान्तमपि वेदान्तगं रणे । जिघांसन्तं जिघांसेच्च न तेन ब्रह्महा भवेत् ॥
अग्निदो गरदश्चैव धनहारी च सुतघः । क्षेत्रदारापहारी च षडेते ह्याततायिनः ॥ ५८ ॥
खलो राजवधोद्योगी पितॄणां च वधेरतः । अनुयायी नृपो राज्ञश्चत्वारश्चाततायिनः ॥
तत्क्षणान्नमृतं विप्रं पुनर्हन्तुं न युज्यते । पुनर्हत्वा वधं घोरं ज्ञानात्प्राप्नोति निश्चितम्
लोके विप्रसमो नास्ति पूजनीयो जगद्गुरुः । हत्वा तं यद्भवेत्पापं तत्परं च न विद्यते
देववत्पूजनीयोऽसौ देवासुरगणैर्नरैः । ब्राह्मणस्य समोनास्ति त्रिषुलोकेषु निश्चितम्

नारद उवाच ।

कां वृत्तिं समुपाश्रित्य जीवितव्यं द्विजेन हि । अपापेन सुरश्रेष्ठ तत्त्वतो वक्तुमर्हसि ॥

ब्रह्मोवाच ।

अयाचिता च या भिक्षा प्रशस्ता सा प्रकीर्तिता ।
उञ्छवृत्तिस्ततो भद्रा सुभद्रा सर्ववृत्तिषु ॥ ६४ ॥

यामाश्रित्य मुनिश्रेष्ठा गच्छन्ति ब्रह्मणः पदम् । दक्षिणायज्ञशेषाणां ग्राह्यायज्ञगतेनहि ॥

पाठनं याजनं कृत्वा ग्रहीतव्यं धनं द्विजैः ।

पाठयित्वा पठित्वा च कृत्वा स्वस्त्ययनं शुभम् ॥ ६६ ॥
ब्राह्मणानामिदं जीव्यं शिष्टावृत्तिःप्रतिग्रहः। शास्त्रोपजीविनोधन्याधन्यावृक्षोपजीविनः
धन्या वृक्षलता जीव्या वाटीसस्योपजीविनः । अन्नजन्तुवधेपापं तस्य दोषोपशान्तये
नवधान्यानिशस्तानि विप्रेभ्यः सम्प्रदापयेत् । नचेत्प्राणिवधे ह्यत्रक्षीयन्ते चायुषोध्रुवम्
तस्माद्दद्यात्सुबहूनि पितृदेवद्विजातिषु । अभावात्क्षत्रियावृत्तिर्ब्राह्मणैरुपजीव्यते ॥७० ॥
न्याययुद्धेषु योद्धव्यं चरेद्वीरव्रतं शुभम् । स तया च द्विजो वृत्त्या यद्धनं लभते नृपात्
पितृयज्ञादिदानेषु मेध्यं तद्धनमुच्यते । समभ्यसेद्धनुर्विद्यां वेदयुक्तां सदाऽनघः ॥७२॥
शक्तिकुन्तगदाखड्गपरिघाणां समन्ततः । अश्वारोहं गजारोहमैन्द्रजालममानकम् ॥७३
रथभूमिगतं युद्धं युक्तं सर्वत्र कारयेत् । द्विजदेवध्रुवाणां च स्त्रीणां वृत्तं तपस्विनाम् ।
साधुसाध्वीगुरूणां च नृपाणांरक्षणाद्ध्रुवम् । यत्पुण्यं लभ्यतेशूरैःकथंतद्ब्रह्मवादिभिः
सर्वपापक्षयं कृत्वा सोऽक्षयं स्वर्गमश्नुते । संमुखे न्याययुद्धेच पतन्ति ब्राह्मणा रणे ॥
तेव्रजन्ति परं स्थानं न गम्यं ब्रह्मवादिनाम् । धर्मयुद्धस्य यद्वृत्तं शृणु पुण्यं यथार्थतः
संमुखेन प्रयुध्यन्ते न च गच्छन्ति कातरम् । न भग्नं पृष्ठतो घ्नन्तिनिःशस्त्रंप्रपलायितम्
अयुध्यमानं भीरुं च पतितं गतकल्मषम् । असच्छूद्रंस्तुतिप्रोतिमाहवे शरणागतम् ॥
हत्वा च नरकं यान्ति दुर्वृत्ता जयकाङ्क्षिणः ।
एषा च क्षत्रिया वृत्तिः सदाचारैस्तु गीयते ॥ ८० ॥
यामाश्रित्य दिवं यान्ति सर्वक्षत्रियकुञ्जराः । धर्मयुद्धे शुभो मृत्युः संमुखे क्षत्रियस्यच
अत्र पूतोभवेत्सोऽपि सर्वपापैः प्रमुच्यते । स तिष्ठेत्स्वर्गलोके च प्रासादेरत्नभूषिते ॥
जाम्बूनदमयस्तम्भे रत्नभूषितभूतले । इष्टद्रव्यैः सुसम्पूर्णे दिव्यवस्त्रोपशोभिते ॥ ८३ ॥
पुरतः कल्पवृक्षाश्च तिष्ठन्ति सर्वदायिनः । वापीकूपतटाकाद्यैरुद्यानेरुपशोभिते ॥ ८४ ॥
यौवनाढ्याश्चसेवन्ते तं देवपुरकन्यकाः । तस्याग्रतो मुदानित्यं नृत्यन्त्यप्सरसां गणाः
गीतंगायन्ति गन्धर्वादेवाश्च स्तुतिपाठकाः । एवंक्रमेण कल्पान्ते सार्वभौमो भवेन्नृपः
सर्वभोगैककर्ता च नीरुङ्मन्मथविग्रहः । तस्यपत्न्यः प्ररूपाढ्याः सदैव यौवनान्विताः
धर्मशीलाः सुताः शुभ्राः समृद्धाः पितृसंमताः ।

एवं क्रमेण भुञ्जन्ति सप्तजन्मसु क्षत्रियाः ॥ ८८ ॥
अन्यायेन तु योद्धारस्तिष्ठन्ति नरके चिरम् । एवं च क्षत्रियावृत्तिर्ब्राह्मणैरुपजीव्यते ॥
वैश्यैः शूद्रैस्तथान्यैश्च अन्त्यजैर्म्लेच्छजातिभिः ।
ये च योधाः प्रयुध्यन्ते न्याययुद्धेन सर्वदा ॥ ९० ॥
तेऽपि यान्ति परं स्थानं सर्वे वर्णाद्विजातयः । न शूरोयोद्विजोभीरुरस्त्रशस्त्रविवर्जितः
विपत्तौ वैश्यवृत्तिं च कारयेद्द्विजसत्तमः । वैश्यवृत्तिं वणिग्भावं कृषिं चैव तथा परैः
कारयेत्कृषिवाणिज्यं विप्रकर्म न च त्यजेत् ।
वणिग्भावान्मृषात्युक्तौ दुर्गतिं प्राप्नुयाद् द्विजः ॥ ९३ ॥
आर्द्रद्रव्यं परित्यज्य ब्राह्मणो लभते शिवम् । समुत्पाद्य ततो वृत्तिं दद्याद्विप्राय सर्वशः
पितृयज्ञे तथा चाग्नौ जुहुयाद्विधिवद्द्विजः । तुलेऽसत्यं न कर्त्तव्यं तुलाधर्मप्रतिष्ठिता
छलभावं तुले कृत्वा नरकं प्रतिपद्यते । अतुलं चापियद्द्रव्यं तत्र मिथ्या परित्यजेत् ॥
एवं मिथ्या न कर्त्तव्या मृषा पापप्रसूतिका । नास्तिसत्यात्परोधर्मोनानृतात्पातकंपरम्
अतः सर्वेषु कार्येषु सत्यमेव विशिष्यते । अश्वमेधसहस्रं तु सत्यं च तुलया धृतम् ॥
अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते । योवदेत्सर्वकार्येषु सत्यं मिथ्या परित्यजेत्
स निस्तरति दुर्गाणि स्वर्गमक्षयमश्नुते । वाणिज्यं कारयेद्विप्रोमिथ्याऽवश्यंपरित्यजेत्
वृद्धिं च निक्षिपेत्तीर्थे स्वयं शेषं तु भोजयेत् । देहक्लेशात्तत्सहस्रगुणं भवतिसर्वदा ॥
अर्थार्जनविधौ मर्त्या विशन्ति विषमे जले । कान्तारमटवींचैव श्वापदैः सेवितां तथा
गिरिं गिरिगुहां दुर्गां म्लेच्छानां शस्त्रपातिनाम् ।
गृहं प्रतिभयं स्थानं धनलोभात्समन्ततः ॥ १०३ ॥
सुतदारान्परित्यज्य दूरंगच्छन्तिलोभिनः । स्कन्धे भारं वहन्त्यन्ये तथा चक्रेनिपातनैः
क्षेपणीभिर्महादुःखैस्सदा प्राणव्ययेन च । अर्थस्य सञ्चयः पुत्र प्राणात्प्रियतरो महान्
एभिर्न्यायार्जितं वृत्तं वणिग्भावेन यत्नतः । पितृदेवद्विजातिभ्यो दत्तंचाक्षयमश्नुते ॥
एतौ दोषौ महान्तौ च वाणिज्येलाभकर्मणि । लोभानामपरित्यागोमृषाग्राह्यश्चविक्रयः
एतौ दोषौ परित्यज्य कुर्यादर्थार्जनं बुधः । अक्षयं लभतेदानाद्वणिग्दोषैर्न लिप्यते ॥

पुण्यकर्मरतो विप्रः कृषिं हि परिकारयेत् । वाहयेद्दिवसस्यार्द्धं बलीवर्दचतुष्टयम् ॥
अभावात्त्रितयं चैव अविश्रामं न कारयेत् । चारयेच्च तृणेऽच्छिन्ने चोरव्याघ्रविवर्जिते

दद्याद्घासं यथेष्टं च नित्यमातर्पयेत्स्वयम् ।
गोष्ठं च कारयेत्तस्य किञ्चिद्विघ्नविवर्जितम् ॥ १११ ॥
सदा गोमयमूत्राभ्यां विघसैश्च विवर्जितम् ।
न मलं निक्षिपेद्गोष्ठे सर्वदेवनिकेतने ॥ ११२ ॥

आत्मनः शयनीयस्य सदृशं कारयेद्बुधः । समं निर्वापयेद्यत्नाच्छीतवातरजस्तथा ॥
प्राणस्य सदृशं पश्येद्गां च सामान्यविग्रहम् । अस्य देहे सुखं दुःखं तथा तस्यैव कल्पते
अनेन विधिना यस्तु कृषिकर्माणि कारयेत् । स च गोवाहनैर्दोषैर्नलिप्येत धनो भवेत् ॥
दुर्बलं पीडयेद्यस्तु तथैव गदसंयुतम् । अतिबालातिवृद्धं च स गोहत्यां समालभेत् ॥
विषमं वाहयेद्यस्तु दुर्बलं सबलं तथा । स गोहत्यासमं पापं प्राप्नोतीह न संशयः ॥

यो वाहयेद्विना सस्यं खादन्तं गां निवारयेत् ।
मोहात्तृणं जलं वापि स गोहत्यासमं लभेत् ॥ ११८ ॥
सङ्क्रान्त्यां पौर्णमास्यां चामावास्यायां तथैव च ।
हलस्य वाहनात्पापं गवामयुतहत्यया ॥ ११९ ॥

अमूषु पूजयेद्यस्तु सितैश्चित्रादिभिर्नरः । कज्जलैः कुसुमैस्तैलैः सोऽक्षयं स्वर्गमश्नुते ॥
घासमुष्टिं परगवे यो ददाति सदाह्निकम् । सर्वपापक्षयस्तस्य स्वर्गं चाक्षयमश्नुते ॥

यथा विप्रस्तथा गौश्च द्वयोः पूजाफलं समम् ।
विचारे ब्राह्मणो मुख्यो नृणां गावः पशौ तथा ॥ १२२ ॥

नारद उवाच ।

विप्रो ब्रह्ममुखे जातः कथितोमेत्वयाऽनघ । कथंगोभिः समो नाथ विस्मयोमेविधेध्रुवम्

ब्रह्मोवाच ।

शृणु चात्र यथातथ्यं ब्राह्मणानां गवां यथा । एकपिण्डक्रियैक्यं तु पुरुषैर्निर्मितंपुरा॥
पुराब्रह्ममुखोद्भूतं कूटं तेजोमयं महत् । चतुर्भागप्रजातं तद्वेदोऽग्निर्गौर्द्विजस्तथा ॥

प्राक्तेजः सम्भवोवेदो वह्निरेव तथैव च। परतो गौस्तथाविप्रो जातश्चैवपृथक्पृथक
तत्र सृष्टा मया चादौ वेदाश्चत्वार एकशः। स्थित्यर्थं सर्वलोकानां भुवनानां समन्ततः
अग्निर्हव्यानि भुञ्जीत देवहेतोस्तथा द्विजः। आज्यं गोप्रभवं विद्धि तस्मादेते प्रसूतकाः॥
न सन्ति यदि लोकेषु चत्वारोऽमी महत्तराः। तदाखिलं च भुवनं नष्टंस्थावरजङ्गमम्

एभिर्धृताः सदा लोकाः प्रतिष्ठन्ति स्वभावतः।
स्वभावो ब्रह्मरूपोऽसावेते ब्रह्ममयाः स्मृताः॥ १३० ॥

तस्माद्गौः पूजनीयोऽसौ विप्रदेवासुरैरपि। उदारः सर्वकार्येषु जातस्तथ्योगुणाकरः॥
सर्वदेवमयः साक्षात्सर्वसत्त्वानुकम्पकः। अस्य कार्यं मया सृष्टंपुरैव-पोषणं प्रति॥
अत एव मया दत्तं वरं चातिसुशोभनम्। एकजन्मनि ते मोक्षस्तवास्त्विति विनिश्चितम्

अत्रैव ये मृता गावस्त्वागच्छन्ति ममालयम्।
पापस्य कणमात्रं तु तेषां देहे न तिष्ठति॥ १३४ ॥

देवी गौर्धेनुका देवाश्चादिदेवी त्रिशक्तिका। प्रसादाद्यस्य यज्ञानां प्रभवो हि विनिश्चितः
गवांसर्वपवित्राणि पुनन्ति सकलं जगत्। मूत्रं गोर्गोमयं क्षीरं दधिसर्पिस्तथैव च॥
अमीषां भक्षणे पापं न तिष्ठति कलेवरे। तस्माद्घृतं दधिक्षीरं नित्यंखादन्तिधार्मिकाः.

विशिष्टं सर्वद्रव्येषु गव्यमिष्टं परं शुभम्।
यस्यास्ये भोजनं नास्ति तस्य मूर्तिस्तु पूतिका॥ १३८ ॥

अन्नाद्यं पञ्चरात्रेण सप्तरात्रेण वै पयः। दधि विंशतिरात्रेण घृतं स्यान्मासमेककम्॥
अगव्यैर्यस्तु भुङ्क्तेवै मासमेकं निरन्तरम्। भोजने तस्य मर्त्यस्य प्रेताःखादन्तिचैव हि
परमान्नं परंशुद्धं स्विन्नं चातपतण्डुलैः। भुक्त्वा तु यत्कृतंपुण्यंकोटिकोटिगुणं भवेत्
अन्यच्चापि च यद्द्रव्यं हविष्यं शास्त्रनिर्मितम्। तद्भुक्त्वायत्कृतंकर्मसर्वंलक्षगुणं भवेत्
निरामिषं च यत्किञ्चित्तस्माद्यद्यत्फलं लभेत्। तस्माद्गौः सर्वकार्येषुशस्ताचैकायुगेयुगे

सर्वदा सर्वकामेषु धर्मकामार्थमोक्षदा॥ १४३॥

नारद उवाच।

केषु किंवा प्रयोगेण परं पुण्यं प्रकीर्तितम्। वद तत्सर्वलोकेश यथा जानामि तत्त्वतः

ब्रह्मोवाच ।

सकृत्प्रदक्षिणं कृत्वा गोधनं चाभिवन्दयेत् । सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गं चाक्षयमश्नुते ॥

सुराचार्यो यथा वन्द्यः पूज्योऽसौ माधवो यथा ।

सप्तप्रदक्षिणं कृत्वा चैश्वर्यात्पाकशासनः ॥ १४६ ॥

कल्य उत्थाय गोमध्ये पात्रं गृह्य सहोदकम् । निषिञ्चेद्यो गवां शृङ्गमस्तकेनैवतज्जलम्

प्रतीच्छेत निराहारस्तस्य पुण्यं निबोध मे ।

श्रूयन्ते यानि तीर्थानि त्रिषु लोकेषु नारद ॥ १४८ ॥

सिद्धचारणयुक्तानि सेवितानि महर्षिभिः । अभिषेकस्समस्तेषांगवांशृङ्गोदकस्य च ॥

प्रातरुत्थाय यो मर्त्यः स्पृशेद्गां च घृतं मधु ।

सर्षपांश्च प्रियङ्गूंश्च कल्मषात्प्रतिमुच्यते ॥ १५० ॥

घृतक्षीरप्रदा गावो घृतयोन्यो घृतोद्भवाः ।

घृतनद्यो घृतावर्तास्ता मे सन्तु सदा गृहे ॥ १५१ ॥

घृतं मे सर्वगात्रेषु घृतं मे मनसि स्थितम् । गावो ममाग्रतोनित्यं गावःपृष्ठत एव च ॥

गावश्च सर्वगात्रेषु गवांमध्ये वसाम्यहम् । इत्याचम्य जपेन्मन्त्रं सायं प्रातरिदं शुचिः

सर्वपापक्षयस्तस्य स्वर्लोके पूजितोभवेत् । यथा गौश्चतथा विप्रो यथाविप्रस्तथा हरिः

हरिर्यथा तथा गङ्गा एते नह्यवृषाःस्मृताः । गावोबन्धुर्मनुष्याणांमनुष्याबान्धवागवाम्

गौश्च यस्मिन्गृहे नास्ति तद्बन्धुरहितं गृहम् । गोमुखे चाश्रितावेदाःसषडङ्गपदक्रमाः ॥

शृङ्गयोश्चस्थितौनित्यं सहैव हरिकेशवौ । उदरेऽवस्थितः स्कन्दः शीर्षेब्रह्मास्थितःसदा

वृषध्वजोललाटे च शृङ्गाग्रइन्द्र एव च । कर्णयोरश्विनौ देवौ चक्षुषोश्शशिभास्करौ

दन्तेषु गरुडोदेवो जिह्वायां च सरस्वती । अपाने सर्वतीर्थानि प्रस्रावे चैव जाह्नवी॥

ऋषयो रोमकूपेषु मुखतःपृष्ठतोयमः । धनदो वरुणश्चैव दक्षिणं पार्श्वमाश्रितौ ॥१६०

वामपार्श्वे स्थिता यक्षास्तेजस्वन्तो महाबलाः ।

मुखमध्ये च गन्धर्वा नासाग्रे पन्नगास्तथा ॥ १६१ ॥

खुराणां पश्चिमे पार्श्वेऽप्सरसश्च समाश्रिताः । गोमये वसते लक्ष्मीर्गोमूत्रेसर्वमङ्गला

पादाग्रे खेचरा वेद्या हम्भाशब्दे प्रजापतिः। चत्वारः सागराःपूर्णा धेनूनां च स्तनेषु वै

गां च स्पृशति यो नित्यं स्नातो भवति नित्यशः।
अतो मर्त्यः प्रपुष्टैस्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १६४ ॥
गवांरजः खुरोद्भूतं शिरसा यस्तु धारयेत्।
स च तीर्थजले स्नातः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १६५ ॥

नारद उवाच।

गवां च दशवर्णानां कस्य दाने च किं फलम्। ब्रूहि तत्त्वं गुरुश्रेष्ठ परमेष्ठिन्प्रियं यदि

ब्रह्मोवाच।

श्वेतां गां ब्राह्मणे दत्वा मानवश्चेश्वरो भवेत्। प्रासादेवसते नित्यं भोगीचसुखमेधते
धूम्रा तु स्वर्गकान्तारसंसारे पापमोक्षिणी। अक्षयं कपिलादानं कृष्णां दत्त्वा न सीदति
पाण्डुरा दुर्लभा लोके गौरी च कुलनन्दिनी। रक्ताक्षीरूपकामस्य धनकामस्य नीलिका

एकां च कपिलां दत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते।
यत्तु बाल्यकृतं पापं यौवने वार्धके कृतम् ॥ १७० ॥

वाचा कृतं कर्म कृतं मनसा यत्प्रचिन्तितम्। अगम्यागमनं चैव मित्रद्रोहे च पातकम्
मानकूटं तुलाकूटं कन्यानृतं गवानृतम्। सर्वं च नाशयेत्क्षिप्रं कपिलां यः प्रच्छति ॥
दशयोजनविस्तीर्णा महापारा महानदी। नारा च जलकान्तारे प्रसृते चोदकार्णवे ॥
यावद्वत्सस्य द्वौ पादौ मुखं यावन्नजायते। तावद्द्यौःपृथिवी ज्ञेया यावद्गर्भं न मुञ्चति
सुवर्णशृङ्गींवस्त्राढ्यांसर्वालङ्कारभूषिताम्। ताम्रपृष्ठींरौप्यखुरांतथा कांस्योपदोहनाम्
शोभितां गन्धपुष्पैश्च सर्वालङ्कारभूषिताम्। ईदृशीं कपिलां दद्याद् द्विजातौ वेदपारगे

सर्वपापक्षयस्तस्य विष्णुलोकेऽच्युतो भवेत् ॥ १७७ ॥
तस्यां तु दुह्यमानायां भूमौ पतन्ति बिन्दवः।
आरामादि विजायन्ते बहुपुष्पफलोत्तमाः ॥ १७८ ॥

यत्रकामफला वृक्षा नद्यःपायसकर्दमाः। प्रासादाश्चापि सौवर्णास्तत्र गच्छन्तिगोप्रदाः
दशधेनूश्च यो दद्यादेकं चैव धुरन्धरम्। समानं तु फलं प्रोक्तं ब्रह्मणा समुदाहृतम् ॥

एकं च दशभिर्दद्यात्सहस्राणां शतं फलम् । तस्यानुसारतो वेद्यं फलं नारद यत्नतः ॥
पितृनुद्दिश्य यः पुत्रो वृषं च मोक्षयेद्भुवि । पितरो विष्णुलोकेषु महीयन्ते यथेप्सितम्
चतस्रो वत्सतर्यश्च एकस्यैव वृषस्य च । मोक्ष्यन्ते सर्वतः पुत्र विधिरेष सनातनः ॥
यावन्ति चैव रोमाणि तस्य तासांचसर्वशः । तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गं भुञ्जन्तिमानवाः

लाङ्गूलेन वृषो यच्च जलं चोत्क्षिपति ध्रुवम् ।
तत्तोयं तु सहस्राब्दं पितॄणाममृतं भवेत् ॥ १८५ ॥

खुरेण कर्षयेद्भूमिं ततो लोष्टं च कर्दमः । पितृभ्यश्च स्वधा तत्र लक्षकोटिगुणंभवेत्
विद्यमाने च जनके यदि माता विनश्यति । चन्दनेनाङ्किता धेनुस्तस्याः स्वर्गाय दीयते
दाता चैव पितॄणां च ऋणं चैव प्रमुञ्चति । अक्षयं लभते स्वर्गं पूजितो मघवा यथा ॥
सर्वलक्षणसंयुक्ता तरुणी गौः पयस्विनी । समा प्रसूतिका भद्रा सावगौःपृथिवीस्मृता
तस्य दानेन मन्त्रस्य पृथ्वीदानसमं फलम् । शतक्रतुसमो मर्त्यः कुलमुद्धरते शतम् ॥
गवां च हरणं कृत्वा मृते गोरथवत्सके । कृमिपूर्णे स कूपे च तिष्ठेदाभूतसम्प्लवम् ॥
गवां चैव वधं कृत्वा पितृभिः सह पच्यते । रौरवे नरके घोरे तावत्कालं प्रतिक्रिया ॥
गोप्रचारप्रभग्नश्च षण्डवाहनबन्धनः । अक्षयं नरकं प्रायात्पुनर्जन्मनि जन्मनि ॥ १९३ ॥
सकृच्च श्रावयेद्यस्तु कथां पुण्यतमामिमाम् । सर्वपापक्षयस्तस्य देवैश्च सह मोदते ॥
य इदं शृणुयाद्वापि परं पुण्यतमं महत् । सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यतेतत्क्षणेन हि ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे गोमाहात्म्यं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

ब्रह्मतेजोवर्द्धनार्थकनित्यकर्मवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

केनाचारेण विप्रस्य ब्रह्मतेजो विवर्धते । केनाचारेण तस्यैव ब्रह्मतेजो विनश्यति ॥१॥

ब्रह्मोवाच ।

शयनीयात्समुत्थाय रात्र्यंशे द्विजसत्तमः । देवांश्चैव स्मरेन्नित्यं तथा पुण्यवतोध्रुवम्
गोविन्दं माधवं कृष्णं हरिं दामोदरं तथा । नारायणं जगन्नाथं वासुदेवमजं विभुम् ॥
सरस्वतीं महालक्ष्मीं सावित्रीं वेदमातरम् । ब्रह्माणंभास्करंचन्द्रंदिक्पालांश्च ग्रहांस्तथा

शङ्करं च शिवं शम्भुमीश्वरं च महेश्वरम् ।
गणेशं च तथा स्कन्दं गौरीं भागीरथीं शिवाम् ॥ ५ ॥
पुण्यश्लोको नलो राजा पुण्यश्लोको जनार्दनः ।
पुण्यश्लोका च वैदेही पुण्यश्लोको युधिष्ठिरः ॥ ६ ॥

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः । कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः ॥
एतान्यस्तु स्मरेन्नित्यं प्रातरुत्थाय मानवः । ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्रसंशयः ॥
सकृदुच्चरिते तात सर्वयज्ञफलं लभेत् । गवां शतसहस्राणां दानस्य फलमश्नुते ॥ ६॥
ततश्चापि शुचौदेशे मलमूत्रं परित्यजेत् । दक्षिणाभिमुखोरात्रौ दिवाकुर्यादुदङ्मुखः ॥
परतोदन्तकाष्ठं च तृणैरुदुम्बरादिभिः । अतःपरं च सन्ध्यायां संयतश्च द्विजो भवेत् ॥

पूर्वाह्ने रक्तवर्णां तु मध्याह्ने शुक्लवर्णिकाम् ।
सायं सरस्वतीं कृष्णां द्विजो ध्यायेद्यथाविधि ॥ १२ ॥

ततः समाचरेत्स्नानं यथाज्ञानेन यत्नतः । अङ्गं प्रक्षालयित्वा तु मृद्भिःसंलेपयेत्ततः ॥

शिरोदेशे ललाटे च नासिकायां हृदिभ्रुवोः ।
बाह्वोःपार्श्वे तथानाभौ जान्वोरङ्घ्रिद्वये तथा ॥ १४ ॥

एकालिङ्गे गुदेतिस्रस्तथा वामकरे दश । उभयोः सप्तदातव्या मृदःशुद्धिमभीप्सता ॥
अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे । मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्

अनेनैव तु मन्त्रेण मृत्तिकां यस्तनौ क्षिपेत् ।
सर्वपापक्षयस्तस्य शुचिर्भवति मानवः ॥ १७ ॥

ततस्तु वेदपूर्वेण स्नानं कुर्याद्विचक्षणः । नदे नद्यांतथाकूपे पुष्करिण्यां तटाकके ॥१८॥
जलराशौ च वप्रे च घटस्नानं तथोत्तरम् । कारयेद्विधिवन्मर्त्यःसर्वपापक्षयाय च ॥

प्रातःस्नानं महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्। यःकुर्यात्सततं विप्रो विष्णुलोके महीयते
प्रातःसन्ध्यासमीपे च यावद्दण्डचतुष्टयम्। तावत्पानीयममृतं पितॄणामुपतिष्ठते॥

परतो घटिकायुग्मं यावद्यामैकमाह्निकम्।
मधुतुल्यं जलं तस्मिन्पितॄणां प्रीतिवर्धनम्॥ २२॥

ततस्तु सार्द्धयामैकं जलंक्षीरमयं स्मृतम्। क्षीरमिश्रं जलं तावद्यावद्दण्डचतुष्टयम्॥
अतः परं च पानीयं यावद्धि प्रहरत्रयम्। तत्परं लोहितं प्रोक्तं यावदस्तं गतोरविः॥
चतुर्थप्रहरे स्नाने रात्रौ वा तर्पयेत्पितॄन्। तत्तोयं रक्षसामेव ग्रहणेन विनाशितम्॥२५॥
पानीयं सर्वसिद्ध्यर्थं पुरैवनिर्मितं मया। रक्षार्थं तस्य तोयस्य यक्षाश्चैव धुरन्धराः॥

न प्राप्नुवन्ति पितरो ये च लोकान्तरं गताः।
दुष्प्राप्यं सलिलं तेषामृतेस्वान्मर्त्यवासिनः॥ २७॥

तस्माच्छिष्यैश्च पुत्रैश्च पौत्रदौहित्रकादिभिः। बन्धुवर्गैस्तथा चान्यैस्तर्पणीयं पितृव्रतैः

नारद उवाच।

जलस्य दैवतं ब्रूहि तर्पणस्य विधिंमयि। यथा जानामि देवेश तत्त्वतो वक्तुमर्हसि॥

ब्रह्मोवाच।

जलस्य देवताविष्णुःसर्वलोकेषु गीयते। जलपूतो भवेद्यस्तु विष्णुस्तच्छङ्करो भवेत्॥
जलंगण्डूषमात्रं तु पीत्वा पूतोभवेन्नरः। विशेषात्कुशसंसर्गात्पीयूषादधिकं जलम्॥
सर्वदेवालयो दर्भोमयाऽयं निर्मितःपुरा। कुशमूलेभवेद्ब्रह्मा कुशमध्ये तु केशवः॥
कुशाग्रे शङ्करंविद्धि कुशपते प्रतिष्ठिताः। कुशहस्तःसदामेध्यःस्तोत्रं मन्त्रंपठेद्यदि॥
सर्वं शतगुणंप्रोक्तं तीर्थे साहस्रमुच्यते। कुशाःकाशास्तथा दूर्वा यवपत्राणिव्रीहयः॥
वल्वजाःपुण्डरीकाश्च कुशास्सप्तप्रकीर्तिताः। आनुपूर्वेण मेध्याःस्युःकुशालोकेप्रतिष्ठिताः

विनामन्त्रेण यत्स्नानं सर्वंतन्निष्फलं भवेत्।
अमृतात्स्वादुतामेति संस्पर्शाच्च तिलस्य च॥ ३६॥

तस्माच्च तर्पयेन्नित्यं पितॄंस्तिलजलैर्बुधः। दशभिश्च तिलैस्तावत्पितॄणां प्रीतिरुत्तमा

अग्निस्तम्भ भयाद्देशा न चेच्छन्त्यति विस्तरम्।

स्नात्वा यस्तर्पयेन्नित्यं तिलमिश्रोदकैः पितॄन् ॥ ३८ ॥
स याति ब्रह्मणःस्थानं समुद्धृत्यो भयंकुलम् । विशेषेण युगाद्यासुत्वमावास्यांतथैवच
अक्षयं स्वर्गमाप्नोति तर्पयित्वातिलैःपितॄन् । नीलखण्डविमोक्षेणत्वमावास्यातिलोदकैः
वर्षासु दीपदानेन पितॄणामनृणो भवेत् । वत्सरैकममायां तु तर्पयेद्यस्तिलैः पितॄन् ॥
विनायकत्वमाप्नोति सर्वदेवैः प्रपूज्यते । युगाद्यासु च सर्वासु यस्तिलैस्तर्पयेत्पितॄन् ॥
उक्तं यद्वाप्यमायांतु तस्माच्छतगुणाधिकम् । अयने विषुवे चैव राकामायां तथैव च
तर्पयित्वा पितृव्यूहं स्वर्गलोके महीयते । तथामन्वन्तराख्यायामन्यस्यां पुण्यसंस्थितौ
ग्रहणे चन्द्रसूर्यस्य पुण्यतीर्थे गयादिषु ।
तर्पयित्वा पितॄन्याति माधवस्य निकेतनम् ॥ ४५ ॥
तस्मात्पुण्याहकंप्राप्यतर्पयेत्पितृसञ्चयम् । तर्पणं देवतानांच पूर्वंकृत्वा समाहितः ॥
अधिकारी भवेत्पश्चात्पितॄणां तर्पणेबुधः । श्राद्धे भोजनकाले च पाणिनैकेन दापयेत् ॥
उभाभ्यां तर्पणेदद्याद्विधिरेष सनातनः । दक्षिणाभिमुखो भूत्वा शुचिर्वै तर्पयेत्पितॄन् ॥
तृप्यतामितिवाक्येन नामगोत्रेण वै पुनः । अकृष्णैर्यस्तिलैर्मोहात्तर्पयेत्पितृसञ्चयम् ॥
भूम्यां ददाति यद्तोयंदाताचैव जलेस्थितः । वृथातद्दीयते दानं नोपतिष्ठति कस्यचित्
स्थलेस्थित्वा जलेयस्तु प्रयच्छेदुदकं नरः । नोपतिष्ठेत्पितॄणां तु सलिलंतन्निरर्थकम्
आर्द्रवासाजलेयस्तु कुर्यादुदकतर्पणम् । पितरस्तस्य तृप्यन्ति सहदेवैस्सदाऽनघ॥५२॥
रजकैःक्षालितंवस्त्रमशुद्धं कवयो विदुः । हस्तप्रक्षालनेचैव पुनर्वस्त्रं तु शुध्यति ॥ ५३॥
शुष्कवासाःशुचौदेशे स्थानेयस्तर्पयेत्पितॄन् । ततोदशगुणेनैव तुष्यन्ति पितरो ध्रुवम् ॥
स्नानं सन्ध्यां च पाषाणे खड्गे वा ताम्रभाजने ।
तर्पणं कुरुतेयस्तु प्रत्येकं च शताधिकम् ॥ ५५ ॥
रौप्यांगुलीयं तर्जन्यां धृत्वा यस्तर्पयेत्पितॄन् । सर्वं च शतसाहस्रगुणंभवति नान्यथा ॥
तथैवानामिकायां तु धृत्वा स्वर्णांगुलीं बुधः । तर्पयेत्पितृसन्दोहं लक्षकोटिगुणंभवेत्
अंगुष्ठदेशिनीमध्ये सव्यहस्तस्य खड्गकम् । धृत्वानामिकयारत्नमञ्जलेरक्षयंफलम् ॥५८॥
स्नानार्थमभिगच्छन्तं देवाःपितृगणैःसह । वायुभूतानुगच्छन्ति तृषार्ताःसलिलार्थिनः ॥

निराशास्ते निवर्तन्ते वस्त्रनिष्पीडनेन च । तस्मान्नपीडयेद्वस्त्रमकृत्वा पितृतर्पणम् ॥
तिस्रःकोट्योऽर्धकोटी च यानिलोमानि मानुषे ।
स्रवन्ति सर्वतीर्थानि तस्मान्न परिपीडयेत् ॥ ६१ ॥
देवाः पिबन्तिशिरसि श्मश्रुतः पितरस्तथा । चक्षुषोरपि गन्धर्वा अधस्तात्सर्वजन्तवः
देवाःपितृगणाःसर्वे गन्धर्वाजन्तवस्तथा । स्नानमात्रेण तुष्यन्ति स्नानात्पापं न विद्यते
नित्यस्नानं च यःकुर्यात्सनरःपुरुषोत्तमः । सर्वपापैर्विनिर्मुक्तो नाकलोके महीयते ॥
स्नानंतर्पणपर्यन्तं देवामहर्षयोविदुः । अतःपरं च देवानां पूजनं कारयेद्बुधः ॥ ६५ ॥
गणेशं पूजयेद्यस्तु विघ्नस्तस्य न जायते । आरोग्यार्थं च सूर्यं च धर्ममोक्षाय माधवम्
शिवं च कृत्यकामार्थं सर्वकामाय चण्डिकाम् ।
देवांस्तु पूजयित्वा तु वैश्वदेवबलिं चरेत् ॥ ६७ ॥
वह्निकार्यं ततःकृत्वा यज्ञं ब्राह्मणतर्पणम् । देवानां सर्वसत्त्वानां पुनस्त्रिविष्टपंव्रजेत् ॥
गतागतं स्थिरंकृत्वा कामान्मोक्षं सुखंदिवम् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेननित्यंकर्माणिकारयेत्

नारदउवाच ।

किमर्थं च जलं तात देवाः पितृगणैःसह । न प्राप्नुवन्ति सर्वज्ञ लभन्तेमानवा यथा ॥

ब्रह्मोवाच ।

पुरासृष्टं मयातोयं सर्वदेवमयामृतम् । तस्यैव रक्षणार्थं च रक्षो यक्षाधनुर्धराः ॥७१॥
घ्नन्तितेपितरं देवमस्मद्वाक्यान्नमानुषम् । पशवःपक्षिणःकीटा मर्त्यलोकेऽव्यवस्थिताः
मर्त्यजाताश्च देवा ये तथैवमानुषाध्रुवम् । तर्पयित्वा गुरुं नित्यं सुरलोके प्रतिष्ठिताः ॥
अस्नायी च मलंभुङ्क्ते अजपी पूयशोणितम् । अकृत्वा तर्पणंनित्यं पितृहाचोपजायते
ब्रह्महत्यासमं पापं देवानामप्यपूजने । सन्ध्याकृत्यमकृत्वा च सूर्यंहन्ति च पापकृत् ॥

नारद उवाच ।

ब्राह्मणस्यसदाचार क्रमं ब्रूहि च कर्मणाम् । इतरेषां च वर्णानां प्रवृत्तमखिलंवद ॥

ब्रह्मोवाच ।

आचाराल्लभते चायुराचाराल्लभतेसुखम् । आचारोत्स्वर्गमोक्षं च आचारोहन्त्यलक्षणम्

अनाचारो हिपुरुषो लोकेभवतिनिन्दितः । दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च
नरकेनियतंवासो ह्यनाचारान्नरस्य च । आचाराच्च परंलोकमाचारं शृणुतत्त्वतः ॥
गोमयेन गृहेनित्यं प्रकुर्यादुपलेपनम् । प्रक्षालयेत्ततःपीठं काष्ठं पात्रं शिलातलम् ॥८०॥
भस्मना कांस्यपात्रं तु ताम्रमम्लेन शुद्ध्यति । शिलापात्रं तु तैलेन फालं गोवालकेनतु
स्वर्णरौप्यादिपात्रं तु जलमात्रेणशुध्यति । अग्निनालोहपात्रं तु पाकप्रक्षालनेन तु ॥
खननाद्दाहनाच्चैव उपलेपनधावनात् । पर्जन्यवर्षणाच्चैव भूरमेध्या विशुध्यति ॥८३ ॥
तैजसानां मणीनाञ्चसर्वस्याश्ममयस्य च । भस्मभिर्मृत्तिकाभिश्च शुद्धिरुक्ता मया पुरा
शय्या भार्या शिशुर्वस्त्रमुपवीतं कमण्डलुः । आत्मनःकथिताश्शुद्धा न परेषां कदाचन॥
न भुञ्जीतैकवस्त्रेण न स्नायादेकवाससा । न धारयेत्परस्यैवं स्नानवस्त्रं कदाचन ॥
संस्कारं केशदन्तानां प्रातरेव समाचरेत् । गुरूणां च नमस्कारं नित्यमेव समाचरेत् ॥
हस्तपादे मुखेचैव पञ्चार्द्रो भोजनंचरेत् । पञ्चार्द्रकस्तु भुञ्जानःशतं वर्षाणि जीवति ॥
देवतानां गुरोराज्ञां स्नातकाचार्ययोरपि । नाक्रामेत्कामतश्छायां विप्रस्य दीक्षितस्य च
गोगणं दैवतं विप्रं घृतं मधुचतुष्पथम् । प्रदक्षिणं प्रकुर्वीत प्रख्यातांश्च वनस्पतीन् ॥

गोविप्राववग्निविप्रौ च विप्रौ द्वौ दम्पती तथा ।
तयोर्मध्ये न गच्छेत स्वर्गस्थोऽपि पतेद् ध्रुवम् ॥ ९१ ॥

उच्छिष्टो न स्पृशेदग्निं ब्राह्मणं दैवतं गुरुम् । स्वशीर्षं पुष्पवृक्षंच यज्ञवृक्षमधार्मिकम् ॥
त्रीणि तेजांसि नोच्छिष्ट उदीक्षेत कदाचन । सूर्याचन्द्रमसावेवं नक्षत्राणि च सर्वशः
नेक्षेद्विप्रं गुरुं देवं राजानं यतिनां वरम् । योगिनं देवकर्माणं धर्माणां कथकं द्विजम् ॥
नदीनां च प्रतीरे च पत्युश्च सरितां तथा । यज्ञवृक्षस्य मूले च उद्याने पुष्पवाटके ॥
शरीरस्य मलत्यागं न कुर्याज्जीवने तथा । विप्रस्यायतने गोष्ठे रम्ये राजपथेषु च ॥
न क्षौरं कारयेद्धीरः कुजस्याह्नि कदाचन । मलं न धारयेद्दन्ते नखं न वदने क्षिपेत् ॥
तैलाभ्यङ्गं न कुर्वीत वासरे रविभौमयोः । स्वगात्रासनयोर्वाद्यं गुरोरेकासनादनम् ॥
न हरेच्छ्रोत्रियस्वं च देवस्यापि गुरोरपि । राज्ञस्तपस्विनां चैव पङ्गोरन्धस्य योषितः

पन्था देयो ब्राह्मणाय गोभ्यो राजभ्य एव च ।

रोगिणे भारतप्ताय गुर्विण्यै दुर्बलाय च ॥ १०० ॥
विवादं न च कुर्वीत नृपविप्रचिकित्सकैः ।
ब्राह्मणं गुरुपत्नीं च दूरतः परिवर्जयेत् ॥ १०१ ॥
पतितं कुष्ठसंयुक्तं चाण्डालं च गवाशिनम् । निर्धूतं ज्ञानहीनं च दूरतः परिवर्जयेत् ॥
स्त्रियं दुष्टां च दुर्वृत्तामपवादप्रदायिनीम् । कुकर्मकारिणीं दुष्टां सदैव कलहप्रियाम्
प्रमत्तामधिकाङ्क्षीञ्च निर्लज्जां बाह्यचारिणीम् ।
व्ययशीलामनाचारां दूरतः परिवर्जयेत् ॥ १०४ ॥
मलिनां नाभिवन्देत गुरुपत्नीं कदाचन । न स्पृशेत्तां च मेधावी स्पृष्ट्वा स्नानेन शुद्ध्यति
स तया सह केलिं च वर्जयेच्च सदैव हि । शृणुयाच्च वचो नूनं न पश्येच्च गुरोःस्त्रियम्
वधूं पुत्रस्य भ्रातुश्च स्वपुत्रीं युवतीं ध्रुवम् । अन्यां च गुरुपत्नीं च नेक्षेत्स्पर्शं न कारयेत्
ताभिः सह कथालापं तथा भ्रूभङ्गदर्शनम् ।
कलहं निस्त्रपां वाणीं सदैव परिवर्जयेत् ॥ १०८ ॥
न दद्याच्च सदापादं तुषाङ्गारास्थिभस्मसु ।
कार्पासास्थिषु निर्माल्योचितिकाष्ठेचितौ गुरौ ॥ १०६ ॥
शुष्कं मीनं न भक्षेत पूतिगन्धिममेध्यकम् । विघसं चान्यदुच्छिष्टंपाकार्थं च परस्य च
नस्थातव्यं नगन्तव्यं क्षणमप्यसता सह । न तिष्ठेच्च क्षणंधीरो दीपच्छाये कलिद्रुमे ॥
अस्पृश्यैस्सह चालापं पतितैः कुपितैः सह ।
न कुर्यात्क्षणमात्रं तु कृत्वा गच्छेच्च रौरवम् ॥ ११२ ॥
कनिष्ठं नाभिवन्देत पितृव्यं मातुलं तथा ।
उत्थाय चासनं दद्यात्कृताञ्जल्यग्रतः स्थितः ॥ ११३ ॥
तैलाभ्यक्तं ततोच्छिष्टमार्द्रवस्त्रं च रोगिणम् ।
पारावारगतोद्विग्नं वहन्तं नाभिवादयेत् ॥ ११४ ॥
यज्ञस्यान्तर्गतं नष्टं क्रीडन्तंस्त्रीजनैः सह । बालक्रीडागतं चापि पुष्पयुक्तं कुशैर्युतम् ॥
शिरः प्रावृत्य कर्णौ वा अप्सु मुक्तशिखोऽपि वा ।

अकृत्वा पादयोः पूजां नाचामेद् दक्षिणामुखः ॥ ११६ ॥
उपवीतविहीनश्च नग्नको मुक्तकच्छकः । एकवस्त्रपिधानश्च आचान्तोनैव शुद्ध्यति ॥
मध्यमाभिर्मुखं पूर्वंतिसृभिः समुपस्पृशेत् । अङ्गुष्ठदेशिनीभ्यां च नासां च तदनन्तरम् ॥
अङ्गुष्ठानासिकाभ्यां च चक्षुषी समुपस्पृशेत् । कनिष्ठाङ्गुष्ठतश्श्रोत्रे नाभिमङ्गुष्ठकेन तु
तलेन हृदयं न्यस्य सर्वाभिर्मस्तकोपरि । बाहूचाग्रेण संस्पृस्य ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥
अनेनाचमनं कृत्वा मानवः प्रयतो भवेत् । सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः स्वर्गं चाक्षयमश्नुते ॥
प्राणस्त्रिपुटश्शृङ्ग्या च व्यानोऽपानश्च मुद्रया । समानस्तु समस्ताभिरुदानस्तर्जनींविना
नागःकूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः । उपप्रीणन्तु ते प्रीता येभ्यो भूमौ प्रदीयते ॥
शयनं चार्द्रपादेन शुष्कपादेन भोजनम् । नान्धकारे च शयनं भोजनं नैव कारयेत् ॥
पश्चिमे दक्षिणे चैव न कुर्याद्दन्तधावनम् । उत्तरे पश्चिमेचैव न स्वपेद्धि कदाचन १२५॥
स्वप्नादायुःक्षयं याति ब्रह्महा पुरुषो भवेत् । न कुर्वीत ततःस्वप्नंशस्तं च पूर्वदक्षिणम्

आयुष्यं प्राङ्मुखो भुंक्ते यशस्यं दक्षिणामुखः ।
श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुंक्ते यशोभुंक्त उदङ्मुखः ॥ १२७ ॥

प्राच्यां नरो लभेदायुर्याम्यां प्रेतत्वमश्नुते । वारुणे च भवेद्रोगी आयुर्वित्तं तथोत्तरे ॥
देवानामेकभुक्तं तु द्विभुक्तंस्यान्नरस्य च । त्रिभुक्तं प्रेतदैत्यस्य चतुर्थंकौणपस्य तु ॥
निरामिषं हविर्देवा मत्स्यमांसादि मानुषाः । पूतिपर्युषितं दुष्टमन्ये भुञ्जन्त्यनावृताः ॥

स्वर्गस्थितानामिह जीवलोके चत्वारि तेषां हृदये वसन्ति ।
दानं प्रशस्तं मधुरा च वाणी देवार्चनं ब्राह्मणतर्पणं च ॥ १३१ ॥
कार्पण्यवृत्तिः स्वजनेषु निन्दा कुचैलता नीचजनेषु भक्तिः ।
अतीवरोषः कटुका च वाणी नरस्य चिह्नं नरकागतस्य ॥ १३२ ॥

नवनीतोपमावाणी करुणाकोमलं मनः । धर्मबीजप्रसूतानामेतत्प्रत्यक्षलक्षणम् ॥ १३३॥
दयादरिद्रहृदयं वचः क्रकचकर्कशम् । पापबीजप्रसूतानामेतत्प्रत्यक्षलक्षणम् ॥ १३४ ॥
श्रावयेच्छृणुयाद्वापि सदाचारादिकंनरः। आचारादेःफलंलब्ध्वा पापात्पूतोऽच्युतोदिवि

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे सदाचारवर्णनं नामैकपञ्चाशोऽध्यायः ।

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पित्रर्चाप्रशंसायां मूकाख्यानम् ।

भीष्म उवाच ।

यत्पुण्यमधिकंलोके सर्वदा सर्वसंमतम् । तद्वदस्वेच्छया विप्र यत्कृतं पूर्वपूर्वकैः ॥

पुलस्त्य उवाच ।

एकदा तु द्विजाः सर्वे व्यासशिष्यास्सहादरात् ।
व्यासं प्रणम्य पप्रच्छुर्धर्मं मां च यथा भवान् ॥ २ ॥

द्विजा ऊचुः ।

पुण्यात्पुण्यतमं लोके सर्वधर्मेषु चोत्तमम् । किं कृत्वा मानवाःस्वर्गं भुञ्जते चाक्षयंवद
लभ्यंचाकष्टकं शुद्धं वर्णानां मर्त्यवासिनाम् । गुरूणां च लघूनां च साध्यमेकक्रतुं वद
यद्यत्कृत्वा च देवानां पूज्योनाके भवेन्नरः । तत्तद्वद च नो ब्रह्मन्प्रसादी भवधर्मतः ॥५॥

व्यास उवाच ।

पञ्चाख्यानं वदिष्यामि श्रृणुध्वं तत्रपूर्वतः । पञ्चनामेककं कृत्वा विन्दन्मोक्षं दिवं यशः
पित्रोरर्चाऽथ पत्युश्च साम्यं सर्वजनेषु च । मित्राद्रोहो विष्णुभक्तिरेतेप ञ्च महामखाः
प्राक्पित्रोरर्चया विप्रा यद्धर्मं साधयेन्नरः । न तत्क्रतुशतैरेव तीर्थयात्रादिभिर्भुवि ॥
पिताधर्मः पिता स्वर्गः पिता हि परमं तपः । पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः ॥
पितरो यस्य तृप्यन्ति सेवया च गुणेन च । तस्यभागीरथीस्नानमहन्यहनि वर्तते ॥
सर्वतीर्थमयी माता सर्वदेवमयः पिता । मातरं पितरं तस्मात्सर्वयत्नेन पूजयेत् ॥११॥
मातरं पितरं चैव यस्तु कुर्यात्प्रदक्षिणम् । प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपावसुन्धरा ॥

जानुनी च करौ यस्य पित्रोः प्रणमतः शिरः ।
निपतन्ति पृथिव्यां च सोऽक्षयां लभते दिवम् ॥ १३ ॥

तयोश्चरणयोर्यावद्रजश्चिह्नानि मस्तके । प्रतीके च विलग्नानि तावत्पूतः सुतस्तयोः ॥
पादारविन्दसलिलं यः पित्रोः पिबतेसुतः । तस्य पापं क्षयं याति जन्मकोटिशतार्जितम्

धन्योऽसौ मानवो लोके पूतोऽसौ सर्वकल्मषात् ।
विनायकत्वमाप्नोति जन्मनैकेन मानवः ॥ १६ ॥

पितरौलङ्घयेद्यस्तु वचोभिः पुरुषाधमः । निरये च वसेत्तावद्यावदाभूतसम्प्लवम् ॥
पित्रोरनर्चनं कृत्वा भुङ्क्ते यस्तु सुताधमः । कृमिकूपेऽथनरके कल्पान्तमुपतिष्ठति ॥
रोगिणं चापि वृद्धं च पितरंवृत्तिकर्शितम् । विकलंनेत्रकर्णाभ्यांत्यक्त्वागच्छेच्चरौरवम्
अन्त्यजातिषु म्लेच्छेषु चाण्डालेष्वपिजायते । पित्रोरपोषणं कृत्वासर्वपुण्यक्षयोभवेत्

नाराध्य पितरौ पुत्रस्तीर्थदेवान्भजन्नपि ।
तयोर्न फलमाप्नोति कीटवद्भ्रमते महीम् ॥ २१ ॥

कथयामि पुरा वृत्तंविप्राः शृणुत यत्नतः । यं श्रुत्वा न पुनर्मोहं प्रयास्यथ पुनर्भुवि ॥
पुराऽऽसीच्च द्विजः कश्चिन्नरोत्तम इतिस्मृतः । स्वपितरावनादृत्य गतोऽसौ तीर्थसेवया
ततःसर्वाणि तीर्थानि गच्छतो ब्राह्मणस्य च । आकाशे स्नानचैलानिप्रशुष्यन्तिदिनेदिने

अहङ्कारोऽविशत्तस्य मानसे ब्राह्मणस्य च ।
मत्समो नास्ति वै कश्चित्पुण्यकर्मा महायशाः ॥ २५ ॥

इत्युक्ते चानने तस्य अदहच्च बकस्तदा । क्रोधाच्चैवेरितस्तस्य स शशापद्विजो बकम्
पपात च बकः पृथ्व्यां स भस्मीभूतविग्रहः । भीर्द्विजेन्द्रं महामोहःप्राविशच्चान्तकर्मणि
ततः पापाच्च विप्रस्य चैलं खे च न गच्छति । विषादमगमत्सद्यस्ततः खे तमुवाचह ॥

देववाण्युवाच ।

गच्छ वाडव चाण्डालं मूकं परमधार्मिकम् । तत्रधर्मं च जानीषे क्षेमं ते तद्वचोभवेत्

व्यास उवाच ।

खाच्च तद्वचनं श्रुत्वा गतोऽसौमूकमन्दिरम् । शुश्रूषन्तं च पितरौ सर्वारम्भान्ददर्श सः
ददतं शीतकाले च सम्यगुष्णं जलं तयोः । तैलतापनताम्बूलं तथा तूलवतीं पटीम् ॥
नित्याशनं च मिष्टान्नं दुग्धखण्डंतथैव च । दापयन्तं वसन्ते च मधुमालां सुगन्धिकाम्

अन्यानि यानि भोग्यानि कृत्यानि विविधानि च ।
उष्णे चावीजयत्सोऽपि नित्यं च पितरावपि ॥ ३२ ॥

ततस्तयोःप्रचर्यां च कृत्वाभुङ्क्तेऽथसर्वदा। श्रमस्य वारणं कुर्यात्सन्तापस्य तथैव च
एभिः पुण्यैः स्थितो विष्णुस्तस्य गेहोदरे चिरम्।
अन्तरिक्षे च क्रीडन्तमाधारस्तम्भवर्जिते ॥ ३५ ॥
तस्यापि भवने नित्यं स्थितं त्रिभुवनेश्वरम्। विप्ररूपधरं कान्तं नान्यैर्भूतं च सत्परम्
तेजोमयं महासत्त्वं शोभयन्तं च मन्दिरम्। दृष्ट्वा विस्मयमापन्नो विप्रःप्रोवाचमूककम्

विप्र उवाच।

आसन्नं च ममागच्छ त्वयैवेच्छामि शाश्वतम्। हितं मेसर्वलोकानां तत्त्वतो वक्तुमर्हसि

मूक उवाच।

पित्रोरर्चांकरोम्यद्य कथमायामि तेऽन्तिकम्। अर्चयित्वा तु पितरौ कृत्यंतेकरवाणि वै
तिष्ठ मे द्वारदेशे च आतिथ्यं ते करोम्यहम् ॥ ४० ॥

व्यास उवाच।

इत्युक्ते चैव चाण्डाले चुकोप ब्राह्मणस्तदा ॥ ४१ ॥

ब्राह्मण उवाच।

ब्राह्मणं मां परित्यज्य किंकार्यमधिकं तव ॥ ४२ ॥

मूक उवाच।

किं कुप्यसि वृथा विप्र न बकोऽहं तवाधुना।
कोपस्सिद्ध्यति ते तावद् बकेनान्यत्र किंचन ॥ ४३ ॥
गगने स्नानशाटीते न शुष्यति न तिष्ठति। वचनं खात्ततः श्रुत्वा मद्गृहं चागतो भवान्
तिष्ठ तिष्ठ वदिष्यामि नो चेद्गच्छपतिव्रताम्। तां च दृष्ट्वा द्विजश्रेष्ठ दयितं तेफलिष्यति

व्यास उवाच।

ततस्तस्यगृहाद्विष्णुर्द्विजरूपधरो विभुः। विनिस्सृत्य द्विजं प्राह गेहं तस्याः प्रयाम्यहम्
स विमृश्यद्विजश्रेष्ठस्तेन सार्धं चचाल ह। गच्छन्तं तमुवाचेदं हरिं विप्रोऽतिविस्मितः

विप्र उवाच।

किमर्थं च त्वया विप्र चाण्डालस्य गृहोदरे। सदा संस्थीयते तात योषाजनवृते मुदा

हरिरुवाच ।

इदानीं मानसं शुद्धं न भूतं भवतो ध्रुवम् । पतिव्रतादिकं दृष्ट्वा पश्चाज्ज्ञास्यसि मांकिल

विप्र उवाच ।

पतिव्रता च का तात किं वा तस्याश्श्रुतंमहत् । येनाहंतत्रगच्छामि कारणं वद मे द्विज

हरिरुवाच ।

नदीनां जाह्नवी श्रेष्ठा प्रमदानां पतिव्रता । मनुष्याणां प्रजापालो देवानां च जनार्दनः ॥

पतिव्रता च या नारीपत्युर्नीत्यं हितेरता । कुलद्वयस्य पुरुषानुद्धरेत्सा शतं शतम् ॥५२।

स्वर्गं भुनक्ति तावच्च यावदाभूतसम्प्लवम् । स्वर्गाद्भ्रष्टो भवेद्वास्याःसार्वभौमोनृपःपतिः

अस्यैव महिषी भूत्वा सुखं विन्देदनन्तरम् । पुनः पुनः स्वर्गराज्यं तस्य तस्यान संशयः

एवं जन्मशतं प्राप्य अन्ते मोक्षोभवेद्ध्रुवम् ॥

विप्र उवाच ।

पतिव्रता भवेत्कावातस्या किं वा च लक्षणम् । ब्रूहिमेद्विजशार्दूल यथाजानामि तत्त्वतः

हरिरुवाच ।

पुत्राच्छतगुणं स्नेहाद्राजानं च भयादथ । आराधयेत्पतिंशौरिं या पश्येत्सा पतिव्रता

कार्यदासी रतौ वेश्या भोजने जननीसमा । विपत्सु मन्त्रिणीभर्तुःसा च भार्यापतिव्रता

भर्तुराज्ञां न लङ्घ्यामनोवाक्कायकर्मभिः । भुक्ते पत्यौ सदा चात्ति साच भार्या पतिव्रता

यस्यां यस्यां तु शय्यायां पतिः स्वपिति यत्नतः ।

तत्र तत्र च सा भर्तुरर्चां करोति नित्यशः ॥ ६० ॥

नैवमत्सरमायाति न कार्पण्यं न मानिनी । मानेऽमाने समानं च या पश्येत्सा पतिव्रता

सुवेषं या नरं दृष्ट्वा भ्रातरं पितरं सुतम् । मन्यते च परं साध्वी सा च भार्या पतिव्रता

तां गच्छ द्विजशार्दूल वद कामं यथा तव । तस्यपत्न्योऽष्ट तिष्ठन्ति तन्मध्येवरवर्णिनी

रूपयौवनसम्पन्ना दयायुक्तायशस्विनी । शुभानामेति विख्याता गत्वा तां पृच्छतेहितम्

व्यास उवाच ।

एवमुक्त्वा तु भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत । तस्यैवादृश्यतां दृष्ट्वा विस्मितोऽभूद्द्विजस्तदा

स च साध्वी गृहंगत्वा पप्रच्छाथ पतिव्रताम् ।
अतिथेर्वचनं श्रुत्वा गृहान्निःसृत्य सम्भ्रमात् ॥ ६६ ॥
दृष्ट्वा द्विजं सती तत्र द्वारदेशस्थिता भवत् । तां च दृष्ट्वा द्विजश्रेष्ठ उवाच वचनं मुदा ॥

विप्र उवाच ।

प्रियं मम हितं ब्रूहि यथादृष्टं त्वमेव हि ॥ ६८ ॥

पतिव्रतोवाच ।

साम्प्रतंपत्युरर्चास्ति नवास्माकंस्वतन्त्रता । पश्चात्कार्यंकरिष्यामि गृहाणातिथ्यमद्यवै

विप्र उवाच ।

ममदेहे क्षुधा नास्ति पिपासाद्य न च श्रमः । अभीष्टं वद कल्याणि नोचेच्छापंददामिते

व्यास उवाच ।

तमुवाच तदा सापि न बकोऽहं द्विजोत्तम । गच्छ धर्मतुलाधारं पृच्छ तं ते हितं द्विज
इत्युक्त्वा सा महाभागा प्रययौ च गृहोदरम् ।
तत्रापश्यद्द्विजो विप्रं यथा चाण्डालवेश्मनि ॥ ७२ ॥
विमृश्यविस्मयापन्नस्तेनसार्धं ययौद्विजः । तिष्ठन्तंचद्विजं तं च सोऽपश्यद्धृष्टमानसम्
स चोवाच मुदा विप्रं दृष्ट्वा तं तां सतीं च सः ॥ ७४ ॥

विप्र उवाच ।

देशान्तरैच यद्वृत्तं तया च कथितंकिल । कथंजानाति मद्वृत्तं चाण्डालोऽपिपतिव्रता
अतो मे विस्मयस्तात किमाश्चर्यंपरं महत् ॥ ७५ ॥

हरिरुवाच ।

ज्ञायते कारणं तात सर्वेषां भूतभावनः । अतिपुण्यात्सदाचाराद्यतस्त्वं विस्मयं गतः ॥
किमुक्तश्च तया त्वं च वद तत्साम्प्रतं मुने ॥ ७६ ॥

विप्र उवाच ।

प्रष्टुं धर्मं तुलाधारं सा च मां समुपादिशत् ॥ ७७ ॥

हरिरुवाच ।

आगच्छमुनिशार्दूल अहं गच्छामि तं प्रति । गच्छन्तं च हरिं प्राह तुलाधारः क्व तिष्ठति

हरिरुवाच ।

जनानां निकरो यत्र बहुद्रव्यसुविक्रये । विक्रीणाति च क्रीणाति तुलाधारस्ततस्ततः
जनो यवान्नसं स्नेहं कूटमन्नस्य सञ्चयम् । सर्वं तस्य मुखादेव गृह्णाति च ददात्यपि ॥
सत्यं त्यक्त्वाऽनृतं किंचित्प्राणान्ते समुपस्थिते । नोक्तं नरवरश्रेष्ठस्तेन धर्मतुलाधरः

व्यास उवाच ।

इत्युक्ते तु तमद्राक्षीद्विक्रीणन्तं रसान्बहून् । मलपङ्कधरं मर्त्यं दन्तकुड्मलपङ्किलम् ॥

तत्र वस्तुधनोत्थां च भाषन्तं विविधां गिरम् ।
वृतं बहुविधैर्मर्त्यैः स्त्रीभिः पुम्भिश्च सर्वतः ।
कथं कथमिति प्राह स तं मधुरया गिरा ॥ ८३ ॥

विप्र उवाच ।

धर्मस्य मे समुद्देशं वद प्राप्तोऽन्तिकं हि ते ॥ ८४ ॥

तुलाधार उवाच ।

यावज्जनाःप्रतिष्ठन्ति ममैवसन्निधौ द्विज । तावन्मेस्वस्थतानास्ति यावद्धरात्रियामकः
तच्चोपदेशमादाय गच्छ धर्माकरं प्रति । बकस्य मरणे दोषं खे च वस्त्राविशोषणम् ॥
सर्वं तत्र च जानीषे सज्जनाद्रोहकं व्रज । तत्र तस्योपदेशेन तव कामः फलिष्यति ॥

व्यास उवाच ।

इत्युक्त्वा तं तुलाधारः करोति क्रयविक्रयौ ॥ ८८ ॥

विप्र उवाच ।

तथा तात गमिष्यामि सज्जनाद्रोहकं प्रति । तुलाधार समुद्देशान्न जानामि तदालयम्

हरिरुवाच ।

एह्यागच्छ गमिष्यामि त्वया सार्द्धं च तद्गृहम् ।
अथ वर्त्मनि गच्छन्तमुवाच ब्राह्मणो हरिम् ॥ ९०

विप्र उवाच ।

तुलाधारस्य न स्नानं न देवपितृतर्पणम् । मलदिग्धं च गात्रं तु सर्वं चैलमलक्षणम् ॥
कथं जानाति मद्वृत्तं देशान्तरसमुद्भवम् । अतो मे विस्मयस्तात सर्वं त्वं वद कारणम्

हरिरुवाच ।

सत्येन समभावेन जितं तेन जगत्त्रयम् । तेनातृप्यन्त पितरो देवा मुनिगणैः सह ॥
भूतभव्यप्रवृत्तं च तेन जानाति धार्मिकः । नास्तिसत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकंपरम्
विशेषे समभावस्य पुरुषस्यानघस्य च । अरौ मित्रेऽप्युदासीने मनो यस्य समं व्रजेत्
सर्वपापक्षयस्तस्य विष्णुसायुज्यतां व्रजेत् ॥ ९५ ॥
एवं यो वर्तते नित्यं कुलकोटिं समुद्धरेत् । समो धर्मः समः स्वर्गः समं हि परमं तपः
यस्यैव मानसे नित्यं समः स पुरुषोत्तमः ॥ ९६ ॥
सत्यं दमः शमश्चैव धैर्यं स्थैर्यमलोभता । अनाश्चर्यमनालस्यं तस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितम्
तेन वै देवलोकस्य नरलोकस्य सर्वशः । वृत्तं जानाति धर्मज्ञस्तस्य देहे स्थितो हरिः
लोके तस्य समो नास्ति समः सत्यार्जवेषु च ।
स च धर्ममयः साक्षात्तेनैव धारितं जगत् ॥ ९९ ॥

द्विज उवाच ।

ज्ञातंमे त्वत्प्रसादाच्च तुलाधारस्यकारणम् । अद्रोहकस्ययद्वृत्तंतद् ब्रूहि त्वंयदीच्छसि

हरिरुवाच ।

पुरैव राजपुत्रस्य कुलस्त्री नवयौवना । पत्नीव कामदेवस्य शचीव वासवस्य च ॥
तस्य प्राणसमा भार्या सुन्दरी नामसुन्दरी । अकस्मात्पार्थिवश्चैव कार्ये गन्तुंसमुद्यतः
मनसाऽऽलोचितं तेन प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् ।
कस्मिन्स्थाने स्थापयामि यतो रक्षा भवेद् ध्रुवम् ॥ १०३ ॥
इत्यालोच्यैवसहसा त्वागतोऽस्य गृहंप्रति । उक्तंच तादृशं वाक्यं श्रुत्वासविस्मयंगतः

अद्रोहक उवाच ।

न तातस्ते न च भ्राता न चाहं तव बान्धवः। पितृमातृकुलस्यैव तस्या न हि सुहृज्जनः

कथं च मद्गृहे तात स्थित्वा स्वस्थो भविष्यसि ॥ ५ ॥

हरिरुवाच ।

एतस्मिन्नन्तरे तेन चोक्तं वाक्यं यथोचितम् ॥ १०६ ॥

राजपुत्र उवाच ।

लोके त्वत्सदृशो नास्ति धर्मज्ञो विजितेन्द्रियः ॥ ७ ॥

हरिरुवाच ।

स चाहतं च सर्वज्ञं वक्तुं नार्हसिदूषणम् । त्रैलोक्यमोहिनीं भार्यां कः पुमान्रक्षितुं क्षमः

राजपुत्र उवाच ।

धरण्यां परिविज्ञाय त्वागतोऽहं तवान्तिकम् ।

एषा तिष्ठतु तेऽगारे व्रजामि निजमन्दिरम् ॥ १०९ ॥

हरिरुवाच ।

इत्युक्ते स पुनःप्राह नगरेऽस्मिन्प्रशोभने । बहुकामुकसम्पूर्णे कथं रक्षाभवेत् स्त्रियाः

स चोवाच पुनस्तं च कुरु रक्षां व्रजाम्यहम् ।

गृहस्थः सङ्कटादाह धर्मस्य राजपुत्रकम् ॥ १११ ॥

अद्रोहक उवाच ।

करोम्यनुचितं कार्यं स्वदास्यमुचितं हितम् । सदाचैवेदृशी भार्या स्थातव्या मद्गृहे पितः

अरक्षा रक्षणे देव वदाभीष्टं कुरुप्रियम् । मम तल्पे मयासार्धं शयाना भार्यया सह ॥

मन्यसे दैवतं स्वं चेत्तिष्ठेन्नोचेत्तु गच्छतु ॥ ११३ ॥

हरिरुवाच ।

क्षणं विमृश्य तं प्राह राजपुत्रः पुनस्तदा ॥ ११४ ॥

राजपुत्र उवाच ।

बाढमेतद्वचस्तात यथाभीष्टं तथा कुरु ॥ ११५ ॥

हरिरुवाच ।

ततो भार्यां जगादाथ अस्य वाक्याच्छिवाशिवम् ।

कर्तव्यं च न ते दोष आज्ञया मम सुन्दरि ॥ ११६ ॥

एतदुक्त्वागतःसोऽपि भूपतेःशासनात्पितुः । अनन्तरं क्षपायां च यदुक्तं च तथा कृतम्

योषितोर्मध्यगःसोऽपि नित्यं स्वपिति धार्मिकः ।

धर्मान्नचलते सोऽपि स्वभार्या परभार्ययोः ॥ ११८ ॥

संस्पर्शात्स्वस्त्रियश्चास्य कामाभिलषितं मनः । तस्याःसंसर्गतश्चैव दुहितैव प्रमन्यते ॥

स्तनौ तस्यास्तु पृष्ठे च लगन्तौ च पुनःपुनः । बालकस्येव पुत्रस्य स्तनौमातुःसमन्यते

तस्या अङ्गानि चाङ्गेषु लगन्ति च पुनःपुनः ।

ततो मातुस्सुतस्येव सोऽमन्यत दिने दिने ॥ १२१ ॥

तस्य योषासु संसर्गा निवृत्तस्त्वभवत्ततः । एवंसंवत्सरस्यार्द्धे तत्पतिश्चागतःपुरम् ॥

अपृच्छन्तं च लोकेषुतस्यावृत्तमथोदितम् । केचिद्भद्रंबोधयन्तोयुवानोऽपिसुविस्मिताः

केचिदाहुस्त्वया दत्ता तया सार्द्धं स्वपित्यसौ ।

स्त्रीपुंसोरेकसंसर्गाच्छान्तता तु कथं भवेत् ॥ १२४ ॥

तस्यां यस्याभिलाषोऽस्ति न पृष्टस्सवदेद्युवा ।

लोकानां कुश्रुतिवार्ता तेन पुण्यबलाच्छ्रुता ॥ १२५ ॥

जनापवादमोक्षार्थं बुद्धिस्तस्याभवच्छुभा । दारूणिस्वयमाहृत्याजिज्वलत्समहानलम् ॥

एतस्मिन्नन्तरे तात राजपुत्रःप्रतापवान् । आगमत्तद्गृहंसद्यः सोऽपश्यत्तां च योषितम्

प्रोत्फुल्लवदनांनारीं प्रविषादगतं नरम् । अनयोर्मानसंज्ञात्वा राजपुत्रोऽवदद्वचः ॥१२८॥

राजपुत्र उवाच ।

किं न सम्भाषसे मां च मित्रकं चिरमागतम् ॥ १२६ ॥

हरिरुवाच ।

अब्रवीत्सोऽपि धर्मात्मा राजपुत्रमनष्टधीः ॥ १३० ॥

अद्रोहक उवाच ।

यत्कृतं दुष्करं कर्म मयात्वद्धितकारणात् । सर्वं व्यर्थमहंमन्ये जनानां च प्रवादतः ॥

अद्य वह्निमहं यास्ये प्रपश्यन्तु नरास्सुराः ॥ १३१ ॥

हरिरुवाच ।

इत्युक्त्वा स महाभागः प्रविवेश हुताशनम् । विशतस्तस्य वह्नौ न कुसुमं चिकुरालये

नाङ्गमस्यानलोऽधाक्षीन्न च वस्त्रं न कुन्तलम् ।

खे च देवा मुदा सर्वे साधुसाध्वीति चाब्रुवन् ॥ १३३ ॥

अपतन्पुष्पवर्षाणि तस्यमूर्ध्नि समन्ततः । यैर्यैश्च दुष्कृतंवाक्यं गदितं तावुभौप्रति ॥

तेषांमुखे प्रजायन्ते कुष्ठानि विविधानि च । तत्रागत्य च देवाश्चवह्नेराकृष्य तं मुदा

अपूजयन्सुपुष्पैश्च मुनयो विस्मयंगताः । सर्वैर्मुनिवरैरेवं मनुष्यैर्विविधैस्तदा ॥१३६॥

अर्च्यतेतु महातेजाः स च सर्वानपूजयत् । सज्जनाद्रोहकं नाम कृतं देवासुरैर्नृभिः ॥

तस्यपादरजः पूता सस्यपूर्णाऽधरा भवत् । सुराश्चाहुश्च तं तत्र भार्या ते सम्प्रगृह्यताम्

एतस्य सदृशोलोके न भूतो न भविष्यति ।

नास्तीति साम्प्रतं पृथ्व्यां कामलोभाजितः पुमान् ॥ १३९ ॥

देवासुरमनुष्याणां रक्षसां मृगपक्षिणाम् ॥

कीटादीनां च सर्वेषां कामएष सुदुर्जयः ॥ १४० ॥

कामाल्लोभात्तथाक्रोधान्नित्यं सत्त्वेषु जायते ।

संसारबन्धकःकामो ह्यकामो न क्वचिद्भवेत् ॥ १४१ ॥

अनेनैवजितं सर्वं भुवनानि चतुर्दश । अमुष्य हृदयेनित्यं वासुदेवोमुदास्थितः ॥१४२॥

एवंस्पृष्ट्वाऽथ दृष्ट्वा तं मनुष्याः सर्वकल्मषात् । पूयन्ते ह्यनघाश्चैवलभन्ते चाक्षयांदिवम्

एवमुक्त्वा गतादेवा विमानैश्च दिवंमुदा । मनुष्याः प्रययुस्तुष्टा दम्पती स्वं गृहं तथा ॥

दिव्यं चक्षुस्तदा तस्य चासीद्देवान्स पश्यति ।

त्रैलोक्यस्य च वार्त्तां च जानाति लीलया भृशम् ॥ १४५ ॥

ततस्तस्य च वीथ्यां च दृष्टस्तेन सहैव सः। स पप्रच्छ मुदातं च धर्मादेशं हितं वद ॥

सज्जनाद्रोह उवाच ।

गच्छ वाडव धर्मज्ञ वैष्णवं पुरुषोत्तमम् । तं च दृष्ट्वा त्वभीष्टं ते साम्प्रतं च फलिष्यति

बकस्य निधनं यद्वावस्त्रस्याशोषणंतथा । जानीषेवापरोयश्च कामस्तेऽस्तिहृदिस्थितः

व्यास उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा तु वचनमागतो वैष्णवं प्रति । विष्णुरूपद्विजेनैव सार्द्धं तेन मुदा ययौ ॥
अपश्यत्पुरुषं शुद्धं ज्वलन्तं च पुरः स्थितम् । सर्वलक्षणसम्पूर्णं दीप्यमानं स्वतेजसा
अब्रवीत्स च धर्मात्मा ध्यानस्थं च हरेः प्रियम् ॥ १५१ ॥

विप्र उवाच ।

वद नो यद्यद्वृत्तं वै दूरात्त्वां चागतो ह्यहम् ॥ १५२ ॥

वैष्णव उवाच ।

प्रसन्नस्ते सुरश्रेष्ठो दानवारीश्वरःसदा । दृष्ट्वा त्वां च मनोऽस्माकं हृष्यतीवाधुनाद्विज
कल्याणं चातुलं तेऽद्य फलिष्यति मनोरथः ।
सुरवर्त्मनि ते नित्यं चैलं शुष्यन्ति नान्यथा ॥
दृष्ट्वा देवं सुरश्रेष्ठं मम गेहे हरिं स्थितम् ॥ १५४ ॥

व्यास उवाच ।

इत्युक्ते वैष्णवेनाथ स तु तं पुनरब्रवीत् ॥ १५५ ॥

विप्र उवाच ।

क्वासौ विष्णुः स्थितो नित्यं दर्शयाद्य प्रसादतः ॥ १५६ ॥

वैष्णव उवाच ।

अस्मिन्देवगृहे रम्ये प्रविश्य परमेश्वरम् । तं दृष्ट्वा किल्बिषाद्घोरान्मुच्यसे जन्मबन्धनात्

व्यास उवाच ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रविश्य सदनं प्रति । अपश्यतं द्विजं विष्णुं तिष्ठन्तं पद्मतल्पके ॥
शिरसैव प्रवन्द्याथ जग्राह चरणौ मुदा । प्रसादी भवदेवेश न ज्ञातस्त्वं पुरामया ॥
इहामुत्र च देवेश तवाहं किङ्करः प्रभो । अनुग्रहश्च मे दृष्टो भवतो मधुसूदन ॥१६० ॥
रूपं ते द्रष्टुमिच्छामि यदि चास्ति कृपा मयि ॥ १६१ ॥

विष्णुरुवाच ।

अस्ति मे त्वयि भूदेव प्रियत्वं च सदैव हि । स्नेहात्पुण्यवतामेव दर्शनं कारितं मया

दर्शनात्स्पर्शनाद्ध्यानात्कीर्तनाद्भाषणात्तथा । सकृत्पुण्यवतामेव स्वर्ग्यं चाक्षयमश्नुते ॥

नित्यमेव तु संसर्गात्सर्वपापक्षयो भवेत् ।

भुक्त्वा सुखमनन्तं च मद्देहे प्रविलीयते ॥ ६४ ॥

स्नात्वा च पुण्यतीर्थेषु दृष्ट्वा मां चैव सर्वतः । दृष्ट्वा पुण्यवतां देशान्ममदेहे विलीयते ॥

कथयित्वा कथां पुण्यां लोकानामग्रतः सदा । स चैव नरशार्दूल मद्देहे प्रविलीयते ॥

उपोष्य वासरेऽस्माकं श्रुत्वा मच्चरितंध्रुवम् ।

रात्रौ जागरणं कृत्वा मद्देहे प्रविलीयते ॥ ६७ ॥

अत्यन्तघोषणो नृत्यगीतवाद्यादिकैस्सदा । नामस्मरन्द्विजश्रेष्ठ मद्देहे प्रविलीयते ॥६८॥

मद्भक्तस्तीर्थभूतश्च त्वमेव बकमारणात् । यत्पापं तस्य मोक्षाय सखे स्थित्वाउवाच ह

गच्छ मूकं महात्मानं तीर्थपुण्यवतां वरम् । मूकस्य दर्शनात्तात सर्वे दृष्टा महाजनाः

तेषां च दर्शनादेव तथा सम्भाषणान्मम । मम सम्पर्कभावाच्च मद्गृहं चागतो भवान्

जन्मकोटिसहस्रेभ्यो यस्य पापक्षयो भवेत् ।

स मां पश्यति धर्मज्ञो यथा तेन प्रसन्नता ॥ १७२ ॥

ममैवानुग्रहाद्वत्स अहं दृष्टस्त्वयाऽनघ । तस्माद्वरं गृहाण त्वं यत्ते मनसि वर्तते ॥१७३

विप्र उवाच ।

अस्माकं सर्वथा नाथमानसं त्वयि तिष्ठतु । त्वदृते सर्वलोकेश कदाचिन्न तु रोचताम्

माधव उवाच ।

यस्मादेतादृशीबुद्धिः स्फुरते ते सदाऽनघ । तस्मान्मत्सदृशान्भोगान्मद्गेहे संप्रलप्स्यसे

किं तु ते पितरौपूजामाप्नुतो न त्वयाऽनघ । पूजयित्वातु पितरौ पश्चाद्यास्यसिमत्तनुम्

तयोर्निश्श्वासवातेन मन्युना च भृशं पुनः ।

तपः क्षरति ते नित्यं तस्मात्पूजयतौ द्विज ॥ १७७ ॥

मन्युर्निपतते यस्मिन्पुत्रे पित्रोश्च नित्यशः । तन्निरयं न बाधेऽहं न धाता न च शङ्करः

तस्मात्त्वं पितरौ गच्छ कुरु पूजां प्रयत्नतः ।

ततस्त्वं हि तयोरेव प्रसादान्मत्पदं व्रज ॥ १७९ ॥

व्यास उवाच ।

इत्युक्ते तु द्विजश्रेष्ठः पुनराह जगद्गुरुम् ॥ १८० ॥

विप्र उवाच ।

प्रसन्नो यदि मे नाथ रूपं स्वं दर्शयाच्युत ॥ १८१ ॥

व्यास उवाच ।

ततो द्विजप्रणयतः प्रसन्नहृदयो वशी । रूपं स्वं दर्शयामास ब्रह्मण्यो ब्रह्मकर्मणे॥१८२॥
शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं पुरुषोत्तमम् । कारणं सर्वलोकस्य तेजसापूरयज्जगत्॥१८३॥
प्रणम्य दण्डवद्विप्र उवाच पुनरच्युतम् । अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे चक्षुषी शिवे ॥

अद्य मे च करौश्लाध्यौ धन्योऽहं जगदीश्वर ।

अद्य मे पुरुषा यान्ति ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ १८५ ॥

नन्दन्ति बान्धवा मेऽद्य त्वत्प्रसादाज्जनार्दन। इदानीं च प्रसिद्धा मे सर्वे चैव मनोरथाः

किं तु मे विस्मयो नाथ मूकादिज्ञानिनो भृशम् ।

कथं जानन्ति मद्वृत्तं देशान्तर उपस्थितम् ॥ १८७ ॥

तस्य गेहोदराकाशे स्थितो विप्रोऽतिशोभनः । तथापतिव्रता गेहे तुलाधारशिरस्यपि
तथा मित्राद्रोहकस्य त्वं च वैष्णवमन्दिरे । अनुग्रहाच्च मे विप्र तत्त्वतो वक्तुमर्हसि ॥

श्रीभगवानुवाच ।

पित्रोर्भक्तः सदा मूकः पतिव्रता शुभा च सा । सत्यवादी तुलाधारः समः सर्वजनेषुच
लोभकामजिदद्रोहो मद्भक्तो वैष्णवःस्मृतः । सम्प्रीतोऽहं गुणैरेषां तिष्ठाम्यावसथेमुदा

भारतीकमलाभ्यां च सहितो द्विजसत्तम ॥ १९१ ॥

विप्र उवाच ।

महापातकिसंसर्गान्नराश्चैवातिपातकाः । इति जल्पन्ति धर्मज्ञाः स्मृतिशास्त्रेषु सर्वदा

पुराणागमवेदेषु कथं त्वं तिष्ठसे गृहे ॥ १९२ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

कल्याणानां च सर्वेषां कर्त्ता मूको जगत्त्रये ।

वृत्तस्थो योऽपि चण्डालस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ १९३ ॥

मूकस्य सदृशो नास्ति लोकेषु पुण्यकर्मतः। पित्रोर्भक्तिपरो नित्यजितं तेन जगत्त्रयम्
तयोर्भक्त्या त्वहं तुष्टः सर्वदेवगणैःसह। तिष्ठामि द्विजरूपेण तस्य गेहोदरे च खे ॥
तथा पतिव्रतागेहे तुलाधारस्य मन्दिरे। अद्रोहकस्य भवने वैष्णवस्य च वेश्मनि ॥
सदा तिष्ठामि धर्मज्ञ मुहूर्तं न त्यजाम्यहम्। तेनपश्यन्ति मां नित्यं ये त्वन्येपापकृज्जना

पुण्यत्वाच्च त्वया दृष्टो ममानुग्रहकारणात्।
पित्रोर्भक्तिपरः शुद्धश्चाण्डालो देवतां गतः ॥ १९८ ॥

तस्मात्तेन सह प्रीत्या तिष्ठामि तस्य मन्दिरे। पुनः पुनः कथालापं करोमि द्विजनन्दन
तस्यवै मानसे नित्यं वर्तेऽहं भूतभावनः। सतज्जनाति त्वद्वृत्तं तथा पतिव्रतादयः ॥

तेषां वृत्तं वदिष्यामि श्रृणुत्वं चानुपूर्वशः।
यच्छ्रुत्वा सर्वथा मर्त्यो मुच्यते जन्मबन्धनात् ॥ २०१

पितुर्मातुः परं तीर्थदेवदेवेषु नैव हि। पित्रोरर्चाकृता येन स एव पुरुषोत्तमः ॥ २०२ ॥
पित्रोराज्ञा च देवस्य गुरोराज्ञासमं फलम्। आराधनाद्दिवो राज्यं बाधया रौरवंव्रजेत्

स चास्माकं हृदिस्थोपि तस्याहं हृदये स्थितः।
आवयोरन्तरं नास्ति परत्रेह च मत्समः ॥ २०४ ॥

मदग्रे मत्पुरे रम्ये सर्वैश्च बान्धवैः सह। स भुञ्जीताक्षयं भोगमन्ते मयि च लीयते ॥

अत एव हि मूकोऽसौ वार्त्तां त्रैलोक्यसम्भवाम्।
जानाति नरशार्दूल एष ते विस्मयः कुतः ॥ २०६ ॥

द्विज उवाच।

मोहादज्ञानतो वापि न कृत्वा पितुरर्चनम्। ज्ञात्वा वा किं च कर्तव्यं सदसज्जगदीश्वर

श्रीभगवानुवाच।

दिनैकं मासपक्षौ वा पक्षार्धं वाथ वत्सरम्।
पित्रोर्भक्तिः कृता येन स च गच्छेन्ममालयम् ॥ २०८ ॥

कारयित्वा मनः कष्टमवश्यं नरकं व्रजेत्। न कृता वाकृता वास्यात्पित्रोरर्चापरं पुरा ॥

वृषोत्सर्गं नरः कृत्वा पितृभक्तिफलं लभेत् ॥ २०६ ॥
अन्नं वस्त्रं तथा गव्यं मधुमांसादिसत्कृतम् । दद्यादकुत्सितं श्राद्धे बृषोत्सर्गफलंलभेत्
श्राद्धं दद्याद्द्विजाग्र्याय वेदशास्त्रानुभाविने । शान्तायवीतरागाय वृषोत्सर्गफलंलभेत्
अन्नं वस्त्रं तथा गव्यं सामिषं च निरामिषम् । सर्वं लक्षगुणं प्रोक्तंज्ञातिभ्योयत्प्रदीयते
सर्वस्वेन कृतं श्राद्धं येन पुत्रेण धीमता ।
जातिस्मरत्वं प्राप्नोति पितृभक्तिफलं लभेत् ॥ २१३ ॥
श्राद्धात्परो महायज्ञस्त्रैलोक्ये तु न विद्यते । अत्र यद्दीयते किंचित्सर्वं चाक्षयमश्नुते
अन्यस्मिंश्चायुतं विद्धि ज्ञातिभ्यो लक्षमुच्यते ।
पिण्डे कोटिगुणं प्रोक्तं द्विजायानन्तमुच्यते ॥ २१५ ॥
गङ्गाजले गयायां च प्रयागे पुष्करे तथा । वाराणस्यां सिद्धकुण्डे गङ्गासागरसङ्गमे ॥
अन्नपिण्डं प्रदद्याद्यस्तस्य मुक्तिर्भवेद्ध्रुवम् । पितरश्चाक्षयं स्वर्गं लभन्ते जन्मनः फलम्
भागीरथ्यां विशेषेण यस्तु दद्यात्तिलोदकम् ।
मुक्तिमार्गं स चाप्नोति पिण्डदाने तु किं पुनः ॥ २१८ ॥
नदीतीरेषु साहस्रं नदे त्वयुतमिष्यते । सामान्यफलसंसर्गाच्छ्राद्धं शतगुणं भवेत् ॥
अमायां च युगाद्यायां ग्रहणे सूर्यचन्द्रयोः ।
पार्वणं कुरुते यस्तु सोऽक्षयं लोकमश्नुते ॥ २२० ॥
पितरस्तस्य तुष्यन्ति सर्वे समायुतं प्रति । आशिषंदयितं दत्त्वा भोग्यं चानन्तमात्मजे
ततः पर्वणि पुत्रैश्च कर्त्तव्यं पार्वणं मुदा । पित्रोर्यज्ञमिमं कृत्वा मुच्यते जन्मबन्धनात्
अहन्यहनि यच्छ्राद्धं नित्यश्राद्धमितिस्मृतम् ।
श्रद्धया कारयेद्यस्तु सोऽक्षयं लोकमश्नुते ॥ २२३ ॥
तथैवापरपक्षे च काम्यश्राद्धं विधानतः। कृत्वा कामं स चाप्नोति यद्वा मनसि वर्तते ॥
आषाढीमवधिं कृत्वा यस्तु पक्षस्तुपञ्चमः । तत्रश्राद्धं प्रकुर्वीत कन्यांगच्छतु वा न वा
कन्यां गते सवितरि यान्यहानि तु षोडश ।
क्रतुभिस्तानि तुल्यानि समाप्तवरदक्षिणैः ॥ २२६ ॥

काम्यश्राद्धं महापुण्यमिदं तस्यागतं शिवम्। अभावात्कृष्णपक्षादौ तुलायां कर्तुमर्हति
अमावृश्चिकमायाति नैराश्यं पितरोगताः। पुनः स्वभवनं यान्ति शापं दत्त्वासुदारुणम्
पितृशापेन पुत्रस्य नष्टं सर्वमिति स्मृतम्। धनं पुत्रा यशः काम्यमभीष्टमायुरेव च॥

सर्वाण्येतानि लभ्यन्ते जन्मजन्मसु मानवैः।
पितॄणां च वरेणैव तस्मान्मैनं परित्यजेत्॥ २३०॥

विवाहव्रतयज्ञादौ कृत्वा नान्दीमुखंद्विजः। अक्षयं लभते पुण्यं गोत्रं तस्य प्रवर्द्धते॥
एतद्विपर्ययो यस्य स याति नरकं नरः। कुलक्षयो भवेत्तस्य स जीवो दुःखितोभवेत्
ततस्तु पूजयेदग्रे गणेशं शम्भुनन्दनम्। परंषोडशमातृश्च तत्पश्चात्पितृसञ्चयम्॥२३३॥
नान्दीमुखेषु सर्वेषु प्रपितामहपूर्वकम्। नान्दीमुखेद्विजान्सर्वान्स्थापयेत्प्राङ्मुखान्सुधीः
उच्चारयेन्नमोवाक्यं स्वधाचान्यत्र योजयेत्। ग्रहणे चन्द्रसूर्यस्य दत्त्वा पिण्डोदकंनरः

अक्षयं लभते स्वर्गं पितॄणां पुष्टिवर्द्धनम्।
तत्र स्नानं न कुर्याद्यःशक्त्यापिण्डोदकं नरः॥ २३६॥
न ददाति पितॄणां तु चाण्डालत्वं स गच्छति॥ २३७॥

सर्वं भूमिसमं दानंसर्वेव्याससमाद्विजाः। सर्वंगङ्गासमं तोयं राहुग्रस्ते निशाकरे २३८
इन्दोर्लक्षगुणं प्रोक्तं दशलक्षं तु भास्करे। गङ्गातोये तु सम्प्राप्त इन्दोः कोटीरवेर्दश॥

गवां शतसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम्।
तत्फलं जाह्नवीस्नाने राहुग्रस्ते निशाकरे॥ २४०॥

चन्द्रसूर्यग्रहे चैव अवगाहति जाह्नवीम्। सस्नातस्सर्वतीर्थेषु किमर्थमटते महीम्॥
सूर्यग्रहः सूर्यवारे सोमे सोमग्रहस्तथा। चूड़ामणिरितिख्यातस्तत्रानन्तफलं स्मृतम्॥

समुपोष्य तयोः पूर्वे पुण्यतीर्थे तु यः पुमान्।
दत्त्वा पिण्डोदकं दानं सत्यलोके प्रतिष्ठितः॥ २४३॥

द्विजउवाच।

पितुरेव महायज्ञः श्राद्धं च भवतेरितम्। तातापश्चिमकालादौ किंकर्त्तव्यं सुतेनहि॥
किंकृत्वा च परं श्रेयो जन्मजन्मसु लभ्यते। पुत्रेण धीमता देव यत्नतो वक्तुमर्हसि॥

श्रीभगवानुवाच ।

पूर्ववयसि सम्प्राप्ते पिता पुत्र इतिस्मृतः । उत्तरे च सुतस्तातः पालनान्नतु पूजनात् ॥
देववत्पूजयेत्तातं स्नेहं कुर्याच्च पुत्रवत् । न लङ्घयेद्वचस्तस्य मनसाऽपि कदाचन ॥

आतुरस्य पितुः पुत्रो यस्तु कुर्यात्प्रतिक्रियाम् ।
सोऽक्षयं लभते स्वर्गं सदा देवैः प्रपूज्यते ॥ २४८ ॥

मुमूर्षोरपि तातस्य पश्यतो मृत्युलक्षणम् । कृत्वा च यजनं पुत्रो देवानां तुल्यतांव्रजेत्

विधिनाऽनशनेनैव पितुः स्वर्गं ददाति यः ।
पुत्रस्य तस्य धीरस्य शृणु वक्ष्यामि यद्गुणम् ॥ २५० ॥

अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च । भवेदनशने पुण्यं तीर्थे कोटिगुणं तयोः ॥२५१
भागीरथ्या जलेचैव यो मृतः पुरुषोत्तमः । पयोधररसं मातुर्नपिबेन्मुक्ततां व्रजेत् ॥

वाराणस्यां त्यजेद्यस्तु प्राणांश्चैव यदृच्छया ।
अभीष्टं च फलं भुक्त्वा मद्देहे प्रविलीयते ॥ २५३ ॥

यागतिर्योगयुक्तानां मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् । सा गतिस्त्यजतः प्राणान्ब्रह्मपुत्रेषु सप्तसु ॥
लोहितस्य विशेषेणतीरोत्तरसमाश्रितः । विधिनायस्त्यजेत्प्राणान्स च मत्समतांव्रजेत्
तस्यैव चोर्वशीकेशे पुण्यतीर्थे द्विजोत्तम । मृतोत्पन्नः समाप्नोति सर्वदोषैर्न लिप्यते ॥

गृहस्याभ्यन्तरे यस्य प्राणत्यागो भवेद् ध्रुवम् ।
यावद्ग्रन्थिर्गृहेतिष्ठेत्तावद्बन्धो भवेत्तनौ ॥ २५७ ॥

हायने हायने चापि एकैकं परिहीयते । पश्यतां पुत्रबन्धूनां बन्धनेनास्ति निष्कृतिः ॥

पर्वते कानने दुर्गे स्थाने वा जलवर्जिते ।
मृतो दुर्गतिमाप्नोति कीटादौ जायते पुनः ॥ २५६ ॥

संस्कारश्चभवेद्यस्य मृतस्य परवासरे । षष्टिर्वर्षसहस्राणि कुम्भीपाके प्रतिष्ठति ॥ २६०॥
अस्पृश्यस्पर्शनादेव उच्छिष्टः पतितो मृतः । सुचिरं नरके स्थित्वाम्लेच्छजातिषुजायते
तथैव बहुकोटेषु जायते सत्त्वजातिषु । तस्मान्नचिरकालेषु जानीयात्पुण्यपातकम् ॥

पुण्यात्पुण्यप्रयोगैश्च सर्वेषां मर्त्यवासिनाम् ।

मरणे या गतिः पुंसां गतिर्भवति तादृशी ॥ २६३ ॥
पुण्यतीर्थे मृतो यस्तु विष्णोर्नामानि चिन्तयन् ।
पापात्पूतो व्रजेत्स्वर्गं सर्वदोषैर्नलिप्यते ॥ २६४ ॥
पितुर्मृ तस्य देहं तु वहेद्यस्तु सुतो बली । पदे पदेऽश्वमेधस्य फलंप्राप्नोत्यसंशयम् ॥
प्राश्चितौ च पितुर्देहे मुखाग्निंकारयेत्सुतः । विधिना मन्त्रपूतेन पश्चाद्देहं दहेत्पुनः ॥
लोभमोहसमायुक्तं पापपुण्यसमावृतम् । दहेयं सर्वगात्राणि दिव्याँल्लोकान्सगच्छतु ॥
दग्ध्वा च लङ्घयेत्पूत्रोऽप्यस्थिसञ्चयनं प्रति । दशाहे समनुप्राप्ते चार्द्रवस्त्रं परित्यजेत्
छित्त्वा च लोहितं चैलं वह्नौ चाथ जले क्षिपेत् ।
ततश्चैकादशाहे च श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः ॥ २६६ ॥
प्रेतस्य देहपुष्ट्यर्थं ब्राह्मणैकं तु भोजयेत् । दानं दद्याच्च विधिवद्वस्त्रंपीठं च पादुकाम्
सर्वोपकरणैस्तुल्यं धरादिगजवाजिकम् । कृष्णां गां च प्रदद्यात्तु सर्वपापविमुक्तये ॥
चतुर्थाहे त्रिपक्षे च षण्मासे चाब्दिकेतथा । द्वादशप्रतिमास्यानि श्राद्धान्येतानि षोड़श
यस्यैतानि न सन्तीह यथाशक्ति च श्रद्धया ।
पिशाचत्वं स्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि ॥ २७३ ॥
अब्दमम्बुघटं दद्यादन्नं चामिषसंयुतम् । नित्यानित्यमभवाच्च क्षपन्मासं समापयेत् ॥
सपिण्डीकरणश्राद्धं गते संवत्सरे बुधः । पार्वणस्यविधानेन कारयेद्द्विजसत्तमः ॥
पितुरब्दमशौचं स्यान्मातुः षण्मासमेवच । त्रिमासं तु स्त्रियश्चैव तदर्द्धं भ्रातृपुत्रयोः ॥
सपिण्डानामशौचं स्याद्यावद्गेहे स तिष्ठति ।
पुत्रस्य यन्निषिद्धं तु शृणु तात वदाम्यहम् ॥ २७७ ॥
ब्रह्मचारी सदाचारी न गच्छेच्च स्त्रियं क्वचित् ॥ २७८ ॥
सप्तघट्याःपरं चैव नवघट्याश्च पूर्वतः ।
स कालः कुतपो ज्ञेयः पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥ २७९ ॥
श्राद्धे त्रीणि पवित्राणिदौहित्रःकुतपस्तिलाः । त्रीणिचात्रप्रशंसन्तिसत्यमक्रोधमत्वराम्
सायं सन्ध्यां परान्नं च पुनर्भोजनमैथुनम् । दानंप्रतिग्रहं चैव श्राद्धं कृत्वा विवर्जयेत्

अकर्त्तव्यशतं कृत्वा कार्यं कुर्याद्विचक्षणः । तच्चकर्तव्यतामेति स्वयमुक्तं विरिञ्चिना ॥
शृणु पुत्र पुरावृत्तं बहूनां च वदाम्यहम् । गुरोर्गोहननं कृत्वा ददुः श्राद्धं ययुर्दिवम् ॥

तेषां च कीर्त्तनादेव श्राद्धं भवति चाक्षयम् ।
वसिष्ठस्य मुनेः शिष्या ब्राह्मणास्सप्त सुव्रताः ॥ २८४ ॥

पितृश्राद्धे समायाते होमधेनुं गुरोः प्रियाम् । प्रार्थयित्वा गृहंनीत्वा सप्तभिर्भ्रातृभिर्मुदा

गव्यार्थं पितृयज्ञे तां धेनुं हत्वा विमृश्य च ।
ददुर्मांसं च विप्रे च शेषं विप्रांस्त्वभोजयन् ॥ २८६ ॥
समाप्य पितृकर्माणि वत्सं सङ्गृह्य ते द्विजाः ।
गुरौ समर्पयामासुर्धेनुर्व्याघ्रेण भक्षिता ॥ २८७ ॥

ततस्तपोबलादेवज्ञात्वा तेषां च कारणम् । स शशापततः शिष्यांश्चाण्डालाश्चभविष्यथ

वेपमानास्ततो विप्राः कृताञ्जलिपुटाः स्थिताः ॥ २८९ ॥

शिष्या ऊचुः ।

धेनोर्मांसप्रदातारः पितृकृत्ये सदानघ । अकर्तव्यसहस्राणि महान्ति पातकानि च ।

कुर्वन्तः पितृकार्येषु पापात्पूता दिवं गताः ॥ २९० ॥

श्रुतं बहुविधं नाथ मुखात्ते च पुरातनम् । क्षन्तुमर्हसि धर्मज्ञ शापस्यान्तो विधीयताम्

वसिष्ठ उवाच ।

शापो वोऽथ यथा पाप्मा न तु धर्मविचारणात् ।
चाण्डालादौ समुत्पन्नाः पुरा वृत्तं स्मरिष्यथ ॥ २९२ ॥

न च वो ज्ञानलोपश्च स्मृतिशास्त्रमनष्टकम् । पापयोनिं समुत्तीर्यपश्चान्मोक्षं गमिष्यथ

ततः प्राणान्परित्यज्य गुरुशापात्तु ते द्विजाः ।
जाताश्चाण्डालयोनौ तु सर्वे ज्ञानसमन्विताः ॥ २९४ ॥

स्तन्यंतैस्तु न पीतं वै स्मरद्भिः पूर्वजन्म तत् । मृताजाता मृगाः सर्वे चक्रवाकाःपुनर्वने
हंसास्तुमानसे तीर्थे शुक्ला जाताःपुनर्द्विजाः । मुमूर्षवोमहाभागा मृतास्ते खेदकारणात्

तस्मिन्काले महाराजो धर्मकेतुरिति स्मृतः ।

ययौ स्नातुं ततस्तीर्थं सदारः सपरिच्छदः ॥ २६७ ॥

ततोहंसास्त्रयोमोहाद्राज्यंभोग्यं तु योषितः । भक्ष्याणिचिन्तयन्तश्चलोकान्तरमयुस्तदा

ज्ञात्वा वेदं च वेदाङ्गं मोक्षं यास्यामहे वयम् ।

चिन्तयन्तो गता अन्ये ततो लोकान्तरं प्रति ॥ २६६ ॥

अथ त्रयो नृपा जाताश्चत्वारो विप्रसत्तमाः । कुरुक्षेत्रे ततो वेदान्वेदाङ्गानि समन्ततः

तपोबलाद्विदन्तिस्म वार्ता चामुत्र चेह च । त्रयो राजकुले जाता राजानो मदमोहिताः

ज्ञानलोपात्परं लोकं न जानन्ति हिताहितम् ।

ते च विप्राश्च सन्देहादाहूय चेटकं स्वकम् ॥ ३०२ ॥

विप्रा ऊचुः ।

राज्ञो गच्छ स्वकार्पण्यात्पत्रं देहि च सम्भ्रमात् ॥ ३०३ ॥

सप्त व्याधा दशार्णेषु मृगाः कालञ्जरे गिरौ । चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसिमानसे

तेऽपि जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः । प्रस्थिता दूरमध्वानं यूयं किमवसीदथ ॥

श्री भगवानुवाच ।

गृहीत्वाचेटको लेखं राज्ञस्तुसमदर्शयत् । दृष्ट्वालेखं तु राजानोराज्यं त्यक्त्वाययुर्द्विजान्

श्रुत्वा वाक्यं ततस्तेषां गतास्ते च तपोधनाः ।

अचिरेणैव कालेन मोक्षं याताश्च तैस्सह ॥ ३०७ ॥

य इदं शृणुयाच्छ्राद्धे सप्तव्याधादिकं द्विज । अक्षयं चान्नपानं च पितॄणामुपतिष्ठति ॥

द्विज उवाच ।

वित्तहीनस्य विप्रस्य पितृकार्यं कथं भवेत् ।

तपस्विनो वनस्थस्य गृहस्थस्य च केशव ॥ ३०६ ॥

भगवानुवाच ।

तृणकाष्ठार्जनं कृत्वा प्रार्थयित्वा वराटकम् । करोति पितृकार्याणि ततो लक्षगुणंभवेत्

अकर्तव्यशतं कृत्वा पितृश्राद्धं करोति यः । सर्वपापक्षयस्तस्य स्वर्गं याति च मानवः

सर्वाभावे पितृतिथौ गोभ्यो घासं ददाति यः ।

फलं च पिण्डदानस्य सम्प्राप्नोत्यधिकं नरः ॥ ३१२ ॥

पुरा वैराटविषये रुरोदातीव दीनकः। पितृतिथौ स्वयं प्राप्ते सर्वाभावाच्च रोदिति ॥

रुदित्वा सुचिरं सोऽपि पप्रच्छ कोविदं द्विजम् ॥ ३१४ ॥

दीन उवाच ।

ब्रह्मन्पितृतिथावद्य किंस्वित्कृत्वा हितं भवेत् ॥ ३१५ ॥

वराटकश्च मे नास्ति धनं ब्रह्मविदां वर। उपदेशं च मे देहि येन धर्मे स्थितो ह्यहम् ॥

द्विज उवाच ।

गच्छ शीघ्रं वने तात मुहूर्ते कुतपेऽधुना। घासं पितरमुद्दिश्य गवे देहीति सत्वरम् ॥

भगवानुवाच ।

ततस्तस्योपदेशेन गृहीत्वा घासपूलकम्। गवे दत्वा यथा हृष्टाः पुष्ट्यर्थं पितुरेव च

एतत्पुण्यप्रसादेन गतोऽसौ सुरमन्दिरम्।

स्वर्गं च सुचिरं भुक्त्वा उत्पन्नो धनिनां कुले ॥ ३१६ ॥

धनवान्स पुरा पुण्यात्पितृयज्ञस्य कारणात्। स ददाति पितुः पिण्डं सर्वस्वेन धनेनच

तत्रैकजन्मनोऽभ्यासाद्गतोऽसौ विष्णुमन्दिरम्।

भुक्त्वानन्तसुखं तत्र सार्वभौमोऽभवन्नृपः ॥ ३२१ ॥

पितृयज्ञात्परो यस्माद्धर्मो नास्ति कथञ्चन। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शक्त्या कुर्यादमत्सरः

यः पठेद्धर्मसन्तानं जनानामग्रतो नरः। विष्णुपद्या जले स्नानं प्रतिलोकं च लभ्यते ॥

जन्मजन्मकृतो येन महापातकसञ्चयः। तत्सर्वं प्रलयं याति सकृदुच्चरिते श्रुते ॥३२४॥

इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे पञ्चाख्याने पितृभक्तिनिरूपणं नाम

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

———

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पतिव्रतामाहात्म्यवर्णनम् ।

नरोत्तम उवाच ।

त्रिदशानां च देवानामन्येषां जगदीश्वरः । प्रभुः कर्ता च हर्त्ता च गोप्ता भर्त्ता पितासः

अस्माकं वाक्छ्रमो विष्णोः कथनेनैव युज्यते ।

किंतु कौतूहलं मेऽस्ति पिपासा वा क्षुधाऽपि वा ॥ २ ॥

कृतं पृच्छति येनैव वक्तव्यं तत्प्रियेण हि । अतीतं चैव जानाति कथं नाथ पतिव्रता ॥

किं वा तस्याः प्रभावं च वक्तुमर्हस्यशेषतः ॥ ४ ॥

भगवानुवाच ।

कथितं मे पुरा वत्स पुनः कौतूहलं द्विज । कथयिष्यामि तत्सर्वं यत्ते मनसि वर्तते

पतिव्रता पतिप्राणा सदा पत्युर्हिते रता । देवानामपिसाराध्या मुनीनां ब्रह्मवादिनाम् ॥

धवस्यैकस्य या नारी लोके पूज्यतमा स्मृता ।

तस्या संमानने गुर्वी निभृता न भविष्यति ॥ ७ ।

मध्यदेशे पुरा तात नगरी चातिशोभना । तस्यां च ब्रह्मजातीया सैव्या नाम्नी पतिव्रता

तस्या धवोऽभवत्कुष्ठी पूर्वकर्मविरोधतः । गलद्व्रणस्य पत्युश्च नित्यं चर्यापरायणा

यद्यन्मनोरथं तस्य शक्त्या सा कुरुते भृशम् । अर्चयेद्देववन्नित्यं स्नेहंकुर्यादमत्सरा ॥

कदाचित्पथि गच्छन्तीं वेश्यां परमसुन्दरीम् । दृष्ट्वाऽतीवाभवन्मोहान्मन्मथाविष्टचेतनः

निश्श्वस्य सुतरां दीर्घं ततस्तु विमनाभवत् ।

श्रुत्वा गृहाद्विनिःसृत्य साध्वी पप्रच्छ तं पतिम् ॥ १२ ॥

साध्व्युवाच ।

उन्मनास्त्वं कथं नाथ निःश्वासस्ते कथं विभो ।

ब्रूहि मे यच्च कर्तव्यमकर्तव्यं च यत्प्रियम् ॥ १३ ॥

दयितं ते करिष्यामि त्वमेको मे गुरुःप्रियः । अभीष्टं वद मे नाथ यथाशक्तिकरोम्यहम्

भगवानुवाच ।

इत्युक्ते तामुवाचेदं वृथा किं भाषसेप्रिये । न शक्ता त्वं न चैवाहं मोघं वक्तुं न युज्यते

प्रष्टुं नाधिकरोषीति यथा दीर्घतरोः फलम् ।
भूमौ स्थित्वा तु खर्वात्मा समुद्धर्तुं प्रवाञ्छति ॥ १६ ॥
तथा मे रमणीलोभान्मोहाद्यदभिवाञ्छितम् ।
दम्पत्योरपि दुःसाध्यमपयानं वदाम्यहम् ॥ १७ ॥

पतिव्रतोवाच ।

ज्ञात्वा तु त्वन्मनोवृत्तं शक्ताऽहं कार्यसाधने । आदेशं कुरु मे नाथ कर्तव्यं येन केनचित्

यदि ते दुर्लभं कार्यं कर्तुं शक्नोमि यत्नतः ।
तदा मे त्वतिकल्याणं फलिष्यति परेत्विह ॥ १९ ॥

भगवानुवाच ।

इत्युक्ते परमप्रीतः स्थितो वचनमब्रवीत् । पापाभ्यासाच्च पाप्मानंप्रेच्छतीति विनिश्चयः

कुष्ठ्युवाच ।

पथ्यस्मिन्सम्प्रगच्छन्तीं वेश्यां परमसुन्दरीम् । सर्वतश्चानवद्याङ्गीं दृष्ट्वा मे दह्यतेमनः ॥
यदि तां त्वत्प्रसादच्च प्राप्नोमि नवयौवनाम् । तदा मे सफलं जन्म कुरुसाध्विहितं मम

यदि मां कुष्ठिनं दीनं पूतिगन्धं नवव्रणम् ।
न गच्छति वरारोहा तदा मे निधनं हितम् ॥ २३ ॥

भगवानुवाच ।

श्रुत्वा तेनेरितं वाक्यं साध्वी वचनमब्रवीत् ।

पतिव्रतोवाच ।

यथाशक्ति करिष्यामि स्थिरीभव प्रभोऽधुना ॥ २५ ॥

भगवानुवाच ।

मनसाऽथ समालोच्य क्षपान्ते ह्युषसि द्रुतम् । गोमयं सह शोधन्यागृहीत्वासाययौमुदा

सम्प्राप्य गणिकांगेहं शोधयित्वाच चत्वरम् । प्रतोलीं वीथिकां चैव गोमयंप्रददौमुदा

सा तूर्णमागता गेहे जनस्यालोकने भयात् ।

एवं क्रमेण सा साध्वी चरतिस्म दिनत्रयम् ॥ २८ ॥

अथसा वारमुख्या च चेटिकाश्चेटकानपि । अपृच्छत्कस्य कर्माणिशोभनानिच चत्वरे

मयानोक्तेऽप्युषःकाले कस्य मत्प्रियकारणात् ।

रुच्यकर्मणि दीप्यन्ते रथ्या चत्त्वरवीथिकाः ॥३० ॥

परस्परेण सञ्चिन्त्य वारमुख्यां च तेऽब्रुवन् ॥ ३१ ॥

चेटका ऊचुः ।

अस्माभिर्नकृतं भद्रे कर्म चैतत्प्रमार्जनम् ॥ ३२ ॥

भगवानुवाच ।

अथ सा विस्मयं गत्वा सञ्चिन्त्य रजनीक्षये ।

तया च दृश्यते सा च तयैव पुनरागता ॥ ३३ ॥

दृष्ट्वा तां महतीं साध्वींब्राह्मणींचपतिव्रताम् । दधार चरणे तस्या हा क्षमस्वेतिभाषिणो

गणिकोवाच ।

आयुर्देहं च सम्पित्तर्यशोऽर्थः कीर्तिरेव च । एताशां मे विनाशाय स्फुरसीव पतिव्रते ॥

यद्यत्प्रार्थयसे साध्वि नित्यं दास्यामि तद्दृढम् ।

सुवर्णं मणिरत्नं वा चैलं वा यन्मनोरथम् ॥ ३६ ॥

भगवानुवाच ।

तामुवाच ततः साध्वी न मेचार्थे प्रयोजनम् । अस्तिकार्यं च ते किञ्चिद्ददामि कुरुषेयदि

तदा मे हृदि सन्तोषः कृतं सर्वं त्वयाऽधुना ॥ ३७ ॥

गणिकोवाच ।

सत्यं सत्यं करिष्यामि द्रुतं वद पतिव्रते । कुरुमेरक्षणं मातर्द्रुतं कृत्यं च मे वद ॥३८॥

भगवानुवाच ।

त्रपया·निकृतं वाच्यं तस्यामुक्तं वरं प्रियम् । क्षणंविमृश्यसावेश्याकृत्वाक्षान्तिमुवाचच

कुष्ठिनः पूतिगन्धस्य सम्पर्कदुःखिताभृशम् । दिनैकंचकरिष्यामियद्यागच्छति मद्गृहम्

पतिव्रतोवाच ।

आगमिष्यामि ते गेहमद्यरात्रौ च सुन्दरि । भुक्तभोग्यं पतिंहृष्टं पुनर्नेष्यामि मद्गृहम्

गणिकोवाच ।

गच्छ शीघ्रं महाभागे स्वगृहं च पतिव्रते । पतिस्ते चार्द्धरात्रे स आगच्छतु च मद्गृहम्
बहवो मे प्रियास्सन्ति राजानस्तत्समाश्रये । एकैको मद्गृहे नित्यं तिष्ठतीह निरन्तरम्
अद्याहं मे गृहं शून्यं करिष्यामि च त्वद्भयात् ।
स चागच्छतु ते भर्त्ता स चास्मान्प्राप्य गच्छतु ॥ ४४ ॥

भगवानुवाच ।

एतच्छ्रुत्वा तु सा साध्वी गताऽसौ स्वगृहे तथा ।
पत्यौ निवेदयामास कृत्यं ते फलितं प्रभो ॥ ४५ ॥
अद्य रात्रौ च तद्गेहं गन्तुं ख्यातिं करोति सा । प्रभूताःपतयस्तस्यास्तव कालो नविद्यते

विप्र उवाच ।

कथंयास्यामि तद्गेहं मयागन्तुं नशक्यते । एतज्ज्ञात्वा कुतः क्षान्तिःकृतंकार्यंकथंभवेत्

पतिव्रतोवाच ।

स्वपृष्ठस्थमहं कृत्वा नेष्यामि तद्गृहं प्रति । सिद्धे ह्यर्थे नयिष्यामि पुनस्तेनैव वर्त्मना

द्विजउवाच ।

कल्याणि त्वत्कृतेनैव सर्वं मे कृत्यमेष्यति । इदानीं यत्कृतं कर्म स्त्रीजनैरपि दुःसहम्

भगवानुवाच ।

तस्मिंश्च नगरे रम्ये नित्यं च धनिनो गृहे । चौरैश्च प्रचुरं वित्तं हृतं राज्ञा श्रुतं तदा ॥
श्रुत्वा सर्वान्निशाचारानाहूय नृपती रुषा ॥ ५० ॥

नृपतिरुवाच ।

जीवितुं यदि वो वाञ्छा चोरं ममाद्य दास्यथ ॥ ५१ ॥

भगवानुवाच ।

गृहीत्वा तु नृपस्याज्ञां यत्तैर्जिघृक्षयाकुलैः । चारैश्चोरो गृहीतस्तैर्बलाच्चैव नृपाज्ञया ॥
नगरोपान्तदेशे च वृक्षमूले घने वने । समाधिस्थो महातेजा माण्डव्यो मुनिपुङ्गवः ॥
व्यतिष्ठद्वह्निसङ्काशो योगिनां प्रवरो मुनिः । अन्तर्नाडीगतो वायुःकिञ्चिन्न प्रतिभातिवः
तं ब्रह्मतुल्यं तिष्ठन्तं दृष्ट्वा दुष्टा महामुनिम् । चोरोऽयमद्भुताकारो धूर्तस्तिष्ठति कानने ॥
एवमुक्त्वा तु तं पापा बबन्धुर्मुनिसत्तमम् । नोक्ताश्च नेक्षितास्तेन पुरुषा अतिदारुणाः ॥
ततो राजाउवाचेदं सम्प्राप्तस्तस्करो मया । उपान्ते च पथिद्वारे कुरुध्वं घोरदण्डनम्

माण्डव्यश्च मुनिस्तत्र पथिशूले च कीलितः ।
पायुदेशे च तैर्दत्तं शूलं यावच्च मस्तकम् ॥ ५८ ॥

व्यथां स च न जानाति शूले विद्धतनुर्यमात् । अन्यैरपि कृतोदण्डःकृतस्तैस्तु मनाहितः
एतस्मिन्नन्तरे रात्रावन्धकारे घनोन्नते । स्वपतिं पृष्ठतः कृत्वा प्रययौ सा पतिव्रता ॥

माण्डव्यस्य तनौ तत्र कुष्ठिनोऽङ्गं ललाग तत् ।
भग्नः समाधिस्तस्यैवं कुष्ठिसंसर्गतोध्रुवम् ॥ ६१ ॥

माण्डव्य उवाच ।

एवं येनाधुना कृच्छ्रं कारितं गात्रवेदनम् । स एव भस्मतां यातु प्रोदिते च विरोचने

भगवानुवाच ।

माण्डव्येनैव मुक्तस्स पपात धरणीतले । ततः पतिव्रता चाह ब्रध्नो नोदयतु ध्रुवम् ॥
दिनत्रयं गृहं नीत्वा शापाद्वेश्म गता ततः । शयनीये स्थितं रम्येधृत्वाऽतिष्ठत्पतिव्रता
शप्त्वा तं च मुनिश्रेष्ठो गतोदेशमभीष्टकम् । सूरोनोदयते लोकेयावच्चैव दिनत्रयम् ॥

निखिलं व्यथितं दृष्ट्वा त्रैलोक्यं स चराचरम् ।
शतक्रतुं पुरस्कृत्य गतादेवाः पितामहम् ॥ ६६ ॥

वृत्तं न्यवेदयन्सर्वं पद्मयोनौ दिवौकसः । कारणं च न जानीमस्त्वं तु योग्यं विधेहिनः
पतिव्रताया यद्वृत्तं माण्डव्यस्य मुनेश्चयत् । यथा नोदयते ब्रध्नोधाता देवेष्ववेदयत्
ततो देवाविमानैश्च पुरस्कृत्य प्रजापतिम् । गतास्तदन्तिकं विप्र तूर्णं सर्वे च भूतलम्

तेषां श्रिया विमानानांमुनीनां किरणैस्तथा। शतसूर्यमिवाभाति नान्यत्र च गृहोदरे ॥

पतिव्रतोवाच।

हा हतास्मि कथं शूरो मद्गृहे समुपस्थितः ॥ ७१ ॥

भगवानुवाच।

अदृश्यन्त तयादेवा विमानैर्हंससन्निभैः। एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा तामुवाच पतिव्रताम् ॥

ब्रह्मोवाच।

अखिलानां च देवानां द्विजानां च गवां तथा।

यथैव निधनं तेषां कथं ते परिरोचते। मातः क्रोधं त्यजस्वाद्य सूर्यस्योदयनं प्रति ॥

पतिव्रतोवाच।

सर्वलोकानतिक्रम्य पतिरेको गुरुर्मम। अस्य मृत्युर्मुनेश्शापादुदिते च विरोचने ॥७४॥

तेनैव कारणेनैष मया शप्तो दिवाकरः। न कोपान्न च मोहाच्च लोभात्कामान्नमत्सरात्

ब्रह्मोवाच।

एकस्य निधनेनैव त्रैलोक्यस्य हितं भवेत्। ततस्ते चाधिकं पुण्यं मातरेवं भविष्यति

सा चोवाच विधिं तत्र देवानामग्रतः सती। पतित्यक्तवाचमे सत्यं शिवं मे नानुरोचते

ब्रह्मोवाच।

उदिते च खगे सौम्ये पत्यौते भस्मतांगते। स्वस्थीभूते च त्रैलोक्येकरिष्यामिहितंतव

भस्मनः पुरुषो भाव्यः कामदेवसमप्रभः। गुणैः सर्वैर्युतो भर्ता रतिवत्त्वं च सर्वदा ॥

यथा पूज्यो हरिर्देवैर्यथा लक्ष्मीश्च पूजिता। तथैव दम्पती स्वर्गे तस्मान्मद्वचनं कुरु ॥

पतिव्रतोवाच।

पत्युर्मे निधनेब्रह्मन्विधवालोकनिन्दिता। कांस्तु लोकान्गमिष्यामिभग्नाचारामलीमसा

ब्रह्मोवाच।

अतस्ते नास्ति दोषो वै न मृतस्ते धवोऽधुना।

अस्माकं वचनेनैव कुष्ठीमन्मथतां व्रजेत् ॥ ८२ ॥

भगवानुवाच ।

वदत्येवं विधौ सा च विमृश्य क्षणमेव च । बाढमुक्तवती सा च ततस्सूर्योदयोऽभवत्
अभवद्रुस्मरूपोऽसौ मुनिशापप्रपीडितः । भस्मनो मध्यतो जातो द्विजोमन्मथपीड़ितः
दृष्ट्वा विस्मयमापन्नाः सर्वे ते पुरवासिनः । मुदिता देवसङ्घाश्च जनः स्वस्थतरोऽभवत्
विमानेनार्कवर्णेन स्वर्लोकादागतेन च । पतिना सहसा साध्वी सुरैः सार्द्धंगतादिवम्
एवं पतिव्रता यस्माच्छुभा चैवतु मत्समा । तेन वृत्तं च जानाति भूतं भव्यं प्रवर्तनम्
य इदं श्रावयेल्लोके पुण्याख्यानमनुत्तमम् ॥ तस्य पापं क्षयं याति जन्मजन्मकृतं च यत्
अक्षयं लभते स्वर्गं विबुधैः सम्प्रयुज्यते । ब्राह्मणो लभते वेदं जन्मजन्मसु वाडव ॥

सकृच्छृणोति यः पूतो दुष्कृतौघाद्विमुच्यते ।
सुरालयमवाप्नोति स्वर्गाद्भ्रष्टो धनी भवेत् ॥ ६० ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे पतिव्रतोपाख्यानं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

माण्डव्यस्य शूलारोपणे कारणवर्णनम् ।

द्विज उवाच ।

माण्डव्यस्य मुनेर्विष्णो शूलाघातः कथं तनौ । पत्यौ पतिव्रतायाश्च कथं कुष्ठं कलेवरे

हरिरुवाच ।

शिशुभावाच्चमाण्डव्योभिल्लिकायामभानतः । वस्तिदेशेतृणंदत्वामोहात्सचमुमोचताम्

तेनापवाददोषेण धर्मस्याज्ञातुरेव च ।
अहोरात्रं व्यथा कृच्छ्रा भुक्ता तेन द्विजन्मना ॥ ३ ॥
किन्तु समाधिना तेन न ज्ञातं शूलसम्भवम् ।
कृच्छ्रं च मुनिना कृत्स्नं योगाभ्यासाद् भृशादपि ॥ ४ ॥

कुष्ठिनो ब्रह्मणो घातादजितेन्द्रियकारणात् । पूतिगन्धं तनौ कुष्ठं सञ्जातं द्विजसत्तम
पुरा विप्राय तेनैव दत्तं गौरीचतुष्टयम् । कन्यकात्रितयं विप्र तेन तस्य पतिव्रता ॥६ ॥
अस्यास्तु कारणादेव स च मत्समतांव्रजेत् । अत्र ते विस्मयः कुत्र वेदकर्म पुरातनम्

द्विज उवाच ।

कृत्या नारी न यस्यैव तस्य स्वर्गोभवेद्ध्रुवम् । यथैतच्चरितं नाथ सर्वेषां शिवमिष्यते

हरिरुवाच ।

सन्ति कृत्याःस्त्रियःकाश्चित्पुंसःसर्वस्वदस्य च । तत्राप्यरक्षणीयांचमनसापिन धारयेत्
न स्त्रीणामप्रियः कश्चित्प्रियोवापि न विद्यते । गावस्तृणमिवारण्येप्रार्थयन्तिनवं नवम्
पुमांसं वित्तहीनं च विरूपं गुणवर्जितम् । अकुलीनं च भृत्यं च कामिनी भजते ध्रुवम्
भर्तारं च गुणोपेतं कुलीनं च महाधनम् । सुन्दरं रतिदक्षं च त्यक्त्वा नीचं भजेद्वधूः ॥

उमानारदसंवादमाख्यानं विद्धि भूसुर ।
येन विद्याः स्त्रियाश्चेष्टा विविधाः कृत्स्नशो द्विज ॥ १३ ॥

स्वभावान्नारदोविप्रविश्वजिज्ञासकोमुनिः । स्वान्तेविमृश्याथगतःकैलासंगिरिमुत्तमम्
वृषकेतुसदाख्यानसप्रतिष्ठे हिमे गिरौ । प्रणिपत्य महात्मा वै पप्रच्छ पार्वतीं मुनिः ॥

नारद उवाच ।

देवि सीमन्तिनीनां तु दुश्चेष्टां ज्ञातुमुत्सहे । कौतुकेन त्वया चर्या वधूनां सम्प्रयुज्यते
सर्वासामपि नारीणां स्वान्तंजानासितत्त्वतः । तन्मां कथय सर्वेषु विनीतमज्ञमेव च ॥

देव्युवाच ।

युवतीनां सदा चित्तं पुंसु तिष्ठत्यसंशयम् । अस्मिन्योनौ सुसंयोग्ये सङ्गतेवाप्यसङ्गते
सुवेषं पुरुषं दृष्ट्वा भ्रातरं यदि वा सुतम् । योनिः क्लिद्यति नारीणांसत्यं सत्यं हि नारद

स्थानं नास्ति क्षणं नास्ति नास्ति प्रार्थयिता नरः ।
तेन नारद नारीणां सतीत्वमुपजायते ॥ २० ॥

घृतकुम्भसमा नारी तप्ताङ्गारसमः पुमान् । तस्माद्घृतं च वह्निं च नैकस्थाने च धारयेत्
यथैवमत्तमातङ्गं सृणिमुद्गरयोगतः । स्ववशं कुरुते यन्ता तथा स्त्रीणां प्ररक्षकः ॥२२॥

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने । पुत्राश्च स्थाविरेभावे न स्त्रीस्वातन्त्र्यमर्हति
ततः स्वातन्त्र्यभावाच्च स्वेच्छया च वराङ्गना । पुरुषेणार्थिता धीरा प्रेरणादिचरी भवेत्
अरक्षणाद्यथा पाकः श्वकाकवशगो भवेत् । तथैव युवतीनारी स्वच्छन्दाद्दुष्टतांव्रजेत्
पुनरेव कुलं दुष्टं तस्यास्संसर्गतो भवेत् । परबीजेन यो जातः स च स्याद्वर्णसङ्करः ॥

जारजः सङ्करः पापो नरके नियतं वसेत् ।
कीटजातौ गता जाताः पुनः सर्वे महीतले ॥ २७ ॥

ततोम्लेच्छमुपानीतं कुलंस्याद्द्विजनन्दन । कुलक्षयोभवेद्यस्मात्तस्माद्दुष्टां न धारयेत्
ज्ञात्वैव योषितां दोषं क्षमते यो नराधमः । स तिष्ठेन्निरये घोरे रौरवे पितृभिः सह ॥
काचित्पातयतेनारीकाचिदुद्धरतेकुलम् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुलजामुद्वहेद् बुधः ॥३०॥
कुलद्वयं समा नारी समयित्वा तु तिष्ठति । साध्वी तारयते वंशान्दुष्टा पातयति ध्रुवम्

दारेष्वधीनं स्वर्गं च कुलं पङ्कं यशोऽयशः ।
पुत्रं दुहितरं मित्रं संसारे कथयन्ति च ॥ ३२ ॥

तस्मादेकां द्वितीयां वा वामामुद्वाहयेद्बुधः। सन्तानार्थात्तुकामाच्च बहुदोषाश्रिताव सा

रजस्वलां च वनितां नावगच्छति यः पतिः ।
ब्रह्महा भ्रूणहा सोऽपि दुर्गतिं चाधिगच्छति ॥ ३४ ॥
यो मोहाद् दुर्भगां कृत्वा साध्वीं त्यजति पापकृत् ।
तस्या वधेन यत्पापं तद्भुक्त्वा नरकं व्रजेत् ॥ ३५ ॥

परदारान्बलाद्धृत्वा धनैर्वासं प्रलोभयेत् । स याति नरकं घोरं प्रेत्येह च फलत्रहा ॥
वनिताहरणं कृत्वा चाण्डालकुलतां व्रजेत् । तथैव वनिताहानात्पतितो जायते नरः ॥

रामां विन्यस्य स्कन्धे च चिरं यमपुरे वसेत् ।
मलमूत्रं शिरोदेशे नित्यं तस्य च सम्पतेत् ॥ ३८ ॥

एवं वर्षसहस्राणि भारं वहति दुर्मतिः । पुनर्यावन्ति लोमानितावत्स रौरवं व्रजेत् ॥
पुनः कीटेषु सन्तीर्णस्तदामानुषतां व्रजेत् । ततश्च कलहं शोकं प्राप्नोति पूर्वकल्मषात्
एवं जन्मत्रयं प्राप्य मुच्यते पातकान्नरः,। तत्कालं नरकं भुक्त्वा सा तु काकी तु वञ्चकी

उच्छिष्टं नरकं भुक्त्वा मानुषे विधवा भवेत् ।

यः पुनश्चान्त्यजां गच्छेन्म्लेच्छां वा पुल्कसां नरः ॥ ४२ ॥

द्विस्त्रिचतुर्गुणं भुक्त्वा तत्र सङ्कीर्णवञ्चकः । मातरं गुरुभार्यां च ब्राह्मणीं महिषीं तथा

अन्यां वा प्रभुपत्नीं च गत्वा यात्यपुनर्भवम् ।

भगिनीं तत्पुत्रभार्यां तथा दुहितरं स्नुषाम् ॥ ४४ ॥

पितृव्यां मातुलानीं तु तथैव च पितृष्वसाम् ।

मातृष्वस्रादिकामन्यां गत्वा नास्ति च निष्कृतिः ॥ ४५ ॥

ब्रह्महा स भवेदन्धोवचसा जडतांव्रजेत् । कर्णयोर्बधिरो जातश्च्यवते नास्तिनिष्कृतिः

उक्त्वा अश्लीलमत्यर्थमखिलं स्त्रीकृतेन हि ॥ ४७ ॥

द्विज उवाच ।

एवं दुष्कृतमासाद्य कथं मोक्षोभवेत्पुनः । तत्समाचक्ष्व भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः

श्रीभगवानुवाच ।

तासांचगमनं कृत्वातप्तां लोहस्यपुत्तलीम् । समालिंग्यत्यजेत्प्राणं शुचिर्लोकान्तरंव्रजेत्

यो वै गृहाश्रमं त्यक्त्वा मच्चित्तो जायते नरः ।

नित्यं स्मरति गोविन्दं सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ ५० ॥

ब्रह्महत्यायुतं तेन कृतं गुर्वङ्गनागमात् । शतं शतसहस्रं च पैष्टीमद्यस्य भक्षणात् ॥५१ ॥

स्वर्णादेर्हरणं कृत्वा तेषां संसर्गकं चिरम् । एतान्यन्यानि पापानि महान्तिपातकानिच

अग्निं प्राप्य यथा तूलं तृणं शुष्कं प्रणश्यति ।

तस्मान्मन्नाम गोविन्दं स्मृत्वा पूतो भवेन्नरः ॥ ५३ ॥

यो वा गृहाश्रमेतिष्ठन्नित्यंगोविन्दघोषणम् । कृत्वाचपूजयित्वाच सपापात्सन्तरोभवेत्

भागीरथीतटे रम्ये खगस्य ग्रहणे शिवे । गवां कोटिप्रदानेन यत्फलं लभते नरः ॥५५॥

तत्फलं समवाप्नोति सहस्रं चाधिकं चयत् । गोविन्दकीर्तने तात मत्पुरे चाक्षयं वसेत्

कामात्सभवनेस्थित्वा सार्वभौमोभवेन्नृपः । पुराणेमत्कथांश्रुत्वा मत्सादृश्यं लभेन्नरः

कथयित्वा पुराणं च विष्णुसायुज्यतां व्रजेत् ।

तस्मान्नित्यं च श्रोतव्यं पुराणं धर्मसञ्चयम् ॥ ५८ ॥
श्रावितव्यं प्रयत्नेन लोके विष्णुतनुं व्रजेत् ।
अन्यद्वा स्त्रीकृते दोषे यथायोगं भवेद् ध्रुवम् ॥ ५९ ॥

निशामय प्रवक्ष्यामि तत्त्वतो द्विजनन्दन । सर्वबीजस्य दानेन साम्बुकुम्भं महाफलम्
दद्याद्विप्रायपुण्याहे सद्यः पूतो भवेत्क्षणात् । सर्वंधान्यादिकं बीजं कालेदद्याद्द्विजातये

सर्वपापक्षयं कृत्वा अक्षयं स्वर्गमश्नुते ।
गुणं वक्ष्यामि विप्रर्षे सतीनां यादृशं दृढम् ॥ ६२ ॥

शुद्धवंशो भवेत्तस्या नित्यं लक्ष्मीः प्रवर्तते । उभयोर्वंशयोः स्वर्गो भर्तुरात्मन एव च
पतिव्रतागुणो विप्र विस्मृतः पृच्छतस्तव । पुनर्वक्ष्यामि योषाणां सर्वलोकहितंशुभम् ॥

उषित्वा पूर्वकालं च पुण्यापुण्ये न योषितः ।
पश्चात्पतिव्रतायाश्च ताश्च गच्छन्ति मद्गतिम् ॥ ६५ ॥

षण्मासं वाथ वर्षं वा अधिकं च प्रशस्यते । पतिव्रता भवेद्या च यावत्पूता व्रजेद्दिवम्
सुरापं विप्रहन्तारं सर्वपापयुतं पतिम् । पङ्कात्पूतं नयेत्स्वर्गं भर्त्तारं यानुगच्छति ॥

तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च यावल्लोमानि मानुषे ।
तावत्कालं वसेत्स्वर्गे भर्तारं यानुगच्छति ॥ ६८ ॥

कन्दर्पसदृशो भर्ता सा रतीव मनोरमा । जिष्णोरेव चिरं लोके भुङ्क्तेऽनन्तमयं सुखम्

पतिव्रता बलाद्या च विदूरे स्वामिपातने ।
चिह्नं लब्ध्वा मृता वह्नौ पापादुद्धरते पतिम् ॥ ७० ॥

पतिव्रता च या नारी देशान्तरमृतेपतौ । सा भर्तुश्चिह्नमादाय वह्नौ सुप्त्वा दिवं व्रजेत्
या स्त्री ब्राह्मणजातीया मृतं पतिमनुव्रजेत् । सा स्वर्गमात्मघातेननात्मानं न पतिंनयेत्

न म्रियेत समं गत्वा ब्राह्मणी ब्रह्मशासनात् ।
प्रव्रज्या गतिमाप्नोति मरणादात्मघातिनी ॥ ७३ ॥

नरोत्तम उवाच ।

सर्वासामपि जातीनां ब्राह्मणःशस्यतेऽप्यते । पुण्यं च द्विजमुख्येन अत्र किं वा विपर्ययः

श्रीभगवानुवाच ।

ब्राह्मण्यास्साहसं कर्म नैव युक्तं कदाचन। निःशेषेऽस्या वधं कृत्वा स नरो ब्रह्महाभवेत्
तस्माद्ब्राह्मणजातीया विप्र या च व्रतं चरेत्। प्रवक्ष्यामि यथातथ्यं शृणु विप्रयथार्थतः
आपणान्तरमामिष्यं भक्षयेन्न कदाचन। अश्वमेधसहस्राणां हायने फलमाप्नुयात् ॥
अर्हणं चेष्टदेवस्य हरेर्व्रतमनुत्तमम्। स्वामिनोऽपि जलं पिण्डं सम्प्रदद्यादमत्सरात् ॥
युगकोटिसहस्राणि युगकोटिशतानिच। पतिना सहसा साध्वी विष्णुलोके युताभवत्
ततो महाव्रतं प्राप्य निरये ब्राह्मणीवधूः। उद्धरेदुभयोर्वंशाञ्छतशोऽथ सहस्रशः॥८०॥
अतो बन्धुजनैरेव पुत्रैर्भ्रात्रादिभिर्बुधैः। विनियम्य सदा तस्या व्रतलोपं न कारयेत् ॥
हरेश्चेद्वासरं प्राप्य विधवा न व्रतं चरेत्। पुनर्वैधव्यमायाति जन्मजन्मनि दुर्भगा ॥८२॥

भोजनान्मत्स्यमांसस्य व्रतानां विप्रयोगतः ।
चिरं निरयमासाद्य शुनी भवति निश्चितम् ॥ ८३ ॥

दुष्टाया मैथुनं गच्छेद्विधवा कुलनाशिनी। नरकाननुभूयाथ गृध्रिणी दशजन्मसु ॥८४॥
द्विजन्मफेरवा भूत्वा ततो मानुषतां व्रजेत्। तथैव बालवैधव्या दासीत्वमुपगच्छति ॥

द्विज उवाच ।

कन्यादानफलं ब्रूहि वद दास्याः फलं च यत्।
विधानं च यथोक्तं च यदि मेऽनुग्रहः प्रभो ॥ ८६ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

रूपाढ्ये गुणसम्पन्ने कुलीने यौवनान्विते। समृद्धे वित्तसम्पूर्णे कन्यादानफलं शृणु ॥

सर्वाभरणसंयुक्तां कन्यकां यो ददाति च ।
तेन दत्ता धरा सर्वा सशैलवनकानना ॥ ८८ ॥

अर्द्धाभरणदानेन फलं दातुर्भवेद् ध्रुवम्। अनाभरणकन्यायाः पादैकस्य फलं भवेत् ॥

यः पुनः शुल्कमश्नाति स याति नरके नरः ।
विक्रीय चात्मजां मूढो नरकान्न निवर्त्तते ॥ ९० ॥

लोभादसदृशेपुंसि कन्यां यस्तुप्रयच्छति। रौरवंनरकं प्राप्य चाण्डालत्वं च गच्छति ।

अतएव हि शुल्कं च जामातुर्न कदाचन । गृह्णाति मनसा प्राज्ञो यद्दत्तं तस्य चाक्षयम्
भूमिं गां च हिरण्यं च धनं वस्त्रं च धान्यकम् ।
जामातुर्यौतकं दत्त्वा सर्वं भवति चाक्षयम् ॥ ९३ ॥
विवाहसमये वत्स सगोत्रपरगोत्रजैः । यौतकं दीयते किंचित्तत्सर्वं चाक्षयं भवेत् ॥
दाता न स्मरते दानं प्रतिग्राही न याचते । उभौ तौ नरकं यातश्छिन्नरज्जुर्घटो यथा ॥
अवश्यं यौतकं दानं दातव्यं सात्त्विकेन हि । अदत्त्वा नरकं प्राप्य दासीत्वमुपगच्छति
अत्यासन्नेऽतिदूरस्थे चात्याढ्ये चातिदुर्गते । कुलहीने च मूर्खे च षट्सु कन्या न दीयते
अति वृद्धे चातिदीने रोगिष्ठे देशवासिनि । अतिक्रुद्धेऽप्यसन्तुष्टे षट्सु कन्या न दीयते
एतेभ्यः कन्यकां दत्त्वा नरकं चाधिगच्छति ।
लोभात्संमानलाभाच्च कन्यका परिवर्तनात् ॥ ९९ ॥
मुनीनांप्रेयसीं नारींयुवतींरूपशालिनीम् । सालङ्कारां स शय्यां च दत्त्वाऽनन्तफलंलभेत्
अनयोश्च फलं तुल्यं युवती कन्ययोरपि । एकावराय दातव्या अपरा ब्राह्मणाय तु ॥
क्रीता देवाय दातव्या धीरेणाकष्टकर्मणा । कल्पकालं भवेत्स्वर्गे नृपो वा कौ महाधनी
प्रतिजन्म लभेतैष सुपत्नीं वरवर्णिनीम् । य इदं शृणुयान्नित्यं पुण्याख्यानमनुत्तमम् ॥
सर्वपापक्षयस्तस्य सर्वशास्त्रार्थपारगः । लभेत सोऽक्षयंस्वर्गं नारीणां वल्लभो भवेत् ॥
क्षत्रियो विजयी चाथ लोकनाथो भवेद्ध्रुवम् ।
श्रुतं हरति पापानि जन्मजन्मकृतानि च ॥
सौभाग्यं लभते लोके तथैव च वराङ्गनाः ॥ १०५ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे पञ्चाख्याने स्त्रीणामाख्यानं नाम
चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

———

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

तुलाधारचरितम्, सत्यस्यप्रशंसा च ।

द्विज उवाच ।

तुलाधारस्य चरितं प्रभावमतुलं प्रभो। वक्तुमर्हस्यशेषेण यदि मय्यस्त्यनुग्रहः ॥ १ ॥

भगवानुवाच ।

सत्यभावादलोभाच्च दद्याद्योवै त्वमत्सरात् । नित्यंयज्ञशतंतस्य सुनिष्पन्नं सुदक्षिणम्
सत्येनोदयते सूरो वाति वातस्तथैवच । न सिन्धुर्लङ्घयेद्वेलां धत्तेकूर्मोधरां तथा ॥
सत्येन लोकास्तिष्ठन्ति सर्वे च वसुधाधराः ।
सत्याद् भ्रष्टोऽथ यःसत्त्वोऽप्यधोवासी भवेद् ध्रुवम् ॥ ४ ॥
सत्यवाचि रतो यस्तु सत्यकार्यरतः सदा । स शरीरेण स्वर्लोकमागत्याच्युततांव्रजेत्
सत्येन मुनयः सर्वे मां च गत्वा स्थिरास्स्थितः ।
सत्याद्युधिष्ठिरो राजा सशरीरो दिवंगतः ॥ ६ ॥
सर्वशत्रुगणं जित्वा लोको धर्मेण पालितः । अकरोच्च मखं शुद्धं राजसूयं सुदुर्लभम्
चतुरशीतिसहस्राणि ब्राह्मणानां च नित्यशः । भोजयेद्रुक्मपात्रेषु राजोपकरणेषु च
भोजयित्वोपकरणांस्तेभ्योदत्त्वा विसर्जयेत् । यदभीष्टंद्विजातीनामतोऽन्यद्दापयेद्धनम्
अदरिद्रं ततो ज्ञात्वा द्विजव्यूहं परित्यजेत् । तथैव स्नातकानां तु सहस्राणि तु षोडश
नित्यं सम्भोजयेद्राजा सत्येनैव विमत्सरः । अतिष्ठंस्ते गृहे पूर्वं चिरं तस्य जिगीषया
जितं तेन जगत्सर्वं प्राणानुग्रहकारणात् । सत्येन चासुरो राजा बलिरिन्द्रो भविष्यति
पातालस्थस्य तस्यैव भूयस्तिष्ठामि वेश्मनि । निरन्तरं च तिष्ठामि स्वान्तेपुण्यैककर्मणः
यद्वा पुरा मया बद्धो दैत्ययोनेर्विमोक्षणात् । तलं चैवामरत्वं हि शक्रत्वं प्रददाम्यहम्
हरिश्चन्द्रो नृपस्सत्यात्सवाहनपरिच्छदः ।
स्वशरीरेण शुद्धेन सत्यलोके प्रतिष्ठितः ॥ १५ ॥

राजानो बहवश्चान्ये ये च सिद्धा महर्षयः । ज्ञानिनो यतयश्चैव सर्वे सत्येऽच्युताभवन्
तस्मात्सत्यरतो लोके संसारोद्धरणक्षमः । तुलाधारो महात्मावै सत्यवाक्ये प्रतिष्ठितः

लोके तत्सदृशो नास्ति सत्यवाक्यस्य कारणात् ।
अश्वमेधसहस्रेण सत्यं तु तुलया धृतम् ॥ १८ ॥

अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते । सर्वं सत्याद्भवेत्साध्यं सत्यो हि दुरतिक्रमः
सत्यवाक्येन सा धेनुर्बहुला स्वर्गगामिनी । सर्वराष्ट्रं समाधाय पुनरावृत्तिदुर्लभा ॥
तथाऽयं सर्वदा साक्षी मृषा नास्ति कदाचन । बह्वर्घमल्पमर्घं च क्रयविक्रयणे सुधीः ॥

सत्यवाक्यं प्रशस्तं च विशेषात्साक्षिणो भवेत् ।
साक्षिणः सत्यमुक्त्वा च अक्षयं स्वर्गमाययुः ॥ २२ ॥

वावदूकः सभांप्राप्य सत्यं वदति वाक्पतिः । सयाति ब्रह्मणो गेहं यज्ञैरन्यैश्च दुर्लभम्
सभायां यो वदेत्सत्यमश्वमेधफलंलभेत् । लोभाद्द्वेषामृषोक्त्वा च रौरवं नरकंव्रजेत्
सर्वसाक्षी तुलाधारो जनानां शूरएव च । विशेषाल्लोभसन्त्यागान्नाकेनिर्जरतांव्रजेत् ॥

कश्चिच्छूद्रो महाभागो न लोभे वर्तते क्वचित् ।
वृत्तिश्शाकेन दुःखेन तथा शिलोञ्छतो भृशम् ॥ २६ ॥

जर्जरं वस्त्रयुग्मं च कटौगोत्रे च सर्वदा । सदापि लोभविरहो न परस्वं गृहीतवान् ॥

तस्य जिज्ञासयैवाहं गृहीत्वा वस्त्रयुग्मकम् ।
अवकोटे नदीतीरे स्थितस्संस्थाप्य सादरम् ॥ २८ ॥

स दृष्ट्वा वस्त्रयुग्मं तन्नलोभे कुरुते मनः । इतरस्य परिज्ञाय तत्क्षान्त्या स्वगृहं ययौ ॥
ततो विचिन्तयित्वा तु हृदा स्वल्पमिति द्विज । उदुम्बरं हेमगर्भं मयातत्रैव पातितम्
कीकटे च नदीतीरे विकोणे जनवर्जिते । दृश्य या तस्य देशे तु दृष्टं तेन तदद्भुतम् ॥
अलं विधानमेतत्तु कृत्रिमं चोपलक्ष्यते । ग्रहणेवाधुना चास्य अलोभं नष्टमेव मे ॥३२॥
अस्यैव रक्षणे कष्टमहङ्कारपदं त्विदम् । यतो लोभस्ततो लाभो लाभाल्लोभ प्रवर्धते ॥
लोभग्रस्तस्य पुंसश्च शाश्वतो निरयोभवेत् । यदि नो विगुणं वित्तं यदावेश्मनितिष्ठति
तदा मे दारपुत्राणामुन्मादो ह्युपपद्यते । उन्मादात्कामसञ्जात विकारान्मतिविभ्रमः ॥

भ्रमान्मोहोऽप्यहङ्कारः क्रोधलोभावतःपरम् । एषां प्रचुरभावाच्च तपः क्षयं गमिष्यति
क्षीणे तपसि वर्तन्ते पङ्काश्चित्तप्रमोहकाः । तैश्च श्रृङ्खलयोगैश्च बद्धोनैवोद्धृतिं व्रजेत् ॥
एतद्विमृश्य शूद्रोऽसौ परित्यज्य गृहं गतः ।
स्वस्था देवा मुदा तत्र साधु साध्विति चाब्रुवन् ॥ ३८ ॥
निर्ग्रन्थिरूपमादाय तस्यान्तिकगृहं तथा । गत्वाऽहं दैवसंवादमवदं भूतवर्तनम् ॥३९॥
ततोऽभ्यासप्रसङ्गाच्च जनानां च परिप्लवात् ।
तस्य योषा तदागत्य पप्रच्छ दैवकारणम् ॥ ४० ॥
ततोऽहमवदं तस्य यद्वाचेतोगतं द्रुतम् ।
निभृतोऽथ निनादस्य कारणं कथितं मया ॥ ४१ ॥
हृद्गतं पतिना तेऽद्य विधिना दत्तमश्ववत् । परित्यक्तं महाभागे पुनर्नास्तीह ते वसु ॥
यावज्जीवति दौर्विध्यं तस्य भक्ता न संशयः ।
गच्छमातर्गृहं शून्यमलब्धं तत्प्रपृच्छ तम् ॥ ४३ ॥
श्रुत्वा तद्वै शिवं सा च वचनंपत्युरन्तिके । गत्वाप्रोवाचदुर्वृत्तं तच्छ्रुत्वाविस्मयंगतः
स विचिन्त्य तया सार्धमागतोऽसौममान्तिकम् । निभृतं मामुवाचेदं क्षपणत्वंचकीर्तय

क्षपणक उवाच ।

चाक्षुषं चिरसंशुद्धं हेलयातृणवत्कथम् । त्वया त्यक्तं यतस्तात नास्तिभाग्यमकण्टकम्
ऐश्वर्यमतुलं शौर्यं शीर्यतेभावुकं पुनः । स्वबन्धूनां महद्दुःखमाजन्ममरणान्तिकम् ॥४७
द्रक्ष्यसे चात्मना नित्यं मृतानां या गतिर्ध्रुवम् ।
तस्मात्तद्गृह्यतां तूर्णं भुंङ्क्ष्व भोग्यमकण्टकम् ।
ऐश्वर्यमतुलं शौर्यं लोकानां विस्मयं वरम् ॥ ४८ ॥

शूद्र उवाच ।

न मे वित्ते स्पृहा चास्तिधनं संसारवागुरा । तद्विधौ पतितो मर्त्यो न पुनर्मोक्षकंव्रजेत्
श्रृणु वित्तस्य यद्दोषमिह लोके परत्र च । भयं चोराच्च ज्ञातिभ्योराजभ्यस्तस्करादपि
सर्वेजिघांसवो मर्त्याः पशुमत्स्यविविष्किराः । तथाधनवतांनित्यंकथमर्थास्सुखावहाः

प्राणस्यान्तकरो ह्यर्थस्साधको दुरितस्य च ।
कालादीनां प्रियं गेहं निदानं दुर्गतेः परम् ॥ ५२ ॥

क्षपणक उवाच ।

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।
कुलं शीलं च पाण्डित्यं रूपं भोग्यं यशः सुखम् ॥ ५३ ॥
धनेन तु विहीनस्य पुत्रदारोज्झितस्य च । कथं मित्रं कथं धर्मो दीनानां जन्मनःकथम्
सत्त्वादिक्रतुकार्यंच पुष्करिण्युपकारकम् । दानंनाकस्यसोपानंनिःस्वस्यच नसिद्ध्यति
व्रतकार्यस्य रक्षा च धर्मादिश्रवणं भृशम् । पितृयज्ञादितीर्थं च निर्वित्तस्य नसिद्ध्यति
तथा रोगप्रतीकारः पथ्यमौषधसञ्चयः । रक्षणंविग्रहस्यैव शत्रूणां विजयोध्रुवम् ॥
स्त्रीणां च जन्मनावार्ता वसुयोगेन लभ्यते ।
भूतभव्यप्रवृत्तानां सुकृतं दुष्कृतं च यत् ॥ ५८ ॥
तस्माद्बहुधनंयस्य तस्यभोग्यं यदृच्छया । स्वर्गं वितरणादेव लप्स्यसे ह्यचिरादितः ॥

शूद्र उवाच ।

अकामाच्च व्रतं सर्वमक्रोधात्तीर्थसेवनम् । दया जप्यसमा शुद्धं सन्तोषो धनमेव च ॥
अहिंसा परमा सिद्धिः शिलोञ्छवृत्तिरुत्तमा ।
शाकाहारः सुधातुल्य उपवासः परन्तप ॥ ६१ ॥
सन्तोषो मे महाभोग्यं महादानं वराटकम् । मातृवत्परदाराश्च परद्रव्याणि लोष्टवत् ॥
परदारा भुजङ्गाभाः सर्वे यज्ञा इदं मम ।
तस्मादेनं न गृह्णामि सत्यं सत्यं गुणाकर ॥ ६३ ॥
प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम् ॥ ६४ ॥

भगवानुवाच ।

इत्युक्ते तु नरश्रेष्ठ पुष्पवर्षं पपात ह । मूर्ध्नि देशे तनौ तस्य सर्वदेवेरितं द्विज ॥ ६५ ॥
देवदुन्दुभयो नेदुर्नृत्यन्त्यप्सरसां गणाः । जगुर्गन्धर्वपतयो विमानं चापतद्दिवः॥६६॥
ऊचुर्देवगणास्तत्र विमानमिदमारुह । सत्यलोकं समासाद्य भुङ्क्ष्व भोग्यं महेन्द्रवत् ॥

सङ्ख्या तेनापि वर्तेत भोग्यकालस्य धार्मिक ।
इत्युक्तेषु च देवेषु शूद्रो वचनमब्रवीत् ॥ ६८ ॥

शूद्र उवाच ।

कथं निर्ग्रन्थकस्यास्य ज्ञानं चेष्टास्य भाषणम् ।
किं वा हरिहरौ ब्रह्मा किं वा शक्रो बृहस्पतिः ॥ ६९ ॥
किं वा मच्छलनार्थाय साक्षाद्धर्म इहागतः ॥ ७० ॥

श्रीभगवानुवाच ।

इत्युक्ते क्षपणश्चासौ स्मितो वचनमब्रवीत् ॥ ७१ ॥

क्षपणक उवाच ।

विज्ञातुं चैव वो धर्ममहं विष्णुरिहागतः । विमानेन दिवं गच्छ सकुटुम्बो महामुने ॥
मत्प्रसादाच्च युष्माकं सदैव नवयौवनम् । भविष्यति महाप्राज्ञ भाग्यानन्त्यं प्रलप्स्यथ

श्रीभगवानुवाच ।

दिव्याभरणसंयुक्ता दिव्यवस्त्रोपशोभिताः । गतास्ते सहसा नाकं सर्वैर्बन्धुजनैर्वृताः
एवं द्विजवरश्रेष्ठ लोभत्यागाद्ययुर्दिवम् । तुलाधारस्तथा धीमान्सत्यधर्मप्रतिष्ठितः ॥
येन जानाति तद्वृत्तं देशान्तरसमुद्भवम् । तुलाधारसमो नास्ति सुरलोके प्रतिष्ठितः ।
तस्मात्त्वमपि भूदेव समं गत्वा दिवं व्रज ॥ ७६ ॥
य इदं शृणुयान्मर्त्यः सर्वधर्मप्रतिष्ठितः ।
जन्मजन्मार्जितं पापं तत्क्षणात्तस्य नश्यति ॥ ७७ ॥
सकृत्पठनमात्रेण सर्वयज्ञफलं लभेत् । लोकानां पुरतो विप्र देवानामर्च्यतां व्रजेत् ॥
इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमेसृष्टिखण्डे शूद्रस्यालोभाख्यानं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कामस्य दुर्जयत्वकथनेऽहल्येन्द्रचरित्रम् ।

श्रीभगवानुवाच ।

अद्रोहकस्य चाख्यातो महिमा लोकदुःसहः ।
एकतल्पगतां वामां क्षान्त्वा सर्वजितोऽभवत् ॥ १ ॥
ज्ञानिनामपि दुःसाध्यं मुनीनां ब्रह्मचारिणाम् । सुरासुरमनुष्याणांविषमंतत्समंगतः ॥२॥
स्वभावाद्विषमं कामं जेतुंकः पुरुषः क्षमः । अद्रोहकमृते विप्र स एव भवजित्पुमान् ॥
अहल्याहरणादेव सुरेशस्य भगाङ्कता । पुनर्देव्याः प्रसादाच्च सहस्राक्षेति विश्रुतः ॥४॥
विदितं सर्वलोके च त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ५ ॥

द्विज उवाच ।

कथं च देवदेवस्य अहल्याहरणं प्रभो । भगाङ्कत्वं च सम्प्राप्य सहस्राक्षः सुराधिपः ॥
नगाङ्कोऽपिभगाङ्कत्वं सम्प्राप्तस्सुरराट् कथम् । दुःश्रुतंसुरवैकल्यंश्रोतुमिच्छामितत्त्वतः

श्रीभगवानुवाच ।

पुरा स्वान्तोद्भवां कन्यां लोकेशश्च महामनाः । गौतमायददौधातालोकपालाग्रतोमुदा
ततस्तुलोकपालानां मन्मथाविष्टचेतसाम् । शचीपतेस्तु संमोहो हृदि शल्य इव स्थितः
लोकपालानतिक्रम्य सुवेषा वरवर्णिनी । द्विजाय रत्नभूतैषा दत्ताकिं वा करोम्यहम् ॥
इति सञ्चिन्त्य तस्यास्तु वर्तमाने च यौवने ।
पुनश्च मायया दृष्टं रूपं तस्यास्सुशोभनम् ॥ ११ ॥
पुनश्चिन्तयमानोऽसौ गौतमाध्यासनंगतः । पश्चात्तु तस्य गमनाद्यद्वृत्तं तच्छृणुष्व मे
एकदा गौतमः स्नातुं गतोऽसौ पुष्करं प्रति । साध्वी च गृहशौचेच गृहवस्तुनि तत्परा
प्रवृत्ता देववास्तूनां बलिकर्तुं च तत्परा ।
इन्धनं वह्निकार्यं च नित्यकर्मानुसञ्चयम् ॥ १४ ॥

एतस्मिन्नन्तरे शक्रो मुनेस्तस्य महात्मनः। रूपमास्थाय गात्रेण प्रविवेशोटजं मुदा
पतिव्रता पतिं दृष्ट्वा श्रद्धया परया सती। देवस्थाने च वस्तूनां सञ्चयं कर्तुमुद्यता ॥१६॥
ततस्तामब्रवीदार्तो मुनिवेषधरो हरिः ॥ १७ ॥

इन्द्र उवाच।

प्रद्युम्नवशगो वामे देहि मे चुम्बनादिकम् ॥ १८ ॥

श्रीभगवानुवाच।

एतस्मिन्नन्तरे सा च त्रपायुक्ताऽब्रवीद्वचः ॥ १९ ॥

अहल्योवाच।

देवकार्यादिकं त्यक्त्वा वक्तुं नार्हसि मे प्रभो। सर्वं जानासि धर्मज्ञ पुण्यानांनिश्चयंमुने
अयमर्थो हि वेलायामधुनैव न युज्यते ॥ २१ ॥

श्रीभगवानुवाच।

ततस्तां चारुसर्वाङ्गीं दृष्ट्वा मन्मथपीडितः।

इन्द्र उवाच।

अलं प्रियेन वक्तव्यं हृच्छयो मे प्रजायते। कर्तव्यं चाप्यकर्तव्यं पत्युर्वचनसंमतम् ॥
करोति सततं या च सा च नारीपतिव्रता। लङ्घयेद्या च तस्याज्ञां सुरते च विशेषतः ॥
पुण्यं तस्या भवेन्नष्टं दुर्गतिं चाधिगच्छति ॥ २४ ॥

श्रीभगवानुवाच।

साब्रवीद्देववस्तूनि सन्ति देवार्थतोमुने। नित्यकर्माणि चान्यानि किं वा तेषुविपर्ययः
सचोवाच सतीं तत्र देह्यालिङ्गादिकं मम।
मनसा भयमुत्सृज्य मया दत्तानि तानि च ॥ २६ ॥

इत्युक्त्वा तां परिष्वज्य कृतस्तेन मनोरथः। एतस्मिन्नन्तरे विप्र मुनेर्हृद्यासकल्मषम्
ततो ध्यानं समारभ्याजानाद्वृत्तं शचीपतेः। तूर्णमेव द्वारदेशे गत्वा च समुपस्थितः ॥
शक्रो मुनिं तु संलक्ष्य चौतुदेहं विवेश ह। गच्छतो वृषदंशस्यापद्धतौ प्रचचाल ह ॥
मुनिस्तत्रावदत्तं वै कस्त्वं मार्जाररूपधृक्। भयात्तस्य मुनेरग्रे शक्रः प्राञ्जलिरास्थितः

मघवन्तं पुरो दृष्ट्वा चुकोप मुनिपुङ्गवः ॥ ३१ ॥

मुनिरुवाच ।

यत्त्वयाचेदृशं कर्म भगार्थं छलसाहसम् । कृतं तस्मात्तवाङ्गेषु सहस्रभगमुत्तमम् ॥३२॥

भवत्विह तु पापिष्ठ लिङ्गं ते निपतिष्यति ।

गच्छ मे पुरतो मूढ सुरस्थानं दिवौकसः ॥ ३३ ॥

पश्यन्ति मुनिशार्दूला नराः सिद्धास्सहोरगाः ॥ ३४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठो रुदन्तीं तां पतिव्रताम् । पप्रच्छ किमिदानीं ते कर्मदारुणमागतम्

इत्युक्ता वेपमाना सा भीता पतिमुवाचह ॥ ३५ ॥

अहल्योवाच ।

अज्ञानाद्यत्कृतं कर्म क्षन्तुमर्हसि वै प्रभो ॥ ३६ ॥

मुनिरुवाच ।

परेणाभिगतासि त्वममेध्या पापचारिणी । अस्थिचर्मसमाविष्टा निर्मांसा नखवर्जिता ॥

चिरं स्थास्यसि चैकापि त्वां पश्यन्तु जनाः स्त्रियः ॥ ३७ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

दुःखिता तमुवाचेदं शापस्यान्तो विधीयताम् ।

इत्युक्ते करुणाविष्टो मन्युनापि परिप्लुतः ॥ ३८ ॥

जगाद गौतमो वाक्यं रामोदाशरथिर्यदा । वनमभ्यागतो विष्णुः सविश्वामित्रलक्ष्मणः

दृष्ट्वा त्वां दुःखितां शुष्कां निर्देहां पथि संस्थिताम् ॥

गदिष्यति च वै रामः कौशिकस्याग्रतो हसन् ॥ ४० ॥

किमियं शुष्करूपा च प्रतिमास्थिमयी शुभा । न दृष्टं मे पुरा ब्रह्मन्रूपं लोकविपर्ययम्

ततो रामं महाभागं विष्णुंमानुषविग्रहम् । यद्वृत्तमासीत्पूर्वं तत्कौशिकः कथयिष्यति

कौशिकस्य वचः श्रुत्वा रामो वक्ष्यति धर्मवित् ।

अस्या दोषो न चैवास्ति दोषोऽयं पाकशासने ॥ ४३ ॥

एवमुक्ते तु रामेण त्यक्त्वा रूपंजुगुप्सितम् । दिव्यंरूपं समास्थाय मद्गृहं चागमिष्यसि

शप्त्वा तु गौतमस्तां हि तपस्तप्तुं गतो वनम् ।

ततोऽत्यन्तं शुष्करूपा तथैव पथि संस्थिता ॥ ४५ ॥

रामस्य वचनादेव गौतमं पुनरागता । गौतमोऽपि तया सार्द्धमद्यैवं दिवि तिष्ठति ॥

इन्द्रोऽपि त्रपयायुक्तःस्थितश्चान्तर्जले चिरम् ।

स्थित्वा चान्तर्जले देवीमस्तौदिन्द्राक्षिसंज्ञिताम् ॥ ४७ ॥

सुप्रसन्ना ततो देवी स्तोत्रेण परितोषिता ।

गत्वोवाच ततः सा च वरोऽस्मत्तो विगृह्यताम् ॥ ४८ ॥

ततो देवीमुवाचेदं शक्रः परपुरञ्जयः ॥ ४९ ॥

शक्र उवाच ।

त्वत्प्रसादाच्च मे देवि वैरूप्यं मुनिशापजम् । नश्येच्च देवराज्यं च लभेऽहं तु पुरा यथा

श्रीभगवानुवाच ।

तमुवाच ततो देवी पापं तन्मुनिशापजम् । हन्तुं ब्रह्मादयो देवाश्शक्ता नाहं सुरेश्वर ॥

किं तु बुद्धिं सृजाम्यद्य येन लोकैर्नलक्ष्यते । योनिमध्यगतं दृष्टि सहस्रं ते भविष्यति

सहस्राक्ष इति ख्यातस्सुरराज्यं करिष्यसि ।

मेषाण्डं तव शिश्नं च भविष्यति च मद्वरात् ॥ ५३ ॥

इत्युक्त्वा सा जगन्माता तत्रैवान्तरधीयत ।

शक्रो देववरैः पूज्यो ह्यद्यापि दिवि वर्तते ॥ ५४ ॥

इन्द्रस्यैतादृशी कामादवस्था द्विजसत्तम ॥ ५५ ॥

इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे अहल्याहरणं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कामस्य दुर्जयत्वे परमहंसचरित्रम् ।

श्रीभगवानुवाच ।

अपरं च प्रवक्ष्यामि कामेनाधिष्ठितस्य च । पुरा भागीरथीतीरे द्विजः परमहंसकः ॥१॥

उपदेष्टा सहस्राणां द्विजानां शान्तिदः परः । एकदण्डधरः साक्षात्कूर्मवद्धरणीस्थितः

एकाकिनः सतस्तस्य देवागारे विनिष्कृते । पत्युर्गृहात्परं गेहं गन्तुंसायं समुद्यता ॥

अकस्माद्युवती नारीमिलितारूपधारिणी । दृष्ट्वा तां भगवान्विप्रो मन्मथस्य भयार्दितः

अगारजठरे कृत्वा स चैनां प्राक्षिपत्क्षपाम् ।

अर्गलं सादृढं कृत्वा देवागारे सुशोभने ॥ ५ ॥

कदाचिदपितं द्वारादागन्तुं नददातिह । एवंभूतः समाधिस्थः क्षपां क्षिप्त्वा विलप्यसः

चिन्तयंस्तां वरारोहां द्वारि किं वा कृतं मम ।

एवं सञ्चिन्त्य तामाह द्वारं देहीह नः प्रिये ॥ ७ ॥

पतिश्च वशगः कान्ते दयितस्ते भविष्यति । ततस्तं प्राह सा विप्रं वृद्धं कामप्रलालसम्

नार्युवाच ।

अनन्विता गिरस्तात वक्तुं त्वं नार्हसि प्रभो ॥ ६ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

अथासौ भगवान्प्राह प्रचुरं वास्तिमेवतु । तवदास्यामिकल्याणिप्रस्फोटयकपाटिकाम्

विप्रमाह पुनः सा च त्वं वै मे धर्मतःपिता । मागच्छपुत्रिकां मां च परयोषांचधार्मिक

मनसा स समालोच्य सुषिरेण पथा गृहान् ।

बाहुनोद्घाटयतेनेव गन्तुं चैव समुद्यतः ॥ १२ ॥

गच्छतश्चार्द्धमरर उत्तमाङ्गं सुसङ्कटे । प्रविष्टं न पुनश्चैति पञ्चत्वमगमन्तदा ॥ १३ ॥

उषःकालेसमायाता रक्षिणो ये चकिङ्कराः । अद्भुतं तं शवंदृष्ट्वा तामूचुस्ते च विस्मिताः॥

ऋषिण ऊचुः ।

कथं च निधनं त्वस्य सम्भूतं ब्रूहि सुन्दरि ॥ १५ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

कथयित्वा तु तद्वृत्तमभीष्टं देशमागता । एवं कामस्यमहिमा दुर्निवारो जनेषु च ॥
सर्वेषामपि जन्तूनां सुरासुरनृणां भवेत् । दृष्ट्वाऽमोघां वरारोहां सर्वलोकपितामहः ॥
च्युतबीजोऽभवत्तत्र लौहित्यसम्भवःस्मृतः । पुनाति सकलाँल्लोकान्सर्वतीर्थमयोहि सः
यमाश्रित्य नरो याति ब्रह्मलोकमनामयम् ॥ १६ ॥

द्विज उवाच ।

कथञ्च ब्रह्मणोमोहो ह्यमोघा का वराङ्गना । उद्भवं तीर्थराजस्य श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः

श्रीभगवानुवाच ।

मुनिर्देवैः समाराध्यः पद्मयोनिसमप्रभः । शन्तनुश्चेति विख्यातः पत्नी तस्य पतिव्रता
अमोघेति समाख्याता रूपयौवनशालिनी । अस्याश्च पतिमन्वेष्टुं यातोब्रह्मा चतद्गृहम्
तस्मिन्काले मुनिश्रेष्ठः पुष्पाद्यर्थं वनं गतः । सा तं दृष्ट्वा सुरश्रेष्ठमर्घ्यपाद्यादिकंददौ ॥
दूरेऽभिवादनं कृत्वा सा गृहं प्रविवेशह । तां च दृष्ट्वाऽनवद्याङ्गीं धाता कामवशं गतः ॥
स्रष्टात्मानं समाधायाचिन्तयत्तां पुरोगताम् । बीजं पपातखट्वायां ब्रह्मणः परमात्मनः
ततो ब्रह्मागतस्त्रस्तस्त्वरया परिपीडितः । अथायातोमुनिर्गेहं शुक्रं पीठे ददर्शह ॥
तामपृच्छद्वरारोहां कश्चाप्यत्रागतः पुमान् । तमुवाचततोऽमोघा ब्रह्मा ह्यत्रागतः पते ॥
त्वामेवान्वेषितुं नाथ मयादत्तोऽत्र पीठकः । शुक्रस्य कारणं चात्र तपसा ज्ञातुमर्हसि ॥
ततो ध्यानात्परिज्ञातं तेनैव च द्विजन्मना ॥ २६ ॥

शन्तनुरुवाच

ब्रह्मरेतः परंसाध्वि पालयस्व ममाज्ञया । उत्पद्यते सुतस्ते तु सर्वलोकैकपावन ॥
आवयोः सर्वकल्याणं फलिष्यति मनोगतम् ॥ ३० ॥

श्रीभगवानुवाच ।

ततः पतिव्रता तस्य आज्ञामागृह्यसम्भवात् । पपौरेतो महाभागा ब्रह्मणः परमात्मनः ॥

आवर्त इव सञ्जज्ञे रौद्रगर्भ इति स्फुरन् । प्रसोढुं नैव शक्ता सा शन्तनुं चाब्रवीत्ततः ॥

अमोघोवाच ।

गर्भं धारयितुं नाथ न शक्नोम्यधुना प्रभो । किंकरिष्यामि धर्मज्ञ प्राणो मेसञ्चलत्यपि

आज्ञापय महाभाग गर्भं त्यक्ष्यामि यत्र च ॥ ३३ ॥

पत्युराज्ञां समादाय मुक्तो गर्भो युगन्धरे । पयस्तेजोमयं शुद्धं सर्वधर्मप्रतिष्ठितम् ॥

तन्मध्ये पुरुषःशुद्धः किरीटी नीलवाससा । रत्नदाम्नाचविद्धाङ्गोदुष्प्रेक्ष्योज्योतिषांगणः

ततो देवगणाः स्वर्गात्पुष्पवर्षमवाकिरन् ।

प्रसूतः सर्वतीर्थेषु तीर्थराज इति स्मृतः ॥ ३६ ॥

ततो राम इति ख्यातःप्रजातोऽहं भृगोः कुले । क्षत्रियान्पितृहन्तृंस्तुससैन्यबलवाहनान्

हत्वा युद्धगतान्भीतान्पङ्कैः सर्वैर्युतो ह्यहम् । ब्रह्महत्यासमं घोरं मद्गेहे समुपस्थितम्

पङ्कयुक्तं कुठारं मे क्षालितं नैव शुद्धयति ।

ततः खेचाभवद्वाणी राम मद्वचनं कुरु ॥ ३९ ॥

देववागुवाच ।

यत्रतीर्थे कुठारं ते निर्मलं च भवेदिह । तत्र ते सर्वपापानां जातानां च क्षयोभवेत् ॥

जनानां तत्र सर्वेषां हितार्थं तिष्ठमानद । चपलं गच्छ तीर्थानि सर्वाणि सुमहान्ति च ॥

तेषांमध्ये महातीर्थे पर्शुः शुद्धो भवेद्यदि । तं च जानीहितीर्थेषु मुक्तिदं परिकीर्तितम् ॥

श्रीभगवानुवाच ।

तच्छ्रुत्वा जामदग्न्यस्तु तीर्थानि प्रययौ तदा । गङ्गां सरस्वतीं शुभ्रांकावेरीं सरयूंतथा

गोदावरीं च यमुनां कद्रूं च वसुदां तथा ।

अन्यां च पुण्यदां रम्यां गौरीं पूर्वां स्थितां शुभाम् ॥ ४४ ॥

गच्छतस्तस्य धीरस्य सदागतिसमस्य च । क्षालितः सर्वतीर्थेषु न पुनर्निर्मलोऽभवत्

ततो गिरिगुहां दुर्गां महारण्यं च प्रर्वतम् । गिरिकूटं च दुर्लभ्यं ययौतीर्थमसौ हरिः ॥

न च निर्मलतामेति कुठारस्तस्य तेन च । विषादमगमत्तत्र रामः परपुरञ्जयः ॥ ४७ ॥

हाहेति विविधं कृत्वा चोपविश्य धरातले । प्रचिन्तामगमद्धीरस्तमुवाच पुनस्तथा ॥

देववागुवाच ।

पूर्वस्यां दिशि देवेश तीर्थं चास्ति गुहोदरे ॥ ४६ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

तच्छ्रुत्वा नरशार्दूलो गत्वा कुण्डं ददर्श सः । प्रदक्षिणं जलावर्तं शुभ्रं पापहरं शुभम् ॥
तज्जलस्पर्शमात्रेण कुठारः शुद्धतां गतः । ततो रामोऽभिषेकं तु कृतवान्प्रमुदान्वितः ॥

शुद्धात्मनस्त्वपापस्य बुद्धिर्जाता प्रपाविनी ।
स रामः सुचिरं स्थित्वा तीर्थराजं प्रसाद्य तम् ॥ ५२ ॥
ततस्ततोऽचलात्प्राप्य पुरं वेगसमन्वितः ।
ख्यातं कृत्वा ततश्चोर्व्यां गतोऽसौ लवणार्णवम् ॥ ५३ ॥

अयं तीर्थवरः साक्षात्पितामहकृतोभुवि । सुखदः सर्वतः शुद्धो मुक्तिमार्गप्रदः किल ॥
एवं कामप्रभावं च विद्धिदुर्वारदुःसहम् । कामाज्जातंवृषपापं प्रपुण्यं (?) पुण्यप्रयोगतः
स जातश्चैव लौहित्योविरिञ्चेश्चैव चौरसः । शन्तनोःक्षेत्रसञ्जातस्त्वमोघागर्भसम्भवः
विरञ्चिना जितः कामःशन्तनोरप्यमत्सरात् । तस्याःपतिव्रतात्वाच्चतीर्थात्तीर्थवरोहिसः

एवं यस्तु पठेन्नित्यं पुण्याख्यानमिदं शिवम् ।
शृणुयाद्वा मुदा पृथ्व्यां मुक्तिमार्गं स गच्छति ॥ ५८ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे पञ्चाख्याने लौहित्योत्पत्तिर्नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कामाख्याने गन्धर्वादिस्त्रीभिः सह शिवक्रीडावर्णनम् ।

श्रीभगवानुवाच ।

पुरा शर्वः स्त्रियो दृष्ट्वा युवतीरूपशालिनीः । गन्धर्वकिन्नराणां च मनुष्याणांचसर्वतः
मन्त्रेण ताः समाकृष्य त्वतिदूरे विहायसि । तपोव्याजपरो देवस्तासु सक्तमानसः ॥

अतिरम्यां कुटीं कृत्वा ताभिः सह महेश्वरः ।
क्रीडां चकार सहसा मनोभवपराभव ॥ ३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे गौर्याश्चित्तमुद्भ्रान्ततां गतम् । अपश्यद्ध्यानयोगेन क्रीडन्तं जगदीश्वरम्
स्त्रीभिरन्तर्गतं ज्ञात्वा रोषस्य वशगाऽभवत् । ततः क्षेमङ्करोरूपा भूत्वा च प्रविवेश सा
व्योमैकान्तेऽतिदूरे च कामदेवसमप्रभम् । वामातिमध्यगं शुभ्रं पुरुषं पुरुषोत्तमम् ॥६॥

स्त्रीभिः सह समालिङ्ग्य प्रक्रीडन्तं मुहुर्मुहुः ।
चुम्बन्तं निर्भरं देवं हरं रागप्रपीडितम् ॥ ७ ॥

वृत्तं क्षेमङ्करी दृष्ट्वा निपपाताग्रतस्तदा । तासां केशेषु चाकृष्य चकार चरणाहतिम् ॥
त्रपया पीडितश्शर्वः पराङ्मुखमवस्थितः । केशेष्वाकृष्य रोषात्ताः पातयामास भूतले

स्त्रियः सर्वाधरां प्राप्य सहसा विकृताननाः ।
उमाशापप्रदग्धाङ्गा म्लेच्छानां वशमागताः ॥ १० ॥

ताश्चाण्डालस्त्रियः ख्याताश्चवाधवसंयुताः । अद्याप्युमाकृतंशापंसर्वास्ताश्चसमश्नुयुः
अथोमा शतधारूपं कृत्वेशं सङ्गता तदा । एवं प्रभावं जानीहि कामस्य सततं द्विज ॥

ततश्चिरात्तया सार्द्धं गतः कैलासमन्दिरम् ।
अतः क्षेमङ्करीं दृष्ट्वा येऽभिनन्दन्ति मानवाः ॥ १३ ॥

तेषां वित्तर्द्धिविभवा भवन्तीह परत्र च । कुङ्कुमारक्तसर्वाङ्गि कुन्देन्दुधवलानने ॥ १४ ॥
सर्वमङ्गलदे देवि क्षेमङ्करि नमोऽस्तुते । योगिनी साम्यं तेनैव सम्मुखा विमुखापि वा
दृष्ट्वा तां नाभिवन्देद्यस्तस्य युद्धे पराजयः । राजगृहेषु विद्यायां नमस्काराज्जयो भवेत्

एवं कामस्य माहात्म्यं भवो मोहवशं गतः ।
ममैव यादृशो मोहः सर्वलोकैः प्रगीयते ॥ १७ ॥

परस्त्रीहरणेदोषान्मम दुर्गतिसञ्चयम् । यथोद्भूतं प्रवक्ष्यामि जनेषु विदितं द्विज ॥

गोपी पतिहिता काचित्काचिद्बाला तपस्विनी ।
प्रौढा कात्यायनी वृद्धा काचित्सम्बन्धिनी वधू ॥ १९ ॥

आसां हरणदोषाच्च यद्वृत्तं तच्छृणुष्व मे । रणे पराजयं दैन्यं शोकं पुत्रविनाशनम् ॥

सारथ्यं स्त्रीजने पापं चण्डालादेव विप्लवम् ।
शुक्लाङ्गं क्षयवृद्धिं च कल्पे शाश्वतमाप्नुयाम् ॥ २१ ॥
अयं देवासुराणां च क्षमया प्रभुतां गतः । अस्यैव सदृशो लोके न भूतो न भविष्यति॥
रामामङ्कस्थितांरम्यां क्षमा तल्पगतेन च । त्यक्त्वैव साधिता लोकास्सुरासुरसुदुर्लभाः
एवं वैष्णवमुख्यश्च सुरासुरगणार्चितः । यो नो ददाति भुक्त्यग्र्यं शेषं च स्वयमश्नुते
एवमभ्यासधैर्येण दीर्घकालेसुखंगते । प्राक्सङ्गमात्स्वभार्यां च दृष्ट्वा मां प्रददौ मुदा ॥
द्वादशाब्दं प्रसङ्कल्प्य प्राग्भोगो मयि वेशितः ।
तेन तस्य गृहे नित्यं तिष्ठामि गृहरक्षणात् ॥ २६ ॥
तथाधात्री फलस्यापि सदास्वरसमीहते । तस्मादुक्तोमयान्येषां वैष्णवानां च वैष्णवः
पुरा ये विप्र मे भक्तास्सुरामत्पथगामिनः । तैरेव न कृतं यच्च तदनेन कृतं परम् ॥ २८ ॥
तस्माद्वैष्णवसर्वस्वं नामरम्यं मया कृतम् ।
अस्य वेश्मनि तिष्ठामि मुहूर्तं न चलाम्यहम् ॥ २९ ॥
अतो ये चैव मद्भक्तास्तेष्वहं सुलभोद्विज । अस्माकंपदवीं तेभ्यो ह्यत्र दद्मिस्वकारणम्
आवयोर्विप्र सौजन्यं स्वप्नभोज्यादिकं समम् ।
सायुज्यं च सखित्वं च पश्य भूदेव नान्तरम् ॥ ३१ ॥

व्यास उवाच ।

ततोमूकादयस्सर्वे स्वागताहरिमीश्वरम् । गन्तुकामादिवं पुण्यास्सदाराःसपरिच्छदाः
ये च तेषां गृहाभ्याशेऽप्यात्मनो गृहगोधिकाः ।
नानाकीटादयो ये च तेषामनुययुः सुराः ॥ ३३ ॥
एतस्मिन्नन्तरे देवाः सिद्धाश्च परमर्षयः । प्रचक्रुः पुष्पवर्षाणि साधुसाध्वित्यनादयन् ॥
देवदुन्दुभयो नेदुर्विमानेषु वनेषु च । समारुह्य रथं स्वं स्वं हरिवीथीपुरं ययुः ॥ ३५ ॥
तदद्भुतं समालोक्य विप्रोऽवोचज्जनार्दनम् । उपदेशं च देवेश ब्रूहि मे मधुसूदन ॥३६॥

श्रीभगवानुवाच ।

गच्छस्व पितरौ तात शोकविक्लवमानसौ ।

समाराध्य प्रयत्नेन मद्गृहं प्राप्स्यसेऽचिरात् ॥ ३७ ॥

पितृमातृसमा देवा न तिष्ठन्ति सुरालये । याभ्यां सुगर्हितं देहं शिशुत्वे पालितं सदा

अज्ञानदोषसहितं प्रपुष्टं चापि वर्धितम् ।

याभ्यां तयोस्समं नास्ति त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ३१ ॥

व्यास उवाच ।

ततो देवगणास्सर्वे पञ्चभिस्तैर्मुदान्विताः । माधवं संस्तुवन्तश्च गतास्ते हरिमन्दिरम्

खचितांच पुरीं रम्यांविश्वकर्मविनिर्मिताम् । रत्नाढ्यामिष्टसम्पूर्णांकल्पवृक्षादिभिर्युताम्

शातकुम्भमयैर्गेहैस्सर्वरत्नैस्सकर्बुराम् । वज्रवैडूर्यसोपानां स्वर्णदीतोयसंयुताम् ॥४२॥

गीतवाद्यादिसम्पूर्णां सर्वदुर्गसमाकुलाम् । कोकिलालापबहुलां सिद्धगन्धर्वसेविताम् ॥

रूपाढ्यैः सुजनैः पूर्णां प्रयान्तीमिव खेपुरीम् ।

ततः स्थित्वाऽच्युताः सर्वे सर्वलोकोर्ध्वतो भृशम् ॥ ४४ ॥

द्विजोऽपि पितरौ गत्वा समाराध्य प्रयत्नतः ।

अचिरेणैव कालेन सकुटुम्बो हरिं ययौ ॥ ४५ ॥

पञ्चाख्यानमिदं पुण्यं मया ते समुदाहृतम् । यः पठेच्छृणुयाद्वापि तस्य नास्तीहदुर्गतिः

ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्नलिप्येत कदाचन ॥ ४६ ॥

गवां कोटिप्रदानेन यत्फलं लभते नरः । तत्फलं समवाप्नोति पञ्चाख्यानावगाहनात् ॥

स्नानेन पुष्करे नित्यं भागीरथ्यां च सर्वदा ।

यत्फलं तदवाप्नोति सकृच्छ्रवणगोचरात् ॥ ४८ ॥

दुःस्वप्नं नाशयेत्क्षिप्रं तथारोग्यंप्रयच्छति । लक्ष्म्यारोग्यकरं चैव तस्माच्छ्रोतव्यमेवहि

इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे पञ्चाख्यानं नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

———

ऊनषष्टितमोऽध्यायः

जलदानमाहात्म्यवर्णनम् ।

द्विजा ऊचुः ।

कीर्तिर्धर्मोऽथ लोकेषु सर्वाणि प्रवराणि च । वद नो मुनिशार्दूल यदि नोऽस्तित्वनुग्रहः

व्यास उवाच ।

यस्य खाते वने गावस्तृप्यन्ति मासमेव च ।
यद्वा सप्तदिनात्पूतः सर्वदेवैः सपूजितः ॥ २ ॥

पुष्करिण्या विशेषेण पूताया यज्ञकर्मणा । यत्फलं जलदानेन सर्वमत्रास्तितच्छृणु॥३॥

हायने हायने चैव कल्पं कल्पं विधीयते । दानात्स्वर्गमवाप्नोति तोयदः सर्वदो भुवि

मेघे वर्षति खाते च जायन्ते ये तु शीकराः । तावद्वर्षसहस्राणि दिवमश्नाति मानवः ॥

तोयैरन्नादिपाकैश्च प्रसन्नो मानवो भवेत् । प्राणानां च विनान्नैश्च धारणं नैव जायते

पितृणां तर्पणं शौचं रूपं वै गन्ध्यनाशनम् ।
बीजं त्विहार्जितं सर्वं सर्वं तोये प्रतिष्ठितम् ॥ ७ ॥

वस्त्रस्य धावनं रुच्यं भाजनानां तथैव च । तेनैव सर्वकार्यं च पानीयं मेध्यमेव च ॥८॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वापीकूपतटाककम् । कारयेच्च बलैः सर्वैस्तथा सर्वधनेन च ॥ ६॥

ततो विनिर्जले देशे यो ददाति जलाशयम् ।
वासरे वासरे तस्य कल्पं स्वर्गं विनिर्दिशेत् ॥ १० ॥

त्रिविष्टपाच्च्युतोविप्रोवेदशास्त्रार्थपारगः । लोकबन्धुःस धर्मात्मातपस्तप्त्वादिवंव्रजेत्

एवं जन्माष्टकं प्राप्य एकस्याक्षयमिष्यते । क्षत्रियाणांकुले जातःसार्वभौमोऽभवन्नृपः

विशोऽक्षयं धनं विद्या जन्मजन्मसु यत्प्रियम् ।
शूद्रादयोऽन्त्यजाश्चान्ये लभन्ते स्वर्गतिं मुहुः ॥ १३ ॥

चतुर्हस्तप्रमाणं तु कूपं खनति यः पुमान् । परोपकारकं नित्यं कल्पं स्वर्गं तु हायने ॥

द्विगुणे द्विगुणं विद्याच्छतं चैवचतुर्गुणे । विंशतिष्कुप्रमाणां तु दद्यात्पुष्करिणीं तु यः
विष्णोर्धामलभेत्सोऽपिदिव्यभोगं तथैवच । अनन्तरंनृपो जातो धनी वागीश्वरोभवेत्

एवं द्वित्रिश्चतुर्वापि गुणतो भोग्यमिष्यते ।

विस्तीर्णे प्रचुरं विद्धि सहस्रेणाच्युतो दिवः ॥ १७ ॥

सहस्राद्द्विगुणेनैव सुरपूज्यो भवेन्नरः । जन्तवस्तत्र ये सन्ति यावन्तो जीवनं ययुः ॥
तत्सङ्ख्याका जनास्तस्य किङ्कराः पृष्ठलग्नकाः । भवन्ति सततं गेहे पुरे जनपदेषु च ॥

विहाय पितरं भोग्या धने क्षीणे यथा वनम् ।

पक्षिणस्सूकरश्चैव महिषी करिणी तथा ॥ २० ॥

उपदेष्टा च कर्त्ता च षडेतेस्वर्गगामिनः । दिव्यं च पक्षिणां चैव शतं स्वर्गविनिर्दिशेत्
क्रोडो वर्षसहस्रं तु महिष्ययुतहायनम् । देवरूपं समास्थाय करिण्या लक्षमुच्यते ॥
कोट्येकमुपदेष्टुश्च कर्तु रक्षयमेव च । पुरा धनिसुतेनैव कृतः ख्यातो जलाशयः ॥२३॥
अयुतधनव्ययेनैव प्राणेनैव बलेन च । सर्वसत्त्वोपकाराय शिवश्रद्धायुतेन च ॥ २४ ॥

कालेन कियता चापि क्षीणवित्तोऽभवत्किल ।

कश्चिदर्थी धनी तस्य मूल्यदानाय चोद्यतः ॥ २५ ॥

विमृश्यधनिनाचोक्तं व्याहारंशृणुताधुना । दीनारस्यायुतंवातेदास्याम्यस्याश्चकारणात्

लब्धं ते पुष्करिण्याश्च पुण्यं लाभात्प्रमन्यसे ।

शक्त्या दत्त्वाऽथ मूल्यं तां स्वीयां कर्तुं व्यवस्थितः ॥ २७ ॥

एवमुक्ते स तं प्राह वासरेऽप्ययुतं पुनः । फलं भवति वै नित्यं पुण्यं पुण्यविदो विदुः
एतस्मिन्निर्जले देशे शिवं खातं कृतं च मे । स्नानपानादिकं कर्म सर्वे कुर्वन्त्यभीष्टतः

तस्मान्मेऽप्ययुतार्थस्य नैत्यकं फलमिष्यते ।

ततस्तस्याभवद्धास्यं तथैव च सभासदाम् ॥ ३० ॥

ह्रिया च पीडितः सोऽपि वाक्यमेतदुवाचह । सत्यमेतद्वचोऽस्माकं परीक्षां कुरु धर्मतः
मत्सरात्स तु तं प्राह शृणु मे वचनं पितः । दीनारायुतमेतत्ते दत्त्वा चानीय प्रस्तरम् ॥

पातयिष्यामि ते खाते यथायोगं प्रमज्जतु ।

उन्मज्जति च यत्काले प्रस्तरः सन्तरत्यपि ॥ ३३ ॥
क्षयं यास्यति नो वित्तं नोचेन्मे धर्मतो हि सा ।
बाढमुक्त्वा युतं तस्य गृहीत्वा स्वगृहं गतः ॥ ३५ ॥

साक्षिणामग्रतस्तेन प्रस्तरः पातितस्तथा । पुष्करिण्यां महत्यां च दृष्टं नरसुरासुरैः ॥
ततो धर्मतुलायां तु तुलितं धर्मसाक्षिणाः । दीनारायुतदानस्य पुष्करिण्याजलस्य तु॥

न समं तु दिनैकं तु जलस्य धर्मतो भृशम् ।
धनिनो मानसं दुःखं मोघार्थं च परेऽहनि ॥ ३७ ॥

शिलोच्चयोऽभवत्तीर्णो द्वीपवच्च जलोपरि। ततः कोलाहलः शब्दो जनानां समुपस्थितः
तच्छ्रुत्वाद्भुतवाक्यं च मुदा तौ चागतौ ततः । दृष्ट्वा शैलं तथा भूतं कृतं तेनायुतं तथा

ततः खाताधिपेनैव शैलं दूरे निपातितम् ।
पुण्यं खातस्य चोत्खाते प्रलुप्तस्य सुतेन हि ॥ ४० ॥

सोऽपि नाकं समारुह्य जन्मजन्मसुनिर्वृतः । गोत्रमातृगणानां च नृपाणां सुहृदांतथा
सखीनांचोपकर्तृणां खातंखात्वाऽक्षयंफलम् । तपस्विनामनाथानां ब्राह्मणानांविशेषतः

खातं तु जनयित्वा तु स्वर्गं चाक्षयमश्नुते ।
तस्मात्खातादिकं विप्राः शक्तितो यः करिष्यति ॥ ४३ ॥

सर्वपापक्षयात्पुण्यं मोक्षं यायान्न संशयः । य इदं श्रावयेल्लोके धर्माख्यानं महोत्कटम्
सर्वखातप्रदानस्य फलमश्नाति धार्मिकः । ग्रहणे भास्करस्यैव भागीरथ्यां तटे वरे ॥
गवां कोटिप्रदानस्य फलं श्रुत्वा लभेन्नरः । न च दरिद्रतामेति न शोकं व्याधिसञ्चयम्

असंमानं महद्दुःखमुभयोर्नाधिगच्छति ॥ ४७ ॥

इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे खातादिकीर्तनं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ।

———

षष्टितमोऽध्यायः

अश्वत्थादिवृक्षरोपणविधानफलवर्णनम् ।

व्यास उवाच ।

शाखिनामेवसर्वेषां फलंवक्ष्यामियादृशम् । तच्छृणुध्वं महाभागा रोपणे च पृथक्पृथक्

यस्तु रोपयते तीरे पुण्यवृक्षान्समन्ततः ।
तस्य पुण्यफलं ज्ञातुं कथितुं नैव शक्यते ॥ २ ॥

अन्यत्र रोपणं कृत्वा शाखिनां यत्फलंलभेत् । ततोजलसमीपे तु लक्षकोटिगुणं भवेत्

स्वयं पुष्करिणी तीरे त्वनन्तं फलमश्नुते ।
तस्माच्छतगुणं ब्रूमः शाखिनां पुण्यकारिणाम् ॥ ४ ॥

अश्वत्थरोपणं कृत्वा जलाशयसमीपतः । यत्फलं लभते मर्त्यो न तत्क्रतुशतैरपि ॥५॥

पतन्ति यानि पत्राणि जले पर्वणि पर्वणि । तानि पिण्डसमानीह पितॄणामक्षयं ययुः

खादन्ति पतगास्तत्र फलानि कामतो ध्रुवम् ।
ब्रह्मभक्ष्यसमं तस्य पुण्यं भवति चाक्षयम् ॥ ७ ॥

अश्वत्थेनैव वृक्षेण रोपणेनैव यत्फलम् । तद्वैक्रतुशतैर्नैव पुत्रैरेव शतैरपि ॥ ८ ॥

उष्णे च्छायांप्रगृह्णन्ति गावो देवद्विजातयः । कर्तुः पितृगणानां च स्वर्गोभवतिचाक्षयः

कर्तुं स्वस्थस्य वै विघ्नमक्षयत्वान्न शक्यते । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रोपयेद्वृक्षमाधवम्

एकं वृक्षं समारोप्य नरः स्वर्गान्न हीयते । तस्मादेव महावृक्षं रोपयध्वं द्विजोत्तमाः ॥

जलानां निकटे रम्ये रसानां क्रयविक्रये । मार्गे जलाशये वृक्षान्रोपयेद्यो महाशयः॥१२॥

अश्वत्थादीन्समारोप्य स्वर्गं याति मनोरमम् ।
अर्चयित्वा तु यत्पुण्यं प्रवक्ष्यामि द्विजातयः ॥ १३ ॥

स्नात्वाश्वत्थं स्पृशेद्यस्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
अस्नातो यः स्पृशेन्मर्त्यो लभते स्नानजं फलम् ॥ १४ ॥

दृष्ट्वा च नाशयेत्पापं स्पृष्ट्वा लक्ष्मीं प्रपद्यते । प्रदक्षिणे भवेदायुः सदाश्वत्थ नमोऽस्तुते

चलद्दलाय वृक्षाय सदा विष्णुस्थिताय च ।

बोधिसत्त्वाय योग्याय सदाश्वत्थ नमोऽस्तुते ॥ १६ ॥

अश्वत्थाय तु हव्यं तु पयो नैवेद्यमेव च । पुष्पं धूपं दीपकं च दत्त्वा स्वर्गान्न हीयते ॥

सपुत्रं चाक्षयं विद्धि धनवृद्धियशस्करम् ।

विजयं मानदं भद्रमश्वत्थस्य प्रपूजनम् ॥ १८ ॥

यज्ञतंच हुतं स्तोत्रं यन्त्रमन्त्रादिकं च यत् । सर्वंकोटिगुणं प्रोक्तं मूले चलदलस्य च

यस्यमूले स्थितो विष्णुर्मध्येतिष्ठतिशङ्करः । अग्रभागेस्थितो ब्रह्मा कस्तं जगतिनार्चयेत्

सोमवारे त्वमायां च स्नानं यन्मौनिना कृतम् ।

दानस्य गोसहस्रस्य फलं चाश्वत्थवन्दने ॥ २१ ॥

सप्तप्रदक्षिणे नैव गवामयुतजं फलम् । प्रचुराल्लक्षकोटिश्च तस्मात्कार्या हि सा सदा ॥

यत्किञ्चिद्दीयते तत्र फलमूलजलादिकम् । सर्वं तच्चाक्षयफलं जन्मजन्मसु जायते ॥

अहोऽश्वत्थसमो नास्ति वृक्षरूपी हरिर्भुवि ।

यथा पूज्यो द्विजो लोके यथा गावो यथामराः ॥ २४ ॥

तथाश्वत्थवृक्षरूपो देवः पूज्यतमः स्मृतः । रोपणे रक्षणे स्पर्शे पूजाकर्मणि वै सदा ॥

ददाति वित्तं पुत्रांश्च स्वर्गं मोक्षं पुनः क्रमात् ।

किञ्चिच्छेदं तु यः कुर्यादश्वत्थस्य तनौ नरः ॥ २६ ॥

कल्पैकं निरयं भुक्त्वा चाण्डालादौ प्रजायते ।

मूलच्छेदेन तस्यैव स च यात्यपुनर्भवम् ॥ २७ ॥

पुरुषास्तस्य तिष्ठन्ति रौरवे घोरदर्शने । अश्वत्थस्यैकवृक्षस्य रोपणे यत्फलं भवेत् ॥

तथैव चम्पकेऽर्के च त्रयाणां रोपणेऽपि च । अष्टौ बिल्वस्य वृक्षाश्च न्यग्रोधाश्चैवसप्त च

निम्बस्यदशवृक्षाश्च फलं चैषां समंभवेत् । एकैकस्यफलं चोक्तं वृक्षाणां रोपणे द्विजाः

एवं बुद्ध्वा तु धर्मात्मा यः कुर्यात्कृत्रिमं वनम् ।

कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥ ३१ ॥

नाकमेति स चूतस्य समारोप्य सहस्रकम्। ततो द्विस्त्रिगुणेनैवन्यूने वा प्रचूरेऽपि वा

भुङ्क्ते भुक्त्वा पुनः कुर्यान्नृपोवाथ सदीश्वरः।

स्वर्गं भोग्यं ततो राज्यं कल्याणं मङ्गलं शुभम्॥ ३३॥

आरोग्यं शौर्यसम्पन्नमारामादेव जायते। फलानि यस्य खादन्ति जन्तवोऽथसहस्रशः

आश्रिताविहगाःकीटाःपतगाःशलभादयः। छायाश्रिताश्चयेसत्त्वास्तत्संख्याताःपृथग्जना

तस्य किङ्करतां यान्ति शतशो देवतार्चिताः।

ये च वृक्षा महासत्त्वास्सर्वे ते देवरूपिणः॥ ३६॥

तदर्चा पितृवत्कार्या शुश्रूषा जलपिण्डवत्। मर्त्यलोके च ते पुत्रास्तस्य जन्मनिजन्मनि

सुरूपाः सुविनीताश्च सदा पुण्यक्रियाः शुभाः।

एवं गणेशतां यान्ति जन्तवश्चूतलग्नकाः॥ ३८॥

धात्री हरीतकी चान्ये कटुतिक्ताम्लसम्भवाः। सर्वेचारामतः शुद्धाःफलदाःशिवदाःसदा

प्रासादा यत्र सौवर्णाः सर्वरत्नविभूषिताः। सर्वाभरणसंयुक्ता विमानाश्चानिलोपमाः

शातकुम्भमया वृक्षाः सदैव सर्वदायिनः।

सर्वर्तुसुखदाः सौम्या कन्यका अप्सरस्समाः॥ ४१॥

गीतनृत्यपराधीरास्तत्र तिष्ठन्ति वृक्षदाः। पुष्करिण्यो विशेषेणखातान्यन्यानियानिच

शुद्धोपलान्तरचिता नद्यः पायसकर्दमाः। पुनर्दुग्धसफेनाश्च अन्नादिषड्रसान्विताः॥

मर्त्यलोके यथाभोग्यं पुनःस्वर्गे पुनर्भुवि।

पुनरेव तदभ्यासात्खातमारामकं पुनः॥ ४४॥

यथा पुण्यादिकं कृत्वा स्वर्गमर्त्याधिपः पुमान्।

अशक्तस्तु प्रपां कृत्वा पुष्करिण्याः फलं लभेत्॥ ४५॥

प्रपायालक्षणं चात्र सर्वपापहरं परम्। सर्वभोगप्रदं शुद्धं स्वर्गापवर्गदंस्थिरम्॥

लक्षणं च प्रवक्ष्यामि प्रपायाःकीर्तिवर्धनम्। निर्जलेऽध्वनि पृक्तेवस्थानेकृत्वाचमण्डपम्

बहुपान्थे समायाते ग्रीष्मवर्षाशरत्स्वपि। अगरुकादिसौगन्ध्यं जलं पूगं स चन्द्रकम्

आसनं चैव ताम्बूलं दत्त्वा स्वर्गान्न हीयते। एवं वर्षत्रयेणैव पुष्करिण्याः फलंलभेत्

स्वर्गाच्चैवाच्युतो मर्त्यो देवैरपि प्रपूज्यते। मासमेकं तु योदद्यात्प्रपां ग्रीष्मेऽथनिर्जले
कल्पैकं तु वसेत्स्वर्गे स्वर्गाद्भ्रष्टो महीयते। प्रपादास्तत्रतिष्ठन्ति यत्र पुष्करिणीप्रदाः

नोचेद्धर्मघटो देयः पुण्यः पापक्षयाय च।
एष धर्मघटो ज्ञेयो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ॥ ५२ ॥

तवप्रसादात्सफला ममसन्तु मनोरथाः। स्वर्णं माषचतुर्भागं दक्षिणार्थं घटस्य च ॥
एवंवर्षत्रयेणैव प्रपादानफलं लभेत्। यः पठेच्छ्रावयेद्वापि पुष्करिण्यादिजं फलम् ॥
साक्षात्पापाद्भवेन्मुक्तस्तत्प्रसादात्तु सद्गतिः। जनेषु श्रावयेद्यस्तु पुण्याख्यानमिदं शुभम्

कल्पकोटिसहस्राणि सुरलोके स तिष्ठति ॥ ५६ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे पुष्करिण्यादि धर्मकीर्तनं नाम
षष्टितमोऽध्यायः।

एकषष्टितमोऽध्यायः

सेतुबन्धनफलवर्णनम्।

व्यास उवाच।

अतः परं प्रवक्ष्यामि कीर्तिधर्मं परं शुभम्। सेतुबन्धफलं पुण्यं ब्रह्मणा भाषितं यथा
कान्तारे दुस्तरेपङ्के पुरुसङ्कुसमाकुले। आलिंकृत्वा भवेत्पूतो देवत्वं यातिमानवः ॥

वितस्तौ तु लभेत्स्वर्गं दिव्यं वर्षशतं समम्।
एवं सङ्ख्याविधानेन नरः स्वर्गान्न हीयते ॥ ३ ॥

कदाचित्पङ्कयोगाच्च स्वर्गाद्भुवि विजायते। तदाभट्टारकः श्रीमान्रोगशोकविवर्जितः ॥
पङ्कादौ सङ्क्रमांश्चैव कृत्वास्वर्गान्न हीयते। सर्वपापं क्षयंतस्य सम्प्रयाति दिने दिने ॥

तथालिसङ्क्रमाणां च फलं तुल्यं प्रकीर्तितम्।
धनप्राणव्ययेनैव धीमता क्रियते सदा ॥ ६ ॥

श्रूयतां यत्पुरावृत्तमाख्यानं वृद्धसम्मतम्। कश्चिच्चोरो महाभीष्मः स्तेयकर्मणि चोद्यतः

कान्तारे गोशिरः स्थाप्य क्रान्त्वा स्तेयं गतो ह्यसौ ।
धनापहरणं कृत्वा गृहस्थस्य च ते न हि ॥ ८ ॥
गतः स्वमन्दिरं तत्र जनागच्छन्ति वर्त्मनि । सर्वेषामेकपादस्य सुखंभवति निश्चितम् ॥
एकपादेहदे दुर्गे तारकं गोशिरः परम् । चान्द्रायणं च तत्तस्य कान्तारे संस्थितं शिरः
ततश्चोरस्य निधने चित्रगुप्तप्रणीतके ॥ ११ ॥

चित्रगुप्त उवाच ।

धर्मस्यफलमात्रं तु एतस्य च न विद्यते । न दैवं पैतृकं कार्यं तीर्थस्नानं द्विजार्चनम् ॥
दानं गुरुजने मानं ज्ञानं परहितं शुभम् ।
मनसा न कृतं तेन क्रियया च कथं पुनः ॥ १३ ॥
कृतं साहसिकं स्तेयं परदाराभिमर्शनम् । भूतमिथ्यापवादं च साधुनिन्दापरं तथा ॥
एवं शतसहस्रं तु तथा गोहरणं कृतम् ॥ १४ ॥

व्यास उवाच ।

तत्राह धर्मराजस्तु कालानलसमप्रभः ॥ १५ ॥

धर्मराज उवाच ।

नयतैनं फलं शूरा दुर्गतिं चापुनर्भवम् ॥ १६ ॥

व्यास उवाच ।

एतस्मिन्नन्तरेऽवोचच्चित्रगुप्तोऽनुकम्पकः ॥ १७ ॥

चित्रगुप्त उवाच ।

अस्त्यस्य गोशिरः पुण्यं किंचिन्नाथ क्षमाधुना । अस्यपुनर्भवो नास्तिशर्मचात्रलवंनहि
चिन्तयित्वोच्यतां देव तत्पापस्य क्षयाय वै ॥ १९ ॥

व्यास उवाच ।

नृपो द्वादशवार्षिक्यं लभेत्पुण्योदयं क्षितौ । तथाह धर्मराजस्तं गच्छमर्त्यं दुरात्मक
अकण्टकं च राज्यं च भुङ्क्ष्व द्वादशवत्सरम् । यद्धृतं गोशिरैमार्गमुक्तस्तस्यैवकारणात्
पुनरत्रसमागम्य सङ्गन्ता चापुनर्भवम् । ततः कृताञ्जलिर्देवमुवाच दुःखपीडितः ॥ २२ ॥

चोर उवाच ।

धर्मराजानुकम्पां च मय्येवं पापकारिणि । कुरुनाथ त्वनाथे च जानामि प्रीतिपूर्वकम्

व्यास उवाच ।

धर्मराजस्तु तं चाह बाढमेवमितो व्रज । स्मरिष्यसिस्ववृत्तान्तं मत्प्रसादात्सुदुःखितः

एतस्मिन्नन्तरे चैव मोचितः किङ्करेण हि । तस्यजन्माभवत्कौ च दुर्विधे चातिवाणिके

आजन्मविविधं दुःखं भुक्तं पूर्वं विकर्मतः । भुक्त्वाक्लेशंमहान्तं च एकविंशतिहायनम्

तस्मिन्राष्ट्रे मृतो भूपः स्वकर्मपरिपीडितः ।

एतस्मिन्नन्तरेऽमात्यैः समालोक्य सुमन्त्रिभिः ॥ २७ ॥

अनेकपरिमर्शैस्तु पृथिव्यां भ्रमणं कृतम् । तमावृण्वंश्च ते सद्यः सर्वेषां पुरतो दृढम् ॥

ततो राज्याभिषेकश्च कृतस्तैस्तु विमत्सरैः ।

स च राज्यं च संश्रित्य धर्मराजवरेण च ॥ २९ ॥

अकरोदालिकं कर्म शिलाबद्धं च मृण्मयम् । सङ्क्रमं जलदुर्गं च तरणिं च तथापरे ॥

वापीकूपतटाकानि प्रपाराममहीरुहम् । कृतवान्विविधं यज्ञं दानपुण्यमतःपरम् ॥ ३१ ॥

स्मरंश्च पूर्वकर्माणि सर्वपापक्षयाय वै ।

कृतं बहुविधं धर्मं व्रतानि विविधानि च ॥ ३२ ॥

सुराणां ब्राह्मणानां च गुरूणां चैव तर्पणात् । पापात्पूतो ययौ गेहं धर्मराजस्य धीमतः

स यानस्थं ततो दृष्ट्वा क्रोधरक्तेक्षणोऽभवत् ।

स च तं प्राञ्जलिः प्राह भोधर्म कुरु तारणम् ॥ ३४ ॥

चित्रगुप्तोऽब्रवीद्वाक्यं धर्मराजसमीपतः ॥ ३५ ॥

चित्रगुप्त उवाच ।

कर्मणा मनसा पूतो विष्णुलोकं स गच्छतु ॥ ३६ ॥

व्यास उवाच ।

स तच्छ्रुत्वा पुनश्चाह तस्य विज्ञाय कारणम् ।

स्मितः प्रीत्या प्रसन्नात्मा गच्छ गच्छाच्युतालयम् ॥ ३७ ॥

विमानं सुरलोकाच्च स्वागतं वर्णकर्बुरम् ।
समारुह्य गतः स्वर्गं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ ३८ ॥

तस्मात्किष्कुप्रमाणं हि दत्तंयेनालिकंपुरा । स तु राज्यान्वयंस्वर्गं महान्तंवानुगच्छति
तथैव गोप्रचारं तु दत्त्वा स्वर्गान्न हीयते । यागतिर्गोप्रदस्यैव ध्रुवं तस्य भविष्यति ॥
व्यामैकं गोप्रचारं तु मुक्तं येन सुधीमता । तस्य स्वर्गं भवेद्दिष्टं किमन्यैः पुरुभाषितैः ॥

गोप्रचारं यथाशक्ति यो वै त्यजति हेतुना ।
दिने दिने ब्रह्मभोज्यं पुण्यं तस्य शताधिकम् ॥ ४२ ॥

तस्माद्गवांप्रचारं तु मुक्त्वा स्वर्गान्नहीयते । यश्छिनत्ति द्रुमं पुण्यं गोप्रचारंछिनत्यपि

तस्यैकविंशपुरुषाः पच्यन्ते रौरवेषु च ।
गोचारघ्नं ग्रामगोपः शक्तो ज्ञात्वा तु दण्डयेत् ॥ ४४ ॥

छेत्तारं धर्मवृक्षाणां विशेषाद्गोप्रचारघम् । तस्य दण्डसुखं तस्य तस्मात्तं दण्डयेत्तुसः

प्रासादं कुरुते यस्तु विष्णुलिङ्गस्य मानवः ।
त्रिकाण्डं पञ्चकाण्डं च सुशोभं सुघटान्वितम् ॥ ४६ ॥

इतोऽधिकं तु योदद्यान्मृण्मयं वा दृषन्मयम् । वसुवृत्तिसुपूर्णं च सुरम्यं दिव्यभूतलम् ॥
प्रतिष्ठाकर्मसम्पन्नं किङ्करादिभिरावृतम् । सुलिङ्गमिष्टदेवस्य विष्णोरेव विशेषतः ॥
कृत्वा च विष्णुसायुज्यं समाप्नोति नरोत्तमः । तथैव प्रतिमां कृत्वा हरेरन्यतरस्य च ॥
कृत्वा देवकुलं रम्यं यत्फलं लभते नरः । न तन्मखसहस्रैस्तु दानैर्भुवि व्रतादिभिः ॥
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च । प्रासादे रत्नसंयुक्ते सम्पूर्णद्रव्यसङ्कुले ॥
स वसेत्कामगे याने सर्वलोकमनोहरे । स्वर्गाच्च्युतो भवेद्राजा सार्वभौमो गुणैर्वशी

शिवलिङ्गे तु प्रासादं कारयित्वा स्वशक्तितः ।
यदुक्तं विष्णुलिङ्गे तु तज्ज्ञेयं शिववेश्मनि ॥ ५३ ॥

भुङ्क्ते भोगं महाभागो मनः शर्मकरं परम् । रामाभिरामसम्पूर्णं सर्वतः सुखदंदिवि ॥
उर्व्यामक्षय्यभोग्यानि नृपो वाथ महाधनी । हरस्य प्रतिमां यश्च कृत्वा देवगृहे नरः ॥

सुलिङ्गं वा सुरूपं वा कल्पकोटिं वसेद्दिवि ।

स्वर्गाद्भ्रष्टो भवेद्राजा धनी पूज्यतमोऽपि वा ॥ ५६ ॥
देवी लिङ्गेषु सर्वेषु कृत्वा देवगृहं नरः । सुरत्वं प्राप्नुयाल्लोके देव्यास्सर्वसुखोद्भवे ॥
भृशमच्युततामेति सुखमेति निरामयम् । रत्नसंसृष्टप्रासादे मणिकर्बुरभूतले ॥ ५८ ॥
रामायुतप्रसम्भोग्ये देवीसंसृष्टनिर्भये । नृत्यगीतपरे रम्ये सर्वेन्द्रियमनोरमे ॥ ५९ ॥
रत्नमर्दलतालाढ्ये सर्वदा स्त्रीजनैरिते । निर्मले सुखदे रम्ये रत्नानां सुशुभे गृहे ॥६०॥
तथैव प्रतिमायाश्च देव्याः प्रासादमुत्तमम् ।
नियुक्तं कल्पकोटीनां स्वर्लोकमेति मानवः ॥ ६१ ॥
स्वर्गाद्भ्रष्टो भवेद्भूपो देवीभक्तिपरायणः । एवं च जन्मसाहस्रं स्मर एव भवेद्भुवि ॥
प्रासादं गाणपत्यं च देव्या वा प्रतिमान्नरः ।
कृत्वा सुरगणानां च पूजितो दिवि जायते ॥ ६३ ॥
तथैव राजतामेति भोग्यान्देवीपुरे तथा । अविघ्नं सर्वकार्येषु सदैव गणपो यथा ॥
आज्ञा न स्खलिता तस्य सुरासुरनरेषु च । तथैव सौरप्रासादे फलमेति नरोत्तमः॥६५॥
अरागी सुप्रसन्नात्मा कामदेवसमप्रभः । वरदः सर्वलोकेषु यथा ब्रध्नस्तथा हि सः ॥
सूरस्य प्रतिमायां च गृहं कृत्वा शिलामयम् ।
कल्पकोटिशतं भुक्त्वा स्वर्गमुर्वीश्वरो भवेत् ॥ ६७ ॥
विष्णवादि सर्वदेवानामर्चनं यत्पृथक्पृथक् ।
प्रत्येकं सम्प्रवक्ष्यामि नराणां हितहेतवे ॥ ६८ ॥
घृतप्रदीपं यो दद्यान्मासमेकमहर्निशम् । दिव्यं वर्षायुतं स्वर्गे पूजितो देवसत्तमैः॥६९॥
घृतस्नानं तथा लिङ्गे यः कुर्याद्भुविमानवः । कल्पकोटिसहस्राणि मासैके लभते नरः ॥
तिलतैलप्रदीपस्य तथान्यस्यार्द्धकं फलम् । मासैकं जलदानस्य फलेनेश्वरतां व्रजेत् ॥
धूपदानेन गन्धर्वं चन्दने द्विगुणं भवेत् ।
मृगमदागरुसत्त्वस्य दाने बहुफलं भवेत् ॥ ७२ ॥
मालापुष्पप्रदानेन नरः स्यात्त्रिदशेश्वरः । शीते तूलपटीं दत्त्वा सर्वदुःखात्प्रमुच्यते ॥
जन्मजन्मसु लभ्येत उष्णे च शीतलां पटीम् ।

दत्त्वा च नैव सीदेत शक्त्या वस्त्रं ददाति यः ॥ ७४ ॥
चतुर्हस्तप्रमाणं च वर्ष्मवेष्टं सुशोभनम् । विधानं चरणानां च दत्त्वा स्वर्गान्न हीयते ॥
शक्त्या स्वर्णप्रदानेन स्वर्गे पूज्यो भवेन्नरः ।
दशयोजनविस्तीर्णे मण्डपे रूपभाग्भवेत् ॥ ७६ ॥
सुवर्णरत्नसंयुक्तं दत्त्वा दशगुणंलभेत् । वज्रवैदूर्यगारुत्ममाणिक्यादीननर्घतः
दत्त्वा लिङ्गे विधानाच्च ब्राह्मणे वा यशस्विनि ।
शतयोजनविस्तीर्णमण्डलेऽधिपतिर्भवेत ॥ ७८ ॥
तथैव भुवि जातोऽपि सर्वलोकप्ररञ्जनः । सुरभिद्रव्यदानेन वावदूकश्च सुन्दरः ॥७९॥
रक्तामृतसुकण्ठश्च पूगदानान्नरोभवेत् । वरदासीप्रदानेन नरः कल्पं वसेद्दिवि ॥ ८० ॥
वरदासीप्रदानेन उर्व्यां जातो धनेश्वरः । तथैव भृत्यदानेन बहुभृत्यो भवेद्दिवि ॥
धरायामक्षया ऋद्धिर्जन्मजमन्मसु जायते । सर्वतूर्यप्रदानेन गुणवांल्लोकसम्मतः ॥८२॥
नृत्यगीतादिशास्त्रेण गन्धर्वाणां पतिर्भवेत् ।
दासीदासयुतः स्वर्गे धनैः स्त्रीभिर्वरैर्युतः ॥ ८३ ॥
तथैव गोप्रदानेन तावत्कालं वसेद्दिवि । लिङ्गे दुग्धप्रदानाच्च नरः कल्पं वसेद्दिवि ॥
दध्ना स्नानेन द्विगुणं घृतेन तु शताधिकम् । अन्नं षड्रससंयुक्तं दत्त्वा क्षितिपतिर्भवेत्
तथैव पायसं दत्त्वा मुनीनां प्रवरो भुवि । हविष्यान्नं मुदा दत्त्वा वेदशास्त्रार्थपारगः ॥
निरामिषप्रदानाच्च ब्रह्मचारी व्रती भवेत् । मधुदानाच्च सौभाग्यं गुडेन लवणेन च ॥
शर्करादिभिर्लावण्यं सर्वलोकेषु गीयते । देवानां शम्भुलिङ्गानामर्चां कृत्वा विधानतः ॥
अनुक्रमेण स्वर्गादौ लोकानां स पतिर्भवेत् ।
लोकानां च हितार्थाय देवास्तिष्ठन्ति सम्मुखाः ॥ ८६ ॥
सकृत्प्रदक्षिणं कृत्वा शम्भुलिङ्गेषु पण्डितः । दिव्यं वर्षशतं पूर्णं स्वर्गमेति नरोत्तमः ॥
एवमेवक्रमेणैव नमस्कारैः स्वयम्भुवः । लोकवन्द्यो व्रजेत्स्वर्गं तस्मान्नित्यं समाचरेत्
लिङ्गरूपस्य देवस्य यो धनं हरते नरः । स च रौरवमासाद्य हरणात्कीटतां व्रजेत् ॥
दातुः पूजां च लिङ्गार्थे हरेश्चाप्याददाति यः ।

कुलकोटिसहस्रेण नरकान्न निवर्तते ॥ ९३ ॥

जलपुष्पादिदीपार्थे वसु चान्यद्गृहीतवान् । पश्चान्न दीयते लोभादक्षयं नरकं व्रजेत् ॥

दासीं हृत्वा तु लिङ्गस्य नरकान्न निवर्तते ।

कामार्तो मातरं गच्छेन्न गच्छेच्छिवचेटिकाम् ॥ ९५ ॥

शिवदासीं ततो गत्वा शिवस्वहरणे तथा । भक्षणादन्नपानानां नरो दुर्गतिमाप्नुयात्

अतो देवलविप्रो यो नरकान्न निवर्तते । तस्माद्वेश्याजनानां च दौष्ट्यमेव हितंभवेत् ॥

अतस्तु गणिकांस्पृष्ट्वा नरः स्नानाद्विशुध्यति । मलिनां दुर्गतिं याति बहुपूरुषसंश्रयात्

वेश्या तपस्विनी या च देवार्चनरता सदा । पतिव्रतपरा शुद्धा स्वर्गं चाक्षयमश्नुते ॥

गणिकां मातृवद्यस्तु सदासन्नां प्रपश्यति । देववत्सुरलोकेषु निखिलं भोगमश्नुते ॥

सुरासुरनराणां च वन्दनीयोयथाहरिः । तथार्होऽयं सर्वलोके सर्वभूतैकपावनः ॥१०१॥

देवदासः सदायस्तु देवकृत्येषु लोलुपः । स च गच्छति लोकेशो देवलोके महीयते ॥

एतेषामेव लिङ्गानि कारयित्वा च मण्डपम् ।

शक्त्याऽयं लभते नाकं कालस्य निश्चयं शृणु ॥ १०३ ॥

हायनैकं तृणेनैव शरकाण्डेन तच्छतम् । अयुतं त्वन्यकाष्ठेन लक्षं खादिरदारुणा ॥

कोटिकोटि च पाषाणैः सुदृढैर्यत्नसंयुतैः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मण्डपं कारयेद् बुधः ॥

यावत्काले वसेत्स्वर्गे नरोमण्डपकारकः । तावत्कालं च हरणे नरो दुर्गतिमाप्नुयात्

जनानां निचये रम्ये वस्तूनां क्रयविक्रये ।

आश्रये चाध्वगानां च नदीनदसमागमे ॥ १०७ ॥

देवानां मण्डपं कृत्वा यत्फलं लभते नरः । तत्फलं समवाप्नोति द्विगुणं विप्रमन्दिरे ॥

अनाथस्य च दीनस्य श्रोत्रियस्य विशेषतः । कारयित्वा गृहं रम्यं नरःस्वर्गान्न हीयते

य इदं शृणुयान्नित्यं पुण्याख्यानमनुत्तमम् । अक्षयं लभते स्वर्गं प्रासादादेः फलंलभेत्

धनिनां चेश्वराणां च तथा पुण्यवतां पुनः ।

पाठयित्वा पठित्वा तु नरःस्वर्गान्न हीयते ॥ १११ ॥

देवानां दासदासीनां सदा देवालयेषु च । पठेद्यस्तु सदाविप्रो मोक्षमार्गं स गच्छति ॥

नृपाणामीश्वराणां च धनिनां गुणिनां पुरः ।
पठित्वा मोक्षमाप्नोति श्रवणात्तत्फलं लभेत् ॥ ११३ ॥

द्विजा ऊचुः ।

सामान्येकः परः पुण्यो मर्त्यलोके द्विजोत्तम ।
सुलभो मर्त्यपूज्यस्तु मुनीनां च तपस्विनाम् ॥ ११४ ॥
चातुर्वर्ण्याश्रमाणां च पापपुण्यवतां नृणाम् । गुणागुणवतां चैव वर्णावर्णवतां तथा

व्यास उवाच ।

सर्वेषामेवभूतानां रुद्राक्षेण युतो वरः । दर्शनादस्य लोकानां पापराशिः प्रलीयते ॥
स्पर्शनाद्दिवमश्नाति धारणाद्रुद्रतां व्रजेत् । शिरस्युरसि बाहौ च रुद्राक्षं धारयेत्तु यः
स चेशानसमो लोके सखे सर्वत्र गोचरः । यत्र तिष्ठन्स सौ विप्र स देशः पुण्यवान्भवेत्
तं दृष्ट्वाप्यथवा स्पृष्ट्वा नरः पूयेत कल्मषान् ।
यज्जप्यं तर्पणं दानं स्नानमर्चा प्रदक्षिणम् ॥ ११९ ॥
यत्किञ्चित्कुरुते पुण्यं निखिलं तदनन्तकम् । तीर्थानां च महत्तीर्थं रुद्राक्षस्यफलंद्विजाः
अस्यैव धारणाद्देही पापात्पूतोऽतिपुण्यभाक् ।
गृहीत्वा चाक्षमालां च ब्रह्मग्रन्थियुतां शिवाम् ॥ १२१ ॥
यज्जप्तं च कृतं दानं स्तोत्रं मन्त्रं सुरार्चनम् । सर्वं चाक्षयतामेति पापं च क्षयमाव्रजेत्
मालाया लक्षणं ब्रूमः श्रूयतां द्विजसत्तमाः। तस्यास्तु लक्षणं ज्ञात्वा शैवमार्गं प्रलप्स्यथ
निर्योनिकीटविद्धं च भग्नलिङ्गं यथाक्रमम् । अन्योन्यं बीजलग्नं च मालायांपरिवर्जयेत्
स्वयं च ग्रथिता या च श्लथान्योन्यप्रसज्जिता ।
शूद्रादिग्रथिताऽशुद्धा दूरात्तां परिवर्जयेत् ॥ १२५ ॥
मध्यमालग्नकं बीजं जघन्यं च यथाक्रमम् । हस्तसम्भ्रमणेनैव मेर्वामर्शं पुनः पुनः ॥
सङ्ख्यातं यज्जपेन्मन्त्रमसङ्ख्यातं च निष्फलम् ।
सर्वेषामेव देवानां जपेन्मन्त्रं स्वमालया ॥ १२७ ॥
प्रयतः सकले तीर्थे कोटिकोटिगुणं भवेत् । शुद्धायामेव भूम्यां तु मेध्यके वृक्षमूलके

गोष्ठे चतुष्पथागारे विष्णोर्मन्त्रंशिवस्य च। गणपतेश्चसूरस्य लिङ्गेऽनन्तफलंभवेत् ॥

शून्यागारे शवस्याग्रे श्मशाने च चतुष्पथे।

देवीमन्त्रं जपेद्यस्तु सद्यस्सिद्ध्यति साधकः ॥ १३० ॥

यावच्चावैदिकं मन्त्रं पौराणं चागमोद्भवम्। सर्वं रुद्राक्षमालायामीप्सितार्थप्रदायकम् ॥

रुद्राक्षस्रवजं शुद्धं जलं शिरसि धारयेत्। सर्वस्मात्कल्मषात्पूतः पुण्यंभवतिचाक्षयम् ॥

रुद्राक्षस्य च प्रत्येकं बीजं प्रत्येकनिर्जरम्।

धारयेद्यस्तनौ मर्त्यः सुराणां सत्तमोभवेत् ॥ १३३ ॥

द्विजा ऊचुः।

रुद्राक्षस्तु कुतो जातः कुतो वा मेध्यतां गतः।

किमर्थं स्थावरो भूमौ केनैव च प्रचारितः ॥ १३४ ॥

व्यास उवाच।

पुरा कृतयुगे विप्रास्त्रिपुरो नाम दानवः। सुराणां च वधं कृत्वा अन्तरिक्षपुरे हि सः

प्रणाशे सर्वलोकानां स्थिरो ब्रह्मवरेण च। शुश्राव शङ्करो भीमं देवैरीशो निवेदितम्

ततोऽजगवमासज्य बाणमन्तकसन्निभम्। धृत्वा तं च जघानाथ दृष्टं दिव्येन चक्षुषा ॥

स पपात महीपृष्ठे महोल्केव च्युतो दिवः। घटनव्याकुलाद्रुद्रात्पतिताः स्वेदबिन्दवः ॥

तत्राश्रुबिन्दुतो जातो महारुद्राक्षकः क्षितौ।

अस्यैव च फलं जीवा न जानन्त्यतिगुह्यतः ॥ १३६ ॥

ततः कैलाशशिखरे देवदेवं महेश्वरम्। प्रणम्य शिरसा भूमौ स्कन्दो वचनमब्रवीत् ॥

स्कन्द उवाच।

रुद्राक्षस्यफलं नाथ ज्ञातुमिच्छामितत्त्वतः। जप्येऽथधारणे चैव दर्शने स्पर्शनेऽपि वा

ईश्वर उवाच।

लक्षं तु दर्शनात्पुण्यं कोटिर्वै स्पर्शनेन च। दशकोटिफलं पुण्यं धारणाल्लभते नरः ॥

लक्षकोटिसहस्राणि लक्षकोटिशतानि च।

जप्त्वाऽस्य लभते पुण्यं नात्र कार्या विचारणा ॥ १४३ ॥

उच्छिष्टो वा विकर्मस्थो युक्तो वा सर्वपातकैः । मुच्यते सर्वपापेभ्यो रुद्राक्षधारणेनवै
कण्ठे रुद्राक्षमादाय श्वापदो म्रियते यदि । सोऽपिरुद्रत्वमाप्नोति किं पुनर्मानुषादयः

ध्यानधारणहीनोऽपि रुद्राक्षं यदि धारयेत् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम् ॥ १४६ ॥

कार्तिकेय उवाच ।

एकवक्त्रं द्वित्रिचतुःपञ्चषड्वक्त्रमेव च । सप्ताष्टनववक्त्रं च दशैकादशवक्त्रकम् ॥ ॥
रुद्राक्षं द्वादशास्यं च त्रयोदशमुखं तथा । चतुर्दशास्यसंयुक्तं स्वयमुक्तं च शङ्करम् ॥

तेषां च तन्मुखानां च देवताः काश्च तद्वद ।
गुणो वा कीदृशस्तेषां दोषो वा जगदीश्वर ॥ १४६ ॥
यदि मेऽनुग्रहो वास्ति कथयस्व यथार्थतः ॥ १५० ॥

ईश्वर उवाच ।

एकवक्त्रः शिवः साक्षाद्ब्रह्महत्यां व्यपोहति । तस्मात्तु धारयेद्देहे सर्वपापक्षयाय च
शिवलोकं स गच्छेच्च शिवेन सह मोदते । महता पुण्ययोगेन हरानुग्रहकारणात् ॥
एकवक्त्रंलभेन्मर्त्यःकैलासं च षडानन । देवदेवो द्विवक्त्रं च यस्तु धारयते नरः ॥

सर्वपापं क्षयं याति यद्गुह्यं गोवधादिकम् ।
स्वर्गं चाक्षयमाप्नोति द्विवक्त्रधारणात्ततः ॥ १५४ ॥

त्रिवक्त्रमनलःसाक्षाद्यस्य देहे प्रतिष्ठति । तस्य जन्मार्जितं पापं दहत्यग्निरिवेन्धनम् ॥

स्त्रीहत्याब्रह्महत्याभ्यां बहूनां चैव हत्यया ।
यत्पापं लभते मर्त्यः सर्वं नश्यति तत्क्षणात् ॥ १५६ ॥

यत्फलं वह्निपूजायामग्निकार्ये घृताहुतौ । तत्फलं लभतेधीरः स्वर्गं चानन्तमश्नुते ॥

त्रिवक्त्रं धारयेद्यस्तु स च ब्रह्मसमो भुवि ।
निचितं दुष्कृतं सर्वं दहेज्जन्मनि जन्मनि ॥ १५८ ॥

न चोदरे भवेद्रोगो न चैवापटुतांव्रजेत् । पराजयं न लभते नाग्निना दह्यते गृहम् ॥

एतान्यन्यानि सर्वाणि वज्रादेश्च निवारणम् ।

नाशुभं विद्यते किञ्चित्त्रिवक्त्रस्य तु धारणात् ॥ १६० ॥
चतुर्वक्त्रः स्वयं ब्रह्मायस्य देहे प्रतिष्ठति ।
स भवेत्सर्वशास्त्रज्ञो द्विजो वेदविदांवरः ॥ १६१ ॥
सर्वधर्मार्थतत्त्वज्ञः स्मार्तः पौराणिकोभवेत् । यत्पापं नरहत्यायां बहुसत्वेषु वेश्मसु ॥
तत्सर्वं दहते शीघ्रं चतुर्वक्त्रस्य धारणात् । महेशस्तुष्यते नित्यं भूतानामधिपो भवेत्
सद्योजातस्तथेशानस्तत्पुरुषोऽघोर एव च । वामदेव इमेदेवा वक्त्रैः पञ्चभिराश्रिताः ॥
अतः सर्वत्र भूयिष्ठाः पञ्चवक्त्रा धरातले । रुद्रस्यात्मजरूपोऽयं तस्मात्तं धारयेद् बुधः
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च । तावत्कालं शिवस्याग्रे पूजनीयः सुरासुरैः
सार्वभौमो भवेद्भूमौ शर्वतेजाः शिवालये । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पञ्चवक्त्रं तु धारयेत्
षड्वक्त्रं कार्तिकेयन्तु धारयन्दक्षिणे भुजे । ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः
स्कन्दस्य सदृशः शूरः कल्पान्ते समुपस्थिते । नात्र पराजयं चैति गुणानामाकरोभुवि
कुमारत्वमवाप्नोति यथा गौरीशनन्दनः । ब्राह्मणो भूपपूज्यश्च क्षत्रियो लभते जयम्
वैश्याः शूद्रादयो वर्णाः सदैश्वर्यप्रपूरिताः । तस्यैव वरदा गौरी मातेव सुलभाभवेत्
ततो भुजबलादेव विश्वतेजा भवेन्नरः । वाग्मी धीरस्सभायां च नृपवेश्मनि संसदि ॥
न च कातरतामेति नैव भङ्गो भवेद् ध्रुवम् ।
एतान्यन्यानि सर्वाणि षड्वक्त्रस्यैव धारणात् ॥ १७३ ॥
सप्तवक्त्रो महासेनस्त्वनन्तो नाम नागराट् ।
अस्य प्रत्येकवक्त्रे तु प्रतिनागा व्यवस्थिताः ॥ १७४ ॥
अनन्तः कर्कटश्चैव पुण्डरीकोऽथ तक्षकः । विषोल्बणश्च कारीषः शङ्खचूडश्च सप्तमः
एते नागा महावीर्याः सप्तवक्त्रे व्यवस्थिताः । अस्य धारणमात्रे तु विषं न क्रमते तनौ
हरश्च परमप्रीतो भवेन्नागेश्वरे यथा । प्रीत्याऽस्य सर्वपापानि क्षयं यान्ति दिने दिने
ब्रह्महत्यासुरापानं स्तेयादि गुरुतल्पजम् । यत्पापं लभते मर्त्यः सर्वं नश्यति तत्क्षणात्
देवस्य सदृशं भोग्यं त्रैलोक्ये निश्चितं लभेत् ।
अष्टवक्त्रो महासेनः साक्षाद्देवो विनायकः ॥ १७६ ॥

अस्यैव धारणादेव यत्पुण्यं तच्छृणुष्व मे। जन्मजन्मनमूर्खःस्यान्नातुरो न च नष्टधीः
अविघ्नं सर्वकार्येषु तस्यैव सततं भवेत्। नैपुण्यं लिपिकार्येषु महाकार्येषु कौशलम्॥

सर्वारम्भादिकार्येषु क्षमं तस्य दिने दिने।
अर्थकूटं तुलाकूटं सर्वकूटं तथैव च ॥ १८२ ॥

शिश्नोदरकरेणैव संस्पृशेद्वा गुरुस्त्रियम्। एवमादीनि सर्वाणि हन्ति पापानि सर्वथा

अक्षयं त्रिदिवं भुक्त्वा मुक्तो याति परां गतिम्।
गुणान्येतानि सर्वाणि अष्टवक्त्रस्य धारणात् ॥ १८४ ॥

नवास्यं भैरवं प्रोक्तं धारयेद्यस्तु बाहुतः। कपिलं मुक्तिदं धृत्वा मम तुल्यबलो भवेत्
लक्षकोटिसहस्राणि ब्रह्महत्या करोति यः। ताः सर्वा दहते शीघ्रं नववक्त्रस्य धारणात्
सुरलोके सदा देवैः पूजितो मघवा यथा। हरवद्धरवेश्मस्थो गणेशो नात्र संशयः॥

पन्नगाश्च विनश्यन्ति दशवक्त्रस्य धारणात्।
वक्त्रे चैकादशे वत्स रुद्राश्चैकादश स्मृताः ॥ १८८ ॥

शिखायां धारयेन्नित्यं तस्य पुण्यफलं शृणु। अश्वमेधसहस्राणि यज्ञकोटिशतानि च

गवां शतसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम्।
तत्फलं शीघ्रमाप्नोति वक्त्रैकादशधारणात् ॥ १६० ॥

हरस्य सदृशो लोके पुनर्जन्म न विद्यते। रुद्राक्षं द्वादशास्यं यः कण्ठदेशे तु धारयेत्॥
आदित्यस्तुष्यते नित्यं द्वादशास्ये व्यवस्थितः। गोमेधं नरमेधं च कृत्वायत्फलमश्नुते
तत्फलं शीघ्रमाप्नोति वज्रादेश्च निवारणम्। नैव वह्नेर्भयं चैव न च व्याधिःप्रवर्तते॥
अर्थलाभं सुखं भुङ्क्ते ईश्वरो न दरिद्रता। हस्त्यश्वनरमार्जारमूषकाञ्छशकांस्तथा॥

व्यालदंष्ट्रिशृगालादीन्हत्वा व्याघातयत्यपि।
मुच्यते नात्र सन्देहो वक्त्रद्वादशधारणात् ॥ १६५ ॥

वक्त्रत्रयोदशो रुद्रो रुद्राक्षः प्राप्यते यदि। शन्तमः स तु विज्ञेयः सर्वकामफलप्रदः॥
सुधारसायनं चैव धातुवादश्च पादुका। सिध्यन्ति तस्य वै सर्वे भाग्ययुक्तस्य षण्मुख
मातृपितृस्वसृभ्रातृगुरून्वाथ निहत्य च। मुच्यते सर्वपापेभ्यस्त्रयोदशास्यधारणात्॥

अक्षयं लभते स्वर्गं यथा देवो महेश्वरः । चतुर्दशमुखं वत्स रुद्राक्षं यदि धारयेत् ॥
सततं मूर्ध्नि बाहौ वा शक्तिपिण्डं शिवस्य च । किं पुनर्बहुनोक्तेन वर्णितेन पुनः पुनः
पूज्यते सततं देवैः प्राप्यते पुण्यगौरवात् ॥ २०० ॥

कार्तिकेय उवाच ।

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि वक्त्रे वक्त्रेयथाविधि । न्यसनंकेन मन्त्रेण धारणं वा कथं वद

ईश्वर उवाच ।

शृणु षण्मुख तत्त्वेन वक्त्रे वक्त्रे यथाविधि ।
अमन्त्रोच्चारणादेव गुणा ह्येते प्रकीर्तिताः ॥ २०२ ॥

यः पुनर्मन्त्रसंयुक्तं धारयेद्भुवि मानवः । गुणास्तस्य महत्त्वं च कथितं नैव शक्यते ॥
इदानीं मन्त्रा आदिश्यन्ते । ॐ रुद्र एकवक्त्रस्य । ॐ खं द्विवक्त्रस्य ।
ॐ वुं त्रिवक्त्रस्य । ॐ ह्रीं चतुर्वक्त्रस्य । ॐ ह्रां पञ्चवक्त्रस्य ।
ॐ ह्रूं षड्वक्त्रस्य । ॐ ह्रः सप्तवक्त्रस्य । ॐ कं अष्टवक्त्रस्य ।
ॐ जूं नववक्त्रस्य । ॐ क्षं दशवक्त्रस्य । ॐ श्रीं एकादशवक्त्रस्य ।
ॐह्रीं द्वादशवक्त्रस्य । ॐ क्षौं त्रयोदशवक्त्रस्य । ॐ त्रां चतुर्दशवक्त्रस्य
एवं मन्त्रा यथाक्रमं न्यस्तव्याः । शिरस्युरसि मालां च गृहीत्वा यो व्रजेन्नरः ।
पदेपदेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति नान्यथा ॥ २०४ ॥

सर्वेषामपि वक्त्राणां धारणे मत्समो भवेत् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रुद्राक्षं पुत्र धारय
धारयित्वा तु रुद्राक्षं म्रियते यः क्षितौनरः । सयाति मत्पुरं रम्यं सर्वदेवैः प्रपूजितः ॥
मरुदेशे पुरा वत्सवाणिज्याय किलस्थले । गच्छन्वणिक्सुतस्तात तरौ प्रेताप्रपीडितः
नरीनर्ति ततः प्रेता द्विजेन परमैक्षि च ॥ २०८ ॥

द्विज उवाच ।

का त्वं नृत्यसि दीनासि संवृता जीर्णवाससा ॥ २०९ ॥

ईश्वर उवाच ।

अथ सा च द्विजं प्राह देवदूतान्मया श्रुतम् । अस्य चारुंनरस्येव वज्रपातेन साम्प्रतम् ॥

निश्चितं निधनं विप्र मद्भर्त्ता तु भविष्यति । एतस्मिन्नन्तरे नाकाद्वज्रं तस्य शिरोपरि
अपतत्स पपातोर्व्यां रुद्राक्षस्यार्धखण्डके । ततो मम पुरात्पुत्र विमानं चापतद्द्रुतम् ॥

समारुह्य ततः श्रीमांस्तत्र तिष्ठति सुस्थिरम् ।
ममांशकं समासाद्य ईश्वरः कौ धनी भवेत् ॥ २१३ ॥

एवं रुद्राक्षखण्डे च मृतस्य सुगतिः सुत । ज्ञानेन धारिणः पुंसः फलंवक्तुं न शक्नुमः ॥

स शैवो वा भवेच्छाक्तो गाणपत्योऽथ सौरकः ।
यो दधाति मृतो मालामेकं रुद्राक्षकं तु वा ॥ २१५ ॥

यः पठेत्पाठयेद्वापि श्रावयेच्छृणुतेऽपि वा । सर्वपापात्प्रमुक्तात्मा सुखंस्वर्गंलभेत्क्रमात्

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमेसृष्टिखण्डे रुद्राक्षमाहात्म्यं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ।

द्विषष्टितमोऽध्यायः

धात्रीमाहात्म्यवर्णनम् ।

स्कन्द उवाच ।

अपरस्यापि पृच्छामि फलस्य पूततां तरोः । सर्वलोकहितार्थाय वद नो जगदीश्वर ॥

ईश्वर उवाच ।

धात्रीफलं परं पूतं सर्वलोकेषु विश्रुतम् । यस्यरोपान्नरो नारी मुच्यते जन्मबन्धनात्
पावनंवासुदेवस्य फलंप्रीतिकरं शुभम् । अस्य भक्षणमात्रेण मुच्यते सर्वकल्मषात् ॥
भक्षणे च भवेदायुः पाने वै धर्मसञ्चयः । अलक्ष्मीनाशनं स्नाने सर्वैश्वर्यमवाप्नुयात्

यस्मिन्गृहे महासेन धात्री तिष्ठति सर्वदा ।
तस्मिन्गृहे न गच्छन्ति प्रेता दैतेयराक्षसाः ॥ ५ ॥
न गङ्गा न गया चैव न काशी न च पुष्करम् ।
एकैव हि नृणां धात्री सम्प्राप्ते हरिवासरे ॥ ६ ॥

एकादश्यां पक्षयुगे धात्रीस्नानं करोतियः। सर्वपापं क्षयं याति विष्णुलोके महीयते ॥
धात्रीफलं सदा सेव्यं भक्षणे स्नान एव च। नियतंपारणे विष्णोः स्नानमात्रेहरेर्दिने
संयते पारणे चैव धात्र्येकस्पर्शने नरः। भुक्त्वा तु लङ्घयेद्यस्तु एकादश्यां सितासिते
एकेनैवोपवासेन कृतेन तु षडानन। सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संक्षयः ॥ १० ॥
अक्षयं लभते स्वर्गं विष्णुसायुज्यमाव्रजेत्। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन धात्रीव्रतं समाचर ॥

धात्रीद्रवेण सततं यस्य केशाः सुरञ्जिताः।
न पिबेत्स पुनर्मातुः स्तनं कश्चित्षडानन ॥ १२ ॥

धात्रीदर्शनसंस्पर्शान्नाम्न उच्चारणेऽपि वा। वरदः सम्मुखो विष्णुःसन्तुष्टोभवतिप्रियः
धात्रीफलं च यत्रास्ते तत्रतिष्ठति केशवः। तत्रब्रह्मास्थिरापन्ना तस्मात्तां तु गृहेन्यसेत्
अलक्ष्मीर्नश्यते तत्र यत्र धात्री प्रतिष्ठति। सन्तुष्टास्सर्वदेवाश्च न त्यजन्ति क्षणं मुदा
धात्रीफलेन नैवेद्यं यो ददाति महाधनम्। तस्यतुष्टो भवेद्विष्णुर्नान्यैः क्रतुशतैरपि ॥
स्नात्वा धात्रीद्रवेणैव पूजयेद्यस्तु माधवम्। सोऽभीष्टफलमाप्नोति यद्वा मनसि वर्तते

तथैव लक्षणं स्मृत्वा पूजयित्वा फलेन तु।
सुवर्णशतसाहस्रं फलमेति नरोत्तमः ॥ १८ ॥
या गतिर्ज्ञानिनां स्कन्द मुनीनां योगसेविनाम्।
गतिं तां समवाप्नोति धात्रीसेवारतो नरः ॥ १६ ॥

तीर्थसेवाभिगमने व्रतैश्च विविधैस्तथा। सा गतिर्लभ्यते पुंसां धात्रीफलसुसेवया ॥
प्रीतिश्च सर्वदेवानां देवीनां नो गणस्य च। सम्मुखा वरदा स्नाने धात्रीफलनिषेवणे ॥
ग्रहादुष्टाश्च ये केचिदुग्राश्च दैत्यराक्षसाः। सर्वे न दुष्टतां यान्ति धात्रीफलसुसेवनात्
सर्वयज्ञेषु कार्येषु शस्तं चामलकीफलम्। सर्वदेवस्यपूजायां वर्जयित्वा रविं सुत ! ॥
तस्माद्रविदिने तातसप्तम्यां च विशेषतः। धात्रीफलानि सततं दूरतः परिवर्जयेत् ॥

यस्तु स्नाति तथाऽश्नाति धात्रीं च रविवासरे।
आयुर्वित्तं कलत्रञ्च सर्वंतस्य विनश्यति ॥ २५ ॥
सङ्क्रान्तौ च भृगोर्वारे षष्ठ्यां प्रतिपदि ध्रुवम्।

नवम्यां चाप्यमायां च धात्रीं दूरात्परित्यजेत् ॥ २६ ॥

सङ्क्रान्त्यां तु भवेद्रोगी अलक्ष्मीर्भृगुवासरे । अनपत्यं यदालक्ष्यांनवम्यामायुषःक्षयः

दशधात्री समायोगात्सर्वनाशं विनिर्दिशेत् ॥ २७ ॥

नासिकाकर्णतुण्डेषु मृतस्य चिकुरेषुवा । तिष्ठेद्धात्रीफलं यस्य स यातिविष्णुमन्दिरम्

धात्रीसम्पर्कमात्रेण मृतो यात्यच्युतालयम् । सर्वपापक्षयस्तस्य स्वर्गं याति रथेन तु ॥

धात्रीद्रवं नरो लिप्त्वा यस्तु स्नानं समाचरेत् । पदेपदेऽश्वमेधस्यफलंप्राप्नोतिधार्मिकः

अस्यदर्शनमात्रेण ये वै पापिष्ठजन्तवः । सर्वे ते प्रपलायन्ते ग्रहा दुष्टाश्च दारुणाः ॥३१॥

पुरैकः पुल्कसः स्कन्द मृगयार्थं वनंगतः । मृगपक्षिगणान्हत्वा तृषया परिपीडितः ॥

क्षुधयाऽमलकीवृक्षं पुरः पीनफलान्वितम् । दृष्ट्वा संरुह्य सहसा चखाद फलमुत्तमम् ॥

ततो दैवात्सवृक्षाग्रान्निपपात महीतले । वेदनागाढसंविद्धः पञ्चत्वमगमत्तदा ॥ ३४ ॥

ततःप्रेतगणाः सर्वे रक्षोभूतगणास्तथा । तनुवोढुं मुदा सर्वे ये वै शमनसेवकाः ॥३५॥

न शक्नुवन्ति चाण्डालं मृतं द्रष्टुं महाबलाः ।

अन्योन्यं विग्रहस्तेषां ममायमिति भाषताम् ॥ ३६ ॥

ग्रहीतुं चापि नेतुं च न शक्तास्ते परस्परम् । ततस्ते तु समालोक्य गता मुनिगणान्प्रति

प्रेता ऊचुः ।

किमर्थं मुनयो धीराश्चाण्डालं पापकारिणम् ।

प्रेक्षितुं न वयं शक्ता न चापि यमसेवकाः ॥ ३८ ॥

म्रियन्ते पातिता ये च स्थिरैर्युद्धपराङ्मुखाः । साहसैःपातिताभीतावज्राग्निकाष्ठपीडिताः

सिंहव्याघ्रहतामर्त्या व्याघ्रैर्वाजलजन्तुभिः । जलस्थलस्थिताः प्रेता वृक्षपर्वतपातिताः ॥

पशुपक्षिहता ये च कारागारे गरे मृताः । आत्मघातमृता ये च श्राद्धादिकर्मवर्जिताः ॥

गूढकर्ममृता धूर्ता गुरुविप्रनृपद्विषः । पाषण्डाः कौलिका क्रूराः गरदाः कूटसाक्षिणः

आशौचान्नस्य भोक्तारः प्रेतभोग्या न संशयः ।

ममायमिति भाषन्तो नेतुं तं च न शक्नुमः ॥ ४३ ॥

आदित्य इव दुष्प्रेक्ष्य किंवा कस्य प्रभावतः ॥ ४४ ॥

मुनय ऊचुः ।

अनेन भक्षितं प्रेताः पक्वं चामलकीफलम् ।

तत्सङ्गं यान्ति तस्यैव फलानि प्रचुराणि च ॥ ४७ ॥

तेनैव कारणेनायं दुष्प्रेक्ष्यो भवतां ध्रुवम् । वृक्षाग्रपतितस्याथ प्राणःस्नेहान्नच त्यजेत्
नायं वारेण सूर्यस्य न चान्ये पापकारिणः । धात्री भक्षणमात्रेण पापात्पूतो व्रजेद्दिवम्

प्रेता ऊचुः ।

पृच्छामो वो ह्यविज्ञानान्न वयं निन्दकाः क्वचित् ।

विष्णुलोकाद्विमानं तु यावन्नैवात्र गच्छति ॥ ४८ ॥

उच्यतां मुनिशार्दूला वो द्रुतं मनसि स्थितम् ।

यावद् द्विजा न घोषन्ति वेदमन्त्रादिकल्पितम् ॥ ४६ ॥

घोष्यन्तेयत्र वेदाश्च मन्त्राणि विविधानिच । पुराणस्मृतयोयत्र क्षणंस्थातुं न शक्नुमः
यज्ञहोमजपस्थानदेवतार्चनकर्मणाम् । पुरतो वै न तिष्ठामस्तस्माद्वृत्तं समुच्यताम् ॥
किं वै कृत्वा प्रेतयोनिं लभन्ते हि नराद्विजाः । श्रोतुमिच्छामहे सम्यक्कथं वे विकृतंवपुः

द्विजा ऊचुः ।

शीतवातातपक्लेशैःक्षुत्पिपासाविशेषकैः ।

अन्यैरपि च दुःखैर्ये पीडिताःकूटसाक्षिणः ॥ ५३ ॥

वधबन्धप्रमीताश्च प्रेतास्ते निरयंगताः । छिद्रान्वेषपरा ये च द्विजानां कर्मघातिनः ॥
तथैव च गुरूणां च ते प्रेताश्चापुनर्भवाः । दीयमाने द्विजाग्र्ये तु दातारं प्रतिषिध्यति ॥
चिरं प्रेतत्वमाश्रित्य नरकान्ननिवर्तते । परस्य वाऽऽत्मनो वा गां कृत्वा पीडनवाहने ॥
न पालयन्ति ये मूढास्ते प्रेता कर्मजा भुवि । हीनप्रतिज्ञका सत्यास्तथा भग्नव्रतानराः

नलिनीदलभुक्ताश्च ते प्रेताः कर्मजा भुवि ।

विक्रीणन्ति सुतां शुद्धां स्त्रियं साध्वीमकण्टकाम् ॥ ५८ ॥

पितृव्यमातुलाद्येश्च ते प्रेताःकर्मजा भुवि ।

एते चान्ये च बहवः प्रेता जाताः स्वकर्मभिः ॥ ५६ ॥

प्रेता ऊचुः ।

न भवन्ति कथं प्रेताःकर्मणा केन वा द्विजाः । हिताय तूर्णं वद नः सर्वलोकहितं परम् ॥

द्विजा ऊचुः ।

येन चैव कृतंस्नानं जलेतीर्थस्य धीमता । नमस्कृतं परंलिङ्गं न प्रेतो जायते नरः ॥६१॥

एकादश्यामुपोष्यैव द्वादश्यां च विशेषतः । पूजयित्वा हरिंमर्त्याःप्रेतत्वं न व्रजन्ति वै

वेदाक्षरप्रसूक्तैश्च स्तोत्रमन्त्रादिभिस्तथा । देवानां पूजने रक्ता न वै प्रेता भवन्ति ते ॥

श्रुत्वा पौराणिकं वाक्यं दिव्यं च धर्मसंहिताम् ।
पाठयित्वा पठित्वा च पिशाचत्वं न गच्छति ॥ ६४ ॥

व्रतैश्च विविधैःपूताःपद्माक्षधारणैस्तथा । जप्त्वा पद्माक्षमालायां प्रेतत्वं नैव गच्छति॥

धात्रीफलद्रवैःस्नात्वा नित्यं तद्भक्षणे रताः ।
तेन विष्णुं सुसम्पूज्य न गच्छन्ति पिशाचताम् ॥ ६६ ॥

प्रेता ऊचुः ।

सतांसन्दर्शनात्पुण्यमिति पौराणिकाविदुः । तस्मान्नोदर्शनंजातं हितंनःकर्तुमर्हथ ॥

प्रेतभावाद्यथामुक्तिःसर्वेषां नो भविष्यति । ब्रूतोपदेशकं धीरा युष्माकंशरणागताः ॥

ईश्वर उवाच ।

ततो दयालवःसर्वे तानूचुर्द्विजसत्तमाः ॥ ६९ ॥

द्विजा ऊचुः ।

धात्रीणां भक्षणं शीघ्रं कुर्वतां मुक्तिहेतवे ॥ ७० ॥

प्रेता ऊचुः ।

धात्रीणांदर्शने विप्रावयंस्थातुं न शक्नुमः । कथं तेषांफलानां च शक्ता वै भक्षणेऽधुना

द्विजा ऊचुः ।

अस्माकं वचनेनात्र धात्रीणां भक्षणं शिवम् । फलिष्यति परंलोकं तस्माद्गन्तुं समर्हथ

ईश्वर उवाच ।

अथ तेभ्यो वरंलब्ध्वा धात्रीवृक्षं पिशाचकैः । समारुह्य फलंप्राप्य भक्षितं लीलया तदा

ततो देवालयात्तूर्णं रथःपीनः सुशोभनः। आगतस्तं समारुह्य सचाण्डालपिशाचकाः॥

गतास्ते त्रिदिवं पुत्र व्रतैर्यज्ञैःसुदुर्लभम् ॥ ७४ ॥

स्कन्द उवाच।

धात्रीभक्षणमात्रेण पुण्यंलब्ध्वा दिवंगताः। तद्भक्षिणःकथं स्वर्गं न गच्छन्ति नरादयः

ईश्वर उवाच।

पूर्वं ते ज्ञानलोपाच्च न जानन्ति हिताहितम्।

उच्छिष्टं श्वभिरुत्स्पृष्टं श्लेष्ममूत्रं शकृत्तु वा ॥ ७६ ॥

मत्वा च मोहिताःश्रेष्ठ प्रेतादन्ति सदैव हि। शकृच्छौचं जलंवान्तं बलिसूकरकुक्कुटैः॥

मृतकेसूतके जप्यं न त्यक्तं येन केनचित्। तस्यान्नं च जलं प्रेताःखादन्ति तु सदैव हि

दुर्दान्ता गृहिणी यस्य शुचि संयमवर्जिता।

गुरुनिस्सारितादुष्टा सन्ति प्रेताश्च तत्र वै ॥ ७९ ॥

अपुङ्गवाःकुलैर्जात्या बलोत्साहविवर्जिताः। बधिराश्च कृशादीनाःपिशाचाः कर्मजातयः

क्षणं च मङ्गलंनास्ति दुःखैर्देहयुताभृशम्। तेनैव विकृताकाराःसर्वभोगविवर्जिताः॥

नग्नका रोगसन्तप्ता मृता रूक्षा मलीमसाः।

एते चान्ये च दुःखार्ताःसदैव प्रेतजातयः ॥ ८२ ॥

तेन कर्मविपाकेन जायन्ते काममीदृशाः। पितृमातृगुरूणां च देवनिन्दापराश्च ये ॥८३॥

पाषण्डाःकौलिकाः पापास्ते प्रेताःकर्मजाभुवि। गलपाशैर्जलैः शस्त्रैर्गरलैरात्मघातकाः

इहलोके च ते प्रेताश्चाण्डालादिषु सम्भवाः।

अन्त्यजाःपतिताश्चैव पापरोगमृताश्च ये ॥ ८५ ॥

अन्त्यजैर्घातितायुद्धे ते प्रेतानिश्चिताभुवि। महापातकसंयुक्ता विवाहे च बहिष्कृताः॥

शौर्यात्साहसिका ये च ते प्रेताःकर्मजाभुवि। राजद्रोहकराये च पितॄणां द्रोहचिन्तकाः

ध्यानाध्ययनहीनाश्च व्रतैर्देवार्चनादिभिः। अमन्त्राःस्नानहीनाश्च गुरुस्त्रीगमनेरताः॥

तथैव चान्त्यजस्त्रीषु दुर्गतासु च सङ्गताः। मृताःक्रूरोपवासेन म्लेच्छेदेशस्थिता मृताः

म्लेच्छभाषायुताः शुद्रास्तथा म्लेच्छोपजीविनः।

अनुवर्तन्ति ये म्लेच्छान्स्त्रीधनैरुपजीवकाः ॥ ९० ॥

स्त्रियोयैश्च न रक्ष्यन्ते ते प्रेता नात्रसंशयः। क्षुधासन्तप्तदेहं तु श्रान्तं विप्रंगृहागतम् ॥

गुणपुण्यातिथिं त्यक्त्वा पिशाचत्वं व्रजन्ति ते।

विक्रीणन्ति च वै गाश्च म्लेच्छेषु च गवाशिषु ॥ ९२ ॥

प्रेतलोके सुखं स्थित्वा ते च यान्त्यपुनर्भवम्।

अशौचाभ्यन्तरे ये च जाताश्च पशवो मृताः ॥ ९३ ॥

चिरंप्रेताःपिशाचाश्च मृताजातापुनःपुनः। जातकर्ममुखैश्चैव संस्कारैर्ये विवर्जिताः ॥

एकैकस्मिंश्च संस्कारे प्रेतत्वं परिहीयते। स्नानसन्ध्यासुरार्चाभिर्वेदयज्ञव्रताक्षरैः ॥

आजन्मवर्जिताः पापास्ते प्रेताश्चापुनर्भवाः।

भोजनोच्छिष्टपात्राणि यानि देहमलानि च ॥ ९६ ॥

निपातयन्ति ये तीर्थे ते प्रेता नात्रसंशयः। दानमानार्चनैर्नैव यैर्विप्रा भुवि तर्पिताः ॥९७॥

पितरोगुरवश्चैव प्रेतास्ते कर्मजाभृशम्। पतिंत्यक्त्वा च या नार्यो वसन्ति चेतरैर्जनैः ॥

प्रेतलोके चिरं स्थित्वा जायन्ते चान्त्ययोनिषु।

पतिं च वञ्चयित्वा या विषयेन्द्रियमोहिताः ॥ ९९ ॥

मिष्टंवादन्ति याःपापास्तास्तु प्रेताश्चिरंभुवि। विण्मूत्रभक्षका ये च ब्रह्मस्वभक्षणेरताः

अभक्ष्यभक्षकाश्चान्ये ते प्रेताश्चापुनर्भवाः।

बलाद्ये परवस्तूनि गृह्णन्ति न ददत्यपि ॥ १०१ ॥

अतिथीनवमन्यन्ते प्रेता निरयमास्थिताः। तस्मादामलकीं भुक्त्वा स्नात्वा तस्य द्रवेणच

सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सेवयामलकीं शिवाम् ॥

य इदं शृणुयान्नित्यं पुण्याख्यानमिदंशुभम्।

सर्वपापप्रपूतात्मा विष्णुलोके महीयते ॥ १०४ ॥

श्रावयेत्सततं लोके वैष्णवेषु विशेषतः। सयाति विष्णुसायुज्यमिति पौराणिकाविदुः

स्कन्द उवाच।

महीरुहफलं ज्ञातं प्रपूतंद्विविधं प्रभो। इदानीं श्रोतुमिच्छामि पत्रं पुष्पं सुमोक्षदम् ॥

ईश्वर उवाच ।

सर्वेभ्यःपत्रपुष्पेभ्यःसत्तमा तुलसीशिवा । सर्वकामप्रदा शुद्धा वैष्णवी विष्णुसुप्रिया
भुक्तिमुक्तिप्रदामुख्या सर्वलोकपरा शुभा । यामाश्रित्यगताःस्वर्गमक्षयं मुनिसत्तमाः ॥

हितार्थं सर्वलोकानां विष्णुना रोपिता पुरा ।
तुलसीपत्रपुष्पं च सर्वधर्मप्रतिष्ठितम् ॥ १०६ ॥

यथाविष्णोःप्रियालक्ष्मीर्यथाऽहं प्रियएव च । तथेयं तुलसीदेवी चतुर्थी नोपपद्यते ॥
तुलसीपत्रमेकं तु शतहेमफलप्रदम् । नान्यैः पुष्पैस्तथा पत्रैर्नान्यैर्गन्धानुलेपनैः ॥१११॥

तुष्यते दैत्यहा विष्णुस्तुलस्याश्च दलैर्विना ।
अनेन पूजितो येन हरिर्नित्यं पराशया ॥११२ ॥

तेन दत्तं हुतं ज्ञातं कृतं यज्ञव्रतादिकम् । जन्मजन्मनि भासित्वं सुखंभाग्यं यशःश्रियम्
कुलंशीलं कलत्रं च पुत्रंदुहितरं तथा । धनं राज्यमरोगत्वं ज्ञानंविज्ञानमेव च ॥११४॥
वेदवेदाङ्गशास्त्रं च पुराणागमसंहिताः । सर्वं करगतं मन्ये तुलस्याभ्यर्चनेहरेः ॥११५॥
यथागङ्गा पवित्राङ्गी सुरलोके विमोक्षदा । यथा भागीरथीपुण्या तथेयंतुलसी शिवा ॥
किं च गङ्गाजलेनैव किं च पुष्करसेवया । तुलसीदलमिश्रेण जलेनैव प्रमोद्यते॥११७॥

माधवःसम्मुखोयस्य जन्मजन्मसु धीमतः ।
तस्य श्रद्धा भवेच्छ्रुत्वा तुलस्या हरिमर्चितुम् ॥ ११८ ॥

यो मञ्जरीदलैरेव तुलस्या विष्णुमर्चयेत् । तस्य पुण्यफलंस्कन्द कथितुं नैवशक्यते ॥
तत्र केशवसान्निध्यं यत्रास्ति तुलसीवनम् । तत्र ब्रह्मा च कमला सर्वदेवगणैःसह ॥

तस्मात्तां संनिकृष्टे तु सदा देवीं प्रपूजयेत् ।
स्तोत्रमन्त्रादिकं यद्वा सर्वमानन्त्यमश्नुते ॥ १२१ ॥

ये च प्रेताश्च कूष्माण्डाःपिशाचा ब्रह्मराक्षसाः । भूतदैत्यादयस्तत्र पलायन्ते सदैव हि
अलक्ष्मीर्नाशिनीघूर्णा या डाकिन्यादिमातरः । सर्वाःसङ्कुचितायान्तिदृष्ट्वातुतुलसीदलम्
ब्रह्महत्यादयः पापव्याधयःपापसम्भवाः । कुमन्त्रिणा कृता ये च सर्वेनश्यन्ति तत्र वै
भूतले वापि ते येन हर्यर्थं तुलसीवनम् । कृतं क्रतुशतं तेन विधिवत्प्रियदक्षिणम्॥१२५

हरिलिङ्गेषु चान्येषु शालग्रामशिलासु च ।

तुलसीग्रहणं कृत्वा विष्णोःसायुज्यमाव्रजेत् ॥ १२६ ॥

नन्दन्तिपुरुषास्तस्य माधवार्थे क्षितौ तु यः । तुलसीं रोपयेद्धीरःसयाति माधवालयम्

पूजयित्वा हरिंदेवं निर्माल्यं तुलसीदलम् । धारयेद्यः स्वशीर्षे तु पापात्पूतोदिवं व्रजेत्

पूजने कीर्त्तने ध्याने रोपणे धारणे कलौ । तुलसी दहते पापं स्वर्गं मोक्षं ददाति च ॥

उपदेशं दिशेदस्याः स्वयमाचरते पुनः । स याति परमं स्थानं माधवस्य निकेतनम् ॥

हरेः प्रियकरं यच्च तन्मे प्रियतरं भवेत् । सर्वेषामपि देवानां देवीनां च समन्ततः ॥

श्राद्धेषु यज्ञकार्येषु पर्णमेकं षडानन । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तुलसीसेवनं कुरु ॥ १३२ ॥

तुलसीसेविता येन तेन सर्वं तु सेवितम् । गुरुं विप्रं देवतीर्थं तस्मात्सेवय षण्मुख ॥

शिखायां तुलसीं कृत्वा यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ।

दुष्कृतौघाद्विनिर्मुक्तः स्वर्गमेति निरामयम् ॥ १३४ ॥

राजसूयादिभिर्यज्ञैर्व्रतैश्च विविधैर्यमैः । या गतिः प्राप्यते धीरैस्तुलसीसेविनां भवेत् ॥

तुलसीदलेन चैकेन पूजयित्वा हरिं नरः । वैष्णवत्वमवाप्नोति किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः

न पिबेत्स पयो मातुस्तुलस्याः कोटिसङ्ख्यकैः ।

अर्चितः केशवो येन शाखामृदुलपल्लवैः ॥ १३७ ॥

भावयेत्पुरुषान्मर्त्यः शतशोऽथ सहस्रशः । पूजयित्वा हरिं नित्यं कोमलैस्तुलसीदलैः

प्रधानतो गुणास्तात तुलस्या गदिता मया । निखिलं पुरुकालेन गुणं वक्तुं न शक्नुमः

यस्त्विदंश्रृणुयान्नित्यमाख्यानंपुण्यसञ्चयम् । पूर्वजन्मकृतात्पापान्मुच्यतेजन्मबन्धनात्

सकृत्पठनमात्रेण वह्निष्टोमफलंलभेत् । न तस्य व्याधयः पुत्र मूर्खत्वं न कदाचन ॥

सर्वदा जयमाप्नोति न गच्छेत्स पराजयम् ।

लेखस्तिष्ठेद्गृहे यस्य तस्य लक्ष्मीः प्रवर्तते ॥ १४२ ॥

न चाधयो न च प्रेता न शोका नावमानना । न तिष्ठन्ति क्षणं तत्र यत्रेयं वर्तते लिपिः

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे तुलसीमाहात्म्यं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ।

———

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

तुलसीस्तोत्रवर्णनम् ।

द्विजा ऊचुः ।

तुलसीपुष्पमाहात्म्यं श्रुतं त्वत्तो हरेः शुभम् ।
तस्याः स्तोत्रं कृतं पुण्यं श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥ १ ॥

व्यास उवाच ।

पुरास्कन्दपुराणे च यन्मया कीर्तितं द्विजाः । कथयामि पुराणं च पुरतो मोक्षहेतवे ॥
शतानन्दमुनेःशिष्याः सर्वे ते संशितव्रताः । प्रणिपत्यगुरुं विप्राः पप्रच्छुःपुण्यतो हितम्

शिष्या ऊचुः ।

पूर्वं ब्रह्ममुखान्नाथ यच्छ्रुतं तुलसीस्तवम् । तद्वयं श्रोतुमिच्छामस्त्वत्तो ब्रह्मविदां वर

शतानन्द उवाच ।

नामोच्चारे कृते तस्याःप्रीणात्यसुरदर्पहा । पापानि विलयं यान्ति पुण्यं भवति चाक्षयम्
सा कथं तुलसी लोकैः पूज्यतेवन्द्यते न हि । दर्शनादेवयस्यास्तु दानं कोटिगवांभवेत्
धन्यास्ते मानवा लोके यद्गृहे विद्यते कलौ ।
शालग्रामशिलार्थं तु तुलसी प्रत्यहं क्षितौ ॥ ७ ॥
तुलसीं ये विचिन्वन्ति धन्यास्ते करपल्लवाः । केशवार्थं कलौ ये च रोपयन्तीह भूतले
किं करिष्यति संरुष्टो यमोऽपि सह किङ्करैः । तुलसीदलेन देवेशः पूजितो येन दुःखहा
तीर्थयात्रादिगमनैः फलैः सिध्यति किन्नरः ।
स्नाने दाने तथा ध्याने प्राशने केशवार्चने ॥ १० ॥
तुलसी दहते पापं कीर्तने रोपणे कलौ । तुलस्यमृतजन्मासि सदा त्वं केशवप्रिये ॥
केशवार्थं चिनोमि त्वां वरदा भव शोभने ।
त्वदङ्गसम्भवैर्नित्यं पूजयामि यथा हरिम् ॥ १२ ॥

तथा कुरु पवित्राङ्गि कलौ मलविनाशिनि । मन्त्रेणानेन यःकुर्याद्विचित्य तुलसीदलम्॥
पूजनं वासुदेवस्य लक्षकोटिगुणं भवेत् । प्रभावं तव देवेशि गायन्ति सुरसत्तमाः ॥
मुनयः सिद्धगन्धर्वाः पाताले नागराट् स्वयम् । नते प्रभावं जानन्ति देवताः केशवादृते
गुणानां परिमाणं तु कल्पकोटिशतैरपि । कृष्णानन्दात्समुद्भूता क्षीरोदमथनोद्यमे ॥

उत्तमाङ्गे पुरा येन तुलसी विष्णुना धृता ।
प्राप्यैतानि त्वया देवि विष्णोरङ्गानि सर्वशः ॥१७॥
पवित्रता त्वया प्राप्ता तुलसीं त्वां नमाम्यहम् ।
त्वदङ्गसम्भवैः पत्रैः पूजयामि यथा हरिम् ॥१८॥
तथा कुरुष्व मेऽविघ्नं यतो यामि परां गतिम् ।
रोपिता गोमतीतीरे स्वयं कृष्णेन पालिता ॥१९॥

जगद्धिताय तुलसी गोपीनां हितहेतवे । वृन्दावने विचरता सेविता विष्णुना स्वयम् ॥
गोकुलस्य विवृद्ध्यर्थंकंसस्य निधनाय च । वसिष्ठवचनात्पूर्वं रामेण सरयूतटे ॥२१॥

राक्षसानां वधार्थाय रोपिता त्वं जगत्प्रिये ।
रोपिता तपसो बृद्ध्यै तुलसीं त्वां नमाम्यहम् ॥२२॥

वियोगे वासुदेवस्य ध्यात्वा त्वां जनकात्मजा । अशोकवनमध्ये तु प्रियेण सह सङ्गता

शङ्करार्थं पुरा देवि पार्वत्या त्वं हिमालये ।
रोपिता तपसो बृद्ध्यै तुलसीं त्वां नमाम्यहम् ॥ २४ ॥

सर्वाभिर्देवपत्नीभिः किन्नरैश्चापि नन्दने । दुःस्वप्ननाशनार्थाय सेविता त्वं नमोऽस्तुते

धर्मारण्ये गयायां च सेविता पितृभिःस्वयम् ।
सेविता तुलसी पुण्या आत्मनो हितमिच्छता ॥२६॥

रोपिता रामचन्द्रेण सेविता लक्ष्मणेन च । पालिता सीतया भक्त्या तुलसीदण्डके वने
त्रैलोक्यव्यापिनी गङ्गा यथा शास्त्रेषु गीयते । तथैव तुलसीदेवी दृश्यते सचराचरे ॥
ऋष्यमूके च वसता कपिराजेन सेविता । तुलसी बालिनाशाय तारासङ्गमहेतवे ॥
प्रणम्य तुलसीं देवीं सागरोत्क्रमणं कृतम् । कृतकार्यः प्रहृष्टश्च हनूमान्पुनरागतः ॥

तुलसीग्रहणं कृत्वा विमुक्तो याति पातकैः । अथवा मुनिशार्दूला ब्रह्महत्यां व्यपोहति

तुलसीपत्रगलितं यस्तोयं शिरसा वहेत् ।
गङ्गास्नानमवाप्नोति दशधेनुफलप्रदम् ॥ ३२ ॥

प्रसीद देवि देवेशि प्रसीद हरिवल्लभे । क्षीरोदमथनोद्भूते तुलसि त्वां नमाम्यहम् ॥

द्वादश्यां जागरे रात्रौ यः पठेत्तुलसीस्तवम् । द्वात्रिंशदपराधांश्च क्षमते तस्य केशवः ॥

यत्पापं यौवने बाल्ये कौमारे वार्द्धके कृतम् ।
तत्सर्वं विलयं याति तुलसीस्तवपाठतः ॥ ३५ ॥

प्रीतिमायाति देवेशस्तुष्टो लक्ष्मीं प्रयच्छति ।
कुरुते शत्रुनाशं च सुखं विद्यां प्रयच्छति ॥ ३६ ॥

तुलसी नाममात्रेण देवा यच्छन्ति वाञ्छितम् ।
गर्ह्याणामपि देवेशो मुक्तिं यच्छति देहिनाम् ॥ ३७ ॥

तुलसीस्तवसन्तुष्टस्सुखं वृद्धिं ददाति च । उद्धृतं हेलया विद्धि पापं यमपथे स्थितम् ॥

यस्मिन्गृहे च लिखितो विद्यते तुलसीस्तवः ।
नाशुभं विद्यते तस्य शुभमाप्नोति निश्चितम् ॥ ३९ ॥

सर्वं च मङ्गलं तस्य नास्ति किञ्चिदमङ्गलम् ।
सुभिक्षं सर्वदा तस्य धनं धान्यं च पुष्कलम् ॥ ४० ॥

निश्चला केशवे भक्तिर्नवियोगश्च वैष्णवैः । जीवति व्याधिनिर्मुक्तो नाधर्मे जायते मतिः

द्वादश्यां जागरे रात्रौ यः पठेत्तुलसीस्तवम् । तीर्थकोटिसहस्रैस्तु यत्फलं लक्षकोटिभिः

तत्फलं समवाप्नोति पठित्वा तुलसीस्तवम् ॥४३॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे तुलसीस्तवमाहात्म्यं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥

———

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

गङ्गामाहात्म्यकथनम् ।

द्विजा ऊचुः

मज्जनादखिलं पापं क्षयं याति सुनिश्चितम् । महापातकमन्यच्च तदादेशं वदस्व नः ॥१॥

पापात्पूतोऽक्षयं नाकमश्नुते दिवि शक्रवत् । गुरयोनेर्न हानिः स्यादुपदेशं वदस्व नः

अत्र भोग्यं परं सर्वं मृते स्वर्गे सुरोत्तमः । कलिपापहतानां च स्वर्गसोपानमुच्यते ॥

व्यास उवाच

गतिं चिन्तयतां विप्रास्तूर्णं सामान्यजन्मनाम् ।
स्त्रीपुंसामीक्षणाद्यस्माद् गङ्गा पापं व्यपोहति ॥४॥

गङ्गेति स्मरणादेव क्षयं याति च पातकम् । कीर्तनादतिपापानि दर्शनाद्गुरुकल्मषम् ॥

स्नानात्पानाच्च जाह्नव्यां पितॄणां तर्पणात्तथा ।
महापातकवृन्दानि क्षयं यान्ति दिने दिने ॥६॥

अग्निना दह्यते तूलं तृणं शुष्कं क्षणाद्यथा । तथा गङ्गाजलस्पर्शात्पुंसां पापं दहेत्क्षणात्

सम्प्राप्नोत्यक्षयं स्वर्गं गङ्गास्नानेन केशवम् ।
यशो राज्यं लभेत्पुण्यं स्वर्गमन्ते परां गतिम् ॥८॥

पितॄनुद्दिश्य गङ्गायां यस्तु पिण्डं प्रयच्छति ।
विधिना वाक्यपूर्वेण तस्य पुण्यफलं शृणु ॥६॥

अन्नैकेन तु साहस्रं वर्षं पूज्यः सुरालये । तिलेन द्विगुणं विद्धि तथा मेध्यफलेन च ॥

गव्येन विधिना विप्राः स्वर्गस्यान्तो न विद्यते ।
एवं पिण्डप्रदानेन नित्यं क्रतुशतं भवेत् ॥११॥

पितरो निरयस्था ये धन्यास्ते मर्त्यवासिनः । धनपुत्रयुतारोग्यंसुखसम्मानपूजिताः ॥

रसातलगता येच ये च कीटा महीतले । स्थावरे पक्षिसङ्घादौतेमर्त्या धनिनोनृपाः ॥

तत्तत्पुत्रैश्च पौत्रैश्च गोत्रैर्दौहित्रकैस्तथा । जामातृभागिनेयैश्च सुहृन्मित्रैः प्रियाप्रियैः ॥
प्रदीयते जलं पिण्डं यथोपकरणान्वितम् । गङ्गातोयेषु तीरेषु तेषां स्वर्गोऽक्षयोभवेत्॥

पिण्डादूर्ध्वं स्थिता ये च पितरो मातृगोत्रजाः ।
भवन्ति सुखिनः सर्वे मर्त्याश्शतसहस्रशः ॥१६॥
स्वर्गे तस्य स्थिताः सत्त्वा अधःस्था मध्यवासिनः ।
नित्यं वाञ्छन्ति सद्गङ्गां गच्छन्तु सुरनिम्नगाम् ॥१७॥

एको गच्छति गङ्गां यः पूयन्ते तस्य पूरुषाः । एतदेव महापुण्यं तरते तारयत्यपि ॥
गङ्गाकृत्स्नगुणं वक्तुं न शक्तश्चतुराननः । अतः किञ्चिद्वदाम्यत्र भागीरथ्या द्विजा गुणम्

मुनयः सिद्धगन्धर्वा ये चान्ये सुरसत्तमाः ।
गङ्गातीरे तपस्तप्त्वा स्वर्गलोकेऽच्युताभवन् ॥ २० ॥

दिव्येन वपुषा सर्वे कामगेन रथेन च । अद्यापि न निवर्तन्ते रत्नपूर्णाक्षयेषु वै ॥ २१ ॥

प्रासादा यत्र सौवर्णास्सर्वलोकोर्ध्वगाश्शिवाः ।
इष्टद्रव्यैः सुसम्पूर्णाः स्त्रियो यत्र मनोरमाः ॥२२॥

पारिजातसमाः पुष्पवृक्षाः कल्पद्रुमोपमाः । गङ्गातीरे तपस्तप्त्वा तत्रैश्वर्यं लभन्ति हि
तपोभिर्बहुभिर्यज्ञैर्व्रतैर्नानाविधैस्तथा । पुरुदानैर्गतिर्या च गङ्गां संसेवतां च सा ॥
जारजं पतितं दुष्टमन्त्यजं गुरुघातिनम् । सर्वद्रोहेण संयुक्तं सर्वपातकसंयुतम् ॥२५॥

त्यजन्ति पितरं पुत्राः प्रियं पत्न्यः सुहृद्गणाः ।
अन्ये च बान्धवाः सर्वे गङ्गा तु न परित्यजेत् ॥ २६ ॥
यथा माता स्वयं जन्म मलशौचं च कारयेत् ।
क्रोडीकृत्य तथा तेषां गङ्गाप्रक्षालयेन्मलम् ॥२७॥

भवन्ति ते सुविख्याता भोग्यालङ्कारपूजिताः । दर्शने क्रियते गङ्गा सकृद्भक्त्या नरैस्तुयैः

तेषां कुलानां लक्षं तु भवात्तारयते शिवा ।
स्मृतार्तिहर्त्री यैर्ध्याता संस्तुता साधुमोदिता ॥२९॥

गङ्गा तारयते नृणामुभौ वंशौ भवार्णवात् । सङ्क्रान्तिषु व्यतीपाते ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः

पुष्ये स्नात्वा तु गङ्गायां कुलकोटिं समुद्धरेत् ।
शुक्लपक्षे दिवा मर्त्या गङ्गायामुत्तरायणे ॥३१॥
धन्या देहं विमुञ्चन्ति हृदिस्थे च जनार्दने । अनेन विधिना यस्तु भागीरथ्या जले शुभे
प्राणांस्त्यक्त्वा व्रजेत्स्वर्गं पुनरावृत्तिवर्जितम् ।
यो गङ्गानुगतो नित्यं सर्वदेवानुगो हि सः ॥३३॥
सर्वदेवमयो विष्णुर्गङ्गा विष्णुमयी यतः । गङ्गायां पिण्डदानेन पितॄणां वै तिलोदकैः
नरकस्था दिवं यान्ति स्वर्गस्था मोक्षमाप्नुयुः । परदारपरद्रव्यबाधाद्रोहपरस्य च ॥
गतिर्मनुष्यमात्रस्य गङ्गैव परमा गतिः । वेदशास्त्रविहीनस्य गुरुनिन्दापरस्य च ॥३६॥
समयाचारहीनस्य नास्ति गङ्गा समा गतिः ।
किं यज्ञैर्बहुवित्ताढ्यैः किं तपोभिः सुदुष्करैः ॥३७॥
स्वर्गमोक्षप्रदा गङ्गा सुखसौभाग्यपूजिता । नियमैः परमैर्नित्यं किं योगैश्चित्तरोधकैः ॥
भुक्तिमुक्तिप्रदा गङ्गा सुखमोक्षाग्रतः स्थिता । अनेकजन्मसङ्घातपापं पुंसां विनश्यति ॥
स्नानमात्रेण गङ्गायां सद्यः स्यात्पुण्यभाङ् नरः ।
प्रभासे गोसहस्रस्य राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥४०॥
लभते यत्फलं दाने गङ्गास्नानाद्दिने दिने । दृष्ट्वा तु हरते पापं स्पृष्ट्वा तु लभते दिवम्
प्रसङ्गादपि सा गङ्गा मोक्षदा त्ववगाहिता ।
सर्वेन्द्रियाणां चापल्यं वासनाशक्तिसम्भवम् ॥४२॥
निर्घृणत्वं ततो गङ्गा दर्शनात्प्रविनश्यति । परद्रव्याभिकाङ्क्षित्वं परदाराभिलाषिता ॥
परधर्मे रुचिश्चैव दर्शनादेव नश्यति । यदृच्छालाभसन्तोषस्स्वधर्मेषु प्रवर्तते ॥४४॥
सर्वभूतसमत्वं च गङ्गायां मज्जनाद्भवेत् । यस्तु गङ्गां समाश्रित्य सुखं तिष्ठति मानवः ॥
जीवन्मुक्तस्स एवेह सर्वेषामुत्तमोत्तमः ।
गङ्गां संश्रित्य यस्तिष्ठेत्तस्य कार्यं न विद्यते ॥ ४६ ॥
कृतकृत्यस्सवै मुक्तो जीवन्मुक्तश्च मानवः । यज्ञो दानं तपो जप्यं श्राद्धं च सुरपूजनम् ॥
गङ्गायां तु कृतं नित्यं कोटिकोटि गुणं भवेत् ।

अन्यस्थाने कृतं पापं गङ्गातीरे विनश्यति ॥ ४८ ॥
गङ्गातीरे कृतं पापं गङ्गास्नानेन नश्यति । आत्मनो जन्मनक्षत्रे जाह्नवीसङ्गते दिने ॥
नरः स्नात्वा तु गङ्गायां स्वकुलं च समुद्धरेत् ।
आदरेण यथा स्तौति धनवन्तं सदा नरः ॥ ५० ॥
सकृद्गङ्गां तथा स्तुत्वा भवेत्स्वर्गस्य भाजनम् ।
अश्रद्धयापि गङ्गाया योऽसौ नामानुकीर्तनम् ॥ ५१ ॥
करोति पुण्यवाहिन्यास्स वै स्वर्गस्य भाजनम् ।
क्षितौ भावयतो मर्त्यान्नागांस्तारयतेऽप्यधः ॥ ५२ ॥
दिवि तारयते देवान्गङ्गा त्रिपथगा स्मृता ।
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि कामतोऽकामतोऽपि वा ॥५३॥
गङ्गायांच मृतो मर्त्यःस्वर्गं मोक्षंचविन्दति । या गतिर्योगयुक्तस्य सत्वस्थस्यमनीषिणः
सा गतिस्त्यजतः प्राणान्गङ्गायां तु शरीरिणः ।
चान्द्रायणसहस्राणि यश्चरेत्कायशोधनम् ॥ ५५ ॥
पानं कुर्याद्यथेच्छं च गङ्गाम्भःस विशिष्यते । तावत्प्रभावस्तीर्थानां देवानां तु विशेषतः
तावत्प्रभावो वेदानां यावन्नाप्नोति जाह्नवीम् ।
तिस्रःकोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत् ॥ ५७ ॥
दिविभुव्यन्तरिक्षे च तानि ते सन्तिजाह्नवि । विष्णुपादाब्जसम्भूते गङ्गे त्रिपथगामिनि
धर्मद्रवेति विख्याते पापं मे हर जाह्नवि । विष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुपूजिता ॥
त्राहि मामेनसस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात् । श्रद्धया धर्मसम्पूर्णे श्रीमतारजसा च ते
अमृतेन महादेवि भागीरथि पुनीहि माम् ।
त्रिभिःश्लोकवरैरेभिर्यः स्नायाज्जाह्नवीजले ॥ ६१ ॥
जन्मकोटिकृतात्पापान्मुच्यते नात्रसंशयः। मूलमन्त्रं प्रवक्ष्यामि जाह्नव्या हरिभाषितम्
सकृज्जपान्नरः पूतो विष्णुदेहे प्रतिष्ठति ॥ ६३ ॥
मन्त्रश्चायम् । ॐ नमो गङ्गायै विश्वरूपिण्यै नारायण्यै नमोनमः ॥ ६४ ॥

जाह्नवीतीरसम्भूतां मृदं मूर्ध्ना बिभर्ति यः । सर्वपापविनिर्मुक्तो गङ्गास्नानं विना नरः

गङ्गाजलोर्मिनिर्धूतपवनं स्पृशते यदि । स पूतः कल्मषाद्घोरात्स्वर्गं चाक्षयमश्नुते ॥

यावदस्थिमनुष्यस्य गङ्गातोये प्रतिष्ठति ।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ ६७ ॥

पित्रोर्बन्धुजनानां च अनाथानां गुरोरपि । गङ्गायामस्थिपातेन नरः स्वर्गान्न हीयते ॥

गङ्गां प्रतिवहेद्यस्तु पितॄणामस्थिखण्डकम् । पदेपदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः

धन्या जानपदा ये च पशवः पक्षिकीटकाः ।
स्थावरा जङ्गमाश्चान्ये गङ्गातीरसमाश्रिताः ॥ ७० ॥

क्रोशान्तरमृता ये च जाह्नव्या द्विजसत्तमाः । मानवा देवतास्सन्ति इतरे मानवा भुवि

गङ्गास्नानाय सङ्गच्छन्पथि संम्रियतेयदि । स च स्वर्गमवाप्नोति गङ्गास्नानफलंलभेत्

गङ्गाजले प्रयास्यन्ति तं जीवाः पथि ये मृताः ।
कीटाः पतङ्गाश्शलभाः पादाघातेन गच्छताम् ॥ ७३ ॥

ये वदन्ति समुद्देशं गङ्गां प्रतिजनं द्विजाः । ते च यान्ति परं पुण्यं गङ्गास्नानफलं नराः

जाह्नवीं ये च निन्दन्ति पाषण्डैर्हतचेतसः । ते यान्ति नरकं घोरं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥

दुःस्थो वापि स्मरन्नित्यं गङ्गेति परिकीर्तयन् । पठन्स्वर्गमवाप्नोति किमन्यैर्बहुभाषितैः

गङ्गागङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानांशतैरपि ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ७७ ॥

अन्धाश्च पङ्गवस्ते च वृथाभवसमुद्भवाः । गर्भपाताद्विपद्यन्ते ये गङ्गां न गता नराः ॥

न कीर्तयन्ति ये गङ्गां जलतुल्या नराधमाः । परान्नोपदिशन्तिस्म वातूलाश्चित्तविभ्रमाः

न पठन्ति जना ये च तेषां शास्त्रं विनिष्फलम् ।
गङ्गापुण्यफलं विप्राः कुधियः पतिताधमाः ॥ ८० ॥

पाठयन्ति जना ये च श्रद्धया निपठन्ति च ।
गच्छन्ति ते दिवं धीरास्तारयन्ति पितॄन्गुरून् ॥ ८१ ॥

पाथेयकंगच्छतां यो वसु शक्त्याप्रयच्छति । भागीरथ्या लभेत्स्नानं यः परान्नेनगच्छति

कर्तुः स्नानफलं विद्याद्द्विगुणं प्रेरकस्य च । इच्छयानिच्छया चापि प्रेरणेनान्यसेवया

जाह्नवीं यो गतः पुण्यां स गच्छेन्निर्जरालयम् ॥ ८४ ॥

द्विजा ऊचुः ।

गङ्गायाः कीर्तनं व्यास श्रुतं त्वत्तो विनिर्मलम् ।

गङ्गा कस्मात्किमाकारा कुतः सा ह्यतिपावनी ॥ ८५ ॥

व्यास उवाच ।

शृणुध्वंकथयाम्यद्य कथां पुण्यांपुरातनीम् । यां श्रुत्वामोक्षमार्गं च प्राप्नोतिनरसत्तमः

ब्रह्मलोकं पुरा गत्वा नारदो मुनिपुङ्गवः । नत्वा विधिं च पप्रच्छ पूतं त्रैलोक्यपावनम्

किं सृष्टं च त्वया तात संमतं शम्भुकृष्णयोः ।

सर्वलोकहितार्थाय भुवः स्थाने समीहितम् ॥ ८८ ॥

देवी वा देवता का वा सर्वासामुत्तमोत्तमा । यां समासाद्य देवाश्च दैत्यमानुषपन्नगाः

अण्डजाः स्वेदजा वृक्षा ये चान्य उद्भिज्जादयः ।

सर्वे यान्ति शिवं ब्रह्मन्समग्रं विभवं ध्रुवम् ॥ ९० ॥

ब्रह्मोवाच ।

सृजता च पुरा प्रोक्ता माया प्रकृतिरूपिणी ।

आद्या भवस्व लोकानां त्वत्तो भवं सृजाम्यहम् ॥ ९१ ॥

एतच्छ्रुत्वा परा सा च सप्तधा चाभवत्तदा ।

गायत्री वाक्चस्वर्लक्ष्मीस्सर्वसस्यचसुप्रदा ॥ ९२ ॥

ज्ञानविद्या उमा देवी शक्तिबीजा तपस्विनी । वर्णिका धर्मद्रवा च एतास्सप्तप्रकीर्तिताः

गायत्रीप्रभवा वेदा वेदात्सर्वं स्थितं जगत् ।

स्वस्ति स्वाहा स्वधा दीक्षा एता गायत्रिजाः स्मृताः ॥ ९४ ॥

उच्चारयेत्सदायज्ञं गायत्रीं मातृकादिभिः । क्रतौ देवाः स्वधां प्राप्य भवेयुरजरामराः

ततस्सुधारसं देवा मुमुचुर्धरणीतले । अथ सस्यवती पृथ्वी औषधीनां परा शुभा ॥

फलमूलैरसैर्भक्ष्यैर्जनाः सुस्थतराभवन् । भारती सर्वलोकानां चानने मानसे स्थिता ॥

तथैव सर्वशास्त्रेषु धर्मोद्देशं करोति सा । विज्ञानं कलहं शोकं मोहामोहं शिवाशिवम्
तया विना जगत्सर्वं यात्यतत्त्वमिति स्मृतम् ।
कमलासम्भवश्चैव वस्त्रभूषणसञ्चयः ॥ ९९ ॥
सुखं राज्यं त्रिलोके तु ततःसा हरिवल्लभा । उमया हेतुना शम्भोर्ज्ञानं लोकेषु सन्ततम्
ज्ञानमाता च सा ज्ञेया शम्भोरर्धाङ्गवासिनी ।
वर्णिका शक्तिरत्युग्रा सर्वलोकप्रमोहिनी ॥ १०१ ॥
सर्वलोकेषु लोकानां स्थितिसंहारकारिणी ।
देव्या च निहतौ पूर्वमसुरौ मधुकैटभौ ॥ १०२ ॥
रुरुश्चापि हतो घोरः सर्वलोकपरिश्रुतः । सर्वदेवैकजेतारं सा जघ्ने महिषासुरम् ॥
निहता लीलयादेव्या येऽसुरा दैत्यपुङ्गवाः । एवं बलानि दैत्यानां निहत्य सर्वदा तया
पालितं मोदितं चैव कृत्स्नमेतज्जगत्त्रयम् । धर्मद्रवस्वरूपा च सर्वधर्मप्रतिष्ठिता ॥१०५
महतीं तां समालोक्य मया कमण्डलौ धृता ।
विष्णुपादाब्जसम्भूता शम्भुना शिरसा धृता ॥ १०६ ॥
अस्माभिश्चत्रिभिर्युक्ता ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः । धर्मद्रवा परिख्याता जलरूपा कमण्डलौ ॥
बलियज्ञेषु सम्भूता विष्णुना प्रभविष्णुना । छद्मना छलितः पूर्वं बलिर्बलवतांवरः ॥
ततः पादद्वयेनैव क्रान्तं सर्वं महीतलम् । नभः पादश्च ब्रह्माण्डं भित्त्वा मम पुरः स्थितः
मया सम्पूजितः पादः कमण्डलुजलेन वै ।
प्रक्षाल्यैवार्चितात्पादाद्धेमकूटेऽपतज्जलम् ॥ ११० ॥
तत्कूटाच्छङ्करं प्राप्य भ्रमते सा जटास्थिता । ततो भगीरथेनैव समाराध्य शिवं भुवि॥
आनीयाराधितो नित्यं तपसा गजपुङ्गवः ।
तेन भित्त्वा नगं वीर्यात्त्रिभिर्दन्तैः कृतं बिलम् ॥ ११२ ॥
ततस्त्रिबिलगा यस्मात्त्रिस्रोता लोकविश्रुता । हरिब्रह्महरयोगात्पूता लोकस्य पावनी ॥
समासाद्य च तां देवीं सर्वधर्मफलं लभेत् । पाठयज्ञपरैः सर्वैर्मन्त्रहोमसुरार्चनैः ॥११४॥
सा गतिर्नभवेज्जन्तोर्गङ्गासंसेवया च या । धर्मस्य साधनोपायो ह्यतः परो न विद्यते ॥

त्रैलोक्यपुण्यसंयोगात्तस्मात्तां व्रज नारद ॥ ११६ ॥

गङ्गातोयास्थिसंयोगात्सुतास्ते सगरस्य च । स्वर्गताः पितृभिश्चैव स्वपूर्वापरजैः सह

व्यास उवाच

ततो ब्रह्ममुखाच्छ्रुत्वा नारदो मुनिपुङ्गवः । गङ्गाद्वारे तपः कृत्वा ब्रह्मणासदृशोऽभवत्

सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा । गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे॥११९

त्रिरात्रेणैकरात्रेण नरो याति परां गतिम् ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सद्यो मुक्तिं विचिन्तयेत् ॥ १२० ॥

ततो गच्छत धर्मज्ञाः शिवां भागीरथीमिह । अचिरेणैव कालेन स्वर्गं मोक्षं प्रगच्छथ॥

विशेषात्कलिकाले च गङ्गा मोक्षप्रदा नृणाम् ।

कृच्छ्राच्च क्षीणसत्त्वानामनन्तः पुण्यसम्भवः ॥ १२२ ॥

पुलस्त्य उवाच

ततस्ते ब्राह्मणा हृष्टाः श्रुत्वा व्यासाद्गिरं शुभाम् ।

गङ्गायां तु तपस्तप्त्वा मोक्षमार्गं ययुस्तदा ॥ १२३ ॥

य इदं शृणुयान्मर्त्यः पुण्याख्यानमनुत्तमम् । सर्वं तरति दुःखौघं गङ्गास्नानफलं लभेत्

सकृदुच्चारिते चैव सर्वयज्ञफलं लभेत् । दानं जप्यं तथा ध्यानं स्तोत्रं मन्त्रसुरार्चनम्

तत्रैव कारयेद्यस्तु स चानन्तफलं लभेत् । तस्मात्तत्रैव कर्त्तव्यं जपहोमादिकं नरैः ॥

अनन्तं च फलं प्रोक्तं जन्मजन्मसु लभ्यते ॥ १२७ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे गङ्गामाहात्म्यं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

गणपतेरग्रपूज्यतावर्णनम् ।

पुलस्त्य उवाच

एतस्मिन्नन्तरे पूर्वं व्यासशिष्यो महामुनिः । नमस्कृत्य गुरुं भीष्म सञ्जयः परिपृच्छति

सञ्जय उवाच

देवानां पूजनोपायं क्रमं ब्रूहि सुनिश्चितम् ।
अग्रे पूज्यतमः कोऽसौ को मध्ये नित्यपूजने ॥ २ ॥
अन्ते च पूजा कस्यैव कस्य को वा प्रभावकः ।
किं वा कं च फलं ब्रह्मन्पूजयित्वा लभेन्नरः ॥ ३ ॥

व्यास उवाच

गणेशं पूजयेदग्रे त्वविघ्नार्थं परे त्विह । विनायकत्वमाप्नोति यथा गौरीसुतो हि सः
पार्वत्यजनयत्पूर्वं सुतौ महेश्वरादिमौ । सर्वलोकधरौ शूरौ देवौ स्कन्दगणाधिपौ ॥
तौ दृष्ट्वा तु सुरास्सर्वे श्रद्धया परयान्विताः ।
सुधयोत्पादितं दिव्यं तस्यै प्रादुस्तु मोदकम् ॥ ६ ॥
दृष्ट्वा तु मोदकं ताभ्यामर्थिता जननी तदा । ततस्तु विस्मिता देवी सुतावेवमभाषत

पार्वत्युवाच

इदं तु मोदकं पुत्रौ देवैर्दत्तं मुदान्वितैः । महाबुद्धीति विख्यातं सुधया परिनिर्मितम् ॥
गुणं चास्य प्रवक्ष्यामि शृणु तं तु समाहितौ ।
अस्यैवाघ्राणमात्रेण अमरत्वं लभेद् ध्रुवम् ॥ ९ ॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः सर्वशस्त्रास्त्रकोविदः । निपुणः सर्वतन्त्रेषु लेखकश्चित्रकृत्सुधीः ॥
ज्ञानविज्ञानतत्त्वज्ञः सर्वज्ञो नात्र संशयः । पुत्रौ धर्मादधिकतां प्राप्य सिद्धिशतं व्रजेत्
यस्तस्य वै प्रदास्यामि पितुस्ते सम्मतं त्विदम् ॥ १२ ॥

व्यास उवाच

श्रुत्वा मातृमुखादेवं वचः परमकोविदः । स्कन्दस्तीर्थं ययौ सद्यः सर्वं त्रिभुवनस्थितम्
बर्हिणं स्वं समारुह्य त्वभिषेकः कृतः क्षणात् ।
पितरौ प्रदक्षिणं कृत्वा लम्बोदरधरस्सुधीः ॥ १४ ॥
तत एव मुदा युक्तः पित्रोरेवाग्रतः स्थितः । परतश्च तथा स्कन्दो मे देहीति ब्रुवन्स्थितः
ततस्तु तौ समीक्ष्याथ पार्वती विस्मिताब्रवीत् ॥ १६ ॥

पार्वत्युवाच

सर्वतीर्थाभिषेकैस्तु सर्वदेवैर्नतैस्तथा । सर्वयज्ञव्रतैर्मन्त्रैर्योगैरन्यैर्यमैस्तथा ॥ १७ ॥

पित्रोरर्चापरस्यैव कलां नार्हति षोडशीम् ।

तस्मात्सुतशतादेषोऽधिकः शतगुणैरपि ॥ १८ ॥

अतो ददामि हेरम्बे मोदकं देवनिर्मितम् । अस्यैव कारणादस्य अग्रे पूजामखेषु च ॥

वेदशास्त्रस्तवादौ च नित्यं पूजाविधासु च ॥ १९ ॥

पार्वत्या सह भूतेशो ददौ तस्मै वरं महत् ॥ २० ॥

महादेव उवाच

अस्यैव पूजनादग्रे देवास्तुष्टा भवन्तु च ॥ २१ ॥

सर्वासामपि देवानां पितॄणां च समन्ततः । तोषो भवतु नित्यं च पूजितेऽग्रे गणेश्वरे॥

व्यास उवाच

ततः सर्वेषु यज्ञेषु पूजयेद्गणपं द्विजः । कोटिकोटिगुणं तेषु देवदेवीवचो यथा ॥

दत्वा सर्वगुणं पुण्यं देवदेव्या तथा मुदा । कृतं गणाधिपत्यं च सर्वदेवाग्रतस्तदा ॥

तस्मात्प्राज्येषु यज्ञेषु स्तोत्रेषु नित्यपूजने ।

गणेशं पूजयित्वा तु सर्वसिद्धिं लभेन्नरः ॥ २५ ॥

एवं ज्ञात्वा तु देवैस्तु दयितप्राप्तिकाम्यया ।

पूजितश्चाथ सर्वैस्तु स्वर्गमोक्षार्थतो ध्रुवम् ॥ २६ ॥

नक्ताहारश्चतुर्थ्यां तु पूजयित्वा गणाधिपम् ।

लिङ्गे वा प्रतिमा चित्रे देवः पूज्यो भवेद्यदि ॥ २७ ॥

गणाधिप नमस्तुभ्यं सर्वविघ्नप्रशान्तिद ।

उमानन्दप्रद प्राज्ञ त्राहि मां भवसागरात् ॥ २८ ॥

हरानन्दकर ध्यानज्ञानविज्ञानद प्रभो । विघ्नराज नमस्तुभ्यं प्रसन्नो भव सर्वदा ॥२९॥

कृतोपवासो गणपं पूजयेद्यो नरो मुदा । सर्वपापविनिर्मुक्तः सुरलोके महीयते ॥ ३० ॥

स्तोत्रं तस्य प्रवक्ष्यामि नाम द्वादशकं शुभम् ।

ओं नमो गणपतये मन्त्र एष उदाहृतः ॥ ३१ ॥

गणपतिर्विघ्नराजो लम्बतुण्डो गजाननः । द्वैमातुरश्च हेरम्ब एकदन्तो गणाधिपः ॥ ३२

विनायकश्चारुकर्णः पशुपालो भवात्मजः ।

द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ॥ ३३ ॥

विश्वं तस्य भवेद्वश्यं न च विघ्नं भवेत्क्वचित् ।

महाप्रेताश्शमं यान्ति पीड्यते व्याधिभिर्न च ॥ ३४ ॥

सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो ह्यक्षयं स्वर्गमश्नुते ॥ ३५ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे गणपतिस्तोत्रं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमोऽध्यायः

गणपतेरन्यत्स्तोत्रवर्णनम् ।

व्यास उवाच

पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि स्तोत्रं गणाधिपस्य च । सर्वसिद्धिकरं पूतं सर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥१

एकदन्तं महाकायं तप्तकाञ्चनसन्निभम् ।

लम्बोदरं विशालाक्षं वन्देऽहं गणनायकम् ॥ २ ॥

मुञ्जकृष्णाजिनधरं नागयज्ञोपवीतकम् ।

बालेन्दुकलिकामौलिं वन्देऽहं गणनायकम् ॥ ३ ॥

सर्वविघ्नहरं देवं सर्वविघ्नविवर्जितम् । मूषकोत्तममारुह्य देवासुरमहाहवे ॥

योद्धुकामं महाबाहुं वन्देऽहं गणनायकम् ॥ ४ ॥

अम्बिकाहृदयानन्दं मातृकापरिवेष्टितम् । भक्तिप्रियं मदोन्मत्तं वन्देऽहं गणनायकम् ॥

चित्ररत्नविचित्राङ्गं चित्रमालाविभूषणम् ।

कामरूपधरं देवं वन्देऽहं गणनायकम् ॥ ६ ॥

गजवक्त्रं सुरश्रेष्ठं चारुकर्णविभूषितम् । पाशाङ्कुशधरं देवं वन्देऽहं गणनायकम् ॥ ७ ॥

यक्षकिन्नरगन्धर्वैः सिद्धविद्याधरैस्सदा ।
स्तूयमानं महादेवं वन्देऽहं गणनायकम् ॥ ८ ॥
गणाष्टकमिदं पुण्यं भक्तितो यः पठेन्नरः । सर्वसिद्धिमवाप्नोति रुद्रलोके महीयते ॥९॥
न निःस्वतां तथाभ्येति सप्तजन्मसु मानवः । य इदं पठते नित्यं महाराजो भवेन्नरः ॥
वश्यं करोति त्रैलोक्यं पठनाच्छ्रवणादपि ।
स्तोत्रं परं महापुण्यं गणपस्य महात्मनः ॥ ११ ॥
इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे गणपतिस्तोत्रं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

नान्दीमुखादिषु प्रथमं गणेशपूजनवर्णनम् ।

व्यास उवाच

नान्दीमुखेषु सर्वेषु पूजयेद्यो गणाधिपम् । तस्य सर्वो भवेद्वश्यः पुण्यं भवति चाक्षयम् ॥
गणानांत्वेति मन्त्रेण सर्वयज्ञघटेषु च । सर्वसिद्धिमवाप्नोति स्वर्गं मोक्षं लभेन्नरः ॥
मृण्मये प्रतिमायां च चित्रे चाथ दृषन्मये । द्रुमदारुणि पात्रे च हेरम्बं लेखयेद् बुधः ॥
अन्यस्मिन्नपि देशेतु सततं दृष्टिगोचरे । स्थापयित्वा तु हेरम्बं शक्त्या यः पूजयेद् बुधः
तस्य कार्याणि सिद्ध्यन्ति दयितानि समन्ततः ।
न विघ्नं जायते किंचित्त्रैलोक्यं वशमानयेत् ॥ ५ ॥
विद्यार्थी लभते विद्यां वेदशास्त्रसमुद्भवाम् ।
अन्यां च शिल्पविद्यां च विजयां स्वर्गदायिनीम् ॥ ६ ॥
धनार्थी विपुलं वित्तं कन्यां साध्वीं मनोरमाम् ।
ऐश्वर्यं धर्मसाध्यं च तनयं कुलमोक्षदम् ॥ ७ ॥
न रोगैः पीड्यते कश्चिन्न ग्रहैः प्रेतयोनिभिः । शृङ्गिभिर्नापि रक्षोभिर्विद्युद्भिर्वनतस्करैः

न राजा कुप्यति गृहे न च मारी प्रवर्तते ।
न दौर्भिक्ष्यं न दौर्बल्यं पूजयित्वा विनायकम् ॥ ६ ॥
अभिप्रेतार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यस्सुरैरपि ।
सर्वविघ्नच्छिदे तस्मै गणाधिपतये नमः ॥ १० ॥

मन्त्रश्चायम् ॥ ॐ नमो गणपतये ॥

नारायणप्रियैः पुष्पैरन्यैश्चापि सुगन्धिभिः । मोदकैः फलमूलैश्च द्रव्यैः कालोद्भवैस्तथा
दधिदुग्धैः प्रियैर्वाद्यैरपि धूपसुगन्धिभिः ।
पूजयेद्गणपं यस्तु सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ १२ ॥
विशेषात्तस्य लिङ्गेतु यो ददाति चतुष्प्रियम् । पूजोपकरणं वस्त्रं सर्वं लक्षगुणं भवेत् ॥
देशे च भारते वर्षे वनितापूर्वसन्निधौ । लौहित्यदक्षिणे तीरे लिङ्गरूपो विनायकः ॥
हरगौरीसमादेशाद्देवानां सम्मतेन च । स्थितो लोकप्रशान्त्यर्थं सर्वविघ्नविनाशनात् ॥
पूजयित्वा तु तं देवं शक्तितो द्रव्यसञ्चयैः ।
विनायकत्वमाप्नोति वेदशास्त्रार्थपारगः ॥ १६ ॥
सकृत्प्रदक्षिणं कृत्वा दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा तु मानवः । अक्षयं लभते स्वर्गं सदा देवैः प्रपूज्यते ॥
संसर्गिणां च म्लेच्छानां गत्यर्थं सुतपस्विनाम् ।
पुत्रार्थं सर्वलोकानां तत्र शम्भुर्विनायकः ॥ १८ ॥
कृत्वाऽभिषेकं लौहित्ये स्पृशेद्यस्तु गणाधिपम् ।
सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ १६ ॥
न वैधव्यं न कार्पण्यं न शोकं न तु मत्सरम् ।
विनायकं समासाद्य जन्मजन्मनि संलभेत् ॥ २० ॥
पुनः सिद्धिं पुनर्भोग्यं पुनः कीर्तिः पुनर्बलम् । पूजयित्वा तु गणपं नरस्य नात्र संशयः
अस्य पूजामकृत्वा च सर्वाभीष्टं विनश्यति । तत्र देवाश्च सुप्रीता ब्रह्मविष्णुहरादयः
मोहाद्भ्रान्त्या च न कृतंहरिणाऽस्यार्चनंपुनः। ततोविघ्नं समुत्पन्नं देवराजस्य धीमतः
मघोनो गणपस्याथ पूजा विरहितस्य च ।

अथासुरैर्महावीर्यैर्हिरण्याक्षमुखै रणे ॥ २४ ॥
मघवा तु जितो वीर्याद्धिरण्याक्षेण वै तदा । ततस्सुराश्च निर्वीर्या यावद्वर्षशतं पुरा ॥
देवासुरे महायुद्धे सुराणां च पराजयः । ततो देवाधिदेवे तु शिवे देवैर्निवेदितम् ॥

देवा ऊचुः ।

भगवन्नसुरैर्नो हि जितं राज्यं गता मखाः ॥ २७ ॥

व्यास उवाच ।

एतस्मिन्नन्तरे शम्भुर्देवान्वचनमब्रवीत् ॥ २८ ॥

शम्भुरुवाच ।

हेरम्बाय वरो दत्त उमया प्रीतया मया । पूजया ते परासिद्धिर्देवादीनां भवत्विति ॥
अवजानाति यो मोहात्पुरुषस्तु महोत्सवे । न भवेत्तस्य सिद्धिश्च रणे चापि पराजयः
महामखेन युष्माभिः पूजा गणपतेः कृता ।
हेलया न कृता मोहात्तस्मात्प्राप्तः पराजयः ॥ ३१ ॥
शीघ्रं गच्छत वै पुण्यां गणपस्य महात्मनः । पूजां कुरुत धर्मज्ञा जयस्तूर्णं भविष्यति

व्यास उवाच ।

ततो हरमुखाच्छ्रुत्वा वचः क्षेमपरं हितम् । प्रहृष्टा विबुधास्सर्वे गणपस्यपुरःस्थिताः

देवा उचुः ।

गणाधिप नमस्तुभ्यं सर्वदेवैकपालक । स्वर्गभोगप्रद प्रीत्या हेरम्ब त्वां नताः स्मह ॥
जयदं सर्वयुद्धेषु सिद्धिदं सर्वकर्मसु । महामायं महाकायं हेरम्ब त्वां नताःस्म ह॥३५॥
एकदन्तं महाप्राज्ञं लम्बतुण्डं विनायकम् ।
देवं महर्षिदेवानामिन्द्रस्य च नताः स्मह ॥ ३६ ॥

व्यास उवाच ।

एताःश्रुत्वा गिरस्तेषां त्रिदशानां महात्मनाम् । विस्मितोगणपो देवानिदंवचनमब्रवीत्

गणेश उवाच ।

कुतो मे तरसा स्तोत्रं पूजां कुरुथ साम्प्रतम् ।

करिष्यामि हितार्थं वै तूर्णं कामं समुच्यताम् ॥ ३८ ॥

व्यास उवाच ।

एतस्मिन्नन्तरे सूरिः सुराणां याजकः सुधीः । उवाच वचनं स्मेरं बृहस्पतिर्विनायकम्

बृहस्पतिरुवाच ।

दोषं महर्षिदेवानामिन्द्रस्य च विनायक । यत्ते पुरार्चनं यज्ञ न कृतं तत्क्षमस्व नः ॥

व्यास उवाच ।

सुराचार्यगिरः श्रुत्वा गणपो वाक्यमब्रवीत् ॥ ४१ ॥

गणेश उवाच ।

युष्माभिर्व्रियतां देवा वरो मत्तो हि वाञ्छितः ॥ ४२ ॥

व्यास उवाच ।

ततः शक्रादयः सर्वे बृहस्पतिपुरोगमाः । ऊचुर्गणपतिं देवा जयोऽस्माकं भवत्विति ॥

देवानां वचनं श्रुत्वा गणेशोऽवाक्यमब्रवीत् ॥ ४४ ॥

गणेश उवाच ।

बाढमेव सुरश्रेष्ठा जयो वो भवतु द्रुतम् ॥ ४५ ॥

व्यास उवाच ।

ततो देवगणास्सर्वे हर्षनिर्भरमानसाः । गणेशं पूजयामासुर्गन्धसारैस्तु मण्डनैः ॥४६॥

दिव्यधूपैः सुवस्त्रैश्च कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः । पारिजातादिभिः पुष्पैरन्यैर्देवमनोहरैः ॥४७॥

पूजितो गणपो देवैरुवाच सुरसत्तमान् ॥ ४८ ॥

गणेश उवाच ।

गच्छध्वं विबुधा देवंविष्णुमद्भुतसाहसम् । सविधास्यति वः कामं वाञ्छितंततःसुराः

व्यास उवाच ।

स्वं स्वं रथं समारुह्य गतास्ते हरिमव्ययम् । पीताम्बरं नमस्कृत्य ऊचुर्देवगणा मुदा ॥

देवा ऊचुः ।

हरात्मजं तु सम्प्राप्य पूजयित्वागणाधिपम् । आगतास्त्वत्सकाशं वै महात्मन्नघकेशव

व्यास उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा तु देवानां वचनं हरिरव्ययः । यथातथ्यमुवाचेदं हनिष्ये दैत्यपुङ्गवान् ॥

श्रुत्वा वागमृतं देवा नारायणमुखाच्च्युतम् ।

हृष्टाश्च तं मुदाऽऽविष्टा द्रव्यैरिष्टैः समर्चयन् ॥ ५३ ॥

पुनर्विष्णुरुवाचेदं देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥ ५४ ॥

विष्णुरुवाच ।

स्वं स्वं बलं समाहृत्य सज्जीभवत विज्वराः । हनिष्ये तान्दुराचारान्बलं चैवसमन्ततः

अस्त्रवृन्दं तु संगृह्य यूयं तिष्ठत निर्भयाः ॥ ५५ ॥

व्यास उवाच ।

माधवस्य वचः श्रुत्वा प्रगताः सुरपुङ्गवाः । विमानानिसमारुह्य सर्वे दिव्यास्त्रधारिणः

देवानां हर्षवाक्यानि दैत्यचाराः श्रुतानि वै ।

राजानं कथयामासुर्हिरण्याक्षं महाबलम् ॥ ५७ ॥

श्रुत्वा दैत्यपतिस्तत्र चुकोपातिमहाबलः । सचिवांस्तु समाहूय क्रुद्धो वचनमब्रवीत् ॥

दैत्यराज उवाच ।

अधुनेन्द्रादिदेवाश्च निखिलाः क्रूरबुद्धयः । माधवं च परीप्सन्तः शम्भौसर्वंन्यवेदयन् ॥

कथं जयं च लप्स्यामो दैत्यवृन्देऽतिदारुणे ।

त्रिपुरारिरुवाचेदं गणेशं यजतामराः ॥ ६० ॥

पूजयित्वा तु तं देवं जेष्यथासुरदानवान् । ततो देवगणैर्हृष्टैः पूजितो गणनायकः ॥

गणाधिपेन तुष्टेन क्रूरो दत्तो वरो महान् ।

जेष्यथाद्यासुरान्सर्वांस्ततो देवा मुदान्विताः ॥ ६२ ॥

हरिं निवेदयामासुरस्मद्वधपरीप्सवः । हरेर्बाढमुपश्रुत्य रथिनः शस्त्रपाणयः ॥ ६३ ॥

युद्धार्थमधितिष्ठन्ति निर्जरास्त्वभयामयि । यस्य या शक्तिरस्तीह देवाञ्जेतुं वदत्वलम् ॥

व्यास उवाच ।

ततो राज्ञो वचः श्रुत्वा मधुर्वचनमब्रवीत् ॥ ६५ ॥

मधुरुवाच ।

जेष्यामि च हरिं राजन्सहायं मे नियोजय । जितेनारायणे देवाः सभयास्त्रिदशाध्रुवम्
तस्मान्नारायणोऽस्माकं भागः सर्वपुरञ्जयः ॥ ६६ ॥

व्यास उवाच ।

ततो धुन्धुश्च सुन्दश्च कालकेयो महाबलः । सहायाश्च मधोस्तस्य जेष्यामो माधवंनृप
सर्वदैत्यबले मुख्याश्चत्वारो दृढविक्रमाः । कालमृत्युसमावीराः सर्वास्त्रविधिपारगाः
बलस्तत्राब्रवीद्वाक्यं यस्मिञ्जय उपस्थितः । तं च जेष्यामि जिष्णुं च प्रतिज्ञा मे दृढा नृप
नमुचिश्च मुचिश्चैव भ्रातरौ बलदर्पितौ । ऊचतुस्तौनृपं ह्यावां जेष्यावो वै बलाद्बलौ
जम्भश्चैवाब्रवीद्वाक्यमिन्द्रमिन्द्रपुरोगमान् । जेष्यामिनात्र सन्देहो दैत्या भवत विज्वराः
त्रिपुरश्चाब्रवीद्वाक्यं जेष्यामि च विनायकम् । तावदूचेऽथ सेनानीर्मयो देवान्तको बली
कुबेरं प्रतिरक्षोभिः सर्वांश्चैवहिरण्यकान् । एतस्मिन्नन्तरे तत्र नारदो मुनिसत्तमः
गत्वोवाच हिरण्याक्षं जिष्णुदूतोऽहमागतः ।
राज्यं त्यजस्व वाचा नः प्राणेषु यदि ते हितम् ॥ ७४ ॥
न चेद्युध्यस्व मामद्य न वा गच्छ रसातलम् ।
ततः कोपादुवाचेदं नारदं मुनिसत्तमम् ॥ ७५ ॥

दैत्यराज उवाच ।

अहिंस्यस्त्वं ब्राह्मणाद्य गच्छ तूर्णं ममाग्रतः । देवानां च विपत्तिं च कदनं निधनं पुरः
पश्य विप्र क्षणेनान्तं प्राप्तं हरिहरादिकम् ॥ ७६ ॥

व्यास उवाच ।

एवमुक्त्वा स दैत्येन्द्रो बलाध्यक्षानुवाचह ॥ ७७ ॥

दैत्यराज उवाच ।

सज्जीकृत्य बलं सर्वान्रथांश्चानयत द्रुतम् ॥ ७८ ॥

व्यास उवाच ।

दैत्यराजवचः श्रुत्वा बलाध्यक्षा समन्ततः । बलान्याहूय सहसा सन्त्रस्तास्तूर्णमागताः

कोटिकोटिसहस्राणिअक्षौहिण्यो बलानि च। एकैकस्य च वीरस्य वाहनानिमहान्तिच
स्यन्दनानि विचित्राणि गजोष्ट्राश्वखरानपि। सिंहव्याघ्रलुलायांश्च समारुह्य ययुस्तदा
वाद्यैः सर्वैश्च भूयिष्ठैः सिंहनादैर्भयानकैः। दिशस्तु पूरयामासुस्सिन्धुवेला चलाधराः
सर्वलोकाश्च वित्रेसुः समुद्राश्च चकम्पिरे। देवदुन्दुभयो नेदुः सर्वदेवैः समीरिताः॥
वाद्यैश्च विविधैरन्यैर्वायुपूर्णैर्घनस्वनैः। सर्वलोका भयत्रस्ता ये च त्रैलोक्यवासिनः॥

भ्रष्टकामा गताकाशं घोरं तीव्रं महाहवम्।
परिघैः पाशशूलैश्च खड्गयष्टिपरश्वधैः॥ ८५॥

शरैश्च निशितैर्घोरैर्जघ्नुरन्योन्यमाहवे। शस्त्रास्त्रैर्बहुधा मुक्तैर्दिशः सर्वा निरन्तरम्॥
विगृहेषु धरण्यां च पर्वतेषु जलेषु च। देवस्थाने तथाकाशे पर्वताग्रेषु सानुषु॥८७॥
गह्वरेषु महारण्ये तयोर्युद्धमवर्तत। पुष्कलादिघनानां च वर्षधाराजलं यथा॥ ८८॥

पतन्त्यस्त्राणि सैन्येषु शतशोऽथ सहस्रशः।
केचित्पेतुः पृथिव्यां तु शरैः सम्भिन्नविग्रहाः॥ ८९॥

शक्तिभिर्मुसलैश्चान्यैश्चक्रशूलपरश्वधैः। पतिताः सम्मुखे शूरा युद्धेषु न्यायवर्तिनः॥
गच्छन्ति सुरसद्मानि स्वाम्यर्थे ये त्वभीरवः। ये चान्ये कातराः पापा हन्तारोविमुखान्रणे

अन्यायैर्ये च योद्धारस्ते यान्ति यममन्दिरम्।
त्रिदिवस्था गजारोहाः सैन्धवस्थास्तथापरान्॥ ९२॥

रथस्थांश्च रथारोहाः पदगाश्च पदातयः। परस्परं विनिघ्नन्ति शूरा युद्धाभिकाङ्क्षिणः
मुदिताः सत्त्वसम्पन्ना धर्मिष्ठा बलसंवृताः। केषांचिद्बाहवश्छिन्ना मुसलैर्भिन्नमस्तकाः

केशाश्शिरांसि वस्त्राणि निपेतुर्धरणीतले।
मध्यच्छिन्नास्तथा भिन्नाः पेतुरुर्व्यां महाबलाः॥ ९५॥

खड्गपातैस्तथाचोग्रैश्छिन्नभिन्नाः परश्वधैः। गामेव पतिता धीरा दिव्यालङ्कारभूषिताः
प्रदीप्तोऽभूद्धरादेशो वीरैर्नागैर्हयै रथैः। विविधाभरणैर्नष्टैः पताकाभिश्च केतुभिः॥
ततो वसुन्धरा सर्वा सशैलवनकानना। रुधिरौघप्लुता तत्र विबुधासुरयोर्युधि॥९८॥

क्रव्यादैर्बहुभिस्तत्र खादितो द्रव्यसञ्चयः।

लोहितं प्रचुरं पीतं रक्षोभिश्च वृकादिभिः ॥ ९९ ॥

अन्यैर्महागणैरेव क्षतजं पवनान्वितम् । खादितं प्रीतिमद्भिश्च फेरुगृध्रगणैर्मुदा ॥१००॥

एतस्मिन्नन्तरे सूरिः सुरपूज्यो बृहस्पतिः । मृतसञ्जीवनीविद्यां सुराणां सञ्जजाप ह ॥

विशल्यकरणीं दिव्यां ब्रह्मविद्यां महाबलाम् ।

ततो धन्वन्तरिर्विद्वान्सुरवैद्यो मनोजवः ॥ १०२ ॥

औषधैस्तत्प्रयोगैश्च रणे पर्यटते मुदा । तत्र देवाश्च जीवन्ति ये मृताश्च महाहवे ॥

अव्रणा बलसम्पन्नाः प्रयुध्यन्ति भृशं पुनः ।

एवं शतसहस्रं तु गणं दैत्यस्य चोद्धतम् ॥ १०४ ॥

पतितं पुण्ययोगाच्च शरैर्निर्भिन्नकन्धरम् ।

ततस्तु जयशब्देन नन्दन्ति सिद्धचारणाः ॥ १०५ ॥

ऋषयः खेचराश्चान्ये ये चैवाप्सरसां गणाः । गीतिगायन्ति गन्धर्वाः शशंसुः परमर्षयः

अथ क्रुद्धो महातेजा दैत्यमुख्यो महाबलः ।

कालकेय इति ख्यातः सेनानीर्दैत्यपस्य च ॥ १०७ ॥

स्यन्दनस्थो महावीर्यो धनुरादाय तत्र च । जघान सुरसङ्घांस्तान्नर्तयामास भूतले ॥

निरन्तरशरौघेण च्छादितं गगनं तदा । निपतन्ति शरा सैन्ये कोटिकोटिसहस्रशः ॥

निपतन्ति ततो देवाः संयुगेष्वनिवर्तिनः । रुधिरोद्गारिणस्सर्वे सिद्धगन्धर्वकिन्नराः ॥

विशिखैः पीडिता देवा निपेतुर्धरणीतले । केचिच्छरशतैर्भिन्नास्सहस्रैरयुतैस्तथा ॥

पेतुरुर्व्यां महावीर्या ये रणे सुरपुङ्गवाः ।

व्यथिताश्चाभवन्सर्वे स्यन्दनस्था दिवौकसः ॥ ११२ ॥

शरैः प्रव्यथितास्ते तु स्थातुं शक्ता न सम्मुखे । तेनावगाहितं सैन्यं गजेनेव सरोवनम्

शरैस्तस्यार्दिता देवा वज्रानलसमप्रभैः ।

न शेकुः समरे स्थातुं मघवन्तं ययुस्तदा ॥ ११४ ॥

चित्ररथ इति ख्यातो देवश्शस्त्रभृतां वरः । ययौ स्यन्दनमारुह्य युद्धं प्रति धनुर्धरः ॥

अब्रवीद्वचनं सोऽपि सेनान्यं तु महासुरम् ॥ ११६ ॥

चित्ररथ उवाच ।

यथा हंसि महाशूर सुरसेनां मुदान्वितः । स त्वं प्रशंसनीयश्च शूरोऽसि सुरसंमतः ॥
हिरण्याक्षप्रियं कर्मकृतं युद्धे त्वयाऽधुना । इदानींमम बाणैश्च गच्छस्व यममन्दिरम् ॥

व्यास उवाच ।

ततश्च कालकेयस्तु स्मितो वचनमब्रवीत् ॥ ११६ ॥

कालकेय उवाच ।

पुरैव विजितो देवगणःसर्वः प्रलीलया । इदानीं तु स्थितं युद्धे बलं सर्वं तु हेलया ॥
यदि ते निधने प्रीतिरस्तीह सुरपुङ्गव ।
एभिस्त्वां निशितैर्बाणैर्नयामि यममन्दिरम् ॥ १२१ ॥

व्यास उवाच ।

इत्युक्त्वा परमक्रुद्धो बाणमन्तकसन्निभम् । जघान समरे वीरस्त्रिभिश्चच्छेद सोऽम्बरे
पुनर्बाणांश्च समरे योजयित्वा द्रुतं रुषा ।
जघान प्रचुरान्दैत्यांस्तांश्चकर्त्त स लाघवात् ॥ १२३ ॥
ततोऽन्योन्यं शरैस्तीक्ष्णैः कालानलसमप्रभैः । युद्धे धनुष्मतां श्रेष्ठश्चिच्छेद भुविवेगतः
तद्युद्धमभवद्देवदैत्ययोर्धर्मतो भृशम् । द्रष्टुकामागताः पार्श्वमृषिदेवाः सुरोरगाः ॥
एवं शतसहस्राणि बाणानां विधृतानि च । अन्योन्यं समरे वीरौ विजयाय विरेजतुः
अथ क्रुद्धो महातेजा गन्धर्वाणां पतिस्तदा । त्रिभिर्बिभेदबाणैश्च ललाटे हृदिपञ्चभिः
सप्तभिर्जठरे नाभौ वस्तौ तस्यसपञ्चभिः । शरैःसम्पातितो दैत्यो मुग्धः कश्मलतांगतः
शिथिलीकृतचापश्च लेभे संज्ञां चिराद्बली ।
लब्धसंज्ञस्त्रिभिर्बाणैस्स बिभेद सुरोत्तमम् ॥ १२६ ॥
चकर्त्त धनुरस्त्रैश्च दैत्यराजस्य पश्यतः । ततो बाणसहस्रैस्तु कालान्तकसमप्रभैः ॥
बिभेद दैत्यसिंहं तु सुराणामुत्तमो बली । हतचेताः सदैत्येन्द्रो बहुशोणितसंस्रवः ॥
विह्वलो बहुबाणार्तः शूलं जग्राह दानवः । शूलहस्तस्य तस्यैव चतुर्भिस्तुरगाञ्छरैः ॥
हत्वा च पातयामास त्रिभिर्यन्तारमेव च ।

जघान शूलमुर्वीस्थस्ततो गन्धर्वसत्तमम् ॥ १३३ ॥

विचकर्त्त त्रिभिर्बाणैः शूलं चित्ररथो बली । शूलं च नष्टकं दृष्ट्वा हतभोगमिवोरगम् ॥

गृहीत्वा मुद्गरं घोरं प्रदुद्राव सुरं बली । समुद्गरं समायातं दैत्यसेनाधिपं तदा ॥

विचकर्त्त शिरोदेहादर्धचन्द्रेण सम्भ्रमात् । स पपात महीपृष्ठे सञ्चचाल वसुन्धरा ॥

ततो दैत्यगणाः सर्वे विमुखा विप्र दुद्रुवुः ॥ १३७ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे कालकेयवधो नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ।

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

जयन्तेन कालेयवधः ।

व्यास उवाच ।

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा कालेयो नाम दानवः । चित्ररथं प्रदुद्राव धृत्वा बाणं सकार्मुकम् ॥

दृष्ट्वाऽसुरं विधावन्तं कालमृत्युसमप्रभम् ।

अरौत्सीत्तं महावीर्यो जयन्तः पाकशासनिः ॥ २ ॥

अब्रवीच्च महातेजा दैतेयं सुरसत्तमः । तथ्यं धर्माभिसंयुक्तं लोकद्वयहितं ध्रुवम् ॥ ३ ॥

जयन्त उवाच ।

शस्त्राभिघातदुःखार्तं कश्मलं चान्यसंयुतम् ।

प्रभग्नं च निरस्तं च यो हन्ति स च बालिशः ॥ ४ ॥

सुचिरं रौरवं भुक्त्वा तस्य दासो भवेच्चिरम् ।

तस्मान्माऽमुं प्रयुध्यस्व युद्धधर्मस्थितो भव ॥ ५ ॥

व्यास उवाच ।

जयन्तमब्रवीद्वाक्यं कालेयः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ६ ॥

कालेय उवाच ।

निहत्य भ्रातृहन्तारमथ त्वां हन्मि साम्प्रतम् ॥ ७ ॥

व्यास उवाच ।

ततस्तं चासुरश्रेष्टं कालानलसमप्रभम् । जयन्तो निशितैर्बाणैर्जघानसुरसत्तमः ॥ ८ ॥

निचकर्त्त शरान्सोऽपि त्रिभिर्विव्याध चासुरः ।

ततः कोपसमाविष्टौ नाराचैर्दशभिस्तथा ॥ ९ ॥

शरांश्चिच्छिदतुस्तत्र बिभिदतुश्च परस्परम् ।

स्यन्दनाच्च तयोरेव बहुसुस्राव शोणितम् ॥ १० ॥

यथा वृष्टिगणं प्राप्य नदी गैरिकवाहिनी । तथा तौ च महावीर्यौ न क्षीणौ न च कातरौ

न शर्म परिलेभाते परस्परजयैषिणौ । अथ तस्य च दैत्यस्य धनुश्चिच्छेद चेषुणा ॥

यन्तारं पञ्चभिर्बाणैः पातयामास भूतले । अष्टाभिर्निशितैर्बाणैश्चतुरोऽश्वानपातयत् ॥

शक्तिं सङ्गृह्य भूमिष्ठः कुमारं च जघानह । आयान्तीं वह्निकूटाभां शरैश्चिच्छेद पञ्चभिः

गदामादाय वेगाच्च जयन्तं स जघान ह ।

गदया पीडितं साश्वं सवरूथं सकूबरम् ॥ १५ ॥

पातयित्वा धरण्यां च सिंहनादं ननादह । लाघवात्स धरां गत्वा गदापाणिरुपस्थितः॥

वज्रपाताद्यथा शब्दो लोकानां दुःसहो भवेत् ।

तथा तयोर्गदापाते शब्दः स्यात्तु मुहुर्मुहुः ॥ १७ ॥

एवं तयोर्गदायुद्धं यावदब्दचतुष्टयम् । प्रभग्ने ते गदे खस्थौ खड्गचर्मधरावुभौ ॥ १८ ॥

तदा पदातिनोर्युद्धमद्भुतं लोमहर्षणम् । दृष्ट्वा च विस्मयं जग्मुर्देवासुरमहोरगाः ॥ १९ ॥

खड्गपातैर्मुहूर्तान्ते तयोश्छिन्ने तु वर्मणी । अभवत्खड्गयुद्धं च तयोर्युद्धातिशीलिनोः ॥

दधार चिकुरे तस्य जयन्तो भीमविक्रमः । शिरश्छित्त्वाऽस्य खड्गेनपातयामास भूतले

ततस्तु जयशब्देन देवाः सर्वे ननन्दिरे ।

प्रभग्ना दैत्यसङ्घाश्च दिशः सर्वाः प्रदुद्रुवुः ॥ २२ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे कालेयवधो नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

ऊनसप्ततितमोऽध्यायः

इन्द्रेण बलनमुचिवधः ।

व्यास उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा तु दैत्येन्द्रो हिरण्याक्षो महाबलः ।
सरोषश्चातिताम्राक्षो ह्यसुरानादिदेश ह ॥ १ ॥

हिरण्याक्ष उवाच ।

स्वयं गच्छामि युद्धाय देवानां विजिघांसया ।
नागच्छन्ति न युद्ध्यन्ते तेन मार्गाद्विशन्त्वितः ॥ २ ॥

व्यास उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं शेषा दैत्यगणाधिपाः ।
युद्धाय प्रययुः सर्वे शूलपाशातिपण्डिताः ॥ ३ ॥
अधिकं पूर्वसैन्याच्च तथा शतगुणैरपि । निरन्तरं तथाऽऽकाशं प्रययुर्युद्धकाङ्क्षिणः ॥
ततो रुद्रास्ससाध्याश्च विश्वेच वसवस्तथा ।
स्कन्दश्च गणपश्चैव विष्णुजिष्णुपुरोगमाः ॥ ५ ॥
सर्वे योद्धुं गतास्ते च हृष्टा रणसमुत्सुकाः । एतस्मिन्नन्तरे युद्धं देवदानवयोरपि ॥६॥
न भूतं न श्रुतं पूर्वं सर्वलोकभयङ्करम् ।
शस्त्रास्त्रैर्बहुधा युक्तं शिशिरेणेव काननम् ॥ ७ ॥
धरां स्वर्गौक आकाशं संरुध्य युद्धमाबभौ ।
अन्योन्यं जघ्नुराकाशे तथाऽन्योऽन्यं महीतले ॥ ८ ॥
शक्तिभिर्मुसलैर्भल्लैर्बहुभिः शरवृष्टिभिः । दारुणैः खड्गपातैश्च तथा चक्रपरश्वधैः ॥९॥
अन्यायुधैश्च विविधैर्निर्जघ्नुस्ते परस्परम् ।
अभवन्घोररूपाणि धराकाशेऽव्ययानि च ॥ १० ॥

शस्त्रैः शरैरसृक्पातैः कङ्कवायसजम्बुकैः। यथा मुसलधाराभिर्घना वर्षन्ति लोहितम् ॥

तथैव क्षतजैः स्रस्तैस्त्वाङ्गाश्च देवदानवाः।

केचित्पतन्ति मुह्यन्ति स्खलन्ति च हसन्ति च ॥ १२ ॥

मुञ्चन्ति चार्तनादांश्च सिंहनादं मुहुर्मुहुः।

केषांचिद् बाहवश्छिन्नाश्छिन्नपादास्तथापरे ॥ १३ ॥

छिन्नपार्श्वोदराः केचिन्निपेतुः शतशोभुवि। कोटिकोटिसहस्राणि गजवाज्यसुराणिच

अपतन्धरणीपृष्ठे रक्तौघे बहुधा भुवि। ततस्तु धरणीपृष्ठे त्वभवल्लोहितार्णवः ॥१५॥

विपरीतास्ततो नद्यः सद्यस्तत्र विसुस्रुवुः। तृणकाष्ठपरास्तत्र शक्तयो दारुसञ्चयाः ॥

मुद्गरा मुसलाः शूला मकराद्या भवन्ति च।

जयन्तिका ध्वजामीनाः कमठाश्चर्मकायकाः ॥ १७ ॥

शरादिभिर्महोग्रैश्च निरुद्धाः प्रचुरैस्तथा। केशचामरशैवालाः सम्पूर्णास्तास्ततस्ततः ॥

पतद्भिश्च तथान्यैश्च विविधैः क्षतजार्णवः। तदा वसुन्धरा सर्वा सशैलवनकानना ॥१६

रुधिरौघा महाघोरा सर्वलोकभयङ्करा। स्कन्दस्य शक्तिपातेन गता दैत्या यमक्षयम् ॥

पर्शुना परमेणैव अग्निनाऽग्निशिखैः शरैः। वरुणस्य च पाशेन बद्धा मग्ना यमक्षये ॥२१॥

येषां पुत्रैश्च पौत्रैश्च पुरोगैः सचिवैस्तथा। निपातिताश्च दैतेयाः शरशक्त्यृष्टिवृष्टिभिः ॥

ग्रहैश्च श्वसनैरेव यक्षगन्धर्वकिन्नरैः। महत्या गदया चैव कुबेरेण च धीमता ॥ २३ ॥

घनानां निकरैर्वज्रैस्तुषारैर्विधुनेरितैः। पन्नगानां विषैर्घोरैर्दैत्याः पेतुर्धरातले ॥ २४ ॥

अन्यैश्च विविधैर्देवैः कोटिकोटिसहस्रशः।

पातिताः प्रययुस्सर्वे धरण्यां तु गतासवः ॥ २५ ॥

देहांस्त्यक्त्वा दिवं यान्ति केचिच्च यममन्दिरम्।

केचिद् गच्छन्ति पातालं पुण्यापुण्यप्रयोगतः ॥ २६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे वेदाञ्जजल्पुः परमर्षयः।

स्वस्त्यस्तु ब्राह्मणेभ्यश्च गोभ्यः स्त्रीभ्यस्तपस्विषु ॥ २७ ॥

प्रयुध्यमानेष्वन्येषु साम्प्रतं सर्वजन्तुषु।

विबुधैरर्दिता दैत्याः शेषाः पर्वतमाश्रिताः ॥ २८ ॥

प्रजग्मुश्च दिशः सर्वाः कातरारणभीरवः । दैत्यव्यूहे प्रभग्ने च बलो नाम महाबलः ॥
अर्दयामास देवांश्च संयम्याग्निसमैः शरैः । तस्य बाणार्दिता देवा बहवो बलदर्पिताः ॥
पतिता धरणीपृष्ठे केचिद्भग्ना रणाजिरे । दृष्ट्वा तस्य महत्कर्म दारुणं लोकभीषणम् ॥
शशंसुर्ऋषयो देवास्तत्रशिष्टाः प्रचुक्रुशुः । अथ क्रुद्धो महातेजाश्शतक्रतुररिन्दमः ॥
जघान शरसन्दोहैर्बलं बलवतांवरम् । सोऽपि क्रुद्धो बलोयुद्धे तथा शक्रं ससम्भ्रमः ॥
रुधिरेणावसिक्ताङ्गौ प्रसृतेन महाबलौ । तौ यथा माधवे मासि पुष्पितौ किंशुकद्रुमौ
चक्राणि च सहस्राणि शूलानि मुसलानि च । निचखान रणे शक्रे चपले चासुरोत्तमः

तानि चक्राणि शूलानि निचकर्त्त शरोत्तमैः ।
सुरराट् सहसा भ्रान्तो लीलया समरे बली ॥ ३६ ॥
स च दैत्यो महातेजाः शक्तया चैव पुरन्दरम् ।
निजघान तदा तूर्णं गजस्थं च स्तनान्तरे ॥ ३७ ॥

तया विनिहतः शक्रः प्रचचाल गजोपरि । लब्धसंज्ञो गले जिष्णुर्बिभेद दनुजं क्षणात् ॥
रथसंस्थस्य हस्तौ च धनुश्चिच्छेद चेषुणा । चर्मतीक्ष्णं ध्वजं तस्य शरेणैकेन वीरहा ॥

चतुर्भिर्निशितैर्बाणैर्विव्याध चतुरो हयान् ।
शरेणैकेन सूतस्य शिरश्चिच्छेद तत्क्षणात् ॥ ४० ॥
छिन्नधन्वा हतरथो हताश्वो हतसारथिः ।
निपत्य मूर्च्छितः पृथ्व्यां मुहूर्तान्मृत्युमाप सः ॥ ४१ ॥

अथ क्रुद्धो महादैत्यो नमुचिः सुरदर्पहा । गदामादाय सहसा स जघान महागजम् ॥
यथा मेरुगिरेः शृङ्गे वज्रपातो भवेद् ध्रुवम् । तथैव च महाशब्दो ह्यभवल्लोमहर्षणः ॥४२
प्रहारेणार्दितः पद्मो सञ्चचाल स विह्वलः । रुधिरेणावसिक्ताङ्गो विमुखो वेदनातुरः ॥
शतक्रतुं विधावन्ति शतशोऽथ सहस्रशः । अर्धचन्द्रैः क्षुरप्रैश्च चिच्छेद पाकशासनः ॥
जन्तुभिस्तस्य मायाभिरर्दितास्सुरपुङ्गवाः । भूमौ निपतिताः केचित्केचित्सुप्ता रथोपरि

दृष्ट्वा तस्य महत्कर्म माधवो विशिखांस्तथा ।

जन्तुभूतान्स चक्रेण चिच्छेद देहलग्नकान् ॥ ४७ ॥
ततो जिष्णुस्त्रिभिर्बाणैः पातयामास भूतले ।
पृथिव्यां पतितो दैत्यो मूर्च्छितः स्खलितः पुनः ॥ ४८ ॥
दधार मुद्गरं घोरं शक्रं हन्तुं समुद्यतः । ततो जघान मघवा कुलिशेन महासुरम् ॥
स पपात महीपृष्ठे क्षतवक्षा महाबलः । साधुसाध्विति देवाश्च सिद्धाश्चैव महर्षयः ॥
अपूजयंस्तदा शक्रं बहुभिः पुष्पवृष्टिभिः । ततो दैत्यगणाः सर्वे भीतास्तत्र प्रदुद्रुवुः ॥
गीतं गायन्ति गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ५२ ॥
इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे बलनमुचिवधो नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥६९

सप्ततितमोऽध्यायः

इन्द्रेण नमुचिवधः ।

व्यास उवाच

बलं च निहतं दृष्ट्वा नमुचिं च स्वकाग्रजम् ।
मुचिस्तत्राब्रवीद्वाक्यं ज्येष्ठो मे सूदितस्त्वया ॥ १ ॥
परोक्षेणाधुना त्वां च शरैर्नेष्यामि भास्करिम् ॥ २ ॥

व्यास उवाच ।

तमब्रवीन्महातेजाः शक्रः सर्वसुरार्चितः ॥ ३ ॥

शक्र उवाच ।

भ्रातुस्ते धर्मपन्थानमिदानीं लप्स्यसे ध्रुवम् ।
वह्नरुष्णमविज्ञाय प्रमोहाच्छलभा यथा ।
सहसा प्रविशन्त्यग्निं तथा मां योद्धुमिच्छसि ॥ ४ ॥

व्यास उवाच ।

एवं बाणत्रमिन्द्रं च जघान विशिखैस्त्रिभिः । स चिच्छेद त्रिभिर्बाणैः शक्रःपरपुरञ्जय

ततो जघान दशभिरिन्द्रमैरावणंत्रिभिः । सप्तभिर्मातलिं छित्वा नादैरुच्चैर्ननादह ॥६॥
शक्रं प्रति पुनर्दैत्यो भ्रामयामास सम्भ्रमात् ।
आयसीं तां गदां कोपान्महाबलपराक्रमः ॥ ७ ॥
ततस्तु लाघवाच्छक्रो जघान कुलिशेन हि । भिदुरस्यावपातेन गतासुर्निपपात ह ॥८॥
दनुजस्य प्रपातेन सञ्चचाल वसुन्धरा । देवाः प्रचक्रुर्नृत्यानि दानवा विप्रदुद्रुवुः ॥९॥
इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे मुचिवधो नाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥७०॥

एकसप्ततितमोऽध्यायः

षडाननेन तारेयवधः ।

व्यास उवाच ।

तारेयो बलसम्पन्नः शक्रतुल्यपराक्रमः । जघान विशिखैस्स्कन्दं पितृघातिनमाहवे ॥१॥
ततस्स्कन्दो महाबाहुर्हरितुल्यपराक्रमः ।
विचकर्त्त शरांस्तांस्तान्निर्बिभेद शरोत्तमैः ॥ २ ॥
सदैत्यस्सहसा स्कन्दं छादयामास मार्गणैः ।
असम्भ्रान्तः प्रचिच्छेद विशाखो विशिखैस्तदा ॥ ३ ॥
तारेयोऽग्निशरैः स्कन्दं जघान रणमूर्धनि । विशिखं भिदुरप्रख्यं चखान हरनन्दने ॥४॥
वैश्वानरेण सेनानीस्तत्र सम्पर्यवारयत् । रौद्रमस्त्रं पुनर्दैत्यः प्रेषयामास तं प्रति ॥५॥
तन्निरस्तं कृतं तेन बाणेनास्फालितेन च । अघोरं प्राक्षिपद्दैत्यो घोररूपं सुदारुणम् ॥
भूधरा विटपास्सिंहास्तथा सर्पादयः शराः ।
धावन्ति पार्वतीपुत्रं कोटिकोटिसहस्रशः ॥ ७ ॥
छित्वा तांस्तु शरान्स्कन्दो बिभेद दैत्यपुङ्गवम् ।
आपादं शीर्षपर्यन्तं शरैरग्न्यर्कसन्निभैः ॥ ८ ॥
स्वर्णपुङ्खाः शरा लग्ना देहे दैत्यपतेर्भृशम् । रेजुस्ते स्वर्णशकला यथा कृष्णशिलोच्चये

तस्य देहात्ततश्चैव बहुसुस्राव शोणितम्। यथा च माधवे मासि पुरुपुष्पशमीतरुः ॥
स्यन्दनाधश्चराश्वाश्च शिश्यिरे भूमिलग्नकाः।
अथ क्रुद्धो महादैत्यः शूलं भीमं च दारुणम् ॥ ११ ॥
धृत्वा स प्रतिचिक्षेप कालमृत्युसमप्रभम्। पार्वतीनन्दनेनापि शूलं पाशुपतेन ह ॥१२॥
क्षिप्रं तेन कृतं दग्धं मुहूर्तेन रणाजिरे। पुनः शक्तिं मुमोचाथ ब्रह्मदत्तान्तु दानवः ॥१३
शूलंप्रति जघानाथ शतकूटसमप्रभम्। ततोऽस्त्रे वज्रसङ्काशे जघटाते वियत्यपि ॥१४॥
तयोस्समवीर्ययोरस्त्रे धरण्यां प्रणिपेततुः।
ततो दैत्यपतिः स्कन्दं शरैरग्निशिखोपमैः ॥ १५ ॥
अर्दयामास सहसा घनधारैव पर्वतम्। तांस्तुच्छित्त्वा महाबाहुः सेनानीश्चापमस्य वै ॥
विचकर्तार्धचन्द्रेण तथा यन्तुः शिरो महत्। तथाश्वान्बहुभिर्बाणैः पातयामास भूतले
गृहीत्वा मुसलं वेगात्सदुद्राव स्थले गुहम्। जघान तेन दैत्येन्द्रः शिखिनंशिखिवाहनम्
ततो मोहं गतो बर्हीं प्रचकम्पे मुहुर्मुहुः।
ततः स्कन्दः पुनस्तं च जघानासुरपुङ्गवम् ॥ १६ ॥
प्रचिच्छेदासिना वेगान्मुसलं चातिदारुणम्।
तारेयः शक्तिमादाय जघान क्रौञ्चदारणम् ॥ २० ॥
सोऽपि शक्तिं मुमोचाथ अमोघां दुष्टघातिनीम्।
ततः सन्दह्य सा शक्तिर्विश्वप्रलयकारिणी ॥ २१ ॥
यमदण्डसमा तं च भित्त्वा पुनर्गुहं गता। स गतासुः पपातोर्व्यां चालयंश्चवसुन्धराम्
पुष्पधूपादिभिः स्कन्दः सर्वदेवैः प्रपूजितः ॥ २३ ॥
इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे तारेयवधो नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

———

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

यमेन देवान्तकदुर्धर्षदुर्मुखवधः ।

व्यास उवाच ।

ततो देवान्तको दैत्यो व्यनदत्समरंप्रति । रणं चकार धर्मेण सन्दष्टौष्ठपुटो बली ॥१॥
स गत्वा चाब्रवीद्वाक्यं सर्वलोकविगर्हितम् ॥ २ ॥

देवान्तक उवाच ।

न जानासि महद्धर्मं दुष्टमोहाद्यथाक्रमम् । पापपुण्यप्रयोगेण निग्रहानुग्रहे प्रभुः ॥ ३ ॥
अहं च निर्मितो धात्रा करोमि तव शासनम् । न जानासि यतोधर्मं कालमृत्युपुरःसरः
न रोगो न जरा कालो न मृत्युर्नव किङ्करः ।
धर्मात्प्रचलितः कर्मी कष्टं याति दिवानिशम् ॥ ५ ॥

व्यास उवाच ।

उक्त्वा चैवं महावीर्यं यमं धर्मैकसाक्षिकम् । स जघानत्रिभिर्बाणैः कालमृत्युसमप्रभैः
प्रचिच्छेद स धर्मात्मा ते त्वन्यैर्विशिखैस्त्रिभिः ।
ततस्तूच्चैः शरैः प्राज्यैर्युगान्तानलसप्रभैः ॥ ७ ॥
निजघान यमं सङ्ख्ये स चिच्छेद शरैः शरान् । एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धौ परस्परजयैषिणौ
जघ्नतुः समरेऽन्योन्यं महाबलपराक्रमौ ।
अहोरात्रं तयोर्युद्धमवर्त्तत सुदारुणम् ॥ ९ ॥
एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धः शक्त्या प्रशमनं रुषा । बिभेद दैत्यशार्दूलो ह्यहङ्कारयुतो बली ॥
तामेवाथ रुषा धर्मा गृहीत्वा शक्तिकां द्रुतम् ।
निजघान तयैवामुं स्तनयोरन्तरे भृशम् ॥ ११ ॥
सविह्वलितसर्वाङ्गो मुखादागतशोणितः । ततः क्रुद्धो महातेजा धृत्वा दण्डं सुदारुणम्
अमोघं पातयामास तस्य दैत्यस्य विग्रहे । साश्वं रथं तथा सूतं योद्धारं शस्त्रसञ्चयम्

चकार भस्मसात्तं च शमनः क्रोधमूर्च्छितः । पतिते च तथा दैत्ये दुर्धर्षो नाम दानवः
शमनं शूलहस्तस्तु प्रदुद्राव जिघांसया । शूलहस्तं समायान्तं वडवानलसन्निभम् ॥
आससाद रणे मृत्युः शक्तिहस्तोऽतिनिर्भयः ।
स च दृष्ट्वाऽसुरो मृत्युं शूलेनैव जघानह ॥ १६ ॥
शक्तिं चैव ततो मृत्युः प्रचिक्षेप रणाजिरे । संदह्य सहसा शूलं वह्निकूटसमप्रभम् ॥
दैत्यस्य हृदयंभित्त्वा गता सा च धरातलम् । सरथः स पपातोर्व्यां शक्तिजर्जरविग्रहः
अथान्यो दुर्मुखो मृत्युं कृष्टचापो महाबलः । खड्गचर्मधरः कालो रथ एव गतोऽभवत्
दृष्ट्वा तं विशिखैः प्राज्यैर्जघान स यमं रणे ।
स चाप्लुत्य रथाद्देवो ह्यसिना च सकुण्डलम् ॥ २० ॥
शिरश्चिच्छेद सहसा पातयित्वा च भूतले । हतशेषं बलं सर्वं प्रदुद्राव दिशो दश ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे देवान्तकदुर्धर्षदुर्मुखवधो नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

इन्द्रेणान्यनमुचिवधः ।

व्यास उवाच ।

अथान्यो नमुचिः क्रुद्धः स्यन्दनस्थो दिवौकसः ।
विशिखैरर्दयामास घोरैराशीविषोपमैः ॥ १ ॥
ततस्तु संयुगेदेवाः सिद्धकिन्नरपन्नगाः । न शक्नुवन्ति बाणानां वेगं सोढुं समन्ततः॥
रथमुच्चैश्श्रवोऽश्वेन युक्तं मातलिनेरितम् । पुरुहूतः समास्थाय प्रागमत्तं महाबलम् ॥
दृष्ट्वा शक्रं महावीर्यं नमुचिर्दैत्यपुङ्गवः । अब्रवीद्वासवं संख्ये वचनं सानुगे तदा ॥४॥

नमुचिरुवाच ।

प्राकृतं निर्जरं हत्वा न यशोऽस्ति न च प्रियम् ।

न लाभकृतकं वापि न जयस्तु पुरन्दर ! ॥ ५ ॥
तस्मात्त्वयि हतेऽत्रैव सर्वं भवति शाश्वतम् ।
देवराज्यं प्रलप्स्यामि सुखं भोग्यं सुरालये ॥ ६ ॥

व्यास उवाच ।

तमब्रवीन्महातेजाः शक्रः परपुरञ्जयः ॥ ७ ॥

इन्द्र उवाच ।

शूरतावाक्यमात्रेण सर्वत्र सुलभा भवेत् । महापराक्रमं यद्वा अस्ति ते दानवाधम ! ॥
दर्शयस्वाहवे वीर्यं पुरं नेष्यामि भास्करे ॥६॥

व्यास उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा महातेजाश्चुकोप दैत्यपुङ्गवः ।
पञ्चभिर्निशितैर्बाणैर्जघान सुरसत्तमम् ॥ १० ॥
तांस्तु चिच्छेद मघवा क्षुरप्रैः पञ्चभिर्द्रुतम् । जग्मतुस्तौ महावीर्यौ समरे विजयैषिणौ
अन्योन्यं सहसा वेगाच्छरैश्चिच्छिदतुः शरान् ।
बिभिदातेऽथ गात्राणि विशिखैर्भिदुरोपमैः ॥ १२ ॥
अत्यपूर्वं कृतं कर्म ताभ्यामेव रणे भृशम् । लाघवं शरसन्धानग्रहमोक्षेषु दुर्लभम् ॥
दृष्ट्वातु विस्मयं जग्मुर्देवा सुरगणास्तदा । एतस्मिन्नन्तरे दैत्यो मायास्त्रंप्रमुमोचह ॥
विशिखाः शतशस्तत्र विनिश्चेरुस्समन्ततः ।
शक्रः कोपात्पुनः शीघ्रं धनुरुद्यम्य वीर्यवान् ॥ १५ ॥
जघान विशिखैरुग्रैः सर्वगात्रेषु सञ्ज्वलन् ।
ततो मार्गणसाहस्रैरष्टभिस्त्वधिकं तथा ॥ १६ ॥
बिभिदाते ततोऽन्योन्यं चिच्छिदाते परस्परम् ।
शरैर्निरन्तराकाशं ददृशुस्तत्र संयुगे ॥ १७ ॥
निपतन्ति धरापृष्ठे खड्गपातैः सहस्रशः । एवं सुदीर्घकाले तु गते तस्मिन्महाहवे ॥१८॥
मायास्त्रं दर्शयामास क्रूरकृन्नमुचिस्तदा । तामसं त्रिषु लोकेषु कृतं स्यात्तु निरन्तरम् ॥

परस्परं न पश्यन्ति देवासुरगणा भृशम् । सूर्यचन्द्रग्रहाणां च वह्नीनां च दिवौकसाम्॥
तस्मिंस्तमसि दुष्पारे गभस्तिर्नैव दृश्यते । दैत्यस्य च ततस्तूर्णं शरैरग्निशिखोपमैः ॥

विभग्नाः सर्वदेवाश्च शक्रश्चरणसंमुखे।
शरैर्विभिन्नदेहास्तु निपेतुर्धरणीतले ॥ २२ ॥

प्रभग्नाश्चापरेशूरास्संयान्ति च दिशो दश । कूटं तस्य परिज्ञाय सर्वदेवार्चितो हरिः ॥

सौम्यमस्त्रं मुमोचाथ दिवि सूर्यशतप्रभम् ।
विलम्बितं समालोक्य शक्त्या च बहुघण्टया ॥ २४ ॥
जघानोरसि दैत्यस्य स पपात व्यथान्वितः ।
चिरात्संलभ्य संज्ञां च दैतेयः क्रोधमूर्च्छितः ॥ २५ ॥

गत्वावेगात्सुरश्रेष्ठमैरावतं दधारह । त्रासयामास सुतरामिन्द्रस्य द्विरदं रुषा ॥ २६ ॥
धृत्वा स तु गजं सेन्द्रं मुमोच धरणीतले । ततो भूमिगतः शक्रः कश्मलं च क्षणं गतः

अवप्लुत्य स दैत्येन्द्रो गजदन्तान्तरस्थितः ।
शक्रं ग्रहीतुकामस्य वधार्थं यूथपस्य सः ॥ २८ ॥
असिनाऽसुरमुख्यस्य शिरश्छित्वा न्यपातयत् ।
सर्वे प्रजहृषुर्देवा गन्धर्वा ललितं जगुः ॥ २९ ॥
मुदितास्ते च मुनयः स्तुवन्ति सुरसत्तमम् ॥ ३० ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे द्वितीयनमुचिवधो नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

विष्णुना मधुदैत्यवधः ।

व्यास उवाच ।

दिव्यं रथं समास्थाय धनुर्हस्तो बलैर्युतः । गत्वा च माधवं सङ्ख्येदेवासुरगणाग्रतः ॥
क्रोधेन महताविष्टो मधुर्निर्जरमर्दनः । अब्रवीत्पुरुषं वाक्यमव्ययं हरिमीश्वरम् ॥ २ ॥

नारायण न जानासि युद्धधर्ममितः कथम् ।
अन्यायाद् दुर्वधोपायं कृत्वा नष्टो न शोचसि ॥ ३ ॥
अनेन पङ्कयोगेन व्यवहारे कृतस्य च ।
सुरत्वं चोपनष्टं स्यादन्यसृष्टिं करोम्यहम् ॥ ४ ॥
त्वामेव निहनिष्यामि सह देवगणैरिह । इत्युक्त्वा धनुरादाय जघान विशिखैर्विभुम्॥
माधवस्तान्विभेदाथ शरैर्वज्रसमप्रभैः । बहुभिस्सर्वगात्रेषु जघान च मधुं ततः ॥ ६ ॥
माययाच्छादितः सोऽभूद्दैत्यस्तं सुरसत्तमाः ।
ये वै शूराश्च रुद्राद्यास्त्रिदशास्सत्त्वधारिणः ॥ ॥ ७ ॥
देव्यो नानाविधाश्चापि सायुधा वाहनान्विताः ।
सेनान्यो गणपा देवा लोकेशहरविष्णवः ॥ ८ ॥
अन्ये ग्रहादयो देवाः सर्वे युध्यन्ति सङ्गताः। विनष्टाश्च तदा देवा मधोर्वैमायया ध्रुवम्
संमुखे विमुखे चैव शरशक्त्यृष्टिवृष्टिभिः । पतन्ति सहसा देवा भूमौ शस्त्राभिपीडिताः
एतस्मिन्नन्तरे विष्णुर्गृहीत्वा च सुदर्शनम् ।
असुरान्मायया देवाञ्जघान रणमूर्धनि ॥ ११ ॥
अथ तेषां शिरांस्येष च्छित्वा चैव सहस्रशः ।
पातयामास देवेशो दैत्यानां च दुरात्मनाम् ॥ १२ ॥
एवमन्यान्विभुर्दैत्यान्द्रावयामास सङ्गरात् ।
तं दृष्ट्वा मुनयो देवाः सर्वे विस्मयमाययुः ॥ १३ ॥
कर्णे कर्णे प्रजल्पन्ते देवा मुनिगणास्तथा ॥ १४ ॥

मुनिदेवा ऊचुः ।

सदा देवैकगोप्ता च हरिरव्यय ईश्वरः । सर्वसाक्षी स्वयं देवो दैत्यजिष्णुर्युगेयुगे ॥१५॥
कथं हन्ति सुरान्सर्वान्कल्पान्त इह जायते ॥ १६ ॥

व्यास उवाच ।

एतस्मिन्नन्तरे दूरे मधुर्मायां प्रयोजिता । हररूपधरो भूत्वा अब्रवीद्धरिमव्ययम् ॥१७॥

मधुरुवाच ।

दैत्यानामग्रतः पाप रणे देवान्समन्ततः ।
हत्वा किं ते शिवं चाद्य धर्मकीर्तिर्यशोगुणाः ॥ १८ ॥
महतोन्मत्तभावेन न जानासि परान्स्वकान् ।
अतस्त्वां निशितैर्बाणैर्नयामि यमसादनम् ॥ १९ ॥

व्यास उवाच ।

एवमुक्त्वाशरैरुग्रैर्जघान केशवं रणे । निचकर्त शरांस्तांस्तु माधवो वाक्यमब्रवीत् ॥

माधव उवाच ।

जानामि त्वां रणे दैत्यं हररूपधरं प्रियम् । शूरं शूरविकर्माणं मधुं मायानियोजितम् ॥
मिथ्यालोकं प्रदास्यामि पातयित्वा रणाजिरे ॥ २२ ॥

व्यास उवाच ।

एतस्मिन्नन्तरे तीक्ष्णैः शरैर्विव्याधसंयुगे । जटिलं वृषकेतुं च वृषभस्थं महेश्वरम् ॥
तयोर्युद्धमतीवासीद्देवदानवयोस्तदा । परस्परं भिन्दतोश्च प्राप्तान्प्राप्ताञ्छराञ्छरैः ॥२४
क्षुरप्रेण धनुस्तस्य चिच्छेद हरिरव्ययः । ततश्च पातयामास घोटकं वृषरूपिणम् ॥२५
स दैत्यश्शूलहस्तोऽथ प्रदुद्राव जगत्पतिम् ।
भ्रामयित्वा ततः शूलं जघान परमेश्वरम् ॥ २६ ॥
त्रिभिश्चिच्छेद बाणैश्च शूलं कालानलप्रभम् ।
ततः क्रूरो महाबाहुर्मधुर्मायातिमायिकः ॥ २७ ॥
देवीरूपं समास्थाय सिंहस्थः प्रययौ हरिम् । शरैर्बहुविधैर्विष्णुं जघानैवाब्रवीद्वचः ॥२८

मधुरुवाच ।

स्वामी तु मे सुरश्रेष्ठ त्वयैव पातितो युधि ।
अहं त्वां च हनिष्यामि सुतौ स्कन्दविनायकौ ॥ २९ ॥

व्यास उवाच ।

उक्तवन्तं च दैतेयं जघा नबहुमार्गणैः । स पपात महीपृष्ठे गतासुर्लोहितोद्गिरः ॥३०

पितरौ निहतौ दृष्ट्वा मायाबद्धो महाबलः ।
स्कन्दः शक्तिं समादाय प्रायाद्योधयितुं हरिम् ॥ ३१ ॥
ततो धाताऽब्रवीद्वाक्यं स्कन्दं मोहप्रपीडितम् ॥ ३२ ॥

ब्रह्मोवाच ।

पश्य ते पितरौ दूरे पश्यन्तौ युद्धमीदृशम् ।
अन्तरिक्षे भ्रमन्तौ च संस्थितौ लोकसाक्षिणौ ॥ ३३ ॥

व्यास उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा ततो दृष्ट्वा तत्रैवान्तरधीयत। ततो धुन्धुश्च सुन्धुश्च भ्रातरावतिदर्पितौ ॥
वधं प्रतिहरेर्युद्धे पेततुर्गरुडोपरि । खड्गहस्तं च धुन्धुं च सगदं सुन्धुमेव च ॥ ३५ ॥
चिच्छेद नन्दकेनैकं गदयाऽसादयत्परम् । पेततुस्तौ धरापृष्ठे प्रवीरौ क्षतविक्षतौ ॥
मधुस्तदागतस्तूर्णमन्तर्धानं तमोवृतः । पातयामास विष्णौ च मायया शतपर्वतान् ॥
ततस्तान्पर्वतांश्छित्वा तमसोऽन्तर्गतो युधि ।
क्रोधात्सुदर्शनेनैव शिरश्छित्त्वा निपातितः ॥ ३८ ॥
ततो ब्रह्मादिभिर्देवैश्शम्भुना त्रिदशैरपि । मधुसूदन इति ख्यातिर्विष्णोर्लोकेषु कारिता॥
इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे मधुवधो नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥७४

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

इन्द्रेणवृत्रासुरवधः ।

व्यास उवाच

ततो वृत्रो महातेजा दैत्यानां प्रवरो युधि । दिग्गजाढ्यं समारूढः प्राद्रवद्बलसूदनम् ॥
आगच्छन्तं ततो वृत्रं शरैः कालानलप्रभैः । विव्याध सर्वगात्रेषु द्विरदस्थो महाहवे ॥२
ततो वृत्रस्तु शीर्षं च जिष्णोरेव पतत्त्रिणा । विव्याध सहसा तेन स चचालमहाबलः

आत्मानं च समाश्वास्य धनुरुद्यम्य वीर्यवान् ।
ववर्ष शरवर्षेण तस्य दैत्यस्य विग्रहे ॥ ४ ॥
शरांश्छित्वा बिभेदाशु शरैराशीविषोपमैः । शतक्रतुं महावीर्यः सर्वदेवाधिपं युधि ॥
ततः शरसहस्रैस्तु दैत्यं विव्याध देवराट् । परस्परं शरा यान्ति हेमरत्नविभूषिताः ॥
सञ्चरन्ति यथा वाता वृत्ताश्शतसहस्रशः । वियत्पथि शरा यान्ति यथा सप्ताश्वरश्मयः
एवं शरसहस्रैस्तु बिभिदाते परस्परम् ।
मनोजवसमाः शीघ्रा गाढाः शिखरिणो यथा ॥ ८ ॥
वडवानलसंस्पर्शाः खगावज्रारभेदकाः । तयोर्धनुष्मतोर्युद्धे शरास्तुल्यगुणान्विताः ॥
एवं क्रमेण युद्धे च अहोरात्रमवर्तत । महेन्द्रो द्विरदं तस्य शूलेनैव जघान ह ॥ १० ॥
स निपत्य महीपृष्ठे लाघवात्स्वरथं ययौ ।
रथस्थस्तस्य देवस्य शक्त्या चैरावणं दृढम् ॥ ११ ॥
बिभेद लाघवेनाशु वज्रेणेव महागिरिम् । शुशुभे कम्पमानस्तु सेन्द्रः स च महागजः ॥
ततः शक्तिं समादाय आविध्य मघवाऽसुरम् । बिभेदोरसि दैत्यस्य स पपात रथोपरि
क्षणात्संज्ञां समालम्ब्य स विनद्य पतत्रिणा ।
बिभेद समरे शक्रं स ततः कश्मलं गतः ॥ १४ ॥
इन्द्रःसंज्ञां पुनः प्राप्य जघान विशिखैःशितैः । शतकोटिसमैर्बाणैरर्दितो व्यथयान्वितः
ततो वृत्रो महाशूलं प्राक्षिपन्निर्जरेश्वरे । शाम्भवास्त्रेण देवेशो वैष्णवास्त्रं मुमोच ह
उभयोरम्बरे चास्त्रे वह्निकूटसमप्रभे । अन्योन्यं जघ्नतुस्तत्र स्फुलिङ्गानि विमुञ्चती ॥
स्पर्शने च स्फुलिङ्गानामुभयोः सेनयोर्भटाः ।
न शक्ताः सम्मुखे स्थातुं शलभा ज्वलने यथा ॥ १८ ॥
दग्धाः पेतुः पृथिव्यां च दिशस्सर्वाः प्रदुद्रुवुः । देवदानवयोर्वीराः शून्यस्तत्राभवद्रणः
स्वंस्वमस्त्रं समाहूय चक्रतुः सुभृशंतथा । अस्त्रंनिरस्तकं दृष्ट्वा सदैत्यः क्रोधमूर्च्छितः
मायया शैलसन्दोहमस्त्रं शक्रे मुमोच ह ।
बाणौघैः शैलसङ्घातं प्रचिच्छेद रणे हरिः ॥ २१ ॥

अघोरं प्रासृजद्दैत्यः पुरुहूते महाबले। कोटिकोटिसहस्राणि जन्तूनां प्रवराणि च ॥
सिंहशार्दूलभल्लूकवृकव्याघ्रमहागजाः। दन्दशूकादयः सत्त्वाः प्रधावन्ति सुरेश्वरम् ॥
क्षुरप्रैरर्धचन्द्रैश्च भल्लैः शिलीमुखैस्तथा। असम्प्राप्तान्प्रचिच्छेद मघवा परवीरहा ॥२४॥
ततो वृत्रो महाबाहुर्धनुरुद्यम्य वीर्यवान्। बिभेद शरसाहस्रैर्वज्रकल्पैः शतक्रतुम् ॥२५॥

छित्वा क्षुरप्रैश्शक्रश्च धनुस्तस्य चकर्त च।
सूतं चाश्वान्पृथिव्यां च पातयामास तत्क्षणात् ॥ २६ ॥
सकण्टकां गदां भीमां सम्पूज्यासुरसत्तमः।
जघान पविनः शीर्षे मोहाद्दन्ती क्षितिं ययौ ॥ २७ ॥

सगदः सर्वदेवेशो धरणीं समुपस्थितः। ततस्तयोर्गदायुद्धमवर्तत मुहुर्मुहुः ॥ २८ ॥

तयोः प्रहरतोः शब्दो गदापातोद्भवो ध्रुवम्।
आवर्तं परिवर्तं च चक्रतुस्तौ पुनः पुनः ॥ २९ ॥

अध ऊर्ध्वं प्रहारं च पार्श्वयोरतिभीषणम्। बभूवैवं तयोर्युद्धं लोकालोकभयङ्करम् ॥

दृष्ट्वा देवगणाः सिद्धा दानवा विस्मयं गताः।
युद्ध्यमानौ तु तौ वीरौ मृत्युसंशयमागतौ ॥ ३१ ॥

देवदानववीराश्च द्रष्टुं नैव तदीशिरे। ईशब्रह्मादयः खे तु स्थिता द्रष्टुं तदद्भुतम् ॥३२॥
तयोर्हुंकारशब्देन गदापातस्वनेन च। ऊर्ध्वोर्ध्वमगमच्छब्दो ह्यशनेश्चोपजायते ॥३३॥
भग्ने गदे द्वयोरेव करः सम्पुटितस्तयोः। एवं चैवार्धयामेन तयोरस्त्रे निपेततुः ॥३४॥
एतस्मिन्नन्तरे वीरौ खड्गचर्मधरौ तदा। प्रतियोद्धुं महाघोरमाहवे सम्प्रचेरतुः ॥३५॥
निस्त्रिंशौ विद्युदुल्काभौ तयोर्गात्रे च चर्मणी। दृश्यते सर्वलोकैश्च लाघवाद्विस्मयंगतैः
चिच्छिदाते तयोरेव चर्मणी बहुवर्णके। भीष्मकं बलयुद्धं च तयोरेवं प्रवर्तते ॥ ३७ ॥
मण्डलं चक्रधन्वं च लाघवं च परिप्लुतम्। वृत्रवासवयोर्युद्धं वृत्रवासवयोरिव ॥

केशान्वृत्रस्य उत्प्लुत्य सम्प्रधृत्यासिना द्रुतम्।
शिरश्चिच्छेद सहसा मघवा रणमूर्धनि ॥ ३९ ॥

जयशब्दस्ततस्त्वासीद्देवानां च समन्ततः। प्रोत्फुल्लहृदया देवा मघवन्तमपूजयन् ॥४०॥

देवदुन्दुभयो नेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः । गीतं गायन्ति गन्धर्वा मुनयः स्तुतिपाठकाः ॥

भीताः पलायिताः सर्वे दैत्यास्त्यक्तायुधा दिशः ॥ ४२ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे वृत्रासुरवधो नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

गणेशेन त्रैपुरिवधः ।

व्यास उवाच ।

चतुर्भिस्तुरगैर्जुष्टं रथं सूर्यसमप्रभम् । त्रैपुरिः संरुरोहाथाब्रवीद्वाक्यं गणाधिपम् ॥

त्रैपुरिरुवाच ।

पिता मे निहतः पित्रा तव यस्माद्गणाधिप ।

तस्मात्त्वामद्य विशिखैर्नयामि यमसादनम् ॥ २ ॥

व्यास उवाच ।

ततस्तमब्रवीद्देवो गणेशस्त्रिपुरात्मजम् ॥ ३ ॥

गणेश उवाच ।

तव तातेन दुष्टेन सुराणामहितं पुरा । कृतं कर्म महत्पापं श्रुतं नो जनकेन हि ॥ ४ ॥

पापकर्मरतं दुष्टं ज्ञात्वा ज्ञानबलेन च । अवधीत्तं शरेकेन पितरं ते बलेन च ॥ ५ ॥

पङ्कात्प्रतारितो मोहात्प्रेषितो यममन्दिरम् ।

त्वां चाहं तत्पथं दैत्य प्रेषयामि क्षणादिह ॥ ६ ॥

व्यास उवाच ।

उक्तवन्तं महाप्राज्ञं सुराणां च गणाधिपम् । विव्याध दशभिस्तीक्ष्णैः कालानलसमप्रभैः

ततः शरसहस्रैस्तु दैत्यं विव्याध साहसात् ।

यमदण्डसमैर्बाणैः क्षुरप्रैश्च शिलीमुखैः ॥ ८ ॥

कङ्कपत्रैर्महातीक्ष्णैर्वज्रानलसमप्रभैः । चिच्छेद शरांश्चास्य लम्बोदरः सुरार्चितः ॥ ६ ॥
पुनर्विव्याध विशिखैः सहसा भिदुरोपमैः । शरैरर्दितसर्वाङ्गो मूर्च्छितस्त्वपतद्भुवि ॥

ततो भद्रश्च सौभद्रो भीषणो निर्जरान्तकः ।
स्वां स्वां गदां समादाय दुद्रुवुस्तं विनायकम् ॥ ११ ॥

युगपत्ते गदापातैर्निजघ्नुर्गणनायकम् । लाघवात्तु वृथा कृत्वा गदास्तेषां महाबलः ॥
भद्रकस्य तु शीर्षं वाहनत्परशुना तदा । सौभद्रस्योत्तमाङ्गं च असिनाग्रे निपातितम् ॥

भीषणस्य कुठारेण खड्गेन निर्जरान्तकम् ।
पातयित्वा च हेरम्बो महागिरिसमांस्तदा ॥ १४ ॥

चतुरो गणमुख्यांश्च अन्यांश्चापातयद्द्विषः । ततः संज्ञां समालभ्य त्रैपुरिश्चासुरोत्तमः
समारुह्य रथं स्वं च जघान सुरसत्तमम् । विशिखैरर्धचन्द्रैश्च क्षुरप्रैर्भल्लकैस्तथा ॥१६॥

तांस्तु चिच्छेद धर्मात्मा पुनर्विव्याध तं शरैः ।
चतुर्भिः सैन्धवांश्चैव शरैकेन च सारथिम् ॥ १७ ॥

शरैः सम्पातयामास धरण्यां गणनायकान् । लाघवात्तु रथं चान्यं गत्वा त्रिपुरनन्दनः
विशिखैर्वज्रसङ्काशैः संबिभेद गणाधिपम् । रुधिरेणावसिक्ताङ्गो रुषा घोरयमप्रभः ॥
ललाटे च त्रिभिर्बाणैस्सप्तभिश्च स्तनान्तरे । चतुर्भिर्नाभिदेशे च पञ्चभिर्मुष्टिमस्तके ॥
संबिभेद महाक्रोधो बलिनं शम्भुनन्दनः । शरैरर्दितसर्वाङ्गः स दैत्यो रणमूर्धनि ॥
कश्मलं परमं गत्वा सम्पपात रथोपरि । ततः सूतेन धीरेण अपनीतो रणाजिरात् ॥
विमुखं नाहनच्छूरो विनायकः सुरार्चितः । चिरात्संज्ञां समालभ्य यन्तारं चाब्रवीद्वचः

त्रैपुरिरुवाच ।

गच्छ सूत रणे भीरुं विनायकं हरात्मजम् ॥ २४ ॥

व्यास उवाच ।

ततो यन्ताऽब्रवीद्वाक्यं सत्यं पथ्यं च कोमलम् ॥ २५ ॥

सारथिरुवाच ।

हरात्मजशरान्सोढुं कस्समर्थो रणाजिरे । तस्मान्मोहगतस्त्वं च मयानीतः प्रभासुत

एतज्ज्ञात्वा त्विदानीं भो यद्युक्तं तद्विधीयताम्॥ २७ ॥

व्यास उवाच।

एतस्मिन्नन्तरे राज्ञा प्रेरितः कविसत्तमः। औषधादिप्रयोगेण गजः संज्ञामबोधयत्॥

अकारयच्छतगुणप्राणं च जयमादिशत्।

प्राग्जलं मन्त्रितं दत्त्वा रुरोधास्याङ्कव्रणान्॥ २९ ॥

स गजोदशनैरेव स्फोटयामास वै गिरिम्। एवंशतसहस्राणि सैन्यानि सैन्यपालकान्

पातयामास समितौ गजः परमदुर्जयः।

सदैत्यस्तस्य पृष्ठस्थः शरैः कालानलप्रभैः॥ ३१ ॥

हत्वा त्वपातयच्चोर्व्यां मुख्यमुख्यान्सुराधिपान्। शरैस्तस्य तदा देवायमदण्डसमप्रभैः

निपतन्ति महावीर्या रुधिरौघपरिप्लुताः।

यस्मिन्यस्मिंश्च मार्गे तु सदैत्यः सगजो गतः॥ ३३ ॥

तत्र तत्र चकाराशु भीषणं सञ्चितं शरैः। गजेन पातिताः केचिद्गजारोहेण चापरे॥

वेगेन भ्रमणेनैव सुराः केचित्प्रतापिताः। एवं सुरगणाध्यक्षाः शस्त्रास्त्रैर्विविधैश्च तम्

स गजं युद्धनिर्भीता निजघ्नुर्बहुभिः शरैः।

तथापि तद्गजं योद्धुं न शक्तास्ते महाबलाः॥ ३६ ॥

क्षिप्रं तांस्तु गजो दन्तैस्त्रैपुरोऽपातयच्छरैः। न गता ये धरण्यां च देवा जर्जरविग्रहाः

धरण्यां गणपं जग्मुर्भीतास्ते वेदनातुराः।

देवानां कदनं दृष्ट्वा गणाधीशः प्रतापवान्॥ ३८ ॥

स गजं ताडयामास वज्रानलसमैः शरैः। स गजोवेगसंरुद्धः शरेण च समुत्थितः॥

अथो तौ द्वौ शरैरेव बिभिदाते परस्परम्।

उभौ तौ नर्दमानौ च अन्योन्यं जयमैच्छताम्॥ ४० ॥

शोणितैर्लिप्तसर्वाङ्गौ वीरमुख्यौसुरासुरौ। अथाखुं स गजो मत्तो बिभेद दशनैःस्वकैः

आखुनाऽभिद्रुतो नागो घोरयुद्धं तयोः परम्।

अधोर्ध्वं संविभागे च चतुर्भिर्युद्धमद्भुतम्॥ ४२ ॥

स शब्दं तुमुलं युद्धं सर्वलोकभयङ्करम् । दशनैर्दशनैरेव शरैरेव शरोत्तमैः ॥ ४३ ॥
तद्घोरमभवद्युद्धं देवदानवसङ्कुरे । आखुको भेदयाञ्चक्रे महानागं महाबलम् ॥ ४४ ॥
पर्शुनापृष्ठवंशाग्रे स्थित्वा तेनाहनत्पुनः । दैत्यस्य दशनद्वारे हृदिस्कन्धेऽथ लाघवात् ॥

स गजः सपपातोर्व्यां गतासुर्लोहितं वमन् ।
शशंसुर्मुनयो देवास्साधुसाध्विति चाब्रुवन् ॥ ४६ ॥

गणपं पुष्पगन्धैश्च गन्धधूपैरपूजयन् । दुद्रुवुर्दैत्यसङ्घाश्च भीताश्च प्राणकातराः ॥ ४७ ॥

तथैव सह पार्वत्या सुरानाह महेश्वरः ॥ ४८ ॥

महेश्वर उवाच ।

अत्रान्येऽस्त्रैरमोघैश्च दैत्यानाजघ्नुराहवे । यावत्तु सेनयोर्नैव जययुद्धं समापयेत् ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे त्रैपुरिविमर्दो नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः ।

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

देवदैत्यानां द्वन्द्वयुद्धम् ।

व्यास उवाच ।

श्रुत्वा महेश्वराद्वाक्यं देवाः शक्रपुरोगमाः । दुद्रुवुर्दैत्यसङ्घास्तान्सर्वे सर्वान्समन्ततः ॥
आजगाम महाबाहुः कुम्भो नाम महासुरः ॥ नैर्ऋतो यक्षराजानं गदया चाहनद् भृशम्
गुह्यकेशो गदापातैर्जघान भृशमुत्तमम् । ततोऽन्योन्यं गदायुद्धमभवद्भीषणं तयोः ॥ ३ ॥

चक्रबन्धं महाबन्धं पुरो बध्य निबन्धनम् ।
प्राचुरं भीषणं यानं स्फोटतैलाभिवास्तिकम् ॥ ४ ॥

तेन कृत्वा महायुद्धमवसाने धनेश्वरः । पातयामास तं स्फोटं तस्य कुम्भस्य चोरसि ॥
भग्नदंष्ट्रस्ततः कुम्भो निपपात महीतले । स्यन्दनस्थो महावीर्यो जम्भो हरिहयं तदा ॥
जघान शरसङ्घैश्च तथैवैरावणं भृशम् । वासवो भिदुरेणैव सविभेदासुरोत्तमम् ॥७॥

सपपात धरापृष्ठे गतासुर्लोहितोक्षितः । तथारण्यं सुघोरं च अघोरं घोरमेव च ॥८॥
चतुरो गणमुख्यांश्च शक्त्या बिभेद संयुगे । सेनानीश्चैव प्रत्येकं पातयामास लाघवात्
सौरभं शरसङ्घैश्च जयन्तो वशमानयत् । शक्तिहस्तं च संह्लादं यमदण्डं नरान्तकम् ॥

हत्वा च पातयामास स भस्मीकृतविग्रहः ।
कालश्च खड्गपातेन पातयामास बाभ्रवम् ॥ ११ ॥

शक्त्या मृत्युर्बिभेदाश्वं तथानिर्घृणकं रणे । अग्निना दह्यमानाश्च ससैते च महाबलाः ॥
भद्रबाहुर्महाबाहुः सुगन्धो गन्ध एव च । भौरिको वह्निको भीम एते सेनाग्रगामिनः

रणे सन्दग्धदेहाश्च पेतुरुर्व्यां गतासवः ।
पाशबद्धा महावीर्या वरुणस्य महात्मनः ॥ १४ ॥

पेतुरुर्व्यां महासत्त्वाः शूराः शूरभयानकाः । शूरस्य रश्मिजालेन निहताः पञ्चदानवाः
तुरुतुम्बुरुदुर्मेधस्साधकासाधकाभिधाः । क्रूरक्रौञ्चरणेशानमोदसम्मोदषण्मुखाः ॥१६॥
शरैर्निपातिता दैत्याः संयुगे मातरिश्वना । नैर्ऋतो गदया भीमं पातयामास भूतले ॥
शूलपातैश्च रुद्राणां शतशो दैत्यदानवाः । निपेतुः संयुगे भीताः संमुखा रणपण्डिताः

वसूनां शरपातैश्च शूराणां रश्मिमालिनाम् ।
मेघानां करकाभिश्च वज्रपातैस्सुदारुणैः ॥ १९ ॥

निपातिता रणे दैत्याः शतशो बलशालिनः । कुबेरस्य गदापातैर्निपतन्ति सहस्रशः ॥

शक्रस्य भिदुरेणैव भेदिता दैत्यपुङ्गवाः ।
असङ्ख्याताः पतन्त्युर्व्यां स्कन्दशक्त्या तथाहताः ॥ २१ ॥

गणेशपर्शुपातेन पतन्ति मुख्यमुख्यकाः । वैकुण्ठकरमुक्तेन चक्रेण तीव्रकर्मणा ॥ २२ ॥
दैत्यानां प्रवराणां च शिरांसि निपतन्ति कौ । शमनो यमदण्डेन कोटिकोटिसहस्रशः

अपातयत्तदा भूम्यां कालः खड्गेन दानवान् ।
मृत्युश्शक्त्या तथा दैत्यान्पाशीपाशेन चापरान् ॥ २४ ॥
पातेन तक्षकादीनां सुधांशोः शिशिरेण च ।
अश्वारोही खरो मन्यो हनिपाशस्तथा गजान् ॥ २५ ॥

परिघेण गजं कुम्भे दैत्यानां नाशयत्ततः । एवमश्वान्गजांश्चैव लाघवात्स न्यपातयत्
एवं सिद्धैश्च गन्धर्वैरप्सरोभिर्महाबलैः । अन्याभिर्देवताभिश्च समातृगणनायकैः ॥२७॥
निपातिता महोग्रोरा ये ते प्रलयदानवाः । शरैश्च खड्गपातैश्च शूलशक्तिपरश्वधैः ॥
यष्टिपरिघकुन्तैश्च पातयन्त्यसुरान्सुराः । एवं संक्षीयमाणेषु दैत्यराट् समपद्यत ॥२९॥
आदित्यरथसङ्काशं रथं रत्नविभूषितम् । शातकुम्भमयं दिव्यं घण्टाचामरभूषितम् ॥
पताकाध्वजसम्पूर्णं रम्यं शक्ररथोपमम् । समारुह्य महावीरो हिरण्याक्षोऽसुराधिपः ॥
जघान शरजालैश्च दुर्निवार्यः सुरासुरैः । ससैन्यानि गजान्वीरो रथांश्च सहसैन्धवान्

पातयामास भूमौ च शतशोऽथ सहस्रशः ।
एवं चरन्सवृन्देषु निखिलेषु दिवौकसाम् ॥ ३३ ॥
पातयामास दैत्येन्द्रः शरौघान्मृत्युसन्निभान् ।
क्रमेण समरे चाथ देवसैन्यान्यमन्थत ॥ ३४ ॥

यथा पुष्करिणीवृन्दे गजः कञ्जवनं शितैः । शरपातैरथो वेगात्सिंहनादैः पुनः पुनः ॥
धरण्यां पतिता वेगात्तदा दैत्येश्वरस्य च । दशभिश्च सुतीक्ष्णाग्रैर्जयन्तं स जघानह ॥
रैमन्तं पञ्चभिर्बाणैः शक्रं पञ्चदशेन तु । चित्ररथं विंशतिभिः पञ्चविंशतिभिर्गुहम् ॥
हेरम्बं त्रिशरेणैव चत्वारिंशच्छरैर्यमम् । तथैव कालं मृत्युं च पाणिना द्विगुणेन च ॥
गुह्यकेशं जगत्प्राणं दशभिर्दशभिः शरैः । षड्भिश्च सप्तभिश्चैव रुद्रान्सर्वान्पृथक्पृथक्
वसून्सर्वांश्च सशरैः सिद्धगन्धर्वपन्नगान् । दशाष्टदशभिः षड्भिर्युद्धे देवान्भिनत्त्यसौ
ओजौघादतिवीर्याच्च शीघ्रलाघवदर्शनात् । आपत्प्राप्ताः सुराभीत्या प्रतिकर्तुं न चेश्वराः
महेशशूलसङ्काशैः शरैर्मर्मविभेदिभिः । ताडिता निर्जरायुद्धे मूर्च्छिता धरणीं ययुः ॥

तस्यैव संमुखे स्थातुं न शेकुः प्रवरास्सुराः ।
ततो देवा विनिर्धूतास्त्रिदिवेशेन संयुताः ॥ ४३ ॥

शरण्यं ते हरिं तत्र शरणं ताडिता ययुः । एतस्मिन्नन्तरे विष्णुः प्राहजिष्णुं खगेश्वरम्

विष्णुरुवाच ।

अधुना गच्छ दैत्यस्य सम्मुखं रणमर्धनि ॥ ४५ ॥

व्यास उवाच ।

नाशाय स ततस्तूर्णं गतस्तस्यान्तिकं जवात् ।

सरथं मार्गणैर्भित्त्वा विष्णुमारोधयज्जवम् ॥ ४६ ॥

रथस्य सम्मुखे दैत्य उवाच विष्णुमव्ययम् ॥ ४७ ॥

दैत्यराज उवाच ।

अन्यसृष्टिं करोम्यद्य हत्वा त्वां च सनिर्ज्जरम् ॥ ४८ ॥

व्यास उवाच ।

ततो विष्णुरुवाचेदं गर्जन्तं दैत्यपुङ्गवम् ॥ ४९ ॥

विष्णुरुवाच ।

शक्तस्त्वं स्पर्द्धने पाप यदि युद्धे स्थिरो भव ॥ ५० ॥

व्यास उवाच ।

ततः शरशतैरेव जघान विष्णुमव्ययम् । असम्भ्रान्तः स चिच्छेद यमदण्डनिभाञ्छरान्

पुनः शरसहस्राणि प्रेरयामास तं रणे ।

तांश्च छित्वा शरैः शौरिस्तं च विव्याध मार्गणैः ॥ ५२ ॥

प्रगौरवाद्हार्याभैः संस्पर्शाद्वाडवानलैः । शरैश्च भेदकैस्तीक्ष्णैः खगमैश्च मनोजवैः ॥

लाघवात्केशवास्त्रस्य तूलशुष्कतृणोपमैः । हैमैः शरसहस्रैस्तु ताडितो दैत्यपुङ्गवः ॥

बाधयाभ्यर्दितः क्रुद्धो धृत्वा शिखरिणं रणे । जघान माधवं वेगाद्धिरण्याक्षो महाबलः

तं च सञ्चूर्णयामास गदया लीलया हरिः । एवं पर्वतसाहस्रं पातितं तु क्रमेण हि ॥

तथैव लाघवाच्चूर्णं हरिणा दानवारिणा ।

पुनर्बाहुसहस्राणि कृत्वाऽसौ दानवोत्तमः ॥ ५७ ॥

शरैः शक्तिभिरत्युग्रैः शूलैः परशुकादिभिः । ववर्ष बहुभिर्विष्णुं क्रोधाविष्टेन चेतसा ॥

तांस्तु तेनैव प्रहितांश्चिच्छेद सुरसत्तमः । शरैर्दीप्तैर्महाघोरैरसुराणां भयङ्करैः ॥ ५९ ॥

विव्याध सर्वगात्रेषु शम्भुशूलोपमैश्शरैः । दानवाधिपतिं सङ्ख्ये ह्यव्ययो हरिरीश्वरः

स च कश्मलतां गत्वा सर्वशक्तिमनुत्तमाम् ।

कालजिह्वोपमां घोरामष्टघण्टासमन्विताम् ॥ ६१ ॥

हरेरुरसि पीने च चिक्षेप्या पातयद्द्रुतम् । शुशुभे स सुरश्रेष्ठस्तडित्वत्सान्द्रमेघवत् ॥

ततश्च चुक्रुशुर्दैत्या जयेति साधुवादिनः ।

ततश्चक्रं दैत्यसैन्ये दानवारिर्व्यसर्जयत् ॥ ६३ ॥

तेषां शिरांसि सञ्छिद्य माधवं पुनरागमत् ।

सदैत्यं शक्तिपातेन पातयामास वै रणे ॥ ६४ ॥

चिरात्संज्ञां समालम्ब्य वह्निबाणेन केशवम् ।

निजघान रणे क्रुद्धो हरिः कौबेरमाक्षिपत् ॥ ६५ ॥

ततो मुमोच मायास्त्रं चासुरं चातिदारुणम् । सिंहव्याघ्रलुलायांश्चतद्वद्द्विपसरीसृपान्

जघान समरे विष्णुं हिरण्याक्षः प्रतापवान् ।

ततो मायास्त्रसम्भूतांश्छस्त्रास्त्रौघान् रणे हरिः ॥ ६७ ॥

प्रचिच्छेद शरैरेव शूलेनैवमताडयत् । सविह्वलितसर्वाङ्गस्तत्क्षणंलोहितोक्षितः ॥६८॥

विचकर्ष हरन्विष्णुरसृग्विप्लुतविग्रहः । तच्छूलं च त्रिभिर्बाणैः प्रविव्याध सुराधिपः

वरूथं सध्वजं केतुं रथं चैवातपत्रकम् । यन्तारं च प्रचिच्छेद दशभिश्च हरिः शरैः ॥

पातिते च रथे दैत्यः सम्प्लुत्याथ रथंपरम् । आरुरोह सदैत्येन्द्रः सम्मुखं चाकरोद्बली

ततो युद्धं महाघोरमभवल्लोमहर्षणम् । हिरण्याक्षस्य च हरेर्लोकविस्मापनं महत् ॥

अस्त्रयुद्धं तथान्योन्यं कृतप्रतिकृतं च तत् । ततो नियुद्धे सततं दिव्यवर्षशतं गतम् ॥

ततो दैत्यो महासत्त्वो ववृधे वामनो यथा ।

मुखेन जग्राह रुषा त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ७४ ॥

भूमण्डलं समुद्धृत्य विवेश च रसातलम् । शेषाश्च विविशुर्दैत्यास्तमनुप्रीतिसंयुताः ॥

ततो विष्णुर्महातेजा ज्ञात्वा दैत्यबलं महत् । दधार रूपं वाराहं दैत्यराजजिघांसया ॥

धृत्वा क्रोडतनुं विष्णुर्विवेश तमनुद्रुतम् ।

तत्र गत्वा रसामूले रसातलगतां महीम् ॥ ७७ ॥

दृष्ट्वा स्वदंष्ट्रयोर्दध्रे लोकाधारां वसुन्धराम् ।

तां धृत्वा गच्छतस्तस्य विष्णोरमिततेजसः ॥ ७८ ॥
समाजगाम दैत्येन्द्रो धृष्टं वाग्भिस्तुदन्ननु । मायाक्रोडतनुर्विष्णुर्दुर्वचांसि सहन्रुषा ॥
जलोपरि दधारेमां धरां भूधर एव च ।
तस्यां न्यस्य स्वसत्त्वं च स चकार तदाऽचलाम् ॥ ८० ॥
ततः पश्चात्स संलग्नो दैत्यराट् समुपस्थितः ।
क्रोधेन महताविष्टो जघान गदया हरिम् ॥ ८१ ॥
मायया सूकरो विष्णुस्तां गदां समवञ्चयत् ।
योगयुक्तो यथा मृत्युं कौमोदक्याहनच्च तम् ॥ ८२ ॥
ततः पुना रुषाविष्टोहिरण्याक्षोमहाबलः । मुष्टिना प्राहरद्देवं दक्षिणे तु भुजेप्रभोः ॥
एवं युद्धं महाघोरं सव्यासव्यं गतागतम् । परिभ्रमणविक्षेपं कृतानुकरणं तथा ॥ ८४ ॥
ततो ब्रह्मादयो देवा युद्धं पश्यन्ति खे स्थिताः ।
स्वस्ति प्रजाभ्यो देवेभ्य ऋषिभ्यश्चेति चाब्रुवन् ॥ ८५ ॥
ऊचुश्च देवदेवेशं विष्णुं वाराहरूपिणम् ॥ ८६ ॥

ब्रह्मादय ऊचुः ।

मा क्रीड बालवद्देव जह्यमुं देवकण्टकम् ॥ ८७ ॥

व्यास उवाच ।

ततो विष्णुर्महातेजा मायावाराहरूपधृक् । ब्रह्माद्यनुमतिं प्राप्य चक्रं प्राक्षिपदुल्बणम् ॥
सहस्रसूर्यसङ्काशं सहस्रारं महाप्रभम् । दैत्यान्तकरणं रौद्रं प्रलयाग्निसमप्रभम् ॥८९॥
तच्चक्रं विष्णुना मुक्तं हिरण्याक्षं महाबलम् ।
चकार भस्मसात्सद्यो ब्रह्मादीनां च पश्यताम् ॥ ९० ॥
दैत्यान्तकरणं रौद्रं चक्रं चागमदच्युतम् । ततो ब्रह्मादयो देवाःशक्रमुख्याश्च लोकपाः
दृष्ट्वा च विजयं विष्णोः स्तुवन्तिस्म समागताः ॥ ९१ ॥

देवा ऊचुः ।

नताःस्म विष्णुं जगदादिभूतं सुरासुरेन्द्रं जगतां प्रपालकम् ।

यन्नाभिपद्मात्किलपद्मयोनिर्बभूव तं वै शरणं गताः स्मः ॥९२॥
नमो नमो मत्स्यवपुर्द्धराय नमोऽस्तु ते कच्छपरूपधारिणे ।
नमः प्रकुर्मश्च नृसिंहरूपिणे तथा पुनर्वामनरूपिणे नमः ॥ ९३ ॥
नमोऽस्तु ते क्षत्त्रविनाशनाय रामाय रामाय दशास्यनाशिने ।
प्रलम्बहन्त्रे शितिवाससे नमो नमोऽस्तु बुद्धाय च दैत्यमोहिने ॥ ९४ ॥
म्लेच्छान्तकायापि च कल्किनाम्ने नमः पुनः क्रोडवपुर्धराय ।
जगद्धितार्थं च युगे युगे भवान्बिभर्ति रूपं त्वसुराभवाय ॥ ९५ ॥
निषूदितोऽयं ह्यधुना किल त्वया दैत्यो हिरण्याक्ष इति प्रगल्भः ।
यश्चेन्द्र मुख्यान्किललोकपालान्संहेलया चैव तिरश्चकार ॥ ९६ ॥
स वै त्वया देवहितार्थमेव निपातितो देववर प्रसीद ।
त्वमस्य विश्वस्य विसर्गकर्ता ब्राह्मे ण रूपेण च देवदेव ॥ ९७ ॥
पाता त्वमेवास्य युगे युगे च रूपाणि धत्से सुमनोहराणि ।
त्वमेव कालाग्निहरश्च भूत्वा विश्वं क्षयं नेष्यसि चान्तकाले ॥ ९८ ॥
अतो भवानेव च विश्वकारणं न तेऽपरं जीवमजीवमीश ।
यत्किंच भूतं च भविष्यरूपं प्रवर्त्तमानं च तथैव रूपम् ॥ ९९ ॥
सर्वं त्वमेवासि चराचराख्यं न भाति विश्वं त्वदृते च किंचित् ।
अस्तीति नास्तीति च भेदनिष्ठं त्वय्येवभातं सदसत्स्वरूपम् ॥ १०० ॥
ततो भवन्तं कतमोऽपि देव न ज्ञातुमर्हत्यविपक्वबुद्धिः ।
ऋते भवत्पादपरायणं जनं तेनागताः स्मश्शरणं शरण्यम् ॥ १०१ ॥

व्यास उवाच ।

ततो विष्णुः प्रसन्नात्मा उवाच त्रिदिवौकसः ॥ १०२ ॥

विष्णुरुवाच ।

तुष्टोऽस्मि देवा भद्रं वो युष्मत्स्तोत्रेण साम्प्रतम् ॥ १०३ ॥
य इदं प्रपठेद्भक्त्या विजयस्तोत्रमादरात् । न तस्य दुर्लभं देवास्त्रिषु लोकेषु किंचन ॥

गवां शतसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम् ।
तत्फलं समवाप्नोति कीर्तनाच्छ्रवणान्नरः ॥ १०५ ॥
सर्वकामप्रदं नित्यं देवदेवस्य कीर्तनम् । अतःपरं महाज्ञानं न भूतं न भविष्यति ॥
इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे देवासुरसंग्रामसमाप्तौ विजयस्तोत्रं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

रणे मृतानां दैत्यानामुत्तमगतिप्राप्तिः ।

संजय उवाच ।

येऽसुराश्च मृता युद्धे सम्मुखे विमुखेऽपिवा । गतिं तेषामहं ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामितत्त्वतः
असङ्ख्याता इमे दैत्यास्त्रैलोक्ये सचराचरे ।
अद्याप्यासन्गताः कुत्र एतन्मे शंस भोगुरो ॥ २ ॥

व्यास उवाच ।

ये मृतास्संमुखे शूरा दैत्यानां प्रवरा रणे ।
स्वयं प्राप्य च देवत्वं भोग्यमश्नन्ति शाश्वतम् ॥ ३ ॥
प्रासादा यत्र सौवर्णा नानारत्नविभूषिताः । सर्वकामप्रदा वृक्षाः स्वर्णदीतोयसंयुताः ॥
पद्मोत्पलसुकह्लारैर्गन्धाढ्यैरन्यपुष्पकैः । दधिदुग्धाज्यखण्डैश्च युता पुष्करिणी शुभा ॥
अतीवरूपसम्पन्नाः सदैव नवयौवनाः । यत्र सन्ति स्त्रियो दिव्याः सर्वाभरणभूषिताः
तत्र राज्यं प्रकुर्वन्ति तथैव वसुधातले । एवं जन्माष्टकं प्राप्य धनिनोऽध्यक्षमन्त्रिणः ॥
अर्धसंमुखगात्रेण दिवमश्नन्तिशाश्वतम् । विमुखाः कातरा भीता ये च मायाविनो रणे
ते यान्ति निरयं घोरं ये च देव द्विजद्विषः । पतितं मूर्च्छितं भग्नमन्ययोद्धारमाहवे ॥
हन्तारो निरयं यान्ति ते च म्लेच्छाः कुयाचकाः ।
परन्यासापहर्तारो विमुखास्सन्ति तत्त्वतः ॥ १० ॥

रात्रौ वा विपिने नष्टे चोरास्साहसकारिणः। सर्वभक्षरता मूढा म्लेच्छागोब्रह्मघातकाः
कुवाचकाः परैर्म्लेच्छा एते ये कूटयोनयः। तेषां पैशाचिकी भाषा लोकाचारोनविद्यते

नास्ति शौचं तपो ज्ञानं न देवपितृतर्पणम्।
दानश्राद्धादिकं यज्ञे सुराणां च प्रपूजनम् ॥ १३ ॥

पितॄणां च न शुश्रूषा द्विजदेवतपस्विनाम्। ज्ञानलोपादतस्तेषां मलशौचं न विद्यते ॥

मातरं भगिनीं चान्यां गृहिणीं कामयन्ति च।
सर्वो विपर्ययो लोकात्सदाचारो मलीमसः ॥ १५ ॥
तार्क्ष्यस्योद्गमनानां च अन्येषां गोत्रवासिनाम्।
कुलजातास्सदा दैत्या येषां पुण्यमकारणम् ॥ १६ ॥

दुर्गतिं च मृता यान्ति द्विजस्त्रीशिशुघातिनः। गवाशिनो दुरात्मानोह्यभक्ष्यभक्षणेरताः
कीटयोनिं व्रजन्त्येते तरवश्च पिपीलिकाः। न मन्त्रेषु न देवेषु कल्पन्ते ते सुरद्विषः ॥
अग्रजः सहजस्तेषां स दुर्घ्नो ग्राम्यवृत्तयः। लोमकेशप्रणेतारः क्रव्यभक्षरता भुवि ॥
साहसं च व्रतं दानं स्नानं यज्ञादिकं च यत्। मत्स्यमांसादिषु प्रीता मृषावचनभाषिणः

सदा कामास्सदा लोभास्सदा क्रोधमदान्विताः।
वधबन्धरतोद्वेगा द्यूतसङ्गीतसम्प्रियाः ॥ २१ ॥

कुभृत्याः कुजनप्रीताः पूतिगन्धरता नराः। न देवेषु न विज्ञेषु न धर्मश्रवणेषु च ॥
स्तोत्रमन्त्रादिके पुण्ये यथाकार्येष्वनिश्चयाः। बहुरोगाधिरोषाश्च बहुरूपपरिच्छदाः ॥
नरजातिषु दैत्यानां चिह्नान्येतानि भूतले। न जानन्ति परं लोकं न गुरुं स्वं न चापरम्
गर्भपूरणमिच्छन्ति नातिथिं न गुरून्द्विजान्। न देवं न सुतं गोत्रं न मित्रं नच बान्धवम्

स्वप्ने दानं न जानन्ति भक्षणान्नपरिच्छदम्।
गोपायन्ति धनं यस्मात्ते यक्षा नररूपिणः ॥ २६ ॥

प्राणान्तेऽपि धनं किंचिन्नदिशन्ति च राजनि। ते यक्षा दुर्गतिस्थाश्चपरार्थेभारवाहकाः
प्रेतानां लक्षणं यद्वासर्वलोकविगर्हितम्। स्त्रीणां च पुरुषाणां च शृणुष्वैकमना मम ॥
मलपङ्कधरा नित्यं सत्यशौचविवर्जिताः। दन्तकुन्तलवस्त्राणां वपुषो मलसञ्चयाः ॥

गृहपीठादिपात्राणां सकृच्छौचं न रोचते ।
न पश्यन्ति मुखं स्त्रीणां विशन्ति कानने द्रुतम् ॥ ३० ॥
विघसोच्छिष्टपूतीनां भक्षणेऽभिरता भुवि । अन्नपानं च शयनमन्धकारेषु रोचते ॥
कदाचित्स्वस्थता नास्ति क्वचिद्वा शुचिता तनौ ।
लक्षणं नरलोकेषु प्रेतानामीदृशं किल ॥ ३२ ॥
हिताहितं न जानन्ति मित्रामित्रं गुणागुणम् ।
पापपुण्यादिकं स्थानं स्नानं देवद्विजार्चनम् ॥ ३३ ॥
अरिमित्रमुदासीनं न विदन्ति स्वभावतः । मर्त्यस्थाः पशवस्ते च ज्ञायन्ते बुद्धिसंमतैः
बुद्ध्या नानात्वभावाश्च भ्रमन्ति च मृषाभुवि । यक्षरूपा नरास्ते च सर्वकर्मवहिष्कृताः
एषां भेदं प्रवक्ष्यामि लक्षणं धरणीतले । विजाता मर्त्यलोकेषु पापस्यैवानुरूपतः ॥
मलीमसभुवि प्रस्थं नागरं छद्मरूपिणम् । विघसादि प्रभोक्तारं काकमाहुर्मनीषिणः ॥
अभक्ष्ये निरतः पापः कुक्कुरः पूतिसंप्रियः । प्रवृत्तस्सर्वगुह्येषु भक्ष्याभक्ष्यसजीवनः ॥
भूम्यां पश्वादियोनिनां कुलेषु प्राप्तसम्भवाः ।
शुनो विगृह्य हस्तेन म्लेच्छानां भक्षणप्रियाः ॥ ३६ ॥
विशेषात्सूकराणां च तथा चरणयोधिनाम् । पोषणेभक्षणेप्रीताः पूतिगर्ह्येष्वसाधुषु ॥
पर्वते करणाद्गहैः काष्ठसञ्चयसङ्ग्रहे । विज्ञेयास्ते सदाम्लेच्छाः क्षत्रियाणांभयाकुलाः
लोकानां नष्टधर्मे च सदा शौचविवर्जिते ।
कुलीनानां तदा म्लेच्छा भविष्यन्ति च दस्यवः ॥ ४२ ॥
तेषां संसर्गतोऽन्ये च सम्बन्धादन्नभोजनात् ।
मैथुनात्तस्य योषासु तद्भावं तु व्रजन्ति ते ॥ ४३ ॥
तस्मिन्काले जनास्सर्वे दुःखरोगप्रतापिताः । दुर्भिक्षान्नपरा मूढाःसदा राजप्रपीडिताः
तत्रासत्ये रता मर्त्याः सर्वशौचविवर्जिताः । न श्रूयन्ते जनैरेव पुराणागमसंहिताः ॥
मद्यमांसप्रियाः पापास्सर्वभक्षास्सुदारुणाः ।
दारुणाचारनिरता नित्यं छलपरायणाः ॥ ४६ ॥

न पुष्णन्ति सुतास्तातं प्रसुवं च गुरूनपि। न शुश्रूषन्तिवै भृत्याःस्वामिनंगुणशालिनम्
भर्तारं न स्त्रियः काश्चिच्छ्वशुरौ च स्वमातरः। नित्यकष्टा नरास्तत्र कलहश्च गृहेगृहे

नृपा म्लेच्छाः सुरापाश्च तथा मन्त्रिपुरोहिताः।
मनुष्यैश्च बलिस्तेषां मत्स्यैर्मांसैर्निरामिषः ॥ ४६ ॥
पाषण्डायासयोगेभ्यः प्रधाना गुणवार्तयोः।
धनिकैः कोकिलैर्मन्दैर्व्याप्तं तैस्तु महीतलम् ॥ ५० ॥

ततोऽन्योन्यं प्रिया मूढा वने वानगरेषु च। भक्ष्याभक्ष्यंसमश्नन्तिमत्स्यमांसादिकंनराः

वने द्विजातयश्चान्ये भुञ्जते चानुपापकम्।
भक्तिमन्तं पशुं चान्यत्सर्वे यान्त्यपुनर्भवम् ॥ ५२ ॥
पातयन्ति पितॄन्पापाः सर्वे ते पूर्वदेवकाः।
पिशाचा राक्षसा ये च मर्त्यका गुह्यका भुवम् ॥ ५३ ॥
एते चाविनयप्रीता न देवा न च मानुषाः ॥ ५४ ॥

संजय उवाच।

कथं च मर्त्यभावेषु लक्ष्मं जानन्ति तात्त्विकाः।
एतं मे संशयं नाथ दूरीकुरु ततस्ततः ॥ ५५ ॥

व्यास उवाच।

कृतपापानुरूपास्तु द्विजातिष्वन्यजातिषु। असुरा राक्षसाः प्रेताः स्वभावं न त्यजन्तिते

जाता ये चासुरा मर्त्ये सदा ते कलहोत्सुकाः।
कुहकाः कश्चराः क्रूराः विज्ञेया राक्षसा भुवि ॥ ५७ ॥

जनोद्विग्नादिकं दानं तथा देवार्चनं भुवि। उग्रभावाद्धनं लब्ध्वा राज्यं भुञ्जन्तिशाश्वतम्
जयं शौर्यादिकं पुण्यं पुनः पापक्षयं व्रजेत्। एवमुर्व्यां तथा नाके नागलोके यमालये ॥
उग्रेण तपसा कश्चित् सुरत्वं लभते दिवि। वासुदेवं समाराध्य प्रह्लादः सुरपूजितः ॥
हरं तथान्धको दैत्यः स्तुत्वा तत्सभ्यकोऽभवत्। तस्यैव गणमुख्यत्वंलेभेभृङ्गीमहाबलः
एते चान्ये च बहवोबलिरिन्द्रो भविष्यति। गच्छन्ति सद्गतिं तात इहामुत्र च सर्वदा

केचिद्दैत्यकुले जाताः पृथिव्यां सुरसत्तमाः ।
भावयन्ति पितॄन्सर्वाञ्छतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६३ ॥

एकेनापि सुपुत्रेण कुलत्राणं च धीमता । एकोऽपि वैष्णवः पुत्रः कुलकोटिं समुद्धरेत्
म्रियन्ते पुण्यतीर्थेषु मुक्तिक्षेत्रे चज्ञानतः । ब्रह्मज्ञानविदो ये ते तारयन्ति तरन्ति च ॥

एका पतिव्रता नारी कुलकोटिं समुद्धरेत् ।
जितेन्द्रियोऽपि धर्मात्मा द्विजदेवार्चने रतः ॥ ६६ ॥

क्षये धम कलौ शेषे पुरे जनपदेषु च । एको रक्षति धर्मात्मा पुरे ग्रामं जनं कुलम् ॥
विज्ञातृमेदुरं चासीद्ब्राह्मणानां पुरं महत् । तत्र सर्वे द्विजाः शश्वत्सन्ध्योपासनतत्पराः
वेदपाठरता धीरा देवातिथिद्विजार्चकाः । यज्ञव्रताग्निकर्माणः षट्कर्मपरिनिश्चयाः ॥
अतिकृच्छ्रे च तेषां वै न पापे वर्तते मनः । कुर्वन्ति सततं वीरा व्रतं यज्ञं सनातनम् ॥

कदाचिद्दैवयोगाच्च गृहस्थश्च स कोविदः ।
वह्नौ जुहोति विप्रर्षिराज्यं मन्त्रेण मन्त्रवित् ॥ ७१ ॥
तस्मिन्काले च तस्यैव मूत्रकृच्छ्रं सुदारुणम् ।
तत्प्रोज्झितुं गतः सोऽपि रक्षार्थं स्थाप्य चेटिकाम् ॥ ७२ ॥
तस्यास्त्वनवधानेन शुना चाज्यं च भक्षितम् ।
भिया तया ततः पात्रं स्वीयमूत्रेण सम्भृतम् ॥ ७३ ॥

असंलक्ष्याजुहोदग्नौ सविप्रस्त्वरया ततः । आश्चर्यं च ततो वह्नौ लक्षितं तेन तत्क्षणात्
कूटं हेममयं साक्षात्स्वर्णं जाम्बूनदप्रभम् । गृहीत्वा तन्मुदा विप्रः पापयोगं चकार ह ॥
पप्रच्छ विस्मयाद्दासीं कथमेतद्वद प्रिये । मुदा तत्र यथावृत्तं कथितं तु तया द्विज ॥
ततो नित्यं यथाकालं तच्च तस्य प्रवर्तते । समृद्धिरद्भुता गेहे लोकविस्मयकारिणी ॥
ततः परस्पराच्छ्रुत्वा सर्वैरेव च तत्पुरे । कृतं कर्मदुराचारं श्रुत्वा लोभादसाधुभिः ॥
गुरुलोभाच्च सुमहत्स्वान्ते पङ्कं विशत्यपि । पङ्कादेव भयान्मोहान्मतिभ्रंशोऽभवत्ततः ॥
अथ किल्बिषकूटेन दग्धमेव पुरं च तत् । स्त्रियो दुष्टाः जना दुष्टाः सर्वे पापबलात्तदा
वृद्धो ज्ञाताद्विजस्तत्र तत्कार्ये न मतिं दधौ । तस्य भार्या तदा साध्वी पुरुदुःखेन संयुता

भर्तारं कृच्छ्रसन्तप्ता पुरकार्यं जगाद सा ॥ ८२ ॥

ब्राह्मण्युवाच ।

कथं मे वर्तते नाथ दृष्ट्वा त्वां दुःखसंयुतम् । ग्रामाचारमिमं यद्वाऽप्यपरं कर्तुमर्हसि ॥

व्यास उवाच ।

ततस्तत्र स दोषज्ञः स्मित्वा वचनमब्रवीत् ॥ ८४ ॥

द्विज उवाच ।

यस्तु जीवति पापेन त्यक्त्वा धर्मं परं हितम् । स वैधेयो महाभागेप्रगच्छत्यपुनर्भवम्

एते विप्रा दुराचाराः सदारास्सपरिच्छदाः ।

अतिपातकयोगाच्च महापातकसंमताः ॥ ८६ ॥

सहपापेन महता प्रयास्यन्ति रसातलम् । अन्तेऽपुनर्भवं प्राप्यापराधान्तो न विद्यते ॥

अहमेकोऽत्र तिष्ठामि स्वपुण्यपरिरक्षणात् ॥ ८८ ॥

व्यास उवाच ।

ततस्सा तमुवाचेदं लोकहास्यं वचस्तव ।

वक्तुमर्हसि नश्चाग्रे न पुरोऽन्यस्य कस्यचित् ॥ ८९ ॥

द्विज उवाच ।

यदि यास्यामिचान्यत्रइतोऽहंतत्क्षणात्प्रिये । सवित्तैः स्वजनैरेवपुरीयास्यत्यधोगतिम्

व्यास उवाच ।

इत्युक्त्वा परमप्रीतः सङ्गृह्य च धनं स्वकम् । क्षिप्रंसचतया सार्धं ययौसीमान्तरंद्विजः

स्थित्वाऽपश्यत्पुरी तावत्स्थिरा तिष्ठति पूर्ववत् ।

सा चाह तं पतिं साध्वी पुरीं चेयं न नश्यति ॥ ९२ ॥

विमृश्य तामुवाचेदं विप्रवर्यस्सुविस्मितः । किं नु तिष्ठति तत्रैव द्रव्यमस्मद्गृहाद्बहिः

विचार्य सा धवं प्राह मयाभ्रान्त्या उपानहौ । नानीते तिष्ठतस्तत्र धारयिष्यामिकिंनुवै

एवमुक्त्वा पतिं साध्वी गृहीत्वा ते उपागता । पत्युरभ्याशतो दृष्टं पुरं निर्व्यथनं गतम्

ततो विप्रादयो वर्णाः कबराः पुरवासिनः । तिष्ठन्ति नरके घोरे दुःखिताश्चापुनर्भवे ॥

कृच्छ्राद्यमपुरं यान्ति नास्ति तेषां च निष्कृतिः ।
पूतिगन्धं ततोऽमेध्यं वर्जनीयं प्रकीर्तितम् ॥ ९७ ॥
पूर्ववद्भक्षणे प्रीतो ह्यद्य पापं करोति च ।
स्तेयशीलो निशाचारी बुधैर्ज्ञेयस्स वञ्चकः ॥ ९८ ॥

अबुधः सर्वकार्येषु अज्ञातः सर्वकर्मसु । समयाचारहीनस्तु पशुरेव सबालिशः ॥ ९९ ॥
एवमुष्ट्रादयस्सन्ति भक्षादिनकुलादयः । हिंस्रो ज्ञातिजनोद्वेगी रते युद्धे च कातरः ॥
विघसादिप्रियो नित्यं नरः श्वा कीर्तितो बुधैः । चौर्यकर्मरतो नित्यं बहुमित्रप्रवञ्चकः
मिथुने कलहो नित्यं मर्त्यस्तु परिकीर्तितः । प्रकृत्या चपलो नित्यं सदा भोजनवत्सलः

प्लवगः काननप्रीतो नरः शाखामृगो भुवि ।
सूचको भाषया बुद्ध्या स्वजनेऽन्यजनेषु च ॥ १०३ ॥

उद्वेगजनकत्वाच्च स पुमानुरगः स्मृतः । बलवान्कान्तशीलश्च सततं चानपत्रपः ॥१०४॥

पूतिमांसप्रियो भोगी नृसिंहस्समुदाहृतः ।
तत्स्वनादेव सीदन्ति भीता अन्ये वृकादयः ॥ १०५ ॥

द्विरदादि नरा ये च ज्ञायन्ते दूरदर्शिनः । एवमादिक्रमेणैव विजानीयान्नरेषु च ॥१०६॥
सुराणां लक्षणं ब्रूमो नररूपं व्यवस्थितम् । द्विजदेवातिथीनां च गुरुसाधुतपस्विनाम् ॥
पूजातपो रतो नित्यं धर्मशास्त्रेषु नीतिषु । क्षमाशीलो जितक्रोधःसत्यवादीजितेन्द्रियः

अलुब्धः प्रियवाक्शान्तो धर्मशास्त्रार्थसंप्रियः ।
दयालुर्दयितो लोके रूपवान्मधुरस्वरः ॥ १०९ ॥
वागीशः सर्वकार्येषु गुणी दक्षो महाबलः ।
साक्षरश्चापि विद्वांश्च गीतनृत्यार्थतत्त्ववित् ॥ ११० ॥

आत्मविद्यादिकार्येषु सर्वतन्त्रीस्वरेषु च । हविष्येषु च सर्वेषु गव्येषु च निरामिषे ॥
सद्योगास्वादद्रव्ये च प्रत्यग्रे चातिशोभने । गन्धमाल्येषु वस्त्रेषु शास्त्रेष्वाभरणेषु च

सम्प्रीतश्चातिथौ दाने पार्वणादिषु कर्मसु ।
स्नानदानादिभिः कार्ये व्रतैर्यज्ञैः सुरार्चनैः ॥ ११३ ॥

कालो गच्छति पाठैश्च न क्लीबं वासरं भवेत् । अयमेवमनुष्याणां सदाचारो निरन्तरम्
देववन्मानवाचारोगीयते मुनिसत्तमैः । किन्तुसत्त्वाधिको देवो मनुष्यो भीत एव च
गम्भीरःसर्वदा देवः सदैव मानवोमृदुः । द्वयोस्तुल्या च सम्प्रीतिर्न दैत्यादौभवेत्किल
प्रीतिभावं परं सौख्यं सौहृदं सुकृतं शुभम् । देवमानुषयोरेव दैत्यराक्षसयोस्तथा ।

प्रेतादीनां च प्रेतेषु पशौ प्रीतिः पशोरपि ।
काकादयः स्वजातौ च तथान्ये च स्वजातिषु ॥ ११८ ॥

प्रीताभवन्ति चाप्रीता विद्या तेषां च लक्षणम् । एवं पुण्यविशेषेण सविशेषासुजातिषु

प्रियाप्रियं विजानीयात्पुण्यापुण्यं गुणागुणम् ।
दम्पत्योर्न सुखं किंचिज्जातिभेदान्नृणां भुवि ॥ १२० ॥

स्वजातिषुभवेत्प्रीतिर्मुक्तौ वा निरयेऽपिवा । अतिपुण्याल्लभेदायुः शोभनाःपुण्यकारिणः

पापात्मानो लभन्तेऽन्तं ये च दैत्यादयो नराः ।
कृते जाताः सुरा भूमौ न दैत्याश्चान्यजातयः ॥ १२२ ॥

त्रेतायामेकपादं च द्विपदं द्वापरे युगे । सन्ध्यायां च कलेरेव सर्वपादं च सङ्कुलम् ॥
देवादीनां भवेज्जातं भारतं यत्प्रवर्तितम् । ये ते दुर्योधनस्यैव योधाः सैन्यादयस्तथा
ते च दैत्यादयः सर्वे ये च कर्णादयो भुवि । गाङ्गेयो वसुमुख्यश्च द्रोणो देवमुनिःप्रभुः
अश्वत्थामा हरः साक्षाद्धरिर्नन्दकुलोद्भवः । पञ्चेन्द्राःपाण्डवा जाता विदुरो धर्म एवच

गान्धारी द्रौपदी कुन्ती चैता देव्यो धरातले ।
देवदैत्याः कलेर्मध्ये दैत्याश्शेषे च मानवाः ॥ १२७ ॥
उत्पत्स्यन्ते सदाप्रेताः क्रव्यादाः पशुपक्षिणः ।
तेषां च कुलटा दासी नित्यकष्टा यवीयसी ॥ १२८ ॥

नित्यं द्वन्द्वेषु सम्प्रीत्या तेषामाचारभाषिणी । किल्बिषेषु च सर्वेषु कलहेऽन्यायकर्मणि

रता दैत्यादयो ये ते सर्वे निरयगामिनः ॥ १२९ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

दैत्यादीनांमृषाभावात्सुरत्वं न सुरालयम् । कथंभोग्यंकथं सौख्यमारोग्यंबलसञ्चयम्

राज्यमायुस्तथाकीर्तिरभीष्टं दयितं बलम् । नीतिविद्यादिकं भाव्यं जन्मवृद्धं सनातनम्
दानाध्ययनकर्माणि यज्ञादि च कथं प्रभो । एतदाप्ताय शिष्याय मह्यं भो वक्तुमर्हसि

व्यास उवाच ।

दैत्यानां साहसादेव तपो भवति निश्चितम् ।
व्रतं यज्ञादिकं चैव सम्प्रीतिः स्वजनस्य च ॥ १३३ ॥
यो दान्तो ह्यगुणैर्मुक्तो नीतिशास्त्रार्थतत्त्वगः । एतैश्च विविधैः पूतः सभवेत्सुरलक्षणः
पुराणागमकर्माणि नाकेष्वत्र च वै द्विज । स्वयमाचरते पुण्यं सधरोद्धरणक्षमः ॥
यः शैवो वैष्णवश्चाण्डः सौरो गाणप एव च । तारयित्वापितॄन्सर्वान्स धरोद्धरणक्षमः
विशेषाद्वैष्णवं दृष्ट्वा प्रीयते पूजयेच्च यः । विमुक्तस्सर्वपापेभ्यस्सधरोद्धरणक्षमः ॥
षट्कर्मनिरतो विप्रः सर्वयज्ञरतस्सदा । धर्माख्यानप्रियो नित्यं सधरोद्धरणक्षमः ॥
विश्वासघातिनो ये च कृतघ्ना व्रतलोपिनः ।
द्विजदेवेषु विद्विष्टाश्शातयन्ति धरां नराः ॥ १३९ ॥
ये च मद्यरताः पापा द्यूतकर्मरतास्तथा । पाषण्डपतितालापाः शातयन्ति धरां नरा ॥
सुकर्मरहिता ये च नित्योद्वेगाश्च निर्भयाः ।
स्मृतिशास्त्रार्थकोद्विग्नाश्शातयन्ति धरां नराः ॥ १४१ ॥
निजवृत्तिं परित्यज्य कुर्वन्ति चाधमां च ये । गुरुनिन्दारता द्वेषाच्छातयन्ति धरां नराः
दातारं ये रोधयन्ति पातके प्रेरयन्ति च । दीनानाथान्पीडयन्ति शातयन्ति धरां नराः
एते चान्ये च बहवः पापकर्मकृतो नराः ।
पुरुषान्पातयित्वा तु शातयन्ति धरां नराः ॥ १४४ ॥
य इदं शृणुयाद्रम्यं गुह्याद्गुह्यं परं हितम् । न तस्य दुर्गतिर्दुःखं दौर्भाग्यं दीनता भुवि
न दैत्यादौ भवेज्जन्म स्वर्लोके शाश्वतं सुखम् ।
नाकाले मरणं तस्य न च पापैः प्रलिप्यते ॥ १४६ ॥
इह सर्वजनाध्यक्षस्त्रिदिवे त्रिदिवेश्वरः । कल्पं कल्पं दिवं भुक्त्वा मोक्षमार्गं व्रजत्यसौ

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे पुण्यव्यक्तिर्नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ।

ऊनाशीतितमोऽध्यायः

सूर्यमाहात्म्यवर्णनम् ।

वैशम्पायन उवाच ।

प्रभवत्ययमाकाशे नित्यं द्विजवर प्रभो ।
कोऽयं का वा प्रभावोऽस्य कुत्रजातो घृणीश्वरः ॥ १ ॥
किं करोति हि कार्यं वै यतो रश्मिमयोभृशम् । देवैर्मुनिवरैस्सिद्धैश्चारणैर्दैत्यराक्षसैः
निखिलैर्मानुषैः पूज्यः सदैव ब्राह्मणादिभिः ॥ ३ ॥

व्यास उवाच ।

परमं ब्रह्मणस्तेजो ब्रह्मदेहाद्विनिस्सृतम् । साक्षाद्ब्रह्ममयं विद्धि धर्मकामार्थमोक्षदम्
मयूखैर्निर्मलैः कूटमतिचण्डं सुदुःसहम् । दृष्ट्वा प्रदुद्रुवुर्लोकाः करैश्चण्डैः प्रपीडिताः ॥
ततश्च सागराः सर्वे वरनद्यो नदादयः ।
शुष्यन्ति जन्तवस्तत्र म्रियन्ते चातुराजनाः ॥ ६ ॥
अथ शक्रादयो देवा ब्रह्माणं समुपागताः । इममर्थं तदा प्रोचुर्देवांश्च विधिरब्रवीत् ॥

ब्रह्मोवाच ।

आदिर्ब्रह्मतनोर्देवाः सत्त्वगो जनकः प्रभुः । अयं रजोमयः साक्षात्सुधांशुस्तनुमध्यगः ॥
एताभ्यां पालितालोकास्त्रैलोक्ये सचराचराः ।
दिव्योपपादका देवा ये वात्रैव जरायुजाः ॥ ६ ॥
अण्डजास्स्वेदजाश्चैव ये वाऽत्रैवोद्भिज्जादयः। सूर्यस्यास्यप्रभावं तु वक्तुमेव न शक्नुमः
अनेनरक्षिता लोका जनिता पालिताश्च्त्र्र् । अस्यैवसदृशो नास्ति सर्वेषां परिरक्षणात्
यं च दृष्ट्वाप्युषः काले पापराशिः प्रलीयते । तमाराध्य जना मोक्षं साधयन्ति द्विजातयः
सन्ध्योपासनकाले तु विप्रा ब्रह्मविदः किल ।
उदुबाहवो भवन्त्येव ते च देवप्रपूजिताः ॥ १३ ॥

अस्यैव मण्डलस्थां च देवीं सन्ध्यास्वरूपिणीम् ।
समुपास्य द्विजास्सर्वे लभन्ते स्वर्गमोक्षकौ ॥ १४ ॥
धरायांपतितोच्छिष्टाःपूतास्तेचास्यरश्मिभिः । सन्ध्योपासनमात्रेणकल्मषात्पूततांव्रजेत्
दृष्ट्वा चाण्डालकं गोघ्नं पतितं कुष्ठसङ्गतम् । महापातकसङ्कीर्णमुपपातकसंवृतम् ॥
पश्यन्ति ये नरास्सूरं ते पूता गुरुकिल्बिषात् । अस्योपासनमात्रेण सर्वरोगात्प्रमुच्यते
नान्धत्वं न च दारिद्र्यं न दुःखं न च शोच्यताम् ।
लभते च इहामुत्र समुपास्य विरोचनम् ॥ १८ ॥
प्रदृष्टा नैव लोकैश्च देवा हरिहरादयः । ध्यानरूपप्रगम्यास्ते दृष्टो देवो ह्ययं स्मृतः॥१६॥

देवा ऊचुः ।

अस्तु प्रसादनाराध्यश्चास्तूपासनपूजनम् । अस्यैव दर्शनं ब्रह्मन्प्रलयानलसंमितम् ॥२०॥
सर्वे नराद्यस्सत्त्वा मृतावस्थांगता भुवि । अस्य तेजः प्रभावेण प्रनष्टास्सागरादयः
न समर्था वयं सोढुं कथमन्ये पृथग्जनाः । तस्मात्तवप्रसादाच्च पूजयामो यथा रविम्
यजन्ति च नरा भक्त्या तदुपायो विधीयताम् ॥ २२ ॥

व्यास उवाच ।

देवानां वचनं श्रुत्वा गतो ब्रह्मा खगेश्वरम् । गत्वा स्तोतुं समारेभे सर्वलोकहिताय वै

ब्रह्मोवाच ।

देवत्वं सर्वलोकस्य चक्षुर्भूतो निरामयः । ब्रह्मरूपधरः साक्षाद्दुष्प्रेक्ष्यः प्रलयानलः ॥
सर्वं देवस्थितस्त्वं हि सदा वायुसखस्तनौ । अन्नादिपाचनंत्वत्तो जीवनं च भवेद्ध्रुवम्
उत्पत्तिप्रलयौ देव त्वमेको भुवनेश्वरः । त्वदृते सर्वलोकानां दिनैकं नास्ति जीवनम्
प्रभुस्त्वं सर्वलोकानां त्राता गोप्ता पिता प्रसूः ।
चराचराणां सर्वेषां त्वत्प्रसादाद्धृतं जगत् ॥ २७ ॥
देवेषु त्वत्समो नास्ति भगवंस्त्वखिलेषुच । अन्तर्देहेषु बाह्येषु सर्वेषु भुवनेष च ॥२८॥
सर्वत्र तेऽस्ति सद्भावस्त्वयैतद्धारितं जगत् ।
रूपगन्धादिकारी त्वं रसानां स्वादुता त्वया ॥ २६ ॥

एवंविश्वेश्वरः सूरो निखिलस्थितिकारकः । तीर्थानांपुण्यक्षेत्राणां मखानां जगतःप्रभोः
त्वमेकः प्रयतो हेतुस्सर्वसाक्षी गुणाकरः । सर्वज्ञः सर्वकर्ता च हर्ता पाता सदोत्सुकः
ध्वान्तपङ्कामयघ्नश्च दारिद्र्यदुःखनाशनः । प्रेत्येह च परो बन्धुः सर्वज्ञः सर्वलोचनः ॥
त्वदृते सर्वलोकानामुपकारी न विद्यते ॥ ३३ ॥

आदित्य उवाच ।

पितामह महाप्राज्ञ विश्वेन्द्र विश्वभावक । ब्रूहि शीघ्रं परं यत्ते करिष्यामि मतं विधे

ब्रह्मोवाच ।

मयूखस्तेऽतिचण्डश्च लोकानामतिदुःसहः । यथैव मृदुतामेति तथा कुरु सुरेश्वर ॥३५॥

आदित्य उवाच ।

किरणाः कोटिकोटिर्मे लोकनाशकराः पराः ।
न चाभीष्टकरा लोके प्रयोगा च्छिन्धि तान्प्रभो ॥ ३६ ॥

व्यास उवाच ।

ततोविरिञ्चिना तूर्णं रविवाक्यवशाद्ध्रुवम् । आहूयविश्वकर्माणंकृत्वा वज्रमयींभ्रमिम्
चिच्छेद च रवेर्भानून्प्रलयानलसन्निभान् । तैरेव रचितं तत्र विष्णोश्चक्रं सुदर्शनम् ॥
अमोघं यमदण्डं च शूलं पशुपतेस्तथा ।
कालस्य च परः खड्गश्शक्तिर्गुहप्रमोदिनी ॥ ३९ ॥

चण्डिकायाःपरं शस्त्रं विचित्रं शूलकंतथा । चक्रेब्रह्माऽऽज्ञयाशीघ्रं विश्वकर्मा तु तेन वै
सहस्रकिरणं शिष्टमन्यच्चैव प्रशातितम् । अजनोपाय भावेन पुनश्च कश्यपान्मुने ॥४१॥
अदितेर्गर्भसञ्जात आदित्य इति वै स्मृतः । अयं च रतिविश्वान्ते मेरुशृङ्गं भ्रमत्यपि ॥
सदोर्ध्वं दिनरात्रं च धरण्या लक्षयोजने ।
ग्रहाश्चन्द्रादयस्तत्र चरन्ति विधिनोदिताः ॥ ४३ ॥

सूरः सञ्चरते मासान्द्वादश द्वादशात्मकः । सङ्क्रमादस्य सङ्क्रान्तिः सर्वैरेव प्रतीयते
तासु यद्वा फलं ब्रूमो लोकानां निखिलं मुने । धनुर्मिथुनमीनेषु कन्यायां षडशीतयः ॥
वृषवृश्चिककुम्भेषु सिंहे विष्णुपदी स्मृता । तर्पणं चाक्षयं विद्धि दानं देवार्चनं तथा ॥

षडशीतिसहस्राणि षडशीतौ फलं भवेत् ।
विष्णुपद्यां तु लक्षं तु अयने कोटिकोटिकम् ॥ ४७ ॥

विष्णुपद्यां तु यद्दानमक्षयं परिकीर्तितम् । दातुर्वदामि सान्निध्यं सदा जन्मनि जन्मनि
शीते तूलपटीदानान्न दुःखं जायते तनौ । तुलादाने तल्पदाने द्वयोरेवाक्षयं फलम् ॥

सर्वोपकरणां शय्यां यो ददाति विमत्सरः ।
वर्णमुख्याय विप्राय स राजपदवीं लभेत् ॥ ५० ॥

तथैवाग्निं जलं दत्त्वा नदीतीरे पथि प्रगे । दत्त्वा च तैलताम्बूलमुर्व्या अधिपतिर्भवेत् ॥
सत्यभावाद्द्विजं नत्वा धनी चाक्षयतां व्रजेत् । माघे मास्यसिते पक्षे पञ्चदश्यामहर्मुखे
पितॄंस्तिलजलैरेव तर्पयित्वाऽक्षयो दिवि । सुलक्षणां च गां दत्त्वा हेमशृङ्गांमणिप्रभाम्

रौप्यखुरप्रदेशां च तथा कांस्यसुदोहनाम् ।
एतां दत्त्वा द्विजाग्र्याय सार्वभौमो भवेन्नृपः ॥ ५४ ॥

दत्त्वान्नाभरणं राजा मण्डलेशोधनेश्वरः । तिलधेनुं तु योदद्यात्सर्वोपस्करणान्विताम्

सप्तजन्मार्जितात्पापान्मुक्तो नाकेऽक्षयो भवेत् ।
भोज्यान्नं ब्राह्मणे दत्त्वा अक्षयं स्वर्गमश्नुते ॥ ५६ ॥

धान्यंवस्त्रंतथा भृत्यं गृहपीठादिकं च यत् । योददाति द्विजाग्र्याय तं च लक्ष्मीर्नमुञ्चति

यत्किञ्चिद्दीयते दानं स्वल्पं वा यदि वा बहु ।
अक्षयं परलोकेषु युगाद्यासु तथैव च ॥ ५८ ॥

यद्वा देवार्चनं स्तोत्रं धर्माख्यानप्रतिश्रवः । पुनातिसर्वपापेभ्यो दिवि पूज्योभवत्यसौ ॥
तृतीया माघमासस्य सिता मन्वन्तरा स्मृता । तस्यां यद्दीयते दानं सर्वमक्षयमुच्यते ॥

धनं भोग्यं तथा राज्यं नाकं कल्पान्तरस्थितम् ।
तस्माद्दानं सतां पूजा प्रेत्यानन्तफलप्रदा ॥ ६१ ॥

मन्वन्तरा तु माघे स्यात्सप्तमो या सितेतरा । तिथिःपुण्यतमा प्रोक्तापुराणैरभिरक्षिता
माघमासेसिते पक्षे सप्तमी कोटिभास्करा । तामुपोष्य नरः पुण्यां मुच्यते नात्रसंशयः

सूर्यग्रहणतुल्या हि शुक्ला माघस्य सप्तमी ।

अरुणोदयवेलायां तस्यां स्नानं महाफलम् ॥ ६४ ॥
यच्च तत्र कृतं पापं मया सप्तसु जन्मसु । तन्मे रोगं च शोकं च भास्करी हन्तुसप्तमी ॥
जननी सर्वभूतानां सप्तमी सप्तसप्तिके । सप्तम्यामुदिते देवि नमस्ते रविमण्डले ॥६६॥
अर्कपत्रं यवाः पुष्पं सुगन्धबदरीफलम् । तत्पत्रे ताम्रपात्रे वा युक्तमानीय तण्डुलम् ॥
यज्ञसूत्रं ससिन्दूरं दत्त्वा चार्घं सुशोभनम् ।
सर्वं पापं क्षयं याति सप्तजन्मकृतं च यत् ॥ ६८ ॥
नरकैः पीड्यते तावद्रोगैः पापैश्च दुःखदैः । हविष्यं भोजयेदन्नं शुद्धमातपतण्डुलैः॥६९॥
वर्जयेच्च शिलाघृष्टं शृङ्गवेरं तु शाककम् । कोरदूषकपत्रं च रम्भाच्छागीघृतं तथा ॥
केशकीटादिकं वर्ज्यमुष्णोदस्नानमेवच । अल्पबीजादिकं सर्वं व्रते सूरस्य वर्जयेत् ॥
अन्यच्च नाचरेत्तत्र धर्मचिन्तां विनाव्रती । सौरव्रतं महापुण्यं पुराणैरभिनन्दितम्॥७२॥
वर्षकोटिसहस्राणि वर्षकोटिशतानि च । आदित्यस्य समं भोग्यं लभते दिविशाश्वतम्
एवं स्वर्गक्षयादेव राजा भूमौ महाधनी। मर्त्यलोके पुराऽभ्यासात्करोति भास्करव्रतम्
तथा स्वयं सुखं भोग्यं लभते दिवि शाश्वतम् ।
आरोग्यं सम्पदं जन्मी भास्करस्य प्रसादतः ॥ ७५ ॥
रविवारे भवेद्या च सप्तमी माघशुक्लके । महाजयेति विख्याता अन्यत्र विजया स्मृता ॥
विजया कोटिलक्षं स्यादनन्तं स्यान्महाजया ।
तत्रैकेन व्रतेनैव मुच्यते जन्मबन्धनात् ॥ ७७ ॥
अश्वरत्नंसुवर्णं च रक्तवस्त्रं च धान्यकम् । ददातिभास्करप्रीत्या स्वर्गमर्त्यपतिःक्रमात्
एषां भेदं प्रवक्ष्यामि शृणु विप्र यथार्थवत् । उत्तमाभरणैर्युक्तं सद्वाहं यो ददाति ह ॥
समुद्रैस्सप्तभिर्जुष्टां भूमिमेत्यरिवर्जिताम् ।
लभेद्भवान्तरे मर्त्यमेकेनैकाधिपो भवेत् ॥ ८० ॥
अश्वहीनं च पत्राङ्कं वृषभैर्वाप्यलङ्कृतम् । हेममाषं द्विमाषं वा दक्षिणाविहिता बुधैः ॥
रत्नभाण्डं महार्घं च हैमैरेव कृतं न यत् । स्वर्णं वा केवलं दत्त्वा त्रिविष्टपधनेश्वरः ॥
रक्तवस्त्रं च धान्यं च शक्तितो यः प्रयच्छति ।

स्वर्गोर्व्योरीशतामेति न तं लक्ष्मीर्विमुञ्चति ॥ ८३ ॥

अरोगी सुप्रसन्नात्मा दस्युजेता प्रतापवान् । यावत्प्रभासते भानुस्तावत्पूज्यतमोहिसः

माघादौ द्वादशीं मायां सप्तमीं कारयेत्सतु । इहाभीष्टफलं भुक्त्वा सुरैश्चैव प्रपूज्यते ॥

अर्काङ्गसप्तमीव्रतं कृत्वा च विधिवद्बुधः । पापात्पूत इहाभीष्टं सम्प्राप्यमुक्तिमाप्नुयात्

लक्षणं च प्रवक्ष्यामि मासि मासि च यो विधिः ।
व्रतस्यास्य प्रसादाच्च सुराणामर्चितो दिवि ॥ ८७ ॥

शुक्लपक्षे रविदिने प्रवृत्ते चोत्तरायणे । पुंनामधेयनक्षत्रे गृह्णीयात्सप्तमीव्रतम् ॥ ८८ ॥

हस्तो मैत्रं तथा पुष्यः श्रवो मृगपुनर्वसू । पुंनामधेयनक्षत्राण्येतान्याहुर्मनीषिणः ॥

पञ्चम्यामेकभक्तं तु षष्ठ्यां नक्तं प्रकीर्तितम् ।
सप्तम्यामुपवासं च अष्टम्यां पारणं भवेत् ॥ ९० ॥

अर्काग्रं शुचि गोमयं सुमरिचं तोयं फलं चाश्नुते,
मूलं नक्तमुपोषणं च विधिवत्कृत्वैकभक्तं तथा ।
क्षीरं वाप्यशनं घृताक्तमिति च प्रोक्ताः क्रमेणामुना,
कृत्वावासरसप्तमीं दिनकृतः प्राप्नोत्यभीष्टंफलम् ॥ ९१ ॥

अर्काग्रं ग्रामात्पूर्वोत्तरदिग्गतार्कविटपस्य-
शाखाग्रस्थितं त्रिशिष्टं सूक्ष्मपत्रद्वयं सतोयं दन्तैरस्पृष्टं पातव्यम् ॥

शुचि गोमयं भूमावपतितं मध्याङ्गुष्ठाभ्यां पलमात्रं दन्तैरस्पृष्टं सतोयं पातव्यम् ।

सुमरिचमव्रणमपुरातनं स्थूलमवशुष्कमेकं दन्तैरस्पृष्टं सतोयं पातव्यम् ।

तोयं ब्रह्मपित्रङ्गुलीमूलप्रसरं पातव्यम् ।

फलं खर्जूरनारिकेलानामन्यतमं दन्तैरस्पृष्टं पातव्यम् ।

घृताक्तमिति चाहारं मयूरडिम्भपरिमाणम् । घृतमपि तत्परिमाणम् ॥ ९२ ॥

आत्मनो द्विगुणां छायां यदा कुर्वीत भास्करः ।
तदा नक्तं विजानीयान्न नक्तं निशिभोजनम् ॥ ९३ ॥

प्रथमं पूजयेद्देवं फलपुष्पादिमन्त्रकैः । अन्नदानं ततः कुर्याद्विध्युक्तपरिमाणकम् ॥९४॥

ततो ध्यानम् ।

सर्वलक्षणसम्पूर्णं सर्वाभरणभूषितम् । द्विभुजं रक्तवर्णं च रक्तपङ्कजधृत्करम् ॥ ९५ ॥
तेजोबिम्बं बहुजलमध्यस्थं सपरिच्छदम् । पद्मासनगतं देवं रक्तगन्धानुलेपनम् ॥
आदित्यं चिन्तयेद्देवं पूजाकाले विशेषतः ॥ ९६ ॥

मन्त्रश्चायम् ।

भास्कराय विद्महे सहस्ररश्मये धीमहि तन्नः सूर्यः प्रचोदयात् ॥ ९७ ॥
जप्य एष परः प्रोक्तः सप्तम्यां विजयावहः । करवीरैः करञ्जैश्च रक्तकुङ्कुमसन्निभैः ॥
पश्चाच्च पारणा कार्या तथाष्टम्यां विशेषतः । अष्टम्यामेव कर्तव्यं नवम्यां नैव पारणम्
व्रते फलं न चाप्नोति नवम्यां पारणे कृते । पारणं त्वपराह्णे तु कटुतिक्ताम्लवर्जितम्
तण्डुलं शोधयेद्यत्नात्तृणबीजादिकं त्यजेत् ।
मुद्गमाषतिलादीनि घृतं च परिवर्जयेत् ॥ १०१ ॥
ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या शक्तः क्षीरादिहव्यकैः ।
यथाशक्त्यन्नपानैश्च व्यञ्जनैश्च निरामिषैः ॥ १०२ ॥
विप्राय दक्षिणां दद्याद्विभज्य चानुरूपतः । इमामनन्तफलदां यः कुर्यात्सप्तमीं नरः ॥
सर्वपापप्रशमनीं धनपुत्रविवर्धनीम् । मासि मासि द्विजश्रेष्ठ व्रतं कृत्वाऽर्कतुष्टये॥१०४॥
यः कुर्यात्पारणं भक्त्या सूर्यलोकं स गच्छति ।
कल्पकोटिं वसेत्स्वर्गे ततो याति परां गतिम् ॥ १०५ ॥
इदमेवपरं गुह्यं भाषितं शम्भुना पुरा । श्रवणात्सततं तस्य व्रतस्य परिपालनात् ॥
श्रावयेद्वापि लोकस्य फलं तुल्यं प्रकीर्तितम् ॥ १०६ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे अर्काङ्गसप्तमीव्रतं नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥

अशीतितमोऽध्यायः

सूर्यस्यानेकव्रतवर्णनम् ।

वैशम्पायन उवाच ।

भगवंस्त्वत्प्रसादाच्च श्रुतं मे पावनं व्रतम् ।
अपरं श्रोतुमिच्छामि ब्रध्नस्य च प्रियं च यत् ॥ १ ॥

व्यास उवाच ।

कैलासशिखरे रम्ये सुखासीनं महेश्वरम् । प्रणम्य शिरसा भूमौ स्कन्दो वचनमब्रवीत्
अर्काङ्गाख्यविधिस्त्वत्तो मयैवं विस्तराच्छ्रुतः ।
वारादेर्यत्फलं नाथ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ३ ॥

ईश्वर उवाच ।

रक्तपुष्पैरवेर्वारे त्वर्घ्यं दद्याद्व्रतीनरः । नक्ताहारं हविष्यान्नं कृत्वा स्वर्गान्न हीयते ॥४॥
सप्तम्याश्च सदाचारं सर्वमेवार्कवासरे । कुर्वतः प्रीतिमाप्नोति सगणः परमेश्वरः ॥५॥
सूरस्य सदृशं याति तिथिवारस्य पालनात् । एकेन गाणपत्यस्य यावत्सूरो नभस्तले ॥
सर्वकामप्रदं पुण्यमैश्वर्यं रोगनाशनम् । स्वर्गदं मोक्षदं पुण्यं रवेर्वारे व्रतंहितम् ॥ ७ ॥
रविवारेण सङ्क्रान्त्या सप्तम्या तद्दिने शिवे । व्रतपूजादिकं जप्यं सर्वं चाक्षयतांव्रजेत्
आदित्यवासरे शुभ्रे ग्रहाधिपप्रपूजनम् । प्राणादहतवक्त्रेण निःसार्यं मण्डले न्यसेत् ॥
द्विभुजं रक्तपद्मस्थं सुगलं रक्तवाससं सर्वरक्ताभरणं ध्यात्वा-
हस्ताभ्यां पुष्पं विधृतं सङ्घ्रायैशान्यां क्षिपेत् ॥ १० ॥
आदित्याय विद्महे भास्कराय धीमहि । तन्नो भानुः प्रचोदयात् ॥ ११ ॥
ततो गुरूपदिष्टेन विधिना च विलेपनम् । विलेपनान्ते सद्धूपं धूपान्ते च प्रदीपकम् ॥
प्रदीपान्ते च नैवेद्यं ततो वारिनिवेदयेत् । ततो जप्यंस्तुतिं मुद्रां नमस्कारं तु कारयेत्
अञ्जलिः प्रथमा मुद्रा द्वितीया धेनुका स्मृता । एवं यः पूजयेदर्कं रविसायुज्यमाव्रजेत्

मम ब्रह्मवधाद्घोरं कपालं करलग्नकम् । रवेस्तस्य प्रसादात्तु मुक्तं वाराणसीतटे ॥ १५॥
रवेः परतरं देवं त्रैलोक्ये तु न विद्यते । यस्य प्रसादतो घोरान्मुक्तोऽहं गुरुकिल्बिषात्

स्कन्द उवाच ।

श्रुत्वा त्वत्तोगिरं नाथ विस्मयो मेऽभवत्प्रभो ।
त्वदन्योऽस्ति न को देवः कथं ब्रह्मवधस्त्वयि ॥ १७ ॥
त्वं च ज्ञानीश्वरो योगी लोके भोक्ताऽक्षरोऽव्ययः ।
देवानां गुरुरेकस्त्वं व्याप्तरूपी महेश्वरः ॥ १८ ॥

सर्वज्ञो वरदो नित्यं सर्वेषां प्राणिनां प्रभुः । दुष्कृतं ते कुतो नाथ तथा क्रोधोविशेषतः

शिव उवाच ।

लोकानां च हितार्थाय पृथग्भूता युगे युगे । सर्वं कुर्मो वयं पुत्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥
नास्माकं बन्धमोक्षौ च नाकार्यं कार्यमेव वा ।
तथा लोकस्य रक्षार्थं चरामो विधिपूर्वकम् ॥२१ ॥

सर्वं च परमं चैव सर्वविघ्नविनाशनम् । सर्वरोगप्रशमनं सर्वार्थप्रतिसाधकम् ॥ २२ ॥
एकोऽसौ बहुधा भूत्वा कालभेदादनिन्दितः ।
मासे मासे तु तपति एको द्वादशतां व्रजेत् ॥ २३ ॥
मित्रो मार्गशिरे मासि पौषे विष्णुः सनातनः ।
वरुणो माघमासे तु सूर्यो वै फाल्गुने तथा ॥ २४ ॥

चैत्रे मासि तपेद्भानुर्वैशाखे तापनः स्मृतः । ज्येष्ठमासे तपेदिन्द्र आषाढे तपते रविः ॥
गभस्तिः श्रावणे मासि यमोभाद्रपदे तथा । हिरण्यरेताश्वयुजि कार्तिके तु दिवाकरः ॥
इत्येतेद्वादशादित्यामासिमासिप्रकीर्तिताः । उग्ररूपामहातेजायुगान्तानलवर्चसः ॥२७॥
य इदं पठते नित्यं तस्य पापं न विद्यते । न रोगो नच दारिद्र्यं नावमानोभवेत्क्वचित्
अक्षयं लभते स्वर्गं सुखं राज्यं यशः क्रमात् ।
महामन्त्रं प्रवक्ष्यामि सर्वप्रीतिकरं परम् ॥ २९ ॥

ॐ नमः सहस्रबाहवे आदित्याय नमोनमः । नमस्ते पद्महस्ताय वरुणाय नमोनमः ॥

नमस्तिमिरनाशाय श्रीसूर्याय नमोनमः । नमः सहस्रजिह्वाय भानवे च नमोनमः ॥३१॥

त्वं च ब्रह्मा त्वं च विष्णू रुद्रस्त्वं च नमोनमः ।
त्वमग्निः सर्वभूतेषु वायुस्त्वं च नमोनमः ॥ ३२ ॥

सर्वगः सर्वभूतेषु न हि किञ्चित्त्वया विना । चराचरे जगत्यस्मिन्सर्वदेहे व्यवस्थितः ॥

इति जप्त्वा लभेत्कामं स्वर्गभोग्यादिकं क्रमात् ।
आदित्यो भास्करः सूर्यो अर्को भानुर्दिवाकरः ॥ ३४ ॥

सुवर्णरेता मित्रश्च पूषा त्वष्टा च ते दश । स्वयम्भूस्तिमिराशश्च द्वादशः परिकीर्तितः
नामान्येतानि सूर्यस्य शुचिर्यस्तु पठेन्नरः । सर्वपापाच्च रोगाच्च मुक्तो याति परांगतिम्
पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि भास्करस्य महात्मनः । रक्ताख्या ये रक्तनिभा स्सिन्दूरारुणविग्रहाः

यानि नामानि मुख्यानि तच्छृणुष्व षडानन ।
तपनस्तापनश्चैव कर्त्ता हर्त्ता ग्रहेश्वरः ॥ ३८ ॥
लोकसाक्षी त्रिलोकेषु व्योमाधिपो दिवाकरः ।
अग्निगर्भो महाविप्रः स्वर्गः सप्ताश्ववाहनः ॥ ३९ ॥

पद्महस्तस्तमोभेदी ऋग्वेदो यजुस्सामगः । कालप्रियं पुण्डरीकं मूलस्थानं चभावितम्
यः स्मरेच्च सदाभक्त्या तस्य रोगभयं कुतः । शृणु कार्तिक यत्नेन सर्वपापहरं शुभम् ॥
न सन्देहो मनाक्कार्य आदित्यस्य महामते । ॐ इन्द्राय नमः ॐ विष्णवेनमः ॥४२॥
एष जप्यश्च होमश्च सन्ध्योपासनमेव च । सर्वशान्तिकरश्चैव सर्वविघ्नविनाशनः ॥

नाशयेत्सर्वरोगांश्च लूताविस्फोटकादिकान् ।
कामलादिकरोगांश्च ये रोगाश्चैव दारुणाः ॥ ४४ ॥

एकाहिकं त्र्याहिकं च ज्वरं चातुर्थिकं तथा । कुष्ठं रोगं क्षयं रोगंकुक्षिरोगंज्वरं तथा

अश्मरीमूत्रकृच्छ्रांश्च नानारोगामयांस्तथा ।
ये वातप्रभवा रोगा ये रोगा गर्भसम्भवाः ॥ ४६ ॥

मर्दयन्तो महारोगा मर्दिता वेदनात्मकाः । विलयं यान्ति ते सर्वे आदित्योच्चारणेन तु
रक्षमां देवदेवेश ग्रहरोगभयेषु च । प्रशमं यान्ति ते सर्वे कीर्तिते तु दिवाकरे ॥ ४८ ॥

मूलमन्त्रं प्रवक्ष्यामि सर्वकामार्थसाधकम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं नित्यं भास्करस्य महात्मनः ॥ ४६ ॥

मन्त्रश्चायम् । ॐ ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः । अनेन मन्त्रेण सदा सर्वसिद्धिर्भवेद्ध्रुवम् ॥ व्याधयो वै न बाधन्ते न चानिष्टभयं भवेत् । सूर्यावर्तोदकं यस्तु गृहीत्वा तु क्रमेण तु तस्य प्राशनमात्रेण नरो रोगात्प्रमुच्यते । न दातव्यं न ख्यातव्यं जप्तव्यं च प्रयत्नतः ॥ अभक्तेष्वनपत्येषु पाषण्डलौकिकेषु च । कटुतैलसमायुक्तं नस्ये पाने च दापयेत् ॥

सूर्यावर्तजलं पुत्र सर्वरोगाद्विमुच्यते ।
मूलमन्त्रस्तु जप्तव्यः सन्ध्यायां होमकर्मसु ॥ ५४ ॥
जप्यमाने तु नश्यन्ति रोगाः क्रूरग्रहास्तथा ।
किमन्यैर्बहुभिः शास्त्रैर्मन्त्रैर्वा बहुविस्तरैः ॥ ५५ ॥

सर्वशान्तिरियं वत्स सर्वार्थप्रतिसाधिका । नास्तिकाय न दातव्या देवब्राह्मणनिन्दके गुरुभक्ताय दातव्या नान्येभ्योऽपि कदाचन । प्रातरुत्थाय यो नित्यंकीर्तयिष्यतिमानवः गोघ्नः कृतघ्नकश्चैव मुच्यते सर्वपातकैः । शरीरारोग्यकृच्चैव धनवृद्धियशस्करः ॥५८॥

जायते नात्र सन्देहो यस्य तुष्येद्दिवाकरः ।
एककालं द्विकालं वा त्रिकालं नित्यमेव च ॥ ५६ ॥
यः पठेद्रविसान्निध्ये सोऽभीष्टं फलमाप्नुयात् ।
पुत्रार्थी लभते पुत्रं कन्यार्थी कन्यकां लभेत् ॥ ६० ॥

विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम् । शृणुयात्संयुतो भक्त्याशुद्धाचारसमन्वितः सर्वपापविनिर्मुक्तस्सूर्यलोकं व्रजत्यपि । भास्करस्य व्रते यज्ञ व्रताचारमखेषु च ॥६२॥

पुण्यस्थानेषु तीर्थेषु पठेत्कोटिगुणं भवेत् ।
ग्रहे भोज्येषु पूजायां ब्रह्मभोज्ये द्विजाग्रतः ॥ ६३ ॥

य इदं पठते विप्रस्तस्यानन्तफलं भवेत् । तपस्विनां च विप्राणां देवानामग्रतः सुधीः ॥

यः पठेत्पाठयेद्वापि सुरलोके महीयते ॥ ६५ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे सूर्यशान्तिर्नामाशीतितमोऽध्यायः ।

एकाशीतितमोऽध्यायः

सूर्यमाहात्म्यप्रसंगाद्भद्रेश्वरनामकमध्यदेशनृपतिकथानकम् ।

व्यास उवाच ।

मध्यदेशे स्वराट् सम्राड् भद्रेश्वर इति श्रुतः । तपोभिर्बहुभिः पूतो व्रतैर्नानाविधैरपि ॥

देवांस्तु पूजयेन्नित्यं सुभावेन सदा खलु ।

तस्य सव्येऽभवत्कुष्ठं करे श्वेतमजायत ॥ २ ॥

ततो भिषक्प्रयोगाच्च लक्षणं दृश्यते पुरा । आहूय द्विजमुख्यांश्चमन्त्रिणःसोऽब्रवीद्वचः

राजोवाच ।

किल्बिषं मे करे विप्रा दुःसहं लोकगर्हितम् ।

तस्मात्पुण्यं महाक्षेत्रं यत्र त्यक्ष्यामि विग्रहम् ॥ ४ ॥

आज्ञापयत धर्मज्ञाः परलोकहिताय वै । वंशहीनस्य मे वीराः प्रेत्यामुत्र हितं च यत् ॥

तद् ब्रूत सुप्रसन्ना मउद्दिष्टं यत्करोम्यहम् ॥ ६ ॥

द्विजा ऊचुः ।

परित्यक्ते त्वया राष्ट्रे धर्मशीलेन धीमता । नष्टं जगदिदं राजंस्तस्मान्नो वक्तुमर्हसि ॥

अयमस्य प्रतीकारो ह्यस्माभिरवगम्यते । सूरं मन्त्रैर्महादेवं यत्नादाराधय प्रभो ॥ ८ ॥

राजोवाच ।

केनोपायेन विप्रेन्द्रास्तोषयिष्यामि भास्करम् । अमेध्येनाथ कुष्ठेन लोकानां गर्हितेन च

अदृश्यः सर्वभूतानां गर्हितोऽस्मि द्विजातयः ।

किं करिष्यामि राज्यं च किंस्यादाराधनेन तु ॥ १० ॥

द्विजा ऊचुः ।

अत्र स्थित्वा स्वराज्ये तु समुपास्य विरोचनम् ।

प्रमुच्य किल्बिषाद्घोरात्स्वर्गमोक्षं च लप्स्यसे ॥ ११ ॥

व्यास उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा तु राजेन्द्रः प्रणिपत्यद्विजोत्तमान् । अकार्षीत्तस्य सूर्यस्य परमाराधनंचयत्
नित्यपूजां तथा मन्त्रैरुपहारैर्विलेपनैः । फलैर्नानाविधैरर्घैरक्षतातपतण्डुलैः ॥ १३ ॥
जपापुष्पार्कपर्णैश्च करवीरकरञ्जकैः । रक्तकुङ्कुमसिन्दूरैस्तथा वासन्तिकादिभिः ॥
सुगन्धकदलीपत्रैस्तत्फलैः सुमनोहरैः । अर्घ्यमौदुम्बरे कृत्वा सदा सूर्याय पार्थिवः ॥
आदित्यसंमुखो दत्ते सदामन्त्रिपुरोहितैः । महिषीभिस्तथाचार्घो भोगिनीभिःसमन्ततः
सर्वैरन्तःपुरस्थैश्च सपत्नीकैश्च रक्षिभिः । चेटवर्गैस्तथाऽन्यैश्च दीयतेऽर्घो दिने दिने ॥
अर्कशान्तिभिरत्युग्रैःस्तोत्रमन्त्रादिभिःपरैः । मूलमन्त्रान्य मन्त्रैश्च यजन्तिस्मदिवाकरम्
तथार्काङ्गव्रतं चान्यत्कृत तैस्सुसमाहितैः । क्रमात्समां समासाद्य रोगस्यान्तंगतो नृपः
बाधिते चामये घोरे स राजा निखिलं जगत् । नियम्य कारयामास कल्येचयाजनव्रतम्
एवमेव जपापुष्पं सुगन्धं कदलीफलम् । बाणैर्जायाभिरालभ्यमर्कपर्णान्यपुष्पकम् ॥
एवमेव महापुण्यं कृत्वा सर्वजनप्रियम् । हविष्यान्नो निराहारो जनो यजति भास्करम्
एवमेव त्रिभिर्वर्गैरर्चितस्तैर्विभाकरः । सन्तुष्टो भूपमागम्य कृपया च ब्रवीद्वचः ॥ २३ ॥

सूर्य उवाच ।

वरं वरय चाभीष्टं यत्ते मनसि वर्तते । सर्वेषां वोहितार्थाय सानुगः पुरवासिनाम् ॥

राजोवाच ।

यदीच्छसि वरं दातुं सर्वलोचनमत्प्रियम् । सर्वेषां नः परं स्वर्गंत्वत्सकाशे भवत्विति

सूर्य उवाच ।

अमात्यास्ते द्विजा विप्राः सदारास्सपरिच्छदाः ।
नवीनयौवनाः शुद्धा यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ २६ ॥

तिष्ठन्तु मत्पुरे रम्ये सर्वभोगैर्निरामयाः । सुरद्रुमैः सुसम्पूर्णैः प्रासादैर्द्रुमकल्पकैः ॥
प्रमदाभिर्महाभाग नृत्यगीतादिभिः परैः । पञ्चकल्पान्तरे राजा मन्वादौ त्वं भविष्यसि
अमी ते मनुजा भूप पुरस्थाश्च पुरोधसः । तथा जनपदस्थाश्च विद्वांसोधनिनो नराः ॥
तत्र मत्तो वरं लब्ध्वा सुखं स्वर्गमवाप्स्यथ ॥ ३० ॥

व्यास उवाच ।

एवमुक्त्वा जगच्चक्षुस्तत्रैवान्तरधीयत । ततोभद्रेश्वरो राजा स पुरो दिवि मोदते ॥

तत्र कीटादयो ये च तेऽपीताः ससुतादयः ।

स्वर्गे देवद्रुमे भोग्यं कुर्वन्ति महदद्भुतम् ॥ ३२ ॥

एवमेव नृपा विप्रा मुनयश्शंसितव्रताः । ये च क्षत्रादयो वर्णास्सूरस्वर्गं ययुर्द्रुतम् ॥

कैश्चिदभ्यर्थितंवृत्तं पुत्रदारास्तथापरैः । सुखं स्वर्गं तथारोग्यं भास्करस्य प्रसादतः ॥

पुण्यकूटमिदं भद्रं यः पठेन्मानवः शुचिः । सर्वपापक्षयस्तस्य रुद्रवत्पूजितोभुवि ॥

सर्वसाक्षी भवेत्स्वर्गे वरदो भास्करप्रियः ।

श्रृणोति संयतो मर्त्यः सोऽभीष्टं फलमाप्नुयात् ॥ ३६ ॥

पारगः सर्वपापानां भास्करस्यैव संसदि । वावदूको भवेन्नित्यं श्रवणात्पुण्यवान्धनी ॥

इदं गुह्यातिगुह्यं च भास्करेण प्रचारितम् । इदं यमाय कथितं क्षितौव्यासेन कीर्तितम्

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे भद्रेश्वराख्यानं नामैकाशीतितमोऽध्यायः ।

द्व्यशीतितमोऽध्यायः

सूर्यपूजाविधिवर्णनम् ।

वैशम्पायन उवाच ।

श्रुतो ग्रहेश्शरस्यैष प्रभावस्त्वत्प्रसादतः । रव्यादीनां ग्रहाणां च साधनं नो वद द्विज

के तेरव्यादयस्तेषां कथं तोषः कथं प्रियम् ।

काले देशे तु सम्प्राप्ते दर्शनं तच्छिवाशिवम् ॥ २ ॥

व्यास उवाच ।

ग्रहादयो येलोके तु भुञ्जन्ति पुण्यपातकम् । शिवाशिवं च कुर्वन्ति विश्वकर्मक्षयायवै

सूरः कालोऽन्तको ज्ञेयो जनेषु च ग्रहेषु च ।

तिग्मसौम्याश्च योगात्स निग्रहानुग्रहे प्रभुः ॥ ४ ॥

ग्रहभावाश्च तस्यैव सन्तोषं निगदाम्यहम् । उदुम्बरपलाशाभ्यां पल्लवाभ्यां जुहोति यः
आकृष्णेनेति मन्त्रेण मूलकेनाथ शान्तये । जुहुयादाज्ययुक्ताभ्यामभीष्टफलहेतवे ॥ ६ ॥

शान्तये सर्वरोगाणां वधबन्धविमोचने ।
एकैकेन तु मन्त्रेण होतव्यं च शतं शतम् ॥ ७ ॥

शितं च च्छागलं दद्यात्सूरायादित्यवासरे । भोजयेद्ब्राह्मणान्भक्त्या हव्यकव्यैर्मनोहरैः

सप्तम्यां च सिते पक्षे पञ्चदश्यां तथैव च ।
रोगाद्विमुच्यते रोगी न रोगात्कृच्छ्रमेष्यति ॥ ९ ॥

परमंचामरं सत्त्वमाब्रह्मस्तम्बमात्रके । ब्रह्माण्डे चाणुमात्रे च सूरः सम्भावयिष्यते ॥
संहारान्तं क्रमात्सर्वमुत्पत्तिस्थितिकारणात् । प्राणसर्गे जनानां सपाताविश्वचरस्तनौ

मृत्युकाले तनोर्मध्यात्प्राणेन सह गच्छति ।
शीर्षान्तस्थः सदा चन्द्रो द्विरष्टकलया युतः ॥ १२ ॥

अहर्निशं सुधावृष्टिं देहे वर्षत्यधोमुखः । जन्तवस्तेन जीवन्ति महासत्त्वानुमात्रकाः ॥

उर्व्यां सस्यानि पुष्णाति तथा स्थावरजङ्गमान् ।
एताभ्यां पुष्पवद्भ्यां च धारितं जनितंजगत् ॥ १४ ॥

तयोराराधनात्पुष्टिः सदा पुण्यापरार्द्धिका । साधयेत्सर्वकार्याणिसाधकःसर्वदाशुचिः

न पूजयति यो मोहात्सुधांशुं मानवाधमः ।
आयुस्तस्य क्षयंयाति नरकं चाधिगच्छति ॥ १६ ॥

निष्कलङ्ककलाधार गङ्गाधर शिरोमणे । द्वितीयायां जगन्नाथ तुभ्यं चन्द्र नमोऽस्तुते

तिथिमन्यामनुप्राप्य नमस्कारं विधोरपि ।
प्रकरोति नरो यस्तु सोऽभीष्टं फलमाप्नुयात् ॥ १८ ॥

अत्रिनेत्रोद्भवश्रीमन्क्षीरोदमथनोद्भव । महेशमुकुटावास तुभ्यं चन्द्र नमोऽस्तुते ॥१९॥
दिव्यरूपनमस्तुभ्यं सुधाकरजगत्पते । शुक्लपक्षे तथाकृष्णे त्रियामायां विदुर्बुधाः ॥

ॐ ह्रां ह्रौं सोमाय नमः इति जप्यमन्त्रः । प्रभाते जपनीयः ।

एवं यः पूजयेत्सोमं श्रावयेच्च शृणोति वा ।
स पीयूषसमो लोके भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥ २२ ॥
एवं सहस्रनाम्ना यः स्तौति पूजयते भुवि । सोऽक्षयं लभते स्वर्गं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥

इति सोमपूजा ।

पित्तले भाजने कांस्ये दधिपूर्णे घृते शिवे ।
न्यूनोऽधिकस्तु विभवात्कृत्वा कर्मविमत्सरः ॥ २३ ॥
स्वर्णे वा राजते वारे सौम्ये कृष्णभवेबुधम् । संस्थाप्यसर्वसंस्थाने दद्याद्बहुसुतायच
परं भवति सौभाग्यं पीयूषादधिकभृशम् । स्त्रीणां च पुरुषाणां च न दौर्भाग्यं कदाचन
रूपसौभाग्यकामोऽहं दधिपूर्णं च भाजनम् ।
ददामि कांस्यपात्रस्थं देहि सौभाग्यरूपकम् ॥ २६ ॥
द्विजाय वाक्यपूर्वेण दद्याद्विमत्सरो नरः । शक्तितो दक्षिणा देया तथा वस्त्रादिकंनवम्
भोज्यान्नं सर्वसंपूर्णं ताम्बूलं सुमनोहरम् । पुष्पमालादिकं दद्याद्रूपसौभाग्यहेतवे ॥
एवं यः कुरुते दानं सोमोद्दिष्टं द्विजातये ।
स्वर्लोके नरलोके वा रूपसौभाग्यभुग्भवेत् ॥ २९ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे सोमार्चनं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ।

त्र्यशीतितमोऽध्यायः

शम्भोः सकाशात् भौमग्रहस्योत्पत्तिवर्णनम् ।

वैशम्पायन उवाच ।

उद्भवं लोहिताङ्गस्य सन्तोषं तु जनेषु च । प्रभावं वैभवं तेजः श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः

व्यास उवाच ।

हरांशसम्भवो देवः कुजातः पृथिवीसुतः । सत्त्वस्थस्सत्त्वसंपूर्णश्शूरः शक्तिधरो भुवि

तीक्ष्णः क्रूरग्रहो देवो लोहिताङ्गः प्रतापवान्। कुमारो रूपसंपन्नो विद्युत्पातमयःप्रभुः

अनेन भर्जिता दैत्याः क्रव्यादा ये सुरद्विषः।

दशायोगाच्च मनुजा उद्भिज्जाः पशुपक्षिणः॥ ४॥

वैशम्पायन उवाच।

शम्भोरेष कथं जातः कथं जातो महीसुतः। ग्रहोदेवः कथं क्रूर एतदिच्छामि वेदितुम्

कथमस्य भवेत्तुष्टिः सर्वलोकेषु सर्वदा। गुरो मय्याप्तभावे तु वद निस्संशयं मुखात्

व्यास उवाच।

हिरण्याक्षकुले धीमानसुराणां च पार्थिवः।

अन्धकेतिसमाख्यातो दैत्यः सर्वसुरान्तकृत्॥ ७॥

जातोविष्णुवरादेव जातो विष्णुपराक्रमः। तेनैवनिर्जिता देवास्सेन्द्राः क्रतुभुजःक्रमात्

ततो देवा विधिं गत्वा वचनं चेदमब्रुवन्। अन्धकेनैव चास्माकं हृतं राज्यं सुखं मखः

तस्मात्तस्य वधोपाय उच्यतां तद्विधीयताम्।

अथ धाताऽब्रवीद्वाक्यं देवानस्य च नैधनम्॥ १०॥

नास्ति विष्णुवरादेव पीयूषस्य च भक्षणात्।

किन्तु तस्यासुरत्वस्य यथा परिभवो ध्रुवम्॥ ११॥

कुर्वेलोकहितार्थायश्रद्धांकामसमन्विताम्। विचिकित्सा तु तत्रैव सर्वास्त्रीरतिगच्छति

त्यक्त्वैकां पार्वतीं दुर्गां न तस्य मानसं स्थिरम्।

ततः क्रुद्धो जगत्स्वामी तं च वैरूप्यतां नयेत्॥ १३॥

ततोऽसुरत्वंसन्त्यज्यगणस्तस्यभविष्यति। एवमुक्त्वाप्रजाध्यक्षःश्रद्धां कामसमन्विताम्

विचिकित्सांस्वमायां च प्रेषयामास तं प्रति। ततोविचेष्टितः कामाद्योषान्वेषणतत्परः

स्वदारान्परयोषांच नापश्यद्विचिकित्सया। ततोमायाप्रयुक्तोऽसौ त्रैलोक्यं विचचारह

दृष्टं च हिमवत्पृष्ठे स्त्रीरत्नं चातिशोभनम्।

दृष्ट्वा च पार्वतीं दैत्यः कामस्य वशगोऽभवत्॥ १७॥

ज्ञानलोपात्ततो दुर्गां ग्रहीतुं तां सचेच्छति। उमा च कोटवीरूपं कृत्वा देहस्यचात्मनः

ईश्वरस्यान्तिकस्था च ग्रहीतुं तां ससार सः ।
ततः कामविचेताश्च उन्मत्तो कृतचेतनः ॥ १९ ॥
न जहाति शिवां धात्रीं पार्वतींदैत्यपुङ्गवः । ततोध्यानात्समागम्य मिलितःपार्वतींधवः
दृष्ट्वा तं च स दैत्येन्द्रः प्रगतस्तु स्वमालयम् ।
सज्जीकृत्य स्वयोधांश्च शम्भुं जेतुं समुत्सुकः ॥ २१ ॥
गौरीमेव समानेतुं काममोहादचेतनः । एतच्छ्रुत्वा तु त्रिदशा गत्वा तं नन्दिनेरिताः ॥
अकुर्वंश्च महद्युद्धं घोरं लोकभयङ्करम् । दैत्यान्रणे मृतांस्तत्र दैत्याचार्यो ह्यजीवयत् ॥
एतद्वृत्तं तु कैलासे सर्वे चैवन्यवेदयन् । क्रोधाच्छम्भुस्तदा वाक्यं नन्दिनंनिजगादह

शम्भुरुवाच ।

गच्छ दैत्यालयं वीर द्रुतमेव ममाज्ञया । पश्यतां सर्वदैत्यानां दैत्येन्द्रस्य च संसदि ॥
गृहीत्वा चिकुरेऽत्यर्थं भार्गवं तं दुरात्मकम् ।
लब्ध्वा चास्मत्सकाशं वै विह्वलं चानयत्क्षणात् ॥ २६ ॥

व्यास उवाच ।

ततो नन्दीश्वरः श्रीमान्पार्वतीपतिनेरितः ।
काव्यं तं कुन्तले धृत्वा दैत्यानां पुरतो बलात् ॥ २७ ॥
आनयन्तं च तं दैत्या जघ्नुः प्रहरणैःशरैः । न शेकुस्ते रुजां कर्तुं नन्दिनोबलशालिनः
देवानामग्रतो नन्दी गृहीत्वा तं च कुन्तले ।
हरस्य पुरतो हृष्टः सह तेन समाययौ ॥ २९ ॥
गृहीत्वा भार्गवं शम्भुरसुराणां गुरुं रुषा । अगिलद्रौद्रमूर्तोऽसौकालान्तकसमःप्रभुः ॥
ततो दैत्यपतिः क्रुद्धः सर्वसैन्यवृतो बली । दुद्राव शङ्करं तत्र घोरैः प्रहरणादिभिः ॥
त्रिदशाश्च तथा क्रुद्धास्ततो विद्याधरादयः । प्रययुः समरं तत्र दैत्यानां च भृशं रुषा ॥
एतस्मिन्नन्तरे घोरं युद्धं भीष्मं समुत्थितम् । देवदानवयोरेवं सर्वलोकभयङ्करम् ॥
ततः प्रत्ययितास्त्रश्च देवा निघ्नन्ति दानवान् ।
दनुजा निर्जरांस्तत्र विनिघ्नन्ति महाहवे ॥ ३४ ॥

शातकुम्भमयाङ्गैस्ते शरैर्वज्रसमानकैः । बिभिदू रत्नपुङ्खैश्च परस्परजयैषिणः ॥ ३५ ॥
दीपयन्ति भृशं कान्तैस्तद्गात्राणि नभांसि च । वीर्यवन्तो महादैत्यानमोघैरस्त्रसञ्चयैः
हत्वा च पातयामासुः काश्यपाः सुरसत्तमाः । जगद्व्याप्तं महासैन्यं बलायुधसुसंवृतम्

नीतं क्षयं सुरैः सर्वैः शस्त्रैः प्रत्ययितैः क्षणात् ।
स्वयं च युध्यमानेन महादेवेन यत्नतः ॥ ३८ ॥

शूलोद्धृतोऽपि सुचिरमविनष्टोऽथनम्रधीः । अन्धकोगणतां नीत्वा कृतोभृङ्गीरिटिर्द्विज
ततोदेवान्समाभाष्य शुक्रमुद्गीर्णवाञ्छिवः । भूमौनिपतितो गर्भस्ततो भौम इतिस्मृतः
शुक्रशिवंसमाभाष्य गतो दैत्यान्मुदान्वितः । एवंभौमस्समुत्पन्नो हरांशो भूसमुद्भवः

तस्य पूजा चतुर्थ्यां तु भौमवारे च सुव्रतैः ।
दशाद्यरिष्टे च तथा गोचरेऽनिष्टराशिगे ॥ ४२ ॥

त्रिकोणे मण्डले चैव रक्तपुष्पानुलेपनैः । एवं वै पूजितो भौमः प्रयच्छति मतिं धनम्
पुत्रान्सुखंयशश्चैव किं भूयःश्रोतुमिच्छसि । एतद्वःकथितंशिष्या धर्माख्यानंशुभावहम्

यच्छ्रुत्वा न पुनर्भूयो जायते म्रियतेऽपि वा ।
द्विजातीनां पुण्यदं च संसेव्यं च शुभेप्सुभिः ॥ ४५ ॥
यथासुखं च गच्छध्वं कृतकृत्या ममाज्ञया ॥ ४६ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एवंविश्राव्य भगवान्व्यासः सत्यवतीसुतः । निर्णीयधर्मं विविधं शम्याप्रासमगात्सुत
त्वमपिश्रद्धया वत्स ज्ञात्वा तत्त्वंयथासुखम् । विहरस्वयथाकालं गायमानो हरिं मुदा

लोकान्धर्मं चोपदिशन्प्रीणयञ्जगतां गुरुम् ॥ ४८ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्तः प्रययौ भूप नारदो गन्धमादनम् । नारायणं मुनिवरं द्रष्टुं बदरिकाश्रमे ॥४९॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे भौमोत्पत्तिपूजनं नाम ऽयशीतितमोऽध्यायः ।

———

चतुरशीतितमोऽध्यायः

चण्डिकानुग्रहादवशिष्टदैत्यानां रसातलम्प्रतिगमनम् ।

भीष्म उवाच ।

चण्डिकानुग्रहाद्दैत्या गताश्शिष्टा रसातलम् । तद्वदस्व महाप्राज्ञ चण्डिकापूजने फलम्
यथा सम्पूज्यते देवी तुष्टा यच्छति यत्फलम् । श्रोतुं कौतूहलं मेऽद्य तद्वदस्वसविस्तरम्

पुलस्त्य उवाच ।

शृणुष्व नृपशार्दूल चण्डिकापूजने फलम् ।
यत्कृत्वा स्वर्गभुङ्मर्त्यः पश्चान्मोक्षं लभेद् ध्रुवम् ॥ ३ ॥

यत्पूजने फलं देव्या न तत्क्रतुशतैरपि । लभ्यते नितरां तात तीर्थदानव्रतादिभिः ॥४॥
चण्डिकां पूजयेद्भक्त्या यो नरः प्रत्यहं नृप । न क्षमस्तत्फलं वक्तुं साक्षाद्देवः पितामहः
मातुर्देव्याः प्रसादेन सुलभं सर्वमेवहि । अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ॥ ६ ॥
चण्डिकाभ्यर्चनस्यैतेलक्षांशेनापि नो समाः । स दाता स मुनिर्यष्टास तपस्वीसतीर्थगः
यः सदा पूजयेद्दुर्गां नानापुष्पानुलेपनैः । धूपैर्दीपैस्तथाभोज्यैः प्रणमेद्वापिभाविनीम्

स योगी स मुनिः श्रीमांस्तस्य मुक्तिः करे स्थिता ।
वर्षमेकं तु यो दुर्गां पूजयेद्विजितेन्द्रियः ॥ ६ ॥

एकाहारो महाबाहो सोऽग्निष्टोमफलं लभेत् । पौर्णमास्यांनवम्यां च क्षीरेणैवनराधिप

स्नापयित्वा शुभां दुर्गां वाजपेयफलं लभेत् ।
शुक्लपक्षे नवम्यां तु अष्टम्यां परमेश्वरीम् ॥ ११ ॥

त्रिकालं पूजयेद्यस्तु चतुर्दश्यां नराधिप । स गच्छति परं स्थानं यत्र देवी व्यवस्थिता

क्रीडयित्वां चिरं कालं राजा भवति भूतले ।
नवम्यां सोपवासस्तु यः पूजयति चण्डिकाम् ॥ १२ ॥
दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः ।

जितेन्द्रियो ब्रह्मचारी शुचिर्भूत्वा तु यो नरः ॥ १४ ॥

चण्डिकां पूजयेद्भक्त्या स यातिपरमां गतिम् ।

स्नानोपवासनियमैः पूजाजागरमार्जनैः ॥ १५ ॥

पर्वकालेषु सर्वेषु चण्डिकां यः प्रपूजयेत् । विमानं वरमारुह्य ध्वजमालाकुलंनृप ॥

ब्रह्मलोके नरो गत्वा मोदते शाश्वतीः समाः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन यथाविभवविस्तरैः

पूजयेत्सततं दुर्गां महापुण्यफलेच्छया । अयने विषुवे चैव षडशीतिमुखे नृप ॥ १८ ॥

मासैश्चतुर्भिर्यत्पुण्यं विधिना पूज्य चण्डिकाम् ।

तत्फलं लभते वीर नवम्यां कार्तिकस्य तु ॥ १९ ॥

मासि चाश्वयुजे वीर शुक्लेपक्षे त्रिशूलिनीम् । नवम्यां पूजयेद्यस्तु तस्य पुण्यफलंशृणु

अश्वमेधसहस्रस्य राजसूयशतस्य च । यत्फलं तल्लभेद्वीर दिविदेवगणैर्वृतः ॥ २१ ॥

मासि मासि नरो भक्त्या पूजयेद्यस्तु चण्डिकाम् ।

लभेत्षाण्मासिकं पुण्यं नवम्यां तु न संशयः ॥ २२ ॥

मेरुपर्वततुल्योऽपि राशिः पापस्य कर्मणः । चण्डिकां वैद्यमासाद्य क्षीयते दुष्टरोगवत्

दुर्गार्चने रतो नित्यं महापातकसम्भवैः । दोषैर्न लिप्यते वीर पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥

छित्त्वा भित्त्वा च भूतानि हत्वा सर्वमिदं जगत् ।

प्रणम्य शिरसा देवीं न पापैर्भुवि लिप्यते ॥ २५ ॥

सर्वावस्थां गतो वापि युक्तो वा सर्वपातकैः ।

दुर्गां दृष्ट्वा नरः सोऽपि प्रयाति परमं पदम् ॥ २६ ॥

स्वपंस्तिष्ठन्व्रजन्मार्गे प्रलपन्भोजने रतः । स्मरते सततं दुर्गां स च मुच्येत बन्धनात्

तद्देशे न च दुर्भिक्षं न च दुःखं प्रवर्तते । न कश्चिन्म्रियतेराजन्पूज्यते यत्र चण्डिका ॥

यो दुर्गां पूजयेन्नित्यं श्वपचो वा जितेन्द्रियः ।

भावेन च समायुक्तः सोऽपियाति परां गतिम् ॥ २९ ॥

पूजयित्वा तु तां भक्त्या श्रद्धया सर्वमङ्गलाम् ।

प्रयाति परमं स्थानं यत्र सा सर्वमङ्गला ॥ ३० ॥

घृताभिषेकं यः कुर्यादहोरात्रं नराधिपः। सूक्ष्मधारेण ताम्रेण भगवत्या विचक्षणः॥
मासि चाश्वयुजे वीर सर्वपापैः प्रमुच्यते।
कार्तिके पौर्णमास्यां यः सोमवारेऽर्चयेदुमाम्॥ ३२॥
सोऽग्निष्टोमफलं विन्देत्सूर्यलोकं च गच्छति।
आषाढे पौर्णमास्यां तु योऽर्चयेदम्बिकां नरः॥ ३३॥
सोपवासो महाभाग स याति परमां गतिम्।
पौर्णमास्यां तु यो माघे पूजयेद्विधिवच्छिवाम्॥ ३४॥
सोऽश्वमेधमवाप्नोति विष्णुलोके महीयते। अयने दक्षिणे यस्तु पूजयेदम्बिकां नृप॥
सकृद्गन्धोदकैः पुण्यैर्गन्धर्वसदने वसेत्। पञ्चगव्यं ततः क्षिप्त्वा पञ्चचूडाचले वसेत्॥
आपःक्षीरं कुशाग्राणि तण्डुला हविरक्षताः। सहा सिद्धार्थका दूर्वाः कुङ्कुमं रोचनामधु
अर्घोऽयं कुरुशार्दूल द्वादशाङ्ग उदाहृतः। अनेन पूजयेद्यस्तु स याति परमंपदम्॥ ३८॥
दारवेणार्घ्यपात्रेण दत्त्वार्घ्यंविधिवन्नृप। देव्यैतदा महाराज अग्निष्टोमफलं लभेत्॥
अब्दमेकशतं दिव्यं शक्रलोके महीयते।
गन्धानुलेपनं कृत्वा ज्योतिष्टोमफलं लभेत्॥ ४०॥
चन्दनेनावलिप्यार्यामग्निष्टोमफलं लभेत्। विलिप्य कृष्णागरुणा वाजपेयफलं लभेत्॥
कुङ्कुमेन विलिप्यार्यां गोसहस्रफलं लभेत्। चन्दनागरुकस्तूरैः सूक्ष्मपत्रैः सकुङ्कुमैः॥
दुर्गामालिप्य विधिवत्कल्पकोटिं वसेद्दिवि। अग्निहोत्रपरे विप्रे वेदवेदाङ्गपारगे॥४३॥
सुवर्णानां सुवर्णानां शते दत्ते तु यत्फलम्।
तत्फलं लभते राजन्पूजयित्वा तु चाम्बिकाम्॥ ४४॥
मालया बिल्वपत्राणां नवम्यां गुग्गुलेन च। मालाद्वयेन सम्पूज्य दुर्गां देवीं नराधिपः
बिल्ववृक्षस्य पत्रैर्वा राजसूयफलं लभेत्।
करवीरस्य च स्रग्भिः पूजयेद्यस्तु चण्डिकाम्॥ ४६॥
वाजपेयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः।
द्रोणपुष्पस्य च स्रग्भिः पूजयेद्यस्तु चण्डिकाम्॥ ४७॥

राजसूयफलं प्राप्य स्वर्गलोके महीयते ।
पूजयित्वा तु राजेन्द्र श्रद्धया विधिपूर्वकम् ॥ ४८ ॥
वन्यपुष्पस्य मालाभिः पितृलोके महीयते ।
शमीपुष्पस्य च स्रग्भिरार्यां सम्पूज्य भक्तितः ॥ ४९ ॥
गोसहस्रफलं लब्ध्वा विष्णुलोके महीयते । सर्वेषामेव पुष्पाणां प्रवरंनीलमुत्पलम् ॥
नीलोत्पलसहस्रेण यस्तु मालां प्रयच्छति ।
दुर्गायै विधिवद्वीर तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ५१ ॥
वर्षकोटिसहस्राणि वर्षकोटिशतानि च । दिव्यमूर्तिधरो भूत्वा रुद्रलोके महीयते ॥
सर्वासां पुष्पजातीनां यत्फलं परिकीर्तितम् ।
तस्माच्छतगुणं प्राप्य दुर्गालोके महीयते ॥ ५३ ॥
नीलोत्पलसहस्रैस्तु पूजयेद्यस्तु चण्डिकाम् । वाजपेयफलं प्राप्य रुद्रलोके महीयते ॥
अलाभे पुष्पजातीनां पत्राण्यपिनिवेदयेत् । पत्राणामप्यलाभे तु ओषधीस्तु निवेदयेत् ॥
ओषधीनामभावे तु भक्त्या भगवती जिता ।
प्रत्येकमुक्तपुष्पेषु कुशेष्वपि फलं नृप ॥ ५६ ॥
आङ्गिरसेषु तेष्वेव द्विगुणं काञ्चनस्य तु । मल्लिकामुत्पलं पत्रं शमीपुन्नागचम्पकम् ॥
कर्णिकारमशोकं च द्रोणपुष्पं विशेषतः । चन्दनं च जपापुष्पं नागकेसरमेवच ॥ ५८ ॥
यः प्रयच्छति पुण्यात्मा पुष्पाण्येतानि भावतः ।
चण्डिकायै नरश्रेष्ठ स च प्रोक्तफलं लभेत् ॥ ५९ ॥
सम्प्राप्य कालाद्राजत्वं चण्डिकानुचरो भवेत् ।
अथ पुष्पविशेषाणां फलं वक्ष्येऽम्बिकार्चने ॥ ६० ॥
ऋतुकालोद्भवैः पुष्पैर्मल्लिकाजातिकुङ्कुमैः । सितरक्तैस्तथापुष्पैर्नीलपुष्पैस्तु पाण्डुरैः ॥
किंशुकैः करवीरैश्च विकङ्कतसुचम्पकैः । बकुलैश्चैव मन्दारैः कुन्दपुष्पैः कुरण्टकैः ॥
कर्णिकारार्कपुष्पैश्च निम्बजैश्चापराजितैः । धत्तूरकातिमुक्तैश्च ब्रह्मकागस्तिसम्भवैः ॥
दमनैः सिन्दुवारैश्च सुरभीमार्कवैस्तथा । लताभिर्ब्रह्मवृक्षस्य दूर्वाङ्कुरैश्च कोमलैः ॥६४॥

मञ्जरीभिः कुशानां च बिल्वपत्रैः सुशोभनैः। भक्त्या युक्तस्तथानुक्तैर्जलजैःस्थलसम्भवैः
पत्रैः पुष्पैर्यथालाभं सर्वौषधिमयैः शुभैः। वन्यानां सर्वपत्रैश्च पुष्पैश्चैव प्रपूजयेत्॥

पद्माकृतिं च यः कुर्यान्मण्डलं चण्डिकागृहे।
स ब्रह्मणः पुरे गत्वा मोदते ब्रह्मणा सह ॥ ६७ ॥

शङ्खवर्णं तु यः कुर्यान्मण्डलं विधिवन्नृप। स दिव्यं यानमारुह्यचन्द्रलोकमवाप्नुयात्

नानावर्णेन चूर्णेन कृत्वा मण्डलमुत्तमम्।
गत्वा माहेश्वरीलोकं मोदते शाश्वतीः समाः॥ ६९ ॥

वज्राकृतिं वज्रचूर्णैर्यः कुर्यान्मण्डलं नृप। ऐरावतसमारूढ इन्द्राणीलोकमाप्नुयात्॥

यः करोति नरो भक्त्या दुर्गायाः पुरतो महत्।
श्वेतकृष्णैः सितैर्वर्णैः श्रीवत्साङ्कितमुत्तमम्॥ ७१ ॥

मण्डलं स नरो वीर विमानवरमाश्रितः। सेव्यमानोऽप्सरोव्रातैर्व्रजेच्छ्रीलोकमुत्तमम्

यः करोति नरो भक्त्या मण्डलं ह्यम्बिकागृहे।
रमते किन्नरैः सार्धं यावदाभूतसम्प्लवम्॥ ७३ ॥

घृतपिष्टप्रदीपाद्यो घृतमिश्रितपल्लवैः। ओषधीभिश्च मेध्याभिः सर्वबीजैर्यवादिभिः॥
नवम्यां सर्वकाले तु यात्राकाले विशेषतः। यः कुर्याच्छ्रद्धया वीर दिव्यं नीराजनं नरः
शङ्खभेर्यादिभिर्घोषैर्महद्भिर्देववादितैः। नताशेषविनिर्घोषैर्जयशब्दैश्च पुष्कलैः ॥ ७६ ॥

यावन्तो दिवसा देव्याः पूजने यान्ति वै नृणाम्।
तावत्कल्पसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥ ७७ ॥

यस्तु कुर्यात्प्रदीपेन शिवलोकं स गच्छति।
लवणेनाक्षतैः कृत्वा देव्या नीराजनं शुभम्॥ ७८ ॥

तावत्कल्पसहस्राणि विष्णुलोके महीयते। सुवर्णरौप्यवर्णैश्च कृत्वा नीराजनं नरः॥
भगवत्यै महाराज ब्रह्मलोके महीयते। त्रिकालं यो नरः कुर्याद्दुर्गायाः पुरतोनृप॥८०॥

नृत्यं गीतं च वादित्रं तस्य पुण्यफलं शृणु।
यावन्त्यब्दानि कुरुते नृत्यं गीतं च वादितम्॥ ८१ ॥

तावत्कल्पानि राजेन्द्र देवीलोके सुखं वसेत् ।
एकाहमपि यो भक्त्या पञ्चगव्येन चण्डिकाम् ॥ ८२ ॥
स्नापयेन्नृपशार्दूल स गच्छेत्सुरभीपुरम् । कपिलापञ्चगव्येन घृतक्षीरयुतेन च ॥ ८३ ॥
स्नानं शतगुणं प्रोक्तमितरेभ्यो नराधिप । वर्षैश्च षट्सहस्राणां पापानां समुपार्जनम् ॥
तत्सर्वं विलयं याति तोयेन लवणं यथा । घृताभ्यङ्गेन देव्यास्तु कृतेन विधिवन्नृप ॥
तस्मादभ्यञ्जयेद्भक्त्यानित्यं भगवतीं नृप । नवम्यां शुक्लपक्षे तु विधिवच्चण्डिकां नृप
घृतेन स्नापयेद्यस्तु तस्य पुण्यफलं शृणु । दशपूर्वान्दशपरानात्मानं च विशेषतः ॥
भवार्णवात्समुद्धृत्य दुर्गालोके महीयते । क्षीराद्यैः स्नापयेद्यस्तुश्रद्धाभक्तिसमन्वितः ॥
चण्डिकां स नरो याति गोलोकं तमसः परम् ।
चण्डिकां स्नापयेद्यस्तु नरश्चेक्षुरसेन च ॥ ८९ ॥
सौपर्णकेनयानेन विष्णुना सह मोदते । यो नरः स्नापयेद्दुर्गां श्रद्धया हेमवारिणा ॥
सौवर्णयानमारूढो मोदते पुरुषैर्दिवि । रत्नोदकेन विधिवत्स्नापयेच्छ्रद्धयान्वितः ॥
चण्डिकां स नरैः पूर्वैर्विष्णुलोके महीयते । स्नापयेद्य उमां देवीं नरः कर्पूरवारिणा ॥
सौवर्णयानमारूढो गच्छते यत्र चण्डिका ।
चण्डिकां स्नापयित्वा तु श्रद्धयाऽगरुवारिणा ॥ ९३ ॥
इन्द्रलोकं समासाद्य क्रीडते सह किन्नरैः ।
पितॄनुद्दिश्य यो दुर्गां मधुना पायसेन च ॥ ९४ ॥
स्नापयेद्विधिवद्भक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु ।
तृप्ता भवन्ति पितरस्तस्य वर्षशतद्वयम् ॥ ९५ ॥
य एवं स्नापयेन्नित्यं स्नानद्रव्यैर्नराधिप । युगपद्विधिवद्वीर तस्य पुण्यफलं शृणु ॥
अश्वमेधसहस्रस्य राजसूयशतस्य च । अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य स फलं विन्दते नरः ॥
स्नापयित्वा नरस्ताम्रैर्वाजपेयफलं लभेत् ।
सौवर्णैः स्नापयित्वा तु चण्डिकां कलशैर्नृप ॥ ९८ ॥
अश्वमेधफलं प्राप्य ब्रह्मलोके महीयते । घृतस्नातां तथा दुर्गां समुद्वर्तयते तु यः ॥ ९९ ॥

यवगोधूमजैश्चूर्णैर्घर्षयेच्छार्करेण च । घृतेन पयसा दध्ना स्नापयेच्चण्डिकां ततः ॥

बिल्वपत्रैः सुगन्धाढ्यैर्घर्षयेद्यत्नतः पुमान् ।
गोसहस्रशते दत्ते यत्फलं पुष्करे स्मृतम् ॥ १०१ ॥
तत्फलं लभते वीर देव्या उद्वर्तने कृते ।
दत्त्वाऽर्घ्यं विधिवद्भक्त्या दुर्गायै पद्मवारिणा ॥ १०२ ॥
सम्पूज्यमानो गन्धर्वै रमते दिवि देववत् ।
कृत्वोपवासं विधिवत्सुभोगी पुत्रवान्भवेत् ॥ १०३ ॥
उत्तरे त्वयने यस्तु सोपवासो यजेच्छिवाम् ।
बहुपुत्रो बहुधनः स नरः कीर्तिमान्भवेत् ॥ १०४ ॥
कृत्वोपवासं विधिवद्विषुवे योऽर्चयेच्छिवाम् ।
शक्तिमान्बहुपुत्रश्च स भवेद्बलवान्नरः ॥ १०५ ॥

योऽर्चयेद्विधिवद्दुर्गां ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । कृत्वोपवासं विधिवत्स भवेत्पुत्रवान्नरः ॥
शान्तिकामो नरो यस्तु राहुग्रस्ते दिवाकरे । सोपवासोऽर्चयेद्देवीं स गच्छेत्परमं पदम्
इत्येते कथिता वीर पूजाकाला मनीषिभिः । दुर्गायाः कुरु शार्दूल येषु पूज्य दिवंव्रजेत्
दुर्गाया दर्शनं पुण्यं दर्शनादभिवन्दनम् । वन्दनात्स्पर्शनं पुण्यं स्पर्शनादभिपूजनम् ॥
पूजनाल्लेपनं श्रेष्ठं लेपनात्तर्पणं स्मृतम् । तर्पणान्मांसदानं तु महिषाजनिघातनम् ॥
अहन्यहनि यो दुर्गां पूजयेद्रुधिरादिभिः । कुलानां शतमुद्धृत्य ब्रह्मलोके महीयते ॥

वरं प्राणपरित्यागः शिरसः कर्तनं वरम् ।
नचा (नाना) पूज्येह भुञ्जीत चण्डिकां चण्डरूपिणीम् ॥ ११२ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे देवीपूजाकथनं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥

———

पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

दुर्गायाः पूजाविधिनिरूपणम् ।

पुलस्त्य उवाच ।

देवैःपुरा जगत्कर्ता पृष्टो देवः पितामहः । ब्रूहि दुर्गार्चनं देव येन तुष्यति चण्डिका ॥

ब्रह्मोवाच ।

शम्भुः पूजयते देवीं मन्त्रशक्तिमयीं शुभाम् । अक्षमालांकरे न्यस्य तेनासौ विभवोद्भवः

दुर्गां रत्नमयीं देवाः पूजयामि सदा ह्ययम् ।
तेन प्राप्तं मया चैव ब्रह्मत्वं च सुदुर्लभम् ॥ ३ ॥

इन्द्रनीलमयीं देवीं विष्णुः पूजयते सदा । विष्णुत्वं प्राप्तवांस्तेन अद्भुतैकं सनातनम् ॥

देवीं हेममयीं दुर्गां धनदोऽर्चयते सदा । तेनासौ धनदो देवो धनेशत्वमवाप्तवान् ॥

विश्वेदेवा महात्मानो रौप्यां देवीं मनोरमाम् ।
यजन्ति विधिवत्तेन विश्वेदेवत्वमागताः ॥ ६ ॥

वायुः पूजयते भक्त्या देवीं पित्तलसम्भवाम् । वायुत्वं तेन सम्प्राप्तमनौपम्यगुणावहम्

वसवः कांस्यकां देवीं पूजयन्ति विधानतः ।
प्राप्तास्ततो महात्मानो वसुत्वं तन्महोदयम् ॥ ८ ॥

अश्विनौ पार्थिवीं देवीं पूजयन्तौ विधानतः । तेन तावश्विनौ देवौ स्ववैद्यौसम्बभूवतुः

स्फाटिकींशोभनां देवीं वरुणःपूजयेत्सदा । वरुणत्वंच सम्प्राप्त तेन चद्धर्यासमन्वितम्

देवीं रत्नमयीं पुण्यामग्निर्यजति भावितः । अग्नित्वं प्राप्तवांस्तेन तेजोरूपसमन्वितम् ॥

ताम्रां देवीं सदाकालं भक्त्या देवो दिवाकरः ।
अर्चयेत्तेन सम्प्राप्तं सूर्यत्वं शुभमुत्तमम् ॥ १२ ॥

मुक्ताफलमयीं देवीं सोमः पूजयते सदा । तेन सोमेन सम्प्राप्तं सोमत्वं सततोज्ज्वलम्

प्रवालकमयीं देवीं पूजयन्ति विधानतः । तेन ते ग्रहतां प्राप्ताः ग्रहाः सूर्यादयोऽनिशम् ॥

वारिजां शोभनां देवीं पूजयन्त्यसुरोत्तमाः । वारिजाश्च महात्मानस्तेनतेऽमितविक्रमाः

त्रपुसीसमयीं देवीं यजन्ते पितरः सदा ।

पितृत्वं प्राप्य ते सर्वे सम्पूज्याश्च जगत्त्रये ॥ १६ ॥

तथा लोहमयीं देवीं पिशाचाः पूजयन्ति ताम् ।

तेन सिद्धिबलोपेताः प्रयान्ति परमं पदम् ॥ १७ ॥

त्रिलोहिनीं सदा देवीं यजन्ते गुह्यकादयः । तेन भोगबलोपेताः प्रयान्तीश्वरमन्दिरम्

वज्रलोहमयीं देवीं यजन्ते भूतयोनयः । तेनमुक्ताः सुरत्वं च लभन्ते सततं दिवि १९

देवास्तथा यूयमपि यदीच्छथ परां गतिम् ।

शिवां मणिमयीं पूज्य लभध्वं मनसेप्सितम् ॥ २० ॥

यश्च देव्या गृहं नित्यं संमार्जयति भक्तितः । स भवेद्बलवान्देवाः सर्वसम्पत्तिसंयुतः

देव्या गृहं तु यो देवा गोमयेनानुलेपयेत् । स्त्रीपुमान्वा यथावच्च षण्मासाभ्यन्तरे ततः

स लभेदीप्सितान्कामान्देवीलोकं च गच्छति ॥ २२ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

स्नानकाले महाराज नानावादित्रमङ्गलैः । जयशब्दैश्च यो दुर्गां स्नाप्यमानांजलादिभिः

सम्पूजयति भक्त्या च गन्धपुष्पादिभिस्तथा ।

स क्रीडते दिवं गत्वा गन्धर्वाप्सरसांगणैः ॥ २४ ॥

चक्रैर्वा शतसङ्ख्यैस्तु क्षीरवृक्षसमुद्भवैः । हेमजैश्चापि कलशैर्जलक्षीरघृतान्वितैः ॥२५॥

अनेकवर्णसंयुक्तैरक्षतैर्नीरतण्डुलैः । यः करोति नरो भक्त्या चक्राकारं तु मण्डलम् ॥

चण्डिकायाः पुरो राजंश्चण्डिकायाश्च मन्दिरे ।

स दिव्ययानगो भूत्वा रमते वैष्णवे पुरे ॥ २७ ॥

शुभं वाप्यशुभंवापि फलं पुष्पं निवेदयेत् । भक्त्या युक्तो नरः सर्वसचदेवत्वमाप्नुयात्

नानाकुसुममालाभिर्मण्डपं चण्डिकोपरि । यः कुर्याद्विधिवद्भक्त्या विष्णुलोके महीयते

कुर्यात्पुष्पगृहं भक्त्या विधिवच्चण्डिकोपरि ।

नवम्यां पर्वकाले वा विचित्रकुसुमोज्ज्वलम् ॥ ३० ॥

विमानं वरमारुह्य पुष्पदामोपशोभितम् । अक्षयं मोदते कालं चण्डिकालयमाश्रितः ॥
पूजाविभक्तविन्यासरचनादिषु सर्वतः । फलमेवं समासेन ज्ञेयं वित्तानुसारतः ॥ ३२ ॥

कृष्णागरुं सकर्पूरं रोचनं चन्दनं तथा ।
भगवत्यनरो भूयः पङ्कं दत्वा नराधिपः ॥ ३३ ॥

इहकामानवाप्याथ शिवलोके महीयते । गुग्गुलं सघृतं दत्त्वा दुर्गायै च नरर्षभ ॥३४॥
वर्षार्धं विधिवद्भक्त्या गोसहस्रफलं लभेत् । अगुरुं धूपमावेद्य सर्वयज्ञफलंलभेत् ॥

सितागरुं नरो दत्त्वा गोसहस्रफलंलभेत् ।
सर्वेषामेव धूपानां दुर्गाया गुग्गुलुःप्रियः ॥ ३६ ॥

घृतयुक्तो विशेषेण सततं प्रीतिवर्धनः । द्वेसहस्रे पलानां तु तथापलशतद्वयम् ॥ ३७ ॥

दत्त्वा शुक्लनवम्यां तु चण्डिकावल्लभो भवेत् ।
महिषाक्षं घृताक्तं तु दत्त्वा बिल्वमथापि वा ॥ ३८॥

वाजपेयफलंप्राप्य सूर्यलोके महीयते । सकृष्णागरुधूपेन प्रीतिदा सर्वमङ्गला ॥ ३९ ॥

शोधयेत्पापकलिलं काञ्चनं दहनो यथा ।
वस्त्राणि सुविचित्राणि सूक्ष्माणि सुमृदूनि च ॥ ४० ॥
यः प्रयच्छति दुर्गायै स गच्छति शिवालयम् ।
यावन्तस्तन्तवो वीर तेषु वस्त्रेषु कीर्तिताः ॥ ४१ ॥

तावद्वर्षसहस्त्राणि शोभते चण्डिकालये । सुवर्णतिलके यस्तु भगवत्यै प्रयच्छति ॥

स गच्छति परं स्थानं यत्र सा परमा कला ।
सुवर्णघटितं वस्त्रं यो दुर्गायै प्रयच्छति ॥ ४३ ॥

गोसहस्रफलं प्राप्य सूर्यलोके महीयते । वित्तानुसरणेनैवं फलं ज्ञेयं समासतः ॥ ४४ ॥

सन्ध्याकाले नवम्यां यो बलिं कुर्यान्नराधिपः ।
चण्डिकायतने भक्त्या महिषाजनिपातनैः ॥ ४५ ॥
स गच्छति परं स्थानं यत्र सा चण्डिका स्थिता ।
गुडखण्डाज्यसम्मिश्रमन्नं दद्यान्नराधिप ॥ ४६ ॥

देव्यै यः सकुलोऽथासौ सूर्यलोके महीयते । गुडखण्डघृतानां च तथाशर्करयानृप ॥
दत्ते चोद्वर्तनं देव्यै स याति ब्रह्मणः पदम् ।
शाल्योदनं रसानां च प्रपानं विरजं तथा ॥ ४८ ॥
यः प्रयच्छतिदुर्गायै स च गच्छेच्छिवालयम् । दुर्गामुद्दिश्यपानीयंकेतकीगन्धवासितम्
यः प्रयच्छति राजेन्द्र सगणाधिपतिर्भवेत् । आम्रं च नारिकेलं च खर्जूरं बीजपूरकम्
यः प्रयच्छति दुर्गायै स गच्छेत्परमं पदम् ।
घृतदीपप्रदानेन योऽर्चयेच्चण्डिकां नरः ॥ ५१ ॥
सोऽश्वमेधफलं प्राप्य चण्डिकाऽनुचरो भवेत् ।
तैलदीपं च योदद्यात्पूजयित्वा तु चण्डिकाम् ॥ ५२ ॥
नागलोकं समासाद्य क्रीडते सह किन्नरैः । आत्मदेहवसादीपं प्रज्वाल्य चण्डिकाग्रतः
निवेदयेन्नरो भक्त्या मोदते सोऽम्बिकालये ।
यः कुर्यात्कार्तिके मासि शोभनां दीपमालिकाम् ॥ ५४ ॥
चण्डिकायतने भक्त्याससूर्यालयमाव्रजेत् । घृतेन कुरुशार्दूल अमायां च स्वशक्तितः ॥
विशेषतो नवम्यां च भक्तिश्रद्धासमन्वितः । तावद्वर्षसहस्राणि ब्रह्मलोके महीयते ॥५६॥
अश्मसारमयं कृत्वा नानादीपसमन्वितम् । दीपवृन्दं समुद्बोध्य दुर्गायाः पुरतो नृप
नरः कल्पायुतं साग्रं दुर्गालोके महीयते । चन्द्रांशुनिर्मलं छत्रं मणिमाणिक्यभूषितम् ॥
सर्वतः शोभनं कृत्वा नानापुष्पानुलेपनैः । दुर्गायाः पुरतो धत्ते स याति परमां गतिम्
चामरे श्रद्धया देव्यै दत्त्वा च श्रद्धयान्वितः । राजसूयफलं प्राप्य हंसलोके महीयते ॥
सम्प्रसारितदेहो यो दण्डवत्पतितो भुवि । चण्डिकापुरतो वीर स याति परमांगतिम्
जपसन्ध्योपवासेषु सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ।
तत्फलं लभते वीर प्रणम्य शिरसा शिवाम् ॥ ६२ ॥
दुर्गापूजोपकरणं स्वल्पं वा यदि वा बहु । कृत्वा वित्तानुसारेण रुद्रलोके महीयते ॥
चण्डिकां पूजयित्वा तु प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा इदं स्तोत्रमुदीरयेत् ॥ ६४ ॥

दुर्गां शिवांशान्तिकरींब्रह्माणीं ब्रह्मणःप्रियाम् । सर्वलोकप्रणेत्रींच प्रणमामिसदाम्बिकाम्

मङ्गलां शोभनां शुद्धां निष्कलां परमां कलाम् ।
विश्वेश्वरीं विश्ववन्द्यां चण्डिकां प्रणमाम्यहम् ॥ ६६ ॥

सर्वदेवमयीं देवीं सर्वदेवनमस्कृताम् । ब्रह्मेशविष्णुनमितां प्रणमामि सदाप्युमाम् ॥

विन्ध्यस्थां विन्ध्यनिलयां दिव्यस्थाननिवासिनीम् ।
योगिनीं योगविद्यां च चण्डिकां प्रणमाम्यहम् ॥ ६८ ॥

ईशानमातरंदेवीमीश्वरीमीश्वरप्रियाम् । प्रणतोऽस्मि सदा दुर्गां संसारार्णवतारिणीम्

इदं यः पठते नित्यं शृणुयाद्वापि भक्तितः । स मुक्तः सर्वपापेभ्यो दुर्गालोके महीयते

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे दुर्गार्चनस्तोत्रकथनं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ।

षडशीतितमोऽध्यायः

बुधगुरुशुक्रशनिराहुकेतूनां पूजाविधिवर्णनम् ।

भीष्म उवाच ।

श्रुतं सूर्यस्य चन्द्रस्य भौमस्यापि प्रपूजनम् । बुधस्य सोमसूनोश्च पूजनं कथयाधुना ॥

पुलस्त्य उवाच ।

तारागर्भसमुद्भूतो बुधश्चन्द्रकुमारकः ।
सौम्यः क्रूरो ग्रहो ज्ञेयः शुभाशुभप्रदो नृणाम् ॥ २ ॥

शराकारं मण्डलं तु बुधस्य परिकीर्तितम् । हरिन्मणिसमैर्वर्णैश्चूर्णैःकुर्यात्तु मण्डलम्

पूजयेत्तत्र गन्धाद्यैः पुष्पैर्धूपैस्सुशोभनैः । दानं च विधिवत्कुर्याद्दशारिष्टे च गोचरे ॥

कर्पूराश्चैव मुद्गाश्च हरिद्वस्त्रं हरिन्मणिः । सुवर्णं च यथा शक्ति दद्याद्बोधनतुष्टये ॥

सोमपुत्रमहाप्राज्ञ वेदवेदाङ्गपारग । नमस्ते ग्रहमध्यस्थ प्रसन्नो भव मे सदा ॥ ६ ॥

इति स्तुत्वा महाराज बुधं भक्त्या समाहितः ।

प्राप्नुयान्निखिलान्कामान्सोमसूनुप्रसादतः ॥ ७ ॥
गुरोश्च पूजनं प्रोक्तं पट्टसाकारमण्डले पीतवर्णैः सुनिष्पन्नैश्चूर्णैराजन्सुशोभनैः ॥८॥
पीतैर्गन्धयुतैःपुष्पैर्वस्त्रैर्हेम्ना च पूजयेत् । दशागोचरयोर्दौष्ट्ये दानंदद्याच्च शक्तितः ॥
चणकद्विदलंचैव पीतवस्त्रं सुवर्णकम् । पुष्परागं तु विप्राय दद्याच्चारिष्ट शान्तये ॥
बृहस्पते सुराचार्य सर्वशास्त्रविशारद । दानेनानेन संतुष्टो भवसौम्यो ममाधुना ॥
एवं कृते तु राजेन्द्र स्वानुकूलो भवेद्गुरुः ।
सर्वान्कामानवाप्नोति नरो गुरुसमर्चनात् ॥ १२ ॥
भार्गवस्यापि वक्ष्यामि पूजनं नृपतेऽधुना ।
यत्कृत्वा सर्वकामाप्तिः सम्यक्पुंसां प्रजायते ॥ १३ ॥
पञ्चकोणं समुद्दिष्टं मण्डलं भार्गवस्य तु । चूर्णकैः श्वेतवर्णैश्च विधिनासुधियाकृतम्
श्वेतगन्धैश्च पुष्पैश्च वस्त्रैश्चापि सितैस्तथा । पूजयेद्भार्गवंभक्त्या नरःश्रद्धासमन्वितः ॥
रौप्यं च दक्षिणादानं यथाशक्ति प्रकीर्तितम् । दशाद्यरिष्टे चोत्पन्ने सितमश्वंप्रदापयेत्
तण्डुलाः श्वेतवस्त्रं च रौप्यं चन्दनमेव च । कर्पूरं च सुगन्धाढ्यं देयंदानं द्विजातये ॥
भृगुपुत्र महाभाग दानवानां पुरोहित । दानेनानेन संतुष्टो भव सर्वासुरार्चित ॥ १८ ॥
इति मन्त्रं समुच्चार्य दद्याद्दानं यथोदितम् ।
तस्य तुष्टो भवत्याशु भार्गवः कुरुनन्दन ॥ १९ ॥
शनैश्चरस्य पूजार्थं मण्डलं च नराकृति । कृत्वाचूर्णैःकृष्णवर्णैः पूजयेत्तत्र भक्तितः ॥
कृष्णैर्गन्धैश्च पुष्पैश्च वस्त्रैश्चापि तथाविधैः ।
लोहं च दक्षिणा दानं पिण्याकं च तिलस्य च ॥ २१ ॥
दानं शनैश्चरारिष्टे कृष्णांगां कृष्णवस्त्रकम् । सुवर्णं च यथाशक्ति दद्यान्नीलमणिंतथा
सूर्यसूनो महाभाग छायापुत्र महाबल । अधो दृष्टे भव शने प्रसन्नोऽस्मात्प्रदानतः ॥
एवं स्तुत्वा शनिं भक्त्या यश्च दद्याद् द्विजातये ।
स्वानुकूलो भवेत्तस्य शनिः पापे च गोचरे ॥ २४ ॥
राहोर्वर्णादिकं सर्वं शनिवन्मण्डलं तथा । सूर्याकारं समुद्दिष्टं तत्र पूजाऽर्कसूनुवत् ॥

गोमेदं सर्षपाश्चैव तिला माषाश्च कृष्णकाः ।
महिषी च तथा च्छागो दानं राहोः प्रकीर्तितम् ॥ २६ ॥
सिंहिकासुत दैत्येन्द्र राहो चन्द्रार्कमर्दन । भवतुष्टो महाभाग दानेनानेन सुव्रत ॥२७॥
केतोर्मण्डलकं कुर्याद्‌ ध्वजाकृति सुशोभनम् ।
शनिवत्सकलं ज्ञेयं पूजा वर्णादिकं नृप ॥ २८ ॥
सप्तधान्यं समुद्दिष्टं सस्वर्णं केतुदानकम् । एवं कृते स्वानुकूलौ भवेतां च नृणांनृप ॥
प्रदद्यातां धनं पुत्रान्सुखं सौभाग्यमेव च । आकृष्णेतिरवेर्मन्त्र इमं देवास्तथाविधोः॥
अग्निर्मूर्द्धेति भौमस्य मन्त्रो जप्येऽर्हणे तथा ।
उद्बुध्यस्वतीन्दुसूनो बृंहस्पते गुरोस्तथा ॥ ३१ ॥
अन्नात्परीति शुक्रस्य शन्नोदेवीरयं शनेः । कयान इति राहोश्च केतोःकेतुमितिस्मृतः
एते मन्त्रास्समुद्दिष्टा ग्रहाणां पूजने जपे । एवं कृते नृपश्रेष्ठानुकूला अखिलाग्रहाः ॥
भवन्ति पुंसां सततं यच्छन्ति च सुसम्पदः ॥ ३४ ॥
एतन्महाराज मया समस्तं तुभ्यं समुद्दिष्टमिह क्रमेण ।
श्रुत्वानरः सर्वश्रुतार्थसारमेतीश्वरस्यैव च सन्निधानम् ॥ ३५ ॥
इदं पवित्रं यशसो निधानमिदं पितृणामतिवल्लभं स्यात् ।
इदं च देवेष्वमृताय कल्पते पुण्यावहं पातकिनां च पुंसाम् ॥ ३६ ॥
इति पठति यशस्यं यः शृणोतीह भक्त्या मधुमुरनरकारेरर्चनं वाथ पश्येत् ॥
मतिमपि च जनानां यो ददातीन्द्रलोके विधिशिवविबुधेन्द्रैः पूज्यतेकल्पमेकम् ॥
यः इदं शृणुयान्नित्यमृषीणां चरितं शुभम् । विमुक्तस्सर्वपापेभ्यःस्वर्गलोके महीयते ॥
तपः कृते प्रशंसन्ति त्रेतायां ज्ञानमेव च । द्वापरे यज्ञमित्याहुर्दानमेकं कलौयुगे ॥३६॥
सर्वेषामेव दानानामिदमेवैकमुत्तमम् । अभयं सर्वभूतानां नास्ति दानमतः परम् ॥
दान प्रधानं शूद्रस्य त्वित्याह भगवान्प्रभुः ।
दानेन सर्वकामाप्तिस्तस्य संजायते तपः ॥ ४१ ॥
पुण्यं पवित्रमायुष्यं सर्वपापविनाशनम् । पुराणमेतत्कथितं तीर्थश्राद्धानुवर्णनम् ॥

शृणोति यः पठेद्वापि श्रीमान्संजायते नरः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सलक्ष्मीकं हरिं लभेत् ॥ ४३ ॥
इदं महाराज अगादि तुभ्यं पुण्यं महापातकनाशनं च ।
ब्रह्मार्करुद्रैश्च सुपूजितं च श्रोतव्यमेतत्प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ ४४ ॥
सृष्टिखण्डमिदं राजन्मया तुभ्यं प्रकीर्तितम् ।
पुराणस्यादिभूतं च नवधा सृष्टि पौष्करम् ॥ ४५ ॥
द्विजेभ्यः श्रावयेद्विद्वान्यश्च शृणुयात्पठेत् । कल्पकोटिशतं साग्रं ब्रह्मलोके स मोदते ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे पुराणावतारे ब्रह्मार्चनवर्णनं नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

॥ इति सृष्टिखण्डं समाप्तम् ॥

॥ शुभंभवतु ॥

ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ।



॥ श्रीगणेशाय नमः॥

पद्मपुराणस्थ-सृष्टिखण्डस्य शुद्धिपत्रम्

पृष्ठाङ्काः	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
८	१५	सर्सपैश्च	सर्षपैश्च
६	१३	प्रधानतत्वेन	प्रधानतत्त्वेन
१२	५	ब्रह्मविदांवर	ब्रह्मविदाम्वरः
१३	१७	सङ्ख	शङ्ख
१६	६	माश्रमानाश्च	माश्रमाणाश्च
४६	२१	पतिरो	पितरो
५०	११	कमफलं	कमफलं
५१	७	विमानेष्यपि	विमानेष्वपि
५२	२५	निमाच्छृणु	निमाञ्छृणु
५३	१३	साक्षाताभिः	साक्षताभिः
६३	७	पिपीलिकलापं	पिपीलिकालापं
६३	१८	विलव्य	विलप्य
६७	५	पुना	पुनः
६७	१०	क्षेपप्स्यति	क्षेप्स्यति
७३	२१	पूरोर्वशं	पूरोर्वंशं
७६	१०	पथुरुक्म	पृथुरुक्म
७६	१४	भवद्रार्या	भवद्भार्या
७७	५	प्रतावान्	प्रतापवान्

पृष्ठाङ्काः	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
७७	६	त्वभद्धार्या	त्वभवद्धार्या
७७	६	व्यजापत	व्यजायत
७७	११	द्भजमान	द्भजमाना
७८	२	सभामध्य	सभामध्या
७९	३	प्रसेनस्यस्य	प्रसेनस्य
७९	५	गाविन्दश्च	गोविन्दश्च
८०	१६	ननंदि	नंदि
८०	१६	च्छुतकीर्तं	च्छ्रुतकीर्ति
८२	११	पूर्वमजात	पूवमदात्त
८३	१६	स्त्रैलोक्य	स्त्रैलोक्य
८५	१७	कायार्थं	कार्यार्थं
८६	७	वीजेतुं	विजेतुं
९१	१६	एवा	एव
९१	१८	अनुहार्थं	अनुग्रहार्थं
९३	३	प्रसाद्त्तव	प्रसादात्तव
९७	१३	रो	शूरो
९८	२	दाकुन्तीत	तदा कुन्ती
९८	८	त्वाया	त्वया
९८	११	कलस्य	कुलस्य
९८	१३	त्रलोक्यं	त्रैलोक्यं
१००	२३	प्रसूतिस्त्वं	प्रसूतिस्त्वं
१०३	१	प्राश्चित्त	प्रायश्चित्त
१०३	२४	महाता	महता

पृष्ठाङ्काः	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
१०४	१०	आदेह पानाद्य	आदेहपतनाद्य
१०७	५	वृक्षे	वृक्षै
११०	८	वेदोक्तावधानवित्	वेदोक्तविधानवित्
११२	४	मोक्षार्थ	मोक्षार्थं
११२	७	सुमीष्टाशी	सुमिष्टाशी
११२	१४	वैवत्यं	दैवत्यं
११३	६	चान्द्रायणदिभिः	चान्द्रायणादिभिः
११४	१०	प्रसन्निधौ	सन्निधौ
११४	१२	धर्मपयणाः	धर्मपरायणाः
११४	२२	वेदाध्यन	वेदाध्ययन
११४	२३	सर्वकांमा	सर्वकामा
११५	२१	नुहेणैव	नुग्रहेणैव
११५	२२	ब्रह्मलोक	ब्रह्मलोका
११५	२२	विष्णुलीका	विष्णुलोका
११६	१०	नानरत्न	नानारत्न
११६	११	गुणैरन्य	गुणैरन्यै
११६	१३	नराधा	नरा
११८	७	१७६	२७६
११९	३	गुरोर्भुखात्	गुरोमुखात्
१२०	६	ब्रह्मणामिहिता	ब्रह्मणाभिहिता
१२४	१३	शतारूपा	शतरूपा
१२६	१८	उद्गात्रंत्रो	उद्गातंभो
१२७	२	न्निरैः	किन्नरैः

पृष्ठाङ्काः	पङ्क्ति	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
१२७	१५	सद्वत्त	सद्वृत्त
१३०	१५	वाक्ष्य	वीक्ष्य
१३४	२	कन्याका	कन्यका
१४०	१४	भवष्यसि	भविष्यसि
१४०	१४	शत्रुभिर्बद्ध	शत्रुभिर्बद्धो
१४३	१६	जपेच्छुणु	जपेच्छृणु
१४६	१५	प्रीताः	पीताः
१४७	६	सरोऽपि	सारोऽपि
१४६	२२	पूणमा	पूर्णिमा
१५३	५	मृगु	भृगु
१५६	२	चित्याथ	चिन्त्याथ
१५७	६	नाम्न	नाम्ना
१५७	१५	नत्यति	नृत्यति
१५८	१६	नेतस्मा	नैतस्मा
१६२	१२	छषोपेता	झषोपेता
१६४	२	कण्टकाकीर्ण	कण्टकाकीर्णे
१६५	१६	ध्रिवं	ध्रुवं
१६७	८	वञ्चितां मया	वञ्चितो मया
१६८	१८	श्लाध्यं	श्लाघ्यं
१७३	२	मुक्तऽसि	मुक्ताऽसि
१७६	१२	तीर्थफलं	तीर्थफल
१७८	६	कातिकीं	कार्तिकीं
१७८	११	सावित्रा	सावित्री

पृष्ठाङ्काः	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
१८२	४	वनेचान्षे	वनेचान्ये
१८२	१२	परमदर्पिता	परमदर्पिताः
१८३	६	विनाश	विनाशं
१८३	१६	वचा	वचो
१८६	९	एवमुक्त	एवमुक्तः
१८७	९	भोजिता	भोजिताः
१९४	१५	धर्म	धर्मः
१९५	२१	महायते	महीयते
१९८	३	इन्द्रण	इन्द्रेण
१९९	३	विक्ष्य	वीक्ष्य
१९९	४	वभाषे	बभाषे
१९९	२४	विभ्रती	बिभ्रती
२०१	१०	क्षार	क्षीर
२०२	२०	सपिषी	सर्पिषी
२०३	४	गौरालोके	गौरीलोके
२०३	१५	तव्रमिदं	व्रतमिदं
२०३	१७	चैत्रै	चैत्रे
२०६	११	कुर्या	कुर्यात्
२०६	११	विष्ण	विष्णुं
२०९	१२	पद्मानाभाय	पद्मनाभाय
२०९	१५	पुनर्भुवौ	पुनर्भ्रुवौ
२०९	१६	पारिष्टात्तु	परिष्टात्तु
२११	२	सूक्ष्ला	सूक्ष्मा

पृष्ठाङ्काः	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
२१३	५	दिवाकरो	र्दिवाकरो
२१३	१६	संयुत	संयुतः
२१४	१४	पर्वतामा	पर्वताना
२१४	२४	रधम	रधमः
२१६	२५	घतार्चि	घृतार्चि
२१८	५	द्रजात	द्रजता
२१९	१५	तद्वद्वत्तांचकणिकाम्	तद्वद्वृत्ताञ्चकर्णिकाम्
२२०	२३	वजितः	वर्जितः
२२१	१९	कलमप	कलमष
२२३	१४	र्भास्कारायेति	र्भास्करायेति
२२३	१७	कणिकायाम्	कर्णिकायाम्
२२९	६	न्यासेत्	न्यसेत्
२२९	१४	अशोकायै न	अशोकायै
२३२	११	पटाघृताम्	पटावृताम्
२३३	२	वणा	वर्णा
२३५	१४	चाष्टाभी	चाष्टाभि
२३५	१५	मौनतेन भुञ्जीव्रत	मौनव्रतेन भुञ्जीत
२३५	२१	वित्तशाठ्य न	वित्तशाठ्येन
२३५	२४	बायुतत्रयम्	वर्षायुतत्रयम्
२३८	३	पुण्डराकाक्षं	पुण्डरीकाक्षं
२३८	१८	कणिकाम्	कर्णिकाम्
२३८	२५	विर्यक्ता	विधैर्युक्ता
२४२	१५	पुण्रीकाक्ष	पुण्डरीकाक्ष

पृष्ठाङ्काः	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
२४३	४	त्रोदश	त्रयोदश
२४३	७	मलङ्कत्य	मलङ्कृत्य
२४४	१५	मन्त्रै	मन्त्रै
२४७	१	चतुर्था	चतुर्थी
२४७	८	दम्भय	दम्भ
२४७	२०	विधत्त	विधत्ते
२५२	७	यावदुष्पोष्य	यावदुपोष्य
२५२	१८	त्रेलाक्या	त्रैलोक्या
२५४	१३	तत्रैब	तत्रैव
२५५	२१	चत्बारि	चत्वारि
२५७	२३	चाश्वस्थ	चाश्वत्थ
२५६	६	पिनाकधृक	पिनाकधृक्
२६२	६	वैंकुठेऽस्य	वैंकुण्ठस्य
२६२	८	महर्ल्लोके	महर्लोके
२६२	६	प्रकीतिता	प्रकीर्तिता
२६५	२३	जावलोके	जीवलोके
२६६	१६	प्रहृश्यन्ते	प्रदृश्यन्ते
२७१	१०	अथिता	अर्थिता
२७१	२२	यज्ञपर्वता	यज्ञपर्वत
२७१	२४	ब्रह्माण्ड	ब्रह्माण्ड
२७२	८	भोगन्	भोगान्
२७४	३	शिवदूता	शिवदूती
१७४	१५	वांसुकि	वासुकि

पृष्ठाङ्काः	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
२७६	१८	मन्त्रैपधै	मन्त्रौषधै
२७६	२५	तः	ततः
२७७	८	निष्कान्ता	निष्क्रान्ता
२७८	७	भीभं	भीमं
२७६	१५	शूलाग्र	शूलाग्रै
२७६	२१	पुरतोऽ भिसुखी	पुरतोऽ भिमुखी
२८१	१४	दुलभं	दुर्लभं
२८३	२१	यच्छुत्वा	यच्छ्रुत्वा
२८४	६	यक्त	युक्त
२८६	६	कृतैनित्यं	कृतैर्नित्यं
२८६	८	परिभाषिता	परिभाषिताः
२८६	२०	स्तपोभिश्च	स्तपोभिश्च
२६०	२१	जाह्वा	जाह्नवी
२६०	२१	वियुधा	विबुधाः
२६१	८	देवा	देवी
२६१	१२	ब्राह्मणो	ब्रह्मणो
२६१	१६	कि	किं
२६२	२	त्रिविष्टम्	त्रिविष्टपम्
२६२	१७	भुक्तेवा नच वा भुक्ते दिवा वा	भुङ्क्ते वा न च वा भुङ्क्ते दिवा वा
२६२	२३	सरस्वरती	सरस्वती
२६२	२५	मन्दकिन्या	मन्दाकिन्या
२६३	५	घृषध्वजः	वृषध्वजः

पृष्ठाङ्काः	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
२६३	१२	पाद्मयुराणे	पाद्मपुराणे
२६४	५	तच्छुत्वा	तच्छ्रुत्वा
२६४	२५	भूयो	भूर्यो
२६५	६	सर्वाकाम	सर्वकामा
२६५	१५	स्त्रियः	स्त्रयः
२६६	८	वच	वचन
२६७	५	पश्यस्व	
२६८	२	क्षण ं	क्षणं
२६८	६	सूय	सूर्ये
३०२	२३	र्बलिभिगणेन्द्रैः	र्बलिभिर्गणेन्द्रैः
३०६	२	ह्]ता	होता
३०६	४	धर्यु	ध्वर्यु
३०६	२१	कार्या	कार्यो
३०७	१३	गृहित्वो	गृहीत्वो
३०८	३	ब्रह्मावाचा	ब्रह्मोवाच
३०८	१२	श्रद्धधासि	श्रद्दधासि
३१०	५	रवाच	उवाच
३१०	१३	कहिचित्	कर्हिचित्
३११	२	हाराय	हराय
३१४	४	पलावते	
३१४	१८	सुभाङ्गस्तु	शुभाङ्गस्तु
३१८	३	सन्देह	सन्देहः
३१८	२०	अम्बुभक्षौ	अम्बुभक्षो

पृष्ठाङ्काः	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
३२०	२	पाद्यमाचनीयं	पाद्यमाचमनीयं
३२१	२	सतो	सती
३२२	१४	क्रमयोयेन	क्रमयोगेन
३२३	५	वस	वश
३२३	१६	अतीवस्पर्धने	अतीव स्पर्धते
३२३	१७	स्त्वर्ब्दानि	स्त्वर्बुदानि
३२८	२५	प्रप्नोत्यनामयम्	प्राप्नोत्यनामयम्
३३५	१८	शन्ति	शान्ति
३३६	२५	क्षत्	क्षुत्
३३७	१०	नप	नृप
३३८	११	पूणिमा	पूर्णिमा
३३९	३	क्षमस्मा	क्षमस्वा
३४१	७	प्राप्तावां	प्राप्तवां
३४३	२५	अधर्मश्चानतं	अधर्मश्चानृतं
३४६	३	भुक्तातु	मुक्ता तु
३४७	१२	साजता	सर्जिता
३६४	८	पृथवीं	पृथिवीं
३६६	१५	विनिजित्य	विनिर्जित्य
३६७	३	सुग्रीवेणैव	सुग्रीवेणैव
३६७	११	मरुदेश	मरुदेशो
३६८	२१	द्राक्षासालये	द्राक्षसालये
३७०	१४	कान्यकुजे	कान्यकुब्जे
३७२	१३	विरिश्चिनं	विरिञ्चिनं

पृष्ठाङ्काः	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
३७२	१४	विरिञ्चनं	विरिञ्चिनं
३७३	२२	नैगामा	नैगमा
३७७	१५	क्रिमीणां	कृमीणां
३८२		हंसज्ञतः	
३८२	२३	क्षब्धस्य	क्षुब्धस्य
३८३	१६	ब्रह्माण	ब्रह्माणं
३८६	१६	स्तपाघारं	स्तपोघोरं
३८६	२३	समुत्पादिवा	समुत्पादित्वा
३८७	८	महामना	महामनाः
३८७	२२	खसा	सखा
३८७	२३	कन्य	कन्या
३८८	१५	चव	चैव
३८८	२०	स्मृता	स्मृताः
३९०	४	प्रभवोऽय्य	प्रभवोऽव्यय
३९३	१४	स्तथो	स्तस्थौ
३९३	५	सौऽध्यारोह	सोऽध्यारोह
३९६	१०	दधार	दधारा
३९६	२१	निर्घोषं	निर्घोषं
३९७	७	जनं	जननं
३९७	९	मृध	मृधे
३९७	१४	वज्रण	वज्रेण
३९८	१७	मुनोनां	मुनीनां
३९८	२०	दन्तोलूस्वलिन	दन्तोलूखलिन

पृष्ठाङ्काः	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
३९९	४	अव्रह्मचर्या	अब्रह्मचर्या
३९९	२५	सुखम	सुखम्
४००	१४	इत्यवन्तष्य	इत्यवमन्तव्य
४००	२२	दुरसदा	दुरासदा
४०३	२१	निश्वासै	निःश्वासै
४०५	८	द्घोरं	द्घोरं
४०५	१४	निर्धापो	निर्घोषो
४०६	४	पूर्णमाण	पूर्णमान
४०७	८	नाभ्यवर्प न्त	नाभ्यवर्त्तन्त
४०८	२५	गुद्यम्य	मुद्यम्य
४०९	२	निस्त्रिशा	निस्त्रिंशा
४१०	६	व्रह्मावाच	ब्रह्मोवाच
४११	७	स्वर्मभिः	स्वकर्मभिः
४११	१६	तारकाययै	तारकात्यये
४१२	१२	क्षुदमृगं	क्षुद्रमृगं
४१४	१८	कर्त	कर्तुं
४१४	२०	सुताथिनी	सुतार्थिनी
४१६	७	दृत्यः	दैत्यः
४१६	१०.	कमलमनास	कमलासनम्
४१६	१२	पूर्वकम्	पूर्वम्
४२०	१८	क्लिष्टोनाद्य	क्लिष्टेनाद्य
४२६	८	तमध्यं	तमर्घ्यं
४२६	८	मुनिश्रष्ठ	मुनिश्रेष्ठ

पृष्ठाङ्काः	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
४२७	८	वेगाद्दुत्य	वेगादुद्धृत्य
४२५	६	सोच्या	शोच्या
४२६	६	परमेवरः	परमेश्वरः
४३४	५	नमोऽतु	नमोऽस्तु
४३४	१४	त्वामिन्द्मौलिं	त्वामिन्दुमौलिं
४३५	३	संस्करां	संस्कारां
४३५	१०	वनं	वचनं
४३५	१७	प्रतीक्षकाणा	प्रतीक्षमाणा
४३५	२३	दुर्भगत्वं	दुर्भगत्वं
४३८	६	क्नभूपणात्	कृतभूपणात्
४४४	१३	वित्रुद्धो	विबुद्धो
४४४	१८	ल	च
४४४	२२	जगदापुरयत्तदा	जगदापूरयत्तदा
४४४	२३	पुत्रेत्युचे	पुत्रेत्यूचे
४४५	८	तौयस्य	तोयस्य
४४५	१२	मन्दिरारण्येव	मन्दिराण्येव
४४५	१२	मानरम्	मातरम्
४६०	२२	नमोऽतु	नमोऽस्तु
४६१	४	इयुक्तास्तु	इत्युक्तास्तु
४६१	३	मुदिमानसाः	मुदितमानसाः
४६६	२२	कालधार्मिणा	कालधर्मिणा
४६८	७	समापेतैः	समोपेतैः
४६९	१	नसिंह	नृसिंह

पृष्ठाङ्काः	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
४६९	२	दत्य	दैत्य
४६९	३	गीतानिज गु	गीतानि जगु
४६९	७	एत्ता	एतास्
४७०	८	दत्य	दैत्य
४७१	८	स्तादा	स्तदा
४७२	६	विभावसु	विभावसुः
४७२	१९	आरण्येः	आरण्यैः
४७२	२१	पूजनार्हा	पूजनार्हाः
४७३	१६	गामती	गोमती
४७५	१४	परभं	परमं
४७६	४	भैरवास्या	भैरवस्या
४७७	३	घातनाय	घातनीय
४७७	१०	भूषाढ्यै	भूषाढ्यैः
४७७	१८	देवाना	देवानां
४७७	२०	मुपचमे	मुपचक्रमे
४७८	४	लध्वा	लब्ध्वा
४७९	१३	क्षुत्क्षमाम	क्षुत्क्षाम
४८१	१४	ह्यनौषीत्	ह्यनैषीत्
४८१	११	भूजलग्ना	भूजलग्नी
४८२	२४	स्वग	स्वर्ग
४८६	१४	वै	वैद्यु
४८७	२४	ॐ वः	ॐ भुवः
४९०	१३	हन्यव्यः	हन्तव्यः

पृष्ठाङ्काः	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
४६०	१७	समाचयेत्	समाचरेत्
४६२	८	स्तन्	स्तान्
४६४	२५	शाखा	शाखां
५००	२१	हरिर्मीतो	हरिर्भीतो
५०३	१०	पण्डुतां	पाण्डुतां
५०३	१६	स्रातकं	स्नातकं
५०३	२२	भिषक	भिषक्
५०८	१०	दर्पै	दौषै
५०८	१०	धना	धनी
५१०	१८	तद्वन्धु	तद्वन्धु
५११	१६	प्रच्छति	प्रयच्छन्ति
५२३	८	पत्युर्नीत्यं	पत्युर्नित्यं
५२३	२२	वरवणिनी	वरवर्णिनी
५२४	४	स्थिताभवत्	स्थिताऽभवत्
५२८	१६	जिज्वलत्	जीज्वलत्
५३०	२०	अपश्यतं	अपश्यत्तं
५३३	१०	सतज्जनाति	सतज्जानाति
५३७	८	त्पूत्रो	त्पुत्रो
५३६	१८	पितृणा	पितणा
५४२	१७	त्वत्प्रसादश्च	त्वत्प्रसादाच्च
५४२	२५	ह्यषसि	ह्युषसि
५४३	१४	भाषिणा	भाषिणी
५४५	११	मनाहितः	मनोहितः

पृष्ठाङ्काः	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
५५२	२३	शुक्रमश्नानि	शुक्रमश्नाति
५५५	२	वहव	बहव
५५५	२३	प्रपर्वते	प्रवर्तते
५५८	२	धामिक	धार्मिक
५६०	४	मुनिवेषधरा	मुनिवेषधरो
५६०	१०	प्रभा	प्रभो
५६४	५	दुनिवारो	दुर्निवारो
५६५	१७	तेषाम्मभ्ये	तेषाम्मध्ये
५६६	५	तच्छुत्वा	तच्छ्रुत्वा
५६७	३	पराभव	पराभवः
५६७	५	क्षेमङ्करा	क्षेमङ्करी
५७२	६	धर्मसाक्षिणाः	धर्मसाक्षिणा
५७२	८	भागारथ्यां	भागीरथ्यां
५७३	४	सर्वपां	सर्वेषां
५७५	२	प्रचूरे	प्रचुरे
४७७	३	ते न	तेन
५७७	१८	चित्रतुप्त	चित्रगुप्त
५७८	२	चोर	चौर
५७८	२४	तच्छ्रता	तच्छ्रुत्वा
५७६	१	चोराख्यान	चौराख्यान
५८४	३	श्मशने	श्मशाने
५८५	१४	पुण्योगेन	पुण्ययोगेन
५८६	१०	तस्मार्त्स	तस्मात्सर्व

पृष्ठाङ्काः	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
५८८	३	वणितेन	वर्णितेन
५८८	३०	प्रेता	प्रेत
५९०	५	संक्षयः	संशयः
५९२	१८	प्रमीताश्च	प्रमीताश्च
५९३	१५	युष्पाकम्	युष्माकम
५९५	१२	तपिताः	तर्पिताः
६०१	१६	पितृ	पितॄ
६०५	२	गङ्गाजलोभि	गङ्गाजलोर्मि
६०७	५	शम्भा	शम्भो
६०८	५	च्छुत्वा	च्छ्रुत्वा
६१०	३	सर्वतार्था	सर्वतीर्था
६१२	१३	भवाप्नोति	मवाप्नोति
६१५	६	भगवन्नसुरैर्ना	भगवन्नसुरैर्नोहि
६१४	१८	प्रात्या	प्रीत्या
६१५	१३	गणेशोऽ	गणेशो
६२०	१२	श्चच्छेद्	श्चिच्छेद्
६२१	१४	लाक	लोक
६२४	३	स्रस्तै	स्रस्तैः
६२५	२	रदिता	रर्दिता
६२६	६	सण्डे	खण्डे
६२६	११	नमुचिवधः	मुचिवधः
६२६	२०	वन्ह	वन्हे
६२६	२३	वाणभ्रु मिन्द्र	भ्रु वाणमिन्द्र

पृष्ठाङ्काः	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
६२८	५	त	तं
६२८	१०	महाबाहु	महाबाहुः
६२८	१७	शक्ति	शक्तिं
६२६	२	दुर्धष	दुर्धर्ष
६३४	२५	लोहितो	लौहितो
६३७	१६	सम्प्रचे । तुः	सम्प्रचेतुः
६४१	१७	दूगीषणं	द्रीषणं
६४३	१८	गन्धवँ	गन्धर्व
६४३	२५	मर्धनि	मूर्धनि
६४४		खगमैश्च	
६४६	७	महताविष्ठो	महताविष्टो
६४६	८	सूकरो	शूकरो
६४६	१८	चकं	चक्रं
६४८	१०	मिच्छाभि	मिच्छामि
६४६	२	चोराः	चौर
६५०	२	सकृच्छोचं	सकृच्छौचं
६५०	१०	वहि	वहि
६५१	१	देवत्वः	देवत्व
६५२	८	धम	धर्मे
६५३	१७	स्वजने	स्वजनैः
६५४	११	बुद्धया	बुद्ध्या
६५६	७	ावगुणै	विगुणै
६५७	६	कि	किं

पृष्ठाङ्काः	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
६५७	६	मुनि	मुंनि
६५८	२३	भुवनेष	भुवनेषु
६५९	२२	नीदिताः	नोदिताः
६६०	८	तथैवाग्नि	तथैवाग्निं
६६२	१०	भक्तं	भुक्तं
६६२	१६	पूर्वा	पूर्वो
६६३	१०	त्वपराह्ने	त्वपराह्णे
६६४	१५	ङ्क	ङ्
६६४	१६	दहतवक्त्रण	वक्त्रेण
६६४	१७	सुगलं	
६६५	११	कुर्मा	कुर्मो
६६७	१४	बृद्धि	वृद्धि
६६९	१३	चब्रवीद्वचः	चाब्रवीद्वचः
६६९	२१	सुसम्पूर्णै	सुसम्पूर्णैः
६७०	११	भास्कस्यैव	भास्करस्यैव
६७०	१५	सूर्य	चन्द्र
६७०	१७	ग्रहेश्शरस्यैप	ग्रहेश्वरस्यैष
६७१	२४	सूधाकर	सुधाकर
६७२	६	दधिक	दधिकं
६७४	१७	कर्तं	कर्तुं
६७६	२०	क्रीडयित्वां	क्रीडयित्वा
६७७	१४	पामस्य	पापस्य
६७८	१३	विधिचन्नृप	विधिवन्नृप

पृष्ठाङ्काः	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
६८०	१२	वार	वीर
६८०	१५	यवादिमिः	र्यवादिभिः
६८३	४	ब्रूहि	ब्रूहि
६८५	११	शुक्लनवभ्यां	शुक्लनवम्यां
६८८	४	दशागाचर	दशागोचर

पद्मपुराणस्थ सृष्टिखण्डस्य शुद्धाशुद्धिपत्रं समाप्तम

शुभम्भवतु

ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु